॥ ॐ ॥

श्री दादूवाणी

श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका टीका सहित

सन्तप्रवर श्रीदादूदयालजी महाराज

टीकाकार

सन्त कविरत्न स्वामी नारायण दास जी, पुष्कर (राज.)

प्रकाशक

श्री दादू दयालु महासभा, जयपुर

(सटीक)

अनभै वाणी अगम की, ले गई संग लगाय।
अगह गहै, अकह कहै, अभेद भेद लहाय॥

सम्पादक
था. रामप्रसाद दास स्वामी
जमात निवाई, जिला-टोंक

अशोक स्वामी
संत कुटीर, सांगानेर, जयपुर

टीकाकार
सन्त कविरत्न स्वामी नारायणदासजी महाराज
पुष्कर

प्रकाशक
श्री दादू दयालु महासभा, जयपुर
सार्वजनिक प्रन्यास सं. 675/79, रजि. सं. 16/49

प्रकाशक :
श्री दादू दयालु महासभा
प्रधान कार्यालय - श्री दादू महाविद्यालय (राज.)
मोती डूंगरी रोड़, जयपुर-302 004

अष्टम् संस्करण : 1100 प्रतियाँ

सेवार्थ - 180.00 रूपये मात्र

मुद्रक :
एस. एस. ग्राफिक्स
240, सौंखियों का रास्ता, किशनपोल बाजार, जयपुर
दूरभाष : 0141-2314189, 98284-35238

पुस्तक प्राप्ति स्थल :

1. **श्री दादू महाविद्यालय**
   मोतीडूंगरी, जयपुर-302004
2. **श्री दादू मन्दिर**
   नरायणा, जिला-जयपुर
3. **श्री दादू बाग आश्रम**
   कनखल, हरिद्वार (उत्तराखण्ड)
4. **श्री दादू महानन्दाश्रम**
   रेल्वे रोड़, ऋषिकेष, देहरादून (उत्तराखण्ड)

॥ श्री दादूदयालवे नमः॥

यदीया वाण्येषा अमृतरसपूर्णा श्रमहरा।
श्रुता यै प्रीत्येयं विशदयति तेषां मतिमलम्॥
पुमांस्तां गायन्वै व्रजति भवपारं सुखतरम्।
नमामस्तं दादूं प्रणतजनवृन्दानतपदम्॥

प्राक्कथन

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवतः।
वन्दनं सर्वसाधवा, प्रणामं पारंगतः॥
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः, गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परं ब्रह्म, तस्मै श्री गुरवे नमः॥

अखिल जगदाधार, जगन्नियन्ता की महती अनुकम्पा से उच्च कोटि के साधक महर्षि श्री दादू दयालजी की अनुभव वाणी (श्रीदादूवाणी) का यह अष्टम् संस्करण का प्रकाशन करते हुए परम हर्ष का अनुभव हो रहा है।

आज के इस भौतिक जगत् की चकाचौंध से भ्रमित मानव अपने को ही सब कुछ मानता हुआ उस अचिन्त्य शक्ति (प्रकृति) को भी भूल चुका है जिसका सामना करने में एडी से चोटी तक का जोर लगाते रहने पर भी प्रकृति पर विजय नहीं प्राप्त कर पाया और प्रकृति प्रदत्त भयकंर आपदाओं के (सुनामी, भूकम्प, अनावृष्टि, अतिवृष्टि, बाढ़) सामने अपने आपको नितान्त असहाय सा मानता हुआ पुनः इस प्रकृति पर विजय प्राप्त करने हेतु विज्ञान की तरफ अपने मन को झकझोरने लगा है।

आज का मानव यह भूल चुका है कि प्रकृति पर विजय बड़े बड़े अभिमानी रावण जैसे दुर्दान्त मानवों द्वारा एवं विश्वामित्र जैसे दुराग्रही महर्षियों द्वारा भी विजय प्राप्त करना असंभव था और वे सब इसके सामने कालकवलित हो गये। दादूजी महाराज ने अपनी वाणी में स्पष्ट कहा है कि–

धरती करते एक डग, दरिया करते फाल।
हाकों पर्वत फाड़ते, तिनको खाया काल॥

आज का यह मानव चन्द्रलोक में अपने झंडे गाड़ चुका है, कृत्रिम प्रजनन विधियों द्वारा सृष्टि पैदा करने में भी अपने आपको सक्षम मानने लग गया है और विधाता के लेख को भी पलटने में अपनी शक्ति क्षीण कर रहा है। वह यह नहीं

जानता कि इन प्रयासों से कुछ भी प्राप्त होने वाला नहीं है। और उसे उस अचिन्त्य शक्ति के सामने सब कुछ भूल कर नतमस्तक होने को बाध्य होना पड़ रहा है।

आज का मानव अपनी भोगवादी संस्कृति के सहारे अपने को पूर्णतया सुख सुविधा सम्पन्न जिन्दगी जीने की कला में निष्णात हो रहा है लेकिन ज्यों-ज्यों वह आगे बढता है उसकी मानसिक शान्ति उससे कोसों दूर होती जा रही है।

आज के धनिकवर्ग की यह अवस्था है कि वह सब कुछ समर्थ होते हुए भी चोरी का, शारीरिक व्याधियों का भय उसे सता रहा हैं। अनिद्रा, शुगर, रक्तचाप, हार्टअटैक जैसी बिमारियां उसे सर्वदा घेरे रहती है और जीवनीय शक्तियों वाले पदार्थ (घी, चीनी) आदि चीजों को छोड़ते हुए शुष्क खानपान पर अपनी जीवनधारा को चलाते हुए सदैव अशान्त रहता है। मानसिक शान्ति प्राप्त करने हेतु वह सन्तों की शरण में अथवा सन्तों की वाणियों (धर्मग्रन्थों) को पढ़ने का अवसर प्राप्त करता रहता है और इन्हीं धर्मग्रन्थों द्वारा एवं नियमित प्राणायाम द्वारा जो कि आध्यात्म का रास्ता है चलने पर विवश हो रहा है।

ऐसी स्थिति में श्री दादूवाणी हमें सही जीवन जीने की शिक्षा देती है। श्री दादूवाणी व्यवहार एवं आध्यात्म की दोनों ओर मानव को शिक्षा देती है कि मानव अपनी जिन्दगी को कैसे सम्मान पूर्ण तरीके से जी सकता है।

श्री दादू जी महाराज व्यवहार दशा में बतलाते है कि आदमी को कोई भी कार्य करने से पहले पूर्ण सोचविचार कर लेना चाहिये क्योंकि सब व्याधियों का मूल कारण विचार है जैसा कि निम्न साषियों से स्पष्ट है-

दादू सबही व्याधिकी, औषधि एक विचार।
समझे तो सुख पाइये, कोई कुछ करो विचार॥

जे मति पीछे ऊपजै, सो मति पहिले होय।
कबहुं न होवे जीव दुखी, दादू सुखिया सोय॥

पहली प्राण विचार कर, पीछे चलिये साथ।
आदि अंत गुण देखकर, दादू घाली हाथ॥

आध्यात्म की ओर भी दादू जी ने बहुत कुछ मार्मिक उपदेश किया है।

दादू देही देखतां, सब किसही की जाय।
जब लग श्वास शरीर में, गोविन्द के गुण गाय॥

दादू काया कारवी, देखत ही चलि जाइ।
जब लग श्वास शरीर में, राम नाम ल्यौलाइ॥

देह रहे संसार में, जीव राम के पास।
दादू कुछ व्यापै नहीं, काल झाल दुःख त्रास॥

मानव जीवन के उपयोग का कौनसा मार्ग श्रेयस्कर है इसके लिए सन्तों ने अपनी अनुभूति से जो निश्चय किया है उससे प्रत्येक मानव उनकी विमल वाणी द्वारा अधिक से अधिक लाभ प्राप्त कर सकता है।

सन्तों ने जाति व धर्म (वर्गभेद) से हट कर सामान्य मानव धर्म की तरफ अपने विचार प्रतिपादित किये है। संसार के सभी दुःख रागद्वेष जन्य है और राग द्वेष का कारण भेद जन्म प्रवृत्ति है धर्म, जाति, देश व वर्गभेद से हमारे विचारों में भेदमूलक भ्रान्तियें उत्पन्न हो जाती हैं जिससे वर्गवाद की उत्पत्ति होती है।

सन्तों ने इस प्रकार की सभी प्रवृत्तियों को अनुचित कहा है और उन्होंने निरपेक्ष मानवता की रक्षा पर ही बल दिया है।

आज सम्पूर्ण विश्व धर्म निरपेक्ष की दुहाई देते हैं आपस में सब सौहार्द्रपूर्ण रहने की प्रतिज्ञायें करते हैं किन्तु हमारे संविधान में वर्णित धर्मनिरपेक्ष देश की पालना में अपना देश भी कहां तक अमल कर रहा है। रातदिन इसी वर्गभेद के कारण सामाजिक दंगे, विद्रोह की अग्नि में आहुति दे रहे हैं।

भौतिकवाद की धक्कमपेल ने सांसारिक प्राणियों को उद्वेलित कर दिया है। भोगवादी संस्कृति ने अपना प्रभाव इतना फैला दिया है कि उससे बाहर निकलना मनुष्य की क्षमता के बाहर हो चुका है।

इस कर्ममय जगत् में निष्काम होकर संसार की सर्वथा उपेक्षा भी नहीं की जा सकती। सन्तों ने कभी भी मनुष्य को कर्म नहीं करने का उपदेश नहीं दिया है। उन्होंने तो सदैव कर्म करने का उपदेश दिया है किन्तु वह होना चाहिये सत्कर्म (मानवकर्म) सभी ने कहा है कि कर्म करो और उसका फल भगवान के भरोसे छोड़ दो।

कर्मण्येवाधिकारस्ते, मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भू, मा ते संगोस्त्वकर्मणि॥

अर्थात् सत्कर्मों में ही आपकी प्रवृत्ति रहनी चाहिये। सन्तों ने अपनी अनुभूति के परिपक्व विचारों द्वारा मानव को यही प्रेरणा देने का प्रबल प्रयास किया है कि वह भौतिक जगत् से आगे बढ़कर आध्यात्मिक रहस्य का भी अध्ययन करे जिससे कि वह सचमुच में मानव कहलाने का अधिकारी हो सके।

श्री दादू जी महाराज की वाणी आपको यही बतला रही हैं। आप यदि प्रतिदिन थोड़ा सा भी मनन, पठन करेंगे तो निश्चित ही मानव जीवन की सार्थकता के लिए प्रेरणा प्राप्त होगी।

मेरी बाल्यावस्था से ही श्रीदादूजी के प्रति श्रद्धा रही है और मैंने अनुभव किया है कि मैं जब जब अशान्त रहा तब तब मैंने वाणीजी का सहारा लिया और उनके पठन एवं मनन से मुझे मानसिक शान्ति प्राप्त हुई। दादूवाणी आज के मानसिक दु:खों से सन्तप्त प्राणियों के लिए एक अमृतघुंटी की तरह काम करती है। जिसको व्यवहार में लाने पर ही आपको उसके परिणाम मिल सकते हैं। सभी से मेरी विनम्र प्रार्थना है कि आप अपना 15 मिनट का अमूल्य समय देकर पूर्ण तनावमुक्त होकर श्री दादूवाणीजी का पठन करेंगे तो आपकी जीवन धारा ही बदल जायेगी और सर्वदा स्वस्थ एवं सुखी रहेंगे ऐसा मेरा अनुभव है।

अन्त में मैं महन्त रामानन्द जी स्वामी, सुन्दरबाग, दौसा का अत्यन्त आभारी हूँ जिन्होंने बहुत ही सरल भाषा में भूमिका लिखकर दादूजी के सिद्धान्तों को समझने में सहारा प्रदान किया हैं।

मैसर्स एस. एस. ग्राफिक्स, जयपुर के श्री अनिल खाण्डल तथा श्री सुनील खाण्डल को, जिन्होनें अत्यन्त श्रद्धा भाव से इतने अल्प समय में श्री दादूवाणीजी का प्रकाशन पूर्ण निष्ठा एवं तत्परता से किया, इस हेतु मै इनका आभार व्यक्त करता हूँ।

श्री दादूवाणीजी के प्रकाशन में किसी भी प्रकार की त्रुटि नहीं रहे एतदर्थ पूर्ण प्रयास किया गया है फिर भी त्रुटियां होना मानव की स्वाभाविक आदत है अत: क्षमाप्रार्थी हूँ। ***इति शम्***

तन मन निर्मल आतमा, सब काहू की होय।
दादू विषय विकार की, बातन बूझै कोय॥

सांई सत संतोष दे, भावभक्ति विश्वास।
सिदक सबूरी सांच दे, मांगे दादू दास॥

गोगा नवमी,
संवत् : २०६६
दि. १५ अगस्त, २००९
जयपुर

शुभेच्छु
अशोक स्वामी
मंत्री- श्री दादू दयालु महासभा
जयपुर

॥ श्री दादूदयालवे नमः॥

अज्ञान तिमिरान्धस्य, ज्ञानांजनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन, तस्मै श्री गुरुवे नमः॥

नमस्कार सुन्दर करत, निशदिन बारंबार।
सदा रहो मम शीस पर, सतगुरु चरण तुम्हार॥

सम्पादकीय-निवेदन

जगन्नियन्ता, अचिन्त्य एवं अविज्ञेय शक्ति को बार बार नमन है जिसकी कृपा से श्री दादूवाणी (सटीक) का अष्टम् संस्करण आपके कर-कमलों में समर्पित है। श्री दादूवाणी के सात प्रकाशन अब तक हो चुके हैं। इतनी अल्पावधि में यह अष्टम् संस्करण इस बात का द्योतक है कि आज के इस भौतिकवाद में समाहित मानव को इस अमूल्य निधि श्रीदादूवाणीजी की कितनी आवश्यकता है। भौतिकवाद के प्रलोभनों में उलझा हुआ प्राणी आज अन्धाधुंध भागा जा रहा है। वह यह समझ रहा है कि अन्त में उसे इनसे शान्ति प्राप्त हो जायेगी। किन्तु नासमझ यह प्राणी नहीं समझ पा रहा है कि यह अन्धी दौड़ कभी भी समाप्त नहीं होने वाली है। इस शान्ति का समाधान यदि कोई खोजने का प्रयास करे तो उसे इन बाहरी साधनों द्वारा प्राप्त नहीं होकर आन्तरिक साधनों द्वारा ही शान्ति प्राप्त हो सकेगी। सन्तों की वाणियाँ एवं उपदेश ही इस अन्धी दौड़ की समाप्ति का साधन है जैसा कि निम्न साखी से स्पष्ट हो रहा है-

दादू जा कारण जग ढूंढिया, सो तो घट ही मांहि।
मैं तैं पड़दा भरम का, ताथैं जानत नांहि॥

दादू जीव न जाने राम कों, राम जीव के पास।
गुरु के शब्दों बाहिरा, ताथैं फिरे उदास॥

उपरोक्त शब्दों द्वारा यह स्पष्ट है कि आत्मा की शान्ति के लिए सन्तों की शरण में अथवा सन्तों की वाणियों का मनन करना ही आत्मशान्ति का साधन है और वह भी अपने भीतर ही उसे प्राप्त करने की कोशिश करनी चाहिये। सन्तों की वाणी के रहस्य को समझने के लिए मनुष्य को अन्तर्मुखी होना जरूरी है और उसके लिए सतगुरू अथवा अनुभवी वीतरागी सन्तों की शरण में जाना ही अभीष्ट

है। आत्मशान्ति प्राप्त करने हेतु बहुत बड़ी व्याकरण, साहित्य शास्त्रों के अध्ययन की आवश्यकता नहीं है अपितु सतगुरु के बताये रास्ते पर चलकर निरन्तर अभ्यास द्वारा उस परमपिता परमेश्वर की भक्ति करके उसे प्राप्त किया जा सकता है। जिस प्रकार अन्धकार हो हाथ में दीपक लेकर प्रकाश के द्वारा दूर किया जा सकता है उसी प्रकार गुरु के शब्दों के बार-बार अभ्यास रूपी ज्ञान द्वारा अज्ञान का नाश किया जा सकता है जैसाकि निम्न साखी से स्पष्ट है :-

जब ही कर दीपक दिया, तब सब सूझन लाग।
यों दादू गुरु ज्ञान थैं, राम कहत जन जाग॥

दादू यहु मसीति यहु देहुरा, सतगुरु दिया दिखाय।
भीतर सेवा वन्दगी, बाहर काहे जाय॥

उपरोक्त साखियों से स्पष्ट है कि बाहर के साधनों को छोड़कर अन्तरंग साधनों द्वारा ही परमेश्वर का साक्षात्कार संभव है। इसके लिए मन पर काबू पाने की कोशिश करनी चाहिये और मन को ही सभी विषयों से हटाकर आत्मचिंतन में सतगुरु की शरण लेकर लगाने का अभ्यास करना चाहिये।

मन का मस्तक मूंडिये, काम क्रोध के केश।
दादू विषय विकार सब, सतगुरु के उपदेश॥

जहां थैं मन उठचले, फेरि तहां ही राखि।
तहैं दादू लै लीन कर, साध कहैं गुरु साखि॥

दादूवाणी की विशेषता-

श्रीदादूजी महाराज ने बहुतही सरल भाषा में साधकों (शिष्यों) के प्रति उपदेश दिया है। दादूजी ने सबसे सरल उपाय ज्ञानमार्ग को छोड़कर भक्तिमार्ग को ही अपनाया है। भक्तिमार्ग द्वारा ही मनुष्य नाम स्मरण में अपने मन को लगाकर अज्ञान का नाश करके परमेश्वर को प्राप्त कर सकता है। किन्तु वह भी निम्नलिखित साधनों को अपनाये बिना संभव नहीं है।

आपा मेटे हरि भजै, तन मन तजे विकार।
निर्वैरी सब जीवसों, दादू यहु मत सार॥

अर्थात् उपरोक्त साखी में आपा (अभिमान) का त्याग और (हरिभजै) निरन्तर नाम स्मरण करते रहकर तन और मन के सभी विकारों का परित्याग करें। सभी जीवों

में दया का भाव बनाये रखें। इन उपायों से संसार में अपना कोई वैरी नहीं होगा तो राग और द्वेष भी नहीं रहेगा सन्तों ने दया के भाव को भी सबसे प्रबल साधन माना है। सन्तों ने प्राणिमात्र पर दया करने का ही नहीं अपितु पेड़ पौधों में भी ईश्वर का अंश मानकर उन्हें भी (हरे वृक्षों) नहीं काटने के निर्देश दिए है।

दादू सूखा सहजैं कीजिये, नीला भाजे नांहि।
काहे को दुःख दीजिये, साहिब है सब मांहि॥

किससों वैरी ह्वै रह्या, दूजा कोई नांहि।
जिसके अंग थैं ऊपजै, सोई है सब मांहि॥

आतम देव आराधिये, विरोधिये नहीं कोय॥
आराधैं सुख पाइये, विरोधे दुःख होय॥

दादू जी ने अपनी वाणी में बहुत ही मधुर एवं शिष्ट भाषा का प्रयोग किया है। हालांकि उन्होंने स्पष्ट किया है कि जो सिद्धान्त कबीर के थे वे ही हमारे है जैसा कि कहा है-

जे था कन्त कबीर का, सोई वर बरिहूं।
मनसा वाचा कर्मणा, मैं और न करिहूं॥

साचा शब्द कबीर का, मीठा लागे मोहि।
दादू सुनतां परम सुख, केता आनन्द होय॥

कबीर जी ने जहां लोगों को अक्खड़ भाषा में फटकार लगाई वहां दादूजी ने बहुत ही मधुर वाणी द्वारा उसी भाव को बतलाया है।

पत्थर पूजै हरि मिले, तो पूजों पहाड़।
उससे तो चाकी भली, पीस खाय संसार॥ कबीर

पत्थर पीवे धोय कर, पत्थर पूजै प्राण।
अन्तकाल पत्थर भये, बहु बूड़े इहि ज्ञान॥ दादू वाणी

उपरोक्त प्रकार से दादूवाणी एक अनुभव ग्रन्थ है जिसके मनन से आत्मदर्शन संभव है। इसमें सारा व्यावहारिक एवं आध्यात्मिक ज्ञान भरा पड़ा है यह सन्तों की स्वतः अन्तरात्मा से अनुभव की गई वाणी का संकलन है जिसे समय-समय पर समागत

शिष्यों एवं जिज्ञासुओं को उपदेश दिया था। इसे परवर्ती शिष्यों ने बहुत ही सुसंस्कृत ढंग से अंगों एवं पदों में संगृहीत करके एक ग्रन्थ का रूप दे दिया गया है।

श्री दादूजी महाराज ने अपने बाद शिष्यों को वाणी को अपना ही स्वरूप समझाते हुए इस वाणी में ही अपनी आस्था रखने का उपदेश दिया था।

दादूजी महाराज ने स्पष्ट निर्देश दिया था कि मेरे बाद मेरे द्वारा उच्चारित पांच हजार शब्दों (उपदेशों) को जो अपने हृदय में स्थान देगा उसका सभी प्रकार से कल्याण ही नहीं अपितु अपनी सभी अभीप्सित मनोकामनाएँ भी पूर्ण होगी। अतः आज के युग में इस ग्रन्थ की महती आवश्यकता है।

इस ग्रन्थ की सभी प्रतियां समाप्त हो चुकी थी और दिनों दिन ग्रन्थ की मांग भी बढ़ती जा रही थी। अतः श्री दादू दयालु महासभा ने पुनः इसका अष्टम् संस्करण प्रकाशन करने का निश्चय किया जो कि आपकी सेवा में उपलब्ध है। महासभा का यह प्रकाशन अपने उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक है और आगे भी अपनी उद्देश्यपूर्ति हेतु प्रयास करती रहेगी ऐसी आशा के साथ।

विनीत

थां. रामप्रसाद दास स्वामी

अशोक स्वामी

श्री दादू दयालु महासभा

जयपुर

॥ श्री दादूदयालवे नमः॥

दादू नमो नमो निरञ्जनं, नमस्कार गुरुदेवतः।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः॥

अखंडमंडलाकारं, व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन, तस्मै श्री गुरवे नमः॥

भूमिका

(1) पूर्व इतिवृत्त -

हमारा भारत देश आदिकाल से जगद्गुरु रहा है। इतिहास बतलाता है कि इस देश में विदेशों से लोग अध्ययनार्थ आते थे, और नालंदा, तक्षशिला जैसी शिक्षण संस्थाओं द्वारा ज्ञानार्जन कर अपने देशों में उसका प्रचार प्रसार करते थे, जैसा कि कहा हैं :-

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

हमारे देश की मूल संस्कृति अध्यात्म संस्कृति रही है और इस संस्कृति के द्वारा ही आज भी हमारे देश की विशिष्ट पहचान बनी हुई है। किन्तु इस संस्कृति को नष्ट कर अपनी संस्कृति को फैलाकर अपना पूर्ण प्रभुत्व स्थापित करने हेतु कई जातियों का साम्राज्य आया, किन्तु उन सभी संस्कृतियों को अपनी संस्कृति के साथ मिलाते हुए अपनी मूलभूत संस्कृति को हमारे मनीषियों एवं सन्तों ने जीवित रखा। जिस प्रकार प्रलयकारी महानदियों को समुद्र अपने आप में विलीन कर लेता है और समुद्र में थोड़ा सा भी अन्तर नहीं आता उसी प्रकार अरबी, यूनानी, फारसी, उर्दू, इंग्लिश आदि संस्कृतियां भी हमारी संस्कृति में मिलकर भारतीय संस्कृति बनकर रह गई है।

समय परिवर्तनशील है। आज का वैज्ञानिक युग उस पुराने इतिहास को भूल चुका है। जिसमें त्रैलोक्यविजयी रावण जैसे महारथी भी उस ईश्वरीय शक्ति की अवहेलना के कारण नष्ट हो चुके थे।

आज के मानव में पुनः अहंकार का समावेश हो चुका है। वह सोच चुका है कि, मैं चन्द्रलोक, मंगलग्रह और अन्तरिक्ष में अपने पैर जमा चुका हूँ। विनाश एवं प्रजनन क्रम में भी वह अपने आपको समर्थ मानने लग गया है। आणविक हथियारों द्वारा वह पल भर में प्रलय जैसा तांडव दिखा कर विश्व का संहार कर सकता है।

वहीं दूसरी ओर कृत्रिम प्रजनन क्रियाओं द्वारा सृष्टि के निर्माण की अपेक्षा भी कर चुका है। आज का मानव आसुरी वृत्ति की ओर अग्रसर होता हुआ परमात्मा (प्रकृति) की शक्ति को चुनौती देता हुआ, भौतिक चकाचौंध में इतना भ्रमित हो चुका है, कि बार-बार सुनामी, भूकम्प जैसी आपदाओं को झेलता हुआ, लाखों लोगों की आकस्मिक मृत्यु को देखता हुआ भी अपनी अज्ञानतावश उस परमेश्वर की लीला को नहीं समझ पा रहा है।

आज का मानव विज्ञान की आड़ में उन प्रकृति-जन्य आपदाओं के निस्तारण के लिए नये नये आविष्कार कर रहा है, जिनके द्वारा प्रकृति पर विजय पाई जा सके। फिर भी सफलता पाने में अपने को असमर्थ पा रहा है।

आज का मानव भारतीय संस्कृति द्वारा निर्मित मानव धर्म (सत्य, अहिंसा, श्रद्धा, स्नेह, सौहार्द्र) जैसे मानवीय गुणों को भूलकर चोरी, हिंसा, पाखंड, उद्दण्डता, अहंमन्यता, झूठ आदि से युक्त अनावश्यक अभिमान में मानव अपने अन्तःकरण को आसुरी वृत्तियों पर आधारित अपनी जिंदगी को पूर्ण रूप से भौतिकवाद (भोगवाद) के जंजाल में जकड़ चुका है।

मनुष्य आज बातें शान्ति की करता है, सबसे सौहार्द्रपूर्ण व्यवहार करने की प्रतिज्ञा (समझौता) करता है, किन्तु मूल में वह अपनी अन्तरात्मा में बसी हुई साम्राज्यवादी लिप्सा, सम्पूर्ण विश्व पर अपना वर्चस्व स्थापित करने की तीव्र लालसा एवं अपने स्वार्थपूर्ति हेतु निर्बल राष्ट्रों पर जबरन आक्रमण कर सार्वभौम बनने की अपनी मानसिकता को नहीं छोड़ पाया है।

भौतिकता की ओर तेजी से अग्रसर होता हुआ मनुष्य अपनी चिरसंचित शाश्वत शान्ति खोकर मानसिक अशान्ति को आज अपने हृदय में स्थान दे चुका है।

(2) अवतार का रहस्य -

जन्म से कोई भी मनुष्य मानव नहीं कहलाता अगर उसमें मानवता नहीं हो। मानव सृष्टि के आदिप्रवर्तक मनु ने दस गुणों को मानवधर्म बतलाया है- जैसा कि निम्न श्लोक से स्पष्ट है :-

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं, शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो, दशकं धर्मलक्षणम्॥ -मनु स्मृति

यही वह धर्म है जिसके आधार पर मानव अपने आपको मानव कहलाने का अधिकारी है। और यही वास्तविक धर्म है।

इस धर्मपर जब जब भी विपत्ति आती है, उस समय चराचर सृष्टि नियंता भगवान् को किसी न किसी विशेष रूप में अवतीर्ण होकर, पुनः उस मानव धर्म की स्थापना करनी पड़ती है। यही अवतार का मूल रहस्य है।

यदा यदा हि धर्मस्य, ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य, तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय, संभवामि युगे युगे॥–भगवद् गीता

राम, कृष्ण, बुद्ध, कपिल आदि का अवतार इन्हीं मानवता विरोधी तत्त्वों से संत्रस्त मानवधर्म की सुरक्षा हेतु ही युगपुरुष के रूप में हुआ था। इन्हीं युग पुरुषों को हम सन्त नाम से भी संबोधित करते हैं। बुद्ध, रामानन्दाचार्य, नानक, कबीर, दादू, तुलसी आदि युगपुरुष सन्तों की गणना में आते हैं।

इन सन्तों की गणना में श्री दादूजी महाराज का नाम भी प्रमुख रूप से आता है। मध्यकाल में जब भारत पर यवनों का साम्राज्य स्थापित हुआ तब समाज में मानवताविरोधी तत्त्वों का समावेश प्रबल रूप में हुआ। उस समय भगवान ने मानव धर्म की रक्षा हेतु, सन्तों के रूप में अवतार लिया और उन सन्तों ने समाज में व्याप्त आसुरी वृत्तियों के विरोध में आवाज उठाकर दैवी सम्पद् (मानवधर्म) की स्थापना के लिए पूर्ण प्रयास किया। इस प्रकार भारतीय संस्कृति को पुनर्जीवित करना, मानवधर्म की स्थापना करना तथा जनमानस में उसका प्रचार करना ही सन्तों का प्रमुख ध्येय रहा है।

(3) सन्तों की कथनी और करणी

सन्त स्वभाव से ही दयालु होते हैं। सांसारिक त्रिविध ताप से संत्रस्त मानव को देखकर सन्तों का हृदय द्रवित हो जाता है। मनुष्य किस प्रकार इन दु:खों से छुटकारा प्राप्त करे इसी का उपदेश सन्त देते है। दादूजी महाराज ने अपने जीवन के अनुभवों द्वारा ईश्वर प्राप्ति के उपाय, शाश्वत शान्ति किस प्रकार प्राप्त करें एवं जन्म मरण रूपी आवागमन से किस तरह मुक्ति पा सकते हैं, इसके उपाय दादूवाणी में बतलाये हैं।

''दादूवाणी'' महाराज के उपदेशों का संकलन है जो समय-समय पर महाराज ने अपने शिष्यों एवं जिज्ञासुओं को दिये थे। जिसका कि समय-समय पर शिष्यों एवं जिज्ञासुओं के प्रति उपदेश किया था इसीलिये इसका नाम अनुभव वाणी रखा गया है। इन उपदेशों को अपने जीवन में ढालकर मनुष्य अपना कल्याण कर सकता है।

सन्त सर्वथा विरक्त होते हैं। सभी प्राणियों को ईश्वरीय सृष्टि समझ कर अपने पराये का भेद नहीं रखते हैं। विश्वबन्धुत्व की भावना से उनका हृदय ओतप्रोत रहता है। मनुष्य में राग द्वेष से ही वैमनस्य उत्पन्न होता है। सन्त राग- द्वेष से सर्वथा अलग रहते है, उनका सबमें मैत्रीभाव (समभाव) रहता है। उनका न कोई मित्र है न कोई शत्रु है। इसी गुण के कारण मनुष्य सन्तों को अपने से श्रेष्ठ

समझ कर जैसा उनका कथन होता है उसी पर विश्वास करके चलने को कृत-संकल्प हो जाता है। और उनके द्वारा बतलाये मार्गदर्शन पर व्यवहार करता हुआ कल्याण को प्राप्त होता है। वाल्मीकि आदि का कल्याण इन्हीं सन्तों के द्वारा हुआ था। यही सार निम्न साखियों से परिलक्षित हो रहा है :-

आतम भाई जीव सब, एक पेट परिवार।
दादू मूल विचारिये, तो दूजा कौन गंवार॥

दादू सम कर देखिये, कुंजर कीट समान।
दादू दुविधा दूर कर, तज आपा अभिमान॥

निर्वैरी सब जीवसों, सन्त जन सोई।
दादू एकै आतमा, वैरी नहिं कोई॥

दादू कथनी और कछु, करणी करे कछु और।
तिनतै मेरा जीव डरै, जिनके ठीक न ठौर॥

अंतरगति औरे कछु, मुख रसना कछु और।
दादू करणी और कछु, तिनको नांहि ठौर॥

इस प्रकार सन्तों की कथनी और करणी (व्यवहार) में कोई अन्तर नहीं होने के कारण, प्रत्येक मानव की सन्तों के प्रति मन की भावना शुद्ध एवं श्रद्धामय हो जाती है और मानव उनके द्वारा बतलाये मार्ग पर चलने को तत्पर हो जाता है।

(4) दादू का उपास्य राम

दादूजी भी शंकराचार्य (वेदान्तियों) की तरह निर्गुण निराकार राम को मानने वाले थे। उनका उपास्य राम आदि, अनादि, अलख था न कि अवतारी राम जैसा कि उनके पद से स्पष्ट है-

सोई देव पूजूं जे टांची नहिं घड़िया, गर्भवास नहिं अवतरिया।
मायारूपी राम को सबकोई ध्यावे, अलख आदि अनादि है, सो दादू गावै॥
निष्कलं निष्क्रियं शान्तं, निरवद्यं निरंजनं। नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः।
परब्रह्म परापरं सो ममदेव निरंजनम्। निराकारं निर्मलं तस्य दादू वन्दनम्॥

दादूजी का उपास्य राम निर्गुण निराकार होते हुए भी निरंजन ब्रह्म है। उसकी प्राप्ति के लिए उन्होंने विकट साधन ज्ञानमार्ग को छोड़कर सबसे सरल भक्तिमार्ग को ही अपनाया है। क्योंकि प्रथम तो ज्ञानप्राप्त होना ही बहुत कठिन है, जन्म जन्मान्तर तक उसे भटकना पड़ता है जैसा कि निम्न श्रुतियों द्वारा स्पष्ट हो रहा है:-

क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया, दुर्गं पथस्तत् कवयो वदन्ति। उपनिषद्
ज्ञान का पन्थ कृपाण की धारा, परत खगेश होहि नहिं बारा॥ तुलसी

इत्यादि सूक्तियों से ज्ञानमार्ग द्वारा ईश्वर प्राप्त करना अतीव कठिन है क्योंकि जबतक मनुष्य पूर्णरूप से ज्ञानी नहीं हो जाता तब तक ईश्वर प्राप्ति संभव नहीं है जैसा कि निम्न श्लोकों से स्पष्ट है–

मनुष्याणां सहस्रेषु, कश्चिद् यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां, कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः॥
बहूनां जन्मनामन्ते, ज्ञानवान् मां प्रपद्यते।

इस प्रकार से ज्ञान द्वारा मोक्ष प्राप्त करना अतीव कठिन है जबकि भक्तिमार्ग द्वारा साधक को अनायास ही मुक्ति प्राप्त हो जाती है। क्योंकि मुक्ति भी हरिभक्ति के साथ ही रहती है, यदि कोई सर्वात्मना समर्पित होकर भगवद् भक्ति करेगा तो मुक्ति अपने आप ही हो जायेगी, इसीलिए सन्तों ने मुक्ति की इच्छा नहीं करके भक्ति ही मांगी है जैसा कि दादूजी ने भी किया था:–

भक्ति मांगू बाप भक्ति मांगू, मूनै थारा नामनो प्रेम लागों।
शिवपुर ब्रह्मपुर सर्वसों कीजिये, अमर थावा नहिं लोक मांगू॥
आप अवलंबन ताहरा अंगनों, भक्ति सजीवन रंग राचूं॥
देह ने गेह ने बास बैकुण्ठ तणो, इन्द्र आसन नहिं मुक्ति जांचू।
आत्मा अंतर सदा निरंतर ताहरी बाप जी भक्ति दीजै॥

अर्थात् उपरोक्त पद से स्पष्ट ज्ञात हो रहा है कि दादूजी ने शिवलोक, ब्रह्मलोक, इंद्रलोक, वैकुण्ठलोक तक को छोड़कर भक्ति ही मांगी, क्योंकि जहां भक्ति होगी मुक्ति अपने आप उसके साथ ही रहेगी।

दादू जी ने निर्गुण निराकार की उपासना हेतु नामोपासना को ही महत्त्व दिया है। सभी सन्तों ने चाहे सगुणोपासक या निर्गुणोपासक हों नाम का ही आश्रय लेने का ही निरूपण किया है जैसाकि तुलसी की चौपाई से स्पष्ट है :–

अगुन सगुन दुई ब्रह्म सरूपा, अकथ अगाध अनादि अनूपा॥
मोरे मत बड़ नाम दोऊ तें, किये जेहि जग निज वश बूते॥

तुलसी ने स्पष्ट बताया है कि सगुणोपासना से कुछ ही व्यक्तियों का उद्धार हुआ है जबकि नाम से अनगिनत मनुष्यों का। इसीलिए नाम का महत्त्व सगुण उपासना से भी ज्यादा है।

शबरी, गीध सुसेवकनि, सुगति दीन्ह रघुनाथ।
नाम उधारे अमित खल, वेद विदित गुन नाथ॥

यहां तक कि पुल बांधते समय भगवान राम के कर कमलों से डाले हुए पत्थर पानी में डूब गये, किन्तु राम नाम लिखकर डाले गए पत्थरों द्वारा पुल तैयार हो गया। यह भी सच है कि भगवान् ने अपने हाथों से जिनको त्याग दिया उसे फिर कौन बचा सकता है। दादूजी ने भी कहा है कि

जे तुम छाडहु हाथ तें, तो कौन संभालनहार।

दादू जी ने नाम की महिमा का यहां तक उद्घोष किया है कि केवल राम नाम से ही करोड़ों पतितों का उद्धार हुआ है और सभी प्रकार के संचित एवं प्रारब्धकर्मों का भी नाम द्वारा नाश होकर मनुष्य मुक्त हो सकता है। जैसा कि स्पष्ट है :-

निमख न न्यारा कीजिये, अन्तर थैं उर नाम।
कोटि पतित पावन भये, केवल कहतां राम॥

एक मुहूरत मन रहे, नाम निरंजन पास।
दादू तब ही देखतां, सकल करम का नास॥

दादू नीका नाम है, सो तू हिरदै राखि।
पाखण्ड परपंच दूर कर,सुन साधू जन की साखि॥

दादू नीका नाम है, तीन लोक तत सार।
रात दिवस रटबो करे, रे मन इहै विचार॥

(5) जीवन्मुक्ति : जन्म मरण रूपी दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति को ही मुक्ति (मोक्ष, छुटकारा) कहते है।

सम्पूर्ण दुःख इस देह (जीवधारी) से जुड़े हुए हैं, और जीव अपने सभी कर्मों के भोग इस देह द्वारा ही भोगता है और जब इस शरीर (स्थूल शरीर) देह का नाश हो जाता है तो उसको मोक्ष मानते हैं (अर्थात् देह त्याग के बाद मुक्ति हो जाती है) किन्तु वेदान्ती एवं सन्त इस बात को नहीं मानते। वे जीवितावस्था में ही ज्ञान प्राप्त करके अज्ञान नष्ट होजाने पर अज्ञानजन्य सभी दुःखों का जीवितावस्था में ही नाश हो जाता है अतः वे ज्ञानी को ही जीवन्मुक्त मानते है। जीवन्मुक्त का अभिप्राय है जीते जी ही मर जाना।

दादूजी ने वेदान्त सिद्धान्त के मुताबिक जीवन्मुक्ति को ही वस्तुतः मुक्ति माना है। इनका मानना है कि नामोपासना द्वारा साधक मन, इन्द्रिय, प्राण का निरोध करता हुआ देहाध्यास को सर्वथा नष्ट कर दे और अपनी इन्द्रियों एवं मन को शुद्ध निरंजन आत्मा में लगा दे जिससे कि उसे शाश्वत आनन्द की अनूभूति होती रहे, साधक को किसी भी प्रकार का संगदोष बाधित नहीं करे ऐसी स्थिति जीते जी जो साधक प्राप्त कर लेता है वह ही वास्तविक मुक्त है। क्योंकि संगदोष से ही मनुष्य का पतन होता है जैसा कि निम्न श्लोकों से स्पष्ट है:-

ध्यायतो विषयान् पुंसः, संगस्तेषूपजायते।
संगात् संजायते कामः, कामात् क्रोधोऽभिजायते॥

क्रोधाद् भवति संमोहः, संमोहात् स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो, बुद्धिनाशात् प्रणश्यति॥ गीता

जीवन्मुक्त पुरुष अपने आपा को मिटा देता है और इन्द्रियों को अपने विषयों में जाने से रोक लेता है, तो ऐसी सूरत में मनुष्य को किसी भी प्रकार का राग, द्वेष, लोभ, मोह नहीं व्यापता, अपितु वह अपने उपास्य राम नाम का अभेद वृत्ति से जप करता रहता है, और सम्पूर्ण मनोवृत्तियों को पूर्णरूप से आत्मा में लगाकर सुख दुःख, मान, अपमान आदि द्वन्द्वों से रहित हो जाता है ऐसी ही स्थिति जीवन्मुक्ति कहलाती है जैसा कि दादूजी ने नीचे की साखियों में बतलाया है:-

दादू मृतक तबही जानिये, जब गुण इन्द्रिय नांहि।
जब मन आपा मिट गया, ब्रह्म समाना मांहि॥
देह रहे संसार में, जीव राम के पास।
दादू कुछ व्यापै नहीं, काल झाल दुःख त्रास॥
दादू जीवत छूटे देह गुण, जीवत मुक्ता होय।
जीवत काटे कर्म सब मुक्ति कहावे सोय॥

इस प्रकार जिस साधक ने मायिक प्रपंचों के अध्यास को दूर कर दिया एवं अपनी मनोवृत्ति को सभी प्रकार के विषयों से हटाकर परमात्मा में लगा लिया वही वास्तविक मुक्ति है और इसी का अभिप्राय है कि त्रिविध दुःखों से हमेशा के लिए निवृत्ति और जन्ममरण रूपी आवागमन से भी छुटकारा। शरीर छोड़ने के बाद (मरने के बाद) यदि देह मुक्ति से ही मुक्ति हो जाये तो फिर देह त्याग तो प्रत्येक व्यक्ति का होने से प्रत्येक व्यक्ति की ही मुक्ति हो जानी चाहिये, पर ऐसा होता नहीं क्योंकि मुक्ति स्थूल शरीर के त्याग द्वारा नहीं होती अपितु सूक्ष्मशरीर व कारण शरीर अर्थात् (अविद्या काम) आदि वासनाओं के सर्वथा परित्याग से ही संभव है। दादूजी ने स्थूल शरीर के नाश को पिण्डमुक्ति नाम से, सूक्ष्म एवं कारण शरीर परित्याग को प्राणमुक्ति नाम से बतलाया गया है जो कि समर्थ गुरु द्वारा बताये गये साधनों द्वारा ही संभव है जैसाकि निम्न साखियों से स्पष्ट है :-

पिण्डमुक्ति सब कोई करे, प्राण मुक्ति नहीं कोइ।
प्राणमुक्ति सतगुरु करे, दादू बिरला कोइ॥

दादू जी के साथ अन्य सन्तों ने भी जीवन्मुक्त पुरुष के लिए ही जीवतमृतक शब्द का प्रयोग किया है।

(6) वर्ग भेद (जाति भेद निराकरण)

सन्तों ने वर्गभेद (ऊंच नीच) जातिभेद का खण्डन किया है, क्योंकि इससे मनुष्य में संकीर्णता का भाव प्रकट होता है। वही मानसिकता ऊंच नीच की भावना को जन्म देती है। यह वर्गभेद व्यवस्था समाज के लिए बहुत बड़ा अभिशाप है। मानवसृष्टि परमेश्वर द्वारा रचित है, उसमें न तो कोई ऊंचा है न कोई नीचा है सब समान है। सन्तों ने इसी वर्गविहीन समाज को महत्त्व दिया है। वे मानते है कि सब प्राणियों की उत्पत्ति ईश्वर द्वारा है और उस ईश्वर को प्राप्त करने में भी सबका समान अधिकार है।

चातुर्वर्ण्य व्यवस्था मानवकृत है न कि ईश्वरकृत। अधमकुलोत्पन्न मनुष्य भी भक्ति द्वारा परमेश्वर को प्राप्त कर सकता है। ईश्वर की दृष्टि में दोनों समान हैं। जैसा कि स्पष्ट है :-

समोऽहं सर्वभूतेषु, न मे द्वेष्योस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्।
मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्राः तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥

उपरोक्त श्लोकों से स्पष्ट है कि भगवान् के घर में सब एक हैं। चाहे कोई भी हो। शूद्र जाति का भी यदि कोई भक्ति करता है तो वह भगवान का प्रिय है जबकि उच्चकुलोत्पन्न मनुष्य यदि भगवद् विमुख है तो उसके लिए भगवान् के घर में कोई आश्रय नहीं है जैसा कि लिखा है-

दुर्योधन को मेवा त्यागो, शाक विदुर घर खायो॥

मध्यकाल में मुस्लिम संप्रदाय ने (जोकि अपने ही इस्लाम धर्म को प्रमुख मानते हैं) दूसरों के धर्म को हेय दृष्टि से देखना प्रारंभ किया तो हिन्दुओं में भी हिन्दुत्व भावना प्रबल हो गई। परिणाम यह हुआ कि हिन्दूवर्ग भी अपने उस शाश्वत धर्म (विश्वबंधुत्त्व) वसुधैव कुटुम्बकम् को भूल कर स्पृश्यास्पृश्य ऊंच-नीच के वर्ग भेद को अपना बैठा और यह स्थिति जब चरम सीमा पर पहुंच गई तब रामानन्दाचार्य, कबीर, दादू आदि सन्तों ने इस वर्गभेद के प्रति आवाज उठाई और पुनः इस भारतीय आदर्श की ओर समाज को चलने हेतु प्रेरित किया, और बतलाया कि ईश्वरीय सृष्टि में सब एक हैं सभी में एक चेतना सत्ता व्याप्त है सभी सहोदर (सगेभाई) हैं जैसा कि निम्न साखियों से स्पष्ट हो रहा है-

आतम भाई जीव सब, एक पेट परिवार।
दादू मूल विचारिये तो, दूजा कौन गंवार।
सब हम देख्या सोध कर, दूजा नांही आन।
सब घट एकै आतमा, हिन्दू मुसलमान॥

वर्तमान में भी युगपुरुष महात्मा गांधी ने इस वर्गभेद का डट कर विरोध किया। इस वर्गहीन समाज की रचना में योगदान करते हुए अपने जीवन तक की भी आहुति दे दी। गांधी जी के जीवन में हिन्दू मुसलमान, ऊंच-नीच उत्तम अधम, स्पृश्य, अस्पृश्य कुल वाली वर्णव्यवस्था का लेशमात्र अंकुर भी बाकी नहीं रहा था। सभी धर्मों के आराध्य देव उनके आराध्य थे और उन्होंने अपनी उपासना में भी नामभेद को भी कोई महत्त्व नहीं दिया सबही को समभाव से महत्त्व देते थे। जैसा कि उनकी प्रार्थना से स्पष्ट है-

रघुपति राघव राजा राम, पतितपावन सीताराम।
ईश्वर अल्लाह एक ही नाम, सबको सन्मति दे भगवान॥

यही कारण था कि गांधीजी को वैश्य कुलोत्पन्न होते हुए भी सम्पूर्ण विश्व ने मुक्तकंठ से महात्मा शब्द से संबोधित किया। इस तरह वर्गहीन समाज की रचना कर सम्पूर्ण विश्व में समत्वभावना (वसुधैव कुटुम्बकम्) के सिद्धान्त को पुनः स्थापित कर प्रचार प्रसार किया। यह सन्तों की अनुपम देन है।

(7) दादू जी के सिद्धान्त (साधना)

दादूजी ने परमेश्वर के साक्षात्कार के लिए किन किन साधनों को अपने जीवनकाल में अपनाया था उन्हें हम साधना नाम से व्यवहृत कर सकते हैं, और आजीवन उन्हीं सिद्धान्तों पर चलकर अपने अनुभव ज्ञान के द्वारा परमेश्वर का साक्षात्कार किया था। उन साधनों को ही सिद्धान्त रूप में भी कहना कोई अनुचित नहीं होगा। वे साधन निम्नलिखित है -

(1) आपा का त्याग (2) हरि स्मरण (3) तन एवं मन के विकारों को दूर करना (4) सभी प्राणियों पर दया भाव रखते हुए निर्वैरता अपनाना (5) आत्म समर्पण। जैसा निम्न साखी से स्पष्ट है-

आपा मेटे हरि भजै, तन मन तजे विकार।
निर्वैरी सब जीव सों, दादू यहु मत सार॥

(1) आपा परित्याग

दादू जी एवं सभी सन्तों ने साधक के लिए अपने लक्ष्य प्राप्ति में सबसे प्रबल बाधक आपा को माना है। दादूजी वेदान्त सम्मत निर्गुण निराकार अद्वैत को ही अपना उपास्य मानते हैं, और वेदान्त में अहंता ममतारूपी अध्यास जब तक समाप्त नहीं हो जाता आत्म साक्षात्कार संभव नहीं, ऐसा सर्वसम्मत सिद्धान्त है।

साधक को अद्वैत की सिद्धि के लिए द्वैतभाव को समाप्त करना ही होगा। क्योंकि जब तक साधक के मन में द्वैतभाव मौजूद है परमात्मा की सत्ता का ज्ञान नहीं हो सकता जैसा कि निम्न साखियों में बतलाया गया है:-

दादू मैं नांही तब एक है, मैं आई तब दोय।
मैं तैं पड़दा मिट गया, तब ज्यों था त्यों ही होय॥
दादू आपा जब लगे, तबलग दूजा होय।
जब यहु आपा मिटगया, तब दूजा नांही कोय॥

किन्तु आपा को प्रश्रय देने वाला मन है, और जब तक मन को वश में नहीं किया जावे तब तक आपा दूर नहीं हो सकता, क्योंकि मन ही इस जीव को अपने मोहमाया जाल में जकड़ कर बांधे रखता है और जीव उससे लाख छुटकारा पाने की कोशिश करे किन्तु पार नहीं पाता। अन्त में साधक किसी समर्थ गुरु की शरण में जाकर इन्द्रियों को धीरे-धीरे निग्रह करता हुआ नित्य अभ्यास द्वारा ही वह मन को वश में कर सकता है, क्योंकि यह मन ही मनुष्य को बन्धन या मोक्ष से छुड़ाने वाला है जैसा कि कहा है-

मन एव मनुष्याणां, कारणं बन्धमोक्षयोः।

मन को बहुत ही चंचल एवं वायुवेग के समान प्रबल बतलाया गया है, इसे वश में करना महान् दुष्कर कार्य है। इसे केवल सन्तजनों के उपदेश से अथवा अभ्यास एवं वैराग्य द्वारा ही निग्रह किया जा सकता है। अर्थात् मन जब-जब विषयों की ओर दौड़े तब उसको बार-बार रोके और पुनः अपने नामस्मरण रूपी ध्यान में लगावे। इस प्रकार विषयों से मन को हटाने का नाम ही वैराग्य है और बार-बार विषयों की तरफ जाते हुए मन को रोकने का नाम ही अभ्यास है। जैसाकि निम्न साखी एवं श्लोकों से स्पष्ट हो रहा है :-

चंचलं हि मनः कृष्ण, प्रमाथि बलवद् दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये, वायोरिव सुदुष्करम्॥
अशंसयं महाबाहो, मनो, दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय, वैराग्येण च गृह्यते॥
जहां थै मन उठ चले, फेर तहां ही राख।
तहं दादू लै लीन कर साधु कहें गुरु साख॥
मन चंचल मेरो कह्यो न माने, दशों दिशा बौरावे रे।
आवत जात बार नहिं लागे, बहुत भांति बौरावे रे॥
सदा सोच रहत घट भीतर, मन स्थिर कैसे कीजे रे।
सहजैं सहज साधु की संगति, दादू हरि भज लीजे रे॥

इसप्रकार निरंतर अभ्यास एवं सन्तों की शरण में जाने से ही मन का निग्रह संभव है। महाराज ने मन को वश में करने हेतु नाम का ही सहारा बतलाया है जैसे कि-

सतगुरु चरण शरण चलि जाही, नित्त प्रति रहिये ताकी छांही।
मन सुस्थिर कर लीजै नाम, दादू कहै तहां ही राम॥
एक निरंजन नाम सौं, कै साधू संगति मांहि।
दादू मन बिलमाइये, दूजा कोई नांहि॥

इस प्रकार निरन्तर सन्तों के सान्निध्य में बैठकर अभ्यास द्वारा अथवा मन को विषयों की ओर से हटाकर निरन्तर राम नाम का स्मरण करने से ही आपा का परित्याग हो सकेगा, और आपा मिट जाने पर ही परमेश्वर का साक्षात्कार हो जायेगा।

(2) हरि भजै

दूसरा साधन हरि स्मरण बतलाया गया है क्योंकि मन को वश में करके नाम स्मरण में ही लगा दो और जब मन इधर–उधर जाय तो फिर उसे एकाग्र करके नाम स्मरण में लगाते रहो। मन यदि नाम चिन्तन में लगा रहेगा तो मन में शांति अपने आप स्थिर हो जायेगी। उपरोक्त आपा मेटे प्रकरण में भी इसका विशद विवेचन कर दिया गया है, और निम्न साखी भी से स्पष्ट है–

दादू बिन अवलंबन क्यों रहे, मन चंचल चल जाय।
सुस्थिर मनवा तो रहे, सुमिरण सेती लाय॥

(3) तनमन तजै विकार

साधक के लिए उपरोक्त साधन एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। उपरोक्त आपा मेटे, हरि भजै इन दोनों साधनों में इस तीसरे साधन की भी प्रथम आवश्यकता है, क्योंकि जबतक शारीरिक व मानसिक विकारों की निवृत्ति नहीं हो जाती तब तक अन्तःकरण की शुद्धि नहीं हो पाती और चित्त की शुद्धि के बिना मन विषय विकारों में अनुरक्त रहेगा तो हरिस्मरण भी नहीं हो पायेगा। अतः तन व मन के विकारों को शान्त करने के लिये परमेश्वर का ध्यान करना परमावश्यक है। ध्यान कैसे किया जावे इसके लिए भगवान् कृष्ण ने बतलाया है कि शुद्ध स्थान एवं शुद्ध आसन पर बैठकर अपनी समग्र मनोवृत्तियों को एकाग्र करके सभी संकल्प विकल्पों से अपने मन को हटाकर अर्न्तमुखी होकर परमेश्वर के प्रति एकनिष्ठ होकर ध्यान लगावे, उस समय और कोई विचार मन में नहीं लावे। जैसे प्रेमी अपनी प्रेमिका के विरह में एकाग्रचित्त उसी का ध्यान करता रहता है उसे उस समय पास से गुजरने वाले अथवा किसी भी प्रकार के शब्द का भी ध्यान नहीं रहता है उसके विरह में व्याकुल छटपटाता रहता है। गोपियों की भी कृष्ण के विरह की व्याकुलता से ऐसी स्थिति हो गई थी गोपियों ने भी अपनी तन मन की सुध बुध खोकर अपने घरबार को छोड़ दिया था जैसाकि निम्न पद्य से स्पष्ट है:–

प्रेमाधीना छाक्या डोले, क्योंकी क्यों ही वाणी बोले।
जैसे भूली गोपी देहा, छाडत चली आपनों गेहा॥

इसी विरह भावना से मन को ईश्वर की तरफ लगावे। गीता में इसका विवेचन किया गया है–

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य, स्थिरमासनमात्मनः।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं, चैलाजिनकुशोत्तरम्॥
तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा, यतचित्तेन्द्रियक्रियः।
उपविश्यासने युंज्याद् योगमात्मविशुद्धये॥
संकल्पप्रभवान् कामान् त्यक्त्वा सर्वाण्यशेषतः।
मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः॥
शनैःशनैरुपरमेत् बुद्ध्या धृतिगृहीतया।
आत्मसंस्थं मनः कृत्त्वा न किंचिदपि चिंतयेत्॥

उपरोक्त श्लोकों से स्पष्ट है कि शारीरिक, मानसिक, दोषों का परिहार किये बिना लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो सकती। मन इन सबका राजा है और मन राजा जैसा संकल्प करेगा, वैसा ही वाणी से उच्चारण होगा और वैसा ही कार्य शरीर को करना पड़ेगा जैसा कि श्रुति बतला रही है–

यन्मनसा मनुते तद्वाचा वदति, यद्वाचा वदति तत् कुरुते॥

इसलिये जबतक मन विषय विकारों में फंसा हुआ है तब तक परमेश्वर की प्राप्ति की आशा करना निरर्थक ही है। निम्न साखी से भी यही स्पष्ट हो रहा है :–

दादू विषय विकार सों जबलग मन राता।
तब लग चित्त न आवई, त्रिभुवन पति दाता॥

इसलिए मन की शुद्धि परमावश्यक है। मन की शुद्धि हो जायेगी तो तन की शुद्धि अपने आप हो जायेगी जैसा कि निम्न साखी से अभिप्रेत है :–

मन मैला तन उज्जवल नांही, बहु पचहारे विकार न जाइ।
मन निर्मल तन निर्मल होइ, दादू सांच विचारे कोइ॥

(4) निवैरी सब जीवसों

आत्म–साक्षात्कार में चौथा साधन निर्वैरता है। सभी चराचर प्राणियों में ईश्वर की सत्ता विद्यमान है, वे सभी अपने ही स्वरूप है अपने से भिन्न जब कोई नहीं तब किससे वैरभाव किया जाय अर्थात् सभी प्राणियों में ईश्वर की सत्ता मानकर किसी से भी वैरभाव नहीं करना ही निर्वैरता है। सभी संतो ने सभी प्राणियों का इस ओर ध्यान आकृष्ट किया है। संक्षेप में अपने को जो विपरीत एवं दुःखदायी आचरण लगे उसे दूसरों के प्रति नहीं करे। जैसा कि कहा गया है:–

आत्मनः प्रतिकूलानि, परेषां न समाचरेत्॥

दूसरों को दुःख पहुँचाने के बराबर अधर्म नहीं और दूसरों की भलाई व सुख पहुँचाने का नाम ही धर्म है – परहित सरिस धर्म नहीं भाई, परपीड़ा सम नहिं अधमाई॥ सन्तों ने तो प्राणीमात्र ही नहीं वनस्पतियों तक को भी दुःख देने की निन्दा की है, पेड़ पौधों में भी सन्त ईश्वर का अंश मानते हैं:–

निर्वैरी सब जीव सों सन्त जन सोई।
दादू एकै आतमा वैरी नहिं कोई।
काहे को दुःख दीजिये साहिब है सबमांहि।
दादू एकै आतमा दूजा नहिं कोई॥

दादू सूखा सहजै कीजिये, नीला भाने नांहि।
काहे को दुःख दीजिये, साहिब है सब मांहि॥

इस प्रकार सभी प्राणियों पर वैरभाव छोड़कर दया भाव प्रदर्शित करने का ही सन्तों ने उपदेश दिया है।

5. आत्मसमर्पण

सभी सन्तों एवं शास्त्रों ने ईश्वर के प्रति समर्पण भावना को ही महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। स्वयं दादूजी उस परमात्मा को प्राप्त करने के लिए सर्वात्मना आत्मसमर्पण करते हैं, बिना आत्मसमर्पण के साधक कभी भी सफल नहीं हो सकता। समर्पण की भावना का दादूजी ने तो यहां तक कह दिया कि यह तन भी तेरा है मन भी तेरा है और यह शरीर एवं प्राण भी तेरा है अर्थात् सब कुछ तेरा है। गीता में भी कहा है कि–

यत् करोषि यदश्नासि, यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय, तत्कुरुस्व मदर्पणम्।

तन भी तेरा मन भी तेरा, तेरा पिण्ड प्राण।
सब कुछ तेरा तूं है मेरा। यहु दादू का ज्ञान॥

इस आत्मसमर्पण द्वारा ही मनुष्य परमेश्वर के प्रति एकान्त भावना से परायण होकर चिन्तन करेगा तो वह परमेश्वर को प्राप्त कर सकेगा। सर्वात्मना समर्पित होने पर साधक की सभी प्रकार की इच्छाओं की पूर्ति उसी प्रकार भगवान् करेंगे जिस प्रकार छः माह तक के बच्चे की माता करती है। क्योंकि बच्चा पूर्णरुप से मां के प्रति ही समर्पित है जैसा कि भगवान ने कहा है कि:–

अनन्यांश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

इस प्रकार सभी भक्त लोग अपनी सारी क्रियाओं को भगवदिच्छा मान कर उनके प्रति ही पूर्णरुप से समर्पित होने पर ईश्वर भी उनकी उपेक्षा नहीं करके सभी उनकी इच्छाओं की पूर्ति भगवान् स्वयं करते हैं, यही आत्मसमर्पण कहलाता है।

उपरोक्त प्रकार से संक्षिप्त रुप में श्री दादूवाणी पर प्रकाश डाला गया है। यह ग्रन्थ दादूजी के उपदेशों, सिद्धान्तों एवं दादूजी की प्रमुख विचाराधाराओं का प्रतिपादन करने वाला संग्रह ग्रन्थ है। दादूजी ने अपने संपूर्ण जीवन में परमेश्वर का साक्षात्कार करने में कठिन साधना द्वारा जो अनुभव प्राप्त किया उसी का निरूपण समय समय पर समागत भक्तों एवं साधकों के लिए उपदेश किया। उन्हीं उपदेशों को उनके शिष्यों द्वारा सुव्यस्थित तरीके से संकलित किया गया है। शिष्यों ने भिन्न-भिन्न नाम एवं प्रकरणों द्वारा उन विषयों पर ही विवेचन किया है जिसे शीर्षक बनाकर निरूपित किया गया है जैसे गुरुदेव के अंग में गुरुशिष्य के लक्षण एवं धर्म, स्मरण के अंग में नाम स्मरण का महत्व उनके तौर तरीकों पर विशद विवेचन किया गया है। इस प्रकार सम्पूर्ण वाणी में अंगों एवं पदों द्वारा अनुभव प्राप्त विचारों का उल्लेख किया गया है।

प्रायोगिक एवं सैद्धान्तिक दोनों ही यद्यपि ज्ञान प्राप्त करने के साधन है किन्तु जो ज्ञान हमें अनुभव द्वारा मिलता है सीधा हृदयंगम हो जाता है। अतः दादूजी के उपदेशों को सही मायने में यदि जानने की इच्छा हो तो इन उपदेशों को अपने जीवन में उतारने की कोशिश करें अन्यथा हमारी भी वही दशा हो रही है जैसीकि कहावत है **''पढ़ गया पण गुण्या नहीं''** अर्थात् ग्रन्थ का अध्ययन मात्र करके पंडित हो गया किन्तु जब तक व्यवहार में अनुभव में ढालने की कोशिश नहीं होगी तब तक निरा पंडित ही कहलायेगा। अतः हमें दादूजी के उपदेशों को अपने व्यवहार जीवन में अपना कर ही उनके उपदेशों पर चलने का मानस बनाना ज्यादा लाभप्रद होगा।

वाणीजी पर लिखना सूर्य को दीपक दिखाना है। कितना अच्छा होता किसी विज्ञ एवं सन्त से इस पर विवेचन किया जाता तो ठीक था। मैं जयपुर किसी बैठक में आया हुआ था, श्री दादूवाणी जी की पुस्तक लेनी थी, विद्यालय पहुँचा तो मालूम हुआ कि पुस्तकें तो समाप्त हो चुकी हैं और शीघ्र ही इसका प्रकाशन हो रहा है। श्री दादूदयालु महासभा के मंत्री श्री अशोक जी स्वामी ने मुझसे इस हेतु भूमिका लिखने की बात की। मैने कहा कि किसी विज्ञ सन्त से यह कार्य कराया जाय तो श्रेष्ठ रहेगा। मंत्रीजी ने कहा चूंकि आप पूर्व में भी दादूवाणीजी की भूमिका लेखन का कार्य कर चुके हैं और वे भूमिकाएं भी अपने स्तर पर सटीक लगती हैं इसलिए समय पर वाणी का प्रकाशन हो सके आपको ही भूमिका लिखनी है। श्री दादूवाणी

पर यथामति जो कुछ लिख पाया पाठकों के समक्ष है। यदि मैंने कुछ तथ्यात्मक लिखा है तो वह श्री दयाल महाराज एवं गुरुकृपा का फल है।

यद्यपि इस पर बहुत कुछ लिखा जाना बाकी है किन्तु विस्तारभय से मैं अपनी लेखनी को यहीं विराम देना उचित समझता हूँ।

अन्त में मैं "**त्वदीयं वस्तु हे स्वामिन् तुभ्यमेव समर्प्यते**" द्वारा इस लेख को श्री दयाल महाराज और मेरे शिक्षागुरु स्व. श्री सुरजन दास जी महाराज के चरणारविन्दों में समर्पण करता हूँ।

आशा है विज्ञजन इसमें आई त्रुटियों के लिए क्षमा करेंगे।

सत्यराम!

विनयावनत
महन्त रामानन्द स्वामी
वेदान्त, आयुर्वेदाचार्य
सदस्य-संचालन समिति
श्री दादू महाविद्यालय, जयपुर

श्री दादूनिर्वाण दिवस,
ज्येष्ठ कृष्ण अष्टमी, सं. 2066
रविवार, 17 मई, 2009
सुन्दर बाग, दौसा

श्री दादू साधना धाम-करड़ालाजी

श्री दादू परीक्षा धाम-साँभरजी

श्रीमद् दादू ब्रह्मधाम
नरायनाजी

श्री दादू प्रतिष्ठा धाम-आमेरजी

श्री दादू मुक्ति धाम-भैराणाजी

॥ श्री दादूदयालवे नमः ॥

अथ श्री स्वामी दादूदयालजी की अनुभव वाणी

अथ श्री गुरुदेव का अंग १

परमार्थ का ज्ञान गुरु से ही होता है, अत: गुरु विषयक विचार करने को गुरु अंग कहने में प्रवृत्त हुये प्रथम मंगलाचरण कर रहे हैं:—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत: ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥१॥

संत प्रवर श्री स्वामी दादूजी महाराज, अपने इष्टदेव माया रहित परब्रह्म को बारंबार प्रणाम करके, उनकी प्राप्ति में मुख्य हेतु गुरुदेव तथा गुरु और परब्रह्म प्राप्ति के साधारण कारण सर्व संतों को प्रणाम करके, प्रणाम का फल बता रहे हैं— जो श्रद्धा सहित परब्रह्म, गुरु और संतों को सदा प्रणाम करता है, वह असत्य संसार से पार जाकर सत्य ब्रह्म को प्राप्त होता है।

परब्रह्म परापरं, सो मम देव निरंजनम् ।
निराकारं निर्मलं, तस्य दादू वन्दनम् ॥२॥

जो निराकार, निर्मल और माया से परे परब्रह्म है, वही निरंजन देव मेरा इष्टदेव है । मैं उसे प्रणाम करता हूँ।

गुरु प्राप्ति और फल

दादू गैब[1] माँहिं गुरुदेव मिल्या, पाया हम परसाद।
मस्तक मेरे कर धर्या, दक्ष्या[2] अगम अगाध ॥३॥

३-६ में सद्गुरु प्राप्ति और उसका फल बता रहे हैं :- अकस्मात्[1] गुरुदेव प्राप्त हुये, उन्होंने मेरे मस्तक पर हाथ रखा तथा उनका कृपा प्रसाद मुझे प्राप्त हुआ। मन इन्द्रियों के अविषय निर्गुण और अपार स्वरूप की दीक्षा[2] दी।

बाल्यावस्था में अहमदाबाद के कांकरिया तालाब पर भगवान् ने दर्शन देकर उपदेश किया, तब यह साखी कही थी। प्रसंग कथा दृष्टांत सुधा-सिन्धु तरंग ७/९२ में देखो।

दादू सद्गुरु सहज में, कीया बहु उपकार ।
निर्धन धनवँत कर लिया, गुरु मिलिया दातार ॥४॥

मुझे परम दानी गुरु प्राप्त हुये हैं और उन सद्गुरु ने स्वाभाविक ही मुझ पर बहुत उपकार किया है। मैं आशा द्वारा दरिद्र था किन्तु उन्होंने मुझे परम संतोष-धन देकर धनी बना दिया है।

दादू सद्गुरु सूं सहजैं मिल्या, लीया कंठ लगाइ।
दया भई दयाल की, तब दीपक दिया जगाइ ॥ ५ ॥

मुझे अनायास ही सद्गुरु मिल गये, उन दयालु गुरुदेव की मुझ पर दया हो गई। तभी उन्होंने मुझे अपना लिया और अपने उत्तम उपदेश द्वारा मेरे हृदय में ज्ञान दीप जगा दिया।

दादू देखु दयाल की, गुरु दिखाई बाट।
ताला कूंची लाइ करि, खोले सबै कपाट ॥ ६ ॥

देखो, उन दयालु गुरु देव की दया कितनी महान् है ! जिन्होंने हमें संसार-मार्ग से मोड़कर, परमार्थ-पथ बताया है और हमारे नाना कर्म-बंधन तालों को अपनी ज्ञान-ताली से खोलकर, हृदय-मन्दिर के संशय, तर्क और विपरीत ज्ञानादि सभी कपाट खोल दिये हैं, अर्थात् संशयादि नष्ट कर दिये हैं।

सद्गुरु सामर्थ्य

दादू सद्गुरु अंजन बाहिकर, नैन पटल सब खोले।
बहरे कानों सुनने लागे, गूंगे मुख सूं बोले ॥ ७ ॥

७-१९ में सद्गुरु की शक्ति का परिचय दे रहे हैं :— जीवों के बुद्धि वृत्ति रूप ज्ञान-विज्ञान मय नेत्र संशय विपर्य्यादि मलों से बन्द हो जाते हैं। सद्गुरु उनमें अपना उपदेश-अंजन डालकर, उनके सब पटलों को शुद्ध करके खोल देते हैं। जो धन, विद्या, तप, बल, रूप, कुल, पद और जाति मद से बहरे हो जाते हैं, वे दीन गरीबों की बात कभी सुनते ही नहीं, गुरु उपदेश से वे भी अति नम्र होकर सबके सुख-दुख की बात सुनने लगते हैं वा जो अनाहत नाद नहीं सुन सकते थे, वे गुरु कृपा से सुनने लगते हैं। जो भगवान् के नाम तथा यशादि गान में गूंगे समान रहते हैं, वे भी गुरु उपदेश द्वारा ईश्वर नाम-यश गाने लगते हैं।

सद्गुरु दाता जीव का, श्रवण शीश कर नैन।
तन मन सौंज[१] सँवारि सब, मुख रसना अरु बैन ॥ ८ ॥

सद्गुरु जीव को आत्म-ज्ञान-महा-धन देने से दाता हैं। वे संसार-परायण श्रवण, नेत्र, रसना, वाणी, शीश, मुख, हाथ आदि तन मन की सभी सामग्री[१] को निर्दोष बनाकर भगवत् परायण कर देते हैं।

राम नाम उपदेश कर, अगम गमन यहु सैन।
दादू सद्गुरु सब दिया, आप[१] मिलाये अैन[२] ॥९॥

राम नाम के उपदेश द्वारा मन इन्द्रियों के अविषय ब्रह्म में प्रवेश करने का संकेत करके सद्गुरु ने हमें सब कुछ दे दिया। कारण-उस राम नाम ने हमें अपने सत्य स्वरूप[१] ब्रह्म से साक्षात्[२] मिला दिया है।

सद्गुरु कीया फेरि कर, मन का औरे रूप ।
दादू पंचों पलट कर, कैसे भये अनूप ॥१०॥

सद्गुरु ने मन को सांसारिक विषय-वासना से भगवान् की ओर फेरकर भगवत्-परायणता द्वारा उसका रूप पूर्व से भिन्न ही कर दिया है और देखो, पंच ज्ञानेन्द्रियां प्रथमावस्था से बदल कर कैसी अनुपम हो गई हैं अर्थात् पहले अपने विषयों का ही अनुभव करती थीं किन्तु अब विषयों में उनके अधिष्ठान ब्रह्म का अनुभव करती हैं।

साचा सद्गुरु जे मिले, सब साज[1] सँवारे ।
दादू नाव चढाय कर, ले पार उतारे ॥ ११ ॥

यदि सच्चे सद्गुरु मिल जाते हैं, तो मन इन्द्रियादि सभी सामग्री[1] को सुधार कर भगवत् परायण कर देते हैं। फिर आत्म-ज्ञान-नौका पर बैठा कर संसार से पार कर देते हैं।

सद्गुरु पशु माणस करे, माणस तैं सिध सोइ।
दादू सिध तैं देवता, देव निरंजन होइ ॥ १२ ॥

सद्गुरु उपदेश द्वारा पशु तुल्य पामर मनुष्य को मानवता के लक्षणों से सम्पन्न करके वास्तविक मनुष्य बना देते हैं और वह मनुष्य सद्गुरु के बताये हुये योग-साधन द्वारा सिद्ध हो जाता है। सिद्धावस्था की परिपाकावस्था में वही दिव्य गति वाला, अर्थात् दूसरों के मन की बात को जानने वाला देवता हो जाता है और देव भाव की परिपाकावस्था में वही निरंजन ब्रह्म हो जाता है।

दादू काढ़े काल मुख, अंधे लोचन देय ।
दादू ऐसा गुरु मिल्या, जीव ब्रह्म कर लेय ॥ १३ ॥

सद्गुरु काम-वृत्ति से अंध हुये को, उपदेश द्वारा स्त्री-पुरुषों के शरीरों में परस्पर मल-मूत्रादि का दर्शन कराना रूप वस्तु-विचार-नेत्र प्रदान करके काम-काल के मुख से निकाल देते हैं। हमें तो ऐसे ही गुरु प्राप्त हुये हैं जो जीव को ब्रह्म बना देते हैं।

दादू काढ़े काल मुख, श्रवणहुँ शब्द सुनाय ।
दादू ऐसा गुरु मिल्या, मृतक लिये जिलाय ॥ १४ ॥

जो क्रोध-प्रधान वृत्तियों से मृतक-तुल्य संज्ञा-हीन हो जाते थे, ऐसे मनुष्यों के भी श्रवणों में गुरुजनों ने क्षमा-प्रधान शब्द सुना के उनको क्रोध-काल के मुख से निकाल कर शांति मय जीवन दिया है। हमको तो ऐसे ही गुरु मिले हैं, जिन्होंने मरण-धर्मवालों को ब्रह्म प्राप्ति द्वारा सदा के लिए जीवित कर दिया है।

दादू काढ़े काल मुख, गूंगे लिये बुलाइ ।
दादू ऐसा गुरु मिल्या, सुख में रहे समाइ ॥ १५ ॥

जो लोभ-प्रधान वृत्तियों द्वारा गूंगे हो रहे थे, दीन-गरीब-भिक्षु आदि के भोजनादि सहायता मांगने पर भी नहीं बोलते थे। उन लोगों को गुरुजनों ने उपदेश द्वारा धनादि की नश्वरता

निश्चय कराकर पर-उपकारार्थ बोलने वाला बना दिया तथा संतोषी बनाकर लोभ-काल के मुख से निकाल दिया। हमको तो ऐसे ही गुरु मिले हैं जिनके उपदेश से हम परम सुख में समा रहे हैं।

दादू काढ़े काल मुख, महर दया कर आइ।
दादू ऐसा गुरु मिल्या, महिमा कही न जाइ॥ १६ ॥

जो मोह की प्रधानता से बारंबार जन्मते मरते थे, उनको भी अपनी शरण आने पर गुरुजनों ने दया-कृपा करके ब्रह्म-ज्ञान-उपदेश द्वारा मोह-काल के मुख से निकाल लिया है। हमको तो ऐसे ही गुरु प्राप्त हुये हैं जिनकी महिमा वाणी से किसी प्रकार भी नहीं कही जा सकती।

सद्‌गुरु काढ़े केश गहि, डूबत इहि संसार।
दादू नाव चढाइ कर, कीये पैली पार॥ १७ ॥

हम सकाम-कर्मों द्वारा इस संसार-समुद्र में बारंबार डुबकियां लगा रहे थे, दयालु गुरुदेव ने हमारे सकाम कर्म-केश पकड़ कर अर्थात् निष्काम भाव से कर्म करने का उपदेश देकर हमें शुद्ध बनाया और आत्म-ज्ञान-नौका पर चढ़ाकर संसार-सागर से पार कर दिया।

भव-सागर में डूबतां, सद्‌गुरु काढ़े आइ।
दादू खेवट गुरु मिल्या, लीये नाव चढ़ाइ॥ १८ ॥

हम संसार-समुद्र में डूब रहे थे, भाग्यवश हमें गुरु-केवट मिल गये और उन्होंने हमारी स्थिति देखकर, हमें अपने उपदेश-हाथों से निकाल कर ईश्वर नाम चिन्तन-नौका में चढ़ा लिया है, अब हम नहीं डूब सकेंगे।

दादू उस गुरुदेव की, मैं बलिहारी जाऊँ।
जहँ आसन अमर अलेख था, ले राखे उस ठाऊँ॥ १९ ॥

जिन गुरुदेव ने मुझे उपदेश द्वारा संसार-दशा से उठाकर जिस निर्विकल्प समाधि स्थान में जहां अमर अलेख ब्रह्म का आसन था, उसमें स्थित कर दिया है। उन गुरुदेव की मैं बलिहारी जाता हूँ।

ज्ञानोत्पत्ति

आतम माँहीं ऊपजै, दादू पंगुल ज्ञान।
कृत्रिम जाय उलंघि कर, जहाँ निरंजन थान॥ २० ॥

२०-२१ में आत्मज्ञानोत्पत्ति और उसका लाभ बता रहे हैं - गुरु की कृपा से भक्ति सम्पन्न बुद्धि में गुण रूप चरण शक्ति से रहित आत्मज्ञान उत्पन्न होता है। उसके बल से साधक अपने बनावटी 'मैं, तू' आदि संसार को उल्लंघन करके, जिस अवस्था में निरन्तर अद्वैत भावना ही रहती है, उस अवस्था रूप निरंजन ब्रह्म के स्थान को प्राप्त होता है।

आत्म बोध बंझ का बेटा, गुरुमुख उपजै आइ।
दादू पंगुल पंच बिन, जहाँ राम तहाँ जाइ॥ २१ ॥

आत्म-ज्ञान भक्ति सम्पन्न निश्चय बुद्धि रूप वन्ध्या का पुत्र है। गुरु मुख से निकले शब्द, श्रवण द्वारा बुद्धि में आते हैं तब वह उत्पन्न होता है। उसके बल से साधक का मन पंच विषयाशा रूप पाद शक्ति से रहित होकर जिस निर्विकल्पावस्था में निरंजन राम का साक्षात्कार होता है, वहां जाता है।

गुरु शब्द

साचा सहजैं ले मिले, शब्द गुरु का ज्ञान।
दादू हमकूं ले चल्या, जहँ प्रीतम का स्थान॥ २२॥

२२-२३ में गुरु के शब्दों की विशेषता बता रहे हैं—सच्चा साधक गुरु शब्दों के द्वारा ज्ञान प्राप्त करके अनायास ही ब्रह्म को प्राप्त होता है। हमको भी गुरु शब्दों के ज्ञान ने ही जहां समाधि में प्रियतम ब्रह्म के साक्षात्कार होने का निर्विकल्प-स्थिति रूप स्थान है, वहाँ पहुँचाया है।

दादू शब्द विचार कर, लाग रहै मन लाइ।
ज्ञान गहै गुरुदेव का, दादू सहज समाइ॥ २३॥

गुरु के शब्दों का विचार करते हुये, मन लगाकर, ब्रह्म चिन्तन में ही लगा रहे और गुरुदेव का अभेद-ज्ञान ग्रहण करे तो अवश्य सहज स्वरूप ब्रह्म में ही समा जाता है।

दया बिनती

दादू सद्गुरु शब्द सुनाइ कर, भावै जीव जगाइ।
भावै अन्तर आप कहि, अपने अंग[1] लगाइ॥ २४॥

२४ में विनय और २५-२७ में गुरु-दया दिखा रहे हैं— हे सद्गुरो! चाहे तो आप अपना शब्द सुनाकर जीव को जगाओ, चाहे आप हृदय में प्रेरणा करके ही अपने स्वरूप[1] में लगाओ।

दादू बाहर सारा देखिये, भीतर कीया चूर।
सद्गुरु शब्दों मारिया, जाण न पावे दूर॥ २५॥

साधक में शरीर-निर्वाह रूप खान-पानादि बाहर का सभी व्यवहार तो देखा जाता है किन्तु सद्गुरु दया करके मन के भीतर भोग-वासनादि को नाश कर देते हैं। मेरे मन को भी सद्गुरु ने अपने शब्द बाणों से मार दिया है अर्थात् सांसारिक वासना से रहित कर दिया है। अब मेरा मन परमात्मा से दूर नहीं जा सकता।

दादू सद्गुरु मारे शब्द से, निरख निरख निज ठौर।
राम अकेला रह गया, चित्त न आवे और॥ २६॥

सद्गुरु ने, आत्म-स्थिति रूप निज धाम की प्राप्ति में बाधक, काम क्रोधादि को भली भांति देख-देखकर अपने शब्द-बाणों से मार दिया है। वस्तु-विचार से काम, क्षमा से क्रोध, संतोष से लोभ और ज्ञान से मोह को मार दिया है। अब चित्त में अन्य कुछ भी नहीं आता, केवल एक राम का चिन्तन ही रह गया है।

दादू हम को सुख भया, साधु[१] शब्द गुरु ज्ञान।
सुधि बुधि सोधी समझकर, पाया पद निर्वान ॥ २७ ॥

परमार्थ के प्रतिपादक गुरु के श्रेष्ठ[१] शब्दों के ज्ञान से हमको महान् आनंद प्राप्त हुआ है। उनके उपदेश के अनुसार भगवान् का स्मरण करने से हमारी बुद्धि शुद्ध हो गई। उस शुद्ध बुद्धि से विचार-पूर्वक स्वरूप को समझकर हमने काल-कर्म के बाणाघात से रहित ब्रह्म-पद प्राप्त किया है।

सद्‌गुरु शब्द बाण

दादू शब्द बाण गुरु साधु के, दूर दिशंतर जाय।
जिहिं लागे सो ऊबरे, सूते लिये जगाय ॥ २८ ॥

२८-२९ में सद्‌गुरु के शब्द बाणों की विशेषता दिखा रहे हैं—श्रेष्ठ गुरु के शब्द बाण देशान्तरों में दूर तक चले जाते हैं अर्थात् साधकों के द्वारा सुनने को मिल जाते हैं और वे जिनके लगे हैं, उन साधकों को मोह निद्रा से जगा लिया है। मोह निद्रा से जगने के कारण वे संसार दुःख से बच गये हैं।

सद्‌गुरु शब्द मुख से कह्या, क्या नेड़े क्या दूर।
दादू सिख श्रवणों सुन्या, सुमिरन लागा सूर ॥ २९ ॥

सद्‌गुरु के मुख से निकले हुये शब्द समीप वा दूर देश में स्थित साधकों का भी उद्धार करते हैं। जहां भी सद्‌गुरु शब्द शिष्यों ने सुने, वहां ही वे हरि-स्मरण में लग कर काम क्रोधादि शत्रुओं को जय करने में वीर बन गये हैं।

करनी बिना कथनी

शब्द दूध घृत राम रस, मथ कर काढे कोइ।
दादू गुरु गोविन्द बिन, घट घट समझ न होइ ॥ ३० ॥

३०-३३ में कर्त्तव्य रहित कथन का परिचय दे रहे हैं—सद्‌गुरु के शब्द-दूध में ब्रह्मानन्द-घृत भरा हुआ है किन्तु उन शब्दों से विचार द्वारा कोई विरला जिज्ञासु ही ब्रह्मानन्द को निकाल कर प्राप्त करता है। गुरु और गोविन्द की कृपा बिना सद्‌गुरु-शब्दों से ब्रह्मानन्द प्राप्त करने की विचार शक्ति प्रत्येक शरीरधारी को प्राप्त नहीं होती।

शब्द दूध घृत राम रस, कोई साधु बिलोवणहार।
दादू अमृत काढ ले, गुरु-मुख गहै विचार ॥ ३१ ॥

सद्‌गुरु शब्द-दूध में ब्रह्मानन्द-घृत भरा है किन्तु कोई श्रेष्ठ जिज्ञासु ही उसे मन्थन करने वाला होता है और गुरु-आज्ञा में रहने वाला होता है। वही जिज्ञासु सद्‌गुरु-शब्दों से ज्ञानामृत निकाल कर विचार पूर्वक ग्रहण करता है।

घीव दूध में रम रह्या, व्यापक सब ही ठौर।
दादू बकता बहुत हैं, मथ काढैं ते और ॥ ३२ ॥

सद्गुरु-शब्द-दूध के प्रत्येक अणु में, परमार्थ तत्त्व रूप घृत व्यापक रूप से रमा हुआ है । उन शब्दों के बोलने वाले तो बहुत मिलते हैं, किन्तु उन्हें श्रवण, मनन, निदिध्यासन द्वारा मन्थन कर अन्तर्मुख वृत्ति से उनमें से परमार्थ तत्त्व निकाल कर ग्रहण करने वाले अन्य ही होते हैं।

कामधेनु घट घीव है, दिन–दिन दुरबल होइ।
गोरू[1] ज्ञान न उपजै, मथ नहिं खाया सोइ ॥ ३३ ॥

दूध घृतादि पंच गव्य के द्वारा प्राणियों की कामना पूर्ण करने वाली गो के शरीर में घृत है किन्तु उस पशु[1] में उसे निकाल कर उपभोग करने का ज्ञान उत्पन्न नहीं होता। इसी से प्रतिदिन बुड्ढी होती जाती है। इसी प्रकार जीवात्मा परमात्मा रूप होने से संपूर्ण कामनाप्रद है। इसके तीनों शरीरों में आनंद स्वरूप ब्रह्म भी व्यापक है फिर भी अज्ञानी को गुरु उपदेश बिना उसका वास्तविक ज्ञान नहीं होता। इस कारण विचार-मथानी से मन्थन करके उस ब्रह्मानंद का आस्वादन नहीं कर सका। केवल शास्त्र द्वारा परोक्ष-ज्ञान प्राप्त करके कथन ही किया है, इससे बारंबार जन्म-मरण रूप दुर्बलता को ही प्राप्त हो रहा है।

योगाभ्यास

साचा समरथ गुरु मिल्या, तिन तत दिया बताइ।
दादू मोटा[1] महा बली[2], घट घृत मथकर खाइ ॥ ३४ ॥

३४-४१ में ब्रह्म प्राप्ति के साधन रूप योगाभ्यास का विचार कर रहे हैं—मुझे महान्[1] विचारशील, योग शक्तियों[2] से सम्पन्न, काम क्रोधादि तथा संशय-विपर्य्य के नाश करने में समर्थ, शरीर के भीतर ही ध्यान रूप मन्थन द्वारा समाधि में जाकर अद्वैतानन्द-घृत को खाने वाले सत्य ब्रह्म ही गुरु मिले हैं, उन्होंने मुझे परमार्थ तत्त्व बतलाया है।

मथकर दीपक कीजिये, सब घट भया प्रकास।
दादू दीवा हाथ कर, गया निरंजन पास ॥ ३५ ॥

गुरुदेव ने कहा—"तुम ध्यान-मन्थन द्वारा समाधि में जाकर ज्ञान-दीपक जगाओ।" मैंने गुरु-उपदेशानुसार ही योगाभ्यास किया, जिससे मेरे इन्द्रिय-अन्त:करणादि सब शरीर में ज्ञान-दीप का दिव्य प्रकाश फैल गया। मैं उस ज्ञान-दीपक को अन्त:करण-हस्त में लेकर निरंजन ब्रह्म के पास पहुँच गया, मुझे ब्रह्म का साक्षात्कार हो गया।

दीवै दीवा कीजिये, गुरुमुख मारग जाइ ।
दादू अपने पीव का, दरशन देखै आइ ॥ ३६ ॥

आत्म जिज्ञासु को चाहिए, गुरु-मुख से सुने हुये यम-नियमादि साधन-पथ द्वारा समाधि में जाकर अन्तःकरण को शुद्ध और स्थिर करे, फिर ज्ञानी-गुरु के ज्ञान-दीपक से अपना आत्म-ज्ञान-दीपक जगावे और उसकी सहायता से निर्विकल्पावस्था में आकर अपने प्रियतम ब्रह्म का दर्शन करे।

दादू दीवा है भला, दिवा[१] करो सब कोइ ।
घर में धरा न पाइये, जे कर दिया न होइ ॥ ३७ ॥

उक्त प्रकार से साधन द्वारा ज्ञान-दीपक जगाना अति उत्तम है । सभी को ज्ञान-दीपक[१] जगाना चाहिए। यदि साधन से जगाया हुआ ज्ञान-दीपक न होगा और केवल शास्त्र पढ़कर परोक्ष ज्ञान ही प्राप्त किया होगा तो अन्त:करण में स्थित आत्मा का भी स्वरूप नहीं जान पाओगे।

दादू दीये का गुण[१] ते लहैं, दीया मोटी बात।
दीया जग में चाँदणा, दीया चाले साथ ॥ ३८ ॥

ज्ञान-दीपक का ब्रह्म प्राप्ति रूप लाभ[१] वे ही प्राप्त करते हैं, जिन्होंने ज्ञान प्राप्त किया है । ज्ञान-दीपक जगाना संसार में सबसे बड़ी बात है। ज्ञान-दीपक हृदय में जगते ही संसार में ब्रह्म का सत्ता-प्रकाश फैला हुआ भासने लगता है और ज्ञान-दीपक आत्म स्वरूप होने से अपने साथ ही चलकर ब्रह्म में लय होता है। उक्त ३७-३८ की साखियों में 'दीया' के अर्थ साधारण दीपक और दान भी होते हैं किन्तु वे गौण हैं, प्रकरणार्थ ज्ञान-दीप ही है।

निर्मल गुरु का ज्ञान गह, निर्मल भक्ति विचार।
निर्मल पाया प्रेम रस, छूटे सकल विकार ॥ ३९ ॥

हमने भ्रम, प्रमाद और वञ्चनादि मल से रहित गुरु का ज्ञान ग्रहण करके कामना-मल रहित नवधा भक्ति और वासना-मल रहित प्रेम-रस प्राप्त किया है। उससे हमारे मन इन्द्रियादि के सब दोष नष्ट हो गये हैं।

निर्मल तन मन आतमा, निर्मल मनसा सार।
निर्मल प्राणी पंच कर, दादू लंघे पार ॥ ४० ॥

साधक प्राणी गुरु के उपदेशानुसार साधन द्वारा तन, मन, बुद्धि और पंच ज्ञानेन्द्रियों को निष्पाप करके इन सबके सार जीवात्मा को अविद्या मल-रहित ब्रह्म रूप समझ कर इस मायिक संसार से पार हो गये हैं।

परापरी[१] पासैं रहै, कोई न जाणैं ताहि ।
सद्गुरु दिया दिखाइ कर, दादू रह्या ल्यौ लाइ॥ ४१॥

परात्पर[१] परमात्मा व्यापक होने से सबके समीप ही है किन्तु बहिर्मुख अज्ञानी कोई भी उसे नहीं जान पाते। सद्गुरु ने मुझे ज्ञान-दीपक दिखा कर उस ब्रह्म का साक्षात्कार कराया है, अब मैं उसी में अपनी वृत्ति स्थिर करके रहता हूँ।

शिष्य जिज्ञासा

जिन हम सिरजे सो कहाँ, सद्गुरु देहु दिखाइ।
दादू दिल अरवाह का, तहँ मालिक ल्यौ लाइ॥ ४२ ॥

४२-४६ में शिष्य की जिज्ञासा का परिचय दे रहे हैं - हे सद्गुरो ! जिन परमात्मा ने हमको

उत्पन्न किया है, वे कहाँ हैं ? दिखाने की कृपा कीजिये। उत्तर—जीवात्माओं के अन्त:करण में ही साक्षी रूप से परमात्मा स्थित है, वहां ही अपनी वृत्ति लगा, दिखाई देंगे।

मुझ ही में मेरा धणी, पड़दा खोल दिखाइ।
आतम सौं परमातमा, परकट आण मिलाइ ॥ ४३ ॥

गुरुदेव ! आपने कहा कि मेरा स्वामी परमात्मा मुझ में ही है तो फिर उसके जो पड़दा लगा है, उसे हटाकर तथा उपदेश द्वारा मेरी वृत्ति उसी में लगाकर परमात्मा को आत्मा से प्रत्यक्ष रूप में मिला दीजिए।

भर भर प्याला प्रेम रस, अपने हाथ पिलाइ।
सद्गुरु के सदिकै[1] किया, दादू बलि बलि जाइ ॥ ४४ ॥

सद्गुरो ! प्रभु-प्रेमाभक्ति-रस अपने मुख रूप हाथ से शब्द रूप प्याले में भर-भर के श्रवण रूप पान कराइये। मैंने तो अपने को आप पर निछावर[1] कर दिया है। आप अवश्य कृपा करेंगे, मैं बारंबार आपकी बलिहारी जाता हूँ।

सरवर भरिया दह दिशा, पंखी प्यासा जाइ।
दादू गुरु परसाद बिन, क्यों जल पीवे आइ ॥ ४५ ॥

व्यापक ब्रह्म-सरोवर दशों दिशा में परिपूर्ण रूप से भरा है किन्तु फिर भी सकाम कर्म रूप पक्षों वाला जीवात्मा-पक्षी अतृप्त ही लोकान्तरों में जाता रहता है। गुरु कृपा बिना अज्ञानी निष्काम भाव में आकर, ब्रह्म सरोवर के ब्रह्मानन्द-जल का अनुभव रूप पान कैसे कर सकता है ?

मान-सरोवर मांहि जल, प्यासा पीवे आइ।
दादू दोष न दीजिये, घर-घर कहण न जाइ ॥ ४६ ॥

अन्त:करण-सरोवर में साक्षी चेतन रूप जल है किन्तु कोई सच्चा जिज्ञासु ही निष्काम भाव से गुरु की शरण आकर गुरु-उपदेश द्वारा चेतनानन्द-जल का अनुभव रूप पान करता है। शंका—जब सबके अन्त:करण में साक्षी रूप ब्रह्म है तो गुरु सबको क्यों नहीं ब्रह्म का साक्षात्कार कराते ? उत्तर—यह दोष गुरु को नहीं देना चाहिए। गुरु क्या घर-घर पर कहने जाएगा ? जिज्ञासु को ही गुरु की शरण जाकर पूछना चाहिए।

गुरु तथा शिष्य

दादू गुरु गरवा[1] मिल्या, ताथैं सब गम होइ।
लोहा पारस परसतां, सहज समाना सोइ ॥ ४७ ॥

४७-५८ में गुरु और शिष्य विषयक विचार कर रहे हैं—हमें गंभीर[1] ज्ञान वाले गुरु मिले हैं, उन गुरुदेव की कृपा से सब प्रकार हमारी गति ब्रह्म में ही होती है अर्थात् हमें सब ब्रह्म रूप ही भासते हैं। लोहा का जब पारस से स्पर्श होता है तब अनायास ही सुवर्ण बन जाता है, वैसे ही जीव को जब गुरु का संग प्राप्त होता है तब वह भी अनायास ही ब्रह्म भाव को प्राप्त होता है।

दीन गरीबी गह रह्या, गरवा[1] गुरु गंभीर ।
सूक्षम शीतल सुरति मति, सहज दया गुरु धीर ॥ ४८ ॥

गंभीर[1]-ज्ञान वाले गुरु, गंभीर होने से सब प्रकार के अभिमान से रहित दीन मनुष्य की-सी गरीबी धारण करके रहते हैं। उन धैर्यवान् गुरु का सूक्ष्म शरीर, बुद्धि-वृत्ति आदि कामादि दोषों से रहित होने से शांत होते हैं और वे स्वाभाविक दयालु होते हैं।

सो धी दाता पलक में, तिरै तिरावण जोग ।
दादू ऐसा परम गुरु, पाया किहिं संजोग ॥ ४९ ॥

उक्त लक्षणों से युक्त गुरु एक क्षण में ही ब्रह्म-निष्ठा युक्त बुद्धि के देने में समर्थ होते हैं। आप संसार-सिन्धु से तैरते हैं तथा शरणागत शिष्यों को तारने योग्य होते हैं। किसी पूर्व-पुण्य कर्म फल के संयोग वश ही ऐसे परम गुरु हमें प्राप्त हुये हैं।

दादू सद्गुरु ऐसा कीजिये, राम रस माता ।
पार उतारे पलक में, दर्शन का दाता ॥ ५० ॥

जो राम-भक्ति रस में मस्त हो और अपने उपदेश द्वारा एक क्षण में ही संसार-सागर से पार उतार कर राम का दर्शन कराने वाला हो, ऐसे ही व्यक्ति को सद्गुरु करना चाहिए।

देवे किरका[1] दरद का, टूटा जोड़े तार ।
दादू सांधे[2] सुरति को, सो गुरु पीर[3] हमार ॥ ५१ ॥

जब से तू भगवद् विमुख हुआ है, तब से दुःख ही दुःख पा रहा है। ऐसा उपदेश करके भगवद् विरह दुःख का कण[1] प्रदान करे और अज्ञानवश विषयों में आसक्त होने से जो भजन का तार टूट गया है, उसे जोड़ दे अर्थात् प्राणी को भजन में लगा दे। वृत्ति भंग के कारण—प्रमाण, विकल्प, विपर्य्यय निद्रा, स्मृति से वृत्ति को बचाकर आत्मस्वरूप ब्रह्म में जोड़ दे[2]। उक्त लक्षणों से युक्त सिद्ध[3] संत ही हमारा गुरु है।

दादू घायल हो रहे, सद्गुरु के मारे ।
दादू अंग लगाय कर, भवसागर तारे ॥५२ ॥

जब हम सद्गुरु के मारे हुये वैराग्य पूर्ण वचन-बाणों से घायल हो रहे थे, विषय मिथ्या हैं यह निश्चय होने से तथा भगवत् तत्त्व प्राप्त न होने से दुःख हो रहा था, उसी अवस्था में सद्गुरु ने हमें अपने प्रिय ब्रह्म स्वरूप में अभेद रूप से लगाकर संसार-समुद्र से तार दिया।

दादू साचा गुरु मिल्या, साचा दिया दिखाइ ।
साचे को साचा मिल्या, साचा रह्या समाइ ॥ ५३ ॥

हमें ब्रह्मनिष्ठ सच्चे गुरु प्राप्त हुये हैं और हमको भी उपदेश द्वारा सत्यब्रह्म का साक्षात्कार कराया है। अज्ञानादि दोषों से रहित सत्य स्वरूप आत्मा को सत्य ब्रह्म की प्राप्ति हो गई तब वह सत्य ब्रह्म में ही एक रूप से समा गया है।

साचा सद्गुरु सोधि ले, साचे लीजे साध।
साचा साहिब सोधि कर, दादू भक्ति अगाध॥ ५४॥

प्रथम ब्रह्मनिष्ठ सच्चे सद्गुरु की खोज कर, फिर सद्गुरु और सच्चे संतों के संग से साधन का ज्ञान प्राप्त कर ले, पश्चात् विचार द्वारा परमात्मा का स्वरूप निश्चय करके उनकी अखंड भक्ति करे।

सन्मुख सद्गुरु साधु सौं, सांई सौं राता।
दादू प्याला प्रेम का, महा रस माता॥ ५५॥

सद्गुरु और संतों से अनुकूल रहे, परमात्मा में अनुरक्त रहे और भगवत्-प्रेम-रूप प्याले के ब्रह्म साक्षात्कार रूप महा-रस में मस्त रहे।

सांई सौं साचा रहै, सद्गुरु सौं सूरा।
साधू सौं सन्मुख रहै, सो दादू पूरा॥ ५६॥

जो गर्भ की प्रतिज्ञा को भजन द्वारा पूरी करके परमात्मा से सच्चा रहता है, सद्गुरु से प्राप्त उपदेश के पालन करने में वीर रहता है, साधन जन्य कष्ट को देखकर कायर नहीं होता, संतों के अनुकूल रहता है, उक्त लक्षणों से युक्त वह साधक ध्यान ज्ञानादि साधना द्वारा पूर्ण ब्रह्म को प्राप्त करके पूर्ण ब्रह्म ही हो जाता है।

सद्गुरु मिलै तो पाइये, भक्ति मुक्ति भंडार।
दादू सहजैं देखिये, साहिब का दीदार॥ ५७॥

यदि सद्गुरु मिल जाते हैं तब तो भक्ति मुक्ति का भंडार सद्गुरु का उपदेश प्राप्त होता ही है और उपदेशानुसार साधन करके साधक अनायास ही ब्रह्म स्वरूप का साक्षात्कार करता है।

दादू सांई सद्गुरु सेविये, भक्ति मुक्ति फल होइ।
अमर अभय पद पाइये, काल न लागे कोइ॥ ५८॥

परमात्मा और सद्गुरु की सेवा करो, इससे तुम्हें प्रेमाभक्ति और मुक्ति रूप फल अवश्य मिलेगा। तुम अमर और निर्भय पद को प्राप्त हो जाओगे, फिर तुम्हारे पर काल का जोर भी न लग सकेगा।

गुरु बिना ज्ञान नहीं

इक लख चन्दा आण घर, सूरज कोटि मिलाय।
दादू गुरु गोविन्द बिन, तो भी तिमिर न जाय॥ ५९॥

५९-६२ में कहते हैं :- गुरु बिना ज्ञान नहीं होता। एक लाख चन्द्र घर पर लाओ और उनके साथ कोटि सूर्य भी मिला लो, तो भी गुरु के ज्ञानोपदेश और गोविन्द की भक्ति बिना हृदय का अज्ञानांधकार नहीं जाता।

अनेक चंद उदय करे, असंख्य सूर प्रकास।
एक निरंजन नाम बिन, दादू नहीं उजास ॥ ६० ॥

यदि अनेक चन्द्र और असंख्य सूर्य उदय होकर प्रकाश करें तो भी गुरु प्रदत्त निरंजन ब्रह्म के नाम चिन्तन द्वारा ब्रह्म ज्ञान हुये बिना, अज्ञान दूर होकर हृदय में प्रकाश नहीं होता।

दादू कद यहु आपा जाइगा, कद यहु बिसरे और।
कद यहु सूक्षम होयगा, कद यहु पावे ठौर ॥ ६१ ॥

यह देहादि का अहंकार कब जायगा ? यह मन आत्मा से भिन्न अनात्मा पदार्थों की आसक्ति कब त्यागेगा ? यह जीवात्मा जीवत्व भाव रूप स्थूलता को त्याग कर कब सूक्ष्म होगा ? यह आत्मा कब ब्रह्म रूप धाम को प्राप्त करेगा ? उत्तर—जब गुरु द्वारा ज्ञान होगा तब आपा, अनात्मा की आसक्ति, जीवत्व भाव चले जायेंगे और ब्रह्म को प्राप्त हो जायगा।

दादू विषम दुहेला जीव को, सद्गुरुथैं आसान।
जब दरवे[१] तब पाइये, नेड़ा ही सुस्थान ॥ ६२ ॥

६१ में कही चारों बातें अज्ञानी जीव को प्राप्त होना कठिन ही नहीं हैं, अति दुर्लभ भी है, परन्तु सद्गुरु की कृपा से तो ज्ञान द्वारा सहज ही प्राप्त हो सकती है। जब गुरुदेव कृपा[१] करते हैं तब अति समीप अन्त:करण में ही ब्रह्म रूप श्रेष्ठ धाम प्राप्त होता है।

गुरु ज्ञान

दादू नैन न देखे नैन को, अंतर[१] भी कुछ नाँहिं।
सद्गुरु दर्पण कर दिया, अरस परस मिल माँहिं ॥ ६३ ॥

६३-६५ में गुरु ज्ञान की विशेषता बता रहे हैं—जैसे नेत्र से दूसरा नेत्र कुछ भी दूर[१] नहीं है तो भी बिना दर्पण के नेत्र दूसरे नेत्र को नहीं देख सकता, वैसे ही आत्मा और ब्रह्म में कुछ भी भेद नहीं हैं तो भी सद्गुरु-ज्ञान बिना आत्मा ब्रह्म को नहीं देख सकता। जब सद्गुरु अन्त:करण रूप हाथ में ज्ञान-दर्पण देते हैं तब आत्मा ब्रह्म का साक्षात्कार करके उसी में अभेद हो जाता है।

घट-घट राम रतन है, दादू लखे न कोइ।
सद्गुरु शब्दों पाइये, सहजैं ही गम होइ ॥ ६४ ॥

प्रत्येक व्यक्ति के अन्त:करण में राम रूप रत्न स्थित है किन्तु गुरु-ज्ञान बिना कोई भी अज्ञानी उसे नहीं देख सकता। सद्गुरु शब्दों के ज्ञान द्वारा उस राम के स्वरूप में सहज ही गति होकर जिज्ञासु जन राम को प्राप्त कर लेते हैं।

जब ही कर दीपक दिया, तब सब सूझन लाग।
यूं दादू गुरु ज्ञान तैं, राम कहत जन जाग ॥ ६५ ॥

सद्गुरु ने जिस क्षण अन्त:करण रूप हाथ में आत्म ज्ञान दीपक दिया था तब सब विश्व में राम ही राम दीखने लगे थे। इस प्रकार गुरु-ज्ञान द्वारा अज्ञान-निद्रा से जागकर साधक अपने सहित सब विश्व को राम रूप ही कहने लगता है।

आत्मार्थी भेष

दादू मन माला तहँ फेरिये, जहँ दिवस न परसे रात।
तहां गुरु बानाँ दिया, सहजैं जपियें तात ॥ ६६ ॥

६६-७४ में आत्म-प्राप्ति का हेतु जो भेष है उसका परिचय दे रहे हैं— किसी ने प्रश्न किया था—आपके मालादि भेष नहीं दीखता, आप माला कहां बैठकर फेरते हैं ? उत्तर—हमारा मन ही हमारी माला है और जहां सूर्य स्वर-दिन, चन्द्र स्वर-रात्रि नहीं रहती उस सुषुम्ना नाड़ी पथ में स्थित होकर अजपा-जाप जपते हैं। हमारे गुरु ने वहां ही जाप करने की दीक्षा तथा भेष दिया है। हे तात ! तुम भी उस सहजा अवस्था में स्थित होकर ही अजपा-जाप जपो।

दादू मन माला तहँ फेरिये, जहँ प्रीतम बैठे पास।
आगम गुरु तैं गम[1] भया, पाया नूर निवास ॥ ६७ ॥

मन की माला बना कर जिस निर्विकल्पावस्था में प्रियतम प्रभु स्थित है, संकल्प-विकल्प से रहित होकर उसके पास ही फेरना चाहिये। ऐसा करने से ही वेदादि शास्त्र जिसका वर्णन करते हैं उस परमेश्वर के स्वरूप में गुरु कृपा से हमारा प्रवेश[1] हुआ है और अब हमने अपने शुद्ध चेतन स्वरूप में निवास प्राप्त कर लिया है।

दादू मन माला तहँ फेरिये, जहँ आपै एक अनन्त।
सहजैं सो सद्गुरु मिल्या, जुग-जुग फाग वसंत ॥ ६८ ॥

जिस निर्विकल्पावस्था में सजातीय, विजातीय, स्वगत भेद से रहित अपार अपना ही स्वरूप है वहां ही मन को संकल्प-विकल्प से रहित करके चिन्तन करना चाहिए। ऐसा करने से ही हमें सद्गुरु-कृपा से वह अद्वैत अनन्त अपना स्वरूप सहज ही प्राप्त हो गया है। अब हम उसके साथ निरंतर सहजावस्था रूप वसन्त में ब्रह्मानन्द का अनुभव रूप फाग खेलते हैं।

दादू सद्गुरु माला मन दिया, पवन सुरति सूं पोइ।
बिन हाथों निश दिन जपै, परम जाप यूं होइ ॥ ६९ ॥

सद्गुरु ने मन-मणिया को वृत्ति द्वारा श्वास-प्रश्वास रूप धागे में पिरोकर बिना ही हाथों से वृत्ति द्वारा ही अजपा-जाप जपने का उपदेश दिया है। हम भी वृत्ति से ही निशि दिन अजपा-जाप जपते हैं। उत्तम जाप इसी प्रकार होता है।

दादू मन फकीर मांहीं हुआ, भीतर लीया भेख।
शब्द गहै गुरुदेव का, माँगे भीख अलेख ॥ ७० ॥

हमारा मन भीतर ही गुरुदेव के शब्दों का ज्ञान ग्रहण करके तथा नाना सांसारिक वासना रूप घर को त्याग करके, असंगता रूप भेष को लेकर साधु बन गया है और लेखबद्ध न हो सके, उस परब्रह्म का साक्षात्कार रूपी भिक्षा माँगता है।

दादू मन फकीर सद्गुरु किया, कह समझाया ज्ञान।
निश्चल आसन बैस कर, अकल पुरुष का ध्यान ॥ ७१ ॥

सद्गुरु ने अपने ज्ञान-कथन के द्वारा समझा कर हमारे मन को भीतर ही वासना रहित करके साधु बना दिया है। अब वह एकाग्रता रूप निश्चल आसन पर बैठ करके कला-विभाग रहित पुरुष के ध्यान में स्थित रहता है।

दादू मन फकीर जग थैं रह्या, सद्गुरु लीया लाइ।
अह निशि लागा एक सौं, सहज[1] शून्य[2] रस खाइ ॥ ७२ ॥

अब हमारा सांसारिक वासनाओं से रहित साधु मन संसार में जाने से रुक गया है। उसे सद्गुरु ने परमेश्वर में लगा दिया है। अब वह दिन रात अद्वैत ब्रह्म-चिन्तन में ही लगकर निर्द्वन्द्वावस्था[1] में निर्विकल्प[2] ब्रह्मानन्द-रस का ही आस्वादन करता रहता है।

दादू मन फकीर ऐसे भया, सद्गुरु के परसाद।
जहां का था लागा तहाँ, छूटे वाद विवाद ॥ ७३ ॥

सद्गुरु की कृपा से हमारा मन उक्त प्रकार साधु हो गया है और अब जिस चेतन आत्मा की सत्ता से सक्रिय होकर सांसारिक विषयों में जाता था उसी आत्मा के स्वरूप-चिन्तन में लग गया है और संपूर्ण वाद विवाद छूट गये हैं।

ना घर रह्या न वन गया, ना कुछ किया कलेश।
दादू मन हीं मन मिल्या, सद्गुरु के उपदेश ॥ ७४ ॥

जैसे सन्यासी को वन के शीत, आतप, वात, वृष्टि आदि के सहन का क्लेश और गृहस्थ को घर के क्लेश उठाने पड़ते हैं, वैसे हमारे मन ने घर-वन के क्लेश नहीं सहन किये। सद्गुरु के उपदेश द्वारा मन ही मन में साधन करने से हमारा आत्मा, परमात्मा में अभेद रूप से मिला है।

भ्रम विध्वंस

दादू यहु मसीत[1] यहु देहुरा[2], सद्गुरु दिया दिखाइ।
भीतर सेवा बंदगी, बाहर काहे जाइ ॥ ७५ ॥

जो लोग चूना पत्थर से बने मंदिर व मस्जिदों में ही ईश्वर मानते हैं उनका भ्रम दूर कर रहे हैं :- हमें तो सद्गुरु ने यह शरीर ही मस्जिद[1] और मन्दिर[2] बताकर उपदेश दिया है कि—सच्चा उपासना-गृह तो शरीर के भीतर अन्त:करण ही है, मन को एकाग्र करके भीतर ही सेवा-भक्ति करो, प्रभु के लिए बाहर क्यों भटकते हो ?

कस्तूरिया मृग

दादू मंझे चेला मंझ गुरु, मंझे ही उपदेश।
बाहर ढूढैं बावरे, जटा बधाये केश ॥ ७६ ॥

जैसे कस्तूरिया मृग की नाभि में कस्तूरी होती है और वह उसे बाहर घास आदि में खोजता है, वैसे ही उपास्य को बाहर खोजने वालों का भ्रम दूर कर रहे हैं—भीतर सात्त्विक श्रद्धायुक्त चित्त ही शिष्य है, ज्ञान युक्त मन ही गुरु है, विचार ही उपदेश है, आत्मस्वरूप ब्रह्म ही उपास्य है, किन्तु अज्ञानी जन केशों की जटा बढ़ाना आदि भेष बनाकर ब्रह्म को बाहर देशान्तरों में खोजते हैं।

मन का दमन

मन का मस्तक मूंडिये, काम क्रोध के केश।
दादू विषै विकार सब, सद्गुरु के उपदेश ॥ ७७ ॥

जो गुरु होने योग्य न होकर भी शिष्य बनाते हैं उन्हें कह रहे हैं—सद्गुरु के उपदेश द्वारा अपने मन के मिथ्या अहंकार रूप शिर के काम, क्रोध, विषय-विकारादि सब केश काट करके प्रथम उसे ही शिष्य बनाओ।

दादू पड़दा भरम का, रह्या सकल घट छाइ।
गुरु गोविन्द कृपा करैं, तो सहजैं ही मिट जाइ ॥ ७८ ॥

सभी के अन्त:करण में अज्ञान रूप पड़दा लगा है। यह अन्य किसी भी उपाय से हटने वाला नहीं है किन्तु गुरु और गोविन्द यदि कृपा करें तो अनायास ही हट जाता है।

सूक्ष्म मार्ग

दादू जिहिं मत साधू उद्धरैं, सो मत लीया शोध।
मन लै मारग मूल गह, यह सद्गुरु का परमोध ॥ ७९ ॥

७९-८० में आन्तर साधना रूप सूक्ष्म मार्ग का परिचय दे रहे हैं—ब्रह्म में वृत्ति लगाना रूप जिस आन्तर साधन मार्ग द्वारा संत जन संसार से पार हुये हैं, वही हमने खोज लिया है। कारण—हमारे सद्गुरु का भी यही उपदेश था कि मनोवृत्ति को ब्रह्म में लय करने के सही मार्ग से ही अपने आदि कारण ब्रह्म को अभेद रूप से प्राप्त करो।

दादू सोई मारग मन गह्या, जिहिँ मारग मिलिये जाइ।
वेद कुरानों ना कह्या, सो गुरु दिया दिखाइ ॥ ८० ॥

जिस निष्काम ब्रह्म-चिन्तन रूप मार्ग से चलकर ज्ञान द्वारा ब्रह्म में अभेद रूप से मिलते हैं, वही मार्ग हमारे मन ने ग्रहण किया है। वेद कुरानादि ने जिसका ''यह नहीं, यह नहीं'' कह कर वर्णन किया है, उसी ब्रह्म का साक्षात्कार हमें सद्गुरु ने करा दिया है।

विचार

मन भुवंग[1] यहु विष भरा, निर्विष क्यों ही न होइ।
दादू मिल्या गुरु गारुड़ी[2], निर्विष कीया सोइ ॥ ८१ ॥

८१-८३ में मन को विकार रहित करके प्रभु में लगाने का विचार दिखा रहे हैं—यह मन रूप सर्प[१] भोग-वासना-विष से भरा है; गुरु कृपा बिना किसी प्रकार भी निर्विष न हो सकेगा। हमको तो ज्ञान रूप गारूड़ (सर्प विषनाशक) मंत्र के ज्ञाता ज्ञानी[२] गुरु मिल गये थे, उन्हींने उपदेश द्वारा इसे भोग-वासना विष से रहित किया है।

एता कीजे आप थैं, तन मन उनमन[१] लाइ।
पंच समाधी राखिये, दूजा सहज सुभाइ ॥ ८२ ॥

साधक स्थूल शरीर को आसनादि द्वारा अपने अधीन करे। पंच ज्ञानेन्द्रियों को निग्रह करके अन्तर्मुखता रूप समाधि में रक्खे, मन को समाधि[१] में लगावे। इतना साधन अपने से किया जाएगा तब अन्य योग-क्षेम रूप बाह्य कार्य स्वाभाविक ही होता रहेगा तथा अभेद ज्ञान होकर ब्रह्म-साक्षात्कार रूप आन्तर कार्य भी गुरु के संकेत मात्र से सहज ही हो जाएगा।

दादू जीव जंजालों पड़ गया, उलझा नौ मण सूत।
कोई इक सुलझे सावधान, गुरु बाइक अवधूत ॥ ८३ ॥

जीव जगत के विषय और क्रोधादि रूप जालों में फँस गया है। इसकी स्थिति नौ मण सूत उलझने के समान हो गई है। जैसे नौ मण सूत को कोई विरला धैर्यवान व्यक्ति ही सुलझा सकता है, वैसे ही मन की वासना को नष्ट करने में सावधान कोई एक विरला अवधूत साधक ही गुरु-वचन-विचार द्वारा जगत के बंधनों से अपने को सुलझा सकता है।

मन निरोध

चंचल चहुँ दिशि जात है, गुरु बाइक सूं बांधि।
दादू संगति साधु की, पार-ब्रह्म सूं संधि ॥ ८४ ॥

८४-९४ में मनो निग्रह विषयक विचार दिखा रहे हैं—यह चंचल मन सुखों के लिए चारों दिशाओं में जाता है। इसे वैराग्य प्रधान गुरु वचनों के विचार द्वारा बाँधकर रोको और संतों की संगति द्वारा परब्रह्म के चिन्तन में लगाओ।

गुरु अंकुश माने नहीं, उदमद[१] माता अंध।
दादू मन चेतै नहीं, काल न देखै फंध ॥ ८५ ॥

यह मन उत्पथ में गमन करके विषय-मद से मतवाला होकर अंधा हो रहा है, जन्मादि भय के प्रदर्शक गुरु के शब्द-अंकुश को भी नहीं मानता। वर्तमान के दु:खों को देखकर भी कल्याणार्थ सावधान नहीं होता और न काल के फँदे को ही देखता है।

दादू मारे बिन माने नहीं, यह मन हरि की आन।
ज्ञान खड़ग गुरु देव का, ता संग सदा सुजान ॥ ८६ ॥

यह मन गुरु के उपदेश से निग्रह करे बिना, ''निषिद्ध में न जाकर विहित विषयों में ही जाय'' यह हरि की मर्यादा भी नहीं मानता, प्राय: निषिद्ध में ही जाता है। इसलिए

हे सुजान साधक ! गुरुदेव का ज्ञान-खड्ग अन्त:करण-हस्त में लेकर इसके साथ सदा युद्ध करते हुए इसे ब्रह्म चिन्तन में लगा।

जहां तैं मन उठ चले, फेरि तहां ही राख ।
तहँ दादू लै लीन कर, साधु कहैं गुरु साख ॥ ८७ ॥

हे साधक ! सद्‌गुरु के बताये हुये ब्रह्म चिन्तन रूप अभ्यास से उठकर मन विषयों की ओर जाय तब ''विषय-प्रवृत्ति दुखद और ब्रह्म-चिन्तन परम सुखद है'' इत्यादि गुरु-वचनों की साक्षी देकर पुन: ब्रह्म-चिन्तन में ही मन को लगा और उसी ब्रह्म में मनोवृत्ति लीन कर। संत जन भी मनो-निग्रह का यही उत्तम उपाय कहते हैं।

दादू मन ही सूं मल ऊपजै, मन ही सूं मल धोइ।
सीख चले गुरु साधु की, तो तू निर्मल होइ ॥ ८८ ॥

मन में निषिद्ध विषय-वासना उत्पन्न होने से मन से ही पाप उत्पन्न होते हैं और निषिद्ध विषयाशा के त्याग पूर्वक मन द्वारा ब्रह्म-चिन्तन से पाप धोये जाते हैं। यदि तू सद्‌गुरु और संतों की शिक्षा के अनुसार साधन करेगा तो मल, विक्षेप, आवरण से रहित होकर निर्मल ब्रह्म रूप ही बन जायेगा।

दादू कच्छप अपने कर लिये, मन इंद्री निज ठौर।
नाम निरंजन लाग रहु, प्राणी परहर और ॥ ८९ ॥

जैसे भय की संभावना होने पर कच्छप अपने अंग अपनी ढाल के नीचे ले आता है, वैसे ही अपने मन इन्द्रियों को विषयाशा से खेंचकर आत्मस्वरूप निज स्थान में ले आता है वही उत्तम साधक है। अत: हे प्राणी ! अन्य सब को त्याग कर एक निरंजन ब्रह्म के नाम चिन्तन में ही लगा रह।

मन के मतै सब कोइ खेले, गुरुमुख बिरला कोइ।
दादू मन की माने नहीं, सद्‌गुरु का शिष सोइ ॥ ९० ॥

सभी मन की इच्छानुसार विषयों में रमण करते हैं। गुरु-वचनों में दृढ़ श्रद्धा रख कर मन की विषयाशा त्यागने वाला कोई विरला ही साधक होता है। जो मन की अनुचित बात नहीं मानता और गुरु-उपदेशानुसार चलता है, वही सद्‌गुरु का सच्चा शिष्य है।

सब जीवों को मन ठगे, मन को विरला कोइ ।
दादू गुरु के ज्ञान सौं, सांई सन्मुख होइ ॥ ९१ ॥

विषयाशा द्वारा सब जीवों के आत्म-ज्ञान धन को मन ठगता है, मन के सर्वस्व विषय सम्बन्ध रूप धन को कोई विरला साधक ही ठगता है। मन को ठगने के लिए गुरु-ज्ञान विचार द्वारा ब्रह्म-परायण होना चाहिए।

दादू एक सूं लै लीन होना, सबै सयानप येह।
सद्‌गुरु साधू कहत हैं, परम तत्त्व जप लेह ॥ ९२ ॥

सजातीय, विजातीय, स्वगत भेद रहित ब्रह्म के चिन्तन में लगकर ब्रह्म में ही वृत्ति द्वारा लीन होना चाहिए। यही सबसे अधिक चतुरता है, सद्गुरु और संतजन भी यही कहते हैं कि अजपा जाप जप कर परम तत्त्व ब्रह्म को प्राप्त कर।

सद्गुरु शब्द विवेक बिन, संयम रहा न जाइ।
दादू ज्ञान विचार बिन, विषय हलाहल खाइ ॥ ९३ ॥

सद्गुरु के विवेक पूर्ण शब्दों के बिना संयम से नहीं रहा जा सकता, कारण सत्यासत्य के विचार बिना ग्राह्य और त्याज्य का ज्ञान नहीं होता और ज्ञान बिना असत्य से हटकर सत्य में नहीं लगता। अत: ज्ञान-विचार बिना विषय रूप महाविष ही खाता है।

घर-घर घट कोल्हू चले, अमी महारस जाइ।
दादू गुरु के ज्ञान बिन, विषय हलाहल खाइ ॥ ९४ ॥

प्रत्येक स्थूल शरीर रूप घर के भीतर अन्त:करण में संकल्प-विकल्प रूप कोल्हू चलता रहता है, उससे अमर बनाने वाला ब्रह्मानन्द रूप महा-रस, विषय पृथ्वी में पड़ कर दूषित हो रहा है, उसका अनुभव तो विषयों में भी होता है किन्तु अज्ञान-दोष से युक्त होने से मुक्ति रूप अमरत्त्व नहीं दे सकता। गुरु-ज्ञानोपदेश बिना उस महारस को न जानने के कारण प्राणी विषय रूप महाविष ही खाते हैं वा नारी-पुरुष की काम प्रधान क्रिया रूप कोल्हू चलता है, उससे वीर्य रूप महारस नष्ट होता रहता है।

शिष्य प्रबोध

सद्गुरु शब्द उलंघ कर, जनि कोई शिष जाइ।
दादू पग-पग काल है, जहाँ जाइ तहँ खाइ ॥ ९५ ॥

९५-९९ में शिष्य को शिक्षा दे रहे हैं—निष्काम कर्म करने की आज्ञा रूप सद्गुरु शब्द को उल्लंघन करके किसी भी शिष्य को सकाम कर्मों में प्रवृत्त नहीं होना चाहिए, यदि सकाम कर्म करेगा तो उसके लिए पद-पद पर काल स्थित है, वह जहाँ भी जायगा वहाँ ही उसे खा जायगा।

सद्गुरु बरजे शिष करे, क्यों कर बंचे काल।
दह दिशि देखत बह गया, पाणी फोड़ी पाल ॥ ९६ ॥

जिन निषिद्ध कर्मों को सद्गुरु निषेध करते हैं, उन्हीं को यदि शिष्य करे तो फिर वह जन्म-मरण रूप कालचक्र से कैसे बचेगा ? जैसे बाँध तोड़ने पर जल देखते २ ही बह जाता है वैसे ही शास्त्र व संतों की बाँधी हुई मर्यादा तोड़ने से उसका मन देखते २ ही दश इन्द्रियों के विषय रूप दशों दिशा में भाग जाता है।

दादू सद्गुरु कहै सु शिष करे, सब सिध कारज होइ।
अमर अभय पद पाइये, काल न लागे कोइ ॥ ९७ ॥

यदि शिष्य सद्‌गुरु के कथनानुसार भली भांति साधन करे तो उसके व्यावहारिक तथा पारमार्थिक सभी कार्य सिद्ध हो जायेंगे और अन्त में वह अमर अभय ब्रह्म स्वरूप को प्राप्त हो जायगा, फिर उसके ऊपर किसी प्रकार भी काल का जोर नहीं चलेगा।

दादू जे साहिब को भावे नहीं, सो हम तैं जनि होइ।
सद्‌गुरु लाजे आपणा, साधु न माने कोइ ॥ ९८ ॥

जो-जो संकल्प, वचन-व्यवहार और कार्य प्रभु को अच्छे न लगें वे हम से नहीं होने चाहिए। उनके करने से अपने सद्‌गुरु लज्जित होंगे और संत जन भी उन्हें किसी भी प्रकार से अच्छे नहीं मानेंगे।

दादू 'हूं' की ठाहर 'है' कहो, 'तन' की ठाहर 'तूं'।
'री' की ठाहर 'जी' कहो, ज्ञान गुरु का यों ॥ ९९ ॥

'मैं स्वतंत्र कर्त्ता हूँ' ऐसा अभिमान निज देह में मत करो और इस 'हूँ' के स्थान में 'है' कहो अर्थात् ईश्वर ही सर्व समर्थ है, उसकी सत्ता से ही सब कुछ होता है। ऐसा कहकर अपने परिच्छिन्न अहंकार को हटाओ। परिच्छिन्न अहंकार का आधार जो सूक्ष्म 'तन' उसके स्थान में भी 'तू' कहो अर्थात् मन, बुद्धि आदि को सत्ता देने वाला भी तू ईश्वर ही है। 'री' (अविद्या) के स्थान में भी 'जी' कहो अर्थात् जीव का वास्तविक स्वरूप ब्रह्म ही है, ऐसा कहो। इस प्रकार 'स्थूल, सूक्ष्म और कारण' अविद्या को त्याग कर अद्वैत ब्रह्म का ही चिन्तन करो। गुरु प्रदत्त ज्ञान इस प्रकार ही बताता है। प्रसंग कथा—एक गायक दादूजी के पास अपना वाद्य बजाते हुये-हूं हूं, तन तन, री री, करके स्वर बाँधने लगा था। उसी समय यह साखी कह कर गायक तथा सभी सभासदों को उपदेश किया था।

गुरु-ज्ञान

दादू पंचों स्वादी पंच दिशि, पंचे पंचों बाट।
तब लग कहा न कीजिये, गह गुरु दिखाया घाट ॥ १०० ॥

१००-१०१ में इन्द्रियों को अन्तर्मुख करने विषयक गुरु का ज्ञान सिखा रहे हैं—पंच विषयों का स्वाद लेने वाली पंच ज्ञानेन्द्रियां अपने २ विषय रूप पंच दिशा में जाती हैं। पांचों एक मार्ग से नहीं चल सकतीं। इन पंचों के पंच विषय रूप पांच ही मार्ग हैं। इनका कहना तब तक स्वीकार नहीं करना चाहिए जब तक ये गुरु के बताये हुये ब्रह्म-सरोवर के ब्रह्म चिन्तन रूप घाट को ग्रहण न कर लें। ब्रह्म-परायण होने पर तो स्वाभाविक ही अन्तर्मुख रहेंगी, निषिद्ध में नहीं जा सकेंगी।

दादू पंचों एक मत, पंचों पूरे साथ।
पंचों मिल सन्मुख भये, तब पंचों गुरु की बाट ॥ १०१ ॥

गुरु-ज्ञानोपदेश द्वारा पंच ज्ञानेन्द्रियां एक मत होने लगी थीं, उसी अवस्था में हमने पांचों को एक साथ ही ब्रह्म स्वरूप में लगाया था। ऐसा करने से ही पांचों ज्ञानेन्द्रियां, मन, बुद्धि आदि

ब्रह्म-परायण हुये थे। साधकों को भी चाहिये कि—जब इन्द्रियादि ब्रह्म-परायण हों तब ही समझें कि इन पंच इन्द्रियादि ने गुरु का बताया हुआ साधन मार्ग ग्रहण कर लिया है।

सद्‌गुरु-विमुख ज्ञान

दादू ताता लोहा तिणे सूं, क्यों कर पकड्या जाइ।
गहन गति सूझे नहीं, गुरु नहीं बूझे आइ ॥ १०२ ॥

सद्‌गुरु-विमुख ज्ञान का परिचय दे रहे हैं—जैसे तप्त लोहा तृण से किसी प्रकार भी नहीं पकड़ा जा सकता वैसे ही कामादि से तपा हुआ परम विक्षिप्त मन, तीर्थ, व्रत,दानादिक साधारण साधनों से निग्रह तथा शांत नहीं किया जा सकता। मन को निग्रह करने की अभ्यास वैराग्यादि, आंतर साधन रूप गहन गति स्वयं को तो बहिर्मुख होने से दीखती नहीं और गुरु के पास आकर पूछता नहीं। ऐसे व्यक्ति का मन कैसे निग्रह हो सकता है ?

गुरु-मुख कसौटी

दादू अवगुण गुण कर माने गुरु के, सोई शिष्य सुजान।
सद्‌गुरु अवगुण क्यों करे, समझे सोइ सयान ॥ १०३ ॥

१०३-१०६ में गुरु-प्रदत्त साधन कष्ट का रहस्य बता रहे हैं—साधन कराने में क्रूरता आदि गुरु के दोषों को भी जो गुण ही मानता है, वही बुद्धिमान् शिष्य कहलाता है। जो ऐसे समझता है कि—सद्‌गुरु अवगुण कैसे कर सकते हैं, वही चतुर है।

सोने सेती वैर क्या, मारे घण के घाइ।
दादू काट कलंक सब, राखे कंठ लगाइ ॥ १०४ ॥

सोनी का सोने से क्या वैर है ? अर्थात् नहीं, तो भी सोने पर उसको शुद्ध करने के लिए घण के प्रहार करता है तथा तपा-तपा कर उसका सब मैल दूर करता, और भूषण बना के कंठ में पहनने योग्य बना देता है वैसे ही गुरु भी शिष्य का 'मल, विक्षेप, आवरण' रूप कलंक नष्ट करने के लिए उसे साधन रूप कष्ट द्वारा शुद्ध करके ब्रह्म से मिला देता है।

पाणी मांहीं राखिये, कनक कलंक न जाहि।
दादू गुरु के ज्ञान सौं, ताइ अग्नि में बाहि ॥ १०५ ॥

सोने को चिरकाल तक जल में रक्खें तो भी उसका मैल दूर न होगा, किन्तु अग्नि में डालकर तपाने से शीघ्र ही शुद्ध हो जाएगा। वैसे ही यदि शिष्य को निषिद्ध विषय-जल में ही रक्खा जायगा अर्थात् विषय-भोग की स्वतंत्रता दी जायगी तो उसका मल-विक्षेपादि कलंक कभी भी दूर न होगा। वह तो गुरु-उपदेश द्वारा विषयों से विरक्त होकर ज्ञान प्राप्त करने से ही दूर होगा।

दादू मांहीं मीठा हेत कर, ऊपर कड़वा राखि।
सद्‌गुरु शिष को सीख दे, सब साधों की साखि ॥ १०६ ॥

सद्‌गुरु को चाहिए—शिष्य से हृदय में तो अति मधुर स्नेह करे और वाणी द्वारा कठोर वचन से भय दिखाते हुये शिक्षा देकर साधन में लगावे। सभी संतों ने ऐसा ही कहा है।

गुरु शिष्य प्रबोध

दादू शिष्य भरोसे आपणै, हो बोली हुसियार।
कहेगा सो बहेगा, हम पहली करैं पुकार ॥ १०७ ॥

१०७-११० में कहते हैं कि गुरु की शिक्षा के अनुसार शिष्य को सब व्यवहार करना चाहिए। गुरु कहते हैं— हे शिष्य ! अपने बल के भरोसे पर ही सावधान होकर वर, शापादि का वचन कहना चाहिए। जो वर, शापादि के वचन कहेगा, वही उसे पूरा करेगा। यह हम पहले ही पुकार-२ कर कहते आ रहे हैं, पूरा न करने से संतों की निन्दा होती है। यह साखी आमेर में सूत के बदले पुत्र का वर दे आने पर जग्गाजी को कही थी। प्रसंग कथा - 'दृष्टांत-सुधा सिन्धु' तरंग ५-५६ में देखो।

दादू सद्‌गुरु कहै सु कीजिये, जे तूं शिष्य सुजान।
जहँ लाया तहँ लाग रहु, बूझे कहा अजान ॥ १०८ ॥

हे शिष्य ! यदि तू बुद्धिमान, है तब तो जो सद्‌गुरु कहें वही साधन भली-भांति कर। हे अजान ! 'इस साधन से मेरा कल्याण होगा या नहीं' ऐसी शंका क्यों करता है तू तो श्रद्धापूर्वक गुरु के बताये हुये साधन में लगा रह, क्योंकि गुरु तो कल्याण का ही साधन बताते हैं।

गुरु पहले मन सौं कहै, पीछे नैन की सैन।
दादू शिष्य समझै नहीं, कह समझावै बैन ॥ १०९ ॥

उत्तम गुरु प्रथम श्रेणी के साधक को मन की भावना द्वारा ही उपदेश करते हैं, दूसरी श्रेणी के साधक को नेत्र के संकेत से। तीसरी श्रेणी का साधक नेत्र संकेत से भी नहीं समझता, तब वचन कह कर समझाते हैं।

कहे लखे सो मानवी, सैन लखे सो साध।
मन की लखे सु देवता, दादू अगम अगाध ॥ ११० ॥

जो गुरु के उपदेश को कहने से समझता है वह मानव है, जो संकेत से समझता है वह साधु है और जो गुरु के मन की भावना से ही भली-भांति समझ जाता है, वह देवता है और वह ब्रह्माकार वृत्ति द्वारा शीघ्र ही ब्रह्म को प्राप्त करके अगम अगाध ब्रह्म स्वरूप ही हो जाता है।

कठोरता

दादू कहि-कहि मेरी जीभ रही, सुनि-सुनि तेरे कान।
सद्‌गुरु बपुरा क्या करे, जो चेला मूढ़ अजान ॥ १११ ॥

शिष्य-बुद्धि की कठोरता दिखा रहे हैं। गुरु कह रहे हैं - उपदेश करते २ मेरी वाणी और सुनते २ तेरे श्रवण थक गये हैं, किन्तु बुद्धिहीन अजान ! अभी तक भी तू नहीं समझा। यदि ऐसी कठोर बुद्धि वाला शिष्य हो तो बेचारे विचारशील सद्‌गुरु भी क्या करें, अर्थात् उसे नहीं समझा सकते।

गुरु शिष्य प्रबोध

एक शब्द सब कुछ कहा, सद्‌गुरु शिष समझाइ।
जहँ लाया तहँ लागे नहीं, फिर फिर बूझे आइ॥ ११२॥

११२-११४ में गुरु की शिक्षा में न चलने वाले शिष्य का परिचय दे रहे हैं—सद्‌गुरु ने एक निरंजन राम के नाम-शब्द के चिन्तन से इस लोक में यश, विहित भोग-प्राप्ति, पाप निवृत्ति, मन की स्थिरता आदि मुक्ति पर्यन्त सभी प्राप्त होता है। ऐसा समझा कर नाम चिन्तन करने को कहा और उसी नाम चिन्तन-साधन में लगाया किन्तु फिर भी दृढ़ श्रद्धा न होने के कारण जहां लगाया था उसमें तो अन्तर्मुख होकर नहीं लगता और संशय करके बारंबार आकर पूछता है, 'इससे अच्छा अन्य साधन नहीं है क्या ?' आप यही साधन करते हैं क्या ? यह उचित नहीं। साधन में संशय करने वाले व्यक्ति से न तो साधन होता है और न उसका कल्याण ही होता है।

ज्ञान लिया सब सीख सुन, मन का मैल न जाइ।
गुरु विचारा क्या करे, शिष विषय हलाहल खाइ॥ ११३॥

विद्वानों द्वारा सुनकर वेदान्त प्रकरण रूप ज्ञान तो सब याद कर लिया है किन्तु विषयासक्ति दूर न होने के कारण मन का पाप नहीं हटता। जब शिष्य निषिद्ध विषय रूप महाविष खाता ही रहे, तब उपदेश देने में अति निपुण विचारशील गुरु भी क्या कर सकता है ? विषयासक्ति त्यागे बिना मन निर्मल नहीं हो सकता।

सद्‌गुरु की समझे नहीं, अपने उपजे नांहिं।
तो दादू क्या कीजिये, बुरी व्यथा मन मांहिं॥ ११४॥

जो सद्‌गुरु की शिक्षा को मन लगा कर नहीं समझता और जिसके मन में विषयाशा त्यागने की भावना उत्पन्न नहीं होती, तो ऐसे व्यक्ति के कल्याण के लिये क्या किया जाय ? जब तक विषयाशा रूप बुरी व्यथा मन में है, तब तक कल्याण-मार्ग नहीं खुलता।

असद्‌गुरु

गुरु अपंग पग पंख बिन, शिष शाखां का भार।
दादू खेवट नाव बिन, क्यों उतरेंगे पार॥ ११५॥

११५-११७ में असद्‌गुरु का परिचय दे रहे हैं—जिस गुरु के सत्यासत्य का निर्णय और निष्कामता रूप पैर नहीं हैं, वह तो स्वयं भी निषिद्ध विषय और सकाम कर्म रूप पृथ्वी के एक देश को छोड़कर विहित विषय और निष्काम कर्म रूप दूसरे देश तक नहीं जा सकता, फिर शिष्यों को कैसे ले जायगा ? तथा जिसके ज्ञान और वैराग्य रूप पक्ष नहीं हैं, वह संसार-सागर को शीघ्रता

से कैसे लांघ सकता है ? और जिसे भगवान् का नाम-चिन्तन रूप नौका तथा ज्ञानी-गुरु रूप केवट भी नहीं प्राप्त है तथा शिष्य प्रशिष्य आदि शाखा-प्रशाखाओं का भारी बोझा भी साथ में है, तो कहो फिर ऐसे गुरु और उनके शिष्य संसार-सागर से कैसे पार उतरेंगे ?

दादू संशा जीव का, शिष शाखां का साल।
दोनों को भारी पड़ी, होगा कौन हवाल ॥ ११६ ॥

जिस गुरु को अपने उद्धार का भी संशय है और शिष्य रूप शाखाओं के असद् आचरण से निन्दा होने से ही क्लेश रहता है, इस कारण गुरु और शिष्य दोनों में ही वर्तमान में तो चिरकाल तक रहने वाली अशांति रूप महा विपत्ति पड़ी हुई है। भविष्य में ऐसे व्यक्तियों का क्या हाल होगा, यह तो हरि ही जाने।

अंधे अंधा मिल चले, दादू बन्ध कतार।
कूप पड़े हम देखतां, अंधे अंधा लार ॥ ११७ ॥

जैसे एक अंधे के पीछे कई अंधे पंक्ति बाँधकर चलें तो वे कूप या खड्डे में ही पड़ते हैं वैसे ही गुरु लक्षणों को न जानने वाले विवेक नेत्रों से हीन शिष्य आत्मज्ञान रूपी नेत्रों से हीन गुरु के पीछे पंक्तिबद्ध होकर चलते हैं, धनादि से उसकी सेवा करते हैं, किन्तु हमारे देखते २ ही ऐसे बहुत-से अज्ञानी गुरु-शिष्य संसार-कूप में पड़े हैं, वे मुक्त नहीं होते।

पर प्रबोध

सोधी नहीं शरीर की,औरों को उपदेश।
दादू अचरज देखिया, ये जायेंगे किस देश ॥ ११८ ॥

११८-११९ में स्वयं ज्ञानहीन होकर भी अन्यों को उपदेश देने वालों का परिचय दे रहे हैं—जिन्हें स्थूल शरीर की क्रियाओं का भी ठीक-ठीक ज्ञान नहीं तथा इन्द्रिय अन्त:करण रूप सूक्ष्म शरीर भी धर्मानुकूल नहीं वर्तता, तो भी वे अन्यों को परमार्थ का उपदेश करते हुए देखे जाते हैं, यह बड़े आश्चर्य की बात है। न जाने ऐसे व्यक्ति किस देश को जायेंगे ? मुक्त तो हो नहीं सकते, दंभी होने से उत्तम लोकों में भी नहीं जा सकते। उनका तो पतन ही होगा।

सोधी नहीं शरीर की, कहैं अगम की बात।
जान[1] कहावें बापुड़े, आयुध लीये हाथ ॥ ११९ ॥

जिन्हें अपने सूक्ष्म शरीर का तो ज्ञान ही नहीं कि यह आगे किस योनि को प्राप्त होगा। स्वयं को अपने कल्याण में संशय है तो भी शरीर में अध्यास रखने वाले ये लोग अपने को ज्ञानी[1] कहलाने के लिए, मन इन्द्रियों के अविषय ब्रह्म की बातें कहते हैं। 'अहं ब्रह्म' बोलते हुए अन्यों को भी ऐसा ही बोलने का उपदेश करते हैं। उन्होंने अपने नाश के लिए ही यह-कपट विचार रूप शस्त्र अपने अन्त:करण रूप हाथ में लिया है। ऐसे व्यवहार से वे अपना ही नाश कर रहे हैं।

सत्यासत्य गुरु परीक्षा लक्षण

दादू माया मांहैं काढ़ कर, फिर माया में दीन्ह।
दोऊ जन समझैं नहीं, एको काज न कीन्ह ॥ १२० ॥

१२०-१२८ में सद्गुरु और असद्गुरु की परीक्षा के लक्षण कह रहे हैं—जो गुरु स्त्री-पुत्रादि माया से निकाल कर शिष्य को फिर संप्रदाय, मठादि के जाल रूप माया में लगा देते हैं, वे गुरु और शिष्य दोनों ही नहीं समझते कि ऐसा करने से उन दोनों की ही हानि है। ऐसे व्यक्ति परमार्थ और व्यवहार रूप दोनों कार्यों में से एक को भी सिद्ध नहीं कर पाते।

दादू कहै सो गुरु किस काम का, गह भरमावे आन।
तत्त्व बतावे निर्मला, सो गुरु साधु सुजान ॥ १२१ ॥

वह गुरु किस काम का है, जो शिष्य को अपने अधीन करके भगवान् से भिन्न संसार-जाल में फँसा कर अपने स्वार्थ के कार्यों में ही भ्रमण कराता रहे। गुरु तो वही श्रेष्ठ और बुद्धिमान् माना जाता है जो माया-मल रहित ब्रह्म-तत्त्व को बतावे।

तूं मेरा हूँ तेरा, गुरु शिष कीया मंत।
दोनों भूले जात हैं, दादू विसरा कंत ॥ १२२ ॥

असद् गुरु-शिष्य मिलकर यह मंत्रणा कर लेते हैं—तू मेरा शिष्य है इसलिए मेरी प्रशंसा करके भेंट पूजादि से सेवा कराया कर और मैं तेरा गुरु हूँ, अत: तेरी प्रशंसा और भरण-पोषण मैं करूँगा। ऐसे गुरु शिष्य दोनों ही अपने प्रभु को विसार कर तथा अपने कर्त्तव्य को भूल कर जन्मादि संसार-चक्र में ही जाते हैं।

दुह दुह पीवे ग्वाल गुरु, शिष है छेली गाइ।
यह अवसर यों ही गया, दादू कह समझाइ ॥ १२३ ॥

जैसे ग्वाल बकरी और गोओं को चराने वन में जाता है, वह यदि उनका दूध वन में ही पी लेता है और दूध रहित पशु भी स्वामी को नहीं सँभलाता तो वह दोषी माना जाता है। वैसे ही जो गुरु शिष्यों से भेंट तो बारंबार लेकर सांसारिक सुख भोगता है किन्तु शिष्यों को ईश्वर भजन में नहीं लगाता, वह महा दोषी है। ऐसे गुरु शिष्यों का यह मानव शरीर रूप समय व्यर्थ ही चला जाता है।

शिष गोरू गुरु ग्वाल है, रक्षा कर कर लेइ।
दादू राखे जतन कर, आनि धणी को देइ ॥ १२४ ॥

जो गुरु रूप ग्वाल शिष्य-पशुओं की उत्तम उपदेश द्वारा काम-क्रोधादि रूप सिंहादि से रक्षा करके भेंट रूप 'कर' लेता है और ज्ञान प्राप्ति पर्यन्त संयमादि यत्नपूर्वक विषय-वासनाओं से रक्षा करते हुये ब्रह्म-चिन्तन में लगा कर तथा ब्रह्म का साक्षात्कार कराके अभेद रूप से ब्रह्म को ही दे देता है, वही गुरु भेंटादि लेने का अधिकारी होता है।

झूठे अंधे गुरु घणे, भरम दिढावें आइ।
दादू साचा गुरु मिले, जीव ब्रह्म हो जाइ ॥१२५ ॥

अपने कथन के समान न करने वाले, शास्त्र ज्ञान-नेत्रों से हीन घर-घर में आकर नाना प्रकार के सकाम अनुष्ठानादि द्वारा भ्रम को ही दृढ़ कराने वाले गुरु तो बहुत मिलते हैं किन्तु जब वेदार्थ का ज्ञाता और ब्रह्मनिष्ठ सच्चा गुरु मिलता है, तब ही जीव ब्रह्म को प्राप्त होता है।

झूठे अंध गुरु घणे, बंधे विषय विकार।
दादू साचा गुरु मिले, सन्मुख सिरजनहार॥ १२६॥

कहें कुछ और करें कुछ, ऐसे मिथ्यावादी, विचार-नेत्रों से हीन और विषय-विकारों में लिपायमान गुरु तो बहुत मिलते हैं किन्तु जब मन, वचन, कर्म से सच्चा भगवद् भक्त गुरु मिलता है, तब ही जीव को भजनादि साधन बता कर परमात्मा के सन्मुख करता है।

झूंठे अंधे गुरु घणे, भरम दिढावें काम।
बंधे माया मोह से, दादू मुख से राम॥ १२७॥

कपटी, कामांध, मायिक-मोह-बन्धन से बंधे हुये, केवल लोक दिखावे के लिए मुख से राम-राम कहने वाले और अपने स्वार्थ सिद्धि के लिए लोगों को भ्रम में डालकर अपने लौकिक काम कराने वाले असद्गुरु बहुत मिलते हैं।

झूंठे अंधे गुरु घणे, भटकैं घर-घर बार।
कारज को सीझे[1] नहीं, दादू माथे[2] मार॥ १२८॥

थोड़ी-२ बात के लिए मिथ्या बोलने वाले, लोभांध, सांसारिक नाना वस्तुओं की आशा लेकर उनकी याचना के लिए घर-घर के द्वारों पर भटकने वाले, गुरु तो बहुत मिलते हैं किन्तु उनसे कोई पारमार्थिक कार्य सिद्ध[1] नहीं होता। अत: ऐसे गुरु को दूर से ही त्याग[2] देना चाहिए।

बेखर्च व्यसनी

दादू भक्त कहावें आपको, भक्ति न जाने भेव।
सपने हीं समझे नहीं, कहां बसे गुरुदेव॥ १२९॥

भक्ति, ज्ञानादि धन तो नहीं है किन्तु उनके उपदेश रूप खर्च का जिन्हें व्यसन है, उनका परिचय दे रहे हैं—भक्ति के बाह्य चिन्हों के द्वारा नाना प्रकार के प्रपंच रच कर अपने को भक्त कहलाने का यत्न करते हैं और भक्ति के रहस्य को लेश मात्र भी नहीं जानते हुए भी भक्ति-रहस्य बताने वाले गुरु बनते हैं। भक्ति से प्राप्त होने वाले परमात्मदेव कहां बसते हैं, उनके क्या लक्षण हैं, यह तो वे स्वप्न में भी नहीं समझते, फिर भी उपदेश करते हैं।

भ्रम विध्वंस

भरम करम जग बंधिया, पंडित दिया भुलाइ।
दादू सद्गुरु ना मिले, मारग देइ दिखाइ॥ १३०॥

१३०-१३१ में भ्रम नष्ट कर रहे हैं—केवल शब्दार्थ जानने वाले विद्वानों ने, वास्तविक बोध न होने के कारण, जगत् को सकाम कर्मों में लगाकर ब्रह्म प्राप्ति का मार्ग भुला दिया। इससे जगत् के प्राणी सांसारिक भोग-वासना बन्धन में बँध गये। सद्गुरु मिले नहीं, सद्गुरु मिल जाते तब तो ब्रह्म प्राप्ति का यथार्थ साधन मार्ग बता देते और उसके द्वारा बन्धन कट जाता।

दादू पंथ बतावें पाप का, भरम कर्म विश्वास।
निकट निरंजन जै रहे, क्यों न बतावें तास ॥ १३१ ॥

स्वार्थी पंडित लोग भ्रमवश अपने स्वार्थ सिद्धि के लिए शक्ति आदि के पशु-बलि आदि देने का विधान बताकर पाप-कर्मों में ही दृढ़ विश्वास कराते हैं किन्तु जो सर्व-व्यापक होने से अत्यन्त समीप निरंजन ब्रह्म है, उसे क्यों नहीं बताते ? वे जानते ही नहीं या उसे बताने से स्वार्थ सिद्ध नहीं होता।

विचार

दादू आपा उरझे उरझिया, दीसे सब संसार।
आपा सुरझे सुरझिया, यहु गुरु ज्ञान विचार॥ १३२ ॥

अपने समान ही अन्य भासे, यह कह रहे हैं—जो व्यक्ति अपने देहादि अहंकार द्वारा तन, धन, विद्यादि में लिपायमान है, उसे संसार के सभी प्राणी लिपायमान दीखते हैं। जो अनात्म अहंकार से सुलझ जाता है अर्थात् देहादि अहंकार से निकल कर 'अहं ब्रह्म' इस आकार में परिणित हो जाता है तब उसे सब संसार सुलझा हुआ अर्थात् ब्रह्म रूप ही भासता है। यही गुरु-ज्ञान के विचार का फल है।

गुरुमुख कसौटी

साधू का अंग[1] निर्मला, तामें मल न समाइ।
परम गुरु परगट कहै, तातैं दादू ताइ[2] ॥ १३३ ॥

अन्त:करण को शुद्ध करने की प्रेरणा कर रहे हैं—साधक का अन्त:करण[1] निर्मल होना चाहिए, उसमें यदि पाप तथा कामादि दोष भरे होंगे तो वह ब्रह्म विचार में प्रवेश नहीं हो सकेगा। इसलिए परम गुरु प्रकट रूप से कहते हैं कि—पहले साधनों द्वारा तपा कर अन्त:करण को शुद्ध[2] कर लेना चाहिए।

चेतावनी

राम नाम गुरु शब्द से, रे मन पेल भरंम।
निहकरमी से मन मिल्या, दादू काट करंम॥ १३४ ॥

भ्रम दूर करने से लिये सावधान कर रहे हैं—अरे साधक ! राम नाम चिन्तन से अपने मन को शुद्ध और स्थिर बना कर गुरु के ज्ञान पूर्ण शब्दों के विचार से अज्ञान को हटा। इस प्रकार ही कर्म-बन्धन को काट कर हमारा मन निष्क्रिय ब्रह्म से मिला है।

सूक्ष्म मार्ग

दादू बिन पायन का पंथ है, क्यों कर पहुँचे प्राण।
विकट घाट औघट खरे, मांहिं शिखर असमान॥ १३५ ॥

१३५-१३६ में ब्रह्म प्राप्ति के हेतु सूक्ष्म साधन-मार्ग का परिचय दे रहे हैं—ब्रह्म प्राप्ति का हेतु साधन-पथ बाहर के पैरों से चलने योग्य नहीं है, उसमें तो विवेक और वैराग्य-पैरों से ही

गमन होता है। विवेक-वैराग्य पैर होने पर भी उस पथ में काम, क्रोधादिक पर्वत खड़े हैं जिनके प्रभाव रूप शिखर आकाश में स्थित स्वर्ग तक चले गये हैं अर्थात् देवता भी जिनके अधीन हैं। उन कामादि पर्वतों की वेग रूप घाटियाँ बड़ी विकट हैं, जिन्हें लांघना कठिन है। ऐसे मार्ग से प्राणी सहज ही परमात्मा के पास कैसे पहुँच सकता है ? इसका उत्तर देते हैं—

मन ताजी चेतन चढ़े, ल्यौं की करे लगाम।
शब्द गुरु का ताजणा, कोइ पहुंचे साधु सुजान॥ १३६ ॥

शुद्ध मन-अश्व पर अपने साधन में सावधान रहने वाला साधक चढ़े और ब्रह्माकार अखंड वृत्ति की लगाम लगावे तथा आत्म-ज्ञान से पूर्ण गुरु-शब्दों का चाबुक बना कर उक्त मार्ग में चलने से कोई २ बुद्धिमान् साधक संत ब्रह्म प्राप्ति रूप स्थान में पहुंच सकता है।

पारख लक्षण

साधों सुमिरण सो कह्या, जिहिं सुमिरण आपा भूल।
दादू गह गंभीर गुरु, चेतन आनँद मूल॥ १३७ ॥

स्मरण के परीक्षक संतों ने जो स्मरण का लक्षण कहा है सो बता रहे हैं—संतों ने उसी को वास्तविक स्मरण कहा है, जिस निष्काम ब्रह्म स्मरण से साधक अपने देहादिक सभी प्रकार के अहंकार को भूल कर, गंभीर ज्ञान वाले गुरु के उपदेश से अपने मूल स्थान चेतन आनन्द स्वरूप ब्रह्म ज्ञान को प्राप्त करके उसी का रूप हो जाएगा।

स्वार्थी परमार्थी

दादू आप सवारथ सब सगे, प्राण सनेही नांहि।
प्राण सनेही राम है, कै साधू कलि मांहिं॥ १३८ ॥

१३८-१४० में स्वार्थी-परमार्थी का परिचय दे रहे हैं—इस कलियुग में सब अपने स्वार्थ के सम्बन्धी हैं, सब अपने स्वार्थ सिद्धि के लिए ही प्रेम करते हैं, प्राणी के हित के लिए कोई भी स्नेह नहीं करता। प्राणी के कल्याणार्थ निस्वार्थ स्नेही तो एक निरंजन राम है या संत हैं।

सुख का साथी जगत सब, दुख का नाहीं कोइ।
दुख का साथी सांइयाँ, दादू सद्गुरु होइ॥ १३९ ॥

सांसारिक सुख भोगने के लिए तो जगत् के सभी साथी बन जाते हैं किन्तु जन्मादि दुःख मिटाने के लिए कोई भी साथी नहीं बनता। जन्मादि दुःख मिटाने के लिए तो भगवान् और सद्गुरु ही साथी बनते हैं।

सगे हमारे साधु हैं, शिर पर सिरजनहार।
दादू सद्गुरु सो सगा, दूजा धंध विकार॥ १४० ॥

हमारे सच्चे संबंधी तो संतजन ही हैं, वे सद्-शिक्षा द्वारा हमें सन्मार्ग में लगाकर पापों से बचाते रहते हैं और सिर पर सर्व शिरोमणि सृष्टि कर्त्ता प्रभु हैं, उनसे मिलाने वाले सद्गुरु हैं, सो भी

सच्चे सम्बन्धी हैं। दूसरे सांसारिक लोग तो अपने स्वार्थ सिद्धि के लिये सकाम कर्मों में लगाकर तथा विषय विकारों में डालकर परिणाम में दु:ख ही देते हैं।

दया निर्वैरता

दादू के दूजा नहीं, एकै आतम राम ।
सद्गुरु शिर पर साधु सब, प्रेम भक्ति विश्राम ॥ १४१ ॥

निर्वैरता रूप दया का परिचय दे रहे हैं—मेरे विचार में तो अपने आत्मस्वरूप राम के बिना अन्य कोई भी नहीं है, सभी आत्म स्वरूप हैं तब क्रूरता और वैर के पात्र कैसे हो सकते हैं, किन्तु फिर भी संसार के सब सन्त और सद्गुरु हमारे शिरोमणि हैं। संत शिक्षा द्वारा जीव को प्रेमाभक्ति देते हैं, सद्गुरु ब्रह्म-प्राप्ति रूप विश्राम दिलाते हैं।

उपजनि

दादू सुध बुध आतमा, सद्गुरु परसे आइ।
दादू भृंगी कीट ज्यौं, देखत ही हो जाइ ॥ १४२ ॥

१४२-१४५ में ब्रह्म भावना उत्पत्ति प्रकार बता रहे हैं—मल विक्षेप रहित विचारवान् जिज्ञासु सद्गुरु से आ मिले तो जैसे भृंगी से कीट मिल कर भृंगी के शब्द को ध्यान पूर्वक सुनता हुआ भृंग ही बन जाता है वैसे ही जो सद्गुरु शब्दों को ध्यानपूर्वक सुनता है तब देखते २ सद्गुरु बन जाता है। किन्तु जो कीट और साधक ध्यान पूर्वक नहीं सुनते वे भृंग और सद्गुरु नहीं बनते। कीट तो सूख कर मर जाता है और साधक जन्मादि चक्र में भ्रमण करता रहता है।

दादू भृंगी कीट ज्यौं, सद्गुरु सेती होइ ।
आप सरीखे कर लिये, दूजा नांहीं कोइ ॥ १४३ ॥

जैसे कीट भृंगी के शब्द को ध्यान पूर्वक सुनता है तो वह भृंग ही बन जाता है वैसे ही जो साधक स्थिर बुद्धि द्वारा सद्गुरु से ज्ञानोपदेश सुनते रहे हैं उनको सद्गुरुओं ने अपने समान ज्ञानी बना दिया है। उनकी दृष्टि में ब्रह्म-भिन्न कोई भी नहीं रहने दिया। वे अपने सहित सब संसार को ब्रह्म रूप ही देखने लगे थे।

दादू कच्छप राखे दृष्टि में, कूंजों के मन मांहिं।
सद्गुरु राखे आपणा, दूजा कोई नांहिं ॥ १४४ ॥

जैसे कछुवी अपने अंडों की रक्षा दृष्टि द्वारा करती है, क्रौंच पक्षी हिमालय में रक्खे अपने अंडों की रक्षा उनका मन में ध्यान रख कर करते हैं वैसे ही सद्गुरु शिष्यों की कामादि विपत्तियों से अपना ज्ञानोपदेश सुनाकर रक्षा करते हैं। अत: साधक के लिये संसार में सद्गुरु के समान कोई भी नहीं है।

बच्चों के माता पिता, दूजा नांहीं कोइ ।
दादू निपजे भाव से, सद्गुरु के घट होइ ॥ १४५ ॥

जैसे बच्चों को माता-पिता का ही आश्रय होता है, दूसरा कोई भी उनके विश्वास का पात्र नहीं होता। वैसे ही साधक का भी जब सद्गुरु के शरीर पर अडिग श्रद्धा भाव होता है तब अन्यों के वचनों से बहक कर गुरु के बताये हुये साधन को नहीं छोड़ता, उसी भाव के प्रताप से साधक में ब्रह्म भावना उत्पन्न होती है और उसके द्वारा यह ब्रह्म रूप ही हो जाता है।

बेपरवाही

एकै शब्द अनन्त शिष, जब सद्गुरु बोले।
दादू जड़े कपाट सब, दे कूंची खोले ॥ १४६ ॥

१४६-१४८ में सद्गुरु की निश्चिन्तता दिखा रहे हैं—सद्गुरु को शिष्य बनाने की चिन्ता नहीं होती किन्तु वे जब अपने मुख से एक शब्द भी बोलते हैं तो उस शब्दार्थ के प्रताप से अपने आप ही आकर अनन्त शिष्य हो जाते हैं। जब शिष्य भाव के कारण आते हैं तब सद्गुरु उनके कर्मकपाटों के लगे हुए संशय भ्रम रूप तालों को अपने आत्म-ज्ञान कूंची से खोलकर उन्हें कर्म-बन्धन से मुक्त कर देते हैं।

बिन ही किये होइ सब, सन्मुख सिरजनहार।
दादू कर कर को मरे, शिष शाखा शिर भार॥ १४७ ॥

माला तिलक वस्त्रादिक साम्प्रदायिक चिन्ह देकर शिष्य किये बिना ही सच्चे गुरु के शब्दार्थ के प्रभाव से सब शिष्य बन कर भगवद् भजन द्वारा भगवान के सन्मुख हो जाते हैं। कौन सच्चा गुरु शिष्य बना-बना कर शिष्य-प्रशिष्य शाखाओं का भार अपने शिर पर लेकर उनके असद् आचरण द्वारा होने वाली निन्दा के दु:ख से दुखी हो-हो कर मरेगा ?

सूरज सन्मुख आरसी, पावक किया प्रकास।
दादू सांई साधु बिच, सहजैं निपजे दास ॥ १४८ ॥

जैसे कोई मनुष्य आतसी शीशा सूर्य के सामने करता है तब उसमें सूर्य की किरण पड़ कर अग्नि प्रकट हो जाता है वैसे ही श्रेष्ठ सद्गुरु अपने उपदेश से जब प्राणी को भजन द्वारा भगवान् के सन्मुख करते हैं तब उस भक्त शिष्य के हृदय में प्रेमाभक्ति-किरण पड़ने से अनायास ही ज्ञानाग्नि प्रकट हो जाती है और ज्ञान द्वारा वह ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है।

मन इन्द्रिय निग्रह

दादू पंचों ये परमोध ले, इनहीं को उपदेश।
यहु मन अपणा हाथ कर, तो चेला सब देश॥ १४९ ॥

१४९-१५३ में मन इन्द्रिय निरोध विषयक विचार कर रहे हैं—पहले विषयों में दोष दर्शन द्वारा इन पंच ज्ञानेन्द्रियों को समझा कर संयम से निग्रह कर ले, फिर निग्रहीत ज्ञानेन्द्रियों को ही गुरु-

उपदेश द्वारा अन्तर्मुख करके यह अपना चंचल मन अपने अधीन करे, ऐसा करने से सब देश ही शिष्य हो जाता है।

अमर भये गुरु ज्ञान सौं, केते इहिं कलि मांहिं।
दादू गुरु के ज्ञान बिन, केते मर–मर जाहिं ॥ १५० ॥

इस कलियुग में मन इन्द्रियों को निग्रह करके गुरु ज्ञान द्वारा अपने आत्मा स्वरूप ब्रह्म को जानकर कितने ही जिज्ञासु अमर स्वरूप को प्राप्त हो गये हैं और गुरु-ज्ञान के धारण करे बिना कितने ही बारंबार मृत्यु को प्राप्त करके स्वर्ग नरकादि लोकों में जाते आते रहते हैं।

औषधि खाइ न पछ रहे, विषम व्याधि क्यों जाइ।
दादू रोगी बावरा, दोष वैद्य को लाइ ॥ १५१ ॥

रोगी औषधि तो खाता है किन्तु पथ्य नहीं रखता, तब उसका भयंकर रोग कैसे नष्ट हो ? रोग के न जाने में अपथ्य दोष तो रोगी का है फिर भी यदि रोगी वैद्य को दोष दे कि आप ठीक चिकित्सा नहीं करते तो समझो रोगी बुद्धिहीन है। वैसे ही जो साधक क्रिया रूप साधन तो करता है किन्तु मन इन्द्रियों को निग्रह नहीं करता और अपने मल, विक्षेप, आवरण नष्ट न होने का दोष गुरु को देता है तो समझो वह साधक बुद्धिहीन ही है।

वैद्य व्यथा कह देख कर, रोगी रहे रिसाइ।
मन मांहीं लीये रहै, दादू व्याधि न जाइ ॥ १५२ ॥

गुरु-वैद्य साधक-रोगी का विषयासक्ति रोग देख कर कहते हैं—विषय-वासना त्याग कर मन इन्द्रिय निग्रह करो, यह सुन कर साधक रोगी अपने मन में क्रोध करके ही रह जाता है, मुख से तो कुछ भी नहीं बोलता किन्तु विषय वासना को भी नहीं त्यागता। इसलिए उसका जन्म-मरण-रोग भी नहीं नष्ट होता।

दादू वैद्य विचारा क्या करे, रोगी रहे न साच ।
खाटा मीठा चरपरा, माँगे मेरा वाच[१] ॥ १५३ ॥

जब शिष्य-रोगी विषय-वासना परित्याग-पथ्य में पक्का नहीं रहता और कहता है, मेरी जीभ[१], मन तो बच्चे के समान नाना प्रकार के विषय भोग खट्टी मीठी वस्तुयें मांगता है तो फिर बताओ, इस अवस्था में विचार-शील गुरु-वैद्य भी क्या कर सकता है ?

गुरु-उपदेश

दुर्लभ दरशन साधु का, दुर्लभ गुरु उपदेश।
दुर्लभ करबा कठिन है, दुर्लभ परस अलेख ॥ १५४ ॥

१५४-१५७ में गुरु उपदेश विषयक विचार कर रहे हैं—सच्चे संत का दर्शन और सच्चे गुरु का उपदेश प्राप्त होना कठिन ही है। भाग्यवश उपदेश मिल जाये तो भी उसके अनुसार योगादि

साधन करना अति कठिन है। साधन हो जाय तो भी लेख-बद्ध न होने वाले परब्रह्म से मिलकर सदा अद्वैत स्थिति में रहना अत्यन्त ही कठिन है।

दादू अविचल[1] मंत्र, अमर[2] मंत्र, अखै[3]मंत्र, अभय[4] मंत्र, राम[5] मंत्र, निजसार[6]। सजीवन[7] मंत्र, सवीरज[8] मंत्र, सुन्दर[9] मन्त्र, शिरोमणि[10] मंत्र, निर्मल[11] मंत्र, निराकार[12] ॥ अलख[13] मंत्र, अकल[14] मंत्र, अगाध[15] मंत्र, अपार[16] मंत्र, अनन्त[17] मंत्र, राया[18]। नूर[19] मंत्र, तेज[20] मंत्र, ज्योति[21] मंत्र, प्रकाश[22] मंत्र, परम[23] मंत्र, पाया[24] ॥ उपदेश दीक्षा, (दादू गुरु राया) ॥१५५॥

१. दादू—दा=ज्ञान भक्ति आदि दैवी गुणों के प्रदाता। दू=अज्ञानादिक सभी दोषों के नाशक । जिज्ञासुओं को ही अविचल ब्रह्म का उपदेश किया जाता है। जो साधक अविचल २ जपता है, वह अविचल ब्रह्म स्वरूप को ही प्राप्त हो जाता है।

२. अमर मंत्र=सभी संसार मरण-शील है किन्तु इसमें गुप्त रूप से स्थित परब्रह्म मृत्यु आदि का भी शासक और अमर है। जो साधक अमर-अमर जपता है, वह भी अमर ब्रह्म को प्राप्त होता है।

३. अखै मंत्र=ब्रह्म कभी क्षय नहीं होता, सदा एक रस रहता है, इसलिए अक्षय है। अक्षय २ जपने से जापक अक्षय हो जाता है।

४. अभय मंत्र=सभी प्रकार के भय रहित होने से ब्रह्म अभय है। इसे जपने से निर्भय ब्रह्म को प्राप्त होता है।

५. राम मंत्र=दूध में घृत के समान संसार के प्रत्येक अणु में रमा हुआ होने से ब्रह्म राम है। जो राम-राम जपता है, वह भी रमने वाला राम ही हो जाता है।

६. निजसार=निज स्वरूप और विश्व का सार तत्त्व होने से ब्रह्म निजसार है। जो निजसार मंत्र को जपता है, वह निजस्वरूप को प्राप्त होकर विश्व का सार हो जाता है।

७. सजीवन मंत्र=सदा जीवित रहने से ब्रह्म सजीवन है। जो इसे जपता है, वह भी सजीवन ब्रह्म को प्राप्त होता है।

८. सवीरज मंत्र=निरतिशय बल वाला होने से ब्रह्म सवीर्य है। जो इसे जपता है, वह भी निरतिशय बल वाले ब्रह्म स्वरूप को पाता है।

९. सुन्दर मंत्र=जिसकी सुन्दरता से असुन्दर शरीरादि भी सुन्दर भासते हैं वही ब्रह्म सुन्दर है। इसे जपने वाला भी सुन्दर ब्रह्म को प्राप्त होता है।

१०. शिरोमणि मंत्र=सर्वोपरि होने से ब्रह्म शिरोमणि है। जो शिरोमणि मंत्र को जपता है वह भी शिरोमणि हो जाता है।

११. निर्मल मंत्र=अविद्यादि मल रहित होने से ब्रह्म निर्मल है। जो निर्मल मंत्र का जप करता है,

वह भी निर्मल ब्रह्म को प्राप्त होता है।

१२. निराकार=आकार रहित होने से ब्रह्म निराकार है। निराकार मंत्र का जप करने वाला भी निराकार ब्रह्म को प्राप्त होता है।

१३. अलख मंत्र=मन इन्द्रियों का अविषय होने से ब्रह्म अलख है। जो इसे जपता है, वह भी अलख ब्रह्म को प्राप्त होता है।

१४. अकल मंत्र=सभी प्रकार की कलाओं से रहित होने से ब्रह्म अकल है। जो अकल मंत्र को जपता है, वह भी अकल ब्रह्म को प्राप्त होता है।

१५. अगाध मंत्र=शास्त्र व संतों द्वारा भी थाह न पाने से ब्रह्म अगाध है। जो अगाध मंत्र जपता है वह भी अगाध ब्रह्म को प्राप्त होता है।

१६. अपार मंत्र=किसी भी प्रकार ब्रह्म का पार नहीं आता अत: ब्रह्म अपार है। जो अपार मंत्र जपता है, वह अपार ब्रह्म ही हो जाता है।

१७. अनन्त मंत्र=उत्पत्ति, नाशादि रहित होने से ब्रह्म अनन्त है। अनन्त मंत्र का जापक भी अनन्त ब्रह्म को प्राप्त होता है।

१८. राया=सबका स्वामी होने से ब्रह्म राजा है। जो राया मंत्र का जाप करता है, वह भी विश्व के राजा ब्रह्म को प्राप्त होता है।

१९. नूर मंत्र=ब्रह्म आत्मस्वरूप होने से नूर है। जो नूर मंत्र जपता है वह आत्मस्वरूप ब्रह्म को प्राप्त होता है।

२०. तेज मंत्र=निरतिशय प्रभाव सम्पन्न होने से ब्रह्म तेजरूप है जो तेज मंत्र का जाप करता है, वह भी निरतिशय प्रभाव रूप ब्रह्म को पाता है।

२१. ज्योति मंत्र=सूर्यादि ज्योतियों को भी ज्योति प्रदाता होने से ब्रह्म ज्योति स्वरूप है। ज्योति मंत्र का जापक भी ज्योतिस्वरूप ब्रह्म को प्राप्त होता है।

२२. प्रकाश मंत्र=ज्ञान रूप होने से ब्रह्म प्रकाश रूप है। प्रकाश मंत्र का जापक प्रकाश रूप ब्रह्म को प्राप्त होता है।

२३. परम मंत्र=सबसे उत्कृष्ट होने से ब्रह्म परम है। जो परम मंत्र का जाप करता है वह भी सबसे उत्कृष्ट ब्रह्म को प्राप्त करता है।

२४. पाया=व्यापक और आत्मस्वरूप होने से ब्रह्म साधकों को सभी स्थानों में प्राप्त हुआ है, अत: आत्मस्वरूप से पाया हुआ ही है। जो पाया मंत्र का जाप करता है वह भी उसे आत्मस्वरूप से प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार जो साधक गुरु से प्राप्त उपदेश द्वारा जिस भाव से ब्रह्म को जपता है उसी भाव से उसे प्राप्त हो जाता है। उपदेश दीक्षा (दादू गुरु राया)= उत्तम गुरु का दीक्षा रूप उपदेश ऐसा ही होता है।

जो साधक उक्त अविचल मंत्र को अर्थ भावना करते हुये जपेंगे वे कल्याण को प्राप्त होंगे।

दादू सब ही गुरु किये, पशु पंखी बन राइ ।
तीन लोक गुण पंच सौं, सब ही मांहि खुदाइ ॥१५६ ॥

पशु, पक्षी, वन पंक्ति आदि सभी उस महान् ईश्वर के रचे हुये हैं। तीन गुण और पंच भूतों से आदि सभी में ईश्वर निमित्त कारण चेतन तथा उपादान कारण माया रूप से विद्यमान है और कारण ब्रह्म ही उपास्य है, कार्य नहीं। अत: उक्त २४ मंत्रों द्वारा बताई हुई पद्धति के कारण ब्रह्म के लक्ष्यार्थ शुद्ध ब्रह्म की ही उपासना करनी चाहिए।

जो पहली सद्‌गुरु कह्या, सो नैनहुँ देख्या आइ।
अरस परस मिल एक रस, दादू रहे समाइ ॥ १५७ ॥

इति श्री गुरुदेव का अंग समाप्त ॥ १ ॥ सा. १५७।

जो सद्‌गुरु की प्राप्ति के समय परब्रह्म का स्वरूप अपने उपदेश द्वारा सद्‌गुरु ने बताया था, वही स्वरूप साधन द्वारा समाधि में आकर हमने अपने ज्ञान नेत्रों से अभेद रूप से देखा है और अब आपस में अन्तराय रहित एक रस मिल कर उसी में समा रहे हैं।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका श्री गुरुदेव का अंग समाप्त: ॥ १ ॥

अथ स्मरण का अंग २

गुरु से प्राप्त नाम के स्मरण विषयक विचार करने को स्मरण अंग कहने में प्रवृत्त हुये प्रथम मंगल कर रहे हैं—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत:।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक स्मरण साधना के विघ्नों से पार होकर स्मरण द्वारा परब्रह्म को प्राप्त होता है उन निरंजन राम, सद्‌गुरु और सब संतों को हम अनेक प्रणाम करते हैं।

एकै अक्षर पीव का, सोई सत कर जाणि ।
राम नाम सद्‌गुरु कह्या, दादू सो परवाणि ॥ २ ॥

राम नाम स्मरण-साधन की प्रामाणिकता बता रहे हैं—सजातीय, विजातीय, स्वगत भेद रहित, अविनाशी प्रभु का राम नाम स्मरण साधन सद्‌गुरु का कहा हुआ है, अत: उसी को सच्चा साधन जानकर करो। शास्त्र द्वारा भी वही प्रामाणिक सिद्ध होता है।

पहली श्रवण द्वितीय रसना, तृतीय हिरदै गाइ।
चतुर्थी चिन्तन भया, तब रोम-रोम ल्यौ लाइ ॥ ३ ॥

नाम स्मरण-साधन की पद्धति बता रहे हैं—नाम माहात्म्य सुनना, नाम-स्मरण साधना की प्रथमावस्था है। माहात्म्य सुनकर साधक साधारण जप में प्रवृत्त होता है। दूसरे को न सुनाई दे,

जो साधक उक्त अविचल मंत्र को अर्थ भावना करते हुये जपेंगे वे कल्याण को प्राप्त होंगे।

दादू सब ही गुरु किये, पशु पंखी बन राइ।
तीन लोक गुण पंच सौं, सब ही मांहि खुदाइ ॥१५६ ॥

पशु, पक्षी, वन पंक्ति आदि सभी उस महान् ईश्वर के रचे हुये हैं। तीन गुण और पंच भूतों से आदि सभी में ईश्वर निमित्त कारण चेतन तथा उपादान कारण माया रूप से विद्यमान है और कारण ब्रह्म ही उपास्य है, कार्य नहीं। अत: उक्त २४ मंत्रों द्वारा बताई हुई पद्धति के कारण ब्रह्म के लक्ष्यार्थ शुद्ध ब्रह्म की ही उपासना करनी चाहिए।

जो पहली सद्गुरु कह्या, सो नैनहुँ देख्या आइ।
अरस परस मिल एक रस, दादू रहे समाइ ॥ १५७ ॥

इति श्री गुरुदेव का अंग समाप्त ॥ १ ॥ सा. १५७।

जो सद्गुरु की प्राप्ति के समय परब्रह्म का स्वरूप अपने उपदेश द्वारा सद्गुरु ने बताया था, वही स्वरूप साधन द्वारा समाधि में आकर हमने अपने ज्ञान नेत्रों से अभेद रूप से देखा है और अब आपस में अन्तराय रहित एक रस मिल कर उसी में समा रहे हैं।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका श्री गुरुदेव का अंग समाप्त: ॥ १ ॥

अथ स्मरण का अंग २

गुरु से प्राप्त नाम के स्मरण विषयक विचार करने को स्मरण अंग कहने में प्रवृत्त हुये प्रथम मंगल कर रहे हैं—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत:।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक स्मरण साधना के विघ्नों से पार होकर स्मरण द्वारा परब्रह्म को प्राप्त होता है उन निरंजन राम, सद्गुरु और सब संतों को हम अनेक प्रणाम करते हैं।

एकै अक्षर पीव का, सोई सत कर जाणि।
राम नाम सद्गुरु कह्या, दादू सो परवाणि ॥ २ ॥

राम नाम स्मरण-साधन की प्रामाणिकता बता रहे हैं—सजातीय, विजातीय, स्वगत भेद रहित, अविनाशी प्रभु का राम नाम स्मरण साधन सद्गुरु का कहा हुआ है, अत: उसी को सच्चा साधन जानकर करो। शास्त्र द्वारा भी वही प्रामाणिक सिद्ध होता है।

पहली श्रवण द्वितीय रसना, तृतीय हिरदै गाइ।
चतुर्थी चिन्तन भया, तब रोम-रोम ल्यौ लाइ ॥ ३ ॥

नाम स्मरण-साधन की पद्धति बता रहे हैं—नाम माहात्म्य सुनना, नाम-स्मरण साधना की प्रथमावस्था है। माहात्म्य सुनकर साधक साधारण जप में प्रवृत्त होता है। दूसरे को न सुनाई दे,

ऐसे जिह्वा से जपना दूसरी अवस्था है। इसे ही उपांशु जाप कहते हैं। हृदय में चिन्तन करना तृतीयावस्था है, यही मानस जप कहलाता है। नाम में अखंड वृत्ति लगाने पर जब रोम-रोम से चिन्तन होने लगता है तब वह चतुर्थावस्था कहलाती है। इसमें दश इन्द्रियें और चतुष्टय अन्त:करण ये चौदह सब प्रकार भगवत् परायण हो जाते हैं। इस चौथी अवस्था का अन्तिम परिणाम जीव ब्रह्म की एकता ही होता है। इस प्रकार नाम-स्मरण साधना द्वारा संतों ने परब्रह्म को प्राप्त किया है। (चतुर्थी के स्थान में चतुर्दशी पाठ भी है।)

मन प्रबोध

दादू नीका नाम है, तीन लोक तत सार।
रात दिवस रटबौ करो, रे मन इहै विचार॥ ४॥

४-९ में मन को नाम स्मरण का उपदेश दे रहे हैं—स्वर्ग, मृत्यु, पातालादि सभी विश्व का सार तत्त्व जो परमात्मा है, उसकी प्राप्ति के सभी साधनों में नाम स्मरण ही अति श्रेष्ठ और सुगम साधन है। अत: हे मन! इस मनुष्य शरीर में रहते हुए विचार पूर्वक कामादि दोषों को त्याग कर निरन्तर नाम-जप किया कर।

दादू नीका नाम है, हरि हिरदै न विसार।
मूरति मन मांहीं बसे, श्वासैं श्वास सँभार॥ ५॥

नाम-स्मरण में देश कालादि नियम न होने से यह साधन सबके लिए अच्छा है। हृदय से हरि को न भूल, हरि की मूर्ति आत्म रूप से हृदय में स्थित है। श्वास-प्रश्वास के साथ स्मरण करते हुए हृदयस्थ हरि को देखने का यत्न कर।

श्वासैं श्वास सँभालतां, इक दिन मिल है आइ।
सुमिरण पैंडा सहज का, सद्गुरु दिया बताइ॥ ६॥

श्वास-प्रश्वास के साथ स्मरण करने से एक दिन अवश्य प्रकट रूप से हृदय में आकर प्रभु मिलेंगे। ब्रह्म प्राप्ति रूप सहजावस्था की प्राप्ति का मार्ग भी स्मरण ही है, यह हमारे सद्गुरु ने प्रथम ही कांकरिया तालाब पर बता दिया था।

दादू नीका नाम है, सो तू हिरदै राखि।
पाखंड प्रपंच दूर कर, सुन साधू जन की साखि॥ ७॥

यज्ञ-योगादि साधनों के साधक को पतन का भय रहता है, नाम-साधना के साधक को नहीं। इसलिए नाम-स्मरण उत्तम साधन है। संतों की साधन विषयक साखियें सुनकर उनके विचार द्वारा पाखंड प्रपंच को दूर करके तू वह नाम-स्मरण ही निरन्तर हृदय में रख।

दादू नीका नाम है, आप कहै समझाइ।
और आरंभ सब छाड़ि दे, राम नाम ल्यौ लाइ॥ ८॥

स्वयं भगवान् भी बारंबार अपने भक्तों को समझा-समझा कर कहते रहते हैं कि—''मेरे नाम चिन्तन द्वारा मेरे परायण रहने वाला भक्त ही मुझे प्रिय होता है।'' इस भगवद् वचन से भी नाम-स्मरण परम श्रेष्ठ साधन सिद्ध होता है। इसलिए जन्म-मरण रूप चक्र में फिराने वाले निषिद्ध कर्म, सकाम शुभकर्म आदि अन्य सभी आरंभों को त्याग कर राम नाम-स्मरण में ही अखंड वृत्ति लगा।

राम भजन का सोच क्या, करतां होइ सो होइ।
दादू राम सँभालिये, फिर बूझिये न कोइ ॥ ९ ॥

राम भजन के फल का, क्या विचार करना है ? भजन करने से जो होता है वही होगा अर्थात् राम ही प्राप्त होगा। राम भजन द्वारा सब संसार में राम को ही देख, सब को राम रूप देखने का अभ्यास हो जाने पर फिर कोई भी प्रश्न पूछने की आवश्यकता नहीं रह जाती है।

नाम चेतावनी

राम तुम्हारे नाम बिन, जे मुख निकसे और।
तो इस अपराधी जीव को–तीन लोक कित ठौर ॥ १० ॥

१०-११ में नाम-स्मरणार्थ सावधान कर रहे हैं—राम ! यदि आपके नाम से भिन्न पर-निन्दादि शब्द इस प्राणी के मुख से निकलते हैं तो यह बड़ा अपराध है। ऐसे अपराधी जीव को तीनों लोकों में भटकते रहने पर भी सुख का स्थान कहां है ? वह तो दुखी ही रहेगा।

छिन–छिन राम सँभालतां, जे जिव जाय तो जाय।
आतम के आधार को, नाहीं आन उपाय ॥ ११ ॥

क्षण-क्षण राम का स्मरण करो, यदि स्मरण करते समय प्राण प्रयाण का समय भी आ जाय तो भी कोई चिन्ता नहीं क्योंकि राम-स्मरण से भिन्न अन्य कोई भी ऐसा सुगम साधन नहीं है, जिसका आश्रय लेकर सर्व-साधारण आत्म-कल्याण करने में समर्थ हो सके।

स्मरण माहात्म्य

एक महूरत मन रहै, नाम निरंजन पास।
दादू तब ही देखतां, सकल करम का नाश ॥ १२ ॥

१२-१३ में नाम का माहात्म्य बता रहे हैं—यदि शुद्ध ब्रह्म के नाम में मन अभेद भाव से एक क्षण भी ब्रह्म में स्थिर हो जाय, तो तत्काल ही संपूर्ण संचित कर्मों का नाश हो जाता है।

सहजैं ही सब होइगा, गुण इन्द्री का नाश।
दादू राम सँभालतां, कटैं कर्म के पाश[१] ॥ १३ ॥

राम-नाम का निरंतर स्मरण करने से, निर्गुण ब्रह्म की प्राप्ति में बाधक त्रिगुण और उनके कार्य, अन्त:करण इन्द्रियों के सब विकारों का नाश अनायास ही हो जायगा तथा ज्ञान द्वारा कर्म के बन्धन[१] कट कर मुक्त हो जाएगा।

नाम चेतावनी

एक राम के नाम बिन, जीव की जलन न जाइ।
दादू केते पचि मुए, करि करि बहुत उपाइ ॥ १४ ॥

१४-१५ में नाम स्मरणार्थ सावधान कर रहे हैं—त्रिविध भेद शून्य निर्गुण राम के नाम-स्मरण बिना अन्य उपायों से जीव के त्रिविध ताप नष्ट नहीं होते। अनेक सकामी साधक यज्ञ व्रतादिक बहुत-से उपाय करते-करते मृत्यु को प्राप्त हो गये हैं किन्तु उन्हें अखंड ब्रह्मानन्द प्राप्त नहीं हो सका।

दादू एक राम की टेक गहि, दूजा सहज सुभाइ।
राम नाम छाड़ै नहीं, दूजा आवै जाइ ॥ १५ ॥

तुम तो निष्काम भाव से केवल निर्गुण राम की उपासना का ही दृढ़ निश्चय करो, लोक-सेवा, योग-क्षेम और विचारादि दूसरे साधन उसके अंग रूप होकर स्वाभाविक ही होते रहेंगे। राम नाम साधक को नामी की प्राप्ति कराये बिना मध्य में नहीं त्यागता और नाम स्मरण विहीन यज्ञव्रतादि करने वाले अन्य सकामी साधक जन्म-मरण रूप संसार में ही आते जाते रहते हैं।

नाम अगाधता

दादू राम अगाध है, परिमित नांहीं पार।
अवरण वरण न जाणिये, दादू नाम अधार ॥ १६ ॥

१६-१८ में नाम की अपारता का परिचय देते हुए नाम स्मरण की प्रेरणा कर रहे हैं—निरंजन राम का स्वरूप अथाह है, उसका कोई परिमाण नहीं, वह प्रमाण-जन्य ज्ञान का अविषय और रूपातीत है। वर्णों के समूह शब्दों से उसका साक्षात्कार नहीं होता। उस निरंजन राम का साक्षात्कार तो उसी के नाम स्मरण रूप निदिध्यासन का आश्रय लेने पर ही होता है।

दादू राम अगाध है, अविगत[1] लखै न कोइ।
निर्गुण सगुण का कहै, नाम विलम्ब न होइ ॥ १७ ॥

निरंजन राम का स्वरूप अपार है, उस मन इन्द्रियों के अविषय[1] का साक्षात्कार यज्ञ, व्रतादि बाह्य साधनों से तथा विवाद से कोई भी नहीं कर सकता। निर्गुण तथा सगुण बोधक शब्दों का आश्रय लेकर उसके विषय में क्या कहा जा सकता है, वह तो वाणी का अविषय है। यदि उसका साक्षात्कार करना है तो निष्काम भाव से नाम स्मरण में विलंब नहीं होना चाहिए।

दादू राम अगाध है, बेहद लख्या न जाइ।
आदि अंत नहिं जाणिये, नाम निरंतर गाइ ॥ १८ ॥

निरंजन राम का स्वरूप अथाह है, असीम है, नेत्रादि इन्द्रियों का अविषय है। उसका आदि

-अन्त अन्य किसी भी प्रकार नहीं जाना जा सकता। तो भी निष्काम भाव से प्रेम पूर्वक निरंतर नाम स्मरण करने से उसका साक्षात्कार हो जाता है, अत: निरंतर नाम स्मरण करो।

अद्वैत ब्रह्म

दादू राम अगाध है, अकल अगोचर एक ।
दादू नाम विलंबिये, साधू कहैं अनेक ॥ १९ ॥

१९-२१ में ब्रह्म की अद्वैतता दिखा रहे हैं—निरंजन राम का स्वरूप अपार, निराकार, इन्द्रियातीत, त्रिविध भेद शून्य अद्वैत है। उसके साक्षात्कार के लिए, उसी के नाम-स्मरण का आश्रय लेना चाहिए, यही अनेक संत कहते आ रहे हैं।

दादू एकै अलह राम है, समर्थ सांई सोइ ।
मैदे के पकवान सब, खातां होइ सु होइ ॥ २० ॥

अल्लाह, राम, समर्थ और सांई ये सब नाम उसी एक अद्वैत ब्रह्म के ही हैं और जैसे एक ही मैदा के अनेक पक्वान्न बनते हैं किन्तु सभी के खाने से क्षुधा निवृत्ति रूप अन्तिम फल सबका एक ही होता है, वैसे ही उक्त नामों का निष्काम भाव से स्मरण करने पर ब्रह्म प्राप्ति रूप एक ही फल होता है।

सगुण निर्गुण ह्वै रहे, जैसा है तैसा लीन ।
हरि सुमिरण ल्यौ लाइये, का जाणौं का कीन ॥ २१ ॥

ब्रह्म निर्गुण होने पर भी भक्त-भावना से सगुण भी भास जाता है। जिसके हृदय में जैसा भाव हो, उसी भाव से उस ब्रह्म में लीन होना चाहिए। उसकी प्राप्ति का सुगम साधन उसी का स्मरण है। अत: हरि स्मरण में ही अपनी वृत्ति स्थित करो। संत और सत्-शास्त्रों ने तो यही कहा है किन्तु फिर भी मैं नहीं जानता कि—यह सगुण निर्गुण विषयक विवाद आप लोग क्यों कर रहे हैं ? यह साखी सांभर में दो साधकों को समझाने के लिये कही थी, प्रसंग कथा-दृष्टांत सुधा-सिन्धु तरंग ८/१८७ में देखो।

नाम चित्त आवे सो लेय

दादू सिरजनहार के, केते नाम अनन्त ।
चित आवै सो लीजिये, यौं साधू सुमरैं संत ॥ २२ ॥

२२-२३ में किस नाम का और किस समय स्मरण करना चाहिए, इस प्रश्न पर कह रहे हैं-परमात्मा के कितने ही नाम हैं, उनका कोई अन्त नहीं और निष्काम भाव से स्मरण करने पर सभी का फल भगवान की प्राप्ति होता है। अत: जिस नाम से भी अपना मन चेतन-स्वरूप में आकर स्थिर हो जाय, उसी नाम का स्मरण करना चाहिए। सिद्ध, संत तथा साधक ऐसे ही स्मरण करते हैं।

दादू जिन प्राण पिंड हम कौं दिया, अंतर सेवैं ताहि।
जे आवै औसाण शिर, सोई नाम संबाहि ॥ २३ ॥

जिन परम कृपालु परमात्मा ने हमको यह शरीर दिया है और शरीर की स्थिरता के लिए प्राण प्रदान किया है, हम तो आन्तर वृत्ति से निरन्तर ही उसका भजन करते रहते हैं। यदि तुमसे ऐसा न हो सके तो तुम्हें जो भी अवसर मिलता है, उसी अवसर में ब्रह्म में वृत्ति स्थिर करने वाला जो भी नाम तुम्हें याद आ जाय, उसी का स्मरण करो।

चेतावनी

दादू ऐसा कौण अभागिया, कछू दिढावे और।
नाम बिना पग धरन कूं, कहो कहां है ठौर ॥ २४ ॥

२४-२५ में नाम की दृढ़तार्थ सावधान कर रहे हैं—भगवत् प्राप्ति के सभी साधनों में नाम की प्रधानता रहती है। फिर ऐसा कौन मंदभागी है, जो भगवद् नाम से रहित साधन का उपदेश देकर अनुचित बात दृढ़ करायेगा ? नाम के बिना तो नामी के धाम में पैर रखने को भी स्थान कहां मिलता है।

दादू निमष न न्यारा कीजिये, अंतर थैं उर नाम।
कोटि पतित पावन भये, केवल कहतां राम ॥ २५ ॥

प्रभु के नाम को अपने हृदय के भीतर से एक निमेष भी अलग नहीं करना चाहिए। केवल राम-नाम का स्मरण करके ही अमित पतित पवित्र होकर जन्मादि संसार से मुक्त हो गये हैं।

मन प्रबोध

दादू जे तैं अब जाण्या नहीं, राम नाम निज सार ।
फिर पीछे पछिताहिगा, रे मन मूढ़ गँवार ॥ २६ ॥

२६-२९ में मन को नाम-स्मरण विषयक शिक्षा दे रहे हैं—रे मूढ़ मन ! यदि तूने मनुष्य देह पाकर भी अपने कल्याण के साधन राम-नाम रूप परम तत्त्व को नहीं पहचाना तो तू निरा अनजान है और इस भूल के कारण अन्त में तुझे पश्चात्ताप ही करना होगा।

दादू राम सँभालि ले, जब लग सुखी शरीर ।
फिर पीछैं पछिताहिगा, जब तन मन धरै न धीर ॥ २७ ॥

जब तक शरीर को रोगों ने तथा जरावस्था ने नहीं घेरा है, तब तक सुख की स्थिति में ही राम-भजन को अपना लेना चाहिए। जब रोगादि से शरीर और चिन्तादि से मन अधीर हो जायगा तब कुछ भी न हो सकेगा, पश्चात्ताप ही होगा।

दुख दरिया संसार है, सुख का सागर राम ।
सुख सागर चलि जाइये, दादू तज बेकाम ॥ २८ ॥

संसार दु:ख-समुद्र है और राम सुख-सिन्धु है। अत: संसार में पटकने वाले दु:ख-प्रद व्यर्थ कार्यों को त्याग कर नाम स्मरण द्वारा सुख-सागर राम में ही लय होना चाहिए।

दरिया यहु संसार है, तामें राम नाम निज नाव ।
दादू ढील न कीजिये, यहु औसर यहु डाव ॥ २९ ॥

यद्यपि यह संसार दु:ख-समुद्र है तदपि इससे पार होने को सभी के पास राम-नाम रूप नौका अपनी ही है, इसका किराया नहीं देना पड़ता। इस मनुष्य शरीर रूप स्वर्ण अवसर में भले-बुरे का विचार करना रूप दाँव भी अच्छा आ गया है। अत: विचार करके शीघ्रातिशीघ्र राम-भजन को अपना लेना चाहिए।

स्मरण नाम नि:संशय

मेरे संशय को नहीं, जीवण-मरण का राम।
सपनैं ही जनि बीसरै, मुख हिरदै हरिनाम ॥ ३० ॥

अपना स्मरण-प्रेम बता रहे हैं—राम ! मेरे हृदय में ऐसा कोई संशय नहीं है कि—मेरा शरीर चिरकाल तक न रह सका तो मेरा कार्य अधूरा रह जायगा। चाहे यह शरीर चिरकाल तक रहे वा इसी क्षण गिर जाय, इसकी कोई चिन्ता नहीं। मेरी तो इच्छा है कि—हरिनाम को मुख और हृदय से स्वप्न के समय भी मैं न भूल सकूं।

स्मरण नाम विरह

दादू दुखिया तब लगै, जब लग नाम न लेहि।
तब ही पावन परम सुख, मेरी जीवनि येहि ॥ ३१ ॥

स्मरण के अभाव से क्लेश होता है, प्राणी तब तक ही दुखी है जब तक निष्काम भाव से निरंतर स्मरण नहीं करता। जब अपने मन को एकाग्र करके निष्काम भाव से निरंतर स्मरण करता है, तब पवित्र होकर परमसुख रूप ब्रह्म को प्राप्त होता है। हमारा तो जीवन ही ब्रह्म चिन्तन है।

स्मरण नाम पारख लक्षण

कछू न कहावै आपकौं, सांई कूं सेवै ।
दादू दूजा छाड़ि सब, नाम निज लेवै ॥ ३२ ॥

वास्तविक नाम स्मरण की परीक्षा का लक्षण कह रहे हैं—जब साधक अपने को भक्त, योगी आदि कहलाने का प्रयत्न न करके तथा मायिक प्रपंच को हृदय से हटा करके सत्य, ब्रह्म, राम आदि निज नाम स्मरण करते हुये भगवद् भक्ति करता है, तब उसका स्मरण वास्तविक स्मरण समझना चाहिए।

स्मरण नाम नि:संशय

जे चित चहुँटे राम सौं, सुमिरण मन लागै ।
दादू आतम जीव का, संशय सब भागै ॥ ३३ ॥

नाम स्मरण नि:संशय करना है, यह कह रहे हैं- यदि नाम स्मरण में मन लगा कर निरंतर राम के वास्तविक स्वरूप में चित्त-वृत्ति स्थिर हो जाय तो जीव के आत्म विषयक-आत्मा जड़ है वा

चेतन है, एक है वा अनेक है, ब्रह्म से भिन्न है वा अभिन्न है, इत्यादिक सभी संशय नष्ट हो जाते हैं।

स्मरण नाम चेतावनी

दादू पिव का नाम ले, तौ हि मिटे शिर साल।
घड़ी महूरत चालणां, कैसी आवे काल्हि ॥ ३४ ॥

नाम स्मरण के लिए सावधान कर रहे हैं—यदि परमात्मा का नाम स्मरण निष्काम भाव से निरंतर किया जाय तो प्राणी के जन्मादि दु:ख निश्चय नाश हो जाते हैं। अत: नाम स्मरण के लिए भविष्य काल का निर्णय न करके तुरन्त भजन में लग जाना चाहिए। क्योंकि हमें तो यह भी ज्ञात नहीं है कि अगली घड़ी वा अगले क्षण में हमारा शरीर रहेगा या नहीं, फिर आगामी दिन तक जीवित रह सकेंगे, ऐसी तो आशा ही कहां है ?

स्मरण बिना श्वास न ले

दादू औसर जीव तैं, कह्या न केवल राम।
अंतकाल हम कहेंगे, जम वैरी सौं काम ॥ ३५ ॥

३५-३६ में प्रति श्वास स्मरण की आज्ञा दे रहे हैं—हे प्राणी ! तूने मनुष्य शरीर पाकर भी युवावस्था के स्वर्ण अवसर में निष्काम भाव से अद्वैत राम के नाम का स्मरण नहीं किया। संतों के उपदेश करने पर भी कहता रहा—"अंतिम वृद्धावस्था में हम स्मरण कर लेंगे।" किन्तु याद रख उस अंतिम अवस्था में जब तेरे पर शत्रु यम का आक्रमण होगा, तब तू कुछ भी नहीं कर सकेगा। अत: अभी से प्रति श्वास हरि स्मरण कर।

दादू ऐसे मँहगे मोल का, एक श्वास जे जाइ।
चौदह लोक समान सो, काहे रेत मिलाइ ॥ ३६ ॥

तेरा एक श्वास भी जो जारहा है वह चौदह लोकों के मूल्य के समान है। प्रजा-पति कश्यप को चौदह लोकों का राज्य देने पर भी एक श्वास नहीं मिला था, यह प्रसिद्ध है। ऐसे बहु-मूल्य श्वासों को तू विषय-भोग रूप रेत में क्यों मिला रहा है ?

अमोल श्वास

सोइ श्वास सुजाण नर, सांई सेती लाइ।
करि साटा सिरजनहार सूं, महँगे मोल बिकाइ ॥ ३७ ॥

भजन में लगने से श्वास और भी बहुमूल्य हो जाते हैं, यह कह रहे हैं—वही नर बुद्धिमान् है जो अपने श्वासों को प्रभु-भजन में लगाता है। अत: हे प्राणी ! तू अपने श्वासों को हरि-स्मरण में लगाकर बहुमूल्य बना ले, फिर उनके बदले में परमात्मा से उसके वास्तविक स्वरूप का साक्षात्कार कर ले।

व्यर्थ जीवन

जतन करे नहिं जीव का, तन मन पवना फेरि।
दादू महँगे मोल का, द्वै दोवटी[१] इक सेर ॥ ३८ ॥

व्यर्थ जीवन का परिचय दे रहे हैं—जो अपने तन, मन और श्वासों को सांसारिक विषयासक्ति से बदल कर, तन को दीन दुखियों की सहायता और संत सेवा में, श्वासों को भगवद् भजन में, मन को आत्म-विचार में लगा कर अपने जीव के उद्धार का प्रयत्न नहीं करते, वे इस बहुमूल्य जीवन को दो धोती[१] तथा एक सेर अन्न के लिए व्यर्थ खो देते हैं अर्थात् उनका जीवन व्यर्थ है।

सफल जीवन

दादू रावत राजा राम का, कदे न विसारी नाँव ।
आतम राम सँभालिये, तो सुबस काया गाँव ॥ ३९ ॥

सफल जीवन का परिचय दे रहे हैं—प्राणी तू राजाओं के भी राजा निरंजन राम का नाम कभी न भूलना। नाम चिन्तन से शुद्ध और स्थिर चित्त होकर ज्ञान द्वारा आत्मा तथा राम का अभेद निश्चय करेगा, तब ही शरीर-ग्राम में राग द्वेषादि से रहित होकर आनंद से रह सकेगा। ऐसा जीवन ही सफल कहा जाता है।

निरंतर स्मरण

दादू अहनिश सदा शरीर में, हरि चिंतत दिन जाइ ।
प्रेम मगन लै लीन मन, अन्तरगति ल्यौ लाइ ॥ ४० ॥

४०-४५ में निरंतर स्मरण विषयक, विचार कर रहे हैं—दिन रात निरंतर आंतर वृत्ति से हरि भजन करते हुये जिनके दिन जाते हैं, वे ही संत मत से उत्तम माने जाते हैं। अत: प्रभु-प्रेम में निमग्न होकर अन्तर्मुख वृत्ति द्वारा निरंतर हरि स्मरण करते हुये मन को परमात्मा में ही लीन करना चाहिए।

निमष[१] एक न्यारा नहीं, तन मन मंझि समाइ।
एक अंग लागा रहै, ताको काल न खाइ ॥ ४१ ॥

एक पल[१] भी निरंजन राम के स्मरण से अलग न रहना चाहिए। उसका नाम तन के रोम-रोम में और मन में समाया हुआ रहना चाहिए। इस प्रकार निरंतर स्मरण द्वारा त्रिविध भेद शून्य अपने प्रिय प्रभु में ही जो लगा रहता है, वह काल का ग्रास न होकर ब्रह्म-स्वरूप ही हो जाता है।

दादू पिंजर पिंड शरीर का, सुवटा सहज समाइ ।
रमता सेती रम रहै, विमल विमल जश गाइ ॥ ४२ ॥

अविनाशी सौं एक ह्वै, निमष न इत उत जाइ।
बहुत बिलाई क्या करे, जे हरि हरि शब्द सुनाइ ॥ ४३ ॥

यदि शुक पक्षी का शरीर पिंजरे में रहे तो बहुत बिल्लियां भी उसके शरीर का क्या कर सकती हैं ? वैसे ही यदि साधक का मन निरंतर स्मरण द्वारा सहजावस्था में जाकर रमता राम से रमण करता रहे और उस पवित्र प्रभु का पवित्र यश-गान करता रहे, इस लोक और परलोक के भोगों में एक निमेष मात्र भी न जाय, निरंतर हरि-हरि शब्द उच्चारण करता हुआ अविनाशी ब्रह्म से मिलकर उससे अभेद हो जाय, तब एक मृत्यु तो क्या, बहुत मृत्युएँ भी उसका क्या कर सकती हैं ?

दादू जहाँ रहूं तहाँ राम सौं, भावै कंदलि[१] जाइ।
भावै गिरि परबत रहूं, भावै गृह बसाइ ॥ ४४ ॥
भावै जाइ जलहरि[२] रहूं, भावै शीश नवाइ।
जहाँ तहाँ हरि नाम सौं, हिरदै हेत लगाइ ॥ ४५ ॥

हे राम ! मेरी यह प्रार्थना है—मैं जहाँ भी रहूं वहां आपके चिन्तन में ही लगा रहूं। चाहे मुझे गुफा[१] में वा गिरि शिखर पर वा पर्वत के मध्य भाग में वा घर में वा जल-प्राय-प्रदेश[२] में ही रहना पड़े वा नीचे शिर और ऊपर पैर करके भी झूलना पड़े वा और भी जहां तहां नाना क्लेश उठाने पड़े तो भी कोई चिन्ता नहीं, किन्तु ऐसी कृपा करें कि मेरे हृदय का प्रेम निरन्तर आपके नाम में ही लगा रहे।

मन प्रबोध

दादू राम कहे सब रहत है, नख शिख सकल शरीर ।
राम कहे बिन जात है, समझी मनवा बीर ॥ ४६ ॥

४६-४९ में मन को स्मरण विषयक उपदेश कह रहे हैं—भैया मन ! तू मेरी यह बात निश्चय पूर्वक समझ ले—राम का स्मरण करने पर नख से शिखा पर्यन्त सब शरीर के इन्द्रियादि कुमार्ग में जाने से रुक जाते हैं और बिना स्मरण करे विधि का अतिक्रमण करके विषयों में दौड़ जाते हैं।

दादू राम कहे सब रहत है, लाहा मूल सहेत।
राम कहे बिन जात है, मूरख मनवा चेत ॥ ४७ ॥

निष्काम भाव से राम का स्मरण करने पर प्राणी का आयु रूप मूलधन विषय विकारों में नष्ट होने से रुक जाता है और स्मरण द्वारा अहंकार नष्ट होने से उस आयु से होने वाला शुभ कर्म का फल रूप लाभ भी नष्ट नहीं होता। राम के स्मरण बिना उक्त दोनों ही व्यर्थ नष्ट हो जाते हैं। अत: मूर्ख मन ! सावधान होकर राम का भजन कर।

दादू राम कहे सब रहत है, आदि अंत लौं सोइ।
राम कहे बिन जात है, यहु मन बहुरि न होइ ॥ ४८ ॥

राम-भजन करने से राम, जन्म से मरण पर्यन्त सर्वकाल में सहायक होकर साथ रहते हैं और राम-स्मरण न करने से यह प्राणी नाना दु:खों में पड़ता है। अत: हे मन ! यह मानव शरीर का स्वर्ण अवसर पुन: शीघ्र न मिलेगा, सचेत हो।

दादू राम कहे सब रहत है, जीव ब्रह्म की लार।
राम कहे बिन जात है, रे मन हो हुशियार ॥ ४९ ॥

निष्काम भाव से राम-भजन करने से आत्मज्ञान होकर सभी कर्मों का प्रवाह रुक जाता है और जीव ब्रह्म-भाव को प्राप्त हो जाता है। राम-भजन बिना प्राणी कर्मों के प्रवाह में बहता ही रहता है। अत: हे मन ! सावधान होकर शीघ्र निष्काम-भाव से राम-भजन में ही लग जा।

परोपकार

हरि भज साफल जीवना, पर उपकार समाइ।
दादू मरणा तहां भला, जहां पशु पंखी खाइ ॥ ५० ॥

जीवन-सफलता का हेतु बता रहे हैं—हरि भजन करते हुए परोपकार में लगने से ही जीवन की सफलता है। परोपकार में तो यहां तक कर्त्तव्य है कि—देह त्याग भी ऐसे स्थान में किया जाय, जहां शरीर को पशु-पक्षी भक्षण करके तृप्त हो सकें।

स्मरण

दादू राम शब्द मुख ले रहै, पीछै लागा जाइ।
मनसा वाचा कर्मना, तिहिं तत सहज समाइ ॥ ५१ ॥

५१-५२ में स्मरण का फल कह रहे हैं-राम शब्द के स्मरण को ही निज कल्याण का मुख्य साधन समझ कर धारण करना चाहिए और निरंतर स्मरण करते रहना चाहिए। मन, वचन, कर्म से निरंतर स्मरण करने पर स्मरण-कर्त्ता अनायास ही उसी राम तत्त्व में समा जाता है।

दादू रचि मचि लागे नाम सौं, राते माते होइ।
देखेंगे दीदार को, सुख पावेंगे सोइ ॥ ५२ ॥

जो अपने मन को राम-नाम में अभिन्न करके नाम-स्मरण में लगे हैं और राम में अनुरक्त होकर राम-प्रेम से मतवाले हुये रहते हैं, वे ब्रह्म का साक्षात्कार करके ब्रह्मानन्द को प्राप्त कर सकेंगे।

चेतावनी

दादू सांई सेवैं सब भले, बुरा न कहिये कोइ।
सारौं माँहीं सो बुरा, जिस घट नाम न होइ ॥ ५३ ॥

५३-५७ में स्मरणार्थ सचेत कर रहे हैं—जो भगवद् भजन में संलग्न हैं, वे चाहे किसी भी जाति के हों, उत्तम ही माने जाते हैं। उन्हें शास्त्र तथा संत कोई भी अधम नहीं बताते। जिसके हृदय में हरिनाम चिन्तन नहीं होता, वही संसार के सम्पूर्ण प्राणियों में अधम है।

दादू जियरा राम बिन, दुखिया इहिं संसार।
उपजै विनशै खप मरे, सुख दुख बारंबार ॥ ५४ ॥

राम-भजन बिना अज्ञानी प्राणी सुख के लिए नाना कार्य करते हुए भी दुखी ही रहते हैं, कर्माधीन उत्पन्न होते हैं और भोगों की प्राप्ति के लिए पच-पचकर क्षीण होते हैं। इस प्रकार बारंबार सांसारिक सुख दु:खों को प्राप्त करते हुये इस संसार में जन्मते मरते रहते हैं।

राम नाम रुचि ऊपजे, लेवे हित चित लाइ।
दादू सोई जीयरा, काहे जमपुरि जाइ ॥ ५५ ॥

यदि प्राणी के हृदय में राम-नाम-स्मरण की इच्छा प्रकट हो जाय और प्रेम पूर्वक मन से अखंड स्मरण को ही अपना ले, तो वही जीव जो बारंबार यम-यातना भोगता था, यमपुरी में नहीं जा सकता, मुक्त हो जायगा।

दादू नीकी बरियां आय करि, राम जप लीन्हा।
आतम साधन सोधि कर, कारज भल कीन्हा ॥ ५६ ॥

जिस समय में मनुज देह प्राप्त करके आत्म कल्याण का साधन राम-भजन विचार-पूर्वक निष्काम भाव से करते हुये भगवत् प्राप्ति रूप उत्तम कार्य सिद्ध हो जाय, वही श्रेष्ठ समय है। दादूजी से किसी ने पूछा था—आपका अवतार तो सतयुग के किसी उत्तम समय में होना चाहिए। उसका उत्तर इस साखी में दिया है।

दादू अगम वस्तु पानैं पड़ी, राखी मंझि छिपाइ।
छिन छिन सोइ संभालिये, मत वै बीसर जाइ ॥ ५७ ॥

मन इन्द्रियों के अविषय ब्रह्म को प्राप्त कराने वाली राम-नाम-स्मरण रूप वस्तु शास्त्र व संतों की कृपा से तुम्हारे हाथ लगी है। इससे प्राप्त होने वाली दिव्य शक्तियों को भीतर ही छिपा कर रक्खो, प्रकट करने से तुम्हारे भजन में विघ्न खड़ा हो जायगा। प्रतिक्षण भजन करते रहो और सदा सचेत रहो, कहीं प्रमादवश हृदय से हरि-स्मरण हट न जाय।

स्मरण महिमा नाम माहात्म्य

दादू उज्ज्वल निर्मला, हरि रँग राता होइ।
काहे दादू पचि मरे, पानी सेती धोइ ॥ ५८ ॥

५८-६४ में स्मरण महिमा और नाम माहात्म्य कह रहे हैं-हरि स्मरण रूप रंग में अनुरक्त होने से ही मन निर्मल होकर ज्ञान-प्रकाश को प्राप्त होता है। अत: साधक केवल तीर्थों के जल से ही शरीर को धो-धोकर परिश्रम न करे, हरि-स्मरण अवश्य करे।

शरीर सरोवर राम जल, माँहीं संयम सार।
दादू सहजैं सब गये, मन के मैल विकार ॥ ५९ ॥

शरीर ही तीर्थ सरोवर है, राम-नाम-स्मरण ही उसमें जल है, विश्व के सार तत्त्व ब्रह्म में मन का संयम करना ही स्नान है। उक्त तीर्थ-स्नान से नाना तीर्थों में भटके बिना सहज ही हमारे मन के संपूर्ण पाप और विकार नष्ट हो गये हैं।

दादू राम नाम जलं कृत्वा, स्नानं सदा जित: ।
तन मन आत्म निर्मलं, पंच-भू पापं गत: ॥ ६० ॥

राम-नाम को ही जल समझकर, निरंतर इन्द्रिय-दमन पूर्वक राम-नाम-स्मरण रूप स्नान करो। ऐसा करने से ही पंच विषयों की आसक्ति से होने वाले पाप नष्ट होकर साधक के तन, मन, बुद्धि आदि निर्मल होते हैं।

दादू उत्तम इन्द्री निग्रहं, मुच्यते माया मन:।
परम पुरुष पुरातनं, चिन्तते सदा तन: ॥ ६१ ॥

उत्तम साधक इन्द्रिय-निग्रह पूर्वक निरंतर पुरातन, परम पुरुष प्रभु का चिन्तन करते हैं, इसी से उनका मन मायिक प्रपंचों से मुक्त हो जाता है।

दादू सब जग विष भरा, निर्विष विरला कोइ ।
सोई निर्विष होयगा, जाके नाम निरंजन होइ ॥ ६२ ॥

संपूर्ण संसारी प्राणियों के हृदय भोग-वासना-विष से भरे हुये हैं। विषयाशाविष से रहित तो कोई विरला संत ही दीख पड़ता है। आगे भी जिसके हृदय में निरंजन नाम का निरंतर चिन्तन होता रहेगा, वही भोगाशा-विष से रहित हो सकेगा।

दादू निर्विष नाम सौं, तन मन सहजैं होइ ।
राम निरोगा करेगा, दूजा नाहीं कोइ ॥ ६३ ॥

राम-नाम-स्मरण से मन विषय वासना-विष से, ज्ञानेन्द्रिय अमर्यादा-विष से, कर्मेन्द्रिय व्यर्थ चेष्टा-विष से अनायास ही मुक्त हो जाते हैं। संपूर्ण आधि-व्याधियों का अत्यन्ताभाव निरंजन राम का नाम-स्मरण ही कर सकेगा। सर्वथा निरोग होने का ऐसा सुगम और श्रेष्ठ उपाय अन्य कोई भी नहीं है। अत: नाम-स्मरण निरंतर करना चाहिए।

ब्रह्म भक्ति जब ऊपजे, तब माया भक्ति विलाइ।
दादू निर्मल मल गया, ज्यूं रवि तिमिर नशाइ ॥ ६४ ॥

जैसे सूर्योदय होने पर अंधकार नष्ट हो जाता है, वैसे ही प्राणी के हृदय में परब्रह्म की भक्ति उत्पन्न होने पर मायिक प्रेम नष्ट हो जाता है और संपूर्ण विकार नष्ट होकर मन परम निर्मल बन जाता है।

मन हरि भांवरि

दादू विषय विकार सौं, जब लग मन राता ।
तब लग चित्त न आवही, त्रिभुवनपति दाता ॥ ६५ ॥

६५-६७ में मन को हरि से दूर करने वाले भ्रामण का परिचय दे रहे हैं :- जब तक मन विषय-विकारों में अनुरक्त होकर इन्द्रियों के साथ भ्रमण कर रहा है, तब तक मुक्ति प्रदाता त्रिलोकी के स्वामी परमेश्वर का ध्यान चित्त में नहीं आता।

दादू का जाणौं कब होइगा, हरि सुमिरण इकतार।
का जाणौं कब छाड़ि है, यहु मन विषय विकार॥ ६६॥

कुछ पता नहीं लगता कि—यह चंचल मन विषय-विकारों में भ्रमण करना छोड़ कर कब निरंतर हरि-स्मरण परायण हो सकेगा ?

है सो सुमिरण होता नहीं, नहीं सु कीजे काम।
दादू यहु तन यौं गया, क्यों करि पइये राम॥ ६७॥

जो अस्ति, भाति, प्रिय रूप से सर्वत्र व्याप्त सत्य ब्रह्म है, उसका तो मन से स्मरण हो नहीं रहा है और जो असत्य मायिक प्रपंच भ्रमवश भास रहा है उसके विषयों को प्राप्त करने के लिए यह मूर्ख मन ऐसे कपट कोपादि कार्य निरंतर कर रहा है जो श्रेष्ठ नहीं हैं। यह मानव देह का समय उक्त प्रकार से व्यर्थ ही चला गया। इस प्रकार के मन के भ्रमण से राम कैसे मिल सकते हैं ?

स्मरण महिमा नाम माहात्म्य

दादू राम नाम निज मोहनी, जिन मोहे करतार।
सुर नर शंकर मुनि जना, ब्रह्मा सृष्टि विचार॥ ६८॥

६८-७० में स्मरण महिमा और नाम माहात्म्य कह रहे हैं—मन को प्रभु पर मोहित करने के लिए राम-नाम-स्मरण रूप मोहनी-शक्ति सभी प्राणियों की निजी है और यह शक्ति मनुष्य, मुनिजन, देवता, शंकर और सृष्टि-कार्य विचार में संलग्न ब्रह्मा के सहित परमात्मा को भी मोहित करती है।

दादू राम नाम निज औषधी, काटे कोटि विकार।
विषम व्याधि तैं ऊबरे, काया कंचन सार॥ ६९॥

राम-नाम-स्मरण औषधी सभी प्राणियों की निजी है और सविधि सेवन से अनन्त कामादि विकारों को नष्ट करके प्राणी के सूक्ष्म शरीर को कंचन के समान शुद्ध कर देती है तथा विश्व के सार-तत्त्व ब्रह्म में मन को स्थिर करके जन्म-मरणादि भयंकर व्याधि से मुक्त कर देती है।

निर्विकार निज[१] नाम ले, जीवन इहै उपाइ।
दादू कृत्रिम काल है, ताके निकट न जाइ॥ ७०॥

मन को विषयाशादि विकारों से रहित करके निरंतर ही निर्विकार ब्रह्म के राम आदि स्वरूप-भूत आत्मा के नामों का चिन्तन करना चाहिए। इस संसार में अमर-जीवन प्राप्ति का सबसे सुगम और श्रेष्ठ यह एक ही उपाय है। ब्रह्म भिन्न माया कृत बनावटी ग्राम-देवादि उपास्य तो काल रूप हैं, उनके समीप भी नहीं जाना चाहिए।

(१ नाम तीन प्रकार के होते हैं—कर्मज, जैसे मधुसूदनादि; गुणज, जैसे—दयालु आदि और निज, जो गुण कर्म आदि से रहित स्वरूप भूत हो, जैसे ब्रह्म, रामादि)

स्मरण

मन पवना गहि सुरति सौं, दादू पावे स्वाद ।
सुमिरण मांहीं सुख घणा, छाड़ि देहु बकवाद ॥ ७१ ॥

७१-७६ में स्मरण विषयक विचार दिखा रहे हैं—मन, प्राण और बुद्धि वृत्ति का निरोध करके स्मरण करने से भजनानन्द प्राप्त होता है । एकाग्रता-पूर्वक स्मरण से विषयातीत अति आनंद मिलता है, यह हमें अनुभूत है । अत: व्यर्थ के वाद-विवादों को त्याग कर एकाग्रता-पूर्वक निरंतर हरि स्मरण ही करना चाहिए।

नाम सपीड़ा लीजिये, प्रेम भक्ति गुण गाइ ।
दादू सुमिरण प्रीति सौं, हेत सहित ल्यौ लाइ ॥ ७२ ॥

विरह-वेदना सहित ही राम-नाम उच्चारण करना चाहिए और प्रेमाभक्ति सहित राम के गुण-गान करने चाहिए। इस प्रकार प्रीति से स्मरण करते हुए अनन्य भक्ति से चित्त-वृत्ति राम में ही स्थिर करो।

प्राण कमल मुख राम कहि, मन पवना मुख राम ।
दादू सुरति मुख राम कहि, ब्रह्म शून्य निज ठाम ॥ ७३ ॥

मुख्यता करके प्राण संचार के साथ २ राम नाम में लगा रहे और हृदय कमल में भी राम नाम ध्वनि होती रहे, मुख से भी राम नाम उच्चारण होता रहे, मन से भी नाम स्मरण ही होता रहे, बुद्धि वृत्ति में भी मुख्यता करके राम नाम स्मरण विषयक विचार ही हों। इस प्रकार करते रहने से वृत्ति विकार-रहित होकर विकार-शून्य ब्रह्म में स्थिर हो जाती है और जीवात्मा ब्रह्म रूप निज-धाम को प्राप्त हो जाता है।

दादू कहतां सुनतां राम कहि, लेतां देतां राम।
खातां पीतां राम कहि, आत्म कमल विश्राम ॥ ७४ ॥

कहते, सुनते, लेते,देते, खाते, पीते आदि सभी कार्यों के साथ सर्वकाल राम का स्मरण होता रहता है, तभी जीवात्मा के हृदय कमल को शांति मिलती है।

ज्यों जल पैसे दूध में, ज्यों पाणी में लौंण ।
ऐसे आतम राम सौं, मन हठ साधे कौंण ॥ ७५ ॥

जैसे दूध में जल और जल में नमक मिल जाता है वैसे ही स्मरण द्वारा अपने मन को आत्माराम में लय करने का हठ कौन करता है ? ऐसा साधक कोई विरला ही होता है।

दादू राम नाम में पैसि कर, राम नाम ल्यौ लाइ।
यहु इकंत त्रय लोक में, अनत काहे को जाइ ॥ ७६ ॥

राम नाम-स्मरण रूप गुफा में प्रवेश करके तथा वृत्ति को सब ओर से हटा कर एक राम-नाम में ही लगाओ। तीनों लोकों में यह स्मरण-गुहा ही अति एकान्त है, इसे छोड़कर अन्य स्थानों में क्यों भटकते हो ? यह आमेर के भँवरे कूप में बैठने पर पंडित जगजीवनजी को कहा था। प्रसंग कथा दृष्टांत सु.सि.त. ११/१४९ में देखो।

मध्य

ना घर भला, न वन भला, जहां नहीं निज नाम।
दादू उनमनि मन रहै, भला तु[१] सोई ठाम ॥ ७७ ॥

मध्य मार्ग के साधनार्थ उत्तम स्थान घर है वा वन इस प्रश्न का उत्तर दे रहे हैं—न तो घर अच्छा और न वह वन ही, जहां निवास करते हुये निज प्रभु का नाम हृदय में न रहे। उत्तम तो[१] वही स्थान है जहां पर रहते हुये निरंजन राम के स्वरूप में चित्त वृत्ति की लय रूप उनमनी अवस्था बनी रहे।

नाम माहात्म्य

दादू निर्गुणं नामं मयी हृदय भाव प्रवर्ततं ।
भरमं करमं किल्विषं[१], माया मोहं कंपितं ॥ ७८ ॥
कालं जालं सोचितं, भयानक यम-किंकरं[२] ।
हर्षं मुदितं सद्‌गुरुं, दादू अविगत दर्शनं ॥ ७९ ॥

निर्गुण ब्रह्म नामार्थ स्वरूप ही है, जब हृदय नामार्थ में भावपूर्वक प्रवृत्त होता है तब भ्रम, कर्म, पाप[१] और मायिक मोह कंपायमान होकर भागने लगते हैं। काल के जाल को धारण करने वाले भयानक यमदूत[२] चिन्ता में पड़ जाते हैं। हृदय को हर्ष होता है, सद्‌गुरु प्रसन्न होते हैं और मन इन्द्रियों के अविषय ब्रह्म का साक्षात्कार होता है।

दादू सब सुख स्वर्ग पयाल[१] के, तोल तराजू बाहि[२]।
हरि सुख एक पलक का, ता सम कह्या न जाहि ॥ ८० ॥

स्वर्ग पाताल[१] आदि के संपूर्ण सुखों को और एक क्षण के भजनानन्द को विचार-तुला में रखकर[२] तोलें तो स्वर्गादि के संपूर्ण सुख भी हरि-स्मरण सुख के समान न हो सकेंगे।

स्मरण नाम पारख लक्षण

दादू राम नाम सब को कहे, कहिबे बहुत विवेक।
एक अनेकों फिर मिले, एक समाना एक ॥ ८१ ॥

८१-८२ में नाम-स्मरण-कर्त्ता की परीक्षा का लक्षण कह रहे हैं—यद्यपि राम-नाम का स्मरण करते तो सभी हैं किन्तु स्मरण करने में बड़ा रहस्य है। एक साधक तो स्मरण करके भी सकाम होने से पुन: अनेक विषयों में जा मिलता है और एक विवेक-पूर्वक निष्काम भाव से स्मरण करने से अन्त में त्रिविध भेद-शून्य एक ब्रह्म में ही मिलता है।

दादू अपणी अपणी हद्द में, सब को लेवे नांउँ।
जे लागे बेहद्द सौं, तिनकी मैं बलि जांउँ ॥ ८२ ॥

सभी प्राणी अपने-अपने समाज, धर्म, समयादि की सीमा में बँधे रहकर तथा परमात्मा को भी स्वपक्षानुकूल ससीम मान कर नाम-स्मरण करते हैं, वे भी ठीक ही हैं। किन्तु मैं तो उन्हीं महापुरुषों की बलिहारी जाता हूँ जो सभी प्रकार से निष्पक्ष रहते हुये निरंतर असीम परमात्मा के नाम-स्मरण में लगे हैं।

स्मरण नाम अगाधता

कौण पटंतर[1] दीजिये, दूजा नाहीं कोइ ।
राम सरीखा राम है, सुमिरे ही सुख होइ ॥ ८३ ॥

८३-८४ में नाम स्मरण के फल की अपारता बता रहे हैं—राम-नाम-स्मरण के समान[१] अन्य साधन कोई भी नहीं है, अत: उसे किसकी उपमा दी जाय, और उसके नामी राम के समान भी राम ही है। राम-नाम-स्मरण करने पर ही अखंडानन्द रूप राम प्राप्त होता है।

अपनी जाणे आप गति, और न जाणे कोइ ।
सुमिर सुमिर रस पीजिये, दादू आनँद होइ ॥ ८४ ॥

अपने नाम-स्मरण की महिमा का विस्तार तो स्वयं राम ही जानता है, अन्य कोई भी नहीं जान सकता। स्मरण-महिमा व फल की थाह लेने की अभिलाषा त्याग कर प्रतिक्षण नाम-स्मरण करते हुये भगवत्-प्रेम-रस का पान करते रहना चाहिए, तभी ब्रह्मानन्द प्राप्त होगा।

करणी बिना कथणी

दादू सब ही वेद पुराण पढ़ि, नेटि[1] नाम निर्धार ।
सब कुछ इन्हीं मांहिं है, क्या करिये विस्तार ॥ ८५ ॥

कर्त्तव्य-रहित कथन की व्यर्थता बता रहे हैं—संपूर्ण वेद पुराणादि के पढ़ लेने पर भी अन्ततः[१] यही निर्णय होता है कि—भगवत् नाम-स्मरण ही कर्त्तव्य है। इन भगवत् नामों के स्मरण से सकामियों को अर्थ, धर्मादि और निष्कामियों को चित्त निर्मलता से मुक्ति पर्यन्त सभी कुछ प्राप्त हो जाता है। अत: केवल कथन करने के विस्तार में ही न पड़कर नाम-स्मरण भी करना चाहिए।

नाम अगाधता

पढ़-पढ़ थाके पंडिता, किनहुँ न पाया पार ।
कथ-कथ थाके मुनिजना, दादू नाम अधार ॥ ८६ ॥

८६-८७ में नाम महिमा की अपारता कह रहे हैं—पंडित जन वेदादि शास्त्रों का अध्ययन और मुनिजन भगवत्-महिमा का कथन करते २ थक गये किन्तु कोई भी उक्त साधनों द्वारा निरंजन ब्रह्म को प्राप्त न कर सका। भगवत् प्राप्ति के लिए अन्त में सभी को नाम का आधार लेना पड़ता है।

निगम हि अगम विचारिये, तऊ पार न पावे ।
तातैं सेवक क्या करे, सुमिरण ल्यौ लावे ॥ ८७ ॥

वेद के द्वारा विचार करने पर भी माया से परे अगम ब्रह्म का स्वरूप नाम-स्मरण रूप निदिध्यासन के बिना प्राप्त नहीं हो सकता। इसलिए ब्रह्म-साक्षात्कार की इच्छावाला साधक

वेदादि शास्त्रों का अत्यधिक विचार करके क्या करेगा ? उसे निरंतर नाम-स्मरण में ही अपनी वृत्ति लगानी चाहिए।

कथनी बिना करणी।

दादू अलिफ[1] एक अल्लाह का, जे पढ़ जाणै कोइ ।
कुरान कतेबां इल्म[2] सब, पढ़कर पूरा होइ ॥ ८८ ॥

यदि त्रिविध भेद-शून्य ब्रह्म के वाचक[1] एक अक्षर को पढ़ने की युक्ति जो कोई जानता है तो वह वेद, कुरानादि संपूर्ण पुस्तकों के ज्ञान[2] के सार को पढ़कर पूर्ण ब्रह्म को प्राप्त करके ब्रह्म-रूप हो जाता है।

दादू यहु तन पिंजरा, माँहीं मन सूवा ।
एक नाम अल्लाह का, पढ़ हाफिज[1] हूवा ॥ ८९ ॥

हमारा यह शरीर ही पिंजरा है, मन ही इसमें शुक पक्षी है, वह त्रिविध भेद-शून्य परब्रह्म के नाम को पढ़कर कुरान कंठस्थ करने वाले[1] तुम्हारे शुक पक्षी के समान हो गया है। अब हमें तुम्हारे शुक पक्षी की आवश्यकता नहीं रहीं।

अकबर बादशाह अपने कुरान कंठस्थ वाले तोते को महाराज की भेंट करने लगा था तब उसे ही यह साखी कही थी। प्रसंग कथा. दृ.सु.सि. त. ११/१२ में देखो।

स्मरण नाम पारख लक्षण

नाम लिया तब जाणिये, जे तन मन रहै समाइ।
आदि अंत मधि एक रस, कबहूं भूल न जाइ ॥ ९० ॥

नाम स्मरण करने वाले की परीक्षा का लक्षण कह रहे हैं-जब स्मरण करते २ नाम शरीर के रोम २ में तथा मन की प्रत्येक स्थिति में समा जाय और त्रिकाल में एक रस रहने वाले ब्रह्म को भूल कर संसारिक विषयों में कभी न जाय, तब जानना चाहिए कि इस व्यक्ति ने वास्तविक नाम-स्मरण किया है।

विरह पतिव्रत

दादू एकै दशा अनन्य की, दूजी दशा न जाइ।
आपा भूलै आन सब, एकै रहै समाइ ॥ ९१ ॥

अनन्य भक्त की निष्ठा कह रहे हैं—भगवद् वियोगी अनन्य भक्त की भगवत्-परायणता रूप एक ही अवस्था में रहती है। उसका मन भगवद्-विमुखता रूप दूसरी अवस्था में नहीं जाता। वह अपने शरीरादि अहंकार को तथा अन्य संपूर्ण मायिक प्रपंच को भूल कर एक परब्रह्म के चिन्तन में ही समाया हुआ रहता है।

स्मरण विनती

दादू पीवे एक रस, बिसरि जाइ सब और ।
अविगत यहु गति कीजिये, मन राखो इहि ठौर ॥ ९२ ॥

९२-९३ में निरंतर स्मरणार्थ विनय कर रहे हैं—हे मन इन्द्रियों के अविषय प्रभो ! हम सम्पूर्ण मायिक प्रपंच को भूल कर निरंतर आपके अद्वैत स्वरूप-चिन्तन-रस का ही पान करते रहें। यह रस-पान रूप गति हमारी निरंतर बढ़ती ही रहे तथा हमारे मन को निरंतर इस अद्वैत स्थिति-स्थान में ही रखने की कृपा करें।

आतम चेतन कीजिये, प्रेम रस पीवे।
दादू भूले देह गुण, ऐसैं जन जीवे ॥ ९३ ॥

विषयों से विकल बुद्धि को विषय-विमुख करके, इस प्रकार सावधान करें, जिससे वह शरीर में आसक्ति आदि देह-गुणों को भूलकर निरंतर प्रेम-पूर्वक आपके स्मरण-रस का ही पान करती रहे। उक्त प्रकार से ही हम आपके जन, जीवन धारण कर सकें ऐसा अनुग्रह आप हम पर अवश्य करें।

स्मरण नाम अगाध

कहि कहि केते थाके दादू, सुनि सुनि कहु क्या लेइ।
लौंण मिले गल पाणियाँ, ता सम चित यौं देइ ॥ ९४ ॥

९४-९५ में नाम-स्मरण की महिमा अपार है, यह कह रहे हैं—कितने ही पंडित ब्रह्म-विषयक प्रवचन करते २ थक गये किन्तु कथन मात्र से ही उन्हें ब्रह्म प्राप्त न हो सका। तब तुम ही कहो—केवल बारंबार सुनने मात्र से ही वह कैसे मिल सकेगा ? वह तो जैसे जल में नमक गलकर मिलता है, वैसे ही नाम-स्मरण द्वारा मन को उसमें मिलाने से ही प्राप्त होगा।

दादू हरि रस पीवतां, रती विलंब न लाइ।
बारंबार सँभालिये, मत वै बीसरि जाइ ॥ ९५ ॥

हरि-नाम-स्मरण रस के पान करने में किंचित् मात्र भी विलंब न करके अभी से आरंभ कर देना चाहिए और प्रतिक्षण स्मरण करते हुए अति सावधान रहना चाहिए कि कहीं चित्त से स्मरण हट न जाय।

स्मरण नाम विरह

दादू जागत सपना ह्वै गया, चिन्तामणि जब जाइ।
तब ही साचा होत है, आदि अंत उर लाइ ॥ ९६ ॥

९६-१०१ में नाम-स्मरण वियोग-स्थिति का परिचय दे रहे हैं—हरि-नाम-चिन्तन-चिन्तामणि जब हृदय से हट जाती है तब हमारा व्यावहारिक सत्य जीवन जाग्रत भी प्रातिभासिक स्वप्न-समान मिथ्या प्रतीत होने लगता है। यह जीवन तभी सच्चा हो सकता है जब जन्म से मरण-पर्यन्त हरि-नाम-स्मरण में ही लगाया जाय।

नाम न आवे तब दुखी, आवे सुख संतोष।
दादू सेवक राम का, दूजा हरष न शोक ॥ ९७ ॥

जब तक निरंजन राम का नाम हृदय में आकर स्थिर नहीं होता, तब तक ही प्राण दुःखी

रहता है और जब नाम-चिन्तन हृदय में आकर स्थिर हो जाता है तब संतोष होकर भजनानन्द प्राप्त होता है। उस अवस्था में राम-भक्त को राम-भजन से भिन्न सांसारिक पदार्थों के संयोग-वियोग से हर्ष शोकादि नहीं होते।

मिलै तो सब सुख पाइये, बिछुरे बहु दुख होइ।
दादू सुख दुख राम का, दूजा नाहीं कोइ ॥ ९८ ॥

यदि हृदय में राम-नाम-स्मरण की स्थिति प्राप्त हो जाय, तो प्राणी को सभी स्थलों में ब्रह्मानंद प्राप्त हो जाता है और हृदय में स्मरण न रहने से नाना दु:ख आ घेरते हैं। विचार करके देखा जाय तो राम-स्मरण के संयोग-वियोग के बिना सुख-दु:ख का अन्य कोई भी हेतु नहीं ज्ञात होता।

दादू हरि का नाम जल, मैं मीन ता मांहिं।
संग सदा आनन्द करे, विछुरत ही मर जांहिं ॥ ९९ ॥

हम हरि-नाम-स्मरण जल के मीन हैं, इस जल के संयोग से ही सदा आनन्दित रहते हैं। जैसे जल बिना मच्छी मर जाती है वैसे ही हम भी हरि-नाम-स्मरण बिना जीवित नहीं रह सकते।

दादू राम विसार कर, जीवें किहिं आधार।
ज्यौं चातक जल बूंद को, करे पुकार पुकार ॥ १०० ॥

राम का अनन्य भक्त राम को भूलकर, अन्य किस के आधार-पर जीवित रह सकता है ? वह तो जैसे चातक पक्षी स्वाति बिन्दु के लिए पुकारता है, वैसे ही भगवत्-साक्षात्कारार्थ पुकार-पुकार कर प्रार्थना करता रहता है।

हम जीवें इहिं आसिरे, सुमिरण के आधार।
दादू छिटके हाथ तैं, तो हमको वार न पार ॥ १०१ ॥

हम तो इस हरि-नाम-स्मरण का आश्रय लेकर, हरि के आधार पर ही सुखपूर्वक जीवित हैं। यदि हमारे हृदय-हाथ से राम-नाम-स्मरण हट जाये तो न हमें मायिक सुख ही सुखी कर सकेंगे और न माया पार का ब्रह्मानन्द ही मिलेगा। अत: सुख का साधन हरि-स्मरण ही है।

पति-व्रत निष्काम स्मरण

दादू नाम निमित राम हि भजे, भक्ति निमित भज सोइ।
सेवा निमित सांई भजे, सदा सजीवन होइ ॥ १०२ ॥

पतिव्रत पूर्वक निष्काम स्मरण पर बल दे रहे हैं—जो अनन्यता-पूर्वक सांसारिक सभी कामनाओं को त्याग कर हृदय में निरन्तर राम-नाम-स्मरण स्थिर रखने के निमित्त वा प्रेम-भक्ति को स्थायी बनाने के निमित्त वा लोक-सेवा को ही निमित्त बनाकर भजन करते हैं, वे सभी भक्त अन्त में मुक्ति रूप संजीवनावस्था को ही प्राप्त होते हैं। अत: सभी प्रकार अनन्यता और निष्काम-भाव से ही स्मरण करना चाहिए।

नाम सम्पूर्णता

दादू राम रसायन नित चवे, हरि है हीरा साथ।
सो धन मेरे सांइयाँ, अलख खजाना[१] हाथ ॥ १०३ ॥

किसी ने प्रश्न किया था- आपके पास कोई रसायन, हीरा, धन या कोई स्थायी कोश है क्या, जिससे शिष्यों के सहित अपना योग-क्षेम चला रहे हो ? १०३-१०८ में उसी का उत्तर देते हुये नाम को ही सब कुछ बता रहे हैं—हमारे पास राम-नाम-रसायन है, उसका स्मरण-स्राव निरन्तर होता रहता है। हरि-नाम-हीरा है। अन्य भी जो संसारिक धन हैं, ये भी मेरे भगवत्-नाम से ही हैं और मन इन्द्रियों के अविषय ब्रह्म का नाम ही मेरा स्थायी कोश[१] है।

हिरदै राम रहे जा जन के, ताको ऊरा[१] कौन कहै।
अठ सिधि, नौ निधि ताके आगे, सन्मुख सदा रहै ॥ १०४ ॥

जिसके हृदय में राम-नाम-धन है, उसे अल्प धनी[१] कौन कह सकता है ? उसके तो सदा—१ अणिमा २ महिमा ३ गरिमा ४ लघिमा ५ ऐश्वर्य ६ वशित्व ७ प्राप्ति और ८ प्राकाम्य, ये अष्ट सिद्धियाँ तथा १ कुन्द २ महापद्म ४ शंख ५ मकर ६ कच्छप ७ मुकुन्द ८ नील ९ वर्चः, ये नवनिधियाँ सम्मुख हाथ जोड़े खड़ी रहती हैं।

वंदित तीनों लोक बापुरा, कैसे दरश लहै ।
नाम निसान सकल जग ऊपर, दादू देखत है ॥ १०५ ॥

नाम-स्मरण-धन के धनी भक्त के लिये बेचारे तीनों लोक वन्दना करते हुये प्रभु से प्रार्थना कर रहे हैं—प्रभो ! आपके परम भक्त का दर्शन हमें कैसे होगा ? हम तो देखते हैं—नाम-स्मरण धन का झंडा ही सम्पूर्ण संसार में सबसे ऊपर फहरा रहा है।

दादू सब जग नीधना, धनवंता नहिं कोइ ।
सो धनवंता जानिये, जाके राम पदारथ होइ ॥ १०६ ॥

सभी संसार निर्धन है, नाम-स्मरण-धन के बिना बड़े २ धनी भी आशा-तृष्णा युक्त होने से परमार्थ-दृष्टि से धनी नहीं कहला सकते। अत: धनवान् तो उसे ही जानना चाहिए, जिसके हृदय में राम-नाम-स्मरण रूप अमूल्य पदार्थ हो।

संगहि लागा सब फिरे, राम नाम के साथ ।
चिन्तामणि हिरदै बसे, तो सकल पदारथ हाथ ॥ १०७ ॥

जिस भक्त की चित्त—वृत्ति निरंतर राम-नाम के साथ रहती है, सम्पूर्ण ऐश्वर्य उसके पीछे लगे फिरते हैं। नाम-स्मरण चिन्तामणि जिसके हृदय में बस जाती है, उसे संसार के सभी पदार्थ हस्तगत हो जाते हैं।

दादू आनँद आतमा, अविनाशी के साथ ।
प्राणनाथ हिरदै बसे, तो सकल पदारथ हाथ ॥ १०८ ॥

यदि बुद्धि अविनाशी राम के नाम-स्मरण के साथ रहे तो उसके लिये संसार में आनन्द ही आनन्द है और यदि हृदय में प्राणनाथ परमेश्वर का ध्यान स्थिर हो जाय, तब तो सभी अमूल्य पदार्थ रूप धन उसके हाथ में ही आ जाते हैं। फिर ऐसे भक्त को अपने योग-क्षेम की चिन्ता ही कहाँ रह जाती है ?

पुरुष प्रकाशित

दादू भावे तहां छिपाइये, साच न छाना होइ।
शेष रसातल, गगन धू[१], परकट कहिये सोइ॥ १०९॥

१०९-११५ में कहते हैं प्रसिद्ध भक्त छिपता नहीं—सच्चे भक्तों को चाहे जहां छिपावें, फिर भी वे अपनी सच्ची साधना के प्रभाव से छिपे नहीं रह सकते। देखो, शेषजी पाताल में और ध्रुव[१], नभ में हैं तो भी सब संसार में प्रसिद्ध भक्त कहे जाते हैं।

दादू कहां था नारद मुनिजना, कहां भक्त प्रहलाद।
परकट तीनों लोक में, सकल पुकारैं साध॥ ११०॥

नारदादि प्रसिद्ध २ मुनिजन और भक्त प्रहलाद किस समय में हुये थे, किन्तु अभी तक वे तीनों लोकों में अति प्रसिद्ध हैं और उनके पीछे होने वाले सभी संत उन्हें आदर्श भक्त मानकर उनका यश-गान करते आ रहे हैं।

दादू कहाँ शिव बैठा ध्यान धरि, कहां कबीरा, नाम ।
सो क्यों छाना होयगा, जे रु कहेगा राम॥ १११॥

शिवजी कहां ध्यानस्थ हैं, कबीर तथा नामदेव अब कहां दीख पड़ते हैं किन्तु उन्हें प्राय: सभी सज्जन जानते हैं। इससे सिद्ध होता है कि—जो राम-नाम-स्मरण करेगा, वह छिपा नहीं रह सकेगा।

कहां लीन शुकदेव था, कहां पीपा, रैदास।
दादू साचा क्यों छिपे, सकल लोक परकास॥ ११२॥

शुकदेव मुनि कब भक्ति द्वारा भगवान् में लीन हुये थे, पीपा और रैदास का शरीर अब कहां है ? किन्तु वे सच्चे भक्त थे, अत: छिप कैसे सकते थे। उनका यश तो सकल लोक में प्रसिद्ध हो रहा है।

दादू कहाँ था गोरख भरथरी, अनंत सिधों का मंत।
परकट गोपीचन्द है, दत्त कहैं सब सन्त॥ ११३॥

अनन्त सिद्धों के माननीय गोरखनाथ, भर्तृहरि, गोपीचंद और दत्तात्रेय कहां और कब हुये हैं किन्तु भजन के प्रताप से अब तक भी वे प्रकट हैं और सभी संत उनके नाम को सादर सस्नेह कहते-सुनते आरहे हैं।

अगम अगोचर राखिये, कर कर कोटि जतन्न।
दादू छाना क्यों रहै, जिस घट राम रतन्न॥ ११४॥

जिसके हृदय में राम-नाम-स्मरण रत्न निरंतर रहता है, और जो मन से अगम, इन्द्रियातीत राम का भक्त है, उसको कोई कोटि प्रयत्न करके ऐसे स्थान में भी रक्खे, जहां कोई भी न देख सके, तो भी वह छिपा न रह सकेगा, प्रसिद्ध हो जायेगा।

दादू स्वर्ग पयाल में, साचा लेवे नाम।
सकल लोक शिर देखिये, परकट सब ही ठाम॥ ११५॥

सच्चा भक्त स्वर्ग पाताल में कहीं भी सत्य ब्रह्म का नाम स्मरण करता है, तो वह अन्त में सर्व-लोक शिरोमणि ब्रह्म को प्राप्त होकर ब्रह्मरूप से देखा जाता है और सभी लोकों में प्रसिद्ध हो जाता है। यह सब नाम-स्मरण का ही माहात्म्य है।

स्मरण लांबि रस

सुमिरण का संशय रह्या, पछितावा मन मांहि।
दादू मीठा राम रस, सगला[१] पीया नांहिं॥ ११६॥

११६-११७ में स्मरण-रस पानार्थ शीघ्रता पूर्वक प्रबल इच्छा प्रकट कर रहे हैं—मुझे स्मरण विषयक यह संशय है कि—मैं पूर्ण रूप से स्मरण कर सकूंगा या नहीं। यद्यपि राम-नाम-स्मरण रस अति मधुर है और उसको पान करने के लिए मैं अति शीघ्रता भी कर रहा हूँ, किन्तु पूर्ण रूप से सबका सब[१] पान करके अभी तक तृप्त नहीं हो सका, यह पश्चात्ताप मेरे मन में हो रहा है।

दादू जैसा नाम था, तैसा लीया नांहि।
हौंस रही यहु जीव में, पछितावा मन मांहि॥११७॥

राम-नाम की जैसी महान् महिमा भक्त, संत व शास्त्रों से सुनी थी वैसी लगन के साथ उसका स्मरण न कर सका। पूर्ण रूप से राम-नाम-स्मरण करने की प्रबल इच्छा अन्त:करण में तो रही है किन्तु इच्छा पूर्ण न होने से मन में पश्चात्ताप हो रहा है।

स्मरण नाम चेतावनी

दादू शिर करवत बहै, बिसरे आतम राम।
मांहिं कलेजा काटिये, जीव नहीं विश्राम॥ ११८॥

११८-१२६ में नाम स्मरणार्थ सावधान कर रहे हैं—आत्म-स्वरूप राम के नाम का स्मरण भूलने से सिर पर करवत चलने के समान और कलेजा काटने के समान हृदय में पीड़ा होने लगती है और किसी भी प्रकार प्राणी को विश्राम नहीं मिलता।

दादू शिर करवत बहै, राम हृदै थी जाइ।
मांहिं कलेजा काटिये, काल दशों दिशि खाइ॥ ११९॥

राम का नाम-स्मरण जब हृदय में नहीं रहता तब शिर पर काल की करवत चलती है और चिन्तादि से हृदय छिन्न-भिन्न होता रहता है तथा वह अभक्त प्राणी दशों दिशाओं के किसी भी लोक में जाय, काल का ग्रास ही होता है।

दादू शिर करवत बहै, अंग परस नहिं होइ ।
माँहि कलेजा काटिये, यहु व्यथा न जाणे कोइ ॥ १२० ॥

जब तक राम-नाम-स्मरण के द्वारा ज्ञान होकर प्रभु के स्वरूप में अभेद होना रूप मिलन नहीं होता तब तक शिर पर कर्म का करवत चलता ही रहता है तथा भोग-वासना से हृदय व्यथित ही रहता है, किन्तु कोई भी अज्ञानी, भोगासक्ति के कारण, इस व्यथा को नहीं जान पाता।

दादू शिर करवत बहै, नैनहुँ निरखे नांहि ।
माँहिं कलेजा काटिये, साल रह्या मन मांहि ॥ १२१ ॥

प्राणी के शिर पर रात्रि-दिन रूप करवत चलता हुआ आयु को काट रहा है और काम क्रोधादि के वेग-प्रहार से हृदय के भी खंड-खंड हो रहे हैं किन्तु प्राणी अपने ज्ञान-नेत्रों से देखकर, राम-नाम-स्मरण द्वारा इस व्यथा को दूर करने का प्रयत्न नहीं करता। स्मरण बिना यह क्लेश मन में बना ही रहता है।

जेता पाप सब जग करे, तेता नाम बिसारे होइ।
दादू राम सँभालिये, तो येता डारे धोइ ॥ १२२ ॥

संसार में प्राणी जितने पाप-कर्म करते हैं, वे सब भगवत् नाम-स्मरण के भूलने से ही होते हैं। हरि नाम-स्मरण से अन्त:करण परम निर्मल हो जाता है फिर तो उसमें पाप-कर्म का संकल्प भी नहीं हो सकता, पाप-कर्म कैसे हो सकते हैं ? और यदि निष्काम भाव से राम-नाम-स्मरण निरंतर किया जाय, तब तो वह प्राणी के जितने भी पाप हैं, उन सबको धो डालता है।

दादू जब ही राम बिसारिये, तब ही मोटी मार।
खंड-खंड कर नाखिये, बीज पड़े तिहिं बार ॥ १२३ ॥

जब भी राम-नाम-स्मरण हृदय से हटता है तब ही प्राणी के ऊपर भोग-वासना बिजली की भारी मार पड़ती है और नाना वृत्तियों के द्वारा मन के टुकड़े २ कर डालती है।

दादू जब ही राम बिसारिये, तब ही झँपै काल।
शिर ऊपर करवत बहै, आइ पड़ै जम जाल ॥ १२४ ॥

प्राणी जब राम-नाम-स्मरण को भूलता है तब ही उसके शिर पर विविध क्लेश-करवत चलता है और काल भी उसे पकड़ने के लिए झपटता है तथा अन्त में वह प्राणी काल के जाल में ही पड़ता है।

दादू जब ही राम बिसारिये, तब ही कंध[१] विनाश ।
पग-पग परलै पिंड पड़ै, प्राणी जाइ निराश ॥ १२५ ॥

ईश्वर-अंश जीवात्मा जब राम-नाम-स्मरण को भूल जाता है, तब ही उसके शरीर[१] का बारंबार विनाश होता है। पद-पद पर शरीर के नाश की परिस्थिति आ उपस्थित होती है और जीव प्रत्येक शरीर में परम सुख प्राप्ति से निराश होकर बारंबार चौरासी में जाता रहता है।

दादू जब ही राम बिसारिये, तब ही हाना[१] होइ।
प्राण पिंड सर्वस गया, सुखी न देख्या कोइ ॥ १२६ ॥

जब प्राणी राम-नाम-स्मरण को भूल कर पाप कर्मों में प्रवृत्त होता है तब उसके पुण्य-नाश रूप बड़ा भारी घाटा[१] पड़ जाता है और श्वास, शरीरादि सर्वस्व ही व्यर्थ नष्ट हो जाता है। इस संसार में हरि-स्मरण रहित कोई भी व्यक्ति सुखी नहीं देखा गया है, अत: हरि-स्मरण न भूलो।

नाम सम्पूर्ण

साहिबजी के नाम मां, विरहा पीड़ पुकार।
ताला-बेली रोवणा, दादू है दीदार ॥ १२७ ॥

नाम-स्मरण, ज्ञान द्वारा ब्रह्म-साक्षात्कार का हेतु होने से, सभी कुछ देने वाला है, यह कह रहे हैं—प्रभु के नाम-स्मरण में चित्त-वृत्ति को स्थिर करते हुये, प्रभु-वियोग-जन्य पीड़ा से अति व्याकुलता पूर्वक रो २ कर पुकार की जाती है, तब ब्रह्म-साक्षात्कार होता है और ब्रह्म-साक्षात्कार होने पर सभी कुछ प्राप्त हो जाता है।

स्मरण विधि

साहिबजी के नाम मां, भाव भक्ति विश्वास ।
लै समाधि लागा रहे, दादू सांई पास ॥ १२८ ॥

१२८-१३१ में स्मरण विधि कह रहे हैं—प्रभु में भाव, भक्ति और दृढ़ विश्वास रहते हुये चित्त-वृत्ति नाम-स्मरण में लगाकर जो समाधि में लगा रहता है, ऐसे भक्त से भगवान दूर नहीं रहते।

साहिबजी के नाम मां, मति बुधि ज्ञान विचार ।
प्रेम प्रीति सनेह सुख, दादू ज्योति अपार ॥ १२९ ॥

प्रभु के नाम-स्मरण में मति लगाने से, बुद्धि निर्मल होकर उसमें सत्यासत्य का विचार प्रकट होता है। फिर सत्य-स्वरूप का ज्ञान होकर उसमें प्रेम हो जाता है, फिर प्रीति की वृद्धि होने पर स्नेह-जन्य आनन्द मिलता है। उस आनन्द की स्थिरता में प्रकाश-स्वरूप अपार ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाता है।

साहिबजी के नाम मां, सब कुछ भरे भंडार ।
नूर तेज अनन्त है, दादू सिरजनहार ॥ १३० ॥

उक्त प्रकार स्मरण करने पर प्रभु-नाम-स्मरण की सिद्धावस्था में किसी भी पदार्थ की कमी नहीं रहती। लौकिक, पारलौकिक सभी सुखों के भंडार उस स्मरण-कर्त्ता महापुरुष के हाथ-नीचे रहते हैं और सृष्टिकर्त्ता प्रभु के स्वरूप-प्रकाश का भी उसे साक्षात्कार हो जाता है।

जिसमें सब कुछ सो लिया, निरंजन का नांउ ।
दादू हिरदै राखिये, मैं बलिहारी जांउ ॥ १३१ ॥

इति श्री स्मरण का अंग समाप्त ॥ २ ॥ सा. २८८ ॥

जिस निरंजन राम के नाम-स्मरण की सिद्धावस्था में सब कुछ प्राप्त होता है, उसका जिसने उक्त प्रकार से स्मरण कर लिया है, मैं उसकी बलिहारी जाता हूँ।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका स्मरण का अंग समाप्त: ॥ २ ॥

अथ विरह का अंग ३

नाम स्मरण द्वारा नामी के मिलन की विशेष इच्छा प्रकट होकर विरह-व्यथा होती है, उस विषयक विचार करने को, विरह अंग कहने में प्रवृत्त हुये, प्रथम मंगल कर रहे हैं—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत: ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक विरह-व्यथा से पार होकर प्रभु को प्राप्त होता है, उस निरंजन राम, सद्गुरु और सर्व संतों को हम अनेक प्रणाम करते हैं।

रतिवंती आरति करे, राम सनेही आव ।
दादू अवसर अब मिलै, यहु विरहनि का भाव ॥ २ ॥

२-७ में विरह पूर्वक दर्शनार्थ प्रार्थना कर रहे हैं—मेरे परम स्नेही राम ! आपके प्रेम से सम्पन्न मेरी चित्त-वृत्ति व्याकुलता पूर्वक आपके दर्शनार्थ विलाप कर रही है, आप कृपा करके पधारें। मेरी विरहनी चित्त-वृत्ति के अति आर्त होने का भाव यह है कि—आपके दर्शनों की उत्कंठा का समय अनन्त जन्मों से अभी मिल रहा है। अत: अब आप शीघ्र ही मुझे दर्शन देने की कृपा करें।

पीव पुकारे विरहनी, निश दिन रहै उदास ।
राम राम दादू कहै, ताला-बेली प्यास ॥ ३ ॥

प्रियतम ! मैं वियोगिनी रात दिन उदास रह कर अति व्याकुलता-पूर्वक आपके दर्शन की आशा से 'हे राम ! राम ! आओ' कहकर पुकार रही हूँ, फिर भी आप क्यों नहीं आते ?

मन चित चातक ज्यौं रटै, पिव पिव लागी प्यास।
दादू दरशन कारणैं, पुरवहु मेरी आस ॥ ४ ॥

राम ! मुझे आपके दर्शन की बड़ी अभिलाषा लगी है, मेरा मन सावधान होकर आपके दर्शनार्थ निरंतर चातक पक्षी के समान 'पीव ! पीव !' रट रहा है। अब तो मेरी यह आशा आपको अवश्य पूर्ण करनी चाहिए।

जिसमें सब कुछ सो लिया, निरंजन का नांउ ।
दादू हिरदै राखिये, मैं बलिहारी जांउ ॥ १३१ ॥

इति श्री स्मरण का अंग समाप्त ॥ २ ॥ सा. २८८ ॥

जिस निरंजन राम के नाम-स्मरण की सिद्धावस्था में सब कुछ प्राप्त होता है, उसका जिसने उक्त प्रकार से स्मरण कर लिया है, मैं उसकी बलिहारी जाता हूँ।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका स्मरण का अंग समाप्त: ॥ २ ॥

अथ विरह का अंग ३

नाम स्मरण द्वारा नामी के मिलन की विशेष इच्छा प्रकट होकर विरह-व्यथा होती है, उस विषयक विचार करने को, विरह अंग कहने में प्रवृत्त हुये, प्रथम मंगल कर रहे हैं—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत: ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक विरह-व्यथा से पार होकर प्रभु को प्राप्त होता है, उस निरंजन राम, सद्गुरु और सर्व संतों को हम अनेक प्रणाम करते हैं।

रतिवंती आरति करे, राम सनेही आव ।
दादू अवसर अब मिलै, यहु विरहनि का भाव ॥ २ ॥

२-७ में विरह पूर्वक दर्शनार्थ प्रार्थना कर रहे हैं—मेरे परम स्नेही राम ! आपके प्रेम से सम्पन्न मेरी चित्त-वृत्ति व्याकुलता पूर्वक आपके दर्शनार्थ विलाप कर रही है, आप कृपा करके पधारें। मेरी विरहनी चित्त-वृत्ति के अति आर्त होने का भाव यह है कि—आपके दर्शनों की उत्कंठा का समय अनन्त जन्मों से अभी मिल रहा है। अत: अब आप शीघ्र ही मुझे दर्शन देने की कृपा करें।

पीव पुकारे विरहनी, निश दिन रहै उदास ।
राम राम दादू कहै, ताला-बेली प्यास ॥ ३ ॥

प्रियतम ! मैं वियोगिनी रात दिन उदास रह कर अति व्याकुलता-पूर्वक आपके दर्शन की आशा से 'हे राम ! राम ! आओ' कहकर पुकार रही हूँ, फिर भी आप क्यों नहीं आते ?

मन चित चातक ज्यौं रटै, पिव पिव लागी प्यास।
दादू दरशन कारणैं, पुरवहु मेरी आस ॥ ४ ॥

राम ! मुझे आपके दर्शन की बड़ी अभिलाषा लगी है, मेरा मन सावधान होकर आपके दर्शनार्थ निरंतर चातक पक्षी के समान 'पीव ! पीव !' रट रहा है। अब तो मेरी यह आशा आपको अवश्य पूर्ण करनी चाहिए।

दादू विरहनि दुख कासनि[१] कहे, कासनि देइ संदेश ।
पंथ निहारत पीव का, विरहनि पलटे केश ॥ ५ ॥

प्रभो ! मैं वियोगिनी आपके वियोग से उत्पन्न अपना दु:ख किसे[१] कहूँ ? कहने पर भी आपके दर्शन बिना तो यह किसी से भी मिटेगा नहीं, प्रत्युत तत्त्ववेत्ता जन सुनकर यह कहते हुये कि राम तुमसे भिन्न तो नहीं है और अभक्त यह कहते हुये कि प्रत्यक्ष भोग-सुखों को त्याग कर अप्रत्यक्ष के लिए क्यों रो रहे हो, मेरी हँसी ही करेंगे। इसलिए किसी अन्य को कहना नहीं बनता। यदि मैं आपके पास संदेश भेजूं तो भी किसके द्वारा भेजूं ? आपसे मिलकर तो कोई पीछा आता नहीं, वह तो जल में जल के समान आप में ही मिल जाता है। अत: अब तो मेरा मन अन्य उपायों को त्यागकर केवल प्रभु का मार्ग ही देख रहा है किन्तु उनकी कठोरता तो देखो, उनका मार्ग देखते २ मेरे केश भी श्वेत हो चले, तो भी वे अभी तक नहीं पधारे।

विरहनि दुख कासनि कहै, जानत है जगदीश ।
दादू निशदिन बिरही[१] है, विरहा करवत शीश ॥ ६ ॥

मैं वियोगिनी अपना दु:ख किससे कहूँ ? जिनको कहना चाहिए वे जगदीश्वर तो सर्वज्ञ होने से सब जानते ही हैं किन्तु वे तो दर्शन न देकर मेरे शिर पर विरह-करवत (पाठांतर बिरही या विहरि है = बह रही है) चलाते हुये[१] मुझे चीर रहे हैं।

शब्द तुम्हारा ऊजला, चिरिया क्यों कारी ?
तुंहीं तुंहीं निश दिन करूँ, विरहा की जारी ॥ ७ ॥

एक वन की चिड़िया जिसका शरीर कुछ श्यामता लिये होता है, राजस्थान में लेली नाम से प्रसिद्ध है। वे वन में एकत्रित होकर तथा एक-एक भी तुंहीं २ पुकारती रहती हैं। उसी के व्याज से वियोगिनी आपही अपने से प्रश्न कर रही है-हे विरहनी चिड़िया ! तेरा तुंही २ शब्द तो प्रभु का बोधक होने से अति पवित्र है किन्तु तेरा तन काला क्यों पड़ रहा है ? उत्तर—''मैं अपने प्रियतम परमात्मा के दर्शनार्थ रात दिन पुकारती रहती हूँ कि- ''मेरा आधार तो तू ही है, तू ही है।'' फिर भी वे दर्शन नहीं देते। उनके विरह-जन्य दु:ख से जल कर ही मेरा शरीर काला पड़ गया है।

विरह-विलाप

विरहनि रोवे रात दिन, झूरै मन ही मांहि ।
दादू अवसर चल गया, प्रीतम पाये नांहि ॥ ८ ॥

८-१६ में विरह पूर्वक विलाप दिखा रहे हैं—वियोगिनी भगवद् वियोग-दु:ख से रात-दिन रोती हुई मन ही मन में अत्यंत व्यथित होकर सोच रही है—देखो, मेरी आयु का इतना समय प्रियतम को पुकारते २ चला गया, किन्तु खेद है, अभी तक उनका दर्शन न हो सका।

दादू विरहनि कुरलै कूंज ज्यों, निशदिन तलफत जाइ ।
राम सनेही कारणै, रोवत रैनि बिहाइ ॥ ९ ॥

जैसे क्रौंच पक्षी अपने अंडों को याद करके बारंबार उनके लिए करुणापूर्वक बोलते रहते हैं, वैसे ही अपने प्रियतम राम का स्मरण करके विरही जनों की सब रात्रि रोते हुये ही व्यतीत हो जाती है। इस प्रकार सभी रात-दिन तड़फते हुये निकलते हैं।

पासैं बैठा सब सुने, हमको जवाब न देइ ।
दादू तेरे शिर चढ़े, जीव हमारा लेइ ॥ १० ॥

हमारा प्रियतम अत्यंत समीप हृदय में ही साक्षी रूप से स्थित है और हमारी सभी पुकार सुनता भी है किन्तु प्रत्युत्तर में हमें कुछ भी नहीं कहता। इसलिए हमारा दुःख और भी अधिक बढ़ रहा है। प्रियतम ! तुम हमारा जीव क्यों ले रहो हो ? याद रक्खो, यदि इस दुःख से हमारे प्राण चले गये तो उसका अपराध तुम्हारे ही शिर चढ़ेगा।

सबको सुखिया देखिये, दुखिया नांही कोइ ।
दुखिया दादू दास है, ऐन परस नहिं होइ ॥ ११ ॥

सांसारिक सभी प्राणी भोग-सुखों से सुखिया दीख पड़ते हैं। भगवद्-वियोग-दुःख से कोई भी दुःखी नहीं है किन्तु आपका प्रत्यक्ष मिलन न होने से आपके दास हम तो अत्यन्त ही दुखिया हैं। आप कृपा करके दर्शन दें।

साहिब मुख बोले नहीं, सेवक फिरे उदास ।
यहु वेदन जिय में रहे, दुखिया दादू दास ॥ १२ ॥

भगवद् भक्त को विषयों से सुख न मिलने के कारण वह उनसे विरक्त होकर भगवत् के लिए फिरता है किन्तु भगवान् सर्व-व्यापक होने पर भी अपने मुख से नहीं बोलता। यह भगवद्-वियोग-जन्य वेदना विरही के हृदय में निरन्तर बनी ही रहती है। इससे ही हम विरही दास अत्यन्त दुखी हैं।

पिव बिन पल पल जुग भया, कठिन दिवस क्यों जाइ ।
दादू दुखिया राम बिन, काल रूप सब खाइ ॥ १३ ॥

प्रियतम के दर्शन बिना एक-एक पल युग के समान कठिनता से व्यतीत हो रहा है, फिर ये जीवन के दिन कैसे निकलेंगे ? सांसारिक सुख-प्रदाता धन, जनादि तो सब काल रूप होकर खाने को आ रहे हैं। राम के दर्शन बिना हम महान् दुखी हैं।

दादू इस संसार में, मुझ सा दुखी न कोइ ।
पीव मिलन के कारणैं, मैं जल भरिया रोइ ॥ १४ ॥

इस संसार में मेरे समान कोई भी दुःखी नहीं है। मैं अपने प्रियतम राम के मिलनार्थ रात-दिन नेत्रों में अश्रु-जल भर-भर कर रो रहा हूँ।

ना वह मिले न मैं सुखी, कहु क्यों जीवन होइ।
जिन मुझ को घायल किया, मेरी दारू[1] सोइ ॥ १५ ॥

न तो वे मेरे प्रियतम राम मिलेंगे और न मैं सुखी हो सकूंगा। फिर मेरा जीवन सुख-पूर्वक कैसे चल सकेगा ? मेरे इस दु:ख को निवृत्त करने की औषधि[1] एक मात्र उसी का दर्शन है, जिस राम ने अपने वियोग से मुझे घायल किया है।

दरशन कारण विरहनी, वैरागनि होवे ।
दादू विरह वियोगिनी, हरि मारग जोवे ॥ १६ ॥

हरि दर्शनार्थ विरही भक्त सांसारिक भोगों से विरक्त होकर वियोगिनी नारी के समान विरह-दु:ख से व्यथित निरंतर हरि के साक्षात्कार की प्रतीक्षा करते रहते हैं।

विरह उपदेश

अति गति आतुर मिलन को, जैसे जल बिन मीन ।
सो देखे दीदार को, दादू आतम लीन ॥ १७ ॥

१७-१८ में विरह विषयक उपदेश दे रहे हैं—जैसे जल से अलग हुई मच्छी जल के लिये अत्यंत व्याकुल होती है, वैसे ही जो भक्त भगवद्-दर्शनार्थ अत्यंत व्याकुल होकर अपनी बुद्धि को भगवान् में लीन करता है, वही भगवद्-दर्शन करता है।

राम विछोही विरहनी, फिर मिलन न पावे ।
दादू तलफै मीन ज्यों, तुझ दया न आवे ॥ १८ ॥

राम से बिछुड़ी हुई विरहनी फिर सहज ही नहीं मिल पाती और जल रहित मच्छी के समान तड़फती रहती है। प्रभो ! वैसी ही स्थिति आपके बिना हमारी है, आपको हम पर दया नहीं आती क्या ?

छिन विछोह

दादू जब लग सुरति सिमटे नहीं, मन निश्चल नहीं होइ ।
तब लग पीव परसे नहीं, बड़ी विपति यहु मोहि ॥ १९ ॥

१९-२४ में कहते हैं—हरि का एक क्षण का भी वियोग असह्य है। जब तक चित्त-वृत्ति विषयों से विमुख होकर हरि में स्थिर नहीं होती तब तक मन निश्चल नहीं होता और मन की स्थिरता के बिना प्रभु का मिलन नहीं हो सकता। प्रभु से अलग रहना यह मेरे लिए महा विपत्ति है। मुझे एक क्षण का भी हरि का वियोग असह्य है।

ज्यों अमली के चित अमल है, शूरे के संग्राम।
निर्धन के चित धन बसे, यौं दादू के राम ॥ २० ॥

जैसे नशेबाज के मन में नशा, वीर के मन में युद्ध और निर्धन के मन में निरंतर धन बसा रहता है, वैसे ही मेरे मन में राम बसा हुआ है।

ज्यों चातक के चित जल बसे, ज्यों पानी बिन मीन ।
जैसे चन्द चकोर है, ऐसे दादू हरि सौं कीन ॥ २१ ॥

जैसे चातक पक्षी के चित्त में स्वाति जल बसता है, वैसे ही हमारे मन में हरि बसते हैं। जैसे पानी बिना मच्छी की दशा होती है, वैसे ही हरि बिना हमारी होती है। जैसे चन्द्र से चकोर का प्रेम होता है, वैसे ही हमने हरि से प्रेम किया है।

ज्यों कुञ्जर के मन वन बसे, अनल पंखि आकास।
यों दादू का मन राम सौं, ज्यों वैरागी वनखंड वास ॥ २२ ॥

जैसे हाथी का मन वन में, अनल पक्षी का मन आकाश में, विरक्त का मन वन-खंड में लगा रहता है, वैसे ही मेरा मन राम के स्वरूप में लगा रहता है।

भँवरा लुब्धी वास का, मोह्या नाद कुरंग ।
यों दादू का मन राम सौं, ज्यो दीपक ज्योति पतंग ॥ २३ ॥

जैसे भ्रमर कमल-सुगंध से, मृग बरवै राग की वीणा-ध्वनि से, पतंग दीपक-ज्योति से मोहित होता है, वैसे ही मेरा मन राम से मोहित हो गया है।

श्रवणा राते नाद सौं, नैना राते रूप ।
जिह्वा राती स्वाद सौं, त्यों दादू एक अनूप ॥ २४ ॥

जैसे श्रवण शब्द में, नेत्र रूप में, जिह्वा रसास्वादन में अनुरक्त है, वैसे ही मेरा मन त्रिविधि भेद-शून्य अनुपम ब्रह्म में अनुरक्त है।

विरह उपदेश

देह पियारी जीव को, निशि दिन सेवा मांहिं।
दादू जीवन मरण लौं, कबहूँ छाड़ी नांहिं ॥ २५ ॥

२५-२८ में विरह विषयक उपदेश कर रहे हैं—जैसे जीव को अपना शरीर अत्यन्त प्रिय है, वह रात दिन शरीर की सेवा में लगा रहता है, वैसे ही जन्म से मरण पर्यन्त अपने जीवन में हरि की विरह-भक्ति नहीं छोड़नी चाहिए।

देह पियारी जीव को, जीव पियारा देह ।
दादू हरि रस पाइये, जे ऐसा होइ सनेह ॥ २६ ॥

जैसे जीव को शरीर प्रिय है और शरीर को जीव प्रिय है, वैसे ही मुझे हरि प्रिय लगे और हरि को मैं प्रिय लगूं, तब हरि-साक्षात्कार रूप रसानन्द प्राप्त हो सकता है। अन्यथा एकांगी प्रेम का फल तो क्लेश ही होता है।

दादू हरदम[१] मांहि दिवान[२], सेज हमारी पीव है ।
देखूं सो सुबहान[३], यह इश्क[४] हमारा जीव है ॥ २७ ॥

देह-दरबार[२] की हमारी हृदय-शय्या पर प्रियतम प्रभु प्रति श्वास[१] के समय साक्षी रूप से विद्यमान है, मैं उस पवित्र[३] प्रभु को ही देखता हूँ, यह उनका प्रेम[४] ही हमारा जीवन है।

दादू हरदम[1] मांहि दिवान[2], कहूं दरूने[3] दरद सौं ।
दरद दरूने जाइ, जब देखूं दीदार को ॥ २८ ॥

वह महान् प्रभु मेरे हृदय-दरबार[2] में प्रति श्वास[1] विद्यमान है किन्तु मुझे दर्शन नहीं देता। मैं हृदय[3] की व्यथा से व्यथित होकर कहता हूँ—जब मैं प्रभु का स्वरूप देखूंगा, तब ही मेरे हृदय का दर्द दूर होगा।

विरह विनती

दादू दरूने दरदवंद, यहु दिल दरद न जाइ ।
हम दुखिया दीदार के, महरवान दिखलाइ ॥ २९ ॥

२९-३१ में विरह-पूर्वक दर्शनार्थ विनय कर रहे हैं—मैं हृदय के दर्द से युक्त हूँ, यह वियोग-जन्य कष्ट आप के दर्शन बिना हृदय से दूर न हो सकेगा। हम आपके दर्शनार्थ दुःखी हैं। दयालो ! अपने स्वरूप का दर्शन कराइये।

मूये पीड़ पुकारतां, वैद्य न मिलिया आइ ।
दादू थोड़ी बात थी, जे टुक दरश दिखाइ ॥ ३० ॥

हम हरि-वियोग-जन्य पीड़ा से पीड़ित होकर पुकारते २ मर रहे हैं किन्तु अभी तक हमारा प्रियतम प्रभु रूप वैद्य आकर हमें अपनी दर्शन-औषधि नहीं दे रहा है। प्रभो ! हमारे कष्ट को मिटाने की बात तो बहुत ही अल्प थी, यदि आप किंचित् मात्र अपना दर्शन करा देते तो तुरन्त मिट जाता।

दादू मैं भिखारी मंगता, दरशन देहु दयाल ।
तुम दाता दुख भंजता, मेरी करहु सँभाल ॥ ३१ ॥

दयालो ! मैं भिक्षु आप से दर्शन की भिक्षा माँग रहा हूँ, दर्शन दीजिये। आप संपूर्ण दु:खों को नाश करके परमानन्द प्रदाता हैं। अत: मेरी भी सँभाल अवश्य कीजिये।

छिन विछोह

क्या जीये में जीवना, बिन दरशन बेहाल ।
दादू सोई जीवना, परकट परशन लाल ॥ ३२ ॥

३२-३३ में हरि का क्षणिक-वियोग भी असह्य है, यह कह रहे हैं—भगवद् दर्शन बिना व्याकुल होकर जीवन धारण करना व्यर्थ है। जीवन तो वही अच्छा है, जिसमें परम प्रिय प्रभु का प्रकट रूप में मिलन हो।

इहि जग जीवन सो भला, जब लग हिरदै राम ।
राम बिना जे जीवना, सो दादू बेकाम ॥ ३३ ॥

जब तक हृदय में राम का चिन्तन वा ध्यान में साक्षात्कार होता रहे, वही जीवन इस संसार में अच्छा माना जाता है, जो जीवन राम के चिन्तन से वंचित रहता है, वह तो व्यर्थ ही है।

विरह विनती

दादू कहु दीदार की, सांई सेती बात ।
कब हरि दरशन देहुगे, यह अवसर चल जात ॥ ३४ ॥

३४-३८ में विरह पूर्वक दर्शनार्थ विनय कर रहे हैं—हरे ! आप अपने स्वरूप के दर्शन देने की बात शीघ्र बताओ। हमें कब दर्शन दोगे ? स्वामिन् ! आपके दर्शन बिना हमारे इस जीवन का समय व्यर्थ ही नष्ट हो रहा है।

व्यथा तुम्हारे दरश की, मोहि व्यापै दिन रात ।
दुखी न कीजे दीन को, दरशन दीजे तात ॥ ३५ ॥

परम पिता ! आपके दर्शन न होने की व्यथा मुझे रात-दिन व्यथित कर रही है, अब आप मुझ दीन को दुःखी न करें। कृपा करके दर्शन दें।

दादू इस हियड़े यह साल, पिव बिन क्योंहि न जाइसी ।
जब देखूं मेरा लाल, तब रोम-रोम सुख आइसी ॥ ३६ ॥

मेरे इस हृदय में यही दुःख है कि—मेरे प्रभु के दर्शन नहीं हो रहे हैं और यह दुःख उस प्रियतम के मिलन बिना किसी भी प्रकार दूर न होगा। जब मैं मेरे प्रिय प्रभु को देखूंगा तब उसके दर्शन-जन्य सुख से मेरा रोम-रोम प्रसन्न होगा।

तूं है तैसा प्रकाश कर, अपना आप दिखाइ ।
दादू को दीदार दे, बलि जाउँ विलम्ब न लाइ ॥ ३७ ॥

आप अपने शुद्ध स्वरूप का जैसा प्रकाश है, वैसा ही मेरे हृदय में प्रकट करके मुझे दिखावें। अब आप मुझे अपना साक्षात्कार कराने में विलम्ब न करें, मैं आपकी बलिहारी जाता हूँ।

दादू पिवजी देखे मुझको, हूं भी देखूं पीव ।
हूं देखूं देखत मिले, तो सुख पावे जीव ॥ ३८ ॥

यद्यपि मेरे स्वामी परमात्मा तो मुझे प्रत्यक्ष रूप से देख रहे हैं किन्तु मैं भी उन्हें प्रत्यक्ष रूप से देखूं, ऐसी मेरी प्रबल इच्छा है। जब मैं उन्हें देखूं, तब देखते ही हम दोनों परस्पर मिलकर एक रूप हो जायँ, तब ही मेरा जीवात्मा परमानन्द को प्राप्त होगा।

विरह कसौटी

दादू कहै तन मन तुम पर वारणै, कर दीजे कै बार ।
जे ऐसी विधि पाइये, तो लीजे सिरजनहार ॥ ३९ ॥

विरह की परीक्षा देने को कह रहे हैं—हे सृष्टि-कर्त्ता ईश्वर ! यदि आप अपने पर तन-मन निछावर करने पर ही दर्शन देते हैं और मुझे भी ऐसी ही विधि से प्राप्त होंगे तो लीजिये, मैं अपना तन, मन सब आप पर अनेक बार निछावर करता हूँ।

विरह पतिव्रत

दीन[१] दुनी सदके[२] करूं, टुक[३] देखण दे दीदार[४] ।
तन मन भी छिन-छिन करूं, बहिश्त[५] दोजख[६] वार ॥ ४० ॥

विरह पूर्वक पतिव्रत दिखा रहे हैं—प्रभु ! मैं अपना सांसारिक मजहब रूप धर्म[१], धाम, धन, जन, तन, मन, स्वर्ग[५], नरक[६] आदि भला बुरा सर्वस्व ही प्रतिक्षण आप कर निछावर[२] करता हूँ, आप मुझे किंचित्[३] मात्र अपने स्वरूप[४] का दर्शन करा दें।

विरह कसौटी

दादू हम दुखिया दीदार के, तू दिल तैं दूर न होइ।
भावै हमको जाल दे, होना है सो होइ ॥ ४१ ॥

विरह परीक्षा देने को विनय कर रहे हैं— प्रभो ! चाहे आप हमको अपनी विरहाग्नि से जला भी दें, या धाम, धन, जन, देहादि को कुछ भी हानि होने वाली हो, वह भी होती रहे किन्तु हम आपके दर्शन बिना न रह सकेंगे। हम तो आपके दर्शनार्थ ही दुःखी हैं। अब आप हमें दर्शन देकर हृदय से दूर नहीं जायँ, यही हमारी प्रार्थना है।

विरह पतिव्रत

दादू कहै जे कुछ दिया हमको, सो सब तुम ही लेहु।
तुम बिन मन माने नहीं, दरश आपणा देहु ॥ ४२ ॥

४२-४३ में विरह-पतिव्रत पूर्वक दर्शनार्थ विनय कर रहे हैं—स्वामिन् ! आपने जो कुछ भी हम को दिया है, यह सब आप ही ले लें। हमारा मन आपके बिना इन सांसारिक पदार्थों से सन्तुष्ट नहीं होता। हमें तो आप अपना दर्शन ही दें।

दूजा कुछ मांगैं नहीं, हमको दे दीदार ।
तू है तब लग एक टक, दादू के दिलदार ॥ ४३ ॥

प्रियतम ! हम आपसे आपके दर्शन से भिन्न स्वर्ग-भोगादि कुछ भी नहीं माँगते। हम तो यही चाहते हैं कि— जब तक आपका स्वरूप विद्यमान है तब तक हमको निरन्तर आप अपने स्वरूप का दर्शन देते रहें।

विरह विनती

दादू कहै-तूं है तैसी भक्ति दे, तूं है तैसा प्रेम ।
तूं है तैसी सुरति दे, तूं है तैसा क्षेम ॥ ४४ ॥

४४-५४ में विरह पूर्वक दर्शनार्थ विनय कर रहे हैं—प्रभो ! जैसा आपका स्वरूप अद्वैत, शुद्ध, सूक्ष्म और अखंड है वैसी ही हमें अनन्य भक्ति, निर्मल प्रेम, आपके स्वरूप में प्रविष्ट होने योग्य सूक्ष्म वृत्ति और अखंड दर्शनानन्द देने की कृपा करिये।

दादू कहै-सदके[१] करूं शरीर को, बेर-बेर बहु भंत ।
भाव-भक्ति हित प्रेम ल्यौ, खरा पियारा कंत ॥ ४५ ॥

प्रियतम ! मैं मेरे शरीरादि को आप पर लोक-सेवा और तपादिक द्वारा बहुत भाँति से अनेक बार निछावर[१] करता हूँ और भाव पूर्वक आपकी भक्ति करने के लिए वा प्रेम पूर्वक अपनी चित्तवृत्ति आप में ही लगाने के लिए तत्पर हूँ, आप मुझे विशुद्ध भाव से अति प्रिय हैं।

दादू दरशन की रली[१], हमको बहुत अपार।
क्या जाणूं कब ही मिले, मेरा प्राण अधार ॥ ४६ ॥

मेरे प्राणाधार ! हमको आपके दर्शन करने की अति अपार इच्छा[१] है, किन्तु मुझे यह ज्ञात नहीं होता कि आपके दर्शन कब मिलेंगे ?

दादू कारण कंत के, खरा दुखी बेहाल[१]।
मीरा[२] मेरा महर कर, दे दर्शन दर[३] हाल[४] ॥ ४७ ॥

मैं अपने स्वामी के दर्शन न होने से अत्यन्त दु:खी होकर व्याकुल[१] हो रहा हूँ। मेरे सरदार[२] मुझ पर दया करके इसी समय[४] मेरे भीतर[३] हृदय में प्रकट हो कर दर्शन दें।

ताला-बेली प्यास बिन, क्यों रस पीया जाइ।
विरहा दरशन दरद सौं, हमको देहु खुदाइ ॥ ४८ ॥

वास्तव में भगवद् दर्शन की आशा जितनी व्याकुलता पूर्वक होनी चाहिये, उतनी मुझ में नहीं है, तब भगवद्-दर्शन-रस कैसे पान किया जा सकता है ? हे भगवान् ! मुझे अपनी विरह-वेदना के सहित दर्शन देने की कृपा करें।

ताला-बेली पीड़ सौं, विरहा प्रेम पियास।
दर्शन सेती दीजिये, विलसे दादू दास ॥ ४९ ॥

मुझे विरह-वेदना की व्याकुलता से युक्त करके अपने प्रेम की उत्कट इच्छा के साथ ही अपना दर्शन भी शीघ्र ही दीजिये, जिससे मैं सेवक दर्शनानन्द का उपभोग कर सकूं।

दादू कहै—हमको अपना आप दे, इश्क मुहब्बत दर्द।
सेज सुहाग सुख प्रेम रस, मिल खेलें लापर्द[१] ॥ ५० ॥

प्रभो ! आप हमें अपना स्नेह तथा आपकी प्रेम-जन्य व्यथा भी दें और मेरी हृदय शय्या पर अन्तराय[१]-रहित[१] मिल कर मेरे साथ खेलते हुये मुझे सुहाग-सुख और प्रेम-रस प्रदान करें।

प्रेम भक्ति माता रहे, तालाबेली अंग।
सदा सपीड़ा मन रहे, राम रमे उन संग ॥ ५१ ॥

जो प्रभु-प्रेम में मस्त रहते हैं और जिनका मन भगवद्-विरह-जन्य पीड़ा से युक्त रहने के कारण सब शरीर व्याकुल रहता है, उन भक्तों के साथ ही राम रमण करते हैं।

प्रेम मगन रस पाइये, भक्ति हेत रुचि भाव ।
विरह विश्वास निज नाम सौं, देव दया कर आव ॥ ५२ ॥

देव ! दृढ़ विचार पूर्वक आपकी भक्ति प्राप्त करने के लिए मेरी प्रबल इच्छा हो रही है । आप मेरे मन को अपने प्रेम में निमग्न करके प्रेम-रस पान कराइये । इस वियोग-व्यथा के समय मुझे आपके निज नाम राम-स्मरण का ही विश्वास है, मैं इसके आश्रय ही जीवित हूँ, आप दया करके शीघ्र पधारें ।

गई दशा सब बाहुड़े, जे तुम प्रकटहु आइ ।
दादू ऊजड़ सब बसे, दर्शन देहु दिखाइ ॥ ५३ ॥

प्रभो ! यदि आप मेरे अन्त:करण में स्वरूप ज्ञान रूप से प्रकट हो जायेंगे तो, जो आप से अलग होने से मेरी शुद्ध चेतन रूप अवस्था चली गई है, वह पुन: प्राप्त हो जायेगी और मेरा अन्त:करण, आसुरी संपदा के गुणों से ऊजड़ हो गया है, उसमें भी पुन: दैवी संपदा के गुण आकर बस जायेंगे । अत: आप कृपा करके मुझे अपना दर्शन अवश्य दें ।

हम कसिये[१] क्या होइगा, विड़द तुम्हारा जाइ ।
पीछैं ही पछिताहुगे, तातैं प्रकटहु आइ ॥ ५४ ॥

भगवन् ! हमें वियोग-जन्य कष्ट-देने[१] से आपको क्या लाभ होगा ? प्रत्युत मुझे आपका दर्शन हुये बिना ही मेरे प्राण चले गये तो आपका भक्त वत्सलतादि यश नष्ट होकर आपकी हानि ही होगी और लोकापवाद होने पर फिर आप भी पश्चात्ताप ही करेंगे । अत: आपको शीघ्र ही मेरे हृदय में प्रकट हो जाना चाहिए । इसी में हम दोनों का भला है ।

छिन विछोह ।

मींयां[१] मैंडा[२] आव घर, वांढी[३] वत्तां[४] लोइ ।
डुखंडे[५] मुंहिडे[६] गये, मराँ विछोहै रोइ ॥ ५५ ॥

भगवद्-वियोग क्षण को भी असह्य बता रहे हैं—मेरे[२] स्वामिन्[१] ! मेरे हृदय-घर में पधारिये । मैं दुहागिन[३] आपके बिना दुखित होकर लोकों में जहां तहां चारों ओर फिर[४] रही हूँ । अब मेरे[६] दु:ख[५] अत्यन्त बढ़ गये हैं । आप के वियोग जन्य क्लेश से मैं रो-रो कर मर रही हूँ । आप शीघ्र दर्शन दें ।

विरह पतिव्रत

है सो निधि नहिं पाइये, नहीं सो है भरपूर ।
दादू मन माने नहीं, तातैं मरिये झूर ॥ ५६ ॥

विरह पूर्वक पतिव्रत दिखा रहे हैं—जो वास्तव में 'अस्ति, भाति, प्रिय' रूप सत्य निधि परब्रह्म है, वह तो प्राप्त नहीं हो रहा है और जो वास्तव में सत्य नहीं है, वह असत्य मायिक प्रपंच भ्रम वश स्वप्न निधि के समान सर्वत्र भास रहा है किन्तु हमारा मन इस मायिक प्रपंच से संतोष नहीं मानता । इसी से हम सत्य-तत्त्व की प्राप्ति के लिए विलाप पूर्वक रो-रो कर मर रहे हैं ।

विरही विरह लक्षण

जिस घट इश्क अल्लाह का, तिस घट लोही न माँस ।
दादू जियरे जक[१] नहीं, सिसके श्वासों श्वास ॥ ५७ ॥

५७-५९ में विरही और विरह के लक्षण बता रहे हैं—जिस भक्त के हृदय में भगवद्-विरह-जन्य व्यथा रहती है, उसके शरीर में विशेष रूप से रक्त माँस नहीं रहते, विरही जनों के शरीर कृश हो जाते हैं। हृदय में शाँति[१] नहीं रहती और भगवद् दर्शन के लिए प्रति श्वास व्याकुल होते रहते हैं।

रती[१] रब[२] ना बीसरे, मरे सँभाल सँभाल ।
दादू सौदाई[३] रहे, आशिक[४] अल्लह नाल[५] ॥ ५८ ॥

भगवद् विरही जन क्षण[१] मात्र भी भगवान्[२] को नहीं भूलते और प्रभु स्मरण करते हुये उसकी प्राप्ति के लिए रो-रो कर मरते हैं तथा वे प्रेमी[४] भक्त प्रभु प्रेम से पागल[३] हुये चिन्तन द्वारा प्रभु के साथ[५] ही रहते हैं।

दादू आशिक रब्बदा[१], शिर भी डेवे[२] लाहि[३] ।
अल्लह कारण आपको, साड़े[४] अंदर भाहि[५] ॥ ५९ ॥

भगवद् वियोग से व्यथित भगवान्-का[१] प्रेमी भक्त, भगवान् की प्राप्ति के लिए अपना शिर भी अपने हाथों से उतार[३] कर देने[२] को तत्पर रहता है और अपने प्रेम पात्र परमात्मा के दर्शनार्थ आन्तर विरहाग्नि[५] से अन्तः करण में स्थित देहादिक सभी प्रकार के अहंकार को जला[४] डालता है।

विरह-कसौटी

भोरे[१] भोरे तन करे, वंडे[२] कर कुरबाण[३] ।
मिट्ठा कौड़ा ना लगे, दादू तोहूं[४] साण[५] ॥ ६० ॥

विरह की परीक्षा बता रहे हैं—विरही जन प्रभु प्राप्ति के लिए अपने शरीर को कण[१] कण कर, प्रभु पर निछावर[३] करके वितरण[२] कर दें वा आटे के समान पीस[२] कर प्रभु पर निछावर कर दें। इतने पर भी जब भगवान् प्रिय ही लगें, बुरे न लगें तब समझना चाहिए कि सच्चा विरह है। ऐसा विरह होता है तब-ही[४] प्रभु के साथ[५] अभेद होकर ब्रह्मानन्द प्राप्त करता है।

विरह-लक्षण

जब लग शीश न सौंपिये, तब लग इश्क न होइ।
आशिक मरणे ना डरे, पिया पियाला सोइ ॥ ६१ ॥

६१-६३ में विरह का लक्षण बता रहे हैं—जब तक अपना अहंकार रूप शिर भगवान् के

समर्पण नहीं किया जाता तब तक वास्तविक प्रेम नहीं हो सकता। जो प्रेमी मरने से नहीं डरे हैं, वे ही प्रभु के साथ अभेद होकर ब्रह्मानन्द-रस का प्याला पान कर सके हैं।

तैं डीनोंई[१] सभु[२], जे डीये[३] दीदार[४] के।
उंजे[५] लहदी[६] अभु[७], पसाई[८] दो पाण[९] के ॥ ६२ ॥

यदि हमको आप अपने स्वरूप के दर्शन[४] करा देंगे[३] तो, हम मान लेंगे कि—आपने हमको सब[२] कुछ दे दिया[१]। जैसे प्यासे[५] को पानी[७] मिलते[६] ही प्यास जनित पीड़ा दूर होकर उसे तृप्ति प्राप्त होती है। वैसे ही आपके[९] स्वरूप के देखते[८] ही हमारा विरह दु:ख नष्ट होकर हमें आनन्द प्राप्त होगा, आप अपने दर्शन दो।

बिचौं[१] सभो[२] डूर कर, अन्दर बिया[३] न पाइ।
दादू रत्ता हिकदा[४], मन मुहब्बत लाइ ॥ ६३ ॥

मेरे अन्त:करण मध्य[१] के सभी[२] विकार-पटल दूर कर दीजिये और मेरे मन में अपनी ऐसी भक्ति उत्पन्न कर दीजिये जिससे मन एक[४] मात्र आप में ही निरंतर अनुरक्त रहे तथा अन्त:करण के भीतर किंचित् मात्र भी द्वैत-भाव[३] न मिल सके।

५५ से ६३ तक सिन्धी भाषा प्रधान साखियें सिन्ध के ठट्ठानगर से आई माता व सिन्धी भक्तों के समझाने को कही गई थीं। प्रसंग कथा दृ. सु. सि. त. ११/१३२ में देखो।

विरह उपदेश

इश्क मुहब्बत मस्त मन, तालिब[१] दर दीदार।
दोस्त दिल हरदम[२] हजूर, यादगार[३] हुशियार ॥ ६४ ॥

विरह सम्बन्धी उपदेश कर रहे हैं—प्रभु में प्रेम करने वाले को चाहिए-अपने मन को प्रभु प्रेम में मस्त रक्खे तथा वह जिज्ञासु[१] प्रभु स्वरूप के दर्शनार्थ चित्त की एकाग्रता रूप द्वार पर निरंतर स्थिर रहे। अपने हृदय को प्रति-श्वास[२] प्रभु रूप मित्र के सन्मुख रक्खे और उसके नाम-स्मरण[३] में निरंतर सावधान रहे।

विरह लक्षण

दादू आशिक एक अल्लाह के, फारिग[१] दुनियां दीन।
तारिक[२] इस औजूद तैं, दादू पाक[३] यकीन[४] ॥ ६५ ॥

६५-६६ में विरह का लक्षण बता रहे हैं—त्रिविध-भेद शून्य निरंजन राम का ही प्रेम होना, सांसारिक धर्म, जाति, वर्ण, आश्रम, पंथादिक के बन्धन से मुक्त[१] होना, इस देह के अध्यास से रहित[२] होना और शुद्ध[३] परमात्मा का ही दृढ़ विश्वास[४] होना; इसी को विरह कहते हैं।

आशिकां[१] रह[२] कब्ज[३] करदा[४], दिल वजां[५] रफतंद[६]।
अल्लह आले[७] नूर दीदम[८], दिलहि दादू बन्द[९] ॥ ६६ ॥

प्रेमियों[१] का मार्ग[२] अधिकार[३] में किया[४] जाय, आसुरी संपदा के गुणों को हृदय से बाहर[६]

करके हृदय में दैवी संपदा के गुण सजाये जायँ[५], परम श्रेष्ठ[७] परमात्मा के स्वरूप का दर्शन[८] करने के लिए अपने मन को निग्रह[९] किया जाय। ये ही विरह के लक्षण हैं।

शब्द

दादू इश्क अवाज सौं, ऐसे कहै न कोइ।
दर्द मुहब्बत पाइये, साहिब हासिल होइ ॥ ६७ ॥

प्रेम पूर्ण शब्द की विशेषता कह रहे हैं—प्रभु को शब्दों द्वारा पुकारते तो बहुत से लोग हैं किन्तु जैसे भक्त-जन प्रेमपूर्ण शब्दों से पुकारते हैं, वैसे अभक्त कोई भी नहीं पुकारता और भगवान् तो हृदय में प्रेम तथा विरह-वेदना उत्पन्न होने पर ही प्राप्त होते हैं।

विरह-विलाप-लक्षण

कहँ आशिक अल्लाह के, मारे अपने हाथ।
कहँ आलम औजूद सौं, कहैं जबाँ की बात ॥ ६८ ॥

६८-६९ में विरही के विलाप का लक्षण बता रहे हैं— जो अपने साधन रूप हाथों से निजी इन्द्रिय, मन, देहाध्यास आदि पर विजय प्राप्त करके प्रभु-दर्शनार्थ विलाप करते हैं, उनका विलाप कहाँ, और जो सांसारिक भोगों में अनुरक्त देहाध्यास से बँधे हुये लोग प्रार्थना करते हैं वे कहाँ, अर्थात् सांसारिक लोगों और भक्तों के विलाप की एकता नहीं हो सकती। सांसारिक लोग तो केवल जबानी बातें कहते हैं, उनसे हृदय का विलाप नहीं होता।

दादू इश्क अल्लाह का, जे कबहूँ प्रकटे आइ।
तो तन मन दिल अरवाह का, सब पड़दा जल जाइ ॥ ६९ ॥

यदि भाग्यवश हृदय में प्रभु-प्रेम प्रकट हो जाय तो, जीवात्माओं के और परमात्मा के मध्य जो तनाध्यास, मन के विकार, हृदय की आशादि रूप सभी पड़दे जल जाते हैं, प्राणी शुद्ध हो जाता है। इस अवस्था का विलाप ही वास्तविक विलाप है, इसी से प्रभु प्राप्त होते हैं।

विरह-जिज्ञासु-उपदेश

अरवाहे[१] सिजदा[२] कुनंद[३], वजूद[४] रा[५] चे[६] कार[७]।
दादू नूर[१०] दादनी[८], आशिकां दीदार[९] ॥ ७० ॥

विरह युक्त जिज्ञासु को उपदेश कर रहे हैं—शरीर[४] पोषण चिन्ता का[५] क्या[६] काम[७] है ? शरीरादि व्यवहार प्रारब्ध पर छोड़कर जीवात्माओं[१] के वास्तविक स्वरूप परब्रह्म को हृदय में ही प्रणाम[२] करते हुये उसकी उपासना करो[३]। ऐसा करने से ही वे प्रभु प्रेमियों को देने[८] योग्य स्वरूप[१०] का दर्शन[९] देते हैं। सीकरी में अकबर बादशाह ने प्रश्न किया था, भगवद् दर्शन कैसे हो ? उसी के उत्तर में ६४ से ७० साखी कही थी।

विरह ज्ञानाग्नि

विरह अग्नि तन जालिये, ज्ञान अग्नि दौं लाइ।
दादू नख शिख परजले, तब राम बुझावे आइ ॥ ७१ ॥

७१-७२ में विरहाग्नि और ज्ञानाग्नि उत्पन्न करने की प्रेरणा कर रहे हैं—साधक को चाहिए—प्रथम अपने हृदय में भगवद् विरहाग्नि प्रकट करके स्थूल शरीर का अध्यास और सूक्ष्म शरीर रूप इन्द्रिय अन्त:करण के विकारों को जलावे, फिर ज्ञानाग्नि प्रज्वलित करके पाताल-नख से ब्रह्म लोक-शिखा पर्यन्त भोग-वासनाओं को तथा आवरण आदि सबको जैसे वनाग्नि सब वन को जला डालती है वैसे ही जला डाले। इतना साधन हो जाता है तब तुरन्त ही निरंजन राम अपने स्वरूप का साक्षात्कार कराके भक्त की दोनों अग्नियां शांत कर देते हैं। दर्शन होते ही विरह-वेदनाग्नि बुझ जाती है और ज्ञान भी ज्ञेय से भिन्न नहीं रहता। ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय की एकता हो जाती है।

विरह अग्नि में जालिबा, दरशन के तांईं ।
दादू आतुर रोइबा, दूजा कुछ नांहीं ॥ ७२ ॥

साधक को चाहिए—केवल भगवद्-विरहाग्नि से अपने अहंकारादि विकारों को जलाता हुआ भगवद्-दर्शनार्थ व्याकुलता-पूर्वक रोता रहे। कारण दूसरे तीर्थव्रतादि बाह्य उपाय भगवद्-दर्शन कराने में विशेष समर्थ नहीं हैं।

विरह पतिव्रत

साहिब सौं कुछ बल नहीं, जनि हठ साधे कोइ ।
दादू पीड़ पुकारिये, रोतां होइ सो होइ ॥ ७३ ॥

७३-७५ में विरह पूर्वक पतिव्रत रखने की प्रेरणा कर रहे हैं—भगवान् के आगे हठ योगादि साधना का कुछ भी बल नहीं चलता। अत: हठयोगादि साधनों द्वारा क्यों कोई शरीर को रोगी बनावे ? भगवत् प्राप्ति के लिए तो विरह-वेदना सहित भगवान् से प्रार्थना करते हुए रोते रहना चाहिए। रोते रहने से जो होता है, वही होगा अर्थात् भगवान् ही प्राप्त होंगे।

ज्ञान ध्यान सब छाड़ि दे, जप तप साधन जोग ।
दादू विरहा ले रहै, छाड़ि सकल रस भोग ॥ ७४ ॥

संपूर्ण विषय-रस-जन्य सुख तथा भगवत्-परायणता रहित सकाम-जप, तप, हठ-योग साधन, ध्यान और ज्ञानादि सभी को त्याग कर विरह-वेदना पूर्वक स्मरण करते हुये भगवत् का पतिव्रत धारण किये रहना चाहिए।

जहँ विरहा तहँ और क्या, सुधि बुधि नाठे[1] ज्ञान ।
लोक वेद मारग तजे, दादू एकै ध्यान ॥ ७५ ॥

जिसके हृदय में भगवद्-विरह प्रकट हो जाता है, उसमें अन्य क्या रह जाता है ? विरह भिन्न कुछ भी नहीं रहता, उसके तो शरीर रक्षा विचार, व्यावहारिक बुद्धि, शास्त्र ज्ञान और लोक-वेद-मर्यादादि नष्ट[1] हो जाते हैं, वह तो त्रिविध-भेद शून्य अपने प्रियतम परमात्मा के ध्यान में ही निमग्न रहता है।

विरही विरह लक्षण

विरही जन जीवे नहीं, जे कोटि कहैं समझाइ ।
दादू गहिला ह्वै रहै, कै तलफ–तलफ मर जाइ ॥ ७६ ॥

७६-८४ में विरही और विरह के लक्षण कह रहे हैं—विरही भक्तों को चाहे कोई कोटि भाँति समझा कर भी सुखपूर्वक जीवित रहने के लिए कहे तो भी वे भगवत् मिलन बिना सुख-पूर्वक जीवित नहीं रह सकते। वे भगवद्-विरह से पागल हो जाते हैं या तड़फ २ कर मर जाते हैं।

दादू तलफै पीड़ सौं, विरही जन तेरा ।
सिसके सांई कारणै, मिल साहिब मेरा ॥ ७७ ॥

प्रभो ! मैं आपका विरही-भक्त विरह वेदना से तड़फ रहा हूँ। मन परम व्याकुल हो रहा है। मेरे श्वास केवल आपके दर्शनार्थ ही अटक रहे हैं। अत: शीघ्र दर्शन दें।

पड़्या पुकारे पीड़ सौं, दादू विरही जन्न ।
राम सनेही चित बसे, और न भावे मन्न ॥ ७८ ॥

मैं आपका वियोगी भक्त विरह-वेदना से व्यथित होकर आप ही के भरोसे पर पड़ा हुआ आपके दर्शनार्थ प्रार्थना कर रहा हूँ। हे मेरे स्नेही राम ! मेरे चित्त में आप ही बसे हुये हैं, मेरे मन को आपसे भिन्न कुछ भी अच्छा नहीं लगता।

जिस घट विरहा राम का, उस नींद न आवे ।
दादू तलफै विरहनी, उस पीड़ जगावे ॥ ७९ ॥

जिसके हृदय में भगवद्-विरह जग जाता है, उसे निद्रा नहीं आती। उसको विरह-वेदना ही जाग्रत रखती है। वह विरहनी राम के दर्शनार्थ तड़फती रहती है।

सारा शूरा नींद भर, सब कोई सोवे ।
दादू घाइल दर्दवंद, जागे अरु रोवे ॥ ८० ॥

सांसारिक संपूर्ण प्राणी विषय-भोगार्थ शूरवीर बने हुये हैं और सभी कोई इच्छा भरकर निद्रा में सोते हैं। किन्तु भगवद्-विरह-वेदना से युक्त भक्त तो घायल की भाँति जागते हुये भगवद्-दर्शनार्थ रोते ही रहते हैं।

पीड़ पुराणी ना पड़े, जे अन्तर बेध्या होइ ।
दादू जीवन मरण लौं, पड़्या पुकारे सोइ ॥ ८१ ॥

रोगी का रोग पुराना पड़ जाता है तब उसका हृदय उससे विशेष व्याकुल नहीं होता। किन्तु जिस भक्त का आन्तर हृदय भगवद्-विरह-वेदना से विद्ध हो जाता है, उसकी वह व्यथा पुरानी नहीं पड़ती, प्रत्युत प्रति-पल बढ़ती हुई असह्य हो जाती है। वह अपने जीवन में मरण-पर्यन्त उस दु:ख में पड़ा हुआ अपने परमप्रिय परमात्मा के दर्शनार्थ पुकारता रहता है।

दादू विरही पीड़ सौं, पड़्या पुकारे मित्त ।
राम बिना जीवे नहीं, पीव मिलन की चित्त ॥ ८२ ॥

विरही जन विरह-वेदना में पड़े हुये अपने परम मित्र परमेश्वर के दर्शनार्थ पुकारते रहते हैं। उनके चित्त में निरंतर प्रियतम के मिलन की इच्छा बनी रहती है। वे निरंजन राम के चिन्तन बिना एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकते।

जे कबहूँ विरहनि मरे, तो सुरति विरहनी होइ ।
दादू पिव पिव जीवतां, मुवाँ भी टेरे सोइ ॥ ८३ ॥

यदि प्रारब्ध-वश कदाचित् प्रियतम के दर्शन बिना ही विरही का देहान्त हो जाता है तो उसकी वृत्ति विरहनी बनकर स्थूल शरीर की स्थिति के समान ही मृत्यु के पश्चात् भी पीव-पीव पुकारती रहती है।

आमेर मे विरही के शरीरान्त पर नभमार्ग से जाते हुये उसकी वृत्ति का 'पीव-पीव' शब्द, योग बल द्वारा सुनकर यह साखी कही थी। प्रसंग कथा दृ. सु. सि. त. ९/३३१ में देखो।

दादू अपनी पीड़ पुकारिये, पीड़ पराई नांहि ।
पीड़ पुकारे सो भला, जाके करक[१] कलेजे मांहि ॥ ८४ ॥

अन्य विरही जनों के विरह-वेदना युक्त शब्दों को सुनाने मात्र से ही कोई विरह-जन्य लाभ को प्राप्त नहीं कर सकता। अपने हृदय की विरह-वेदना से पुकारने पर ही हरि दर्शन का लाभ होता है। जिसके हृदय में विरह व्यथा[१] है और उसको शान्त करने के लिए ही निरंतर प्रभु को पुकारता है, वही श्रेष्ठ विरही भक्त है।

विरह-विलाप

ज्यों जीवत मृतक कारणे, गत[१] कर नाखे आप ।
यों दादू कारण राम के, विरही करे विलाप ॥ ८५ ॥

८५-९२ में विरह-पूर्वक विलाप दिखा रहे हैं—जैसे जीवित वियोगिनी पतिव्रता नारी अपने मृतक पति के लिए सम्पूर्ण विषयों को त्याग कर स्वयं ही अपने देह को भस्म कर डालती है वैसे ही विरही भक्त अपने सभी अहंकार नष्ट[१] करके राम के दर्शनार्थ विलाप करते रहते हैं।

दादू तलफ-तलफ विरहनि मरे, करि करि बहुत विलाप ।
विरह अग्नि में जल गई, पीव न पूछे बात ॥ ८६ ॥

हम विरही जन प्रभु के दर्शनार्थ बारम्बार विलाप करते हुए तड़फ २ कर मर रहे हैं, विरहाग्नि में हमारी सम्पूर्ण वासनायें जल गई हैं, किन्तु खेद है अब भी हमारे प्रियतम परमात्मा हमारे दु:ख सुख की बात हम से नहीं पूछते।

दादू कहां जाऊँ ? कौन पै पुकारूं ? पीव न पूछे बात ।
पिव बिन चैन न आवई, क्यों भरूँ दिन रात ॥ ८७ ॥

मुझे भगवद्-दर्शन के बिना अपने जीवन में क्षणभर भी सुख न मिल सकेगा। मैं कहाँ जाऊँ और इस क्लेश की निवृत्ति के लिए किससे प्रार्थना करूं ? जिनके पास जाकर पुकार सुनानी है, वे तो मेरे हृदय में ही स्थित हैं, मेरे संकल्प मात्र को भी जानते हैं, तो भी वे प्रियतम मेरे दुःख-सुख की बात मुझसे नहीं पूछते। उनके बिना मेरे जीवन का एक-एक क्षण कठिनता से निकल रहा है, फिर मैं ये रात्रि दिन कैसे व्यतीत कर सकूंगा ?

दादू विरह वियोग न सह सकूँ, मो पै सह्या न जाइ।
कोई कहो मेरे पीव को, दरश दिखावे आइ ॥ ८८ ॥

अब मैं विरही यह वियोग का दुःख न सह सकूंगा। यह अति असह्य हो चला है, मुझसे सहा भी न जायगा। भगवत् प्राप्त संत जनों में कोई संत तो दया करके मेरे प्रभु को मेरी स्थिति कहो ! जिससे वह मेरे हृदय में आकर मुझे अपना दर्शन देकर कृतार्थ कर सके।

दादू विरह वियोग न सह सकूं, निशि दिन साले मोहि।
कोई कहो मेरे पीव को, कब मुख देखूं तोहि ॥ ८९ ॥

मैं विरही वियोग-जन्य दुःख नहीं सह सकता, कारण यह तो रात-दिन मुझे व्याकुल कर रहा है। भगवत् साक्षात्कार प्राप्त कोई महापुरुष तो मेरे प्रियतम को, मेरी यह प्रार्थना सुनाओ-मैं आपका मुख कब देख सकूंगा ? संभव है नियत समय ज्ञात होने पर दर्शनाशा से मेरे प्राण देह से न निकलें।

दादू विरह वियोग न सह सकूं, तन मन धरे न धीर ।
कोई कहो मेरे पीव को, मेटे मेरी पीर ॥ ९० ॥

मैं विरही प्रभु-वियोग नहीं सहन कर सकूंगा, क्योंकि मेरा तन अति कृश होने से और मन प्रभु-साक्षात्कार की आशा से अधीर हो रहा है। अत: भगवत् प्राप्त कोई दयालु पुरुष तो मेरे प्रियतम को मेरी स्थिति कहो, सम्भव है मेरी स्थिति सुनने से उन्हें दया आ जाय और वे मुझे दर्शन देकर मेरी वियोग-व्यथा नष्ट कर दें।

दादू कहै—साधु दुखी संसार में, तुम बिन रह्या न जाइ ।
औरों के आनन्द है, सुख सौं रैनि बिहाइ ॥ ९१ ॥

भगवन् ! इस संसार में आपके विरही संत ही दुखी हैं। आपके दर्शन बिना उनसे सुख-पूर्वक नहीं रहा जा सकता। अन्य सांसारिक प्राणी तो मायिक पदार्थों की प्राप्ति में ही आनन्द मानकर अपनी आयु-रात्रि अज्ञान-निद्रा में ही सुख से व्यतीत कर रहे हैं।

दादू लाइक हम नहीं, हरि के दरशन जोग।
बिन देखे मर जाँहिंगे, पिव के विरह वियोग ॥ ९२ ॥

ज्ञात होता है- अभी हम हरि के दर्शन करने में समर्थ यथार्थ साधन करने के योग्य नहीं हो सके हैं। अत: प्रियतम के दर्शन बिना ही उनके वियोग जन्य-विरह-दुःख से दुःखी होकर मर जायेंगे।

विरह पतिव्रत

दादू सुख साँई सौं, और सबै ही दु:ख ।
देखूँ दरशन पीव का, तिस ही लागे सुख ॥ ९३ ॥

९३-९४ में विरह-पूर्वक पतिव्रत दिखा रहे हैं—हम विरही जनों को तो भगवद्-दर्शन से ही सुख मिल सकेगा। अन्य संपूर्ण मायिक पदार्थों की प्राप्ति में तो हमें दु:ख ही होता है। प्रियतम ! अब ऐसी कृपा करिये, जिससे हम आपके दर्शन निरंतर करते रहें। उस निरंतर दर्शन करने रूप कार्य में लगे रहने से ही, हमें अखंड सुख मिलेगा।

चंदन शीतल चन्द्रमा, जल शीतल सब कोइ ।
दादू विरही राम का, इन सौं कदे न होइ ॥ ९४ ॥

चन्दन, चन्द्रमा और जल के शीतादि गुणों से सर्प, चकोर तथा मीनादि सभी को शांति प्राप्त होती है, किन्तु हम राम के विरही जनों को राम दर्शन बिना इन चन्दनादि सांसारिक पदार्थों से सुख कभी न हो सकेगा।

विरही-विरह-लक्षण

दादू घाइल दर्दवंद, अंतर करे पुकार ।
साँई सुने सब लोक में, दादू यहु अधिकार ॥ ९५ ॥

९५-९६ में विरही तथा विरह के लक्षण कह रहे हैं—विरही विरह-बाणाघात से घायल होकर दु:खी रहते हैं और प्रभु के दर्शनार्थ आन्तर हृदय में निरंतर पुकारते रहते हैं। कारण, प्रभु व्यापक होने से सभी लोकों में सभी की आन्तर पुकार सुन लेते हैं। मेरा भी यही अधिकार है कि प्रभु को पुकारता ही रहूं।

दादू जागे जगत-गुरु, जग सगला सोवे ।
विरही जागे पीड़ सौं, जे घाइल होवे ॥ ९६ ॥

इस संसार में अज्ञान-निद्रा से सर्वथा मुक्त होकर तो एक जगद्गुरु परमात्मा ही जागता है और जो भगवद्-विरह-बाण से विद्ध होकर घायल हो रहे हैं, वे उस पीड़ा के कारण जागते हैं। अन्य भगवद्-विमुख सारा संसार मोह-निद्रा में प्रसुप्त है।

विरह-ज्ञानाग्नि

विरह अग्नि का दाग दे, जीवत मृतक गोर ।
दादू पहली घर किया, आदि हमारी ठौर ॥ ९७ ॥

कुछ लोग देहान्त होने पर देह को जलाने वा मिट्टी में दबाने से सुगति मानते हैं अन्यथा दुर्गति, उसी प्रथा को आगे रख कर कह रहे हैं—हमने तो अपने शरीर को विरहाग्नि से और अज्ञान को ज्ञानाग्नि से जलाकर तथा जीवितावस्था में ही मृतक समान निर्द्वन्द्व हो सहजावस्था रूप कब्र में प्रविष्ट होकर, मरने से पहले ही हमारे ब्रह्मरूप आदि स्थान में निष्ठा रूप घर तैयार कर लिया है अर्थात् ब्रह्मस्वरूप में ही स्थित रहते हैं।

विरह पतिव्रत

दादू देखे का अचरज नहीं, अणदेखे का होइ।
देखे ऊपरि दिल नहीं, अणदेखे को रोइ ॥ ९८ ॥

विरह-पूर्वक पतिव्रत दिखा रहे हैं—देखे हुये मायिक प्रपंच को देखने में कोई आश्चर्य की बात नहीं। जिन परमात्मा का अब तक दर्शन नहीं हुआ है, उनका देखना ही आश्चर्य रूप माना जाता है। अत: देखे हुये मायिक प्रपंच पर अपना मन न लगा कर बिना देखे हुये भगवान् के दर्शनार्थ ही विरह-पूर्वक रोते रहना चाहिए। आमेर में दो सिद्ध बंद गुफा में घुसकर महाराज के पास बैठ काश्मीर में दौड़ते हुये घोड़े देख कर बात करने लगे थे—ये दादूजी को नहीं दीखते होंगे ? इस पर यह साखी कही थी। प्रसंग कथा दृ. सु. सि. त. ७/२९१ में देखो।

विरह उपजनि

पहली आगम विरह का, पीछे प्रीति प्रकाश।
प्रेम मगन लै लीन मन, तहां मिलन की आश ॥ ९९ ॥

९९-१११ में विरह उत्पत्ति आदि विरह-विषयक विचार कह रहे हैं—प्रथम हृदय में भगवद्-विरह प्रकट होता है, फिर भगवान् में विशेष प्रीति प्रकट होती है। पश्चात् भक्त का मन प्रेम में निमग्न रहने लगता है और वृत्ति भगवत्-स्वरूप में लीन रहने लगती है, तब निश्चय-पूर्वक भगवत् मिलन की आशा हो जाती है।

विरह वियोगी मन भला, साँई का वैराग।
सहज संतोषी पाइये, दादू मोटे भाग ॥ १०० ॥

भगवद्-दर्शनार्थ विषयों से विरक्त, स्वाभाविक संतोषी, निर्मल मन, वियोगी भक्त जब विरह-वेदना से विकल रहता है, तभी भगवान् प्राप्त होते हैं और जिसे भगवत्, साक्षात्कार हो जाता है—वही संसार में बड़भागी माना जाता है।

दादू तृषा बिना तन प्रीति न उपजे, शीतल निकट जल धरिया ।
जनम लगैं जिव पुणग[1] न पीवे, निर्मल दह दिश भरिया ॥ १०१ ॥

समीप में शीतल जल रखा होने पर भी प्यास बिना प्राणी के मन में उसे पान करने की रुचि नहीं होती, वह एक बिन्दु[1] भी नहीं पीता। वैसे ही शुद्ध ब्रह्म अस्ति, भाति, प्रिय रूप से सर्वत्र व्यापक है किन्तु जब तक जीव उन्हें प्राप्त करने के लिए विरह-वेदना से व्यथित नहीं होता, तब तक नहीं मिलते।

दादू क्षुधा बिना तन प्रीति न उपजे, बहु विधि भोजन नेरा ।
जनम लगैं जिव रती न चाखे, पाक पूरि बहुतेरा ॥ १०२ ॥

विविध प्रकार के बहुत से भोजन समीप में पड़े रहने पर भी यदि प्राणी को क्षुधा न हो तो उनके खाने की रुचि उसके मन में नहीं होती। वैसे ही तृप्तिकारक संपूर्ण पाकों का शिरोमणि परब्रह्म-पाक अपनी अनन्त महिमा द्वारा सभी विश्व में परिपूर्ण है किन्तु विरह-वेदना

बिना जीव जीवन-भर दौड़-धूप मचा कर भी ब्रह्मानन्द का किंचित् मात्र भी अनुभव नहीं कर सकता।

दादू तपत बिना तन प्रीति न उपजे, संग ही शीतल छाया ।
जनम लगैं जीव जाणे नांहीं, तरुवर त्रिभुवन राया ॥ १०३ ॥

शीतकाल में अति निकट श्रेष्ठ वृक्ष की शीतल छाया हो तो भी तेज धूप के बिना उसमें बैठने की रुचि नहीं होती। वैसे ही जब तक विरह-व्यथा प्रकट नहीं होती, तब तक प्राणी त्रिलोक-स्वामी परमात्मा के स्वरूप को जानने के लिए जन्म-पर्यन्त यत्न करे तो भी नहीं जान पाता।

दादू चोट बिना तन प्रीति न उपजे, औषधि अंग रहंत ।
जनम लगैं जीव पलक न परसे, बूंटी अमर अनंत ॥ १०४ ॥

जब तक रोग वेदना नहीं होता, तब तक अपने शरीर के पास कोट की जेब में औषधि रहने पर भी उसके खाने की रुचि नहीं होती, वैसे ही जब तक विरह-व्यथा नहीं होती तब तक अमर करने वाली अनन्त परमात्मा रूप बूंटी को जीव जीवन भर प्रयत्न करके एक क्षण भर के लिए भी प्राप्त नहीं कर सकता।

दादू चोट न लागी विरह की, पीड़ न उपजी आइ ।
जागै न रोवे धाह दे, सोवत गई बिहाइ ॥ १०५ ॥

जिनके भगवद्-विरह की चोट नहीं लगी एवं उनके हृदय में भगवद् प्राप्ति के लिए व्यथा भी नहीं हुई और वे मोह-निद्रा से जागकर भगवद्-दर्शनार्थ धाड़ मार-मार रोये भी नहीं। ऐसे सांसारिक प्राणियों की आयु अज्ञान-निद्रा में सोते-सोते ही बीत गई।

दादू पीड़ न ऊपजी, ना हम करी पुकार ।
तातैं साहिब ना मिल्या, दादू बीती बार ॥ १०६ ॥

न तो हमारे में विरह-वेदना प्रकट हुई और न व्याकुल होकर हमने दर्शनार्थ भगवान् की प्रार्थना ही की। इसीलिए हमें भगवान् नहीं मिले और हमारी आयु का समय व्यर्थ ही व्यतीत हो गया।

अंदर पीड़ न ऊभरै, बाहर करे पुकार ।
दादू सो क्यों कर लहे, साहिब का दीदार ॥ १०७ ॥

जिसके हृदय में विरह-व्यथा तो उत्पन्न हुई नहीं और केवल लोक दिखावे के लिये बाहर से पुकारता है, वह भगवत् का साक्षात्कार कैसे कर सकता है ?

मन ही मांहीं झूरणा, रोवे मन ही मांहिं ।
मन ही मांहीं धाह दे, दादू बाहर नांहिं ॥ १०८ ॥

प्रभु दर्शन के इच्छुक विरही को चाहिए—अपने मन में ही विलाप करते हुए धाड़ मार २ कर रोवे, बाहर लोक दिखावे के लिए रोना आदि व्यवहार न करे।

बिन ही नैनहुँ रोवणा, बिन मुख पीड़ पुकार ।
बिन ही हाथों पीटणा, दादू बारंबार ॥ १०९ ॥

भगवद्-विरही जन यद्यपि वियोगिनी नारी के समान बाहर से रोते, पुकारते और शिर आदि को अपने हाथों से पीटते तो नहीं दिखाई देते, किन्तु उनके अन्त:करण में ये क्रियाएं बारंबार होती ही रहती हैं।

प्रीति न उपजे विरह बिन, प्रेम भक्ति क्यों होइ ।
सब झूठे दादू भाव बिन, कोटि करे जे कोइ ॥ ११० ॥

विरह बिना हृदय में प्रीति प्रकट नहीं होती और जिसमें प्रेम का अँकुर ही नहीं, उससे प्रेमाभक्ति कैसे हो सकती है ? परम प्रेम के बिना यदि कोई भगवद्-दर्शनार्थ कोटि उपाय करे तो भी वे मिथ्या ही हैं, उनसे दर्शन न होगा।

दादू बातों विरह न ऊपजे, बातों प्रीति न होइ ।
बातों प्रेम न पाइये, जिनि रु पतीजे कोइ ॥ १११ ॥

केवल विरह और प्रीति उत्पन्न होने की बातों से विरह और प्रीति नहीं उत्पन्न होते। प्रेम की बातें करने से ही प्रेम नहीं मिलता। केवल इनकी बातें करने वाले पर ऐसा विश्वास न करना चाहिए कि—यह वास्तव में विरही तथा प्रेमी भक्त है।

विरह-उपदेश

दादू तो पिव पाइये, कश्मल[1] है सो जाइ ।
निर्मल मन कर आरसी, मूरति मांहिं लखाइ ॥ ११२ ॥

११२-११५ में विरह सम्बन्धी उपदेश कर रहे हैं—यदि विरह द्वारा हृदय के पापादि[1] दोष नष्ट हो जायँ तो प्रभु मिल सकते हैं। मन-दर्पण को निर्मल करो फिर तो भीतर ही प्रभु-मूर्ति दिखाई देने लगेगी।

दादू तो पिव पाइये, करिये मंझ विलाप ।
सुनि है कबहुँ चित्त धरि, परकट होवे आप ॥ ११३ ॥

यदि भगवद्-विरह से व्यथित होकर, उनके दर्शनार्थ अपने अन्त:करण में ही विलाप करते रहोगे तो वे कभी सुनकर अपने मन में तुम्हारी बात तुम्हें दर्शन देने के लिये रख लेंगे और स्वयं तुम्हारे हृदय में प्रकट हो जायेंगे।

दादू तो पिव पाइये, कर सांई की सेव ।
काया मांहिं लखाइसी, घट ही भीतर देव ॥ ११४ ॥

यदि विरह-वेदना सहित भगवान् की भक्ति की जाय तो वे प्राप्त हो जाते हैं। वे निरंजनदेव अन्त:करण में ही साक्षी रूप से स्थित हैं और भक्ति की परिपाकावस्था में काया के भीतर ही दीख जायेंगे।

दादू तो पिव पाइये, भावै[1] प्रीति लगाइ ।
हेजैं[2] हरि बुलाइये, मोहन मंदिर आइ ॥ ११५ ॥

यदि श्रद्धा[1] पूर्वक भगवान् में प्रीति की जाय तो वे प्राप्त हो जाते हैं। प्रेम[2] पूर्वक हरि का आह्वान करो, वे विश्व-विमोहन भगवान् तुम्हारे हृदय-मंदिर में आ जायेंगे।

विरह-उपजनि

दादू जाके जैसी पीड़ है, सो तैसी करे पुकार ।
को सूक्षम को सहज में, को मृतक तिहिँ बार ॥ ११६ ॥

त्रिविध विरह उत्पत्ति दिखा रहे हैं—जिस विरही भक्त के हृदय में जैसी विरह-वेदना होती है, वह वैसी ही पुकार करता है। जिसमें अल्प व्यथा होती है वह किंचित् समय पुकारता है, जिसमें तीव्र होती है वह स्वाभाविक जीवन भर पुकारता रहता है और जिसमें तीव्रतर अवस्था आ जाती है, वह तो एक क्षण भर का वियोग भी सहन नहीं कर सकता, तत्काल ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

विरह-लक्षण

दरद हि बूझे दरदवंद, जाके दिल होवे ।
क्या जाणे दादू दरद की, नींद भर सोवे ॥ ११७ ॥

विरह का लक्षण विरही ही जानता है, यह कह रहे हैं—जिसके हृदय में विरह-व्यथा उत्पन्न हुई है, वही उसको जानता है। जिनके हृदय में प्रकट नहीं हुई, उन सांसारिक प्राणियों को भगवद्-विरह-वेदना का अनुभव नहीं होता। उनकी तो विषय-सुख में ही अलम् बुद्धि रहती है, अत: वे दिन भर भोगों के लिए यत्न करते हैं और रात्रि को यथेष्ट सोते हैं, किन्तु भगवद् विरही जन रात-दिन रोते रहते हैं।

करणी बिना कथनी

दादू अक्षर प्रेम का, कोई पढ़ेगा एक ।
दादू पुस्तक प्रेम बिन, केते पढ़ैं अनेक ॥ ११८ ॥

कर्त्तव्य रहित कथन पर कह रहे हैं—भगवत् प्रेम रहित अनेक विद्वान् कितनी ही पुस्तकें पढ़ते आ रहे हैं किन्तु भगवान् के अविनाशी प्रेम का पाठ तो कोई विरला एक ही पढ़ेगा वा किसी विरले ने ही पढ़ा होगा।

दादू पाती प्रेम की, विरला बांचे कोइ ।
वेद पुराण पुस्तक पढ़ैं, प्रेम बिना क्या होइ ॥ ११९ ॥

परमेश्वर के प्रेम-पत्र को तो कोई विरले विरही भक्त ही पढ़ते हैं किन्तु चातुर्य बढ़ाने के लिए अनेक मानव वेद-पुराणादि पुस्तकें पढ़ते हैं, परन्तु प्रेम बिना क्या उन्हें भगवद्-दर्शन हो जाता है ? दर्शन तो प्रेम से ही होते हैं।

विरह-बाण

दादू कर बिन, शर बिन, कमान बिन, मारै खैंचि कसीस[1]।
लागी चोट शरीर में, नख शिख सालै सीस ॥ १२० ॥

१२०-१२९ में विरह-बाणाघात विषयक विचार कह रहे हैं—भगवान् भक्तजनों के बिना हाथ, बिना शर और बिना धनुष ही निर्दयता[1] पूर्वक खींच कर विरह-बाण मारते हैं। विरह-बाण की चोट जिनके शरीर में लग जाती है, उनके शरीर को नख से शिर की शिखा पर्यन्त व्याकुल करती रहती है।

दादू भलका मारे भेद सों, सालै मँझि पराण।
मारण हारा जाणि है, कै जिहिं लागे बाण ॥ १२१ ॥

भगवान् भक्त के विरह-बाण बड़े रहस्य-पूर्वक मारते हैं। किसी अन्य को तो पता भी नहीं लगता, किन्तु भक्त के मन में भारी व्यथा होती रहती है। उस व्यथा को या तो मारने वाले भगवान् जानते हैं या जिसके बाण लगता है, वह जानता है।

दादू सो शर हमको मारिले, जिहिं शर मिलिये जाइ ।
निश दिन मारग देखिये, कबहूं लागे आइ ॥ १२२ ॥

भगवान् ! आप हमें विरह-व्यथा से मारना ही चाहते हैं, तो वह तीव्रतर विरह-बाण मारिये, जिसके लगते ही हम देहादि आसक्ति से ऊंचे उठकर शीघ्र ही आपसे आ मिलें। हम निश-दिन उस तीव्रतर विरह-बाण की प्रतीक्षा कर रहे हैं—वह कब आकर हमारे लगेगा।

जिहिं लागी सो जागि है, बेध्या करै पुकार ।
दादू पिंजर पीड़ है, साले बारंबार ॥ १२३ ॥

जिसके विरह-बाण की चोट लगी है, वह उससे विद्ध होकर भगवद्-दर्शनार्थ पुकारता हुआ जागता रहता है और उसके हृदय-पिंजरे में स्थित वह पीड़ा उसे बारंबार व्यथित करती रहती है।

विरही सिसकै पीड़ सौं, ज्यों घायल रण मांहि ।
प्रीतम मारे बाण भर, दादू जीवै नांहि ॥ १२४ ॥

जैसे रण में घायल हुआ वीर सिसकता है, वैसे ही विरही विरह-व्यथा से व्याकुल रहता है। प्रियतम प्रभु अपनी शक्ति भर उसके विरह-बाण मारते हैं किन्तु वह भगवद्-साक्षात्कार बिना विषय-सुखों से सुखी होकर जीवित नहीं रह सकता।

दादू विरह जगावे दरद को, दरद जगावे जीव।
जीव जगावे सुरति को, पंच पुकारें पीव ॥ १२५ ॥

भगवद्-वियोग का अनुभव होने पर उसकी प्राप्ति के लिए व्यथा होने लगती है। उस व्यथा से व्यथित होकर जीव मोह-निद्रा से जाग जाता है और अपनी चित्तवृत्ति को विषयाकार स्थिति

रूप निद्रा से उठाकर भगवदाकार ही रखने लगता है। तब पंच ज्ञानेन्द्रियाँ भी भगवत्-परायण होकर उसी को पुकारने लगती हैं अर्थात् उसी का दर्शन, शब्द, गंध, स्पर्श और रस चाहती हैं।

दादू मारे प्रेम सौं, बेधे साधु सुजाण ।
मारणहारे को मिले, दादू विरही बाण ॥ १२६ ॥

अन्य वीर द्वेष पूर्वक लक्ष्य को सिद्ध करते हैं और उनका अस्त्र लक्ष्य को नष्ट करके वहीं गिर पड़ता है वा मंत्र सिद्ध हो तो स्वयं वीर के पास लौट आता है, किन्तु भगवान् अपने बुद्धिमान् साधक संत-लक्ष्य को प्रेम पूर्वक विरह-बाण से विद्ध करते हैं और वह बाण लक्ष्य को बेधकर लक्ष्य के सहित भगवान् में ही आ मिलता है अर्थात् साधक, साधन और साध्य एक रूप हो जाते हैं।

सहजैं मनसा मन सधै, सहजैं पवना सोइ ।
सहजैं पंचों थिर भये, जे चोट विरह की होइ ॥ १२७ ॥

यदि प्राणी के हृदय में भगवद्-विरह की चोट लग जाय तो स्वाभाविक ही उसकी मनोवृत्तियाँ अन्तर्मुख होकर मन प्रभु में स्थिर हो जाता है। मन के स्थिर होने पर प्राण की गति सूक्ष्म होकर वह भी स्थिर हो जाती है। प्राण, मन, निरोध के सिद्ध होते ही पंच ज्ञानेन्द्रियें स्वाभाविक ही परमात्मा के स्वरूप में लग कर स्थिर हो जाती हैं।

मारणहारा रहि गया, जिहिं लागी सो नांहिं ।
कबहूं सो दिन होइगा, यहु मेरे मन मांहिं ॥ १२८ ॥

जिसके भी भगवद्-विरह-बाण की चोट लगी, उसका देहादि अहंकार सब नष्ट हो गया और उन असत्य अहंकारों के स्थान में विरह-बाण को मारने वाले भगवान् ही अभेद रूप से स्थिर हो गये। प्रभो ! उक्त प्रकार से मेरा और आपका अभेद होगा, वह दिन कब उदय होगा ? उसे देखने की मेरे मन में उत्कट अभिलाषा है।

प्रीतम मारे प्रेम सौं, तिनको क्या मारे ।
दादू जारे विरह के, तिनको क्या जारे ॥ १२९ ॥

जिन भक्तों का मन भगवद्-विरहाग्नि से जल चुका है, उन्हें काम, शोकादि क्या जलायेंगे ? अर्थात् उनके मन पर कामादि अपना प्रभाव नहीं डाल सकते। जिनको प्रियतम प्रभु ने अपने प्रेम से मारा है, उन्हें काल क्या मारेगा ? वे तो काल-कलना से रहित ब्रह्मरूप हो जाते हैं।

छिन-विछोह

दादू पड़दा पलक का, येता अंतर होइ ।
दादू विरही राम बिन, क्यों करि जीवे सोइ ॥ १३० ॥

विरही भक्त को क्षण का भगवद्-वियोग भी असह्य है, यह कह रहे हैं—जैसे नेत्र पर पलक का पड़दा आ जाता है, तब उसे कुछ भी नहीं दीखता, वैसे ही विरही भक्त और भगवान् के

मध्य एक क्षण का अन्तराय भी विरही के जीवन को अंधकारमय बना देता है, फिर वह विरही-भक्त राम के साक्षात्कार बिना सुखपूर्वक कैसे जीवित रह सकता है ?

विरह-लक्षण

काया मांहैं क्यों रह्या, बिन देखे दीदार ।
दादू विरही बावरा, मरे नहीं तिहिँ बार ॥ १३१ ॥

१३१-१३२ में विरह लक्षण कह रहे हैं—हे विरही भक्त ! भगवत् साक्षात्कार के बिना तेरा प्राण शरीर में कैसे रह रहा है ? उत्तम विरही तो मीन-वारि सम भगवत् मिलन बिना जीवित नहीं रह सकता। जो विरही भगवान् के लिए तत्काल नहीं मर सकता; वह वास्तविक विरह की स्थिति से अनभिज्ञ तथा पागल है।

बिन देखे जीवै नहीं, विरह का सहिनाण ।
दादू जीवै जब लगैं, तब लग विरह न जाण ॥ १३२ ॥

वास्तव में तीव्र विरह प्रकट होने पर विरही भक्त भगवान् को बिना देखे जीवित नहीं रह सकता। यही उत्तम विरह का लक्षण है। जब तक सुख पूर्वक जीवित है, तब तक उत्तम विरह नहीं जानना चाहिए।

विरह-विनती

रोम-रोम रस प्यास है, दादू करहि पुकार ।
राम घटा दल उमंगि कर, बरसहु सिरजन हार ॥ १३३ ॥

विरह पूर्वक दर्शनार्थ विनय कर रहे हैं—राम ! आपके दर्शन-रस की प्यास मेरे रोम २ को लग रही है। सृष्टिकर्त्ता ! मैं विरही बारंबार प्रार्थना कर रहा हूँ-जैसे बादल समूह की घटा उमंग कर जल वर्षाती है वैसे ही आप मुझ पर प्रसन्न होकर दर्शनानन्द रस वर्षाइये।

विरही-विरह-लक्षण

प्रीति जु मेरे पीव की, पैठी पिंजर मांहिं ।
रोम-रोम पिव-पिव करे, दादू दूसर नांहिं ॥ १३४ ॥

१३४-१३५ में विरही और विरह के लक्षण कह रहे हैं—मेरे शरीर पिंजर में प्रियतम प्रभु की प्रीति प्रवेश करके स्थिर हो गई है। मेरा रोम २ पीव २ ही पुकारता है। अब मेरा प्रभु के बिना अन्य लक्ष्य नहीं रहा है।

सब घट श्रवणा सुरति सौं, सब घट रसना बैन ।
सब घट नैना ह्वै रहे, दादू विरहा ऐन ॥ १३५ ॥

जिस समय विरही भक्त का संपूर्ण शरीर श्रवण रूप होकर भगवत् का आंतरनाद सुनने के लिए, सुरति रूप होकर ध्यान करने के लिए, रसना रूप होकर भक्ति-रस पान करने के लिए, नेत्र रूप होकर दर्शन के लिए निरंतर तत्पर रहता है, तब ही उसमें विरह का प्रत्यक्ष रूप माना जाता है।

विरह-विलाप

रात दिवस का रोवणाँ, पहर पलक का नांहि ।
रोवत-रोवत मिल गया, दादू साहिब मांहि ॥ १३६ ॥

१३६-१३९ में विरह पूर्वक विलाप दिखा रहे हैं—भगवद्-विरही जनों का रुदन रात-दिन निरंतर होता रहता है, सांसारिक मनुष्यों के समान पहर वा क्षण का नहीं होता। वे तो भगवद्-दर्शनार्थ रोते-रोते अन्त में भगवत् स्वरूप में ही मिल जाते हैं।

दादू नैन हमारे बावरे, रोवें नहिं दिन रात ।
सांई संग न जागहीं, पिव क्यों पूछे बात ॥ १३७ ॥

हमारे नेत्र पागल हैं, इसीलिए तो अपनी तृप्ति के कारण भगवद्-दर्शनार्थ दिन-रात नहीं रो रहे हैं। हमारा मन भी नाम-चिन्तन द्वारा भगवान् के साथ नहीं जागता, फिर ऐसी स्थिति पर प्रियतम प्रभु हमारे दु:ख सुख की बात कैसे पूछेंगे ?

नैनहुँ नीर न आइया, क्या जाणैं ये रोइ ।
तैसे ही कर रोइये, साहिब नैनहुँ जोइ ॥ १३८ ॥

भगवद्-विरह वेदना मेरे हृदय को व्यथित कर रही है किन्तु मेरे इन नेत्रों में तो किंचित् भी अश्रु-जल नहीं आया है। ठीक है, ये मायिक भोग-पदार्थों के लिए ही रोना सीखे हैं, मायातीत ब्रह्म प्राप्ति के लिए रोने की पद्धति को ये क्या जानें ? किन्तु तुम विरही-जनों को तो उसी प्रकार रोना चाहिए, जिस प्रकार शीघ्र ही अपने नेत्रों से भगवद् का दर्शन कर सकें।

दादू नैन हमारे ढीठ[1] हैं, नाले नीर न जांहिं ।
सूके सरां सहेत वै, करंक भये गलि मांहिं ॥ १३९ ॥

हमारे नेत्र अति निर्लज्ज[1] हैं, कारण, भगवद्-विरह-व्यथा होने पर भी इनसे अश्रुजल के नाले नहीं चल रहे हैं और यदि भीतर जल ही नहीं रहा है तो सूखे सरोवर की मच्छियों के समान अडिग स्नेह से गल कर पंजर क्यों नहीं हो गये ?

विरही-विरह-लक्षण

दादू विरह प्रेम की लहरि में, यहु मन पंगुल होइ ।
राम नाम में गलि गया, बूझै विरला कोइ ॥ १४० ॥

विरही और विरह का लक्षण कह रहे हैं—विरह-सरिता की प्रेम-तरंग में यह मन विषयाशा रूप पैरों से रहित होकर निश्चल हो जाता है और राम-नाम-स्मरण द्वारा सब अहंकार गल जाने पर मन नाम के साथ अभेद हो जाता है, क्षण भर भी स्मरण नहीं त्यागता। इस स्थिति को कोई विरला संत ही जान पाता है।

विरहाग्नि

विरह अग्नि में जल गये, मन के मैल विकार ।
दादू विरही पीव का, देखेगा दीदार ॥ १४१ ॥

१४१-१४३ में विरहाग्नि विषयक विचार कह रहे हैं—जिसके मन के पाप और कामादि विकार विरहाग्नि से जल गये हैं, वही विरही अपने प्रभु का साक्षात्कार कर सकेगा।

विरह अग्नि में जल गये, मन के विषय विकार ।
तातैं पंगुल ह्वै रह्या, दादू दर दीदार ॥ १४२ ॥

हमारे मन की विषय-वासना और कामादि विकार विरहाग्नि में जल गये हैं। इसी से यह अब लोकान्तर में जाने की इच्छा रूप पैरों से रहित होकर भगवद्-दर्शनार्थ एकाग्रता रूप द्वार पर स्थित है।

जब विरहा आया दरद सौं, तब मीठा लागा राम ।
काया लागी काल ह्वै, कड़वे लागे काम ॥ १४३ ॥

जब तीव्र वेदना सहित भगवद्-विरह हमारे में प्रकट हुआ, तब एकमात्र राम ही मधुर लगने लगे। प्रथम देहासक्ति होने से जो देह-सेवा ही प्रिय लगती थी, अब वह देहासक्ति काल रूप भासने लगी है, कारण देहासक्ति से ही बारम्बार मृत्यु होती है। प्रथम जो सांसारिक भोग-प्राप्ति के कार्य प्रिय लगते थे, वे अब अति कटु प्रतीत होने लगे हैं, क्योंकि उन सकाम कर्मों का ही तो फल जन्मादि संसार है।

विरह-बाण

जब राम अकेला रह गया, तन मन गया विलाइ ।
दादू विरही तब सुखी, जब दरश परस मिल जाइ ॥ १४४ ॥

विरह-बाणाघात का फल कह रहे हैं—जब विरह-बाणाघात से देहाध्यास और मन के विकार नष्ट हो जाते हैं, तब मन में एकमात्र राम का चिन्तन ही रह जाता है। फिर जब राम के दर्शन करके राम में ही मिल जाता है, तब ही विरही सुखी होता है।

विरही-विरह-लक्षण

जे हम छाड़ैं राम को, तो राम न छाड़ै ।
दादू अमली अमल तैं, मन क्यों करि काढ़ै ॥ १४५ ॥

१४५-१५२ में विरही और विरह के लक्षण कह रहे हैं—जैसे नशेबाज नशे को छोड़ना चाहे तो भी नशे को मन से किस प्रकार निकाल सकता है ? अर्थात् नहीं। वैसे ही जब हम विरही विरह की तीव्रावस्था में राम को छोड़ना चाहें, तो भी राम हमको नहीं छोड़ते।

विरहा पारस जब मिले, विरहनि विरहा होइ ।
दादू परसै विरहनी, पिव पिव टेरे सोइ ॥ १४६ ॥

जब विरही भक्त को पारस के समान शुद्ध और उत्तम विरहावस्था की प्राप्ति होती है, तब विरही विरह-रूप ही हो जाता है और विरह के साथ अभेद हुआ वह विरही अपने प्रियतम को पीव-पीव पुकारता हुआ उसी में मिल जाता है।

आशिक[1] माशूक[2] ह्वै गया, इश्क कहावे सोइ ।
दादू उस माशूक का, अल्लह आशिक होइ ॥ १४७ ॥

जब प्रेमी[1], प्रेम-पात्र[2] हो जाता है तब ही उसका प्रेम सच्चा माना जाता है। इस प्रकार जब विरही भक्त भगवत्-स्वरूप में अभेदावस्था को प्राप्त करता है, तब स्वयं भगवान् उसके प्रेमी बन जाते हैं और वह प्रेम-पात्र बन जाता है। सीकरी शहर में अकबर बादशाह ने प्रश्न किया था—सच्चे प्रेम और सच्चे प्रेमी का क्या लक्षण है ? इस साखी से उसी का उत्तर दिया था।

राम विरहनी ह्वै रह्या, विरहनि ह्वै गई राम।
दादू विरहा बापुरा, ऐसे कर गया काम ॥ १४८ ॥

जब भगवान् के प्रति भक्त का विनीत विरह अनन्यभाव से अन्त:करण में आया, तब एक ऐसा विचित्र कार्य कर गया, जो किसी अन्य से होना असंभव ही था। वह बता रहे हैं—राम विरहनी हो गये और विरहनी राम बन गई अर्थात् राम और विरही भक्त में तादात्म्य हो गया।

विरह बिचारा ले गया, दादू हमको आइ ।
जहँ अगम अगोचर राम था, तहँ विरह बिना को जाइ ॥ १४९ ॥

भगवान् के विनीत विरह ने हमारे अन्त:करण में आकर, हमें सांसारिक भोगासक्ति से उठाया और मन से अगम, इन्द्रियों के अविषय, राम के वास्तव-स्वरूप में अभेद भाव से स्थिर कर दिया है। उस राम के स्वरूप में विरह बिना कोई भी प्रवेश नहीं कर सकता। अत: विरह ने हमारा बड़ा उपकार किया है।

विरह बापुरा आइ कर, सोवत जगावे जीव ।
दादू अंग लगाइ कर, ले पहुँचावे पीव ॥ १५० ॥

भगवान् का विनीत विरह भक्त के हृदय में आकर, भोगासक्ति रूप निद्रा से उसके अन्त:करण को जगाता है और अपने स्वरूप के साथ लगाकर अर्थात् विरही बनाकर, सांसारिक भावनाओं से ऊंचे उठा लेता है और भगवत्-स्वरूप में पहुँचा देता है। भक्त और भगवान् को एक कर देता है।

विरहा मेरा मीत है, विरहा वैरी नांहिं ।
विरहा को वैरी कहै, सो दादू किस मांहिं ॥ १५१ ॥

यद्यपि विरह शत्रु के समान व्यथित करता है किन्तु वास्तव में शत्रु नहीं है, प्रत्युत हमारा तो सच्चा मित्र है। क्योंकि उससे होने वाले कष्ट का फल अखंडानन्द रूप परमात्मा की प्राप्ति है। जो विरह को शत्रु कहता है, न जाने वह व्यक्ति किस स्थिति में है ? अर्थात् भगवद् भक्त न होकर सांसारिक प्राणी ही हो सकता है।

दादू इश्क अलह की जाति है, इश्क अलह का अंग।
इश्क अल्लाह वजूद है, इश्क अलह का रंग॥ १५२ ॥

प्रेम ही ईश्वर की जाति है, प्रेम ही उसे प्रिय है, प्रेम ही उसका देह है और प्रेम ही उसका रंग है। अकबर बादशाह ने चार प्रश्न किये थे— १ ईश्वर की जाति क्या है ? २ उसको प्रिय क्या है ? ३ उसके शरीर का आकार कैसा है ? ४ उसका रंग कैसा है ? उन्हीं का उत्तर इस साखी से दिया था।

साधु-महिमा

दादू प्रीतम के पग परसिये, मुझ देखन का चाव ।
तहाँ ले शीश नवाइये, जहाँ धरे थे पाँव ॥ १५३ ॥

भगवान् और संतों का जहां चरण स्पर्श हो, उस स्थान की तथा संतों की महिमा बता रहे हैं—विरह द्वारा प्रियतम परमात्मा को प्राप्त होने पर विरही परमात्मारूप ही हो जाते हैं। अत: उन प्रियतम रूप संतों के चरण स्पर्श करने चाहिए। मुझे भी ऐसे संतों के दर्शन करने का उत्साह रहता है। जहां भी प्रभु ने और संतों ने अपने चरण रखे थे, वहां मस्तक नवाकर वहां की धूलि शिर पर धारण करनी चाहिए। दादूजी महाराज जब तक अहमदाबाद में रहे तब तक प्रतिदिन कांकरिया तालाब पर जहां उनको वृद्ध रूप में भगवान् का दर्शन हुआ था, उस भूमि को प्रणाम करने जाते थे और यह साखी बोला करते थे।

विरह-पतिव्रत

बाट विरह की सोधि कर, पंथ प्रेम का लेहु।
लै के मारग जाइये, दूसर पाँव न देहु ॥ १५४ ॥

१५४-१५५ में जैसे पतिव्रता एक पति परायण होकर रहती है, वैसे ही एक विरह-साधना का व्रत लेने की प्रेरणा कर रहे हैं—विरह की प्राप्ति का साधन खोज करके प्रेम का पंथ पकड़ो और चित्त-वृत्ति को भगवत्-स्वरूप में लीन करके भगवत् में ही प्रवेश करो। इस विरह रूप भगवत्-प्राप्ति के साधन से भिन्न नाना सकाम साधनों में मत पड़ो।

विरहा बेगा भक्ति सहज में, आगे पीछे जाइ।
थोड़े मांहीं बहुत है, दादू रहु ल्यौ लाइ ॥ १५५ ॥

तीव्र विरह शीघ्र ही भगवान् से मिला देता है और नवधादि भक्ति के साधक अपनी साधनानुसार आगे पीछे सहजावस्था में जाकर भगवान् से मिलते हैं। विरह थोड़े समय में ही बहुत लाभ पहुँचाता है। अत: विरह द्वारा ही अपनी वृत्ति सदा भगवान् में लगाये रहो।

विरह-बाण।

विरहा बेगा ले मिले, ताला-बेली पीर ।
दादू मन घाइल भया, सालै सकल शरीर ॥ १५६ ॥

विरह-बाण की विशेषता कह रहे हैं—जब तीव्र विरह-बाण लगता है, तब अत्यन्त व्याकुलता-प्रद पीड़ा के सहित मन घायल हो जाता है। वह वेदना सारे शरीर को व्यथित करती है। ऐसा विरह शीघ्र ही सांसारिक भोगासक्ति से ऊंचा उठाता है और अपने साथ लेकर भगवान् से मिला देता है।

विरह-विनती

आज्ञा अपरंपार की, बसि अम्बर भरतार ।
हरे पटम्बर पहरि कर, धरती करे सिंगार ॥ १५७ ॥

१५७-१५९ में विरह पूर्वक विनय कर रहे हैं—हे अपरंपार, विश्व-भर्तार, परमात्मा ! मैं आपकी आज्ञानुसार, आपको प्राप्त करने के लिए उद्यत् हो रहा हूं। आप मेरे हृदयाकाश में निवास करके अपनी कृपा-वृष्टि करें। जिससे मेरे अन्तःकरण की धारणा शक्ति-धरणी, सर्व हितैषिता रूप हरे रंग से रंजित, आपके स्वरूप संबंधी विचार-वस्त्र धारण करके अपनी शोभा बढ़ायेगी।

वसुधा[१] सब फूले फले, पृथ्वी अनन्त अपार।
गगन गर्ज जल थल भरै, दादू जै जै कार ॥ १५८ ॥

उस धारणा शक्ति रूप पृथ्वी[१] के आश्रय रहने वाले संपूर्ण दैवी संपदा के गुण रूप वनस्पति विशेष रूप से फूलें फलेंगी, फिर तो यह मेरी बुद्धि रूप पृथ्वी अनन्त प्राणियों को अपार सुख-प्रद बन जायेगी। अत: आप मेरे हृदयाकाश में, स्वस्वरूप-घटा से प्रेमाभक्ति प्रदान रूप गर्जना करते हुये ज्ञान-जल से मेरे अन्त:करण-स्थल को परिपूर्ण कर दीजिये। ऐसा करते ही मेरी अज्ञान पर विजय होकर जय जयकार रूप ध्वनि होने लगेगी।

काला मुँह कर काल का, सांई सदा सुकाल ।
मेघ तुम्हारे घर घणां, बरसहु दीनदयाल ॥ १५९ ॥

इति विरह का अंग समाप्त: ॥ ३ ॥ सा. ४४७।

दीनदयालु स्वामिन् ! आपके स्वरूप रूप घर में शक्ति रूप मेघों की कमी नहीं है। अत: आप ज्ञान-जल वर्षा द्वारा मेरे अन्त:करण प्रदेश के सांसारिक तृष्णा-दुष्काल को नष्ट करके ब्रह्मानन्द-सुकाल कर दीजिये। आँधी ग्राम में अकाल पीड़ित जनता के हितार्थ वर्षा करने के लिए इन्द्र को १५७-१५९ से प्रेरित किया था। प्रसंग कथा दृ. सु. सि. त. ९/१५६ में देखो।

इन्द्र को प्रेरित करने के पक्ष का अर्थ इस प्रकार है—हे प्रभो भर्ता इन्द्र ! तुम्हें अपरंपार परमात्मा की आज्ञा है—तुम नभमंडल में बसते हुए वर्षा द्वारा पृथ्वी की पालना करो। फिर भी आप वर्षा क्यों नहीं कर रहे हैं ? अब आप शीघ्र ही वर्षा करें, जिससे यह धरणी वृक्षावलि रूप हरा वस्त्र पहन कर सुशोभित होगी॥ १५७॥ सभी वसुधा के वृक्षादि फूल-फल देंगे, पृथ्वी में अन्नादि अनन्त पदार्थ उत्पन्न होंगे, उनसे अपार प्राणियों को सुख मिलेगा। अत: आप नभ-मंडल में गर्जना करते हुए जल के द्वारा पृथ्वी के सरोवरादि स्थलों को परिपूर्ण कर दें, जिससे पृथ्वी पर आनंद हो जाय॥ १५८॥

दीनदयालु पृथ्वीपते ! वर्षा करो, क्योंकि तुम्हारे घर में मेघों की तो कमी है नहीं फिर दुष्काल को नष्ट करके सदा के लिए सुकाल क्यों नहीं करते ? आपको शीघ्र वर्षा करनी चाहिए ॥ १५९ ॥ यह प्रेरणा पूर्ण होते ही इन्द्र ने वर्षा कर दी थी।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका विरह का अंग समाप्त: ॥३॥

अथ परिचय का अंग ४

विरह की अन्तावस्था में ध्येय का साक्षात्कार होता है। अत: अब साक्षात्कार सम्बन्धी विचार रूप परिचय का अंग कहने में प्रवृत्त हुये प्रथम मंगल कर रहे हैं—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत: ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक विरह-व्यथा से पार होकर परब्रह्म को प्राप्त होता है, उन निरंजन राम, सद्गुरु और सब संतों को हम अनेक प्रणाम करते हैं।

दादू निरंतर पिव पाइया, तहँ पंखी उनमनि जाइ।
सप्तों मंडल भेदिया[१], अष्टैं रह्या समाइ ॥ २ ॥

२-१७ में साक्षात्कार सम्बन्धी वार्ता कह रहे हैं—साधन-पक्षों वाला जीवात्मा-पक्षी समाधि में जाकर जिस निर्विकल्प स्थिति में परब्रह्म को प्राप्त करता है, उस परब्रह्म को हमने अन्तर-रहित (वृत्त्यन्तर के व्यवधान से रहित) सदा के लिए प्राप्त कर लिया है। वह पंचमहाभूत, अहंकार और माया इन सप्त मंडलों में व्याप्त होकर भी इनसे आगे अपनी महिमा रूप अष्टम मंडल में रहता है अर्थात् मायिक प्रपंच में रहकर भी उससे अलग ही है। अन्य अर्थ-समाधि में जाकर जीवात्मा-पक्षी सप्त धातु से बने हुये शरीर-मंडल की आसक्ति, स्वर्गादिक ऊपर से सप्त लोकों की भोगासक्ति तोड़ता[१] है चार अन्तःकरण और तीन गुणों की मर्यादा से आगे बढ़ता है सप्त अज्ञान भूमिकाः और मूलाधारादि सप्त चक्रों को भेदन करता है तब अष्टम ब्रह्म में अभेद होता है। उस ब्रह्म को हमने अनात्माकार वृत्तियों के अन्तराय से रहित निरंतर प्राप्त कर लिया है।

दादू निरंतर पिव पाइया, जहँ निगम[१] न पहुँचे वेद ।
तेज[२] स्वरूपी पिव बसे, कोइ विरला जाने भेद[३] ॥ ३ ॥

जिन ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप तक शब्द रूप होने से वेद भी शक्ति वृत्ति द्वारा नहीं पहुँच सकता। उस ब्रह्म को संशय-रहित[१] सदा के लिए हमने प्राप्त कर लिया है। वे नित्य ज्ञान[२] स्वरूप प्रियतम सब में बसते हैं किन्तु उनके स्वरूप रहस्य[३] को कोई विरला ज्ञानी संत ही जानता है।

दादू निरंतर पिव पाइया, तीन लोक भरपूर ।
सब सेजों सांई बसे, लोक बतावें दूर ॥ ४ ॥

जो तीन लोकों में परिपूर्ण है, संपूर्ण प्राणियों की हृदय-शय्या पर स्थित है, उसी परब्रह्म का वैकुण्ठादि लोकों में निवास बताकर, अज्ञानी प्राणी उसे दूर बताते हैं। व्यापक ब्रह्म व्याप्य प्राणियों से दूर कैसे हो सकता है ? वह तो निरन्तर सबको मिला हुआ ही है। अज्ञान के कारण नहीं भासता।

दादू निरंतर पिव पाइया, जहँ आनन्द बारह मास।
हंस सौं परम हंस खेले, तहँ सेवक स्वामी पास ॥ ५ ॥

जिस सहजावस्था में बारह-मास ही आनन्द रहता है, उसी में जाकर हमने प्रियतम ब्रह्म को

अखंड रूप से प्राप्त किया है। इस पराभक्ति की अवस्था में ब्रह्म रूप हंस से ज्ञानी संत रूप परम हंस, अखंडानन्द का अनुभव रूप खेल खेलते हैं, फिर भी यहां सेवक स्वामी से दूर नहीं रहता, अभेद रूप समीपता में ही रहता है। खेलनादि भेद प्रतीति मात्र ही भासते हैं।

दादू रँग भर खेलूं पीव सौं, तहँ बाजे वेणु रसाल ।
अकल पाट पर बैठा स्वामी, प्रेम पिलावे लाल ॥ ६ ॥

६-९ में अपनी पराभक्ति के आनन्द का विशेष परिचय दे रहे हैं—ब्रह्मरन्ध्र में प्राण जाने पर नाद की निष्पत्ति नामक चतुर्थावस्था में जहां रसीली वंशी-ध्वनि सुनाई पड़ती है, वहां ही हम चित्त वृत्ति-पिचकारी में परम प्रेम-रंग भरकर परब्रह्म से ब्रह्मानन्द खेल खेलते हैं। हमारे स्वामी परब्रह्म राग द्वेषादि कलाओं से रहित हमारे हृदय-धाम के अष्टदल-कमल-सिंहासन पर विराजते हैं और वे हमारे परमप्रिय प्रभु हमें प्रेम-रस पिलाते हैं अर्थात् हमसे प्रेम करते हैं।

दादू रँग भर खेलूं पीव सौं, सेती दीन दयाल ।
निश वासर नहिं तहँ बसे, मानसरोवर पाल ॥ ७ ॥

शुद्ध मन-मानसरोवर के स्थिरता-बाँध पर अर्थात् मन की शुद्ध और स्थिरावस्था में, जहां अज्ञान-रात्रि और इन्द्रिय ज्ञान-दिन नहीं रहता, वहां ही दीन-दयालु परमात्मा के साथ हम बुद्धि-वृत्ति-पिचकारी में ब्रह्मभावना-रंग भरके ब्रह्मानन्द फागोत्सव का खेल खेल रहे हैं।

दादू रँग भर खेलूं पीव सौं, तहँ कबहुं न होइ वियोग ।
आदि पुरुष अंतरि मिल्या, कुछ पूरबले संयोग ॥ ८ ॥

हमारे पूर्वकाल में करे हुये कुछ साधन रूप कर्म-फल का प्राप्ति रूप संयोग होते ही आदि पुरुष परमात्मा, हमारे शरीर के भीतर हृदय प्रदेश में ही प्राप्त हुये हैं। अष्ट-दल-कमल पर निरंतर भास रहे हैं, कभी भी उनका अन्तर्धान रूप वियोग नहीं होता। वहां ही हम बुद्धि-वृत्ति-पिचकारी में ब्रह्म-विचार-रंग भरकर ब्रह्मानन्द-फागोत्सव-खेल खेल रहे हैं।

दादू रँग भर खेलूं पीव सौं, तहँ बारह मास वसंत ।
सेवक सदा अनंद है, जुग जुग देखूं कंत ॥ ९ ॥

जिस पराभक्ति की अवस्था में हम बुद्धि वृत्ति में अखंड ब्रह्माकार रूप रंग भर कर, अभेद भावना रूप प्रेमोत्सव का खेल खेलते हैं, उसमें संसारी प्राणियों के दो मास की वसंत ऋतु जैसा फागोत्सव नहीं होता किन्तु बारह मास ही वसंत ऋतु जैसा अखंड प्रेमोत्सव होता रहता है और हम भक्त जन वहां निरंतर अपने स्वामी परब्रह्म का साक्षात्कार करते हुये सदा अखंड ब्रह्मानन्द में ही निमग्न रहते हैं।

दादू काया अंतरि पाइया, त्रिकुटी केरे तीर ।
सहजैं आप लखाइया, व्याप्या सकल शरीर ॥ १०॥

१०-१३ में शरीर के भीतर भगवद् उपलब्धि के स्थान और भगवान् का स्वरूप बता रहे हैं—हमने साधना द्वारा प्रथम शरीर के भीतर त्रिकुटी के तट पर (१ मन पवन बुद्धि वृत्ति की एकाग्रता पर, २ जाग्रतादि तीन अवस्था से आगे तुरीयावस्था में, ३ तीन गुणों से परे निर्गुण स्थिति में, ४ आज्ञा चक्र के ऊपर, ५ ज्ञान भक्ति वैराग्य की पूर्णावस्था में, ६ स्थूल सूक्ष्म कारण शरीर से परे, ७ धारणा ध्यान सविकल्प समाधि से परे ८ ज्ञान की तीन भूमिकाओं से आगे चतुर्थ भूमिका में, ९ श्रवण मनन निदिध्यासन की परिपाकावस्था में) परब्रह्म को प्राप्त किया है। पश्चात् उस त्रिकुटी केन्द्र से स्वाभाविक ही हमें संपूर्ण शरीर में व्यापक रूप भासने लगे थे।

दादू काया अंतरि पाइया, निरन्तर निरधार ।
सहजैं आप लखाइया, ऐसा समर्थ सार ॥ ११ ॥

हमने जो ब्रह्म शरीर के भीतर प्राप्त किया है, वह सदा एक रस, संपूर्ण मायिक आधारों से रहित माया और मायाकृत अखिल प्रपंच का आधार, इच्छा मात्र से जगत् का सृजन, पालन, लय करने की सामर्थ्य संपन्न और संसार का सार तत्त्व है। हमारी अन्त: साधना की परिपाकावस्था में हमें अनायास ही ब्रह्म का ऐसा साक्षात्कार हुआ है।

दादू काया अंतरि पाइया, अनहद वेणु बजाइ।
सहजैं आप लखाइया, शून्य मंडल में जाइ ॥ १२ ॥

शरीर के भीतर ब्रह्मरन्ध्र में प्राण जाने पर अनाहत ध्वनि रूप वंशी बजती है, उसे बजाकर अर्थात् नादानुसंधान का साधन पूर्ण करके, शून्य चक्र में पहुँचकर निर्विकल्प सहजावस्था द्वारा हमने परब्रह्म को प्राप्त किया है और प्राप्त करते ही वह अपना निजस्वरूप होकर भासने लगा है।

दादू काया अंतरि पाइया, सब देवन का देव।
सहजैं आप लखाइया, ऐसा अलख अभेव ॥ १३ ॥

जो ब्रह्मादि संपूर्ण देवताओं का उपास्य देव है, मन इन्द्रियों के ज्ञान से परे और स्वयं प्रकाश स्वरूप है। जिसका वास्तविक स्वरूप ऐसा रहस्यमय है, जो शब्द की शक्ति-वृत्ति से तो समझ में नहीं आता। उसे हमने निर्विकल्पावस्था द्वारा शरीर के भीतर ही प्राप्त किया है। उसकी प्राप्ति होने पर वह अपने आप सब विश्‍व में निज स्वरूप होकर भासने लगा है।

दादू भँवर कमल रस बेधिया, सुख सरवर रस पीव ।
तहँ हंसा मोती चुनें, पिव देखे सुख जीव ॥ १४ ॥

१४-१७ में परब्रह्म प्राप्ति से होने वाला लाभ बता रहे हैं—जैसे भ्रमर कमल की वास-रस से विद्ध होकर उसका पान करता है, वैसे ही साधन सम्पन्न हमारा मन अष्टदल-कमल में प्रविष्ट होकर परब्रह्म रूप सुख-सरोवर का चिन्तनानन्द रूप रस पान करता है और जैसे मानसरोवर को

देखकर हंस प्रसन्न होते हैं तथा मोती चुनकर तृप्त होते हैं, वैसे ही अष्टदल-कमल में परब्रह्म का साक्षात्कार करके हम आनन्दित होते हैं और अभेद भावना रूप मोती चुनकर परम तृप्ति को प्राप्त हुये हैं।

दादू भँवर कमल रस बेधिया, गहे चरण कर हेत ।
पिवजी परसत ही भया, रोम रोम सब श्वेत ॥ १५ ॥

जब हमारे मन-भ्रमर ने ब्रह्म-रस की प्राप्ति के लिए कंठस्थ विशुद्ध चक्र-कमल को भेदन किया तब सस्नेह परब्रह्म के स्वरूप-चरण ग्रहण किये और उन प्रभु के चरण स्पर्श करते ही उसकी वृत्तियां रूप संपूर्ण रोम वा शरीर के इन्द्रियादि सब अवयव रोम-रोम शुद्ध हो गये। यह हमें अनुभूत है।

दादू भँवर कमल रस बेधिया, अनत न भरमे जाइ।
तहाँ वास विलम्बिया, मगन भया रस खाइ ॥ १६ ॥

जब मन-भ्रमर ने ब्रह्म-रस में अनुरक्त हो आज्ञाचक्र-कमल को भेदन किया तब ब्रह्म चिन्तनानन्द-रस पान करने लगा और उसके आस्वादन में इतना निमग्न हो गया कि अन्य स्थान में जाकर भ्रमण करना छोड़ दिया है तथा वहां आज्ञाचक्र में ही रम गया है।

दादू भँवर कमल रस बेधिया, गही जो पिव की ओट ।
तहा दिल भँवरा रहै, कौन करे शिर चोट ॥ १७ ॥

अब मन-भ्रमर ब्रह्म-रस में आसक्त हो शून्य चक्र-कमल को भेदन करके ब्रह्म चिन्तनानन्द-रस पान करते हुये परब्रह्म के ही आश्रय रहने लगा है और परम निर्भयावस्था को प्राप्त हो गया है। क्योंकि जब मन-भ्रमर निर्विकल्प समाधि अवस्था में रहता है, तब वहाँ काल, कर्मादि किसी का भी बाण उस पर आघात नहीं कर सकता, यह नियम है। समाधि खुलने पर ही कालादि के बाण लगते हैं।

परिचय-जिज्ञासु-उपदेश।

दादू खोज तहां पिव पाइये, शब्द ऊपने[१] पास ।
तहाँ एक एकान्त है, तहाँ ज्योति परकास ॥ १८ ॥

१८-२५ में जिज्ञासु जनों को परब्रह्म के साक्षात्कार का हेतु उपदेश कर रहे हैं-मूल स्थान में स्थित ब्रह्म-ग्रंथि का भली-भाँति भेदन होने पर हृदय स्थान में स्थित अनाहत-चक्र में शब्द की उत्पत्ति[१] होती है। उसी के समीप अष्टदल कमल पर परब्रह्म की ध्यान द्वारा खोज करो। ध्यान द्वारा खोज करने के लिए अष्टदल-कमल ही एकमात्र एकान्त स्थान है। सर्व प्रथम अष्टदल कमल पर ही नित्य ज्ञान स्वरूप ब्रह्म-प्रकाश की अनुभूति होती है और वहां ही सम्यक् प्रकार ब्रह्म का साक्षात्कार होता है।

दादू खोज तहाँ पिव पाइये, जहँ चंद न ऊगे सूर ।
निरन्तर निर्धार है, तेज रह्या भरपूर ॥ १९ ॥

जिस आज्ञा चक्र में वाम नासिका से बहने वाली इडा नाड़ी-चन्द्र, दक्षिण नासिका से बहने वाली पिंगला नाड़ी-सूर्य उदय नहीं होते, वे दोनों सुषुम्ना नाड़ी-अग्नि में लय हो जाते हैं। वहां ही ध्यान द्वारा खोजने पर सदा एकरस, मायिक आधारों से रहित, सर्वत्र परिपूर्ण, नित्य ज्ञान-स्वरूप परब्रह्म की प्राप्ति होती है।

दादू खोज तहाँ पिव पाइये, जहँ बिन जिह्वा गुण गाइ।
तहँ आदि पुरुष अलेख है, सहजैं रह्या समाइ ॥ २० ॥

जिस मन की स्थिरावस्था में जिह्वा के बिना ही मन से भगवान् के दयालुता आदि गुणों का गान किया जाता है, वहां ही बुद्धि-वृत्ति के द्वारा ब्रह्म विचार रूप खोज करने से लेख-बद्ध नहीं होने वाले, मन इन्द्रियों के अविषय और स्वाभाविक रूप से संपूर्ण विश्व में समाये हुये आदि पुरुष परमात्मा प्राप्त होते हैं।

दादू खोज तहाँ पिव पाइये, जहँ अजरा अमर उमंग।
जरा मरण भौ[1] भाजसी, राखे अपने संग ॥ २१ ॥

ब्रह्म-विचार करने पर जहाँ से अजर अमर आत्मानन्द की लहर उठती है उस हृदय देश में ही अभेद-विचार द्वारा खोजो अभेद विचार की परिपाकावस्था में वहां पर ही परब्रह्म की प्राप्ति होती है, फिर आत्मा को ब्रह्म अपने साथ सदा अभेद भाव से रखता है। यह एकता होने पर आगे जन्म-जरा मृत्यु रूप संसार[1] का सर्वथा अभाव हो जाता है।

दादू गाफिल छो[1] वतैं[2], मंझे रब्ब[3] निहार ।
मंझेई[4] पिव पाण[5] जो, मंझेई सु विचार ॥ २२ ॥

हे प्राणी ! भगवान् से विमुख असावधान होकर सांसारिक भोग-सुखों के लिए तू क्यों[1] फिरता[2] है ? ये तो अनित्य होने से अन्त में दुःख प्रद ही हैं। जो भीतर[4] नित्य सुख स्वरूप अपना५ प्रियतम ब्रह्म[3] है, उसको सुविचार द्वारा भीतर ही देख।

दादू गाफिल छो वतैं, आहे मंझि अलाह ।
पिरी[1] पाण[2] जो पाण सैं, लहै सभोइ[3] साव[4] ॥ २३ ॥

तू तीर्थादिक की फल स्तुति में आसक्त हो, अचेत हुआ, आंतर साधनों को त्याग कर भगवान् के लिए तीर्थादि में क्यों फिरता है ? जो अपना[2] प्रियतम[1] परमेश्वर है वह तो अपने आत्म-स्वरूप के बोध से ही प्राप्त होता हैं और वह प्रभु भीतर ही है। जो आत्म-ज्ञान द्वारा ब्रह्म-साक्षात्कार का यत्न करता है, वही ब्रह्मात्मा के अभेद रूप संपूर्णानन्द[3] का आस्वादन[4] प्राप्त करता है।

दादू गाफिल छो वतैं, आहे मंझि मुकाम ।
दरगह[2] में दीवान[1] तत, पसे[3] न बैठो पाण ॥ २४ ॥

तू परमात्मा के वियोग जन्य दुःख से अचेत हुआ क्यों फिरता है ? उसकी प्राप्ति का स्थान

तो तेरे भीतर ही है। वह संसार का सार स्वरूप स्वयं प्रकाश महान्[१] प्रभु तेरे अन्त:करण[२] में ही है। अत: अपने पास ही बैठा है, फिर भी अपने आत्म-स्वरूप ब्रह्म को देखता[३] क्यों नहीं ?

दादू गाफिल छो वतैं, अंदर पीरी[१] पसु[२] ।
तखत रबाणी[३] बीच में, पेरे[४] तिन्ही[५] वसु[६] ॥ २५ ॥

तू अपनी बहिर्मुखता रूप अचेतता से संसार में क्यों भटकता है ? निदिध्यासन के द्वारा निजी अन्त:करण में ही अपने परमप्रिय[१] परमात्मा को देख[२], उस परमेश्वर[३] का सिंहासन तेरे शरीर के भीतर तेरा हृदय स्थान ही है। तू भी उन्हीं[५] परब्रह्म के स्वरूप रूप पद[४] में एक होकर के निवास[६] कर।

परिचय

हरि चिन्तामणि चिन्ततां, चिन्ता चित की जाइ।
चिन्तामणि चित में मिल्या, तहँ दादू रह्या लुभाइ॥ २६॥

२६-२८ में साक्षात्कार सम्बन्धी विचार कर रहे हैं—इच्छा पूर्ति करने वाले हरि-चिन्तामणि का निरंतर स्मरण करने से चित्त की सांसारिक चिन्ताएँ नष्ट हो जाती हैं। उन चिन्तामणि रूप हरि का साक्षात्कार हमें अपने हृदय में ही हुआ है। अब हमारा मन निरंतर उसी में लगा रहता है।

अपने नैनहुँ आप को, जब आतम देखे।
तहँ दादू परमातमा, ताही को पेखे ॥ २७ ॥

जीवात्मा जब निज ज्ञान-नेत्रों से अपने वास्तविक स्वरूप का साक्षात्कार करता है, तब परमात्मा का भी साक्षात्कार करता है। आत्मा के वास्तव स्वरूप से परमात्मा भिन्न नहीं है। अत: हृदयस्थ आत्मदर्शन ही परमात्मदर्शन है।

दादू बिन रसना जहँ बोलिये, तहँ अंतरयामी आप ।
बिन श्रवणहुँ सांई सुने, जे कुछ कीजे जाप ॥ २८ ॥

जिस अनाहत चक्र में जिह्वा-मूलादि स्थान और वायु के आघात बिना संकल्प रूप से बोला जाता है, वहां ही स्वयं परमात्मा अन्तर्यामी रूप से स्थित है और साधक जन जो भी कुछ जापादि साधन करते हैं, उन सब को भगवान् श्रवणादि इन्द्रियों के बिना भी सुनता देखता रहता है।

परिचय जिज्ञासु उपदेश

ज्ञान लहर जहां तैं उठे, वाणी का परकास।
अनुभव जहँ तैं ऊपजे, शब्दैं किया निवास॥ २९॥

सो घर सदा विचार का, तहाँ निरंजन वास ।
तहँ तू दादू खोज ले, ब्रह्म जीव के पास ॥ ३० ॥

२९-३७ में साक्षात्कार के इच्छुक जिज्ञासु को उपदेश कर रहे हैं—जहां से ज्ञान की लहर

उठकर वाणी का सूक्ष्म रूप प्रकट होता है, आत्मानुभव उद्भव होता है और जहां पर प्रणव रूप शब्द ब्रह्म का निवास है ॥ २९ ॥ वही हृदय निरंतर ब्रह्म-विचार का स्थान है, वहां ही माया-रहित परब्रह्म का विशेष रूप से निवास है। हे जिज्ञासु ! वहां पर ही निदिध्यासन द्वारा खोज करके तू ब्रह्म को प्राप्त कर ले, ब्रह्म जीव के पास ही है। अन्वेषण करने पर तुझे जीव ब्रह्म का अभेद रूप से ही साक्षात्कार होगा ॥ ३० ॥

जहँ तन मन का मूल है, उपजै रव[1] ओंकार।
अनहद सेझा शब्द का, आतम करे विचार ॥ ३१ ॥
भाव भक्ति लै ऊपजै, सो ठाहर निज सार।
तहँ दादू निधि पाइये, निरन्तर निरधार ॥ ३२ ॥

जहां स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर का मूल कारण अज्ञान है, जहां ॐ की ध्वनि[1] प्रकट होती है, जो अनाहत शब्दों का उद्गम स्थान है, जिज्ञासु जन जहां विचार द्वारा आत्मा के सामान्य रूप को अज्ञान के प्रकाशक रूप से देखते हैं ॥ ३१ ॥ जहाँ से भाव अर्थात् संपूर्ण त्रिपुटियों की उत्पत्ति होती है और लै अर्थात् संपूर्ण त्रिपुटियां जहां लीन होती हैं, भक्ति अर्थात् अनुराग वृत्ति का भी जहां से सूक्ष्म रूप निकलता है, वही मणि-पूरक चक्र (नाभि कमल) विश्व के सार स्वरूप अपने आत्मा की अनुभूति का स्थान है। उसी में संपूर्ण आधारों से रहित, निराधार, सदा एक रस रूप, और संपूर्ण संसार प्रलय काल में जिसमें अन्तर्हित रूप से रहता है, वह परमात्मा रूप निधि आत्मरूप से प्राप्त होती है ॥ ३२ ॥ विशेष विवरण-सुषुप्ति अवस्था में पुरितत् नामक नाड़ियों के जाल नाभि स्थान में ही ''कुछ नहीं जान सका'' ऐसी अज्ञान की प्रतीति होती है। ढाई वर्ष तक नाभि स्थान पर ॐ का ध्यान करने से वहां ही ओंकार-ध्वनि प्रकट होती है और शांत-ध्वनि एकान्त स्थान में रात्रि के समय नाभि स्थान पर घड़ी की आवाज के समान साधक को कट-कट रूप से सुनाई पड़ती है। अनाहत शब्द प्रकट रूप से तो अनाहत चक्र में ही सुनाई पड़ते हैं किन्तु निकलते नाभि स्थान से ही हैं, नाभि ही उनका सेझा (उद्गम स्थान) है। आत्मा के सामान्य रूप का अनुभव सुषुप्ति में ''सुख से सोया'' के रूप में नाभि-कमल में ही होता है। सुषुप्ति समाप्त होने पर ही नाभि-कमल से त्रिपुटी रूप भाव व्यक्त होते हैं और सुषुप्ति के आरंभ में नाभि-कमल में ही लय होते हैं। सुषुप्ति में भक्ति का भी संस्कार ही रहता है और सुषुप्ति समाप्ति पर ही भक्ति प्रकट रूप से भासती है।

एक ठौर सूझै सदा, निकट निरंतर ठांव।
तहाँ निरंजन पूरि ले, अजरावर तिहिं नांव ॥ ३३ ॥

देवताओं से भी अति श्रेष्ठ होने के कारण उन परमात्मा का नाम अजरावर है। उनका विशेष रूप से निरंतर निवास स्थान अनाहत चक्र के समीप अष्टदल कमल है। ध्यानावस्था में सदा एकमात्र अष्टदल कमल पर ही उनका साक्षात्कार होता है। वहां ही अपनी अन्त:करण की वृत्ति को स्थिर करके माया रहित परब्रह्म का साक्षात्कार कर ले।

साधू जन क्रीड़ा करैं, सदा सुखी तिहिँ गांव ।
चलु दादू उस ठौर की, मैं बलिहारी जांव ॥ ३४ ॥

जिसमें देव, दानव, नाग, नर आदि संपूर्ण संसार के प्राणी बसते हैं, उस ईश्वर रूप ग्राम के शुद्ध ब्रह्म रूप स्थान में संतजन अभेद चिन्तन रूप क्रीड़ा करते हुये निरंतर ब्रह्मानन्द में निमग्न रहते हैं। मैं उस शुद्ध ब्रह्म रूप स्थान की बलिहारी जाता हूँ। हे जिज्ञासु ! तू भी निदिध्यासन द्वारा उसी में चल। वही नित्यानन्द स्वरूप है। जगत दु:खमय है।

दादू पसु[१] पिरंनि[२] के, पेही[३] मंझि कलूब[४] ।
बैठो आहे बीच में, पाण[५] जो महबूब[६] ॥ ३५ ॥

जो संसार बन्धन से मुक्त करने वाले, अपने[५] आत्म स्वरूप प्रेम-पात्र[६] स्वामी[३] हैं, वे तेरे शरीर के मध्य हृदय[४] में ही स्थित हैं, उन परम-प्रिय[२] परमेश्वर के वास्तव स्वरूप को देख[१] ।

नैनहुँ वाला निरख कर, दादू घालै हाथ ।
तब ही पावे राम–धन, निकट निरंजन नाथ ॥ ३६ ॥

आत्मानात्म विवेक-नेत्र वाला जिज्ञासु अनात्म रूप संसार को मिथ्या देखकर, सत्य-स्वरूप आत्मा की ओर अन्त:करण-वृत्ति रूप हाथ डालता है अर्थात् आत्मा में वृत्ति स्थिर करता है, तब ही निदिध्यासन द्वारा ज्ञान-नेत्र की ज्योति बढ़ाकर विश्व के स्वामी माया रहित राम रूप धन को अत्यन्त समीप, आत्म स्वरूप से प्राप्त करता है।

नैनहुँ बिन सूझे नहीं, भूला कतहूं जाइ ।
दादू धन पावे नहीं, आया मूल गँवाइ ॥ ३७ ॥

विवेक-नेत्रों के बिना अनात्म-संसार मिथ्या नहीं भासता। इसलिए इन्द्रियों के विषयों में आसक्त हो, परमात्मा को भूल कर विषय-प्राप्ति हित अनर्थ करने में प्रवृत्त होता है। अत: राम रूप विशेष धन को न पाकर उलटा अपना मनुष्य शरीर रूप मूलधन भी खोकर शूकर-कूकरादि योनियों में आकर जहां तहां भटकता है।

परिचय लै लक्षण सहज

जहाँ आत्म तहँ राम है, सकल रह्या भरपूर ।
अन्तरगति ल्यौ लाइ रहु, दादू सेवक सूर ॥ ३८ ॥

आन्तर आत्मा में वृत्ति लगाने से सहज ही साक्षात्कार के लक्षण प्रकट हो जाते हैं, यह कह रहे हैं—साधक ! तुम अपने अन्त:करण की वृत्ति को आन्तर आत्मा में लगाये रहो, जहां आत्मा है, वहाँ ही राम है। आत्मा में वृत्ति स्थिर होने पर सेवक को परमात्मा सर्वत्र परिपूर्ण हुआ, सूर्य के समान प्रकट रूप से भासने लगता है।

परिचय जिज्ञासु उपदेश

पहली लोचन दीजिये, पीछे ब्रह्म दिखाइ ।
दादू सूझे सार सब, सुख में रहे समाइ ॥ ३९ ॥

३९-४० में साक्षात्कार के इच्छुक जिज्ञासुओं को उपदेश कर रहे हैं—हे जिज्ञासु जनो ! प्रथम अपने विवेक-विचार-नेत्रों को ब्रह्म की ओर लगाओ अर्थात् ब्रह्म विचार करो । पीछे विचार की प्रौढ़ावस्था में तुम्हें ब्रह्म अपने आत्म रूप से ही दिखाई देगा। जब तुम्हें संपूर्ण विश्व के सार स्वरूप ब्रह्म का साक्षात्कार हो जायगा, तब तुम्हारा मन सुख-स्वरूप ब्रह्म में ही निमग्न होकर रहेगा।

आँधी के आनंद हुआ, नैनहुँ सूझन लाग ।
दर्शन देखे पीव का, दादू मोटे भाग ॥ ४० ॥

विषयासक्ति रूप मोतिया-बिन्दु आ जाने से अंधी हुई जीवात्मा-युवती के जब संत और शास्त्र की शिक्षा-औषधि से विवेक, विचार-नेत्र निर्मल हुए तो उससे संसार मिथ्या और परमात्मा सत्य भासने लगा, तब वह जीवात्मा अपने भाग्य को महान् जानकर निरंतर प्रियतम परमात्मा का दर्शन करने लगी है।

य असमाव

दादू मिहीं[१] महल बारीक है, गाँव न ठांव न नांव।
तासौं मन लागा रहे, मैं बलिहारी जांव ॥ ४१ ॥

४१-४९ में ब्रह्म की अद्वैतता बता रहे हैं—जिसमें सब संसार विवर्त्त रूप से निवास करता है, तब ब्रह्म रूप महल अति सूक्ष्म है और व्यापक होने से सब के भीतर[१] है। वह बैकुण्ठादि किसी लोक विशेष में नहीं रहता, न उसका शेष-शय्यादि कोई स्थान विशेष है और न उसका कोई नाम है। पुर, स्थान, नाम, ये सब माया से ही होते हैं। शुद्ध ब्रह्म माया रहित अद्वैत है । उसमें उक्त द्वैत प्रपंच नहीं रह सकता। ऐसे शुद्ध ब्रह्म में जिसका मन अद्वैत भाव से लगा रहता है, मैं उस संत की बलिहारी जाता हूँ।

दादू खेल्या चाहे प्रेम रस, आलम अंग लगाइ।
दूजे को ठाहर नहीं, पुष्प न गंध समाइ ॥ ४२ ॥

यदि कोई अपने अन्तःकरण इन्द्रियादि अंगों में सांसारिक विषयों की आसक्ति रखकर भगवत्-प्रेम-रस में निमग्न होना रूप खेल खेलना चाहे, तो वह संभव नहीं। कारण, जिसमें प्रेम रहता है, वह वृत्ति-स्थान अति सूक्ष्म है। जैसे पुष्प में एक साथ दो गंध नहीं रह सकतीं, वैसे ही उसमें एक साथ विषय-राग और प्रभु-प्रेम दोनों नहीं रह सकते। वृत्ति ब्रह्माकार होने पर ब्रह्म में पुष्प-गंध जितना भी द्वैत नहीं रहता।

नाहीं ह्वै कर नाम ले, कुछ न कहाई रे ।
साहिबजी की सेज पर, दादू जाई रे ॥ ४३ ॥

देहादिक अध्यास रूप अहंकार और सांसारिक वासनादि से अन्त:करण को रहित करके भगवान् का नाम स्मरण करो किन्तु अपने को भक्त, संत, योगी आदि कहलाने का यत्न मत करो। उक्त द्वैत प्रपंच से जो मुक्त होता है, वही ब्रह्म की अद्वैत-शय्या पर जाता है। परब्रह्म अद्वैत है, उसे उससे भिन्न रह कर नहीं प्राप्त कर सकते।

जहाँ राम तहँ मैं नहीं, मैं तहँ नाहीं राम।
दादू महल बारीक है, द्वै को नाहीं ठाम ॥ ४४ ॥

जिस अद्वैतावस्था में राम का साक्षात्कार होता है, वहाँ ''मैं ज्ञानी हूँ, मैं गुणी हूँ'' इत्यादिक अहंकार रूप ''मैं'' नहीं होता और जहां तक उक्त ''मैं'' होता है, वहां तक राम का साक्षात्कार नहीं होता। जिसमें संसार विवर्त्त रूप से बसता है, वह अधिष्ठान चेतन रूप महल अति सूक्ष्म है। उसमें द्वैत-भाव को स्थान नहीं मिलता।

मैं नाहीं तहँ मैं गया, एकै दूसर नाँहिं।
नाहीं को ठाहर घणी, दादू निज घर माँहिं ॥ ४५ ॥

जिस ब्रह्म में अनात्म अहंता ममता नहीं है, उसको मैं प्राप्त हुआ हूँ। उसे प्राप्त होते ही आत्मा उसमें अद्वैत रूप से होकर रहता है, द्वैत रूप से नहीं। अपने स्वस्वरूप ब्रह्म-घर में अनात्म अहंकार शून्य आत्मस्थिति को प्राप्त हुये ज्ञानी-संत के लिए ब्रह्मानन्द रूप स्थान बहुत है, अज्ञानी के लिए किंचित् भी नहीं है।

मैं नाहीं तहँ मैं गया, आगे एक अलाव[१]।
दादू ऐसी बन्दगी, दूजा नाहीं आव ॥ ४६ ॥

जहाँ अनात्म देहादिक अहंकार रूप ''मैं'' नहीं रहता, उस अवस्था को जब मैं आत्म रूप से प्राप्त हुआ, तब उस आगे की स्थिति में एक मात्र ''अहं-ब्रह्म'' यही ध्वनि[१] प्रतीत हुई। निर्गुण भक्ति की महिमा ऐसी ही है, उसकी परिपाकावस्था पर अन्त:करण की वृत्ति में अद्वैत ब्रह्म को छोड़ कर द्वैत-भाव आता ही नहीं।

दादू आपा जब लगै, तब लग दूजा होइ।
जब यहु आपा मिट गया, तब दूजा नाहीं कोइ ॥ ४७ ॥

जब तक अनित्य देहादिक में आत्म-भ्रांति-रूप अहंकार रहता है, तब तक ही आत्मा और ब्रह्म में द्वैत भासता है। जब उक्त मिथ्या अभिमान ज्ञान द्वारा नष्ट हो जाता है, तब अपने आत्मस्वरूप ब्रह्म को छोड़कर भिन्न कुछ नहीं प्रतीत होता। एक मात्र अद्वैत ब्रह्म ही भासता है।

दादू मैं नाहीं तब एक है, मैं आई तब दोइ।
मैं तैं पड़दा मिट गया, तब ज्यों था त्यों ही होइ ॥ ४८ ॥

जब तक शुद्ध चेतन में अनित्य देहादिक ''अहं, त्वं'' भाव नहीं आता है, तब तक उसकी अद्वैत ब्रह्मरूप से ही प्रतीति होती है। अनित्य देहादिक में ''अहं, त्वं'' भाव आते ही आत्मा और ब्रह्म में द्वैत भाव भासने लगता है। फिर ज्ञान द्वारा ''अहं, त्वं'' भाव रूप अज्ञान नष्ट

हो जाता है, तब जैसा पूर्व में अद्वैत रूप था वैसा ही अद्वैत रूप भासने लगता है। अत: द्वैत रूप विकार मध्य में भ्रम से ही भासता है, आदि व अन्त में परमार्थ रूप अद्वैत ही सिद्ध होता है।

दादू है को भै घणा, नाहीं को कुछ नाँहिं।
दादू नाहीं होइ रहु, अपणे साहिब माँहिं ॥ ४९ ॥

जब तक अनात्म अहंकारादिक द्वैत-भाव अन्त:करण में है, तब तक उसको जन्मादि संसार का विशाल भय बना ही रहता है। जिसके हृदय में उक्त द्वैत-भाव नहीं रहकर, अद्वैत-भाव प्राप्त हो गया, उसको जन्मादि संसार का भय लेश मात्र भी नहीं रहता। अत: हे साधक! ''अहं, मम, त्वं'' आदि अनात्म अहंकार से रहित होकर अपने आत्म स्वरूप ब्रह्म में अद्वैत-भाव से स्थित रहो।

परिचय

दादू तीन शून्य आकार की, चौथी निर्गुण नाम।
सहज शून्य में रम रह्या, जहाँ तहाँ सब ठाम ॥ ५० ॥

५०-७७ में नाना रूपकों के द्वारा साक्षात्कार सम्बन्धी विचार बता रहे हैं—तीन लय रूप अवस्थाएँ आकार विशेष की होती हैं। जाग्रतावस्था के सहित स्थूल शरीर का लय स्वप्नावस्था में होता है। यही प्रथम शून्य है। स्वप्नावस्था के सहित सूक्ष्म शरीर का लय सुषुप्ति अवस्था में होता है, यही द्वितीय शून्य है। सुषुप्ति अवस्था के सहित कारण शरीर का लय तुरीयावस्था में होता है, यही तृतीय शून्य है। ये तीनों त्रिगुणात्मक होने से माया रूप हैं। साक्षी के सहित तुरीयावस्था शुद्ध ब्रह्ममय होने से निर्गुण है, यही चतुर्थ शून्य है। त्रिगुणात्मक माया-रहित होने से इसका नाम निर्गुण शून्य है। उक्त तीनों ही पूर्वावस्था के उत्तरावस्था में लय होने से सिद्ध होती हैं। चतुर्थ सहज रूप है, अतः चतुर्थ शून्य में सहज-स्वरूप ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। वह ब्रह्म जहां तहां सर्वत्र व्यापक रूप से रम रहा है।

अन्य अर्थ—यहां शून्य शब्द का अर्थ दशा है। माण्डूक्योपनिषद् में ओंकार की ४ मात्राओं तथा आत्मा के चार पदों का निरूपण किया है। उसमें ओंकार की (अ, उ, म्) इन तीन मात्राओं तथा आत्मा के (विश्व, तैजस, प्राज्ञ) इन तीन पदों को आकार वाला बतलाया है और ओंकार की चतुर्थ मात्रा तथा आत्मा के चतुर्थ तुरीय पाद को निर्गुण, निराकार बतलाया है। यहां उसी रहस्य का स्पष्टीकरण है। आत्मा के तीन पाद अर्थात् जाग्रदावस्था वाला चैतन्य विश्व, स्वप्नावस्था वाला चैतन्य तैजस, तथा सुषुप्ति दशा वाला प्राज्ञ, आकारवान् हैं और इनसे परे तुरीयावस्था वाला चैतन्य शुद्ध, निर्गुण, व निराकार है। अत: आरंभ की तीन दशाएँ आकार की हैं और चौथी तुरीय दशा निर्गुण है अर्थात् निराकार है। वह निर्गुण निराकार ब्रह्म सहज दशा में (शुद्धावस्था में) सर्वत्र व्यापक है और आकार वाली तीनों दशाएँ सीमित हैं।

पांच तत्त्व के पांच हैं, आठ तत्त्व के आठ ।
आठ तत्त्व का एक है, तहां निरंजन हाट ॥ ५१ ॥

पंच तन्मात्रा रूप सूक्ष्म तत्त्वों के कार्य पंच स्थूल भूत हैं। इन स्थूल भूतों से स्थूल शरीर बनता है। प्रकृति, महत्तत्व, अहंकार और पंच तन्मात्रा; इन अष्ट के कार्य-व्यष्टि अज्ञान, व्यष्टि बुद्धि, व्यष्टि अहंकार और व्यष्टि तन्मात्राएँ, ये अष्ट हैं अथवा पुर्यष्टक हैं। इन अष्ट से एक सूक्ष्म शरीर बनता है जो स्थूल शरीर के भीतर रहता है। उस सूक्ष्म शरीर के हृदय प्रदेश-हाट में निरंजन ब्रह्म-वस्तु प्राप्त होती है।

जहँ मन माया ब्रह्म था, गुण इन्द्री आकार ।
तहँ मन विरचै सबन तैं, रचि रहु सिरजनहार ॥ ५२ ॥

जिस अज्ञान दशा में इन्द्रियों के विषय गुणों का आश्रय मायिक—आकार ही मन के लिए ब्रह्म बना रहता है, वह दशा ब्रह्म साक्षात्कार में उपयोगी नहीं होती। अत: उस दशा से मन को ऊंचा उठाकर तथा संपूर्ण मायिक प्रपंच से विरक्त होकर, संसार का कर्त्ता ईश्वर के भजन में ही रत्त रहोगे, तब ही ब्रह्म का साक्षात्कार होगा।

काया-शून्य पंच का बासा, आतम-शून्य प्राण प्रकासा।
परम-शून्य[1] ब्रह्म सौं मेला, आगे दादू आप अकेला ॥ ५३ ॥

शून्य का स्पष्टीकरण कर रहे हैं—काया शून्य, स्थूल शरीर, जाग्रतावस्था में पंचकर्मेन्द्रिय, पंचज्ञानेन्द्रिय तथा पंच विषयों की सत्ता है। आत्म शून्य=सूक्ष्म शरीर स्वप्नावस्था में सूक्ष्म विषयों व प्राण की सत्ता है। परम शून्य=कारण शरीर, सुषुप्ति अवस्था में आत्मा का ब्रह्म से मेल होता है, इसीलिए इस दशा को ''स्वाप्यय[1] व सम्प्रसाद'' पद से भी उपनिषदों में कहा गया है। इससे आगे तुरीयस्थान व तुरीयदशा में माया-अविद्यादि का पूर्ण नाश होने से और उससे जनित सकल प्रत्यक्ष का भी नाश हो जाने से केवल शुद्ध ब्रह्म ही बच जाता है।

दादू जहाँ[2] तैं सब ऊपजे, चन्द सूर आकाश।
पानी पवन पावक किये, धरती का प्रकाश ॥ ५४ ॥

काल कर्म जिव ऊपजे, माया मन घट श्वास।
तहँ रहिता रमता राम है, सहज शून्य सब पास॥ ५५ ॥

स्वकल्पित अविद्या द्वारा जीव रूप को प्राप्त ब्रह्म से अर्थात् मन से चन्द्र-सूर्य आदि सभी नक्षत्र उत्पन्न होते हैं तथा जिसने आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी को बना कर प्रकट

---

१. इस अवस्था में जीव का लय शुद्ध चैतन्य में हो जाता है, अतः इसे स्वाप्यय कहा जाता है। इस अवस्था में आत्मा ब्रह्म में लीन होकर शुद्ध रूप को प्राप्त कर लेता है। अतः 'सम्यक् प्रसीदति अस्याम्', इस व्युत्पत्ति से इसको सम्प्रसाद भी कहा जाता है।

२. यहां पर वेदान्त सिद्धान्त मुक्तावलीकार, भाष्यकार तथा वार्तिककार आदि द्वारा प्रतिपादित दृष्टि-सृष्टि रूप एक जीववाद का वर्णन है।

किया है ॥ ५४ ॥ और जिनकी सत्ता से माया द्वारा काल, कर्म, मन, श्वासादि सूक्ष्म शरीर, जीवत्व भाव, स्थूल शरीर उत्पन्न होते हैं और ये सब विवर्त्त रूप से अपने अधिष्ठान सहज शून्य-ब्रह्म के अत्यंत समीप ही रहते हैं, किन्तु वे निर्विकार राम उक्त विवर्त्त-कार्य में रमते हुये भी उससे रहित ही रहते हैं ॥ ५५ ॥

सहज शून्य सब ठौर है, सब घट सबही माँहि ।
तहाँ निरंजन रम रह्या, कोइ गुण व्यापै नाँहि ॥ ५६ ॥

सहज शून्य-निर्विकार ब्रह्म विश्व के स्वर्ग-नरकादिक सभी स्थानों में स्थित है । उनके निवासी दैवादिक संपूर्ण शरीर उस ब्रह्म में व्याप्य रूप से स्थित हैं और ब्रह्म उन सब में व्यापक रूप से स्थित है । उस माया रहित ब्रह्म में जो ज्ञानी संत अद्वैत भाव से रम रहा है, उसे कोई भी मायिक गुण व्यथित नहीं कर सकता ।

दादू तिस सरवर के तीर, सो हंसा मोती चुने ।
पीवे नीझर नीर, सो है हंसा सो सुने ॥ ५७ ॥

उस सहज शून्य-ब्रह्म सरोवर के ध्येयाकार-वृत्ति रूप तट पर शब्द-ब्रह्म ओंकार का चिन्तन रूप मोती चुनता है, वही सारग्राहक साधक हंस है । आत्म-झरने का अनुभव जल-पान करता है अर्थात् ब्रह्मात्मा का अभेद रूप से साक्षात्कार करता है; वह साधक हंस ही नाभि-कमल के पास होने वाली ''प्रणव ध्वनि'' और श्वास प्रश्वास से होने वाली ''सोऽहं हंसः'' रूप ब्रह्मात्मा के अभेद की बोधक ध्वनि सुनता है, तब उक्त शब्द-ब्रह्म ओंकार का चिन्तन करने वाले साधक-हंसों में यह अधिक शोभायमान होता है । (पाठान्तर — 'सोऽहं हंसा')

दादू तिस सरवर के तीर, जप तप संयम कीजिये ।
तहँ सन्मुख सिरजनहार, प्रेम पिलावे पीजिये ॥ ५८ ॥

उस सहज शून्य-ब्रह्म सरोवर के ब्रह्माकार-वृत्ति रूप तट पर अर्थात् ब्रह्माकार-वृत्ति रखते हुये ही इन्द्रिय-निग्रह रूप तप और मनोनिग्रह रूप संयमपूर्वक ब्रह्म नाम का जप करो । इस साधना की परिपाकावस्था में परमात्मा सन्मुख प्रकट रूप से भासते हैं और अपना प्रेम-रस पान कराते हैं । तुम भी उक्त प्रकार साधन करके उनके प्रेम-रस का पान करो ।

दादू तिस सरवर के तीर, संगी सबै सुहावणे ।
तहां बिन कर बाजे वेणु, जिह्वाहीणे गावणे ॥ ५९ ॥

उस सहज शून्य ब्रह्म-सरोवर के ब्रह्माकार वृत्ति रूप तट पर साथ रहने वाले विवेक, वैराग्य, विचारादि सभी दैवी संपदा के गुण सुन्दर हैं तथा वहां पर बिना हाथों के ही अखंडानन्द प्रदायिनी अनाहत ध्वनि रूप वंशी बजती है और बिना जिह्वा के ही वृत्ति द्वारा स्तुति गायन होता है ।

दादू तिस सरवर के तीर, चरण कमल चित लाइया ।
तहँ आदि निरंजन पीव, भाग हमारे आइया ॥ ६० ॥

उस सहज शून्य-ब्रह्म सरोवर के ब्रह्माकार-वृत्ति-तट पर हमने ब्रह्म स्वरूप चतुर्थ पाद में मन लगाया अर्थात् ध्यान द्वारा मन को ब्रह्म में स्थापन किया, तब उसी अवस्था में हमारे भाग्यवश संसार का आदि माया रहित प्रियतम ब्रह्म हमें प्राप्त हुआ है।

दादू सहज सरोवर आतमा, हंसा करैं किलोल[1]।
सुख सागर सूभर[2] भरया, मुक्ताहल मन मोल॥ ६१॥

सहज-शून्य निर्विकल्प ब्रह्म-सरोवर में संतात्मा-हंस ब्रह्मानन्द का अनुभव रूप क्रीड़ा[1] करते हैं। उज्ज्वल नित्य सुख स्वरूप ब्रह्म समुद्र तो सर्वत्र परिपूर्ण[2] रूप से भरा है अर्थात् व्यापक है। तथापि जो अपना मन-समर्पण रूप मूल्य देते हैं, वे ही उसके दर्शन रूप मोती प्राप्त करते हैं, अन्य नहीं।

दादू हरि सरवर पूरण सबै, जित तित पाणी पीव।
जहाँ तहाँ जल अंचतां, गई तृषा सुख जीव॥ ६२॥

ब्रह्म-सरोवर व्यापक होने से संपूर्ण विश्व में परिपूर्ण रूप से भरा है। उसका साक्षात्कार रूप जल भक्ति योग ज्ञानादिक का जिस किसी भी घाट से पान कर सकते हो। घर तथा वन में जहां तहां से साधन द्वारा साक्षात्कार-जल के पान करने से अनेक साधक जीवों की सांसारिक नाना वासना रूप प्यास मिट गई है और वे परमानन्द को प्राप्त हुये हैं, यह प्रसिद्ध है।

सुख सागर सूभर भरया, उज्ज्वल निर्मल नीर।
प्यास बिना पीवे नहीं, दादू सागर तीर॥ ६३॥

आनन्द रूप सुन्दर ब्रह्म-समुद्र संपूर्ण विश्व में परिपूर्ण रूप से भरा है। उसका साक्षात्कार रूप जल भी मायादि रूप काई आदि दोषों से रहित निर्मल और प्रकाशवान् है। संपूर्ण प्राणी उस सागर के तट पर हैं अर्थात् समीप हैं, जिस हृदय प्रदेश में जीव रहता है वहीं वह निर्विकार ब्रह्म विद्यमान है। फिर भी उसके साक्षात्कार की इच्छा बिना वे साक्षात्कार-जल का पान नहीं करते हैं।

शून्य सरोवर हंस मन, मोती आप अनंत।
दादू चुगि चुगि चंचु भरि, यों जन जीवें संत॥ ६४॥

निर्विकल्प समाधि ही सरोवर है और वह अनन्त ब्रह्म स्वयं ही सत् चित्, आनन्द, अखंडादि निज नाम भेद से मोती रूप बना हुआ है। साधक संतों का मन ही उक्त मोतियों को पुन: २ चुनकर अपनी वृत्ति रूप चंचु में भरता है अर्थात् इच्छानुसार चिन्तन करता हुआ तदाकार होता है। इस प्रकार ही साधन करके संत जन ब्रह्म से अभिन्न होकर सदा जीवित रहते हैं।

शून्य सरोवर मीन मन, नीर निरंजन देव।
दादू यहु रस विलसिये, ऐसा अलख अभेव॥ ६५॥

त्रिपुटी शून्यावस्था रूप सरोवर में निरंजन देव ही जल है। संतों का मन-मीन इस अवस्था में ब्रह्म-जल में ही लीन रहता है। साधको ! इन्द्रियाँ जिसे लख नहीं सकती और साधन-शून्य मन भी जिसके रहस्यमय स्वरूप से अपरिचित रहता है, ऐसा वह ब्रह्म है। फिर भी तुम साधन द्वारा उक्त त्रिपुटी रहित अवस्था में जाकर उस ब्रह्म के साथ ब्रह्मानन्द-रस का उपभोग करो।

शून्य सरोवर मन भँवर, तहाँ कमल करतार।
दादू परिमल पीजिये, सन्मुख सिरजनहार ॥ ६६ ॥

निर्विकल्प-समाधि-अवस्था ही सरोवर है, उसमें विद्यमान निर्विकल्प ब्रह्म-कमल है। संतों का मन उसके मकरन्द का पान करने वाला आत्मानन्दानुभव रूप सुगन्ध-रस लेता रहता है। साधको ! तुम भी साधन द्वारा उक्त समाधि अवस्था में विश्व-रचयिता ब्रह्म के सन्मुख होकर आत्मानन्द-सुगन्ध-रस का अनुभव रूप पान करो।

शून्य सरोवर सहज का, तहँ मरजीवा मन।
दादू चुणि चुणि लेयगा, भीतर राम रतन ॥ ६७ ॥

ज्ञान द्वारा प्राप्त सहज समाधि-अवस्था ही समुद्र है, सन्तों का मन ही उसमें गोता लगाने वाला मरजीवा है। जैसे मरजीवा समुद्र से मोती चुन लाता है, वैसे ही देहादिक अध्यास रहित, जीवन्मुक्त या जीवत-मृतक ज्ञानी संत का मन उक्त सहज-समाधि के परिपाकावस्था रूप समुद्र तल से राम के साक्षात्कार रूप रत्नों को चुन-चुन कर प्राप्त कर सकेगा अर्थात् निरंतर साक्षात्कार कर सकेगा।

दादू मंझि सरोवर विमल जल, हंसा केलि[1] करांहि ।
मुक्ताहल[2] मुकता[3] चुगैं, तिहिं हंसा डर नांहि ॥ ६८ ॥

शुद्ध और स्थिर हृदय-सरोवर में भगवत् की विशेष स्थिति रूप विमल-जल भरा है। वहां ही संतजन-हंस भगवत्-चिन्तन रूप क्रीड़ा[1] करते हैं और निरंतर चिन्तन करते-करते संसार-बन्धन से मुक्त[3] होकर ब्रह्म-साक्षात्कार रूप मोती[2] चुगते हैं। उस साक्षात्कार रूप अद्वैतावस्था में जीवन्मुक्त संत-हंसों को काल, कर्म, मृत्यु आदि किसी का भी भय नहीं रहता।

अखंड सरोवर अथग जल, हंसा सरवर न्हांहि।
निर्भय पाया आप घर, अब उड़ अनत न जांहि॥ ६९ ॥

सदा एक रस ब्रह्म-सरोवर में आनन्द रूप अथाह जल भरा है। ज्ञानी संत-हंस उस आनन्द-जल में स्नान करते हैं अर्थात् अपार आनन्द का अनुभव करते हैं। जिसने काल-कर्मादि के भय से रहित अपना आत्म रूप घर प्राप्त कर लिया है, उसके इस आत्म प्राप्ति के पश्चात् प्राण-पक्षी उड़कर अन्य शरीर को प्राप्त नहीं होते। वह मुक्त हो जाता है।

दादू दरिया प्रेम का, तामें झूलैं दोइ ।
इक आतम परमातमा, एकमेक रस होइ ॥ ७० ॥

अनन्य अपार प्रेम का ही बना हुआ एक दरिया है। उसमें एक आत्मा और दूसरा परमात्मा दोनों चेतन होने से अद्वैत भाव से झूलते हैं, तब परमानन्द रूप रस प्राप्त होता है।

दादू हिण[१] दरियाव, माणिक मंझेई ।
टुबी[२] डेई[३] पाण[४] में, डिठो[५] हंझेई[६] ॥ ७१ ॥

इस[१] हृदय-दरियाव में ही परमात्मा रूप माणिक्य है, संतों[६] ने अपने आप[४] में ही वृत्ति की अन्तर्मुखता रूप गोता[२] लगाकर[३] देखा[५] है।

पर आतम सौं आतमा, ज्यौं हंस सरोवर मांहि ।
हिलमिल खेलैं पीव सौं, दादू दूसर नांहि ॥ ७२ ॥

जैसे हंस सरोवर के जल में एकमेक होकर क्रीड़ा करता है, वैसे ही साक्षात्कार की अवस्था में आत्मा-परमात्मा की परस्पर एकरूपता हो जाने पर भी, संत अपने प्रियतम प्रभु से सेवक-सेव्य भाव द्वारा भजनानन्द का अनुभव रूप खेल खेलते ही रहते हैं, किन्तु इस खेल में उनमें लेशमात्र भी द्वैत भाव नहीं आता। खेल के समय ब्राह्मण, क्षत्रिय बनता है किन्तु वह रहता ब्राह्मण ही है। जब संसार-दशा में भी खेल से द्वैत नहीं होता तब परमार्थ-दशा में तो हो ही कैसे सकता है ?

दादू सरवर सहज का, तामें प्रेम तरंग ।
तहँ मन झूले आतमा, अपने सांई संग ॥ ७३ ॥

परा-भक्ति की सहजावस्था ही मानो सरोवर है। जैसे स्थिर सरोवर में वायु से कभी-कभी तरंग उठ जाती है, वैसे ही सहजावस्था में भी पूर्वकृत भक्ति की स्मृति आ जाने से प्रभु-प्रेम की तरंग उठ जाती है। जैसे तरंग सरोवर से ऊंची उठती हुई भी सरोवर के साथ ही रहती है, वैसे ही संतात्मा अपने प्रभु के साथ रहते हुये भी चित्त-वृत्ति द्वारा भजनानन्द में झूलते हैं किन्तु तरंग के समान थोड़ी देर में ही पुन: सहजावस्था में आकर अद्वैत रूप हो जाते हैं, भिन्न नहीं रहते।

दादू देखूं निज पीव को, दूसर देखूं नांहि ।
सबै दिसा सौं सोध कर, पाया घट ही मांहि ॥ ७४ ॥

विवेक, भक्ति, योग, ज्ञानादि संपूर्ण साधन रूप दिशाओं से खोजकर हमने अपने शरीर के भीतर हृदय-प्रदेश में प्रभु को प्राप्त किया है और अब निरंतर संपूर्ण परिस्थितियों में अपने प्रियतम परमात्मा का ही साक्षात्कार करते हैं, उससे भिन्न मायिक प्रपंच को सत्य रूप से नहीं देखते।

दादू देखूं निज पीव को, और न देखूं कोइ ।
पूरा देखूं पीव को, बाहर भीतर सोइ ॥ ७५ ॥

ब्रह्माण्ड के बाहर और भीतर परिपूर्ण रूप से हम प्रभु को देख रहे हैं। अब तो यही अभिलाषा रहती है—निरंतर अपने प्रियतम प्रभु को ही देखते रहें, प्रभु से भिन्न कुछ भी न देखें।

दादू देखूं निज पीव को, देखत ही दुख जाइ ।
हूं तो देखूं पीव को, सब में रह्या समाइ ॥ ७६ ॥

जब हम अपने प्रभु को देखते हैं तो देखते ही हमारा सांसारिक विक्षेप जन्य दु:ख शांत हो जाता है। इस कारण हम तो अब व्यापक रूप से सब में समाये हुये प्रभु को ही देखते हैं।

दादू देखूं निज पीव को, सोई देखन जोग।
परकट देखूं पीव को, कहां बतावें लोग ॥ ७७ ॥

सकाम कर्म करने कराने वाले लोक हृदय में प्रभु को कहां बताते हैं ? वे तो वैकुण्ठादि लोकों में ही बताते हैं किन्तु हम तो प्रत्यक्ष रूप से अपने हृदय में और विचार द्वारा सर्वत्र व्यापक रूप से प्रभु को देख रहे हैं और वही देखने योग्य है। अत: हम तो मायिक प्रपंच का बाध करके निरंतर सर्वस्थ अपने प्रियतम प्रभु को ही देखते हैं।

परिचय जिज्ञासु उपदेश

दादू देखु दयालु को, सकल रह्या भरपूर।
रोम-रोम में रम रह्या, तूं जनि जाने दूर ॥ ७८ ॥

७८-८० में जिज्ञासु को साक्षात्कार की प्रेरणा रूप उपदेश कर रहे हैं—परमात्मा को अपने से दूर किसी लोक विशेष में रहने वाला मत समझ। तू विचार द्वारा उस दयालु प्रभु को देख, वह व्यापक होने से तेरे रोम-रोम में रम रहा है और संपूर्ण विश्व में भी परिपूर्ण है।

दादू देखु दयालु को, बाहर भीतर सोइ।
सब दिशि देखूं पीव को, दूसर नांहीं कोइ ॥ ७९ ॥

तू उस दयालु परमात्मा को विचार-द्वारा देख, वह आकाश के समान सबके बाहर-भीतर स्थित है। हम तो सभी दिशाओं में अपने प्रियतम को ही सत्य और व्यापक देखते हैं अन्य किसी को भी सत्य और व्यापक नहीं देखते।

दादू देखु दयालु को, सन्मुख सांई सार।
जीधर देखूं नैन भर, तीधर सिरजनहार ॥ ८० ॥

उस दयालु प्रभु को विचार द्वारा देख, वह संसार का सार तत्त्व प्रभु तेरे सन्मुख आने वाले सर्व पदार्थों में स्थित होने से तेरे सन्मुख ही है। तेरे अन्त:करण की वृत्ति प्रत्येक पदार्थ में स्थित चेतन का आवरण भंग करके उसे ही देखती है। हम तो बुद्धि नेत्र में अद्वैत विचार भर के जिधर देखते हैं, उधर वह ब्रह्म ही भासता है।

दादू देखु दयालु को, रोक रह्या सब ठौर।
घट-घट मेरा सांईयां, तूं जनि जाणै और ॥ ८१ ॥

तू परम दयालु प्रभु को अपने आत्मस्वरूप से भिन्न मत समझ। वह हमारा प्रभु प्रत्येक घट में तथा दूध में मक्खन के समान विश्व के प्रत्येक परमाणु में अन्तर्हित रूप से स्थित है। उसे विचार द्वारा देख, तुझे अवश्य भासेगा।

उभय असमाव

तन मन नाहीं मैं नहीं, नहिं माया नहिं जीव।
दादू एकै देखिये, दह दिशि मेरा पीव ॥ ८२ ॥

अद्वैत स्थिति में द्वैत नहीं रहता, यह कह रहे हैं—स्थूल शरीर, मन, अहंकार, माया और जीवत्व भाव, ये सब द्वैत, अद्वैत स्थिति में नहीं रहता। उस समय तो एक मात्र हमारे प्रियतम ही अद्वैत रूप से दसों दिशाओं में देखने में आते हैं।

पति पहचान

दादू पाणी मांहैं पैसि कर, देखे दृष्टि उघार।
जलाबिम्ब सब भर रह्या, ऐसा ब्रह्म विचार ॥ ८३ ॥

ब्रह्म पहचान की युक्ति बता रहे हैं—जैसे जल में गोता लगाकर नेत्र खोल के देखने से सर्वत्र जल ही जल भरा दृष्टि आता है, वैसे ही ब्रह्म विचार द्वारा अन्त:करण की वृत्ति को ब्रह्म में लीन करने पर सर्वत्र परिपूर्ण ब्रह्म ही ब्रह्म भासता है।

अकबर बादशाह ने प्रश्न किया था, ज्ञान द्वारा ब्रह्म भासने में कोई दृष्टांत बताइये ? उसका उत्तर इस साखी से दिया था। प्रसंग कथा - दृ. सु. सिं. त. १२/२५ में देखो।

परिचय पतिव्रत

सदा लीन आनन्द में, सहज रूप सब ठौर।
दादू देखे एक को, दूजा नांही और ॥ ८४ ॥

८४-९१ में साक्षात्कार सम्बन्धी पतिव्रत दिखा रहे हैं—विश्व के सभी स्थलों में माया रहित सहज स्वरूप ब्रह्म स्थित है। हम सदा आन्तर वृत्ति से उसी के आनन्द में निमग्न रहते हैं और बाह्य दृष्टि से भी सर्वत्र सब वस्तुओं में उसी को सत्य रूप से देखते हैं, अन्य कोई भी हमें सत्य नहीं भासता।

दादू जहँ तहँ साथी संग है, मेरे सदा अनन्द।
नैन बैन हिरदै रहै, पूरण परमानन्द ॥ ८५ ॥

घरादि स्थलों में, जाग्रतादि अवस्थाओं में तथा सर्व देश काल में जहां तहां व्यापक होने से, मेरे साथी प्रभु-दर्शन रूप से नेत्रों में, नाम रूप से वाणी में, स्मरण रूप से हृदय में, इस प्रकार पूर्ण परमानन्द स्वरूप ब्रह्म निरन्तर मेरे साथ ही रहते हैं। इसीलिये मुझे सदा आनन्द का ही अनुभव होता रहता है।

जागत जगपति देखिये, पूरण परमानन्द।
सोवत भी सांई मिले, दादू अति आनन्द ॥ ८६ ॥

हम जाग्रतावस्था में विश्व में परिपूर्ण जगतपति परमानन्द रूप ब्रह्म को ब्रह्माकार वृत्ति द्वारा देखते रहते हैं और सोते समय भी तैजस् तथा प्राज्ञ के लक्ष्यार्थ रूप प्रभु हम से मिले हुये ही रहते हैं। इस प्रकार कभी भी वियोग न होने से हमें नित्यानन्द का अनुभव होता रहता है।

दह दिशि दीपक तेज के, बिन बाती बिन तेल।
चहुँ दिशि सूरज देखिये, दादू अद्‌भुत खेल॥ ८७॥

ज्योति रूप ब्रह्म का ध्यान करने से ध्यान की परिपाकावस्था में बिना बत्ती और बिना तेल के ही दसों दिशाओं में दिव्य तेजोमय दीपक दृष्टि में आते हैं और कभी कभी चारों ओर सूर्य ही सूर्य दीख पड़ते हैं। ऐसा ज्योतिर्मय अद्‌भुत खेल उस समय देखने में आता है। बाह्य एक सूर्य भी अपने ताप से सबको जलाने लगता है किन्तु वहां के अनेक सूर्य भी नहीं तपाते, यह अद्‌भुतता है।

सूरज कोटि प्रकाश है, रोम रोम की लार।
दादू ज्योति जगदीश की, अंत न आवे पार॥ ८८॥

जगत् के स्वामी ब्रह्म की ज्योति का प्रकाश शरीर के प्रत्येक रोम के साथ कोटि सूर्यों के समान प्रतीत होता है। इस प्रकाश का कभी भी अन्त नहीं होता। विचार द्वारा निश्चय होता है कि—ब्रह्म की ज्योति का प्रकाश ब्रह्म रूप होने से अपार है।

ज्यों रवि एक अकाश है, ऐसे सकल भरपूर।
दादू तेज अनंत है, अल्लह आली[१] नूर॥ ८९॥

जैसा आकाश में एक सूर्य है, ऐसे ही सूर्यों से संपूर्ण विश्व को भर दें तो उनका प्रकाश भी बहुत भासेगा किन्तु उस प्रकाश से भी ब्रह्म-स्वरूप का तेजोमय प्रकाश श्रेष्ठ[१] और अनन्त सिद्ध होगा।

सूरज नहीं तहँ सूरज देखे, चंद नहीं तहँ चंदा।
तारे नहीं तहँ झिलमिल देख्या, दादू अति आनंदा॥ ९०॥

उस ध्यानावस्था में बाह्य सूर्य चन्द्रमा नहीं होने पर भी हमने सूर्य-चन्द्रमा देखे हैं। बाह्य तारे न होने पर भी तारों की ज्योति की झिलमिलाहट देखी है। उक्त ब्रह्म-ज्योति रूप विभूतियों के दर्शन से वहां अति आनन्द का अनुभव होता है।

बादल नहिं तहँ वरषत देख्या, शब्द नहीं गरजंदा।
बीज नहीं तहँ चमकत देख्या, दादू परमानन्दा॥ ९१॥

बादलों के बिना ही आज्ञा चक्र के ऊपर अमृत स्थान से अमृत वृष्टि होती है। जहां आघात जन्य शब्द कभी भी नहीं होता वहां ही अनाहत ध्वनि रूप गर्जना होती है। बिजली बिना ही बिजली के सामान आत्म-ज्योति का प्रकाश चमकता हुआ दृष्टि में आता है। इन सबको देखकर हमें अति आनन्द होता है।

आत्म बल्लीतरु

दादू ज्योति चमके झिलमिले, तेज पुंज परकाश ।
अमृत झरे रस पीजिये, अमरबेलि आकाश ॥ ९२ ॥

ध्यान की प्रतीतियों का परिचय दे रहे हैं—ध्यान में कभी ऐसा भान होता है कि तेजो राशि ब्रह्म से प्रकट होकर आत्म-ज्योति झिलमिल-झिलमिल चमक रही है और कभी ऐसा भान होता है कि —चिदाकाश रूप ब्रह्म में आत्म रूप अमर-बेलि चढ़ रही है अर्थात् ब्रह्म में मिल रही है। अमृत स्थान से अमृत रस झरता रहता है। हे साधको ! तुम भी साधन द्वारा उस अवस्था में जाकर वह रस पान करो।

परिचय

दादू अविनाशी अंग तेज का, ऐसा तत्त्व अनूप।
सो हम देख्या नैन भर, सुन्दर सहज स्वरूप ॥ ९३ ॥

93-95 में साक्षात्कार सम्बन्धी परिचय दे रहे हैं—अविनाशी ब्रह्म के सभी अंग तेजोमय हैं। उसका स्वरूप निर्द्वन्द्व होने से स्वाभाविक ही सुन्दर है और वह ऐसा अनुपम तत्त्व है कि— उसको कोई भी उपमा नहीं दी जा सकती है। उसको हमने विवेक-विचार-नेत्रों से इच्छा भर के देखा है।

परम तेज परकट भया, तहँ मन रह्या समाइ।
दादू खेले पीव सौं, नहिं आवे नहिं जाइ ॥ ९४ ॥

साधन द्वारा हृदय में आत्म-ज्ञान परम प्रकाश प्रकट हुआ है, तब से हमारा मन उसी प्रकाश में समाया हुआ रहता है, उस ज्ञान को नहीं भूलता और उस प्रकाश के द्वारा जिस ब्रह्म का साक्षात्कार हुआ है, उसी ब्रह्म-प्रियतम से उसी का चिन्तन रूप खेल-खेलता रहता है। एक विषय में आकर दूसरे विषय में जाना रूप आना जाना छोड़कर निरन्तर ब्रह्म-चिन्तन में ही स्थित रहता है।

निराधार निज देखिये, नैनहुँ लागा बंद।
तहँ मन खेले पीव सौं, दादू सदा अनंद ॥ ९५ ॥

पहले नेत्रादि द्वारा हमारी चित्त-वृत्ति बाह्य विषयों में जाती थी। अब उसके प्रतिबन्ध लग गया है, क्योंकि-मन तो अन्तर्मुख रहकर ध्यानावस्था में अपने प्रियतम प्रभु से उसी का चिन्तन-खेल खेलता रहता है और उस खेल में उसे सदा ही आनन्द का अनुभव होता रहता है। अत: वह बाहर जाना चाहता ही नहीं। साधको ! तुम भी अपने मन को अन्तर्मुख करके ध्यानावस्था में मायिक आधारों से रहित अपने आत्म-स्वरूप प्रभु को देखो।

आत्म बल्ली तरु

ऐसा एक अनूप फल, बीज बाकुला नांहि।
मीठा निर्मल एक रस, दादू नैनहुँ मांहि ॥ ९६ ॥

अपने ज्ञान का परिचय दे रहे हैं—जीवात्मा रूप बेलि जब मननादि साधन-जल से वृद्धि को प्राप्त हुई, तब उसके उपमा रहित ब्रह्म ज्ञान रूप एक ऐसा फल लगा है, जिस में अज्ञान-बीज नहीं है, भोग-वासना छिलका नहीं है। संशय-विपर्य्य दोषों से रहित होने से निर्मल है। आनन्द-मधुरता से सम्पन्न है, सदा एक रस है और हमारे विचार-नेत्रों में स्थित है।

परिचय

हीरे हीरे तेज के, सो निरखे त्रय लोइ।
कोइ इक देखे संत जन, और न देखे कोइ॥ ९७॥

९७-१०२ में साक्षात्कार सम्बन्धी परिचय दे रहे हैं—हीरों के समूह के तेज के समान वह ब्रह्म शीतल तेज स्वरूप है। ऐसा ही हमने अपने तृतीय ज्ञान-नेत्र से समाधि में देखा है। उसे समाधि प्राप्त कोई विरला संत ही देख पाता है। अन्य अज्ञानी प्राणी नहीं देख सकते।

नैन हमारे नूर[1] मा[2], तहाँ रहे ल्यौ लाइ।
दादू उस दीदार[3] को, निशदिन निरखत जाइ॥ ९८॥

उस समाधि अवस्था में हमारे विवेक विचार-नेत्र प्रकाशमय ब्रह्म स्वरूप के बीच[2] में ही लगे रहते हैं और मन भी वहां ही अपनी वृत्ति लगाये रहता है। हमारे सभी रात्रि-दिन उस अपने आत्म-स्वरूप ब्रह्म के दर्शन[3] करते-करते ही व्यतीत होते हैं।

नैनहुँ आगे देखिये, आतम अंतर सोइ।
तेज पुँज सब भर रह्या, झिलमिल झिलमिल होइ॥ ९९॥

वह ब्रह्म अपने भीतर ही है। तुम संसार दशा से आगे समाधि अवस्था में जाकर अपने ज्ञान-नेत्रों से देखो, तुम्हें अवश्य वहां झिलमिल-झिलमिल होता हुआ वह प्रकाश रूप ब्रह्म दीखेगा। हमने समाधि अवस्था में उस तेज-पुंज ब्रह्म को संपूर्ण विश्व में परिपूर्ण रूप से देखा है।

अनहद बाजे बाजिये, अमरापुरी निवास।
ज्योति स्वरूपी जगमगे, कोई निरखे निज दास॥ १००॥

समाधि अवस्था में मृत्यु नहीं मार सकती, अत: समाधि स्थिति ही अमरापुरी निवास है। प्रथम जब अनाहत बाजे बजने लगते हैं, तब ही अमरापुरी में निवास होता है। उस समाधि अमरापुरी में ज्योति स्वरूप ब्रह्म का प्रकाश जगमगाता है किन्तु उसको कोई समाधि-स्थिति को प्राप्त भगवान् का निजी भक्त ही देख सकता है, सब नहीं।

परम तेज तहँ मन रहै, परम नूर निज देखे।
परम ज्योति तहँ आतम खेले, दादू जीवन लेखे॥ १०१॥

समाधि अवस्था में हमारा मन परम तेज स्वरूप ब्रह्म के समीप ही रहता हुआ अपने आत्म-स्वरूप ब्रह्म-प्रकाश को ही देखता रहता है तथा उस समाधि की निर्विकल्पावस्था में परम ज्योति-स्वरूप ब्रह्म के साथ आत्मा ब्रह्मानन्द का अनुभव रूप खेल खेलता है। इस ब्रह्मात्मा के अभेदानन्द का अनुभव होने पर साधक का जीवन सफल हो जाता है, वह मुक्त हो जाता है।

दादू जरै सु ज्योति स्वरूप है, जरै सु तेज अनंत ।
जरै सु झिलमिल नूर है, जरै सु पुंज रहंत ॥ १०२ ॥

जो साधक, साधन से प्रकट हुये प्रभु-प्रकाश के झिलमिलाहट को भली प्रकार पचा लेता है, किसी अन्य को नहीं कहता, तब वह प्रकाश-पुंज उसके हृदय में अच्छी प्रकार प्रकाशित होता रहता है, फिर उसके विशेष अनुभवों को भी जब भली प्रकार पचा जाता है, तब साधक का ब्रह्म तेज अपार हो जाता है और वह पारमार्थिक अनुभवों को सम्यक् पचाने वाला साधक ज्योति स्वरूप ब्रह्म ही हो जाता है।

परिचय पति पहचान

दादू अलख अल्लाह का, कहु कैसा है नूर ।
दादू बेहद[1] हद नहीं, सकल रह्या भरपूर ॥ १०३ ॥

१०३-११० में प्रभु पहचान का परिचय दे रहे हैं—आगरा के पास सीकरी शहर में वीरबल और अबुलफ़ज़ल ने प्रश्न किया था—स्वामिन् ! मनइन्द्रियों के अविषय ब्रह्म का स्वरूप कैसा है, सो कहिये ? १०६ तक उसी का उत्तर दे रहे हैं—वह ब्रह्म जाति व्यक्ति आदि से रहित निराकार होने से असीम[1] है, उसकी कोई सीमा नहीं और व्यापक होने से सब विश्व में परिपूर्ण है।

वार पार नहिं नूर का, दादू तेज अनंत ।
कीमत नहिं करतार की, ऐसा है भगवंत ॥ १०४ ॥

तेज स्वरूप ब्रह्म अनन्त है। ब्रह्म के स्वरूप प्रकाश का आदि अन्त नहीं ज्ञात होता। विश्व का आदि कर्त्ता होने से उसकी महिमा रूप कीमत, उसके कार्य से पूर्ण रूप से नहीं हो सकती। ऐसा विलक्षण ब्रह्म का स्वरूप है।

निर्संध नूर अपार है, तेज पुंज सब मांहि ।
दादू ज्योति अनंत है, आगो पीछो नांहि ॥ १०५ ॥

अवयव रहित होने से उसमें कोई सन्धि नहीं है। उसका स्वरूप अपार है। तेजो राशि ब्रह्म आत्म रूप से सबके भीतर स्थित है। उसकी ज्ञान रूप ज्योति भी अनन्त है। निराकार होने से उसका अग्र भाग और पृष्ठ भाग नहीं सिद्ध होता।

खंड-खंड निज ना भया, इकलस[1] एकै नूर[2] ।
ज्यों था त्यों ही तेज है, ज्योति रही भरपूर ॥ १०६ ॥

निजात्म-स्वरूप ब्रह्म सदा अखंड होने से उसके भिन्न-भिन्न अवतार रूप खंड नहीं हुये हैं। अवतार माया विशिष्ट के ही होते हैं। शुद्ध ब्रह्म का स्वरूप[2] तो सदा एक-रस[1] अद्वैत ही है। वह तेज स्वरूप ब्रह्म आदि में जैसा था वैसा ही अब भी है और उसकी सत्ता रूप ज्योति सब विश्व में परिपूर्ण रूप से भरी हुई है। उसी के आधार पर विश्व का संचालन होता है।

परम तेज प्रकाश है, परम नूर निवास ।
परम ज्योति आनन्द में, हंसा दादू दास ॥ १०७ ॥

जो कुछ भी विश्व में ज्ञान-प्रकाश है, वह उस परम तेज स्वरूप ब्रह्म का ही है । संतों का निवास स्थान भी परब्रह्म का स्वरूप ही है। हम सेवक जन तो उस परम ज्योति स्वरूप ब्रह्म के दर्शनानन्द-सरोवर में हंस बने रहते हैं अर्थात् निरन्तर उसका ही साक्षात्कार करते रहते हैं।

नूर सरीखा नूर है, तेज सरीखा तेज ।
ज्योति सरीखी ज्योति है, दादू खेले सेज ॥ १०८ ॥

उस ब्रह्म स्वरूप के समान उसी का स्वरूप है। उसके तेज सदृश उसी का तेज है। उसकी ज्ञान ज्योति के समान उसी की ज्ञान ज्योति है। किसी प्रकार भी उसके विवर्त्त-संसार के किसी भी व्यक्ति, वस्तु आदि की उपमा उसे नहीं दी जा सकती। उसकी अष्टदल-कमल-शय्या पर हम उससे दर्शनानन्द का अनुभव रूप खेल खेलते रहते हैं।

तेज पुंज की सुन्दरी, तेज पुंज का कंत ।
तेज पुंज की सेज पर, दादू बन्या वसंत ॥ १०९ ॥

आत्मा और परमात्मा दोनों चेतन रूप होने से तेजो राशि है। अत: तेजो राशि ब्रह्म-स्वामी और तेजो राशि हमारी आत्मा-सुन्दरी, तेज-पुंज ब्रह्म की शय्या अष्टदल-कमल पर दोनों की एकता होने से वसंत बन गई है अर्थात् हमें वसंत के समान अखंड आनन्द का अनुभव हो रहा है। शंका-वसंत में तो वृक्षों के पुष्पों की अधिकता होने से पुष्प-वर्षा होती रहती है और नर-नारी फाग खेलते हैं। उत्तर—

पुहुप प्रेम वरषे सदा, हरिजन खेलैं फाग ।
ऐसा कौतुक देखिये, दादू मोटे भाग ॥ ११० ॥

हमारे मन-वृक्ष से प्रेम-पुष्पों की वृष्टि सदा होती रहती है और भक्त जन चित्त से प्रेमोत्सव-फाग खेलते रहते हैं। इसी आत्मा-परमात्मा की एकता रूप वसंत में ऐसा अद्भुत खेल देखने में आता है। इसे देखकर हम अपने भाग्य को महान् मानते हैं।

परिचय रस

अमृत धारा देखिये, पारब्रह्म बरषंत ।
तेज पुंज झिलमिल झरै, को साधू जन पीवंत ॥ १११ ॥

१११-११५ में रस रूप ब्रह्म के दर्शन-रस-पान का परिचय दे रहे हैं-परब्रह्म से दर्शनामृत-धारा बरस रही है। साधको ! तुम भी समाधि अवस्था में जाकर देखो ! उस तेजो-राशि ब्रह्म से

झिलमिल-झिलमिल दर्शनामृत झरता हुआ दीखेगा। इस दर्शनामृत का पान समाधि अवस्था को प्राप्त कोई बिरला संत ही कर सकता है, अन्य नहीं।

रस ही में रस बरषि है, धारा कोटि अनंत।
तहँ मन निश्चल राखिये, दादू सदा वसंत ॥ ११२ ॥

जिस भक्त के हृदय में प्रभु-प्रेम-रस रहता है, उसी में अनन्त प्रकार से ब्रह्म दर्शन-रसधारा की वर्षा होती है। उस भक्त को भगवान् समाधि अवस्था में पूर्व कथित ज्योति आदि नाना प्रकार से दर्शन देते हैं। साधको ! उस समाधि अवस्था में जिस प्रभु के दर्शन-रसधारा की वृष्टि होती है, उसी प्रभु में अपने मन को स्थिर रखो। उक्त स्थिरता की दृढ़ता होने पर सदा वसंत के समान आनन्द ही आनन्द रहेगा।

घन बादल बिन बरषि है, नीझर निर्मल धार।
दादू भीजे आतमा, को साधू पीवनहार ॥ ११३ ॥

समाधि अवस्था में प्राकृत मेघ समूह के बिना ही ब्रह्म-झरने से निर्मल ब्रह्म-दर्शन-धारा बरसती है, उससे जीवात्मा भीगता है अर्थात् दर्शन में निमग्न होकर शांति प्राप्त करता है, किन्तु ब्रह्म के साथ अभेद होना रूप पान तो कोई विरला संत ही करता है। दर्शन तो योगियों को समाधि में हो जाते हैं परन्तु ब्रह्म से अभेद तो ज्ञानी योगी का ही होता है।

ऐसा अचरज देखिया, बिन बादल बरषे मेह।
तहँ चित चातक ह्वै रह्या, दादू अधिक सनेह ॥ ११४ ॥

समाधि अवस्था में ऐसा आश्चर्य देखने में आता है—प्राकृत बादल न होने पर भी ब्रह्म-मेघ से ब्रह्म-दर्शन वर्षा होती रहती है। उस समाधि अवस्था में हमारा चित्त चातक पक्षी के समान अति प्रेम से ब्रह्म-दर्शन स्वाति बिन्दु के पान करने में अनुरक्त हुआ रहता है।

महारस मीठा पीजिये, अविगत अलख अनंत ।
दादू निर्मल देखिये, सहजैं सदा झरंत ॥ ११५ ॥

साधको ! तुम समाधि अवस्था में जाकर देखो, मन का अविषय, इन्द्रियों से परे, अपार, संपूर्ण रसों का उद्गम स्थान महारस-ब्रह्म का दर्शन-रस परम निर्मल और परमानन्द-मधुरता से सम्पन्न है तथा समाधि अवस्था में प्रतिक्षण झरता रहता है अर्थात् दर्शन होता रहता है। तुम अपने वृत्ति-नेत्रों से उसका पान करो।

कर्त्ता-कामधेनु

कामधेनु दुहि पीजिये, अकल अनूपम एक।
दादू पीवे प्रेम सौं, निर्मल धार अनेक ॥ ११६ ॥

११६-१२१ में ब्रह्म-कामधेनु का दर्शन-दुग्धपान करने की प्रेरणा कर रहे हैं — साधको ! कला, विभाग और उपमा रहित अद्वैत, कामनाओं को पूर्ण करने वाली ब्रह्म-कामधेनु का दर्शन-

दुग्ध ध्यान-दोहन द्वारा पान करो। हम तो पूर्ण प्रेम से ध्येय, ज्ञेय और आत्मा रूप आदि अनेक निर्मल विचारधाराओं द्वारा दर्शन-दुग्ध पान करते हैं अर्थात् दर्शन करते ही रहते हैं।

कामधेनु दुहि पीजिये, ताको लखे न कोइ।
दादू पीवै प्यास सौं, महारस मीठा सोइ ॥ ११७ ॥

जो कामनाओं को पूर्ण करने वाली ब्रह्म-कामधेनु है, उसे कोई भी बहिर्मुख प्राणी नहीं देख सकता। साधको ! तुम अन्तर्मुख वृत्ति करके ध्यान-दोहन द्वारा उसके दर्शन-दुग्ध का पान करो। जो कोई दर्शन की उत्कृष्ट अभिलाषा वाला ज्ञान द्वारा ब्रह्म-दर्शन-महारस पान करता है तो उसके लिये वह ब्रह्म-दर्शन अति मधुर हो जाता है।

कामधेनु दुहि पीजिये, अलख रूप आनन्द ।
दादू पीवै हेत सौं, सुषमन लागा बन्द ॥ ११८ ॥

साधको ! समाधि अवस्था में जाकर मन इन्द्रियों के अविषय, आनन्द स्वरूप ब्रह्म-कामधेनु का दर्शन-दुग्ध तदाकार वृत्ति-दोहन द्वारा पान करो। सुषुम्ना नाड़ी द्वारा प्राण सहस्रार चक्र में जाकर निरुद्ध हो जाने से हमारा मन तो परम प्रेम से उसका पान करता है।

कामधेनु दुहि पीजिये, अगम अगोचर जाइ।
दादू पीवै प्रीति सौं, तेज पुंज की गाइ ॥ ११९ ॥

ज्ञान-ज्योति राशि ब्रह्म-कामधेनु गो का दर्शन दुग्ध हम तो अति प्रेम से पान करते हैं। साधको ! तुम षट् प्रमाण की अविषय, इन्द्रियातीत निर्विकल्प समाधि अवस्था में जाकर, ब्रह्म-कामधेनु का अभेद-दर्शन दुग्ध अहं ब्रह्मास्मि अखंड वृत्ति दोहन क्रिया द्वारा पान करो।

कामधेनु करतार है, अमृत सरवै सोइ।
दादू बछरा दूध को, पीवै तो सुख होइ ॥ १२० ॥

ब्रह्म ही कामधेनु है। वही निर्विकल्पावस्था में अपना अमृतमय दर्शन-दुग्ध बहाती है। जब जिज्ञासु-बछड़ा उसके दर्शन-दुग्ध को पान करता है तब उसे अवश्य ही ब्रह्मानन्द प्राप्त होता है।

ऐसी एकै गाइ है, दूझै बारह मास ।
सो सदा हमारे संग है, दादू आतम पास ॥ १२१ ॥

वह एक मात्र ब्रह्म-गो ही ऐसी विलक्षण है जो बारह मास ही दर्शन-दुग्ध देती रहती है। ब्रह्म साक्षात्कार होने पर ब्रह्मात्मा का अभेद ही सदा भासता रहता है। वह ब्रह्म-गो आत्मा के अभेद भाव से अति निकट होने से सदा हमारे साथ ही है।

परिचय आत्म बल्ली तरु

तरुवर शाखा मूल बिन, धरती पर नांहीं ।
अविचल अमर अनन्त फल, सो दादू खाहीं ॥ १२२ ॥

१२२-१२६ में ब्रह्म, आत्मा का वृक्ष-बेलि के रूप में परिचय दे रहे हैं—शुद्ध ब्रह्म-वृक्ष पृथ्वी पर नहीं लगता, कारण, वह तो संपूर्ण भौतिक प्रपंच का अधिष्ठान है, अधिष्ठान विवर्त्त के आश्रय कैसे रह सकता है। न उसका कोई कारण रूप मूल और न कार्य रूप शाखा है। शुद्ध ब्रह्म किसी का कारण-कार्य नहीं हो सकता। उसी अविचल, अनन्त, ब्रह्म-वृक्ष का साक्षात्कार रूप फल हम साधक लोग खाते हैं अर्थात् ब्रह्मानन्द का अनुभव करते हैं।

तरुवर शाखा मूल बिन, धर अम्बर न्यारा ।
अविनाशी आनन्द फल, दादू का प्यारा ॥ १२३ ॥

शुद्ध ब्रह्म-वृक्ष माया-मूल और प्रपंच-शाखाओं से रहित है। पृथ्वी और आकाश में व्यापक रूप से रहता हुआ भी इनसे भिन्न है। उसका फल साक्षात्कार से जन्य अविनाशी आनन्द है, वह हमें बहुत प्यारा है।

तरुवर शाखा मूल बिन, रज वीरज रहिता ।
अजर अमर अतीत फल, सो दादू गहिता ॥ १२४ ॥

जैसे प्राणियों के शरीर रज-वीर्य से बनते हैं वैसे ही पृथ्वी-रज और जल-वीर्य के संयोग से शुद्ध ब्रह्म-वृक्ष नहीं उत्पन्न होता। इस कारण उसके न जड़ है और न शाखायें हैं। उस अजर-अमर, गुणातीत शुद्ध ब्रह्म-वृक्ष के दर्शन-फल को हम निरन्तर ग्रहण करते हैं, कभी भी उनके दर्शन से विमुख नहीं रहते।

तरुवर शाखा मूल बिन, उत्पति परलै नांहि ।
रहिता रमता राम फल, दादू नैनहुँ मांहि ॥ १२५ ॥

उत्पत्ति नाश रहित होने से शुद्ध ब्रह्म-वृक्ष के न जड़ और न शाखा ही है, वह निरंजन राम-वृक्ष व्यापक होने से सम्पूर्ण प्राणियों को अपनी सत्ता से रमाता हुआ और सब में आप रमता हुआ भी माया और माया के कार्य प्रपंच से रहित ही रहता है। उसी का दर्शन-फल हमारे विचार-नेत्रों में बसा है अर्थात् हमारे विचार ब्रह्म भिन्न नहीं होते।

प्राण तरुवर सुरति जड़, ब्रह्म भूमि ता मांहि ।
रस पीवे फूले फले, दादू सूखे नांहि ॥ १२६ ॥

ब्रह्म की आधारता का परिचय दे रहे हैं—प्राणधारी साधक संत ही तरुवर है। उसकी ब्रह्माकार वृत्ति ही जड़ है। ब्रह्म ही भूमि है। ब्रह्म-भूमि में स्थित रहकर संत-तरुवर, उसी का चिन्तन-रस पान करता रहता है। इसी कारण संत-तरुवर प्रेमाभक्ति-फूल और ज्ञान-फलों से सम्पन्न रहता है और शोक, मोहादि ताप से नहीं सूखता।

जिज्ञासु उपदेश प्रश्नोत्तरी

ब्रह्म शून्य तहँ क्या रहे ? आतम के अस्थान ?
काया अस्थल क्या बसे ? सद्गुरु कहैं सुजान ॥ १२७ ॥

१२७-१४७ में जिज्ञासुओं के प्रश्नों के उत्तर देते हैं-१२७ में प्रतिलोम क्रम से वीरबल के प्रश्न हैं-हे श्रेष्ठ ज्ञान सम्पन्न सद्गुरो ! मायादि विकारों से शून्य ब्राह्मी स्थिति को प्राप्त मुक्त पुरुष के क्या लक्षण हैं ? सांसारिक विषयों से विरक्त, आत्मा को शरीर से भिन्न मानकर सबको सम-भाव से देखना रूप आत्म स्थिति को प्राप्त मुमुक्षु के क्या लक्षण हैं ? और स्थूल शरीर को ही आत्मा मानकर, उसी के भरण-पोषण में संलग्न रहने वाले मानव के क्या लक्षण हैं ? आप मेरे उक्त प्रश्नों के उत्तर देने की कृपा करें।

काया के अस्थल रहैं, मन राजा पंच प्रधान ।
पच्चीस प्रकृति तीन गुण, आपा[1] गर्व[2] गुमान[3] ॥ १२८ ॥

१२८-१३० में अनुलोम क्रम से वीरबल के प्रश्नों का उत्तर दे रहे हैं—शरीर को ही आत्मा मानने वाले का मन राजा के समान इच्छानुसार धर्माधर्म में विचरता रहता है। पंच ज्ञानेन्द्रियों की मंत्रियों के समान प्रधानता रहती है अर्थात् वे भी मन की इच्छानुसार विहित, अविहित विषयों में भ्रमण करती रहती हैं। पच्चीस प्रकृति (पृथ्वी की पांच-१ अस्थि २ मेद ३ क्षुधा ४ रोध ५ भय। जल की पांच-१ त्वक २ मूत्र ३ तृषा ४ भ्रमण ५ मोहादिक। अग्नि की पांच-१ मांस २ रक्त ३ आलस्य ४ उर्ध्व गमन ५ क्रोध। वायु की पांच-१ नाड़ी २ वीर्य ३ संगम ४ अतिनिर्गमन ५ काम। आकाश की पांच-१ रोम २ कफ ३ निद्रा ४ उच्च स्थिति ५ लोभ) सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण में मेरा-पन[1] विद्या रूप गुणादि-का अभिमान[2] और शारीरिक-शक्ति[3] आदि का अभिमान इत्यादिक होना ही कायास्थल के लक्षण हैं।

आतम के अस्थान हैं, ज्ञान ध्यान विश्वास ।
सहज शील संतोष सत, भाव भक्ति निधि पास ॥ १२९ ॥

सत्यासत्य का विवेक रूप ज्ञान, सच्छास्त्र में विश्वास, स्वाभाविक ब्रह्मचर्य, यथालाभ संतोष, सत्यभाषण का अभ्यास, गुरुजनों में श्रद्धा, भगवान् की भक्ति, भगवत् स्वरूप का ध्यान, इत्यादिक दैवीगुण रूप निधि, शरीर से भिन्न आत्मा मानने वाले विरक्त मुमुक्षु के पास रहती है।

ब्रह्म शून्य तहँ ब्रह्म है, निरंजन निराकार ।
नूर तेज तहँ ज्योति है, दादू देखणहार ॥ १३० ॥

जहां समाधि अवस्था में मायादिक विकार-शून्य ब्राह्मी स्थिति प्राप्त होती है, वहां ही निरंजन, निराकार, प्रकाशस्वरूप ब्रह्म का साक्षात्कार होता है और वहां ब्राह्मी स्थिति प्राप्त पुरुष की आत्मज्योति ब्रह्म प्रकाश में लीन हो जाती है, आत्मा परमात्मा का अभेद हो जाता है, तब वह ब्राह्मी स्थिति को प्राप्त पुरुष द्रष्टा होकर रहता है। क्रिया, कर्मादि से उसका कोई सम्बन्ध

नहीं रहता। यही विकार-शून्य ब्रह्म प्राप्त पुरुष का लक्षण है। वीरबल से प्रश्नोत्तर सीकरी में हुये थे।

प्रश्न

मौजूद[1] खबर[2] माबूद[3] खबर, अरवाह[4] खबर वजूद[5]।
मकाम[6] चे[7] चीज़ हस्त[10], दादनी[8] सजूद[9] ॥ १३१ ॥

१३१ में अकबर बादशाह के प्रतिलोम क्रम से प्रश्न हैं— स्वामिन्! आपको परमार्थ के सभी विषयों का पूर्ण ज्ञान[2] उपस्थित[1] है, अत: मैं विनय[9] करता हूं-ब्रह्म[3] ज्ञान प्राप्त होने की स्थिति[6] के समय ज्ञानी में आत्मानात्मा[4] विवेक होने पर मुमुक्षुता की स्थिति के समय मुमुक्षु में, और देहाध्यास की स्थिति के समय देहाध्यासी[5] में क्या[7] क्या वस्तुयें रहती है[10], उनमें कैसे लक्षण वर्तते हैं ? इन प्रश्नों का उत्तर कृपा करके दें[8]।

उत्तर - वजूद मक़ाम हस्त (शरीअत)

नफ्स[1] ग़ालिब[2] किब्र[3] काबिज़[4], गुस्स:[5] मनी[6] एस्त[7]।
दुई[8] दरोग़[9] हिर्स[10] हुज्जत[11], नाम[12], नेकी[13] नेस्त[14] ॥ १३२ ॥

१३२-१३४ में अनुलोम क्रम से अकबर बाहशाह के प्रश्नों का उत्तर दे रहे हैं— जिसमें विषय-वासना[1] की प्रबलता[2], घमण्ड[3], क्रोध[5], काम[6], भेदभावना[8], मिथ्या[9] भोगों का लालच[10], झगड़ा[11], ये दृढ़[4] रूप से रहते हैं[7]। ईश्वर-नामस्मरण[12] और भलाई[13] नहीं[14] रहती, यही देहाध्यासी पुरुष के लक्षण हैं।

अरवाह मकाम हस्त[13] (तरीक़त)

इश्क[1] इबादत[2] बंदगी[3], यगानगी[4] इखलास[5]।
महर[6] मुहब्बत[7] खैर[8] खूबी[9], नाम[10] नेकी[11] खास[12] ॥ १३३ ॥

अत्यन्त प्रेम[1] से ईश्वर उपासना[2] सेवाभाव[3], एकात्म भाव रूप एकता[4], सब से मित्रता[5], दीनों पर दया[6], संतों में प्रेम[7], प्राप्त परिस्थिति में आनन्द[8], दैवीगुण विशिष्टता[9], आत्म चिन्तन[10], परोपकारिता[11], यही मुख्य[12] लक्षण मुमुक्षु में रहते हैं[13]।

माबूद मकाम हस्त (हकीकत)

यके[1] नूर[2] खूब[3] खूबां, दीदनी[4] हैरान[5]।
अजब[6] चीज़[7] खुरदनी[8], पियालए[9] मस्तान[10] ॥ १३४ ॥

अद्वितीय[1] प्रकाश[2] स्वरूप, श्रेष्ठों[3] से भी अति श्रेष्ठ, दर्शनीय[4] ब्रह्म को देखकर, आश्चर्य[5] युक्त हुये, इस अद्भुत[6] ब्रह्म वस्तु[7] रूप भोजन[8] का अभेद चिन्तन रूप आस्वादन करते हैं और उस ब्रह्म के प्रेम-रस को मन-प्याले[9] से पान करके मस्त[10] हो रहे हैं। यही ब्रह्मविदों के लक्षण हैं।

हैवान[1] आलम[2] गुमराह[3] ग़ाफिल[4], अव्वल[5] शरीयत पंद[6]।
हलाल[7] हराम[8] नेकी बदी, दर्से[9] दानिशमंद[10] ॥ १३५ ॥

उक्त प्रश्नों का उत्तर देकर, अकबर बादशाह को विशेष रूप से समझाने के लिये १३५-१३९ से मुसलमान धर्म की चार अवस्थाओं का वर्णन कर रहे हैं—१३५ में शरीअत नामक प्रथमावस्था का परिचय दे रहे हैं—संसार[२] में प्राणी विषय-विष के प्रभाव से अचेत[४] हुये, भगवान् के मार्ग[३] को भूलकर, नाना योनियों में पशु[१] के समान भटक रहे हैं। अतः बुद्धिमान्[१०] को चाहिये-उन्हें धार्मिक ग्रंथ पढ़ाकर[९] अथवा उपदेश[६] देते हुये उनसे बुरे[८] कर्म और पर निन्दादि बुराइयां छुड़ाकर, अच्छे[७] कर्म और परोपकारादि भलाइयां कराते हुये उनको शरीअत नामक प्रथमावस्था[५] में स्थापन करें। हराम और बदी को छोड़कर नेकी पर रहना ही 'शरीअत' अवस्था है।

कुल[1] फारिग़[2] तर्क[3] दुनियां, हररोज[4] हरदम[5] याद ।
अल्लह[6] आली[7] इश्क[8] आशिक[9], दरूने[10] फरियाद[11] ॥ १३६ ॥

१३६ में तरीकत नामक दूसरी अवस्था को बता रहे हैं—सांसारिक संपूर्ण[१] भोग-वासनाओं को त्याग[३] कर निश्चिन्त[२] हुआ प्रतिदिन[४] ही प्रतिश्वास[५] में ईश्वर[६] का स्मरण करता रहता है। अखिल विश्व के श्रेष्ठों में भी अति श्रेष्ठ[७] ईश्वर के अत्यन्त प्रेम[८] का प्रेमी[९] बना रहता है, ईश्वर प्रेम में किंचित् भी कमी नहीं आने देता और प्रभु के दर्शनार्थ हृदय[१०] से पुकार[११] करता रहता है। यही दूसरी शुद्धाचरण रूप 'तरीकत' अवस्था है।

(मारफत)

आब[1] आतश[2] अर्श[3] कुर्सी[4], सूरते[5] सुबहान[6] ।
शरर[7] सिफ़त[8] करद[9] बूद,[10] मारफ़त मक़ाम[11] ॥ १३७ ॥

१३७ में तीसरी मारफत अवस्था का परिचय दे रहे हैं— जल[१], अग्नि[२], आकाश[३], और पृथ्वी[४] ये सब उस परम पवित्र[६] परमात्मा के रूप[५] हैं। उस परमात्म रूप अग्नि की चिनगारी[७] के समान रहते हुये जो परमात्मा के गुण-गान[८] करता[९] है[१०], उसकी उक्त अध्यात्म स्थिति[११] ही तीसरी 'मारफत' अवस्था कहलाती है।

हक़[1] हासिल[2] नूर[3] दीदम[4], करारे[5] मकसूद[6] ।
दीदार[7] दरिया[8] अरवाहे[9], आमद[10], मौजूदे[11], मौजूद ॥ १३८ ॥

१३८ में हकीकत नामक चतुर्थावस्था का परिचय दे रहे हैं—जिस अवस्था में मन में साधन का यथार्थ फल आता[१०] है तब प्रकाश[३] स्वरूप ईश्वर[१] का दर्शन[४] प्राप्त[२] करके गर्भ की प्रतिज्ञा[५] और साधन का अभिप्राय[६] पूर्ण कर लेता है तथा आत्माएँ[९] ब्रह्म[८] का साक्षात्कार[७] करके उसमें अभेद[११] हो जाती है। वही यथार्थ तत्व प्राप्ति रूप चतुर्थ 'हकीकत' अवस्था कहलाती है।

चहार[1] मंजिल[2] बयान[3] गुफतम[4], दस्त[5] करद:[6] बूद[7] ।
पीरां[8] मुरीदां[9] खबर करद:, जा[10] राहे[11] माबूद[12] ॥ १३९ ॥

१३९ में उक्त चार अवस्थाओं का उपसंहार कर रहे हैं—चार[१] अवस्थाओं[२] की बात भली प्रकार वर्णन[३] करके कह दी[४] है। सिद्ध[८] संतों ने शिष्यों[९] को परमात्मा[१२] के स्थान[१०] का मार्ग[११]

हस्तगत[५] कर[६] दिया अर्थात् बता दिया है[७]। चार अवस्थाओं का संक्षिप्त स्वरूप—"शरीअत सेव शरीर की, तरीकत बे परवाह। मारफत मांहीं रहे, हकीकत मिल जाय।"

पहली प्राण पशू नर कीजे, साच झूठ संसार।
नीति अनीति भला बुरा, शुभ अशुभ निर्धार॥ १४०॥

१४०-१४४ में हिन्दी भाषा भाषियों के लिये उक्त चार अवस्थाओं का हिन्दी में वर्णन कर रहे हैं—प्रथम विवेक रहित संसारी प्राणी पशु के समान ही होता है। अत: विचारशील सज्जनों को चाहिये—उन्हें सत्य-मिथ्या, नीति-अनीति, भला- बुरा, शुभ और अशुभ के परिणाम का निर्णय सुनाकर मिथ्या, अनीति, बुराई और अशुभ कर्मों से हटाकर सत्य, नीति, भलाई और शुभ कर्मों में लगा के मनुष्य बनावें। यह मानवता ही प्रथमावस्था है।

सब तज देखि विचार कर, मेरा नाहीं कोइ।
अनुदिन[१] राता राम सौं, भाव भक्ति रत होइ॥ १४१॥

जिज्ञासु ने आत्मानात्म विचार द्वारा देख करके सोचा—अनात्म-संसार तो मिथ्या है। इन स्त्री, पुत्र, तन, धनादि में मेरा कोई भी नहीं है। इसलिए सबको त्याग कर प्रतिदिन[८] भगवत्-प्राप्ति के साधन-भाव, भक्ति आदि में लग कर भगवान् में ही रत रहता है। यह जिज्ञासु की शुद्धाचरण रूप स्थिति ही दूसरी अवस्था है।

अंबर धरती सूर शशि, सांई सब लै लावै अंग।
यश कीरति करुणा करे, तन मन लागा रंग॥ १४२॥

आकाश, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमादि सबको ही भगवान् स्वरूप जान कर अपने अन्त:करण की वृत्ति भगवान् में ही लगाता है, भगवान् का ही सृष्टि रक्षणादि रूप यश गान करता है। भक्त वत्सलतादि कीर्ति कथन करता है और विरह पूर्वक दर्शनार्थ विनय करता है तथा इस अवस्था में साधक के शरीर पर भगवत् रूप संत-सेवा का और मन पर भगवत्-ध्यान का गहरा रंग लगा रहता है। साधक की यह अध्यात्म स्थिति ही तीसरी अवस्था है।

परम तेज तहँ मैं गया, नैनहुँ देख्या आइ।
सुख संतोष पाया घणा, ज्योतिहिं ज्योति समाइ॥ १४३॥

जहां परम तेज स्वरूप ब्रह्म की अनुभूति होती है, उसी समाधि अवस्था में जब 'मैं' रूप जीवात्मा गया, तब वहां पहुँचते ही अपने ज्ञान-नेत्र से ब्रह्म का साक्षात्कार किया। साक्षात्कार होते ही महान् संतोष के सहित परमानन्द की प्राप्ति हुई और ब्रह्म रूप व्यापक ज्योति में आत्म-ज्योति समा गई, जीवात्मा-परमात्मा का अभेद हो गया। यह अभेद स्थिति ही चतुर्थावस्था है।

अर्थ चार अस्थान का, गुरु शिष्य कह्या समझाइ।
मारग सिरजनहार का, भाग बड़े सो जाइ ॥ १४४ ॥

चारों अवस्थाओं का अर्थ गुरुदेव ने कह कर शिष्य को समझा दिया। यह परमात्मा की प्राप्ति का मार्ग है। जो बड़भागी होता है वही इस मार्ग से जाकर परमात्मा को अभेद रूप से प्राप्त होता है।

आशिकां[१] मस्ताने आलम[२], खुरदनी[३] दीदार[४] ।
चंद[५] रह[६] चे[७] कार[८] दादू, यार[९] मां[१०] दिलदार[११] ॥ १४५ ॥

१४५ में साधकों की अनन्यता बता रहे हैं—संसार[२] में भगवान् के प्रेमी[१]-जन भगवद्-दर्शन[४] रूप भोजन[३] करके और उदार[११] ईश्वर रूप प्रेमपात्र[९] का प्रेम-रस[१०] पान करके मस्त रहते हैं। उन्हें स्वर्गादि के साधन रूप अल्प[५] मार्गों[६] से क्या[७] काम[८] है ? वे स्वर्गादिक प्राप्ति के साधन नहीं करते। रह के स्थान में दह पाठ भी मिलता है, चन्द दह का अर्थ १४ लोक करते हैं।

ब्रह्म साक्षात्कार धारणा

दादू दया दयालु की, सो क्यों छानी होइ ।
प्रेम पुलक मुलकत रहै, सदा सुहागनि सोइ ॥ १४६ ॥

१४६-१४९ में साक्षात्कार की स्थिति के आनन्द का प्रदर्शन कर रहे हैं—जिस भक्त पर परम दयालु भगवान् की दर्शन देना रूप दया होती है, वह किसी भी प्रकार छिपती नहीं। जैसे महिला का पति पास रहने से महिला प्रसन्न रहती है वैसे ही वह भक्त सर्वदा अपने प्रभु का दर्शन करते हुये प्रेमानन्द में पुलकित होकर प्रसन्न रहता है।

दादू विकस विकस दर्शन करै, पुलकि पुलकि रस पान ।
मगन गलित माता रहै, अरस परस मिल प्राण ॥ १४७ ॥

भक्त प्रफुल्लित हो-होकर प्रभु का दर्शन करते हैं और पुलकित हो-होकर प्रेम-रस का पान करते हुये देहाध्यास गल जाने पर ब्रह्मानन्द में ही निमग्न हो परस्पर अभेद भाव से मिलकर मस्त रहते हैं।

दादू देखि देखि सुमिरण करै, देखि देखि लै लीन ।
देखि देखि तन मन विलै, देखि देखि चित दीन ॥ १४८ ॥

भगवन्नाम महिमा, शास्त्र व संत वाणियों में पुन: २ देख कर नाम स्मरण करते रहते हैं। संसार में बारम्बार विक्षेप का अनुभव करके चित्त को भगवद्ध्यान में ही लगाते हैं। बारम्बार विचार द्वारा संसार को असार समझकर अन्त:करण की वृत्ति ब्रह्म में ही लीन करते हैं। शरीर, मनादि को ब्रह्म का विवर्त्त समझकर बाधितानुवृत्ति से ब्रह्म में विलीन करके अभेद रूप से निरन्तर ब्रह्म का ही साक्षात्कार करते रहते हैं।

दादू निरखि निरखि निज नाम ले, निरखि निरखि रस पीव।
निरखि निरखि पिव को मिलै, निरखि निरखि सुख जीव ॥ १४९ ॥

पुन: २ परीक्षा करके भगवान् के सत्, चित्, आनन्द, ब्रह्म, राम आदि निज नामों का ही चिन्तन करते हैं। पुन: २ भगवान् की अपार महिमा को देख कर, उनकी प्रेमा भक्ति-रस का पान करते हैं। अपने प्रियतम प्रभु को प्रत्येक प्राणी तथा वस्तुओं में विचार द्वारा व्यापक रूप से बारम्बार देखकर आप व्याप्यभाव से मिलते रहते हैं। जीव-ब्रह्म को श्रुति और अनुभव द्वारा सुख-स्वरूप तथा एक जानकर आनन्दित रहते हैं।

आत्म स्मरण

तन सौं सुमिरण सब करैं, आतम सुमिरण एक ।
आतम आगे एक रस, दादू बड़ा विवेक ॥ १५० ॥

१५०-१५४ में मन के द्वारा अपने आत्म स्वरूप ब्रह्म-स्मरण की विशेषता कह रहे हैं—हाथ से माला फेरना और मुख से उच्चारण करना रूप स्मरण तो सभी करते हैं किन्तु मन से अपने आत्म-स्वरूप राम का स्मरण तो एक मात्र श्रेष्ठ संत ही करते हैं। आत्म-स्मरण की सिद्धि के आगे तो महान् विवेक द्वारा एक-रस अद्वैत ब्रह्म ही अनुभव होता है।

दादू माटी के मुकाम का, सब को जानें जाप।
एक आध अरवाह का, विरला आपैं आप ॥ १५१ ॥

स्थूल शरीर की रक्षादि के लिये सकाम जप करना तो सभी मानव जानते हैं किन्तु आत्मा को परमात्मा से मिलाने योग्य निष्काम भाव से जप करने वाले तो कोई २ साधक ही होते हैं और उनमें भी ब्रह्म को अपना स्वरूप जानकर स्वरूपानन्द में निमग्न रहने वाला तो कोई विरला ही होता है।

दादू जब लग अस्थल देह का, तब लग सब व्यापै ।
निर्भय अस्थल आतमा, आगैं रस आपै ॥ १५२ ॥

जब तक स्मरण का स्थल स्थूल सूक्ष्म शरीर ही रहता है अर्थात् मानव दोनों शरीरों की उन्नति आदि के लिये ही सकाम स्मरण करता है, तब तक उसे काम, क्रोध, लोभ, मोह, भयादि सभी गुण व्यापते हैं और जब देहाध्यास रहित होकर स्मरण का स्थल आत्मा ही हो जाता है तब निरन्तर आत्म-चिन्तन ही होने लगता है। उसके पश्चात् तो आत्मा एक रस ब्रह्म रूप ही हो जाता है।

जब नाहीं सुरति शरीर की, बिसरे सब संसार ।
आत्म न जाने आपको, तब एक रह्या निर्धार ॥ १५३ ॥

जब स्मरण करते २ शरीर का भी ध्यान नहीं रहता, तब तो साधक संपूर्ण सांसारिक भोग-वासनादि विकारों से मुक्त हो जाता है और जीवात्मा अपने को ब्रह्म से भिन्न नहीं जानता। तब विचार द्वारा यही निर्णय होता है- एक अद्वैत ब्रह्म ही सम्पूर्ण विश्व में भरा हुआ है।

तन सौं सुमिरण कीजिये, जब लग तन नीका।
आतम सुमिरण ऊपजे, तब लागे फीका ॥
आगैं आपैं आप हैं, तहाँ क्या जीव का ॥ १५४ ॥

जब तक विवेकहीन अवस्था में असत्य, असुन्दर, अशिव शरीर—सत्य सुन्दर शिव रूप भासता है तब तक चित्त की एकाग्रता पूर्वक आत्म-स्वरूप राम का स्मरण तो हो नहीं पाता। अत: मुख और हाथों से माला फेरना रूप स्मरण शरीर से ही करना चाहिये। जब मन में आत्माराम के स्मरण करने की अवस्था उत्पन्न हो जाती है अर्थात् मन आत्माराम के स्मरण में रत हो जाता है तब शरीर पूर्ववत् सुन्दर नहीं लगता। मानस जप की सिद्धि के पश्चात् वृत्ति का ब्रह्म में लय होकर आत्मा व ब्रह्म में अभेद हो जाता है, फिर उस अभेदावस्था में जीव का जीवत्व-भाव क्या रह सकता है ? अर्थात् नहीं रहता।

परिचय

चर्म दृष्टि देखै बहुत, आतम दृष्टि एक ।
ब्रह्म दृष्टि परचै भया, तब दादू बैठा देख ॥ १५५ ॥

१५५-१५७ में साक्षात्कार सम्बन्धी दृष्टि की विलक्षणता बता रहे हैं—संसार में गौर, कृष्ण, स्थूल, कृश आदि रूपों को अपने चर्म चक्षुओं से देखने वाले बहुत हैं किन्तु विचार-नेत्रों द्वारा सबको एकात्म-भाव से देखने वाला आत्मज्ञानी कोई विरला ही होता है। ब्रह्म-ज्ञान की प्रौढ़ावस्था रूप नेत्र से ब्रह्म साक्षात्कार हो जाने पर तो ब्रह्म में ही स्थित रहकर सम्पूर्ण विश्व को ब्रह्म-रूप ही देखता है अथवा चर्मचक्षु वाला देहाध्यासी पुरुष संसार में नानात्व का दर्शन करता है क्योंकि वह देहादि को आत्मा मानता है और वे नाना हैं। आत्मदृष्टि वाला सब पदार्थों में एकात्मभाव का दर्शन करता है। ब्रह्मदृष्टि वाला पुरुष विरला होता है और वह ब्रह्म-रूप, शुद्ध-साक्षी द्रष्टा मात्र बन जाता है।

ये ही नैना देह के, ये ही आतम होइ ।
ये ही नैना ब्रह्म के, दादू पलटे दोइ ॥ १५६ ॥

हमारे ये दोनों नेत्र अज्ञान दशा में स्थूल शरीर को ही देखने वाले होते हैं, फिर गुरु द्वारा आत्म-ज्ञान होने पर ये ही दोनों सब शरीरों में आत्मा को देखने लग जाते हैं। ब्रह्म-ज्ञान की प्रौढ़ावस्था होने पर ये ही नेत्र सबमें ब्रह्म को ही देखने लगते हैं। मन के भावानुसार दृष्टि बदलती है किन्तु वह देह-दशा और आत्म-दशा में ही बदलती है, ब्रह्म-दृष्टि होने पर नहीं।

घट परचै सब घट लखै, प्राण परचै प्राण ।
ब्रह्म परचै पाइये, दादू है हैरान ॥ १५७ ॥

शरीर को आत्म रूप से पहचानता है, तब अन्य सबको भी सूक्ष्म शरीर रूप ही जानता है। ब्रह्म साक्षात्कार हो जाता है, तब स्वयं को ब्रह्म रूप ही देखता है और अन्य जिज्ञासुओं को भी उसकी कृपा से ब्रह्म साक्षात्कार प्राप्त होता है। यह ब्रह्म-साक्षात्कार अवस्था प्राप्त होते ही साधक,

''अहो ! मैं था तो सच्चिदानन्द स्वरूप और अपने को मान रहा था असत्य, जड़ दु:ख-रूप'', ऐसा विचार करके महान् आश्चर्य चकित होता है।

सूक्ष्म सौंज अर्चा बंदगी।

दादू जल पाषाण ज्यों, सेवे सब संसार।
दादू पाणी लौंण ज्यों, कोई विरला पूजणहार॥ १५८॥

१५८-१६६ में सेवा-पूजा की सूक्ष्म सामग्री और उसकी पद्धति आदि बता रहे हैं—जैसे जल में पत्थर रह कर भी जल से अभेद नहीं हो पाता, वैसे ही संसार के प्राणी व्यापक ब्रह्म में निवास करते हुये, उसकी सेवा करने पर भी उससे अभेद नहीं होते। कारण—उनकी सेवा-पूजा बाह्य और कामना रूप स्थूलता से सम्पन्न होती है। कोई विरले संत ही निष्कामभाव से आन्तर सूक्ष्म सेवा-पूजा-द्वारा जल में नमक के समान ब्रह्म में लीन हो जाते हैं, अन्य नहीं।

अलख नाम अंतर कहै, सब घट हरि हरि होइ।
दादू पाणी लौंण ज्यों, नाम कहीजे सोइ॥ १५९॥

मन इन्द्रियों के अविषय परमात्मा का नाम, भीतर अन्त:करण की वृत्ति से चिन्तन करते हैं तब अभ्यास बढ़ने पर सम्पूर्ण शरीर के रोम २ से नाम ध्वनि होने लगती है और वह नाम जल में नमक के समान साधक के शरीर में व्याप्त हो जाता है। इस प्रकार का नाम-चिन्तन ही सूक्ष्म नाम-स्मरण कहलाता है।

छाड़े सुरति शरीर को, तेज पुंज में आइ।
दादू ऐसे मिल रहै, ज्यों जल जलहि समाइ॥ १६०॥

शरीर की आसक्ति रूप विशेष प्रीति को त्याग कर, तेज-पुंज स्वरूप ब्रह्म का चिन्तन करने से साधक के अन्त:करण की वृत्ति तेज-पुंज-आत्मा में आकर उसके अज्ञान को नष्ट कर देती है। अज्ञान नष्ट होते ही जैसे जल में जल मिल जाता है, वैसे ही आत्मा ब्रह्म में मिल जाता है।

सुरति रूप शरीर का, पिव के परसे होइ।
दादू तन मन एक रस, सुमिरण कहिये सोइ॥ १६१॥

प्रभु का साक्षात्कार रूप स्पर्श होने के समय शरीर का स्वरूप ब्रह्माकार-वृत्ति मात्र ही रहता है, शरीरादि मायिक प्रपंच उस समय नहीं भासता। जब स्थूल शरीर और मन रूप सूक्ष्म-शरीर वृत्ति में लय होकर एक रस ब्रह्म ही भासने लगे, तब वही स्मरण की परिपाकावस्था कहलाती है।

राम कहत राम हि रह्या, आप विसर्जन होइ ।
मन पवना पंचों विलै, दादू सुमिरण सोइ ॥ १६२ ॥

राम कहते २ जब अनात्म अहंकार को भूल कर मन, प्राण और इन्द्रियां विशेष करके राम-परायण ही रहने लगें, अन्य बाह्य व्यवहार को भूल जायें तथा एकमात्र राम स्मरण ही रहे, उसी अवस्था का नाम-स्मरण सच्चा स्मरण है।

जहँ आतम राम संभालिये, तहँ दूजा नाहीं और ।
देही आगे अगम है, दादू सूक्षम ठौर ॥ १६३ ॥

जिस निर्विकल्पावस्था में आत्म स्वरूप राम का साक्षात्कार होता है, उस अवस्था में द्वैत भाव नहीं रहता। देहधारी प्राणियों की सविकल्पावस्था से निर्विकल्पावस्था आगे है। उस अवस्था में प्राप्त होने योग्य और वृत्ति के विलय होने का ब्रह्म रूप धाम अति सूक्ष्म है।

परमातम सौं आतमा, ज्यों पाणी में लौंण ।
दादू तन मन एक रस, तब दूजा कहिये कौंण ॥ १६४ ॥

जब इन्द्रिय रूप तन सहित मन निरन्तर भगवत् परायण रहने लगता है, तब आत्म-ज्ञान होकर अज्ञान नष्ट हो जाता है और आत्मा जल में नमक के समान परमात्मा में लय हो जाता है। उस लयावस्था में बताइये, नमक को जल से और आत्मा को परमात्मा से भिन्न कौन कहेगा ?

तन मन विलै यों कीजिये, ज्यों पाणी में लौंण।
जीव ब्रह्म एकै भया, तब दूजा कहिये कौंण ॥ १६५ ॥

जैसे जल में नमक डालने से नमक जल के आकार का ही हो जाता है वैसे ही भगवत् स्वरूप सन्तों की सेवा तथा भगवत् ध्यान द्वारा इन्द्रिय रूप तन और मन को भगवान् में लगाओ। हमारे तन-मन भगवत् परायण हुये थे, तब शीघ्र ही जीव ब्रह्म एक हो गये थे। जब उक्त रीति से जीव-ब्रह्म की एकता हो जायेगी तब बताइये, उनको भिन्न कौन कहेगा ?

तन मन विलै यों कीजिये, ज्यों घृत लागे घाम।
आत्म कमल तहँ बंदगी, जहँ दादू परकट राम ॥ १६६ ॥

जैसे घृत-खंड सूर्य की ताप से गलकर एक हो जाते हैं वैसे ही विवेक-वैराग्यादि साधन से इन्द्रिय रूप तन और मन को भगवत् परायण करो और जहां भगवान् प्रत्यक्ष रूप से दर्शन देते हैं, उसी अपने अष्टदल-कमल पर भगवान् की सेवा-पूजा करके प्रणाम करो।

नख शिख स्मरण

कोमल कमल तहँ पैसि कर, जहाँ न देखे कोइ।
मन थिर सुमिरण कीजिये, तब दादू दर्शन होइ ॥ १६७ ॥

१६७-१७६ में आन्तर स्मरण की विशेषता बताते हुये नख-शिख स्मरण का परिचय दे रहे हैं - अन्तर्मुख होकर सहज दशा द्वारा कोमल हुये अष्टदल-हृदय-कमल में मन को स्थिर करके स्मरण करो। हृदय-स्मरण को कोई देख नहीं सकता, गुप्त रूप से होने के कारण वह विशेष माना जाता है। जब उक्त स्मरण-साधन परिपाकावस्था को प्राप्त होगा, तब वहां ही प्रभु-दर्शन हो जायेगा।

नख शिख सब सुमिरण करे, ऐसा कहिये जाप।
अंतर विकसे आतमा, तब दादू प्रकटे आप ॥ १६८ ॥

अष्टदल-कमल पर मन की स्थिरता बढ़कर निरन्तर स्मरण होने लगता है, तब वह स्मरण संपूर्ण शरीर में व्याप्त हो जाता है। उस अवस्था में साधक वृत्ति शरीर के किसी भी अंग पर जाये, वहां ही उसे स्मरण होता हुआ ज्ञात होता है। उसी अवस्था का परिचय दे रहे हैं—जब पैर के नख से मस्तक की शिखा पर्यन्त प्रत्येक रोम से स्मरण होने लगता हे तब वह ऐसा स्मरण ही परम-जाप कहलाता है। इस परम-जाप की सिद्धावस्था आते ही अन्त:करण रूप आत्मा संशय, विपर्य्यादि दोषों से रहित होकर प्रफुल्लित होता है। उस प्रफुल्लित अन्त:करण में अपने आप ही आत्मा और परमात्मा का अभेद ज्ञान प्रकट होकर ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाता है।

अंतरगति हरि हरि करे,तब मुख की हाजत[१] नांहि ।
सहजैं ध्वनि लागी रहै, दादू मन ही मांहि ॥ १६९ ॥

जब साधक हृदय में निरन्तर हरि २ करता रहता है और मन में भी स्वाभाविक ध्वनि लगी रहती है तब उसे मुख से जाप करने की इच्छा[१] नहीं होती।

दादू सहजैं सुमिरण होत है, रोम रोम रमि राम।
चित्त चहूंट्या चित्त सौं, यों लीजे हरि नाम ॥ १७० ॥

आन्तर स्मरण का अभ्यास दृढ़ हो जाने पर रोम २ में रमे हुए राम का स्मरण स्वाभाविक ही होता रहता है और उक्त प्रकार के स्मरण से व्यष्टि-चित्त समष्टि-चित्त से जुड़ जाता है तब आत्मा परमात्मा में लीन हो जाता है। साधको ! तुमको भी उक्त प्रकार ही स्मरण करना चाहिये।

दादू सुमिरण सहज का, दीन्हा आप अनन्त।
अरस परस उस एक सौं, खेलैं सदा वसंत ॥ १७१ ॥

हमारे को सहज-स्मरण का उपदेश अनन्त शक्ति-सम्पन्न स्वयं भगवान् ने ही वृद्ध ऋषि के रूप में प्रकट होकर अहमदाबाद के कांकरिया सरोवर पर दिया था। इस सहज स्मरण रूप साधन के प्रताप से ही हम उस अद्वैत ब्रह्म से एकमेक होकर सदा ही ब्रह्मानन्द का अनुभव रूप वसंतोत्सव खेल खेलते रहते हैं। प्रसंगकथा-दृ सु. सि. त. ११-/९९ में देखो।

दादू शब्द अनाहत हम सुन्या, नख शिख सकल शरीर ।
सब घट हरि हरि होत है, सहजैं ही मन थीर ॥ १७२ ॥

हमने सहज स्मरण के प्रताप से ही पैर के नख से मस्तक की शिखा पर्यन्त कंठ, तालु आदि के आघात बिना ही होने वाला '' हरि हरि'' रूप अनाहत शब्द सुना है। अब वह संपूर्ण शरीर में प्रतिक्षण होता ही रहता है और उस पर हमारा मन भी स्वाभाविक ही स्थिर रहता है।

हुण[१] दिल लागा हिकसां[२], मे[३] कूं येहा[४] ताति[५]।
दादू कम्म[६] खुदाय दे, बैठा डीहै[७] राति ॥ १७३ ॥

अब[१] तो हमारा मन एक[२] मात्र परमात्मा से ही लगा रहता है और मेरे[३] यही[४] लगन[५] है कि- हमारा मन कभी भगवान् से विमुख न हो। हे ईश्वर। आप कृपा करके हमें अपने दर्शन के साधन रूप कार्य[६] ही दें, हम दिन[७] रात बैठे हुये आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

दादू माला सब आकार की, कोई साधू सुमिरै राम।
करणी[१]- कर तैं क्या किया, ऐसा तेरा नाम ॥ १७४ ॥

सब लोक मायिक आकारों की प्राप्ति के लिये ही माला फेरते हैं। निरंजन राम का रोम २ से स्मरण तो कोई विरला संत ही करता है। हे विश्व-कर्त्ता[१] ईश्वर ! आपने ऐसा क्या विधान बना रखा है— जिसको तोड़कर, अत्यन्त सुगम, अति श्रेष्ठ, आपकी प्राप्ति का साधन आपका नाम है, उस ऐसे नाम को राम रोम से सब नहीं भज सकते।

सब घट मुख रसना करे, रटे राम का नाम।
दादू पीवे राम रस, अगम अगोचर ठाम ॥ १७५ ॥

सम्पूर्ण शरीर के रोम कूपों को मुख और सम्पूर्ण रोमों को जिह्वा बनाकर राम-नाम का जप करे और जप से होने वाले आनन्द-रस का पान करे तो मन से परे इन्द्रियातीत ब्रह्म-धाम को प्राप्त होने में कोई भी संशय नहीं रहता।

दादू मन चित सुस्थिर कीजिये, तो नख शिख सुमिरण होइ ।
श्रवण नेत्र मुख नासिका, पंचों पूरे सोइ ॥ १७६ ॥

अन्य स्मरण और अन्य चिन्तन त्याग कर निरन्तर मन से तथा चित्त से एक ईश्वर का ही स्मरण-चिन्तन होना मन-चित्त की स्थिरावस्था है। इसको सम्पादन करो, फिर अपने आप ही नख से शिखा पर्यन्त स्मरण होने लगेगा। जो नख शिख स्मरण करता है वही अपनी श्रवण, नेत्र, जिह्वा, नासिका, त्वचा इन पांचों ज्ञानेन्द्रियों को पूर्णतया प्रभु परायण कर पाता है।

साधु महिमा

आतम आसन राम का, तहां बसे भगवान।
दादू दोनों परस्पर, हरि आतम का स्थान ॥ १७७ ॥

१७७-१८३ में संतों की विशेषता बता रहे हैं—राम व्यापक है तो भी उनका विशेष आसन सन्तात्मा ही माना जाता है। संतों के हृदय में भगवान् सन्तों को दीखते रहते हैं, अत: वे वहां बसते हैं। वैसे ही भगवान् सन्तों का निवास स्थान है, कारण, सन्तों का मन निरन्तर भगवान् में ही लीन रहता है। अत: दोनों का परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध होने से संसार में सन्त महान् माने जाते हैं।

राम जपे रुचि साधु को, साधु जपे रुचि राम।
दादू दोनों एकटग, यहु आरम्भ यहु काम ॥ १७८ ॥

संत प्रेम-पूर्वक राम का स्मरण करते हैं तब राम भी प्रीति-सहित संतों का योग-क्षेम करने के लिये उनका स्मरण करते रहते हैं। निरन्तर भगवत्-स्मरण करना ही सन्तों का मुख्य कार्य है। निरन्तर सन्तों की रक्षा करना ही भगवान् का मुख्य कार्य है। इस प्रकार दोनों प्रेम-पूर्वक एक दूसरे को निर्निमेष देखते रहते हैं।

जहाँ राम तहँ संत जन, जहाँ साधु तहँ राम ।
दादू दोनों एकठे, अरस परस विश्राम ॥ १७९ ॥

जिस निर्विकल्पावस्था में राम का साक्षात्कार होता है उसी में प्राय: संतजन रहते हैं और जिस निर्विकल्पावस्था में प्राय: सन्तजन रहते हैं उसीमें राम रहते हैं। इस प्रकार संत और राम दोनों परस्पर एक होकर आनन्द लेते हैं।

दादू हरि साधू यों पाइये, अविगत के आराध।
साधू संगति हरि मिलैं, हरि संगति तैं साध ॥ १८० ॥

सन्तों के आराध्य मन इन्द्रियों के अविषय भगवान् उक्त प्रकार से सन्तों को निर्विकल्पावस्था में प्राप्त होते हैं और सन्तों की संगति से सर्व साधारण प्राणी भी भगवान् को प्राप्त करने की पद्धति जानकर उसके द्वारा भगवान् से मिलते हैं, फिर भगवान् का मिलन होने पर उनकी संगति से प्राणी सन्त हो जाता है।

दादू राम नाम सौं मिल रहे, मन के छाड़ि विकार ।
तो दिल ही मांहीं देखिये, दोनों का दीदार ॥ १८१ ॥

यदि मन के कामादिक सम्पूर्ण विकारों का त्याग करके वृत्ति राम-नाम से अभेद हो जाय तब तो सन्त रूप सगुण ब्रह्म और निर्गुण ब्रह्म तथा आत्मा-परमात्मा के दर्शन अपने हृदय में ही किये जा सकते हैं।

साधु समाना राम में, राम रह्या भरपूर ।
दादू दोनों एक रस, क्यों कर कीजे दूर ॥ १८२ ॥

सन्तों का मन अभेद भावना द्वारा राम में समाया हुआ रहता है और राम व्यापक रूप से उनमें परिपूर्ण रहते ही हैं। इस प्रकार वे दोनों निरन्तर मिले ही रहते हैं, भिन्न करके दूर कैसे किया जा सकता है ?

दादू सेवक सांई का भया, तब सेवक का सब कोइ ।
सेवक सांई को मिल्या, तब सांई सरीखा होइ ॥ १८३ ॥

जब सन्त-सेवक परमात्मा का बन जाता है, तब परमात्मा का सब ऐश्वर्य संत का हो जाता है और जब सन्त-सेवक परमात्मा को प्राप्त हो जाता है, तब वह परमात्मा रूप ही बन जाता है।

सत्संग-महिमा

मिश्री मांहीं मेलि कर, मोल बिकाना बंस ।
यों दादू महँगा भया, पारब्रह्म मिल हंस ॥ १८४ ॥

१८४-१८५ में सत्संग महिमा कह रहे हैं-पूर्वकाल में बांस की सींकों पर मिश्री जमाई जाती थी उसी के दृष्टान्त द्वारा कह रहे हैं-जैसे मिश्री में मिलकर बांस मिश्री के भाव महँगा बिकता है वैसे ही जीवात्मा परब्रह्म से मिलकर परब्रह्म के समान महँगा हो जाता है अर्थात् ब्रह्म ही हो जाता है।

मीठे मांहीं राखिये, सो काहे न मीठा होइ ।
दादू मीठा हाथ ले, रस पीवैं सब कोइ ॥ १८५ ॥

जैसे कषाय हरड़े मिश्री की चासनी में डालने से मधुर हो जाती है, वैसे ही विषयासक्ति रूप कषायता से युक्त मन को मधुर-सत्संग में रखने से वह क्यों नहीं मधुर होगा ? उसकी विषयासक्ति-कषायता अवश्य नष्ट हो जायेगी । फिर उस सत्संग-मधुरता का सार अति मधुर आत्मज्ञान अन्त:करण की वृत्ति-हाथ में धारण करके सभी जिज्ञासु जन ब्रह्म साक्षात्कार जन्य आनन्द-रस का पान करते हैं।

संगति कुसंगति

मीठे सौं मीठा भया, खारे सौं खारा ।
दादू ऐसा जीव है, यहु रंग हमारा ॥ १८६ ॥

सुसंग कुसंग का फल बता रहे हैं—जैसे जल मधुर मिश्री से मधुर और खारे नमक से खारा हो जाता है, ऐसा ही यह जीव है । मधुर-सत्संग से आत्म-ज्ञान-मधुरता सम्पन्न और कुसंग रूप क्षार से विषय-वासना रूप क्षारता-सम्पन्न हो जाता है । यह सत्संग रूप हमारा रंग जीव के कल्याण का साधन होने से अति श्रेष्ठ है । अत: सत्संग करना चाहिये ।

साधु महिमा

मीठै मीठे कर लिये, मीठा मांहीं बाहि ।
दादू मीठा ह्वै रह्या, मीठे मांहिं समाइ ॥ १८७ ॥

१८७-१८८ में संत महिमा कह रहे हैं—ब्रह्मज्ञान-मधुरता से युक्त सन्तों ने मधुर-सत्संग में लगाकर जिज्ञासुओं को ज्ञान-मधुरता से युक्त किया है । जो जिज्ञासु संशय-विपर्य्यय रहित अपरोक्ष ज्ञान-मधुरता से मधुर हो जाता है, वह मधुर ब्रह्म में ही समा जाता है ।

राम बिना किस काम का, नहिं कौड़ी का जीव ।
सांई सरीखा ह्वै गया, दादू परसे पीव ॥ १८८ ॥

जो सन्तों के ज्ञान द्वारा अपने प्रियतम प्रभु को प्राप्त हो गया है, वह तो ब्रह्म रूप ही हो गया है और जो जीव राम से विमुख है वह किस काम का है ? एक कौड़ी का भी नहीं। अत: सन्तों के संग से ही प्राणी की उन्नति होती है।

पारिख-अपारिख

हीरा कौड़ी ना लहे, मूरख हाथ गँवार ।
पाया पारिख जौहरी, दादू मोल अपार ॥ १८९ ॥

१८९-१९० में परीक्षक का परिचय दे रहे हैं—जैसे मूर्ख के हाथ में हीरा आने पर एक कौड़ी भी नहीं प्राप्त करता वैसे ही अज्ञानी के अन्त:करण में—नरदेह, राम नाम, आत्मज्ञान कुछ भी महत्व नहीं पाते किन्तु हीरा जौहरी के हाथ में और नरदेह, राम-नाम, आत्मज्ञान विचारशील की बुद्धि में जाकर अपार मूल्य पाते हैं।

अंधे हीरा परखिया, कीया कौड़ी मोल ।
दादू साधू जौहरी, हीरे मोल न तोल ॥ १९० ॥

विचार-नेत्रहीन अन्धा-नरदेह, राम नाम, आत्मज्ञानादि हीरों का मूल्य विषय रूप कौड़ी ही करता है किन्तु सन्त जौहरी उक्त हीरों का मूल्य-माप अपार ही बताते हैं।

साधु महिमा

मीरां[1] कीया महर सौं, परदे तैं लापर्द ।
राखि लिया दीदार में, दादू भूला दर्द ॥ १९१ ॥

१९१-१९२ में सन्त महिमा कह रहे हैं—हमारे धर्माचार्य[1] सन्तों ने अपनी कृपा से हमें माया रूप पड़दे से मुक्त करके ब्रह्म स्वरूप में स्थिर किया है। जब से हम अभेद रूप से ब्रह्म में स्थित हुये हैं तब से जन्मादि दु:ख को भूल गये हैं।

दादू नैन बिन देखबा, अंग बिन पेखबा।
रसन बिन बोलबा, ब्रह्म सेती ॥
श्रवन बिन सुनबा, चरण बिन चालबा।
चित्त बिन चिन्तबा, सहज एती ॥ १९२ ॥

शरीर रहित ब्रह्म का देखना स्थूल नेत्रों से नहीं होता, वह तो विवेक विचार-नेत्रों से ही देखा जाता है। ब्रह्म से बोलना भी रसना द्वारा न होकर वृत्ति से ही होता है। ब्रह्मवाणी भी श्रवणों से न सुनकर हृदयाकाश में ही सुनी जाती है। ब्रह्म-धाम को स्थूल चरणों से चल कर नहीं पहुंच सकते, वृति से ही पहुँचते हैं और चित्त बिना ही ब्रह्म का चिन्तन होता है। सहजावस्था में सन्त की ऐसी स्थिति रहती है, यही महिमा है।

पतिव्रत

दादू देख्या एक मन, सो मन सब ही माँहिं ।
तिहिं मन सौं मन मानिया, दूजा भावे नांहिं ॥ १९३ ॥

अपनी अनन्यता रूप पतिव्रत बता रहे हैं—हमने समाधि अवस्था में अद्वैत ब्रह्म रूप मन देखा है। यह सभी में है किन्तु समाधि बिना नहीं भासता। उसी मन के चिन्तन में हमारा व्यष्टिमन सन्तोष मानता है। हमारे मन को उससे भिन्न कुछ भी अच्छा नहीं लगता।

पुरुष प्रकाशी

दादू जिहिं घट दीपक राम का, तिहिं घट तिमिर न होइ ।
उस उजियारे ज्योति के, सब जग देखे सोइ ॥ १९४ ॥

ज्ञान प्रकाश सम्पन्न पुरुष का परिचय दे रहे हैं—जिस पुरुष के अन्त:करण में ब्रह्म का यथार्थ ज्ञान-दीपक है, उसके हृदय में अज्ञानांधकार नहीं रहता। उस ज्ञान-ज्योति के प्रकाश से वह सम्पूर्ण जगत् को ब्रह्म रूप देखता है।

पतिव्रत

दादू दिल अरवाह[१] का, सो अपना ईमान[२] ।
सोई साबित[३] राखिये, जहँ देखे रहमान[४] ॥ १९५ ॥

१९५-१९६ में अनन्यता की प्रेरणा कर रहे हैं—जो अपने-अपने मन का ईश्वर[१]-विश्वास[२] है वही प्राणियों के कल्याण का हेतु है। अत: उसी को सावधानी से पूरा[३] दृढ़ रखो और जहां भी देखो वहां ही दयालु[४] ईश्वर को ही देखो वा जिस हृदय स्थल में भगवान् देखते हैं उसके विश्वास को पूरा दृढ़ रखो।

अलह[१] आप ईमान[२] है, दादू के दिल मांहिं ।
सोई साबित राखिये, दूजा कोई नांहिं ॥ १९६ ॥

तेरे मन में तो स्वयं सत्य[२] स्वरूप ब्रह्म[१] ही स्थित है। लोगो ! तुम भी सावधानी से हृदयस्थ सत्य ब्रह्म का चिन्तन ही पूरी दृढ़ता से रखो, ईश्वर से अन्य कोई भी सत्य नहीं है।

अध्यात्म

प्राण पवन ज्यों पतला, काया करे कमाइ ।
दादू सब संसार में, क्यों ही गह्या न जाइ ॥ १९७ ॥
नूर तेज ज्यों ज्योति है, प्राण पिंड यों होइ ।
दृष्टि मुष्टि आवे नहीं, साहिब के वश सोइ ॥ १९८ ॥

१९७-१९९ में दो सिद्धों को उपदेश दे रहे हैं—प्राणी अपने स्थूल शरीर को योग साधन द्वारा सुधार कर वायु के समान सूक्ष्म बना ले जो सम्पूर्ण संसार में किसी भी उपाय से पकड़ा न जाय ॥१९७॥ उसके प्राण तेज स्वरूप हो जाये तथा स्थूल शरीर भी ज्योतिर्मय बन जाय। वह देखने में

न आवे तथा मुष्टि से पकड़ने में भी नहीं आवे, ऐसा योगी भी ईश्वर के आधीन रहता है। प्रसंग कथा-दृ. सु. सि.त. १०/३० में देखो।

काया सूक्षम कर मिले, ऐसा कोई एक ।
दादू आतम ले मिलैं, ऐसे बहुत अनेक ॥ १९९ ॥

श्रेष्ठ साधक की विशेषता का परिचय दे रहे हैं—सूक्ष्म शरीर को साथ लेकर वैकुण्ठादि लोकों में जाकर भगवान् से मिले ऐसे भक्त बहुत हैं किन्तु स्थूल शरीर को सूक्ष्म बनाकर ब्रह्म से मिले ऐसा सन्त तो कोई बिरला ही होता है। दादूजी स्थूल शरीर को सूक्ष्म करके ही प्रभु से मिले हैं। कहा भी है—"गुरु दादू रु कबीर की, काया भई कपूर। रज्जब रीझा देखकर, सहगुण निर्गुण नूर॥" प्रसंग कथा-दृ.सु.सि. त. १०/३० में देखो।

सुन्दरी सुहाग

आडा आतम तन धरे, आप रहे ता मांहि ।
आपण खेले आपसौं, जीवन सेती नांहि ॥ २०० ॥

सुन्दरी के रूपक से अभेदानन्द प्राप्ति का परिचय दे रहे हैं—आत्म सुन्दरी अपने और अपने प्रियतम ब्रह्म के बीच से देहाध्यास-पड़दा दूर धर के निरन्तर स्वयं अपने प्रियतम के चिन्तन में रत रहती है तब अपने अन्त:करण की वृत्ति द्वारा परब्रह्म से ब्रह्मानन्द खेल खेलने लगती है। अन्य जीवों से भेद व्यवहार रूप खेल कभी नहीं खेलती।

अध्यात्म

दादू अनुभव तैं आनन्द भया, पाया निर्भय नाम।
निश्चल निर्मल निर्बाण पद, अगम अगोचर ठाम॥ २०१॥

२०१-२०७ में अध्यात्म अनुभव की विशेषता बता रहे हैं—जिसकी प्राप्ति का स्थान षट्-प्रमाणों से परे इन्द्रियातीत निर्विकल्प समाधि है, जिसका नाम निर्भय, निश्चल, निर्मल है, जिसका स्वरूप काल कर्म के बाणघात से रहित है और जो नित्य प्राप्त है; उस ब्रह्म के साक्षात्कार से हमें आनन्द प्राप्त हुआ है।

दादू अनुभव वाणी अगम को, ले गई संग लगाइ ।
अगह गहै अकह कहै, अभेद भेद लहाइ[1]॥ २०२ ॥

आत्मानुभवी सन्तों की वाणी जिज्ञासु के अन्त:करण की वृत्ति को साथ लेकर मन इन्द्रियों के अविषय ब्रह्म में जाती है और ब्रह्म साक्षात्कार करा देती है। जो तत्त्ववेत्ता से ग्रहण नहीं हो सका उस ब्रह्म को आत्मस्वरूप से ग्रहण करता है। शक्ति वृत्ति युक्त वाणी से न कहा जा सके उसी ब्रह्म का लक्षणा वृत्ति से कथन करता है और भेद को दूर करके अभेद रूप से आनन्द में मग्न रहता है वा अद्वैत ब्रह्म का भी रहस्य प्राप्त[1] करता है।

जो कुछ वेद कुरान तैं, अगम अगोचर बात ।
सो अनुभव साचा कहै, यहु दादू अकह कहात॥ २०३ ॥

जो कुछ वास्तविक तत्त्व है सो वेद कुरान से भी अगम है, इन्द्रियातीत है। उस तत्त्व की बात यथार्थ रूप से अनुभव ज्ञान ही बताता है। वेदादिक से भी सम्पूर्ण रूप से नहीं कहा जाता, इसलिए यह अकह कहलाता है।

दादू जब घट अनुभव ऊपजे, तब किया करम का नाश।
भय अरु भ्रम भागे सबै, पूरण ब्रह्म प्रकाश ॥ २०४ ॥

जब अन्त:करण में ब्रह्म का अपरोक्ष ज्ञान होता है तब वह अनुभव ज्ञान सम्पूर्ण संचित कर्मों को नाश कर डालता है और हृदय में पूर्ण ब्रह्म का प्रकाश होते ही सम्पूर्ण भय तथा भ्रम हृदय को छोड़ भागते हैं। मुख्य भय सप्तविध हैं— ''इह लोक, परलोक भय, मरण वेदना घात अनरक्षा असु गुप्त भय, अकस्मात् भय सात॥'' मुख्य भ्रम पंचविध हैं- ''भेद भरम, कर्तृत्व भ्रम, पुनि भ्रम संग विकार। ब्रह्म इतर जग सत्य भ्रम, पंचम भ्रम संसार॥''

दादू अनुभव काटे रोग को, अनहद उपजे आइ।
सेझे का जल निर्मला, पीवे रुचि ल्यौलाइ ॥ २०५ ॥

ब्रह्म का अपरोक्ष-ज्ञान जन्मादिक संसार-रोग को नष्ट करता है और उससे 'अहं ब्रह्मास्मि' वृत्ति रूप अनाहत ध्वनि प्रकट होती है। उक्त ज्ञान रूप निर्मल-जल साधन-सेझे से निकलता है। ज्ञानी सन्त अपनी चित्त-वृत्ति को ब्रह्म में लगाकर रुचि अनुसार अभेद ज्ञान-जल का पान करते हैं।

दादू वाणी ब्रह्म की, अनुभव घट प्रकाश।
राम अकेला रह गया, शब्द निरंजन पास ॥ २०६ ॥

अन्त:करण में अपरोक्ष ज्ञान होने पर जो अनुभव वाणी प्रकट होती है, वह ब्रह्म की ही वाणी मानी जाती है। वह ब्रह्म-वाणी-शब्द जीव को निरंजन ब्रह्म के पास पहुँचा देता है। ब्रह्म से मिलने पर जीव का जीवत्व भाव नष्ट होकर अद्वैत ब्रह्म रूप से ही रहता है।

जे कबहूँ समझे आतमा, तो दृढ़ गह राखे मूल।
दादू सेझा रामरस, अमृत काया कूल[1] ॥ २०७ ॥

यदि जीवात्मा पूर्व-पुण्य, सन्त, शास्त्र, हरि, गुरु, कृपादि से कभी अपने वास्तविक स्वरूप ब्रह्म को समझ लेता है तब तो निज मन को दृढ़ता से अपने मूल-ब्रह्म में ही रखता है, मायिक प्रपंच में नहीं जाने देता। इस एकाग्रता के प्रभाव से अन्त:करण में राम-प्रेम रस का सेझा निकलता है और हृदय सरोवर को भरता है। फिर साधक काया के भीतर हृदय-सरोवर के तट[1] पर वृत्ति द्वारा स्थित होकर, राम-प्रेम-रस का मन्थन करता है और उससे प्रकट अद्वैतामृत का पान करके संसार में धन्यवाद के योग्य हो जाता है।

परिचय जिज्ञासु उपदेश

दादू मुझ ही मांहीं मैं रहूँ, मैं मेरा घरबार।
मुझ ही मांहीं मैं बसूं, आप कहै करतार ॥ २०८ ॥

२०८-२१८ में भगवान् किस देश, किस ग्राम, किस स्थान में रहते हैं इत्यादिक जिज्ञासुजनों के प्रश्नों का उत्तर भगवद् वचनों द्वारा ही दे रहे हैं—मैं अपनी महिमा रूप देश में रहता हूँ, मेरी सर्वव्यापकता ही मेरा घरबार है, जिसमें मैं निर्विकार स्वरूप से निवास करता हूँ। स्वयं भगवान् ही अपना ऐसा वर्णन करते हैं।

दादू मैं ही मेरा अर्श[१] में, मैं ही मेरा स्थान।
मैं ही मेरी ठौर में, आप कहै रहमान ॥ २०९ ॥

मुसलमान सप्तम आकाश में ईश्वर का स्थान मानते हैं, उन्हें कहते हैं—मैं तो अपने स्वरूप चिदाकाश में ही रहता हूँ, मायिक सप्तम आकाश[१] में नहीं। मेरा ग्राम और मेरा स्थान भी मैं ही हूं। स्वयं दयालु ईश्वर ही यह कहते हैं।

दादू मैं ही मेरे आसरे, मैं मेरे आधार।
मेरे तकिये मैं रहूं, कहै सिरजनहार ॥ २१० ॥

मेरा आश्रय, आधार और अधिष्ठान मैं ही हूं, अन्य सब तो मेरे विवर्त्त होने से मेरे आश्रयादि हो नहीं सकते। संसार के स्रष्टा भगवान् स्वयं ही यह कहते हैं।

दादू मैं ही मेरी जाति में, मैं ही मेरा अंग।
मैं ही मेरा जीव में, आप कहै प्रसंग ॥ २११ ॥

मैं ही मेरी जाति हूँ अर्थात् चेतन रूप हूँ, मेरे हाथ पैरादि अंग भी मैं सच्चिदानन्द ही हूँ और मेरे व्यष्टि स्वरूप जीव में भी सार तत्त्व मैं चेतन ही हूँ। यह प्रसंग स्वयं भगवान् ही कहते हैं।

दादू सबै दिशा सो सारिखा, सबै दिशा मुख बैन।
सबै दिशा श्रवणहुँ सुने, सबै दिशा कर नैन ॥ २१२ ॥

परमात्मा व्यापक और सर्वरूप होने से सभी दिशाओं में समान है। उसके सब दिशाओं में मुख, वचन, हाथ, नेत्र, श्रवण हैं और सभी दिशाओं में वह खाता, बोलता, हाथ से ग्रहण करता, देखता व सुनता है।

सबै दिशा पग शीश है, सबै दिशा मन चैन।
सबै दिशा सन्मुख रहै, सबै दिशा अँग ऐन[१] ॥ २१३ ॥

ईश्वर का सभी दिशाओं में चरण, मस्तक और मन है। वह व्यापक होने से सभी दिशाओं में सदा सबके सन्मुख रहता है। उसके स्वरूप का साक्षात्कार[१] जन्य आनन्द भी सभी दिशाओं में प्राप्त होता है।

बिन श्रवणहुँ सब कुछ सुने, बिन नैनहुँ सब देखे।
बिन रसना मुख सब कुछ बोले, यहु दादू अचरज पेखे ॥ २१४ ॥

परब्रह्म निराकार है, अत: हमारे समान उसके श्रवण, नेत्र, रसना और मुख नहीं हैं तो भी वह सब कुछ सुनता है, सब देखता है, सब रसों का आस्वादन करता है, सब कुछ बोलता है। परब्रह्म के स्वरूप में ऐसा महान् आश्चर्य देखा जाता है।

सब अंग सब ही ठौर सब, सर्वंगी सब सार ।
कहै गहै देखै सुनै, दादू सब दीदार ॥ २१५ ॥

संपूर्ण विश्व जिसके अंग उपांग हैं, ऐसा सर्वंगी और सब संसार का सार स्वरूप परमात्मा सर्व स्थलों में बोलता है, ग्रहण करता है, देखता है, सुनता है। यह सब संसार उसी का स्वरूप है ।

कहै सब ठौर, गहै सब ठौर, रहै सब ठौर, ज्योति परवानै ।
नैन सब ठौर, बैन सब ठौर, ऐन सब ठौर, सोई भल जानै ॥
शीश सब ठौर, श्रवण सब ठौर, चरण सब ठौर, कोई यहु मानै ।
अंग सब ठौर, संग सब ठौर, सबै सब ठौर दादू ध्यानै ॥ २१६ ॥

वेदादिक शास्त्र ब्रह्म को सर्वत्र व्यापक बताते हैं। वह प्रभु सभी भक्तों के उपहार को सर्वत्र ग्रहण करता है। अत: वह सर्व स्थलों में स्थित है। जिस भक्त को जितनी उसकी ज्ञान-ज्योति प्राप्त हुई है, उतना ही वह उसको जानता है किन्तु सर्व स्थलों में उसके नेत्र, वचन, मस्तक, श्रवण, चरणादि अंग हैं। वह सर्व स्थलों में सबके साथ रहता है तथा सर्व स्थानों पर सर्व रूप से रहता है। परन्तु कोई विरला व्यक्ति ही इस बात को मानता है। जो निरंतर ब्रह्म ध्यान में रत रहता है वही ब्रह्म को भली प्रकार सर्व स्थलों पर अपरोक्ष रूप से जानता है।

तेज ही कहना, तेज ही गहना, तेज ही रहना सारे ।
तेज ही बैना, तेज ही नैना, तेज ही ऐन हमारे ॥
तेज ही मेला, तेज ही खेला, तेज अकेला, तेज ही तेज सँवारे ।
तेज ही लेवे, तेज ही देवे, तेज ही खेवे, तेज ही दादू तारे ॥ २१७ ॥

निज निष्ठा का परिचय दे रहे हैं—ब्रह्म ध्यान द्वारा हमारी ऐसी स्थिति हो रही है—हम तेजोमय ब्रह्म का ही कथन करते हैं, आत्मरूप से उसे ही ग्रहण करते हैं। विश्व के सार-स्वरूप ब्रह्म में ही वृत्ति द्वारा रहते हैं। हमारे वाणी और नेत्र ब्रह्म-परायण ही रहते हैं। हृदय में भी ब्रह्म का प्रत्यक्ष अनुभव होता रहता है। ब्रह्म से ही हमारा मिलन और उसी से ही हमारी क्रीड़ा होती है। उस अद्वैत समष्टि तेज का चिन्तन ही जीव रूप व्यष्टि तेज का देहाध्यास-नाश द्वारा सुधार करता है। अब तो हमारा ग्रहण-त्याग सभी तेजोमय ही होता है। वह तेजोमय ब्रह्म ही हमारा खेवटिया है तथा वही अपने ज्ञान द्वारा सभी को संसार से पार करता है।

नूर हि का धर, नूर हि का घर, नूर हि का वर मेरा ।
नूर हि मेला, नूर हि खेला, नूर अकेला, नूर हि मंझ बसेरा ॥
नूर हि का अँग, नूर हि का सँग, नूर हि का रँग मेरा ।
नूर हि राता, नूर हि माता, नूर हि खाता दादू तेरा ॥ २१८ ॥

हमारा आत्मरूप शरीर प्रकाशमय ही है और ब्रह्मरूप हमारा घर भी प्रकाशमय ही है। हमारा स्वामी प्रकाशमय है। आत्मरूप प्रकाश ब्रह्म प्रकाश से मिलता है और प्रकाशमय ब्रह्म में ही क्रीड़ा करता है। इन्द्रिय अन्त:करणादि को त्यागकर एकमात्र आत्मप्रकाश ही ब्रह्मप्रकाश में बसता है। हमारा आत्मा प्रकाशमय ब्रह्म का ही अंग है और ब्रह्म के ही संग रहता है। हमारा रंग-ढंग भी ब्रह्म रचित ही है। हम ब्रह्म में ही रत हैं; ब्रह्म में ही मस्त हैं। हे प्रभो ! मेरा तो भोजन भी आपका ज्ञान-प्रकाश ही है।

सूक्ष्म सौंज अर्चा बंदगी

दादू नूरी[1] दिल अरवाह का, तहां बसे माबूदं[2]।
तहँ बन्दे की बन्दगी, जहां रहे मौजूदं ॥ २१९ ॥

२१९-२२५ में आन्तर सूक्ष्म सेवा-पूजा की सामग्री बता रहे हैं—जीवात्माओं के शुद्ध[1] अन्त:करण में ही ईश्वर[2] का विशेष रूप से निवास रहता है और जिस अन्त:करण में भगवान् विशेष रूप से स्थित रहता है, उसी शुद्ध अन्त:करण में भक्त की सच्ची उपासना होती है।

दादू नूरी दिल अरवाह का, तहँ खालिक[1] भरपूरं।
आली[2] नूर अल्लाह का, खिदमतगार[3] हजूरं ॥ २२० ॥

जीवात्माओं के शुद्ध अन्त:करण में ईश्वर[1] विशेष रूप से परिपूर्ण रहता है। उस सर्व श्रेष्ठ[2] परमात्मा के स्वरूप का दर्शन करने के लिए सेवक[3] निरंतर साधन करते हुये प्रभु से सन्मुख रहते हैं।

दादू नूरी दिल अरवाह का, तहँ देख्या करतारं।
तहँ सेवक सेवा करे, अनन्त कला रवि सारं ॥ २२१ ॥

हम साधक आत्माओं ने ज्ञान प्रकाश युक्त अन्त:करण में अनन्त कलाओं से संपन्न सूर्य प्रकाश के सार समान तेजोमय परमात्मा को देखा है और वहां ही उसकी सूक्ष्म सेवा में रत रहने लगे हैं।

दादू नूरी दिल अरवाह का, तहाँ निरंजन वासं ।
तहँ जन तेरा एक पग, तेज पुंज प्रकाशं ॥ २२२ ॥

जीवात्माओं के ज्ञानप्रकाश युक्त अन्त:करण में ही निरंजन ब्रह्म का विशेष रूप से निवास रहता है। साधक ! उस शुद्ध ज्ञानयुक्त अन्त:करण में यदि तेरा वृत्ति रूप पाद एक रहे अर्थात् ब्रह्म-भिन्न वृत्ति न हो तो ज्ञान-राशि ब्रह्म-प्रकाश तेरे हृदय में प्रकट रूप से भासने लगेगा।

दादू तेज कमल दिल नूर का, तहाँ राम रहमानं।
तहँ कर सेवा बंदगी, जे तू चतुर सयानं ॥ २२३ ॥

जिसका हृदय कमल शुद्ध और ज्ञान-तेज-सम्पन्न है, उसी में दयालु[1] राम का विशेष रूप

से निवास रहता है। साधक! यदि तू विलक्षण चतुरता संपन्न विचारवान् है तो उस शुद्ध अन्त:करण में ही वृत्ति को स्थिर करके सूक्ष्म रूप से सेवा-पूजा कर।

तहां हजूरी बन्दगी, नूरी दिल में होइ।
तहँ दादू सिजदा करे, जहाँ न देखे कोइ॥ २२४॥

जब अन्त:करण शुद्ध और ज्ञान प्रकाश युक्त होता है तब उसमें प्रत्यक्ष सूक्ष्म पूजा होने लगती है। उच्च कोटि के साधक जहां उनको कोई भी न देख सके, वहां हृदय के भीतर ही प्रणाम रूप वन्दना भक्ति करते हैं।

दादू देही मांहीं दोइ दिल, इक खाकी इक नूर।
खाकी दिल सूझे नहीं, नूरी मंझ हजूर॥ २२५॥

जीवात्मा के भीतर ही ब्रह्म का निवास है तथापि देहधारियों के कर्मानुसार उनका मन मलीन वा शुद्ध होता है। जिसका मन मलीन है, उसे ईश्वर नहीं भासते और जिसका मन शुद्ध है वह तो भगवान् के सन्मुख ही स्थित रहता है।

नमाज-सिजदा

दादू हौज[1] हजूरी दिल ही भीतर, गुसल[2] हमारा सारं।
उजू[3] साजि अलह के आगे, तहां नमाज[4] गुजारं[5]॥ २२६॥

२२६-२३० में आन्तर उपासना का परिचय दे रहे हैं—हमारे हृदय के भीतर ही प्रभु-प्रेम रूप पानी का कुंड[1] भरा है, उसी में हमारा श्रेष्ठ रीति से स्नान[2] होता है और भीतर परमात्मा के सन्मुख ही अपनी पंच ज्ञानेन्द्रिय रूप पंच अंगों को विषय रहित करना रूप सुधार[3] करना ही हमारी उजू है। हम शुद्ध अन्त:करण में ही उपासना[4] करते[5] हैं।

दादू काया मसीत कर पंच जमाती, मन ही मुल्ला इमामं[1]।
आप अलेख इलाही[2] आगे, तहँ सिजदा[3] करे सलामं[4]॥ २२७॥

हमारा शरीर ही मस्जिद है और पंच ज्ञानेन्द्रियां ही हमारा साथ देने वाले जमाती हैं। विवेक सम्पन्न मन ही मार्ग प्रदर्शक-मुल्ला[1] है। हम शुद्ध अन्त:करण में आत्मा रूप में ईश्वर[2] के सन्मुख ही प्रणाम[4] पूर्वक उपासना[3] करते हैं।

दादू सब तन तसबीह[1] कहै करीमं[2], ऐसा कर ले जापं।
रोजा[3] एक दूर कर दूजा, कलमा[4] आपै आपं॥ २२८॥

अपने सब शरीर को ही माला[1] बनाकर ऐसा जाप करो जिससे रोम-रोम से दयालु[2] ईश्वर का नाम उच्चारण होता रहे। एकात्म भाव-व्रत[3] करके द्वैत भाव को हृदय से दूर हटाओ। अपने वास्तविक स्वरूप ब्रह्म में ही निरन्तर स्थिति रूप मूल-मंत्र[4] पढ़ो, तब ही असत् संसार से मुक्त हो सकोगे।

दादू आठों पहर अलह के आगे, इकटक रहबा ध्यानं।
आपै आप अर्श[1] के ऊपर, जहां रहै रहमानं[2]॥ २२९॥

हृदयाकाश[१] के ऊपर जहां अष्टदल कमल पर अपना आत्मस्वरूप दयालु[२] ईश्वर विराजमान है, वहां ही ईश्वर के सन्मुख रहकर आठों पहर ईश्वर के अखंड ध्यान में रहना चाहिए।

आठों पहर इबादती[१], जीवन मरण निर्वाहि।
साहिब दर सेवे खड़ा, दादू छाड़ि न जाइ ॥ २३० ॥

सेवक को चाहिये भगवत् भजन रूप भगवान् के द्वार पर सदा खड़ा रहकर भगवत् सेवा करे। कभी भी भजन को छोड़ कर विषयों में नहीं जाय। जन्म से मरण पर्यन्त दिन के आठों पहर ही उपासना[१] होनी चाहिये। जो ऐसी उपासना को अन्त तक निभाता है, वह भगवान् को ही प्राप्त होता है।

साधु महिमा

अट्ठे[१] पहर अर्श[२] में, ऊभोई[३] आहे[४]।
दादू पसे[५] तिन्न के, अल्लह गाल्हाये[६] ॥ २३१ ॥

२३१-२३५ में सन्त महिमा कहते हुये सन्त दर्शन की प्रेरणा कर रहे हैं—जो शुद्ध हृदयाकाश[२] में आठों[१] पहर ही वृत्ति द्वारा भगवान् के सन्मुख खड़े[३] ही रहते हैं[४] और ध्यानावस्था में अन्तर्मुख वृत्ति द्वारा भगवान् से वार्तालाप[६] करते हैं, अपने कल्याणार्थ उन सन्तों के दर्शन[५] करने चाहिये।

अट्ठे[१] पहर अर्श में, बैठा पीरी[२] पसंनि[३]।
दादू पसे[४] तिन्न के, जे दीदार[५] लहंनि[६] ॥ २३२ ॥

जो आठो[१] पहर हृदयाकाश में अपने प्रियतम[२] प्रभु का दर्शन[३] करने के लिये चित्त-वृत्ति ब्रह्म चिन्तन में रखते हुये ब्रह्म का साक्षात्कार[५] कर[६] चुके हैं, उन सन्तों के दर्शन[४] अपने कल्याणार्थ अवश्य करने चाहिये।

अट्ठे पहर अर्श में, जिन्हीं[१] रूह[२] रहंनि[३]।
दादू पसे तिन्न के, गुझ्यूं[४] गाल्ही[५] कंनि[६] ॥ २३३ ॥

हृदयाकाश में अष्टदल-कमल पर स्थित परमात्मा में ही जिनका[१] मन[२] आठों पहर लगा रहता[३] है और अपने प्रभु सम्बन्धी गूढ़[४] विचार रूप वार्तालाप[५] करते-रहते[६] हैं, उन लोक कल्याण के कारण रूप सन्तों के दर्शन अवश्य करने चाहिये।

अट्ठे पहर अर्श में, लुड़ींदा[१] आहीन[२]।
दादू पसे तिन्न के, असां[३] खबर डीन्ह[४] ॥ २३४ ॥

प्रभु का साक्षात्कार करने पर भी हृदयाकाश में स्थित प्यारे[१] प्रभु का साक्षात्कार करने में ही लगे रहते[२] हैं और जिनने हमें[३] प्रभु प्राप्ति सम्बन्धी साधन-समाचार दिये[४] हैं, उन सन्तों के दर्शन अवश्य करने चाहिये।

अट्ठे पहर अर्श में, वजी[१] जे गाहीन[२]।
दादू पसे तिन्न के, कितेई आहीन[३] ॥ २३५ ॥

जो देहाध्यासादिक सांसारिक भावनाओं को त्याग[१] कर हृदयाकाश में स्थित प्रभु की खोज[२] करते हैं, ऐसे सन्त संसार में कितनेक हैं[३] ? अर्थात् बहुत कम हैं। अत: भाग्यवश कहीं सुन पाओ तो अवश्य उनके दर्शन-सत्संग से लाभ उठाना चाहिये।

रस (प्रेम-प्याला)

प्रेम पियाला नूर का, आशिक भर दीया।
दादू दर दीदार में, मतवाला कीया ॥ २३६ ॥

२३६-२४१ में प्रभु प्रेम का परिचय दे रहे हैं—प्रभु ने निज स्वरूप का प्रेम प्याला आनन्द-रस से भरकर अपने प्रेमी-भक्त मुझ को दिया और हृदय में ही दर्शन देकर अपने स्वरूप में मस्त कर लिया, यह उनका अनुग्रह है।

इश्क सलूना[२] आशिकां, दरगह[१] तैं दीया।
दर्द मुहब्बत प्रेम रस, प्याला भर पीया ॥ २३७ ॥

प्रभु ने सत्संग-सभा[१] के द्वारा निज प्रेमी भक्तों को अपने अति सुन्दर[२] प्रेम-रस का प्याला दिया है। अत: भक्तों ने भी वियोग-जन्य दर्द और प्रेम पूर्वक प्रेम-रस का प्याला इच्छा भर के पान किया है।

दादू दिल दीदार दे, मतवाला कीया।
जहाँ अर्श इलाही[१] आप[२] था, अपना कर लीया ॥ २३८ ॥

हृदयाकाश में जहां अष्टदल-कमल पर भगवान्[१] स्वयं[२] प्रथम से ही थे, उनको जब हमने अपनाकर उनका आश्रय लिया, तब उन्होंने अनुग्रह करके हमारे मन में ही अपना दर्शन देकर हमें दर्शनानन्द से मस्त कर लिया है।

दादू प्याला नूर[१] दा[२], आशिक अर्श पिवन्न[३]।
अठे पहर अल्लाहदा, मुँह दिट्ठे जीवनि[४] ॥ २३९ ॥

प्रेमी जन शुद्ध हृदयाकाश में शुद्ध स्वरूप[१] ब्रह्म के प्रेम-रस का[२] प्याला पान[३] करते हैं और आठों पहर परब्रह्म का व्यापक रूप से दर्शन करते हुये ही जीवित[४] रहते हैं।

आशिक अमली[१] साधु सब, अलख दरीबे[२] जाइ।
साहिब दर[३] दीदार[४] में, सब मिल बैठे आइ ॥ २४० ॥

साधन-व्यसन के व्यसनी[१] भगवत् प्रेमी सभी संत मन इन्द्रियों के अविषय ब्रह्म वस्तु की प्राप्ति के लिये सत्संग बाजार[२] में आते हैं और ब्रह्माकार वृत्ति रूप द्वार[३] पर कुछ ठहर कर फिर सभी ब्रह्म स्वरूप[४] से आकर अभेद भावना से ब्रह्म में मिलकर स्थित होते हैं। यह एकता प्रभु-प्रेम का ही फल है।

राते माते प्रेम-रस, भर-भर देइ खुदाइ।
मस्तान मालिक कर लिये, दादू रहे ल्यौ लाइ ॥ २४१ ॥

भगवान् अपने भक्तों को बारम्बार निज प्रेम-रस का प्याला भर-भर कर देते रहते हैं अर्थात् उनकी मनोवृत्ति में अपना प्रेम जाग्रत करते रहते हैं। इसीलिये प्रेमीजन भगवान् में ही अनुरक्त रहते हुये भगवत् नाम चिन्तन में ही मस्त रहते हैं। इस प्रकार प्रभु ने ही जगत् चिन्ता से शून्य करके अपने भक्तों को मस्त बनाया है और वे मस्त भक्त भी अपनी चित्तवृत्ति निरन्तर प्रभु में ही लगाकर संसार में निर्द्वन्द्व रहते हैं।

लांबी (अगाध) भक्ति

दादू भक्ति निरंजन राम की, अविचल अविनाशी।
सदा सजीवन आतमा, सहजैं परकाशी ॥ २४२ ॥

२४२-२४६ में भक्ति की अपारता बता रहे हैं—अविचल, अविनाशी, निरंजन राम की भक्ति भी अविचल, अविनाशी होती है। सद्‌गुरु की कृपा से जिनके हृदय में वह प्रकट हुई है, वे साधक अनायास ही सदा के लिये अजर, अमर, ब्रह्म-स्वरूप सजीवन भाव को प्राप्त हुये हैं।

दादू जैसा राम अपार है, तैसी भक्ति अगाध।
इन दोनों की मित[१] नहीं, सकल पुकारैं साध ॥ २४३ ॥

जैसा राम अपार है वैसे ही राम की भक्ति भी अपार है। सभी संत यही कहते आये हैं—''भगवान् और भक्ति इन दोनों का ही माप[१] नहीं हो सकता।''

दादू जैसा अविगत राम है, तैसी भक्ति अलेष।
इन दोनों की मित नहीं, सहस मुखां कह शेष ॥ २४४ ॥

जैसे राम मन इन्द्रियों के अविषय है वैसे ही उनकी भक्ति भी इन्द्रियातीत है, शब्दों द्वारा लिखी नहीं जा सकती। भगवान् और भक्ति इन दोनों की ही महिमा असीम है। शेषजी भी अपने हजार मुखों से भगवान् और भक्ति की महिमा गान करते हुये थककर यही कहते हैं—''भगवान् और भक्ति की महिमा अपार है।''

दादू जैसा निर्गुण राम है, तैसी भक्ति निरंजन जाणि।
इन दोनों की मित नहीं, संत कहैं परमाणि ॥ २४५ ॥

जैसे राम गुणमयी माया से रहित है वैसे ही राम-भक्ति को भी माया रूप कालिमा से रहित ही जानो। प्रामाणिक संतों ने भी यही कहा है—भगवान् और भक्ति इन दोनों का माप किसी भी प्रकार नहीं हो सकता।

जैसा पूरा राम है, तैसी पूरण भक्ति समान।
इन दोनों की मित नहीं, दादू नाहीं आन ॥ २४६ ॥

जैसे राम व्यापक होने से विश्व में परिपूर्ण हैं, वैसे ही उनकी भक्ति भी किसी न किसी रूप से विश्व में परिपूर्ण है। अत: दोनों समान ही हैं। इनके समान अन्य कोई नहीं है, इसलिये इन दोनों का माप और मूल्य हो नहीं सकता।

सेवा अखंडित

दादू जब लग राम है, तब लग सेवक होइ ।
अखंडित सेवा एक रस, दादू सेवक सोइ ॥ २४७ ॥

२४७-२४९ में निरन्तर सेवा की विशेषता बता रहे हैं—जब तक राम अपने से भिन्न भासता है तब तक निरन्तर भक्ति करते हुये सेवक बना रहना चाहिये। जो सेवक अखण्डित सेवा से सेव्य में एकरस होकर मिल जाय, वही सच्चा सेवक है।

दादू जैसा राम है, तैसी सेवा जाणि ।
पावेगा तब करेगा, दादू सो परमाणि ॥ २४८ ॥

जैसा राम अखण्ड है, वैसी ही अखण्ड सेवा करने से राम की प्राप्ति होती है। ऐसा जानकर जो निरन्तर भक्ति करेगा, वह राम को अवश्य प्राप्त करेगा। जो राम को प्राप्त कर लेता है, वही प्रामाणिक भक्त माना जाता है।

सांई सरीखा सुमिरण कीजे, सांई सरीखा गावे।
सांई सरीखी सेवा कीजे, तब सेवक सुख पावे ॥ २४९ ॥

जैसा परमात्मा सच्चिदानन्द स्वरूप है, वैसे ही सच्चिदानन्द रूप से उसका स्मरण करना चाहिये तथा जैसे परमात्मा के बल प्रभावादि अपार हैं, वैसे ही उसका यश-गान करना चाहिये तथा जैसा परमात्मा अखण्ड है, वैसी ही उसकी भक्ति भी अखण्ड ही करनी चाहिये। जब उक्त रीति से कीर्तन, स्मरण और प्रीति करता है, तब सेवक ब्रह्मानन्द को प्राप्त कर लेता है।

परिचय करुणा विनती

दादू सेवक सेवा कर डरै, हम तैं कछू न होइ।
तूं है तैसी बंदगी, कर नहिं जाने कोइ ॥ २५० ॥

२५०-२५१ में परिचय पश्चात् सेवक की करुणा-पूर्वक विनय का स्वरूप बता रहे हैं—सेवक सेवा करके सेव्य के सामने डरता हुआ करुणा पूर्ण विनय करता है-हे भगवन् ! मुझसे आपकी कुछ भी सेवा नहीं हो पाती। मेरे से ही क्या-किन्तु जैसे आप सच्चिदानन्द, अखण्ड, एकरस हो, वैसी सेवा तो कोई भी नहीं कर जानता।

दादू जे साहिब माने नहीं, तऊ न छाडूं सेव ।
इहिं अवलम्बन जीजिये, साहिब अलख अभेव[1] ॥ २५१ ॥

यदि मेरे स्वामी मेरी सेवा को स्वीकार नहीं करेंगे तो भी मैं तो उनकी सेवा न छोडूंगा। हे मन इन्द्रियों के अविषय अद्वैत[1] स्वरूप स्वामिन् ! मैं तो आपकी इस सेवा के अवलम्बन से ही जीवित रह रहा हूँ अत: इसे कैसे छोड़ सकता हूं।

सूक्ष्म सौंज अर्चा बन्दगी

आदि अंत आगे रहे, एक अनूपम देव[1] ।
निराकार निज निर्मला, कोई न जाने भेव[2] ॥ २५२ ॥

२५२-२५५ में सेव्य का स्वरूप बताते हुये सूक्ष्म सामग्री से अन्तर अर्चना भक्ति द्वारा साक्षात्कार की प्रेरणा कर रहे हैं—परब्रह्म व्यापक होने से प्रत्येक प्राणी की जन्म मृत्यु के समय वा प्रत्येक वृत्ति की उत्पत्ति-लय के समय से पूर्व ही सर्व स्थलों में स्थित है। वह त्रिविध भेद शून्य, तथा उपमा रहित, निराकार, निर्मल दिव्य[१]-स्वरूप और सबका निजात्मा रूप है किन्तु फिर भी अज्ञानी तो कोई भी उनके रहस्यमय[२] वास्तविक स्वरूप को नहीं जानता।

अविनाशी अपरं परा, वार पार नहिं छेव[२] ।
सो तूं दादू देखि ले, उर अंतर कर सेव ॥ २५३ ॥

जो परब्रह्म अविनाशी, माया[१] से भिन्न, आदि अन्त की सीमा[२] से रहित है। साधक ! तू उसकी आन्तर भक्ति करके अपने हृदय में ही उसका साक्षात्कार कर।

दादू भीतर पैसि कर, घट के जड़ै कपाट ।
सांई की सेवा करै, दादू अविगत घाट ॥ २५४ ॥

अन्त:करण की वृत्ति को अन्तर्मुख करके, शरीर के इन्द्रिय रूप कपाटों को प्रत्याहार द्वारा बन्द करे, फिर मन इन्द्रियों से अतीत ब्रह्म-सरोवर के निर्विकल्पावस्था रूप घाट पर ब्रह्म की ब्रह्म-चिन्तन रूप सेवा करे।

घट परिचय सेवा करै, प्रत्यक्ष देखै देव ।
अविनाशी दर्शन करै, दादू पूरी सेव ॥ २५५ ॥

२५४ में कथन करी पद्धति के अनुसार शरीर में निर्विकल्पावस्था से परिचय होने पर विकल्प शून्य ब्रह्म-चिन्तन रूप सेवा करता है। वह साधक अपने अभीष्ट देव ब्रह्म का निजात्म रूप से प्रत्यक्ष दर्शन करता है। जब अविनाशी ब्रह्म का निजात्मरूप से साक्षात्कार करता है तब उस साधक की भक्ति पूर्णावस्था को प्राप्त हो जाती है।

भ्रम विध्वंसन

पूजनहारे पास हैं, देही मांही देव ।
दादू ताको छाड़ कर, बाहर माँडी सेव ॥ २५६ ॥

उपास्य-रूप के भ्रम का नाश कर रहे हैं—उपासक के अत्यन्त समीप शरीर के भीतर हृदयस्थल में ही उपास्य देव निजात्मरूप से स्थित है। अज्ञानी प्राणी भ्रमवश उसे छोड़कर, बाहर अनात्म-अचेतन पदार्थों को भगवान् मान कर उनकी सेवा में लगे हैं। अत: उन्हें चाहिये—सत्संग द्वारा चेतन परमात्मा के स्वरूप को समझकर उसकी उपासना करें।

परिचय

दादू रमता राम सौं,खेले अंतर माँहि ।
उलट समाना आप में, सो सुख कतहूं नाँहि ॥ २५७ ॥

२५७-२५९ में साक्षात्कार की विशेषता दिखा रहे हैं—जो साधक सब में रमने वाले व्यापक राम से अपने शरीर में हृदय के भीतर ही राम का चिन्तन रूप खेल खेलता है, वह अपनी इन्द्रियों के प्रत्याहार द्वारा वृत्ति, सांसारिक भावनाओं से बदल कर ब्रह्माकार करता है और अपने आत्म-स्वरूप राम में अभेद हो जाता है। उस अभेद अवस्था के सुख के समान सुख संसार में कहीं भी नहीं है।

दादू जे जन बेधे प्रीति सौं, सो जन सदा सजीव ।
उलट समाने आप में, अंतर नाहीं पीव ॥ २५८ ॥

जो साधक जन भगवत् प्रेम-बाण से विद्ध हो जाते हैं, उनकी चित्त-वृत्ति सांसारिक राग के बन्धन से नहीं बँधती। वे निज वृत्ति को सांसारिक भावनाओं से बदल कर, अपने आत्म-स्वरूप में लीन होकर सदा के लिये ब्रह्म प्राप्ति रूप अमरता को प्राप्त हो जाते हैं। उनका परब्रह्म से भेद नहीं रहता।

परकट खेलैं पीव सौं, अगम अगोचर ठाम ।
एक पलक का देखना, जीवन मरण का नाम ॥ २५९ ॥

परब्रह्म के एक क्षण मात्र दर्शन होने पर, क्या जीवन-मरण यह नाम रह जाता है ? अर्थात् नहीं, वह तो मुक्त हो जाता है। फिर जो जीवन्मुक्त निर्विकल्प समाधि अवस्था रूप अगम अगोचर स्थल में प्रत्यक्ष रूप से परब्रह्म-प्रियतम से अभेद होकर आनन्द का अनुभव-खेल खेलते रहते हैं, उन्हें जन्म-मरणादि संसार का अवसर ही कहाँ है, वे तो ब्रह्मरूप ही हो जाते हैं।

सूक्ष्म सौंज अर्चा बन्दगी

आत्म माँहीं राम है, पूजा ताकी होइ ।
सेवा वन्दन आरती, साधु करैं सब कोइ ॥ २६० ॥

२६०-२६५ में आन्तर सूक्ष्म अर्चना भक्ति की विशेषता बताते हुये उसके करने की प्रेरणा कर रहे हैं—शरीर के भीतर हृदय स्थल में स्थित जो आत्म स्वरूप राम हैं, उनकी पूजा सूक्ष्म भाव-मय सामग्री से आन्तर ही होती है। श्रेष्ठ सन्त भावमय पदार्थों से ही सेवा करते हैं। भावमय ही आन्तर दण्डवत-वन्दना और भावमय ज्योति आदि से आरती करते हैं।

परिचै सेवा आरती, परिचै भोग लगाइ ।
दादू उस परसाद की, महिमा कही न जाइ ॥ २६१ ॥

श्रेष्ठ सन्तों की भगवत् सेवा परोक्ष नहीं होती, निरन्तर अपरोक्ष साक्षात्कार करना रूप ही होती है। स्थूल-सूक्ष्म संघात से भिन्न करके आत्म ज्योति ब्रह्म के समर्पण करना ही आरती होती है। साक्षात्कार के समय अपने मन-बुद्धि आदि को भगवत्-स्वरूप में लीन करना ही भोग लगाना होता है। ऐसे सेवा, आरती करने और भोग लगाने पर भगवान् से मुक्ति रूप महाप्रसाद प्राप्त होता है। उस अभेद स्थिति रूप महाप्रसाद की महिमा वाणी से किसी प्रकार भी नहीं कही जा सकती।

मांहिं निरंजन देव है, मांहिं सेवा होइ ।
मांहिं उतारें आरती, दादू सेवक सोइ ॥ २६२ ॥

शरीर के भीतर निरंजन देव आत्म रूप से स्थित हैं। उनकी भावना मय सेवा-पूजा भी भीतर ही होती है। जो साधक हृदयस्थ परमात्मा रूप आत्मा की भावनामय आरती भीतर ही उतारते हैं, वे ही उत्तम सेवक हैं।

दादू मांहीं कीजे आरती, मांहीं पूजा होइ ।
मांहीं सद्गुरु सेविये, बूझै विरला कोइ ॥ २६३ ॥

साधको ! अपने निरंजन देव की भावमय आरती हृदय के भीतर ही करो। उस निरंजन देव की सम्पूर्ण सेवा-पूजा भीतर ही होनी चाहिये तथा ब्रह्म-रंध्र में स्थित गुरु चक्र-स्थल में भीतर ही सद्गुरु की सेवा करो, किन्तु इस आन्तर सेवा की पद्धति कोई विरले सन्त ही जानते हैं। अत: उनसे समझ करके ही करो।

संत उतारैं आरती, तन मन मंगलचार ।
दादू बलि बलि वारणैं, तुम पर सिरजनहार ॥ २६४ ॥

सन्त जन अपने हृदय के भीतर ही आपकी भावमय आरती उतारते हैं इसलिये उनके शरीर तथा मन में आनन्द ही रहता है। अत: हे संसार के स्रष्टा मंगलप्रद प्रभो ! हम आप पर तन-मन-वचन से बलिहारी जाते हैं।

दादू अविचल आरती, जुग जुग देव अनंत ।
सदा अखंडित एक रस, सकल उतारैं संत ॥ २६५ ॥

हे अनन्त देव ! सम्पूर्ण सन्त आपकी निश्चल, अखंडित, एक रस, आरती प्रत्येक युग में सदा उतारते रहते हैं।

सौंज

सत्य राम, आत्मा वैष्णव, सुबुद्धि भूमि, संतोष स्थान, मूल मंत्र, मन माला, गुरु तिलक, सत्य संयम, शील शुचिता, ध्यान धोती, काया कलश, प्रेम जल, मनसा मंदिर, निरंजन देव, आत्मा पाती, पुहुप प्रीति, चेतना चंदन, नवधा नाम, भाव पूजा, मति पात्र, सहज समर्पण, शब्द घंटा, आनन्द आरती, दया प्रसाद, अनन्य एक-दशा, तीर्थ सत्संग, दान उपदेश, व्रत स्मरण, षट्गुण ज्ञान, अजपा जाप, अनुभव आचार, मर्यादा राम, फल दर्शन, अभि अन्तर सदा निरंतर, सत्य सौंज दादू वर्तते, आत्मा उपदेश, अंतरगत पूजा ॥ २६६ ॥

२६६-२६७ में आन्तर अर्चना भक्ति का अधिकारी, सामग्री और उसकी विशेषता बताने में प्रवृत्त हुये शिष्टाचारार्थ प्रथम वस्तु निर्देश मंगल करते हैं—सत्यराम=निरंजन राम त्रिकाल में एक रस, अबाध होने से सत्य है। यही वस्तु निर्देश मंगल है। अब पूजा का अधिकारी बता रहे

हैं-**आत्मा वैष्णव=**जिसका मन आन्तर आत्मा की ओर ही लगा है, वही पूजा करने वाला वैष्णव है। अर्चना की साधन सामग्री बता रहे हैं-**सुबुद्धि भूमि=** स्थिर और निर्मल बुद्धि ही पृथ्वी है। **सन्तोष स्थान=**आशा-तृष्णा-लोभ रहित हृदय ही स्थान है। **मूल मंत्र=** बीज मंत्र 'रां' ही मूल मंत्र है। **मन माला=**मन का भगवत् नामाकार संकल्प ही माला है। **गुरु तिलक=**गुरु का यथार्थ उपदेश ही तिलक है। **सत्य संयम=**तन, मन, वचन से सत्य का आश्रय लेना ही संयम है। **शील शुचिता=**निरन्तर ब्रह्मचर्य धारण करना ही पवित्रता है। **ध्यान धोती=**ध्येयाकार वृत्ति ही अधोवस्त्र है। **काया कलश=**मनुष्य शरीर ही पूजार्थ जल का कलश है। **प्रेम जल=**शुद्ध भगवत् प्रेम ही जल है। **मनसा मंदिर=**मन की ब्रह्माकार वृत्ति ही मंदिर है। निरंजन देव=माया रहित ब्रह्म ही इष्ट देव है। **आत्मा पाती=**मन इन्द्रियों को अन्तर्मुख करना ही तुलसी-दल है। **पुहुप प्रीति=**अनन्य-प्रेम ही पुष्प है। **चेतना चन्दन=**चित्त को सावधान रखना ही चन्दन है। **नवधा नाम=**इष्ट देव का नाम ही नवधा भक्ति है। **भाव पूजा=**उत्कृष्ट श्रद्धा ही पूजा है। **मति पात्र=**ब्रह्म परायण बुद्धि ही पूजा पात्र है। **सहज समर्पण=**निर्द्वन्द्वावस्था में स्थिति ही समर्पण है। **शब्द घण्टा=**अनाहत शब्द ध्वनि ही घण्टा ध्वनि है। **आनन्द आरती=**आनन्दानुभव ही आरती है। **दया प्रसाद=**आत्म स्वरूप पहचानने की दया ही प्रसाद है। **अनन्य एक दशा=**वृत्ति का अन्य में न जाना ब्रह्माकार ही रहना एक दशा है। **तीर्थ सत्संग=**सत्संग ही तीर्थ है। **दान उपदेश=**यथार्थ उपदेश ही दान है। **व्रत स्मरण=**इष्ट देव का स्मरण ही व्रत है। **षट्गुण ज्ञान=**अमान, अदंभ, अहिंसा, क्षमा, आर्जव, वैराग्य, ये ६ गुण ही ज्ञान हैं। **अजपा जाप=**निरन्तर चलने वाला 'सोऽहं' ही अजपा जाप है। **अनुभव आचार=**आत्मा का अनुभव ही आचार है। **मर्यादा राम=**निरंजन राम के अतिरिक्त अन्य में वृत्ति न जाना ही मर्यादा है। **फल दर्शन=**ब्रह्मात्मा का अभेद दर्शन ही फल है। **अभि अन्तर, सदा निरन्तर, सत्य सौंज दादू वर्तते, आत्मा उपदेश अन्तर्गत पूजा=**सच्चे साधक के हृदय में निरन्तर सब काल, यथार्थ आन्तर अर्चना की यह सामग्री स्थित रहती है। यही साधक आत्माओं को आन्तर पूजा का उपदेश है।

पिव सौं खेलूं प्रेम रस, तो जियरे जक होइ।
दादू पावे सेज सुख, पड़दा नाहीं कोइ ॥ २६७ ॥

उक्त सामग्री द्वारा अपने प्रियतम प्रभु की अर्चना भक्ति करते हुये उनके प्रेम-रस में निमग्न होकर साक्षात्कार रूप खेल खेलेंगे, तब ही हमारे हृदय को पूर्ण शांति प्राप्त होगी, फिर तो हमें अद्वैत स्थिति रूप शय्या का परमानन्द प्राप्त हो जायेगा।

सूक्ष्म सौंज

सेवक बिसरे आपको, सेवा बिसर न जाइ।
दादू पूछे राम को, सो तत कह समझाइ ॥ २६८ ॥ क
दादू सूतां पीछे सुरति निरति सूं, बालक ज्यूं पय पीवे।
ऐसे अंतर लगन नाम सूं, आतम जुग जुग जीवे ॥ २६८ ॥ ख

२६८-२७३ में सूक्ष्म सामग्री से अर्चना करने की विशेषता बता रहे हैं—हे समर्थ सर्वज्ञ-

राम ! मैं आपसे पूछता हूँ, कृपा करके मुझे वह रहस्य मय साधन कह कर समझाइये, जिससे सेवक देहाध्यासादिक भ्रांतिमय अपने रूप को तो भूल जाय, किन्तु आपकी भक्ति नहीं भूले।

ज्यों रसिया रस पीवतां, आपा भूले और ।
यों दादू रह गया एक रस, पीवत पीवत ठौर ॥ २६९ ॥

२६८ में स्थित प्रश्न का उत्तर दे रहे हैं—राम कहते हैं-जैसे कोई मादक रस का रसिया मदिरादि रस पीने लगता है, तब पीते२ अपने शरीर की सुध तथा अन्य को भी भूल जाता है और एक स्थान में गिर जाता है वैसे ही मेरे प्रेम-रस का रसिया मुझमें प्रेम करते २ अपने को और अपने से भिन्न मायिक संसार को भूल जाता है किन्तु मेरी प्रेमाभक्ति को नहीं भूलता, उसकी वृद्धि होकर वह परा-भक्ति बन जाती है। ऐसा भक्त जो भी हुआ है, वह मेरे स्वरूप रूप स्थान में एक रस होकर अर्थात् मेरा स्वरूप बनकर स्थिर रह गया है, पुन: जन्मादिक संसार में नहीं गया है।

जहँ सेवक तहँ साहिब बैठा, सेवक सेवा मांहिं।
दादू सांई सब करै, कोई जाने नांहिं ॥ २७० ॥

जिस हृदय देश में भक्त सेवक-भाव से आन्तर सेवा-भक्ति में लगा रहता है, वहां ही प्रभु की विशेष रूप से स्थिति है और भक्त के योग-क्षेमादि की सब व्यवस्था करते रहते हैं किन्तु भगवान् के इन भक्त-सेवा रूप कार्यो को अभक्त कोई भी नहीं जानता।

दादू सेवक सांई वश किया, सौंप्या सब परिवार ।
तब साहिब सेवा करे, सेवक के दरबार ॥ २७१ ॥

जो भक्त अपने इन्द्रिय अन्त:करणादि आन्तर और स्त्री पुत्रादि बाह्य परिवार तथा धनादि साधन भगवान् के समर्पण करके भगवान् को अपने अनुकूल कर लेता है, तब उस भक्त के घर के आवश्यक कार्य योग-क्षेमादिक रूप सेवा भगवान् करते हैं।

तेज पुंज को विलसना, मिल खेलैं इक ठाम ।
भर भर पीवैं राम रस, सेवा इस का नाम ॥ २७२ ॥

नित्य-ज्ञान राशि ब्रह्म स्वरूपानन्द का उपभोग करते हुये उपास्य उपासक एक अद्वैत स्थिति में आकर भी वृत्ति रूप प्याले में भर-भर के राम-प्रेम-रस का पान करते हुये सेवक जन साक्षात्कार रूप खेल खेलते रहते हैं। इस अभेद स्थिति में भी भेदाभास प्रतीत होना रूप जो पराभक्ति है, इसी का नाम सच्ची सेवा है।

अरस परस मिल खेलिये, तब सुख आनन्द होइ ।
तन मन मंगल चहुँ दिश भये, दादू देखै सोइ ॥ २७३ ॥

आन्तर पराभक्ति की स्थिति में उपास्य उपासक आपस में मिलकर परस्पर प्रेम रूप खेल खेलते हैं तब उपास्य-उपासक भाव-जन्य सुख और अभेदानन्द दोनों ही मिलते रहते हैं। पूर्वकाल में इस पराभक्ति की स्थिति में आते ही साधकों के तन-मन में चारों ओर से आनन्द मंगल ही हुये थे। वही उभय प्रकार का आनन्द हम भी अनुभव कर रहे हैं।

सुन्दरी सुहाग

मस्तक मेरे पाँव धर, मंदिर मांहीं आव ।
सँइयाँ सोवै सेज पर, दादू चंपै पाँव ॥ २७४ ॥

२७४-२७६ में निरंतर साक्षात्कार के लिए प्रार्थना तथा प्रेरणा कर रहे हैं—हे स्वामिन् ! आपके दर्शन की अभिलाषा रूप मेरे मस्तक पर अपना दर्शन रूप चरण रख कर मुझे तृप्त करो और मेरे हृदय-मंदिर में पधारो। प्रश्न-मंदिर में क्या करोगे ? उत्तर—आप मेरी ब्रह्माकार-वृत्ति रूप शय्या पर शयन करें और मैं आपके ध्येय-ज्ञेय रूप उभय पद की अपने प्रेम और ज्ञान रूप हाथों से निरंतर ध्यान और साक्षात्कार रूप सेवा करूंगा।

ये चारों पद पिलंग के, सांई की सुख सेज।
दादू इन पर बैस कर, सांई सेती हेज ॥ २७५ ॥

२७४ की साखी के चार पाद ही ब्रह्मानन्द को देने वाली निरंतर ब्रह्माकार-वृत्ति रूप परमात्मा की शय्या के चार पाये हैं। प्रथम-श्रद्धा, द्वितीय-प्रेम, तृतीय-ध्यान, और चतुर्थ-ज्ञान का बोधक है। इन चार साधनों के द्वारा ही निरंतर ब्रह्माकार-वृत्ति रहने लगती है। अत: इन चारों की परिपाकावस्था में स्थित होकर, ब्रह्माकार वृत्ति-शय्या पर पहुँचो और प्रभु से अभेद स्थिति रूप परम प्रेम करो वा १०वीं सिन्धु राग के आदि के ४ भजन ही चार पाये हैं। परंपरागत जनश्रुति है कि वे चार भजन बनवारीजी (उत्तराधा) को सुनाकर यह साखी उच्चारण की थी।

प्रेम लहर की पालकी, आतम बैसे आइ ।
दादू खेले पीव सौं, यहु सुख कह्या न जाइ ॥ २७६ ॥

प्रभु-प्रेम की लहरियों से बनी पालकी में जब साधक आत्मा बैठता है अर्थात् प्रेम प्राप्त करता है, तब अपने प्रियतम प्रभु से अभेद भाव रूप खेल खेलता है। यह जो अभेद, स्थिति जन्य आनन्द है, सो किसी प्रकार भी कहा नहीं जा सकता।

पूजा-भक्ति सूक्ष्म सौंज

दादू देव निरंजन पूजिये, पाती पंच चढ़ाइ।
तन मन चन्दन चर्चिये, सेवा सुरति लगाइ ॥ २७७ ॥

२७७-२८० में सूक्ष्म सामग्री से अर्चना-भक्ति करने की प्रेरणा कर रहे हैं—पंच ज्ञानेन्द्रियों को भगवत् परायण करना रूप तुलसी-दल चढ़ाकर, तन, मन, समर्पण करना रूप चन्दन लगाकर, निरंजन देव की पूजा करो और अपनी वृत्ति प्रभु के स्वरूप में लगा कर अखंड चिन्तन रूप सेवा करो।

भक्ति भक्ति सबको कहै, भक्ति न जाने कोइ ।
दादू भक्ति भगवंत की, देह निंरतर होइ ॥ २७८ ॥

"भगवान् की भक्ति करो तथा मैं भक्ति करता हूँ" ऐसे कहते तो सभी हैं किन्तु केवल कहने वालों में कोई भी भक्ति के वास्तविक आन्तर स्वरूप को नहीं जानते। वे बाह्य प्रतिमा-पूजा

और माला-तिलकादिक चिन्ह धारण करने को ही भक्ति समझते हैं। वास्तविक भक्ति तो वही है जो शरीर के भीतर अन्त:करण में २७७ वीं साखी में कही रीति से निरंतर होती रहती है।

देही मांहीं देव है, सब गुण तैं न्यारा ।
सकल निरंतर भर रह्या, दादू का प्यारा ॥ २७९ ॥

संपूर्ण मायिक गुणों से रहित और सारे विश्व में एकरस, परिपूर्ण, आन्तर सूक्ष्म पूजा सामग्री से पूजने योग्य, हमारा परम प्रिय, आत्म-स्वरूप निरंजन देव शरीर के भीतर ही स्थित है। अत: आन्तर पूजा करनी चाहिए।

जीव पियारे राम को, पाती पंच चढ़ाइ ।
तन मन मनसा सौंपि सब, दादू विलम्ब न लाइ ॥ २८० ॥

हे जीव ! अपने प्रियतम परमात्मा को पंच विषयों की आसक्ति से रहित करके पंच ज्ञानेन्द्रिय रूप तुलसी-पत्र चढ़ाकर, सर्व-भाव से तन, मन और बुद्धि आदि सभी भगवान् के समर्पण करो, इसमें देर न करो।

ध्यान-अध्यात्म

शब्द सुरति ले सान चित, तन मन मनसा मांहिं ।
मति बुधि पंचों आतमा, दादू अनत न जांहिं ॥ २८१ ॥

२८१-२९१ में आन्तर ध्यान द्वारा परमात्मा से अभेद होने की प्रेरणा कर रहे हैं—हे साधक ! अपनी वृत्ति को विषयों से उठाकर सद्‌गुरु शब्दों में मिला अर्थात् लगा। चित्त से आत्म-चिन्तन कर, शरीर का अध्यास छोड़ कर, शरीर को आत्मा का विवर्त्त जान। मन से ब्रह्मात्मा के अभेद की बोधक युक्तियों का मनन कर। इच्छा भी ब्रह्म साक्षात्कार की ही कर और तेरा मन्तव्य भी आत्माराम की प्राप्ति ही हो बुद्धि से ब्रह्म-विचार ही कर। पंच ज्ञानेन्द्रिय, पंच कर्मेन्द्रिय और पंच प्राणों को भी आत्म-परायण कर अर्थात् इन सबको आत्म-तत्त्व प्राप्ति के साधन रूप कार्यों में लगा। इस प्रकार स्थूल-सूक्ष्म संघात को आन्तर आत्माराम में ही लगा, आत्माराम को छोड़कर अन्यत्र मत जाने दे।

दादू तन मन पवना पंच गहि, ले राखै निज ठौर ।
जहां अकेला आप है, दूजा नाहीं और ॥ २८२ ॥

साधक को चाहिए—हिंसादि से शरीर को, सांसारिक वस्तुओं के मनन से मन को, प्राणायाम से प्राणों की शीघ्रगति को, प्रत्याहार से ज्ञानेन्द्रियों को, मिताहार से कर्मेन्द्रियों को रोके और आन्तरमुखता रूप हाथ से ग्रहण करके फिर जहां पर अपने आत्म स्वरूप ब्रह्म से भिन्न दूसरा कोई भी नहीं है, अद्वैत स्वरूप आप ही है, उसी निजात्म-रूप स्थल में सबको स्थिर करके रक्खे।

दादू यहु मन सुरति समेट कर, पंच अपूठे आणि।
निकट निरंजन लाग रहु, संग सनेही जाणि ॥ २८३ ॥

साधक ! इस मन की संसार में फैली हुई वृत्तियों को एकत्र करके तथा पंच ज्ञानेन्द्रियों को विषयों से लौटा कर ला। फिर व्यापक होने से अत्यन्त समीप निरंजन राम को अपना सदा का साथी और स्नेही जान कर उसी के चिन्तन में लगा रह।

मन चित मनसा आतमा, सहज सुरति ता मांहि ।
दादू पंचों पूरले, जहँ धरती अम्बर नांहि ॥ २८४ ॥

साधक को चाहिए—मन को मायिक मनन से, चित्त को विषय-चिन्तन से, बुद्धि को व्यावहारिक विचारों से, पंच ज्ञानेन्द्रियों को विषयासक्ति से हटा कर, सहज स्वरूप ब्रह्माकार वृत्ति द्वारा शरीर के भीतर जहां पृथ्वी-आकाशादि विकारों से रहित आत्म-स्वरूप ब्रह्म है, उसी में सबको लय करे।

दादू भीगे प्रेम रस, मन पंचों का साथ ।
मगन भये रस में रहे, तब सन्मुख त्रिभुवननाथ ॥ २८५ ॥

प्रथम साधक का मन पंच ज्ञानेन्द्रियों के सहित प्रभु-प्रेम-रस से भीगता है अर्थात् प्रेम युक्त होता है। उस प्रेम-रस की वृद्धि होने पर मन व इन्द्रियाँ उसी के आनन्द में निमग्न रहने लगते हैं, तब त्रिभुवननाथ परमात्मा उस साधक को प्रत्यक्ष दर्शन देते हैं।

दादू शब्दैं शब्द समाइ ले, परमातम सौं प्राण।
यहु मन मन सौं बंधि ले, चित्तैं चित्त सुजाण ॥ २८६ ॥

साधक को चाहिए—अनाहत नाद के श्रवण करने की प्रेरणा रूप गुरु के शब्दों से अपने श्रवण इन्द्रिय को आन्तर अनाहत नाद श्रवण करने में लीन करे। ईश्वर के स्वरूप मनन द्वारा अपने चित्त को ईश्वर के चित्त में लीन करे और विचार द्वारा प्राणधारी जीवात्मा को परमात्मा में लीन करे।

दादू सहजैं सहज समाइ ले, ज्ञानैं बंध्या ज्ञान ।
सूत्रैं सूत्र समाइ ले, ध्यानैं बंध्या ध्यान ॥ २८७ ॥

निर्विकल्प समाधि रूप सहजावस्था द्वारा वृत्ति सहज-स्वरूप ब्रह्म में विलीन करे। शास्त्र-विचार रूप परोक्ष ज्ञान द्वारा अपरोक्ष ज्ञान में स्थित होवे। गुरु ज्ञान द्वारा व्यष्टि सूत्रात्मा तैजस को समष्टि सूत्रात्मा हिरण्यगर्भ में विलीन करे। प्रतीक ध्यान द्वारा अहं-ग्रह ध्यान में स्थित होवे।

दादू दृष्टैं दृष्टि समाइ ले, सुरतैं सुरति समाइ ।
समझैं समझ समाइ ले, लै सौं लै ले लाइ ॥ २८८ ॥

अपनी भेद दृष्टि को सात्त्विक विचार दृष्टियों द्वारा समदृष्टि में विलीन करे। मायिक पदार्थाकार अपनी वृत्ति को सात्त्विक वृत्तियों के अभ्यास द्वारा ब्रह्माकार-वृत्ति में लीन करे। अपनी अयथार्थ समझ को संतों की समझ-द्वारा ईश्वर के वेद, गीतादिक ज्ञान रूप में लीन

करे। विषयों में लीनता रूप वृत्ति को सन्तों की वैराग्य वृत्ति के द्वारा विषयों से हटा कर प्रभु में लीन करे।

दादू भावैं भाव समाइ ले, भक्तैं भक्ति समान ।
प्रेमैं प्रेम समाइ ले, प्रीतैं प्रीति रस पान ॥ २८९ ॥

अपने साधारण भाव को वैराग्यादिक श्रेष्ठ भावों द्वारा परब्रह्म सच्चिदानन्दादि भाव में, अपनी देहादिक भक्ति को नवधादि सगुण भक्तियों द्वारा निर्गुण भक्ति में, अपने लौकिक प्रेम को प्रभु-प्रेमियों के प्रेम का अनुकरण करके प्रभु प्रेम में, और अपनी प्रेमा भक्ति के प्रवाहों को परा-भक्ति में लीन करके अद्वैतानन्द-रस का पान करे।

दादू सुरतैं सुरति समाइ रहु, अरु बैनहुँ सौं बैन।
मन ही सौं मन लाइ रहु, अरु नैनहुँ सौं नैन ॥ २९० ॥

ज्ञान-वैराग्य प्रधान वृत्तियों द्वारा वृत्ति को अद्वैत में स्थिर करके स्थिर रहो। अद्वैत बोधक गुरु-वेदादिक वचनों द्वारा अपने वचनों को भी अद्वैत परायण करो। विवेक, विचार-नेत्रों द्वारा अपने बाह्य नेत्रों से सब में अद्वैत का ही दर्शन करो, अद्वैत भावना को प्राप्त हुये ज्ञानी संतों के मन का अनुसरण करके अपने मन को अद्वैत ब्रह्म में ही लीन करो।

जहाँ राम तहँ मन गया, मन तहँ नैना जाइ।
जहँ नैना तहँ आतमा, दादू सहज समाइ ॥ २९१ ॥

शरीर के भीतर हृदय देश में जहां राम की अनुभूति होती है, वहां ही जाकर साधन सम्पन्न मन स्थिर होता है। जहां मन स्थिर होता है, वहां ही विचार-नेत्र जाते हैं अर्थात् उसी का विचार होता है और जहां विचार-नेत्र जाते हैं, उसी राम में उक्त एकाग्रता के प्रभाव से अभेद ज्ञान होने पर जीवात्मा सहज स्वभाव से ही समा जाता है। अत: उक्त प्रकार साधन द्वारा अभेद स्थिति प्राप्त करो।

जीवन्मुक्ति (विषय-वासना निवृत्ति)

प्राणन खेले प्राण सौं, मनन खेले मन ।
शब्दन खेले शब्द सौं, दादू राम रतन ॥ २९२ ॥

२९२-३४४ में विषय-वासना निवृत्ति रूप जीवन्मुक्ति विषयक विचार कर रहे हैं—जो अपने प्राणों के व्यापार द्वारा ईश्वर के प्राणों से अभेद रूप खेल खेलता है, नाना प्रकार मनन द्वारा अपने मन को समष्टि मन में मिलाना रूप और अपने शब्दों द्वारा शब्दब्रह्म से विचार रूप खेल खेलता है, वह पुरुष-रत्न राम-स्वरूप ही हो जाता है।

चित्तन खेले चित्त सौं, बैनन खेले बैन।
नैनन खेले नैन सौं, दादू परकट ऐन ॥ २९३ ॥

अपनी चित्त वृत्तियों द्वारा समष्टि चित्त से चिन्तन रूप, अपनी वाणी द्वारा प्रभु के गीतादिक

वचनों का उच्चारण रूप, अपने नेत्रों से प्रभु के नेत्रों को एकटक देखना रूप खेल खेलता है, ऐसा पुरुष प्रत्यक्ष में ही ब्रह्म-स्वरूप है ।

पाकन खेले पाक सौं, सारन खेले सार ।
खूबन खेले खूब सौं, दादू अंग अपार ॥ २९४ ॥

पवित्र साधनों द्वारा प्रभु की सेवा रूप खेल पवित्र प्रभु से खेलता है। सार रूप विचारों द्वारा विश्व के सार स्वरूप ब्रह्म से ब्रह्म-विचार रूप खेल खेलता है। अपने सुन्दर स्वभाव के द्वारा प्रभु की सुन्दरता समझना रूप खेल सुन्दर प्रभु से खेलता है। ऐसा ईश्वर का अंग रूप, वह जीवन्मुक्त आत्मा अपार ब्रह्म-रूप ही हो जाता है।

नूरन खेले नूर सौं, तेजन खेले तेज ।
ज्योतिन खेले ज्योति सौं, दादू एकै सेज ॥ २९५ ॥

संसार के दिव्य रूपों के दर्शन द्वारा प्रभु का रूप देखना रूप खेल, शब्दों के ज्ञान प्रकाश से प्रभु के स्वरूप ज्ञान को समझना रूप खेल, आत्म ज्योति के द्वारा ब्रह्म ज्योति से ब्रह्म ज्योति की प्राप्ति रूप खेल, खेलता है। ऐसा पुरुष ब्रह्म की निर्विकल्प समाधि शय्या पर ब्रह्म रूप होकर रहता है।

पंच पदारथ मन रतन, पवना माणिक होइ ।
आतम हीरा सुरति सौं, मनसा मोती पोइ ॥ २९६ ॥

ब्रह्म को पहनाने योग्य हार बता रहे हैं—पंच ज्ञानेन्द्रियों की अन्तर्मुखता रूप (१ स्वर्ण २ चांदी ३ प्रवाल ४ नीलम ५ मरकत) पांचों पदार्थों के पांच मणियें, मन-रत्न, प्राण-माणिक्य, बुद्धि-मोती और जीवात्मा-हीरा इन सबको अद्वैत निष्ठा सूत्र में अभेद वृत्ति से पोकर हार तैयार करो।

अजब अनूपम हार है, सांई सरीखा सोइ ।
दादू आतम राम गल, जहाँ न देखे कोइ ॥ २९७ ॥

हार की विशेषता बताते हुए पहनाने की प्रेरणा कर रहे हैं—उक्त हार अति अद्भुत, अनुपम तथा परमात्मा को पहनाने जैसा ही है। इस हार को कोई भी न देख सके, ऐसे हृदय स्थान में स्थित अपने शुद्ध साक्षी आत्मा राम के निर्विकल्प स्थिति रूप गले में पहनाओ अर्थात् उक्त सबको निर्विकल्प बनाओ।

दादू पंचों संगी संग ले, आये आकासा ।
आसन अमर अलेख का, निर्गुण नित वासा ॥ २९८ ॥
प्राण पवन मन मगन ह्वै, संगी सदा निवासा ।
परिचय परम दयालु सौं, सहजैं सुख दासा ॥ २९९ ॥

पूर्व साधकों की तथा अपनी साक्षात्कार की पद्धति बता रहे हैं—जो साधक अपने पंच

ज्ञानेन्द्रिय रूप साथियों को प्रत्याहार द्वारा साथ लेकर हृदयाकाश में जहां अमर, अलेख, निर्गुण ब्रह्म का आसन है और जहां आत्म रूप से निर्गुण ब्रह्म का नित्य निवास रहता है, वहां आये।

तब उन साधक प्राणियों का प्राण रूप पवन वहां स्थिर हो गया अर्थात् समाधि लग गई, मन समाधि के परमानन्द में मग्न हो गया। पंच ज्ञानेन्द्रिय रूप साथी भी अन्तर्मुख होकर सदा मन के साथ ही रहने लगे। इस प्रकार परम दयालु परमात्मा का साक्षात्कार होने पर साधक-भक्तों को बहिरंग कर्मों के परिश्रम बिना ही अनायास ब्रह्मानन्द की प्राप्ति हुई।

प्राण पवन मन मणि बसे, त्रिकूटी केरे संधि ।
पांचों इन्द्री पीव सौं, ले चरणों में बंधि ॥ ३०० ॥

वर्तमान साधकों को साक्षात्कार की सुगम पद्धति बता रहे हैं—जब आज्ञा-चक्र और सहस्रार के मध्य में जहां अपने परमात्मा-प्रियतम का विशेष रूप से निवास है, वहां ही पंच-प्राण रूप वायु को स्थित करो। शुद्ध-मन-मणि प्रभु के तेजोमय चरणों पर चढ़ाओ और पंच ज्ञानेन्द्रियों को विषय-स्थान से प्रत्याहार द्वारा उठाकर प्रभु के पवित्र-पदों में स्थिर करो। ऐसा करने से तुम्हें साक्षात्कार होगा।

प्राण हमारा पीव सौं, यों लागा सहिये ।
पुहुप वास, घृत दूध में, अब कासौं कहिये ॥ ३०१ ॥

साक्षात्कार की स्थिति को गुप्त रखने की प्रेरणा कर रहे हैं—जब हमारा प्राणधारी जीवात्मा, हृदय में स्थित प्रियतम प्रभु का साक्षात्कार करके पुष्प में गन्ध, दूध में घृत के समान प्रभु के स्वरूप में लगा हुआ प्रभु से अभेद हो जाय, उसके पश्चात् वह साक्षात्कार करने वाला अपनी यह अभेद स्थिति किससे कहे अर्थात् यह कहने योग्य नहीं।

पाहण लोह बिच वासदेव[१], ऐसे मिल रहिये ।
दादू दीन दयालु सौं, संगहि सुख लहिये ॥ ३०२ ॥

अभेदानन्द लेने की प्रेरणा कर रहे हैं—पत्थर और लोहे में जैसे अग्नि[१] मिला हुआ रहता है, वैसे ही हमें दीनदयालु परब्रह्म से मिल के उनके अभेद रूप नित्य संग में रह कर सदा ब्रह्मानन्द का ही अनुभव करना चाहिए।

दादू ऐसा बड़ा अगाध है, सूक्षम जैसा अंग।
पुहुप वास तैं पत्तला, सो सदा हमारे संग ॥ ३०३ ॥

ब्रह्म की महत्ता तथा सूक्ष्मता का परिचय दे रहे हैं—ब्रह्म महान् तो ऐसा है कि किसी प्रकार भी उसकी महानता का थाह नहीं आ सकता। लघु भी इतना है-इन्द्रियाँ नहीं देख पाती। यदि उसकी सूक्ष्मता का वाणी से परिचय दें तो इतना ही कह सकते हैं कि वह पुष्प-गंध से भी अति सूक्ष्म है और व्यापक होने से सदा हमारे साथ है।

दादू जब दिल मिली दयालु सौं, तब अंतर कुछ नांहि ।
ज्यों पाला पाणी मिल्या, त्यों हरिजन हरि मांहि ॥ ३०४ ॥

३०४-३०७ में भक्त भगवान् में मिल जाने पर भक्त भगवान् का भेद नहीं रहता यह कह रहे हैं—जब साधन द्वारा मन-वृत्ति दयालु प्रभु में मिल जाती है तब भक्त और भगवान् में कुछ भी भेद नहीं रहता। फिर तो जैसे हिम का पत्थर सूर्यादि के ताप से गलते ही जल में मिल जाता है, वैसे ही प्रारब्ध समाप्ति पर शरीर गिरते ही भक्त भगवान् में मिल जाता है।

दादू जब दिल मिली दयालु सौं, तब सब पड़दा दूर ।
ऐसे मिल एकै भया, बहु दीपक पावक पूर ॥ ३०५ ॥

भक्ति द्वारा जब अन्त:करण की वृत्ति दयालु भगवान् में मिलती है तब निज स्वरूप के ज्ञान से अविद्या रूप सब पड़दे दूर हो जाते हैं। फिर तो जैसे अनेक दीपक ज्योतियाँ दीपकों को त्यागकर एक व्यापक अग्नि में मिल जाती हैं, वैसे ही आत्मा सूक्ष्म शरीर को त्यागकर ब्रह्म में लय हो जाती है।

दादू जब दिल मिली दयालु सौं, तब अंतर नाहीं रेख।
नाना विधि बहु भूषणां, कनक कसौटी एक॥ ३०६ ॥

जब ज्ञान द्वारा मनोवृत्ति दयालु ब्रह्म में लय हो जाती है तब उस साधक की आत्मा का ब्रह्म से एक रेखा मात्र भी अन्तर नहीं रहता। जैसे सुवर्ण के नाना प्रकार के भूषणों की कसौटी द्वारा परीक्षा करने पर एक सुवर्ण ही सिद्ध होता है, कसौटी नाम सिद्ध नहीं करती वा अग्नि द्वारा गल जाने पर एक सुवर्ण ही रहता है, भूषण नहीं, वैसे ही ब्रह्म ज्ञान होने पर नाना उपाधियों को त्याग कर आत्मा ब्रह्म-रूप ही हो जाता है।

दादू जब दिल मिली दयालु सौं, तब पलक न पड़दा कोइ।
डाल मूल फल बीज में, सब मिल एकै होइ॥ ३०७ ॥

जब अपरोक्ष ज्ञान द्वारा भगवान् में मनोवृत्ति लय हो जाती है तब आत्मा और ब्रह्म के बीच में एक पलक मात्र भी कामादि दोष रूप पड़दा नहीं रहता, निरंतर ब्रह्माकार वृत्ति ही रहती है। जैसे वृक्ष के मूल, डाल और फल ये सब मिलकर बीज में एक रूप हो जाते हैं, वैसे ही मनोवृत्ति के ब्रह्म में लय होने पर कामादि सभी प्रपंच एक ब्रह्म रूप ही हो जाता है।

फल पाका बेली तजी, छिटकाया मुख मांहिं।
सांई अपना कर लिया, सो फिर ऊगे नांहिं॥ ३०८ ॥

जीवात्मा रूप फल ब्रह्मज्ञान-विचार-ताप से जब निरंतर ब्रह्माकार वृत्ति रूप परिपाकावस्था को प्राप्त होता है तब वह अविद्या बेलि-त्याग देता है। अविद्या शून्य होते ही ब्रह्म-स्वामी जीवात्मा-फल को अपना कर, अभेद स्थिति-मुख में डाल देता है। इस अभेद स्थिति रूप अपरोक्ष ज्ञान की ताप से जीवात्मा रूप फल का कर्म-बीज भुन जाता है। अत: वह पुन: जन्म-मरण रूप अँकुर वाला नहीं होता।

दादू काया कटोरा दूध मन, प्रेम प्रीति सौं पाइ।
हरि साहिब इहिं विधि अंचवै, बेगा बार न लाइ॥ ३०९ ॥

साधक ! काया कटोरे में स्थित शुद्ध मन-दूध में प्रेम रूप मिश्री मिलाकर प्रीति-पूर्वक भगवान् को पिला। पाप-ताप हरने वाले भगवान् उक्त विधि से ही शुद्ध मन-दूध पीते हैं। तू भगवान् को उक्त प्रकार पय-पान कराने में शीघ्रता कर, विलम्ब मत कर।

टकाटकी जीवन मरण, ब्रह्म बराबर होइ ।
परकट खेले पीव सौं, दादू विरला कोइ ॥ ३१० ॥

३०९ में बताई हुई पद्धति से मन को ब्रह्म के समर्पण करके, ब्रह्म समान होकर प्रत्यक्ष में अपने प्रियतम ब्रह्म से अभेद होकर आनन्द का अनुभव रूप खेल खेलते हुये, अपने जीवन में मरण-पर्यन्त निरन्तर साक्षात्कार रूप टकटकी लगाये हुये स्थिर रहे, ऐसा कोई विरला ही होता है।

दादू निबरा[१] ना रहै, ब्रह्म सरीखा होइ ।
लै समाधि रस पीजिये, दादू जब लग दोइ ॥ ३११ ॥

ब्रह्म साक्षात्कार के पश्चात् ब्रह्म सदृश बनकर भी निकम्मा[१] न रहे वा जो निरन्तर ब्रह्म प्राप्ति का साधन करता है, निकम्मा नहीं रहता, अथवा ब्रह्म से न्यारा[१] नहीं रहता, वह ब्रह्म के समान ही हो जाता है। अत: जब तक हृदय में द्वैत भाव है, तब तक वृत्ति को अन्तर्मुख करके समाधि द्वारा ब्रह्म चिन्तनानन्द-रस पान करते रहना चाहिए।

बे खुद खबर[१] होशियार[२] बाशद[३], खुद खबर पामाल[४]।
बे कीमत मस्तान: गलतान, नूर प्याले ख्याल ॥ ३१२ ॥

देहाध्यासादि रूप अपनी समझ[१] को नष्ट[४] करके बे-परवाह[३] बुद्धिमान्[२] मूल्य-मापादि रहित परमात्मा के ज्ञान में मस्त और ब्रह्म में ही अपनी वृत्ति को लय करके ब्रह्म-दर्शनानन्द-रस के प्याले का ही ख्याल रखता है, उसकी चित्त-वृत्ति संसार की ओर नहीं जाती।

दादू माता प्रेम का, रस में रह्या समाइ ।
अंत न आवे जब लगैं, तब लग पीवत जाइ ॥ ३१३ ॥

प्रभु-प्रेम रूप साधना का साधक प्रेम-रस में ही निमग्न होकर मस्त रहता है और जब तक भेद भावना का अन्त नहीं आता, तब तक प्रेम-रस का पान करता ही जाता है।

पीया तेता सुख भया, बाकी बहु वैराग[१] ।
ऐसे जन थाके नहीं, दादू उनमनि[२] लाग ॥ ३१४ ॥

भगवत् प्रेमियों ने जितना भजनानन्द-रस पान किया उतना तो उन्हें अक्षय आनंद प्राप्त हुआ किन्तु भजन का अन्त तो आता नहीं, अत: जो शेष रहा, उसके पान में भी उनका निश्चय-पूर्वक बहुत प्रेम[१] रहा। इस प्रकार भजनानन्द-रस के रसिक-जन सांसारिक भावनाओं से शून्य समाधि[२] अवस्था को प्राप्त करके भी भजनानन्द-रस पान से तृप्त नहीं हुये।

निकट निरंजन लाग रहु, जब लग अलख अभेव।
दादू पीवै राम रस, निष्कामी निज सेव ॥ ३१५ ॥

निष्कामी भक्तजन जब तक मन इन्द्रियों के अविषय, रहस्यमय ब्रह्म को प्राप्त नहीं कर लेते, तब तक अपनी भक्ति द्वारा राम भजन-रस पान करते ही रहते हैं। अत: साधक ! तू भी भजन द्वारा उस निरंजन के निकट लगा रहे।

राम रटन छाड़े नहीं, हरि लै लागा जाइ ।
बीचैं ही अटके नहीं, कला कोटि दिखलाइ ॥ ३१६ ॥

उत्तम साधक राम नाम की रटन को नहीं छोड़ता। माया यदि बीच में अपनी चमत्कारमयी ऋद्धि-सिद्धि आदि कोटिन कला दिखाकर रोकना चाहे तो भी वह नहीं रुकता और अपनी वृत्ति निरन्तर हरि में लगाता हुआ ब्रह्म साक्षात्कार के लिए बढ़ता ही जाता है।

दादू हरि रस पीवतां, कबहूं अरुचि न होइ।
पीवत प्यासा नित नवा, पीवणहारा सोइ ॥ ३१७ ॥

भगवत् भजन-रस-पान में जिसको कभी भी अरुचि नहीं होती, प्रत्युत पीते हुये भी प्यासा ही रहता है और पीने में नित्य नूतन उत्साह बनाये रखता है, वही वास्तव में भजन-रस पान करने वाला माना जाता है।

जैसे श्रवणा दोइ हैं, ऐसे हूंहिं अपार ।
राम कथा रस पीजिये, दादू बारंबार ॥ ३१८ ॥

जैसे दो श्रवण हैं, वैसे ही अनन्त होवें तो राम कथा-रस बारम्बार अति मात्रा में पिया जा सकता है।

जैसे नैना दोइ हैं, ऐसे हूंहिं अनन्त ।
दादू चंद चकोर ज्यों, रस पीवें भगवंत ॥ ३१९ ॥

जैसे दो नेत्र हैं, वैसे ही अनन्त होवें तो जिस प्रकार चकोर पक्षी चन्द्रमा का दर्शन-रस पान करता है, वैसे ही हम अनन्त नेत्रों द्वारा भगवद्-दर्शन-रस का पान कर सकें।

ज्यौं रसना मुख एक है, ऐसे हूंहि अनेक ।
तो रस पीवें शेष ज्यों, यों मुख मीठा एक ॥ ३२० ॥

जैसे एक जिह्वा और एक मुख है, वैसे ही यदि अनन्त जिह्वा और अनन्त मुख होवें तो हम सहस्र मुख और दो सहस्र जिह्वा वाले शेषजी के समान नामोच्चारण रूप रस पान करें, इस प्रकार हमारे मुख को त्रिविध भेद शून्य एक परमात्मा का नाम उच्चारण ही मधुर लगे, अन्य नहीं।

ज्यों घट आतम एक है, ऐसे हूंहिं असंख ।
भर भर राखें रामरस, दादू एकै अंक ॥ ३२१ ॥

जैसे एक शरीर है, वैसे ही यदि हमारे असंख्य शरीर होवें तो असंख्य अन्त:करण रूप प्यालों में राम का चिन्तन रूप रस भर भर कर रक्खें और उस चिन्तन के प्रभाव से एक मात्र परब्रह्म की अभेद स्थिति रूप गोद में जाकर स्थित होवें।

ज्यों ज्यों पीवे राम रस, त्यों त्यों बढ़े पियास ।
ऐसा कोई एक है, विरला दादू दास ॥ ३२२ ॥

जैसे-जैसे राम स्मरण-रस पान करे, वैसे-वैसे स्मरण की इच्छा बढ़ती ही जाय, ऐसा एक मात्र परमात्मा का ही भक्त कोई विरला जन होता है।

राता माता राम का, मतिवाला मैमंत[1] ।
दादू पीवत क्यों रहे, जे जुग जांहि अनन्त ॥ ३२३ ॥

राम के स्वरूप में रत, राम का स्मरण करके मस्त हुआ बुद्धिमान् संत, राम प्रेम के प्रभाव से देहादिक की सुध न रहने पर बेसुध[1] हुआ भी राम चिन्तन-रस पान करता ही रहता है। यदि अनन्त युग व्यतीत हो जायँ तो भी वह उक्त रस पान करने से नहीं थकता।

दादू निर्मल ज्योति जल, वर्षा बारह मास ।
तिहिँ रस राता प्राणिया, माता प्रेम पियास ॥ ३२४ ॥

परम निर्मल ब्रह्म ज्योति के साक्षात्कार होने पर आनन्द-जल की वर्षा बारह मास निरंतर होती ही रहती है। उस ब्रह्म-साक्षात्कार जन्य आनन्द रस में जो प्राणी रत होता है, वह मस्त हो जाता है फिर भी प्रेम पूर्वक उस रस की प्यास बनी ही रहती है।

रोम रोम रस पीजिये, एती रसना होइ ।
दादू प्यासा प्रेम का, यों बिन तृप्त न होइ ॥ ३२५ ॥

हमारे शरीर पर जितने रोम हैं, उतनी ही रसना बन जायें तो हम रोम-रोम से भजन रस का पान कर सकेंगे। प्रभु प्रेम के प्यासे की तृप्ति उक्त प्रकार ही हो सकती है।

तन गृह छाड़ै लाज पति[1], जब रस माता होइ।
जब लग दादू सावधान, कदे न छाड़ै कोइ ॥ ३२६ ॥

जब तक सांसारिक व्यवहार चातुर्य में सावधान है तब तक देहाध्यास रूप तन, लज्जा और कुल परंपरागत मर्यादा रूप घर की लज्जा[1] कभी भी कोई नहीं छोड़ सकता किन्तु जब भगवद् भजनानन्द-रस में मस्त हो जाता है, तब उक्त तन और घर की लज्जा सहज ही छोड़ देता है।

आँगण एक कलाल के, मतवाला रस मांहि।
दादू देख्या नैन भर, ताके दुविधा नांहिं ॥ ३२७ ॥

जैसे कलाल के घर के चौक में मदिरा पान करके मतवाले हो जाते हैं, तब नेत्र भरके देखने पर भी उन्हें अपने पराये का भेद नहीं भासता, वैसे ही ब्रह्म के समाधि-आँगन में जाकर ब्रह्म चिन्तन-रस पान से मस्त हुआ ज्ञान-नेत्रों से तृप्त होकर जब ब्रह्म को देखता है, तब उसे ब्रह्म अपने से अभिन्न एक ही भासता है, उसके हृदय में द्वैत रूप दुविधा नहीं रहती ॥

पीवत चेतन जब लगै, तब लग लेवै आइ ।
जब माता दादू प्रेम रस, तब काहे को जाइ ॥ ३२८ ॥

जैसे मद्यपी जब तक सचेत रहता है तब तक कलाल के पास आकर मद्य लेता रहता है और जब मद्य में मस्त हो जाता है तब मद्य लाने को कब जाता है ? वह तो वहीं गिर पड़ता है। वैसे ही जब तक साधक को सत्य असत्य की भिन्न प्रतीति होती है तब तक असत्य संसार को त्याग कर सत्य ब्रह्म की ओर आता है तथा उसी का चिन्तन-रस प्रेमपूर्वक पान करता है और पीते-पीते जब प्रेम-रस में मस्त हो जाता है तब उसी सत्य ब्रह्म में स्थित हो जाता है, फिर उसकी वृत्ति असत्य में किसलिये जायेगी ? वृत्ति परमसुख की प्राप्ति के लिए धावन करती है सो प्राप्त हो गया। अब वृत्ति के जाने का कोई कारण ही नहीं रहा।

दादू अंतर आतमा, पीवे हरि जल नीर ।
सौंज सकल ले उद्धरे, निर्मल होइ शरीर ॥ ३२९ ॥

जब अन्तर्मुख बुद्धि, हरिरूप जल प्रवाह का ज्ञान-नीर पान करती है, तब मन इन्द्रियादिक रूप सब सामग्री को संसार दशा से ऊपर उठाकर अपने सहित उन सबका उद्धार कर लेती है अर्थात् प्रभु में स्थिर कर देती है तब दोनों शरीर निर्मल हो जाते हैं।

दादू मीठा राम रस, एक घूंट कर जाऊँ ।
पुणग[१] न पीछे को रहै, सब हिरदै मांहिं समाऊँ ॥ ३३० ॥

परा भक्ति की अवस्था में ऐसी उत्कंठा रहती है—मैं राम के ध्यान रूप मधुर-रस की एक ही घूंट कर जाऊं, पीछे को एक लघु बिन्दु[१] भी न रहे; संपूर्ण मेरे हृदय में ही समा जाय, राम और मैं दोनों एक रूप ही हो जायँ।

चिड़ी चंचु भर ले गई, नीर निघट नहिं जाइ ।
ऐसा बासण ना किया, सब दरिया मांहि समाइ ॥ ३३१ ॥

समुद्र से चिड़िया अपनी चंचु जल से भर ले जाती है तब समुद्र का जल घट नहीं जाता और ऐसा पात्र भी सृष्टि-कर्त्ता ने नहीं रचा है, जिसमें सब समुद्र समा जाय, इसी प्रकार ब्रह्म अगाध है। उसका चिन्तन करके कबीर तृप्त हो गये, किन्तु ब्रह्म ज्यों का त्यों है। यह साखी अकबर बादशाह के—''तन मटकी मन मही, प्राण विलोवणहार। तत्त कबीरा ले गया, छाछ पिये संसार।'' यह सुनाने पर कही थी। प्रसंग कथा—दृ. सु. सि. त. ११।११८ में देखो।

दादू अमली राम का, रस बिन रह्या न जाइ ।
पलक एक पावे नहीं, तो तबहि तलफ मर जाइ ॥ ३३२ ॥

जो राम भजन-रस का सच्चा व्यसनी है, उससे भजन-रस बिना नहीं रहा जाता। यदि एक क्षण भी भजन-रस से वंचित रहे तो जल बिना मच्छी के समान तड़फ-तड़फ कर तत्काल ही मर जाता है।

दादू राता राम का, पीवे प्रेम अघाइ ।
मतवाला दीदार का, माँगे मुक्ति बलाइ[1] ॥ ३३३ ॥

जो राम-भक्त राम में रत हो राम-प्रेम-रस को तृप्त होकर पीता है और राम के साक्षात्कार-जन्य आनन्द में मस्त रहता है, वह सालोक्यादि मुक्तियों को दु:ख[1] रूप समझता है और कैवल्य रूप आप ही हो जाता है। अत: वह मुक्ति नहीं मांगता।

उज्ज्वल भँवरा हरि कमल, रस रुचि बारह मास ।
पीवे निर्मल वासना, सो दादू निज दास ॥ ३३४ ॥

जैसे भ्रमर रुचि पूर्वक कमल के वास-रस का पान करता है, वैसे ही जिसका शुद्ध मन हरि-दर्शन करके भी बारह मास ही प्रेमपूर्वक हरि की निर्मल भक्ति करता है, वही भगवान् का निजी भक्त कहलाता है।

नैनहुँ सौं रस पीजिये, दादू सुरति सहेत ।
तन मन मंगल होत है, हरि सौं लागा हेत ॥ ३३५ ॥

जब हरि से प्रेम लगता है तब शरीर से संत-सेवादि, और मन से भगवद्-ध्यानादि मांगलिक कार्य ही होते हैं। अत: ब्रह्माकार वृत्ति रखते हुये विचार-नेत्रों से साक्षात्कार-रस पान करना चाहिए।

पीवे पिलावे राम रस, माता है हुसियार ।
दादू रस पीवे घणां, औरों को उपकार ॥ ३३६ ॥

पराभक्ति में भक्त स्वयं भजनानन्द-रस पान करके मस्त रहते हुये भी अन्य साधकों को पान कराने में सावधान रहता है। इस अवस्था में आप भी अत्यधिक रस पान करता है और उपदेश द्वारा अन्यों का भी उपकार करता है।

नाना विधि पिया राम रस, केती भाँति अनेक ।
दादू बहुत विवेक सौं, आतम अविगत एक ॥ ३३७ ॥

संतों ने भक्ति, योग, वैराग्य, ज्ञानादि नाना साधन तथा हंस, मीन, चातक, भ्रमरादि नाना रूपकों द्वारा अनेक प्रकार से अत्यधिक राम-भजनानन्द-रस पान किया है और अत्यधिक विवेक, विचार द्वारा आत्मा को ब्रह्म में लय करके बह्म-स्वरूप ही हो गये हैं।

परिचय का पय प्रेम रस, जे कोई पीवे ।
मतिवाला माता रहै, यों दादू जीवे ॥ ३३८ ॥

३३८-३४३ में परिचय रूप परा-भक्ति का महत्त्व बता रहे हैं—जैसे स्तनों से दुग्ध पान किया हुआ अधिक लाभप्रद होता है, वैसे ही पराभक्ति में साक्षात्कार होने पर जो कोई प्रभु-प्रेम-रस पान करता है, तो वह बुद्धिमान् भक्त परमानन्द में मस्त रहता है। ज्ञानी भक्त इसी प्रकार जीवन्मुक्त होकर जीवित रहते हैं।

परिचय का पय प्रेम रस, पीवे हित चित लाइ ।
मनसा वाचा कर्मना, दादू काल न खाइ ॥ ३३९ ॥

साक्षात्कार रूप दुग्ध का परम प्रेम-रस स्नेह पूर्वक चित्त लगाकर मन, वचन और शारीरिक क्रियाओं द्वारा पान करते हैं अर्थात् मन से अभेद चिन्तन, वचन से जप, संकीर्तन, शरीर से संत सेवा करते हैं, उन्हें काम-क्रोधादि रूप काल नहीं खा सकता।

परिचय पीवे राम रस, युग युग सुस्थिर होइ।
दादू अविचल आतमा, काल न लागे कोइ ॥ ३४० ॥

जो पराभक्ति में साक्षात्कार होने पर राम भक्ति-रस का पान करता है, वह निरंतर राम में ही सम्यक् स्थिर रहता है और निजात्मा को अविचल समझता है। इसीलिए उसके काल-कर्म का बाण नहीं लगता अर्थात् देह त्याग कर वह ब्रह्म में ही लय होता है।

परिचय पीवे राम रस, सो अविनाशी अंग ।
काल मीच लागे नहीं, दादू सांई संग ॥ ३४१ ॥

जो राम का साक्षात्कार-रस पान करता है, वह अविनाशी राम का ही स्वरूप हो जाता है। ब्रह्म के साथ एक रूप होकर रहने से उस पर समय और मृत्यु का दांव नहीं लगता अर्थात् वह निजात्मा को शरीर से भिन्न और काल तथा मृत्यु से परे ही समझता है।

परिचय पीवे राम रस, सुख में रहे समाइ ।
मनसा वाचा कर्मना, दादू काल न खाइ ॥ ३४२ ॥

जो अभेदानन्द रूप राम-रस पान करता है, वह मन, वचन और शरीर से ब्रह्मानन्द में ही निमग्न रहता है, उसे भेद रूप काल नहीं खाता।

परिचय पीवे राम रस, राता सिरजनहार ।
दादू कुछ व्यापे नहीं, ते छूटे संसार ॥ ३४३ ॥

जो परब्रह्म राम के साक्षात्कार रूप-रस-पान में अनुरक्त हैं, उन पर काम-क्रोधादिक आसुरी गुण कुछ भी असर नहीं कर सकते, वे सदा के लिए संसार से मुक्त हो जाते हैं।

अमृत भोजन राम रस, काहे न विलसे खाइ।
काल विचारा क्या करे, रम रम राम समाइ ॥ ३४४ ॥

राम-रस रूप भोजन करने की प्रेरणा कर रहे हैं—साधक ! राम-रस रूप अमृत भोजन खाकर क्यों नहीं आनन्द लेता अर्थात् राम का साक्षात्कार करके रामाकार वृत्ति क्यों रहीं रखता ? निरंतर चिन्तन द्वारा जब तेरे रोम-रोम में राम समा जायगा, तब बेचारा काल तो तेरे अधीन हो जायगा, वह तेरी क्या हानि कर सकेगा ?

दादू जीव अजा[1] बिघ[2] काल है, छेली जाया सोइ।
जब कुछ वश नहिं काल का, तब मीनी[3] का मुख होइ॥ ३४५॥

जीवात्मा रूप बकरी[1] है, उसने अपने प्रमाद-पूर्ण कर्मों के द्वारा काल रूप व्याघ्र[2] को जन्म दिया है किन्तु जीवात्मा जब साधना द्वारा अज्ञान नष्ट करके स्वरूप का साक्षात्कार कर लेता है तब इस पर काल का कुछ भी वश नहीं चलता। जैसे कुत्ते को देखकर बिल्ली[3] का मुख भयभीत होता है, वैसे ही काल इसको ब्रह्मरूप देखकर भयभीत होता है।

मन लवरू के पंख हैं, उनमनि चढै आकाश।
पग रह पूरे साच के, रोप रह्या हरि पास॥ ३४६॥

मन लौरू पक्षी है, उन्मनी मुद्रा पक्ष हैं, उन्मनी मुद्रा द्वारा समाधि रूप आकाश में चढ़ता है, तब उसके पूर्ण सत्य-निष्ठा रूप पैर ही रह जाते हैं। उनको दृढ़ता से वहां ही रोपकर हरि के पास आनंद में निमग्न रहता है।

तन मन वृक्ष बबूल का, कांटे लागे शूल[1]।
दादू माखण ह्वै गया, काहू का अस्थूल[2]॥ ३४७॥

मन, बुद्धि, इन्द्रियादि शरीर ही बबूल का वृक्ष है, बुरे संकल्प, बुरे विचार, संशय और निषिद्ध-विषय-सेवन ही इसके दुखद[1] कंटक लगे हैं, किन्तु किसी साधक के साधन द्वारा स्थूल[2] शरीर में रहने वाले उक्त कंटक भी शुभ संकल्प, ब्रह्म विचार, असंशय और विहित विषय-सेवन रूप मक्खन भाव को प्राप्त हो जाते हैं और जैसे मक्खन सुखद होता है, वैसे ही उक्त प्रकार से परिवर्तित मन: प्रवृत्तियां ब्रह्मानन्द प्राप्ति का सुगम व सुखद साधन बन जाती है।

दादू संषा[1] शब्द है, सुनहां संशा मारि।
मन मींडक सूं मारिये, शंका सर्प निवारि॥ ३४८॥

सद्गुरु शब्द रूप शशक[1] आत्म वस्तु विषयक संशय-श्वान[2] को मारता है। आत्म ज्ञान को प्राप्त हुआ मन रूप मेंढक, शंका-सर्प को मार कर फेंक देता है।

दादू गांझी[1] ज्ञान है, भंजन है सब लोक।
राम दूध सब भर रह्या, ऐसा अमृत पोष॥ ३४९॥

सत्संग रूप विशाल देश में, ब्रह्म ज्ञान रूप भेड़[1] का निरंजन राम रूप दुग्ध ज्यों-ज्यों निकलता है अर्थात् स्वस्वरूप का बोध होता है त्यों-त्यों तुच्छ भाव सूखते जाते हैं और सत्संग में ऐसा ज्ञात होता है कि वह राम रूप दुग्ध चौदह भुवनों में परिपूर्ण भरा है तथा उसका भजन रूप पान करने से वह परमार्थ पुष्टि द्वारा मुक्ति रूप अमृत भाव को प्रदान करता है।

दादू झूठा जीव है, गढिया[1] गोविन्द बैन।
मनसा मूंगी[2] पंखि सौं, सूरज सरीखे नैन॥ ३५०॥

गर्भ में गोविन्द के आगे- ''मुझे बाहर निकालो, आप का भजन करूँगा'' यह वचन कहता है। इसको पूर्ण न करने से जीव झूठा हो जाता है, किन्तु सत्संग के द्वारा फिर उक्त वचन को सत्य करने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ होता है और दृढ़[१] भक्त के समान व्यवहार करता है। तब इसकी बुद्धि वृत्तिरूप चींटी[२] के विवेक रूप पंख आते हैं उनसे असत्य को त्याग कर सत्य की ओर उड़ती है और उसके सूर्य के समान अज्ञानांधकार को नष्ट करने वाले ज्ञान-नेत्र खुल जाते हैं। प्रसंग—किसी साधक ने नामदेवजी का निम्नलिखित पद सुनाकर इसका भावार्थ समझाने की प्रार्थना की थी, इसको समझाने के लिए ही ३४५ से ३५० की साखी कही गई थी। नामदेवजी का पद—

लटके[३] न बोलूं बाप, व्रत मान[२] गाढ़ो,[१]

कोल्हा येवड़ा[४] मोतीड़ा, मैं मंझे डोले[५] देखीला[६] ॥ टेक ॥

छेली[७] बैली[८] (व्याली) बाघ जैला[९], मांझरिया[१०] (मांजरि) भय टूंडै ।

उड़त पंखि मैं लवरू पेख्या, नरली[११] जे[१२] ह्वै टांडै ॥ १ ॥

बाबलिया[१३] चै षोटे[१४], मांखणियां[१५] चे पोटे[१६] ।

संखै[१७] सुनहां[१८] मारीला[१९] तहां मींडक अभिला[२०] लोटे ॥ २ ॥

अम्हे[२१] जु गैला[२२] ब्राट[२३] देश, तहां गांझी[२४] दूध कैला[२५] ।

स्रव आटे[२७] गांझीला[२६] तहां चौदह रांजन[२८] भरिला ॥ ३ ॥

लटक्या[२९] गड़या[३०] गढिया[३१] झोलै[३२], गढिया[३३] येवडे[३४] रोले[३५] ।

उड़त पंखि मैं मूंगी[३६] पेखी, वाटी[३७] जे है डोलै[३८] ॥ ४ ॥

विष्णुदास नामदेव इमि प्रणवै, येछै जीव ची[४०] उकती ।

लटके आछे सांगीला,[३९] ता छै मोक्ष न मुकती ॥ ५ ॥

टेक का पूरा अर्थ और शेष पांच पदों का शब्दार्थ देते हैं, भावार्थ ३४५-३५० में दिया है। हे बाप! मेरा यह दृढ़[१] व्रत समझो[२] कि मैं मिथ्या[३] नहीं बोलता, मैंने मेरे भीतर के नेत्रों[५] से कद्दू के बराबर[४] ध्येय ब्रह्म रूप मोती देखा[६] है॥ टेक॥ बकरी[७] ब्याई[८] है, उससे बाघ उत्पन्न हुआ[९] है, वह बिल्ली[१०] के समान भयभीत होकर बोल रहा है (इतने का भावार्थ ३४५ में है)। मैंने लवरू पक्षी को उड़ते हुये देखा है, वह ऊँट[११] के समान[१२] बोल रहा है (इतने का भावार्थ ३४६ में है)। बबूल[१३] वृक्ष की शाखा[१४] पर मक्खन[१५] की पोटलियां[१६] लगी हैं (इतने का भावार्थ ३४७ में है)। शशक[१७] ने श्वान[१८] को मारा[१९] है। जहां सर्प है, वहां ही उसे मारने की अभिलाषा[२०] से मेंढक लौट रहा है। (इतने का भावार्थ ३४८ में है)। हम[२१] विशाल[२३] देश में गये[२२], वहां भेड़का[२४] दूध संग्रह किया[२५], उस भेड़ का दूध स्रवते २ विपत्ति प्रद तुच्छ[२६] भाव सूखते हैं[२७] हैं। उस भेड़ के दूध से चौदह बड़े-बड़े मटके[२८] भरे हैं। (इतने का भावार्थ ३४९ में है)। झूठा[२९] हो गया[३०] था किन्तु अब दृढ़[३१] हुआ[३२] है और दृढ़[३३] के समान[३४] चलता[३५] है। (इतने का भावार्थ ३५० के पूर्वार्ध में है)। मैंने पक्षी के समान उड़ते हुये चींटी[३६] देखी है, उसके नेत्र[३८] कटोरे[३७] के आकार के सूर्य सम प्रकाशमान हैं। (इतने का भावार्थ ३५० के उत्तरार्ध में है)। विष्णु के दास नामदेव ने भगवान् को प्रणाम करके यह अपने मन की[४०] विचित्र बात कही है। यह मिथ्या है, ऐसा कहता[३९] है उसे पापों से छुटकारा होकर मुक्ति प्राप्त नहीं होती।

सांई दीया दत घणां, तिसका वार न पार।
दादू पाया राम धन, भाव भक्ति दीदार ॥ ३५१ ॥

इति परिचय का अंग समाप्त: ॥ ४ ॥ सा. ७९८ ॥

परमात्मा ने हमें अपना अनुग्रह रूप दान अत्यधिक मात्रा में दिया है। उसका वार पार तो हमें दीखता ही नहीं। वह तो अपार है। उसी के प्रभाव से हमें भाव, भक्ति और परब्रह्म स्वरूप का साक्षात्कार रूप राम-धन प्राप्त हुआ है।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका परिचय का अंग समाप्त: ॥ ४ ॥

अथ जरणा का अंग ५

प्राप्त वस्तु को पचाने का नाम 'जरणा' है। साक्षात्कार का अनुभव पचना चाहिए, यह प्रसंग आने पर जरणा का अंग कहने में प्रवृत्त हुये मंगल कर रहे हैं—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत:।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक जरणा युक्त हो संसार से पार जाकर परब्रह्म को प्राप्त होते हैं, उन निरंजन राम, सद्गुरु और सर्व संतों को हम प्रणाम करते हैं।

को साधू राखे राम धन, गुरु बाइक[1] वचन विचार ।
गहिला दादू क्यों रहै, मरकत हाथ गँवार ॥ २ ॥

२ में जरणा का अधिकारी बता रहे हैं—कोई विरला साधु पुरुष ईश्वर दूत-गुरु वचनों[1] के विचार से प्राप्त राम-भजन-धन को संचय करके गुप्त रूप से रख सकता है। जैसे मूर्ख के हाथ में मरकत-मणि आने पर भी वह उसे नहीं रख सकता, अल्प मूल्य में ही बेच देता है, वैसे ही बुद्धिहीन व्यक्ति राम-भजन-धन को सिद्धि तथा प्रतिष्ठा-रूप अल्प-मूल्य में ही खो देता है, पचाकर मुक्ति रूप महान् मूल्य प्राप्त नहीं कर सकता।

दादू मन ही मांहीं समझ कर, मन ही मांहि समाइ।
मन ही मांहीं राखिये, बाहर कह न जनाइ ॥ ३ ॥

३-६ में जरणा करने की प्रेरणा कर रहे हैं—साधको ! विचार पूर्वक भगवत् तत्त्व को मन में ही समझ कर मनोनिग्रह द्वारा बुद्धि-वृत्ति को उसमें ही लीन करो और उससे होने वाले अनुभव को भी मन में ही रक्खो, वाणी द्वारा मन से बाहर निकाल कर अनधिकारियों को मत कहो।

दादू समझ समाइ रहु, बाहर कह न जनाइ ।
दादू अद्भुत देखिया, तहँ ना को आवे जाइ ॥ ४ ॥

सद्गुरु के उपदेश द्वारा ब्रह्म तत्त्व को समझ कर उसी में अपनी वृत्ति लीन करके स्थिर रहो। बहिर्मुख होकर, उसका विचित्र अनुभव वाणी द्वारा कह कर अनधिकारियों को मत बताओ।

सांई दीया दत घणां, तिसका वार न पार।
दादू पाया राम धन, भाव भक्ति दीदार ॥ ३५१ ॥

इति परिचय का अंग समाप्त: ॥ ४ ॥ सा. ७९८ ॥

परमात्मा ने हमें अपना अनुग्रह रूप दान अत्यधिक मात्रा में दिया है। उसका वार पार तो हमें दीखता ही नहीं। वह तो अपार है। उसी के प्रभाव से हमें भाव, भक्ति और परब्रह्म स्वरूप का साक्षात्कार रूप राम-धन प्राप्त हुआ है।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका परिचय का अंग समाप्त: ॥ ४ ॥

अथ जरणा का अंग ५

प्राप्त वस्तु को पचाने का नाम 'जरणा' है। साक्षात्कार का अनुभव पचना चाहिए, यह प्रसंग आने पर जरणा का अंग कहने में प्रवृत्त हुये मंगल कर रहे हैं—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत:।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक जरणा युक्त हो संसार से पार जाकर परब्रह्म को प्राप्त होते हैं, उन निरंजन राम, सद्गुरु और सर्व संतों को हम प्रणाम करते हैं।

को साधू राखे राम धन, गुरु बाइक[१] वचन विचार ।
गहिला दादू क्यों रहै, मरकत हाथ गँवार ॥ २ ॥

२ में जरणा का अधिकारी बता रहे हैं—कोई विरला साधु पुरुष ईश्वर दूत-गुरु वचनों[१] के विचार से प्राप्त राम-भजन-धन को संचय करके गुप्त रूप से रख सकता है। जैसे मूर्ख के हाथ में मरकत-मणि आने पर भी वह उसे नहीं रख सकता, अल्प मूल्य में ही बेच देता है, वैसे ही बुद्धिहीन व्यक्ति राम-भजन-धन को सिद्धि तथा प्रतिष्ठा-रूप अल्प-मूल्य में ही खो देता है, पचाकर मुक्ति रूप महान् मूल्य प्राप्त नहीं कर सकता।

दादू मन ही मांहीं समझ कर, मन ही मांहि समाइ।
मन ही मांहीं राखिये, बाहर कह न जनाइ ॥ ३ ॥

३-६ में जरणा करने की प्रेरणा कर रहे हैं—साधको ! विचार पूर्वक भगवत् तत्त्व को मन में ही समझ कर मनोनिग्रह द्वारा बुद्धि-वृत्ति को उसमें ही लीन करो और उससे होने वाले अनुभव को भी मन में ही रक्खो, वाणी द्वारा मन से बाहर निकाल कर अनधिकारियों को मत कहो।

दादू समझ समाइ रहु, बाहर कह न जनाइ ।
दादू अद्भुत देखिया, तहँ ना को आवे जाइ ॥ ४ ॥

सद्गुरु के उपदेश द्वारा ब्रह्म तत्त्व को समझ कर उसी में अपनी वृत्ति लीन करके स्थिर रहो। बहिर्मुख होकर, उसका विचित्र अनुभव वाणी द्वारा कह कर अनधिकारियों को मत बताओ।

वह निजात्म स्वरूप अति अद्भुत देखने में आता है। उस स्वरूप स्थिति में देश में अज्ञानी कोई भी नहीं आता और उसे छोड़कर कोई भी ज्ञानी संसार में नहीं जाता।

कह कह क्या दिखलाइये, सांई सब जाने ।
दादू परकट का कहै, कुछ समझ सयाने ॥ ५ ॥

हे चतुर साधक ! तेरे कायिक, वाचिक और मानसिक शुभाशुभ सभी कार्यों को तथा तेरी सभी परिस्थितियों को ईश्वर तो तेरे हृदय में स्थित होने से प्रत्यक्ष रूप से जानते ही हैं, उन्हें तो कहना ही क्या है ? और लोगों को बारंबार कह-कह कर दिखाने से लाभ ही क्या है ? कुछ समझ से काम ले, लोगों को बारंबार कहने से अपने कथन किये हुए सुकृत का नाश होता है। अत: गुप्त ही रखना चाहिए।

दादू मन ही मांहीं ऊपजे, मन ही मांहि समाइ।
मन ही मांहीं राखिये, बाहर कह न जनाइ ॥ ६ ॥

मन में ही ब्रह्म-ज्ञान उत्पन्न होता है, उसे मन में ही स्थिर करो। ज्ञान से प्राप्त ब्रह्मानन्द को भी मन में ही गुप्त रखो, बाह्य वृत्ति मानवों को कहकर अपनी योग्यता मत बताओ।

लै विचार लागा रहै, दादू जरता जाइ ।
कबहूं पेट न आफरे, भावे तेता खाइ ॥ ७ ॥

७ में जरणा करने की पद्धति बता रहे हैं—जैसे भूख के अनुसार पथ्य भोजन करने से कभी भी पेट नहीं आफरता, सब पच जाता है, वैसे ही भजनादि साधन जन्य लाभ, बहिर्मुख मनुष्यों को कहने से हानि होती है और गुप्त रखने से सफलता मिलती है, ऐसे विचार द्वारा नम्रतापूर्वक वृत्ति भजन में ही लगाये रक्खे तो भजनानन्द पच जायगा। कभी भी अहंकार द्वारा वर, शापादि से नष्ट न हो सकेगा।

जनि खोवे दादू रामधन, हृदय राखि जनि जाइ।
रतन जतन कर राखिये, चिन्तामणि चित लाइ ॥ ८ ॥

८ में भजन और साक्षात्कार की रक्षार्थ प्रेरणा कर रहे हैं—साधको ! संचित किये हुये राम-भजन-धन को वर, शापादि द्वारा क्यों खोते हो ? जरणा द्वारा हृदय में गुप्त रक्खो और राम-भजन-धन से प्राप्त राम रूप रत्न को अन्तर्मुखता-यत्न से ज्ञान नेत्रों के सामने ही रक्खो अर्थात् निरंतर साक्षात्कार करते रहो। यह राम चिन्तामणि रूप है, इसी में चित्त लगाओ, तुम्हें परमानन्द प्राप्त होगा।

सोई सेवक सब जरे, जेती उपजे आइ ।
कह न जनावे और को, दादू मांहि समाइ ॥ ९ ॥

९-१७ में जरणा द्वारा ही सेवक उत्तम होता है, यह कह रहे हैं—जितनी भी सिद्धि आदि शक्तियाँ हृदय में प्रकट हों, उन सबको अपने भीतर ही गुप्त रक्खे, अन्य अनधिकारियों को कह कर अपनी शक्ति का परिचय न दे, वही सच्चा सेवक कहा जाता है।

सोई सेवक सब जरे, जेता रस पीया ।
दादू गूझ गंभीर का, प्रकाश न कीया ॥ १० ॥

जितना भी भगवद् भजन-रस-पान किया, उसे गुप्त ही रक्खा हो और भजन द्वारा जो भी गूढ़ गंभीर अनुभव हुआ हो, उसका भी अनधिकारियों के आगे कथन नहीं किया हो, वही सच्चा सेवक है।

सोई सेवक सब जरे, जे अलख लखावा ।
दादू राखे राम धन, जेता कुछ पावा ॥ ११ ॥

जो भी कुछ राम भजन-धन प्राप्त हुआ है, उसे गुप्त ही रक्खे और मन इन्द्रियों के अविषय ब्रह्म का साक्षात्कार होने पर जितने भी विचित्र अनुभव, शक्ति आदि प्राप्त होते हैं, उन सबको भी रख सके, वही सुसेवक है।

सोई सेवक सब जरे, प्रेम रस खेला ।
दादू सो सुख कस कहै, जहँ आप अकेला ॥ १२ ॥

जो भक्त भगवत् प्रेम-रस में निमग्न होकर भगवान् के साथ अनन्य भाव रूप खेल खेलता है, वह सभी विशेषताओं को गुप्त रख सकता है और जो ब्रह्म साक्षात्कार का आनन्द है, वह तो कह ही कैसे सकता है ? उस अवस्था में तो स्वयं अद्वैत रूप ही रहता है, कहने सुनने के साधन इन्द्रियादि से अतीत होने से वह नहीं कहा जा सकता।

सोई सेवक सब जरे, जेता घट परकास ।
दादू सेवक सब लखे, कह न जनावे दास ॥ १३ ॥

अन्त:करण में जितना भी ब्रह्म ज्ञान-प्रकाश प्रकट होता है, उस सबको ही अन्त:करण में स्थिर रख सके, वही श्रेष्ठ सेवक कहलाता है। सेवक सब प्रकार से परब्रह्म को ही देखता है किन्तु अपनी अभेद स्थिति अनधिकारियों को कह कर नहीं बताता। उनके आगे तो भगवत् का दास ही बना रहता है।

अजर जरे रस ना झरे, घट मांहि समावे ।
दादू सेवक सो भला, जे कह न जनावे ॥ १४ ॥

जो सर्व साधारण से न पच सके, ऐसे क्रोध, लोभादि आसुर गुणों को पचावे और क्षमा, सन्तोषादि दैवी गुण रूप रस को अन्त:करण के भीतर ही रक्खे, बाहर नहीं झरने दे अर्थात् अन्त:करण से हटने नहीं दे और जो भी अपने दैवीगुण हैं, उनको अपने मुख से कह कर दूसरों को न बतावे, वही सेवक अच्छा माना जाता है।

अजर जरे रस ना झरे, घट अपना भर लेइ ।
दादू सेवक सो भला, जारे जाण न देइ ॥ १५ ॥

सर्व साधारण से नहीं पच सके, ऐसी वीर्य धातु को जो साधन शक्ति से पचाले, अधो मार्ग

से नहीं झरने दे, ऊर्ध्व रेता होकर वीर्य से अपना शरीर पूर्ण करे, अमोध वीर्यवान् होकर भी अपनी शक्तियों को धैर्य द्वारा पचाले, दुरुपयोग न करे, वही सेवक अच्छा माना जाता है।

अजर जरे रस ना झरे, जेता सब पीवे ।
दादू सेवक सो भला, राखे रस जीवे ॥ १६ ॥

सर्व साधारण जिसको गुप्त न रख सके, ऐसे प्रभु प्रेम को गुप्त रक्खे, हृदय से किंचित भी दूर न होने दे और सत्संग में सन्तों द्वारा जितना भी प्रभु प्रेम का उपदेश मिले सो सब धारण करे तथा प्रभु प्रेम-रस को हृदय में रख करके ही जीवित रहे। प्रभु-प्रेम बिना न जी सके, वही अच्छा सेवक है।

अजर जरे रस ना झरे, पीवत थाके नांहिं ।
दादू सेवक सो भला, भर राखे घट मांहिं ॥ १७ ॥

सर्व साधारण जिसको धारण न कर सके, ऐसे ब्रह्म ज्ञान को धारण करे, ब्रह्म-ज्ञान-रस को हृदय से लवमात्र भी दूर न होने दे और ज्ञानी सन्तों से ज्ञानामृत-रस के पान करने में थके नहीं, ज्ञानोपदेश श्रवण करता ही रहे। परिपूर्ण रूप से अन्त:करण में अद्वैत भावना रक्खे, वही सेवक अच्छा माना जाता है।

साधु महिमा

जरणा जोगी जुग जुग जीवे, झरणा मर मर जाइ ।
दादू जोगी गुरुमुखी, सहजैं रहै समाइ ॥ १८ ॥

१८-३० में जरणा करने वालों की विशेषता बता रहे हैं—१ धन २ गुण ३ कर्म स्वभाव ४ प्रेम-रस ५ आनन्द ६ ब्रह्म-साक्षात्कार, इन ६ प्रकार की जो जरणा करता है वह योगी संसार से मुक्त होकर ब्रह्म रूप से युग-युग प्रति जीवित रहता है और जो उक्त ६ प्रकार जरणा नहीं कर सकता, वह बारम्बार मृत्यु को प्राप्त होकर नाना योनियों में जाता है। जो योगी गुरुमुखी होता है, वह तो अनायास ही परब्रह्म में एक होकर ही रहता है।

जरणा जोगी जग रहै, झरणा परलै होइ ।
दादू जोगी गुरुमुखी, सहज समाना सोइ ॥ १९ ॥

जरणा युक्त योगी अपनी साधना में जाग्रत रहता है। अत: वह गुरु आज्ञा में सावधान रहने वाला योगी सहज स्वरूप ब्रह्म में ही लय होता है और जरणा रहित कुयोगी की साधना प्रमाद के कारण नष्ट हो जाती है।

जरणा जोगी थिर रहै, झरणा घट फूटे ।
दादू जोगी गुरुमुखी, काल तैं छूटे ॥ २० ॥

जरणावान् योगी अपने भजनादि साधन में स्थिर रहता है। इसी कारण वह गुरु आज्ञा में चलने वाला योगी काम-क्रोधादि रूप काल की फाँसी से मुक्त हो जाता है और जरणा रहित कुयोगी का अन्त:करण घट काम-क्रोधादि से छिन्न-भिन्न होता रहता है।

जरणा जोगी जगपती, अविनाशी अवधूत।
दादू जोगी गुरुमुखी, निरंजन का पूत ॥ २१ ॥

१९ में लिखित ६ प्रकार की जरणा-युक्त मन-इन्द्रियों को जीतने वाला अवधूत योगी अविनाशी जगतपति ईश्वर के समान ही पूज्य हो जाता है, फिर गुरु आज्ञा में दृढ़ रहने के कारण वह योगी निरंजन ब्रह्म का पूत अर्थात् स्वरूप हो जाता है।

जरे सु नाथ निरंजन बाबा, जरे सु अलख अभेव।
जरे सु जोगी सब की जीवन, जरे सु जग में देव ॥ २२ ॥

सम्यक् रीति से सब प्रकार की जरणा तो विश्व का आधार और स्वामी निरंजन देव ही कर सकता है किन्तु जो ब्रह्मज्ञान को अच्छी प्रकार धारण करता है, वह भी मन इन्द्रियों के अविषय ब्रह्म में अभिन्न हो जाता है। जो योगी पूर्ण क्षमाशील होता है वह सभी का जीवन रूप अर्थात् प्रिय होता है। जो अपने किये हुये पुण्य कर्मों को अच्छी प्रकार गुप्त रखता है, वही संसार में देव भाव को प्राप्त होता है।

जरे सु आप उपावनहारा, जरे सु जगपति सांईं।
जरे सु अलख अनूप है, जरै सु मरणा नांहीं ॥ २३ ॥

जो गुरुजनों से प्राप्त ज्ञान को भली प्रकार धारण करता है, वह स्वयं दूसरों के हृदय में ज्ञान उत्पन्न करने वाला हो जाता है। जो अपने किये हुये भगवद् भजन को गुप्त रखता है अर्थात् सिद्धि आदि के लिए खर्च नहीं करता, वह जगतपति ईश्वर को प्राप्त हो जाता है। जो अभेद भावना को भली प्रकार धारण करता है, वह मन इन्द्रियों के अविषय उपमा रहित ब्रह्म को प्राप्त होता है। जो ब्रह्माकार वृत्ति को निरंतर स्थिर रखता है, वह बारंबार मृत्यु को प्राप्त नहीं होता।

जरे सु अविचल राम है, जरे सु अमर अलेख।
जरे सु अविगत आप है, जरे सु जग में एक ॥ २४ ॥

अविद्या रहित स्थिति को सम्यक् धारण करने वाला अविचल राम को प्राप्त होता है। अमर ब्रह्म में वृत्ति के प्रवाह को भली प्रकार स्थिर करने वाला अमर और अपरिमित ब्रह्म को प्राप्त होता है। जो सब प्रकार की परिस्थितियों में समता को स्थिर रखता है, वह स्वयं मन-इन्द्रियों का अविषय ब्रह्म ही है। जो अद्वैत भावना को धारण करता है, वह जगत में अद्वैत होकर ही रहता है।

जरे सु अविगत आप है, जरे सु अपरंपार।
जरे सु अगम अगाध है, जरे सु सिरजनहार ॥ २५ ॥

जो सब विश्व को अपने स्वरूप में पचाता है, अर्थात् विवर्त्त समझता है, वह स्वयं ब्रह्म है। जो देशकालादि सीमा को अपने स्वरूप में पचाता है अर्थात् असीम समझता है, वह अपरंपार है। जो निन्दा स्तुति को पचाता है अर्थात् दुखित और हर्षित नहीं होता, उसका विचार अगम

अगाध है। जो कटु वचनों को सहन कर लेता है, वह अपने में वा अन्य में शांति सृजन करने वाला होता है।

जरे सु निज निराकार है, जरे सु निज निर्धार।
जरे सु निज निर्गुणमयी, जरे सु निज तत सार॥ २६॥

जो निज स्वरूप में सर्व मायिक आकारों का अभाव समझता है, वह निराकार ही हो जाता है। जो निज स्वरूप को सभी मायिक आधारों से रहित समझता है, वह निराधार ब्रह्म को ही प्राप्त होता है। जो निज स्वरूप को मायिक गुणों से परे जानता है, वह निर्गुण ब्रह्म को ही प्राप्त होता है। जो निज स्वरूप को मायिक तत्त्वों से अतीत मानता है, वह विश्व के सार तत्त्व ब्रह्म-स्वरूप को प्राप्त होता है।

जरे सु पूरण ब्रह्म है, जरे सु पूरणहार।
जरे सु पूरण परम गुरु, जरे सु प्राण हमार॥ २७॥

जो अपने आत्मा को अपूर्ण नहीं समझता, वह पूर्ण ब्रह्म को प्राप्त होता है। जो विश्व के भरण-पोषण करने वाले की उपासना करके उसे पचाता है अर्थात् भोगों के लिये खर्च नहीं करता, वह पूर्णाहार ईश्वर को ही प्राप्त होता है। जो संपूर्ण आसुर-गुणों और अज्ञान को पचाता है अर्थात् नष्ट करता है, वह परम गुरु हो जाता है। जो हर्ष-शोकादि को पचाकर ब्राह्मी स्थिति में रहता है, वह तो हमारा प्राण ही है अर्थात् प्राणवत् प्रिय है।

दादू जरे सु ज्योति स्वरूप है, जरे सु तेज अनन्त।
जरे सु झिलमिल नूर है, जरे सु पुंज रहंत॥ २८॥

जो तन-मनादि के विकारों को पचाता है नष्ट करता है, वह ज्योति-स्वरूप प्रभु को प्राप्त होता है। जो वृत्ति को आन्तर स्थिर रखता है वह अनन्त तेज-स्वरूप प्रभु का दर्शन करता है। जो वृत्ति को ध्येय ब्रह्म में लय करता है, वह विचित्र झिलमिलाहट युक्त प्रभु-स्वरूप का दर्शन करता है। जो उक्त प्रभु के प्रकाश-स्वरूप को देखकर किसी अन्य को नहीं कहता, तब उस प्रकाश-पुंज प्रभु में ही लय होकर रहता है।

दादू जरे सु परम प्रकाश है, जरे सु परम उजास।
जरे सु परम उदीत है, जरे सु परम विलास॥ २९॥

क्षमाशील में व्यावहारिक-ज्ञान अच्छा रहता है, क्षमाशील में शास्त्र-ज्ञान सम्यक् रहता है। क्षमाशील में आत्म-ज्ञान भली प्रकार उदय होकर स्थिर रहता है। क्षमाशील को परमानन्द प्राप्त होता है।

दादू जरे सु परम पगार है, जरे सु परम विकास।
जरे सु परम प्रभास है, जरे सु परम निवास॥ ३०॥

जरणा करने वाले में दिव्य गुण-राशि रहती है। क्षमाशील का हृदय-कमल विकसित होता है। दृढ़ क्षमाशील में ब्रह्म-ज्ञान प्रकट होता है और परब्रह्म में निष्ठा रूप निवास होता है।

परमेश्वर की दयालुता

दादू एक बोल भूले हरि, सु कोई न जाने प्राण ।
अवगुण मन आणे नहीं, अरु सब जाणे हरि जाण ॥ ३१ ॥

३१-३२ में प्रभु की दयालुता दिखा रहे हैं—दयालु हरि एक बात भूले हुये से रहते हैं। इस बात को भली प्रकार अज्ञानी प्राणी तो कोई भी नहीं जानता। वह क्या है ? प्राणियों के अवगुण अपने मन में नहीं लाते=नहीं देखते। शंकाः- जानते नहीं होंगे ? उत्तर-ऐसा नहीं, वे हरि तो सर्वज्ञ हैं, सभी कुछ जानते हैं किन्तु अवगुणों को जानकर भी प्राणियों का भरण-पोषण करते हैं, इससे उनकी अति दयालुता रूप जरणा ही सूचित होती है।

दादू तुम जीवों के अवगुण तजे, सु कारण कौन अगाध ?
मेरी जरणा देख कर, मति को सीखे साध ॥ ३२ ॥

हे अगाध प्रभो ! आपने जीवों के अवगुण देखना त्याग रखा है, इसमें क्या हेतु है, सो कृपा करके बताइये ? उत्तर—''मेरी क्षमाशील बुद्धि को देखकर मेरा अनुकरण करने वाले साधक-संत भी क्षमा करना सीख कर क्षमाशील बन सकें, यही कारण है।''

धारणा

पवना पानी सब पिया, धरती अरु आकास ।
चंद सूर पावक मिले, पंचौं एकै ग्रास ॥ ३३ ॥

१ शब्द रूप आकाश को सहन शक्ति द्वारा, २ स्पर्श रूप वायु को अनासक्ति द्वारा ३ रूप-मय अग्नि को आत्म समता द्वारा, ४ विषय-रस-जल को वस्तु विचार द्वारा, ५ गंध रूप पृथ्वी को अन्तर्मुख वृत्ति द्वारा पूर्ण रूप से पान किया=पचालिया=इन सब को जय कर लिया। इड़ा नाड़ी चन्द्रमा, और पिंगला नाड़ी सूर्य, सुषुम्ना नाड़ी रूप अग्नि में मिले=प्राणायाम द्वारा एक किया और पांचों ज्ञानेन्द्रियों को मन के साथ एक करके ग्रासवत् अन्तर्हदय में स्थित आत्मा में स्थिर किया।

चौदह तीनों लोक सब, ठूंगे[1] श्वासे श्वास ।
दादू साधू सब जरे, सद्गुरु के विश्वास ॥ ३४ ॥

इति जरणा का अंग समाप्त ॥ ५ ॥ सा. ८३२ ॥

चौदह भुवन और तीनों लोकों को श्वास २ प्रति अपने स्वरूप में विवर्त्त रूप से धारण[1] किये हैं। उक्त प्रकार के सद्गुरु के उपदेश में दृढ़ विश्वास करके साधक संत-धन, गुण, प्रेम-रस, आनन्द, प्रकाश, परिचयादि सभी प्रकार की जरणा करते आये हैं।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका जरणा का अंग समाप्त : ॥ ५ ॥

अथ हैरान का अंग ६

धारण किये हुए तत्त्व की आश्चर्यता का प्रदर्शन करने के लिये हैरान का अंग कथन करने में प्रवृत्त हुये मंगल कर रहे हैं—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत: ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक सांसारिक भावनाओं से पार होकर, आश्चर्य स्वरूप ब्रह्म को प्राप्त होते हैं, उन निरंजन राम, सद्‌गुरु और सर्व सन्तों को हम अनेक बार प्रणाम करते हैं।

रतन एक बहु पारिखू , सब मिल करैं विचार ।
गूंगे गहिले बावरे, दादू वार न पार ॥ २ ॥

२-५ में ब्रह्म की आश्चर्य-रूपता दिखा रहे हैं—अद्वैत ब्रह्म ही रत्न है, उसके परीक्षक साधक सन्त-जौहरी बहुत हैं और सभी मिल कर अपने २ विचारानुकूल उसकी परीक्षा के प्रयत्न में लगते हैं किन्तु कुछ तो विचारते २ ब्रह्म तत्त्व का आश्चर्य रूप से अनुभव होने पर उसे वाणी का अविषय जानकर मौन हो जाते हैं, कुछ मस्त हो जाते हैं और कुछ पागल के समान विशेष रूप से उसका वर्णन करने में लगते हैं फिर भी उस आश्चर्य स्वरूप ब्रह्म का आदि अन्त नहीं जान पाते।

केते पारिख जौहरी, पंडित ज्ञाता ध्यान ।
जाण्या जाइ न जाणिये, का कह कथिये ज्ञान ॥ ३ ॥

धर्म शास्त्रादि में निपुण पंडित, दर्शन शास्त्रों के ज्ञाता और योग निष्ठ ध्यानी आदि कितने ही राम-रत्न के परीक्षक जौहरी हैं किन्तु वे उसे नहीं जान पाते। कारण, न वह कर्म का फल है, न तर्क गम्य है और न मन का विषय है। किसी इन्द्रियादि साधन द्वारा वह नहीं जानने में आता। उसे तो आत्मानुभव द्वारा ही जानो ! वह कैसा है ? इस प्रश्न पर पंडितादि क्या कह कर उसके ज्ञान का कथन करेंगे ? उन्हें कहना ही पड़ेगा कि-वह आश्चर्य रूप है।

केते पारिख पच मुये, कीमत कही न जाइ ।
दादू सब हैरान हैं, गूंगे का गुड़ खाइ ॥ ४ ॥

राम-रत्न के परीक्षक वेदादि सद् ग्रन्थ, व्यास, वाल्मिकादि अनेक ऋषि कथन करते २ थक गये किन्तु उसका मूल्य माप यथार्थ रूप से किसी से भी नहीं कहा गया। जैसे गूंगा गुड़ खाकर उसके मधुरत्व का अनुभव करके काँख बजा कर आनन्द को सूचित करता है किन्तु कह नहीं सकता, वैसे ही सब अनुभव करके आश्चर्य चकित हो आनन्दित तो होते हैं परन्तु श्रुति के समान 'नेति नेति' कह कर मौन हो जाते हैं। वह ऐसा है, इतना है, ऐसा नहीं कह सकते।

सब ही ज्ञानी पंडिता, सुर नर रहे उरझाइ ।
दादू गति गोविन्द की, क्यों ही लखी न जाइ ॥ ५ ॥

ज्ञानी, पंडित, सुर, नरादि सभी इस उलझन में उलझते हुये हैं कि—ब्रह्म को प्रत्यक्ष रूप से दिखा दें किन्तु वेद वाणी जिसका अनुभव लक्षणा द्वारा कराती है, उस गोविन्द को इन्द्रियों द्वारा दिखाने की पद्धति किसी भी प्रकार देखने में नहीं आती=आश्चर्य रूप उसको ''यह है'', ऐसे नहीं बताया जा सकता।

जैसा है तैसा नाम तुम्हारा, ज्यों है त्यों कह सांईं ।
तूं आपै जाणे आपको, तहँ मेरी गम नाहीं ॥ ६ ॥

६ में आश्चर्य रूप ब्रह्म का यथार्थ रूप जानने की प्रार्थना कर रहे हैं—स्वामिन् ! जैसा अपार महिमा सम्पन्न आपका नाम है वैसा ही असीम आपका स्वरूप है। आप स्वयं ही अपने वास्तविक स्वरूप को जानते हैं। उसमें मेरी बुद्धि की गति नहीं हो पाती। अत: जैसा आपका वास्तविक स्वरूप है, वैसा ही कृपा करके मुझे कहें=अनुभव करावें।

केते पारिख अंत न पावैं, अगम अगोचर मांहीं ।
दादू कीमत कोइ न जाने, क्षीर नीर की नांईं ॥ ७ ॥

७ में आश्चर्य रूप ब्रह्म की अपारता कह रहे हैं—बुद्धि से परे मन इन्द्रियों का अविषय ब्रह्म, आत्म रूप से अन्त:करण में ही स्थित है और अनेक परीक्षक विद्वान् विचार भी करते हैं तो भी उसकी आदि-अन्त-अन्वेषण रूप कीमत को कोई भी नहीं जानता, इससे उसका अन्त नहीं पाते। अत: उसके आदि-अन्त को जानने का विचार छोड़ कर जैसे दूध में जल मिल जाता है, वैसे ही ज्ञान द्वारा उसमें मिल कर एक हो जाना चाहिये।

जीव ब्रह्म सेवा करै, ब्रह्म बराबर होइ ।
दादू जाने ब्रह्म को, ब्रह्म सरीखा सोइ ॥ ८ ॥

८ में ब्रह्म से अभेद होने की पद्धति बता रहे हैं—जीव ब्रह्म की उपासना करता है तब मल-विक्षेप दोष से रहित हो जाता है। ब्रह्म भी मलविक्षेप रहित है। अत: मलविक्षेप रहितता में दोनों सम हो जाते हैं और ज्ञान द्वारा अज्ञान दूर करके अपने आत्मा को ब्रह्मरूप जानता है तब वह ब्रह्मरूप ही हो जाता है।

वार पार को ना लहै, कीमत लेखा नांहि ।
दादू एकै नूर है, तेज पुंज सब मांहि ॥ ९ ॥

९ में ब्रह्म की व्यापकता दिखा रहे हैं—निराकार होने से ब्रह्म का आदि अन्त कोई भी नहीं जान सकता। उसके समान अन्य कोई भी नहीं है, इसलिए उसकी कीमत की गणना हो नहीं सकी। हां, वह त्रिविध भेद शून्य अद्वैत स्वरूप ब्रह्म अखिल विश्व में ज्ञान-राशि रूप से व्यापक है।

पीव पिछान

हस्त पाँव नहिं शीश मुख, श्रवण नेत्र कहुँ कैसा ।
दादू सब देखे सुने, कहै गहै है ऐसा ॥ १० ॥

१०-२५ में ब्रह्म की पहचान के विषय में कह रहे हैं-निराकार होने से उसके-हाथ, पैर-सिर और मुख भी नहीं है। मुख न होने से श्रवण, नेत्रों का होना तो कहा ही कैसे जा सकता है ? किन्तु फिर भी वह भक्तों की भेंट ग्रहण करता है, भक्तों के घर जाता है, सहस्र सिर वाला कहलाता है, भक्तों से वार्तालाप करता है, भक्तों की प्रार्थना सुनता है, सबके संपूर्ण शुभाशुभ कर्मों को देखता है। उस का ऐसा अद्‌भुत स्वरूप है।

पाया पाया सब कहैं, केतक देहुँ दिखाइ ।
कीमत किनहूं ना कही, दादू रहु ल्यौलाइ ॥ ११ ॥

सिद्ध संत और भक्त जन सभी कहते हैं—''हमने उसे प्राप्त कर लिया और कितने ही ऐसा भी कहते हैं—''हम उसे दिखा सकते हैं'' किन्तु उस ब्रह्म का मूल्य अर्थात् स्वरूप का पूर्ण रूप से किसी ने भी नहीं कथन किया है। अत: उसके आदि अन्त को जानने का विचार छोड़कर, उसके स्वरूप में वृत्ति लगाकर उसी में स्थिर रहो।

अपना भंजन भर लिया, उहां उता ही जाण।
अपणी अपणी सब कहैं, दादू बिड़द बखाण ॥ १२ ॥

११ में कहा है ''प्राप्त कर लिया'' तब उसके स्वरूप का कथन क्यों नहीं हो सकता इसका उत्तर १२ में दे रहे हैं-जैसे कोई व्यक्ति समुद्र से अपना घट भर लेता है तब निश्चय पूर्वक जानो, घट में घट जितना ही जल आता है और समुद्र पूर्ववत् ही भरा रहता है। वैसे ही साधक संत साधना द्वारा अपना अन्त:करण ब्रह्म-ज्ञान से भर लेते हैं। आत्मा को ब्रह्म रूप निश्चय करके तृप्त हो जाते हैं। फिर अपनी २ अनुभूति का यश, विशेष रूप से, व्याख्यानों द्वारा सब कहते हैं किन्तु इससे ब्रह्म की अपारता में कुछ भी कमी नहीं आती।

पार न देवे आपना, गोप गूझ मन मांहिं ।
दादू कोई ना लहै, केते आवैं जाहिं ॥ १३ ॥

वह ब्रह्म इन्द्रियों से गुप्त रह कर, मन में भी अति गूढ भाव से रहता है। इसलिये मन इन्द्रियादि को तो अपना पार देता नहीं। कितने ही योगीजन उसका पार पाने के लिये समाधि में जाते हैं और बिना पार पाये ही लौट आते हैं। अत: उसका पार कोई नहीं पा सकता।

गूंगे का गुड़ का कहूं, मन जानत है खाइ ।
त्यों राम रसायन पीवतां, सो सुख कह्या न जाइ ॥ १४ ॥

उस ब्रह्म के साक्षात्कार का अनुभव गूंगे के गुड़ खाने के समान है। जैसे गूंगा गुड़ का स्वाद मन में तो जानता है पर कह नहीं सकता, वैसे ही राम-दर्शन-रसायन का पान करते हुये जो

आनन्द प्राप्त होता है, उसके विषय में क्या कहूँ ? बड़ा आश्चर्य रूप है और मुख से तो वह सुख कहा नहीं जाता, अनुभव में ही आता है।

दादू एक जीभ केता कहूं, पूरण ब्रह्म अगाध।
वेद कतेबां मित नहीं, थकित भये सब साध ॥ १५ ॥

वह पूर्ण ब्रह्म अगाध है। उसका पार वेद, पुराण, कुरानादि के द्वारा भी नहीं आता। अनेक जिह्वा वाले शेषजी तथा अन्यान्य अनेक संत भी उसके विषय में कहते २ थक गये हैं, तब मैं तो एक जिह्वा वाला हूँ, उसके विषय में कितनाक कह सकता हूँ, कहने से उसका पार नहीं आ सकता।

दादू मेरा एक मुख, कीर्ति अनन्त अपार।
गुण केते परिमित नहीं, रहे विचार विचार ॥ १६ ॥

हे अनन्त ! आपकी कीर्ति का पार जब अनेक मुख वाले शेषजी भी कथन करके नहीं पा सके, तब मैं अपने एक मुख से कैसे पा सकता हूं ? और बुद्धि के द्वारा भी कितने ही विचारक बारम्बार विचार करके हार गये किन्तु आपके गुणों का अन्त नहीं पा सके। अत: आपकी कीर्ति और गुण अपार हैं।

सकल शिरोमणि नाम है, तूं है तैसा नाहिं।
दादू कोई ना लहै, केते आवैं जाहिं ॥ १७ ॥

भगवन् ! आपको प्राप्त करने के सभी साधनों में आपका नाम ही सर्वश्रेष्ठ है किन्तु वह भी शब्द रूप होने से श्रवण इन्द्रिय का विषय होता है। आप इन्द्रियातीत हैं, अत: वह आपके समान नहीं हो सकता। संसार में महान् विचित्र शक्तियों से सम्पन्न कितने ही पुरुष अवतरित होते हैं और अपना कार्य करके लौट जाते हैं, किन्तु आपका पार कोई भी नहीं पाता।

दादू केते कह गये, अंत न आवे ओर।
हम हूँ कहते जात हैं, केते कहसी होर ॥ १८ ॥

आश्चर्य रूप ब्रह्म और उसके नामों की महिमा अनेक ऋषि, दार्शनिक, पौराणिक आदि कथन कर गये हैं, हम भी कहते जा रहे हैं और भविष्य में भी कितने ही महानुभाव सन्त कहेंगे किन्तु फिर भी न नाम महिमा का और न ब्रह्म का ही पार आयेगा।

दादू मैं का जानूं का कहूं, उस बलिये की बात।
क्या जानूं क्यों ही रहे, मो पै लख्या न जात ॥ १९ ॥

मैं उस सत्ता रूप महान् शक्ति वाले ब्रह्म को बुद्धि से कैसे जान सकता हूं ? वह तो बुद्धि ज्ञान से परे है और बिना जाने उसकी वार्ता पूर्णत: कैसे कह सकता हूं ? उसके विषय में जो कुछ भी कहा जाता है वह अपूर्ण ही रहता है। क्या पता, वह कैसे रहता है, निराकार होने से मेरे नेत्रों द्वारा तो देखा नहीं जाता तथा अन्य इन्द्रियों से भी नहीं जाना जाता। केवल अभेदानुभव से भान होता है। अत: ज्ञेय रूप से अवाच्य है।

दादू केते चल गये, थाके बहुत सुजान ।
बातों नाम न नीकले, दादू सब हैरान ॥ २० ॥

कितने ही सन्त तो इसका विचार करते २ अद्वैत बोध हो जाने से संसार को त्याग कर उसी में जा मिले और बहुत से पंडित-जन तर्कों द्वारा उसके निर्णय में संलग्न होकर थक गये किन्तु पार न पा सके। बातों के द्वारा किसी का भी ऐसा नाम नहीं निकल सकता कि—''उसने ब्रह्म का पार पा लिया।'' वह तो वाणी का अविषय है। अत: उसके आदि अन्त के निर्णय करने में ज्ञानी, ध्यानी, पंडितादि सभी आश्चर्य चकित हैं, निर्णय नहीं कर पाते।

ना कहिं दिठ्ठा ना सुण्या, ना कोई आखणहार।
ना कोई उत्थों थी फिरया, ना उर वार न पार॥ २१ ॥

नेत्र-इन्द्रियों का अविषय होने से वह ब्रह्म कहीं भी देखा नहीं गया। श्रवण-इन्द्रिय का अविषय होने से सुना भी नहीं गया। वाक्-इन्द्रिय का अविषय होने से उसके वास्तव स्वरूप का कथन करने वाला भी कोई नहीं है। न कोई उसके वास्तव स्वरूप को पाकर वहां से लौटा है, जो उससे पूछ कर निर्णय लिया जाय और न वर्तमान के ज्ञानियों ने अपने हृदय में उसका आदि अन्त अनुभव किया है, अत: सर्वथा आश्चर्य रूप और अवाच्य है।

नहीं मृतक नहिं जीवता, नहिं आवे नहिं जाइ।
नहिं सूता नहिं जागता, नहिं भूखा नहिं खाइ॥ २२ ॥

वह ब्रह्म पंचीकृत स्थूल भूतों का कार्य स्थूल शरीर रूप नहीं है, इसलिये मृतक वा जीवित नहीं कहा जा सकता। मरणा और जीवित रहना स्थूल शरीर का ही धर्म है। वह अपंची-कृत सूक्ष्म भूतों का कार्य सूक्ष्म शरीर रूप नहीं है, इसलिये आता जाता नहीं। सूक्ष्म शरीर ही आता जाता है। स्थूल शरीर में गमनागमन सूक्ष्म शरीर के बिना नहीं होते। वह इन्द्रिय अन्त:करण रूप नहीं है, इसलिये उसे सोता हुआ वा जागता हुआ नहीं कह सकते। वह प्राण रूप नहीं है, अत: न भूखा है और न खाता है।

न तहाँ चुप ना बोलणा, मैं तैं नाहीं कोइ ।
दादू आपा पर नहीं, न तहाँ एक न दोइ ॥ २३ ॥

ब्रह्म वाक इन्द्रिय रूप नहीं है इससे उसमें मौन और बोलना नहीं बनता तथा उसमें द्वैत भाव नहीं होने से ''मैं-तू'' आदि व्यवहार भी नहीं बनता। सब आत्माओं का आत्म स्वरूप होने से अपना और पराया नहीं कहा जा सकता। अद्वैत रूप होने से उसमें एक या दो का व्यवहार नहीं हो सकता। एक की अपेक्षा से दो और दो की अपेक्षा से एक कहना बनता है। उससे भिन्न कुछ भी नहीं है। यह दृश्य रूप संसार भी उसी का विवर्त्त होने से भिन्न नहीं कहा जा सकता, अत: वह ब्रह्म अद्वैत है।

एक कहूं तो दोइ हैं, दोइ कहूं तो एक ।
यों दादू हैरान है, ज्यों है त्यों ही देख ॥ २४ ॥

२३ में अद्वैत सिद्ध हुआ है किन्तु अब २४ में कहते हैं—मैं उसे एक अद्वैत रूप कहूँ तो मैं कहने वाला दूसरा सिद्ध होता हूँ और यदि दो कहूँ तो २३ के अनुसार दो सिद्ध नहीं होते। कारण-जीव और ब्रह्म दोनों चेतन होने से एक हैं और जड़ दृश्य-रूप संसार चेतन का विवर्त्त है, अत: द्वैत सिद्ध नहीं होता। इस प्रकार हम तो ब्रह्म के स्वरूप का अनुभव करके आश्चर्य चकित हो रहे हैं। उस ब्रह्म में कुछ भी कहना नहीं बनता। वह जैसा है, वैसा ही है। साधन द्वारा उसके स्वरूप में एक होकर अनुभव द्वारा ही उसके वास्तविक स्वरूप को देखो।

देख दीवाने ह्वै गये, दादू खरे सयान ।
वार पार को ना लहै, दादू है हैरान ॥ २५ ॥

जो सच्चे ज्ञानी हुये हैं वे भी आश्चर्य रूप ब्रह्म का आत्मा रूप से साक्षात्कार करके उसी में निमग्न हो गये हैं, उन ज्ञानी जनों में किसी ने भी ब्रह्म का आदि अन्त नहीं जाना, तब दूसरे तो जान ही क्या सकते हैं ? अत: उसके स्वरूप निर्णय में हम भी आश्चर्य युक्त हैं, किसी भी प्रकार उसका पार नहीं आता।

पतिव्रत निष्काम

दादू करणहार जे कुछ किया, सोई हूं कर जाण।
जे तूं चतुर सयाना जानराइ, तो या ही परमाण॥ २६ ॥

२६-२७ में निष्काम पतिव्रत दिखा रहे हैं—किसी व्यक्ति ने प्रश्न किया था—"आप कौन हैं ?" २६ में उसी का उत्तर दे रहे हैं—सृजन करने वाले ईश्वर ने जो कुछ बनाया है, वही मैं हूं और यदि तू चतुर है तो विचार द्वारा निश्चय करके मेरे वास्तव स्वरूप को जान। हे सयाने ! यदि तू जानने वालों में श्रेष्ठ है तब तो यही बात प्रमाण रूप मान कि आश्चर्य रूप ब्रह्म को जानना ही सब कुछ जानना है। यह सुन कर प्रश्नकर्त्ता को सन्तोष हो गया।

दादू जिन मोहन बाजी रची, सो तुम पूछो जाइ।
अनेक एक तैं क्यों किये, साहिब कह समझाइ॥ २७ ॥

इति हैरान का अंग समाप्त : ॥ ६ ॥ सा. ८५९ ॥

किसी ने प्रश्न किया था—ब्रह्म ने अपने एक स्वरूप से अनेक जीव क्यों बना दिये॥ २७ से उसी का उत्तर दिया था। जिन विश्व-मोहन भगवान् ने मोहनी माया द्वारा यह सृष्टि रूप मोहक बाजी रची है, वही उसका यथार्थ उत्तर दे सकेगा। तुम साधना द्वारा उसके पास जाकर पूछो। जब उसके वास्तव स्वरूप का साक्षात्कार करोगे, तब वे इन्हें समझा कर कहेंगे—अपने एक स्वरूप से अनेक जीव क्यों रचे हैं अर्थात् उनका साक्षात्कार करते ही उक्त प्रश्न आप ही हल हो जायेगा अन्यथा साक्षात्कार से पूर्व उन आश्चर्य रूप की रचना के निर्माण में विवाद ही रहेगा। उक्त प्रश्न का उत्तर समझने के लिये अंग ४ की १५५-१५६--१५७ साखी देखो।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका हैरान का अंग समाप्त : ॥ ६ ॥

अथ लै का अंग ७

आश्चर्य रूप ब्रह्म के आदि अंत जानने का विचार छोड़ कर उसी में निरन्तर वृत्ति लगाना चाहिये। इसलिये अब वृत्ति का विचार करने को लै अंग कहने में प्रवृत्त हुये मंगल कर रहे हैं—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत: ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक अनात्माकार वृत्तियों से पार होकर ब्रह्माकार वृत्ति द्वारा ब्रह्म को प्राप्त होता है, उन निरंजन राम, सद्गुरु और सर्व सन्तों को हम अनेक प्रणाम करते हैं।

दादू लै लागी तब जानिये, जे कबहूँ छूट न जाइ ।
जीवत यों लागी रहे, मूवाँ मंझ समाइ ॥ २ ॥

२ में वृत्ति ब्रह्म में लगने की पहचान बता रहे हैं—यदि वृत्ति अखंड ब्रह्माकार बनी रहे, कभी भी ब्रह्म से अलग होकर सांसारिक वस्तुओं में नहीं जाय, तब जानना चाहिये— अब वृत्ति ब्रह्म में लीन हुई है। जब तक प्राण पिंड का वियोग न हो, तब तक तो उक्त प्रकार से वृत्ति निरन्तर ब्रह्म में लगी रहती है और प्राण पिंड का वियोग होते ही साधक की आत्मा ब्रह्म में समा जाती है।

दादू जे नर प्राणी लै गता, सोई गत ह्वै जाइ ।
जे नर प्राणी लै रता, सो सहजैं रहै समाइ ॥ ३ ॥

३-५ में ब्रह्म में वृत्ति लगाने का फल कह रहे हैं—जो प्राणी नर-शरीर पाकर भी ब्रह्म में वृत्ति नहीं लगाकर सांसारिक पदार्थों में ही लगाते हैं, उनका नर-शरीर व्यर्थ ही चला जाता है, सफल नहीं होता और जो प्राणी नर-शरीर प्राप्त कर ब्रह्म में वृत्ति लगाने में रत हैं वे अनायास ही ब्रह्म में समाकर ब्रह्म रूप होकर ही रहते हैं।

सब तज गुण आकार के, निश्चल मन ल्यौ लाइ ।
आतम चेतन प्रेम रस, दादू रहै समाइ ॥ ४ ॥

जो मायिक देहादिक आकारों के सम्पूर्ण गुणों को त्याग कर विरक्त होकर अभ्यास द्वारा मन को निश्चल कर तथा बुद्धि-वृत्ति को चेतन आत्मा में स्थिर करके सच्चिदानन्द ब्रह्म के परम प्रेम-रस में निमग्न रहता है,वह ब्रह्म ज्ञान को प्राप्त होकर तथा ब्रह्म में ही समाकर ब्रह्म रूप होकर रहता है।

तन मन पवना पंच गह, निरंजन ल्यौ लाइ ।
जहँ आतम तहँ परमात्मा, दादू सहज समाइ ॥ ५ ॥

जो शरीर को हिंसादिक कुकर्मों से, मन को बुरे संकल्पों से, प्राणों की गति को प्राणायाम से, पंच ज्ञानेन्द्रियों को निषिद्ध विषय प्रवृत्ति से रोककर निरंजन ब्रह्म में वृत्ति लगाता है, वह जहाँ अन्त:करण में आत्मा है, वहां ही परमात्मा का साक्षात्कार करके उस सहज स्वरूप ब्रह्म में ही अभेद रूप से समा जाता है।

अर्थ अनूपं आप है, और अनरथ भाई ।
दादू ऐसी जान कर, तासौं ल्यौ लाई ॥ ६ ॥

६-७ में ब्रह्म में वृत्ति लगाने की प्रेरणा कर रहे हैं—हे भाई ! उपमा रहित परम अर्थ तो स्वयं परब्रह्म ही है। अन्य मायिक प्रपंच तो अनर्थ रूप ही है। ''अनर्थ त्यागकर परमार्थ प्राप्त करो'' ऐसी गुरु वेदादि की आज्ञा जानकर उस परमार्थ रूप परब्रह्म में ही वृत्ति लगा।

ज्ञान भक्ति मन मूल गह, सहज प्रेम ल्यौ लाइ।
दादू सब आरम्भ तज, जनि काहू सँग जाइ ॥ ७ ॥

सत्यासत्य के विवेक रूप ज्ञान और नवधा भक्ति के द्वारा इन्द्रियों की विषय प्रवृत्ति के मूल कारण मन को रोक, सम्पूर्ण काम्य कर्मों को त्याग दे। मन किसी भी इन्द्रिय के साथ सांसारिक वासना पूर्ति के लिये नहीं जाये। ऐसी स्थिति प्राप्त होने पर उस सहज स्वरूप परब्रह्म में प्रेम-पूर्वक वृत्ति लगा,अवश्य लगेगी।

अगम संसार

पहली था सो अब भया, अब सो आगे होइ।
दादू तीनों ठौर की, बूझे विरला कोइ ॥ ८ ॥

किसी ने भूत, भविष्य, वर्तमान, जानने को प्रश्न किया था उसी का उत्तर ८ से दिया था- पूर्व जन्म में जैसा कर्म किया था, वैसा ही वर्तमान जन्म में सुख दु:ख के रूप में प्रकट हो रहा है और अब जैसा करता है वैसा ही फल आगे प्राप्त होगा। इन भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों शरीरों की बात कोई विरला विचारशील ही समझता है और वह इस दुस्तर संसार से पार होने के लिये अपनी वृत्ति निरन्तर परब्रह्म में ही लगाता है।

अध्यात्म

योग समाधि सुख सुरति सौं, सहजैं सहजैं आव ।
मुक्ता द्वारा महल का, इहै भक्ति का भाव ॥ ९ ॥

९-१० में अध्यात्म साधन कह रहे हैं—अष्टांग योग समाधि और लय रूप पराभक्ति दोनों को मुक्ति का साधन बता कर लय रूप पराभक्ति की विशेषता बता रहे हैं —अष्टांग योग (यम्, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि) करने से शनैः २ अष्ट साधनों की सिद्धि होने पर निर्विकल्प समाधि का आनन्द प्राप्त होता है और ज्ञान द्वारा वृत्ति को ब्रह्म में लय करने से ब्रह्मात्मा का अभेद ज्ञान होकर अति शीघ्र ही मुक्ति-महल का द्वार खुल जाता है, साधक जीवन्मुक्त हो जाता है। यहां लय के अंग में लय रूप पराभक्ति की विशेषता कहने का हमारा यही भाव है।

अथवा—जो सुख अष्टांगयोगजनित निर्विकल्प समाधि से प्राप्त होता है वही सुख सुरति (लय) द्वारा आसानी से प्राप्त हो जाता है। यह भगवद् दर्शन का खुला हुआ द्वार (मार्ग) है, भक्ति का रहस्य भी इसी में है।

सहज शून्य मन राखिये, इन दोनों के मांहि ।
लै समाधि रस पीजिये, तहां काल भय नांहि ॥ १० ॥

अष्टांग योग समाधि और लय रूप पराभक्ति, इन दोनों साधनों में स्थित होकर अपने मन को सहज शून्य रूप ब्रह्म में ही रखो और लय रूप पराभक्ति तथा निर्विकल्प समाधि द्वारा ब्रह्मानन्द-रस का पान करो । समाधि में सहज शून्य ब्रह्म में मन की स्थिति के समय मृत्यु का भी भय नहीं रहता, अन्य भय की तो बात ही क्या ? समाधि के समय मृत्यु का कुछ भी जोर नहीं चलता किन्तु समाधि खुलने पर मृत्यु का भय होता है और प्राणपिंड का वियोग ही हो जाता है तथापि लयरूप पराभक्ति में मृत्यु का सर्वथा ही भय नहीं रहता, कारण, पराभक्ति का साधक ज्ञान द्वारा अपने को मृत्यु के ग्रास शरीर से भिन्न ब्रह्मरूप मानता है । अत: काल से सर्वथा निर्भय रहता है । यही लय रूप पराभक्ति की विशेषता है ।

सूक्ष्म मार्ग

किहिँ मारग ह्वै आइया, किहिँ मारग ह्वै जाइ ।
दादू कोई ना लहै, केते करैं उपाइ ॥ ११ ॥

११-१३ में सूक्ष्म मार्ग विषयक विचार कर रहे हैं—प्रश्न-संत लय योग में किस साधन द्वारा आता है और लय योग से ब्रह्म में किस साधन द्वारा पहुँचता है ? हम कितने ही साधारण साधक इसके जानने का उपाय करते हैं किन्तु हमारे में से कोई भी नहीं जान पाया है ।

शून्य हि मारग आइया, शून्य हि मारग जाइ ।
चेतन पैंडा सुरति का, दादू रहु ल्यौ लाइ ॥ १२ ॥

११ में स्थित प्रश्न का उत्तर दे रहे हैं—अखिल अनात्मकार वृत्तियों से मन को शून्य करना रूप साधन से साधक ब्रह्माकार वृत्ति रूप लय योग में आता है और सर्व प्रपंच शून्य चेतन स्थिति रूप साधन से सहजावस्था में जाकर ब्रह्म से अभेद हो जाता है । चेतन ब्रह्म में अभेद होने के लिये, अखण्ड ब्रह्माकार वृत्ति का साधन-मार्ग ही श्रेष्ठ है । अत: वृत्ति को निरन्तर ब्रह्म में ही लगाकर स्थिर रहो ।

दादू पारब्रह्म पैंडा दिया, सहज सुरति लै सार ।
मन का मारग मांहि घर, संगी सिरजनहार ॥ १३ ॥

यह ब्रह्माकार वृत्ति रूप मार्ग गुरुजनों द्वारा परब्रह्म ने ही बताया है और सृष्टिकर्ता ईश्वर का वास्तविक स्वरूप ब्रह्म व्यापक होने से सदा हमारे संग ही रहता है । हमारे शरीर के भीतर अन्त:करण ही उसकी विशेष रूप से अनुभूति का स्थान है । इसलिये यह मार्ग बाहर के पैरों से चलने योग्य न होकर केवल मन से चलने का ही है । अत: वृत्ति को निरन्तर सहज स्वरूप ब्रह्म में ही लगाये रखो । यह ब्रह्माकार वृत्ति-साधन ही सर्व साधनों का सार साधन है ।

राम कहै जिस ज्ञान सौं, अमृत रस पीवे ।
दादू दूजा छाड़ि सब, लै लागी जीवे ॥ १४ ॥

१४-१६ में ब्रह्माकार वृत्ति की विशेषता दिखा रहे हैं—जिस ज्ञान के द्वारा साधक निरंजन राम के स्वरूप को समझ कर निरन्तर राम-राम कहते हुये भी ज्ञानामृत-रस का पान करते रहे, वही उत्तम ज्ञान है। अत: अन्य सब वाक्य-विस्तार को त्याग कर साधक निरन्तर अपनी वृत्ति निरंजन राम में लगाकर जीवन धारण करे जीवन पर्यन्त भजन करे।

राम रसायन पीवतां, जीव ब्रह्म ह्वै जाइ ।
दादू आतम राम सौं, सदा रहे ल्यौ लाइ ॥ १५ ॥

यदि जीवात्मा निरंजन राम में निरन्तर अपनी वृत्ति लगाकर राम-भजन-रसायन पान करता है तो पीते २ ब्रह्म ज्ञान प्राप्ति द्वारा जीव ब्रह्म रूप ही हो जाता है।

सुरति समाइ सन्मुख रहे, जुग जुग जन पूरा।
दादू प्यासा प्रेम का, रस पीवे सूरा ॥ १६ ॥

मन इन्द्रियों के जीतने में शौर्य दिखाने वाला, प्रभु-प्रेम का प्यासा, अपनी वृत्ति निरन्तर निरंजन राम में लगाकर, राम की आज्ञा में रहता हुआ राम भजन-रस का पान करता है, वह प्रत्येक युग में ही पूरा भक्त माना जाता है।

अध्यात्म

दादू जहां जगद्गुरु रहत है, तहां जे सुरति समाइ।
तौ इन ही नैनहुँ उलट कर, कौतुक देखे आइ ॥ १७ ॥

१७-२१ में लययोग द्वारा साक्षात्कार की पद्धति बताते हुये इसे करने की प्रेरणा कर रहे हैं—जहां हृदय में अष्टदल कमल पर संपूर्ण जगत् में महान् जगद्गुरु परमात्मा का विशेष रूप से निवास है, वहां ही यदि निरन्तर वृत्ति लग जाय तो इन बाह्य विचार-नेत्रों को आन्तर ब्रह्म विचार में बदल के निर्द्वन्द्व स्थिति में आकर साधक आश्चर्य रूप ब्रह्म का साक्षात्कार करता है।

अख्यूं[१] पसण[२] के पिरी,[३] भिरे[४] उलथ्थौ[५] मंझ[६] ।
जित्ते[७] बैठो मां[८] पिरी, निहारी[९] दो हंझ[१०] ॥ १८ ॥

हे साधक सन्तो[१०] ! तुम अपने दोनों नेत्रों[१] को प्रियतम[३] प्रभु के दर्शनार्थ[२] बाह्य विषयों से फेर[४] कर तथा हृदय की ओर उलट[५] कर जहां[७] हृदय[६] में हमारे[८] प्रियतम परमेश्वर विशेष रूप से स्थित हैं, वहां ही उनका साक्षात्कार[९] करो।

दादू उलट अनूठा आप में, अंतर शोध[१] सुजाण ।
सो ढिग तेरे बावरे, तज बाहर की बाण[२] ॥ १९ ॥

हे तत्त्वज्ञानहीन बावरे ! बाह्य विषयों में निमग्न रहने का स्वभाव[३] छोड़, सत्संग द्वारा सुजान होकर अपने मन और इन्द्रियों को बाह्य-विषय-प्रवृत्ति से पीछे की ओर लौटाकर हृदयस्थ परमात्मा को अपने भीतर ही खोज[४]। वह व्यापक होने से तेरे अत्यन्त समीप ही है=तेरा आत्मस्वरूप ही है।

सुरति अपूठी फेरि कर, आतम मांहीं आण।
लाग रहै गुरुदेव सौं, दादू सोइ सयाण ॥ २० ॥

गुरुदेव के उपदेश विचार द्वारा अपनी वृत्ति को बाह्य विषयों से पीछे की ओर लौटाकर तथा आत्मा में लाकर जो निरंतर ब्रह्मात्मा के अभेद चिन्तन में लगा रहता है, वही बुद्धिमान् साधक है।

जहाँ आत्म तहँ राम है, सकल रह्या भरपूर।
अन्तरगत ल्यौ लाइ रहु, दादू सेवक शूर ॥ २१ ॥

जहां शरीर के भीतर अन्त:करण में आत्मा है, वहां ही व्यापक होने से निरंजन राम भी है। अत: हे भगवत्-सेवकों में वीर या कामादि को जय करने वाले वीर साधक ! तुम भीतर स्थित ब्रह्म में ही निरंतर वृत्ति लगा करके संसार में रहो।

सूक्ष्म सौंज अर्चा बंदगी

दादू अंतर गत ल्यौ लाइ रहु, सदा सुरति सौं गाइ।
यहु मन नाचे मगन ह्वै, भावै ताल बजाइ ॥ २२ ॥

२२-२३ में अर्चना भक्ति की सूक्ष्म सामग्री बता रहे हैं—साधक ! भीतर हृदय में स्थित परब्रह्म में ही वृत्ति लगा कर, सदा वृत्ति द्वारा उसी के गुण-गाता रह और यह तेरा मन भाव-रूप ताल बजाता हुआ प्रभु-सेवा में निमग्न होकर प्रभु के आगे नाचता रहना चाहिए, यही आन्तर भक्ति की सामग्री है।

दादू पावे सुरति सौं, वाणी बाजे ताल।
यहु मन नाचे प्रेम सौं, आगे दीनदयाल ॥ २३ ॥

यदि कोई भक्त उक्त प्रकार से आन्तर अनाहत वाणी रूप ताल बजाता हुआ सुरति से प्रभु के गुण और आरती गाता है तथा उसका यह अन्तर्मुख मन प्रेमपूर्वक चिन्तन रूप नृत्य करता है, तो उसके आगे दीनदयालु भगवान् प्रकट होकर उसे दर्शन देते हैं।

विरक्तता

दादू सब बातन की एक है, दुनिया तैं दिल दूर।
सांई सेती संग कर, सहज सुरति लै पूर ॥ २४ ॥

२४ में जीवन की अल्पता पर दृष्टि रखते हुये वैराग्य पूर्वक वृत्ति ब्रह्म में लगाने की प्रेरणा कर रहे हैं—संपूर्ण कथा-वार्ताओं की सार रूप यह एक ही बात है- ''संसार से मन को हटा कर

नाम-चिन्तन द्वारा भगवान् को साथ करके लययोग द्वारा भगवत् के सहज स्वरूप में वृत्ति लगा कर उससे अभेद हो जाय।

अकबर बादशाह ने प्रश्न किया था- सार साधन क्या है ? उसी का उत्तर इसी साखी से दिया था।

अध्यात्म

दादू एक सुरति सौं सब रहैं, पंचौं उनमनि लाग।
यहु अनुभव उपदेश यहु, यहु परम योग वैराग॥ २५॥

२५-२६ में ब्रह्माकार वृत्ति रूप अध्यात्म की विशेषता बता रहे हैं—जब अद्वैत ब्रह्म में वृत्ति लग जाती है, तब पांचों इन्द्रिय और मन आदि सभी बाह्य विषयों में जाने से रुक जाते हैं और समाधि अवस्था में प्राप्त होने योग्य परमात्मा के स्वरूप में ही लग जाते हैं। यह उक्त साधन ही अनुभव का हेतु है, यही उत्तम उपदेश का फल है। यही परम योग है, यही श्रेष्ठ वैराग्य है।

दादू सहजैं सुरति समाइ ले, पारब्रह्म के अंग।
अरस परस मिल एक ह्वै, सन्मुख रहबा संग॥ २६॥

सांसारिक भावनाओं से अपनी वृत्ति को उठाकर लय योग द्वारा अनायास ही परब्रह्म के स्वरूप में लय करे और जल दूध के समान आपस में दोनों एक हो जायँ। इसका नाम सदा सन्मुख रहकर संग रहता है।

सुरति सदा सन्मुख रहै, जहां तहां लै लीन।
सहज रूप सुमिरण करे, निष्कामी दादू दीन॥ २७॥

२७-२८ में लय योग और उसके साधक का परिचय दे रहे हैं—निष्कामी नम्र भक्त-जनों की वृत्ति सदा परब्रह्म के सन्मुख रहती है, सांसारिक भोग-वासनादि में नहीं जाती और वे घर, वनादि जिस किसी भी स्थान वा अवस्था में सहज स्वरूप ब्रह्म का स्मरण करते हुये वृत्ति को ब्रह्म में ही लीन रखते हैं। उनकी उक्त अवस्था का नाम ही लय-योग है।

लय

सुरति सदा साबित रहै, तिनके मोटे भाग।
दादू पीवैं राम रस, रहैं निरंजन लाग॥ २८॥

जिनकी वृत्ति अखंड ब्रह्माकार रहती है और जो निरंजन राम के स्वरूप में अभेद भाव से लगकर ब्रह्मानन्द-रस का पान करते हैं, वे ज्ञानी संत ही बड़भागी हैं।

सूक्ष्म सौन्ज

दादू सेवा सुरति सौं, प्रेम प्रीति सौं लाइ।
जहँ अविनाशी देव है, तहँ सुरति बिना को जाइ॥ २९॥

२९ में ब्रह्म को प्राप्त करने की सूक्ष्म सामग्री बता रहे हैं—साधक ! अविनाशी ब्रह्म की सेवा प्रेमपूर्वक वृत्ति से ही होती है। अत: प्रीति से वृत्ति उनमें लगा। जिस निर्विकल्प समाधि अवस्था में अविनाशी देव ब्रह्म की प्राप्ति होती है उसमें ब्रह्माकार वृत्ति बिना कोई भी बहिर्मुख प्राणी नहीं जा सकता। अत: ब्रह्माकार वृत्ति रूप लय योग ही ब्रह्म प्राप्ति का मुख्य साधन है।

विनती

दादू ज्यों वै बरत[१] गगन तैं टूटे, कहां धरणि कहँ ठाम ।
लागी सुरति अंग तै छूटे, सो कत जीवे राम ॥ ३० ॥

३० में अखंड ब्रह्माकार वृत्ति रहने के लिए विनय कर रहे हैं—जैसे बहुत ऊंचे आकाश में रस्से[१] पर नृत्य करते हुए नट की वृत्ति रस्से से अलग हो जाय तो कहां उसको पृथ्वी और कहां अपना रस्सा रूप स्थान, रस्सा हाथ नहीं आ सकता और पृथ्वी पर पड़ने से जीवित नहीं रह सकता; वैसे ही हे राम ! साधक की वृत्ति आप में लगी हुई आपके स्वरूप से अलग होकर संसार में चली जाय तो उसको नित्य जीवन रूप आपका अद्वैत स्वरूप कहां और संसार में नित्य जीवन कहां ? वह तो बारंबार मृत्यु का दु:ख ही अनुभव करेगा। अत: हमारी वृत्ति आप से अलग न हो, ऐसी कृपा करिये।

अध्यात्म

सहज योग सुख में रहै, दादू निर्गुण जाण ।
गंगा उलटी फेरि कर, जमुना मांहीं आण ॥ ३१ ॥

३१ में लय रूप अध्यात्म साधन की प्रेरणा कर रहे हैं—लय रूप सहज योग का साधक निर्गुण ब्रह्म को अपना आत्म स्वरूप जानकर ब्रह्मानन्द में निमग्न रहता है। अत: हे साधक ! संसार में गमन करने वाली चंचल वृत्ति रूप गंगा को संसार से लौटा कर आन्तर स्थित ब्रह्माकार वृत्ति रूप यमुना में मिला=अनात्माकार वृत्ति को हटाकर ब्रह्माकार वृत्ति की स्थिरता रूप लय योग कर !

लय

परमातम सौं आतमा, ज्यों जल उदक समान ।
तन मन पाणी लौंण ज्यों, पावे पद निर्वाण ॥ ३२ ॥

३२-३६ में लय योग का परिचय दे रहे हैं—जैसे जल और उदक शब्द दो हैं किन्तु अर्थ दोनों का एक ही है, वैसे ही जीवात्मा और परमात्मा शब्द भेद होने पर भी वस्तुत: दोनों एक ही हैं। जो साधक तन को देहाध्यास से हटाकर और मन को संकल्प शून्य करके जल में नमक के समान ब्रह्म में मिला देता है, वही काल कर्म के बाणाघात से रहित ब्रह्म पद को प्राप्त करता है।

मन ही सौं मन सेविये, ज्यों जल जल हि समाइ ।
आतम चेतन प्रेम रस, दादू रहु ल्यौ लाइ ॥ ३३ ॥

जैसे मित्र निज मन को अपने मित्र के मन के साथ मिलाता है-उसकी इच्छा के अनुसार ही

सब व्यवहार करता है, वैसे ही साधक अपने मन से प्रभु के मन की सेवा करे=प्रभु-आज्ञानुसार ही अपना साधनादि व्यवहार करे और जैसे जल में जल मिल जाता है वैसे ही आत्मा को ब्रह्म चेतन से अभेद करके प्रेम-पूर्वक ब्रह्मानन्द-रस में ही वृत्ति लगा कर स्थिर रहे।

यों मन तजे शरीर को, ज्यों जागत सो जाइ।
दादू बिसरे देखतां, सहज सदा ल्यौ लाइ ॥ ३४ ॥

जैसे जाग्रत मानव निद्रा-वश होता है तब उसे अपने जाग्रत शरीर का कुछ भी ज्ञान नहीं रहता, वैसे ही जब मन सहज स्वरूप ब्रह्म में वृत्ति लगाकर स्थिर रहता है, तब देखते-देखते ही=शरीर के रहते ही, मन शरीर की सम्पूर्ण परिस्थितियों को भूल कर शरीराध्यास तज देता है।

जिहिं आसन पहली प्राण था, तिहिं आसन ल्यौ लाइ ।
जे कुछ था सोई भया, कछू न व्यापै आइ ॥ ३५ ॥

हे प्राणधारी जीव ! प्रथम जिस ब्रह्म रूप स्थान में था उसी निर्द्वन्द्व ब्रह्म-स्थान में वृत्ति लगा। जिसने उसमें वृत्ति लगाई है वह जो पूर्व में था, उसी ब्रह्म रूप को प्राप्त हुआ है। ब्रह्म रूप हो जाने पर उस पर मायिक प्रपंच का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता।

तन मन अपना हाथ कर, ताही सौं ल्यौ लाइ।
दादू निर्गुण राम सौं, ज्यों जल जलहि समाइ ॥ ३६ ॥

साधक ! संयम के द्वारा निज शरीर और मन को अपने अधीन करके उस अपने आत्म-स्वरूप ब्रह्म से ही वृत्ति लगा और जैसे जल में जल मिल जाता है वैसे ही निर्गुण राम से अपनी आत्मा को एक कर।

उपजनि

एक मना लागा रहे, अंत मिलेगा सोइ ।
दादू जाके मन बसे, ताको दर्शन होइ ॥ ३७ ॥

३७-३८ में ज्ञानोत्पति द्वारा ब्रह्मसाक्षात्कार की पद्धति बता रहे हैं—यदि मन अनन्य भाव से एक परमात्मा के ही चिन्तन में लगा रहेगा तो साधन पूर्ण होते ही ज्ञान होकर उस ब्रह्म का साक्षात्कार अवश्य होगा; क्योंकि यह नियम है—जिसके मन में जो बसता है, उसको उसका दर्शन अवश्य होता है।

दादू निबहै त्यों चले, धीरैं धीरज मांहिं ।
परसेगा पिव एक दिन, दादू थाके नांहिं ॥ ३८ ॥

जिस साधक से जो साधन जितना निभ सके, उतना-उतना ही धैर्य पूर्वक शनैः शनैः उसे करते हुये उसमें आगे बढ़ते चलना चाहिए। यदि साधक उक्त प्रकार से अपने साधन को साधन सिद्धि से पहले थककर त्यागेगा नहीं, तो ज्ञान प्राप्ति द्वारा एक दिन अवश्य ब्रह्म का साक्षात्कार कर सकेगा।

लय

जब मन मृतक ह्वै रहे, इन्द्री बल भागा ।
काया के सब गुण तजे, निरंजन लागा ॥ ३९ ॥

३९-४२ में लय योग विषयक विचार कह रहे हैं—जब मन सांसारिक भोग वासनाओं से रहित मृतकवत् स्थिर हो जाता है=प्रारब्ध वेग बिना स्वयं अहं भाव से किसी में भी प्रवृत्त नहीं होता और इन्द्रियों का राजस-तामस निषिद्ध बल नष्ट हो जाता है। इस प्रकार ही शरीर के हिंसादिक सम्पूर्ण गुणों को त्याग कर जो निरंजन राम के चिन्तन में लगा रहता है, तब जानना चाहिए कि यह लय-योग का साधक है।

आदि अंत मधि एक रस, टूटे नहिं धागा ।
दादू एकै रह गया, तब जाणी जागा ॥ ४० ॥

साधन आरंभ काल से लेकर मध्य में कहीं किसी हेतु को पाकर अपने साधन का तार टूटे नहीं, अन्त तक लगातार एक रस चलता रहे तथा साधन करते-करते अद्वैत ब्रह्म में स्थिर होकर सांसारिक भावनाओं में जाने से रुक जाय, तब जानना चाहिए- यह अज्ञान निद्रा से जागकर अपने वास्तविक स्वरूप में स्थिर हुआ है।

जब लग सेवक तन धरे, तब लग दूसर आइ ।
एकमेक ह्वै मिल रहे, तो रस पीवन तैं जाइ ॥ ४१ ॥

इसमें अद्वैत और द्वैत वादियों के विचार का प्रदर्शन है—अद्वैत-वादी कहता है- ''जब तक सेवक भाव से शरीर धारण किये रहता है तब तक तो द्वैत की भावना हृदय में आती ही है, द्वैत नहीं मिटता।'' द्वैत-वादी कहता है- 'भक्त यदि एक अद्वैत ब्रह्म में मिलकर एक हो जायेगा तो वह भक्ति-रस-पान से वंचित रह जायगा, जो शरीर रहते हुये आवश्यक है।'

ये दोनों ऐसी कहैं, कीजे कौन उपाइ ।
ना मैं एक न दूसरा, दादू रहु ल्यौ लाइ ॥ ४२ ॥

इति लै का अंग समाप्त: ॥ ७ ॥ सा. ९०१ ॥

४१ में स्थित विवाद निर्णयार्थ प्रश्न करते हैं—भगवन् ! द्वैताद्वैत-वादी उक्त प्रकार विवाद में रत हैं। इस विवाद से मुक्त होने के लिए हमें क्या उपाय करना चाहिये ? भगवान् उत्तर दे रहे हैं—न मैं अद्वैत हूँ और न द्वैत हूँ। मुझ निर्विशेष में एकत्व, अन्यत्व, संख्यादि विशेषण नहीं लग सकते। यदि मेरा वास्तविक स्वरूप जानना चाहो तो अपनी भावनानुसार मेरे में ही निरंतर वृत्ति लगाकर स्थिर रहो। इस प्रकार लय योग की प्रेरणा भगवान् भी करते हैं। अत: लय-योग कर्त्तव्य है।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका लै का अंग समाप्त ॥ ७ ॥

अथ निष्कामी पतिव्रता का अंग ८

लय योग के साधक की निष्कामता और अनन्यता का परिचय देने को, निष्कामी पतिव्रता का अंग कथन में प्रवृत्त मंगल कर रहे हैं—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत: ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक नाना कामना और प्रपंच परायणता रूप व्यभिचार से पार होकर परब्रह्म को प्राप्त होता है, उन निरंजन राम, सद्गुरु और सर्व सन्तों को हम अनेक बार प्रणाम करते हैं।

एक तुम्हारे आसरे, दादू इह विश्वास ।
राम भरोसा तोर है, नहिं करणी की आस ॥ २ ॥

२ में निष्काम पतिव्रत युक्त राम से विनय कर रहे हैं—राम ! आपकी दयालुता का ही मुझे भरोसा है। मेरे कर्त्तव्य कर्म की मुझे यह आशा नहीं है कि—मैं अपने कर्मों से ही आपको प्राप्त कर लूंगा; किन्तु आपके इस वचन पर—"मेरा भक्त मुझे ही प्राप्त होता है।" मुझे पूर्ण विश्वास है। अत: एक मात्र आपके स्वरूप चिन्तन का ही आधार लेकर निष्काम भाव से आप में ही अनन्य हो रहा हूँ।

रहणी राजस ऊपजे, करणी आपा होइ ।
सब तैं दादू निर्मला, सुमिरण लागा सोइ ॥ ३ ॥

३-४ में निष्काम भाव और अनन्यता की विशेषता बता रहे हैं—ब्रह्मचर्यादि व्रतों से मन में रजोगुण प्रधान अहंकार उत्पन्न होता है और यज्ञदानादि करने से हृदय में कर्त्तव्यता का अभिमान होता है। अत: जो साधक निष्काम भाव से भगवत् में अनन्य रहकर भगवत् स्मरण में ही लगा रहता है, वही सबसे निर्मल माना जाता है।

मन अपना लै लीन कर, करणी सब जंजाल ।
दादू सहजैं निर्मला, आपा मेट सँभाल ॥ ४ ॥

निष्काम भाव और अनन्यता बिना यज्ञ-दानादि कर्त्तव्य-कर्म-बन्धन रूप हैं। अत: ब्रह्म-चिन्तन में ही वृत्ति लगाकर मन को ब्रह्म में लीन करना चाहिए। जो कर्त्तव्य-कर्म का अभिमान हृदय से हटा कर निष्काम भाव और अनन्यता पूर्वक निरन्तर भगवान् का स्मरण करता है, वह अनायास ही अविद्या मल से रहित होकर ब्रह्म को प्राप्त होता है।

दादू सिद्धि हमारे सांइयां, करामात करतार ।
ऋद्धि हमारे राम है, आगम अलख अपार ॥ ५ ॥

५ में पतिव्रत दिखा रहे हैं—हे साधको ! हमारी सिद्धि (अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशत्व, वशित्व) भगवान् ही है। सृष्टिकर्त्ता भगवान् ही हमारा चमत्कार है।

हमारा ऐश्वर्य भी राम ही है । भविष्य व शास्त्र भी हमारे मन इन्द्रियों का अविषय अपार भगवान् ही है।

गोविन्द गोसांई, तुम्हीं आमचे[१] गुरु, तुम्हीं आमचा ज्ञान ।
तुम्हीं आमचे देव, तुम्हीं आमचा ध्यान ॥ ६ ॥

६-१२ में अपने पतिव्रत की निष्ठा विनय रूप से भगवान् को कह रहे हैं—वेद वाणी से प्राप्त होने योग्य, विश्व के स्वामी गोविन्द ! हमारे तो आप[१] ही गुरु हैं, आप ही ज्ञान, देव और ध्यान हैं।

तुम्हीं आमची पूजा, तुम्हीं आमची पाती ।
तुम्हीं आमचा तीर्थ, तुम्हीं आमची जाती ॥ ७ ॥

आप ही हमारी अर्चना भक्ति और अर्चना में उपयोगी तुलसी पत्र, तीर्थ जल तथा आपके धामों की यात्रा भी हमारे आप ही हैं।

तुम्हीं आमचा नाद, तुम्हीं आमचा भेद ।
तुम्हीं आमचा पुराण, तुम्हीं आमचा वेद ॥ ८ ॥

आप ही हमारे बजाने का नाद व अनाहत नाद हैं। आप ही हमारे जानने योग्य रहस्य हैं। आप ही हमारे प्राचीन कथा रूप पुराण हैं। और आप ही आप का ज्ञान रूप वेद हैं।

तुम्हीं आमची युक्ति, तुम्हीं आमचा योग ।
तुम्हीं आमचा वैराग, तुम्हीं आमचा भोग ॥ ९ ॥

आप ही हमारे मोक्ष साधन में सहायक युक्तियाँ हैं। आप ही हमारे वृत्ति निरोध रूप योग हैं। आप ही हमारे अनासक्ति रूप वैराग्य हैं। आप ही हमारे इष्ट वस्तु रूप भोग हैं।

तुम्हीं आमची जीवनि, तुम्हीं आमचा जप ।
तुम्हीं आमचा साधन, तुम्हीं आमचा तप ॥ १० ॥

आप ही हमारी साधन वृत्तान्त रूप जीवनी वा जीवन शक्ति हैं। आप ही हमारे मूल मंत्र का चिन्तन रूप जप हैं। आप ही हमारे स्वरूप ज्ञान के हेतु अंतरंग साधन हैं और आप ही तितिक्षादि बहिरंग साधन रूप तप हैं।

तुम्हीं आमचा शील, तुम्हीं आमचा संतोष ।
तुम्हीं आमची मुक्ति, तुम्हीं आमचा मोष[१] ॥ ११ ॥

आप ही हमारा ब्रह्मचर्य रूप शील व्रत हैं। आप ही हमारा यथा लाभ संतोष हैं। आप ही हमारी सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य, चतुर्विधि मुक्तियां हैं और आप ही हमारी ब्रह्म प्राप्ति रूप कैवल्य मोक्ष[१] हैं।

तुम्हीं आमचा शिव, तुम्हीं आमची शक्ति ।
तुम्हीं आमचा आगम, तुम्हीं आमची उक्ति ॥ १२ ॥

आप ही हमारे कैलाशवासी शिव हैं। आप ही हमारी दानव-दल-निकंदनी शक्ति हैं। आप ही हमारे शिव तथा शक्ति द्वारा कहे हुये आगम रूप शास्त्र हैं। आप ही हमारे विचित्र अनुभव-संपन्न कथन हैं।

तूं सत्य, तूं अविगत, तूं अपरंपार, तूं निराकार, तुम्हचा[१] नाम ।
दादू चा विश्राम, देहु देहु अवलम्बन राम ॥ १३ ॥

१३ में पतिव्रत की अखंडता के लिए प्रार्थना कर रहे हैं—प्रभो ! आप सत्य, मन इन्द्रियों के अविषय, अपरंपार, निराकार हैं। आपका[१] नाम ही हमारे लिए विश्रामप्रद है। अत: हे राम ! हमें आपके नाम का ही निरंतर आश्रय दीजिये।

दादू राम कहूं ते जोड़बा, राम कहूं ते साखि।
राम कहूं ते गाइबा, राम कहूं ते राखि ॥ १४ ॥

१४-१६ में अपनी पतिव्रत निष्ठा दिखा रहे हैं—राम नाम का उच्चारण ही हमारा भजन बनाना है। राम नाम बोलना ही साखियों का उच्चारण करना है। उच्च स्वर से राम नाम बोलना ही हमारा गायन है। राम नाम उच्चारण करना ही हमारी रक्षा है।

दादू कुल हमारे केशवा, सगा[१] तो सिरजनहार ।
जाति हमारी जगद्गुरु, परमेश्वर परिवार ॥ १५ ॥

हमारा वंश भगवान् केशव हैं। सम्बन्धी[१] भी सृष्टिकर्त्ता ईश्वर ही हैं। संपूर्ण जगत् में महान् प्रभु ही हमारी जाति हैं और परमेश्वर ही हमारा परिवार है।

दादू एक सगा संसार में, जिन हम सिरजे सोइ ।
मनसा, वाचा, कर्मना, और न दूजा कोइ ॥ १६ ॥

हम मन, वचन और कर्म से एक होकर कहते हैं—जिसने हमें रचा है वह एकमात्र परमात्मा ही हमारा निजी संबंधी है और दूसरा कोई भी नहीं है, सर्व स्वार्थी हैं।

(कुलादि के विषय में अकबर बादशाह ने पूछा, उसी का उत्तर १५-१६ से दिया था।)

स्मरण नाम निस्संशय

सांई सन्मुख जीवतां, मरतां सन्मुख होइ ।
दादू जीवन मरण का, सोच करै जनि कोइ ॥ १७ ॥

१७ में संशय रहित नाम स्मरण निष्ठा दिखा रहे हैं—अपने जीवन काल में भगवत् की आज्ञानुसार रहकर भगवद् भजन करना चाहिए और मृत्यु के समय भी सावधानता से अपनी वृत्ति भगवद्, ध्यान द्वारा भगवत् के सम्मुख ही होवे, ऐसा यत्न करना चाहिए। उक्त प्रकार व्यवहार करने पर, 'मैं अधिक जीवित रहूंगा तो अर्थाभाव के कारण दुखी रहूंगा और शीघ्र मर गया तो पीछे वालों का पालन कैसे होगा ?' ऐसी चिन्ता किसी को भी न करनी चाहिए। निस्संशय होकर भजन करना चाहिए। दृढ़ता रखने से सब ठीक ही होता है।

पतिव्रत

साहिब मिला तो सब मिले, भेंटैं भेंटा होइ ।
साहिब रहा तो सब रहे, नहीं तो नांहीं कोइ ॥ १८ ॥

१८-२७ में पतिव्रत दिखा रहे हैं—यदि प्रभु प्राप्त हो जाते हैं तो सभी ऐश्‍वर्य प्राप्त हो जाते हैं। जीवात्मा की परमात्मा से भेंट होती है तब सभी से भेंट हो जाती है; उसे सब अपने आत्म स्वरूप ही भासते हैं। भगवान् से भक्त का भेद रहा तो संपूर्ण प्राणियों से भी भेद रहता ही है। इस प्रकार अभेद रूप पतिव्रत नहीं होता; तब अद्वैत भाव भी प्राप्त नहीं होता।

सब सुख मेरे सांइयां, मंगल अति आनन्द ।
दादू सज्जन सब मिले, जब भेंटे परमानन्द ॥ १९ ॥

भगवान् ही मेरे संपूर्ण सांसारिक सुख हैं। मंगलमय भगवान् ही मेरे उत्तम लोकों का अति आनन्द हैं। जब परमानन्द रूप ब्रह्म से मिलन होता है तब सभी दैवी गुण रूप सज्जनों का मिलन भी आप ही हो जाता है।

दादू रीझे राम पर, अनत न रीझे मन्न ।
मीठा भावे एकरस, दादू सोई जन्न ॥ २० ॥

हमें तो एक निरंजन देव का साक्षात्कार करके ही प्रसन्नता होती है। हमारा मन अन्य किसी भी वस्तु को देखकर प्रसन्न नहीं होता। जिसको एकरस निरंतर मधुर परब्रह्म ही प्रिय लगता है, वही भक्त माना जाता है। (यह साखी, वाजींदजी ने एक गैंदे का विशाल पुष्प दिखाकर उसकी प्रशंसा की थी, तब उन्हें कही थी-प्रसंग कथा-दृ. सु. सि. त. ६/११ में देखो।)

दादू मेरे हृदय हरि बसे, दूजा नांहीं और ।
कहो कहां धौं राखिये, नहीं आन को ठौर ॥ २१ ॥

हमारे हृदय में तो एक मात्र हरि का ही निवास है। अन्य दूसरा माया और मायिक कार्य कोई भी नहीं बस सकता। राम का पतिव्रत पालन करने वाले हृदय में जब अन्य के लिए स्थान ही नहीं; तब हे सज्जनो ! निश्‍चय करके तुम ही कहो कि द्वैत को कहां रक्खें ?

दादू नारायण नैनां बसे, मनहीं मोहन राइ ।
हिरदा मांहीं हरि बसे, आतम एक समाइ ॥ २२ ॥

नर शरीर ही जिनकी प्राप्ति का साधन है, ऐसे नारायण भगवान् हमारे नेत्रों में बसते हैं। मोहन करने वाले मायादि के भी मोहक और शासक मोहनराय भगवान् हमारे मन में हैं। हृदय में हरि बसते हैं और आत्मा में भी एक ब्रह्म ही समाये हुये हैं तथा अन्य इन्द्रियादि सभी प्रभु-परायण होकर भगवत् पतिव्रत में ही रत हैं।

दादू तन मन मेरा पीव सौं, एक सेज सुख सोइ।
गहिला लोग न जाणही, पच-पच आपा खोइ ॥ २३ ॥

तन संत-सेवा द्वारा और मन चिन्तन द्वारा परमात्मा से ही लगाकर हम हृदयस्थ अद्वैत भावना रूप शय्या पर ब्रह्म के साक्षात्कार जन्य सुख में निमग्न रहते हुये समाधिस्थ हैं, किन्तु अज्ञानी लोग इस रहस्यमय तत्त्व को न जानने के कारण, सांसारिक विषयों के लिए परिश्रम कर-करके आत्म-स्वरूप के आनन्द को खो रहे हैं।

दादू एक हमारे उर बसे, दूजा मेल्या दूर ।
दूजा देखत जाइगा, एक रह्या भरपूर ॥ २४ ॥

हमारे हृदय में एकमात्र निरंजन राम का ही पतिव्रत बसता है; माया और माया के कार्य रूप द्वैत को तो हमने ज्ञान द्वारा हृदय से दूर कर दिया है। कारण, माया और मायिक प्रपंच रूप द्वैत तो देखते-देखते ही नष्ट हो जाएगा। एक परब्रह्म ही सृष्टि के आदि काल से अब तक दूध में घृत के समान विश्व में भरा हुआ है और आगे भी भरा ही रहेगा। अत: वह अविनाशी ही उपास्य है।

निश्चल का निश्चल रहे, चंचल का चल जाइ।
दादू चंचल छाड़ि सब, निश्चल सौं ल्यौ लाइ॥ २५ ॥

२५-२६ में पतिव्रत रखने की प्रेरणा कर रहे हैं—निश्चल ब्रह्म का भक्त जन्मादि से रहित निश्चल ब्रह्म को प्राप्त हो, निश्चल होकर ही रहता है। चंचल मायादि का भक्त जन्मादि रूप संसार के मार्ग में चलता ही रहता है। अत: साधक को चाहिए—चंचल मायादि की उपासना को त्याग कर निश्चल ब्रह्म से ही वृत्ति लगावे।

साहिब रहतां सब रह्या, साहिब जातां जाइ।
दादू साहिब राखिये, दूजा सहज स्वभाइ ॥ २६ ॥

परब्रह्म का पतिव्रत रूप अनन्य भक्ति रहने से अन्य योग, यज्ञ, व्रतादि तो उससे अनायास ही होते रहते हैं। परब्रह्म का पतिव्रत रूप अनन्य-भक्ति नहीं हो, तो योगादिक भी निष्काम-भाव से नहीं होते और सकाम-भाव से किये हुये योगादि संसार के ही हेतु हैं। अत: अनन्य-भाव से परब्रह्म का ही चिन्तन हृदय में रखना चाहिए। दूसरे साधन तो फिर सहज स्वभाव ही होते रहते हैं।

मन चित मनसा पलक में, सांई दूर न होइ।
निष्कामी निरखे सदा, दादू जीवन सोइ ॥ २७ ॥

ब्रह्म का ही मन से मनन, चित्त से चिन्तन और बुद्धि से विचार होता रहना चाहिए। जीवन में एक पलक में भी परब्रह्म का चिन्तन चित्त से दूर नहीं होना चाहिए। इस प्रकार निष्काम भाव से पतिव्रत रखने वाला भक्त भगवान् को सदा ही सर्व देश, काल और वस्तुओं में देखता रहता है। उसका जीवन वह परब्रह्म ही है वा उसका वह जीवन ही उत्तम जीवन है।

कथनी बिना करणी

जहाँ नाम तहँ नीति चाहिए, सदा राम का राज ।
निर्विकार तन मन भया, दादू सीझे काज॥ २८ ॥

२८ में कह रहे हैं—कथन के बिना ही कर्त्तव्य करना चाहिए—जिस शरीर में, ''मैं भक्त हूँ'' ऐसा नाम वर्तता है अर्थात् जिसको सब 'भक्त जी' कहते हैं और वह स्वयं भी भक्त नाम से सहर्ष बोलता है, उसमें भक्तों की रीति-नीति भी होनी चाहिए तथा उसके हृदय में सदा राम का ही राज्य रहना चाहिए अर्थात् रामाज्ञा उसे अवश्य पालनी चाहिये और अपने कर्त्तव्य का कथन अन्यों के आगे नहीं करना चाहिए। ऐसा जिन भक्तों ने किया है, उनके तन-मनादि सब विकारों से रहित हो गये हैं। इस निर्विकारावस्था के प्राप्त होते ही साधक का मुक्ति रूप कार्य सिद्ध हो जाता है।

सुन्दरी विलाप

जिसकी खूबी खूब सब, सोई खूब सँभार ।
दादू सुन्दरि खूब सौं, नख शिख साज सँवार ॥ २९ ॥

२९-३१ में जीवात्मा सुन्दरी को परब्रह्म प्राप्ति के लिए विलापादि करने की प्रेरणा कर रहे हैं—जिस परब्रह्म की सुन्दरता से सब विश्‍व सुन्दर हो रहा है, उसी सत्य-शिव-सुन्दर ब्रह्म का ध्यान करो। इस प्रकार उस सुन्दर ब्रह्म के ध्यान और विलापादि द्वारा पैर के नख से लेकर शिर की शिखा पर्यन्त सारे शरीर को सर्वथा सुन्दर बना कर जीवात्मा रूप पतिव्रता सुन्दरी उस ब्रह्म से अभेद हो जाती है।

दादू पंच आभूषण पीव कर, सोलह सब ही ठांव ।
सुन्दरि यहु श्रृंगार कर, ले ले पीव का नांव ॥ ३० ॥

पांच आभूषण और सोलह श्रृंगारों के सभी स्थानों में परब्रह्म रूप पति को ही स्थापन करे। जीवात्मा-सुन्दरी यह उक्त श्रृंगार करके विलापपूर्वक परब्रह्म पति का नाम लेते हुये उसी में अपनी वृत्ति लगावे।

यहु व्रत सुन्दरि ले रहै, तो सदा सुहागिनि होइ ।
दादू भावै पीव को, ता सम और न कोइ ॥ ३१ ॥

यह उक्त प्रकार पतिव्रत यदि साधक-सुन्दरी धारण किये रहे तो सदा के लिए सुहागिनी हो जाती है। कारण वह परब्रह्म-पति को प्रिय लगती है, इससे ब्रह्म के साथ अभेद होकर रहती है। उसके समान भाग्यशालिनी अन्य कोई भी नहीं कही जा सकती।

मन हरि भावन

साहिब जी का भावता, कोइ करे कलि मांहि ।
मनसा वाचा कर्मना, दादू घट घट नांहि ॥ ३२ ॥

३२ में कहते हैं—हरि को प्रिय लगे ऐसा कार्य मन से कोई विरला व्यक्ति ही करता है—इस कलियुग में भगवान् को प्रिय लगने वाला निष्काम भाव से पतिव्रत रूप कार्य मन, वचन और कर्म से कोई विरला भक्त ही कर पाता है। यह प्रत्येक शरीर से नहीं होता। कारण, श्रेष्ठ भक्त को छोड़कर अन्य सभी शरीरधारी इन्द्रियों को प्रिय लगने वाले कार्यों में ही संलग्न रहते हैं।

पतिव्रता निष्काम

आज्ञा मांहीं बैसे ऊठे, आज्ञा आवे जाइ ।
आज्ञा मांहीं लेवे देवे, आज्ञा पहरे खाइ ॥ ३३ ॥

३३-३५ में पतिव्रता की निष्कामता दिखा रहे हैं—जीवात्मा-पतिव्रता अपने स्वामी परब्रह्म की आज्ञानुसार ही बैठती-उठती है, आती-जाती है, लेती-देती है, पहनती-खाती है।

आज्ञा मांहीं बाहर भीतर, आज्ञा रहै समाइ ।
आज्ञा मांहीं तन मन राखे, दादू रहे ल्यौ लाइ ॥ ३४ ॥

भक्त शरीर से होने वाले कार्य भगवदाज्ञानुसार ही करता है। शरीर के भीतर मन से संकल्प-विकल्प, चित्त से चिन्तन, बुद्धि से विचार आदि सभी भगवदाज्ञानुसार ही करता है। इस प्रकार अपने तन मन को भगवदाज्ञा में रखकर निष्काम पतिव्रत से युक्त भक्त भगवदाज्ञा में समाया हुआ रहता है तथा वृत्ति भगवत् स्वरूप में ही लगाकर रहता है।

पतिव्रता गृह आपने, करे खसम की सेव ।
ज्यों राखे त्यों ही रहे, आज्ञाकारी टेव ॥ ३५ ॥

जैसे पतिव्रता अपने घर में रहकर सदा स्वामी की सेवा करती है, वैसे ही निष्काम साधक भगवान् से पतिव्रत रखकर अपने अधिकारानुसार सेवा करता रहता है। उसे भगवान् जैसे रखता है, वैसे ही रहता है। उसका तो आज्ञा पालन करने का स्वभाव ही बन जाता है।

सुन्दरी विलाप

दादू नीच ऊँच कुल सुन्दरी, सेवा सारी होइ ।
सोइ सुहागिनि कीजिये, रूप न पीजे धोइ ॥ ३६ ॥

३६-३७ में निष्काम पतिव्रत युक्त साधक-सुन्दरी का नित्य सुहाग-प्राप्ति हित विलाप दिखा रहे हैं—हे भगवान् ! साधक-सुन्दरी चाहे नीच कुल की हो वा उच्च कुल की, उसकी तो भक्ति पूर्ण-प्रेमयुक्त होनी चाहिए। जिसकी भक्ति निष्काम पतिव्रत-युक्त हो, वही आप की नित्य समीपता रूप सुहाग प्राप्त करने योग्य है, उसे सुहागिनी कीजिये। शेष जैसे प्राकृत-सुन्दरी का रूप धोकर नहीं पान किया जाता, वैसे ही बहिरंग साधन-सौन्दर्य तो प्रदर्शन मात्र ही है, उससे क्या बनता है ?

दादू जब तन मन सौंप्या राम को, ता सन का व्यभिचार ।
सहज शील संतोष सत, प्रेम भक्ति लै सार ॥ ३७ ॥

राम ! जब आप को तन-मन समर्पण कर दिया, तब उस निष्काम पतिव्रतयुक्त साधक-सुन्दरी से व्यभिचार कैसा ? अर्थात् उसे अपने से दूर क्यों रखते हो ? उसने तो स्वभाव से ही शील-व्रत, संतोष, सत्य, नवधा भक्ति, प्रेम और लय योग को ही सार समझ कर अपनाया है। अत: उसे

दूर रखना योग्य नहीं।

पर पुरुषा सब परहरै, सुन्दरि देखे जाग।
अपना पीव पिछान कर, दादू रहिये लाग॥ ३८॥

साधक-सुन्दरी को चाहिये—भगवान् से भिन्न देवतादि की उपासना छोड़ दे। फिर निष्काम-पतिव्रत रूप अनन्य भक्ति द्वारा ज्ञान-जाग्रत में आकर प्रभु को देखे और उस अपने परब्रह्म पति को पहचान कर, उसी में अद्वैत भाव से अपनी वृत्ति लगा कर रहे, तभी नित्य-सुहाग प्राप्त हो सकता है।

आन पुरुष हूं बहिनड़ी, परम पुरुष भरतार।
हूं अबला समझूं नहीं, तूं जाने करतार॥ ३९॥

भगवान् से भिन्न जितने पुरुष हैं, उनकी तो मैं बहिन हूँ; वे मेरे उपास्य हो नहीं सकते। मेरा स्वामी तो परम पुरुष ब्रह्म ही है। हे सृष्टि के निमित्त कारण परब्रह्म ! मैं तो साधन-बल-हीन अबला हूँ, नित्य, सुहाग प्राप्त होने का उपाय भी नहीं जानती। अत: आप ही कृपा करके मुझे अपनी नित्य समीपता रूप सुहाग दें।

पतिव्रत

जिसका तिसको दीजिये, सांई सन्मुख आइ।
दादू नख शिख सौंप सब, जनि यहु बंट्या जाइ॥ ४०॥

४०-४१ में कहते हैं—पतिव्रत से कभी न हटो=नख से शिखा पर्यन्त सब शरीर जिस परमेश्वर का रचा हुआ है, उसी परमेश्वर की आज्ञा में रहते हुये यह शरीर उसे ही समर्पण कर देना चाहिए और पूर्ण रूप से ध्यान रखना चाहिए कि कहीं स्थूल तन तथा मन, बुद्धि, इन्द्रियादि सूक्ष्म शरीर भगवत् परायणता को छोड़कर अपने-अपने विषयों की ओर बँट कर, मायिक पदार्थों में ही न लग जायें।

सारा दिल सांई सौं राखे, दादू सोइ सयान।
जे दिल बंटे आपना, सो सब मूढ अयान॥ ४१॥

जो अपना मन ईश्वर-चिन्तन करते हुये पूर्ण रूप से ईश्वर में ही लगाये रखता है, वही बुद्धिमान् है, और जो मन को भगवत् चिन्तन से हटा कर मायिक पदार्थों में लगा देते हैं, वे सब जीव और ब्रह्म का भेद मानने वाले अज्ञानी प्राणियों में भी अति मूढ़ हैं।

विरक्तता

दादू सारों सौं दिल तोर कर, सांई सौं जोरे।
सांई सेती जोड़ कर, काहे को तोरे॥ ४२॥

वैराग्यपूर्वक प्रभु में निरंतर मन लगाने की प्रेरणा कर रहे हैं—देवी, देव, लोग, कुटुम्ब, देह, घर आदि संपूर्ण मायिक प्रपंच से मन को हटाकर भगवान् में ही लीन करे और जब भगवान् में मन स्थिर हो जाय, तब किसलिये भगवत् चिन्तन से चित्त हटावे, नहीं हटाना चाहिए। भक्त के काम तो

भगवान् कर ही देते हैं।

अन्य लग्न व्यभिचार

साहिब देवे राखणा, सेवक दिल चोरे ।
दादू सब धन साह का, भूला मन थोरे ॥ ४३ ॥

४३ में प्रभु से भिन्न में मन लगाना व्यभिचार है, यह कह रहे हैं—प्रभु अपना निष्काम पतिव्रत रखने के लिए ही नर-शरीर देते हैं किन्तु अज्ञानी प्राणी रूप सेवक भगवान् से मन को हटाकर सिद्धि आदि में लगाता है और अपना मानव-जीवन खो देता है। हे मन ! तू सावधान रह, इस अल्प मायिक सुख के लिए भगवान् को क्यों भूलता है ? यदि तू मायिक सुखों की आशा छोड़कर निरंतर निष्काम पतिव्रत रूप अनन्यता से भगवद् भजन करेगा तो सच्चिदानन्द ब्रह्म रूप साह का ब्रह्मानन्द रूप सम्पूर्ण धन तेरे को मिलेगा।

पतिव्रत

दादू मनसा वाचा कर्मना, अन्तर आवे एक ।
ताको प्रत्यक्ष रामजी, बातें और अनेक ॥ ४४ ॥

४४-४८ में पतिव्रत की विशेषता बता रहे हैं—जिसकी मन, वचन और शरीर से वृत्ति अन्तर्मुख होकर एक राम से ही लगी है, उसी को रामजी का प्रत्यक्ष दर्शन होता है और अनेक प्रकार की दार्शनिक, पौराणिक आदि बातें तो कला मात्र ही हैं।

दादू मनसा वाचा कर्मना, हिरदै हरि का भाव।
अलख पुरुष आगे खड़ा, ताके त्रिभुवन राव॥ ४५ ॥

जिसके हृदय में मन, वचन और देह द्वारा सात्विक श्रद्धापूर्वक निरन्तर ही हरि-चिन्तन का प्रेम रहता है, मन इन्द्रियों के अविषय, त्रिभुवन-पति, अलख पुरुष उसके आगे खड़े रहते हैं अर्थात् उसे निरन्तर साक्षात्कार होता रहता है।

दादू मनसा वाचा कर्मना, हरिजी सौं हित होइ।
साहिब सन्मुख संग है, आदि निरंजन सोइ ॥ ४६ ॥

जिसका मन-वचन-कर्म से भगवान् में प्रेम होता है, भगवान् उस पर अनुकूल रह कर उसका योग-क्षेम करते रहते हैं और जो संसार के आदि निरंजन देव ब्रह्म हैं, वे तो सदा उसके संग ही रहते हैं=उसे निरंतर ब्रह्म का साक्षात्कार होता रहता है।

दादू मनसा वाचा कर्मना, आतुर कारण राम।
समरथ सांई सब करे, परकट पूरे काम ॥ ४७ ॥

जो मन-वचन-कर्म से निरंजन राम के साक्षात्कारार्थ व्याकुल रहता है, उसके सन्मुख समर्थ भगवान् प्रकट होकर उसकी सम्पूर्ण कामनायें पूर्ण करते हैं।

नारी पुरुषा देखि कर, पुरुषा नारी होइ ।
दादू सेवक राम का, शीलवंत है सोइ ॥ ४८ ॥

जो नारी पर-पुरुष को नारी रूप देखकर अपने मन को पति-परायण रखती है और जो पुरुष

पर-नारी को पुरुष रूप देख कर एक-पत्नी व्रत पालता है, वे शीलवान् कहलाते हैं। वैसे ही जो अपनी वृत्ति एक ब्रह्म से भिन्न किसी में भी नहीं जाने देता, वही निष्काम-पतिव्रत युक्त राम का भक्त कहलाता है।

अन्य लग्न व्यभिचार

पर पुरुषा रत बांझणी, जानैं जे फल होइ।
जन्म बिगोवे आपना, दादू निष्फल सोइ॥ ४९॥

४९-५० में अन्य लग्न व्यभिचार से जीवन निष्फल जाता है, यह कह रहे हैं—जैसे कोई नारी स्वयं तो बन्ध्या हो और अपने पति को नपुंसक जान कर पुत्रोत्पत्ति के लिए पर-पुरुष का संग करे, तब जो फल होता है, सो सब जानते ही हैं, अर्थात् पुत्र भी नहीं होता और पतिव्रत-धर्म भी नष्ट होता है। वैसे ही सकाम, भक्ति वैराग्यादि साधन तो स्वयं करता है और निर्गुण ब्रह्म को असमर्थ जान कर अन्य देवी-देवादि की उपासना करता है, तब ब्रह्म-ज्ञान रूप फल से वंचित रह कर वह अपने जन्म को भी निष्फल ही खो देता है।

दादू तज भरतार को, पर पुरुषा रत होइ।
ऐसी सेवा सब करैं, राम न जानैं सोइ॥ ५०॥

जैसे जारिणी नारी अपने पति को त्याग कर पर-पुरुष से प्रेम करती है तब पतिव्रत-धर्म बिना, उसकी सेवा और उसका मनुष्य जन्म व्यर्थ ही जाता है, उसे पति-लोक नहीं मिलता। वैसे ही भगवान् को त्याग कर देवी-देवादि की सेवा सभी सकामी करते हैं किन्तु देवी-देवादि की सेवा से राम के स्वरूप को वे नहीं जान पाते और अपना अमूल्य नर-तन व्यर्थ ही खो देते हैं।

पतिव्रत

नारी सेवक तब लगै, जब लग सांई पास।
दादू परसे आन को, ताकी कैसी आस॥ ५१॥

५१ में कहते हैं—निष्काम पतिव्रत बिना सच्चा भक्त होने की क्या आशा है ? नारी पतिव्रता तब तक ही कहलाती है जब तक अपने पति की सेवा में तत्पर रह कर पति के पास रहती है और जब अन्य पुरुष से मिलती है तब उसके पतिव्रता होने की क्या आशा है ? वैसे ही भक्त वह है, जो जीवन पर्यन्त भगवान् का ही चिन्तन करता है। जो अन्य देवी-देवादि की उपासना में रत है, उसके भक्त होने की क्या आशा है ?

अन्य लग्न व्यभिचार

दादू नारी पुरुष को, जानैं जे वश होइ।
पिव की सेवा ना करे, कामणकारी सोइ॥ ५२॥

५२ में कहते हैं—प्रभु सेवा से अन्य, प्रभु को वश करने के काम में लग्न रखना, व्यभिचार है-जैसे कोई नारी मन में यह सोचती है-मेरा पति मेरे अधीन हो जाये, उसके लिये पतिव्रत-युक्त पति-सेवा तो करती नहीं, जादू-टोना आदि करके वश करना चाहती है तो समझना चाहिए, यह

कामणकारी होने से पतिव्रता नहीं है। वैसे ही जो साधक निष्काम-पतिव्रत रूप भगवत्-सेवा न करके ईश्वर के असीम ऐश्वर्य को प्राप्त करना चाहता है और नाना अनुष्ठानादि करता है, उसको भी उक्त नारी के समान ही समझो।

करुणा

कीया मन का भावता, मेटी आज्ञाकार।
क्या ले मुख दिखलाइये, दादू उस भरतार॥ ५३॥

५३ में भक्ति न करने से होने वाले पश्चात्ताप को दिखा रहे हैं—"निष्काम पतिव्रत रूप अनन्यता से मेरी शरण हो।" यह भगवान् की आज्ञा तो मानी नहीं और आजन्म मन को प्रिय लगने वाले कार्य किये। अब उन भगवान् रूप भरतार को क्या भेंट लेकर मुख दिखलावें। उनको तो भक्ति ही प्रिय है, सो हमने की नहीं। अत: उनके आगे लज्जित ही होना पड़ेगा।

अन्य लग्न व्यभिचार

करामात कलंक है, जाके हिरदै एक।
अति आनंद व्यभिचारिणी, जाके खसम अनेक॥ ५४॥

५४-५६ में पतिव्रता और व्यभिचारिणी के रूपक से निष्कामी और सकामी विषयक परिचय दे रहे हैं—जिस निष्काम पतिव्रत युक्त साधक-सुन्दरी के हृदय में एक परमात्मा पति ही बसता है, उसके लिए अनेक भोग-सामग्री और नाना चमत्कारादिक कलंक रूप हैं किन्तु जो विषयी रूप व्यभिचारिणी है, और जिसके देव-यक्षादि अनेक स्वामी हैं, उसे तो उन भोगादि सामग्रियों और चमत्कारादि में ही अति आनन्द प्राप्त होता है।

दादू पतिव्रता के एक है, व्यभिचारिणी के दोइ।
पतिव्रता व्यभिचारिणी, मेला क्यों कर होइ॥ ५५॥

निष्काम साधक रूप पतिव्रता के हृदय में तो एक परमात्मा ही रहता है। सकाम विषयी रूप व्यभिचारिणी के हृदय में देवादि तथा इन्द्रिय-विषयादि रूप द्वैत रहता है। अत: पतिव्रता और व्यभिचारिणी का समता रूप मिलन कैसे हो सकता है ?

पतिव्रता के एक है, दूजा नाहीं आन।
व्यभिचारिणी के दोइ हैं, पर घर एक समान॥ ५६॥

निष्काम पतिव्रत साधना की परिपाकावस्था में साधक रूप पतिव्रता के हृदय में ब्रह्मात्मा की एकता रूप अद्वैत ही रहता है। उसके हृदय में द्वैत-भाव कभी भी नहीं आता। सकाम विषयी रूप व्यभिचारिणी के हृदय में द्वैत ही रहता है। उसके विषय रूप पर-घर और परब्रह्म रूप निज-घर समान ही हैं। उसे सांसारिक विषयों से विक्षेप नहीं होता, अपितु रस आता है।

सुन्दरी सुहाग

दादू पुरुष हमारा एक है, हम नारी बहु अंग।
जे जे जैसी ताहि सौं, खेलै तिस ही रंग॥ ५७॥

५७ में साधक-सुन्दरी का सुहाग-सुख दिखा रहे हैं—हमारा परम पुरुष रूप पति तो एक है और हम साधक-सुन्दरी निष्काम कर्म, भक्ति, योग और ज्ञानादि साधन रूप लक्षणों वाली बहुत हैं। जिसकी जैसी भावना है, वह वैसे ही सगुण प्रेम का निर्गुण प्रेम रूप रंग के द्वारा उस परब्रह्म से ही चिन्तनानन्द,दर्शनानन्द आदि का अनुभव रूप खेल खेलती है।

पतिव्रत

दादू रहता राखिये, बहता देइ बहाइ ।
बहते संग न जाइये, रहते सौं ल्यौ लाइ ॥ ५८ ॥

५८-६३ में पतिव्रत रूप अनन्यता प्राप्त करने की प्रेरणा कर रहे हैं—निश्चल ब्रह्म को ही हृदय में रक्खो, चंचल मायिक प्रपंच को त्याग दो। परिवर्तनशील सांसारिक देवादि के साथ मत लगो, सदा एकरस रहने वाले परब्रह्म में ही वृत्ति लगाओ।

जनि बाझे[१] काहू कर्म सौं, दूजे आरंभ जाइ ।
दादू एकै मूल गह, दूजा देइ बहाइ ॥ ५९ ॥

द्वैत भाव के द्वारा बाह्य वृत्ति से व्यवहार में जाकर किसी काम्य कर्म के आरंभ से अपने को संसार में न बाँधो[१]। एकमात्र अद्वैत ब्रह्म रूप अपने मूल को ही ग्रहण करके द्वैत भाव रूप व्यभिचार को त्यागो।

बावें देखि न दाहिने, तन मन सन्मुख राखि ।
दादू निर्मल तत्त्व गह, सत्य शब्द यहु साखि ॥ ६० ॥

सांसारिक दुःख-सुख रूप बांयीं-दाहिनी दिशा की ओर मत देख, ये दुःख-सुखादि तो आने जाने वाले हैं, सदा एकरस कोई भी नहीं रहता। तू तो अपने तन मन को साधन द्वारा भगवत् के सन्मुख रखते हुये परब्रह्म रूप निर्मल तत्त्व का अभेद चिन्तन ही ग्रहण कर। सत्य परमात्मा के वेदादिक शब्दों की यही साक्षी है कि परब्रह्म की प्राप्ति अभेद चिन्तन द्वारा ही होती है।

दादू दूजा नैन न देखिये, श्रवणहुँ सुनैं न जाइ ।
जिह्वा आन न बोलिये, अंग न और सुहाइ ॥ ६१ ॥

जैसे चन्द्र के उदय होने पर चकोर चन्द्रमा को छोड़कर अन्य कुछ भी नहीं देखता, वैसे ही अपने नेत्रों से सर्व देश, काल, वस्तु में परब्रह्म को ही देखें, अन्य कुछ न देखें। जैसे मृग बरवै राग को छोड़कर अन्य कुछ भी नहीं सुनता, वैसे ही परब्रह्म संबंधी वार्ता को छोड़कर अन्य कुछ भी न सुनें और न मन को अन्य पर जाने दें। जैसे चातक पक्षी स्वाति के लिए ही पी-पी रटता है, वैसे ही परब्रह्म प्राप्ति के लिए परब्रह्म के नाम ही बोलें, अन्य कुछ न बोलें। जैसे मच्छी के शरीर को जल बिना अन्य घृत, दूध नहीं सुहाते, वैसे ही परब्रह्म को त्यागकर अन्य कुछ भी अच्छा न लगना चाहिए।

चरणहुँ अनत न जाइये, सब उलटा मांहिं समाइ ।
उलट अपूठा आप में, दादू रहु ल्यौ लाइ ॥ ६२ ॥

चरणों से ब्रह्म प्राप्ति के साधन सत्संगादि को छोड़कर पतन के हेतु स्थानों में नहीं जाना चाहिए। इन्द्रिय, अन्तःकरणादि सभी समाज संसार को पीठ दे, अन्तर्मुख हो, भीतर स्थित आत्म स्वरूप ब्रह्म में ही लीन रहे। इस प्रकार ब्रह्म में ही वृत्ति लगाकर स्थिर रहना चाहिए।

दादू दूजे अन्तर होत है, जनि आने मन मांहिं ।
तहँ ले मन को राखिये, जहँ कुछ दूजा नांहिं ॥ ६३ ॥

द्वैत भाव से जीव और परमात्मा के मध्य में अन्तराल पड़ता है। इसलिए द्वैत-भाव मन में नहीं रखना चाहिए। अपने मन को निष्काम पतिव्रत द्वारा संसार दशा से उठाकर जहाँ किंचित् मात्र भी द्वैत भाव नहीं रहता, उस अद्वैत ब्रह्म में ही स्थिर रखना चाहिए।

भ्रम विध्वंसन

भरम तिमिर भाजे नहीं, रे जिय आन उपाइ।
दादू दीपक साज ले, सहजैं ही मिट जाइ ॥ ६४ ॥

६४-६६ में भ्रमनाश का उपाय बता रहे हैं—रे जीव ! असत्य मायिक प्रपंच में सत्य बुद्धि रूप भ्रम और जीव ब्रह्म का भेद रूप अज्ञान, ज्ञान के बिना अन्य तीर्थ व्रतादि उपायों से दूर नहीं होते। अत: उनको दूर करने के लिए निष्काम पतिव्रतादि अन्तरंग साधनों के अभ्यास द्वारा अपने हृदय-घर में ब्रह्म ज्ञान-दीप जगाकर वासना-वायु के निरोध द्वारा स्थिर कर ले। ऐसा करने से असत्य में सत्य, भ्रम और जीव-ब्रह्म का भेद रूप अज्ञान अनायास ही तेरे हृदय से हट जायगा।

दादू सो वेदन नहिं बावरे, आन किये जे जाइ ।
सब दुख भंजन सांइयां, ताही सौं ल्यौ लाइ ॥ ६५ ॥

हे अज्ञात तत्त्व साधक ! वह जन्म मरणादिक संसार-पीड़ा ऐसी नहीं है, जो ब्रह्म ज्ञान के बिना किसी अन्य उपाय के करने से दूर हो जाय। संपूर्ण दुखों के नाशक भगवान् हैं, उन्हीं भगवान् में वृत्ति लगा कर ब्रह्म ज्ञान को प्राप्त कर, तभी तेरा संसार-दु:ख नष्ट होगा।

दादू औषधि मूली कुछ नहीं, ये सब झूठी बात।
जे औषधि ही जीविये, तो काहे को मर जात ॥ ६६ ॥

हे लोगो ! तुम जिन रसायनादि औषधियों से दीर्घजीवी और अमर होना चाहते हो, वे जड़ी-बूटी आदि औषधियां अमरता में लेश मात्र भी कारण नहीं हैं । और जो लोग कहते हैं—''औषधि आदि उपायों से अमरता प्राप्त होती है, उनकी ये सभी बातें मिथ्या हैं। कारण, औषधि आदि से जीवित रहना संभव होता तो संसार के श्रीमान् क्यों मर जाते हैं ? उनको तो औषधि आदि उपाय प्राप्त होते ही हैं। अत: अमरता ब्रह्म-ज्ञान से ही प्राप्त होती है, अन्यथा नहीं।

पतिव्रत

मूल गहै सो निश्चल बैठा, सुख में रहे समाइ।
डाल पान भरमत फिरे, वेदों दिया बहाइ ॥ ६७ ॥

६७-७७ में निष्काम पतिव्रत की विशेषताएं बता रहे हैं—निष्काम पतिव्रत पूर्वक ब्रह्म चिन्तन द्वारा जो अपने मूल ब्रह्म को ग्रहण करता है, वह ब्रह्मानन्द में निमग्न हुआ निश्चल रूप से ब्रह्म में ही स्थिर रहता है और जो देवता-उपासना रूप डाल तथा स्वर्गादिक-भोग रूप पत्तों में रत है, वह भ्रमित होकर संसार में ही फिरता रहता है। शंकाः- अपने सुख के साधन को त्याग कर भ्रमण करता है, ऐसा क्यों ? उत्तरः- वेद के कर्म-कांड रूप रोचक वचनों ने उसे प्रलोभन के द्वारा बहका कर चंचल कर दिया है।

सौ धक्का सुनहां[1] को देवे, घर बाहर काढ़े।
दादू सेवक राम का, दरबार न छाड़े ॥ ६८ ॥

जैसे श्वान[1] को चाहे उसका स्वामी सौ बार धक्के दे-देकर घर के बाहर निकाल दे तो भी वह स्वामी के घर-द्वार को नहीं त्यागता, वैसे ही निष्काम पतिव्रत-युक्त को किसी कारण से कुछ समय तक भगवान् नहीं भी अपनावें, तो भी वह भगवद्-भजन रूप भगवान् के दरबार को नहीं त्यागता।

साहिब का दर छाड़ि कर, सेवक कहीं न जाइ ।
दादू बैठा मूल गह, डालों फिरे बलाइ[1] ॥ ६९ ॥

निष्काम पतिव्रत युक्त भक्त भगवान् का भजन रूप द्वार छोड़कर कहीं भी नहीं जाता=सकाम कर्मों द्वारा प्राप्त होने योग्य स्वर्गादि लोकों के भोगादि में उसकी वृत्ति नहीं जाती। वह तो ब्रह्म-रूप मूल को ब्रह्म-चिन्तन रूप हाथ से पकड़ कर स्थित है। देवादि उपासना रूप डालों पर उसकी वृत्ति क्यों फिरे, देवादि उपासना उसे दुःख-रूप[1] भासती है।

दादू जब लग मूल न सींचिये, तब लग हरा न होइ ।
सेवा निष्फल सब गई, फिर पछताना सोइ ॥ ७० ॥

जब तक वृक्ष की जड़ में पानी न देकर डाल-पत्तों पर डाला जायगा, तब तक वृक्ष हरा नहीं हो सकता, पत्ते गलकर विरूप हो जायगा। सींचने वाले की सेवा निष्फल होगी और अन्त में वह पश्चात्ताप ही करेगा। वैसे ही जब तक प्राणी भगवान् को छोड़कर देवादि की उपासना करेगा, तब तक सुखी नहीं हो सकता। उलटा, उसका जन्मादि दुःख बढ़ेगा और दुःख के समय पश्चात्ताप भी करेगा।

दादू सींचे मूल के, सब सींच्या विस्तार ।
दादू सींचे मूल बिन, बाद गई बेगार ॥ ७१ ॥

जैसे वृक्ष के मूल को पानी देने से उसकी डाली-पत्ते आदि सभी का विस्तार हरा हो जाता

है, वैसे ही निष्काम पतिव्रत युक्त निरंजन राम की उपासना करने से देवादि सभी प्रसन्न हो जाते हैं। मूल न सींचकर पत्तों पर पानी डालने से सेवा व्यर्थ जाती है, वैसे ही भगवद्-भजन न करके देवादि की उपासना की जाय, तो उसे परमानन्द की प्राप्ति नहीं होने से उपासक की अभिलाषा पूर्ण नहीं होती।

सब आया उस एक में, डाल पान फल फूल।
दादू पीछे क्या रह्या, जब निज पकड़्या मूल॥ ७२॥

जैसे वृक्ष का मूल पकड़ लेने पर उसके, डाल, पात, फूल, फलादि सभी हाथ में आ जाते हैं, वैसे ही जब निष्काम पतिव्रत साधना द्वारा अपना मूल परब्रह्म पकड़ लिया जाता है, तब बिना पकड़ा क्या रह जाता है ? अन्य सब तो उसी के विवर्त्त हैं।

खेत न निपजे बीज बिन, जल सींचे क्या होइ।
सब निष्फल दादू राम बिन, जानत हैं सब कोइ॥ ७३॥

पृथ्वी में बीज नहीं डाले और जल निरंतर डाले तो क्या होगा ? परिश्रम ही होगा, खेत तो निपजेगा नहीं। वैसे ही निष्काम पतिव्रत-साधन द्वारा राम-भजन किये बिना सभी बहिरंग साधन तीर्थादि राम का साक्षात्कार कराने में सफल नहीं हो सकते, यह बात सन्त विद्वान् आदि सभी जानते हैं।

दादू जब मुख मांहीं मेलिये, तब सबही तृप्ता होइ।
मुख बिन मेले आन दिश, तृप्ति न माने कोइ॥ ७४॥

जब सात्विक भोजन का ग्रास मुख में रखा जाता है, तब इन्द्रियाँ मनादि सभी तृप्त होते हैं और मुख को छोड़कर दूसरे नाक-कानादि द्वारों में ग्रास रखा जाय तो किसी की भी तृप्ति नहीं होगी, उलटी हानि की संभावना रहती है। वैसे ही यह जीव अपनी वृत्ति परब्रह्म में रक्खे तो गुरु, सन्त, देवादि सभी की तृप्ति होगी और स्वयं मुक्त होगा। अन्य किसी में रखता है तो तृप्ति के स्थान में जन्मादि क्लेश ही पाता है। अत: वृत्ति ब्रह्म में ही रखनी चाहिए।

जब देव निरंजन पूजिये, तब सब आया उस मांहिं।
डाल पान फल फूल सब, दादू न्यारे नांहिं॥ ७५॥

जैसे वृक्ष का मूल सींचने में डाल, पत्र, फूल, फलादि सभी का पोषण होता है, उन्हें अलग नहीं सींचा जाता, वैसे ही निष्काम पतिव्रत पूर्वक निरंजन देव की ब्रह्म-चिन्तन रूप पूजा की जाती है तब देवादि उपासना और सम्पूर्ण साधन उसी में आ जाते हैं, साध्य प्राप्ति के लिए अन्य साधन करने की आवश्यकता नहीं रह जाती।

दादू टीका राम को, दूसर दीजे नांहिं।
ज्ञान ध्यान तप भेष पख, सब आये उस मांहिं॥ ७६॥

साधक-सुन्दरी को चाहिए-वह निरंजन राम के ही तिलक लगावे, वृत्ति राम के स्वरूप में

ही लीन करे, अन्य में नहीं। उक्त निष्काम पतिव्रत पूर्वक राम में वृत्ति लगाने रूप साधन में ज्ञान, ध्यान, तप, भेष, पक्ष आदि सभी साधन आ जाते हैं। अन्य साधन करने की आवश्यकता नहीं रहती।

साधू राखै राम को, संसारी माया ।
संसारी पल्लव गहैं, मूल साधूं पाया ॥ ७७ ॥

संतजन तो अपने हृदय में नाम चिन्तन द्वारा राम को ही रखते हैं—और संसारी जन अपने हृदय में माया को रखते हैं। इसलिए संतों ने तो निरंजन राम रूप मूल को प्राप्त किया है और संसारी जनों ने भोग रूप कोंपलें प्राप्त की हैं।

अन्य लग्न व्यभिचार

दादू जे कुछ कीजिये, अविगत बिन आराध ।
कहबा सुनबा देखबा, करबा सब अपराध ॥ ७८ ॥

७८-७९ में कहते हैं—निरंजन राम की उपासना छोड़ अन्य जो भी करना है सो व्यभिचार है। मन इन्द्रियों के अविषय परब्रह्म की उपासना बिना जो कुछ कहना, सुनना, देखना और कार्य करना, वह सब जन्मादि रूप अनर्थ का हेतु होने से अपराध है।

सब चतुराई देखिये, जे कुछ कीजे आन ।
दादू आपा सौंपि सब, पिव को लेहु पिछान ॥ ७९ ॥

निरंजन राम से निष्काम पतिव्रत को छोड़कर अन्य जो कुछ भी संसारी प्राणी करते हैं, वह सब संसार बन्धन में फँसने की चतुराई ही देखी जाती है। अत: निष्काम पतिव्रत द्वारा अपने को परब्रह्म के समर्पण करके निरंजन राम रूप स्वामी को आत्म रूप से पहचानो।

पतिव्रत

दादू दूजा कुछ नहीं, एक सत्य कर जान ।
दादू दूजा क्या करे, जिन एक लिया पहचान ॥ ८० ॥

८०-८६ में पतिव्रत सम्बन्धी विचार प्रकट कर रहे हैं—परब्रह्म से भिन्न जो संसार प्रतीत हो रहा है, वह ब्रह्म का विवर्त्त है, ब्रह्म से भिन्न नहीं। मात्र एक ब्रह्म को ही सत्य जानो। जिन ज्ञानी जनों ने अद्वैत ब्रह्म को आत्म रूप से जान लिया है, उनका यह विवर्त्त रूप द्वैत क्या कर सकता है ?

कोई बाँछे मुक्ति फल, कोई अमरापुरि बास ।
कोई बाँछे परमगति, दादू राम मिलन की प्यास ॥ ८१ ॥

कोई तो अपने किये कर्म का फल—सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सायुज्य, नामक चार प्रकार की मुक्ति चाहते हैं। कोई देवताओं की पुरी स्वर्ग का निवास चाहते हैं। कोई अति उत्तम गति चाहते हैं किन्तु हमें तो केवल निरंजन राम का साक्षात्कार करने की ही अभिलाषा है।

तुम हरि हिरदै हेत सौं, प्रकटहु परमानन्द ।
दादू देखे नैन भर, तब केता होइ आनन्द ॥ ८२ ॥

हे परमानन्द रूप हरे ! हमारा साधन तो ऐसा दिखाई नहीं देता कि—हम आप को प्रत्यक्ष रूप से देख सकें किन्तु आप अपने भक्त-वत्सलता रूप प्रेम से ही हमारे हृदय में प्रकट होने की कृपा करें। हम अपने नेत्रों को तृप्त करते हुए आपका साक्षात्कार करेंगे। जब आपका दर्शन होगा तब हमें कितना आनंद प्राप्त होगा, वह अकथनीय ही होगा, किसी प्रकार कहा न जा सकेगा।

प्रेम पियाला राम रस, हमको भावे येह ।
रिधि सिधि मांगैं मुक्ति फल, चाहे तिनको देह ॥ ८३ ॥

भगवन् ! हमको तो आपके प्रेम रूप प्याले में निरंजन राम का साक्षात्कार रूप भर करके दीजिये। हमें तो यही अच्छा लगता है। ऋद्धि, सिद्धि और मुक्ति आदि फल तो जो इनकी इच्छा करते हैं, उनको ही दीजिये, हमें नहीं चाहिए।

कोटि वर्ष क्या जीवना, अमर भये क्या होइ ।
प्रेम भक्ति रस राम बिन, का दादू जीवन सोइ ॥ ८४ ॥

प्रेमाभक्ति द्वारा राम-रस का पान किये बिना कोटि वर्ष जीवित रहने वा अमर होने से क्या लाभ होता है ? दुःख ही मिलता है। वह दुःख रूप जीवन क्या है ? व्यर्थ ही है।

इस साखी से करडाले के दीर्घजीवी प्रेत को उपदेश कर भक्ति करने की आज्ञा दी थी। प्रसंग कथा - दृ. सु. सिं. त. ११-१२ में देखो।

कछू न कीजे कामना, सहगुण निर्गुण होहि ।
पलट जीव तैं ब्रह्म गति, सब मिल मानें मोहि ॥ ८५ ॥

यदि मन बुद्धि इन्द्रियाँ अन्य कुछ भी सांसारिक कामना न करें और सब मिलकर निष्काम पतिव्रत द्वारा मुझ निर्गुण ब्रह्म की ही सत्ता स्वीकार करके मेरा ही चिन्तन करे तो यह सगुण जीव जीवत्व-भाव से बदल कर निर्गुण हो जाता है। फिर ब्रह्म में गति करता है=ब्रह्म रूप ही हो जाता है।

घट अजरावर ह्वै रहे, बन्धन नाहीं कोइ ।
मुक्ता चौरासी मिटे, दादू संशय सोइ ॥ ८६ ॥

उक्त प्रकार निष्काम पतिव्रत रूप अनन्य भक्ति करने वालों का शरीर देवताओं से भी श्रेष्ठ हो जाता है और पूर्व अज्ञान काल में जो चौरासी लक्ष योनियों में भ्रमण कराने का हेतु जीव-ब्रह्म विषयक संशय रहता है, वह भी नष्ट हो जाता है तथा कोई भी सांसारिक बन्धन बाँधने वाला नहीं रहता, वह जीवन्मुक्त होकर विचरता है।

परिचय पतिव्रत

सालोक्य संगति रहै, सामीप्य सन्मुख सोइ ।
सारूप्य सारीखा भया, सायुज्य एकै होइ ॥ ८७ ॥

८७-८८ में परिचय पूर्वक पतिव्रत दिखा रहे हैं—उपासना द्वारा प्राप्य चतुर्विध मुक्ति बता रहे हैं-उपास्य के लोक में रहना सालोक्य मुक्ति कहलाती है। उपास्य के समीप सन्मुख रहे, उसे ही सामीप्य मुक्ति कहते हैं। उपास्य के समान उपासक का रूप हो जाना ही सारूप्य मुक्ति कहलाती है। उपास्य से एक हो जाय उसे ही सायुज्य मुक्ति कहते हैं।

राम रसिक बाँछे नहीं, परम पदारथ चार ।
अठ सिधि नव निधि का करे, राता सिरजनहार ॥ ८८ ॥

निरंजनराम के दर्शन-रस के रसिक सन्त ८७ में बताई हुई चार मुक्ति रूप परम पदार्थों की भी इच्छा नहीं करते, फिर अष्ट सिद्धि और नवनिधियों को तो वे करें ही क्या ? इस प्रकार परिचय पूर्वक पतिव्रत युक्त भक्त पूर्णत: निष्काम होकर एक परमेश्वर में ही रत रहते हैं। अष्ट सिद्धि, नवनिधि अंग २-१०४ में देखो।

अन्य लग्न व्यभिचार

स्वारथ सेवा कीजिये, तातैं भला न होइ ।
दादू ऊसर बाहिकर, कोठा भरे न कोइ ॥ ८९ ॥

८९-९२ में स्वार्थ सिद्धि के लिए प्रेम करना व्यभिचार ही है—जैसे ऊसर पृथ्वी में बीज डाल कर उससे उत्पन्न धान्य से कोई भी मकान नहीं भर सकता। वैसे ही सकामी स्वार्थ सिद्धि के लिए सेवा करता है, तब उससे आत्म-कल्याण रूप भला नहीं होता, स्वार्थ ही सिद्ध होता है।

सुत वित[1] मांगे बावरे, साहिब-सी निधि मेलि ।
दादू वे निर्फल गये, जैसे नागर बेलि ॥ ९० ॥

निरंजन राम जैसी अपूर्व सम्पत्ति को त्याग कर जो मूर्ख लोग अपने साधन का फल पुत्र और कनकादिक धन[1] ही मांगते हैं, वे लोग जैसे नागर-बेलि फल से वंचित रहती है, वैसे ही आत्म-ज्ञान फल से वंचित रहकर लौकिक अभिलाषा पूर्ति में ही अपना जीवन खो देते हैं।

फल कारण सेवा करे, याचे त्रिभुवनराव ।
दादू सो सेवक नहीं, खेले अपना दाव ॥ ९१ ॥

जो लोक सांसारिक भोग रूप फल के लिए ही भक्ति करते हैं और त्रिभुवनपति परमात्मा से स्त्री, पुत्र, धनादि की याचना करते हैं वे निष्काम पतिव्रत युक्त भक्त नहीं हैं। वे तो जुआरी के समान अपना दाँव खेल रहे हैं। जैसे जुआरी पासे की इच्छानुसार संख्या आते ही पैसे माँग लेता है, वैसे ही समय आने पर भगवान् से भोग पदार्थ माँग लेते हैं, वे भक्ति नहीं करते, भक्ति का ढोंग ही करते हैं।

सहकामी सेवा करैं, माँगैं मुग्ध[1] गँवार ।
दादू ऐसे बहुत हैं, फल के भूंचनहार ॥ ९२ ॥

सकामी जन भक्ति करते हैं तब फलाशा से मोहित[1] होकर वे मूर्ख भगवान् से सांसारिक भोग ही माँगते हैं। ऐसे ही भक्त संसार में बहुत मिलते हैं जो भक्ति करके सांसारिक भोग ही माँगते हैं।

स्मरण नाम माहात्म्य

तन मन ले लागा रहै, राता सिरजनहार ।
दादू कुछ माँगै नहीं, ते विरला संसार ॥ ९३ ॥

९३-९४ में नाम-स्मरण का माहात्म्य कह रहे हैं—शरीर और मन को संयम द्वारा अनुचित कर्म और भावनाओं से उठकर विश्व रचयिता भगवान् के भजन में रत रहता है और कुछ भी नहीं माँगता, ऐसा निष्काम भक्त संसार में कोई विरला ही होता है। ऐसा होना नाम-स्मरण का ही माहात्म्य है।

दादू कहै-सांई को संभालतां,कोटि विघ्न टल जाहिं।
राई मान बैसंदरा[1], केते काठ जलाहिं ॥ ९४ ॥

जैसे राई जितनी अग्नि[1] से कितने ही काष्ठ-खंड भस्म हो जाते हैं, वैसे ही निष्काम पतिव्रत पूर्वक भगवन्नाम स्मरण से कोटि विघ्न भी टल जाते हैं।

करतूति कर्म

कर्मैं कर्म काटे नहीं, कर्मैं कर्म न जाइ ।
कर्मैं कर्म छूटे नहीं, कर्मैं कर्म बँधाइ ॥ ९५ ॥

इति निहकर्मी पतिव्रता का अंग समाप्त ॥ ८ ॥ सा. ९९६ ॥

९५ में कहते हैं कर्म से कर्म नहीं कटते—उद्योग रूप कर्मों द्वारा कोई भी प्रारब्ध कर्म को नहीं काट सकता। न कर्मों से आगामी कर्मों का अभाव होता है और न कर्मों से वर्तमान कर्म ही छूटते हैं। प्रत्युत कर्मों द्वारा कर्म-बन्धन बढ़ता ही जाता है। अत: कर्म बन्धन से मुक्त होने के लिए निष्काम पतिव्रत रूप अनन्य भक्ति द्वारा ब्रह्मज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका निष्कामी पतिव्रता का अंग समाप्त: ॥ ८ ॥

अथ चेतावनी का अंग ९

भगवान् को निष्काम पतिव्रत रूप अनन्यता प्रिय है। उसी की चेतावनी देने के लिए ''चितावनी का अंग'' कथन करने में प्रवृत्त मंगल कर रहे हैं—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत: ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥ १ ॥

जिनकी दी हुई चेतावनी द्वारा साधक मायिक प्रपंच से पार होकर परब्रह्म को प्राप्त होता है, उन निरंजन राम, सद्गुरु और सर्व सन्तों को हम प्रणाम करते हैं।

दादू जे साहिब को भावे नहीं, सो हम तैं जनि होइ ।

सहकामी सेवा करैं, माँगैं मुग्ध[1] गँवार ।
दादू ऐसे बहुत हैं, फल के भूंचनहार ॥ ९२ ॥

सकामी जन भक्ति करते हैं तब फलाशा से मोहित[1] होकर वे मूर्ख भगवान् से सांसारिक भोग ही माँगते हैं। ऐसे ही भक्त संसार में बहुत मिलते हैं जो भक्ति करके सांसारिक भोग ही माँगते हैं।

स्मरण नाम माहात्म्य

तन मन ले लागा रहै, राता सिरजनहार ।
दादू कुछ माँगै नहीं, ते विरला संसार ॥ ९३ ॥

९३-९४ में नाम-स्मरण का माहात्म्य कह रहे हैं—शरीर और मन को संयम द्वारा अनुचित कर्म और भावनाओं से उठकर विश्‍व रचयिता भगवान् के भजन में रत रहता है और कुछ भी नहीं माँगता, ऐसा निष्काम भक्त संसार में कोई विरला ही होता है। ऐसा होना नाम-स्मरण का ही माहात्म्य है।

दादू कहै–सांई को संभालतां,कोटि विघ्न टल जाहिं।
राई मान बैसंदरा[1], केते काठ जलाहिं ॥ ९४ ॥

जैसे राई जितनी अग्नि[1] से कितने ही काष्ठ-खंड भस्म हो जाते हैं, वैसे ही निष्काम पतिव्रत पूर्वक भगवन्नाम स्मरण से कोटि विघ्न भी टल जाते हैं।

करतूति कर्म

कर्मैं कर्म काटे नहीं, कर्मैं कर्म न जाइ ।
कर्मैं कर्म छूटे नहीं, कर्मैं कर्म बँधाइ ॥ ९५ ॥

इति निहकर्मी पतिव्रता का अंग समाप्त ॥ ८ ॥ सा. ९९६ ॥

९५ में कहते हैं कर्म से कर्म नहीं कटते—उद्योग रूप कर्मों द्वारा कोई भी प्रारब्ध कर्म को नहीं काट सकता। न कर्मों से आगामी कर्मों का अभाव होता है और न कर्मों से वर्तमान कर्म ही छूटते हैं। प्रत्युत कर्मों द्वारा कर्म-बन्धन बढ़ता ही जाता है। अत: कर्म बन्धन से मुक्त होने के लिए निष्काम पतिव्रत रूप अनन्य भक्ति द्वारा ब्रह्मज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका निष्कामी पतिव्रता का अंग समाप्त: ॥ ८ ॥

अथ चेतावनी का अंग ९

भगवान् को निष्काम पतिव्रत रूप अनन्यता प्रिय है। उसी की चेतावनी देने के लिए ''चितावनी का अंग'' कथन करने में प्रवृत्त मंगल कर रहे हैं—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत: ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥ १ ॥

जिनकी दी हुई चेतावनी द्वारा साधक मायिक प्रपंच से पार होकर परब्रह्म को प्राप्त होता है, उन निरंजन राम, सद्गुरु और सर्व सन्तों को हम प्रणाम करते हैं।

दादू जे साहिब को भावे नहीं, सो हम तैं जनि होइ ।

सद्‌गुरु लाजे आपना, साधु न मानैं कोइ ॥ २ ॥

२ में अपने को ही सावधान कर रहे हैं—जो परमात्मा को प्रिय न हों ऐसे संकल्प, वचन और कार्य का व्यवहार हमसे कभी भी नहीं होना चाहिए। कारण, ऐसे व्यवहार से अपने सद्‌गुरु को भी लज्जित होना पड़ता है और न कोई संत ही अच्छा मानते हैं।

दादू जे साहिब को भावे नहीं, सो सब परहर प्राण ।
मनसा वाचा कर्मना, जे तूं चतुर सुजाण ॥ ३ ॥

३-१५ में सभी प्राणियों को सचेत कर रहे हैं—हे प्राणधारी जीव ! यदि तू व्यवहार में चतुर और समझदार है तो ईश्वर को जो प्रिय नहीं लगे सभी व्यवहार त्याग दे और भगवान् को प्रिय लगने वाली अनन्य भक्ति मन, वचन और कर्म से कर। मन से ध्यान, वाणी से नाम उच्चारण और शरीर से संत-सेवादि कर।

दादू जे साहिब को भावे नहीं, सो जीव न कीजी रे ।
परहर विषय विकार सब, अमृत रस पीजी रे ॥ ४ ॥

हे जीव ! पर-पीड़नादि जो भी कुत्सित व्यवहार भगवान् को प्रिय न लगे, वह कभी भी मत किया कर। सांसारिक विषय और कामादि सभी विकारों को त्याग कर भगवद् भजनामृत-रस का ही पान किया कर।

दादू जे साहिब को भावे नहीं, सो बाट न बूझी रे ।
सांई सौं सन्मुख रही, इस मन सौं झूझी रे ॥ ५ ॥

हे जीव ! जो भगवान् को प्रिय नहीं लगता है ऐसे अन्याय-प्रधान पाप-मय मार्ग में चलना तो दूर, किन्तु तू तो उसके विषय में कोई भी बात मत पूछ। कदाचित् तेरा मन उधर जाय तो भी मन से प्रत्याहार रूप युद्ध करके उसे रोक और सदा भगवद्-भजन द्वारा भगवान् के सन्मुख ही स्थित रह।

दादू अचेत न होइये, चेतन सौं चित लाइ ।
मनवा सूता नींद भर, सांई संग जगाइ ॥ ६ ॥

प्राणी ! अपने कल्याण मार्ग में अचेत न रह, सावधान होकर ज्ञान स्वरूप ब्रह्म में चित्त लगा। यह तेरा मन मोह रूप घोर निद्रा में सूता पड़ा है। इसे ज्ञान द्वारा जगा कर प्रभु के संग करके प्रभु में लीन कर।

दादू अचेत न होइये, चेतन सौं कर चित्त ।
ये अनहद जहां तैं ऊपजे, खोजो तहाँ ही नित्त ॥ ७ ॥

हे प्राणियो ! धनादि जड़ पदार्थों के मोह से अचेत मत होओ, सावधान होकर चेतन आत्मा की ओर चित्त को फेरो और जहां अनाहत चक्र में अनाहत ध्वनि उत्पन्न होती है, वहां ही मन को अन्तर्मुख करके ब्रह्म को नित्य प्रति खोजो। अवश्य साक्षात्कार होगा।

दादू जन ! कुछ चेत कर, सौदा लीजे सार ।
निखर कमाइ न छूटणा, अपने जीव विचार ॥ ८ ॥

हे जन ! कुछ तो चेत कर, असत्य व्यापार में क्यों फँसा है ? तुझे ज्ञान, भक्ति आदि सार वस्तुएं ही अपने श्वास-द्रव्य से खरीदनी चाहिए। तू अपने हृदय में ही विचार करके देख, आत्म-ज्ञान रूप शुद्ध कमाई के बिना इस संसार बन्धन से कभी भी नहीं छूट सकेगा।

दादू कर साँई की चाकरी, ये हरि नाम न छोड़ ।
जाणा है उस देश को, प्रीति पिया सौं जोड़ ॥ ९ ॥

प्राणी ! परमात्मा की निष्काम भक्ति कर, भक्ति के साधक ये जो-निरंजन-राम, परब्रह्म आदि हरि के नाम हैं, उन्हें कभी भी मत छोड़। जो तुझ को प्रिय लगे उसी नाम का निरंतर चिन्तन कर। तू स्वयं इस संसार देश में दु:ख से व्याकुल होकर सुख-स्वरूप ब्रह्म-प्रदेश की अभिलाषा कर ही रहा है। अत: तुझे वहां जाना है तो ब्रह्मरूप स्वामी से प्रीति कर, तब ही जा सकेगा, अन्यथा नहीं ।

आपा पर सब दूर कर, राम नाम रस लाग ।
दादू अवसर जात है, जाग सके तो जाग ॥ १० ॥

देहादि अहंकार—"मैं मेरा, तू तेरा" आदि सब भेद भावनाएं दूर करके राम-नाम चिन्तन-रस के पान करने में संलग्न हो। इस कार्य के लिए यह मनुष्य शरीर ही उत्तम अवसर है और तुझे प्राप्त भी है, किन्तु तेरे ही प्रमाद से यह तेरे हाथ से जा रहा है। अत: तू मोह निद्रा से जाग सके तो शीघ्र ही जागकर कल्याण का साधन कर, नहीं तो फिर पश्चात्ताप ही करना होगा।

बार बार यहु तन नहीं, नर नारायण देह ।
दादू बहुरि न पाइये, जन्म अमोलक येह ॥ ११ ॥

नारायण की प्राप्ति का साधन यह नरदेह बारंबार नहीं मिलता। अन्य देव, पशु, पक्षी, कीटादि शरीरों में भी भ्रमण होता ही रहता है। नर शरीर के छोड़ते ही पुन: नर शरीर ही मिले, यह नियम नहीं है, न जाने पुन: कब मिले। अत: इस अमूल्य शरीर को भगवद्-भक्ति द्वारा सफल बनाना चाहिए।

एका-एकी राम सौं, कै साधू का संग ।
दादू अनत न जाइये, और काल का अंग ॥ १२ ॥

नर जन्म को सफल बनाने के लिए निष्काम होकर अकेला ही निरंजन राम से वृत्ति लगाये रक्खे और यदि संग करना ही हो तो राम के स्वरूप को समझने वाले निष्कामी संतों का ही करे। अन्य सकाम साधना व सकामी मानवों के संग में नहीं जाना चाहिए। कारण, वे तो काल के ही अंग हैं-जन्मादि संसार को बढ़ाने वाले ही हैं।

दादू तन मन के गुण छाड़ि सब, जब होइ नियारा ।
तब अपने नैनहुँ देखिये, परकट पीव प्यारा ॥ १३ ॥

जब जीव शरीर के हिंसादि और मन के कामादि सब गुणों को त्याग कर देहादि संसार से अलग हो जाता है, तब अपने विचार-नेत्रों से वा बाह्य नेत्रों से भी अपने प्रियतम परब्रह्म स्वामी को प्रत्यक्ष ही देखता है।

दादू झांती[१] पायें[२] पसु[३] पिरी[४], अंदर सो आहे[५] ।
होणी[६] पाणे[७] बिच्च में, महर न लाहे[८] ॥ १४ ॥

वे प्रियतम[४] प्रभु तेरे भीतर ही हैं[५]। तू अन्तर्मुख[१] होकर देख[३], तुझे प्राप्त होंगे। हमें भीतर ही मिले[२] हैं। अब[६] अपने[७] मन में उस परमेश्वर की कृपा का अनुभव करना कभी भी मत छोड़[८] ।

दादू झांती[१] पाये[२] पसु[३] पिरी[४], हांणें[५] लाइ[६] न बेर ।
साथ सभोई[७] हल्लियो[८], पोइ[९] पसंदो[१०] केर[११] ॥ १५ ॥

इति चितावनी का अंग समाप्त ॥ ९ ॥ सा. १०११ ॥

प्रियतम[४] प्रभु को अन्तर्मुख[१] होकर देख[३], तुझे प्राप्त होंगे, हमें भीतर ही प्राप्त[२] हुये हैं। अब[५] देर मत लगा[६], तेरे साथी सभी[७] चले[८] गये हैं। तू पीछे[९] मायिक संसार में क्या[११] देख[१०] रहा है ?

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका चेतावनी का अंग समाप्त ॥ ९ ॥

अथ मन का अंग १०

चेतावनी सुनकर मानव के हृदय में मनो-निग्रहादिक मन विषयक अनेक प्रश्न उठते हैं। इसलिए अब ''मन का अंग'' कहने में प्रवृत्त मंगल कर रहे हैं—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत: ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक मन के विकारों से पार होकर ज्ञान द्वारा परब्रह्म को प्राप्त होता है उन निरंजन राम, सद्गुरु और सर्व संतों को हम अनेक प्रणाम करते हैं।

दादू यहु मन बरजी बावरे, घट में राखी घेरि ।
मन हस्ती माता बहै, अंकुश दे दे फेरि ॥ २ ॥

२ में मनोनिरोध की प्रेरणा कर रहे हैं—हे अज्ञात तत्त्व साधक ! यह मन कुकर्म में जा रहा है, इसे कुकर्मों का फल दु:खदायी दिखा कर रोक। यह मन-हस्ती विषय-मद से मस्त होकर संसार वन में जा रहा है। इसे संसार को मिथ्या बताने वाले वैराग्य-वर्धक सद्गुरु के वचन रूप अंकुश मार-मार कर परब्रह्म की ओर लौटा तथा हृदयस्थ आत्मस्वरूप ब्रह्म में ही निरंतर स्थिर कर।

दादू तन मन के गुण छाड़ि सब, जब होइ नियारा ।
तब अपने नैनहुँ देखिये, परकट पीव प्यारा ॥ १३ ॥

जब जीव शरीर के हिंसादि और मन के कामादि सब गुणों को त्याग कर देहादि संसार से अलग हो जाता है, तब अपने विचार-नेत्रों से वा बाह्य नेत्रों से भी अपने प्रियतम परब्रह्म स्वामी को प्रत्यक्ष ही देखता है।

दादू झांती[१] पायें[२] पसु[३] पिरी[४], अंदर सो आहे[५] ।
होणी[६] पाणे[७] बिच्च में, महर न लाहे[८] ॥ १४ ॥

वे प्रियतम[४] प्रभु तेरे भीतर ही हैं[५]। तू अन्तर्मुख[१] होकर देख[३], तुझे प्राप्त होंगे। हमें भीतर ही मिले[२] हैं। अब[६] अपने[७] मन में उस परमेश्वर की कृपा का अनुभव करना कभी भी मत छोड़[८] ।

दादू झांती[१] पाये[२] पसु[३] पिरी[४], हांणें[५] लाइ[६] न बेर ।
साथ सभोई[७] हल्लियो[८], पोइ[९] पसंदो[१०] केर[११] ॥ १५ ॥

इति चितावनी का अंग समाप्त ॥ ९ ॥ सा. १०११ ॥

प्रियतम[४] प्रभु को अन्तर्मुख[१] होकर देख[३], तुझे प्राप्त होंगे, हमें भीतर ही प्राप्त[२] हुये हैं। अब[५] देर मत लगा[६], तेरे साथी सभी[७] चले[८] गये हैं। तू पीछे[९] मायिक संसार में क्या[११] देख[१०] रहा है ?

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका चेतावनी का अंग समाप्त ॥ ९ ॥

अथ मन का अंग १०

चेतावनी सुनकर मानव के हृदय में मनो-निग्रहादिक मन विषयक अनेक प्रश्न उठते हैं। इसलिए अब ''मन का अंग'' कहने में प्रवृत्त मंगल कर रहे हैं—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत: ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक मन के विकारों से पार होकर ज्ञान द्वारा परब्रह्म को प्राप्त होता है उन निरंजन राम, सद्गुरु और सर्व संतों को हम अनेक प्रणाम करते हैं।

दादू यहु मन बरजी बावरे, घट में राखी घेरि ।
मन हस्ती माता बहै, अंकुश दे दे फेरि ॥ २ ॥

२ में मनोनिरोध की प्रेरणा कर रहे हैं—हे अज्ञात तत्त्व साधक ! यह मन कुकर्म में जा रहा है, इसे कुकर्मों का फल दु:खदायी दिखा कर रोक। यह मन-हस्ती विषय-मद से मस्त होकर संसार वन में जा रहा है। इसे संसार को मिथ्या बताने वाले वैराग्य-वर्धक सद्गुरु के वचन रूप अंकुश मार-मार कर परब्रह्म की ओर लौटा तथा हृदयस्थ आत्मस्वरूप ब्रह्म में ही निरंतर स्थिर कर।

हस्ती छूटा मन फिरे, क्यों ही बँध्या न जाइ ।
बहुत महावत पच गये, दादू कछु न वशाइ ॥ ३ ॥

३ में मन की शक्ति का परिचय दे रहे हैं—कालादि मद से मस्त हुआ मन-हस्ती जब मर्यादा-निगड़ से खुलकर विषय वन में फिरता है, तब तीव्र वैराग्य और सतत अभ्यास बिना अन्य किसी भी उपाय से नहीं बांधा जाता। उसको बांधने के लिए, तीव्र वैराग्य और अभ्यास से रहित, अनेक साधक रूप महावत अन्य नाना साधन रूप प्रयत्न करके थक गये किन्तु उनका कुछ भी वश न चला-वे उसे वश में न कर सके।

जहाँ तैं मन उठ चले, फेरि तहाँ ही राखि ।
तहँ दादू लै लीन कर, साध कहैं गुरु साखि ॥ ४ ॥

४-५ में मनोनिग्रह का उपाय बता रहे हैं—साधक ! जिस आत्मा की सत्ता प्राप्त करके यह मन अपनी अप्रकट अवस्था से प्रकट होकर विषयों की ओर चले, तब इसको विषयों से पीछे लौटा कर तथा इसकी अप्रकटावस्था में ही इसे रोककर, आत्म चिन्तन द्वारा उसी आत्मा के स्वरूप में लीन कर। मन को जीतने वाले संत मनो-निग्रह का यही उपाय कहते हैं और सद्गुरु की भी इसमें साक्षी है।

थोरे थोरे हठ किये, रहेगा ल्यौ लाइ ।
जब लागा उनमनि सौं, तब मन कहीं न जाइ ॥ ५ ॥

४ में बताई हुई रीति से किंचित २ रोकने का अभ्यास शनैः-शनैः करते रहने से मन अपनी वृत्ति आत्म-स्वरूप ब्रह्म में लगाकर रहने लगेगा। इस प्रकार अभ्यास की प्रौढ़ावस्था में जब सहजावस्था रूप उनमनी नामक समाधि में लगेगा, तब उस अवस्था को छोड़ कर यह मन सांसारिक विषयों के किसी भी प्रदेश में नहीं जायगा। इस लोक और स्वर्ग के भोगों की इच्छा न करेगा, निरंतर ब्रह्म में ही लीन रहेगा।

आडा दे दे राम को, दादू राखे मन ।
साखी दे सुस्थिर करे, सोई साधू जन ॥ ६ ॥

६-७ में मनोनिग्रह करने वाले श्रेष्ठ साधक का परिचय दे रहे हैं—जो विषयों में जाते हुये मन का राम-नाम-स्मरण रूप आड़ लगा कर स्वस्थान में ही रोक लेता है और गुरु-वेदादि के ज्ञान-वैराग्य प्रधान वचन साक्षी द्वारा समझा कर सम्यक् ब्रह्म में ही स्थिर करता है, वही श्रेष्ठ संत है।

सोई शूर जे मन गहै, निमष न चलने देइ ।
जब ही दादू पग भरे, तब ही पाकड़ लेइ ॥ ७ ॥

जो विषयों में जाते हुये मन को विषयों का मिथ्यात्व और भगवद् भजन का लाभ दिखाकर भगवत् स्मरण द्वारा ग्रहण कर लेता है तथा भगवत् स्वरूप से एक पलक भी दूर नहीं जाने देता, कदाचिद् विषयों की ओर वासना-पैर उठाता भी है, तो उसी क्षण अनासक्ति रूप हाथ से पकड़ लेता है, वही साधक वीर माना जाता है।

जेती लहर समुद्र की, ते ते मनहि मनोरथ मार।
बैसे सब संतोष कर, गह आतम एक विचार ॥ ८ ॥

८-१० में मनोनिग्रह का उपाय कह रहे हैं—जैसे समुद्र की लहरें अपार हैं वैसे ही मन के मनोरथ अपार हैं। उन सब मनोरथों को मार कर, संतोष और ब्रह्म विचार द्वारा अद्वैत आत्म स्वरूप ब्रह्म को ग्रहण करके बैठता है—ब्रह्म भिन्न वृत्ति नहीं होने देता, तब ही मन निरुद्ध होता है।

दादू जे मुख मांहीं बोलतां, श्रवणहुँ सुनतां आइ ।
नैनहुँ माँहीं देखतां, सो अंतर उरझाइ ॥ ९ ॥

जो वाक् इन्द्रिय रूप मुख में आकर यथा योग्य बोलता है, श्रवण इन्द्रिय में आकर सम्यक् सुनता है, नेत्र इन्द्रिय में आकर देखता है, जिसके बिना इन्द्रियां अपना काम करने में समर्थ नहीं होतीं, वही मन है। उसे ही अन्तरात्मा में लगा। ऐसा अभ्यास करने से मन निरुद्ध होगा।

दादू चुम्बक देखि कर, लोहा लागे आइ ।
यों मन गुण इन्द्री एक सौं, दादू लीजे लाइ ॥ १० ॥

जैसे चुम्बक पत्थर को समीप देख कर उसके आस पास का लोहा उसी के आकर लग जाता है वैसे ही गुरु उपदेश के द्वारा आत्मा के स्वरूप को जान कर मन और मन के गुण मननादि तथा इन्द्रियादि सभी को अद्वैत आत्मा के स्वरूप में ही लगा देना चाहिए। ऐसा करने से मन निरुद्ध हो जाता है।

मन का आसन जे जिव जाने, तो ठौर ठौर सब सूझे।
पंचों आनि एक घर राखे, तब अगम निगम सब बूझे ॥ ११ ॥

११-१२ में मन स्थिरता पूर्वक ज्ञान का फल बता रहे हैं—यदि मन के आश्रय रूप आसन आत्म स्वरूप ब्रह्म को जीव जान जाय तो प्रत्येक स्थान की सभी वस्तुओं में उसे ब्रह्म ही भासने लगता है और पंच ज्ञानेन्द्रियों को उनके विषयों से लौटा कर एक अद्वैत ब्रह्म-परायण ही रख सके तब तो, मन इन्द्रियों के अविषय, वेद के सर्वस्व ब्रह्म विषयक सभी रहस्य समझने लगता है।

बैठे सदा एक रस पीवे, निर्वैरी कत झूझे ।
आत्म राम मिले जब दादू, तब अंग न लागे दूजे ॥ १२ ॥

जब मन स्थिर होकर सदा एक अद्वैत ब्रह्म चिन्तन-रस का पान करता है, तब वह स्वस्वरूप ब्रह्म को जानकर निर्वैरी हो जाता है। अत: कहीं किसी से भी शास्त्र विषयक वादविवाद रूप युद्ध नहीं करता। जब आत्म स्वरूप राम की प्राप्ति हो जाती है, तब उसका मन द्वैत के स्वरूप में तो लगता ही नहीं।

जब लग यहु मन थिर नहीं, तब लग परस न होइ ।
दादू मनवा थिर भया, सहज मिलेगा सोइ ॥ १३ ॥

१३ में कहते हैं—मन स्थिरता से ही प्रभु प्राप्त होते हैं—जब तक भगवद् भजन में मन

स्थिर नहीं होता तब तक परमात्मा का मिलन नहीं होता और जब स्थिर हो जाता है, भजन को छोड़ कर विषयों में नहीं दौड़ता, तब अनायास ही ब्रह्म साक्षात्कार हो जाता है।

दादू बिन अवलम्बन क्यों रहै, मन चंचल चल जाइ।
सुस्थिर मनवा तो रहै, सुमिरण सेती लाइ ॥ १४ ॥

१४ में मन स्थिरता का साधन कह रहे हैं—यह चंचल मन बिना किसी आश्रय के स्थिर नहीं रह सकता, तत्काल ही विषयों में दौड़ जाता है। जब इसे हरि-स्मरण में लगाया जाय तब ही यह मन सुस्थिर रहता है।

मन स्थिर कर लीजे नाम, दादू कहै तहाँ ही राम ॥ १५ ॥

१५ में मन स्थिर होने से साक्षात्कार होता है यह कह रहे हैं—जहां मन को राम के नाम में स्थिर करके नाम स्मरण करोगे, वहां ही राम का साक्षात्कार हो जायगा।

हरि सुमिरण सौं हेत कर, तब मन निश्चल होइ ।
दादू बेध्या प्रेम रस, बीष[१] न चाले सोइ ॥ १६ ॥

१६-१९ में मनोनिग्रह का उपाय कह रहे हैं—हरि स्मरण से प्रेम करो तब ही मन स्थिर होगा। जब मन भगवत् प्रेम-रस से विद्ध हो जायगा तब भगवद् भजन को छोड़कर विषय की ओर या दूसरी ओर एक पग[१] भी न उठा सकेगा=अन्य संकल्प नहीं कर सकेगा।

जब अंतर उरझा एक सौं, तब थाके सकल उपाइ ।
दादू निश्चल थिर भया, तब चल कहीं न जाइ ॥ १७ ॥

जब मन आन्तर आत्म स्वरूप अद्वैत ब्रह्म के ध्यान में फँस जाता है तब बहिर्मुख करने के उपाय विषय-वासनादि उसे बहिर्मुख करने में सफल नहीं होते। जब उसकी ब्रह्माकार वृत्ति निश्चल होकर ब्रह्म में स्थिर होती है तब वह ब्रह्म से चलकर लोक-परलोकादि के विषयों में कहीं भी नहीं जाता।

दादू कौवा बोहित[१] बैस कर, मंझ समंदाँ जाइ।
उड़ उड़ थाका देख तब, निश्चल बैठा आइ ॥ १८ ॥

प्राचीन काल में समुद्र यात्रा करने वाले दिशा ज्ञान के लिए अपने साथ काक पक्षी रखते थे और समुद्र में दूर जाकर उसे छोड़ देते थे। वह उड़-उड़ कर थक जाता था तब जहाज के बांस के स्तंभ पर अपने देश की ओर मुख करके बैठ जाता था। उसीके रूपक से कह रहे हैं— मन-काक जब आत्मज्ञान-जहाज[१] पर बैठकर संसार-समुद्र के वास्तविक-विचार मध्य देश में चला जाता है, तब उसे संसार असत्य भासने लगता है। फिर उसमें सत्यता को देखने के लिए बारंबार विचार-उड़ान लगाकर थक जाता है, किन्तु उसमें सत्यता नहीं मिलती, इसलिए निश्चल होकर ज्ञान रूप जहाज पर बैठ जाता है। इसी प्रकार हमारा मन निश्चल होकर आत्म-स्वरूप ज्ञान में ही आ बैठा है।

यहु मन कागद की गुड़ी, उड़ी चढ़ी आकास ।
दादू भीगे प्रेम जल, तब आइ रहे हम पास ॥ १९ ॥

यह मन-पतंग आत्म रूप उड़ाने वाले की सत्ता से वासना-वायु द्वारा उड़कर विषयाकाश में चढ़ गया है किन्तु भाग्यवश सत्संग बादल से भगवत् प्रेम-जल की वृष्टि द्वारा भीग जाय=भक्ति प्राप्त हो जाय तो पुन: हमारे आत्म स्वरूप ब्रह्म के पास ही आकर स्थिरता से ब्रह्म-परायण होकर ही रहेगा।

दादू खीला गार का, निश्चल थिर न रहाइ ।
दादू पग नहिं साच के, भरमै दह दिशि जाइ ॥ २० ॥

२० में कहते हैं—सांसारिक विषयों में स्थित मन स्थिर नहीं होता—जैसे कीचड़ में कीला रोपने पर भी निश्चल नहीं रह सकता, वैसे ही मन सत्य स्वरूप भगवत् चरणों का आश्रय लिये बिना विषय-वासना से नाना योनियों में जाकर दश दिशा रूप संसार में भ्रमण करता रहता है, स्थिर नहीं हो सकता।

तब सुख आनन्द आतमा, जे मन थिर मेरा होइ।
दादू निश्चल राम सौं, जे कर जाने कोइ ॥ २१ ॥

२१-२२ में मन स्थिरता का लाभ बता रहे हैं—जो कोई राम से सम्बन्ध करा करके मन को निश्चल करना जानता हो, उस महानुभाव की कृपा से मेरा मन राम के स्वरूप में स्थिर हो जाय, तब ही आत्मानन्द रूप परमसुख मुझे प्राप्त हो सकता है।

मन निर्मल थिर होत है, राम नाम आनन्द ।
दादू दर्शन पाइये, पूरण परमानन्द ॥ २२ ॥

जब मन निष्काम कर्म द्वारा निर्मल होकर स्थिर होता है तब ही राम-नाम चिन्तन के शास्त्र और संतों द्वारा कथित भजनानन्द प्राप्त होता है। फिर ब्रह्म-साक्षात्कार होकर परिपूर्ण रूप से ब्रह्मानन्द रूप परमानन्द प्राप्त होता है।

विषय-विरक्ति

दादू यों फूटे तैं सारा भया, संधे संधि मिलाइ ।
बाहुड़[२] विषय न भूंचिये[१], तो कबहुँ फूट न जाइ ॥ २३ ॥

२३-२६ में वैराग्य का लाभ बता रहे हैं—विषयासक्ति चोट द्वारा भगवत् चिन्तन से टूटे हुये मन को पूर्व कथित साधन पद्धति और वैराग्य द्वारा पुन: भगवन्नाम में स्थिरता रूप सारापन साधकों को प्राप्त हुआ है और यह स्थिरता मन और परमात्मा को मिला देती है। उनकी भेद रूप स्थिति नहीं रहती, मन प्रभु में लय हो जाता है। यदि पुन: विषयों की ओर बदल[२] कर विषय भोगने[१] में आसक्त नहीं हो तो कभी भी जीव, परमात्मा से अलग होकर नाना योनि में नहीं जा सकता।

दादू यहु मन भूला सो गली, नरक जाण के घाट।
अब मन अविगत नाथ सौं, गुरु दिखाई बाट ॥ २४ ॥

जब सद्गुरु ने वैराग्य और अभ्यास के उपदेश द्वारा भगवत् प्राप्ति का मार्ग दिखा दिया, तब यह संसार-सागर के नरक रूप घाट को जाने वाली विषयासक्ति रूप गली, जिसमें बारंबार जाता था, उसे भूल गया=दु:खप्रद जानकर त्याग दिया और अब इन्द्रियों के अविषय अपने स्वामी परमात्मा के चिन्तन में ही लगा रहता है।

दादू मन शुध साबित आपना, निश्चल होवे हाथ।
तो इहाँ ही आनन्द है, सदा निरंजन साथ ॥ २५ ॥

यदि अपना मन शुद्ध और सम्यक् निश्चल होकर अपने अधीन रहे तो इस वर्तमान शरीर में ही निरंतर निरंजन ब्रह्म के साथ अभेद होने से प्राप्त होने वाला ब्रह्मानन्द प्राप्त हो सकता है।

जब मन लागे राम सौं, तब अनत काहे को जाइ ।
दादू पाणी लौंण ज्यों, ऐसे रहै समाइ ॥ २६ ॥

जब मन निष्काम कर्मों द्वारा शुद्ध और भगवद् भजन द्वारा स्थिर होकर निरंजन राम के स्वरूप में लीन होगा तब राम को छोड़कर अन्य सांसारिक विषयादि में किस लिये जायगा ? सुख की अभिलाषा को लेकर जाता है, सो परम-सुख उसे वहां ही प्राप्त है। इसलिए अन्य में जाने का उसे अवसर ही नहीं मिलता। वह तो जैसे नमक जल में एक होकर रहता है वैसा ही ब्रह्म में समाकर रहता है।

करुणा

सो कुछ हम तैं ना भया, जापर रीझे राम।
दादू इस संसार में, हम आये बेकाम ॥ २७ ॥

२७-३२ में मनोनिग्रह में असफल साधक का पश्चात्ताप दिखा रहे हैं—जिस मनोनिग्रह पूर्वक भक्ति रूप साधना पर राम प्रसन्न होते हैं वह तो हमसे कुछ भी नहीं हो सकी, इसलिए इस संसार में मानव शरीर धारण करके हमारा आना व्यर्थ ही हुआ।

क्या मुँह ले हँस बोलिये, दादू दीजे रोइ ।
जन्म अमोलक आपना, चले अकारथ खोइ ॥ २८ ॥

हमें अपने मनोनिग्रह रूप साधन में सफलता तो मिली नहीं, अत: हम किस मुख से हँसकर भगवत् प्राप्ति सम्बन्धी वार्त्ता करें। हमें तो असफलता के कारण रोना ही आता है। खेद है—हम अपने अमूल्य मनुष्य जन्म को व्यर्थ ही खोकर पुन: जन्म मरण रूप संसार में ही चले जा रहे हैं।

जा कारण जग जीजिये, सो पद हिरदै नांहि ।
दादू हरि की भक्ति बिन, धिक् जीवन कलि मांहि ॥ २९ ॥

जगत में जिसके लिए जीना चाहिए, वह भगवत् पद और भगवद् भक्ति तो हमारे हृदय में है नहीं और हरि की भक्ति बिना इस कलियुग में धिक्कार के योग्य ही हैं। कारण, योग-यज्ञादि साधन तो कलियुग में सम्यक् होते नहीं और भक्ति हो नहीं सकी, अत: धिक्कार ही है।

कीया मन का भावता, मेटी आज्ञाकार ।
क्या ले मुख दिखलाइये, दादू उस भरतार ॥ ३० ॥

हम भगवान् की आज्ञा और ऋषियों की बाँधी हुई मर्यादा को तोड़कर मन को प्रिय लगने वाले ही काम करते रहे। अत: उस विश्व का भरण-पोषण करने वाले हमारे स्वामी को कौनसी सफलता का आश्रय लेकर मुख दिखावें ? हम उनके आगे जाने योग्य ही नहीं हैं।

इन्द्री स्वारथ सब किया, मन माँगे सो दीन्ह ।
जा कारण जग सिरजिया, सो दादू कछू न कीन्ह ॥ ३१ ॥

हमने इन्द्रियों को तृप्त करने रूप स्वार्थ के लिए तो सभी अर्थ, अनर्थ रूप कार्य किये और मन ने जो भी माँगा, वही उसे दिया। धर्माधर्म का कुछ भी विचार नहीं रखा, किन्तु जिस कार्य के लिए ईश्वर ने जगत् में हमें मनुष्य रूप से रचा, वह मनोनिग्रह पूर्वक भगवद्-भक्ति कुछ भी नहीं की। अत: हम पश्चात्ताप के योग्य ही हैं।

कीया था इस काम को, सेवा कारण साज ।
दादू भूला बंदगी, सरा न एकौ काज ॥ ३२ ॥

यह मनुष्य शरीर रूप साज ईश्वर ने इस काम के लिए रचा था—इसमें मनोनिग्रह पूर्वक मेरी भक्ति करेगा किन्तु ईश्वर भक्ति को तो भूल गया और सांसारिक विषय सुख की ओर जा रहा है। परन्तु याद रख ऐसा करने वालों का परमार्थ और व्यवहार रूप दोनों कार्यों में से एक भी पूर्ण नहीं हुआ है, तब तेरा कैसे होगा ? यही साखी दूल्हा बने रज्जबजी को कही थी, जिससे वे तत्काल विरक्त हो गये थे। प्रसंग कथा- दृ. सु. सि. त. ३। ५४ में देखो।

मन प्रबोध

बाद हि जन्म गँवाइया, कीया बहुत विकार ।
यहु मन सुस्थिर ना भया, जहँ दादू निज सार ॥ ३३ ॥

३३ में मन की कृति पर पश्चात्ताप करते हुये मन को शिक्षा दे रहे हैं—यह मन विकार बढ़ाने वाले कार्य अधिकतर करता रहा है और जिस हृदय स्थान में अपने स्थूल सूक्ष्म संघात का सार आत्मा है, उसमें अब तक सम्यक् स्थिर नहीं हुआ। अत: हे मन ! तूने यह मानव-जन्म विषय-विकारों में व्यर्थ ही खो दिया।

विषय-अतृप्ति

दादू जनि विष पीवे बावरे, दिन दिन बाढ़े रोग।
देखत ही मर जाइगा, तज विषया रस भोग ॥ ३४ ॥

३४ में विषय-रस त्याग की प्रेरणा कर रहे हैं—हे अज्ञात तत्त्व मानव ! विषय-विष को क्यों पान करता है ? इससे कभी भी तृप्ति नहीं होती। प्रत्युत अधिक भोग प्रवृत्ति से प्रति दिन रोगों

की वृद्धि ही होती है और रोग से पीड़ित होकर देखते-देखते शीघ्र ही मर जायगा। अत: परमसुख चाहता है तो विषय-रस का उपभोग त्याग करके मनोनिग्रह पूर्वक भगवद् भजन कर।

मन हरि भावन

दादू सब कुछ विलसतां, खातां पीतां होइ ।
दादू मन का भावता, कह समझावे कोइ ॥ ३५ ॥

३५-३८ में मन और हरि को प्रिय लगने वाली बातों का विचार कर रहे हैं—अखाद्य खाते हुये, अपेय के पीते हुए, इसी प्रकार निषिद्ध विहित सभी भोगों को भोगते हुये भगवद् दर्शन हो जाते हैं, ये बातें मन को प्रिय लगने वाली हैं। कोई भगवद् भक्ति हीन दुर्जन ही ऐसी उलटी बातें कह कर भोले लोगों को अशुद्ध मार्ग चलना समझाते हैं।

दादू मन का भावता, मेरी कहै बलाइ[१] ।
साच राम का भावता, दादू कहै सुन आइ ॥ ३६ ॥

मन को प्रिय लगने वाली बातें हमारी विचार धारा से विपरीत व्यक्ति ही कहेगा, हम विपत्ति[१] के समय भी नहीं कहेंगे। हम तो राम को प्रिय लगने वाली संयमता पूर्वक— भक्ति, वैराग्य, ज्ञानादि दैवीगुणों की सत्य-सत्य बातें ही कहते हैं। यदि संयमी बनना चाहते हो तो आकर श्रवण करो।

ये सब मन का भावता, जे कुछ कीजे आन ।
मन गह राखे एक सौं, दादू साधु सुजान ॥ ३७ ॥

ज्ञान, भक्ति, वैराग्यादि दैवी गुणों से भिन्न निषिद्ध विषय-भोगादि की बातें और क्रियायें की जाती हैं, वे सभी मन को ही प्रिय लगने वाली हैं, कल्याणकारक नहीं। जो मन को अभ्यास, वैराग्य द्वारा पकड़ कर एक अद्वैत ब्रह्म के चिन्तन में ही संलग्न रखता है, वही उत्तम ज्ञान संपन्न संत है।

जे कुछ भावे राम को, सो तत कह समझाइ ।
दादू मन का भावता, सबको कहैं बनाइ ॥ ३८ ॥

मन को प्रिय लगने वाली बातों की रचना करके तो सभी कोई कहते हैं किन्तु उन से मानव का पतन ही होता है। अत: जो कुछ राम को प्रिय लगने वाली भक्ति ज्ञानादि की बातें हैं, उन्हीं को कहकर अज्ञानियों को वह राम-तत्त्व समझाना चाहिए।

चानक-उपदेश

पैंडे पग चालै नहीं, होइ रह्या गलियार ।
राम रथ निबहै नहीं, खाबे[२] को हुशियार ॥ ३९ ॥

३९ में साधन में सावधान करने का आक्षेप पूर्वक उपदेश कर रहे हैं—यह अजित मन साधक-अश्व, निरंजनराम की प्राप्ति के साधन भक्ति वैराग्यादि-रथ को लेकर परमार्थ-पथ में एक

पैर भी आगे नहीं चलता, बड़ा आलसी हो रहा है किन्तु विषय-उपभोग-दाँणा खाने[२] के लिए तो बहुत होशियार रहता है। ऐसा करना उचित नहीं, राम प्राप्ति साधन सप्रेम सदा करना चाहिए।

पर प्रबोध

दादू का परमोधे आन को, आपण बहिया जात ।
औरों को अमृत कहै, आपण ही विष खात ॥ ४० ॥

४०-४३ में धारणा रहित उपदेशक को सावधान कर रहे हैं—हे अजितमन उपदेशक ! तू अन्यों को आत्म ब्रह्म की एकता का क्या उपदेश कर रहा है ? अपनी ओर तो देख, तू स्वयम् माया-गुण प्रवाह में बहा जा रहा है। तू अवश्य ही अन्यों को तो अमृत के समान बातें कहता है किन्तु स्वयं तो विषय-विष ही खाने में संलग्न है। अत: यह तेरी प्रवृत्ति तेरे लिये हानिकारक ही सिद्ध होगी।

दादू पंचों का मुख मूल है, मुख का मनवा होइ ।
यहु मन राखे जतन कर, साधु कहावे सोइ ॥ ४१ ॥

पंच ज्ञानेन्द्रियों के जीतने में मूल कारण रसना का जीतना है। सात्त्विक मिताहार किया जाय तो सभी इन्द्रियें सतोगुण प्रधान होकर अपने अधीन रहेंगी और रसना इन्द्रिय के जीतने में मूल कारण मन का जीतना है, मन वश रखने से आहार का संयम स्वत: ही हो जाता है। जो इस मन को अभ्यास-वैराग्य-यत्न से अपने आत्म स्वरूप ब्रह्म में ही स्थिर रखता है, वही संत कहलाता है।

दादू जब लग मन के दोइ गुण, तब लग निपना[१] नांहिं ।
द्वै गुण मन के मिट गये, तब निपना मिल मांहिं ॥ ४२ ॥

जब तक मन के काम क्रोधादिक दो-दो गुण रूप द्वन्द्व नष्ट नहीं होते तब तक मन शुद्ध और स्थिर[१] नहीं कहा जाता। जब द्वन्द्व नष्ट हो जायें तो समझो वह शुद्ध और स्थिर हो गया तथा आत्म-स्वरूप ब्रह्म में लय हो जायेगा।

काचा पाका जब लगैं, तब लग अंतर होइ ।
काचा पाका दूर कर, दादू एकै होइ ॥ ४३ ॥

जब तक मन में कभी तो विषय प्राप्ति हित कायरता रूप कच्चापन आ जाता है और कभी विषयों में दोष दृष्टि से वैराग्य रूप पक्कापन आ जाता है तब तक जीव ब्रह्म का भेद ही रहता है। उक्त प्रकार का कच्चा-पक्का पन दूर करके जिसका मन वास्तविक विवेक-वैराग्य पूर्वक निरंतर ब्रह्म-परायण रहता है। वह अपने आत्मा को ब्रह्मरूप जान कर ब्रह्म से अभेद हो जाता है।

मध्य निर्पक्ष

सहज रूप मन का भया, तब द्वै द्वै मिटी तरंग ।
ताता शीला सम भया, तब दादू एकै अंग ॥ ४४ ॥

४४ में कहते हैं— निर्द्वन्द्व निर्पक्ष रूप मध्य स्थिति में मन आता है, तभी ब्रह्म से अभेद होता है। जब मन राग-द्वेषादि से रहित सहज स्वभाव से रहता है तब उसकी काम-क्रोधादि तरंगें शान्त हो जाती हैं और जब सुख, दु:ख रूप शीतोष्ण की प्राप्ति में सुखी-दुखी न होने रूप समता आ जाती है, तब उसी समय साधक एक अद्वैत स्वरूप अपने प्रियतम ब्रह्म से अभेद हो जाता है।

मन

दादू बहु रूपी मन तब लगैं, जब लग माया रंग।
जब मन लागा राम सौं, तब दादू एकै अंग ॥ ४५ ॥

४५-४८ में मन की उभयावस्था का परिचय दे रहे हैं—जब तक मन पर माया का प्रभाव रूप रंग है तब तक ही मन बहुत रूप धारण करता है=जो भी गुण वा वस्तु मन के सामने आती है, मन उसके समान ही हो जाता है, और जब मन निरंजन राम के स्वरूप विचार में लग जाता है, तब एक मात्र रामाकार होकर ही रहता है, अन्य रूप नहीं धारण करता।

हीरा मन पर राखिये, तब दूजा चढ़े न रंग।
दादू यों मन थिर भया, अविनाशी के संग ॥ ४६ ॥

निरंजन राम का चिन्तन रूप हीरा मन में रखना चाहिए। जब निरंतर चिन्तन बना रहेगा तब मायिक राग-द्वेषादि द्वैत रंग मन पर नहीं चढ़ सकेगा। इस प्रकार ही भूतकाल के साधकों का मन अविनाशी ब्रह्म के साथ स्थिर हुआ था।

सुख दुख सब झांई पड़े, तब लग काचा मन।
दादू कुछ व्यापै नहीं, तब मन भया रतन ॥ ४७ ॥

जब तक मन पर सुख-दु:खादि द्वन्द्वों का प्रतिविम्ब पड़ता है=वृत्ति सुखाकार-दु:खाकार होती है तब तक मन साधना में कच्चा है और जिस समय मन पर सुख-दु:खादि द्वन्द्वों का लेश-मात्र भी प्रभाव न पड़ेगा, तब समझना चाहिये—अब मन शुक्ति में स्वाति बिन्दु से बने हुए मोती रूप रत्न के समान ब्रह्म-भाव को प्राप्त हो गया।

पाका मन डोले नहीं, निश्चल रहे समाइ।
काचा मन दह दिशि फिरे, चंचल चहुँ दिशि जाइ ॥ ४८ ॥

साधन द्वारा अपरोक्ष ज्ञान रूप परिपाकावस्था को प्राप्त हुआ मन सांसारिक विषयाशा से चंचल होकर विषयों में नहीं जाता, प्रत्युत निश्चल होकर निरंतर ब्रह्म चिन्तन में ही संलग्न रहता है और साधन-हीनता रूप कचाई से संपन्न कच्चा मन दशों दिशाओं में भ्रमण करता हुआ पामर, विषयी, जिज्ञासु और परोक्ष ज्ञानी के व्यवहार रूप चारों दिशाओं में जाता है=कभी पामर, कभी विषयी, कभी जिज्ञासु और कभी परोक्ष ज्ञानी के समान विचार करता है।

विरक्तता

सींप सुधा रस ले रहै, पीवे न खारा नीर ।
मांहीं मोती नीपजे, दादू बंद शरीर ॥ ४९ ॥

४९ में कहते हैं—वैराग्य हो तभी अपरोक्ष ज्ञान होता है-जैसे शुक्ति स्वाति बिन्दु को लेकर अपना संपुट बन्द कर लेती है, समुद्र का खारा जल नहीं पान करती, तब ही उसमें स्वाति बिन्दु मोती रूप को धारण करती है। (समुद्र का जल उसमें प्रवेश कर जाय तो मोती खराब हो जाता है)। वैसे ही साधक सत्संग-समुद्र से विचार-सुधा-रस ग्रहण करके अपने मन को विषय-प्रवाह में जाने से वैराग्य द्वारा बन्द करके निरंतर ब्रह्म-चिन्तन में ही संलग्न रहता है तब उसमें अपरोक्ष-ज्ञान-रूप मोती अवश्य उत्पन्न होता है।

मन

दादू मन पंगुल भया, सब गुण गये बिलाइ ।
है काया नव यौवनी, मन बूढ़ा ह्वै जाइ ॥ ५० ॥

५०-५१ में अपरोक्ष-ज्ञान प्राप्त मन की अवस्था बता रहे हैं—अपरोक्ष-ज्ञान प्राप्त होते ही आशा-तृष्णा रूप पैर टूट जाने से मन पंगु हो जाता है और कामादि सभी गुण उसे त्याग देते हैं। इस समय साधक का शरीर तो नव यौवन सम्पन्न दिखाई देता है किन्तु मन अति वृद्ध हो जाता है=अति वृद्ध पुरुष के शरीर की प्रकृति के समान उसकी प्रवृत्ति रुक जाती है।

दादू कच्छप अपने कर लिये, मन इन्द्री निज ठौर ।
नाम निरंजन लाग रहु, प्राणी परहर और ॥ ५१ ॥

जैसे कछुआ अपने अंगों को अपनी ढाल के नीचे ले आता है वैसे ही अपरोक्ष-ज्ञान को प्राप्त प्राणी का मन अन्य सांसारिक विषयों को त्याग कर तथा अपनी इन्द्रियों को बाह्य विषयों से खींच कर ब्रह्मात्मा रूप निजस्थान पर ले आता है और ब्रह्मात्मा के अभेद चिन्तन में ही संलग्न रहता है। हे साधक प्राणी ! तू भी अन्य सबको त्याग कर निरंजन ब्रह्म के नाम चिन्तन में ही लगा रह।

याचक

मन इन्द्री अंधा किया, घट में लहर उठाइ ।
सांई सद्‌गुरु छाड़ कर, देख दीवाना जाइ ॥ ५२ ॥

५२-५७ में इन्द्रियाधीन तथा मनाधीन मन की अवस्था बता रहे हैं—इन्द्रियों ने हृदय में विषय-उपभोग की लहर उठाकर मन को सत्यासत्य विवेक-नेत्रों से रहित अन्धा कर दिया है। अत: भगवान् और सद्‌गुरु का बताया हुआ कल्याण का मार्ग छोड़ कर तथा विषय-उपभोग में बुराइयों को देखकर भी उन्मत्त हुआ विषयों की ओर ही जाता है।

दादू कहै–राम बिना मन रंक है, याचे तीनों लोक ।
जब मन लागा राम सौं, तब भागे दारिद दोष ॥ ५३ ॥

राम-भजन के बिना मन इन्द्रियों के अधीन होकर संतोष न होने से रंक बन गया है और स्वर्ग, मृत्यु, पाताल इन तीनों में कहीं भी जाय, सभी जगह भोगों की याचना करता है किन्तु किसी-किसी का मन जब राम-भजन में लग जाता है तब उसके भोगाशा रूप दरिद्रता और याचनादि दोष हट जाते हैं।

इन्द्री के आधीन मन, जीव जन्तु सब याचे।
तिणे तिणे के आगे दादू, तिहुं लोक फिर नाचे॥ ५४॥

इन्द्रियाधीन मन, शीतला के वाहन गधा, भैरूं के वाहन कुत्ते आदि सभी जीव जन्तुओं से याचना करता है और अधिक क्या कहें—यह तो तुलसी, विल्व, बेरी आदि वृक्ष तृणों के आगे भी याचना करता हुआ भोगाशा पूर्ति के लिए तीनों लोकों में नाचता फिरता है।

इन्द्री अपने वश करे, सो काहे याचन जाइ।
दादू सुस्थिर आतमा, आसन बैसे आइ॥ ५५॥

जिस साधक का मन साधन, संपन्न होकर इन्द्रियों को अपने वश में कर लेता है वह किस लिये भोगों की याचना करने जायेगा ? उसकी बुद्धि तो ब्रह्म में सम्यक् स्थिर हो जाती है। अत: उसका मन भी अपने ब्रह्मरूप अचल आसन पर आकर स्थिरता पूर्वक बैठ जाता है, विषयाशा में नहीं दौड़ता।

मन मनसा दोनों मिले, तब जीव कीया भांड।
पंचों का फेर्‌या फिरे, माया नचावे रांड॥ ५६॥

इन्द्रियाधीन मन और विचार-हीन बुद्धि जब दोनों मिल जाते हैं तब जीव को भांड-वृत्ति वाला बना देते हैं, फिर तो वह पंचों इन्द्रियों की प्रेरणा से पंचविषयों की प्राप्ति के लिये भांड के समान जन-जन की स्तुति करता फिरता है। इस प्रकार विषय-वासना रूप रांड माया और मायिक पदार्थों के लिए जीव को संसार में नचाती है।

नकटी आगे नकटा नाचे, नकटी ताल बजावे।
नकटी आगे नकटा गावे, नकटी नकटा भावे॥ ५७॥

सुविचार—नाक से रहित विषय-वासना संपन्न बुद्धि रूप नकटी के आगे संतोष-नाक हीन मन रूप नकटा विषय-वासना की पूर्ति के लिए उद्योग-नृत्य करता है और बुद्धि-नकटी उसका समर्थन रूप ताल बजाती है। बुद्धि-नकटी के आगे मन-नकटा विषय प्रशंसा रूप गीत गाता है और बुद्धि-नकटी को मन-नकटा का उक्त गीत गाना प्रिय लगता है। इस प्रकार ये दोनों जीव को विषयों में फंसा कर व्यथित करते हैं।

अन्य लग्न व्यभिचार

पंचों इन्द्री भूत हैं, मनवा क्षेतरपाल।
मनसा देवी पूजिये, दादू तीनों काल॥ ५८॥

५८-५९ में आत्मा से भिन्न के पीछे लगना व्यभिचार है, यह कह रहे हैं—भगवान् से

विमुख विषयासक्त संसारी प्राणी भूत, भविष्यत् और वर्तमान तीनों ही कालों में, पंच-इन्द्रिय रूप, भूत, मन क्षेत्र-पाल, और विषय-वासना रूप मनसा देवी को ही पूजते हैं।

जीवत लूटैं जगत सब, मृतक लूटैं देव।
दादू कहां पुकारिये, कर कर मूये सेव ॥ ५९ ॥

ये पंच इन्द्रिय, मन और वासना जीते जी तो जगत् के जीवों को लूटते ही हैं किन्तु मरने पर भी भूत, भैरव, क्षेत्रपाल और मनसा देवी आदि देव बन कर सभी जगत् को लूटते हैं अर्थात् मनादि के भ्रम से ही भूतादि की पूजा करते हैं। इनके उपद्रव के विषय में हम कहाँ-कहाँ पुकार के कहें, कोई भी नहीं सुनता, प्राय: सभी लोगों के जीव इनकी सेवा करते-करते मर जाते हैं किन्तु भगवान् की ओर उनका ध्यान ही नहीं जाता।

मन

अग्नि धूम ज्यों नीकले, देखत सबै विलाइ।
त्यों मन बिछुटा राम सौं, दह दिशि बीखर जाइ ॥ ६० ॥

६०-६९ में मन की चपलता तथा निग्रहादि विषयक विचार दिखा रहे हैं—जैसे अग्नि से धुआँ निकल कर देखते-देखते सभी अदृश्य हो जाता है वैसे ही निरंजन राम के चिन्तन से अलग हुआ मन दश इन्द्रियों के विषय रूप दशों दिशाओं में फैल कर अदृश्य हो जाता है=विषय के आकार का ही हो जाता है।

घर छाड़े जब का गया, मन बहुरि न आया।
दादू अग्नि के धूम ज्यों, खुर खोज न पाया ॥ ६१ ॥

जैसे अग्नि से निकल कर धुआँ पीछे अग्नि में नहीं आता वैसे ही मन जब से अपने चेतन रूप घर को छोड़ कर विषयों में गया है, तब से पुन: बहिर्मुखता के कारण चेतन में लीन नहीं हुआ। विषयों में ही अदृश्य रहता है अज्ञानियों को उसका कुछ भी पता नहीं लगा है।

सब काहू के होत हैं, तन मन पसरे जाइ।
ऐसा कोई एक है, उलटा मांहिं समाइ ॥ ६२ ॥

मन के विषयों में जाने वाली घटना सभी के यहां होती है। सभी के इन्द्रियरूप शरीर और मन विषय प्राप्ति की अभिलाषा से फैल कर विषयों में जाते हैं। ऐसा भगवद् भक्त कोई विरला ही होता है, जो इन्द्रिय और मन को प्रत्याहार द्वारा विषयों से लौटा कर भीतर स्थित आत्म स्वरूप ब्रह्म में ही लीन करके ब्रह्मानन्द में निमग्न रहे।

क्यों कर उलटा आनिये, पसर गया मन फेरि।
दादू डोरी सहज की, यों आने घर घेरि ॥ ६३ ॥

प्रश्न-यह मन विषयाशा से फैल कर माया के छल में फँस गया है। इसे किस प्रकार लौटाकर आत्म स्वरूप में लगाया जाय ? उत्तर—संकल्प-विकल्प रहित सहजावस्था रूप डोरी से ताड़ित करते हुये घेर कर, इस प्रकार चेतन रूप घर में लावें कि वह पुन: विषयों में न दौड़ सके, ब्रह्माकार ही बना रहे।

दादू साधु शब्द सौं मिल रहै, मन राखे विलमाइ ।
साधु शब्द बिन क्यों रहै, तब ही बीखर जाइ ॥ ६४ ॥

सत्पुरुषों के ज्ञान, भक्ति, वैराग्यादि पूर्ण श्रेष्ठ शब्दों का विचार करता रहे, उन्हीं में अपने मन को रोके रक्खे, क्योंकि यह मन सत्पुरुषों के शब्दों के आश्रय बिना रुक नहीं सकता, इन्द्रियों के साथ होकर तत्काल विषयों में फैल जाता है।

एक निरंजन नाम सौं, कै साधू संगति मांहिं ।
दादू मन विलमाइये, दूजा कोई नांहिं ॥ ६५ ॥

मन को निरंतर निरंजन राम के नाम चिन्तन में और सदा सन्तों की संगति में रखना चाहिए। ये दो ही मनोनिग्रह के सुगम साधन हैं। इन दोनों से मन को रोक कर अद्वैत ब्रह्म में लीन करो। ब्रह्म से भिन्न कुछ भी सत्य नहीं है।

तन में मन आवे नहीं, निश दिन बाहर जाइ।
दादू मेरा जीव दुखी, रहे नहीं ल्यौ लाइ ॥ ६६ ॥

यह मन शरीर के हृदय कमलस्थ ब्रह्म प्रदेश में नहीं आता। बहिर्मुख होकर रात्रि दिन विषयों में ही जाता है। अपनी वृत्ति हृदयस्थ आत्मस्वरूप ब्रह्म में लगाकर स्थिर नहीं रहता। इसी से मेरा हृदय व्यथित रहता है।

तन में मन आवे नहीं, चंचल चहुँ दिशि जाइ।
दादू मेरा जीव दुखी, रहै न राम समाइ ॥ ६७ ॥

यह चंचल मन शरीर में स्थित आत्मस्वरूप ब्रह्म की ओर नहीं आता। विषयाशा से चारों ओर दौड़ता है, यह राम में लय होकर नहीं रहता, इसलिए मेरा हृदय व्यथित रहता है।

कोटि यत्न कर कर मुये, यहु मन दह दिशि जाइ ।
राम नाम रोक्या रहै, नाहीं आन उपाइ ॥ ६८ ॥

अनेक साधक कोटि यत्न करते-करते मर गये किन्तु उनका मन दश इन्द्रियों के विषय रूप दिशाओं में जाता ही रहा। राम नाम के निरन्तर चिन्तन रूप अभ्यास से रोका हुआ, आत्म स्वरूप ब्रह्म में स्थिर रह जाता है। अन्य ऐसा सुगम उपाय कोई भी नहीं है।

यहु मन बहु बकवाद सौं, वायु भूत[1] व्है जाइ।
दादू बहुत न बोलिये, सहजैं रहै समाइ ॥ ६९ ॥

यह मन अति विवादादि करने से वायु रूप[1] हो जाता है=अति चंचल हो जाता है। अत: मनोनिरोध की इच्छा वाले साधक को बहुत नहीं बोलना चाहिए, प्रत्युत निर्द्वन्द्व रूप सहजावस्था द्वारा ब्रह्म में लीन रहना चाहिए।

स्मरण नाम चेतावनी

भूला भोंदू फेर मन, मूरख मुग्ध गँवार ।
सुमिर सनेही आपना, आतम का आधार ॥ ७० ॥

७०-७१ में भगवन्नाम स्मरणार्थ चेतावनी दे रहे हैं—हे विषयों में भूले हुये भोंदू ! अपने मन को प्रत्याहार द्वारा विषयों से लौटा और हे माया से मोहित, सज्जन-सभ्यता से रहित मूर्ख ! आत्मा के आधार अपने संतत स्नेही परमात्मा का स्मरण कर।

मन माणिक मूरख राखि रे, जन जन हाथ न देहु ।
दादू पारिख जौहरी, राम साधु दोइ लेहु ॥ ७१ ॥

रे मूर्ख ! अपने मन-माणिक्य को परमात्मा में ही रख; स्त्री, पुत्र, मित्र, धन, धामादि विषयों के हाथ में मत दे=इनमें मन लगा कर अनर्थ मत कर। ये सब तेरे मन-माणिक्य की परीक्षा नहीं कर पाते। केवल राम और संत ये दो ही तेरे मन-माणिक्य के परीक्षक जौहरी हैं। ये ही तेरे मन के भावना-मूल्य को जानते हैं। अत: तू इन्हीं को अपनाकर इन्हीं को अपना मन दे।

मन

मन मिरगा मारे सदा, ता का मीठा मांस ।
दादू खाबे को हिल्या, तातैं आन उदास ॥ ७२ ॥

७२ में मनोजय-जन्य आनन्द का परिचय दे रहे हैं—साधक अपने मन-मृग को निरन्तर मारता रहता है=उसकी भोग-वासना और मनोरथ रूपी जीवन शक्ति को अभ्यास-वैराग्य द्वारा नष्ट करता रहता है। उक्त जीवन शक्ति के नष्ट होने पर जो विषयों में अनासक्ति और एक तत्त्व पर स्थिरता रूप उसका मांस रहता है, वह बहुत मधुर है, अनासक्ति और स्थिरता पूर्वक भगवत् चिन्तन करने से महान् आनन्द प्राप्त होता है। उस परमानन्द के आस्वादन में साधक अनुरक्त हो जाता है। इसी से अन्य मायिक विषयों से विरक्त हो जाता है।

मन प्रबोध

कह्या हमारा मान मन, पापी परिहर काम ।
विषयों का सँग छोड़ दे, दादू कह रे राम ॥ ७३ ॥

७३-७४ में मन को उपदेश कर रहे हैं—रे पापी मन ! सांसारिक कामनाओं का त्याग कर, विषयासक्ति छोड़ फिर निरंतर निरंजन राम का चिन्तन कर, यह हमारा कहना मान ले।

केता कह समझाइया, माने नहीं निलज्ज ।
मूरख मन समझे नहीं, कीये काज अकज्ज ॥ ७४ ॥

इस मन को अनेकों बार कह-कह कर समझावे तो भी यह निर्लज्ज मानता ही नहीं। यह मूर्ख मन समझाने पर भी नहीं समझता, इसीलिए तो इसने न करने के योग्य कार्य भी कर डाले हैं।

साच

मन ही मंजन कीजिये, दादू दरपण देह ।
मांहीं मूरति देखिये, इहिं अवसर कर लेह ॥ ७५ ॥

७५ में सत्य वचन कह रहे हैं—स्थूल शरीर में स्थित मन-दर्पण को भगवद् भजन द्वारा मांजकर कामादि विकार निकालो फिर उसमें भगवत् मूर्ति देखो। यह कार्य इस मनुष्य शरीर के अवसर में ही सत्संग द्वारा कर लेना चाहिए नहीं तो फिर पश्चात्ताप ही होगा।

अन्य लग्न व्यभिचार

तब ही कारा होत है, हरि बिन चितवत आन।
क्या कहिये, समझै नहीं, दादू सिखवत ज्ञान ॥ ७६ ॥

हरि बिना अन्य चिन्तन व्यभिचार है—जब साधक का मन हरि चिन्तन को छोड़कर अन्य विषयादि के चिन्तन में लगता है तब उसी क्षण मलीन हो जाता है। इस मन के स्वभाव की क्या बात कहें-यह तो ज्ञान सिखाते रहने पर भी नहीं समझता, विषय चिन्तन में लग कर मलीन हो जाता है।

साच

दादू पाणी धोवें बावरे, मन का मैल न जाइ ।
मन निर्मल तब होइगा, जब हरि के गुण गाइ ॥ ७७ ॥

७७-९३ में सत्य उपदेश कर रहे हैं—अज्ञानी प्राणी जल से स्नान करते रहते हैं किन्तु जल से धोने से स्थूल शरीर ही शुद्ध होता है, मन का मैल नष्ट नहीं होता। मन तो तभी निर्मल होगा, जब भगवद् भक्ति की जायेगी।

दादू ध्यान धरे का होत है, जे मन नहिं निर्मल होइ।
तो बक सब ही उद्धरैं, जे इहिं विधि सीझे कोइ ॥ ७८ ॥

यदि मन निर्मल नहीं हो, तब ध्यान करने से भी क्या लाभ है ? उलटी दंभ से हानि ही होती है। दंभ पूर्वक ध्यान करने से यदि मुक्ति रूप सिद्धावस्था को प्राप्त हो जाय तब तो सभी बगुलों का संसार से उद्धार हो जाना चाहिए। वे मच्छी पकड़ने के समय ध्यान तो करते ही हैं।

दादू ध्यान धरे का होत है, जे मन का मैल न जाइ ।
बक मीनी[1] का ध्यान धर, पशू बिचारे खाइ ॥ ७९ ॥

यदि मन का मैल नष्ट नहीं हो तो ध्यान करने से क्या लाभ होता है ? पारमार्थिक लाभ तो कुछ भी नहीं होता। वह तो जैसे बगुला ध्यान करता है और अवसर पाते ही मच्छीं[1] पकड़ कर खा जाता है वैसे ही मलीन-मन व्यक्ति ध्यान तो करते हुये दिखाई देते हैं किन्तु साथ ही बेचारे दीन-हीन पशुओं को भी खा जाते हैं। अत: दयाहीन ध्यान से लाभ नहीं होता।

दादू काले तैं धोला भया, दिल दरिया में धोइ।
मालिक सेती मिल रह्या, सहजैं निर्मल होइ ॥ ८० ॥

हृदय-दरिया के भगवद् भजन-जल से स्नान करके जब मन मलीनता त्याग कर शुद्ध हो जाता है तब परमात्मा रूप अपने स्वामी से मिल कर उसी में स्थिर रहता है। यह हमारा अनुभव है—उक्त मानस स्मरण से मन अनायास ही निर्मल हो जाता है।

दादू जिसका दर्पण उज्वला, सो दर्शन देखे मांहिं ।
जिसकी मैली आरसी[1], सो मुख देखे नांहिं ॥ ८१ ॥

जिसका दर्पण[1] मैला होता है, उसमें मुख साफ नहीं दीखता और जिसका दर्पण साफ होता है उसमें साफ दीखता है वैसे ही जिसका मन-दर्पण शुद्ध होता है, वह अपने हृदय में ही आत्म स्वरूप ब्रह्म का साक्षात्कार करता है। मलीन मन वाला नहीं।

दादू निर्मल शुद्ध मन, हरि रँग राता होइ ।
दादू कंचन कर लिया, काच कहे नहीं कोइ ॥ ८२ ॥

जैसे किसी ने अपने हाथ में सुवर्ण ले रक्खा हो तो उसे काच कोई भी नहीं कहता वैसे ही जिसने अपना मन निर्मल कर लिया है, उसे अशुद्ध कोई नहीं कहता और वह शुद्ध मन हरि-भक्ति-रंग में ही रत होता है, विषयों में नहीं।

यहु मन अपना थिर नहीं, कर नहीं जाने कोइ ।
दादू निर्मल देव की, सेवा क्यों कर होइ ॥ ८३ ॥

यह अपना मन निर्मल और स्थिर नहीं है तथा निर्मल-स्थिर करने का कोई उपाय भी नहीं जानता तब निर्मल निरंजन देव की सेवा मलीन और चंचल मन से किस प्रकार हो सकती है ? ऐसे प्राणी तो ग्राम्य-देवादि की ही उपासना करते हैं।

दादू यहु मन तीनों लोक में, अरस परस सब होइ ।
देही की रक्षा करै, हम जनि भीटे[1] कोइ ॥ ८४ ॥

संसारी जन अपने शरीर की बड़े प्रयत्न से रक्षा करते हैं—"हमें कोई छू[1] न ले।" किन्तु यह मन तो तीनों लोकों में सबके साथ एकमेक होता रहता है, इसकी ओर किसी भी आचारवान् व्यक्ति का ख्याल नहीं है=मन के रोकने का विचार कोई नहीं करता।

दादू देह यतन कर राखिये, मन राख्या नहिं जाइ ।
उत्तम मध्यम वासना, भला बुरा सब खाइ ॥ ८५ ॥

संसारी जन किसी प्रकार लोक-लज्जादि द्वारा देह को तो प्रयत्न करके अस्पर्श्य और अखाद्यादि से बचा लेते हैं किन्तु मन को तो नहीं बचा सकते। अच्छी तथा बुरी वासना सम्पन्न हुआ मन न छूने योग्य सबको जा छूता है और न खाने योग्य सबको खाता रहता है।

दादू हाडों मुख भर्‌या, चाम रह्या लिपटाइ ।
मांहीं जिह्वा मांस की, ताही सेती खाइ ॥ ८६ ॥

विचारहीन प्राणी हड्डी आदि के छू जाने से अपने को अपवित्र मान लेते हैं किन्तु यह नहीं समझते कि—वे सब हमारे शरीर में भी हैं। दाँत हड्डी है, उनसे मुख भरा है। चर्म शरीर पर लिपट ही रहा है और मुख में जिह्वा मांस की है ही, उसी से तो यह पवित्र वस्तुओं का आस्वादन करता है।

नौओं द्वारे नरक के, निश दिन बहै बलाइ ।
शुचि कहां लौं कीजिये, राम सुमिर गुण गाइ ॥ ८७ ॥

दो कान, दो नेत्र, दो नाक, मुख, मलेन्द्रिय और मूत्रेन्द्रिय ये नौओं द्वार मल निकलने के हैं। इनसे रात्रि दिन दु:खप्रद मल बहता ही रहता है। कहो, फिर कहां तक पवित्रता के लिए प्रयत्न किया जाय ? ये मलीन वस्तुएं तो शरीर से दूर हो नहीं सकती। शरीर बना ही इनसे है। अब यदि पवित्र होना चाहता है तो निरंजन राम का स्मरण कर और उन्हीं के गुणों का संकीर्तन कर, जिससे मन निर्मल होगा, मन निर्मल होने से ही प्राणी पवित्र माना जाता है।

प्राणी तन मन मिल रह्या, इन्द्री सकल विकार ।
दादू ब्रह्मा शूद्र घर, कहां रहै आचार ॥ ८८ ॥

जैसे ब्राह्मण वंश में उत्पन्न कोई ब्राह्मण शूद्र के घर में रहता है तब उसका ब्राह्मण के योग्य आचार कहां रहता है ? वैसे ही जब संपूर्ण विकारों से युक्त प्राणी के शरीर और इन्द्रियों में मन मिल कर रहता है तब शरीर और इन्द्रियों के मल से वह कैसे बचेगा ? उसे हरि भजन में लगाया जाय तो शरीरादि के मल उसे विकृत नहीं कर सकेंगे।

दादू जीवे पलक में, मरतां कल्प बिहाइ ।
दादू यहु मन मसखरा, जनि कोई पतियाइ ॥ ८९ ॥

इस मन का निर्विषय रूप मरण होने में तो कल्प व्यतीत हो जाते हैं किन्तु विषय-संबन्ध रूप जीवित होना एक पल में ही हो जाता है। यह मन मसखरा है, जैसे मसखरा मनुष्य हँसी के लिए जो कुछ कह देता है, उसे करता नहीं, वैसे ही मन जो परमार्थ सम्बन्धी संकल्प करता है, उसे पूर्ण कर दे, यह निश्चय नहीं होता। अत: कोई भी साधक इस मन पर विश्वास न करे।

दादू मूवा मन हम जीवित देख्या, जैसे मरघट भूत ।
मूवां पीछे उठ उठ लागे, ऐसा मेरा पूत[१] ॥ ९० ॥

जैसे मरा हुआ मनुष्य श्मशान में भूत होकर लोगों को व्यथित करता है वैसे ही यह मन भी निर्विषय रूप मृत्यु को प्राप्त होकर भी विषय-सम्बन्ध रूप जीवितावस्था में आ जाता है, यह हमने देखा है। यह मन निस्संकल्प हो जाने पर भी विषय प्राप्ति के लिए पुन: संकल्प रूप से उठ-उठ कर विषयों में लग जाता है। यह हमारा मन छोटे पुत्र[१] के समान चंचल है।

निश्चल करतां जुग गये, चंचल तब ही होहि ।
दादू पसरे पलक में, यहु मन मारे मोहि ॥ ९१ ॥

इस मन को निश्चल करते-करते तो युग व्यतीत हो जाते हैं और चंचल तो तत्काल ही होकर एक पल में विषयों में फैल जाता है तथा यह साधक को मायिक पदार्थों से मोहित करके पुन: विषयासक्त करना रूप ताड़ना देता है।

दादू यहु मन मींडका, जल सौं जीवे सोइ ।
दादू यहु मन रिंद[1] है, जनि रु पतीजे कोइ ॥ ९२ ॥

यह मन मेंढक के समान है जैसे मेंढक मर कर भी वर्षा के जल से पुन: जीवित हो जाता है वैसे ही मन भी निर्विषय रूप मत्यु को प्राप्त होने पर भी विषय जल स्पर्श होते ही पुन: विषयासक्ति रूप जीवित भाव को प्राप्त हो जाता है और यह मन है भी स्वेच्छाचारी[1] । अत: इसका कोई भी साधक विश्वास न करे।

मांहीं सूक्षम ह्वै रहे, बाहर पसारे अंग ।
पवन लाग पौढा भया, काला नाग भुवंग ॥ ९३ ॥

जैसे काला सर्प शीतकाल में बाँबी आदि में छिपा रहता है तब तक तो वह कृश रहता है किन्तु उष्णकाल में पूर्वी वायु लगते ही वह पुन: प्रौढ़ावस्था को प्राप्त हो जाता है। वैसे ही यह मन भी गुरु उपदेश और साधन द्वारा जब तक अन्तर्मुख रहता है तब तक तो सूक्ष्म बना रहता है किन्तु बहिर्मुख होते ही पुन: अपने संकल्प-विकल्प अंगों को मायिक प्रपंच में फैला देता है।

आशय-विश्राम

स्वप्ना तब लग देखिये, जब लग चंचल होइ ।
मन निश्चल लागा नाम सौं, तब स्वप्ना नाहीं कोइ ॥ ९४ ॥

९४-१०९ में कहते हैं—प्राणी आशा के अनुसार स्थान में ही जाकर बसता है—जब तक मन चंचल रहता है, तब तक स्वप्न भासता है और जब मन सुषुप्ति में निश्चल हो जाता है, तब स्वप्न नहीं दीखता। वैसे ही जब तक मन निरंजन राम के नाम-चिन्तन में संलग्न नहीं होता तब तक ही संसार-स्वप्न भासता है और नाम में स्थिर होते ही संसार, संसार रूप से नहीं भासता, ब्रह्म रूप से भासता है।

जागत जहँ जहँ मन रहै, सोवत तहँ तहँ जाइ ।
दादू जे जे मन बसै, सोइ सोइ देखै आइ ॥ ९५ ॥

जाग्रतावस्था में मन जिन-जिन कार्यों में संलग्न रहता है, स्वप्नावस्था में भी प्राय: उन २ में ही जाता है। कभी-कभी ऐसे स्वप्न भी आते हैं जिनका वर्तमान जीवन से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है किन्तु वे भी किसी पूर्व जन्म की जाग्रतावस्था के संस्कार से ही आते हैं। अत: जाग्रत में जो-जो मन में रहता है, वही-२ स्वप्नावस्था में आकर देखता है।

दादू जे जे चित बसै, सोइ सोइ आवे चीति।
बाहर भीतर देखिये, जाही सेती प्रीति ॥ ९६ ॥

जाग्रतावस्था में जो जो चित्त में रहता है, स्वप्नावस्था में भी वही-२ चित्त में आता है। जिसके साथ प्रेम होता है वही बाह्य जाग्रतावस्था में और वही आन्तर स्वप्नावस्था में देखने में आता है। अत: प्रीति भगवान् में ही रखनी चाहिए।

श्रावण हरिया देखिये, मन चित ध्यान लगाइ।
दादू केते युग गये, तो भी हस्या न जाइ ॥ ९७ ॥

जैसे कोई श्रावण में अंधा हो जाय तो वह अपने मन में श्रावण की हरियाली का ही ध्यान लगाता रहता है। बहुत समय व्यतीत हो जाने पर भी वह हरियाली मन से दूर नहीं होती। वैसे ही मायिक प्रपंच में अपने ज्ञान नेत्रों को खोकर अंधा हुआ प्राणी अपने मन में मायिक प्रपंच का ही ध्यान लगाता रहता है। कितने ही युग व्यतीत हो गये तो भी अभी तक इस मायिक प्रपंच का ध्यान मन से दूर नहीं होता।

जिसकी सुरति जहाँ रहे, तिसका तहँ विश्राम।
भावै माया मोह में, भावै आतम राम ॥ ९८ ॥

जिसकी वृत्ति जिसमें रहती है, उसकी उसी में जाकर स्थिति होती है, चाहे मायिक मोह में रहे वा आत्मस्वरूप राम में रहे। मायिक मोह में वृत्ति रहने से जन्मादि संसार की प्राप्ति होती है और आत्माराम में रहने से अपने आत्मस्वरूप राम की प्राप्ति होती है। अत: आत्माराम में ही वृत्ति रखनी चाहिए।

जहँ मन राखे जीवतां, मरतां तिस घर जाइ।
दादू बासा प्राण का, जहँ पहली रह्या समाइ ॥ ९९ ॥

लोक में देखा जाता है—जिसका मन पहले जिसमें संलग्न रहता है, आगे चलकर उस प्राणी का निवास वहां ही होता है। वैसे ही जीवितावस्था में विशेष करके जिसमें मन रखा जाता है, मृत्यु होने पर उसका पुनर्जन्म उसी घर में होता है।

जहाँ सुरति तहँ जीव है, जहँ नांहीं तहँ नांहिं।
गुण निर्गुण जहँ राखिये, दादू घर वन मांहिं ॥ १०० ॥

जहां प्राणी की वृत्ति अन्त समय में रहती है, वहां ही जीव चला जाता है और जहां वृत्ति अन्त समय में नहीं रहती, वहां नहीं जाता। अत: स्मरण रखना चाहिए-तुम अपनी वृत्ति गुणमय संसार के किसी घर या वन में रखोगे तो वहां ही जा जन्मोगे और निर्गुण ब्रह्म में रक्खोगे तो निर्गुण ब्रह्म में ही लय हो जाओगे।

जहाँ सुरति तहँ जीव है, आदि अन्त अस्थान।
माया ब्रह्म जहँ राखिये, दादू तहँ विश्राम ॥ १०१ ॥

जहां वृत्ति आदि से अन्त तक लगी रहती है, वही जीव का स्थान बन जाता है। यदि माया में वृत्ति रक्खोगे तो मायिक संसार ही तुम्हारा विश्राम स्थान होगा और ब्रह्म में रक्खोगे तो ब्रह्म विश्राम स्थान होगा।

जहाँ सुरति तहँ जीव है, जीवन मरण जिस ठौर।
विष अमृत जहँ राखिये, दादू नाहीं और ॥ १०२ ॥

जहाँ वृत्ति रहती है वहां ही जीव रहता है और जिस स्थान में वृत्ति रहती है, मरके वहां ही जन्मता है। चाहे विषय-विष में वृत्ति रक्खो वा ब्रह्म-चिन्तनामृत में रक्खो। जिसमें वृत्ति रक्खोगे उसे ही प्राप्त होगे।

जहाँ सुरति तहँ जीव है, जहँ जाने तहँ जाइ।
गम अगम जहँ राखिये, दादू तहाँ समाइ ॥ १०३ ॥

वृत्ति को जहां के पदार्थों का ज्ञान होता है, वहां के पदार्थों में ही जाती है और जहां वृत्ति जाती है, वहां ही जीव भी जाता है। इन्द्रियों की जिसमें गति होती है, ऐसी मायिक सृष्टि के पदार्थों को वृत्ति जानती है और उनमें ही सतत जाती है। उनमें ही वृत्ति रक्खी जाय तो, मायिक संसार में ही समाया रहता है और यदि संत, शास्त्रादि द्वारा अगम ब्रह्म को जान कर ब्रह्म में ही वृत्ति रक्खी जाय तो ब्रह्म में समा जाता है।

मन मनसा का भाव है, अन्त फलेगा सोइ।
जब दादू बाणक[1] बण्या, तब आशय[2] आसन होइ ॥ १०४ ॥

कुछ लोग भक्त न होने पर भी भक्त से दिखाई देते हैं किन्तु अन्त में वही फलेगा, जो उनके मन में छिपा हुआ मनोरथ और बुद्धि का विचार है। ऐसे लोगों का जब मनोरथ सिद्ध होने का योग[1] बैठता है तब अपनी वासना[2] के अनुसार ही वे संसार में फँस कर बैठ जाते हैं और भक्ति का ढोंग छोड़ देते हैं।

जप तप करणी कर गये, स्वर्ग पहूंचे जाइ।
दादू मन की वासना, नरक पड़े फिर आइ ॥ १०५ ॥

अनेक प्रकार से सकाम जप-तपादि कर्त्तव्य कर्म करके अपनी वर्तमान स्थिति से आगे बढ़ गये और स्वर्ग में भी जा पहुँचे किन्तु फिर भी मन की कुत्सित वासना के प्रभाव से नरक में आ पड़े हैं। ऐसे नहुषादि के चरित इतिहास प्रसिद्ध हैं।

पाका काचा ह्वै गया, जीत्या हारै डाव।
अन्त काल गाफिल भया, दादू फिसले पाँव ॥ १०६ ॥

यह मन निर्विषय रूप परिपाकावस्था को प्राप्त होकर भी सूक्ष्म विषय वासना के प्रभाव से पुन: विषयासक्ति रूप कच्ची अवस्था को प्राप्त हो जाता है। यह अपने कामादि विकारों को जीत करके भी मुक्त होने के अवसर पर कामादि से हार जाता है। इस प्रकार अन्तिम सिद्धावस्था के पास पहुँच कर भी सूक्ष्म विषय-वासना के जाग्रत होने से साधक लोग गाफिल होते रहे हैं और

उनके सत्य निष्ठा रूप पैर फिसलते रहे हैं । अत: साधक को मन के धोखे से सदा सचेत रहना चाहिए।

यहु मन पंगुल पंच दिन, सब काहू का होइ।
दादू उतर आकाश तैं, धरती आया सोइ ॥ १०७ ॥

सत्संग, क्लेश और शव आदि को देखने से जब वैराग्य हो जाता है तब यह विषयी मन भी कुछ दिन तो प्राय: सभी का विषयाशा रूप चरण-शक्ति से रहित पंगुल हो जाता है और भगवत् चिन्तन में संलग्न रहता है किन्तु फिर भगवत् चिन्तन रूप आकाश से उतर कर विषय-चिन्तन रूप पृथ्वी पर आ जाता है।

ऐसा कोई एक मन, मरे सो जीवे नांहिं ।
दादू ऐसे बहुत हैं, फिर आवें कलि मांहिं ॥ १०८ ॥

कोई एक ज्ञानी संत का ही ऐसा मन होता है, जो निर्विषय रूप मृत्यु को प्राप्त होकर पुन: विषयासक्ति रूप जीवितावस्था को प्राप्त न हो। ऐसे मन तो बहुत हैं, जो निर्विषय होकर फिर सूक्ष्म विषय-वासना के बल से पाप में पड़ जाते हैं।

देखा देखी सब चले, पार न पहुँच्या जाइ ।
दादू आसन पहल के, फिर फिर बैठे आइ ॥ १०९ ॥

संसार से पार जाने के साधन संतों की देखा-देखी करते तो सब हैं किन्तु देखा-देखी करने वालों में संसार के पार जाकर कोई भी ब्रह्म-स्वरूप को प्राप्त नहीं हुआ। वे लोग तो, पहले जो उनका अज्ञान काल में विषयाशा रूप आसन था, उसी पर लौट-लौट कर आ बैठते हैं-उनकी वृत्ति सूक्ष्म विषय-वासना के बल से विषयों पर ही आ जाती है और वे साधन का उपयोग भी विषय प्राप्ति में ही करते हैं।

जग जन विपरीत

वर्तन एकै भांति सब, दादू संत असंत ।
भिन्न भाव अन्तर घणा, मनसा तहँ गच्छंत ॥ ११० ॥

११० में संत असंत का भेद बता रहे हैं—क्या संत और क्या असंत सभी का बाह्य साधन रूप व्यवहार तो समान ही होता है किन्तु भीतर के भाव की भिन्नता से संत और असंतों में महान् अन्तर है। जिसकी जैसी कामना होती है, वे वहीं जाते हैं। संत ब्रह्म को और असंत जन्मादि संसार को प्राप्त होते हैं।

मन शक्ति

यहु मन मारै मोमिनाँ, यहु मन मारै मीर ।
यहु मन मारै साधकाँ, यहु मन मारै पीर ॥ १११ ॥

१११-११३ में मन की शक्ति का परिचय दे रहे हैं—यह मन धर्मनिष्ठ मोमिन, धर्माचार्य, मीर, साधन-रत साधक और सिद्धावस्था को प्राप्त पीरों को भी विषयों में जाना रूप मार मारता है=इन सबका मन विषयों में दौड़ता है।

दादू मन मारे मुनिवर मुये, सुर नर किये संहार ।
ब्रह्मा विष्णु महेश सब, राखै सिरजनहार ॥ ११२ ॥

मन के द्वारा मुनिवर भी विषय प्रवृत्ति रूप मृत्यु को प्राप्त हुये हैं। देवता और मानवों का भी मन अपनी इच्छा पूर्ति के लिए संहार करता रहता है । अन्यों की तो बात ही क्या ! ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरादि सभी मन के कारण विक्षिप्त हुये हैं। मुनिवरादि की कथाएँ पुराणों में प्रसिद्ध हैं। इस चंचल मन की मार से तो भक्ति द्वारा भगवान् ही रक्षा करते हैं, अन्यथा यह सबको मारता है।

मन बाहे मुनिवर बड़े, ब्रह्मा विष्णु महेश ।
सिध साधक योगी यती, दादू देश विदेश ॥ ११३ ॥

इस मन ने मुनिवरों में बड़े-बड़े मुनियों को भी विषय-प्रसंग द्वारा बहका कर डिगाया है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर को भी क्षुब्ध किया है। सिद्ध, साधक, योगी और यतियों को भी साधन द्वारा प्राप्त अपनी स्थिति रूप देश से डिगाकर विषय रूप विदेश में स्थित किया है।

मन मुखी मान

पूजा मान बड़ाइयां, आदर मांगै मन ।
राम गहै सब परिहरै, सोई साधू जन ॥ ११४ ॥

११४-११५ में स्वेच्छाचारी मनुष्य का परिचय दे रहे हैं—मन की इच्छानुसार चलने वाले संसारी प्राणी का मन अपनी अर्चना, प्रतिष्ठा, प्रशंसा और सत्कार चाहता है किन्तु श्रेष्ठ जन तो वही है जो पूजादि, सबकी इच्छा त्याग कर निरंतर भजन द्वारा राम को ही ग्रहण करता है।

जहँ जहँ आदर पाइये, तहां तहां जिव जाइ ।
बिन आदर दीजे रामरस, छाड़ हलाहल खाइ ॥ ११५ ॥

जहाँ-जहाँ आदर मिलता है वहां-वहां ही संसारी प्राणी जाता है । बिना सत्कार के यदि उसे राम भक्ति-रस पान कराया जाय तो उस सत्संग स्थान को त्याग कर वह विशेष सत्कार प्राप्ति के स्थान में तीव्र विषय-विष को भी खाता है=नारी प्रसंगादि की बातें बड़े प्रेम से कहता-सुनता है ।

करणी बिना कथनी

करणी किरका[१] को नहीं, कथनी अनन्त अपार ।
दादू यों क्यों पाइये, रे मन मूढ़ गँवार ॥ ११६ ॥

११६ में कहते हैं—कथन तुल्य कर्त्तव्य बिना तत्त्व प्राप्त नहीं होता—कोई-कोई ऐसा वाचिक ज्ञानी देखा जाता है—''मैं अनन्त ब्रह्म स्वरूप हूँ।'' ऐसा कहते हुये ब्रह्म सम्बन्धी बातें तो बहुत कहता है किन्तु उसमें साम्यता, सत्यता, असंगतादि धारणा रूप कर्त्तव्य लेश[१] मात्र भी नहीं होता। ऐसे व्यक्ति को ही लक्ष्य करके कह रहे हैं—रे मूढ़ अज्ञानी-मन प्राणी ! इस प्रकार केवल कथन मात्र से ही ब्रह्म तत्त्व कैसे प्राप्त होगा ?

जाया माया मोहनी

दादू मन मृतक भया, इन्द्री अपने हाथ ।
तो भी कदे न कीजिये, कनक कामिनी साथ ॥ ११७ ॥

११७ में साधक को कनक कामिनी के त्याग की प्रेरणा कर रहे हैं । यद्यपि अभ्यास वैराग्यादि साधन द्वारा मन मर गया हो और इन्द्रियां भी अपने अधीन हो गई हों तो भी साधक को कनक-रजतादि माया का संग्रह और कामिनी का संग कभी भी नहीं करना चाहिए। ये दोनों मोहक हैं और मन को पुन: जीवित कर देती हैं।

मन

अब मन निर्भय घर नहीं, भय में बैठा आइ।
निर्भय संग तैं बीछुट्या, तब कायर ह्वै जाइ ॥ ११८ ॥

११८-१२५ में मन विषयक विचार कर रहे हैं—यह मन भयप्रद भोगासक्ति रूप वन में आकर बैठ गया है। इस कारण ही अब इसे भय रहित निजात्म स्थिति रूप घर नहीं मिल रहा है। जब से यह निर्भय निरंजन राम के चिन्तन-संग से अलग होता है, तब से ही कायर हो जाता है=साधन-शौर्य से कामादि को जीतकर निर्भय घर प्राप्त करने में समर्थ नहीं होता।

दादू मन के शीश मुख, हस्त पाँव है जीव।
श्रवण नेत्र रसना रटे, दादू पाया पीव ॥ ११९ ॥

मन की सांसारिक इच्छा के अनुसार शीश-मुखादिक रहते हैं तब तक मन के ही कहलाते हैं किन्तु जिस जीवात्मा ने शास्त्र संतों के उपदेश से शीश को हरि चरणों में झुका कर, मुख को स्तुति गाकर, हाथों को सेवा करके, पैरों को भगवद्धाम सत्संगादि में जाकर, श्रवणों को कथा सुनाकर, नेत्रों को दर्शन कराके, रसना को नाम रटा के भगवत् परायण किया है, उसने अपना स्वामी परमात्मा प्राप्त किया है। सुन्दरदासजी ने मन के अंग इस प्रकार बताये हैं:-

मन गयंद बलवंत, तास के अंग दिखाऊं। काम क्रोध अरु लोभ, मोह चहुँ चरण सुनाऊं ॥
मद मत्सर है शीश, सूंड तृष्णा सु डुलावे। द्वन्द्व दशन है प्रकट, कल्पना कान हिलावै ॥
पुनि द्विविधा दृग देखत सदा, पूंछ प्रकृति पीछे फिरे।
कहि सुन्दर अंकुश ज्ञान के, पीलवान गुरु वश करे ॥

जहँ के नवाये सब नवें, सोइ शिर कर जाण।
जहँ के बुलाये बोलिये, सोई मुख परमाण ॥ १२० ॥

जिस ब्रह्म की सत्ता से सब प्राणी नीचे झुकना आदि क्रिया करने में समर्थ होते हैं वही सब विश्व में शिरोमणि हैं और उसको जो मस्तक नमता है, उस मस्तक को ही श्रेष्ठ जानो। जिसकी सत्ता से सब बोलते हैं, उसी के नामों का उच्चार करता है, वही मुख प्रामाणिक है=श्रेष्ठ है वा वह ब्रह्म ही शिर और मुख है।

जहँ के सुनाये सब सुनें, सोई श्रवण सयान।
जहँ के दिखाये देखिये, सोई नैन सुजान ॥ १२१ ॥

जिसकी सत्ता से श्रवणेन्द्रिय सब कुछ सुनती है, उसी ब्रह्म के स्वरूप सम्बन्धी कथा सुनने में जिस चतुर मानव के श्रवण संलग्न हैं, वे श्रवण श्रेष्ठ हैं। जिसकी सत्ता से नेत्रेन्द्रिय देखती है, उसी ब्रह्म को सर्वत्र देखता है, उस बुद्धिमान् मानव के ही नेत्र श्रेष्ठ हैं। वे ब्रह्ममय ही श्रवण और नेत्र हैं।

दादू मन ही माया ऊपजे, मन ही माया जाइ।
मन ही राता राम सौं, मन ही रह्या समाइ ॥ १२२ ॥

मन के अबोध से ही मन में माया और मायिक प्रपंच उत्पन्न होकर सत्य-सा दीख रहा है और मन में यथार्थ ज्ञान होते ही माया निज कार्य सहित मन से हट जाती है=मन आसक्ति रहित हो जाता है। फिर तो मन अपने आप ही निरंजन राम में अनुरक्त होकर उसी में समाया हुआ रहता है।

मन ही मरणा ऊपजे, मन ही मरणा खाइ।
मन अविनाशी ह्वै रह्या, साहिब सौं ल्यौ लाइ ॥ १२३ ॥

सकाम मन से ही कर्मों द्वारा जन्म-मरणादि होते हैं और निष्काम मन ज्ञान प्राप्ति द्वारा जन्म-मरणादि के कारण अज्ञान को नष्ट करके निरंतर परब्रह्म में अपनी वृत्ति लगाता हुआ अविनाशी ब्रह्मरूप होकर रहता है।

मन ही सन्मुख नूर[1] है, मन ही सन्मुख तेज।
मन ही सन्मुख ज्योति है, मन ही सन्मुख सेज ॥ १२४ ॥

शुद्ध मन के सामने ज्ञान-तेज रहता है=अज्ञान नहीं रहता। शुद्ध और ब्रह्म ज्ञान युक्त मन के सन्मुख निरंतर आत्म स्वरूप[1] रहता है=वह सर्वत्र आत्मा को ही देखता है। ध्यान द्वारा निरुद्ध मन के सामने ब्रह्म ज्योति भासती रहती है। अद्वैत-निष्ठ मन के सन्मुख जीव और ब्रह्म की एकता रूप शय्या सदा रहती है=उसमें जीव ब्रह्म का भेद नहीं भासता।

मन ही सौं मन थिर भया, मन ही सौं मन लाइ।
मन ही सौं मन मिल रह्या, दादू अनत न जाइ ॥ १२५ ॥

इति मन का अंग समाप्त ॥ १० ॥ सा. ११३६ ॥

हमारा मन, मन के द्वारा साधन करने से ही स्थिर हुआ है। अत: हे साधक ! मन के द्वारा साधन करके ही मन को परब्रह्म में लगा। हमारा मन, मन के द्वारा साधन करने से ही निर्विषय होकर परब्रह्म में मिल रहा है, वह अन्य मायिक प्रपंच में नहीं जाता।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका मन का अंग समाप्त: ॥ १० ॥

अथ सूक्ष्म जन्म का अंग ११

मन के अंग के पश्चात् मन के मनोरथ रूप सूक्ष्म जन्म का परिचय देने के लिए ''सूक्ष्म जन्म का अंग'' कथन करने में प्रवृत्त मंगल कर रहे हैं—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत: ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥ १ ॥

जिसकी सत्ता से श्रवणेन्द्रिय सब कुछ सुनती है, उसी ब्रह्म के स्वरूप सम्बन्धी कथा सुनने में जिस चतुर मानव के श्रवण संलग्न हैं, वे श्रवण श्रेष्ठ हैं। जिसकी सत्ता से नेत्रेन्द्रिय देखती है, उसी ब्रह्म को सर्वत्र देखता है, उस बुद्धिमान् मानव के ही नेत्र श्रेष्ठ हैं। वे ब्रह्ममय ही श्रवण और नेत्र हैं।

दादू मन ही माया ऊपजे, मन ही माया जाइ।
मन ही राता राम सौं, मन ही रह्या समाइ ॥ १२२ ॥

मन के अबोध से ही मन में माया और मायिक प्रपंच उत्पन्न होकर सत्य-सा दीख रहा है और मन में यथार्थ ज्ञान होते ही माया निज कार्य सहित मन से हट जाती है=मन आसक्ति रहित हो जाता है। फिर तो मन अपने आप ही निरंजन राम में अनुरक्त होकर उसी में समाया हुआ रहता है।

मन ही मरणा ऊपजे, मन ही मरणा खाइ।
मन अविनाशी ह्वै रह्या, साहिब सौं ल्यौ लाइ ॥ १२३ ॥

सकाम मन से ही कर्मों द्वारा जन्म-मरणादि होते हैं और निष्काम मन ज्ञान प्राप्ति द्वारा जन्म-मरणादि के कारण अज्ञान को नष्ट करके निरंतर परब्रह्म में अपनी वृत्ति लगाता हुआ अविनाशी ब्रह्मरूप होकर रहता है।

मन ही सन्मुख नूर[1] है, मन ही सन्मुख तेज।
मन ही सन्मुख ज्योति है, मन ही सन्मुख सेज ॥ १२४ ॥

शुद्ध मन के सामने ज्ञान-तेज रहता है=अज्ञान नहीं रहता। शुद्ध और ब्रह्म ज्ञान युक्त मन के सन्मुख निरंतर आत्म स्वरूप[1] रहता है=वह सर्वत्र आत्मा को ही देखता है। ध्यान द्वारा निरुद्ध मन के सामने ब्रह्म ज्योति भासती रहती है। अद्वैत-निष्ठ मन के सन्मुख जीव और ब्रह्म की एकता रूप शय्या सदा रहती है=उसमें जीव ब्रह्म का भेद नहीं भासता।

मन ही सौं मन थिर भया, मन ही सौं मन लाइ।
मन ही सौं मन मिल रह्या, दादू अनत न जाइ ॥ १२५ ॥

इति मन का अंग समाप्त ॥ १० ॥ सा. ११३६ ॥

हमारा मन, मन के द्वारा साधन करने से ही स्थिर हुआ है। अत: हे साधक ! मन के द्वारा साधन करके ही मन को परब्रह्म में लगा। हमारा मन, मन के द्वारा साधन करने से ही निर्विषय होकर परब्रह्म में मिल रहा है, वह अन्य मायिक प्रपंच में नहीं जाता।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका मन का अंग समाप्त: ॥ १० ॥

अथ सूक्ष्म जन्म का अंग ११

मन के अंग के पश्चात् मन के मनोरथ रूप सूक्ष्म जन्म का परिचय देने के लिए ''सूक्ष्म जन्म का अंग'' कथन करने में प्रवृत्त मंगल कर रहे हैं—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत: ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥ १ ॥

जिन की कृपा से साधक मन के मनोरथ रूप सूक्ष्म जन्म से पार होकर परब्रह्म को प्राप्त होता है, उन निरंजन राम, सद्गुरु और सर्व संतों को हम अनेक प्रणाम करते हैं।

दादू चौरासी लख जीव की, प्रकृति घट मांहि।
अनेक जन्म दिन के करे, कोई जाने नांहि ॥ २ ॥

२ में सूक्ष्म जन्मों का सामान्य परिचय दे रहे हैं—प्राणी के अन्त:करण में चौरासी लाख योनियों के जीवों के स्वभाव रहते हैं और वे दिन के अल्प काल में भी मनोरथ रूप अनेक जन्म देते रहते हैं, किन्तु इन जन्मों को संसारी प्राणी कोई भी नहीं जान सकता। उच्च कोटि के साधक ही जान पाते हैं।

दादू जेते गुण व्यापें जीव को, ते ते ही अवतार ।
आवागमन यहु दूर कर, समर्थ सिरजनहार ॥ ३ ॥

३-८ में सूक्ष्म जन्मों को विस्तार से बता रहे हैं—इस जीवात्मा के अन्त:करण में जितने गुण प्रकट होते हैं, उतने ही इसके जन्म होते हैं। जैसे शौर्य की प्रधानता जब होती है, तब सिंह का जन्म होता है। ऐसे ही मन में अनेक कामादि प्रकट और लय होते हैं, यही सूक्ष्म जन्म-मरण हैं। हे समर्थ सृष्टिकर्त्ता ईश्वर ! हमारा यह सूक्ष्म जन्म-मरण रूप आना-जाना कृपा करके दूर करें।

सब गुण सब ही जीव के, दादू व्यापैं आइ।
घट मांहीं जामे मरे, कोइ न जाने ताहि ॥ ४ ॥

सभी जीवों के सभी गुण जीव के मन में आकर व्याप्त होते रहते हैं। शरीर में उनका व्याप्त होना और नष्ट होना ही जन्म-मरण है किन्तु उस जन्म-मरण को विचारादि साधनहीन कोई भी प्राणी नहीं जानता।

जीव जन्म जाने नहीं, पलक पलक में होइ।
चौरासी लख भोगवे, दादू लखे न कोइ ॥ ५ ॥

गुण विकारादि के उत्पत्ति-लय रूप जन्म-मरण पलक-पलक में होते ही रहते हैं किन्तु सत्संगादि साधन से रहित बहिर्मुख जीव उनको नहीं जान पाता। इन सूक्ष्म-जन्मादि से प्राणी एक शरीर में स्थित रहते हुये ही चौरासी लक्ष योनियों के सुख-दु:खादि भोग भोगता रहता है किन्तु यह नहीं जान पाता कि अब मैं किस योनि में हूँ। कारण, गुण के तीव्र वेग को बहिर्मुख कैसे जान सकता है ? उसे जानने की शक्ति तो उच्चकोटि के अन्तर्मुख सन्त में ही होती है।

अनेक रूप दिन के करे, यहु मन आवे जाइ।
आवागमन मन का मिटे, तब दादू रहै समाइ ॥ ६ ॥

यह मन दिन के अल्प-काल में भी अनेक मनोरथ रूप आकारों को धारण करता है। एक विषय से दूसरे विषय पर आता है और दूसरे विषय से तीसरे विषय पर जाता है। यदि इस मन का यह आना-जाना मिट जाय तब तो आत्मा ब्रह्म में समा कर अद्वैत रूप से ही रहता है, लेशमात्र भी भेद नहीं रहता।

निश वासर यहु मन चले, सूक्ष्म जीव संहार ।
दादू मन थिर कीजिये, आतम लेहु उबार ॥ ७ ॥

यह मन रात-दिन निरन्तर एक विषय से दूसरे विषय पर और एक संकल्प से दूसरे संकल्प पर जाता रहता है। यही जीवों का सूक्ष्म संहार है। अत: मन को परब्रह्म में स्थिर करके, मन की स्थिरता के द्वारा जीवात्माओं को सूक्ष्म संहार से बचावें, तब ही पूर्ण अहिंसक हो सकते हैं।

यह साखी जीव दया के प्रसंग में ढूंढ़िये जैन सन्तों को कही थी। उन्होंने नत मस्तक होकर इसे स्वीकार किया था।

कबहूं पावक कबहूं पाणी, धर अम्बर गुण बाइ ।
कबहूं कुंजर कबहूं कीड़ी, नर पशुवा ह्वै जाइ ॥ ८ ॥

कभी अग्नि के गुण रूप में, कभी जल के गुण रस में, कभी पृथ्वी के गुण गंध में, कभी आकाश के गुण शब्द में और कभी वायु के गुण स्पर्श में आसक्त होता है। कभी हस्ति के प्रधान गुण काम के अधीन होता है। कभी दूसरों के छिद्र खोजना रूप चींटी के गुण में संलग्न होता है और बहिर्मुख होकर पशु-तुल्य हो जाता है, इसीलिए मानव अपने उक्त सूक्ष्म जन्मों को और उनसे उद्धार होने के उपाय को नहीं जान पाता।

करणी बिना कथनी

शूकर श्वान सियाल सिंह, सर्प रहैं घट मांहि ।
कुंजर कीड़ी जीव सब, पांडे जानैं नांहि ॥ ९ ॥

इति सूषिम जन्म का अंग समाप्त ॥ ११ ॥ सा. ११४५ ॥

९ में कह रहे हैं-साधन रूप कर्त्तव्य के बिना केवल शास्त्र कथन करने वाले पंडित सूक्ष्म जन्मों को नहीं जान सकते। अग्राह्य-ग्रहण वृत्ति रूप शूकर, ईर्ष्या वृत्ति रूप श्वान, भय वृत्ति रूप सियार, शौर्य वृत्ति रूप सिंह, कोप वृत्ति रूप सर्प, काम वृत्ति रूप हस्ति और छिद्रान्वेषण वृत्ति रूप चींटी इत्यादि वृत्ति रूप सभी सूक्ष्म प्राणी शरीर के भीतर अन्त:करण में जन्मते मरते रहते हैं, किन्तु इस सूक्ष्म जन्म-मरण को अन्तरंग साधन हीन बहिर्मुख केवल शब्दार्थ जानने वाले पंडित लोग नहीं जान पाते।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका सूक्ष्म जन्म का अंग समाप्त: ॥ ११ ॥

अथ माया का अंग १२

सूक्ष्म जन्म के अंग के पश्चात् सूक्ष्म जन्मों के कारण ''माया का अंग'' कथन में प्रवृत्त मंगल कर रहे हैं।

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत: ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक माया से पार होकर परब्रह्म को प्राप्त होता है, उन निरंजन राम, सद्गुरु और सर्व सन्तों को हम अनेक प्रणाम करते हैं।

निश वासर यहु मन चले, सूक्ष्म जीव संहार ।
दादू मन थिर कीजिये, आतम लेहु उबार ॥ ७ ॥

यह मन रात-दिन निरन्तर एक विषय से दूसरे विषय पर और एक संकल्प से दूसरे संकल्प पर जाता रहता है। यही जीवों का सूक्ष्म संहार है। अत: मन को परब्रह्म में स्थिर करके, मन की स्थिरता के द्वारा जीवात्माओं को सूक्ष्म संहार से बचावें, तब ही पूर्ण अहिंसक हो सकते हैं।

यह साखी जीव दया के प्रसंग में ढूंढ़िये जैन सन्तों को कही थी। उन्होंने नत मस्तक होकर इसे स्वीकार किया था।

कबहूं पावक कबहूं पाणी, धर अम्बर गुण बाइ ।
कबहूं कुंजर कबहूं कीड़ी, नर पशुवा ह्वै जाइ ॥ ८ ॥

कभी अग्नि के गुण रूप में, कभी जल के गुण रस में, कभी पृथ्वी के गुण गंध में, कभी आकाश के गुण शब्द में और कभी वायु के गुण स्पर्श में आसक्त होता है। कभी हस्ति के प्रधान गुण काम के अधीन होता है। कभी दूसरों के छिद्र खोजना रूप चींटी के गुण में संलग्न होता है और बहिर्मुख होकर पशु-तुल्य हो जाता है, इसीलिए मानव अपने उक्त सूक्ष्म जन्मों को और उनसे उद्धार होने के उपाय को नहीं जान पाता।

करणी बिना कथनी

शूकर श्वान सियाल सिंह, सर्प रहैं घट मांहि ।
कुंजर कीड़ी जीव सब, पांडे जानैं नांहि ॥ ९ ॥

इति सूषिम जन्म का अंग समाप्त ॥ ११ ॥ सा. ११४५ ॥

९ में कह रहे हैं-साधन रूप कर्त्तव्य के बिना केवल शास्त्र कथन करने वाले पंडित सूक्ष्म जन्मों को नहीं जान सकते। अग्राह्य-ग्रहण वृत्ति रूप शूकर, ईर्ष्या वृत्ति रूप श्वान, भय वृत्ति रूप सियार, शौर्य वृत्ति रूप सिंह, कोप वृत्ति रूप सर्प, काम वृत्ति रूप हस्ति और छिद्रान्वेषण वृत्ति रूप चींटी इत्यादि वृत्ति रूप सभी सूक्ष्म प्राणी शरीर के भीतर अन्त:करण में जन्मते मरते रहते हैं, किन्तु इस सूक्ष्म जन्म-मरण को अन्तरंग साधन हीन बहिर्मुख केवल शब्दार्थ जानने वाले पंडित लोग नहीं जान पाते।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका सूक्ष्म जन्म का अंग समाप्त: ॥ ११ ॥

अथ माया का अंग १२

सूक्ष्म जन्म के अंग के पश्चात् सूक्ष्म जन्मों के कारण ''माया का अंग'' कथन में प्रवृत्त मंगल कर रहे हैं।

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत: ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक माया से पार होकर परब्रह्म को प्राप्त होता है, उन निरंजन राम, सद्गुरु और सर्व सन्तों को हम अनेक प्रणाम करते हैं।

साहिब है पर हम नहीं, सब जग आवे जाइ ।
दादू स्वप्ना देखिये, जागत गया बिलाइ ॥ २ ॥

२ में मायिक संसार की असत्यता बता रहे हैं—परब्रह्म सत्य है किन्तु हम शरीर रूप से सत्य नहीं हैं। सभी जगत् के शरीरादि पदार्थ आते जाते हैं, उत्पन्न होते हैं और नष्ट होते हैं। फिर भी जैसे स्वप्न स्वल्पकाल में सत्य-सा भासता है वैसे ही जाग्रत के शरीरादि सत्य से दीखते हैं। परन्तु जागते ही स्वप्न लय हो जाता है, वैसे ही ब्रह्मज्ञान होते ही शरीरादि की सत्यता नष्ट हो जाती है।

माया का सुख पंच दिन, गर्व्यो कहा गंवार ।
स्वप्ने पायो राज धन, जात न लागे बार ॥ ३ ॥

३-८ में मायिक सुख की असत्यता दिखा रहे हैं—अज्ञानी प्राणी ! यह मायिक सुख स्वप्न-सुख के समान क्षणिक है। इस पर क्या गर्व करता है ? जैसे स्वप्न में किसी ने राज्य और महान् धन प्राप्त कर लिया किन्तु उसे जगते ही नष्ट होते क्या देर लगती है, वैसे ही तेरे मायिक सुख को भी नष्ट होते देर न लगेगी।

दादू स्वप्ने सूता प्राणियाँ, कीये भोग विलास ।
जागत झूठा ह्वै गया, ताकी कैसी आस ॥ ४ ॥

सोते समय प्राणी स्वप्न में भोग भोगता है किन्तु निद्रा टूटते ही उसे वे सब मिथ्या ज्ञात होते हैं। वैसे ही आत्म-ज्ञान होने पर मायिक सुख मिथ्या ज्ञात होते हैं। अत: उनकी आशा करना उचित नहीं।

यों माया का सुख मन करै, सेज्या सुन्दरी पास ।
अन्त काल आया गया, दादू होहु उदास ॥ ५ ॥

४ में कहे प्रकार से मन मायिक सुखों का उपभोग करता रहता है। शय्या पर सुन्दरी युवती के पास रहता है किन्तु देहान्त का समय आते ही सभी मायिक सुख इसके हाथ से चले जाते हैं। उस समय इसे बड़ा दु:ख होता है। अत: उस दु:ख की निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति के लिए प्रथम ही विरक्त हो जाना चाहिए।

जे नांहीं सो देखिये, सूता स्वप्ने मांहि ।
दादू झूठा ह्वै गया, जागे तो कुछ नांहि ॥ ६ ॥

अज्ञान निद्रा में प्रसुप्त प्राणी जो सत्य नहीं है, उसी मायिक प्रपंच को सत्य देखता है, किन्तु ज्ञान रूप जाग्रत में तो वह मिथ्या हो जाता है। उसका कुछ भी अस्तित्व नहीं मिलता।

यहु सब माया मृग जल, झूठा झिलमिल होइ ।
दादू चिलका देख कर, सत कर जाना सोइ ॥ ७ ॥

ये सब मायिक भोग मृग-तृष्णा-जल के झिलमिलाहट के समान मिथ्या हैं किन्तु जैसे मृग उस जल के चिलके को देखकर उसके लिए दौड़-दौड़ कर व्यथित होते हैं, वैसे ही अज्ञानी प्राणी मायिक भोगों के क्षणिक सुख रूप चमत्कार को सत्य जानकर उनके लिए नाना

क्लेश उठाते हैं।

झूठा झिलमिल मृग जल, पाणी कर लीया।
दादू जग प्यासा मरे, पशु प्राणी पीया ॥ ८ ॥

मृग-तृष्णा के मिथ्या जल के झिलमिलाहट को मृग-गण सत्य मान लेते हैं, तभी वे उसके लिए दौड़-दौड़ कर दुखी होते हैं। वैसे ही संसार के पशुवत् पामर प्राणी मायिक भोगों के क्षणिक सुख को सत्य मानकर, उसमें आसक्त होते हैं किन्तु अभी तक तृप्त नहीं हुये, भोगाशा से बारंबार जन्म-मरण रूप क्लेश ही पा रहे हैं।

पति पहचान

छलावा छल जायगा, स्वप्ना बाजी सोइ।
दादू देख न भूलिये, यहु निज रूप न होइ ॥ ९ ॥

९ में ब्रह्म रूप स्वामी को पहचानने का संकेत कर रहे हैं—साधको ! जैसे स्वप्न और बाजीगर की इन्द्रजाल-बाजी मिथ्या होती है वैसे ही ध्यान के समय नाना दृश्य और प्रकाश जो दीख-दीख कर छिप जाते हैं वा मायिक सिद्धियां हैं ये सब छलने वाले छलावे हैं। सचेत रहना, ये तुम्हें छल कर ब्रह्म-साक्षात्कार से वंचित रख देंगे। इन्हें देखकर परब्रह्म को मत भूलो। वह छलावा आदि मायिक प्रपंच परब्रह्म नहीं हो सकते, परब्रह्म तो इनका अधिष्ठान है।

माया

स्वप्ने सब कुछ देखिये, जागे तो कुछ नांहिं।
ऐसा यहु संसार है, समझ देख मन मांहिं ॥ १० ॥

१०-१६ में मायिक प्रपंच को मिथ्या बताते हुए ब्रह्म में वृत्ति लगाने की प्रेरणा कर रहे हैं—जैसे स्वप्न में सब कुछ सत्य भासते हैं किन्तु जागने पर लेशमात्र भी सत्य नहीं ज्ञात होते, ऐसा ही यह जाग्रत का संसार है। तू संतों द्वारा बताये ब्रह्मज्ञान को मन में समझकर देख, फिर तो तुझे भी मिथ्या ही भासेगा।

दादू ज्यों कुछ स्वप्ने देखिये, तैसा यहु संसार।
ऐसा आपा जानिये, फूल्यो कहा गँवार ॥ ११ ॥

जैसे स्वप्न में बिना हुये पदार्थ देखे जाते हैं वैसा ही यह संसार है और ऐसा ही इन मायिक पदार्थों में प्राणी का अपनेपन का अभिमान भी मिथ्या ही है। ये देखते-देखते दूसरों के हो जाते हैं। अत: अज्ञानी ! इनको देखकर क्यों भूल रहा है। ब्रह्म में वृत्ति लगा।

दादू जतन जतन कर राखिये, दृढ़ गह आत्मा मूल।
दूजा दृष्टि न देखिये, सब ही सेमल फूल ॥ १२ ॥

अपने मूल ब्रह्म के स्वरूप चिन्तन को विवेक-वैराग्यादि प्रयत्नों द्वारा दृढ़ता से हृदय में रखना चाहिए। ब्रह्म भिन्न मायिक प्रपंच को सत्य दृष्टि से नहीं देखना चाहिए। यह सब सेमल वृक्ष के फूल समान बहकाने वाला है। सेमल के फूल की डोडी को फल समझकर शुक पक्षी, खिल

जाने पर मांस राशि समझकर गिद्ध गण, और सिन्दूर गिरि समझकर अपसरागण बहकते है।

दादू नैनहुँ भर नहिं देखिये, सब माया का रूप ।
तहँ ले नैना राखिये, जहँ है तत्त्व अनूप ॥ १३ ॥

यह जो भी बाह्य दृष्टि से दिखाई दे रहा है, सब माया का ही रूप है। इसे सत्य समझकर अनुराग पूर्ण दृष्टि से नहीं देखना चाहिए। जहां हृदय में उपमा रहित ब्रह्म तत्त्व आत्म रूप से स्थित है, वहां ही निरन्तर अपने विचार रूप नेत्र रखने चाहिए।

हस्ती, हय, वर, धन, देखकर, फूल्यो अंग न माइ।
भेरि[1] दमामा[2] एक दिन, सब ही छाड़े जाइ ॥ १४ ॥

हे अज्ञानी ! तू हाथी, घोड़े, दल-बल, सुवर्णादि धन और द्वार पर बड़े-बड़े ढोल[1] तथा नगारे[2] बजते देखकर फूल रहा है, अपने शरीर में भी नहीं समाता, किन्तु याद रख, एक दिन सबको छोड़कर चला जायगा।

दादू माया बिहड़े देखतां, काया संग न जाइ।
कृत्रिम[1] बिहड़े बावरे, अजरावर ल्यौ लाइ ॥ १५ ॥

हे अज्ञानी ! तेरा मायिक ऐश्वर्य देखते-देखते ही तुझसे अलग हो जायगा वा नष्ट हो जायेगा। यह तेरा सुन्दर शरीर भी साथ नहीं जायगा। जो भी माया कृत नकली[1] ऐश्वर्य स्वर्गादि लोकों में है, वह भी सब सदा साथ नहीं रहता, नष्ट होने वाला ही है। अत: सदा साथ रहने वाले इन्द्रादि देवों से भी श्रेष्ठ परब्रह्म में ही अपनी वृत्ति लगा।

दादू माया का बल देख कर, आया अति अहंकार ।
अंध भया सूझे नहीं, का करि है सिरजनहार ॥ १६ ॥

संसारी प्राणी के हृदय में मायिक ऐश्वर्य के बल से महान् अहंकार आ जाता है और वह धन-मद से अपने विवेक-विचार-नेत्रों को खोकर अंधा हो जाता है। उसे यथार्थता नहीं दीखती, इसीलिए कहता रहता है-ईश्वर क्या करता है ? सब कुछ हम ही करते हैं।

विरक्तता

मन मनसा माया रती, पंच तत्त्व प्रकास ।
चौदह तीनों लोक सब, दादू होइ उदास ॥ १७ ॥

१७-२० में मायिक प्रपंच से विरक्त होने की प्रेरणा कर रहे हैं—माया के कार्य आकाशादि पंच तत्त्वों से ही चौदह भुवन और तीनों लोकों की उत्पत्ति होती है। इसीलिए मन और बुद्धि की प्रीति मायिक पदार्थों में ही होती है। किन्तु मायिक पदार्थों की प्रीति से जन्मादि खेद ही मिलता है। अत:जन्मादि दु:खों की निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति के लिए मायिक प्रपंच से उदास होकर मन बुद्धि को परब्रह्म में ही लगाओ।

माया देखे मन खुशी, हिरदै होइ विकास ।

दादू यह गति जीव की, अंत न पूगे[1] आस ॥ १८ ॥

संसारी प्राणियों का मन मायिक पदार्थों को देखकर प्रसन्न होता है और हृदय भी प्रफुल्लित होता है किन्तु यह जो मायिक पदार्थों को प्राप्त करने के लिए जीव को दौड़ाता है, इससे कल्पान्त तक भी इसकी परमसुख की आशा पूर्ण[1] न हो सकेगी।

मन की मूठि न मांडिये, माया के नीशाण ।
पीछे ही पछताहुगे, दादू खूटे बाण ॥ १९ ॥

माया रूप लक्ष्य पर, माया से ही कल्याण होगा, ऐसा निश्चय रूप मूठी विषयाशा-धनुष पर बाँधकर श्वासों के बाण मत मारो=मायिक पदार्थों के लिए ही आयु मत व्यतीत करो। ऐसे व्यर्थ श्वास खोने से तुम्हारे श्वास व्यर्थ ही समाप्त हो जायेंगे और पीछे तुम पश्चात्ताप में ही जलोगे।

शिश्न स्वाद

कुछ खातां कुछ खेलतां, कुछ सोवत दिन जाइ।
कुछ विषया रस विलसतां, दादू गये विलाइ ॥ २० ॥

२० में कहते हैं—इन्द्रिय स्वादार्थ प्रयत्न में ही शरीर नष्ट हो जाते हैं-प्राणी के आयु के दिन कुछ तो बाल्यावस्था में खाने खेलने में, कुछ युवावस्था के विषय-रस उपभोग में और कुछ सोने में चले जाते हैं। ऐसे ही इन्द्रिय भोगों में शरीर नष्ट हो जाते हैं।

संगति-कुसंगति

माखन मन पाहन भया, माया रस पीया ।
पाहन मन माखन भया, राम रस लीया ॥ २१ ॥

२१-२८ में संग कुसंग का फल बता रहे हैं—मक्खन के समान कोमल मन भी मायिक विषय-रस के पान करने से पत्थर के समान कठोर हो जाता है और राम-भक्ति-रस के पान करने से पत्थर के समान कठोर मन भी दयादि से युक्त होकर मक्खन के समान कोमल हो जाता है।

दादू माया सौं मन बीगड़ा, ज्यों कांजी कर दुग्ध ।
है कोई संसार में, मन कर देवे शुद्ध ॥ २२ ॥

जैसे कांजी से दूध खराब हो जाता है वैसे ही प्राणियों का मन माया से खराब हो गया है। संसार में ऐसा कोई विरला ही सन्त मिलता है जो माया से बिगड़े हुये मन को शुद्ध कर दे।

गंदी सौ गंदा भया, यों गंदा सब कोइ ।
दादू लागे खूब सौं, तो खूब सरीखा होइ ॥ २३ ॥

जैसे शुद्ध मन गंदी माया से मिलकर गंदा हो गया है, वैसे ही माया के संग से सब गंदे हो जाते हैं और मैला मन यदि सर्व श्रेष्ठ ब्रह्म-चिन्तन में लगता है तो द्वन्द्वों से रहित होकर श्रेष्ठ सन्तों के मन के समान ही हो जाता है।

माया सौं मन रत भया, विषय रस माता ।
दादू साचा छाड़ कर, झूठे रंग राता ॥ २४ ॥

जब से मन माया में अनुरक्त हुआ है तभी से विषय-रस में मस्त हो सत्य ब्रह्म का चिन्तन छोड़ कर मिथ्या मायिक राग-रंगादि में आसक्त हो रहा है।

माया के संग जे गये, ते बहुरि न आये ।
दादू माया डाकिनी, इन केते खाये ॥ २५ ॥

जो भी मायिक विषयों में आसक्त होकर व्यवहार में प्रवृत्त हुये हैं वे पुन: सत्संगादिक कल्याण मार्ग में नहीं आ सके हैं। यह माया डाकिनी के समान है, इसने कितने ही साधकों को कल्याण मार्ग से भ्रष्ट किया है।

दादू माया मोट विकार की, कोइ न सकई डार ।
बह बह मूये बापुरे, गये बहुत पचहार ॥ २६ ॥

यह माया विकारों की गठरी है। तुच्छ प्राणी तो इसके बोझ को ढो-ढो कर मर गये हैं। बहुत-से अज्ञानी लोग इसको पटकने के लिए प्रयत्न करके हार गये हैं किन्तु इसे अपने शिर से नीचे कोई भी नहीं डाल सका।

दादू रूप राग गुण अणसरे[१], जहँ माया तहँ जाइ ।
विद्या अक्षर पंडिता, तहां रहे घर छाइ ॥ २७ ॥

जिनको सत्संग प्राप्त नहीं होता, वे जहां रूप-रागादि मायिक गुण होते हैं वहां ही जाते हैं। माया के बिना उनका काम नहीं चलता[१]। नाना प्रकार की कला जानने वाले, अक्षर, विज्ञान तथा शब्दार्थों के जानने में निपुण पंडित तो जहां माया होती है, वहाँ ही घर बनाकर बस जाते हैं।

साधु न कोई पग भरे, कबहूँ राज दुवार ।
दादू उलटा आप में, बैठा ब्रह्म विचार ॥ २८ ॥

सत्संग को प्राप्त कोई भी सन्त माया की अधिकता वाले राजादि के द्वार पर माया की प्राप्ति के लिए नहीं जाता, प्रत्युत ब्रह्म-विचार द्वारा अपने स्वरूप में ही स्थिर होता है।

आशय-विश्राम

दादू अपने अपने घर गये, आपा अंग विचार ।
सहकामी माया मिले, निष्कामी ब्रह्म संभार ॥ २९ ॥

२९ में कहते हैं—प्राणी को अपनी वासनानुसार ही स्थान मिलता है। जिनके अन्त:करण में जैसा अंहकार था, उस अहंकार के अनुसार विचारों से जिन-जिन स्थानों की उन्होंने आशा की थी, उन-उन अपनत्व वाले स्थानों में ही वे चले गये हैं। सकामियों को मायिक भोग मिल गये और निष्कामियों को ब्रह्म विचार द्वारा ब्रह्म प्राप्त हो गया है।

माया

दादू माया मगन जु हो रहे, हम से जीव अपार ।
माया मांहीं ले रही, डूबे काली धार ॥ ३० ॥

३० में कहते हैं—माया प्रेमियों का उद्धार नहीं होता-हमारे समान मानव देह धारण करने वाले अपार जीव जो मायिक पदार्थों के राग में निमग्न होकर रहे हैं, उनको माया ने अपने बाहर परब्रह्म की ओर नहीं जाने दिया, वे माया की अज्ञान रूप काली-धार में डूबकर कर जन्मादि क्लेश ही भोग रहे हैं।

शिश्न स्वाद

दादू विषय के कारणै रूप राते रहैं, नैन नापाक यों कीन्ह भाई ।
बदी की बात सुनत सारे दिन, श्रवण नापाक यों कीन्ह जाई ॥ ३१ ॥

३१-३२ में कहते हैं—राग पूर्वक अविहित भोगों में प्रवृत्त होने से इन्द्रियां और शरीर अपवित्र हो जाते हैं—हे भाई ! विषयासक्ति के कारण नेत्र स्त्रियादि के सुन्दर रूप में अनुरक्त रहते हैं, इसलिए अपवित्र हो जाते हैं। दुर्जनों में जाकर सारे दिन पर-निन्दादि बुरी बातें सुनते हैं, इसीलिए श्रवण अपवित्र हो जाते हैं।

स्वाद के कारणै लुब्धि[1] लागी रहै, जिह्वा नापाक यों कीन्ह खाई।
भोग के कारणै भूख लागी रहै, अंग नापाक यों कीन्ह लाई ॥ ३२ ॥

अखाद्य के स्वाद के लिए लोभ[1] ग्रसित वृत्ति अखाद्य पदार्थों में लगी रहती है और उसे खाता है, तब जिह्वा अपवित्र हो जाती है। नारी प्रसंग के लिए अभिलाषा लगी रहती है, उसके शरीर को स्पर्श करता है, तब शरीर अपवित्र हो जाता है। उसकी भोगाशा कभी समाप्त नहीं होती।

माया

दादू नगरी चैन सब, जब इक राजी होइ ।
दोइ राजी दुख द्वन्द्व में, सुखी न बैसे कोइ ॥ ३३ ॥

३३-३४ में कहते हैं—अन्त:करण में मायिक प्रभाव रहने से दु:ख ही होता है—कायानगरी में जब एक विवेक का ही राज्य होता है तब तो सुख शांति रहती है। जब विवेक और महा मोह दोनों का राज्य होता है, तब दोनों राजाओं में द्वन्द्व-युद्ध चलते रहने से इन्द्रिय अन्त:करणादि प्रजा में से कोई भी सुख से नहीं बैठ सकता।

इक राजी आनन्द है, नगरी निश्चल बास ।
राजा प्रजा सुखि बसें, दादू ज्योति प्रकास ॥ ३४ ॥

जब काया नगरी में एक विवेक का ही राज्य होता है, तब काया नगरी हलचल रहित निश्चल बसती है। विवेक नृपति और इन्द्रियादि प्रजा सुख से रहते हैं तथा आत्म-ज्योति का प्रकाश भासते रहने से परमानन्द भी प्राप्त होता है।

शिश्न स्वाद

जैसे कुँजर काम वश, आप बँधाना आइ ।
ऐसे दादू हम भये, क्यों कर निकस्या जाइ ॥ ३५ ॥

३५-४१ में कहते हैं—जीव इन्द्रियों के वश होकर ही बँधता है और नष्ट होता है- जैसे हाथी कामवश होकर अपने आप ही बन्धन में आ जाता है। (हाथी को पकड़ने वाले वन में हाथी समा सके, ऐसा खड्डा खोदकर उसे पतली लकड़ी और पत्तों से छाप कर उस पर कागज की हथनी रख देते हैं। उसे सच्ची हथनी जान कर हाथी उस के पास आता है, तब खड्डे में पड़ जाता है, फिर उसे भूख प्यास से कमजोर करके पकड़ लाते हैं) वैसे ही अज्ञानी प्राणी काम की फाँसी में फँस जाते हैं। फँसने के पश्चात् निकलना अति कठिन हो जाता है।

जैसे मर्कट जीभ रस, आप बँधाना अंध ।
ऐसे दादू हम भये, क्यों कर छूटे फंध ॥ ३६ ॥

जैसे वानर जिह्वा के स्वादवश अपने आप ही अंधा होकर बँध जाता है। (वानर को पकड़ने वाले छोटे मुख के बर्तन में चने भर कर भूमि में गाड़ देते हैं। वानर उससे अपने दोनों हाथों की मुट्ठियों में चने भर कर एक साथ निकालना चाहता है। मुख सकड़ा होने से मुट्ठियाँ नहीं निकलतीं, आगे पीछे निकालने की समझ नहीं। इतने में पकड़ने वाला आकर पकड़ लेता है) वैसे ही अज्ञानी जीव जिह्वा दिइन्द्रियों के स्वाद से कर्म बन्धन में बँध जाते हैं, फिर उनका बन्धन कटना कठिन हो जाता है।

ज्यों सूवा सुख कारणै, बंध्या मूरख मांहिं ।
ऐसे दादू हम भये, क्यों ही निकसैं नांहिं ॥ ३७ ॥

जैसे मूर्ख शुक पक्षी पानी पीने के सुख के लिए नलिका में बँध जाता है। (तोते को पकड़ने वाले जल के कुंडे पर पानी खेंचने की चकली के समान नलिका लगा देते हैं। तोता उस पर बैठकर पानी पीने के लिए नीचे झुकता है तब वह घूम जाती है, तोते का मस्तक नीचे लटक जाता है। पैरों से नलिका पकड़े रहता है और मुझे किसी ने बाँध लिया, ऐसा समझ कर बोलने लगता है, तब पकड़ने वाला आकर पकड़ लेता है) ऐसे ही अज्ञानी प्राणी विषय-जाल में फँस जाते हैं, फिर उनका निकलना किसी प्रकार भी संभव नहीं होता।

जैसे अंध अज्ञान गृह, बंध्या मूरख स्वाद ।
ऐसे दादू हम भये, जन्म गमाया बाद ॥ ३८ ॥

जैसे मूर्ख भ्रमर कमल गंध की मस्ती से अंधा होकर वास-रस आस्वादन के लिए सूर्यास्त के समय कमल-कोश में बँध जाता है, वैसे ही संसारी प्राणी अज्ञान वश घर के कार्यों में फँस कर अपना जन्म व्यर्थ ही खो देते हैं।

दादू बूड रह्या रे बापुरे[१], माया गृह के कूप ।
मोह्या कनक रु कामिनी, नाना विधि के रूप ॥ ३९ ॥

माया ने कनक, कामिनी आदि अनेक प्रकार के रूपों से तुच्छ[१] जीवों को मोहित करके गृह-कूप में डाल दिया है। इसीलिए विषय-जल में निमग्न हो रहे हैं।

दादू स्वाद लाग संसार सब, देखत परलय जाइ ।
इन्द्री स्वारथ साच तज, सबै बँधाणे आइ ॥ ४० ॥

इन्द्रिय स्वार्थ वश सत्य परमात्मा का चिन्तन त्याग कर तथा शिश्नेन्द्रिय के स्वाद में लग कर प्राय: सभी संसार के प्राणी देखते-देखते परमार्थ से भ्रष्ट होकर विषय-जाल में बँधते जा रहे हैं।

विष सुख मांहीं रम रहे, माया हित चित लाइ।
सोइ संत जन ऊबरे, स्वाद छाड़ गुण गाइ ॥ ४१ ॥

सभी अज्ञानी प्राणी मायिक पदार्थों में हित की दृष्टि से चित्त लगाकर विष तुल्य विषय-सुख में ही रम रहे हैं। जो इन्द्रिय स्वादों की इच्छा को छोड़ कर गोविन्द-गुण-गान में रत हैं, वे ही संतजन इस माया से बचते हैं।

आसक्तता मोह

दादू झूठी काया झूठ घर, झूठा यहु परिवार।
झूठी माया देखकर, फूल्यो कहा गँवार ॥ ४२ ॥

४२ में मोह वश विषयासक्त को चेतावनी दे रहे हैं—हे अज्ञानी ! यह शरीर, घर, परिवार और धन मिथ्या हैं ! इन्हें देखकर तू क्यों फूल रहा है ?

विरक्तता

दादू झूठा संसार, झूठा परिवार, झूठा घरबार, झूठा नर नारि, तहां मन माने। झूठा कुल जात, झूठा पितु मात, झूठा बन्धु भ्रात, झूठा तन गात, सत्य कर जाने ॥ झूठा सब धंध, झूठा सब फंध, झूठा सब अंध, झूठा जाचन्ध[१], कहा मग छाने। दादू भाग, झूठ सब त्याग, जाग रे जाग, देख दिवाने ॥ ४३ ॥

४३ में मिथ्या को त्याग कर सत्य को प्राप्त करने की प्रेरणा कर रहे हैं—हे माया मद से अंधे प्राणी ! परिवार, घर, कुल, कुल के नर-नारियां, जाति, पिता, माता, भ्राता, बान्धव, शरीर, शरीर के अंग, व्यापार और संबंधादि सभी संसार मिथ्या है। हे अज्ञानी ! तुझे जन्मांध[१] के समान कुछ भी नहीं दीखता, इस मिथ्या संसार-मार्ग की क्या खोज कर रहा है ? अरे दीवाने ! मोह निद्रा से जाग, झट-पट जाग और संपूर्ण मिथ्या-मायिक प्रपंच को त्याग कर सत्य ब्रह्म की प्राप्ति के मार्ग में आगे बढ़ कर परब्रह्म का साक्षात्कार कर।

आसक्तता

दादू झूठे तन के कारणे, कीये बहुत विकार ।
गृह दारा धन संपदा, पूत कुटुंब परिवार ॥ ४४ ॥

४४-४५ में कहते हैं—प्राणी शरीर में आसक्त होकर ही परमार्थ से गिरता है—मिथ्या शरीर की आसक्ति के कारण ही प्राणी काम-क्रोधादि बहुत-से विकारों का आदर करता है। घर, स्त्री, धनादि ऐश्वर्य, पुत्र आदि कुटुम्बियों से घिरा रहता है।

ता कारण हत आतमा, झूठ कपट अहंकार ।
सो माटी मिल जायगा, विसर्‍या सिरजनहार ॥ ४५ ॥

शरीर के लिए झूठ, कपट, अहंकारादि करके अपनी आत्मा का हनन करता है, आत्म-ज्ञान से वंचित रहता है तथा भगवान् को भी भूल जाता है, वही शरीर एक दिन मिट्टी में मिल जायगा।

विरक्तता

दादू जन्म गया सब देखतां, झूठी के संग लाग ।
साचे प्रीतम को मिले, भाग सके तो भाग ॥ ४६ ॥

४६-४७ में मन को माया से विरक्त होकर ब्रह्म चिन्तन करने की प्रेरणा कर रहे हैं—हे मन ! मिथ्या मायिक प्रपंच में लगकर तूने नरजन्म का सब समय देखते-देखते ही खो दिया। अब भी यदि इससे दूर हो सके तो शीघ्र दूर होजा। जिससे शेष समय में अपने प्रियतम सत्य ब्रह्म का चिन्तन करके उससे मिल सके।

दादू गतं गृहं, गतं धनं, गतं दारा सुत यौवनं।
गतं माता, गतं पिता, गतं बन्धु सज्जनं ॥
गतं आपा, गतं परा, गतं संसार कत रंजनं।
भजसि भजसि रे मन, परब्रह्म निरंजनं ॥ ४७ ॥

हे मन ! घर, धन, स्त्री, पुत्र, यौवन, माता, पिता, बान्धव, प्रिय मित्रगण, अपना, पराया जो भी कुछ यह संसार है सो सब नष्ट हुआ ही समझ। इस विनाशी संसार में तेरे को किस लिये प्रसन्नता होती है ? इसमें तो प्रसन्नता का कोई भी कारण नहीं है, अत: इसको त्याग कर शीघ्र ही निरंजन परब्रह्म का भजन कर।

आसक्तता मोह

जीवों मांहीं जीव रहै, ऐसा माया मोह ।
सांई सूधा[1] सब गया, दादू नहिं अंदोह[2] ॥ ४८ ॥

मोह-जन्य आसक्ति का प्रभाव बता रहे हैं—यह मायिक मोह ऐसा है-इसके वश होकर प्राणी का मन स्त्री-पुत्रादिक जीवों में ही आसक्त रहता है। इस आसक्ति के कारण ही भगवत्-प्राप्ति के अवसर के सहित[1] जीवन का सभी समय व्यर्थ नष्ट हो जाता है तो भी प्राणी को दु:ख[2] नहीं होता।

विरक्तता

माया मगहर खेत खर, सद्गति कदे न होइ ।
जे बंचे ते देवता, राम सरीखे सोइ ॥ ४९ ॥

४९-५१ में मायिक संसार से विरक्त होने की प्रेरणा कर रहे हैं—जैसे मगहर क्षेत्र (काशी के समीप गंगा पार) में मरने वाला गधे की योनि में जाता है, वैसे ही माया में अनुरक्त रहने वाले की सद्गति नहीं होती। जो मायिक मोह से बचे हैं, वे मनुष्य होते हुये भी देवता हैं और निर्द्वन्द्व होने से राम के समान ही हैं।

कालर खेत न नीपजे, जे बाहे सौ बार ।
दादू हाना बीज का, क्या पच मरे गँवार ॥ ५० ॥

यदि ऊसर भूमि में सौ बार बीज डाला जाय तो भी कुछ नहीं उत्पन्न होगा, प्रत्युत बीज की ही हानि होगी। वैसे ही अज्ञानी प्राणी मायिक पदार्थों से परम सुख प्राप्ति के लिए कितना ही प्रयत्न करे तो भी क्या परमसुख प्राप्त होगा ? अर्थात् नहीं।

दादू इस संसार सौं, निमष न कीजे नेह ।
जामन मरण आवटणा, छिन छिन दाझे देह ॥ ५१ ॥

इस मायिक संसार से एक निमेष जितने समय भी प्रेम नहीं करना चाहिए। इसमें स्नेह करने से जन्म-मरण रूप अग्नि में उबलना पड़ता है और जीवन काल में क्रोध-ईर्ष्यादि से क्षण-क्षण में हृदय जलता रहता है।

आसक्तता=मोह

दादू मोह संसार का, विहरे तन मन प्राण ।
दादू छूटे ज्ञान कर, को साधू संत सुजाण ॥ ५२ ॥

५२-५३ में मोह का प्रभाव बता रहे हैं—इस मायिक संसार का मोह प्राणियों के तन, मन और प्राणों को संसार में भटकाता रहता है। कोई श्रेष्ठ ज्ञानी सन्त ही ब्रह्म-ज्ञान के द्वारा संसार के आवागमन से मुक्त होकर ब्रह्म में लय होता है।

मन हस्ती माया हस्तिनी, सघन वन संसार।
तामें निर्भय हो रह्या, दादू मुग्ध गँवार ॥ ५३ ॥

इस संसार रूप सघन वन में अज्ञानी प्राणी का मन-हस्ति माया-हस्तिनी से मोहित होकर उस भय के स्थान में भी निर्भय हो रहा है।

काम

दादू काम कठिन घट चोर है, घर फोड़े दिन रात।
सोवत साह न जागई, तत्त्व वस्तु ले जात ॥ ५४ ॥

५४-५६ में काम का उपद्रव बता रहे हैं—अन्त:करण में काम रूप विकट चोर है, वह सात्त्विक वृत्ति रूप घर को रात-दिन तोड़ता ही रहता है। जीव रूप साह मोहनिद्रा में सो रहा है। संत

और शास्त्रों के जगाने पर भी नहीं जागता। इसीलिए काम-चोर स्थूल शरीर की सार वस्तु वीर्य और सूक्ष्म शरीर की सार-वस्तु ज्ञान चुरा ले जाता है।

काम कठिन घट चोर है, मूसे[1] भरे भंडार।
सोवत ही ले जायगा, चेतन पहरे चार ॥ ५५ ॥

यह काम-चोर ऐसा निष्ठुर है—मोह निद्रा में सोते ही ज्ञान वैराग्यादि दैवी गुण-रत्नों का भंडार चुरा[1] ले जायेगा। अत: आयु की शिशु १ किशोर २ युवा ३ और वृद्ध ४ चारों ही अवस्थाओं में सावधान रहना चाहिए।

ज्यों घुण लागै काठ को, लोहे लागै काट।
काम किया घट जाजरा, दादू बारह बाट ॥ ५६ ॥

जैसे घुण लगने से काष्ठ और काट मैल लगने से लौह निरर्थक हो जाते हैं वैसे ही काम से शरीर जर्जर हो जाता है और अन्त:करण की वृत्ति नाना वासनाओं से छिन्न-भिन्न हो जाती है। भगवत्-स्वरूप में स्थिर नहीं रहती।

करतूति=कर्म

राहु गिले ज्यों चन्द को, गहण गिले ज्यों सूर।
कर्म गिले यों जीव को, नखशिख लागे पूर ॥ ५७ ॥

५७-५९ में कहते हैं—निज कर्म से ही पतन और उन्नति होती है—जैसे ग्रहण के समय राहु चन्द्रमा को और केतु सूर्य को निगल जाते हैं, तब अंधकार हो जाता है। वैसे ही जब निषिद्ध सकाम कर्मों की अधिकता से जीव का मन रूप चन्द्रमा मलीन हो जाता है और विवेक रूप सूर्य भी भोग-वासनाओं से आच्छादित हो जाता है, तब जीव के शरीर में नख से शिखा पर्यन्त अज्ञानांधकार ही परिपूर्ण हो जाता है, यही कर्म का जीव को निगलना है।

दादू चन्द गिले जब राहु को, गहण गिले जब सूर।
जीव गिले जब कर्म को, राम रह्या भरपूर ॥ ५८ ॥

चन्द्र और सूर्य का राहु केतु की राशि को उल्लंघन कर जाना ही राहु केतु का निगलना है। वैसे ही जब जीव का मन रूप चन्द्रमा शुभ निष्काम कर्म से निर्मल हो जाता है, तब भोग-वासनाओं की कमी से विवेक रूप सूर्य भी चमकने लगता है। विवेक होते ही जीव वैराग्यादि साधनों द्वारा ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त करके संचित और आगामी कर्मों को नष्ट कर डालता है, यही जीव का कर्मों को निगलना है। इस प्रकार अपने आत्मा को कर्म रहित जान कर अपने रोम-रोम में तथा संपूर्ण विश्व में अपने आत्म-स्वरूप राम को परिपूर्ण रूप से देखता है।

कर्म कुहाड़ा, अंग वन, काटत बारंबार।
अपने हाथों आपको, काटत है संसार ॥ ५९ ॥

सभी संसार के प्राणी अपने ही हाथों से सकाम कर्म रूप कुठार द्वारा अपने शरीर वन को काटते हैं। एक ही बार नहीं, किन्तु बारंबार काटते ही रहते हैं= कर्मों द्वारा जन्मते मरते हैं।

स्वकीय शत्रु मित्रता

आपै मारे आप को, यहु जीव विचारा ।
साहिब राखणहार है, सो हितू हमारा ॥ ६० ॥

६०-६१ में कहते हैं—जीव आप ही अपना शत्रु और मित्र है। यह जीव अविद्या के वश होकर निषिद्ध कर्मों द्वारा आप ही अपना पतन करता है, अत: शत्रु है। जब हम विचार करके देखते हैं तो हमारा सच्चा हितैषी और रक्षा एक परमात्मा ही दीखता है, उसकी उपासना करे तो जीव आप ही अपना मित्र हो जाता है।

आपै मारे आप को, आप आपको खाइ ।
आपै अपना काल है, दादू कह समझाइ ॥ ६१ ॥

हम ठीक समझाकर कहते हैं—यह जीव आप ही अपनी बुरी वासनाओं के द्वारा अपने को ताड़ित करता है। आप ही क्रोधादि आसुर गुणों के द्वारा अपने को दु:खी करता है और आप ही अपने अज्ञान द्वारा अपना काल बन रहा है। यदि साधन द्वारा आत्म-ज्ञान कर ले तो आप ही अपना मित्र हो सकता है।

करतूति=कर्म

मरबे की सब ऊपजे, जीबे की कुछ नांहिं ।
जीबे की जाने नहीं, मरबे की मन मांहिं ॥ ६२ ॥

६२-६३ में कहते हैं—प्राय: जीव निज कर्म द्वारा पतन की ओर ही जाता है इस जीव के मन में सभी इच्छायें पतन की ओर ले जाने वाली ही उत्पन्न होती हैं, उन्नति की ओर ले जाने वाली कुछ भी नहीं होतीं। यह अपने ब्रह्म प्राप्ति रूप जीवन का उपाय तो जानता ही नहीं। इसके मन में तो सकाम कर्म रूप जन्म-मरण का उपाय ही बसा रहता है।

बंध्या बहुत विकार सौं, सर्व पाप का मूल ।
ढाहै सब आकार को, दादू येह स्थूल ॥ ६३ ॥

प्राणी का यह स्थूल शरीर अन्त:करण के कामादिक बहुत-से विकारों से बँधा हुआ है और अपनी भोगाशा की पूर्ति के लिए सभी प्राणी आदि आकृतियों को नष्ट करता रहता है। इसलिए सर्व पाप का मूल है।

काम

दादू यहु तो दोज़ख देखिये, काम क्रोध अहंकार ।
रात दिवस जरबो करे, आपा अग्नि विकार ॥ ६४ ॥

६४-६९ में कहते हैं—कामादि गुण और कामियों का संग त्याज्य है। हे साधको ! इन काम, क्रोध अहंकारादि को नरक रूप देखकर इनसे दूर रहो। इस अहंकारादि विकार रूप नरकाग्नि में प्राणियों के अन्त:करण रात-दिन जलते रहते हैं।

विषय हलाहल खाइ कर, सब जग मर मर जाइ ।
दादू मोहरा नाम ले, हृदय राखि ल्यौ लाइ ॥ ६५ ॥

सब जगत के प्राणी विषयासक्ति-महाविष खाकर बारंबार जन्मते मरते जा रहे हैं। उससे बचने के लिए निरंजन राम का नाम रूप जहरमोहरा (विषघ्न वस्तु) हृदय में रखते हुये राम में ही वृत्ति लगानी चाहिए।

जेती विषया विलसिये, तेती हत्या होइ ।
प्रत्यक्ष मानुष मारिये, सकल शिरोमणि सोइ ॥ ६६ ॥

जितना वीर्य का पतन होता है उतनी ही प्रत्यक्ष मानव मारने की हत्या होती है, जो सभी हत्याओं में शिरोमणि हत्या है।

विषया का रस मद भया, नर नारी का माँस।
माया माते मद पिया, किया जन्म का नाश ॥ ६७ ॥

विषयासक्ति रूप मद्य और नरनारी का संयोग ही मांस है। मनुष्य इस मांस और मद्य को खा पीकर तथा कनकादिक धन से मतवाले होकर मानव जन्म का नाश कर देते हैं।

दादू भावै शाक्त भक्त हो, विषय हलाहल खाइ ।
तहँ जन तेरा रामजी, स्वप्ने कदे न जाइ ॥ ६८ ॥

चाहे शक्ति का उपासक शाक्त हो वा विष्णु का उपासक भक्त हो, यदि वह विषय रूप हलाहल विष खाता हो तो, हे रामजी ! आपके सेवक भक्त को तो कभी भी उसके पास नहीं जाना चाहिए।

खाडा बूजी भक्ति है, लोहरवाड़ा मांहिं ।
परकट पैंडाइत[1] बसें, तहँ संत काहे को जांहिं ॥ ६९ ॥

लोहरवाड़े ग्राम में धोखा देकर गड्ढे में पटकने की भक्ति रखने वाले बटमार[1] बसते हैं। यह प्रत्यक्ष ही है, अत: वहां सन्तों को नहीं जाना चाहिए।

लोहरवाड़े में श्री दादूजी महाराज को मारने का षड्यंत्र रचा था, उसे देखकर ही यह साखी कही थी। प्रसंग कथा- दृ. सु. सि. त. ७/२७२ में देखो।

काम-शीर्षक के अनुकूल अर्थ इस प्रकार है—रक्त और मांस के बाड़े (अहाते) नारी के शरीर में प्राणियों को धोखा देकर मूत्र-मार्ग रूप गड्ढे में पटककर वीर्य-धन को अपहरण करने की भक्ति रखने वाला काम रूप बटमार प्रत्यक्ष में ही रहता है। वहां सन्त किस लिये जायेंगे ? वह तो भक्ति में परम बाधक है।

माया

साँपनि एक सब जीव को, आगे पीछे खाइ ।
दादू कह उपकार कर, कोइ जन ऊबर जाइ ॥ ७० ॥

७०-७२ में माया का प्रभाव बता रहे हैं—जैसे सर्पणी अपने बच्चों को आगे पीछे आप ही खा जाती है, जो उसकी निकाली हुई लकीर से बाहर हो जाता है, वही बचता है। वैसे ही माया भी अपने कार्य रूप जीवों का आगे पीछे जन्म-मरण रूप भोजन करती रहती है=जन्म-मरण के चक्र में घुमाती रहती है। कोई विरला ही जन सन्तों के उपदेश रूप उपकार द्वारा माया की अविद्या रूप लकीर से बाहर निकल कर परब्रह्म को प्राप्त होता है और माया से बच पाता है।

दादू खाये साँपनी, क्यों कर जीवें लोग ।
राम मंत्र जन गारुड़ी, जीवें इहिं संजोग ॥ ७१ ॥

माया रूप सर्पणी ने जीवों को काटा है। अब वे जीव किस उपाय से जीवित रह सकते हैं ? उत्तर—राम नाम रूप गारुड़ (सर्प विष नाशक) मंत्र और सन्त जन रूप गारुड़ी (सर्प विष उतारने वाले) का संयोग इस मनुष्य जन्म में हो जाय तो विष उतर कर ब्रह्म-प्राप्ति रूप अखंड जीवन प्राप्त हो जायगा।

दादू माया कारण जग मरे, पिव के कारण कोइ ।
देखो ज्यों जग परजले, निमष न न्यारा होइ ॥ ७२ ॥

माया की प्राप्ति के लिए सब जगत् के प्राणी पच-पच कर मर रहे हैं किन्तु परमात्मा की प्राप्ति के लिए तो कोई विरला ही प्रयत्न करता है। जैसे अग्नि में पड़कर तृण जलते हैं वैसे ही देखो ! प्राणी मायिक विषयों में पड़कर कामादि से जल रहे हैं, फिर भी एक निमेष मात्र भी विषयों से अलग नहीं होना चाहते। ऐसा माया का प्रभाव है।

जाया माया मोहनी

काल कनक अरु कामिनी, परिहर इनका संग ।
दादू सब जग जल मुवा, ज्यों दीपक ज्योति पतंग ॥ ७३ ॥

७३-७४ में साधक को कनक कामिनी-संग त्याग की प्रेरणा कर रहे हैं—कनक और कामिनी काल रूप हैं, इनका संग छोड़। जैसे दीपक ज्योति में पतंग जल मरते हैं, वैसे ही कनक-कामिनी के मोह में पड़कर सब जगत् काम-लोभादि से जल-जल कर मर रहा है।

जहां कनक अरु कामिनी, तहँ जीव पतंगे जांहिं।
अग्नि अनन्त सूझे नहीं, जल-जल मूये मांहिं ॥ ७४ ॥

जहां भी कनक और कामिनी रूप अग्नि होती है, वहां ही जीव-पतंग चले जाते हैं और काम, लोभ, राग, द्वेषादि रूप अग्नि की अनन्त ज्वालायें भी उन्हें दाहक रूप नहीं दीखतीं, इसीलिए उनमें जल-जल कर मर जाते हैं।

चित्त कपटी

घट मांहीं माया घणी, बाहर त्यागी होइ ।
फाटी कंथा पहर कर, चिन्ह करे सब कोइ ॥ ७५ ॥

७५-७६ में दंभी त्यागी का परिचय दे रहे हैं—अन्त:करण में तो अत्यधिक माया की आशा रखते हैं और बाहर से त्यागी-से बने रहते हैं। फटी गुदड़ी पहन कर त्यागियों के सभी चिन्ह करके दिखाते हैं।

काया राखे बंद दे, मन दह दिशि खेलै ।
दादू कनक अरु कामिनी, माया नहिं मेलै ॥
दादू मनसौं मीठी मुख सौं खारी, माया त्यागी कहैं बजारी ॥ ७६ ॥

शरीर को तो गुफा में बन्द करके वा आसन से स्थिर करके रखते हैं किन्तु उनका मन दशों दिशाओं में दौड़-दौड़ कर कामिनी से क्रीड़ा करता रहता है और कनक रूप माया को कभी नहीं त्यागता। वे लोग मन से तो माया को आदर देते हैं और मुख से बुरी बताते हैं। इसीलिए अनजान बाजार के लोग उन्हें माया-त्यागी कहते हैं, किन्तु वे वास्तव में त्यागी नहीं होते।

माया

माया मंदिर मीच का, तामें पैठा धाइ ।
अंध भया सूझे नहीं, साधु कहैं समझाइ ॥ ७७ ॥

जीव पर माया मद के प्रभाव का परिचय दे रहे हैं—माया मृत्यु का घर है। प्राणी परमात्मा की ओर से दौड़कर उसी में आ घुसा है। यद्यपि सन्त समझा-समझा कर कहते हैं—''यह माया जन्म-मरण रूप दु:ख की हेतु है, तू इसकी आसक्ति छोड़ कर भगवद् भजन कर।'' किन्तु यह तो माया-मद से अपने विचार-नेत्र खोकर अंधा हो गया है। इसे कुछ समझ में ही नहीं आता।

विरक्तता

दादू केते जल मुये, इस योगी की आग ।
दादू दूरै बंचिये, योगी के संग लाग ॥ ७८ ॥

७८ में माया से विरक्त होने का आदेश दे रहे हैं—इस परमेश्वर रूप योगी की माया-अग्नि की काम-क्रोधादि-ज्वालाओं में अनेक जल कर मर गये हैं। अत: शीघ्र ही परमेश्वर-योगी की भजन रूप समीपता में जाकर मायाग्नि से बचो।

माया

ज्यों जल मैंणी माछली, तैसा यहु संसार ।
माया माते जीव सब, दादू मरत न बार ॥ ७९ ॥

७९-८० में माया मद का प्रभाव बता रहे हैं—जैसे जल में रहने वाली मच्छी रसना-वश बंसी पकड़ कर तत्काल मर जाती है। वैसे ही इस संसार के जीव माया के मद से मस्त होकर मरते रहते हैं।

दादू माया फोड़े नैन दो, राम न सूझे काल ।
साधु पुकारें मेर चढ़, देख अग्नि की झाल[१] ॥ ८० ॥

कनक कामिनी आदि के मोह में फँसा कर, माया ने जीव के विवेक-विचार दोनों नेत्र फोड़ डाले हैं। इसलिए उसे अपना नाशक काल और रक्षक राम दोनों ही नहीं दीखते। मायाग्नि की काम-क्रोधादि ज्वालाओं[१] में जलते हुये जीवों को देखकर भगवत् साक्षात्कार रूप पर्वत पर चढ़े हुये सन्त पुकार-पुकार कर बारम्बार कह रहे हैं—''भगवद् भजन में मन लगाओ, तभी इन ज्वालाओं से बचोगे।'' किन्तु वे सुनते ही नहीं।

जाया माया मोहनी

बिना भुवंगम हम डसे, बिन जल डूबे जाइ ।
बिन ही पावक ज्यों जले, दादू कुछ न बसाइ ॥ ८१ ॥

कनक कामिनी की मोहकता बता रहे हैं—संसारी प्राणी बिना सर्प डसे ही काम-वश सर्प डसे हुये के समान आत्मज्ञान-शून्य हो रहे हैं। बिना जल ही विषय मोह में डूबते जा रहे हैं। जैसे तृण अग्नि से जलते हैं, वैसे ही बिना अग्नि ही शोक से जल रहे हैं। उक्त उपद्रवों से बचना भी चाहते हैं किन्तु भगवद् भजन बिना कोई शक्ति काम नहीं देती।

विषय अतृप्ति

दादू अमृत रूपी आप है, और सबै विष झाल ।
राखणहारा राम है, दादू दूजा काल ॥ ८२ ॥

८२ में कहते हैं—एक राम ही रक्षक हैं—राम अमृत रूप हैं, भजन द्वारा अमर करते हैं। अन्य सब विष की ज्वालाओं के समान दाहक हैं। राम ही रक्षक हैं, अन्य सब तो स्वार्थी होने से काल रूप ही हैं।

जग भुलावनि

बाजी चिहर रचाय कर, रह्या अपरछन होइ ।
माया पट पड़दा दिया, तातैं लखे न कोइ ॥ ८३ ॥

८३-९२ में कहते हैं—ईश्वर-बाजीगर ने संसार-बाजीगरी द्वारा जीवों को भ्रमा रक्खा है—ईश्वर-बाजीगर अद्भुत चहल-पहल रूप संसार-बाजी रच के अपने आड़े माया-पट का पड़दा लगा कर छिप रहा है। इसलिए उसके वास्तव स्वरूप को कोई भी अज्ञानी नहीं जान पाता।

दादू बाहे[१] देखतां, ढिग ही ढोरी लाइ ।
पिव पिव करते सब गये, आपा दे न दिखाइ ॥ ८४ ॥

जैसे बाजीगर पास खड़ा देखता हुआ ही दर्शकों को अपनी बाजी से बहकाता हैं[१]। वैसे ही ईश्वर ने जीवों के साथ ही रहकर सब कुछ देखते हुये भी उनमें अपने मिलन की लग्न लगाकर उन्हें

बहका दिया है। वे विरही जीव पीव-पीव करते हुये सब वैकुण्ठादि लोकों को चले गये किन्तु उनको अपना वास्तविक स्वरूप नहीं दिखाया। यही उसकी बाजीगरी है। ८३-८४ का अर्थ पद नं. १४० और १५४ में स्पष्ट होता है।

मैं चाहूं सो ना मिले, साहिब का दीदार ।
दादू बाजी बहुत हैं, नाना रंग अपार ॥ ८५ ॥

माया रूप बाजी तो नाना प्रकार के रंगों वाली बहुत सामने आती है किन्तु मैं चाहता हूँ परमात्मा का साक्षात्कार, सो हो नहीं रहा है।

हम चाहैं सो ना मिले, अरु बहुतेरा आहि ।
दादू मन माने नहीं, केता आवे जाहि ॥ ८६ ॥

ध्यानावस्था में भी हम जो चाहते हैं, उस परब्रह्म का साक्षात्कार तो नहीं होता और ही बहुत-से दृश्य देखने में आते हैं, किन्तु उनको हमारा मन सत्य मान कर तृप्त होता नहीं। ऐसे मायिक दृश्य कितने ही आते हैं और चले जाते हैं।

बाजी मोहे जीव सब, हमको भुरकी बाहि ।
दादू कैसी कर गया, आपण रह्या छिपाइ ॥ ८७ ॥

ईश्वर यह कैसी विचित्र लीला कर गया है—हम सब जीवों को माया रूप भुरकी डाल कर मोहित कर दिया है और आप हमारे हृदय में रहकर भी हमसे छिप रहा है।

दादू सांई सत्य है, दूजा भरम विकार ।
नाम निरंजन निर्मला, दूजा घोर अंधार ॥ ८८ ॥

इस संसार-बाजी का स्वामी परमात्मा ही सत्य है। उससे भिन्न जो भी विकार हैं, वे भ्रम रूप हैं। प्राणी को निरंजन राम का नाम ही निर्मल करता है। दूसरे विकार तो घोर मोहान्धकार में डालते हैं।

दादू सो धन लीजिये, जे तुम सेती होइ ।
माया बाँधे कई मुये, पूरा पड़्या न कोइ ॥ ८९ ॥

हे साधको ! यदि तुमसे प्रयत्न हो सके तो ब्रह्म साक्षात्कार-धन को ही प्राप्त करो, सांसारिक माया रूप धन को संग्रह करते-करते तो कितने ही मर गये हैं किन्तु किसी को भी पूर्ण संतोष नहीं हुआ है।

दादू कहै-जे हम छाड़ैं हाथ तैं, सो तुम लिया पसार ।
जे हम लेवैं प्रीति सौं, सो तुम दीया डार ॥ ९० ॥

जिन मायिक कनकादि पदार्थों और विकारों को संत जन त्यागते हैं, संसारी जन उन्हें हाथ पसार कर अनुराग पूर्वक ग्रहण करते हैं। जिन परोपकारादि दैवी गुण और परब्रह्म के चिन्तन को संतजन प्रेम पूर्वक ग्रहण करते हैं, उनको संसारी जनों ने भ्रम-वश छोड़ दिया है।

दादू हीरा पग सौं ठेलि कर, कंकर को कर लीन्ह।
पारब्रह्म को छाड़ कर, जीवन सौं हित कीन्ह ॥ ९१ ॥

जैसे कोई हीरे को पग से ठुकरा कर कंकर को प्रेम पूर्वक हाथ में उठावे, वैसे ही संसारी प्राणी परब्रह्म का भजन छोड़ कर, अपने कुटुम्बी आदि संसारी जीवों में ही प्रेम करते हैं।

दादू सब को बणिजे खार खल, हीरा कोइ न लेय ।
हीरा लेगा जौहरी, जो मांगे सो देय ॥ ९२ ॥

सभी संसारी लोक विषय-विकार रूप क्षार-खल का ही व्यापार करते हैं किन्तु निरंजन राम का नाम रूप हीरा नहीं लेते-देते। जैसे हीरा का परीक्षक-जौहरी हीरा का जो भी मूल्य माँगे वही देकर हीरा ले लेता है, वैसे कोई सन्त ही अपना सर्वस्व देकर भी निरंजन राम का नाम चिन्तन रूप हीरा ग्रहण करते हैं।

माया

दड़ी[१] दोट[२] ज्यों मारिये, तिहूं लोक में फेर।
धुर[३] पहुँचे संतोष है, दादू चढबा मेर[४] ॥ ९३ ॥

९३-१०० में कहते हैं—परब्रह्म को प्राप्त संतों को छोड़ कर माया का प्रभाव सब पर पड़ता है—जैसे गेंद[१] जब तक अपनी सीमा पर न पहुंच जाय तब तक उस पर चोटें[२] पड़ती ही रहती हैं, वैसे ही जीव को माया विषय-वासना रूप प्रहार से तीनों लोकों में घुमाती रहती है और जब जीव साधन बल से त्रिगुण रूप माया पर्वत[४] की सीमा पर चढ़कर उसे उल्लंघन कर जाता है और ठीक अपने लक्ष्य[३] आत्म स्वरूप ब्रह्म[३] को प्राप्त कर लेता है तब उसका भ्रमण रुक कर अखंड शांति मिल जाती है।

अनल पंखि आकाश को, माया मेर उलंघ।
दादू उलटे पंथ चढ़, जाइ विलंबे अंग ॥ ९४ ॥

जैसे अनल पक्षी का बच्चा आकाश से गिरकर, इधर-उधर घूमते हुये पुन: आकाश की ओर उड़ता हुआ पर्वतों को लांघ कर अपने माता-पिता से जा मिलता है। वैसे ही जीव संसार में आकर इधर-उधर घूमते हुये सद्‌गुरु प्राप्त होने पर संसार से विपरीत परब्रह्म के स्वरूप में पहुँचने वाले ज्ञान-मार्ग से मायिक संसार को लांघ कर अपने आत्म स्वरूप ब्रह्म में स्थिर हो जाता है।

दादू माया आगे जीव सब, ठाढे रह कर जोड़।
जिन सिरजे जल बूंद सौं, तासौं बैठे तोड़ ॥ ९५ ॥

संसारी प्राणी मायिक पदार्थों के लिए माया वालों के सामने हाथ जोड़ कर खड़े रहते हैं किन्तु जिन परमात्मा ने वीर्य के बिन्दु से इनके कैसे सुन्दर शरीर बना दिये हैं, उनसे प्रेम का सम्बन्ध तोड़ बैठे हैं=भूल गये हैं।

सुर नर मुनिवर वश किये, ब्रह्मा विष्णु महेश ।
सकल लोक के शिर खड़ी, साधु के पग हेठ[1] ॥ ९६ ॥

इस माया ने देवता, नर, मुनिवर, ब्रह्मा, विष्णु और महादेव को भी अपने अधीन किया है। और अधिक क्या कहें—माया संतों के पद तले[1] रहती है, बाकी तो सभी लोगों के शिर पर खड़ी रहती है।

दादू माया चेरी संत की, दासी उस दरबार ।
ठकुराणी सब जगत की, तीनों लोक मंझार ॥ ९७ ॥

माया संतों की तो सेविका है। संतों के दरबार में दासी के समान सतोगुण द्वारा सेवा करती रहती है। अन्य सब जगत के जीवों को स्वामिनी के समान रजोगुण-तमोगुण द्वारा तीनों लोकों में घुमाती रहती है।

दादू माया दासी संत की, शाकत[1] की शिरताज ।
शाकत सेती भांडनी, संतों सेती लाज ॥ ९८ ॥

संतों की माया दासी है और असंतों[1] की स्वामिनी है। असंतों को निर्लज्ज होकर इधर-उधर घुमाती रहती है और संतों के पास लज्जाशील होकर शांत रहती है।

चार पदारथ मुक्ति बापुरी, अठ सिधि नौ निधि चेरी ।
माया दासी ताके आगे, जहँ भक्ति निरंजन तेरी ॥
दादू कहै—ज्यों आवे त्यों जाइ विचारी ।
विलसी[1], वितड़ी[2], न माथे[3] मारी ॥ ९९ ॥

हे निरंजन राम ! जहाँ आपकी भक्ति होती है वहां-अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष ये चारों पदार्थ और सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सायुज्य चार मुक्ति सेवा में रहती हैं तथा अष्ट सिद्धि, नौ निधि तो बेचारी बहुत मात्रा में सेविका के समान सेवा करती रहती हैं। इस प्रकार माया भक्त के आगे दासी के समान खड़ी रहती है। दादूजी महाराज कहते हैं—विरक्त संतों के माया आती है वैसे ही चली जाती है। क्योंकि-विरक्तों ने न तो इसे भोगी[1] और न वितरण[2] ही की, उन्होंने तो जब आई तब ही त्याग[3] दी। यही विरक्तों का व्यवहार रहा है। अष्ट सिद्धि, नौ निधि नाम, अंग २-१०४ में देखो।

दादू माया सब गहले किये, चौरासी लख जीव ।
ताका चेरी क्या करे, जे रँग राते पीव ॥ १०० ॥

माया ने चौरासी लक्ष योनियों के सभी जीवों को उन्मत्त कर दिया है किन्तु जो भगवान् की भक्ति के रंग में अनुरक्त हैं, उनका यह क्या कर सकती है ? उन्हें उन्मत्त न बना कर सेविका के

समान उनकी सेवा करती है।

विरक्तता

दादू माया वैरिणि जीव की, जनि को लावे प्रीति।
माया देखे नरक कर, यहु संतन की रीति ॥ १०१ ॥

माया से विरक्त रहने की प्रेरणा कर रहे हैं—माया जीव की वैरिणी है। इससे कोई भी प्रेम न करे। विरक्त सन्तों की तो यही रीति है कि वे माया को नरक रूप से देखते हैं।

माया

माया मति चकचाल[1] कर, चंचल कीये जीव।
माया माते मद पिया, दादू बिसर्‍या पीव ॥ १०२ ॥

माया की क्षोभण शक्ति का परिचय दे रहे हैं—माया ने बुद्धि को भ्रमित[1] करके जीवों को चंचल कर दिया है, इसी से ये माया-मद से मस्त हो, विषय-मद्य पीकर परमात्मा को भूल गये हैं।

अन्य लग्न व्यभिचार

जने जने की राम की, घर घर की नारी।
पतिव्रता नहिं पीव की, सो माथे मारी ॥ १०३ ॥

१०३-१०४ में माया का व्यभिचार दिखा रहे हैं—माया-नारी एक पति के साथ रहने वाली पतिव्रता नहीं है। किन्तु प्रत्येक गृह-त्यागी मानव की भक्ता है और गृहस्थों के घर-घर की नारी है। इसके इस व्यभिचार को देख करके ही संतों ने इसका त्याग किया है।

जन जन के उठ पीछे लागे, घर घर भरमत डोले।
तातैं दादू खाइ तमाचे, मांदल[1] दुहुँ मुख बोले ॥ १०४ ॥

माया प्रत्येक मानव के पीछे लगती है, घर-घर में भ्रमण करती फिरती है। जैसे मृदंग[1] दोनों मुखों से बोलती है तब उसके दोनों ओर आघात पड़ते हैं। वैसे ही माया भी एक की नहीं होने से विरक्त संतों के आते-जाते दोनों ही बार अनादर रूप थप्पड़ें खाती है=संत माया के आने पर उससे राग नहीं करते, जाने पर शोक नहीं करते, वे तो भगवत्-परायण रहते हैं।

विषय विरक्तता

जे नर कामिनि परिहरैं, ते छूटैं गर्भवास।
दादू ऊंधे मुख नहीं, रहैं निरंजन पास ॥ १०५ ॥

१०५-१०७ में विषय-विरक्तों की विशेषता बता रहे हैं—जो कामिनी का त्याग करते हैं वे सन्त गर्भवास में अधोमुख लटकने के दु:ख से मुक्त हो जाते हैं, पुन: वह दु:ख उन्हें नहीं होता। वे सदा के लिए निरंजन ब्रह्म के स्वरूप में समा जाते हैं।

रोक न राखे, झूठ न भाखे, दादू खरचे खाइ।

नदी पूर[1] प्रवाह ज्यों, माया आवे जाइ ॥ १०६ ॥

संतों के पास माया नदी—जल[1]-समूह-प्रवाह के समान आती है और चली जाती है। वे आते ही परोपकार में खर्च कर देते हैं, कुछ खा जाते हैं। संग्रह नहीं रखते और माया के लिये मिथ्या नहीं बोलते।

सदका[1] सिरजनहार का, केता आवे जाइ।
दादू धन संचय नहीं, बैठ खुलावे खाइ ॥ १०७ ॥

भगवान् का दिया हुआ दान[1] रूप धन बहुत ही आता जाता है किन्तु संत भगवद् भरोसे बैठे हुये खिलाते व खाते रहते हैं, संग्रह नहीं करते।

माया

योगिनि ह्वै योगी गहे, सूफिनि ह्वै कर शेख।
भक्तिनि ह्वै भक्ता गहे, कर कर नाना भेख ॥ १०८ ॥

१०८-१११ में माया का प्रभाव बता रहे हैं—माया ने योगिनी होकर योगियों को, सूफिनी (मुसलमानों के एक सम्प्रदाय की स्त्री) होकर शेखों (मुसलमानों की चार जातियों में से एक जाति) को, भक्तानी होकर भक्तों को पकड़ा है। इस प्रकार भेष बनाकर यह सबको पकड़ती है।

बुद्धि विवेक बल हारिणी, त्रय तन ताप उपावनी।
अंग अग्नि प्रजालिनी, जीव घरबार नचावनी ॥ १०९ ॥

माया बुद्धि के विवेक-बल को मोह द्वारा हरने वाली है, शरीर की बाल, युवा और वृद्धा, तीनों अवस्थाओं में अबोध, काम और तृष्णा द्वारा दु:ख उत्पन्न करने वाली है वा शरीर में त्रिताप उत्पन्न करने वाली है। अन्त:करण में ईर्ष्या, चिन्ता, क्रोधादि रूप अग्नि प्रज्वलित करने वाली है। भोगाशा द्वारा घर-घर के द्वार पर नचाने वाली है।

नाना विधि के रूप धर, सब बाँधे भामिनी।
जग बिटंब[1] परलै किया, हरि नाम भुलावनी ॥ ११० ॥

हरि नाम को भुलाने वाली माया रूप स्त्री ने नाना प्रकार के रूप धारण करके सबको अपने अधीन किया है और जगत् के जीवों को लम्पट[1] बना कर जीवों का पतन किया है।

बाजीगर की पूतली, ज्यों मर्कट मोह्या।
दादू माया राम की, सब जगत विगोया[1] ॥ १११ ॥

बाजीगर एक सुन्दर वानरी की पुतली, जहां वानर हों, रख देता है, आप उसके हाथ से बँधी डोरी पकड़, छिप कर बैठ जाता है। वानर वानरी के पास आता है तब डोरी खेंचकर वानरी के हाथ की थप्पड़ वानर के मुख पर मारता है। वानर हट जाता है फिर आता है। इस प्रकार वानर को घायल

करके पकड़ा देती है। वैसे ही राम की माया ने सब जगत् को मोहित करके अज्ञान-पटल के नीचे छिपा[१] दिया है।

शिश्न स्वाद

मोरा मोरी देखकर, नाचे पंख पसार।
यों दादू घर आंगणे, हम नाचे कै बार॥ ११२॥

११२ में कहते हैं—जीव विषय-सुखार्थ मायाधीन हो नाचता है-जैसे मोरनी को देखकर मोर पंखों को फैलाकर नाचने लगता है। वैसे ही संसारी जन माया-मोहित होकर माया वाले घर के आगन में अनेक बार नाचते हैं।

माया

जेहि घट ब्रह्म न प्रकटे, तहँ माया मंगल गाइ।
दादू जागे ज्योति जब, तब माया भरम विलाइ॥ ११३॥

११३ में कहते हैं—ब्रह्म साक्षात्कार होने पर माया भ्रम नहीं रहता। जिस अन्त:करण में ब्रह्म का साक्षात्कार नहीं होता, उसी में माया के मंगल गीत गाये जाते हैं। फिर जब उसी में साधन द्वारा ब्रह्म-ज्ञान-ज्योति जग कर ब्रह्म-साक्षात्कार हो जाता है, तब माया-भ्रम नष्ट हो जाता है।

पति पहचान

दादू ज्योति चमके तिरवरे[१], दीपक देखे लोइ[२]।
चंद सूर का चांदणा, पगार[३] छलावा[४] होइ॥ ११४॥

११४ में कहते हैं—ध्यान के समय दिखने वाला प्रकाश ब्रह्म नहीं है-साधन काल में ध्यान में बिजली की-सी चमकती हुई ज्योति; अग्नि के कणों[१] का-सा झिलमिलाहट, दीपक की-सी ज्योति[२], चन्द्र, सूर्य और अरुणोदय का-सा प्रकाश[३], भूताग्नि[४], ये सब दिखाई देते हैं, इनमें ब्रह्म कोई नहीं है। ये सब तो माया रूप ही हैं और ब्रह्म-साक्षात्कार में बाधक है।

माया

दादू दीपक देह का, माया परकट होइ।
चौरासी लख पंखिया, तहां परें सब कोइ॥ ११५॥

११५ में कहते हैं—देहाध्यासी जीव माया की ओर ही जाते हैं-चौरासी लक्ष योनियों में जो देहाध्यासी जीव हैं, वे पतंग-पक्षियों के समान हैं। देह-दीपक की जो मायिक सौन्दर्य रूप प्रत्यक्ष ज्योति है, सब उसी में जाकर पड़ते हैं=सौन्दर्य के पीछे लगते हैं।

पुरुष प्रकाशी

यहु घट दीपक साध का, ब्रह्म ज्योति परकास।
दादू पंखी संतजन, तहां परैं निज दास॥ ११६॥

११६ में कहते हैं—परम भक्त संतजन ब्रह्म-परायण ही रहते हैं-संतों का अन्त:करण

दीपक है, उसी में ब्रह्म ज्ञान-ज्योति का प्रकाश है। उसी में जिज्ञासु संतजन-पतंगे जाकर परमानन्द प्राप्त करते हैं।

विषय विरक्तता (पुरुष नारी सम्बन्ध)

जानैं बूझैं जीव सब, त्रिया पुरुष का अंग।
आपा पर भूला नहीं, दादू कैसा संग ॥ ११७ ॥

११७-१२२ में साधकों को काम-जन्य सुख से विरक्त होने का परामर्श देते हैं। नारी-पुरुष के शरीर भूतों के ही कार्य हैं, यह सभी जीव जानते बूझते हैं फिर भी भोगासक्ति में फँसकर चिन्ह भेद से अपने को भोक्ता और दूसरे को भोग्य रूप देखते हैं। माया ने यह कैसा विलक्षण मेल मिला दिया है जिसको सृष्टि के आदि से अब तक जीव नहीं भूल सका।

माया के घट साजि द्वै, त्रिया पुरुष धर नांव।
दोनों सुन्दर खेलैं दादू, राखि लेहु बलि जांव ॥ ११८ ॥

माया रचित शरीर के स्त्री, पुरुष दो नाम रख कर सजाया गया है और दोनों एक दूसरे में सुन्दरता की भावना करके क्रीड़ा करते हैं। अपने पतन पर ध्यान नहीं देते। हे परमेश्वर! इस विषय-जाल से हमारी रक्षा करो, हम आपकी बलिहारी जाते हैं।

बहिन बीर सब देखिये, नारी अरु भरतार।
परमेश्वर के पेट के, दादू सब परिवार ॥ ११९ ॥

विश्व के सभी परिवार परमेश्वर की ही संतान होने से नारी और पति भी बहिन-भाई हैं। अत: साधकों को काम-जन्य सुख से बचना ही चाहिए।

पर घर परिहर आपनी, सब एकै उनहार।
पशु प्राणी समझे नहीं, दादू मुग्ध गँवार ॥ १२० ॥

हे साधक! क्या अपनी और क्या अन्य की बिन्दु-अपहरण में दोनों ही नारी समान हैं। अत: पराई स्त्री को क्या तकता है? दोनों ही को त्याग। जो कहते हैं-''अन्य की ही त्याज्य है।'' वे अज्ञानी विषय सुख से मोहित होने के कारण पशु-प्राणियों के समान समझते नहीं हैं।

पुरुष पलट बेटा भया, नारी माता होइ।
दादू को समझे नहीं, बड़ा अचंभा मोहि ॥ १२१ ॥

संत प्रवर दादूजी अपने शिष्यों के साथ मार्ग से जा रहे थे। एक घर के द्वार पर एक जाटणी अपने पुत्र को बड़े प्रेम से खिला रही थी। उसे देखकर दादूजी को हँसी आ गई। शिष्यों ने हँसी का कारण पूछा, उत्तर में १२१ की साखी सुनाई थी। यह पुत्र इसका पति था, छोटी अवस्था में मर गया। इसने दूसरा पति बना लिया। पूर्व पति का इसमें बहुत प्रेम था, इससे वही इसके पुत्र रूप में जन्मा है, उसे ही यह खिला रही है। इसी प्रकार नारी भी माता हो जाती है किन्तु इस बात को अज्ञानी कोई भी नहीं समझता। यह महान् आश्चर्य देख करके ही मुझे हँसी आ गई थी अथवा

पुरुष ही वीर्य रूप से स्त्री के गर्भ में पहुँच कर पुत्र बनता है, जैसा कि—"आत्मा वै जायते पुत्र:" श्रुति बतला रही है। और नारी जो की पुरुष की भार्या है, वही उस पुरुष के पुत्र रूप में उत्पन्न होने पर उसकी माता बन जाती है।

माता नारी पुरुष की, पुरुष नारि का पूत।
दादू ज्ञान विचार कर, छाड़ गये अवधूत ॥ १२२ ॥

उपर्युक्त रीति से नारी पुरुष की माता बन जाती है और पुरुष नारी का पुत्र हो जाता है। संसार मार्ग को ऐसा विपरीत समझ कर, ज्ञान-विचार बल से विचारशील पुरुष नारी को छोड़कर अवधूत हो गये हैं वा अवधूत छोड़कर चले गये हैं।

विषय अतृप्ति

ब्रह्मा विष्णु महेश लौं, सुर नर उरझाया।
विष का अमृत नाम धर, सब किनहूँ खाया ॥ १२३ ॥

१२३ में कहते हैं—विषय उपभोग से तृप्ति नहीं होती—ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, देवता, नर आदि सभी विषय जाल में फँसे हैं। सभी ने विषय-विष का नाम आनन्दामृत रख कर उपभोग किया है किन्तु तृप्त कोई भी नहीं हो सका।

अध्यात्म

दादू माया का जल पीवतां, व्याधी होइ विकार।
सेझे का जल पीवतां, प्राण सुखी शुध सार ॥ १२४ ॥

मायिक विषय-सुख का उपभोग झरणे के जल-पान से शरीर में रोग और मन में कामादि विकार बढ़ाता है। भगवद् भक्ति से सेझे के जल के पान से प्राणी का शरीर निरोग होता है और वह अविद्या-मल रहित विश्व का सार ब्रह्मानन्द प्राप्त करके परम सुखी होता है।

विषय अतृप्ति

जीव गहिला जीव बावला, जीव दिवाना होइ।
दादू अमृत छाड़ कर, विष पीवे सब कोइ ॥ १२५ ॥

जीव की विषयातृप्ति बता रहे हैं—माया से मस्त जीव विवेक-शून्य हो पागल हो रहे हैं, इसीलिए भगवद्-भजनामृत को छोड़ कर सभी विषय-विष का पान कर रहे हैं।

माया

माया मैली गुणमयी, धर धर उज्ज्वल नाम।
दादू मोहे सबन को, सुर नर सब ही ठाम ॥ १२६ ॥

माया की मोहक पद्धति बता रहे हैं—माया गुणमयी होने से तमोगुण द्वारा मैली है इसीलिए मलीन वस्तुओं के अधरामृतादि उज्जवल नाम रख-रख कर सुर, नर, नागादि, सबको सभी स्थानों में मोहित करती है।

विषय अतृप्ति

विष का अमृत नाम धर, सब कोई खावे ।
दादू खारा ना कहै, यहु अचरज आवे ॥ १२७ ॥

१२७-१३१ में विषय-विष त्याग की प्रेरणा कर रहे हैं—विषय-विष का अमृत नाम रखकर सभी कोई उपभोग करते हैं। उसका परिणाम दुख:प्रद होने पर भी उसे बुरा नहीं कहते, यही हमें महान् आश्चर्य होता है।

दादू जे विष जारे खाइ कर, जनि मुख में मेलै ।
आदि अंत परलै गये, जे विष सौं खेलै ॥ १२८ ॥

योग साधन में प्रवृत्त जो व्यक्ति वज्रोली आदि क्रियाओं द्वारा रज-वीर्य का उर्ध्व आकर्षण करके विषय-विष को पचा जाते हैं=उसके उपद्रव से बच जाते हैं, उन्हें भी विषय विष का सेवन कभी भी नहीं करना चाहिए। क्योंकि जो भी विषय-विष की क्रीड़ा में प्रवृत हुये हैं, उनके किये हुये साधन अन्त में नष्ट ही हो गये हैं।

जिन विष खाया ते मुये, क्या मेरा तेरा ।
अग्नि पराई आपनी, सब करे निबेरा[१] ॥ १२९ ॥

विष चाहे अपना हो वा अन्य का खाने से दोनों ही मारते हैं, जिनने खाया है वे मृत्यु को ही प्राप्त हुये हैं। अग्नि अपने घर की हो वा दूसरे के घर की हो, वह तो जहां पड़ती है वहां के तृणादि को जला कर नष्ट[१] कर ही देती है। वैसे ही नारी-पुरुष चाहे अपने हों वा दूसरे, संसर्ग से हानि ही होती है।

दादू कहै-जनि विष पीवे बावरे, दिन-दिन बाढे रोग ।
देखत ही मर जायगा, तज विषया रस भोग ॥ १३० ॥

हे बावरे ! विषय-विष का उपभोग मत कर, इससे प्रतिदिन मन में विषयाशा रूप रोग और तन में व्याधियां बढ़ती हैं। तू विषय-रस का उपभोग त्याग दे। नहीं त्यागने से कल्याण का साधन बिना किये ही देखते-देखते मृत्यु को प्राप्त हो जायगा।

अपना पराया खाइ विष, देखत ही मर जाइ ।
दादू को जीवे नहीं, इहिं भोरे जनि खाइ ॥ १३१ ॥

तू इस भूल में आकर विषय-विष का उपभोग मत करना कि ''अपनी को भोगने से हानि नहीं।'' परमार्थ-जीवन तो कोई का भी नहीं रहता, चाहे अपनी हो वा पराई। विष चाहे अपना हो या अन्य का, खाने पर खाने वाला देखते-देखते मर ही जाता है, यह प्रसिद्ध है।

माया

ब्रह्म सरीखा होइ कर, माया सौं खेलै ।
दादू दिन दिन देखतां, अपने गुण मेलै ॥ १३२ ॥

१३२-१३४ में माया की शक्ति बता रहे हैं—ब्रह्मवेत्ता होकर भी यदि मायिक प्रपंच में फँसेगा तो देखते-देखते ही रज-तम प्रवृत्ति द्वारा माया अपने काम-क्रोधादिक गुण उसके हृदय में उपस्थित कर देती है।

माया मारे लात सौं, हरि को घाले हाथ ।
संग तजे सब झूठ का, गहे साच का साथ ॥ १३३ ॥

माया संपूर्ण जीवों को रजोगुण, तमोगुण, लातों से मारती है और विष्णु को भी पकड़ने के लिए अपना सतोगुण-हाथ आगे बढ़ाती है। अत: मिथ्या मायिक प्रपंच की आसक्ति रूप संग त्याग कर सत्य परब्रह्म का अभेद चिन्तन रूप साथ ही ग्रहण करे।

घर के मारे वन के मारे, मारे स्वर्ग पयाल ।
सूक्ष्म मोटा गूंथ कर , मांड्या माया जाल ॥ १३४ ॥

माया ने—घर, वन, स्वर्ग और पाताल के निवासी, गृहस्थ, सन्यासी, देवता और नागों को भी बाँधने के लिए भोग-वासना रूप सूक्ष्म तथा कामिनी रूप मोटा जाल गूंथ कर बिछा रक्खा है और उसमें फँसा कर सबको मारती रहती है।

विषय अतृप्ति

ऊभा सारं बैठ विचारं, संभारं जागत सूता ।
तीन लोक तत जाल विडारण, तहां जाइगा पूता ॥ १३५ ॥

१३५-१३६ में कहते हैं—प्राणी विषयों से तृप्त नहीं होते। संसारी प्राणी अपनी उन्नति के लिए खड़े होते हैं तो भी मायिक विषयों को ही सार समझ कर उन्हीं की प्राप्ति के लिए यत्न करते हैं, बैठ कर भी विषयों का ही विचार करते हैं, सोते जागते भी मन से विषयों का ही चिन्तन करते हैं। कोई विरला विचारशील पवित्र पुरुष ही तीनों लोकों पर फैले हुये माया-जाल को तत्त्व-ज्ञान से नाश करके ब्रह्म को प्राप्त होता है।

मुये सरीखे ह्वै रहे, जीवन की क्या आस ।
दादू राम विसार कर, बाँछे भोग विलास ॥ १३६ ॥

संसारी प्राणी विषयों का उपभोग करते-करते अति कमजोर हो जाते हैं तो भी भगवान् को भूलकर भोग भोगने की ही इच्छा करते हैं। उनके ब्रह्म-प्राप्ति रूप नित्य जीवन की क्या आशा है ?

कृत्रिम कर्ता

माया रूपी राम को, सब कोई ध्यावे ।
अलख आदि अनादि है, सो दादू गावे ॥ १३७ ॥

१३७-१५१ में कहते हैं—अज्ञानियों ने माया को ही भगवान् मान लिया है। सभी लोग

माया रूप राम का ही ध्यान करते हैं किन्तु हम तो जो सम्पूर्ण संसार का आदि और स्वयं अनादि, मन इन्द्रियों का अविषय है, उसी निरंजन राम का गुण गाते हैं।

ब्रह्मा का वेद, विष्णु की मूरति, पूजे सब संसारा।
महादेव की सेवा लागे, कहाँ है सिरजनहारा ॥ १३८ ॥

कुछ तो ब्रह्मा के द्वारा उपदेश किये हुये वेद के अनुसार सकाम यज्ञादिक कर्मों में लगे हुये हैं। कुछ विष्णु मूर्ति की उपासना और कुछ महादेव की भक्ति में लगे हैं। इस प्रकार सब संसार गुणमयी माया को ही पूज रहा है। इन संसारी जनों को निर्गुण परमात्मा का तो पता ही नहीं कि वह कहां है और कैसा है ?

माया का ठाकुर किया, माया की महमाइ।
ऐसे देव अनन्त कर, सब जग पूजन जाइ ॥ १३९ ॥

मायिक वस्तुओं का ही ठाकुर जी और मायिक वस्तुओं की ही महामाई। ऐसे अनन्त देवी-देवता बना कर जगत् के अज्ञानी लोग उन्हें पूजते हैं और सच्चे परमात्मा को भूल जाते हैं।

माया बैठी राम ह्वै, कहै मैं ही मोहन राइ।
ब्रह्मा विष्णु महेश लौं, जोनी आवे जाइ ॥ १४० ॥

त्रिगुण मयी माया ही ब्रह्मा, विष्णु, महेश के रूप में परमात्मा होकर विराजमान है और पुराणादि द्वारा अपनी त्रिमूर्तियों को ही परमात्मा बताती है, किन्तु ब्रह्मा, विष्णु, महेश की उत्पत्ति विनाश बारंबार होने से वे परब्रह्म कैसे हो सकते हैं ?

माया बैठी राम ह्वै, ताको लखे न कोइ।
सब जग मानै सत्य कर, बड़ा अचंभा मोहि ॥ १४१ ॥

माया ही ब्रह्मादिक के रूप में परमात्मा होकर मंदिरों में बैठी है, इस बात को कोई भी अज्ञानी नहीं जानता। इसीलिए जगत् के सभी अज्ञानी जीव मायिक परमात्मा को ही सच्चा परमात्मा मान कर उसी की उपासना में लगे हैं। यही हमें महान् आश्चर्य हो रहा है !

अंजन कीया निरंजना, गुण निर्गुण जाने।
धरा[१] दिखावें अधर[२] कर, कैसे मन माने ॥ १४२ ॥

अज्ञानी लोगों ने माया को निरंजन परमात्मा बना लिया, गुणवान् को निर्गुण जानने लग गये। सांसारिक[१] वस्तुओं को परमात्मा[२] रूप से दिखाते हैं। उसे हमारा मन कैसे सत्य माने ?

निरंजन की बात कह, आवे अंजन मांहिं।
दादू मन माने नहीं, सर्ग[१] रसातल[२] जांहिं ॥ १४३ ॥

उपदेश तो माया रहित निरंजन का करते हैं किन्तु कार्य सब माया की प्राप्ति के लिए ही करते हैं। बातें तो वे स्वर्ग[१] की करते हैं किन्तु उनके कार्य नरक[२] में ले जाने वाले हैं। ऐसे वाचिक ज्ञानी को हमारा मन नहीं मानता।

कामधेनु के पटतरे[१], करे काठ की गाइ ।
दादू दूध दूझे नहीं, मूरख देहु बहाइ ॥ १४४ ॥

कामधेनु के समान[१] आकार वाली काष्ठ की गो बना लें तो भी वह दूध तो नहीं देगी। इस प्रकार देवताओं की मूर्तियों को निरंजन देव के समान मानकर उपासना करते हैं किन्तु ये मुक्ति तो नहीं दे सकेंगी। अत: हे अज्ञानी ! इनकी उपासना त्याग कर निरंजन देव की ही आराधना कर।

चिन्तामणि कंकर किया, माँगे कछु न देइ ।
दादू कंकर डारदे, चिन्तामणि कर लेइ ॥ १४५ ॥

जैसे कोई सुन्दर कंकर को चिन्तामणि मान तो ले किन्तु उससे जब इच्छानुकूल कुछ याचना करे तो वह न दे सकेगा। वैसे ही कंकर रूप देव मूर्तियां मुक्ति न दे सकेंगी। चिन्तामणि रूप भगवान् की उपासना ही अन्त:करण हाथों में धारण करो।

पारस किया पषाण का, कंचन कदे न होइ ।
दादू आतम राम बिन, भूल पड़्या सब कोइ ॥ १४६ ॥

जैसे किसी पत्थर को पारस मान ले तो भी उससे लोहा सुवर्ण नहीं बन सकता। वैसे ही किसी देवता को उपासना से ब्रह्म भाव प्राप्त नहीं होता, किन्तु फिर भी संसार के सभी अज्ञानी प्राणी अपने आत्म-स्वरूप राम को छोड़कर भ्रम में पड़ रहे हैं।

सूरज फटिक पषाण का, ता सौं तिमिर न जाइ।
साचा सूरज परकटे, दादू तिमिर नशाइ ॥ १४७ ॥

स्फटिक जाति के पत्थर का भी सूर्य बनाया जाय तो भी उससे अंधकार नष्ट न होगा और जब सच्चा सूर्य उदय होता है तब अन्धकार नहीं रहता। वैसे ही देवादि की उपासना से अज्ञान दूर न होगा और निरंजन राम की उपासना करने पर अज्ञान नहीं रह सकेगा।

मूर्ति घड़ी पाषाण की, कीया सिरजनहार।
दादू साच सूझे नहीं, यों डूबा संसार ॥ १४८ ॥

अज्ञानी प्राणियों को सत्य परमात्मा का स्वरूप तो नहीं दीख सकता। अत: उन्होंने पत्थर की मूर्ति घड़ कर उसे ही भगवान् बना लिया। इस प्रकार संसार के प्राणी माया में ही निमग्न हो रहे हैं।

पुरुष विदेश कामिनी किया, उसही के उनहार ।
कारज को सीझे नहीं, दादू माथे[१] मार ॥ १४९ ॥

जैसे किसी स्त्री का पति विदेश में हो और वह अपने पति के समान ही पुतला बना कर घर में रक्खे, तो भी उस पुतले से पति के समान पुत्रोत्पति आदि कोई भी कार्य सिद्ध न होगा। वैसे ही अपने बनाये हुये भगवान् से मुक्ति रूप कार्य सिद्ध न होगा। अत: उसे त्याग[१] कर सत्य परमात्मा की ही उपासना करो।

कागद का मानुष किया, छत्रपति शिरमौर ।
राज पाट साधे नहीं, दादू परिहर और ॥ १५० ॥

कागज का मानव बनाकर उसे मानवों का शिरोमणि चक्रवर्ती राजा बना दिया जाय तो भी वह राज्य शासन की व्यवस्था तो नहीं कर सकेगा। वैसे ही देवी देवता मुक्ति नहीं दे सकेंगे। अत: अन्य सबको त्याग कर सत्य स्वरूप निरंजन राम की ही उपासना करनी चाहिए।

सकल भुवन भाने घड़े, चतुर चलावनहार।
दादू सो सूझे नहीं, जिसका वार न पार ॥ १५१ ॥

जो संपूर्ण भवनों की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय करने में निपुण है=आप अलग रह, सत्ता मात्र देकर माया से सब कुछ कराता है और जिसका आदि अंत ज्ञात नहीं होता, वह ब्रह्म अज्ञानियों के समझ में नहीं आता किन्तु ध्येय और ज्ञेय वही है।

कर्ता साक्षीभूत

दादू पहली आप उपाइ कर, न्यारा पद निर्वाण ।
ब्रह्मा विष्णु महेश मिल, बाँध्या सकल बँधाण ॥ १५२ ॥

साक्षी रूप कर्ता का परिचय दे रहे हैं—सर्व प्रथम एक ही ब्रह्म था फिर इच्छा मात्र से प्रकृति द्वारा सृष्टि रचना करके आप तो काल-कर्म के बाणाघात से रहित निर्वाण पद में ही स्थित रहा और त्रिगुणात्म ब्रह्मा, विष्णु, महेश ने ही संपूर्ण जगत् प्रवाह के उत्पत्ति, पालन, संहार की व्यवस्था का नियम नियत किया है।

कृत्रिम कर्ता

नाम नीति अनीति सब, पहली बाँधे बंध।
पशू न जाने पारधी, दादू रोपे फंध ॥ १५३ ॥

१५३-१५४ में कृत्रिम कर्ता के कार्य बता रहे हैं—माया रूप नकली कर्ता ने पहले ही नीति नाम रख के अनीति के बन्धन में सबको बाँध रखा है किन्तु माया रूप शिकारी के रचे हुये इस जाल को जीव-पशु जान नहीं पाते।

दादू बाँधे वेद विधि, भरम कर्म उरझाइ ।
मर्यादा मांहीं रहै, सुमिरण किया न जाइ ॥ १५४ ॥

माया ने जीवों को वेद के बांधे हुये विधान के अनुसार सकाम-कर्म रूप भ्रम में फँसा दिया है। उनसे वर्णाश्रम रूप सीमित मर्यादा में बँधे हुये रहने से निरंजन राम का स्मरण किया ही नहीं जाता। नाना कार्यों से वृत्ति विक्षिप्त रहती है।

माया (नारी दोष निरूपण)

माया मीठी बोलणी, नइ नइ लागे पाइ ।

दादू पैसै पेट में, काढ कलेजा खाइ ॥ १५५ ॥

१५५-१६६ में नारी से होने वाली हानि बता रहे हैं—नारी रूप माया छली-मानव के समान मधुर वचन बोलती है, अति नम्रता पूर्वक चरणों में लगती है। इस प्रकार मानव को अपने अनुकूल करके उसका शील-संतोष रूप कलेजा निकाल कर खा जाती है=हृदय में शील-संतोष नहीं रहने देती।

नारी नागिन जे डसे, ते नर मुये निदान।
दादू को जीवे नहीं, पूछो सबै सयान ॥ १५६ ॥

नारी-सर्पिणी ने जिनको खाया है, उन नरों का अन्त में परमार्थ से पतन रूप मरण ही हुआ है। चाहे सभी वयोवृद्ध अनुभवी लोगों को पूछ लो, नारी में आसक्त होने वाला कोई भी व्यक्ति परमार्थ में उन्नति रूप जीवन धारण नहीं कर सका है।

नारी नागिन एक-सी, बाघिन बड़ी बलाइ।
दादू जे नर रत भये, तिनका सर्वस खाइ ॥ १५७ ॥

नारी और सर्पिणी दोनों समान ही हैं तथा नारी सिंहिनी के समान महान् विपत्ति है। जो मानव नारी में आसक्त होते हैं, उनको जैसे सर्पिणी और सिंहिनी प्राण रूप सर्वस्व हरकर नष्ट कर देती है, वैसे ही नारी भी शरीर का सर्वस्व बिन्दु और मन का सर्वस्व सद्गुण व सद्-विचार हरकर परमार्थ से नष्ट कर देती है।

नारी नैन न देखिये, मुख सौं नाम न लेइ।
कानों कामिनि जनि सुने, यहु मन जाण न देइ ॥ १५८ ॥

नारी को भोग दृष्टि द्वारा नेत्रों से मत देखो, मुख से नाम मत लो, कानों से मत सुनो और अपना मन भी मत जाने दो किन्तु रक्षक दृष्टि द्वारा माता रूप से देखो, सुनो, व अपनी आत्मा समझ करके ही उक्त व्यवहार करो, फिर हानिकर न होगी।

सुन्दरि खाये साँपिनी, केते इहिँ कलि मांहिं।
आदि अंत इन सब डसे, दादू चेते नांहिं ॥ १५९ ॥

इस कलियुग में तो सुन्दरी-सर्पिणी ने अनेकों को नष्ट किया है। आदि युवावस्था के ब्रह्मचारियों से लेकर अंतिम सन्यासियों तक को इसने अपने अधीन किया है। बड़े-बड़े तपस्वी और विचारशील भी इससे सावधान नहीं रह सके हैं।

दादू पैसै पेट में, नारी नागिन होइ।
दादू प्राणी सब डसे, काढ सके ना कोइ ॥ १६० ॥

नारी सर्पिणी के समान होती है और भोगासक्ति के कारण हृदय में घुसकर सब प्राणियों को भोगेच्छा रूप दाँतों से काटती रहती है। नारी में आसक्त प्राणी के हृदय से नारी को कोई भी नहीं निकाल सकता।

माया साँपिनि सब डसे, कनक कामिनी होइ ।
ब्रह्मा विष्णु महेश लौं, दादू बचे न कोइ ॥ १६१ ॥

माया-सर्पिणी कनक और कामिनी का रूप धारण करके सबको डसती है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश तक भी इससे नहीं बच पाते।

माया मारे जीव सब, खंड खंड कर खाइ ।
दादू घट का नाश कर, रोवे जग पतियाइ[१] ॥ १६२ ॥

माया-भोग-वासना के बल से सब जीवों की वृत्ति को खंड-खंड करके अन्त:करण को खराब करती है फिर परमार्थ से गिरा देती है। इस प्रकार सब जीवों को मारती है। इस दु:ख से रोते हुये जीव पुन: रक्षार्थ उसी का विश्वास[१] करते हैं।

बाबा बाबा कह गिले, भाई कह कह खाइ ।
पूत पूत कह पी गई, पुरुषा जनि पतियाइ ॥ १६३ ॥

यह नारी रूप माया बाबा-बाबा, भाई-भाई और पुत्र-पुत्र कह कर भी अनुराग द्वारा परमार्थ से गिराती है। अत: पुरुषों को इसका विश्वास नहीं करना चाहिए।

ब्रह्मा विष्णु महेश की, नारी माता होइ ।
दादू खाये जीव सब, जनि रु पतीजे कोइ ॥ १६४ ॥

यह माया ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश की भी प्रकृति रूप से माता हो जाती है और स्त्री रूप से पत्नी हो जाती है। इसी प्रकार इसने सभी जीवों को परमार्थ से गिराया है। अत: इसका विश्वास किसी को भी नहीं करना चाहिए।

माया बहुरूपी नटणी नाचे, सुर नर मुनि को मोहै ।
ब्रह्मा विष्णु महेश्वर बाहे, दादू बपुरा को है ॥ १६५ ॥

बहु रूप धारण करने वाली माया-नटनी नृत्य करती है तब सुर, नर और मुनियों को भी मोहित कर लेती है। ब्रह्मा, विष्णु और महादेव को भी बहका देती है। तब बेचारे साधारण जीव को बहका दे, इसमें तो कहना ही क्या है ?

माया फाँसी हाथ ले, बैठी गोप[१] छिपाइ ।
जे कोइ धीजे[२] प्राणियां, ताही के गल बाहि ॥ १६६ ॥

माया विषयासक्ति रूप फाँसी हाथ में लेकर सम्पूर्ण पृथ्वी के रक्षक परमात्मा[१] को छिपाकर बैठी है, जो कोई प्राणी इस पर रक्षक रूप से विश्वास[२] करता है उसी के अन्त:करण रूप गले में विषयासक्ति-पाश डालकर विषयों में आसक्त कर लेती है। अत: इस पर रक्षक रूप से विश्वास न करना चाहिए।

पुरुषा फाँसी हाथ कर, कामिनि के गल बाहि।
कामिनि कटारी कर गहै, मार पुरुष को खाइ ॥ १६७ ॥

१६७-१७१ में कहते हैं—कामुक दृष्टि से नारी को पुरुष और पुरुष को नारी हानिकर है।

पुरुष विषय-वासना से अपने हाथों की पाश बनाकर तथा कामिनी के गले में डालकर प्रेम करता है। कामिनी कटाक्ष-कटारी नेत्र-हाथ में पकड़ कर पुरुष के मारती है और अपने में आसक्त करके परमार्थ से गिरा देती है।

नारी बैरिण पुरुष की, पुरुषा बैरी नारि।
अंतकाल दोनों मुये, दादू देखि विचारि॥ १६८॥

कामुक दृष्टि से नारी पुरुषों की बैरिन है और पुरुष नारी के बैरी हैं। कुछ विचार करके देखो, काम वासना से अन्त में दोनों ही परमार्थ से गिर जाते हैं।

नारि पुरुष को ले मुई, पुरुषा नारी साथ।
दादू दोनों पच मुये, कछू न आया हाथ॥ १६९॥

नारियां पुरुषों को अपने में अनुरक्त करके परमार्थ से गिरी हैं और पुरुष नारियों में आसक्त होकर परमार्थ से गिरे हैं। इस प्रकार विषय-सुख के लिए बारंबार प्रयत्न करके मर गये किन्तु किंचित्मात्र भी उन्हें संतोष नहीं प्राप्त हुआ।

भँवरा लुब्धी वास का, कमल बँधाना आइ।
दिन दश मांहीं देखतां, दोनों गये विलाइ॥ १७०॥

भोगी पुरुष-भ्रमर भोग-वासना-सुगंध का लोभी होकर नारी-कमल के मुख-पुष्प में आसक्ति-बन्धन से बँध जाता है किन्तु कुछ दिनों में ही देखते-देखते नारी और पुरुष दोनों अतृप्तावस्था में ही नष्ट हो जाते हैं।

नारी पीवे पुरुष को, पुरुष नारि को खाइ।
दादू गुरु के ज्ञान बिन, दोनों गये विलाइ॥ १७१॥

इति माया का अंग समाप्त॥ १२॥ सा. १३१६।

नारी वीर्य अपहरण द्वारा पुरुष का पुरुषत्व नष्ट करती है। पुरुष नारी को अपने अधीन करके परमार्थ से गिराता है। इस प्रकार गुरु के ज्ञानोपदेश बिना मर्यादा रहित व्यवहार से दोनों ही नष्ट हो जाते हैं। अत: गुरु के उपदेश द्वारा इस पतन से अपने को बचाना चाहिए।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका माया का अंग समाप्त:॥ १२॥

अथ साच का अंग १३

मिथ्या के निरूपण-पश्चात् सत्य की जिज्ञासा होती है—इसलिए अब ''साच का अंग'' कहने में प्रवृत्त मंगल कर रहे हैं—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत:।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत:॥ १॥

जिनकी कृपा से साधक सत्य के द्वारा मिथ्या से पार होकर परब्रह्म को प्राप्त होता है—उन निरंजन राम, सद्गुरु और सर्व संतों को हम अनेक प्रणाम करते हैं।

पुरुष विषय-वासना से अपने हाथों की पाश बनाकर तथा कामिनी के गले में डालकर प्रेम करता है। कामिनी कटाक्ष-कटारी नेत्र-हाथ में पकड़ कर पुरुष के मारती है और अपने में आसक्त करके परमार्थ से गिरा देती है।

नारी बैरिण पुरुष की, पुरुषा बैरी नारि ।
अंतकाल दोनों मुये, दादू देखि विचारि ॥ १६८ ॥

कामुक दृष्टि से नारी पुरुषों की बैरिन है और पुरुष नारी के बैरी हैं। कुछ विचार करके देखो, काम वासना से अन्त में दोनों ही परमार्थ से गिर जाते हैं।

नारि पुरुष को ले मुई, पुरुषा नारी साथ ।
दादू दोनों पच मुये, कछू न आया हाथ ॥ १६९ ॥

नारियां पुरुषों को अपने में अनुरक्त करके परमार्थ से गिरी हैं और पुरुष नारियों में आसक्त होकर परमार्थ से गिरे हैं। इस प्रकार विषय-सुख के लिए बारंबार प्रयत्न करके मर गये किन्तु किंचित्मात्र भी उन्हें संतोष नहीं प्राप्त हुआ।

भँवरा लुब्धी वास का, कमल बँधाना आइ ।
दिन दश मांहीं देखतां, दोनों गये विलाइ ॥ १७० ॥

भोगी पुरुष-भ्रमर भोग-वासना-सुगंध का लोभी होकर नारी-कमल के मुख-पुष्प में आसक्ति-बन्धन से बँध जाता है किन्तु कुछ दिनों में ही देखते-देखते नारी और पुरुष दोनों अतृप्तावस्था में ही नष्ट हो जाते हैं।

नारी पीवे पुरुष को, पुरुष नारि को खाइ ।
दादू गुरु के ज्ञान बिन, दोनों गये विलाइ ॥ १७१ ॥

इति माया का अंग समाप्त ॥ १२ ॥ सा. १३१६ ।

नारी वीर्य अपहरण द्वारा पुरुष का पुरुषत्व नष्ट करती है। पुरुष नारी को अपने अधीन करके परमार्थ से गिराता है। इस प्रकार गुरु के ज्ञानोपदेश बिना मर्यादा रहित व्यवहार से दोनों ही नष्ट हो जाते हैं। अत: गुरु के उपदेश द्वारा इस पतन से अपने को बचाना चाहिए।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका माया का अंग समाप्त: ॥ १२ ॥

अथ साच का अंग १३

मिथ्या के निरूपण-पश्चात् सत्य की जिज्ञासा होती है—इसलिए अब ''साच का अंग'' कहने में प्रवृत्त मंगल कर रहे हैं—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत: ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक सत्य के द्वारा मिथ्या से पार होकर परब्रह्म को प्राप्त होता है—उन निरंजन राम, सद्गुरु और सर्व संतों को हम अनेक प्रणाम करते हैं।

अदया-हिंसा

दादू दया जिन्हों के दिल नहीं, बहुरि कहावें साध ।
जे मुख उन का देखिये, तो लागे बहु अपराध ॥ २ ॥

२-११ में कहते हैं—दयाहीन मानव अच्छे नहीं होते। जिनके हृदय में दया नहीं है, फिर भी जो संत कहलाते हैं, उनके दर्शन से अति पाप लगता है।

दादू महर मुहब्बत मन नहीं, दिल के बज्र कठोर ।
काले काफिर[1] ते कहिये, मोमिन[2] मालिक और ॥ ३ ॥

जिनके मन में दया और प्रेम नहीं, जो वज्र समान कठोर हृदय के हैं—वे मलीन और नास्तिक[1] हैं। धर्मनिष्ठ[2] रक्षक स्वामी तो और ही होते हैं।

दादू कोई काहू जीव की, करे आतमा घात ।
साच कहूं संशय नहीं, सो प्राणी दोजख जात ॥ ४ ॥

यदि कोई किसी जीव के शरीर को नष्ट करता है तो, हम संशय रहित सत्य कहते हैं, वह नष्ट करने वाला नरक को जाता है।

दादू नाहर[1] सिंह सियाल सब, केते मुसलमान ।
मांस खाइ मोमिन[2] भये, बड़े मियां[3] का ज्ञान ॥ ५ ॥

कितने ही मुसलमान मांस खाते हुये भी धर्मनिष्ठ[2] बन रहे हैं और मुहम्मद[3] साहब की कुरान से मांस खाने का समर्थन भी करते हैं किन्तु मांस खाने वाले सभी मानव व्याघ्र[1], सिंह और सियार के समान हैं। मानव का आहार तो अन्न ही है।

दादू मांस अहारी जे नरा, ते नर सिंह सियाल[1] ।
बक[2] मंजार[3] सुनहाँ[4] सही, येता प्रत्यक्ष काल ॥ ६ ॥

जो मांस खाने वाले नर हैं, वे ठीक प्रत्यक्ष ही सिंह, सियार[1], बगुला[2], बिलाव[3] और कुत्ते[4] के समान काल रूप ही हैं।

दादू मुई मार मानुष घणे, ते प्रत्यक्ष जम काल ।
महर दया नहिं सिंह दिल, कूकर काग सियाल ॥ ७ ॥

मृतकवत् कबूतर आदि गरीब प्राणियों को मारने वाले मनुष्य बहुत हैं, वे प्रत्यक्ष ही मृत्यु और काल के समान हैं। जैसे सिंह, कुत्ते, काक और सियार के मन में दया नहीं होती वैसे ही उनके मन में भी दया नहीं होती।

मांस अहारी मद पिवे, विषय विकारी सोइ ।
दादू आत्मराम बिन, दया कहां थीं होइ ॥ ८ ॥

जो मांसाहार और मदिरा पान करते हैं, वे विषय विकारों में फँसे रहते हैं। सत्संगादि के बिना, 'सभी आत्मा एक है और राम सब में व्यापक है' ऐसा ज्ञान नहीं होने से उनके हृदय में दया

कहां से आयेगी ?

लंगर[1] लोग लोभ सौं लागैं, बोलैं सदा उन्हीं की भीर ।
जोर[2] जुल्म[3] बीच[4] बटपारे[5], आदि अंत उनहीं सौं सीर ॥ ९ ॥

निर्लज्ज उद्धत[1] मनुष्य भी लोभ वश सदा मांसाहारियों की ही पक्ष करते हैं और बलात्कार[2], अत्याचार[3], भेदनीति[4], बटमारी[5] करने वाले भी आदि अन्त तक उन्हीं से मेल रखते हैं।

तन मन मार रहैं साँई सौं, तिनको देखि करैं ताजीर[1] ।
यह बड़ि बूझ कहां तैं पाई, ऐसी कजा[2] अवलिया[3] पीर ॥ १० ॥

जो संत तन-मन का संयम करके भगवद्-भजन में लगे रहते हैं, उन्हें देखकर ईर्ष्या[1], उपहास करना, यह महान् बुद्धि कहां से प्राप्त की है। यह बात तो ऐसी है, जैसे नमाज[2] का समय निकल जाने पर नमाज पढ़ना और सिद्ध[3] संत भी कहलाना मर्यादा रहित बात है।

बे महर गुमराह[1] गाफिल, गोश्त—खुरदनी[2] ।
बे दिल[3] बदकार[4] आलम, हयात[5] मुरदनी[6] ॥ ११ ॥

दया हीन, परमार्थ पथ-को-भूला-हुआ[1] असावधान, मांसाहारी[2], मलीन हृदय[3], नीच-कर्म-करने वाला[4]; संसार में जीवित[5] रहते हुये भी मरे हुये के समान है।

साच

छल कर बल कर घाइ[1] कर, मारे जिहिं तिहिं फेरि ।
दादू ताहि न धीजिये, परणे सगी पतेरि[2] ॥ १२ ॥

१२ में सत्य बात कह रहे हैं—जो छल, बल तथा घात[1] करके, जिस किसी भी प्रकार से जीवों को अपने फँदे में फँसा कर मारते हैं और अपने पिता के छोटे भाई की पुत्री[2] से विवाह कर लेते हैं, उनका विश्वास नहीं करना चाहिए।

अदया-हिंसा

दादू दुनियां सौं दिल बाँधकर, बैठे दीन[1] गमाइ ।
नेकी नाम बिसार कर, करद कमाया खाइ ॥ १३ ॥

१३-१९ में अधिक हिंसा करने वालों के व्यवहार का परिचय दे रहे हैं—सांसारिक विषयों में मन को फँसा कर सच्चे धर्म[1] को खो बैठे हैं। भलाई और भगवान् का नाम भूल कर छुरी के द्वारा गले काटने से कमाये हुये पैसे से अपना पेट भरते हैं।

दादू गल काटैं कलमा[1] भरैं, अया[2] विचारा दीन ।
पंचों वक्त नमाज गुजारैं[3], साबित[4] नहीं यकीन[5] ॥ १४ ॥

प्राणियों के गले काटते हैं और हर समय खुदा का स्मरण[1] करते हुये विश्वासी भक्त भी बनते हैं। क्या यही[2] धर्म का विचार है ? पांचों समय नमाज भी पढ़ते[3] हैं, फिर भी भगवान् का पूर्ण[4] विश्वास[5] नहीं रखते।

दुनियां के पीछे पड़ा, दौड़ा दौड़ा जाइ ।
दादू जिन पैदा किया, ता साहिब को छिटकाइ ॥ १५ ॥

जिसने उत्पन्न किया है, उस परमात्मा को त्याग कर संसारी प्राणियों के पीछे-पीछे फिरता है और कुरबानी आदि कार्यों के लिए दौड़-दौड़ कर जाता है।

कुफ्र[1] जे[2] के मन में, मीयां मुसलमान ।
दादू पेया[3] झंग[4] में, बिसारे रहमान[5] ॥ १६ ॥

जिनके[2] मन में नास्तिकता[1], हठ, द्वेष हैं, ऐसे मुसलमान मियां साहिब भी कहलाते हैं किन्तु दयालु[5] भगवान् को भूल कर संसार के झगड़ों[4] में ही पड़े[3] रहते हैं।

आपस को मारे नहीं, पर को मारन जाइ ।
दादू आपा मारे बिना, कैसे मिले खुदाइ ॥ १७ ॥

अपने अहंकार को तो मारते नहीं, दूसरों को मारने जाते हैं। अपने अहंकार की बलि दिये बिना भगवान् कैसे मिल सकते हैं ?

भीतर द्वन्द्वर भर रहे, तिनको मारे नांहिं ।
साहिब की अरवाह[1] है, ताको मारन जांहिं ॥ १८ ॥

अपने हृदय में काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग द्वेषादि द्वन्द्व भरे हैं, उनको तो नहीं मारते और परमात्मा की जीवात्माएँ[1] हैं, उनको मारने जाते हैं।

दादू मूये को क्या मारिये, मीयां मूई मार ।
आपस को मारे नहीं, औरों को हुसियार ॥ १९ ॥

अपने कर्मों से ही मरे हुये जीवों को क्यों मारता है ? हे मुई जीवात्माओं को मारने वाले मियाँ ! तू अपने अहंकारादिक को तो नहीं मारता और दूसरे जीवों को मारने में बड़ा निपुण वीर बना है।

साच

जिसका था तिसका हुआ, तो काहे का दोष ।
दादू बंदा बंदगी, मीयाँ ना कर रोष ॥ २० ॥

२०-२५ में जो मुसलमान जीव को ब्रह्म-भाव की प्राप्ति नहीं मानते, उन्हें सत्य चेतावनी दे रहे हैं—आत्मा जिस ब्रह्म का स्वरूप था, ज्ञान प्राप्त होने पर उसी का स्वरूप हो गया तो इसमें क्या दोष है ? और भक्त को भक्ति का ही अधिकार है, वह भक्ति कर रहा है। दोनों ही ठीक हैं। हे मियाँ ! इस विषय में क्रोध पूर्वक विवाद करने की आवश्यकता नहीं है।

सेवक सिरजनहार का, साहिब का बंदा ।
दादू सेवा बंदगी, दूजा क्या धंधा ॥ २१ ॥

परमात्मा के सच्चे सेवक और खुदा के बंदों के लिए आन्तर सेवा बंदगी के बिना दूसरे

भक्ति व बंदगी के लिए किये जाने वाले बाहर के आडम्बर रूप धंधे क्या महत्त्व रखते हैं ? अर्थात् सच्चे भक्त आडम्बर में नहीं पड़ते।

सो काफिर[१] जे बोले काफ[२], दिल अपना नहिं राखे साफ।
सांई को पहचाने नांहीं, कूड़ कपट सब उनहीं मांहीं ॥ २२ ॥

वे ही नास्तिक[१] हैं जो सत्य को मिथ्या[२] कहते हैं, अपना हृदय शुद्ध नहीं रखते, ईश्वर को नहीं पहचानते। उन्हीं में सब बुराइयां और कपट रहते हैं।

सांई का फरमान न मानैं, कहां पीव ऐसे कर जानैं ।
मन अपने में समझत नांहीं, निरखत चलैं आपनी छांहीं ॥ २३ ॥

परमात्मा की आज्ञा नहीं मानते। 'ईश्वर कहां है ? उसकी केवल कल्पना कर रक्खी है', ऐसा जानते हैं। अपने मन में वास्तविकता को नहीं समझते। अपने को शरीर रूप मान कर, शरीर की छाया देखते हुये चलते हैं और छाया देख कर फूलते हैं।

जोर करे मसकीन[१] सतावे, दिल उसके में दर्द न आवे।
सांई सेती[२] नांही नेह, गर्व करे अति अपनी देह ॥ २४ ॥

अपनी शक्ति से गरीबों[१] को सताते हैं और गरीबों को विपत्ति में देखकर भी उनके हृदय में दया नहीं आती। ईश्वर से[२] तो उनका प्रेम होता ही नहीं। वे तो अपने शरीर के बल आदि का ही गर्व करते रहते हैं।

इन बातन क्यों पावे पीव, पर धन ऊपर राखे जीव ।
जोर जुल्म कर कुटुम्ब सौं खाइ, सो काफिर दोजख में जाइ ॥ २५ ॥

बलपूर्वक अन्याय कर के कुटुम्बियों से खाते पीते हैं और पराए धन को छीनने का विचार रखते हैं। वे नास्तिक लोग नरक में ही जाते हैं। ऐसी बातों से भगवान् तो कैसे प्राप्त हो सकते हैं ?

अदया-हिंसा

दादू जाको मारण जाइये, सोई फिर मारे ।
जाको तारण जाइये, सोई फिर तारे ॥ २६ ॥

२६-२७ में अदया-हिंसा का फल बतला रहे हैं—जो जिसको मारने जाता है, वह पुन: उसको मारता है और जो जिसकी रक्षा करने जाता है, वह फिर उसकी रक्षा करता है।

यह साखी सांभर में भूधरदास के शिष्य को कही थी, जो गुरु-शिष्य ईर्ष्यावश दादूजी को पीटने आये थे। प्रसंग कथा- दृ. सु. सि. त. ११-१२४ में देखो।

दादू नफस[१] नाम सौं मारिये, गोशमालि[२] दे पंद[३] ।
दूई[४] है सो दूर कर, तब घर में आनन्द ॥ २७ ॥

वृत्ति रूप कान[२] को मरोड़ कर, मन को शिक्षा[३] दो। नाम चिन्तन द्वारा विषय वासना[१] को नष्ट करके हृदय में जो द्वैत[४] भावना है, उसे दूर करो। तब घर में रहते हुये भी परमानन्द का अनुभव

होगा।

साच (मुसलमान के लक्षण)

मुसलमान जो राखे मान, सांई का माने फरमान।
सारों को सुखदाई होइ, मुसलमान कर जानों सोइ॥ २८॥

२८-३१ में मुसलमान के लक्षण कहते हैं—जो ईमान रखता है, ईश्वर की आज्ञा मानता है, सन्मान आदि द्वारा सबको सुख देता है, उसी को हम मुसलमान जानते हैं।

दादू मुसलमान महर गह रहै, सबको सुख किस ही न दहै।
मुवा न खाइ, जीवत नहिं मारे, करे बंदगी राह सँवारे॥ २९॥

जो दया धारण करे, सबको सुख दे, कटु बचनादि से किसी का भी हृदय नहीं जलावे, मुरदे को खाये नहीं, जीवित को मारे नहीं, भगवान् की भक्ति करके मुक्ति का मार्ग ठीक करे, वही सच्चा मुसलमान है।

सो मोमिन[१] मन में कर जान, सत्य सबूरी[२] वैसे आन।
चाले साँच सँवारे बाट, तिनको खुले बहिश्त[३] के पाट॥ ३०॥

जिनके हृदय में सत्य और संतोष[२] आकर बैठे हैं—जो सत्य मार्ग को ठीक करके उसमें चलते हैं, वे ही सच्चे ईमानदार[१] मुसलमान हैं। उसके लिए ही स्वर्ग[३] द्वार के कपाट खुले रहते हैं।

सो मोमिन[१] मोम[२] दिल होइ, सांई को पहचाने सोइ।
जोर न करे हराम न खाइ, सो मोमिन[३] बहिश्त में जाइ॥ ३१॥

जो भगवान् को पहचानता है, वही कोमल[२] हृदय वाला ईमानदार[१] कहलाता है। जो बलात्कार नहीं करता, हराम का नहीं खाता, वही धर्मनिष्ठ[३] स्वर्ग में जाता है।

जैसा करना वैसा भरना

जो हम नहीं गुजारते, तुमको क्या भाई।
सीर नहीं कुछ बंदगी, कहु क्यों फरमाई॥ ३२॥

यदि हम आप लोगों के कथनानुसार नहीं करते तो हे भाइयो ! इसमें तुम्हें क्या हानि है ? भक्ति में कुछ सीर नहीं होता। जो हम नहीं करेंगे तो तुम्हें हिस्सा न मिलेगा। फिर आप लोग ऐसा क्यों कहते हैं ?

अपने अमलों[१] छूटिये, काहू के नांहीं।
सोई पीड़ पुकारसी, जा दूखे मांहीं॥ ३३॥

अपने कर्मों[१] से ही प्राणी सांसारिक पाप-ताप से छूटता है, किसी अन्य के कर्म से नहीं। जिसके हृदय में प्रभु वियोग का दुःख है, वही भगवान् को वेदना पूर्वक पुकारेगा। अन्य सब तो बाह्याडम्बर में ही रत हैं।

कोई खाइ अघाइ कर, भूखे क्यों भरिये।

खूटी[१] पूगी[२] आन की, आपन क्यों मरिये ॥ ३४ ॥

कोई मानव पेट भरके खा लेता है, तब दूसरे भूखे मनुष्य का पेट कैसे भरेगा ? किसी अन्य की आयु समाप्त[१] होकर मृत्यु की पल आ पहुँची[२] हो, तब अपन कैसे मर सकते हैं ? अत: अपने कर्म का ही फल अपने को मिलता है।

फूटी नाव समुद्र में, सब डूबन लागे ।
अपना अपना जीव ले, सब कोई भागे ॥ ३५ ॥

जैसे समुद्र में नौका फूट जाय, सब डूबने लगे, तब कौन किसके भरोसे रहता है ? सभी अपने को बचाने का प्रयत्न करते हैं। वैसे ही सबको अपने-अपने उद्धार का साधन करना चाहिए। दूसरे की ओर देखने से क्या लाभ है ?

दादू शिर शिर लागी आपने, कहु कौन बुझावे।
अपना अपना साँच दे, सांई को भावे ॥ ३६ ॥

जैसे अनेक मनुष्यों के शिर पर अग्नि लगे, तब सब अपनी ही बुझाते हैं, कहो दूसरा कौन बुझाता है ? वैसे ही त्रिताप से सब जल रहे हैं। जो सत्यतापूर्वक अपने साधन-जल का छिड़काव देकर स्वयं ही तापाग्नि को बुझाते हैं, वे ही प्रभु को प्रिय लगते हैं।

साँभर में हिन्दू-मुसलमानों ने एक मत हो महाराज से कहा था-आप तीर्थ व्रतों को नहीं मानते, न रोजा करते हो, न कलमा पढ़ते हो, नमाज नहीं गुजारते, ऐसा ठीक नहीं। उक्त दोनों मतों में से किसी एक मत के अनुसार साधन अवश्य करने चाहिए। उन्हीं को ३२ से ३६ तक उत्तर दिया था।

स्मरण चेतावनी

साँचा नाम अल्लाह का, सोइ सत्य कर जाण।
निश्चल कर ले बंदगी, दादू सो परमाण ॥ ३७ ॥

३७-३९ में भगवद् भक्ति करने के लिए सावधान कर रहे हैं—ईश्वर का नाम ही सत्य है। उसी को मुक्ति का सच्चा साधन जान कर, मन को स्थिर करके अखंड भक्ति करो। उक्त प्रकार की भक्ति ही प्रामाणिक मानी जाती है।

आवट[१] कूटा[२] होत है, अवसर बीता जाइ ।
दादू कर ले बंदगी, राखणहार खुदाइ ॥ ३८ ॥

छल[२] आदि के द्वारा प्राणियों के हृदय में हलचल[१] मच रही है। इसी स्थिति में मानव जीवन का सुअवसर नष्ट हो रहा है। जो बचा समय है, उसमें तो भगवान् की भक्ति कर लो। सांसारिक दु:खों से रक्षा करने वाले एक मात्र भगवान् ही हैं।

इस कलि केते ह्वै गये, हिन्दू मूसलमान ।
दादू साँची बंदगी, झूठा सब अभिमान ॥ ३९ ॥

इस कलियुग में अपने बाह्य धर्म का अभिमान रखने वाले अनेक हिन्दू और मुसलमान हो गये हैं। किन्तु वह सम्पूर्ण अभिमान भगवत् प्राप्ति का सच्चा साधन नहीं सिद्ध हुआ। भगवत् प्राप्ति का सच्चा उपाय तो भगवान् की भक्ति ही है।

कथनी बिना करणी

पोथी अपना पिंड कर, हरि यश मांहीं लेख।
पंडित अपना प्राण कर, दादू कथहु अलेख ॥ ४० ॥

४०-४७ में कथन बिना कर्त्तव्य के विषय में कह रहे हैं—अपने शरीर को ही पुस्तक बना कर उसमें भगवान् का यश लिखो। अपने जीवात्मा को ही पंडित बना कर मन इन्द्रियों के अविषय परब्रह्म का ही कथन करो, अर्थात् अपने स्थूल-सूक्ष्म संघात को भगवत्-परायण करके समाधिस्थ रहो।

काया कतेब बोलिये, लिख राखूं रहमान[१]।
मनवा मुल्ला[२] बोलिये, श्रोता है सुबहान[३] ॥ ४१ ॥

हम तो काया को ही किताब कहते हैं, उसमें दयालु[१] ईश्वर का यश लिख कर रखते हैं। मन पंडित[२] बोलता है और स्वयं पवित्र[३] ईश्वर श्रोता बन कर सुनता है।

दादू काया महल में नमाज गुजारूं, तहँ और न आवन पावे।
मन मणके कर तसबीह[१] फेरूं, तब साहिब के मन भावे ॥ ४२ ॥

जहां अन्य कोई भी नहीं आ सकता, उसी काया नगरी के हृदय महल में हम भक्ति करते हैं। मन के मनिये बनाकर माला[१] फेरते हैं। तब ही हमारी उपासना भगवान् को प्रिय लगती है।

दिल दरिया में गुसल[१] हमारा, ऊजू[२] कर चित लाऊं।
साहिब आगे करूं बंदगी, बेर बेर बलि जाऊं ॥ ४३ ॥

हृदय-दरिया के नाम-चिन्तन-जल से हमारा स्नान[१] होता है। संयम-लोटा के प्रत्याहार-जल से पंचेन्द्रिय रूप पांचों (हाथ[२]-पैर-मुख) अंगों को धोकर, भगवान् में चित्त लगाते हैं। इस प्रकार हम भगवान के आगे भक्ति करते हैं और बारंबार बलिहारी जाते हैं।

दादू पंचों संग सँभालूं सांई, तन मन तब सुख पाऊं।
प्रेम पियाला पिवजी देवे, कलमा ये लै लाऊं ॥ ४४ ॥

पांचों ज्ञानेन्द्रियों को भगवत् परायण करके भगवद् भजन करते हैं, तभी परमात्मा हमें अपने प्रेम-रस का प्याला प्रदान करते हैं। उसके प्रताप से हम तन-मन से आनन्दित रहते हैं। हमारा कलमा पढ़ना यही है कि ''परब्रह्म में ही अपनी वृत्ति लगावें।''

शोभा कारण सब करैं, रोजा बांग नमाज।
मुवा न एकौ आह सौं, जे तुझ साहिब सेती काज ॥ ४५ ॥

सभी प्रशंसा के लिए रोजा करते हैं। नमाज के समय आवाज लगाते हैं। यदि ऐसा नहीं हो और तुझे परमात्मा से मिलने का ही काम हो तो, एक आवाज से ही क्यों न मरा। कारण, इतने जोर

से बोलने वाला वियोगी तो प्रेम पात्र के बिना जीवित रह नहीं सकता।

हर रोज हजूरी होइ रहु, काहे करे कलाप[३] ।
मुल्ला तहां पुकारिये, जहँ अर्श[१] इलाही[२] आप ॥ ४६ ॥

हे मुल्ला ! नित्य परमात्मा की भक्ति में स्थिर रह, रोजा आदि का कष्ट[३] क्यों उठाता है ? यदि बांग लगाना ही है तो वहां लगा, जहां हृदयाकाश[१] में अपना आत्म स्वरूप परब्रह्म[२] है अर्थात् भीतर ही प्रार्थना कर।

हरदम हाजिर होना बाबा, जब लग जीवे बंदा ।
दायम[१] दिल साँई सौं साबित, पंच वक्त क्या धंधा ॥ ४७ ॥

हे बाबा ! जब तक दास जीवित रहता है, तब तक स्वामी के सम्मुख ही रहना पड़ता है। वैसे ही अपना मन सदा[१] प्रति श्वास परमात्मा में ही लगाये रखना चाहिये।

हिन्दू मुसलमानों का भ्रम

दादू हिन्दू मारग कहैं हमारा, तुरक कहैं रह मेरी।
कहां पंथ है कहो अलह का, तुम तो ऐसी हेरी ॥ ४८ ॥

४८-५० में हिन्दू मुसलमानों के भ्रम का दिग्दर्शन करा रहे हैं—हिन्दू कहते हैं—हमारा मार्ग श्रेष्ठ है, मुसलमान कहते हैं—हमारा श्रेष्ठ है। किन्तु बताओ, इन वाद-विवाद पूर्ण पंथों में परमात्मा की प्राप्ति का मार्ग कहां है ? तुम लोगों ने तो केवल विवाद वृद्धि की ही खोज की है।

दादू दुई[१] दरोग[२] लोग को भावे, सांई साँच पियारा।
कौन पंथ हम चलैं कहो धू[३], साधो करो विचारा ॥ ४९ ॥

द्वैत[१] भाव और मिथ्या[२] व्यवहार ही संसारी लोगों को प्रिय लगता है, किन्तु भगवान् को तो सत्य ही प्रिय है। हे संतो ! विचार द्वारा निश्चय[३] करके कहो, हम किस मार्ग का अनुसरण करें अर्थात् हमें सत्य अद्वैत में ही स्थित रहना चाहिए।

खंड खंड कर ब्रह्म को, पख पख लीया बांट।
दादू पूरण ब्रह्म तज, बँधे भरम की गांठ ॥ ५० ॥

अविद्या की ग्रंथि में बँध जाने के कारण व्यापक ब्रह्म को त्याग कर, हिन्दू, वैष्णव शैव,शाक्त,सौर, गणपत्य, बौद्ध, जैन, पारसी, ईसाई,मुसलमान आदि संसारी लोगों ने अपने-अपने मत की रक्षा के अनुसार ब्रह्म को खंड-खंड करके बाँट लिया है और विवाद द्वारा झगड़ते रहते हैं।

मन विकार औषधि

जीवत दीसे रोगिया, कहैं मूवाँ पीछैं जाइ ।
दादू दुंह[१] के पाढ[२] में, ऐसी दारू[३] लाइ ॥ ५१ ॥

५१-५२ में मन के विकार हटाने की प्रेरणा कर रहे हैं—जीवनकाल में तो विषय-वासना-

रोग से पीड़ित दिखाई दे रहे हैं और कहते हैं कि मरने के पश्चात् मुक्तिधाम को चले जायेंगे, सो ठीक नहीं। त्रिविधि ताप रूप दावाग्नि[१] के आश्रय अन्त:करण रूप पर्वत[२] में जीते ही ऐसी औषधि[३] की वृष्टि करो जिससे उसकी ज्वालायें शांत हो जायँ, अर्थात् जीवन काल में ही ब्रह्म ज्ञान प्राप्त करो। वा द्वैत के[१] आश्रय अन्त:करण रूप मचान[२] पर ब्रह्म ज्ञान रूप ऐसी बारूद[३] जलाओ, जिससे विषय-वासना रूप रोग जीवन-काल में ही नष्ट होकर मुक्त हो जाओ।

सो दारू किस काम की, जातैं दर्द न जाइ।
दादू काटे रोग को, सो दारू ले लाइ॥ ५२॥

जिससे जन्म-मरण रूप पीड़ा नहीं नष्ट हो, वह सकाम कर्म रूप औषधि किस काम की है ? जो मन के विकार विषय-वासनादि उपद्रवों के सहित जन्म-मरण-रोग को मूल से नष्ट कर सके, वह ब्रह्माकार वृत्ति रूप औषधि सद्गुरु-वैद्य से लेकर मन में लगा=निरंतर ब्रह्माकार वृत्ति रख।

चानक उपदेश

एक सेर का ठाँवड़ा, क्यों ही भर्‌या न जाइ।
भूख न भागी जीव की, दादू केता खाइ॥ ५३॥

५३-५६ में चुभता उपदेश कर रहे हैं—प्राणी का पेट रूप बर्तन प्राय: एक सेर का है, वह कैसे नहीं भरेगा ? वह तो भर ही जाता है और यह कितना ही खाता भी रहता है किन्तु इसके मन की अभिलाषा नहीं मिटती।

पशुवां की नांई भर भर खाइ, व्याधि घणेरी बधती जाइ।
पशुवां की नांई करे अहार, दादू बाढ़े रोग अपार।
राम रसायन भर भर पीवे, दादू जोगी जुग जुग जीवे॥ ५४॥

मानव होकर भी पशुओं के समान पेट भर-भर के खाते हैं, इससे शरीर में बहुत-सी व्याधियाँ बढ़ जाती हैं तथा सिंहादि पशुओं के समान मांसाहार करते हैं, जिससे मन में पापादि विकार रूप अपार रोग बढ़ते रहते हैं किन्तु जो योगी सर्व-रोग नाशक राम-भक्ति रूप रसायन का रुचि भर-भर कर पान करते हैं, वे परब्रह्म को प्राप्त होकर अमर हो जाते हैं।

दादू चारे चित दिया, चिन्तामणि को भूल।
जन्म अमोलक जात है, बैठे माँझी फूल॥ ५५॥

ईश्वर वा नाम-चिन्तामणि को भूल कर भोजनादि में ही चित्त लगाये रखते हैं—इस प्रकार अपना अमूल्य मानव-जन्म विषयों में व्यर्थ ही जा रहा है, तो भी मानव-समाज के मध्य बैठकर प्रसन्न होते हैं, किन्तु इस प्रसन्नता का परिणाम दु:ख ही है।

भरी अधौड़ी[१] भावठी[२], बैठा पेट फुलाइ।

दादू शूकर श्वान ज्यों, ज्यों आवे त्यों खाइ ॥ ५६ ॥

मन को भाने[२] वाली वस्तुयें जैसे-जैसे आती हैं, वैसे-वैसे ही शूकर व श्वान के समान अमर्यादित मात्रा में खाता रहता है और चमार की भट्ठी पर पानी से भरी हुई लटकती कच्ची चमड़ी[१] की मश्क के समान पेट फुला कर बैठा रहता है।

शिश्न स्वाद

दादू खाटा मीठा खाइ कर, स्वाद चित दीया।
इनमें जीव विलंबिया, हरि नाम न लीया ॥ ५७ ॥

५७-५८ में कहते हैं, इन्द्रियाधीन भजन नहीं कर पाता है—खट्टे, मीठे आदि रसों वाले पदार्थों को खाकर-खाकर उनके स्वाद में ही मन लगा देते हैं। इसीलिए प्राणी उन्हीं में फँस जाते हैं, भगवान् का नाम स्मरण नहीं कर पाते।

भक्ति न जाने राम की, इन्द्री के आधीन ।
दादू बंध्या स्वाद सौं, तातैं नाम न लीन ॥ ५८ ॥

इन्द्रियों के अधीन रहने से, विषयों के स्वाद में ही फँसे रहते हैं, राम की भक्ति नहीं जानते, इसलिए नाम स्मरण नहीं कर पाते।

साच

दादू अपना नीका राखिये, मैं मेरा दिया बहाइ ।
तुझ अपने सेती काज है, मैं मेरा भावै तीधर जाइ ॥ ५९ ॥

५९-६० में किसी वादी को सत्य बात कह रहे हैं—हे वादी ! तुम अपने धर्म को अच्छी प्रकार धारण करो, मैंने मेरा भाव अपनत्व त्याग दिया है तो इससे तुम्हें क्या हानि है ? तुमको अपने धर्म से काम है। मैं और मेरा धर्म चाहे कहीं भी जाय।

जे हम जाण्या एक कर, तो काहे लोक रिसाइ ।
मेरा था सो मैं लिया, लोगों का क्या जाइ ॥ ६० ॥

यदि हमने आत्मा और ब्रह्म को एक जाना है—तो इससे कर्मकांडी लोग हम पर क्यों कुपित होते हैं ? हमारा जो वास्तविक स्वरूप था, वही हमने प्राप्त किया है। इससे लोगों का क्या बिगड़ता है ?

करणी बिना कथनी

दादू द्वै द्वै पद किये, साखी भी द्वै चार ।
हमको अनुभव ऊपजी, हम ज्ञानी संसार ॥ ६१ ॥

६१-६८ में वाचिक ज्ञानियों के विषय में कह रहे हैं—वाचिक ज्ञानी दो-चार गाने के पद और दो चार साखियां बना कर कहते हैं- हमारे हृदय में अनुभव ज्ञान उत्पन्न हुआ है। संसार में हम

ही ज्ञानी हैं।

सुन सुन पर्चे ज्ञान के, साखी शब्दी होइ।
तब ही आपा ऊपजे, हम–सा और न कोइ ॥ ६२ ॥

ज्ञान की बातें लिखे हुये कागज के टुकड़े सुनते-सुनते यदि कोई साखी, शब्दी बन जाती है तो उसी क्षण इतना अभिमान हृदय में उत्पन्न हो जाता है कि हमारे समान कोई भी नहीं है।

सो उपजी किस काम की, जे जन जन करे कलेश।
साखी सुन समझे साधु की, ज्यों रसना रस शेष ॥ ६३ ॥

वह अनुभव की उपज किस काम की है ? जिसके द्वारा विवाद करके व्यक्ति-व्यक्ति को दु:खी करे। अनुभवी संतों की तो साखी सुनकर समझते ही भजन में मन लगता है और नाम उच्चारण से जैसे शेषजी की रसना को रस आता है, वैसे ही रसना पर रस का अनुभव होने लगता है।

दादू पद जोड़े साखी कहै, विषय न छाड़े जीव।
पानी घाल बिलोइये, क्यों कर निकसे घीव ॥ ६४ ॥

जो ज्ञान के पद और साखियां बना कर सुनाते रहते हैं, किन्तु विषयों का त्याग नहीं करते प्रत्युत उनमें आसक्त हुये रहते हैं। उनका यह कार्य पानी में मथानी डाल कर, मंथन करने के समान है। जैसे पानी से घृत नहीं निकलता वैसे ही उक्त व्यवहार से ब्रह्म साक्षात्कार नहीं होता।

दादू पद जोड़े का पाइये, साखी कहे का होइ।
सत्य शिरोमणि सांइयां, तत्त्व न चीन्हा सोइ ॥ ६५ ॥

जो सत्य और सर्व श्रेष्ठ-ब्रह्म तत्व है, उसे नहीं पहचाना तो पद और साखियां बनाकर सुनाने से क्या होता है ? जन्मादि बन्धन तो कटता नहीं, भोग ही प्राप्त होते हैं।

कहबे सुनबे मन खुसी, करबा औरै खेल।
बातों तिमिर न भाजई, दीवा बाती तेल ॥ ६६ ॥

कहने-सुनने से तो केवल मन प्रसन्न होता है। साधन करना और ही काम है। जैसे दीपक बत्ती और तेल की बातें करने से अंधकार नहीं जाता किन्तु इन सबको संग्रह करके दीपक जलाने से ही जाता है। वैसे ही ज्ञान साधनों द्वारा ज्ञान उत्पन्न करने से ही अज्ञान नष्ट होता है।

दादू करबे वाले हम नहीं, कहबे को हम शूर।
कहबा हम तैं निकट है, करबा हम तैं दूर ॥ ६७ ॥

वाचिक ज्ञानी करने वाले नहीं होते, कहने में ही वीर होते हैं। कहना उनके अति समीप है किन्तु करना उनसे अति दूर रहता है। वे कथनानुसार नहीं करते।

कहे कहे का होत है, कहे न सीझे काम।
कहे कहे का पाइये, जब लग, हृदय न आवे राम ॥ ६८ ॥

कहने से ही क्या होता है ? करे बिना कहने मात्र से तो कोई व्यावहारिक काम भी सिद्ध नहीं होता। इसी प्रकार परमार्थ की बातें कहते रहने से भी क्या मिलता है ? जब तक हृदय में निरंजन राम का साक्षात्कार नहीं होता तब तक परमानन्द कहां प्राप्त होता है ?

चौंप (चाह) बिन चौंप चर्चा

दादू श्रोता घर नहीं, वक्ता बकै सु बादि।
वक्ता श्रोता एक रस, कथा कहावै आदि ॥ ६९ ॥

६९-७० में कहते हैं—उत्कट अभिलाषा से कहना-सुनना सार्थक होता है, शेष सब व्यर्थ है-यदि श्रोता की वृत्ति अन्त:करण-घर में स्थिर नहीं है और वक्ता भी कल्याण की उत्कंठा बिना ही बोल रहा है तो वह कथा व्यर्थ है और श्रोता-वक्ता दोनों कल्याण की उत्कंठा से एकाग्रता पूर्वक कह-सुन रहे हैं तो वह कथा प्रथम श्रेणी की है=श्रेष्ठ है।

वक्ता श्रोता घर नहीं, कहै सुनै को राम।
दादू यहु मन स्थिर नहीं, बाद बकै बेकाम ॥ ७० ॥

जिन वक्ता श्रोताओं की वृत्ति अन्त:करण-घर में स्थिर नहीं रहती उनको कहते सुनते रहने पर भी, यह ज्ञान नहीं होता कि-''राम कौन है।'' वे राम को नहीं जान पाते। अत: जब तक यह मन स्थिर नहीं होता, तब तक वाचिक ज्ञानी निष्प्रयोजन व्यर्थ ही बकते रहते हैं।

विचार-दृढ़ ज्ञान

अंतर सुरझे समझ कर, फिर न अरूझे जाइ।
बाहर सुरझे देखतां, बहुरि अरूझे आइ ॥ ७१ ॥

७१ में विवेक विचार और अदृढ़ विवेक विचार वालों की गति बता रहे हैं—जो दृढ़ विवेक विचार द्वारा अपने स्वरूप को समझकर आंतर विषय-वासनादि विकारों से मुक्त हो गये हैं, वे पुन: विषयादि विकारों में प्रवृत्त होकर संसार-बन्धन में नहीं बँधते। जो केवल वाणी से या भेष-परिवर्तन द्वारा ही विषयादि का त्याग करते हैं, वे विषय-राग नष्ट न होने के कारण पुन: विषयों में प्रवृत्त होकर संसार-बन्धन में बँध जाते हैं।

झूठे गुरु

आतम लावे आप सौं, साहिब सेती नांहिं।
दादू को निपजे नहीं, दोन्यों निष्फल जांहिं ॥ ७२ ॥

७२-७३ में झूठे गुरु लोगों का व्यवहार बता रहे हैं—जीवात्माओं को उपदेशादि द्वारा अपनी भक्ति में लगाते हैं, भगवद्-भक्ति करा कर भगवान् के वास्तविक स्वरूप में नहीं लगाते। उन गुरु-शिष्यों में कोई भी ब्रह्म-ज्ञान को प्राप्त नहीं होता। ऐसे गुरु-शिष्य दोनों ही जीवन को निष्फल खोकर जन्मादि संसार को प्राप्त होते हैं।

तूं मुझ को मोटा कहै, हौं तुझे बड़ाई मान।
सांई को समझै नहीं, दादू झूठा ज्ञान ॥ ७३ ॥

गुरु शिष्य को कहता है—तू मुझे लोगों के सामने महान् बता कर मेरा सन्मान किया कर और मैं तेरी बड़ाई करके तेरा सन्मान किया करूँगा। इस प्रकार के मिथ्या ज्ञान में ही फँसे रहने के कारण वे परमात्मा के वास्तविक स्वरूप को नहीं समझ पाते।

कस्तूरिया मृग

सदा समीप रहै सँग सन्मुख, दादू लखै न गूझ[1]।
स्वप्ने ही समझै नहीं, क्यों कर लहै अबूझ ॥ ७४ ॥

७४ में कहते हैं—ब्रह्म अति समीप है किन्तु अज्ञानी को नहीं भासता-जैसे कस्तूरी मृग की नाभि में होती है किन्तु वह अज्ञानवश नाभि स्थित कस्तूरी को न जानकर बाहर घासादि में खोजता है, वैसे ही ब्रह्म व्यापक तथा सबका आत्मा होने से सदा ही सबके संग, अत्यन्त समीप और सन्मुख रहता है किन्तु अज्ञानी उस गुप्त[1] ब्रह्म को नहीं देख सकता, जो उसके साक्षात्कार के साधनों को स्वप्न में भी गुरु द्वारा समझ कर नहीं करते, वे अज्ञानी उस ब्रह्म को कैसे प्राप्त कर सकते हैं ?

बेखर्च व्यसनी

दादू सेवक नाम बोलाइये, सेवा स्वप्ने नांहिं।
नाम धराये का भया, जे एक नहीं मन मांहिं ॥ ७५ ॥

७५-८१ में कहते हैं—भक्ति आदि साधनों के बिना भक्त कहलाने से लाभ नहीं—अपना नाम सेवक रख कर दूसरों से बुलाने का प्रयत्न तो करते हैं किन्तु सेवा स्वप्न में भी नहीं करते। जब सेवक का एक भी लक्षण मन में नहीं है, तब केवल नाम धराने से क्या लाभ है ?

नाम धरावें दास का, दासातन तैं दूर।
दादू कारज क्यों सरे, हरि सौं नहीं हजूर ॥ ७६ ॥

नाम तो दास का-सा रखा लेते हैं किन्तु सच्चे दास भाव से तो अति दूर रहते हैं। जब भगवान् की भक्ति द्वारा भगवान् के सन्मुख नहीं रहते तब भगवत् प्राप्ति रूपी कार्य कैसे सिद्ध होगा ?

भक्त न होवे भक्ति बिन, दासातन बिन दास।
बिन सेवा सेवक नहीं, दादू झूठी आस ॥ ७७ ॥

भक्ति बिना भक्त, दास भाव बिना दास, सेवा बिना सेवक, कोई भी नहीं हो सकता। कर्त्तव्य करे बिना कार्य सिद्धि की आशा व्यर्थ है।

राम भक्ति भावे नहीं, अपनी भक्ति का भाव।
राम भक्ति मुख सौं कहै, खेले अपना डाव ॥ ७८ ॥

प्रतिष्ठा-प्रिय लोगों को राम-भक्ति प्रिय नहीं होती। उनके मन में तो अपनी प्रतिष्ठा कराने का ही भाव रहता है। केवल मुख से राम भक्ति का उपदेश करके प्राणियों को अपने जाल में फँसाने

का अवसर देखते रहते हैं। फँसने पर अपनी ही सेवा-भक्ति में लगाते हैं।

भक्ति निराली रह गई,हम भूल पड़े वन मांहिं ।
भक्ति निरंजन राम की, दादू पावे नांहिं ॥ ७९ ॥

भक्ति तो अलग रही, प्रतिष्ठा-प्रिय लोग, प्रतिष्ठार्थ विवाद द्वारा भेद-विपिन में पड़कर ईर्ष्या, द्वेषादि कंटकों से व्यथित होते हैं। उन्हें निरंजन राम की भक्ति रूप राज-मार्ग नहीं मिलता।

सो दशा कतहूँ रही, जिहिं दिशि पहुँचे साध ।
मैं तैं मूरख गह रहे, लोभ बड़ाई वाद ॥ ८० ॥

भक्ति आदि साधनों द्वारा संत-जन जिस उत्तम अवस्था को प्राप्त हुये थे, वह अवस्था तो कहीं अन्यंत्र ही रही, इन प्रतिष्ठा-प्रिय लोगों में आई नहीं, ये लोग तो मूर्खता वश, मैं सर्व श्रेष्ठ हूँ, तू मेरे समान नहीं, इत्यादिक अहंकार को पकड़ कर लोभ, बडाई और विवादादि में पड़े हुये हैं।

दादू राम विसार कर, कीये बहु अपराध ।
लाजों मारे संत सब, नाम हमारा साध ॥ ८१ ॥

प्रतिष्ठा प्रिय लोगों ने हृदय से भगवान् को भूल कर बाहरी भक्ति के ढोंग द्वारा बहुत अपराध किये हैं और अपना नाम संत रखकर सब संतों को भी लज्जित किया है।

करणी बिना कथनी

मनसा के पक्वान्न सौं, क्यों पेट भरावे ।
ज्यों कहिये त्यों कीजिये, तब ही बन आवे ॥ ८२ ॥

८२-८५ में कहते हैं—करे बिना कथन मात्र से कार्य सिद्ध नहीं होता-मनोरथ से बनाये हुये पक्वान्न से पेट कैसे भर सकता है ? वैसे ही जैसा कहा जाय, वैसा ही किया जाय, तब ही कार्य बनता है।

दादू मिश्री मिश्री कीजिये,मुख मीठा नांहीं ।
मीठा तब ही होइगा, छिटकावे मांहीं ॥ ८३ ॥

जैसे मिश्री २ बोलते रहने से मुख मधुर नहीं होता, किन्तु मिश्री मुख में डालते ही मुख मधुर हो जाता है, वैसे ही भगवत् प्राप्ति के साधनों की बातें करने से भगवान् प्राप्त नहीं होते, साधन अभ्यास करने से ही होते हैं।

दादू बातों ही पहुँचे नहीं, घर दूर पयाना ।
मारग पंथी उठ चले,दादू सोई सयाना ॥ ८४ ॥

कर्म-कांड रूप देश से ब्रह्म-साक्षात्कार रूपी अपना घर दूर है। वहां केवल बातों से नहीं पहुँचा जाता, चलना पड़ता है=अंतरंग साधन करना पड़ता है। जो जिज्ञासु-पथिक संसार दशा से उठकर अंतरंग साधन-मार्ग में चलता है, वही बुद्धिमान् है।

बातों सब कुछ कीजिये, अंत कछू नहिं देखे ।
मनसा वाचा कर्मना, तब लागे लेखे ॥ ८५ ॥

बातों से तो ब्रह्म-प्राप्ति तक सभी कुछ करके दिखा देते हैं किन्तु उन बातों का फल अन्त में कुछ भी नहीं देखते। अत: प्राणी जब मन, वचन और शरीर से भगवत् प्राप्ति का साधन करता है, तभी जीवन सफल होता है।

समझ सुजानता=सब जीवों में ज्ञान

दादू कासौं कह समझाइये, सब को चतुर सुजान।
कीड़ी कुंजर आदि दे, नाहिं न कोई अजान ॥ ८६ ॥

८६ में कहते हैं—सब प्राणी अपने को ज्ञानी मानते हैं-हम कथन द्वारा सत्य तत्व समझाना तो चाहते हैं किन्तु किसको समझावें ? कारण, माया से मोहित सभी अपने को व्यवहार में कुशल और ब्रह्म ज्ञानी मानते हैं, अत: सुनते ही नहीं। और तो क्या कहें, हमें तो चींटी से लेकर हस्ति तक कोई भी प्राणी अनजान नहीं ज्ञात होते, सभी अपने को समझदार मानते हैं।

करणी बिना कथनी

दादू सूना घट सोधी नहीं, पंडित ब्रह्मा पूत।
आगम निगम सब कथैं, घर में नाचैं भूत ॥ ८७ ॥

८७-९५ में कहते हैं—कर्त्तव्य-रहित केवल कथन से परमार्थ लाभ नहीं होता -केवल शब्दार्थ को जानने वाले पंडित जन अपने को ब्रह्मा के पुत्र वसिष्ठ के समान मानते हैं और वेद-शास्त्रों का कथन भी करते हैं किन्तु उनका अन्त:करण भक्ति, वैराग्य, ज्ञानादि साधन रूपी कर्त्तव्य से शून्य रहता है। ब्रह्म ज्ञानियों में जो निर्द्वन्द्वता और समता बुद्धि होती है, वह उन में नहीं होती। अत: उनके अन्त:करण-घर में काम-क्रोधादि-भूत नाचते ही रहते हैं।

पढे न पावे परमगति, पढे न लंघे पार ।
पढे न पहुँचे प्राणियाँ, दादू पीड़ पुकार ॥ ८८ ॥

कर्त्तव्य किए बिना पढ़ने मात्र से किसी की भी उत्तम गति नहीं होती। न कोई संसार से पार होता और न कोई स्वस्वरूप स्थिति तक पहुँचता। प्राणी जब विरह-व्यथा युक्त प्रभु को पुकारता है, तभी प्रभु का साक्षात्कार होता है।

दादू निवरे[1] नाम बिन, झूठा कथैं गियान ।
बैठे शिर खाली करैं, पंडित वेद पुरान ॥ ८९ ॥

भगवन्नाम चिन्तन से शून्य[1] वर्णाश्रम-धर्मादि का निर्णय करने वाले पंडित-जन वेद-पुराणादि के यथार्थ ब्रह्म-ज्ञान को छोड़कर वेद के कर्म-कांड और पुराणों के आख्यान रूप मिथ्या ज्ञान को ही सुनाते रहते हैं। इस प्रकार निष्प्रयोजन मस्तिष्क खाली करते हैं। कारण, कर्त्तव्य किए

बिना कथन से लक्ष्य प्राप्ति नहीं होती।

दादू केते पुस्तक पढ़ मुये, पंडित वेद पुरान।
केते ब्रह्मा कथ गये, नांहिं न राम समान ॥ ९० ॥

कितने ही पंडित वेद-पुराणादि पुस्तकें पढ़ते-पढ़ते मृत्यु के मुख में चले गये और कितने ही ब्रह्मा आदि ऋषि भी कथन करते-करते चले गये किन्तु सबका सार यही है-''निरंजन राम के अभेद-चिन्तन के समान मुक्ति का साधन अन्य कोई भी नहीं है।'' अत: कथन मात्र से मुक्ति नहीं होती।

सब हम देख्या सोधकर, वेद कुरानों मांहिं।
जहां निरंजन पाइये, सो देश दूर इत नांहिं ॥ ९१ ॥

जो वेद कुरानादि में विचार है, उनको हमने भली प्रकार विचार करके देखा है। उनसे ज्ञात होता है—जिस निर्विकल्प समाधि में निरंजन राम की प्राप्ति होती है, वह समाधि-देश वेदादि के कथन मात्र से ही प्राप्त नहीं होता। कथन-व्यवहार से वह अति दूर है, साधन करने से ही प्राप्त होता है।

काजी कजा न जानही, कागज हाथ कतेब।
पढतां पढतां दिन गये, भीतर नांहीं भेद ॥ ९२ ॥

काजी कुरान की पुस्तक के कागज हाथ में रखता है किन्तु यह नहीं जान पाता—मैं मरने वाला हूँ। इस प्रकार पढ़ते-पढ़ते आयु के दिन व्यतीत हो जाते हैं किन्तु अपने अन्तर-रहस्य मय स्वरूप को नहीं जान पाता।

मसि कागज के आसरे, क्यों छूटे संसार।
राम बिना छूटे नहीं, दादू भरम विकार ॥ ९३ ॥

केवल स्याही और कागज से बनी पुस्तकों के पढ़ने-सुनने मात्र से संसार-बन्धन कैसे छूट सकता है ? निरंजन राम के भजन बिना अन्य उपाय से भ्रम और कामादिक विकार नष्ट होते ही नहीं।

कागज काले कर मुये, केते वेद पुरान।
एकै अक्षर पीव का, दादू पढे सुजान ॥ ९४ ॥

कितने ही विद्वान् वेदों पर भाष्य और पुराणों पर टीका तथा अन्यान्य ग्रन्थ रचना द्वारा बहुत-से कागज काले करके मृत्यु को प्राप्त हुये हैं किन्तु अद्वैत अविनाशी परमात्मा का नाम कोई विरले बुद्धिमान् ही पढ़ते हैं।

कहतां कहतां दिन गये, सुनतां सुनतां जाइ।
दादू ऐसा को नहीं, कह सुन राम समाइ ॥ ९५ ॥

कथन करते-करते वक्ता की आयु के दिन व्यतीत हो गये और सुनते-सुनते श्रोता के भी व्यतीत हो रहे हैं किन्तु वक्ता-श्रोताओं में ऐसा कोई नहीं दिखाई देता, जो कह कर वा सुन कर राम

के स्वरूप में ही समा जाये।

मध्य निष्पक्ष

मौन गहैं ते बावरे, बोलैं खरे अयान ।
सहजैं राते राम सौं, दादू सोई सयान ॥ ९६॥

निर्पक्ष मध्य मार्ग के साधन का परिचय दे रहे हैं—जो बोलते तो नहीं किन्तु मन उनका निरंतर सांसारिक संकल्प विकल्प में ही रत रहता है, वे पागल हैं और जो ब्रह्म-ज्ञान की बातें तो बहुत करते हैं किन्तु धारण लेश मात्र भी नहीं करते, वे भी सच्चे अज्ञानी हैं। जो सहज स्वभाव से ही निरंजन राम में रत हैं, वे ही समझदार हैं।

करुणा

कहतां सुनतां दिन गये, ह्वै कछू न आवा ।
दादू हरि की भक्ति बिन, प्राणी पछतावा ॥ ९७ ॥

कर्त्तव्य शून्य जीवों पर दया दिखा रहे हैं—कहते-कहते और सुनते-सुनते आयु के दिन समाप्त हो गये किन्तु कहने-सुनने मात्र से कुछ भी लाभ सामने नहीं आया। भगवान् की भक्ति करे बिना कहने-सुनने वाले अन्त में पश्चात्ताप ही करते हैं।

दुर्जन

दादू कथनी और कुछ, करणी करैं कुछ और ।
तिन तैं मेरा जीव डरे, जिनके ठीक न ठौर ॥ ९८ ॥

९८-९९ में दुर्जन का परिचय दे रहे हैं—जो कहते कुछ और हैं तथा करते कुछ और ही हैं। जिनके हृदय में निश्चित विचारों के लिए कोई स्थान नहीं, उनसे हमारा मन डरता है। कारण, वे दुर्जन हैं। दुर्जनों से दूर ही रहना चाहिए।

अंतरगत औरै कछू, मुख रसना कुछ और ।
दादू करणी और कुछ, तिनको नाहीं ठौर ॥ ९९ ॥

जिनके मन में भावना तो अन्य है और वाणी से कुछ अन्य ही कहते हैं, करते कुछ और ही हैं। उनको उत्तम स्थान की प्राप्ति नहीं होती।

मन प्रबोध

राम मिलन की कहत हैं, करते कुछ औरे ।
ऐसे पीव क्यों पाइये, समझि मन बौरे ॥ १०० ॥

मन को उपदेश कर रहे हैं—जो बातें तो ब्रह्म-साक्षात्कार की कहते हैं और काम पामर-प्राणियों जैसे करते हैं। हे पागल मन ! उनका विश्वास मत कर, कुछ समझ कर देख, उक्त व्यवहार से परब्रह्म प्राप्ति कैसे हो सकती है ?

बेखर्च व्यसनी

दादू बगनी भंगा खाइ कर, मतवाले मांझी ।
पैका[1] नाहीं गाँठड़ी, पातशाही[3] खांजी[2] ॥ १०१॥

१०१-१०२ में योग्यता न होने पर भी बड़ी बातें बनाने वालों का परिचय दे रहे हैं—बगनी (नशीला घास) और भांग आदि नशीली वस्तुयें खाकर मतवाले हो जाते हैं और अपनी मित्र-मंडली के मध्य में बैठकर, पास में एक पैसा[1] न होने पर भी कहते हैं-हम बादशाही[3] खजाने के खजाञ्ची[2] हैं। वैसे ही हृदय में ज्ञान-लेश भी नहीं होने पर कहते हैं-हम तो ब्रह्मज्ञानी हैं।

दादू टोटा दालिदी, लाखों का व्यौपार ।
पैका नाहीं गांठड़ी, सिरै[1] साहूकार ॥ १०२ ॥

घर में धन की कमी होने से दरिद्रता छा रही है किन्तु बातें लाखों के व्यापार की करता है। पास में एक पैसा नहीं होने पर भी बातों से श्रेष्ठ[1] साहूकार बना रहता है। वैसे ही हृदय में दैवी संपदा-धन न होने पर भी बातों से संत बना रहता है।

मध्य निष्पक्ष-सब मतों का निशाना एक

दादू ये सब किसके पंथ में, धरती अरु आस्मान ।
पानी पवन दिन रात का, चंद सूर, रहमान ॥ १०३ ॥

१०३-१०६ में कहते हैं सब मतों का लक्ष्य एक ब्रह्म ही है। प्रश्न—पृथ्वी,आकाश, जल, वायु, दिन, रात्रि, चन्द्रमा सूर्य ये सब किसके पंथ में हैं ? उत्तर—ये सब निष्पक्ष दयालु परमात्मा के पंथ में हैं। इसीलिए सबका हित करते हुए निष्पक्ष रूप मध्य-मार्ग से चलते हैं।

ब्रह्मा विष्णु महेश का, कौन पंथ गुरदेव ।
सांई सिरजनहार तूं, कहिये अलख अभेव ॥ १०४ ॥

ब्रह्मा, विष्णु और महेश का पंथ कौन सा है ? हे स्वामिन् सृष्टि-कर्त्ता गुरुदेव ! आप कहिये ? उत्तर-मन इन्द्रियों के अविषय अद्वैत-ब्रह्म का निष्पक्ष मध्य-मार्ग ही इन का पंथ है।

मुहम्मद किसके दीन में, जिब्राईल किस राह ।
इनके मुरशिद[1] पीर[2] की, कहिये एक अल्लाह ॥ १०५ ॥

मुहम्मद किस के धर्म में हैं ? जिब्राईल फरिश्ता किस के पंथ में है ? इन दोनों के उपदेशक[1] महात्मा[2] की कथा कहिये वे कौन हैं ? उत्तर एक परमात्मा ही है।

दादू ये सब किसके ह्वै रहे, यहु मेरे मन मांहिं।
अलख इलाही जगत-गुरु, दूजा कोई नांहिं ॥ १०६ ॥

पृथ्वी से जिब्राईल तक ये सब किस के बन कर रहे हैं ? यही मेरे मन में शंका है। उत्तर—ये सब मन इन्द्रियों के अविषय जगद्गुरु परमात्मा के ही होकर रहे हैं। इनका उपास्य अन्य कोई भी

नहीं है।

पतिव्रत व्यभिचार

दादू औरैं ही औला[१] तके, थीयां[२] सदै[३] बियंनि[४]।
सो तूं मीयां ना घुरै[५], जो मीयां[६] मीयंनि ॥ १०७ ॥

अन्य की उपासना त्याग कर ईश्वर की ही करने की प्रेरणा कर रहे हैं—हे मियां ! तू तो स्वामियों का भी स्वामी[६] परमात्मा है, उसे तो नहीं पुकारता[५], अन्य पैगम्बरादिकों का ही आश्रय[१] लेता है। यह उचित नहीं। जो सदैव[३] स्थिर[२] रहता है, उसी ईश्वर की चर्चा[४] (बयान) कर।

सद् असद् गुरु परीक्षा लक्षण

आई रोजी ज्यों गई, साहिब का दीदार।
गहला लोगों कारणै, देखे नहीं गँवार ॥ १०८ ॥

सद्गुरु और असद् गुरु की परीक्षा के लक्षण कह रहे हैं—जिसकी साधना रूप कमाई ज्यों ज्यों हो पाती है, त्यों-त्यों ही ईश्वर साक्षात्कारार्थ खर्च होती है, प्रतिष्ठादि के लिए नहीं, वही सद्गुरु है। और जो अज्ञानी अपनी साधना रूप कमाई से ईश्वर साक्षात्कार तो नहीं करता, किन्तु लोगों को चमत्कारादि दिखाने में ही खो देता है, वह असद् गुरु है।

पतिव्रत निष्काम

दादू सोई सेवक राम का, जिसे न दूजी चिंत ।
दूजा को भावे नहीं, एक पियारा मिंत ॥ १०९ ॥

निष्काम पतिव्रत का परिचय दे रहे हैं—जिसे एक अपना सच्चा मित्र राम ही प्यारा लगता है, अन्य कोई भी प्रिय नहीं होता। जिसके मन में राम को छोड़कर अन्य का चिन्तन होता ही नहीं, वही राम का सच्चा सेवक है।

जाति पांति भ्रम विध्वंसन

अपनी अपनी जाति सौं, सबको बैसैं पांति।
दादू सेवक राम का, ताके नहीं भरांति ॥ ११० ॥

११०-११७ में जाति पाँति का भ्रम दूर कर रहे हैं—संसारी जन अपनी-अपनी जाति से प्रेम करते हैं और एक जाति वाले सब एक पंक्ति में बैठते हैं किन्तु जो निरंजन राम का सच्चा सेवक होता है, उसके हृदय में उक्त भ्रांति नहीं रहती, वह सबसे प्रेम करता है।

चोर अन्याई मसखरा, सब मिल बैसैं पांति।
दादू सेवक राम का, तिनसौं करैं भरांति ॥ १११ ॥

संसारी जन चोर, अन्यायी, मसखरे आदि को तो साथ लेकर अपनी पंक्ति में बैठाते हैं और जो राम-भक्त होता है, उससे भ्रांति करते हैं उसे दूर बैठाते हैं, उसका अनादर करते हैं।

दादू सूप[१] बजायाँ क्यों टले, घर में बड़ी बलाइ।
काल झाल इस जीव का, बातन हीं क्यों जाइ ॥ ११२ ॥

जैसे घर में घुसी हुई बड़ी विपत्ति छाज[१] बजाने से नहीं निकलती, वैसे ही कालाग्नि की काम-क्रोधादिक-ज्वालायें केवल जाति-पक्षपातादि की बातों से ही कैसे नष्ट हो सकती हैं ? वे तो जीव को जलाती ही रहती हैं।

सांप गया सहनाण[१] को, सब मिल मारैं लोक ।
दादू ऐसा देखिये, कुल का डगरा फोक[२] ॥ ११३ ॥

जैसे अंधेरी रात्रि के समय रेतीली भूमि से सर्प तो चला गया हो फिर सब लोग मिल कर उसकी लकीर[१] पर दंडे मारने लगें, तो व्यर्थ है, वैसे ही मन तो सब जातियों में घुस जाता है, केवल शरीर को ही स्पर्शादि से स्नानादि-दंड देते हैं—इस प्रकार जाति-कुलादि के पक्षपात का मार्ग व्यर्थ[२] ही देखा जाता है।

दादू दोन्यों भरम हैं, हिन्दू तुरक गँवार ।
जे दुहुवाँ तैं रहित है, सो गह तत्त्व विचार ॥ ११४ ॥

हे अज्ञानी ! हिन्दू-पना और तुरक-पना दोनों बुद्धि की कल्पना होने से भ्रम रूप हैं, जो दोनों से रहित आत्म-तत्व है, वही विचार द्वारा ग्रहण कर।

अपना अपना कर लिया, भंजन मांहीं बाहि।
दादू एकै कूप जल, मन का भरम उठाहि ॥ ११५ ॥

जैसे एक ही कूप जल को अपने-अपने बर्तनों में भरकर अपना-अपना कहने लगते हैं, वैसे ही एक आत्मा में शरीर भेदों से जाति की कल्पना कर लेते हैं। यह मन का भ्रम है, इसे त्याग देना चाहिए।

दादू पानी के बहु नाम धर, नाना विधि की जात।
बोलणहारा कौन है, कहो धौं कहाँ समात ॥ ११६ ॥

जैसे एक ही कूप जल के ब्राह्मण-जल आदि बहुत नाम रख लेते हैं, वैसे ही एक आत्मा में नाना प्रकार की जाति की कल्पना कर लेते हैं। किन्तु हे भ्रान्त लोगो ! कहो तो सही, इन सब शरीरों में बोलने वाला चेतन आत्मा कौन जाति का है और अन्त में कहाँ समाता है ? अर्थात् आत्मा की कोई जाति नहीं, वह सब शरीरों में एक है और अज्ञान बन्धन कटने पर जाति रहित ब्रह्म में ही समाता है।

जब पूरण ब्रह्म विचारिये, तब सकल आतमा एक।
काया के गुण देखिये, तो नाना वरण अनेक ॥ ११७ ॥

जब व्यापक ब्रह्म का विचार करते हैं, तब तो सभी आत्मा ब्रह्म रूप होने से एक है और जब शरीरों के गुण-धर्म देखते हैं तो कोई तम, कोई रज, और कोई सतोगुण संस्था के गुणों वाले होने से नाना गुण तथा श्याम, गौर, गेहुँआ आदि नाना वर्ण वाले दिखाई देते हैं किन्तु गुण और वर्ण परिवर्तनशील होने से विनाशी हैं और ब्रह्मात्म दृष्टि सत्य है।

अमिट पाप-प्रचंड

भाव भक्ति उपजे नहीं, साहिब का परसंग।
विषय विकार छूटे नहीं, सो कैसा सतसंग ॥ ११८ ॥

११८-११९ में कहते हैं—प्रचंड पाप अमिट हो जाता है-सत्संग में बैठने पर भी जिसके

अज्ञ स्वभाव अपलट

अंधे को दीपक दिया, तो भी तिमिर न जाइ ।
सोधी नहीं शरीर की, तासनि का समझाइ ॥ १२० ॥

१२० में कहते हैं—अज्ञानी का स्वभाव नहीं बदलता-जैसे अंधे के हाथ में दीपक दे दिया जाय तो भी उसका अंधेरा दूर नहीं होता। वैसे ही जिसको शरीर का भी ज्ञान नहीं होता कि-''यह विनाशी है'', उसे आत्म-ज्ञान कैसे समझाया जाय अर्थात् उसे उपदेश देने पर भी ज्ञान नहीं होता।

सगुण निगुण कृतघ्नी

दादू कहिये कुछ उपकार को, मानैं अवगुण दोष[1] ।
अंधे कूप बताइया, सत्य न मानैं लोक ॥ १२१ ॥

उपकारक का उपकार न मानने वाले कृतघ्नी का परिचय दे रहे हैं—ज्ञान-नेत्र हीन अंधों को संतों ने यह बता दिया है—''संसार-वासना कूप है, इसमें गिरोगे तो बारंबार जन्म-मरण रूप डुबकियाँ लगाते हुये क्लेश ही पाओगे।'' किन्तु लोग सत्य नहीं मानते। कृतघ्नी लोगों का स्वभाव ही ऐसा होता है उनको कुछ उपकार की बात कहैं तो उसको भी वे दोष दृष्टि द्वारा अवगुण रूप ही मानते हैं। (प्राचीन हिन्दी लिपि में 'ष'[1] को 'ख' लिखा व बोला जाता था।)

कृत्रिम कर्ता

दादू जिन कंकर पत्थर सेविया, सो अपना मूल गँवाइ ।
अलख देव अंतर बसे, क्या दूजी जगह जाइ ॥ १२२ ॥

१२२-१२४ में मायिक पदार्थों को ईश्वर मान कर उपासना करने से ब्रह्म प्राप्ति नहीं होती, जिन्होंने कंकर पत्थरों की ही उपासना की है, उन्होंने लाभ की आशा से अपना मूलधन मनुष्य-जीवन भी खो दिया है। हे प्राणी! मन इन्द्रियों के अविषय परमात्मा देव तो तेरे हृदय में ही बसते हैं, फिर अन्य स्थानों में भटकने से क्या लाभ है ?

पत्थर पीवे धोइ कर, पत्थर पूजे प्राण ।
अन्तकाल पत्थर भये, बहु बूडे इहि ज्ञान ॥ १२३ ॥

जो प्राणी पत्थर को धोकर पान करते हैं और पत्थर को ही पूजते हैं, वे इस शास्त्रीय सिद्धान्त के अनुसार—''ध्याता ध्येय के रूप को ही प्राप्त होता है'' अन्त में पत्थर-भाव को ही प्राप्त होते हैं। पत्थर को ही परब्रह्म मानने के ज्ञान से बहुत-से अज्ञानी संसार-सिन्धु में डूबे हैं।

कंकर बंध्या गांठड़ी, हीरे के विश्वास ।
अंतकाल हरि जौहरी, दादू सूत कपास ॥ १२४ ॥

जैसे कोई कंकर को हीरा मानकर, अपनी गठरी में बाँध तो ले किन्तु जौहरी के पास वह हीरा सिद्ध न होगा। वैसे ही कोई पत्थर को परमात्मा मान ले, किन्तु अन्त में परमात्मा के स्वरूप

को पहचानने वाले संतों के पास वह परमात्मा सिद्ध न होगा। कपास का काता हुआ सूत कपास ही रहेगा। वैसे ही पत्थर का माना हुआ परमात्मा पत्थर ही रहेगा।

संस्कार आगम

पहली पूजे ढूंढसी, अब भी ढूंढस बाणि।
आगे ढूंढस होइगा, दादू सत्य कर जाणि॥ १२५॥

१२५ में कहते हैं—पूर्व जन्म के संस्कारों के समान ही अगले जन्मों में संस्कार होते हैं—पूर्व जन्म में भी, जिनसे घर बनते हैं, उन मिट्टी-पत्थरों के बने हुये देवी-देवताओं की ही पूजा की। उन्हीं संस्कारों के बल से वर्तमान में भी उन्हीं की पूजा करता है और आगे भी उन्हीं को पूजने वाला होगा। यह बात सत्य ही जानो।

अमिट पाप प्रचंड

दादू पैंडे पाप के, कदे न दीजे पाँव।
जिहिं पैंडे मेरा पिव मिले, तिहिं पैंडे का चाव॥ १२६॥

१२६-१२७ में कहते हैं—प्रचंड पाप अमिट होता है, उसमें कभी भी प्रवृत्त नहीं होना चाहिये—पाप के मार्ग में कभी भी पैर न रखो। जिस भक्ति-ज्ञानादि साधन-मार्ग में हमारे प्यारे प्रभु प्राप्त होते हैं, उसी मार्ग में चलने की उत्कंठा रखनी चाहिए।

दादू सुकृत मारग चालतां, बुरा न कबहूं होइ।
अमृत खातां प्राणिया, मुवा न सुनिये कोइ॥ १२७॥

सुकृत मार्ग पर चलते हुये लोक-लज्जादि का भय मत करो। जैसे अमृत खाने से कोई भी प्राणी मरा नहीं सुना जाता, वैसे ही सुकृत कार्य करने से बुरा कभी भी नहीं होता। पाप कर्म से ही बुरा होता है, सो वह नहीं करना चाहिये।

भ्रम विध्वंसन

कुछ नांहीं का नाम क्या, जे धरिये सो झूठ।
सुर नर मुनि जन बंधिया, लोका आवट[२] कूट[१]॥ १२८॥

१२८-१३१ में लोगों का भ्रम दूर कर रहे हैं—जिस परब्रह्म में नाम, रूप, गुण, क्रियादि कुछ भी नहीं है, उसका जो भी नाम धरेंगे अथवा माया कृत मिथ्या आकारों को उसका स्वरूप मान कर उसमें गुण क्रियादि का आरोप करेंगे, वह सब मिथ्या ही होगा किन्तु फिर भी सुर, नर, मुनिजनादि अपने स्वरूप परब्रह्म को भूल कर, माया कृत मिथ्या[१] नाम रूपादि के आग्रह में बद्ध होकर ऊंचे नीचे लोक-रूप मिथ्या प्रपंच में घटी-यंत्र के समान चक्कर[२] लगा रहे हैं।

कुछ नाहीं का नाम धर, भरम्या सब संसार।
साँच झूठ समझे नहीं, ना कुछ किया विचार॥ १२९॥

जिस परब्रह्म में नाम, रूप, गुण, क्रियादि कुछ भी नहीं बनते, मायिक पदार्थों से उसके

मिथ्या आकार बना कर, उनमें नाम, रूप, गुण, क्रियादि का आरोप करके, सब संसार के प्राणी भ्रम में पड़ रहे हैं। सत्य और मिथ्या को समझते नहीं, कारण, समझने के लिये सत्पुरुषों के पास बैठ कर कुछ विचार किया ही नहीं, फिर कैसे समझैं ?

दादू केई दौड़े द्वारिका, केई काशी जांहिं ।
केई मथुरा को चले, साहिब घट ही मांहिं ॥ १३० ॥

परब्रह्म तो आत्म रूप से हृदय में ही स्थित है किन्तु बहिर्मुख प्राणी उसके दर्शनार्थ कितने ही द्वारिका, कितने ही काशी और कितने ही मथुरा को जाते हैं।

ऊपरि आलम[1] सब करैं, साधू जन घट मांहिं ।
दादू एता अंतरा, तातैं बनती नांहिं ॥ १३१ ॥

ऊपर से माला-तिलकादिक चिह्न और बाह्य-पूजा दिखावे के लिये तो संसार[1] के सभी जन करते हैं किन्तु संतजन तो अपने हृदय में ही भगवद् आराधना करते हैं। संसारी-जन और संतजन की साधना में, इतना ही भेद रहता है। इसीलिये दोनों की साधना में एकता नहीं बनती।

दादू सब थे एक के, सो एक न जाना ।
जने जने का ह्वै गया, यहु जगत दिवाना ॥ १३२ ॥

संसार के सभी प्राणी परमात्मा के अंश होने से उसी के थे, किन्तु उस अपने अद्वैत स्वरूप को न जानकर, अनेक देवी-देवतादि के पूजक बन गये हैं। इससे ज्ञात होता है-यह जगत् पागल है।

साँच

झूठा साँचा कर लिया, विष अमृत जाना ।
दुख को सुख सब को कहै, ऐसा जगत दिवाना ॥ १३३ ॥

१३३-१४७ में सत्य का विशेष विचार कर रहे हैं—जगत् के प्राणी सत्य को न पहचान कर, ऐसे पागल हो रहे हैं-देहादिक मिथ्या संसार को सत्य मान लिया है, विषय-विष को अमृत मान बैठे हैं और दुःखप्रद बिन्दु-पतनादि क्रियाओं को भी सभी सुख रूप बताते हैं।

सूधा मारग साँच का, साँचा हो सो जाइ ।
झूठा कोई ना चले, दादू दिया दिखाइ ॥ १३४ ॥

संतों ने सभी को सत्य का सरल मार्ग दिखा दिया है किन्तु उसमें जो सच्चा होता है वही गमन करता है। झूठा कोई भी नहीं चल पाता।

साहिब सौं साँचा नहीं, यहु मन झूठा होइ ।
दादू झूठे बहुत हैं, साँचा विरला कोइ ॥ १३५ ॥

प्राणियों का यह मन झूठे विषयों में लग कर झूठा हो रहा है। सत्य परब्रह्म परायण होकर सच्चा नहीं रहता। उक्त प्रकार से झूठे मन वाले, झूठे प्राणी संसार में बहुत हैं। सत्य ब्रह्म-परायण मनवाला सच्चा साधक कोई विरला ही है।

दादू साँचा अंग न ठेलिये, साहिब माने नांहिं।
साँचा शिर पर राखिये, मिल रहिये ता मांहिं॥ १३६॥

सत्य-स्वरूप को अन्त:करण से दूर न करो, सत्य के त्याग को भगवान् अच्छा नहीं मानते। संत, शास्त्र, सद्गुरु का सत्य ब्रह्म सम्बन्धी उपदेश शिरोधार्य समझ कर धारण करो और आत्म रूप से उस परब्रह्म में ही मिल कर रहो=आत्मा को ब्रह्म भिन्न मत समझो।

जे कोइ ठेले साँच को, तो साँचा रहै समाइ।
कौड़ी बर क्यों दीजिये, रत्न अमोलक जाइ॥ १३७॥

यदि कोई संसारी जन परब्रह्म की प्राप्ति विषयक सत्य उपदेश को धारण न करे तो सत्योपदेश देने वाला सच्चा महानुभाव उन्हें उपदेश क्यों दे ? उसे तो चाहिये-सत्य परब्रह्म में ही अपने वृत्ति लीन करके समाहित रहे। धारण न करने वालों को उपदेश देने से, उनसे केवल भोग ही प्राप्त होते हैं। अत: भोग रूप कौड़ी के बदले अपने अमूल्य श्वास-रत्न व्यर्थ ही जाते हैं।

साँचे साहिब को मिले, साँचे मारग जाइ।
साँचे सौं साँचा भया, तब साँचे लिये बुलाइ॥ १३८॥

सच्चे साधक भक्ति-ज्ञान-वैराग्यादि सच्चे साधन करते हैं। सच्चे साधन से जिनका मन जब सच्चा निर्द्वन्द्व हुआ, तब ही सत्य ब्रह्म ने उनके आत्मा को संसार से आह्वान किया और वे सत्य परब्रह्म को प्राप्त हो गये।

दादू साँचा साहिब सेविये, साँची सेवा होइ।
साँचा दर्शन पाइये, साँचा सेवक सोइ॥ १३९॥

सत्य परब्रह्म की ही भक्ति करो, जब निष्काम भाव से अहंग्रह उपासना रूप सच्ची भक्ति होती है, तब ही सत्य परब्रह्म का साक्षात्कार होता है और जो परब्रह्म का साक्षात्कार कर पाता है, वही सच्चा भक्त कहलाता है।

साँचे का साहिब धणी, समर्थ सिरजनहार।
पाखंड की यहु पृथ्वी, प्रपंच का संसार॥ १४०॥

सच्चे भक्त को साथ देने वाला तो एक संसार का स्रष्टा समर्थ स्वामी परमात्मा ही है। कारण, यह पृथ्वी तथा सब संसार ही पाखंड प्रपंच से पूर्ण है। अत: संसारी लोग पाखंडी-प्रपंची का ही साथ देते हैं।

झूठा परकट, साँचा छाने, तिनकी दादू राम न माने॥ १४१॥

झूठे भक्त तो पाखंड प्रपंच-द्वारा लोगों में प्रतिष्ठित होकर अति प्रकट रहते हैं और पाखंड प्रपंच से रहित सच्चे भक्त वर्तमान में छिपे ही रहते हैं किन्तु अति प्रकट होने पर भी पाखंडियों की भक्ति भगवान् नहीं मानते और छिपे रहने पर भी सच्चे भक्त की भक्ति का सम्मान करते हैं।

दादू पाखंड पीव न पाइये, जे अन्तर साँच न होइ ।
ऊपरि तैं क्यों ही रहो, भीतर के मल धोइ ॥ १४२ ॥

यदि हृदय में सच्ची भक्ति नहीं हो तो पाखंड करके बाहर लोगों को दिखाने वाली भक्ति से भगवान् प्राप्त नहीं होते, बाहर के भक्ति -चिन्हादि हों या न हों, कैसे भी रह सकते हैं किन्तु हृदय के मलादि दोष तो अवश्य नष्ट होने ही चाहिये। सच्ची भक्ति द्वारा निष्पाप होने से ही भगवान् अपनाते हैं।

साँच अमर जुग जुग रहै, दादू विरला कोइ।
झूठ बहुत संसार में, उत्पति परलै होइ ॥ १४३ ॥

कोई विरला साधक सच्ची साधना द्वारा सत्य परब्रह्म को प्राप्त हो, सदा के लिये अमर होकर परब्रह्म रूप से रहता है। झूठे भक्त संसार में बहुत हैं किन्तु वे संसार में जन्मते-मरते रहते हैं। परब्रह्म को प्राप्त नहीं होते।

दादू झूठा बदलिये, साँच न बदल्या जाइ।
साँचा शिर पर राखिये, साध कहै समझाइ ॥ १४४ ॥

मिथ्या मायिक प्रपंच परिवर्तनशील है। सत्य परब्रह्म एक रस रहता है। अत: पाखंड रहित सच्ची साधना द्वारा परब्रह्म की ही उपासना करो, यही बात संत जन ठीक समझा २ कर कहते हैं।

साँच न सूझे जब लगैं, तब लग लोचन अंध।
दादू मुक्ता छाड़ कर, गल में घाल्या फंध ॥ १४५ ॥

जब तक सत्य परब्रह्म नहीं दीखता तब तक ज्ञान-नेत्र अज्ञान के द्वारा आवृत्त होने से जीव अंधा ही है। अंधा होने के कारण ही जीवन्मुक्त संतों का संग छोड़ कर गले में सकाम कर्म रूप फंदा डाल रखा है।

साँच न सूझे जब लगैं, तब लग लोचन नांहिं।
दादू निरबँध छाड़कर, बंध्या द्वै पख मांहिं ॥ १४६ ॥

जब तक सत्य परब्रह्म का ज्ञान नहीं होता तब तक ज्ञान-नेत्र खुले नहीं माने जाते। ज्ञान-नेत्र न होने के कारण ही नाम-रूपादि बन्धन से रहित परब्रह्म को त्याग, द्वैतवाद की पक्षपातों में पड़कर प्राणी जन्मादि क्लेश भोगता है।

एक साँच सौं गहगही[1], जीवन मरण निबाहि।
दादू दुखिया राम बिन, भावै तीधर[2] जाहि ॥ १४७ ॥

सत्य परब्रह्म के चिन्तन से प्रफुल्लित[1] होकर जीवन से मरण पर्यन्त परब्रह्म की भक्ति को ही निभावे। कारण, निरंजन राम की भक्ति बिना प्राणी चाहे कहीं[2] भी जाय, दु:खी ही रहता है।

चेतावनी

दादू छाने छाने कीजिये, चौड़े परकट होइ।
दादू पैस[1] पयाल[2] में, बुरा करे जनि कोइ ॥ १४८ ॥

१४८-१४९ में सत्य चेतावनी दे रहे हैं—जो संसारी जीवों से छिप २ कर भी चोरी व्यभिचारादि पाप किये जाते हैं, वे भी प्रकट हो ही जाते हैं। अत: कोई पाताल[2] में प्रवेश[1] करके भी बुरा काम न करें।

अनकीया लागे नहीं, कीया लागे आइ।
साहिब के दर न्याय है, जे कुछ राम रजाइ ॥ १४९ ॥

बिना पाप-कर्म करे पाप नहीं लगता, करने पर ही लगता है। परमात्मा के दरबार में न्याय होता है। राम जो कुछ भी हमारे लिये सुख दु:ख की आज्ञा देते हैं, वह हमारे कर्मानुसार ही देते हैं।

आत्मार्थी भेष

सोइ जन साधू सिद्ध सो, सोइ सतवादी शूर।
सोइ मुनिवर दादू बड़े, सन्मुख रहनि हजूर ॥ १५० ॥

१५०-१५४ में कहते हैं—जो भगवान् में रत हैं, उन्हीं के भक्त-संतादि भेष उत्तम हैं—वही भक्त, संत, सिद्ध, सत्यवादी, वीर, मुनिवर और महान् है, जिसकी वृत्ति सदा नाम-चिन्तनादि द्वारा परमात्मा के सन्मुख स्थिर रहती है।

सोइ जन साँचे सो सती, साधक सोइ सुजान।
सोइ ज्ञानी, सोइ पंडिता, जे राते भगवान ॥ १५१ ॥

वही सच्चा मानव, सत्य का धारण करने वाला सती, साधक, चतुर, ज्ञानी और पंडित है जो भगवान् के वास्तव स्वरूप में रत है।

सोइ जोगी[1], सोइ जंगमा, सोइ सूफी, सोइ शेख।
सोइ संन्यासी, सेवड़ा, दादू एक अलेख ॥ १५२ ॥

वही नाथ[1], वही टाली बजाते हुये भिक्षा माँगने वाला जंगम, वही मुसलमानों की संप्रदाय का सूफी, साधू, वही मुसलमानों की चार जातियों (शेख, सैयद, मुगल, पठान) में शेख, वही संन्यासी और वही जैन मत के साधुओं के एक भेद का साधू सेवड़ा श्रेष्ठ है, जो मन इन्द्रियों के अविषय एक परब्रह्म के चिन्तन में ही लगा है। इन सबकी विशेषता भगवत्-परायणता से ही है।

सोइ काजी, सोई मुल्ला, सोइ मोमिन मुसलमान।
सोइ सयाने, सब भले, जे राते रहमान ॥ १५३ ॥

वही मुसलमानी कानून के अनुसार फैसला करने वाला काजी, वही नमाज पढ़ाने वाला विद्वान् मुल्ला, वही धर्मनिष्ठ मोमिन, और वे ही चतुर मुसलमान; सब अच्छे हैं जो दयालु परमात्मा के भजन में रत हैं।

राम नाम को बणिजन बैठे, तातैं मांड्या हाट।
सांई सौं सौदा करैं, दादू खोल कपाट ॥ १५४ ॥

राम-नाम का व्यापार करने के लिये ही संतों ने उक्त जोगी-जंगमादि षट् दर्शन रूप हाट लगाई है, गृह-कार्यों से मुक्त होकर निश्चिन्त बैठे हुये अपने हृदय के मल-विक्षेप-कपाट हटा कर के, परमात्मा को अपना सर्वस्व देकर, स्वरूप स्थिति लेना रूप व्यापार करते हैं। तथा सत्संग के द्वारा मानवों की वस्तुयें भगवत् के समर्पण करा कर उन्हें भक्ति दिलाते हैं।

सज्जन दुर्जन

बिच के शिर खाली करैं, पूरे सुख संतोष ।
दादू सुध[1] बुध[2] आतमा, ताहि न दीजे दोष ॥ १५५ ॥

१५५-१५७ में सज्जन, दुर्जन-संपर्क से लाभ हानि दिखा रहे हैं—जिनको न पूर्ण शास्त्र-ज्ञान ही है और न आत्मनिष्ठा ही प्राप्त है, ऐसे बीच के लोग विवाद द्वारा व्यर्थ ही मस्तिष्क खाली करते हैं। जो अपनी साधना में पूर्ण हैं, उन सज्जनों के संपर्क से तो विचार द्वारा संतोष और आनन्द ही प्राप्त होता है। जो शुद्ध[1] बुद्धि[2] सरल-स्वभाव के जीवात्मा हैं उन्हें तो कोई दोष नहीं देना चाहिये। वे तो संतों के बताये हुये साधन मार्ग से चलकर भगवत् तत्व को प्राप्त कर लेते हैं ।

सुध बुध सौं सुख पाइये, कै साधु विवेकी होइ ।
दादू ये बिच के बुरे, दाधे[1] रीगे[2] सोइ ॥ १५६ ॥

शुद्ध बुद्धि सरल स्वभाव के साधक कथनानुसार साधन कर लेते हैं, उनकी साधन-सिद्धि को देख कर आनन्द ही होता है वा विवेकी संतों के संग से आनन्द होता है किन्तु विवाद में तत्पर बीच के लोग अच्छे नहीं होते, वे तो त्रिताप में जलते[1] हुये संसार में ही घूमते[2] रहते हैं।

जनि कोई हरिनाम में, हमको हाना बाहि ।
तातैं तुम तैं डरत हूं, क्यों ही टले बलाइ ॥ १५७ ॥

वितंडा वाद करने वालों को कहते हैं—किसी भी प्रकार से हमारे हरिनाम-चिन्तन में विघ्न नहीं हो, इसीलिये हम तुमसे डरते हैं। क्योंकि हरिनाम चिन्तन में विघ्न को ही हम बड़ी विपत्ति मानते हैं। अत: यह विपत्ति किसी भी प्रकार हम से दूर रहे, ऐसा ही हम चाहते हैं और वैसा ही व्यवहार करते रहते हैं।

परमार्थी

जे हम छाड़ैं राम को, तो कौन गहेगा ।
दादू हम नहिं उच्चरैं, तो कौन कहेगा ॥ १५८ ॥

१५८ में कह रहे हैं—परमार्थी पुरुष यथार्थ ही कहते हैं-यदि हम अकबर की सभा में राम-नाम को बोलना छोड़ दें तो उसको कौन ग्रहण करेगा ? यदि हम उसको सच्ची बातें न कहेंगे तो कौन कहेगा ?

प्रसंग कथा-अकबर बादशाह के आह्वान पर आमेर से सीकरी जाते समय मार्ग में शिष्यों ने प्रार्थना की थी-अकबर मुसलमान है, उसके आगे राम-नाम वा उसे अच्छी न लगे ऐसी सच्ची बातें न कहियेगा। उन्हीं को १५८ से उत्तर दिया था।

साधक को उपदेश

एक राम छाड़ै नहीं, छाड़े सकल विकार।
दूजा सहजैं होइ सब, दादू का मत सार॥ १५९॥

१५९-१६० में राम दर्शनार्थी साधक को उपदेश कर रहे हैं—साधक को चाहिये-एक राम का चिन्तन न छोड़े और संपूर्ण विकार छोड़ दे। राम-चिन्तन के समय अन्य जो दैवी संपदा के गुण-संपादन और योग-क्षेमादि रूप सब कार्य तो अपने आप सहज स्वभाव से ही होते रहते हैं। हमारा यही सार मत है।

जे तूं चाहै राम को, तो एक मना आराध।
दादू दूजा दूर कर, मन इन्द्री कर साध॥ १६०॥

यदि तू राम का साक्षात्कार करना चाहता है तो पहले देवी-देवतादि अन्य की उपासना रूप कार्य त्याग दे और मन इन्द्रियों को भोग वासना से रहित करके उत्तम बना, फिर एकाग्र मन से राम की आराधना कर।

विरक्तता

कबीर विचारा कह गया, बहुत भांति समझाइ।
दादू दुनिया बावरी, ताके संग न जाइ॥ १६१॥

संसारी प्राणियों के प्रभु प्राप्ति के साधनों से वैराग्य का परिचय दे रहें—विचारशील कबीरजी आदि संत बहुत प्रकार समझा २ कर कह गये हैं-विषयासक्ति, जन्मादि क्लेश प्रदायिनी है किन्तु संसारी जन तो माया मद से उन्मत्त हो रहे हैं। अत: कबीरादि के विचारों के साथ चलते ही नहीं।

सूक्ष्म मार्ग

पावैंगे उस ठौर को, लंघैंगे यहु घाट।
दादू क्या कह बोलिये, अजहूँ बिच ही बाट॥ १६२॥

सूक्ष्म अध्यात्म मार्ग की प्रगति का विचार कर रहे हैं—जब संसार वन के साधक द्वैत अहंकार-पर्वत की भोग-वासना-घाटी को लांघ जायेंगे तभी उस परम धाम को प्राप्त कर सकेंगे। किन्तु अभी तो जो उस घाटी को नहीं लांघ सके, बीच के मार्ग में ही हैं। अत: भगवान् को अपना क्या साधना-बल बता रहे हैं कि—हमें परमधाम में क्यों नहीं बुलाते ? वा क्या साधन बजा कर कहे कि हम इसके बल से पहुंचेगे।

साँच

साँचा राता साँच सौं, झूठा राता झूठ।
दादू न्याय नबेरिये, सब साधों को पूछ॥ १६३॥

सत्य प्राप्ति के साधन-निर्णय की प्रेरणा कर रहे हैं—सच्चा संत सत्य परब्रह्म में ही रत रहता है। झूठा व्यक्ति मिथ्या सांसारिक भोगों में रत रहता है। अत: सभी सच्चे संतों से परामर्श करके सत्य परब्रह्म की प्राप्ति के साधन का उचित निर्णय करो।

जे पहुँचे ते कह गये, तिन की एकै बात।
सबै सयानै एक मत, उनकी एकै जात ॥ १६४ ॥

१६४-१६८ में सज्जन-दुर्जन विचार और गति भेद बता रहे हैं—जो ज्ञानी महानुभाव स्वस्वरूप-स्थिति तक पहुँचे हैं, वे सभी स्वस्वरूप स्थिति की साधना पद्धति कह गये हैं। उन सबकी बातों में भेद नहीं ज्ञात होता। अत: ये सब एक मत हैं और एक ब्रह्म ही उनकी जाति है।

जे पहुँचे ते पूछिये, तिनकी एकै बात।
सब साधों का एक मत, ये बिच के बारह बाट ॥ १६५ ॥

जो स्वस्वरूप स्थिति तक पहुँचे हैं, उनसे परामर्श करो तो उनकी बातें एक सिद्धान्त पर आ मिलती है। अत: सभी श्रेष्ठ संतों का एक मत ज्ञात होता है किन्तु ये बीच के लोग बुद्धि द्वारा कल्पना किये हुये नाना मार्गों में तितर-बितर होकर नष्ट-भ्रष्ट हो रहे हैं।

सबै सयाने कह गये, पहुँचे का घर एक।
दादू मारग माँहिले, तिनकी बात अनेक ॥ १६६ ॥

सभी ज्ञानीजन कहे गये हैं—स्वस्वरूप स्थिति तक पहुँचे हुये संत का घर एक ब्रह्म ही होता है=वह ब्रह्म में ही लय होता है और जो साधन-मार्ग में हैं उनके हृदय के विचार वासना के अनुसार अनेक होते हैं, अत: वासनानुसार ही उनका जन्म होता है।

सूरज साक्षीभूत है, साँच करे परकाश।
चोर डरे चोरी करे, रैनि तिमिर का नाश ॥ १६७ ॥

जैसे सूर्य सबको प्रकाश प्रदान करते हैं, वैसे ही ब्रह्मज्ञानी सज्जन संसार में साक्षी रूप रह कर सत्य ब्रह्म का उपदेश करते हैं। जैसे रात्रि का अँधकार नाश होने पर चोर चोरी करने में डरता है, वैसे ही स्वार्थी दुर्जन सत्य उपदेश करने से डरते हैं। वे सोचते हैं, सत्य उपदेश होने पर प्राणी हमारे फँदे से मुक्त हो जायेगा।

चोर न भावे चाँदणा, जनि उजियारा होइ।
सूते का सब धन हरूं, मुझे न देखे कोइ ॥ १६८ ॥

चोर को प्रकाश अच्छा नहीं लगता, वह यही चाहता है—प्रकाश न हो। अँधेरी रात्रि में मुझे कोई देख न सकेगा और मैं सूते प्राणी का सब धन अपहरण कर लूंगा। वैसे ही स्वार्थी दुर्जन चाहता है—किसी को भी यथार्थ ज्ञान न हो। अज्ञान में रहेंगे तो लोग मेरी चालाकी जान न सकेंगे और मैं इनसे मेरा स्वार्थ सिद्ध करता रहूंगा।

संस्कार आगम

घट घट दादू कह समझावे, जैसा करे सो तैसा पावे।
को काहू का सीरी नांहीं, साहिब देखे सब घट मांहीं॥ १६९॥

इति साच का अंग समाप्त॥ १३॥ सा. १४८५।

१६९ में कहते हैं—संस्कार के समान आगे कर्म होता है और कर्म के समान फल मिलता है-महानुभाव संत सदा समझा २ कर कहते हैं-जो जैसा करता है वैसा ही फल पाता है। कर्म-फल भोग में कोई भी किसी का साझेदार नहीं होता। परमात्मा सबके अन्त:करण में रह कर सबकी भावना और कर्म देखते रहते हैं और उनके अनुसार फल की व्यवस्था करते हैं।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका साँच का अंग समाप्त: ॥ १३॥

अथ भेष का अंग १४

साँच-अंग के अनन्तर इन्द्रियार्थी और आत्मार्थी भेष का विचार करने के लिये ''भेष का अंग'' कथन करने में प्रवृत्त प्रथम मंगल कर रहे हैं—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत:।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत:॥ १॥

जिनकी कृपा से साधक, भेष की पक्षपात से पार होकर, निरंजन राम को प्राप्त होता है, उन निरंजन राम, सद्गुरु, और सर्व संतों को हम अनेक प्रणाम करते हैं।

पतिव्रत निष्काम

दादू बूडे ज्ञान सब, चतुराई जल जाइ।
अंजन मंजन फूँक दे, रहै राम ल्यौ लाइ॥ २॥

२-३ में अनन्यता की प्रेरणा कर रहे हैं—साधक! संपूर्ण सांसारिक ज्ञान चाहे समुद्र में डूब जायँ, सब चतुराई जल जाय, तुझे इनसे क्या लाभ है? तू तो सौंदर्य के साधन-नेत्रांजन, दांत-मंजन, उबटनादि पूर्वक स्नानादि को त्याग दे। केवल निरंजन राम में ही अपनी वृत्ति लगा कर रह।

राम बिना सब फीके लागैं, करणी कथा गियान।
सकल अविरथा कोटि कर, दादू योग धियान[1]॥ ३॥

निरंजन राम की अनन्य भक्ति बिना, तीर्थ, व्रत, यज्ञादि कर्त्तव्य और ज्ञानादि की कथाएँ भी बिना नमक के शाक समान फीके ही लगते हैं। चाहे सकाम देवतादि के ध्यान[1], हठ योगादिक नाना साधन करो, बिना परब्रह्म की अनन्यता के वे सभी व्यर्थ हैं=ब्रह्म साक्षात्कार करने में वे सार्थक नहीं हैं।

इन्द्रियार्थी भेष

ज्ञानी पंडित बहुत हैं, दाता शूर अनेक।
दादू भेष अनंत हैं, लाग रह्या सो एक॥ ४॥

संस्कार आगम

घट घट दादू कह समझावे, जैसा करे सो तैसा पावे।
को काहू का सीरी नांहीं, साहिब देखे सब घट मांहीं ॥ १६९ ॥

इति साच का अंग समाप्त ॥ १३ ॥ सा. १४८५ ।

१६९ में कहते हैं—संस्कार के समान आगे कर्म होता है और कर्म के समान फल मिलता है-महानुभाव संत सदा समझा २ कर कहते हैं-जो जैसा करता है वैसा ही फल पाता है। कर्म-फल भोग में कोई भी किसी का साझेदार नहीं होता। परमात्मा सबके अन्त:करण में रह कर सबकी भावना और कर्म देखते रहते हैं और उनके अनुसार फल की व्यवस्था करते हैं।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका साँच का अंग समाप्त: ॥ १३ ॥

अथ भेष का अंग १४

साँच-अंग के अनन्तर इन्द्रियार्थी और आत्मार्थी भेष का विचार करने के लिये "भेष का अंग" कथन करने में प्रवृत्त प्रथम मंगल कर रहे हैं—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत: ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक, भेष की पक्षपात से पार होकर, निरंजन राम को प्राप्त होता है, उन निरंजन राम, सद्‌गुरु, और सर्व संतों को हम अनेक प्रणाम करते हैं।

पतिव्रत निष्काम

दादू बूडे ज्ञान सब, चतुराई जल जाइ ।
अंजन मंजन फूँक दे, रहै राम ल्यौ लाइ ॥ २ ॥

२-३ में अनन्यता की प्रेरणा कर रहे हैं—साधक ! संपूर्ण सांसारिक ज्ञान चाहे समुद्र में डूब जायँ, सब चतुराई जल जाय, तुझे इनसे क्या लाभ है ? तू तो सौंदर्य के साधन-नेत्रांजन, दांत-मंजन, उबटनादि पूर्वक स्नानादि को त्याग दे। केवल निरंजन राम में ही अपनी वृत्ति लगा कर रह।

राम बिना सब फीके लागैं, करणी कथा गियान ।
सकल अविरथा कोटि कर, दादू योग धियान[1] ॥ ३ ॥

निरंजन राम की अनन्य भक्ति बिना, तीर्थ, व्रत, यज्ञादि कर्त्तव्य और ज्ञानादि की कथाएँ भी बिना नमक के शाक समान फीके ही लगते हैं। चाहे सकाम देवतादि के ध्यान[1], हठ योगादिक नाना साधन करो, बिना परब्रह्म की अनन्यता के वे सभी व्यर्थ हैं=ब्रह्म साक्षात्कार करने में वे सार्थक नहीं हैं।

इन्द्रियार्थी भेष

ज्ञानी पंडित बहुत हैं, दाता शूर अनेक ।
दादू भेष अनंत हैं, लाग रह्या सो एक ॥ ४ ॥

४-२४ में इन्द्रिय-पोषणार्थ भेष बनाना उत्तम नहीं, यह कह रहे हैं—परोक्ष-ज्ञान युक्त ज्ञानी, शास्त्र के विद्वान्, दाता, वीर तो अनेक मिलते हैं और भेषधारियों का तो अन्त ही नहीं है किन्तु निरन्तर भगवद् भजन में ही लगा रहे, ऐसा तो कोई विरला ही मिलेगा।

कोरा कलश अवाह[1] का, ऊपरि चित्र अनेक।
क्या कीजे दादू वस्तु बिन, ऐसे नाना भेष ॥ ५ ॥

कुम्हार के आवाँ[1] में पके हुये कोरे कलश पर अनेक चित्र होंऔर उसमें वस्तु कुछ भी न हो तो वह देखने मात्र का ही है। वैसे ही भगवद् भक्ति बिना नाना मतों के नाना भेषों का क्या करें ? वे भी देखने मात्र के ही हैं। (प्राचीन लिपि में 'भेष' को 'भेख' पढते हैं।)

बाहर दादू भेष बिन, भीतर वस्तु अगाध।
सो ले हिरदै राखिये, दादू सन्मुख साध ॥ ६ ॥

जिनके शरीर पर भेष तो कुछ भी नहीं है किन्तु अन्त:करण में भक्ति-ज्ञानादि वस्तुएँ अथाह भरी हैं, ऐसे संतों के सत्संग में रहकर उनकी भक्ति-ज्ञानादि वस्तुएँ लेकर अपने हृदय में धारण करनी चाहिये।

दादू भाँडा भर धर वस्तु सौं, ज्यों महँगे मोल बिकाइ।
खाली भाँडा वस्तु बिन, कौड़ी बदले जाइ ॥ ७ ॥

बर्तन यदि उत्तम वस्तु से भरा हो तो अधिक मूल्य में बिकता है, खाली हो तो कौड़ियों में जाता है। वैसे ही भक्ति-ज्ञानादि वस्तुओं से पूर्ण अन्त:करण महान् माना जाता है, खाली नहीं।

दादू कनक कलश विष सौं भरा, सो किस आवे काम।
सो धन कूटा चाम का, जामें अमृत राम ॥ ८ ॥

यदि सोने का सुन्दर कलश विष से भरा हो तो वह किस काम आयेगा ? विष तो पान करने से मारक होगा और मलिन चमड़े का कुप्पा यदि अमृत से भरा हो तो अमर करने वाला होने से धन्य है। वैसे ही यदि शरीर तो भेषादि द्वारा सुन्दर है और अन्त:करण विषय विकार-विष से भरा है, तो वह त्याज्य है। शरीर तथा भेष सुन्दर न होने पर भी जिसके हृदय में अमृतत्व देने वाला निरंजन राम के वास्तव स्वरूप का ज्ञान रूप अमृत भरा है= निरंतर ब्रह्माकार वृति रहती है, वह धन्यवाद के योग्य है।

दादू देखे वस्तु को, बासन[1] देखे नांहिं।
दादू भीतर भर धरा, सो मेरे मन मांहिं ॥ ९ ॥

लोग बर्तन[1] की सुन्दरता न देख कर वस्तु की ही श्रेष्ठता देखते हैं। वैसे ही हम भेषादि से सजे हुये शरीर को नहीं देखते, किन्तु हृदय में जो भाव भरा होता है, उसी से हमारे मन में उसके भले-बुरे का निश्चय होता है।

दादू जे तूं समझे तो कहूं, साँचा एक अलेख।
डाल पान तज मूल गह, क्या दिखलावे भेख॥ १०॥

हे भेष प्रिय व्यक्ति ! अपना सुन्दर भेष क्या दिखलाता है ? इसके परमार्थ में कुछ भी लाभ नहीं है। यदि तू समझना चाहे तो मैं कहता हूं-सत्य तो एक परब्रह्म ही है। ब्रह्मादि त्रिदेव शाखा और इन्द्रादि देव पत्तों के समान हैं, सबके मूल परब्रह्म की ही आराधना ग्रहण कर।

दादू सब दिखलावैं आपको, नाना भेष बनाइ।
जहँ आपा मेटन हरि भजन, तिहिं दिशि कोइ न जाइ॥ ११॥

नाना भेष बनाकर सब लोग अपने संप्रदायादि के अभिमान को ही प्रकट रूप से दिखाते हैं किन्तु जो सब प्रकार के अभिमान को नष्ट करके भगवद्-भजन करने को निष्कपट निराभिमान अवस्था रूप दिशा है, उसकी ओर आगे कोई नहीं बढ़ता।

सो दशा कतहूँ रही, जिहिं दिशि पहुँचे साध।
मैं तैं मूरख गह रहे, लोभ बड़ाई वाद॥ १२॥

संतजन साधना द्वारा जिस अद्वैत अवस्था को प्राप्त हुये हैं, वह अवस्था तो इन भेष प्रिय मूर्ख लोगों से अत्यधिक दूर ही रही है, ये तो ''मैं-तू'' आदि द्वैत को ग्रहण करके लोभ, बड़ाई और विवाद में ही फँस रहे हैं।

दादू भेष बहुत संसार में, हरिजन विरला कोइ।
हरिजन राता राम सौं, दादू एकै होइ॥ १३॥

संसार में भेषधारी बहुत हैं किन्तु भगवान् का भक्त कोई विरला ही होता है। भगवान् के भक्त तो भेष पक्ष को छोड़कर, सब एक मत हो भगवद्-भजन में ही रत रहते हैं वा भक्त भगवद्-भजन में ही रत हो भगवान् में मिल कर एक हो जाते हैं।

हीरे रीझे जौहरी, खल रीझे संसार।
स्वांगि साधु बहु अंतरा, दादू सत्य विचार॥ १४॥

जिज्ञासु रूप जौहरी तो सच्चे संत-हीरे से ही प्रसन्न होते हैं और संसारी जन तो पशु के समान हैं। जैसे पशु तेल रहित खल से ही प्रसन्न हो जाता है, वैसे ही संसारी ऊपर के भेष से ही प्रसन्न हो जाते हैं किन्तु भेषधारी और सच्चे संत में बहुत अन्तर रहता है। अत: सत्यासत्य का विचार करके सच्चे संतों का ही आदर करो।

स्वांगि साधु बहु अंतरा, जेता धरणि आकाश।
साधू राता राम सौं, स्वांगि जगत की आश॥ १५॥

जितना पृथ्वी और आकाश में अन्तर है, उतना ही अत्यधिक अन्तर भेषधारी और सच्चे संत में रहता है। पृथ्वी में जैसे रूप, रसादि रहते हैं वैसे ही भेषधारी में विषय-विकार और संसारी जनों की आशा रहती है। आकाश में एक शब्द ही रहता है, वैसे ही सच्चे संत में राम की अनन्य भक्ति ही रहती है।

दादू स्वांगी सब संसार है, साधू विरला कोइ।
जैसे चन्दन बावना, वन वन कहीं न होइ ॥ १६ ॥

जैसे अन्य साधारण वृक्ष तो प्रत्येक वन में मिल जाते हैं किन्तु बावना चन्दन प्रत्येक वन में कहां मिलता है ? वैसे ही भेषधारी सभी संसार में भरे हैं, किन्तु सच्चा संत कोई विरला ही मिलता है।

दादू स्वांगी सब संसार है, साधु कोई एक।
हीरा दूर दिशंतरा, कंकर और अनेक ॥ १७ ॥

जैसे बहुमूल्य हीरे जैसे कंकर तो सभी स्थानों में अनेक मिलते हैं किन्तु असली हीरा तो कहीं दूर-दराज राजा-महाराजा या सेठ-साहूकार के पास ही मिलेगा। वैसे ही भेषधारी साधु तो सब संसार में मिलते हैं, किन्तु सच्चा संत तो कोई विरला ही मिलेगा।

दादू स्वांगी सब संसार है, साधू शोध सुजाण।
पारस परदेशों भया, दादू बहुत पषाण[1] ॥ १८ ॥

जैसे साधारण पत्थर[1] तो जहां तहां बहुत हैं किन्तु पारस तो विलुप्त ही होता है और खोज करने पर ही मिलता है। वैसे ही भेषधारी तो सब संसार में हैं किन्तु हे बुद्धिमान् जिज्ञासु ! सच्चा संत तो खोज करने पर ही मिलता है।

दादू स्वांगी सब संसार है, साधु समुद्रां पार।
अनल पंखि कहँ पाइये, पंखी कोटि हजार ॥ १९ ॥

अन्य पक्षी तो पृथ्वी पर अनन्त मिलते हैं किन्तु अनल पक्षी कहां मिलता है ? वह तो कहीं आकाश में ही रहता है। वैसे ही भेषधारी तो संसार में अपार भरे हैं किन्तु सच्चा संत कहां है ? वह तो सांसारिक विषय-विकार-समुद्र से पार, परब्रह्म के चिन्तन में लगा हुआ कहीं एकान्त देश में ही मिलेगा।

दादू चन्दन वन नहीं, शूरन के दल नांहिं।
सकल खानि[1] हीरा नहीं, त्यों साधू जग मांहिं ॥ २० ॥

वन में चन्दन का वृक्ष विरला ही होता है, चन्दन का वन नहीं होता। सेना में वीर विरला ही होता है, वीरों का दल नहीं होता। सब खानियों में हीरा नहीं होता, वैसे ही संसार में सच्चा साधू विरला ही मिलता है।

([1]मूल ग्रन्थों में खानि की जगह 'समंद' (समुद्र) पाठ मिलता है जो सही है। वैज्ञानिकों का मत है कि प्रलयकाल में अथवा अतिवृष्टि जन्य बाढ़ के कारण वन पृथ्वी के गर्त समुद्र में समा गये और भूगर्भ स्थित अग्नि-ताप से दग्ध होकर कोयला बन गये। मिट्टी की परतों के भार से यह कोयला पत्थर के समान कठोर हो गया। समुद्रतल हटने से निकले भूभाग की इन्हीं पत्थर के कोयले की खानों में कहीं-कहीं पर कार्बन का शुद्ध रूप हीरा पाया जाता है। - सं.)

जे सांई का ह्वै रहै, सांई तिसका होइ।
दादू दूजी बात सब, भेष न पावे कोइ ॥ २१ ॥

जो सर्व भाव से भगवत् के समर्पण होकर भगवद्-भजन में लीन रहता है तब भगवद् उसके अनुकूल होकर साक्षात्कार के साथ २ उसके योग-क्षेमादि कार्य भी करते हैं, अन्य बाह्य साधन भेषादि सब तो दिखावा मात्र ही हैं। भेषादि बाह्याडम्बर से कोई भी भगवान् को प्राप्त नहीं कर सकता।

स्वांग सगाई कुछ नहीं, राम सगाई साच।
दादू नाता नाम का, दूजे अंग न राच ॥ २२ ॥

केवल भेष से ही प्रेम का सम्बन्ध बाँधने से कोई लाभ नहीं किन्तु निरंजन राम के नाम-चिन्तन से प्रेम सम्बन्ध बाँधने से सत्य परब्रह्म की प्राप्ति रूप लाभ होता है। अत: हे साधक! नाम-चिन्तन से ही प्रेम का सम्बन्ध बाँध, अन्य भेषादि के स्वरूप में अनुरक्त मत हो।

दादू एकै आतमा, साहिब है सब मांहिं।
साहिब के नाते मिले, भेष पंथ के नांहिं ॥ २३ ॥

सभी प्राणी आत्म रूप से एक हैं और साक्षी रूप से परमात्मा सब में स्थित है। अत: परमात्मा के सम्बन्ध से ही सबसे प्रेम का व्यवहार करना चाहिये। भेष व पंथ का पक्षपात नहीं करना चाहिये।

दादू माला तिलक सौं कुछ नहीं, काहू सेती काम।
अंतर मेरे एक है, अहनिशि[1] उसका नाम ॥ २४ ॥

माला तिलकादि बाह्य-चिन्हों से मेरा कुछ भी सम्बन्ध नहीं और न किसी देवी-देवता से ही मेरा काम है। मेरे हृदय में तो रात्रि-दिन[1] उस एक परब्रह्म के नाम का चिन्तन ही रहता है।

अमिट पाप प्रचण्ड

भक्त भेष धर मिथ्या बोले, निन्दा पर अपवाद।
साचे को झूठा कहै, लागे बहु अपराध ॥ २५ ॥

२५-२६ में सहज न मिटने वाला प्रचंड पाप का परिचय दे रहे हैं— जो भक्त भेष बना कर मिथ्या बोलता है, दूसरों की निन्दा करता है, सच्चे संतों को पाखंडी कह कर उनसे विरोध करता है, उसे सहज न मिटने वाला महान् पाप लगता है।

दादू कबहूँ कोई जनि मिले, भक्त भेष सौं जाइ।
जीव जन्म का नाश है, कहै अमृत, विष खाइ ॥ २६ ॥

भक्त भेषधारी पाखंडी के पास जाकर उससे कभी भी कोई प्रेम न करे, कारण, वह कथन तो भक्ति-ज्ञानादि रूप अमृत का करता है और खाता विषय-विष है। उससे प्रेम करने वाले में भी उसी के संस्कार पड़ते हैं और जीव के मानव जन्म का व्यर्थ ही नाश हो जाता है।

चित्त कपटी

दादू पहुँचे पूत बटाऊ होइ कर, नट ज्यों काछा भेष।
खबर न पाई खोज की, हम को मिल्या अलेख ॥ २७ ॥

२७-२८ मन में कपट रखने वाले भेषधारियों का व्यवहार बता रहे हैं—पाखंडी परमात्मा के पास पहुँचे हुये पवित्र संत का-सा भेष नट के समान बना, विरक्त होकर पथिक के समान ग्राम २ में घूमते हैं। ज्ञान तो परमात्मा के अन्वेषण के उपाय भक्ति-ज्ञानादि का भी नहीं होता किन्तु कहते रहते हैं—हमें परब्रह्म का साक्षात्कार हो गया है।

दादू माया कारण मूंड मुँडाया, यहु तो योग न होई।
पारब्रह्म सौं परिचय नांहीं, कपट न सीझे कोई ॥ २८ ॥

मायिक पदार्थों के उपभोग और संग्रह के लिये शिर-मुंडन करा कर भेष बना लिया किन्तु परब्रह्म से परिचय होने का कुछ भी साधन नहीं लिया, उक्त व्यवहार तो योग नहीं कहा जाता और ऐसे कपट से कोई भी ब्रह्म-प्राप्ति रूप सिद्धावस्था को भी प्राप्त नहीं होता।

अन्य लग्न व्यभिचार

पीव न पावे बावरी, रचि रचि करे श्रृंगार ।
दादू फिर फिर जगत सौं, करेगी व्यभिचार ॥ २९ ॥

२९-३१ में कहते हैं—परमात्मा को छोड़ अन्य से प्रेम करना व्यभिचार है-हे पाखंडपूर्ण व्यक्ति रूप बावरी सुन्दरी ! विषयों में लग्न रख करके बड़ी सावधानी से रुचि पूर्वक भेष रूप श्रृंगार करने पर भी परमात्मा-पति को प्राप्त नहीं कर सकेगी, प्रत्युत पुन: २ विषय प्राप्ति के लिये संसारी प्राणियों से प्रेम रूप व्यभिचार करेगी।

प्रेम प्रीति सनेह बिन, सब झूठे श्रृंगार ।
दादू आतम रत नहीं, क्यों माने भरतार ॥ ३० ॥

संतों से प्रेम, नाम चिन्तन से प्रीति और परमात्मा से स्नेह बिना सभी भेष रूप श्रृंगार व्यर्थ हैं । जब तक जीवात्मा परमात्मा में अनुरक्त न हो तो तब तक परमात्मा उसे कैसे अपना भक्त मानेंगे ? भगवान् भेषादि बाह्य चिन्हों से ही भक्त नहीं मानते।

दादू जग दिखलावे बावरी, षोडश[1] करे श्रृंगार।
तहँ न सँवारे आपको, जहँ भीतर भरतार ॥ ३१ ॥

जैसे व्यभिचारिणी नारी पति को दिखाने के लिये ऊपर तो सोलह[1] श्रृंगार करती है किन्तु चित्त जार की ओर लगा रहता है। वैसे ही पाखंड पूर्ण व्यक्ति रूप-बावरी सुन्दरी दिखाने के लिये भेष तो बहुत अच्छा करती है किन्तु जहां अन्त:करण में परमात्मा देखता है, वहाँ अपने को नहीं सुधारती=परमात्मा से निष्कपट प्रेम नहीं करती।

इन्द्रियार्थी भेष

सुध बुध जीव धिजाइ[1] कर, माला संकल बाहि ।
दादू माया ज्ञान सौं, स्वामी बैठा खाइ ॥ ३२ ॥

३२-३७ में कहते हैं—इन्द्रिय पोषणार्थ भेष उत्तम नहीं। इन्द्रिय पोषण के लिये भेष धारण करने वाले दंभी लोग, भोले लोगों को कपट पूर्ण ज्ञान की बातें सुना कर अपने में विश्वास[1] करा

लेते हैं और गले में अपनी कंठी माला रूप सांकल डाल, गुरु बन कर बाँध लेते हैं। फिर गुरुजी बैठे २ उनके मायिक पदार्थों का उपभोग करते हैं।

जोगी जंगम सेवड़े, बौद्ध संन्यासी शेख।
षट् दर्शन दादू राम बिन, सबै कपट के भेख ॥ ३३।

जोगी (नाथ), जंगम (टाली बजाते हुये भिक्षा मांगने वाले शैव साधु), सेवड़े (एक प्रकार के जैन साधु), बौद्ध धर्म के साधु, संन्यासी, शेख (मुसलमानों का एक भेद); इन छ: दर्शनों के आदि सभी भेष धारी, भगवान् की भक्ति के बिना कपट के ही माने जाते हैं।

दादू शेख[१] मुशायख औलिया[२], पैगम्बर सब पीर[४]।
दर्शन[५] सौं परसन[६] नहीं, अजहूँ वैली[७] तीर ॥ ३४ ॥

परमात्मा भेष[५] से नहीं मिलते[६]। गुरुजन[१] मुशायख (शेख मुल्लादि धर्म के ज्ञाता) संत[२], पैगम्बर (ईश्वर का संदेश वाहक) और सिद्ध महात्मा[४] आदि के भेष को धारण करने वाले, सभी अभी तक संसार समुद्र से पार नहीं हो सके हैं, अभी इधर[७] के किनारे पर ही हैं।

नाना भेष बनाइ कर, आपा देख दिखाइ।
दादू दूजा दूर कर, साहिब सौं ल्यौ लाइ ॥ ३५ ॥

प्राणी नाना प्रकार के भेष बनाके स्वयं को देखकर प्रसन्न होते हैं और दूसरों को धोखे में डालते हैं किन्तु इससे परमार्थ में कोई लाभ नहीं है। अत: भेषादि अन्य प्रपंच को हृदय से दूर करके परब्रह्म चिन्तन में ही वृत्ति लगाओ।

दादू देखा देखी लोक सब, केते आवैं जांहिं।
राम-सनेही ना मिलैं, जे निज देखैं मांहिं ॥ ३६ ॥

आने जाने वाले लोगों के देखा-देखी हमारे पास कितने ही भेषधारी आते हैं किन्तु उनमें जो अपने भीतर हृदयस्थ आत्माराम को देखते हों, ऐसे राम के प्यारे भक्त नहीं मिलते।

दादू सब दैखैं अस्थूल को, यहु ऐसा आकार।
सूक्षम सहज न सूझही, निराकार निरधार ॥ ३७ ॥

प्राय: सब लोग सच्चे संत और दंभी के स्थूल शरीर का भेष ही देखते हैं और दंभी के भेष को देखकर तो कहने लगते हैं—इनका यह ऐसा स्वरूप है कि देखते ही मन प्रसन्न हो जाता है, किन्तु उन लोगों को दंभी और सच्चे संत के हृदय की सूक्ष्म स्थिति सहज ही नहीं ज्ञात होती। दंभी के हृदय में विषय-वासना रहती है और सच्चे संत के हृदय में निराकार, निराधार, परब्रह्म का चिन्तन रहता है। यह न जानने के कारण ही लोग दंभियों द्वारा धोखा खाते हैं।

परीक्षक अपरीक्षक

दादू बाहर का सब देखिये, भीतर लख्या न जाइ।
बाहर दिखावा लोक का, भीतर राम दिखाइ ॥ ३८ ॥

३८-४० में कहते हैं—यथार्थ परीक्षक राम है, अपरीक्षक संसारी जन हैं-प्राय: सब लोग

बाह्य भेष को ही देखते हैं। संसारी प्राणियों से हृदय के भीतर का भाव नहीं देखा जाता। बाहर का भेष लोगों को दिखाने का ही है। इससे राम प्रसन्न नहीं होता। भीतर हृदय को भक्ति आदि से सजा कर राम को दिखा, तभी राम प्रसन्न होगा।

दादू यहु परिख सराफी ऊपली[१], भीतर की यहु नांहिं ।
अंतर की जानैं नहीं, तातैं खोटा खाहिं ॥ ३९ ॥

संसारी जनों की यह भेष की परीक्षा ऊपर[१] की ही परीक्षा है। हृदय के भीतर की परीक्षा यह नहीं है। हृदय के भीतर की बात न जानने के कारण संत का अनादर करते हैं और दंभियों करके आदर द्वारा बुरी तरह धोखा खाकर दुःख भोगते हैं।

दादू झूठा राता झूठ सौं, साँचा राता साँच ।
एता अंध न जानहीं, कहँ कंचन, कहँ काँच ॥ ४० ॥

झूठे भेषधारी का मन मिथ्या विषयों में रत रहता है और सच्चे संत का मन सत्य परब्रह्म में रत रहता है। विचार-नेत्रों से हीन अंधे संसारी इस भेद को नहीं जानते। जैसे कंचन और कांच एक नहीं हो सकते, वैसे ही सच्चा संत और दंभी एक समान नहीं हो सकते।

इन्द्रियार्थी भेष

दादू सचु बिन सांई ना मिले, भावै भेष बनाइ।
भावै करवत ऊर्ध्व मुख, भावै तीरथ जाइ ॥ ४१ ॥

४१-४२ में कहते हैं—यथार्थ साधन बिना भेष आदि से भगवान् नहीं मिलते, चाहे भेष धारण करो, काशी में उर्ध्व मुखवाली करवत से कट कर प्राण त्यागो, आकाश की ओर ऊंचा मुख कर खड़े रहते हुये अन्न-जल छोड़ कर प्राण त्यागो, या तीर्थों में भ्रमण करो, किन्तु सच्चे साधन द्वारा यथार्थ-ज्ञान बिना ब्रह्म का साक्षात्कार कभी भी नहीं होता।

दादू साचा हरि का नाम है, सो ले हिरदै राखि।
पाखंड प्रपंच दूर कर, सब साधों की साखि ॥ ४२ ॥

परमात्मा के नाम का अखंड चिन्तन ही सच्चा साधन है, उसकी विधि संतों से ग्रहण करके तथा पाखंड प्रपंच को त्याग करके उसे निरन्तर हृदय में रक्खो, उससे ज्ञान द्वारा ब्रह्म का साक्षात्कार होगा। यही सब संतों की साक्षी है। शिक्षा है।

आपा निर्द्वैष

हिरदै की हरि लेयगा, अंतरजामी राइ।
साच पियारा राम को, कोटिक कर दिखलाइ ॥ ४३ ॥

४३-४४ में कहते हैं—अन्तर-हृदय द्वैत रूप द्वेष से रहित होना चाहिये-अन्तर्यामी परमात्मा हृदय की भावना ही ग्रहण करेगा। राम को सत्य ही प्रिय है। सत्य उसी का नाम है—''जैसी भावना, वैसा ही वचन और कार्य हो।'' हृदय में द्वैत रूपी द्वेष है तो बाहर से चाहे कोटि प्रकार के वचन और भेषादि से अद्वैत दिखावें, वे सब व्यर्थ ही होंगे, मुक्तिप्रद सिद्ध न होंगे।

दादू मुख की ना गहै, हिरदै की हरि लेइ ।
अंतर सूधा एक सौं, तो बोल्याँ दोष न देइ ॥ ४४ ॥

परमात्मा मुख के वचन पर ध्यान न देकर हृदय की बात को ही ग्रहण करते हैं। यदि आन्तर हृदय सरलता पूर्वक अद्वैत भावना में रत हो तो वाणी द्वारा भक्ति आदि का उपदेश देने पर द्वैत का दोष न हरि देते और न विचारशील पुरुष ही देते हैं।

इन्द्रियार्थी भेष

सब चतुराई देखिये, जो कुछ कीजे आन ।
मन गह राखे एक सौं, दादू साधु सुजान ॥ ४५ ॥

४५ में कहते हैं—इन्द्रिय-पोषणार्थ भेष उत्तम नहीं-आन्तर साधना बिना अन्य जो कुछ भी भेषादि हैं, वे सब इन्द्रिय-पोषणार्थ चतुराई ही दिखाई देती है। अत: समझदार साधक संत को चाहिये-अपने मन को प्रत्याहार द्वारा ग्रहण करके एक अद्वैत परब्रह्म के चिन्तन में ही लगाये रखे।

आत्मार्थी भेष

शब्द सुई सुरति धागा, काया कंथा लाइ ।
दादू जोगी जुग जुग पहरे, कबहूँ फाट न जाइ ॥ ४६ ॥

४६-४८ में आत्म-स्वरूप ब्रह्म की प्राप्ति का हेतु भेष बता रहे हैं—वृत्ति धागा को, सद्गुरु शब्द-सुई में पिरो कर स्थूल-सूक्ष्म शरीर को परमात्म-परायण करना रूप कंथा बना कर योगी लोग निरन्तर पहनते हैं=ब्रह्मनिष्ठ रहते हैं। यह कंथा बाहरी कंथा के समान कभी भी जीर्ण-शीर्ण अवस्था को प्राप्त नहीं होती।

ज्ञान गुरु की गूदड़ी, शब्द गुरू का भेख ।
अतीत हमारी आतमा, दादू पंथ अलेख ॥ ४७ ॥

हमारी जीवात्मा ही विरक्त है, सद्गुरु का यथार्थ ज्ञान ही उसकी गुदड़ी है। गुरु प्रदत्त प्रणव रूप शब्द का चिन्तन ही उसका भेष चिह्न है और वह इन्द्रियातीत पर ब्रह्म के ही पंथ में है।

इश्क अजब[१] अबदाल[२] है, दर्दवंद दरवेश[३] ।
दादू सिक्का[४] सब्र[५] है, अक्ल[६] पीर[७] उपदेश ॥ ४८ ॥

इति श्री भेष का अंग समाप्त ॥ १४ ॥ सा. १५३३ ॥

भेषादि के विषय में बुद्धिमान्[६] सिद्ध[७] संतों का उपदेश यह है—भगवान् के वियोग व्यथा से सम्पन्न होने का नाम साधु[३] होना है। भगवान् का अद्भुत[१] प्रेम ही सिद्धि[२]=चमत्कारादि हैं। संतोष[५] ही भेष चिह्न[४] है।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका भेष का अंग समाप्त : ॥ १४ ॥

अथ साधु का अंग १५

भेष-अंग के अनन्तर संत विषयक विचार करने के लिये ''साधु का अंग'' कहने में प्रवृत्त मंगल कर रहे हैं—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत: ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक भेषादि बाह्य चिह्नों के आग्रह से पार होकर वास्तविक साधुता द्वारा मुक्ति प्राप्त करता है, उन निरंजन राम, सद्गुरु और सर्व संतों को हम अनेक प्रणाम करते हैं।

साधु महिमा

दादू निराकार मन सुरति सौं, प्रेम प्रीति सौं सेव।
जे पूजे आकार को, तो साधू प्रत्यक्ष देव ॥ २ ॥

२-४ में साधु महिमा कहते हैं—मन की वृत्ति स्थिर करके प्रेम पूर्वक निराकार परमात्मा की उपासना करो यदि निराकार में मन स्थिर न होने के कारण आकार की ही उपासना करना चाहते हो तो ज्ञानी ब्रह्म रूप होने से उपास्य देव के प्रतीक ज्ञानी संत प्रत्यक्ष ही हैं, प्रीति से उनकी सेवा करो।

दादू भोजन दीजे देह को, लीया मन विश्राम।
साधू के मुख मेलिये, पाया आतमराम ॥ ३ ॥

जैसे भोजन स्थूल शरीर के अंग पेट में डालते हैं किन्तु उससे सूक्ष्म मन भी संतुष्ट होता है, वैसे ही संतों को भोजन कराने से आत्म स्वरूप राम भी प्रसन्न होते हैं।

ज्यों यहु काया जीव की, त्यों सांई के साध।
दादू सब संतोषिये, मांहीं आप अगाध ॥ ४ ॥

जैसे सम्पूर्ण शरीरों में जीवन को यह मनुष्य शरीर अति प्रिय है, वैसे ही संपूर्ण प्राणियों में परमात्मा को संत ही अतिप्रिय हैं। व्यापक होने पर भी अगाध स्वरूप परमात्मा संतों के हृदय में विशेष रूप से रहते हैं। अत: सब संतों को वा सर्व प्रकार से संतों को सेवा से संतुष्ट करना चाहिये ।

सत्संग माहात्म्य

साधू जन संसार में, भवजल बोहिथ[1] अंग।
दादू केते उद्धरे, जेते बैठे संग ॥ ५ ॥

५-११ में सत्संग का माहात्म्य बता रहे हैं—संत जन संसार में भव-सागर के जन्म-मरण रूप जल-प्रवाह से पार उतारने के लिये जहाज[1] हैं। जैसे जहाज से अनेक मानव समुद्र से पार हो जाते हैं, वैसे ही जितने भी संतों के सत्संग में बैठते हैं, वे सभी भवसागर से पार हो जाते हैं।

साधू जन संसार में, शीतल चन्दन वास ।
दादू केते उद्धरे, जे आये उन पास ॥ ६ ॥

संत जन संसार में शीतल चन्दन के समान हैं और उनकी वाणी चन्दन की सुगंध के समान है। चन्दन की गंध से पास के वृक्षों में परिवर्तन हो जाता है वैसे ही संतों के पास आकर जिन्होंने उनकी वाणी सुनी है, वे भी काम क्रोधादि से पार होकर निष्कामतादि अवस्था को प्राप्त हुये हैं।

साधू जन संसार में, हीरे जैसा होइ।
दादू केते उद्धरे, संगति आये सोइ ॥ ७ ॥

संसार में संत हीरे के समान हैं। जैसे हीरा प्रकाश देता है, वैसे ही संत जन ज्ञान प्रकाश प्रदान करते हैं। जो भी उनकी सत्संगति में आये हैं, वे सभी अज्ञानांधकार से पार हुये हैं।

साधु जन संसार में, पारस परकट गाइ।
दादू केते उद्धरे, जेते परसे आइ ॥ ८ ॥

संसार में संत जन पारस और कामधेनु गो के समान प्रकट हैं। जैसे पारस और कामधेनु दरिद्रता को हर लेते हैं वैसे ही संत जनों के सत्संग में जितने भी आ मिले हैं वे सभी जीव-भाव रूपी दरिद्रता से पार हो गये हैं।

रूख वृक्ष वनराइ सब, चन्दन पासे होइ।
दादू बास लगाइ कर, किये सुगंधे सोइ ॥ ९ ॥

संपूर्ण वन समूह के छोटे-बड़े वृक्षों में से जो भी चन्दन के पास होते हैं, उनको चन्दन अपनी सुगंध देकर सुगंध युक्त कर देता है। वैसे ही संत संसार की जाति समूह में से छोटी बड़ी जाति का कोई भी उनके पास जाता है तो उसे अपना ज्ञान देकर ज्ञानी बना देते हैं।

जहां अरंड अरु आक थे, तहँ चन्दन ऊग्या मांहिं।
दादू चन्दन कर लिया, आक कहै को नांहिं ॥ १० ॥

जैसे जहां आक, एरंड के वृक्ष हों वहां यदि चन्दन का वृक्ष लग जाय तो उन आकादि को भी सुगंध देकर चन्दन बना देता है फिर उन्हें कोई भी आकादि नाम से नहीं बोलता। वैसे ही ज्ञान विचारादि से हीन जातियों के मनुष्यों में ज्ञान भक्ति आदि से युक्त संत उत्पन्न हो जाय तो उनको भी ज्ञान भक्ति आदि से युक्त कर देता है। फिर उन्हें कोई भी अभक्त और अज्ञानी नहीं कहता।

साधु नदी, जल रामरस, तहां पखालै अंग।
दादू निर्मल मल गया, साधू जन के संग ॥ ११ ॥

संत जनों के सत्संग में जाओ। संत नदी के समान हैं। उनमें राम की पराभक्ति रस रूप जल भरा है। उससे जिनने अपना अन्त:करण धोया है, उनका अविद्या मैल नष्ट हो गया है और वे निर्मल ब्रह्म को प्राप्त हुये हैं।

परमार्थी

साधू बर्षें राम रस, अमृत वाणी आइ ।
दादू दर्शन देखतां, त्रिविध ताप तन जाइ ॥ १२ ॥

१२ में संत परमार्थी हैं, यह कहते हैं—संतजन जहां तहां से आकर अमृत समान प्रिय वाणी द्वारा राम-भक्ति-रस की वर्षा करते हैं। उनके दर्शन करते ही शरीर के दैहिक, दैविक और भौतिक तीनों ताप नष्ट हो जाते हैं।

साधु संग महिमा

संसार विचारा जात है, बहिया लहरि तरंग।
भेरे[१] बैठा ऊबरे, सत साधू के संग ॥ १३ ॥

१३-२२ में संत-संग की महिमा कह रहे हैं—संसार के दीन प्राणी विषय-समुद्र की वासना रूप लहर और तृष्णा-तरंगों में बहे जा रहे हैं, उनमें से कोई सच्चे संत के संग रूप बेड़े[१] (जहाज) में बैठता है, वही उक्त तरंगों से पार होता है।

दादू नेड़ा परम पद, साधू संगति मांहिं ।
दादू सहजैं पाइये, कबहूँ निष्फल नांहिं ॥ १४ ॥

संत-संग में बैठने से परमपद स्वरूप ब्रह्म समीप ही ज्ञात होता है और व्यापक होने से अनायास ही प्राप्त होता है। संत-संग कभी भी निष्फल नहीं होता।

दादू नेड़ा परम पद, कर साधू का संग ।
दादू सहजैं पाइये, तन मन लागे रंग ॥ १५ ॥

परम पद रूप ब्रह्म पास ही है, संतों के सत्संग द्वारा जब तन मन में ब्रह्म-परायणता रूप रंग लगता है, तब वह अनायास ही प्राप्त हो जाता है।

दादू नेड़ा परम पद, साधू संगति होइ ।
दादू सहजैं पाइये, साबित सन्मुख सोइ ॥ १६ ॥

संतों की संगति द्वारा जब ब्रह्म की व्यापकता का ज्ञान होता है तब परम पद रूप ब्रह्म समीप ही प्रतीत होने लगता है और जब वृत्ति ब्रह्म-परायण होकर अखंड ब्रह्माकार रहती है तब वह ब्रह्म प्रत्यक्ष रूप में अनायास ही प्राप्त होता है।

दादू नेड़ा परम पद, साधू जन के साथ ।
दादू सहजैं पाइये, परम पदारथ हाथ ॥ १७ ॥

संतों के साथ रहकर उनके समान साधन करने से प्राणी को परम पद अत्यन्त समीप अर्थात् अपना स्वरूप ही भासने लगता है और निदिध्यासन की परिपाकावस्था में वह परम पदार्थ स्वरूप ब्रह्म अनायास ही अभेद रूप से प्राप्त हो जाता है।

साधु मिले तब ऊपजे, हिरदै हरि का भाव ।
दादू संगति साधु की, जब हरि करे पसाव[१] ॥ १८ ॥

संतों का समागम होता है तब प्राणी के हृदय में भगवान् का विश्वास उत्पन्न होता है और जब हरि अनुकूल होकर कृपा करते हैं तब संतों की संगति प्राप्त होती है।

साधु मिले तब ऊपजे, हिरदै हरि का हेत।
दादू संगति साधु की, कृपा करे तब देत॥ १९॥

संत मिलते हैं तब प्राणी के हृदय में भगवद् विषयक स्नेह उत्पन्न होता है और जब भगवान् कृपा करते हैं, तब संतों की संगति देते हैं।

साधु मिले तब ऊपजे, प्रेम भक्ति रुचि होइ।
दादू संगति साधु की, दया कर देवे सोइ॥ २०॥

संत मिलते हैं तब भगवान् के मिलने की रुचि होकर प्राणी के हृदय में प्रेमाभक्ति उत्पन्न होती है और वे भगवान् ही दया करके संतों की संगति देते हैं।

साधु मिले तब ऊपजे, हिरदै हरि की प्यास।
दादू संगति साधु की, अविगत पुरवै आस॥ २१॥

संत मिलते हैं तब प्राणी के हृदय में परमात्मा को प्राप्त करने की तीव्र अभिलाषा उत्पन्न होती है और संतों की संगति द्वारा मन इन्द्रियों के अविषय परमात्मा ही उसे पूर्ण करते हैं।

साधु मिले तब हरि मिले, सब सुख आनँद मूर।
दादू संगति साधु की, राम रह्या भरपूर॥ २२॥

शुभ कर्मों की प्रेरणा द्वारा संपूर्ण सांसारिक सुखों के और ज्ञान द्वारा परमानन्द के कारण, संत जब मिलते हैं, तब हरि अवश्य मिल जाते हैं, और क्या कहें-संतों की संगति से तो राम संपूर्ण विश्व में परिपूर्ण रूप से भासने लगता है।

चौप चर्चा

परम कथा उस एक की, दूजा नाहीं आन।
दादू तन मन लाइ कर, सदा सुरति रस पान॥ २३॥

२३ में उत्कंठा पूर्वक भगवत् कथा सुननी चाहिये, यह कहते हैं—संत-संग में एक उस परब्रह्म की ही श्रेष्ठ कथा होती है, अन्य सांसारिक दूसरे विचार नहीं होते। अतः शरीर और मन की स्थिरता पूर्वक वृत्ति लगाकर सदा भगवत्-कथा-रस पान करना चाहिये।

साधु स्पर्श विनती

प्रेम कथा हरि की कहै, करै भक्ति ल्यौ लाइ।
पीवै पिलावै राम रस, सो जन मिलियौ आइ॥ २४॥

२४-२९ में संत मिलनार्थ विनय कर रहे हैं—जो हरि-प्रेम की कथा कहते हैं, चित्त-वृत्ति लगाकर भगवान् की भक्ति करते हैं, इस प्रकार राम-रस का स्वयं पान करते हैं और अन्यों को कराते हैं, वे ही संतजन हमसे आकर मिलें, अन्य नहीं।

दादू पीवे पिलावे राम रस, प्रेम भक्ति गुण गाइ ।
नित प्रति कथा हरि की करै, हेत सहित ल्यौ लाइ ॥ २५ ॥

ज्ञानी संत प्रेम पूर्वक राम-गुण गान करते हुये कीर्तन भक्ति करते हैं, नित्य प्रति हरि की कथा सुनाते रहते हैं। इस प्रकार स्वयं राम-रस का पान करते हुये अन्यों को भी पान कराते हैं और स्नेह पूर्वक अपनी चित्त-वृत्ति ब्रह्म में ही लगाते हैं, ऐसे ही संत हमको मिलने चाहिए।

आन कथा संसार की, हमहिं सुनावे आइ ।
तिस का मुख दादू कहै, दई[1] न दिखाई ताहि ॥ २६ ॥

जो हमारे पास आकर सांसारिक विषय-विकारादि की अन्यान्य कथाएँ हमको सुनावे, हे ईश्वर[1] ! उसका मुख हमको न दिखलावें। वह हमारे पास न आवे।

दादू मुख दिखलाई साधु का, जे तुमहीं मिलावे आइ ।
तुम मांहीं अंतर करे, दई न दिखाई ताहि ॥ २७ ॥

हे परमेश्वर ! जो आकर अपने सत्संग द्वारा आपकी प्राप्ति करा सकें, ऐसे ही संतों का मुख हमें दिखलाइये, किन्तु जो आपके भजन में अन्तराय करें, उनका मुख हमें न दिखलाइये।

जब दरवो[1] तब दीजियो, तुम पै माँगूं येहु ।
दिन प्रति दर्शन साधु का, प्रेम भक्ति दृढ़ देहु ॥ २८ ॥

हे परमेश्वर ! जब भी आप प्रसन्न[1] हों, तब ही एक तो प्रतिदिन संतों का दर्शन और दूसरा आपकी दृढ़ प्रेमाभक्ति, ये दोनों देने की कृपा अवश्य करना। यही आप से मांगता हूं।

साधु सपीड़ा मन करे, सद्गुरु शब्द सुनाइ ।
मीरां[1] मेरा महर कर, अंतर विरह उपाइ ॥ २९ ॥

'भगवत् प्राप्ति बिना जीवन व्यर्थ है' इत्यादिक उपदेशपूर्ण शब्द सुनाकर संत और सद्गुरु मन को भगवद्-वियोग व्यथा से युक्त करते हैं। अत: हे मेरे स्वामिन्[1] परमेश्वर ! दया करके संतों का समागम दीजिये, जिससे वे हमारे हृदय में आपका विरह उत्पन्न कर सकें।

सज्जन

ज्यों ज्यों होवे त्यों कहै, घट बध कहै न जाइ ।
दादू सो सुध आतमा, साधू परसे आइ ॥ ३० ॥

३० में कहते हैं यथार्थ कहने वाले जिज्ञासु वा संत मिलने चाहिये-जैसी हृदय में बात हो, वैसी की वैसी कहते हों, कहीं भी जाकर न्यून अधिक न कहते हों, ऐसे ही शुद्ध बुद्धि वाले सन्त जिज्ञासु हम को मिलने चाहिए वा शुद्ध बुद्धि वाले जिज्ञासुओं को ऐसे ही सज्जन संत मिलने चाहिए।

सत्संग महिमा

साहिब सौं सन्मुख रहै, सतसंगति में आइ ।
दादू साधू सब कहैं, सो निष्फल क्यों जाइ ॥ ३१ ॥

३१-३८ में सत्संग महिमा कह रहे हैं—जो सत्संग में आकर भजन द्वारा भगवान् के सन्मुख रहता है, उसका यह साधन किसी प्रकार भी निष्फल नहीं जाता, सभी संत ऐसा ही कहते हैं।

ब्रह्म गाइ त्री लोक में, साधू अस्तन पान ।
मुख मारग अमृत झरे, कत ढूंढै दादू आन ॥ ३२ ॥

त्रिलोक रूप ब्रह्माण्ड ही ब्रह्म-गो का स्थूल शरीर है, संतजन उसके स्तन हैं, उनके मुख से ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप का बोध रूप अमृत झरता है। जिज्ञासु जनों को चाहिए, सत्संग में जाकर उस अमृत के पान द्वारा ब्रह्म को प्राप्त करें, अन्य स्थानों में व्यर्थ ब्रह्म को क्यों खोजते हैं ?

दादू पाया प्रेम रस, साधू संगति मांहिं ।
फिर फिर देखे लोक सब, यहु रस कतहूँ नांहिं ॥ ३३ ॥

भगवत् प्रेम-रस की प्राप्ति के इच्छुक लोग प्रथम सब लोगों में घूम-घूम कर देख आये हैं किन्तु यह भगवत् प्रेम-रस कहीं भी न मिला, संतों की संगति में आने पर ही प्राप्त हुआ है।

दादू जिस रस को मुनिवर मरैं, सुर नर करैं कलाप[१] ।
सो रस सहजैं पाइये, साधू संगति आप ॥ ३४ ॥

जिस ब्रह्म-रस की प्राप्ति के लिए मुनिवर नाना साधनों द्वारा व्यथित होते हैं, देवता तथा नर भी जिसे पाने के लिए नाना उद्यम[१] करते हैं, वह ब्रह्म-रस संतों की संगति में अनायास अपने आप ही प्राप्त हो जाता है।

संगति बिन सीझे[१] नहीं, कोटि करे जे कोइ ।
दादू सद्गुरु साधु बिन, कबहूँ शुद्ध न होइ ॥ ३५ ॥

संतों की संगति बिना प्राणी का परमार्थ रूप कार्य सिद्ध[१] नहीं होता। चाहे वह अन्यान्य कोटि साधन करे किन्तु सद्गुरु कृपा और संतों की संगति बिना शुद्ध होकर ब्रह्म के शुद्ध स्वरूप को प्राप्त नहीं होता।

दादू नेड़ा दूर तैं, अविगत का आराध ।
मनसा वाचा कर्मणा, दादू संगति साध ॥ ३६ ॥

संतों की संगति में जाकर, उनके कथनानुसार मन, वचन और कर्म से परमात्मा की उपासना करने पर दूर प्रतीत होने वाला अज्ञात परमात्मा, अत्यन्त समीप अपने हृदय में ही भासने लगता है।

स्रग[1] न शीतल होइ मन, चंद न चंदन पास।
शीतल संगति साधु की, कीजे दादू दास ॥ ३७ ॥

गुलाबादि के शीतल पुष्पों की माला[1] पहनने से, चन्द्रमा की शीतल किरण सेवन करने से, और चन्दन के पास जाने से वा चन्दन के पासे को घिस कर लेप करने से, विषय-वासनादि से होने वाली मन की जलन नष्ट नहीं होती। भक्तों को चाहिए—मन की उक्त जलन मिटाने के लिए शांति-प्राप्त शीतल स्वभाव वाले संतों की संगति करें।

दादू शीतल जल नहीं, हिम नहिं शीतल होइ।
दादू शीतल संत जन, राम सनेही सोइ ॥ ३८ ॥

शीतल जल और शीतल बर्फ से मन की जलन नहीं मिटती, किन्तु राम के प्यारे शीतल स्वभाव वाले संत जन ही अपने उपदेश द्वारा मन की जलन मिटा कर मन को शांति रूप शीतलता प्रदान करते हैं।

साधु बेपरवाही

दादू चंदन कद कह्या, अपना प्रेम प्रकास।
दह[1] दिशि परकट ह्वै रह्या, शीतल गंध सुवास ॥ ३९ ॥

३९-४० में कहते हैं—संत निज गुण कथन द्वारा लोगों को आकर्षण करने की परवाह नहीं रखते—चंदन ने कब कहा है कि मेरी गंध शीतल और सुखद है किन्तु फिर भी वह दशों[1] दिशाओं में प्रकट हो रहा है। वैसे ही सच्चा संत अपने भगवत् प्रेम का कथन अपने मुख से कब करता है, किन्तु वह अपने आप ही सब दिशाओं में प्रकट हो जाता है।

दादू पारस कद कह्या, मुझ थी कंचन होइ।
पारस परकट ह्वै रह्या, साच कहैं सब कोइ ॥ ४० ॥

पारस ने कब कहा है—मेरे स्पर्श से लोहा सोना बन जाता है किन्तु वह अपने गुण के कारण आप ही प्रकट हो रहा है। पारस से लोहा सोना बन जाता है, इस बात को सभी सत्य कहते हैं। वैसे ही सच्चे संत अपने गुण-कथन द्वारा अपनी प्रतिष्ठा कराने की परवाह नहीं रखते, किन्तु अपने आप ही उन्हें सब लोग सच्चे संत मानने लगते हैं।

नर बिडरूप (हठीजन)

तन नहिं भूला, मन नहिं भूला, पंच न भूला प्राण।
साधु शब्द क्यों भूलिये, रे मन मूढ़ अजाण ॥ ४१ ॥

विषयों में दुराग्रह रखने वाले को चेतावनी दे रहे हैं—हे मूढ़-मन अज्ञानी प्राणी ! जो भूलने योग्य जन्म-मरण रूप दु:ख के हेतु—देहाध्यास, ईर्ष्या, द्वेषादि पूर्ण मन के मनोरथ और ज्ञानेन्द्रियों के पंच विषयों को तो नहीं भूला, फिर मुक्ति प्रदाता सत्योपदेश-पूर्ण संतों के शब्द क्यों भूल रहा है ?

साधु महिमा

रत्न पदारथ माणिक मोती, हीरौं का दरिया।
चिन्तामणि चित रामधन, घट अमृत भरिया॥ ४२॥

४२-४६ में साधु महिमा कह रहे हैं—संत दैवीगुण रूप माणिक्य, मौक्तिक, हीरा आदि रत्नों के समुद्र हैं। अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष इन चारों पदार्थों के प्रदाता हैं। भक्ति-चिन्तामणि और राम का साक्षात्कार रूप धन जिनके चित्त में स्थित है व अन्त:करण ज्ञानामृत से भरा है। वे श्रेष्ठ संत है।

समरथ शूरा साधु सो, मन मस्तक धरिया।
दादू दर्शन देखतां, सब कारज सरिया॥ ४३॥

जिसने मन का चपलता रूप मस्तक पकड़ के मन को परमात्मा के स्वरूप में स्थिर किया है वह समर्थ संत योग संग्राम में वीर कहलाता है, ऐसे संत के दर्शन-सत्संग से सभी कार्य सिद्ध होते हैं।

धरती अंबर रात दिन, रवि शशि नावें शीश।
दादू बलि बलि वारणे, जे सुमिरें जगदीश॥ ४४॥

जो जगदीश्वर का स्मरण करते हुए जगदीश्वर पर निछावर होते हैं, उन संतों के चरणों में पृथ्वी, आकाश, रात्रि और दिन के अभिमानी देव तथा सूर्य चन्द्र भी मस्तक झुकाकर बलिहारी जाते हैं।

चंद सूर सिजदा करैं, नाम अलह का लेइ।
दादू जमीं असमान सब, उन पावों शिर देइ॥ ४५॥

जो भगवान् के नाम का स्मरण करते हैं, उन संतों के चरणों में मस्तक रखकर चन्द्रमा, सूर्य, पृथ्वी, आकाश के अभिमानी देवता आदि सब प्रणाम करते हैं।

जे जन राते राम सौं, तिनकी मैं बलि जांव।
दादू उन पर वारणे, जे लाग रहे हरि नांव॥ ४६॥

जो ज्ञानी संत राम के वास्तविक स्वरूप में अद्वैत भाव से रत हैं, उनकी हम बलिहारी जाते हैं और जो हरि नाम चिन्तन में लगे हुये भक्त जन हैं, उन पर भी हम निछावर होते हैं।

साधु परीक्षा लक्षण

जे जन हरि के रँग रँगे, सो रँग कदे न जाइ।
सदा सुरंगे संत जन, रँग में रहे समाइ॥ ४७॥

४७-४८ में संतों की परीक्षा करने योग्य लक्षण कहते हैं—जो संत हरि की भक्ति रूप रंग में रंग गये हैं, उनका वह रंग कभी भी नहीं जाता। वे तो उस रंग को सदा सुन्दर बनाते हुये, उसी रंग में समाये हुये रहते हैं।

दादू राता राम का, अविनाशी रँग मांहिं ।
सब जग धोबी धो मरे, तो भी खूटे[1] नांहिं ॥ ४८ ॥

राम भक्त राम की अविनाशी भक्ति रूप रंग में रत रहता है। यदि सब जगत् के प्राणी धोबी बन कर निन्दा, ईर्ष्या द्वारा उसको छुड़ाना चाहें तो भी वह घटता[1] नहीं।

साहिब किया सो क्यों मिटे, सुन्दर शोभा रंग ।
दादू धोवें बावरे, दिन होइ सुरंग ॥ ४९ ॥

परमात्मा ने अनुग्रह किया है, तब सुन्दर शोभा युक्तभक्ति रूप रंग संतों को प्राप्त हुआ है। वह कैसे मिट सकता है ? अज्ञानी लोग निन्दा-ईर्ष्यादि द्वारा संतों को कष्ट देकर ज्यों-ज्यों उसे धोना चाहते हैं, त्यों-त्यों भगवद् द्वारा की जाने वाली रक्षा से विश्वास बढ़ कर प्रतिदिन सुन्दर होता जाता है।

साधु परमार्थी

परमारथ को सब किया, आप स्वारथ नांहिं ।
परमेश्वर परमारथी, कै साधू कलि मांहिं ॥ ५० ॥

५०-५४ में संतों की परोपकार परायणता बता रहे हैं—परमेश्वर और संतों ने जो कुछ किया है, वह परमार्थ के लिये ही किया है, अपने स्वार्थ के लिये कुछ भी नहीं किया। अतः इस कलियुग में परमेश्वर और सन्त ही परमार्थी हैं, अन्य सब स्वार्थी हैं।

पर उपकारी संत सब, आये इहिं कलि मांहिं ।
पीवें पिलावें राम रस, आप सवारथ नांहिं ॥ ५१ ॥

इस कलियुग में जितने भी संत आये हैं, वे सब परोपकारी हैं। स्वयं राम-भक्ति-रस पान करते हैं, अन्यों को भी कराते हैं और अपना कोई स्वार्थ नहीं रखते।

पर उपकारी संत जन, साहिब जी तेरे ।
जाती देखी आतमा, राम कह टेरे ॥ ५२ ॥

हे रामजी ! आपके संत जन इतने परोपकारी हैं—किसी भी जीवात्मा को पतन की ओर जाते देखते हैं तो राम-नाम उच्चारण करते हुये पुकार करके कहते हैं—''राम राम कर, तेरा उद्धार होगा।''

चंद सूर पावक पवन, पाणी का मत सार ।
धरती अंबर रात दिन, तरुवर फलैं अपार ॥ ५३ ॥

चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, वायु, जल, पृथ्वी, आकाश, रात्रि, दिन, और फल देने वाले अनन्त वृक्षों का भी सार रूप परोपकार ही माननीय सिद्धान्त है। ये सब और सब संत परोपकार-परायण ही रहते हैं।

छाजन भोजन परमारथी, आतम देव अधार ।
साधू सेवक राम के, दादू पर उपकार ॥ ५४ ॥

जिनके आधार पर निर्वाह करते हुये जीवात्मा, परब्रह्म देव की आराधना करता है, वे वस्त्र, भोजन भी परम परोपकारी हैं जो अपना अभाव करके भी दूसरों की रक्षा करते हैं। वैसे ही राम के भक्त संतजन भी परोपकार-परायण हैं।

साधु साक्षी भूत

जिसका तिसको दीजिये, सुकृत पर उपकार।
दादू सेवक सो भला, शिर नहिं लेवे भार ॥ ५५ ॥

५५-५७ में कहते हैं—सन्त साक्षीरूप रह कर परोपकार करते हैं—जिसकी प्रेरणा से सुकृत रूप परोपकार होता है, उसी परमेश्वर को, उसके कर्तापन और फल का भार देना चाहिए। जो अपने शिर पर उक्त भार नहीं लेता वही संत साक्षी रूप होने से अच्छा माना जाता है।

परमारथ को राखिये, कीजे पर उपकार ।
दादू सेवक सो भला, निरंजन निराकार ॥ ५६ ॥

अपना शरीर आदि सभी वस्तुएँ परोपकार के लिए ही धारण करनी चाहिए और साक्षी रूप रहकर उनसे परोपकार करना चाहिए। जो कर्तापन तथा फलाशा से रहित साक्षी रूप रह कर परोपकार करता है, वही उत्तम भक्त निरंजन निराकार को प्राप्त होता है।

सेवा सुकृत सब गया, मैं मेरा मन मांहिं ।
दादू आपा जब लगैं, साहिब माने नांहिं ॥ ५७ ॥

जिनने मन में ''मैं कर्ता हूँ, इसका फल मेरा है'' ऐसी भावना रखकर भक्ति और सुकृत रूप परोपकार किया है, वह सब भगवत् की प्राप्ति कराने में समर्थ न होने से परमार्थ दृष्टि से निष्फल हो गया। कारण, जब तक मन में अहंकार रहता है, तब तक भगवान् सेवादि स्वीकार नहीं करते।

साधु परीक्षा लक्षण

साधु शिरोमणि शोध ले, नदी पूर पर आइ ।
सजीवनि साम्हा चढे, दूजा बहिया जाइ ॥ ५८ ॥

संत परीक्षा का लक्षण बता रहे हैं—जैसे संजीवनी बूटी की परीक्षा नदी के प्रवाह पर आकर की जाती है, जल-प्रवाह में डालने पर उसका तृण मच्छी के समान प्रवाह के सन्मुख चलता है, अन्य तृण प्रवाह के साथ ही बहते हैं, वैसे ही उत्तम संत को संसार के प्रवाह में खोजो। जो सांसारिक वृत्ति रूप प्रवाह में न बहकर ब्रह्माकार-वृत्ति की स्थिरता रूप प्रवाह के सामने चलता है, वही सजीवन (जीवन्मुक्त) सन्त है।

सज्जन-दुर्जन

जिनके मस्तक मणि बसे, सो सकल शिरोमणि अंग ।
जिनके मस्तक मणि नहीं, ते विष भरे भुवंग[१] ॥ ५९ ॥

सज्जन, दुर्जन का लक्षण कह रहे हैं—जिन सर्पों के मस्तक में मणि होती है, वे ही उत्तम माने जाते हैं। वैसे ही जिनके मन रूप मस्तक में पराभक्ति-मणि होती है, वे ही उत्तम सज्जन संत कहलाते हैं और जैसे मणि-रहित सर्प[१] केवल विष से ही भरे होते हैं, वैसे ही जो भक्ति-मणि से रहित विषय-वासना विष से भरे हुये हैं, वे ही दुर्जन हैं।

यह साखी ठट्ठा नगर से आई हुई माता को कही थी। प्रसंग कथा—दृ. सु. सि. ११-१३२ में देखो।

साधु महिमा

दादू इस संसार में, ये द्वै रत्न अमोल ।
इक सांई अरु संत जन, इनका मोल न तोल ॥ ६० ॥

६०-६१ में संत महिमा कहते हैं—इस संसार में एक परमात्मा और संत ये दो ही अमूल्य रत्न हैं। इनका मूल्य वा माप नहीं हो सकता।

दादू इस संसार में, ये द्वै रहे लुकाइ ।
राम सनेही संतजन, औ[१] बहुतेरा आइ ॥ ६१ ॥

इस संसार में एक तो हमारे प्यारे-निरंजन राम, दूसरे सच्चे संत, ये दोनों छिपे ही रहते हैं। कारण, ज्ञानहीन संसारी प्राणी निरंजन राम को नहीं जानते और सच्चे संत प्रतिष्ठादि के द्वारा ब्रह्म-चिन्तन में विघ्न के भय से छिपे ही रहते हैं। अन्य[१] साकार राम की मूर्तियों के दर्शन मंदिरों में होते हैं और[१] प्रतिष्ठा प्रिय साधु भी बहुत से भ्रमण करते आते हैं।

साधु परीक्षा लक्षण

जिनके हिरदै हरि बसे, सदा निरंतर नांउँ ।
दादू साँचे साधु की, मैं बलिहारी जांउँ ॥ ६२ ॥

६२-६३ में संत परीक्षा के लक्षण कहते हैं—जिनके हृदय में सदा हरि बसते हैं, निरंतर नाम का चिन्तन रहता है; वे ही सच्चे संत हैं। हम उनकी बलिहारी जाते हैं।

साँचा साधु दयालु घट, साहिब का प्यारा ।
राता माता राम रस, सो प्राण हमारा ॥ ६३ ॥

जिसका अन्त:करण दयालु है, जो परमात्मा का प्यारा है, रामभक्ति-रस में रत्त-मत्त है, वह सच्चा संत हमारा तो मानो प्राण ही है।

सज्जन विपरीत (संसार से)

दादू फिरता चाक कुम्हार का, यों दीसे संसार।
साधू जन निश्चल भये, जिनके राम अधार ॥ ६४ ॥

६४ में संत और संसारियों की गति का भेद कह रहे हैं—संसारी प्राणी विषय-वासना से कुम्हार के चाक के समान संसार में फिरते हैं और जिनके एक मात्र निरंजन राम का ही आश्रय है, उन संत जनों की वृत्ति ब्रह्माकार रहने से, वे ब्रह्म के स्वरूप को प्राप्त करके निश्चल हुये हैं।

सत्संग महिमा

जलती बलती आतमा, साधु सरोवर जाइ ।
दादू पीवे राम रस, सुख में रहै समाइ ॥ ६५ ॥

सत्संग महिमा कहते हैं—क्रोधादि विकारों से दग्ध, त्रिताप से संतप्त जो जीवात्मा संत-सरोवर पर जाकर सत्संग में राम भक्ति-रस का पान करता है, वह परम सुख स्वरूप ब्रह्म में समा कर ब्रह्म से स्थिर रहता है।

कृत्रिम कर्ता

कांजी मांहीं भेल कर, पीवे सब संसार ।
कर्ता केवल निर्मला, को साधू पीवनहार ॥ ६६ ॥

६६ में संसारी प्राणी परमेश्वर का रूप कृत्रिम बना लेते हैं, यह कहते हैं—संसारी प्राणी परमात्मा के स्वरूप में माया-कांजी मिलाकर फिर उनकी भक्ति-रस का पान करते हैं। माया-मल रहित ब्रह्म के स्वरूप को हृदय में अद्वैत रूप से धारण करके तो केवल संतजन ही पराभक्ति-रस का पान करते हैं।

संगति कुसंगति

दादू असाधु मिले अंतर पड़े, भाव भक्ति रस जाइ।
साधु मिले सुख ऊपजे, आनँद अंग न माइ ॥ ६७ ॥

६७-६९ में सुसंगति कुसंगति का फल बता रहे हैं—असंत के मिलने से भगवान् साधन में व्यवधान पड़ता है, भगवद्-विश्वास तथा भक्ति-रस चला जाता है। संत के मिलने से हृदय में ब्रह्म सुख उत्पन्न होता है और परमानन्द शरीर में समाता भी नहीं, संतों की स्तुति आदि के रूप में बाहर उमड़ पड़ता है।

दादू साधू संगति पाइये, राम अमी फल होइ।
संसारी संगति पाइये, विष फल देवे सोइ ॥ ६८ ॥

संतों की संगति प्राप्त होती है तो उसका फल अमृतत्व देने वाला राम का साक्षात्कार होता है और संसारी प्राणियों की संगति प्राप्त होती है तो वह बारंबार मृत्यु देने वाला विषय-वासना रूप फल देती है।

दादू सभा संत की, सुमति उपजे आइ ।
शाकत की सभा बैसतां, ज्ञान काया तैं जाइ ॥ ६९ ॥

संतों की सभा में आकर बैठने से हृदय में सुमति उत्पन्न होती है और दुर्जनों की सभा में बैठने से पूर्व-प्राप्त ज्ञान भी अन्त:करण से चला जाता है।

जग जन विपरीत

दादू सब जग दीसे एकला, सेवक स्वामी दोइ।
जगत दुहागी राम बिन, साधु सुहागी सोइ ॥ ७० ॥

७०-७२ में संसारी जन और भक्त जन की विपरीतता दिखा रहे हैं—सब जगत् के प्राणी भगवान् की भक्ति न करने के कारण भगवत् साक्षात्कार बिना अकेले ही दिखाई देते हैं। सेवा करने के कारण सेवक और स्वामी दोनों साथ रहते हैं। राम-भजन बिना जगत् के प्राणी दुर्भाग्य-युक्त हैं और जन्म-मरण के प्रवाह में बहे जाते हैं। जो भक्ति करने वाला सन्त है, वह भगवान् की समीपता के कारण सौभाग्य-संपन्न है।

दादू साधू जन सुखिया भये, दुनिया को बहु द्वन्द्व ।
दुनी दुखी हम देखतां, साधुन सदा अनन्द ॥ ७१ ॥

सन्त-जन निर्द्वन्द्व होने से सुखी हुये हैं, सांसारिक प्राणियों के काम-क्रोधादिक बहुत द्वन्द्व लगे हुये हैं। अत: हम देखते हैं कि संसारी प्राणी दु:खी हैं और निर्द्वन्द्व होने से सन्तों को आनन्द रहता है।

दादू देखत हम सुखी, सांई के सँग लाग ।
यों सो सुखिया होयगा, जाके पूरे भाग ॥ ७२ ॥

देखो, सबके देखते हुये हम भक्ति-ज्ञानादि द्वारा परमात्मा के संग लगकर आनंद में हैं तथा जिसका भाग्य महान् होगा, वह भी भक्ति ज्ञानादि द्वारा परमात्मा के संग लग कर हमारे समान आनन्द प्राप्त करेगा।

रस

दादू मीठा पीवे राम रस, सो भी मीठा होइ ।
सहजैं कड़वा मिट गया, दादू निर्विष सोइ ॥ ७३ ॥

भक्ति-रस का फल बता रहे हैं—जो साधक मधुर सन्तों के सत्संग में जाकर मधुर राम-रस का पान करता है, वह भी मधुर सन्त हो जाता है। जिनने पूर्व में पान किया है, उनका क्रोधादिक कटुपना सहज ही नष्ट हो गया और वे विषय-वासना-विष से रहित हुये हैं।

साधु परीक्षा लक्षण

दादू अंतर एक अनंत सौं, सदा निरंतर प्रीति ।
जिहिं प्राणी प्रीतम बसे, सो बैठा त्रिभुवन जीति ॥ ७४ ॥

सन्त परीक्षा का लक्षण बता रहे हैं—जो सदा प्रतिक्षण प्रीति पूर्वक अन्तर वृत्ति द्वारा एक अनन्त परमात्मा के चिन्तन में तत्पर रहता है, इस प्रकार साधन करने पर जिसके हृदय में प्रियतम परमात्मा विशेष रूप से निवास करते हैं, वह त्रिभुवन को विजय करके परब्रह्म के स्वरूप में स्थिर हुआ है।

साधु महिमा

दादू मैं दासी तिहिं दास की, जिहिं संग खेले पीव ।
बहुत भाँति कर वारणे, तापर दीजे जीव ॥ ७५ ॥

प्रभु प्राप्त सन्त पर अपनी श्रद्धा प्रकट कर रहे हैं—जो महानुभाव सन्त अपने स्वामी

परमात्मा को प्राप्त करके उसके संग आनन्द लेते हैं, हम उनकी सेविका के समान हैं। हे साधको ! उक्त प्रकार के सन्तों पर अपने प्राण बहुत-भांति से निछावर कर देना चाहिए।

भ्रम विध्वंसन

दादू लीला राजा राम की, खेलैं सब ही सन्त।
आपा पर एकै भया, छूटी सबै भरंत[1] ॥ ७६ ॥

टीलाजी का भ्रम दूर कर रहे हैं—जिनकी सांसारिक भ्रांति[1] नष्ट होकर अपना पराया एक हो गया, उन अद्वैत स्थिति को प्राप्त हुये संतों में राजा राम की शक्ति आ जाती है। उस शक्ति के द्वारा सभी संत ऐसी लीला करते रहते हैं।

टोंक में अनेक शरीर धारण करके सबको एक साथ प्रसाद देने से आश्चर्ययुक्त टीलाजी ने पूछा था-यह कैसे हुआ ? तब यह उत्तर दिया था। प्रसंग कथा दृ. सु. सि. त. १०/५२ देखो।

जग जन विपरीत

दादू आनँद सदा अडोल सौं, राम स्नेही साध।
प्रेमी प्रीतम को मिले, यहु सुख अगम अगाध ॥ ७७ ॥

जगत् से विपरीत परमात्मा की ओर जाने वाले सन्तों के सुख का परिचय दे रहे हैं—राम के प्यारे सन्त सदा निश्चल परमात्मा के चिन्तन में लगे रहने से आनन्द में रहते हैं। संसारी प्राणी विषयों में लगे रहने से दुखी रहते हैं। परमात्मा के प्रेमी सन्त अपने प्रियतम परमात्मा को प्राप्त होते हैं। यह ब्रह्म-प्राप्ति रूप आनन्द अगम अगाध है।

पुरुष प्रकाशी

घर वन मांहीं राखिये, दीपक ज्योति जगाइ।
दादू प्राण पतंग सब, जहँ दीपक तहँ जाइ ॥ ७८ ॥

७८-८२ में ज्ञान दीपक से प्रकाशित हृदय सन्त का परिचय दे रहे हैं—दीपक की ज्योति जगाकर चाहे घर में रक्खो वा वन में, पतंग तो वहां ही चले जायेंगे। वैसे ही ज्ञान-दीपक के प्रकाश से युक्त पुरुष घर में रहो या वन में, जिज्ञासु प्राणी तो सब वहां ही पहुँच जायेंगे।

घर वन मांहीं राखिये, दीपक जलता होइ।
दादू प्राण पतंग सब, जाइ मिलैं सब कोइ ॥ ७९ ॥

ज्ञान-दीपक प्रज्वलित हो जाने पर शरीर को चाहे घर में रक्खो या वन में, जिज्ञासु प्राणी रूपी पतंग तो सब वहां ही पहुँच जायेंगे।

घर वन मांहीं राखिये, दीपक प्रकट प्रकास।
दादू प्राण पतंग सब, आइ मिलैं उस पास ॥ ८० ॥

हृदय में ज्ञान-दीपक का प्रकाश प्रकट हो जाने पर शरीर को घर में रक्खो वा वन में, जिज्ञासु प्राणी रूपी पतंग तो सब अपने आप उस ज्ञानी के पास आकर ब्रह्म-प्रकाश में लय हो जाते हैं।

घर वन मांहीं राखिये, दीपक ज्योति सहेत।
दादू प्राण पतंग सब, आइ मिलैं उस हेत ॥ ८१ ॥

ज्ञान-दीपक की ज्योति सहित शरीर को घर में रखो वा वन में, जिज्ञासु प्राणी-पतंग तो सब उस ज्योति के लिए वहां ही आकर ब्रह्म प्रकाश में मिल जायेंगे।

जिहिं घट प्रकट राम है, सो घट तज्या न जाइ ।
नैनहुँ मांहीं राखिये, दादू आप नशाइ ॥ ८२ ॥

जिस शरीर के अन्त:करण में राम का ज्ञान-प्रकाश प्रकट रूप से है, ऐसे संत के शरीर की सेवा हम से त्यागी नहीं जाती। ऐसे ज्ञानी सन्त को नेत्रों के आगे रखते हुये अपना सांसारिक अहंकार हटाकर सदा उसका सत्संग करना चाहिए।

साधु अबिहड़

कबहुँ न बिहड़े सो भला, साधू दिढ़ मति होइ।
दादू हीरा एक रस, बाँध गांठड़ी सोइ ॥ ८३ ॥

साधक वा संत की श्रेष्ठता बता रहे हैं—जो ज्ञानी संत में दृढ़ बुद्धि से श्रद्धा करके सत्संग करे और उनका जो एकरस ज्ञानरूप हीरा है, उसे अन्त:करण रूप गठरी में बाँध कर कभी भी न त्यागे, वही साधक श्रेष्ठ है वा जो सन्त दृढ़ मति होकर, एकरस ब्रह्म रूप हीरा को ब्रह्माकार, वृत्ति रूप गठरी में बाँध कर कभी भी न त्यागे, वही ज्ञानी संत श्रेष्ठ है।

साधु परीक्षा लक्षण

गरथ[1] न बाँधे गांठड़ी, नहीं नारी सौं नेह।
मन इन्द्री सुस्थिर करे, छाड़ सकल गुण देह ॥ ८४ ॥

८४-९१ में संतों की परीक्षा के लक्षण कहते हैं—जो धन[1] का संग्रह नहीं करते, नारी से कामुक दृष्टि द्वारा प्रेम नहीं करते और स्थूल-सूक्ष्म शरीर के संपूर्ण दोष रूप गुणों को त्याग कर मन इन्द्रियों को परमात्मा के स्वरूप में स्थिर करते हैं, वे ही सच्चे संत हैं।

निराकार सौं मिल रहै, अखंड भक्ति कर लेह।
दादू क्यों कर पाइये, उन चरणों की खेह ॥ ८५ ॥

जो अंखड भक्ति द्वारा निराकार ब्रह्म से मिलकर अपने को अखंड बना लेते हैं, वे ही संत हैं। उन संतों के चरणों की रज सहज में कैसे प्राप्त हो सकती है ?

साधु सदा संयम रहै, मैला कदे न होइ ।
दादू पंक परसै नहीं, कर्म न लागे कोइ ॥ ८६ ॥

संत सदा संयम से रहता है, उसका अन्त:करण कभी भी मैला नहीं होता। कारण, वह किसी भी निषिद्ध कर्म में नहीं लगता, इसीलिए उसे पाप रूप कीचड़ स्पर्श नहीं करता।

साधु सदा संयम रहै, मैला कदे न होइ ।
शून्य सरोवर हंसला, दादू विरला कोइ ॥ ८७ ॥

सन्त सदा संयम से रहता है, उसका अन्त:करण अविद्या-मल से मैला कभी नहीं होता; किन्तु ब्रह्म-सरोवर पर रहने वाला ऐसा जीवन्मुक्त संत-हंस कोई विरला ही मिलता है।

साहिब का उनहार सब, सेवक मांहीं होइ ।
दादू सेवक साधु सो, दूजा नाहीं कोइ ॥ ८८ ॥

परमात्मा के समान ही भक्त में दिव्य गुण होते हैं। अत: वह परमात्मा ही श्रेष्ठ भक्त के रूप में अवतरित होता है। इस कारण कोई भी श्रेष्ठ भक्त परमात्मा से भिन्न नहीं होता।

जब लग नैन न देखिये, साधु कहैं ते अंग ।
तब लग क्यों कर मानिये, साहिब का प्रसंग ॥ ८९ ॥

संतजन ब्रह्म साक्षात्कार होने पर जो निर्द्वन्द्वता, समतादि लक्षण आते बताते हैं, जब तक वे लक्षण विचार-नेत्रों से जिस व्यक्ति में नहीं दिखाई देते, तब तक उस व्यक्ति की यह बात कि—''मुझे ब्रह्म का साक्षात्कार हो गया है'' कैसे मानी जा सकती है ?

दादू सो जन साधू सिद्ध सो, सोइ सकल शिरमौर।
जिहिं के हिरदै हरि बसे, दूजा नाहीं और ॥ ९० ॥

जिसके हृदय में हरि का विशेष रूप से निवास है, वही संत है, वही सिद्ध है और वही सर्व-श्रेष्ठ है। दूसरा और कोई भी संत, सिद्ध और सर्वश्रेष्ठ नहीं हो सकता।

दादू अवगुण छाड़ै गुण गहै, सोई शिरोमणि साध ।
गुण अवगुण तैं रहित है, सो निज ब्रह्म अगाध ॥ ९१ ॥

जो अपने हृदय के काम-क्रोधादिक अवगुणों को त्यागे और दूसरों के अवगुण देखना त्यागे तथा क्षमादि दैवी गुणों को धारण करे और दूसरों के गुण ही देखे, वही शिरोमणि संत माना जाता है और जो गुण-अवगुण से रहित है, वह तो सबका निज-स्वरूप अगाध ब्रह्म रूप ही होता है।

जग जन विपरीत

दादू सैन्धव फटिक पषाण[1] का, ऊपरि एकै रंग ।
पानी मांहीं देखिये, न्यारा न्यारा अंग ॥ ९२ ॥

९२-९४ में जगत् के पाखंडी जन और सन्त जन की विपरीतता बता रहे हैं—सैंधव नमक का और श्वेत बिल्लौर पत्थर[1] का ऊपर से तो एक-सा ही रंग दिखाई देता है, किन्तु जल में डालकर देखो तो उनका स्वरूप भिन्न-भिन्न प्रतीत होता है। सैंधव पानी में घुल जायगा, किन्तु पत्थर नहीं। वैसे ही सन्त और पाखंडी जनों का ऊपर से भेष तो एक सा ही भासता है किन्तु साधना की परिपाकावस्था में अपने आप ही भेद खुल जाता है, वही आगे दिखा रहे हैं।

दादू सैंधव के आपा नहीं, नीर खीर परसंग ।
आपा फटिक पषाण के, मिले न जल के संग ॥ ९३ ॥

सैंधव में कठोरता न होने से वह जल में दुग्ध के समान मिल जाता है। श्वेत पत्थर में कठोरता होने से वह जल में नहीं मिलता। वैसे ही सच्चे संत में जीवत्व अहंकार न होने से वह ब्रह्म में लय हो जाता है। दंभी में जीवत्व अहंकार होने से वह ब्रह्म में लय नहीं हो पाता।

दादू सब जग फटिक पषाण है, साधू सैन्धव होइ ।
सैन्धव एकै ह्वै रह्या, पानी पत्थर दोइ ॥ ९४ ॥

संपूर्ण जगत के दंभी-जन श्वेत पत्थर के समान हैं और संत सैन्धव के समान हैं। संत-सैन्धव ब्रह्म-जल में मिल कर अद्वैत भाव से रहता है और दंभी-पत्थर ब्रह्म-जल से भिन्न द्वैत भाव से रहता है।

साधु परमार्थी

को साधु जन उस देश का, आया इहिँ संसार ।
दादू उसको पूछिये, प्रीतम के समचार ॥ ९५ ॥

९५-९८ में संत परमार्थी होते हैं, यह कह रहे हैं—जिसमें परब्रह्म का साक्षात्कार होता है, उस निर्विकल्प समाधि देश का यदि कोई संत लोक-कल्याणार्थ इस संसार दशा में उतर कर उपदेश करता हो तो उसको अपने प्रियतम परब्रह्म की प्राप्ति के साधन रूप समाचार पूछना चाहिए, क्योंकि उसे पूरा अनुभव है। सांसारिक विषय नहीं।

समाचार सत पीव के, को साधू कहेगा आइ ।
दादू शीतल आतमा, सुख में रहै समाइ ॥ ९६ ॥

परब्रह्म-प्राप्ति के सच्चे साधन रूप समाचारों का उपदेश, परब्रह्म को प्राप्त कोई विरला ही सन्त आकर करेगा। उसके उपदेश द्वारा विषमता रूप जलन मिट कर बुद्धि को समता रूप शीतलता प्राप्त होगी और वह मनन-निदिध्यासन द्वारा ब्रह्मानन्द में लीन रहेगी।

साधु शब्द सुख बरषि हैं, शीतल होइ शरीर ।
दादू अंतर आतमा, पीवे हरि जल नीर ॥ ९७ ॥

संत अपने शब्दों द्वारा आनन्द की वर्षा करते हैं जिससे ईर्ष्यादि रूप जलन मिट कर अन्त:करण समता रूप शीतलता को प्राप्त होता है और जैसे तालाब का जल नदी के जल को पान करता है, वैसे ही अन्तर-साक्षी आत्मा रूप नीर ब्रह्म-साक्षात्कार रूप जल को पान करता है=ब्रह्म से अभेद हो जाता है।

दादू दत[1] दरबार का, को साधू बाँटे आइ ।
तहाँ रामरस पाइये, जहँ साधू तहँ जाइ ॥ ९८ ॥

कोई विरले उत्तम संत ही आकर सत्संग-सभा में भगवद् प्राप्ति का हेतु उपदेश रूप दान[1] वितरण करते हैं। अत: जहां सन्त हो, वहां ही साधक जाय, क्योंकि वहां ही राम-भक्ति-रस का उपदेश प्राप्त होता है।

चौप चर्चा

दादू श्रोता स्नेही राम का, सो मुझ मिलवहु आणि[1] ।
तिस आगे हरिगुण कथूं, सुनत न करई काणि[2] ॥ ९९ ॥

भगवत्-कथा कहने की उत्कंठा दिखा रहे हैं—हे परमेश्वर ! हमें वह श्रोता आकर[1] मिले जो आपका स्नेही हो और सत्संग में आकर श्रवण करते समय लोक-लज्जादि[2] न करके प्रेम पूर्वक मनन द्वारा धारण करे। हम उसके आगे हरिगुण कथन करेंगे।

साधु परमार्थी

सब ही मृतक समान हैं, जीया तब ही जाणि ।
दादू छांटा अमी का, को साधू बाहै आणि ॥ १०० ॥

१००-१०४ में साधु परमार्थी होते हैं यह कहते हैं—हरि-विमुख सभी प्राणी बारंबार मरने के कारण मृतक समान ही हैं। यदि कोई ज्ञानी सन्त भाग्यवश आकर ज्ञानामृत की उपदेश रूप विंदु जिस पर डालता है और वह उसे धारण करके ब्रह्म को अभेद रूप से प्राप्त कर लेता है, तब ही उसे जीवित जानो।

सब ही मृतक ह्वै रहे, जीवैं कौन उपाइ ।
दादू अमृत रामरस, को साधू सींचे आइ ॥ १०१ ॥

सभी संसारी प्राणी मृतक तुल्य हो रहे हैं, वे किस उपाय से जीवित हो सकते हैं ? हां, एक उपाय है, यदि कोई परमार्थी सन्त आकर उन पर राम-रस रूप अमृत का छिड़काव करे तो वे जीवित हो सकते हैं।

सब ही मृतक देखिये, क्यों कर जीवैं सोइ ।
दादू साधू प्रेमरस, आणि पिलावे कोइ ॥ १०२ ॥

सभी संसारी प्राणी हरि-भक्ति से हीन होने से भीतर से मृतक तुल्य ही हैं। वे किस प्रकार जीवित हो सकते हैं ? हाँ, यदि कोई परमार्थी सन्त आकर भगवत् प्रेमा-भक्तिरस पान करावे तो जीवित हो सकते हैं।

सब ही मृतक देखिये, किहिं विधि जीवैं जीव ।
साधु सुधारस आन कर, दादू बर्षे पीव ॥ १०३ ॥

सभी संसारी प्राणी आत्मज्ञान न होने से मृतकवत् ही देखे जाते हैं। ये जीव किस प्रकार जीवित हो सकते हैं ? हां, यदि परमात्मा, परमार्थी सन्त-बादल को यहां ही लाकर ब्रह्म-ज्ञान-सुधा-रस की वृष्टि करावे, तो जीवित हो सकते हैं।

हरिजल बर्षे बाहिरा[1], सूखे काया खेत ।
दादू हरिया होइगा, सींचनहार सुचेत ॥ १०४ ॥

संत-बादल से हरि-भक्तिप्रद उपदेश रूप जल की वर्षा हो किन्तु श्रोता यदि बहिर्मुखी हो तो उसकी काया-भूमि का अन्त:करण खेत सूखेगा व उपदेश धारण न करने से काम-क्रोधादि के झंझावात[१] द्वारा विनष्ट होगा। यदि अन्त:करण खेत को सींचने वाला जिज्ञासु भली प्रकार सावधान होगा तो श्रुति द्वारा उपदेश-जल को अन्त:करण खेत में ले जायेगा और उससे भक्ति ज्ञानादि की उत्पत्ति द्वारा अन्त:करण-खेत ब्रह्मानन्द रूप हरियाली को प्राप्त होगा।

कुसंगति

गंगा यमुना सरस्वती, मिलैं जब सागर मांहिं ।
खारा पानी ह्वै गया, दादू मीठा नांहिं ॥ १०५ ॥

१०५-११० में कुसंगति के त्याग की प्रेरणा कर रहे हैं—गंगा, यमुना, सरस्वती आदि नदियां जब क्षार-समुद्र में मिलती हैं, तब उनका मधुर जल, मधुर न रहकर खारा हो जाता है। वैसे ही कुसंग से अच्छा अन्त:करण भी बुरा बन जाता है। अत: कुसंगति को त्यागो।

दादू राम न छाड़िये, गहिला तज संसार ।
साधू संगति शोध ले, कुसंगति संग निवार ॥ १०६ ॥

हे बावरे प्राणी ! सांसारिक प्रीति को त्याग दे किन्तु राम-नाम चिन्तन को कभी मत त्याग। कुसंगति और साधारण मनुष्यों के संग को त्याग कर संतों की संगति द्वारा अपने स्वरूप की खोज कर।

दादू कुसंगति सब परिहरै, मात पिता कुल कोइ ।
सजन स्नेही बान्धवा, भावै आपा होइ ॥ १०७ ॥

माता, पिता, बान्धव, कुल, जाति, प्रेम, मित्रादिक का संग यदि बुरा हो तो त्याग देना चाहिए और चाहे अपने ही क्रोधादिक अवगुण हों, उन सबको को भी त्याग देना चाहिए।

अज्ञान मूर्ख हितकारी, सज्जनः समो रिपु: ।
ज्ञात्वा त्यजंति ते, निरामयी मनोजित: ॥ १०८ ॥

आत्म-ज्ञान तथा व्यावहारिक ज्ञान से शून्य मूर्ख यदि शुभ-चिन्तक मित्र भी हो तो भी उसको शत्रु के समान जान कर त्यागते हैं, वे ही मन को जीत कर जन्म-मरण-रोग से मुक्त होते हैं।

कुसंगति केते गये, तिनका नांव न ठांव ।
दादू ते क्यों उद्धरैं, साधु नहीं जिस गांव ॥ १०९ ॥

कुसंगति के द्वारा कितने ही प्राणी नष्ट हो गये हैं, उनका संसार में न नाम रहा है और न स्थान ही रहा है। जिस ग्राम में संत नहीं रहते, उस ग्राम के लोगों का उद्धार कैसे हो सकता है ?

भाव भक्ति का भंग कर, बटपारे[१] मारहिं बाट[२] ।
दादू द्वारा मुक्ति का, खोले जड़ैं कपाट ॥ ११० ॥

जो लोग भाव-भक्ति के द्वारा मुक्ति-धाम-द्वार के कपाट खोलते हैं और उसमें प्रवेश करने

के लिए आगे बढ़ते हैं, तब दुर्जन और दुर्गण रूप लुटेरे[१] मार्ग[२] में ही विषयों में प्रवृत्त करना रूप मारपीट द्वारा उनके भाव-भक्ति को छीन कर, मुक्ति-धाम-द्वार के कपाट बन्द कर देते हैं।

सत्संग महिमा

साधु सँगति अंतर पड़े, तो भागेगा किस ठौर ।
प्रेम भक्ति भावे नहीं, यहु मन का मत और ॥ १११ ॥

१११-११२ में किसी साधक को सत्संग का माहात्म्य कह रहे हैं—हे साधक ! यदि संत-संगति से तू उपराम (अन्तराम) करने लगेगा, तो इस सांसारिक कष्ट निवारण के लिए संत-संगति से भाग कर किस स्थान में जायगा ? सत्संगति के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है। यदि तुझे भगवान् की प्रेमाभक्ति अच्छी नहीं लगती तो तेरे मन का यह सिद्धान्त परमार्थ-पथ से भिन्न ही है।

दादू राम मिलन के कारणैं, जे तूं खरा उदास ।
साधू संगति शोध ले, राम उन्हों के पास ॥ ११२ ॥

हे साधक ! यदि तू राम के साक्षात्कारार्थ सच्चा आतुर है तो सन्तों की संगति द्वारा राम की खोज कर। कारण, राम विशेष रूप से सन्तों के पास ही रहते हैं।

पुरुष प्रकाशी (संत महिमा)

ब्रह्मा, शंकर, शेष, मुनि, नारद, ध्रुव, शुकदेव ।
सकल साधु दादू सही, जे लागें हरि सेव ॥ ११३ ॥

११३-११४ में ज्ञान-प्रकाश युक्त संतों की महिमा कह रहे हैं—ब्रह्मा, शंकर, शेष, वशिष्ठादि मुनि, नारदादि देवर्षि, ध्रुवादि राजर्षि, शुकदेवादि विरक्त, जो भी भगवद् भक्ति में लगे हुये ज्ञानी सन्त हैं, वे सब ही सच्चे संत हैं और उनकी महिमा संसार में प्रकट है।

साधु कमल हरि बासना, सत भ्रमर संग आइ।
दादू परिमल ले चले, मिले राम को जाइ ॥ ११४ ॥

संसार-सरोवर में ज्ञानी सन्त कमल रूप हैं। ब्रह्म का अपरोक्ष ज्ञान ही उनमें सुगंध है। साधक सन्त-भ्रमर उनके सत्संग में आकर, ब्रह्म का मूल तत्त्व-ज्ञान रूप परागण लेकर, देहाध्यासादि रहित आगे चल पड़ते हैं और निर्विकल्प अवस्था में जाकर अभेद रूप से राम में मिल जाते हैं।

साधु सज्जन

दादू सहजैं मेला होइगा, हम तुम हरि के दास ।
अंतरगति तो मिल रहे, पुन: प्रकट परकास ॥ ११५ ॥

सभी सन्त एकात्मभाव से मिले ही रहते हैं, यह कहते हैं—हम और तुम हरि के भक्त हैं, अत: अन्त में तो हरि के स्वरूप में अपना एकता रूप मिलन सहज ही होने वाला है और अब भी बुद्धि की विचार रूप गति एक होने से वा साक्षी रूप से भीतर से तो मिल ही रहे हैं, फिर कभी प्रकट रूप से शरीरों द्वारा मिल कर भी अपने हृदय के भावों को प्रकाशित करेंगे।

प्रसंग कथा—सन्त प्रवर दादूजी महाराज आँधी ग्राम में आये हुये हैं, यह जान कर दौसा की टहलड़ी पहाड़ी पर साधना कर रहे उनके शिष्य जगजीवन जी ने गुरुजी के दर्शन की इच्छा की, तब उनके संतोषार्थ दादूजी ने यह साखी लिख भेजी थी।

साधु महिमा

दादू मम शिर मोटे भाग, साधों का दर्शन किया।
कहा करे जम काल, राम रसायन भर पिया ॥ ११६ ॥

सन्त-महिमा कह रहे हैं—आज बड़े भाग्य से ही हमने सन्तों का दर्शन किया है। जिनने संतों के सत्संग में राम-भक्ति-रसायन रुचि भर पान किया है, उनका नरक के अधिदेव यम और काल क्या कर सकते हैं ? यही साखी नारायणा ग्राम में प्राचीन संतों के दर्शन करके कही थी। प्रसंग कथा दृ. सु. सि. त. ११—२६३ में देखो।

साधु सामर्थ्य

दादू एता अविगत आप तैं, साधों का अधिकार ।
चौरासी लख जीव का, तन मन फेरि सँवार ॥ ११७ ॥

११७-१२१ में सन्तों की सामर्थ्य बता रहे हैं—मन-वाणी के अविषय परमात्मा ने अपने आप प्रसन्नता से ही संसार के संतों को इतना अधिकार दे रक्खा है कि वे चौरासी लाख योनियों के जीवों के बिगड़े हुये तन-मन को पुन: सुधार देते हैं।

विष का अमृत कर लिया, पावक का पाणी ।
बाँका सूधा कर लिया, सो साधु बिनाणी[1] ॥ ११८ ॥

जो पहले अन्त:करण की वृत्ति विषयाकार होने से विष रूप थी, उसे ब्रह्माकार करके जिसने अमृत कर लिया, क्रोधाग्नि को क्षमा रूप जल बना लिया, भगवत् से विमुख चलने वाले मन को विचार द्वारा सरल करके भगवान् के सम्मुख कर लिया, वही विज्ञानी[1] सन्त है।

दादू ऊरा[1] पूरा कर लिया, खारा मीठा होइ।
फूटा सारा कर लिया, साधु विवेकी सोइ ॥ ११९ ॥

दैवी गुणों की संख्या जो कम[1] थीं उसे दैवी गुणों की वृद्धि से परिपूर्ण किया, विषय-वासना रूप खारेपन को हटा कर मधुर भक्ति-रस से अन्त:करण को मधुर बनाया, आशा रूप छिद्र के वैराग्य रूप लाख लगा कर अन्त:करण-घट को ब्रह्मज्ञान-रस रहने योग्य बनाया, वही विवेकी सन्त है।

बंध्या मुक्ता कर लिया, उरझ्या सुरझ समान।
बैरी मिंता कर लिया, दादू उत्तम ज्ञान ॥ १२० ॥

काम-क्रोधादि शत्रुओं को आत्म-संयम द्वारा शान्त मित्र बना दिया वा आसुर गुण-शत्रुओं को दैवी गुणों में बदल दिया, मोह-ममता से आबद्ध मन को वैराग्य द्वारा खोल दिया और अज्ञान सांसारिक जाल में उलझे जीव को ज्ञान द्वारा सुलझा कर ब्रह्म समान बना दिया, वही उत्तम ज्ञान युक्त सन्त है।

झूठा साचा कर लिया, काचा कंचन सार ।
मैला निर्मल कर लिया, दादू ज्ञान विचार ॥ १२१ ॥

जिसने मिथ्यावादियों को सत्यवादी बना लिया, साधन में कच्चों को सुवर्ण-सार के समान पक्का और सुन्दर बना लिया, अविद्या-मल को ज्ञान द्वारा नष्ट करके निर्मल ब्रह्म रूप बना लिया, उसी सन्त का ज्ञान विचारने योग्य है और वही श्रेष्ठ सन्त है।

अमिट पाप

काया कर्म लगाइ कर, तीरथ धोवे आइ ।
तीरथ मांहीं कीजिये, सो कैसे कर जाइ ॥ १२२ ॥

१२२-१२३ में कहते हैं—पवित्र होने के स्थान पर पाप करने से वह पाप अमिट हो जाता है-संसारी प्राणी कुकर्मों द्वारा अन्त:करण के पाप लगाते हैं और तीर्थों में आकर उसे धोते हैं किन्तु तीर्थों में जो पाप किया जाता है, वह किस प्रकार जायगा ? वह तो अमिट हो जाता है।

जहँ तिरिये तहँ डूबिये, मन में मैला होइ ।
जहँ छूटे तहँ बंधिये, कपट न सीझे कोइ ॥ १२३ ॥

जिस मनुष्य शरीर में आकर भवसागर को पार किया जाता है, उस मनुष्य शरीर को पाकर भी यदि मन में अविद्या-मल रहेगा तो डूबेगा ही । जिन सन्तों के सत्संग में मुक्ति प्राप्त होती है, उसमें जाकर भी यदि मन में विषय-चिन्तन ही रहा तो उल्टा बन्धन में ही पड़ेगा। क्योंकि, कपट से कोई भी ब्रह्म प्राप्ति रूप सिद्धावस्था को प्राप्त नहीं होता।

सत्संग महिमा

दादू जब लग जीविये, सुमिरण संगति साध।
दादू साधू राम बिन, दूजा सब अपराध ॥ १२४ ॥

इति साध का अंग समाप्त: ॥ १५ ॥ सा. १६५७ ॥

सन्त-महिमा पूर्वक सत्संग करने की प्रेरणा कर रहे हैं—संसार में जब तक जीवित रहें तब तक राम-नाम का स्मरण और सन्तों की संगति करते ही रहना चाहिए। क्योंकि राम-भजन और सन्त-संगति से अन्य जो भी कार्य हैं, वे पाप मिश्रित होने से पाप रूप हैं।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका साधु का अंग समाप्त ॥ १५ ॥

अथ मध्य का अंग १६

साधु-अंग के अनंतर संतों की पक्ष-विपक्ष से रहित मध्य स्थिति का वर्णन करने के लिए, 'मध्य का अंग' कथन में प्रवृत्त मंगल कर रहे हैं—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत: ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक पक्ष-विपक्ष से पार होकर मध्य मार्ग द्वारा ब्रह्म को प्राप्त करते हैं, उन निरंजन राम, सद्गुरु और संतों को हम अनेक प्रणाम करते हैं।

झूठा साचा कर लिया, काचा कंचन सार ।
मैला निर्मल कर लिया, दादू ज्ञान विचार ॥ १२१ ॥

जिसने मिथ्यावादियों को सत्यवादी बना लिया, साधन में कच्चों को सुवर्ण-सार के समान पक्का और सुन्दर बना लिया, अविद्या-मल को ज्ञान द्वारा नष्ट करके निर्मल ब्रह्म रूप बना लिया, उसी सन्त का ज्ञान विचारने योग्य है और वही श्रेष्ठ सन्त है।

अमिट पाप

काया कर्म लगाइ कर, तीरथ धोवे आइ ।
तीरथ मांहीं कीजिये, सो कैसे कर जाइ ॥ १२२ ॥

१२२-१२३ में कहते हैं—पवित्र होने के स्थान पर पाप करने से वह पाप अमिट हो जाता है-संसारी प्राणी कुकर्मों द्वारा अन्त:करण के पाप लगाते हैं और तीर्थों में आकर उसे धोते हैं किन्तु तीर्थों में जो पाप किया जाता है, वह किस प्रकार जायगा ? वह तो अमिट हो जाता है।

जहँ तिरिये तहँ डूबिये, मन में मैला होइ ।
जहँ छूटे तहँ बंधिये, कपट न सीझे कोइ ॥ १२३ ॥

जिस मनुष्य शरीर में आकर भवसागर को पार किया जाता है, उस मनुष्य शरीर को पाकर भी यदि मन में अविद्या-मल रहेगा तो डूबेगा ही । जिन सन्तों के सत्संग में मुक्ति प्राप्त होती है, उसमें जाकर भी यदि मन में विषय-चिन्तन ही रहा तो उल्टा बन्धन में ही पड़ेगा। क्योंकि, कपट से कोई भी ब्रह्म प्राप्ति रूप सिद्धावस्था को प्राप्त नहीं होता।

सत्संग महिमा

दादू जब लग जीविये, सुमिरण संगति साध।
दादू साधू राम बिन, दूजा सब अपराध ॥ १२४ ॥

इति साध का अंग समाप्त: ॥ १५ ॥ सा. १६५७ ॥

सन्त-महिमा पूर्वक सत्संग करने की प्रेरणा कर रहे हैं—संसार में जब तक जीवित रहें तब तक राम-नाम का स्मरण और सन्तों की संगति करते ही रहना चाहिए। क्योंकि राम-भजन और सन्त-संगति से अन्य जो भी कार्य हैं, वे पाप मिश्रित होने से पाप रूप हैं।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका साधु का अंग समाप्त ॥ १५ ॥

अथ मध्य का अंग १६

साधु-अंग के अनंतर संतों की पक्ष-विपक्ष से रहित मध्य स्थिति का वर्णन करने के लिए, 'मध्य का अंग' कथन में प्रवृत्त मंगल कर रहे हैं—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत: ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक पक्ष-विपक्ष से पार होकर मध्य मार्ग द्वारा ब्रह्म को प्राप्त करते हैं, उन निरंजन राम, सद्गुरु और संतों को हम अनेक प्रणाम करते हैं।

दादू द्वै पख रहिता सहज सो, सुख दुख एक समान ।
मरे न जीवे सहज सो, पूरा पद निर्वान ॥ २ ॥

२-६ में मध्य-मार्ग के साधक की विशेषता तथा उसकी सेवा करने की प्रेरणा कर रहे हैं—जिसकी विचार दृष्टि में सांसारिक सुख-दु:ख एक समान हैं, वह अनायास ही सम्प्रदायादि द्वैत-भाव के पक्ष-विपक्ष से रहित होता है और वही सन्त जन्म-मरण से रहित सहज-स्वरूप निर्वाण-पद को प्राप्त होता है।

सुख दुख मन माने नहीं, राम रंग राता ।
दादू दोन्यों छाड़ सब, प्रेम रस माता ॥ ३ ॥

जो सन्त राम-रंग में रत होने के कारण सुख-दु:ख होने पर भी मन में नहीं मानता और द्वैत भाव जन्य पक्ष-विपक्ष दोनों भावनाओं से होने वाले सभी विचारों को छोड़कर प्रेमाभक्ति-रस में मस्त है, वही मध्य मार्ग का साधक है।

मति मोटी उस साधु की, द्वै पख रहित समान।
दादू आपा मेट कर, सेवा करे सुजान ॥ ४ ॥

जो बुद्धिमान् सन्त द्वैत भाव से उत्पन्न अपने-पराये सम्प्रदाय के पक्ष-विपक्ष से रहित अहंकार को हटाकर सबकी सेवा करते हुये भगवद् भक्ति करता है, उस मध्य मार्ग में स्थित सन्त का ज्ञान महान् है।

कछु न कहावे आपको, काहू संग न जाइ ।
दादू निर्पख ह्वै रहे, साहिब सौं ल्यौ लाइ ॥ ५ ॥

जो अपने को योगी, ज्ञानी आदि कहलाने का प्रयत्न नहीं करता और किसी के संग लगकर राग-द्वेषादि द्वन्द्वों में नहीं पड़ता, पक्ष-विपक्ष से रहित होकर सदा परब्रह्म में अपनी वृत्ति लगाये रहता है, वही मध्य-मार्ग में स्थित सन्त है।

सुख दुख मन माने नहीं, आपा पर सम भाइ ।
सो मन मन कर सेविये, सब पूरण ल्यौ लाइ ॥ ६ ॥

जो सुख-दु:ख होने पर भी मन में नहीं मानता, अपने पराये सबको सम भाव से देखता है और संपूर्ण विश्व में व्यापक ब्रह्म में ही अपने मन की वृत्ति निरंतर लगाये रहता है, वही मध्यमार्ग में स्थित मन वाला सन्त है। उसकी सेवा मन से करनी चाहिए।

ना हम छाड़ै ना गहैं, ऐसा ज्ञान विचार ।
मध्य भाव सेवैं सदा, दादू मुक्ति द्वार ॥ ७ ॥

७-८ में मध्यमार्ग के सन्त की स्थिति बता रहे हैं—हम न कुछ त्यागते और न ग्रहण करते, ऐसे जिनके ज्ञान के विचार हैं और पक्ष-विपक्ष से रहित मध्य-भाव से सदा भगवद्-भक्ति करते हैं, वे ही मुक्ति-धाम के द्वार पर स्थित हैं।

आपा[२] मेटे मृत्तिका[१], आपा[३] धरे अकास ।
दादू जहँ जहँ द्वै नहीं, मध्य निरंतर वास ॥ ८ ॥

पृथ्वी[१] आदि भूतों से रचित मरण-धर्मा स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर के दुर्बल, गौर, सुखी, दु:खी आदि अहंकार[२] को त्याग कर, मैं उसी ब्रह्म का स्वरूप हूँ , इस प्रकार अपना अहंकार[३] परब्रह्म-आकाश में स्थापन करे और जिस-जिस भावना में पक्ष-विपक्ष रूपादि द्वैत न हो, उसी मध्य मार्ग की भावना में सदा रहे, वही मध्य-मार्ग का सन्त है।

ध्येय-परम स्थान निरूपण

दादू इस आकार तैं, दूजा सूक्षम लोक ।
तातैं आगैं और है, तहँवाँ हर्ष न शोक ॥ ९ ॥

९-१६ में ध्येय ब्रह्म संबंधी विचार कर रहे हैं—इस स्थूलाकार अन्नमय कोश से आगे प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय कोशरूप सूक्ष्म-लोक हैं और आगे आनन्दमय कोश है। उससे आगे साक्षी रूप ब्रह्म है, उसमें हर्ष-शोकादि द्वन्द्व नहीं है।

दादू हद्द छाड़ बेहद्द में, निर्भय निर्पख होइ ।
लाग रहै उस एक सौं, जहां न दूजा कोइ ॥ १० ॥

१०-११ में ध्येय स्वरूप में वृत्ति लगाने की प्रेरणा कर रहे हैं—संप्रदायादि की पक्षरूप हद्द छोड़, निर्पक्ष होकर तथा घंटा, दो घंटा साधन करने की हद्द को छोड़कर जिसमें किसी भी प्रकार का द्वैत भाव नहीं है, उस एक अद्वैत ब्रह्म के चिन्तन में निरंतर वृत्ति लगाये रहना चाहिए।

निराधार घर कीजिये, जहँ नाहीं धरणि अकास ।
दादू निश्चल मन रहै, निर्गुण के विश्वास ॥ ११ ॥

जहां पृथ्वी और आकाश आधार रूप से नहीं रहते, उस निराधार परब्रह्म को ही अपना आश्रय रूप घर बना कर, उसी का चिन्तन करो, कारण, निर्गुण ब्रह्म के दृढ़ विश्वास से ही मन निश्चल रहता है।

अधर चाल कबीर की, आसंघी[१] नहिं जाइ ।
दादू डाके मिरग ज्यों, उलट पड़े भुइ आइ ॥ १२ ॥

१२-१३ में अपने को कबीर के समान बताने वाले एक साधु को कह रहे हैं—भाई ! कबीर की साधना रूप गति, माया रहित अधर ब्रह्म में थी। वह साधन पद्धति सर्वसाधारण से नहीं अपनाई[१] जाती। पक्षी के समान आकाश में मृग उछलता तो है, किन्तु पुन: पृथ्वी पर ही आ पड़ता है। वैसे ही कोई कबीर की चाल पकड़ता है तो भी पुन: गिर जाता है, उस स्थिति में रहना कठिन है।

दादू रहणि[१] कबीर की, कठिन विषम यहु चाल[२] ।
अधर[३] एक सौं मिल रह्या, जहां न झंपे काल ॥ १३ ॥

कबीर जैसी निष्ठा[१] कठिन है और उसकी यह निर्गुण साधना[२] भी अति कठिन है। अपनी साधना और निष्ठा द्वारा, जहां काल झपट नहीं मार सकता, उस अद्वैत ब्रह्म[३] में ही मिल कर वह रह रहा है।

निराधार निज भक्ति कर, निराधार निज सार ।
निराधार निज नाम ले, निराधार निराकार ॥ १४ ॥

१४-१६ में निर्गुण ब्रह्म की उपासना का फल कहते हैं—जो विश्व का सार अपना निज-स्वरूप निराधार ब्रह्म है, अपने मन को मायिक आधारों से रहित करके उसी की भक्ति करो। जो निराधार ब्रह्म के गुण, कर्म, स्वभावादि जन्य नामों से रहित ॐ, सत्यराम आदि नामों का चिन्तन करता है, वह निराधार निराकार ब्रह्म को ही प्राप्त होता है।

निराधार निज रामरस, को साधू पीवनहार ।
निराधार निर्मल रहै, दादू ज्ञान विचार ॥ १५ ॥

मायिक आधारों से रहित होकर निज स्वरूप राम का चिंतन-रसपान करने वाले कोई विरले ही सन्त होते हैं और वे ब्रह्म ज्ञान के विचार द्वारा निराधार निर्मल ब्रह्म रूप होकर ही रहते हैं।

जब निराधार मन रह गया, आतम के आनन्द ।
दादू पीवे रामरस, भेटै परमानन्द ॥ १६ ॥

जब मन मायिक विषयों के आश्रय से रहित, आत्म-सुख में स्थिर रहने लगता है तब साधक राम-भक्ति-रस पान करके ज्ञान द्वारा परमानन्द को प्राप्त होता है।

माया

दुहुँ बिच राम अकेला आपै, आवण जाण न देई ।
जहँ के तहँ सब राखे दादू, पार पहुँचे सेई ॥ १७ ॥

१७ में कहते हैं—सन्त को राम ही मध्य-मार्ग में रखते हैं-मायिक प्रपंच और संत के बीच में स्वयं अद्वैत राम रहते हैं। मायिक प्रपंच को सन्त के अन्त:करण में नहीं आने देते और सन्त की वृत्ति अपने में ही रोक लेते हैं, मायिक प्रपंच में नहीं जाने देते। इस प्रकार राम बीच में रह कर माया और सन्तों को अपने-अपने स्थान में ही रखते हैं , तब ही सन्त राम की भक्ति द्वारा संसार के पार पहुँच कर परमानन्द स्वरूप को प्राप्त हुये हैं।

मध्य निष्पक्ष

चलु दादू तहँ जाइये, जहँ मरे न जीवे कोइ ।
आवागमन भय को नहीं, सदा एक रस होइ ॥ १८ ॥

१८-२१ में मध्य मार्ग द्वारा ब्रह्म-देश में जाने की प्रेरणा कर रहे हैं—हे साधको ! निर्विकल्प समाधि-भूमि में एक ब्रह्म देश है। वहाँ जन्म-मरण और लोकांतरों में जाने-आने आदि किसी भी प्रकार का भय नहीं है। वहां जो जाता है वह भी सदा एक रस रूप होकर ही रहता है। अत: मध्य निष्पक्ष मार्ग द्वारा चलकर वहां ही जाना चाहिए।

चलु दादू तहँ जाइये, जहँ चंद सूर नहिं जाइ।
रात दिवस की गम नहीं, सहजैं रह्या समाइ ॥ १९ ॥

जहाँ इस देश के चन्द्र-सूर्य वा इड़ा-पिंगला, हमारे रात्रि-दिन वा ज्ञान-अज्ञान आदि नहीं जा सकते, मध्य निष्पक्ष मार्ग द्वारा चल कर हमें उस ब्रह्म-देश में जाना चाहिए। जो भी वहां गया है, वह अनायास उसी में समाकर उसी का रूप होकर रहा है।

चलु दादू तहँ जाइये, माया मोह तैं दूर।
सुख दुख को व्यापै नहीं, अविनाशी घर पूर ॥ २० ॥

जो मायिक-मोह से परे, सब विश्व में परिपूर्ण, सांसारिक सुख-दुख के प्रभाव से रहित हमारा अविनाशी ब्रह्मरूप घर है, मध्य मार्ग द्वारा चल कर उसी ब्रह्म में जाना चाहिए।

चलु दादू तहँ जाइये, जहँ जम जौरा को नांहिं।
काल मीच लागे नहीं, मिल रहिये ता मांहिं ॥ २१ ॥

जहां यम का दंड देना आदि कोई भी बल नहीं चलता, काल का भेद वा आयु क्षीण होने का और मृत्यु का भय भी नहीं लगता, मध्य निष्पक्ष मार्ग द्वारा चलकर वहां ही जाना चाहिए और उसी ब्रह्म में मिल कर रहना चाहिए।

एक देश हम देखिया, तहँ ॠतु नहिं पलटे कोइ।
हम दादू उस देश के, जहां सदा एक रस होइ ॥ २२ ॥

२२-२७ में निर्विकल्प समाधि में अनुभूत ब्रह्म-देश का परिचय दे रहे हैं—हमने निर्विकल्प समाधि में अद्वैत ब्रह्म रूप देश देखा है। वहां षट् ॠतु परिवर्तन वा अवस्था परिवर्तन नहीं होता, जहां पहुँचने पर साधक एकरस होकर ही सदा रहता है। हम भी उसी देश के हैं।

एक देश हम देखिया, जहँ बस्ती ऊजड़ नांहिं।
हम दादू उस देश के, सहज रूप ता मांहिं ॥ २३ ॥

जहां दैवी-गुण और आसुर-गुण रूप ग्रामों का बसना उजड़ना नहीं होता तथा जिसमें रहने वाले का स्वरूप सहज निर्द्वन्द्व होता है, वही अद्वैत ब्रह्म-देश हमने निर्विकल्प समाधि में देखा है और हम उसी देश के हैं।

एक देश हम देखिया, नहिं नेड़े नहिं दूर।
हम दादू उस देश के, रहे निरंतर पूर ॥ २४ ॥

निर्विकल्प समाधि में हमने अद्वैत ब्रह्म रूप देश देखा है। वह सबका निज होने से समीप वा दूर नहीं है। निरंतर सब में परिपूर्ण रूप से रहता है। उसी देश के हम हैं।

एक देश हम देखिया, जहँ निश दिन नांहीं घाम।
हम दादू उस देश के, जहँ निकट निरंजन राम ॥ २५ ॥

जहाँ इन्द्रिय मन का अज्ञान रूप रात्रि, ज्ञान रूप दिन, अज्ञान जन्य दु:ख रूप घाम, इन्द्रिय ज्ञान जन्य सुखरूप छाया नहीं है और जहां निरंजन राम अति निकट निज स्वरूप से प्रतीत होते हैं, वह निर्विकल्प समाधि रूप एक देश हमने देखा है और हम उसी देश के हैं।

बारह मासी नीपजे, तहां किया परवेश ।
दादू सूखा ना पड़े, हम आये उस देश ॥ २६ ॥

जहां बारह मास ही परमानन्द रूप अन्न उत्पन्न होता रहता है, अज्ञान रूप अनावृष्टि कभी नहीं होती, हमने उसी निर्विकल्प समाधि-देश में आकर ब्रह्म में प्रवेश किया है।

जहँ वेद कुरान की गम नहीं, तहां किया परवेश ।
तहँ कछु अचरज देखिया, यहु कछु औरे देश ॥ २७ ॥

जिस निर्विकल्प समाधि-भूमि के ब्रह्म-देश में हमने आत्म रूप से प्रवेश किया है वहां एकरसता, सत्यतादि आश्चर्य देखने में आते हैं। यह देश मायिक संसार से भिन्न ही है। इसमें वेद एवं कुरान की भी गति नहीं है।

घर वन

काहे दादू घर रहे, काहे वन खंड जाइ ।
घर वन रहिता राम है, ताही सौं ल्यौ लाइ ॥ २८ ॥

२८-३२ में घर वा वन में रहने से ब्रह्म प्राप्ति नहीं होती, यह कहते हैं—क्यों तो घर में रहने का आग्रह रक्खे और क्यों वन में जाय, राम तो घर और वन के आश्रय से रहित सर्वत्र व्यापक है। अत: मध्य निष्पक्ष मार्ग की साधन पद्धति से उस व्यापक राम में ही वृत्ति लगा।

दादू जिन प्राणी कर जानिया, घर वन एक समान ।
घर मांहीं वन ज्यों रहै, सोई साधु सुजान ॥ २९ ॥

जिस प्राणी ने राम को व्यापक समझ कर घर और वन को एक जैसा जाना है और वन के समान विरक्त भाव से घर में रहकर भजन करता है , वही बुद्धिमान् सन्त है।

सब जग माहीं एकला, देह निरंतर वास ।
दादू कारण राम के, घर वन मांहिं उदास ॥ ३० ॥

जगत् में रहता हुआ भी सम्पूर्ण सांसारिक भोग-वासनाओं से अलग रहकर निरंतर शरीर के भीतर अन्त:करण में ही वृत्ति का निरोध करके घर-वनादि सभी स्थानों में राम के साक्षात्कारार्थ खिन्न रहता है वही श्रेष्ठ भक्त है।

घर वन मांहीं सुख नहीं, सुख है सांई पास ।
दादू तासौं मन मिल्या, इन तैं भया उदास ॥ ३१ ॥

घर वा वन में सुख नहीं है, सुख तो भजन द्वारा परमात्मा के समीप रहने में है। अत: इन घर, वनादि से विरक्त होकर हमारा मन तो चिन्तन द्वारा परमात्मा से मिल रहा है।

वैरागी वन में वसे, घरबारी घर मांहिं ।
राम निराला रह गया, दादू इनमें नांहिं ॥ ३२ ॥

विरक्त वन में रहते हैं और गृहस्थ घर में। यदि वन वा घर में निवास करने से राम मिलें तो सभी विरक्तों को वा सभी गृहस्थों को मिल जाना चाहिए। राम तो घर-वनादि में व्यापक रह कर भी इनसे अलग है। वह मध्य निष्पक्ष ब्रह्म भक्ति साधना द्वारा ही मिलता है।

सुमिरण नाम निस्संशय

दादू जीवन मरण का, मुझ पछतावा नांहिं ।
मुझ पछतावा पीव का, रह्या न नैनहुँ मांहिं ॥ ३३ ॥

३३-३५ में संशय रहित नाम-स्मरण की निष्ठा दिखा रहे हैं—अधिक आयु से कमजोर होकर जीने का वा शीघ्र मरने का मुझे दुःख नहीं, किन्तु मुझे तो यही अनुताप है कि—मेरे अन्तः-नेत्रों से परमात्मा का साक्षात्कार नहीं हो रहा है।

स्वर्ग नरक संशय नहीं, जीवन मरण भय नांहिं ।
राम विमुख जे दिन गये, सो सालैं मन मांहिं ॥ ३४ ॥

स्वर्ग-नरक है या नहीं, पुण्य-पाप करने वाले स्वर्ग-नरक में जाते हैं या नहीं, मुझे स्वर्ग मिलेगा या नरक, इत्यादिक संशय तो हमारे मन में नहीं हैं। न अधिक आयु से वृद्धावस्था के कष्ट और न शीघ्र मृत्यु का ही हमें भय है। राम-भजन बिना जो दिन व्यर्थ चले गये हैं, उन्हीं का हमारे मन में दुःख है।

स्वर्ग नरक सुख दुख तजे, जीवन मरण नशाइ ।
दादू लोभी राम का, को आवे को जाइ ॥ ३५ ॥

नाश होने वाले स्वर्ग-नरक के सुख-दुःख और जीवन-मरण के भय संतों ने कर्त्तव्य-भाव और द्वन्द्वों को छोड़ कर त्याग दिये हैं। कारण, राम के साक्षात्कार का लोभी कौन संत स्वर्ग में जाकर जन्म-मृत्यु मय मर्त्यलोक में आयेगा ? वह तो राम में ही मिलना चाहता है।

मध्य निष्पक्ष

दादू हिन्दू तुरक न होइबा, साहिब सेती काम ।
षट् दर्शन के संग न जाइबा, निर्पख कहबा राम ॥ ३६ ॥

३६-३९ में सीकरी शहर में अकबर बादशाह ने प्रश्न किये थे—आप हिन्दू-मुसलमानों में से किस धर्म में हैं ? और आप का षट् दर्शन में से कौन दर्शन (भेष) है ? इन प्रश्नों का मध्य निष्पक्ष सिद्धान्त द्वारा उत्तर दे रहे हैं—हम हिन्दू वा मुसलमान नहीं होते, हमारा तो एक परब्रह्म से ही काम है। न हम षट् दर्शन (नाथ, जंगम, सेवड़े, बौद्ध, सन्यासी और शेख) के साथ होकर उनके भेष को अपनाने वाले हैं। हम तो निष्पक्ष रहकर निरंजन राम का स्मरण करते हैं।

षट् दर्शन दोन्यों नहीं, निरालंब निज बाट ।
दादू एकै आसरे, लंघै औघट[१] घाट ॥ ३७ ॥

संत-जन, षट् दर्शन वा हिन्दू-मुसलमान दोनों की ही पक्ष नहीं रखते। सभी मत-मतान्तरों का आश्रय त्याग, एक परमात्मा का आश्रय लेकर अपने निष्पक्ष मध्य-मार्ग द्वारा संसार-समुद्र के जन्म-मृत्यु मय भयंकर[१] घाट को लांघते हैं।

दादू ना हम हिन्दू होहिंगे, ना हम मुसलमान ।
षट् दर्शन में हम नहीं, हम राते रहमान ॥ ३८ ॥

न हम हिन्दू बनेंगे, न मुसलमान। षट् दर्शन के भेषों में भी हम नहीं प्रवेश करेंगे। हम तो दयालु राम के चिन्तन में रत हैं। हमें अन्यों से क्या काम है ?

दादू अल्लह राम का, द्वै पख तैं न्यारा ।
रहिता गुण आकार का, सो गुरु हमारा ॥ ३९ ॥

जो अल्लाह और राम इन दोनों नामों में सम भाव रखकर दोनों के पक्षपात से अलग है, और नामों, गुणों तथा आकारों से रहित है, वही परब्रह्म हमारा गुरु है।

उभय असमाव

दादू मेरा तेरा बावरे, मैं तैं की तज बाण ।
जिन यहु सब कुछ सिरजिया, करता ही का जाण ॥ ४० ॥

४०-५० में निष्पक्ष अद्वैत और पक्ष द्वैत, दोनों एक साथ हृदय में नहीं रहते, यह कहते हैं—हे बावरे प्राणी ! जिस परमेश्वर ने यह संसार रचा है, सब कुछ उसी का जानकर ''मेरा-तेरा, मैं-तू'' आदि व्यवहार का स्वभाव त्याग दे।

दादू करणी हिन्दू तुरक की, अपनी अपनी ठौर ।
दुहुं बिच मारग साधु का, यहु संतों की रह और ॥ ४१ ॥

हिन्दू और मुसलमानों का कर्त्तव्य कर्म-उपासनादि अपने अपने पक्ष द्वारा मंदिर-मस्जिदों में ही होता है किन्तु संत तो परमात्मा को सर्वत्र व्यापक समझ कर निष्पक्ष मध्य-मार्ग द्वारा उपासना करते हैं। अत: संतों का मार्ग उक्त दोनों से अन्य ही है।

दादू हिन्दू तुरक का, द्वै पख पंथ निवार ।
संगति साचे साधु की, सांई को संभार ॥ ४२ ॥

हिन्दू और मुसलमान दोनों के पक्ष-विपक्ष पूर्ण मार्ग को छोड़कर सच्चे संतों की संगति द्वारा परमात्मा का भजन करो।

दादू हिन्दू लागे देहुरे, मुसलमान मसीति ।
हम लागे एक अलेख सौं, सदा निरंतर प्रीति ॥ ४३ ॥

हिन्दू मंदिरों की और मुसलमान मस्जिदों की उपासना में लगे हैं, किन्तु हम तो सदा प्रतिक्षण प्रीतिपूर्वक मन-इन्द्रियों के अविषय सर्वत्र व्यापक एक परब्रह्म के चिन्तन में लगे हैं।

न तहां हिन्दू देहुरा, न तहां तुरक मसीति ।
दादू आपै आप है, नहीं तहां रह रीति ॥ ४४ ॥

संतों की निष्पक्ष मध्य-मार्ग की साधना में न हिन्दुओं के मंदिर तथा न मुसलमानों की मस्जिद जैसे पूजा-स्थल होते हैं और न उनके जैसे आरती-नमाज आदि करने के आचरण व रीति-रिवाज होते हैं। सन्तों का उपास्य देव तो उनके घट में स्थित स्वयं आत्मरूप परमात्मा ही है।

दोनों हाथी ह्वै रहे, मिल रस पिया न जाइ।
दादू आपा मेट कर, दोनों रहैं समाइ ॥ ४५ ॥

धर्म के पक्ष से बँधकर हिन्दू-मुसलमान मदोन्मत्त दो हाथियों के समान हो रहे हैं। जैसे वे एक साथ जल नहीं पी सकते, वैसे ही हिन्दू मुसलमान मिलकर भक्ति-रस पान नहीं कर सकते। यदि ये धर्म-पक्ष रूप अहंकार को हटाकर भक्ति करें तो दोनों ही परमात्मा में समा कर रहेंगे।

भयभीत भयानक ह्वै रहै, देख्या निर्पख अंग ।
दादू एकै ले रह्या, दूजा चढै न रंग ॥ ४६ ॥

हमारे निर्गुण निष्पक्ष साधन स्वरूप को देख कर कुछ लोग तो यह समझकर कि ''यह कैसे हो सकता है'', भयभीत हो रहे हैं और कुछ लोग यह समझकर कि ''यह मार्ग दोनों धर्मों से भिन्न होने से अच्छा नहीं'', भयानक हो रहे हैं। किन्तु हमने तो निष्पक्ष होकर उपास्य रूप से एक परब्रह्म को ही ग्रहण किया है। हमारे दूसरा रंग नहीं चढ़ सकता।

जाने बूझे साच है, सब को देखन धाइ।
चाल नहीं संसार की, दादू गह्या न जाइ ॥ ४७ ॥

निष्पक्ष मध्य-मार्ग के संतों को उनके वैराग्यादि गुणों द्वारा जानते हैं और यह समझ कर कि ये सच्चे संत हैं, उनके दर्शन करने भी सब जाते हैं किन्तु उनका निष्पक्ष मध्य-मार्ग, जो संसार के मत-मतान्तरों के बाह्य-भेषादि चिन्ह मूर्ति-पूजादि न होने से, लोगों द्वारा ग्रहण नहीं किया जाता।

दादू पख काहू के ना मिले, निर्पख निर्मल नांव ।
सांई सौं सन्मुख सदा, मुक्ता सब ही ठांव ॥ ४८ ॥

संत किसी के मत रूप पक्ष में नहीं मिलते। वे तो सर्व-मतों से निष्पक्ष रह कर, निर्मल नाम स्मरण द्वारा सदा परमात्मा के सन्मुख रहते हैं। इस प्रकार मत-मतान्तरों के पक्ष से मुक्त होकर लोक-कल्याणार्थ सभी स्थानों में विचरते हैं।

दादू जब तैं हम निर्पख भये, सबै रिसाने लोक ।
सद्गुरु के परसाद से, मेरे हर्ष न शोक ॥ ४९ ॥

जब से हम निष्पक्ष हुये हैं, तब से हम पर सभी लोग रुष्ट हैं, किन्तु सद्गुरु कृपा से हमारे हृदय में उनकी प्रसन्नता से न हर्ष था और न उनके रुष्ट होने से कोई शोक है।

निर्पख ह्वै कर पख गहै, नरक पड़ेगा सोइ।
हम निर्पख लागे नाम सौं, कर्ता करे सो होइ ॥ ५० ॥

निष्पक्ष होकर यदि कोई पक्ष ग्रहण करेगा तो वह दु:ख रूप नरक में ही पड़ेगा। हम तो निष्पक्ष होकर निरंजन राम के नाम-स्मरण में लगे हैं।आगे जो परमेश्वर करेंगे, वही होगा।

हरि भरोस

दादू पख काहू के ना मिलैं, निष्कामी निर्पख साध ।
एक भरोसे राम के, खेलैं खेल अगाध ॥ ५१ ॥

निष्पक्ष मध्य-मार्ग के संतों का हरि विश्वास दिखा रहे हैं—निष्पक्ष निष्कामी संत किसी मतादि के पक्ष में न मिलकर निरंजन राम के भरोसे भक्ति रूप खेल खेलते हुये अगाध आनन्द लेते हैं।

मध्य

दादू पखा पखी संसार सब, निर्पख विरला कोइ ।
सोई निर्पख होइगा, जाके नाम निरंजन होइ ॥ ५२ ॥

५२-५४ में निष्पक्ष मध्य-मार्ग की विशेषता दिखा रहे हैं—सब संसार के प्राणी पक्ष-विपक्ष में बद्ध हैं। कोई विरला ही निष्पक्ष होता है, जिसके हृदय में निरन्तर निरंजन राम का चिन्तन होता है, वही संत निष्पक्ष हो सकेगा।

अपने अपने पंथ की, सब को कहै बढाइ ।
तातैं दादू एक सौं, अंतरगति ल्यौ लाइ ॥ ५३ ॥

सब कोई अपने-अपने पंथ की महिमा बढ़ा कर ही कहते हैं। इसलिये सब से निष्पक्ष होकर शरीर के भीतर हृदय में स्थित एक आत्म-स्वरूप राम में ही वृत्ति लगाओ।

दादू द्वै पख दूर कर, निर्पख निर्मल नांव ।
आपा मेटे हरि भजे, ताकी मैं बलि जांव ॥ ५४ ॥

जो भेदवादियों के पक्ष को दूर कर निष्पक्ष हो, सब प्रकार के अनात्म अहंकार को मिटा कर निर्मल नाम द्वारा परमात्मा को भजता है; उसकी हम बलिहारी जाते हैं।

सजीवन

दादू तज संसार सब, रहै निराला होइ ।
अविनाशी के आसरे, काल न लागे कोइ ॥ ५५ ॥

जीवन्मुक्त का परिचय दे रहे हैं—जो संसार के संपूर्ण मतों के पक्ष को और संपूर्ण वासनाओं को त्याग, संपूर्ण द्वंद्वों से रहित होकर अविनाशी ब्रह्म के अभेद रूप आश्रय में रहता है-उसे किसी प्रकार भी काल का भय नहीं लगता है।

मत्सर=ईर्ष्या

कलियुग कूकर कलमुहाँ, उठ-उठ लागे धाइ ।
दादू क्यों कर छूटिये, कलियुग बड़ी बलाइ ॥ ५६ ॥

५६ में कहते हैं—कलियुगी प्राणी संतों से ईर्ष्या करते हैं-कलियुगी प्राणी काले मुँह के कुत्ते के समान उठ-उठ कर वेग-पूर्वक निष्पक्ष संतों के पीछे लगते हैं और ईर्ष्यापूर्ण दुर्वचनों द्वारा

कष्ट देते हैं। ये कलियुगी प्राणी भजन में विघ्न करने के कारण निष्पक्ष संतों के लिये बड़ी विपत्ति रूप हैं। इनसे कैसे बचें ? अर्थात् इनसे सावधान रहना चाहिये।

निन्दा

काला मुँह संसार का, नीले कीये पाँव ।
दादू तीन तलाक दे, भावे तीधर जाव ॥ ५७ ॥

५७-५९ में कृतघ्नियों से उपेक्षा दिखा रहे हैं—वर्षा भगवान् ने बरसायी और पूजने जाते हैं पीर को। अतः ये संसारी प्राणी कृतघ्न हैं। इनका काला मुँह और नीले पैर कर दिये हैं=अर्थात् हम इनसे सम्बन्ध ही नहीं रखते। हम तो हरि, गुरु और संतों की शपथ करके कहते हैं, हमारी ओर से ये चाहे किधर ही जायँ।

अनावृष्टि से पीड़ित आँधी ग्राम की जनता के लिये दादूजी ने भगवान् से प्रार्थना करके वर्षा कराई थी, उसको पीर की कृपा मान कर लोगों द्वारा पीर को पूजने जाते देख कर ५७ वीं साखी कही थी। प्रसंग कथा दृ. सं. सि. त. ५।२६० में देखो।

दादू भाव हीण जे पृथमी, दया विहूणा देश ।
भक्ति नहीं भगवंत की, तहँ कैसा परवेश ॥ ५८ ॥

पृथ्वी का जो प्रदेश विचार, दया और भगवान् की भक्ति से रहित हो, उसमें कैसा प्रवेश ? अर्थात् उसमें सन्तों को नहीं जाना चाहिये, वह तो त्यागने योग्य ही है।

जे बोलूं तो चुप कहैं, चुप तो कहैं पुकार ।
दादू क्यों कर छूटिये, ऐसा है संसार ॥ ५९ ॥

यदि हम उपदेश करते हैं तब तो कहते हैं, चुपचाप बैठकर भजन ही करना चाहिये और जब ध्यानस्थ रहने लगते हैं तो कहते हैं, उपदेश करो। संसारी प्राणी ऐसे कृतघ्न हैं- उभय प्रकार ही असन्तुष्ट रहते हैं। इनसे कैसे छुटकारा पावें ? अर्थात् अपने मध्य निष्पक्ष सहज स्वभाव से ही रहना चाहिये।

मध्य

न जाणूं, हांजी, चुप गहि, मेट अग्नि की झाल ।
सदा सजीवन सुमिरिये, दादू बंचे काल ॥ ६० ॥

निष्पक्ष मध्य रहने की पद्धति बता रहे हैं—मत-मतान्तरों के पक्ष वाले विवाद में प्रवृत्त व्यक्तियों को प्रथम तो कह दें—मैं शास्त्रार्थ करना नहीं जानता, वा योग्य वार्ता हो तो ''हां जी, ठीक है'', ऐसा कह दें वा मौन रह कर ही वाद-विवाद रूप अग्नि की ज्वालाओं को मिटाकर सदा सजीवन-स्वरूप परब्रह्म का स्मरण करे, तब जन्म-मरण रूप काल-चक्र से बच सकता है।

पंथापंथी

पंथ चलैं ते प्राणियां, तेता कुल व्यवहार ।
निर्पख साधू सो सही, जिन के एक आधार ॥ ६१ ॥

६१-६२ में कह रहे हैं, सांसारिक पंथों के पथिकों का संग न करो—जो प्राणी विभिन्न पंथों में प्रविष्ट होकर चलते हैं, उनके उन पंथों के समान ही सम्पूर्ण व्यवहार होते हैं, जो बन्धन रूप हैं। निष्पक्ष सच्चे संत तो वे ही हैं, जिनके एक परमात्मा का ही आश्रय है।

दादू पंथों पड़ गये, बपुरे[1] बारह-बाट[2] ।
इनके संग न जाइये, उलटा अविगत[3] घाट ॥ ६२ ॥

विचारहीन[1] प्राणी पंथों के फंद में पड़ गये हैं, इसी से वास्तविक मार्ग भूलकर दर-दर[2] के हो रहे हैं। सच्चे साधक को इन पंथों के साथ नहीं होना चाहिये। मन-इन्द्रिय के अविषय[3] परमात्मा की प्राप्ति का निर्विकल्प-समाधि रूप घाट इनके भेष-व्यवहारादि प्रपंच से उलटा है। वह अन्तर्मुख हो कर साधन करने से प्राप्त होता है, पंथों के बाह्य व्यवहार से नहीं।

आशय विश्राम

दादू जागे को आया कहैं, सूते को कहैं जाइ ।
आवन जाना झूठ है, जहाँ का तहाँ समाइ ॥ ६३ ॥

इति मध्य का अंग समाप्त ॥ १६ ॥ सा. १७२० ॥

६३ में कहते हैं—प्राणी का जैसा विचार होता है, वैसी ही मान्यता में उसे आनन्द मिलता है—सोकर जागे हुये व्यक्ति आत्मा को कहते है "जाग आया" और सोये हुये व्यक्ति आत्मा को कहते हैं, "सो गया"। किन्तु आत्मा में आने-जाने का व्यवहार मिथ्या है, वह तो व्यापक होने से जहां-तहां सर्वत्र समाया हुआ है, परन्तु मन में जैसा विचार होता है, वैसी ही मान्यता में प्राणियों को विश्राम मिलता है। मध्य, निष्पक्ष-मार्ग के संत की मान्यता यथार्थ होती है।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका मध्य का अंग समाप्तः ॥ १६ ॥

अथ सारग्राही का अंग १७

मध्य-अंग के अनन्तर सारग्राहक संबंधी विचार करने के लिये 'सारग्राही का अंग' कहने में प्रवृत्त मंगल कर रहे हैं—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवतः ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक असार संसार से पार होकर सार-स्वरूप परब्रह्म को प्राप्त होता है, उन निरंजन राम, सद्गुरु और सर्व संतों को हम अनेक प्रणाम करते हैं।

दादू साधू गुण गहै, अवगुण तजै विकार ।
मानसरोवर हंस ज्यों, छाड़ि नीर, गहि सार ॥ २ ॥

२-१६ में सार और असार ग्राहकों का परिचय दे रहे हैं—जैसे मानसरोवर के हंस जल को छोड़ कर सार रूप दुग्ध को पान करते हैं, वैसे ही संत अवगुणों को विकार रूप जान कर त्याग देते हैं और उत्तम गुणों को ग्रहण करते हैं।

६१-६२ में कह रहे हैं, सांसारिक पंथों के पथिकों का संग न करो—जो प्राणी विभिन्न पंथों में प्रविष्ट होकर चलते हैं, उनके उन पंथों के समान ही सम्पूर्ण व्यवहार होते हैं, जो बन्धन रूप हैं। निष्पक्ष सच्चे संत तो वे ही हैं, जिनके एक परमात्मा का ही आश्रय है।

दादू पंथों पड़ गये, बपुरे[1] बारह-बाट[2] ।
इनके संग न जाइये, उलटा अविगत[3] घाट ॥ ६२ ॥

विचारहीन[1] प्राणी पंथों के फंद में पड़ गये हैं, इसी से वास्तविक मार्ग भूलकर दर-दर[2] के हो रहे हैं। सच्चे साधक को इन पंथों के साथ नहीं होना चाहिये। मन-इन्द्रिय के अविषय[3] परमात्मा की प्राप्ति का निर्विकल्प-समाधि रूप घाट इनके भेष-व्यवहारादि प्रपंच से उलटा है। वह अन्तर्मुख हो कर साधन करने से प्राप्त होता है, पंथों के बाह्य व्यवहार से नहीं।

आशय विश्राम

दादू जागे को आया कहैं, सूते को कहैं जाइ।
आवन जाना झूठ है, जहाँ का तहाँ समाइ ॥ ६३ ॥

इति मध्य का अंग समाप्त ॥ १६ ॥ सा. १७२० ॥

६३ में कहते हैं—प्राणी का जैसा विचार होता है, वैसी ही मान्यता में उसे आनन्द मिलता है—सोकर जागे हुये व्यक्ति आत्मा को कहते है ''जाग आया'' और सोये हुये व्यक्ति आत्मा को कहते हैं, ''सो गया''। किन्तु आत्मा में आने-जाने का व्यवहार मिथ्या है, वह तो व्यापक होने से जहां-तहां सर्वत्र समाया हुआ है, परन्तु मन में जैसा विचार होता है, वैसी ही मान्यता में प्राणियों को विश्राम मिलता है। मध्य, निष्पक्ष-मार्ग के संत की मान्यता यथार्थ होती है।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका मध्य का अंग समाप्तः ॥ १६ ॥

अथ सारग्राही का अंग १७

मध्य-अंग के अनन्तर सारग्राहक संबंधी विचार करने के लिये 'सारग्राही का अंग' कहने में प्रवृत्त मंगल कर रहे हैं—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवतः ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक असार संसार से पार होकर सार-स्वरूप परब्रह्म को प्राप्त होता है, उन निरंजन राम, सद्गुरु और सर्व संतों को हम अनेक प्रणाम करते हैं।

दादू साधू गुण गहै, अवगुण तजै विकार ।
मानसरोवर हंस ज्यों, छाड़ि नीर, गहि सार ॥ २ ॥

२-१६ में सार और असार ग्राहकों का परिचय दे रहे हैं—जैसे मानसरोवर के हंस जल को छोड़ कर सार रूप दुग्ध को पान करते हैं, वैसे ही संत अवगुणों को विकार रूप जान कर त्याग देते हैं और उत्तम गुणों को ग्रहण करते हैं।

हंस गियानी सो भला, अंतर राखे एक ।
विष में अमृत काढ ले, दादू बड़ा विवेक ॥ ३ ॥

जो महान् विवेक द्वारा अनात्म-देहादि संसार रूप विष में से आत्मरूप अमृत को निकाल कर अपनी चित्त-वृत्ति में उस एक का ही चिन्तन रखता है, वही हंस के समान सार ग्राहक ज्ञानी और श्रेष्ठ संत है।

पहली न्यारा मन करै, पीछे सहज शरीर ।
दादू हंस विचार सौं, न्यारा कीया नीर ॥ ४ ॥

साधक को चाहिये—प्रथम विषय-वासनाओं से मन को हटावे, पीछे वैराग्य विवेक द्वारा अनायास ही शरीर से आत्म-भ्रांति हट जायगी और जैसे हंस जल से दूध को अलग करके पान करता है, वैसे ही अनात्मा से आत्मा को अलग करके अद्वैतामृत पान कर सकेगा।

आपै आप प्रकाशिया, निर्मल ज्ञान अनन्त ।
क्षीर नीर न्यारा किया, दादू भज भगवन्त ॥ ५ ॥

जिनने भगवद् भजन करके विवेक द्वारा आत्म रूप दूध और अनात्म रूप जल को अलग कर लिया है, उनके अन्तःकरण में अपने आप ही अनन्त ब्रह्म का निर्मल ज्ञान प्रकाशित हुआ है।

क्षीर नीर का सन्त जन, न्याव नबेरैं आइ ।
दादू साधू हंस बिन, भेल सभेले जाइ ॥ ६ ॥

जैसे दूध और जल भिन्न करने का न्याय हंस ही निबटाता है, वैसे ही आत्म-अनात्म रूप सार-असार को भिन्न करने में संत ही समर्थ हैं। हंस बिना अन्य सब जल दूध मिला ही पान करते हैं। वैसे ही संतों के अतिरिक्त अन्य आत्मा-अनात्मा को एक रूप से ही भजते हैं।

दादू मन हंसा मोती चुणे, कंकर दीया डार ।
सद्गुरु कह समझाइया, पाया भेद विचार ॥ ७ ॥

संतों के निर्मल मन-हंस ने विषय-वासना वा सकाम-साधना रूप कंकर पटक दिये हैं और आत्म-चिन्तन रूप मोती ही चुगता है। यह उक्त त्याग व ग्रहण का रहस्य सद्गुरुओं ने कह कर समझाया है, तब ही हमें विचार द्वारा प्राप्त हुआ है।

दादू हंस मोती चुणै, मानसरोवर जाइ ।
बगुला छीलर बापुड़ा, चुण चुण मछली खाइ ॥ ८ ॥

संत-हंस सत्संग-सरोवर में ब्रह्मानन्द-मोती चुगता है और बेचारा संसारी प्राणी रूप बक तो कुसंग रूप छोटी तलैया में विषय-रूप मच्छी ही खाता है।

दादू हंस मोती चुगैं, मानसरोवर न्हाइ ।
फिर फिर बैसे बापुड़ा, काग करंकां आई ॥ ९ ॥

संत-हंस तो सत्संग-मानसरोवर में अविद्या-मल की निवृत्ति रूप स्नान करके ब्रह्मानन्द

रूप मोती चुगते हैं और बेचारे कामी प्राणी रूप कौए; नारी के शरीर रूप पंजर पर ही बारंबार आकर बैठते हैं।

दादू हंसा परखिये, उत्तम करणी चाल ।
बगुला बैसे ध्यान धर, प्रत्यक्ष कहिये काल ॥ १० ॥

संत और हंस सार ग्रहण रूप श्रेष्ठ कर्त्तव्य से ही पहचाने जाते हैं, भेषादि से नहीं। हंस के समान श्वेत होने पर भी बक जब ध्यान धरके बैठता है, तब प्रत्यक्ष ही मच्छियों का काल क्हा जाता है। वैसे ही संतों का भेष धारण करने वाले कपटी बक-ध्यानी भी घातक होते हैं।

उज्ज्वल करणी हंस है, मैली करणी काग ।
मध्यम करणी छाड़ि सब, दादू उत्तम भाग ॥ ११ ॥

संत का ब्रह्म-चिन्तनादि, हंस का पय-पानादि-सार ग्रहण रूप कर्त्तव्य पवित्र है। काक का पंजर पर जाना, कामी का नारी में आसक्ति से पापादि रूप कर्त्तव्य मलीन है। संपूर्ण नीच कार्यों को त्याग कर जो उत्तम कार्य करता है, वही सौभाग्यशाली है।

दादू निर्मल करणी साधु की, मैली सब संसार ।
मैली मध्यम ह्वै गये, निर्मल सिरजनहार ॥ १२ ॥

संत का कर्त्तव्य निर्मल होता है और संसारी प्राणियों का मलीन होता है। मलीन कर्त्तव्य वाले मध्यम होकर संसार के बीच ही रह गये और निर्मल कर्त्तव्य वाले संत परमात्मा को प्राप्त हो गये।

दादू करणी ऊपरि जाति है, दूजा सोच निवार।
मैली मध्यम ह्वै गये, उज्ज्वल ऊंच विचार ॥ १३ ॥

जाति भी कर्त्तव्य पर ही निर्धारित होती है, पान बेचने वाला ब्राह्मण तंबोली कहलाता है, इत्यादिक लोक में प्रसिद्ध है। अत: जाति किस प्रकार बनती है ? ऐसी शंका रूप अन्य चिन्ता को छोड़ो। मलीन कर्त्तव्य वाले मध्यम जाति के और उज्ज्वल कर्त्तव्य वाले उच्च जाति के समझो।

उज्ज्वल करणी राम है, दादू दूजा धंध ।
का कहिये समझैं नहीं, चारों लोचन अंध ॥ १४ ॥

राम-भजन ही पवित्र कर्त्तव्य है, दूसरे सांसारिक कार्य तो पाप, मिश्रित होने से मलीन ही हैं, किन्तु क्या कहें, संसारी प्राणी इस रहस्य को समझते ही नहीं। ये विवेक, विचार और दोनों बाह्य नेत्रों से अंधे ही हो रहे हैं अर्थात् सत्संग न होने से विवेक-विचार तो है ही नहीं और बाह्य नेत्रों से प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि बुरा करने से दंड मिलता है, फिर भी करते ही हैं, यही अंधा होना है।

दादू गऊ बच्छ का ज्ञान गह, दूध रहै ल्यौ लाइ ।
सींग पूंछ पग परिहरै, अस्तन लागै धाइ ॥ १५ ॥

जैसे गो का वत्स, गो के श्रृंग, पुच्छ, पैर आदि अंगों को त्याग, दौड़कर स्तन पकड़ के दुग्धपान करता है, वैसे ही विराट् रूप, गो के सन्त रूप स्तनों से ज्ञान-दुग्ध ग्रहण करके अपनी वृत्ति परब्रह्म में ही लगानी चाहिए।

दादू काम गाइ के दूध सौं, हाड़ चाम सौं नांहिं ।
इहिं विध अमृत पीजिये, साधू के मुख मांहिं ॥ १६ ॥

जैसे गो-वत्स का काम गो के दुग्ध पान से होता है, अस्थि-चर्मादि से नहीं, वैसे ही साधक को सन्त के गौर, स्थूलादि शारीरिक अंगों की ओर न देखकर सारग्राहक दृष्टि से उनके मुख द्वारा स्रवित ज्ञानामृत का पान करना चाहिए।

स्मरण नाम

दादू काम धणी के नाम सौं, लोगन सौं कुछ नांहिं ।
लोगन सौं मन ऊपली,मन की मन ही मांहिं ॥ १७ ॥

१७-२३ में नाम-स्मरण को ही सार साधन बता रहे हैं—साधक का मुक्ति रूप कार्य परमात्मा के नाम-स्मरण से ही सिद्ध होगा, सांसारिक लोगों से कुछ न होगा। अत: लोगों से व्यावहारिक वार्ता करनी ही पड़े तो वह मन के बाहर ही रहे, मन में प्रवेश नहीं होनी चाहिए। मन में तो मन की नाम स्मरण रूप साधना ही रहनी चाहिए।

जाके हिरदै जैसी होइगी, सो तैसी ले जाइ।
दादू तूं निर्दोष रह, नाम निरन्तर गाइ ॥ १८ ॥

हे साधक ! जिसके हृदय में जैसी भावना होगी, वह वैसी ही वस्तु अपने आप तेरे से ले जायगा, तू तो वर-शाप देने से उपराम होकर निर्दोष रहते हुये नाम स्मरण ही कर।

दादू साधु सबै कर देखना, असाध न दीसै कोइ।
जिहिं के हिरदै हरि नहीं, तिहिँ तन टोटा होइ ॥ १९ ॥

सभी को साधु समझकर देखना चाहिये। कारण, आत्म-दृष्टि से वा सार-ग्राहक दृष्टि से कोई भी असाधु नहीं दिखाई देता। हां, जिसके हृदय में हरि-चिन्तन नहीं होता, उस शरीर में साधुता की कमी रहती ही है, किन्तु हम अपने भाव में कमी क्यों रक्खें।

साधू संगति पाइये, तब द्वन्द्वर दूर नशाइ ।
दादू बोहिथ[२] बैस कर, डूंडे[१] निकट न जाइ ॥ २० ॥

जब संत-संगति प्राप्त होती है तब काम-क्रोधादि द्वन्द्व हृदय से दूर होकर नष्ट हो जाते हैं। फिर जैसे जहाज[२] पर बैठ कर यात्रा करने वाला छोटी-नाव[१] के पास नहीं जाता, वैसे ही द्वन्द्वों से रहित व्यक्ति नाम-स्मरण को छोड़ कर तीर्थ-व्रतादि के पास भी नहीं जाता। नाम-स्मरण में ही रत रहता है।

जब परम पदारथ पाइये, तब कंकर दीया डार ।
दादू साचा सों मिले, तब कूड़ा काच निवार ॥ २१ ॥

जब परम श्रेष्ठ रत्न मिलता है, तब कंकर-काँचादि को कूड़ा समझकर पटक दिया जाता है। वैसे ही जब साधक को सच्चे साधु द्वारा सिखाये नाम स्मरण से सच्चा आत्म-तत्त्व प्राप्त होता है, तब वह विषय-सुख जैसे निस्सार[१] कार्यों[२] को अपने आप ही छोड़ देता है।

जब जीवन मूरी पाइये, तब मरबा कौन बिसाहि[१] ।
दादू अमृत छाड़ कर, कौन हलाहल खाहि ॥ २२ ॥

जब संजीवनी बूटी प्राप्त हो जाती है, तब मृत्यु कौन मोल[१] लेता है ? तथा अमृत को छोड़कर हलाहल विष कौन खाता है ? वैसे ही नाम-स्मरण का आनन्द मिलने पर विषय-सुख कौन चाहता है ?

जब मानसरोवर पाइये, तब छीलर को छिटकाइ ।
दादू हंसा हरि मिले, तब कागा गये विलाइ ॥ २३ ॥

जब मानसरोवर प्राप्त होता है, तब हंस छोटी तलैया को त्याग देता है। वैसे ही हंस रूपी साधक को जब नाम-स्मरण द्वारा हरि की प्राप्ति होती है, तब काम-क्रोधादिक वासना सेवी मन की काक वृत्ति अपने आप ही नष्ट हो जाती है।

उभय असमाव

जहँ दिनकर तहँ निश नहीं, निश तहँ दिनकर नांहिं ।
दादू एकै द्वै नहीं, साधन के मत मांहिं ॥ २४ ॥

२४-२५ में दो विरोधी एक साथ नहीं रहते, यह कहते हैं—जहाँ सूर्य होता है, वहां रात्रि नहीं होती, जहां रात्रि होती है वहां सूर्य नहीं होता। वैसे ही ज्ञान के स्थान में अज्ञान और अज्ञान के स्थान में ज्ञान नहीं रहता। संतों के सिद्धान्त में जहां अद्वैत ब्रह्म की भक्ति होती है, वहां माया रूप द्वैत नहीं होता।

दादू एकै घोड़े चढ चलै, दूजा कोतिल[१] होइ ।
दुहुं घोड़ों चढ बैसतां, पार न पहुँचा कोइ ॥ २५ ॥

इति सारग्राही का अंग समाप्त ॥ १७ ॥ सा. १७४५ ॥

जिसके साथ दो अश्व होते हैं, तब एक पर चढकर चलता है और दूसरे को खाली[१] रखता है। कारण, दोनों पर चढ़ कर बैठने से तो आज तक कोई भी जाने योग्य स्थान को नहीं पहुँचा। वैसे ही प्रवृत्ति और निवृत्ति का एक साथ निर्वाह नहीं हो सकता, प्रवृत्ति को गौण और निवृत्ति को मुख्य रख कर ब्रह्म-परायण रहने से ही प्राणी संसार के पार पहुँच सकता है। सच्चे साधक को चाहिये कि वह ब्रह्म-चिन्तनादि आध्यात्मिक कार्यों को ही प्रमुखता दे सांसारिक व्यवहार को तो उसको सहायक रूप में ही रखें।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका सारग्राही का अंग समाप्तः ॥ १७ ॥

अथ विचार का अंग १८

सारग्राही-अंग के अनन्तर अद्वैत-प्रधान विचार करने के लिये ''विचार का अंग'' के कथन में प्रवृत्त मंगल कर रहे हैं —

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवतः ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥

जब जीवन मूरी पाइये, तब मरबा कौन बिसाहि[१] ।
दादू अमृत छाड़ कर, कौन हलाहल खाहि ॥ २२ ॥

जब संजीवनी बूटी प्राप्त हो जाती है, तब मृत्यु कौन मोल[१] लेता है ? तथा अमृत को छोड़कर हलाहल विष कौन खाता है ? वैसे ही नाम-स्मरण का आनन्द मिलने पर विषय-सुख कौन चाहता है ?

जब मानसरोवर पाइये, तब छीलर को छिटकाइ ।
दादू हंसा हरि मिले, तब कागा गये विलाइ ॥ २३ ॥

जब मानसरोवर प्राप्त होता है, तब हंस छोटी तलैया को त्याग देता है। वैसे ही हंस रूपी साधक को जब नाम-स्मरण द्वारा हरि की प्राप्ति होती है, तब काम-क्रोधादिक वासना सेवी मन की काक वृत्ति अपने आप ही नष्ट हो जाती है।

उभय असमाव

जहँ दिनकर तहँ निश नहीं, निश तहँ दिनकर नांहिं ।
दादू एकै द्वै नहीं, साधन के मत मांहिं ॥ २४ ॥

२४-२५ में दो विरोधी एक साथ नहीं रहते, यह कहते हैं—जहाँ सूर्य होता है, वहां रात्रि नहीं होती, जहां रात्रि होती है वहां सूर्य नहीं होता। वैसे ही ज्ञान के स्थान में अज्ञान और अज्ञान के स्थान में ज्ञान नहीं रहता। संतों के सिद्धान्त में जहां अद्वैत ब्रह्म की भक्ति होती है, वहां माया रूप द्वैत नहीं होता।

दादू एकै घोड़े चढ चलै, दूजा कोतिल[१] होइ ।
दुहुं घोड़ों चढ बैसतां, पार न पहुँचा कोइ ॥ २५ ॥

इति सारग्राही का अंग समाप्त ॥ १७ ॥ सा. १७४५ ॥

जिसके साथ दो अश्व होते हैं, तब एक पर चढकर चलता है और दूसरे को खाली[१] रखता है। कारण, दोनों पर चढ़ कर बैठने से तो आज तक कोई भी जाने योग्य स्थान को नहीं पहुँचा। वैसे ही प्रवृत्ति और निवृत्ति का एक साथ निर्वाह नहीं हो सकता, प्रवृत्ति को गौण और निवृत्ति को मुख्य रख कर ब्रह्म-परायण रहने से ही प्राणी संसार के पार पहुँच सकता है। सच्चे साधक को चाहिये कि वह ब्रह्म-चिन्तनादि आध्यात्मिक कार्यों को ही प्रमुखता दे सांसारिक व्यवहार को तो उसको सहायक रूप में ही रखें।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका सारग्राही का अंग समाप्तः ॥ १७ ॥

अथ विचार का अंग १८

सारग्राही-अंग के अनन्तर अद्वैत-प्रधान विचार करने के लिये ''विचार का अंग'' के कथन में प्रवृत्त मंगल कर रहे हैं —

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवतः ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक द्वैत से पार होकर अद्वैत विचार द्वारा परब्रह्म को प्राप्त होता है, उन निरंजन राम,सद्गुरु और सर्व संतों को हम अनेक प्रणाम करते हैं।

प्रज्ञान परिचय

दादू जल में गगन, गगन में जल है, पुनि[1] वै गगन निरालं[2]।
ब्रह्म जीव इहि विधि रहै, ऐसा भेद विचारं॥ २॥

२-३ में प्रज्ञान (जीव) का परिचय दे रहे हैं—जैसे जल में प्रतिविम्ब रूप से आकाश विद्यमान है तथा जल की सत्ता-आधार भूत व्यापक आकाश में है, अतः जल भी आकाश में है, इस प्रकार बाहर-भीतर आकाश का जल से संबंध होने पर भी आकाश जल के आर्द्रतादि धर्मों से युक्त नहीं होता, वैसे ही जीव (बुद्धि) में शुद्ध कूटस्थ चैतन्य प्रतिबिम्ब रूप से विद्यमान है तथा जीव (बुद्धि) भी आधार भूत शुद्ध चैतन्य के आश्रित है। अतः बाहर व भीतर जीव का ब्रह्म से संबंध होने पर भी वह ब्रह्म, जीव (बुद्धि=अंतःकरण) के धर्म अल्पज्ञत्वादि से युक्त नहीं होता। जीव और ब्रह्म के इस भेद का विचार करना चाहिये।

ज्यों दर्पण में मुख देखिये, पानी में प्रतिबिम्ब।
ऐसे आतमराम है, दादू सब ही संग॥ ३॥

जैसे दर्पण में मुख का और जल में सूर्यादि का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है, वैसे ही ब्रह्म का प्रतिबिम्ब अंतःकरण में आत्म रूप से रहता है। उसी की सत्ता से सब व्यवहार चलता है। अतः ब्रह्म सब के साथ ही है।

साँच

जब दर्पण मांहीं देखिये, तब अपना सूझे आप।
दर्पण बिन सूझे नहीं, दादू पुन्य रु पाप॥ ४॥

यथार्थ बात कह रहे हैं—जब दर्पण में देखा जाय तो अपना मुख और उस के गुण-दोष अपने आप ही दीख जाते हैं, दर्पण बिना नहीं दीखते। वैसे ही अंतःकरण द्वारा ब्रह्म का प्रतिविम्ब और पाप-पुण्य रूप संसार प्रतीत होता है। अंतःकरण न हो तो एक अद्वैत ब्रह्म ही है।

ज्ञान परिचय

जींयें[1] तेल तिलन्न में, जींयें गंध फूलन्न।
जींयें माखन खीर में, ईंयें रब्ब[2] रूहन्न[3]॥ ५॥

५-८ में ज्ञान द्वारा ब्रह्म का परिचय करा रहे हैं—जैसे[1] तिलों में तेल, पुष्पों में सुगंध, दुग्ध में मक्खन है, वैसे ही सब जीवात्माओं[3] में ब्रह्म[2] व्यापक है।

अकबर बादशाह ने पूछा था ब्रह्म सब में कैसे है, दृष्टांत द्वारा बताइये ? उसको ५-६ से उत्तर दिया था। प्रसंग कथा दृ. सु. सि. त. १२-३४२ में देखो।

ईंयें[1] रब्ब रूहन्न में, जींयें रूह[2] रगन्न।
जींयें जेरो[3] सूर मां, ठंढो चन्द्र बसन्न॥ ६॥

जैसे शरीर की नाड़ियों में आत्मा[२], सूर्य में प्रकाश[३], चन्द्रमा में शीतल गुण रहता है, ऐसे[४] ही जीवात्माओं में ब्रह्म व्यापक है।

दादू जिन यहु दिल मंदिर किया, दिल मंदिर में सोइ ।
दिल मांहीं दिलदार है, और न दूजा कोइ ॥ ७ ॥

जिस परमात्मा ने अन्तःकरण-मन्दिर बनाया है, वही साक्षी रूप से अन्तःकरण में रहता हं। अन्तःकरण में स्थित परमात्मा ही हमारा परम मित्र है, अन्य दूसरा कोई नहीं।

मीत तुम्हारा तुम कने[१], तुम ही लेहु पिछान ।
दादू दूर न देखिये, प्रतिबिम्ब ज्यों जान ॥ ८ ॥

हे साधको ! जैसे सूर्यादिक का प्रतिबिम्ब सर्वत्र रहता है किन्तु जलादिक बिना नहीं दीखता । वैसे ही तुम्हारा परम मित्र परब्रह्म व्यापक होने से तुम्हारे पास[१] ही है, किन्तु ब्रह्माकार वृत्ति बिना नहीं भासता। अतः अपनी वृत्ति को ब्रह्माकार करके तुम ही उसे पहचानो।

विरक्तता

दादू नाल[१] कमल जल ऊपजे, क्यों जुदा जल मांहिं ।
चंद हि हित चित प्रीतड़ी, यों जल सेती नांहिं ॥ ९ ॥

९-११ में वैराग्यपूर्वक विचार की विशेषता दिखा रहे हैं—कमल नारी[१] (कमोदनी) जल में उत्पन्न होती है फिर भी जल में न रहकर जल से ऊपर क्यों रहती है ? उत्तर-उसकी प्रीति जैसी चन्द्रमा में होती है, वैसी जल में नहीं होती। इसीलिये जल से ऊपर रहती है। वैसे ही वैराग्य-विचार द्वारा साधक के चित्त में जैसे परब्रह्म के लिये प्रीति होती है, वैसी संसार के लिये नहीं होती । अतः वह संसार में रह कर भी संसार से असंग ही रहता है।

दादू एक विचार सौं, सब तैं न्यारा होइ ।
मांहीं है पर मन नहीं, सहज निरंजन सोइ ॥ १० ॥

साधक वैराग्य-पूर्वक एक विचार-बल द्वारा सब संसार से अलग हो जाता है। यद्यपि शरीर संसार में ही रहता है किन्तु मन संसार में न रह कर निरन्तर राम के चिन्तन में ही रहता है और अनायास ही निरंजन ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है।

दादू गुण निर्गुण मन मिल रह्या, क्यों बेगर[१] ह्वै जाहि।
जहँ मन नाहीं सो नहीं, जहँ मन चेतन सो आहि ॥ ११ ॥

दैवीगुणों से रहित मूर्ख-मन विषयों में मिल रहा है, वह कैसे विरक्त[१] होकर परमात्मा की ओर जाय ? उत्तर-जिस वस्तु में मन नहीं होता, वह वस्तु उस के लिये नहीं के समान ही होती है और जिसमें मन सावधानी से लगा रहता है, वह उसके सामने रहती है। अतः वैराग्य-पूर्वक विचार द्वारा मन को परमात्मा में लगाने से वह विषयों से अलग होकर परमात्मा की ओर जाता है।

विचार

दादू सब ही व्याधि की, औषधि एक विचार ।
समझे तैं सुख पाइये, कोई कुछ कहो गँवार ॥ १२ ॥

१२-१५ में विचार की विशेषता कह रहे हैं—जन्म के पश्चात् ही सर्व व्याधियाँ होती हैं। ब्रह्म विचार द्वारा जन्माभाव होने से सर्व व्याधियों की औषधि एक विचार ही है। प्राणी को अपना वास्तविक स्वरूप समझने पर ही परमानन्द प्राप्त होता है, फिर चाहे कोई मूर्ख कुछ भी कहे, दुःख नहीं होता।

दादू इक निर्गुण इक गुणमयी, सब घट ये द्वै ज्ञान ।
काया का माया मिले, आतम ब्रह्म समान ॥ १३ ॥

सभी शरीरों में एक निर्गुण रूप और दूसरा सगुणरूप ये दो ज्ञान रहते हैं। जिसमें माया कृत शरीरादि का सगुण ज्ञान ही प्रधान होता है वह माया मय संसार में मिल कर जन्मता-मरता रहता है और जिस में निर्गुण आत्मा का निर्गुण ज्ञान प्रधान होता है, वह ब्रह्म समान ही होता है।

दादू कोटि अचारिन एक विचारी, तऊ न सरबरि[1] होइ ।
आचारी सब जग भरा, विचारी विरला कोइ ॥ १४ ॥

बाह्य स्नानादि आचारवान् कोटि व्यक्ति भी एक ब्रह्म विचारवान् के समान[1] नहीं हो सकते। आचारवान् व्यक्तियों से तो सर्व जगत् भरा है। विचारवान् ब्रह्म-ज्ञानी तो कोई विरला ही मिलता है।

दादू घट में सुख आनन्द है, तब सब ठाहर होइ ।
घट में सुख आनन्द बिन, सुखी न देख्या कोइ ॥ १५ ॥

विचार द्वारा जिसके अन्तःकरण में ब्रह्मानन्द प्राप्त है, तो उसे सभी स्थानों में आनन्द प्राप्त होता है और जिसके अन्तःकरण में वस्तु-जन्य सुख तथा ब्रह्मानन्द दोनों ही नहीं हैं, ऐसा व्यक्ति कोई भी सुखी नहीं देखा गया।

विरक्तता

काया लोक अनन्त सब, घट में भारी भीर ।
जहां जाइ तहाँ संग सब, दरिया पैली तीर ॥ १६ ॥

१६-२१ में विरक्तता का निर्देश कर रहे हैं—शरीर रूप लोक अनन्त हैं और शरीरों के अन्तःकरणों में कामादि की बहुत भीड़ रहती है। जिस शरीर में जाय, वहाँ ही कामादि सब विकार साथ में ही रहते हैं। अतः प्राणी संसार-सागर से पार कैसे जाय ?

काया माया ह्वै रही, जोधा बहु बलवन्त ।
दादू दुस्तर क्यों तिरे, काया लोक अनन्त ॥ १७ ॥

यह काया ही संसार से पार होने में इन्द्रजाल रूप माया के समान बाधक हो रही है। जैसे बाजीगर के खेल में मन जाता है, वैसे ही शरीर के पोषण, अध्यासादि में ही मन रुक जाता है और

कुछ बढ़ना भी चाहे तो कामादिक महा बलवान् योद्धा रोकने वाले बहुत हैं। अतः ये अनन्त शरीर रूप लोक दुस्तर हैं, इनसे कैसे पार हों ?

मोटी माया तज गये, सूक्ष्म लीये जाइ ।
दादू को छूटे नहीं, माया बड़ी बलाइ ॥ १८ ॥

घर, सम्पत्ति आदि स्थूल रूप माया को तो त्याग कर विरक्त भेष धारण कर लेते हैं किन्तु प्रतिष्ठा की वासना तथा राग-द्वेषादि रूप सूक्ष्म माया साथ ही ले जाते हैं। अतः यह माया महा विपत्ति है, इससे कोई भी नहीं बचता।

दादू सूक्ष्म मांहिंले, तिनका कीजे त्याग ।
सब तज राता राम सौं, दादू यहु वैराग ॥ १९ ॥

जो अन्तःकरण में अहंकार, प्रतिष्ठा की इच्छा, राग,द्वेष, विषय-वासनादि सूक्ष्म माया रूप गुण हैं, उन सब का त्याग करो। कर्तृत्वादि सभी विकारों को त्याग कर राम भजन में अनुरक्त होना, इसी का नाम वैराग्य है।

गुणातीत सो दर्शनी,आपा धरे उठाइ ।
दादू निर्गुण राम गह, डोरी लागा जाइ ॥ २० ॥

जो देहादिक अनात्म अहंकार को अन्त:करण से उठाकर दूर धर देता है और निरंतर ब्रह्माकार-वृत्ति अभ्यास रूप डोरी के साथ लगा हुआ अभ्यास बढ़ाता जाता है, इस प्रकार साधन की परिपाकावस्था में निर्गुण राम को स्वस्वरूप से ग्रहण करके गुणातीत होता है, वही संत दर्शन के योग्य है।

पिंड मुक्ति सबको करे, प्राण मुक्ति नहिं होइ ।
प्राण मुक्ति सद्‌गुरु करे, दादू विरला कोइ ॥ २१ ॥

शरीर को शीतोष्ण, दुर्बलतादि दु:खों से बचाना रूप वा देहपात होने पर पिंडादिक प्रदान रूप कर्म-कांड के द्वारा स्थूल शरीर की मुक्ति सभी करते हैं किन्तु प्राणी की जन्म-मरण रूप संसार से मुक्ति कोई नहीं करता। हां, कोई विरला सद्‌गुरु अपने ज्ञानोपदेश द्वारा सूक्ष्म-शरीर रूप प्राण की जन्मादि से मुक्ति करके आत्मा को ब्रह्म में अभेद करता है।

शिष्य जिज्ञासा-प्रश्न

दादू क्षुधा तृषा क्यों भूलिये, शीत तप्त क्यों जाइ।
क्यों सब छूटे देह गुण, सद्‌गुरु कहि समझाइ ॥ २२ ॥

२२ में शिष्य का प्रश्न है—हे सद्‌गुरों ! भूख, प्यास, आशा-तृष्णा, शीतोष्णादि, तथा राग-द्वेषादि देह के द्वन्द्व रूप सब गुणों से कैसे छुटकारा हो ? कृपया इसका उपाय सरल रीति से समझा कर कहिये।

उत्तर

मांहीं तैं मन काढ कर, ले राखे निज ठौर ।
दादू भूले देह गुण, बिसर जाइ सब और ॥ २३ ॥

२३-२६ में २२ में कथित प्रश्न का उत्तर दे रहे हैं—देहादिक से मन को निकाल कर स्वस्वरूप स्थान में स्थिर रखने से मन देह के गुणों को भूल जाता है और संपूर्ण मायिक प्रपंच को भी भूल जाता है।

नाम भुलावे देह गुण, जीव दशा सब जाइ।
दादू छाड़े नाम को, तो फिर लागे आइ॥ २४॥

निरंतर नाम-चिन्तन देह-गुणों को भुला देता है और निरंतर नाम-चिन्तन से ही ज्ञान होकर कर्तृत्व, भोक्तृत्व आदि संपूर्ण जीव भाव की अवस्था भी दूर हो जाती है, किन्तु नाम-चिन्तन को छोड़कर यदि मन सांसारिक विषयों में लग जायगा तो देह-गुण और जीव-भाव फिर आ लगेगा।

दादू दिन दिन राता राम सौं, दिन दिन अधिक सनेह।
दिन दिन पीवे रामरस, दिन दिन दर्पण देह॥ २५॥

प्रतिदिन राम-भजन में अनुरक्त रहे और प्रतिदिन राम में अधिक ही प्रेम बढ़ाता जाय। इस प्रकार प्रतिदिन राम-भजन-रस पान करने से प्रतिदिन ही द्वन्द्व रूप देह-गुणों को त्यागता हुआ अन्त:करण दर्पणवत् स्वस्वरूप साक्षात्कार में सहायक होगा।

दादू दिन दिन भूले देह गुण, दिन दिन इन्द्रिय नाश।
दिन दिन मन मनसा मरै, दिन दिन होइ प्रकाश॥ २६॥

राम-भजन के अभ्यास द्वारा प्रतिदिन ही मन देह-गुणों को भूलता जायगा। प्रतिदिन ही इन्द्रियों की विषयासक्ति तथा मन की सांसारिक इच्छायें नष्ट होती जायेंगी। इस प्रकार प्रतिदिन के अभ्यास से हृदय में ब्रह्म का प्रकाश प्रकट होकर जीवन्मुक्त होगा।

सजीवन

देह रहै संसार में, जीव राम के पास।
दादू कुछ व्यापै नहीं, काल झाल दुख त्रास॥ २७॥

२७-३० में जीवन्मुक्त का परिचय दे रहे हैं—शरीर संसार में रहे और जीवात्मा विचार द्वारा अभेद रूप से निरंजन राम के पास रहे तो उसे कालाग्नि की ज्वाला रूप आधि-व्याधि कुछ भी नहीं व्यथित करती।

काया की संगति तजे, बैठा हरि पद मांहिं।
दादू निर्भय ह्वै रहै, कोइ गुण व्यापै नांहिं॥ २८॥

शरीर का अध्यास त्याग कर जो परमात्मा के स्वरूप में स्थित रहता है, उस पर काम-क्रोधादिक किसी भी गुण का प्रभाव नहीं पड़ता। वह निर्भय होकर संसार में रहता है।

काया माहीं भय घणा, सब गुण व्यापैं आइ।
दादू निर्भय घर किया, रहै नूर में जाइ॥ २९॥

देह में आत्म-भ्रांति होने से जन्म-मरणादि बहुत भय हैं और कामादि सभी आसुरी गुण भी हृदय में आकर व्यथित करते हैं। इसीलिए संत-जनों ने देहाध्यास से दूर जाकर भय-रहित प्रकाश स्वरूप ब्रह्म को ही अपना घर बनाया है और उसी में अभेद रूप से रहते हैं।

खड्ग धार विष ना मरे, कोइ गुण व्यापै नांहिं।
राम रहै त्यों जन रहै, काल झाल जल मांहिं ॥ ३० ॥

प्रकाश-स्वरूप ब्रह्म में अभेद रूप से रहने वाला जीवन्मुक्त प्राणी तलवार की धार तथा हलाहल विष से भी नहीं मरता। न उसे आसुरी गुणों में से कोई गुण ही व्यथित कर सकता है। वह तो जैसे निरंजन राम सर्वदा निर्विकार रहते हैं, वैसे ही कालाग्नि की ज्वाला तथा जल में भी निर्विकार ही रहता है।

विचार

सहज विचार सुख में रहै, दादू बड़ा विवेक।
मन इन्द्रिय पसरे नहीं, अंतर राखे एक ॥ ३१ ॥

३१-४९ में विचार की विशेषता दिखा रहे हैं—जिसके मन-इन्द्रिय विषयों में नहीं जाते, जो चित्त को एक आन्तर आत्मा में ही रखता है और सहज स्वरूप ब्रह्म-विचार द्वारा ब्रह्मानन्द में ही निमग्न रहता है, उसका विवेक श्रेष्ठ है।

मन इन्द्रिय पसरे नहीं, अहनिश एकै ध्यान।
पर उपकारी प्राणिया, दादू उत्तम ज्ञान ॥ ३२ ॥

जिसका मन-इन्द्रिय विषयों में नहीं फैलता, वह दिन-रात एक परब्रह्म के ध्यान में ही अनुरक्त रहता है और जो सत्योपदेश द्वारा परोपकार करता रहता है, उस प्राणी का ज्ञान उत्तम है।

दादू मैं नांहीं तब नाम क्या, कहा कहावे आप।
साधो ! कहो विचार कर, मेटो तन की ताप ॥ ३३ ॥

नाम तो व्यष्टि-अहंकार युक्त व्यक्तियों के ही व्यवहार-सिद्धि के लिए रक्खे जाते हैं। जब व्यष्टि अहंकार से रहित हुआ, तब नाम क्या रक्खा जाय ? हे सन्तो ! विचार करके कहो ? 'मैं-तू' से रहित सबका अपना आप आत्मा किस नाम से पुकारा जायेगा ? उसका कोई नाम है ही नहीं। इस प्रकार अद्वैत विचार द्वारा भेद जन्य अन्त:करण की ताप को नष्ट करो।

जब समझ्या तब सुरझिया, उलट समाना सोइ।
कछू कहावै जब लगै, तब लग समझ न होइ ॥ ३४ ॥

जिस साधक ने जब अपने स्वरूप को समझा, तब वह ''मैं-तू'' आदि अहंकार से निकल कर तथा अपनी वृत्ति को परब्रह्म की ओर बदल कर परब्रह्म में ही समा गया। अत: जब तक अपने को कुछ भी कहलाने की भावना अन्त:करण में है, तब तक वास्तविक ब्रह्म-विचार उत्पन्न नहीं हुआ है, यही समझना चाहिए।

जब समझ्या तब सुरझिया, गुरुमुख ज्ञान अलेख।
ऊर्ध्व कमल में आरसी, फिर कर आपा देख ॥ ३५ ॥

जिस साधक ने सद्‌गुरु के मुख से ब्रह्म-ज्ञान सुनकर जब अपना स्वरूप समझा, तब वह भेद के फंद से निकल कर परब्रह्म को प्राप्त हुआ है। अत: हे साधक ! सद्‌गुरु का ज्ञान-दर्पण हृदय-कमल में धारण करके तथा अपनी वृत्ति को संसार से बदल कर उस दर्पण द्वारा अपने स्वरूप को देख।

प्रेम भक्ति दिन दिन बधै, सोई ज्ञान विचार ।
दादू आतम शोध कर, मथ कर काढया सार ॥ ३६ ॥

जिस ज्ञान के द्वारा प्रतिदिन प्रेमाभक्ति की वृद्धि हो, उसी ज्ञान का विचार कर। कारण, पूर्वकाल के साधकों ने प्रेमाभक्ति से अन्त:करण को मल-विक्षेप की निवृत्ति द्वारा शुद्ध तथा स्थिर करके फिर निदिध्यासन रूप मंथन से ब्रह्म का साक्षात्कार रूप सार निकाला था।

दादू जिहिँ बरियां यहु सब भया, सो कुछ करो विचार ।
काजी पंडित बावरे, क्या लिख बाँधे भार ॥ ३७ ॥

हे अज्ञात-तत्त्व काजी,पंडितो ! विद्या के अभिमान से मत्त हो, कर पुस्तकें लिख-लिख कर आपने क्या भार बाँध रक्खे हैं ? जिस समय यह सब संसार हुआ है, उस समय उस परमात्मा का स्वरूप कैसा था ? कुछ विचार करो।

प्रसंग कथा—सीकरी शहर अकबर बादशाह के दरबार में काजी तथा पंडितों की ईश्वर सम्बन्धी खेंचातान और उनके विद्या अहंकार को देख कर ३७ वीं साखी प्रश्न रूप से ही थी किन्तु सभासद, काजी, पंडित इसका कुछ भी उत्तर न देकर मौन ही रहे थे। इसका उत्तर इन्हीं के शिष्य बखनाजी ने अपनी वाणी में यह दिया है—''जिहिं बरियाँ यहु सब भया, सो हम किया विचार। बखना बरियां खुसी की, कर्त्ता सिरजनहार।।'' जिस समय यह संसार बना है, उस समय का हमने विचार किया है। वह सहज प्रसन्नता का था। अत: संसार-दशा से पूर्व परब्रह्म आनंद स्वरूप है। सर्व वाद-विवाद को छोड़कर उस आनंद स्वरूप का ही भजन करो।

जब यहु मन हीं मन मिल्या, तब कुछ पाया भेद।
दादू लेकर लाइये, क्या पढ़ मरिये वेद ॥ ३८ ॥

जब साधकों का यह मन अन्तर्मुख होकर साधन करने लगा, तब मन में ही यथार्थ ज्ञान प्राप्त हुआ और जब यथार्थ ज्ञान प्राप्त हुआ, तब ही ब्रह्म का जो कुछ रहस्यमय स्वरूप है, वह प्राप्त हुआ है। अत: केवल वेद-पाठ करने में ही क्या पच-पच कर मर रहे हो मन को अन्तर्मुख रूप स्थिति में लाकर परब्रह्म में वृति लगाओ, यह वेदाज्ञा मानो।

पाणी पावक पावक पाणी, जाणै नहीं अजान।
आदि रु अंत विचार कर, दादू जाण सुजान ॥ ३९ ॥

जल से विद्युत् रूप अग्नि उत्पन्न होती है और अग्नि से जल होता है, इसी प्रकार कारण-ब्रह्म से संसार-रूप कार्य होता है और विचार द्वारा संसार का मिथ्यात्व निश्चय होने पर कारण-ब्रह्म का ज्ञान होता है। अत: हे सुजान साधक ! संसार के आदि और अंत को विचार करके ब्रह्म का स्वरूप जान।

सुख मांहीं दुख बहुत हैं, दुख मांहीं सुख होइ।
दादू देख विचार कर, आदि अंत फल दोइ ॥ ४० ॥

मायिक-विषय-सुख में रत होने से जन्मादिक बहुत दुख भोगने पड़ते हैं और भगवद्-भजनादि साधन रूप दु:ख के अंत में ब्रह्म-प्राप्ति रूप अपार आनंद प्राप्त होता है। अत: हे साधक ! विचार करके देख, आदि सुख का फल अंत में दु:ख है तथा आदि दु:ख का फल अन्त में सुख मिलता है और तू सदा सुख ही चाहता है, इसलिए भगवद्-भजन में ही रत हो।

मीठा खारा, खारा मीठा, जाने नहीं गँवार।
आदि अंत गुण देखकर, दादू किया विचार ॥ ४१ ॥

विषय-सुख प्रथम प्रिय लगता है किन्तु शक्ति-क्षीणादि के कारण अंत में अप्रिय होता है। संयम प्रथम अप्रिय लगता है किन्तु शांतिप्रद होने से अन्त में प्रिय लगता है। मूर्ख प्राणी इस रहस्य को नहीं जानते। अत: विषय-सुख में ही प्रवृत्त होते हैं। सन्त-जनों ने उक्त प्रकार आदि और अन्त के गुणदोषों को देखकर ब्रह्म-विचार ही किया है।

कोमल कठिन कठिन है कोमल, मूरख मर्म न बूझै ।
आदि रु अंत विचार कर, दादू सब कुछ सूझै ॥ ४२ ॥

नारी-स्पर्शादि कोमल प्रतीत होते हैं किन्तु संसार-बन्धन के हेतु होने से अन्त में अति कठिन भासते हैं। संतों के यथार्थ वचन धारण करने में कठिन दीखते हैं, किन्तु धारण करने पर मुक्तिप्रद होने से कोमल भासते हैं। मूर्ख प्राणी इस रहस्य को नहीं समझते। उक्त प्रकार आदि अन्त का विचार करके देखने से ही भला बुरा सब कुछ दीखता है।

पहली प्राण विचार कर, पीछे पग दीजे ।
आदि अंत गुण देखकर, दादू कुछ कीजे ॥ ४३ ॥

प्राणी को प्रथम अपने हृदय में विचार करके पीछे ही किसी मार्ग में पैर रखना चाहिए और विचार द्वारा आदि-अंत के गुण-दोषों को देखकर के ही जो कुछ करना हो, वह करना चाहिए।

पहली प्राण विचार कर, पीछे चलिये साथ ।
आदि अंत गुण देखकर, दादू घाली हाथ ॥ ४४ ॥

प्राणी को प्रथम व्यक्ति के स्वभाव, व्यवहार का विचार करके ही पीछे उसके साथ चलना चाहिए। कोई भी कार्य हो, उसके आदि अन्त के गुण-दोषों को देख करके ही उसमें प्रवृत्त होना चाहिए।

पहली प्राण विचार कर, पीछे कुछ कहिये ।
आदि अंत गुण देखकर, दादू निज गहिये ॥ ४५ ॥

प्राणी को कहने योग्य बात का परिणाम प्रथम विचार करके पीछे ही कुछ कहना चाहिए और दूसरे के वचनों को भी उनका आदि-अन्त में फलाफल रूप गुण-दोषों का विचार करके ही अपने हृदय में ग्रहण करना चाहिए।

पहली प्राण विचार कर, पीछे आवै जाइ ।
आदि अंत गुण देख कर, दादू रहै समाइ ॥ ४६ ॥

प्राणी को प्रथम विचार करके ही मायिक संसार में वा परमात्मा की ओर आना-जाना चाहिए। विचार करने पर आदि-अन्त तक संसार में बाँधने वाले गुण ही मिलेंगे। उन्हें बाँधने वाले देखकर साधन द्वारा निर्गुण ब्रह्म की ओर जाकर उसी में समा कर रहना चाहिए।

दादू सोच करे सो सूरमा, कर सोचे सो कूर ।
कर सोच्याँ मुख श्याम ह्वै, सोच कियाँ मुख नूर ॥ ४७ ॥

जो व्यावहारिक वा पारमार्थिक कार्यों को भली प्रकार उनका परिणाम विचार करके करता है, वह कार्य करने में वीर माना जाता है। जो परिणाम को बिना विचारे करता है, वह मूर्ख माना जाता है। कार्य करके परिणाम विपरीत निकलने पर जो विचार करता है-'मैं ऐसा न करता तो यह दुःख मुझ पर नहीं आता', उसका मुख मलीन होता है और जो विचार करके कार्य करता है, परिणाम सुन्दर होने से उसका मुख प्रसन्न रहता है।

जो मति पीछे ऊपजै, सो मति पहली होइ ।
कबहुं न होवै जीव दुखी, दादू सुखिया सोइ ॥ ४८ ॥

कार्य के बिगड़ने पर जो विचार उत्पन्न होते हैं, वे विचार यदि कार्य के आरंभ से प्रथम ही उत्पन्न हो जायँ तो जीव कभी भी दुखी नहीं हो सकता, सुखी ही रहेगा।

आदि अंत गाहन किया, माया ब्रह्म विचार ।
जहँ का तहँ ले दे धरया, दादू देत न बार ॥ ४९ ॥

इति विचार का अंग समाप्त ॥ १८ ॥ सा. १७९४ ॥

विचार के अंग की आदि साखी से अन्त की साखी तक हमने विचार द्वारा मंथन करके छाछ और मक्खन के समान माया को उसके लक्षणों द्वारा मिथ्या बताकर त्यागने योग्य स्थिति में रक्खा है और ब्रह्म को अविनाशी निश्चय करके अभेद रूप से ग्रहण करने की स्थिति में रक्खा है। अब जिज्ञासु को ब्रह्म-बोध प्रदान करने में गुरुजनों को कुछ भी देर न लगेगी।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका विचार का अंग समाप्तः ॥ १८ ॥

अथ विश्वास का अंग १९

विचार-अंग के अनन्तर विश्वास की दृढ़ता के लिए 'विश्वास का अंग' कहने में प्रवृत्त मंगल कर रहे हैं—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत: ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक विचार में दृढ़ विश्वास करके संसार से पार होते हैं, उन निरंजन राम, सद्गुरु और सर्व संतों को हम अनेक प्रणाम करते हैं।

दादू सहजैं सहजैं होइगा, जे कुछ रचिया राम ।
काहे को कलपे मरे, दुखी होत बेकाम ॥ २ ॥

२-१४ में विश्वास की दृढ़तार्थ विचार कर रहे हैं—हमारे कर्मों के अनुसार भगवान् ने जो कुछ विधान बना दिया है, वही शनै: शनै: हमारे सामने आता है। अत: प्रतिकूलता आने पर क्यों नाना कल्पना से व्याकुल होकर निष्प्रयोजन दुखी होते हो ?

सांई किया सो ह्वै रह्या, जे कुछ करे सो होइ ।
कर्ता करे सो होत है, काहे कलपे[1] कोइ ॥ ३ ॥

कर्मानुसार भगवान् ने जो विधान किया है वही हो रहा है, आगे भी जो कुछ करेंगे वही होगा। भगवान् जो करते हैं वही होता है, फिर क्यों कोई दुखी[1] होता है।

दादू कहै-जे तैं किया सो ह्वै रह्या, जे तूं करे सो होइ ।
करण करावण एक तूं, दूजा नांहीं कोइ ॥ ४ ॥

हे प्राणी ! हम तुझे यथार्थ ही कहते हैं—जो तूने पहले कर्म किये हैं, उन्हीं का फल तुझे सुख-दु:ख हो रहा है। अब जो कर रहा है उनका फल आगे होगा। अत: अपने सुख-दु:ख के हेतु कर्मों का करने-कराने वाला एक मात्र तू ही है। दूसरा कोई नहीं।

सोई हमारा सांइयां, जे सबका पूरणहार ।
दादू जीवन मरण का, जाके हाथ विचार ॥ ५ ॥

जो सम्पूर्ण प्राणियों का भरण-पोषण करने वाला है और जिसके हाथ में संसार की उत्पत्ति-विनाश है, वही परमात्मा हमारा स्वामी है, यही हमारा दृढ़ विचार है।

दादू स्वर्ग भुवन पाताल मधि, आदि अंत सब सृष्ट।
सिरज सबन को देत है, सोइ हमारा इष्ट ॥ ६ ॥

स्वर्ग, पातालादि चौदह भुवनों में सब सृष्टि रच कर सृष्टि के आदि से अन्त तक सबको अन्नादिक देते हैं, वे परमात्मा ही हमारे इष्टदेव हैं।

करणहार कर्ता पुरुष, हमको कैसी चिन्त ।
सब काहू की करत है, सो दादू का मिन्त ॥ ७ ॥

सृष्टि की रचना करने वाले परमात्मा सृष्टि रच कर सभी के भरण-पोषण की सँभाल करते हैं, वे ही हमारे प्रिय मित्र हैं फिर हमारे भरण-पोषण की हमको कैसी चिन्ता है ?

दादू मनसा वाचा कर्मणा, साहिब का विश्वास।
सेवक सिरजनहार का, करे कौन की आस ॥ ८ ॥

परमात्मा का भक्त किस की आशा करेगा ? किसी की भी नहीं। उसे तो मन वचन कर्म से परमात्मा पर ही दृढ़ विश्वास रहता है।

श्रम ना आवे जीव को, अणकीया सब होइ ।
दादू मारग महर का, विरला बूझे कोइ ॥ ९ ॥

जीव के कुछ न करने पर भी दयालु परमात्मा की ओर से उसके भरण-पोषण की सब व्यवस्था हो जाती है और उसे कुछ भी परिश्रम नहीं होता, किन्तु इस भगवान् की दया के मार्ग को कोई विरला सन्त ही समझता है।

दादू उद्यम[१] अवगुण को नहीं, जे कर जाने कोइ ।
उद्यम में आनन्द है, जे सांई सेती होइ ॥ १० ॥

९ वीं साखी में शंका होती है—'क्या जीव उद्योग न करे ?' उसका उत्तर १० में दे रहे हैं। यदि कोई कर जाने तो उद्योग[१] करने में कोई दोष नहीं। सत्कर्म का उद्योग करना चाहिए और यदि परब्रह्म की प्राप्ति के लिए उद्योग हो, तब तो नित्यानन्द ही प्राप्त होता है।

दादू पूरणहारा पूरसी, जो चित रहसी ठाम ।
अंतर तैं हरि उमंग सी, सकल निरंतर राम ॥ ११ ॥

यदि मन विश्वास-पूर्वक परम धाम रूप परब्रह्म के स्वरूप में स्थिर रहेगा, तो विश्व का भरण-पोषण करने वाला परमात्मा उसका योग-क्षेम अवश्य करेगा तथा हृदय से परब्रह्म का यथार्थ अनुभव ज्ञान प्रकट होगा, जिससे जड़-चेतन संसार में निरंतर निरंजन राम का ही साक्षात्कार होता रहेगा।

पूरक पूरा पास है, नाहीं दूर गँवार।
सब जानत हैं बावरे, देबे को हुसियार ॥ १२ ॥

हे मूर्ख ! भक्तों की कामना पूर्ण करनेवाला पूर्ण ब्रह्म व्यापक होने से पास ही है, दूर नहीं है। हे बावरे ! वह हृदय की सभी भावनाओं को जानता है और देने योग्य वस्तुओं को देने में सर्वदा सावधान रहता है।

दादू चिन्ता राम को, समर्थ सब जाने ।
दादू राम सँभाल ले, चिन्ता जनि आने ॥ १३ ॥

समर्थ राम सब जानते हैं, जीवों के भरण-पोषण की चिन्ता उन्हें है। हे साधक ! तू तो निरंतर राम का चिन्तन ही कर, खान-पानादि की चिन्ता हृदय में मत आने दे।

दादू चिन्ता कीयां कुछ नहीं, चिन्ता जीव को खाइ ।
होना था सो ह्वै रह्या, जाना है सो जाइ ॥ १४ ॥

जो होना था सो हो रहा है, जो जाने वाला है वह जायेगा। चिन्ता करने से कुछ नहीं होता, चिन्ता तो उलटा हृदय जलाती है। अत: चिन्ता नहीं करनी चाहिए।

पोष-प्रतिपाल-रक्षक

दादू जिन पहुँचाया प्राण को, उदर ऊर्ध्व मुख क्षीर ।
जठर अग्नि में राखिया, कोमल काय शरीर ॥ १५ ॥

१५-२५ में पोषण द्वारा प्रतिपालना करने वाले रक्षक परमात्मा का उपकार दिखा रहे हैं—जिस परमात्मा ने गर्भवास में ऊंचे पैर करके औंधे लटकते हुये प्राणी के मुख में पोषक-रस पहुँचाया और माता के पेट में बद्ध कोमल काया को जठराग्नि से बचाया, वह रक्षक सदा साथ ही है, उस पर विश्वास रखना चाहिए।

सो समर्थ संगी संग रहै, विकट घाट घट भीर ।
सो सांई सौं गहगही[1], जनि भूले मन बीर[2] ॥ १६ ॥

वह समर्थ परमात्मा ही तेरा साथी है, जन्म के समय योनि रूप भयंकर घाट में जब गला घुटने से अत्यधिक कष्ट होता है, तब भी संग रहकर वही तेरा संकट हरता है। अत: हे मन भैया[2] ! मायिक मोह में पड़कर परमात्मा को मत भूल, उससे गहरी[1] प्रीति कर।

गोविन्द के गुण चिंत कर, नैन बैन पग शीश।
जिन मुख दीया कान कर, प्राणनाथ जगदीश ॥ १७ ॥

जिन प्राणनाथ जगदीश्वर ने कृपा करके तुझे नेत्र, वचन, पैर, शिर, मुख, श्रवण और हाथ दिये हैं, उन गोविन्द के उपकार रूप गुणों को मन में स्मरण करके उनकी भक्ति कर।

तन मन सौंज[1] सँवार सब, राखै विसवा बीस ।
सो साहिब सुमिरै नहीं, दादू भान हदीस[2] ॥ १८ ॥

जो तेरी तन-मनादि स्थूल-सूक्ष्म सामग्री[1] को सजा कर बिल्कुल ठीक रखता है और जिसके आगे गर्भवास में तूने बात की थी-''मुझे अब बाहर निकालो, मैं आपका भजन करूंगा'', उस बात[2] को भंग करके मायिक मोह में पड़ रहा है, उस परमात्मा का स्मरण नहीं करता, यह उचित नहीं है।

दादू सो साहिब जनि बीसरे, जिन घट दीया जीव ।
गर्भवास में राखिया, पाले पोषे पीव ॥ १९ ॥

जिस परमात्मा ने शरीर में प्राण डाल कर गर्भवास में रक्षा की और जो सदा पालन-पोषण करता रहता है, उस परमात्मा को कभी नहीं भूलना चाहिए।

दादू राजिक[1] रिजक[2] लिये खड़ा, देवे हाथों हाथ ।
पूरक पूरा पास है, सदा हमारे साथ ॥ २० ॥

रोजी[१] देने वाला ईश्वर भोजन, कार्य आदि जीविका[२] लिये खड़ा है और हाथों हाथ देता है। वह भक्तों की आशा पूर्ण करने वाला पूर्ण ब्रह्म व्यापक होने से हमारे पास है और सदा साथ ही रहता है।

हिरदै राम सँभाल ले, मन राखे विश्वास।
दादू समर्थ सांइयां, सबकी पूरे आस॥ २१॥

मन में पूर्ण विश्वास रखते हुये हृदय में स्थित आत्माराम का स्मरण करो, वह समर्थ परमात्मा सबकी आशा पूर्ण करता है।

दादू सांई सबन को, सेवक ह्वै सुख देइ।
अया[१] मूढ़ मति जीव की, तो भी नाम न लेइ॥ २२॥

परमात्मा सेवक के समान सबकी सेवा करते हुए सबको सुख देता हैं, तो भी उसका नाम स्मरण नहीं करते। अत: प्रत्यक्ष[१] ही जीवों की बुद्धि मूर्खता-पूर्ण है।

दादू सिरजनहारा सबन का, ऐसा है समरत्थ।
सोई सेवक ह्वै रह्या, जहँ सकल पसारैं हत्थ॥ २३॥

जो संपूर्ण विश्व को रचने वाला है, जिसके आगे सभी हाथ बढ़ा कर याचना करते हैं, ऐसा जिसका बल है, वही परमात्मा दया-वश सबका सेवक होकर भरण-पोषण कर रहा है।

धन[१] धन साहिब तू बड़ा, कौन अनूपम रीत।
सकल लोक शिर सांइयां, ह्वै कर रह्या अतीत[२]॥ २४॥

हे परमेश्वर! आप महान् हैं, संपूर्ण लोकों के शिरोमणियों के भी आप स्वामी हैं। फिर भी सबके गुण दोषों से अलग[२] होकर रहते हैं। यह आपकी कैसी अनुपम रीति है। अत: आपको बारंबार धन्यवाद[१] है।

दादू हूं बलिहारी सुरति की, सबकी करै सँभाल।
कीड़ी कुंजर पलक में, करता है प्रतिपाल॥ २५॥

जो पल भर में कण खाने वाली चींटी को कण भर और मण खाने वाले हाथी को मण भर में भोजन देकर रक्षा करता हैं और इसी प्रकार सब की सँभाल करता है, मैं उस परमात्मा की दयालु-वृत्ति पर वा उसके प्रतिपालक स्वरूप पर बलिहारी जाता हूँ।

छाजन-भोजन

दादू छाजन भोजन सहज में, संइयां देइ सो लेइ।
तातैं अधिका और कुछ, सो तूं कांई करेइ॥ २६॥

२६-३९ में वस्त्र-भोजन विषयक विचार कर रहे हैं—हे साधक! सहज स्वभाव से जो भगवान् दे, वे ही वस्त्र-भोजन संतोष पूर्वक ग्रहण करके भजन कर, उनसे अधिक अन्य जो कुछ है, उनका तू क्या करेगा? वे तो तेरे भजन में विघ्न ही करेंगे।

दादू टूका सहज का, संतोषी जन खाइ ।
मृतक भोजन, गुरुमुखी ! काहे कलपे जाइ ॥ २७ ॥

गुरु आज्ञा में चलने वाले संतोषी साधक जन, सहज स्वभाव से प्राप्त रोटी के टुकड़े को खाकर भजन करें, अच्छे भोजन की कल्पना करके श्राद्धादि मृतक-भोजन के लिये नहीं जायँ।

दादू भाड़ा देह का, तेता सहज विचार ।
जेता हरि बिच अंतरा, तेता सबै निवार ॥ २८ ॥

सहज स्वभाव से प्राप्त में भी विचार करके शरीर के निर्वाह मात्र सात्त्विक पदार्थ ही ग्रहण करें और भगवान् के भजन में विघ्न डालने वाले जो राजस-तामस पदार्थ हैं, उन को त्याग दें।

दादू जल दल राम का, हम लेवैं परसाद ।
संसार का समझैं नहीं, अविगत भाव अगाध ॥ २९ ॥

हम मन इन्द्रियों के विषय परमात्मा के अगाध प्रेम में लीन रहते हुये अन्न-जल को निरंजन राम का प्रसाद मान कर ही ग्रहण करते हैं। संसारी प्राणियों का नहीं समझते।

परमेश्वर के भाव का, एक कणूंका खाइ ।
दादू जेता पाप था, भर्म कर्म सब जाइ ॥ ३० ॥

परमेश्वर के पूर्ण प्रेम और दृढ़ विश्वास युक्त-व्यक्ति द्वारा अर्पण किये हुये प्रसाद का दृढ़ विश्वास और प्रेम से यदि एक कण भी खाया जाय तो पहले जितना हृदय में पाप था वह और आगे होने वाला निषिद्ध कर्म और अज्ञान सब नष्ट हो जाते हैं।

दादू कौण पकावे कौण पीसे, जहाँ तहां सीधा ही दीसे ॥ ३१ ॥

अनेक संतों को साथ में देखकर किसी ने प्रश्न किया था—आपके यहां कौन पीसता है और कौन पकाता है ? उसका उत्तर दे रहे हैं-जहां तहां बना-बनाया ही भोजन संतों की दृष्टि के सामने आता है, फिर कौन पीसे पकायेगा ?

दादू जे कुछ खुसी खुदाइ की, होवेगा सोई ।
पच पच कोई जनि मरे, सुन लीज्यो लोई[१] ॥ ३२ ॥

हे लोगो[१] ! ध्यान देकर सुनो ! भगवान् की भक्ति व विश्वास को छोड़कर क्यों कोई सांसारिक कार्यों में ही पच-पच कर मरे ? होगा तो वही जो भगवान् की इच्छा होगी।

दादू छूट[१] खुदाइ[२] कहीं को नाहीं, फिर हो पृथ्वी सारी ।
दूजी[३] दहन[४] दूर कर बोरे[५] ! साधू शब्द विचारी ॥ ३३ ॥

चाहे सारी पृथ्वी में कहीं भी फिर आओ, किन्तु भगवान्[२] को छोड़[१] कर अन्य कोई भी संसार-दु:ख से छुड़ाने वाला नहीं है। अत: हे भोले[५] प्राणी ! विश्वास पूर्वक संतों के ज्ञान पूर्ण-शब्द विचार द्वारा द्वैत[३] की दाह को हृदय से दूर हटा।

दादू बिना राम कहीं को नांहीं, फिर हो देश विदेशा ।
दूजी दहन दूर कर बोरे ! सुन यहु साधु संदेशा ॥ ३४ ॥

चाहे देश-विदेश कहीं भी फिर आओ किन्तु राम के बिना तुम्हारा सच्चा हितैषी कोई भी नहीं है, हे भोले साधक ! यह संतों का संदेश श्रवण करके तथा हृदय से द्वैत की दाह को दूर हटा कर विश्वास-पूर्वक निरंजन राम का ही स्मरण कर।

दादू सिदक[1] सबूरी[2] साँच गह, साबित राख यकीन[3] ।
साहिब सौं दिल लाइ रहु, मुरदा ह्वै मस्कीन[4] ॥ ३५ ॥

पूरा विश्वास[3] रख कर सत्यता[1] तथा सच्चा संतोष[2] ग्रहण कर और मुर्दा के समान निरहंकार गरीब[4] होकर परमात्मा के भजन में मन लगा कर संसार में रह।

दादू अनबाँछित टूका खात हैं, मर्महि लागा मन ।
नाम निरंजन लेत हैं, यों निर्मल साधू जन ॥ ३६ ॥

मन रहस्य-मय ब्रह्म, विचार में लगा रहता है निरंतर निरंजन का नाम लेते रहते हैं। बिना इच्छा ही सहज स्वभाव से जो टुकड़ा मिल जाता है, उसे ही खाकर संतुष्ट रहते हैं। ऐसे व्यवहार से ही संतजन सदा निर्मल रहते हैं।

अनबाँछा आगे पड़े, खिरा[1] विचार रु खाइ ।
दादू फिरे न तोड़ता, तरुवर ताक[2] न जाइ ॥ ३७ ॥

सहज स्वभाव से बिना इच्छा जो अन्न, भोजन के समय सामने आ जाये, उसे ही वृक्ष से गिरे[1] हुये फल के समान जान कर तथा सात्त्विकता का विचार करके संतोष पूर्वक खाय। जैसे साधारण मानव अच्छे फल वाले वृक्ष को देख[2] कर उसके फल तोड़ने जाते हैं, वैसे ही अच्छा अन्न देने वालों के यहां ही माँगता न फिरे।

अनबाँछा आगे पड़े, पीछे लेइ उठाइ ।
दादू के शिर दोष यहु, जे कुछ राम रजाइ[1] ॥ ३८ ॥

बिना इच्छा ही वस्त्र-भोजनादि जो कुछ आ जाये तो फिर उन्हें ग्रहण कर ले और जो कोई न माँगने का दोष शिर पर लगावे तो उसे कह दे—''भाई। जो राम की आज्ञा[1] होती है, वैसा ही होता है।''

अनबाँछी अजगैब[1] की, रोजी[2] गगन[3] गिरास[4] ।
दादू सत कर लीजिये, सो सांई के पास ॥ ३९ ॥

बिना इच्छा अनजान में अकस्मात्[1] जो भोजन[2]-वस्त्रादि प्राप्त हों, उन्हें परब्रह्म[3] का सच्चा प्रसाद[4] मानकर विश्वास पूर्वक ग्रहण करो। वह प्रसाद परब्रह्म के पास पहुँचाने वाला है।

कर्ता कसौटी

मीठे का सब मीठा लागे, भावै विष भर देइ ।
दादू कड़वा ना कहै, अमृत कर कर लेइ ॥ ४० ॥

४०-४१ में परीक्षार्थ प्रेम-पात्र का कटु व्यवहार भी प्रिय लगता है, यह कहते हैं—प्रियतम परमात्मा का दिया हुआ प्रसाद सब प्रिय ही लगता है। चाहे वह उसमें विष भरके ही दे, तो भी संत उसे कटु नहीं कहते, अमृत मान कर हाथ में लेते हैं और खा जाते हैं।

विपत्ति भली हरि नाम सौं, काया कसौटी दु:ख ।
राम बिना किस काम का, दादू संपत्ति सुख ॥ ४१ ॥

हरिनाम का चिन्तन करते समय, यदि राम शरीर को कष्ट देकर परीक्षा भी करे तो भी वह विपत्ति हमारे लिये अच्छी ही है। कारण, राम-भजन बिना संपत्ति-सुख किस काम का है ?

बेसास-संतोष

दादू एक बेसास बिन, जियरा डावाँ डोल ।
निकट निधि दुख पाइये, चिन्तामणि अमोल ॥ ४२ ॥

४२-४८ में विश्वास तथा संतोष की विशेषता दिखाकर धारण करने की प्रेरणा कर रहे हैं—चिन्तामणि रूप अमूल्य निधि परमात्मा अति निकट हृदय में ही है, किन्तु फिर भी एक विश्वास बिना चित्त चंचल रहने से प्राणी दुःख ही पाता है।

दादू बिन बेसासी जीयरा, चंचल नांहीं ठौर ।
निश्चय निश्चल ना रहै, कछू और की और ॥ ४३ ॥

बिना विश्वास के जीव का चंचल चित्त दृढ़ निश्चयपूर्वक भगवन्नाम-चिन्तन रूप स्थान पर निश्चल नहीं रहता, कुछ अन्यान्य वस्तुओं का ही चिन्तन करता रहता है।

दादू होना था सो ह्वै रह्या, स्वर्ग न बाँछी धाइ ।
नरक कने थी ना डरी, हुआ सो होसी आइ ॥ ४४ ॥

जो होने वाला था, वही हो रहा है। होनहार से दौड़कर स्वर्ग-सुख की इच्छा न करो और न नरक-दु:ख पास आने से डरो। जो अपने से भला-बुरा कर्म हुआ है, उसी का फल हमें सुख-दु:ख होगा।

दादू होना था सो ह्वै रह्या, जनि बाँछे सुख दु:ख।
सुख माँगे दुख आइसी, पै पिव न विसारी मुख ॥ ४५ ॥

होनहार था, वह हो रहा है, कोई भी साधक सुख दु:ख की इच्छा न करे, कारण, सुख मांगने से दु:ख अवश्य आयेगा। सांसारिक सुख-दु:ख रात्रि-दिन के समान एक के पश्चात् एक आता ही है परन्तु प्रत्येक परिस्थिति में निष्काम भाव से मुख द्वारा परमात्मा का नाम उच्चारण करना न भूलना चाहिए।

दादू होना था सो ह्वै रह्या, जे कुछ कीया पीव।
पल बधे न छिन घटे, ऐसी जानी जीव ॥ ४६ ॥

जो भी परमात्मा ने विधान किया है, उस विधान के अनुसार जो होनहार था, वही हो रहा है और जो जीव की आयु निश्चित हो गई है, उससे न तो एक पल बढ़ सकती और न घट सकती। हमने हृदय में ऐसी ही बात निश्चयपूर्वक जानी है।

दादू होना था सो ह्वै रह्या, और न होवे आइ।
लेना था सो ले रह्या, और न लीया जाइ ॥ ४७ ॥

जो होनहार था, वही हो रहा है, और अनहोना आकर कुछ होगा नहीं। हमें जो निरंजन का नाम लेना था, वह ले रहे हैं। अन्य देवी-देवताओं के नाम व धन-संपत्ति आदि हमसे नहीं लिया जायेगा।

ज्यों रचिया त्यों होइगा, काहे को शिर लेह।
साहिब ऊपरि राखिये, देख तमासा येह ॥ ४८ ॥

हे साधक ! जैसे भगवान् ने रच दिया है, वैसे ही होगा। ''मैं करता हूँ वा करूंगा'' ऐसा अभिमान रूप भार तू अपने शिर पर क्यों लेता है ? करने-कराने आदि का भार ईश्वर पर ही रखकर भगवद्-भजन करते हुये तटस्थ रूप से, यह संसार रूप खेल देख।

पतिव्रत निष्काम

ज्यों जानो त्यों राखियो, तुम शिर डाली[१] राइ[२]।
दूजा को देखूं नहीं, दादू अनत[३] न जाइ ॥ ४९ ॥

४९-५१ में निष्काम पतिव्रत रूप अनन्यता दिखा रहे हैं—हे विश्व के राजा[२] परमेश्वर ! आप जैसे हमें जानते हैं, वैसे ही हमारी रक्षा करना। हमने तो हमारी जीवन डोरी आप के भरोसे पर ही छोड़[१] रखी है। हम न अन्य[३] स्थान पर जायेंगे और न आपको छोड़ कर रक्षार्थ दूसरे की ओर देखेंगे।

ज्यों तुम भावै त्यों खुसी, हम राजी उस बात।
दादू के दिल सिदक[१] सौं, भावै दिन को रात ॥ ५० ॥

हे परमेश्वर ! जैसे आप को अच्छा लगे, वैसे ही ढंग से रहने में हम प्रसन्न हैं और आप जो बात कहेंगे, उसी बात को मानने में हमें प्रसन्नता होगी। चाहे आप दिन को रात कहेंगे तो हम भी सच्चे[१] दिल से उसे रात कहेंगे।

दादू करणहार जे कुछ किया, तो बुरा न कहना जाइ ।
सोई सेवक संत जन, रहबा राम रजाइ ॥ ५१ ॥

सृष्टि-कर्ता परमेश्वर ने जो कुछ भी अपने कर्मानुसार सुख-दु:ख का विधान कर दिया है, उसे किसी के आगे जाकर यह मत कहो—''परमात्मा ने यह अच्छा नहीं किया।'' जो राम की आज्ञा में रहते हैं, वे ही जन भक्त तथा संत कहलाते हैं।

विश्वास-संतोष

दादू कर्ता हम नहीं, कर्ता औरै कोइ ।
कर्ता है सो करेगा, तूं जनि कर्ता होइ ॥ ५२ ॥

संत का विश्वास प्रदर्शन पूर्वक साधक को संतोष की प्रेरणा कर रहे हैं—हम कर्त्ता नहीं हैं, कर्त्ता तो अन्य ही कोई है अर्थात् कर्म-फल विधान का कर्त्ता ईश्वर है और कर्म का कर्त्ता स्थूल-

सूक्ष्म संघात है। हे साधक ! तेरा स्वरूप स्थूल-सूक्ष्म संघात तो नहीं है, फिर तू कर्त्ता क्यों बन रहा है ?

हरि-भरोस

काशी तज मगहर गया, कबीर भरोसे राम ।
सैंदेही सांई मिल्या, दादू पूरे काम ॥ ५३ ॥

५३-५६ में हरि का विश्वास दिखा रहे हैं—काशी में कुछ लोगों ने यह बात प्रचलित की थी—''काशी का माहात्म्य ऐसा है, जो कबीर भी मुक्त हो जायेगा।'' कबीर जी को राम का भरोसा था, काशी का नहीं। अत: वे काशी को त्याग कर बस्ती जिले के 'मगहर' ग्राम में चले गये थे और अन्तिम समय में अपने स्थूल शरीर के सहित परमेश्वर में जा मिले थे। राम के भरोसे ही उनके सब काम पूर्ण हुये थे। कहते हैं - मगहर में मरने वाले की मुक्ति नहीं होती।

दादू रोजी[१] राम है, राजिक[२] रिजक[३] हमार।
दादू उस परसाद सौं, पोष्या सब परिवार ॥ ५४ ॥

हमारा भाग्य[१] राम ही है और आजीविका[३] भी सबका भरण-पोषण करने वाला परमात्मा[२] ही है। उस परमात्मा के कृपा-प्रसाद से ही हमने अपने इन्द्रिय अन्त:करण रूप परिवार का पोषण किया है।

पंच संतोषे एक सौं, मन मतिवाला मांहिं।
दादू भागी भूख सब, दूजा भावे नांहिं ॥ ५५ ॥

जब सत्संग द्वारा मन सद्बुद्धि वाला हुआ, तब अन्तर्मुख होकर भगवद्-भजन में लगा। फिर तो पंच ज्ञानेन्द्रिय आदि भी एक मात्र भगवत्-परायण होकर संतुष्ट हो गये। संसारी भोगों की इच्छा सब नष्ट हो गई। अत: अब भगवान् को छोड़कर अन्य कुछ भी अच्छा नहीं लगता।

दादू साहिब मेरे कापड़े, साहिब मेरा खाण।
साहिब शिर का ताज है, साहिब पिंड पराण ॥ ५६ ॥

संपूर्ण विश्व के स्वामी परमात्मा ही हमारे वस्त्र, भोजन, शिर के मुकुट, शरीर, प्राणादि सर्वस्व हैं।

विनती

सांई सत[१], संतोष दे, भाव[२], भक्ति विश्वास।
सिदक[३], सबूरी[४], साँच[५] दे, माँगे दादू दास ॥ ५७ ॥

इति बेसास का अंग समाप्त ॥ १९ ॥ सा. १८५१ ॥

दैवीगुण, भक्ति तथा स्वरूप प्राप्ति के लिए प्रार्थना कर रहे हैं—हे परमेश्वर ! मैं आप से येही अष्टसिद्धियाँ माँगता हूँ—मुझे आप अडिगता[१], संतोष, श्रद्धा[२], अनन्य-भक्ति, दृढ़ विश्वास, सत्यता[३], मिताहार-बुद्धि[४] और अपने सत्य-स्वरूप[५] स्वरूप के दर्शन दें।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका विश्वास का अंग समाप्त: ॥ १९ ॥

अथ पीव पहचान का अंग २०

विश्वास-अंग के अनन्तर, परमात्मा के स्वरूप परिचयार्थ 'पीव पिछाण का अंग' कहने में प्रवृत्त हुये मंगल कर रहे हैं—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत: ।
वंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक परमात्मा के स्वरूप को पहचान कर संसार से पार हो, परब्रह्म को प्राप्त होता है, उन निरंजन राम, सद्गुरु और सब संतों को हम अनेक प्रणाम करते हैं।

सारों के शिर देखिये, उस पर कोई नांहिं ।
दादू ज्ञान विचार कर, सो राख्या मन मांहिं ॥ २ ॥

२-१७ में प्रभु पहचान के विचार दिखा रहे हैं—जो सर्व शिरोमणि है, जिससे महान् अन्य कोई भी नहीं है, संतों ने ब्रह्म-ज्ञान विचार द्वारा उस परब्रह्म को ही अभेद रूप से अपने मन में धारण किया है।

सब लालों शिर लाल[१] है, सब खूबों शिर खूब[२] ।
सब पाकों शिर पाक[३] है, दादू का महबूब[४] ॥ ३ ॥

जो संपूर्ण प्रियतमों से भी अधिक प्रियतम[१] है, संपूर्ण श्रेष्ठों से अति श्रेष्ठ[२] है, संपूर्ण पवित्रों से अति पवित्र[३] है, वह परब्रह्म ही हमारा प्रेम-पात्र[४] है।

एक तत्त्व ता ऊपरि इतनी, तीन लोक ब्रह्मंडा ।
धरती गगन पवन अरु पानी, सप्त द्वीप नौ खंडा ॥ ४ ॥

४-६ में तुम किस के बन्दे हो ? इसका उत्तर दे रहे हैं—जो एक अद्वैत तत्त्व स्वरूप ब्रह्म है और आकाश, वायु, अग्नि, जल, सप्तद्वीप (१ जम्बू २ प्लक्ष ३ कुश ४ शाल्मलि ५ क्रौंच ६ शाक ७ पुष्कर), नव खंड (१ उत्कल २ हिरण्य ३ भद्रश्व ४ केतुमाल ५ इलावृत्त ६ नाभि ७ किमपुरुष ८ भरत ९ नरहरि), तीन लोक (१ स्वर्ग २ मर्त्य ३ पाताल) रूप ब्रह्मांड, इतनी सृष्टि जिसके आश्रित है, मैं उसी परब्रह्म का बन्दा हूँ।

चंद सूर चौरासी लख, दिन अरु रैणी, रचले सप्त समंदा ।
सवा लाख मेरु गिरि पर्वत, अठारह भार तीर्थ व्रत, ता ऊपर मंडा ॥
चौदह लोक रहैं सब रचना, दादू दास तास घर बंदा ॥ ५ ॥

जो चन्द्रमा, सूर्य, चौरासी लक्ष योनि, दिन-रात्रि, १ क्षीर २ दधि ३ घृत ४ इक्षु ५ मधु ६ मदिरा ७ लवण ये सप्त समुद्र,मेरु,गिरि, पर्वतादि जातियों के सवा लक्ष पहाड़, अठारह भार वनस्पतियां (बीस पंसेरी का एक भार होता है, संपूर्ण वनस्पतियों का एक-एक पत्ता लेकर तोलने से १८ भार- ४५ मण होता है इसीलिए वनस्पतियों को अठारह भार कहते हैं) तीर्थ-व्रतादि को रचने वाला है और १ भूः, २ भुव: ३ स्व: ४ मह: ५ जन: ६ तप: ७ सत्य, ये सप्त ऊपर के;

१ अतल २ वितल ३ सुतल ४ तलातल ५ महातल ६ रसातल ७ पाताल; ये सप्त नीचे के, इन चौदह लोक रूप ब्रह्मांड की रचना जिसके आश्रित रहती है, हम उस ब्रह्म के घर के सेवक हैं।

दादू जिन यहु एती कर धरी, थंभ बिन राखी।
सो हमको क्यों बीसरे, संत जन साखी ॥ ६ ॥

जिन परमात्मा ने इतनी विशाल सृष्टि रचकर बिना किसी स्थंभादि आश्रय के धरी है और निरंतर इसकी रक्षा की है, वे हमें कैसे भूल सकते हैं। पूर्वकाल के संतों की यह साक्षी है—"वे भक्तों का योग-क्षेम सदा करते रहते हैं।"

दादू जिन मुझको पैदा किया, मेरा साहिब सोइ।
मैं बन्दा उस राम का, जिन सिरज्या सब कोइ ॥ ७ ॥

जिनने मुझे और सब संसार को उत्पन्न किया है, वे परमात्मा ही हमारे स्वामी हैं और हम उन्हीं राम के सेवक हैं।

दादू एक सगा संसार में, जिन हम सिरजे सोइ ।
मनसा वाचा कर्मना, और न दूजा कोइ ॥ ८ ॥

जिन परमात्मा ने हमको उत्पन्न किया है वे ही हमारे सच्चे सम्बन्धी हैं। हम मन, वचन और कर्म से कहते हैं, अन्य दूसरा कोई भी हमारा नहीं है।

जे था कंत कबीर का, सोइ वर वरहूं।
मनसा वाचा कर्मना, मैं और न करहूं ॥ ९ ॥

पूर्वकाल के कबीरादि संतों ने जो वर वरा था, उसी परमात्मा को हम वर बनायेंगे। हम मन, वचन और कर्म से कहते हैं, अन्य किसी को स्वामी नहीं बनायेंगे।

सबका साहिब एक है, जाका परगट नांव।
दादू सांई शोध ले, ताकी मैं बलि जांव ॥ १० ॥

जिसका 'ईश्वर' यह नाम प्रकट है, वह परमात्मा सभी मतवादियों का एक ही है। मत-मतान्तरों की पक्ष को त्याग कर, जो उस परमात्मा को विचार द्वारा खोज के प्राप्त कर लेता है, उसकी हम बलहारी जाते हैं।

साचा सांई शोध कर, साचा राखी भाव।
दादू साचा नाम ले, साचे मारग आव ॥ ११ ॥

संतों के संग द्वारा सत्य पर ब्रह्म की खोज करके, उसमें सच्चा प्रेम रखते हुये गुण, कर्म, स्वभाव से रहित उसका सच्चा नाम उच्चारण कर, उस की प्राप्ति के सच्चे मार्ग में आओ।

जामे मरे सो जीव है, रमता राम न होइ।
जामण मरण तैं रहित है, मेरा साहिब सोइ ॥ १२ ॥

जो जन्मता मरता है, वह व्यापक राम नहीं हो सकता, जीव ही है और जो जन्म-मरण से रहित है, वही राम हमारा स्वामी है।

उठे न बैसे एक रस, जागे सोवे नांहिं ।
मरे न जीवे जगद् गुरु, सब उपज खपे उस मांहिं ॥ १३ ॥

जो जन्मना, मरना, जागना, सोना, उठना, बैठना आदि क्रियाओं से रहित एक रस है, संपूर्ण जगत् में महान् है, जिसमें संपूर्ण विश्व जल-बुदबुदे की तरह उत्पन्न होकर लय हो जाता है, वही राम हमारा स्वामी है।

ना वह जामे, ना मरे, ना आवे गर्भवास ।
दादू ऊँधे मुख नहीं, नर्क कुंड दस मास ॥ १४ ॥

वह परमात्मा न जन्मता है, न मरता है और न गर्भवास में आकर दश मास तक अधोमुख होकर मलाशय रूप नर्क कुंड के पास रहता है।

कृत्रिम नहीं सो ब्रह्म है, घटे बधे नहिं जाइ ।
पूरण निश्चल एक रस, जगत न नाचे आइ ॥ १५ ॥

वह ब्रह्म किसी से रचित नहीं है, घटता बढ़ता नहीं है । जगत में आकर जीवों के समान नाना क्रिया रूप नृत्य नहीं करता और न लोकांतर में जाता है। वह तो पूर्ण, निश्चल, एकरस तथा व्यापक है।

उपजे विनशे गुण धरे, यहु माया का रूप ।
दादू देखत थिर नहीं, क्षण छांहीं क्षण धूप ॥ १६ ॥

उत्पन्न होना, विनाश होना, सत्व, रज, तम और इनके कार्य रूप गुणों को धारण करना, यह सब माया कृत जीव का स्वरूप है। इसे सब देखते ही हैं—इसका स्वरूप स्थिर नहीं है। छाया और धूप के परिवर्तन के समान क्षण-क्षण में सुखी-दुखी होता रहता है।

जे नांहीं सो ऊपजे, है सो उपजे नांहिं ।
अलख आदि अनादि है, उपजे माया मांहिं ॥ १७ ॥

जो माया के कार्य परमार्थ रूप से सत्य नहीं है, वे ही उत्पन्न होते हैं। परमार्थ रूप से सत्य है, वह ब्रह्म उत्पन्न नहीं होता। इन्द्रियों का अविषय ब्रह्म तो संपूर्ण मायिक प्रपंच से आदि है और उसका आदि कारण कोई नहीं। अत: उत्पत्ति आदि सब विचार, मायिक कार्यों में ही होते हैं।

प्रश्न

जे यहु करता जीव था, संकट क्यों आया ?
कर्मों के वश क्यों भया, क्यों आप बँधाया ? ॥ १८ ॥
क्यों सब जोनी जगत में, घर बार नचाया ?
क्यों यह कर्ता जीव ह्वै, पर हाथ बिकाया ? ॥ १९ ॥

१८-१९ में प्रश्न है—यदि जीव ही करने कराने वाला है तो कर्मों के वश होकर गर्भवास के दु:ख में आकर अपने आप ही क्यों बँध गया ?

यदि यह जीव ही करने कराने वाला होवे तो सब जगत् की योनि रूप घर-द्वारों में कर्मों के द्वारा क्यों नचाया जाता है ? और क्यों विषयों के हाथ बिकता है ?

उत्तर-जीव लक्षण

दादू कृत्रिम काल वश, बंध्या गुण मांहीं ।
उपजे विनशे देखतां, यहु कर्ता नांहीं ॥ २० ॥

२०-२७ में जीव के लक्षण पूर्वक उक्त प्रश्न का उत्तर दे रहे हैं—जो माया द्वारा कर्मों से बना हुआ, काल के वश में रहने वाला, गुणों से बँधा हुआ है तथा प्रत्यक्ष ही उत्पन्न होता है और नष्ट हो जाता है, वह जीव जगत् का कर्त्ता नहीं हो सकता।

जाती[1] नूर[2] अल्लाह का, सिफाती[3] अरवाह[4]।
सिफाती सिजदा[5] करे, जाती बे परवाह ॥ २१ ॥

ब्रह्म का स्वरूप[2] सत्य[1] शुद्ध है और जीव[4] गुण[3] विकारों से युक्त हैं। गुण-विकारों वाले परतंत्र जीव, ब्रह्म की प्रणामादि[5] द्वारा पूजा करते हैं और ब्रह्म निराश्रय है।

परम तेज परापरम, परम ज्योति परमेश्वरं ।
स्वयं ब्रह्म सदई[1] सदा, दादू अविचल स्थिरं ॥ २२ ॥

परमेश्वर, परब्रह्म, स्वयं परम, प्रभाव रूप, परम ज्योति रूप, माया से परे, क्रिया रहित, सुस्थिर, सदा[1] एक रस है।

अविनाशी साहिब सत्य है, जे उपजे विनशे नांहिं।
जेता कहिये काल मुख, सो साहिब किस मांहिं ॥ २३ ॥

जो उत्पत्ति नाश रहित सत्य अविनाशी है, वही परमात्मा है। जो काल के मुख में जाता है, वह परमात्मा किस गणना में है वा किस शास्त्र तथा किस मत में कहा गया है ? सो कहिये।

सांई मेरा सत्य है, निरंजन निराकार ।
दादू विनशे देखतां, झूठा सब आकार ॥ २४ ॥

हमारा निरंजन निराकार परमात्मा ही सत्य है। शेष नाम रूपात्मक सब संसार प्रत्यक्ष ही नष्ट होता रहता है, अत: मिथ्या है।

राम रटण छाड़े नहीं, हरि लै लागा जाइ ।
बीचैं ही अटके नहीं, कला कोटि दिखलाइ ॥ २५ ॥

साधक को चाहिए राम-नाम की रटन नहीं छोड़े, माया चाहे कोटि चमत्कार दिखावे, किन्तु मायिक सुखों में लगकर बीच में न रुके, परब्रह्म में वृत्ति लगाता हुआ संसार से पार हो जाये ।

उरैं ही अटके नहीं, जहां राम तहँ जाइ ।
दादू पावे परम सुख, विलसे वस्तु अघाइ ॥ २६ ॥

जो साधक मायिक विषयों में नहीं रुकता, वह ब्रह्माकार वृत्ति द्वारा जिस अवस्था में निरंजन

राम का साक्षात्कार होता है, उस निर्द्वन्द्व सहजावस्था को प्राप्त होकर परम सुख प्राप्त करता है तथा परमानन्द वस्तु का उपभोग करके तृप्त हो जाता है।

दादू उरैं ही उरझे घणे, मूये गल दे पास।
ऐन अंग जहँ आप था, तहाँ गये निज दास॥ २७॥

बहुत लोग मायिक ऋद्धि-सिद्धि आदि में ही फँस गये हैं और अपने हाथों ही प्रतिष्ठादि की आशा-पाश गले में डालकर पुन: जन्म-मृत्यु रूप संसार को ही प्राप्त हुये हैं। जिस निर्द्वन्द्वावस्था में प्रियतम परमात्मा का अपने-आप साक्षात्कार होता है, उस अवस्था को तो भगवान् के निष्काम निजी भक्त ही प्राप्त हुये हैं।

जगत भुलावन

सेवा का सुख प्रेम रस, सेज सुहाग न देइ।
दादू बाहै दास को, कह दूजा सब लेइ॥ २८॥

२८ में कहते हैं—परमात्मा साधक को सांसारिक पदार्थ प्रदान करके बहका देते हैं, भक्तों को सेवा भक्ति का फल उनकी हृदय-शय्या पर पधार कर प्रेम-रस प्रदान रूप सुख देने की बजाय दूसरे संपूर्ण मायिक सुख देने को कह कर बहका देते हैं। जो नहीं बहकते, वे ही उन्हें प्राप्त करते हैं।

पति-पहचान

लोहा माटी मिल रह्या, दिन दिन काई खाइ।
दादू पारस राम बिन, कतहूँ गया विलाइ॥ २९॥

२९-३१ में प्रभु पहचान से लाभ और न पहचान से हानि दिखा रहे हैं—जीव रूप लोहा विषय रूप मिट्टी में मिलकर प्रतिदिन त्रिताप-मैल से क्षीण होता जा रहा है। वह सद्गुरु रूप पारस बिना, ज्ञानी भक्त रूप सुवर्ण बन के राम को प्राप्त नहीं होता और चौरासी लक्ष योनियों में कहीं भी नष्ट-भ्रष्ट होता रहता है।

लोहा पारस परस कर, पलटे अपना अंग।
दादू कंचन ह्वै रहै, अपने सांई संग॥ ३०॥

जीव-लोहा सद्गुरु-पारस से मिलकर, अपने जीव भाव-आकार को बदल कर तथा निर्द्वन्द्वावस्था रूप सुवर्णाकार को प्राप्त होकर अपने स्वामी परब्रह्म के साथ अभेद होकर रहता है।

दादू जिहिं परसे पलटे प्राणियाँ, सोई निज कर लेह।
लोहा कंचन ह्वै गया, पारस का गुण येह॥ ३१॥

लोहा पारस के स्पर्श से सुवर्ण हो जाता है, यह पारस का गुण है। वैसे ही जिसके उपदेश रूप स्पर्श से प्राणी का जीव-भाव बदलकर ब्रह्म की प्राप्ति हो जाय, उसी को अपना गुरु कर लेना चाहिए। यही गुरु करने का अभिप्राय है।

परिचय जिज्ञासा उपदेश

दह दिशि फिरे सो मन है, आवे जाय सो पवन ।
राखणहारा प्राण है, देखणहारा ब्रह्म ॥ ३२ ॥

इति पीव पिछाण का अंग समाप्त ॥ २० ॥ १८८३ ॥

साक्षात्कार की इच्छा वाले को उपदेश कर रहे हैं—दशों दिशा में भ्रमण करता है, वही मन है। शरीर के बाहर से भीतर आता है और बाहर जाता है, वही पवन है। स्थूल सूक्ष्म संघात की रक्षा करता है, वही प्राण है। उक्त सबको साक्षी भाव से देखता है, वही कूटस्थ चेतन ब्रह्म है।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका पीव पहचान का अंग समाप्त: ॥ २० ॥

अथ समर्थता का अंग २१

पीव पहचान के अनन्तर परमेश्वर ही सामर्थ्य का निरूपण करने के लिए 'समर्थाई का अंग' कहने में प्रवृत्त हुये मंगल कर रहे हैं—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत: ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से प्राणी नास्तिकता से पार हो, ईश्वर-सामर्थ्य को जान, ब्रह्म-ज्ञान द्वारा ब्रह्म को प्राप्त होता है, उन निरंजन देव, सद्गुरु और सर्व संतों को हम अनेक प्रणाम करते हैं।

दादू कर्ता करे तो निमष[१] में, कीड़ी कुंजर होइ ।
कुंजर तैं कीड़ी करे, मेट सके नहिं कोइ ॥ २ ॥

२-८ में परमेश्वर की सामर्थ्य का परिचय दे रहे हैं—यदि ईश्वर करना चाहें तो एक पल[१] में चींटी हाथी हो सकती है और वे हाथी को चींटी बना सकते हैं। उनके इस कार्य में कोई भी विपरीतता नहीं कर सकता।

दादू कर्ता करे तो निमष में, राई मेरु समान ।
मेरु को राई करे तो को मेटे फरमान[१] ॥ ३ ॥

ईश्वर करना चाहें तो एक निमेष में राई को पर्वत समान और पर्वत को राई समान बना सकते हैं, उनकी आज्ञा[१] कौन मेट सकता है ?

दादू कर्ता करे तो निमष में, जल मांहीं थल थाप।
थल मांहीं जलहर करे, ऐसा समर्थ आप ॥ ४ ॥

ईश्वर करना चाहें तो एक निमेष में जल के स्थान में सूखी भूमि और सूखी भूमि के स्थान में जलाशय की स्थापना कर सकते हैं। यह कार्य वे किसी की सहायता से नहीं करते, वे स्वयं ही ऐसे समर्थ हैं।

दादू कर्ता करे तो निमष में, ठाली[१] भरे भँडार ।
भरिया गह[२] ठाली करे, ऐसा सिरजनहार ॥ ५ ॥

वे सृष्टि-कर्त्ता परमेश्वर ऐसे हैं—एक क्षण में खाली[१] भंडार भर देते हैं और भरे हुये को

दह दिशि फिरे सो मन है, आवे जाय सो पवन ।
राखणहारा प्राण है, देखणहारा ब्रह्म ॥ ३२ ॥

इति पीव पिछाण का अंग समाप्त ॥ २० ॥ १८८३ ॥

साक्षात्कार की इच्छा वाले को उपदेश कर रहे हैं—दशों दिशा में भ्रमण करता है, वही मन है। शरीर के बाहर से भीतर आता है और बाहर जाता है, वही पवन है। स्थूल सूक्ष्म संघात की रक्षा करता है, वही प्राण है। उक्त सबको साक्षी भाव से देखता है, वही कूटस्थ चेतन ब्रह्म है।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका पीव पहचान का अंग समाप्त: ॥ २० ॥

अथ समर्थता का अंग २१

पीव पहचान के अनन्तर परमेश्वर ही सामर्थ्य का निरूपण करने के लिए 'समर्थाई का अंग' कहने में प्रवृत्त हुये मंगल कर रहे हैं—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत: ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से प्राणी नास्तिकता से पार हो, ईश्वर-सामर्थ्य को जान, ब्रह्म-ज्ञान द्वारा ब्रह्म को प्राप्त होता है, उन निरंजन देव, सद्‌गुरु और सर्व संतों को हम अनेक प्रणाम करते हैं।

दादू कर्ता करे तो निमष[१] में, कीड़ी कुंजर होइ ।
कुंजर तैं कीड़ी करे, मेट सके नहिं कोइ ॥ २ ॥

२-८ में परमेश्वर की सामर्थ्य का परिचय दे रहे हैं—यदि ईश्वर करना चाहें तो एक पल[१] में चींटी हाथी हो सकती है और वे हाथी को चींटी बना सकते हैं। उनके इस कार्य में कोई भी विपरीतता नहीं कर सकता।

दादू कर्ता करे तो निमष में, राई मेरु समान ।
मेरु को राई करे तो को मेटे फरमान[१] ॥ ३ ॥

ईश्वर करना चाहें तो एक निमेष में राई को पर्वत समान और पर्वत को राई समान बना सकते हैं, उनकी आज्ञा[१] कौन मेट सकता है ?

दादू कर्ता करे तो निमष में, जल मांहीं थल थाप।
थल मांहीं जलहर करे, ऐसा समर्थ आप ॥ ४ ॥

ईश्वर करना चाहें तो एक निमेष में जल के स्थान में सूखी भूमि और सूखी भूमि के स्थान में जलाशय की स्थापना कर सकते हैं। यह कार्य वे किसी की सहायता से नहीं करते, वे स्वयं ही ऐसे समर्थ हैं।

दादू कर्ता करे तो निमष में, ठाली[१] भरे भँडार ।
भरिया गह[२] ठाली करे, ऐसा सिरजनहार ॥ ५ ॥

वे सृष्टि-कर्त्ता परमेश्वर ऐसे हैं—एक क्षण में खाली[१] भंडार भर देते हैं और भरे हुये को

अधिक भरने से रोक[२] कर खाली कर देते हैं।

दादू धरती को अम्बर करे, अम्बर धरती होइ।
निशिअँधियारी दिन करे, दिन को रजनी सोइ॥ ६॥

वे परमेश्वर, पृथ्वी को आकाश और आकाश को पृथ्वी तथा अँधेरी रात को दिन और दिन को रात्रि कर सकते हैं।

मृतक काढ मसाण तैं, कहु कौन चलावे।
अविगत गति नहिं जाणिये, जग आण दिखावे॥ ७॥

मरे हुये को श्मशान से निकाल कर कौन चला सकता है ? कोई नहीं, किन्तु उस मन इन्द्रियों के अविषय परमेश्वर की सामर्थ्य रूप गति जानी नहीं जाती। वे मृतक को भी श्मशान से निकालकर तथा चलाकर, जगत् के प्राणियों को पुन: दिखा सकते हैं।

दादू गुप्त गुण परकट करे, परकट गुप्त समाइ।
पलक मांहिं भाने घड़े, ताकी लखी न जाइ॥ ८॥

वे परमेश्वर गुप्त गुणों को प्रकट कर देते हैं और प्रकट को गुप्त करके लय कर देते हैं। संसार को क्षण में नष्ट कर देते हैं और क्षण में बना देते हैं। उनकी सामर्थ्य अपार है, उसकी सीमा नहीं देखी जा सकती।

पोष-पाल-रक्षक

दादू सोई सही साबित हुआ, जा मस्तक कर देइ।
गरीब निवाजे[१] देखतां, हरि अपणा कर लेइ॥ ९॥

पालन-पोषण-रक्षक सामर्थ्य का परिचय दे रहे हैं—परमात्मा ने जिसके मस्तक पर अपना कृपा रूप हाथ रक्खा है, वही यथार्थ में मुक्त सिद्ध हुआ है। अत: जो परमेश्वर की सामर्थ्य को समझ कर दीनता-पूर्वक भक्ति करता है, उसे देखते ही, वर्तमान शरीर में ही परमात्मा कृपा[१] करके उसे अपना स्वरूप बना लेते हैं।

सूक्ष्म मार्ग

दादू सब ही मारग सांइयाँ, आगे एक मुकाम।
सोई सन्मुख कर लिया, जाही सेती काम॥ १०॥

सभी साधनरूप सूक्ष्म मार्गों की सार्थकता बता रहे हैं—योग, भक्ति, ज्ञानादि सभी सूक्ष्म मार्ग आगे एक परमात्मा रूप स्थान को ही जाते हैं, यह ईश्वर सामर्थ्य ही है। जिस साधक को जिस मार्ग द्वारा अपना कार्य होता दीखा, उसने उसे ही अपना कर परब्रह्म का साक्षात्कार किया है।

पोष-प्रतिपाल-रक्षक

मीराँ[१] मुझ सौं महर कर, शिर पर दीया हाथ।
दादू कलियुग क्या करे, सांई मेरा साथ॥ ११॥

पोषक, प्रतिपालक व रक्षक का परिचय दे रहे हैं—हमारे स्वामी[१] परमात्मा ने हमारी भक्ति

से प्रसन्न हो, कृपा करके हमारे शिर पर अपना हाथ रखा है और वे हमारे साथ हैं। अत: कलियुग हमारा क्या बिगाड़ सकता है ?

ईश्वर समर्थता

दादू समर्थ सब विधि सांइयाँ, ताकी मैं बलि जाऊँ ।
अंतर एक जु सो बसे, औराँ चित्त न लाऊँ ॥ १२ ॥

१२-१९ में ईश्वर की सामर्थ्य दिखा रहे हैं—जो सब प्रकार से समर्थ हैं, उन परमेश्वर की हम बलिहारी जाते हैं। हमारे हृदय में निरंतर वे ही बसते हैं। हम उनसे अन्य मायिक प्रपंच में कभी भी चित्त नहीं लगाते।

दादू मारग महर का, सुखी सहज सौं जाइ ।
भवसागर तैं काढ कर, अपणे लिये बुलाइ ॥ १३ ॥

भगवान् की दया प्राप्त करने का विश्वास रूप मार्ग पकड़ कर जो साधक सुख-पूर्वक सहज योग द्वारा भगवान् की ओर जाते रहे हैं, उन्हें भगवान् भवसागर से निकाल कर अपने पास बुला कर अपने में अभेद करते रहे हैं।

दादू जे हम चिन्तवैं, सो कछू न होवे आइ ।
सोई कर्ता सत्य है, कुछ औरै कर जाइ ॥ १४ ॥

जिसके करने का जीव विचार करता है, वह कुछ भी नहीं हो पाता। अत: जो जीव की इच्छा से विपरीत अन्य ही कुछ कर जाता है, वह ईश्वर ही सच्चा कर्त्ता है।

एकों लेइ बुलाइ कर, एकों देइ पठाइ ।
दादू अद्भुत साहिबी, क्यों ही लखी न जाइ ॥ १५ ॥

एक को तो पापी होने पर भी पवित्र बनाकर अपने पास बुला लेते हैं जैसे अजामिल को, और एक को पास से भी संसार में भेज देते हैं, जैसे-जय विजय को, व अपनी एक शक्ति को अवतार रूप से लोक-कल्याणार्थ संसार में भेजते हैं और एक को कार्य होने पर बुला लेते हैं। प्रभु की ऐसी अद्भुत प्रभुता है, किसी भी प्रकार उसका अन्त नहीं देखा जाता।

ज्यों राखे त्यों रहैंगे, अपने बल नाँहीं ।
सबै तुम्हारे हाथ है, भाज कत जाँहीं ॥ १६ ॥

हे परमेश्वर ! जीवों को जैसे आप रखेंगे वैसे ही रहेंगे, उनके निज बल से कुछ भी नहीं होता। क्योंकि सबका व्यवहार आपके ही हाथ में है, वे भागकर जायें भी कहाँ ?

दादू डोरी हरि के हाथ है, गल मांहीं मेरे ।
बाजीगर का वानरा, भावै तहँ फेरे ॥ १७ ॥

मेरे गले में पड़ी हुई कर्म रूप डोरी हरि के हाथ में है, जैसे बाजीगर वानर को अपनी इच्छानुसार फिराता है वैसे ही मेरे कर्मों की हरि जैसी व्यवस्था करते हैं, उसी के अनुसार जहां-तहां फिर कर भोगना पड़ता है।

ज्यों राखे त्यों रहैंगे, मेरा क्या सारा ।
हुक्मी सेवक राम का, बंदा बेचारा ॥ १८ ॥

हे प्रभो ! जैसे आप रखेंगे वैसे ही हम रहेंगे, आपके आगे हमारा क्या वश चलता है ? यह दीन दास तो राम की आज्ञा मानने वाला सेवक है ।

साहिब राखे तो रहे, काया माहीं जीव ।
हुक्मी बंदा उठ चले, जब ही बुलावे पीव ॥ १९ ॥

परमात्मा जीवात्मा को शरीर में रखे तो ही रह सकता है, यह तो आज्ञा मानने वाला सेवक है । जब भी परमात्मा इसे बुलाते हैं, तब ही शरीर से उठकर चल देता है ।

पति पहचान

खंड खंड प्रकाश है, जहां तहां भरपूर ।
दादू कर्ता कर रह्या, अनहद बाजैं तूर ॥ २० ॥

प्रभु की प्रकाशक तथा व्यापक शक्ति का परिचय देकर पहचान करा रहे हैं—विश्व के प्रत्येक भाग में व प्रत्येक शरीर में परब्रह्म का सत्ता-प्रकाश परिपूर्ण है । साधन द्वारा अनाहत बाजे बजाकर जब चित्त परब्रह्म में लय होता है, तब परब्रह्म साधक-आत्मा को अपना स्वरूप ही कर लेते हैं ।

ईश्वर समर्थता

दादू दादू कहत हैं, आपै सब घट मांहिं ।
अपनी रुचि आपै कहैं, दादू तैं कुछ नांहिं ॥ २१ ॥

२१-२२ में ईश्वर सामर्थ्य दिखा रहे हैं—सब शरीरों में स्थित होकर स्वयं भगवान् ही प्रेरणा कर रहे हैं, तब ही सब 'दादू-दादू' कहते हैं । ये लोग अपनी रुचि से अपने आपही कहते हैं । मुझे तो 'दादू-दादू' उच्चारण कराने से कोई प्रयोजन नहीं है ।

प्रसंग कथा—दादूजी महाराज विचरते हुये करोली राज्य में पहुँचे, तब जहां-जहां 'राम' उच्चारण का उपदेश करते थे, वहां-वहां ही भगवत्-प्रेरणा द्वारा सबसे 'दादू-दादू' उच्चारण होता था । अत: भक्त और भगवान् की प्रेरणा से सब दोनों को मिलाकर 'दादूराम' कहने लगे थे, तभी से 'दादूराम' मंत्र का जप प्रचलित हुआ है । वही ईश्वर का सामर्थ्य २१-२२ में दिखाया है ।

हम तैं हुआ न होइगा, ना हम करणे जोग ।
ज्यों हरि भावे त्यों करे, दादू कहैं सब लोग ॥ २२ ॥

हमसे न तो कुछ हुआ है और न होने वाला है । कारण, हम तो कुछ भी करने योग्य नही हैं । देखो ! हम तो 'राम-राम' उच्चारण कराते हैं और लोग 'दादू-दादू' उच्चारण करते हैं । अत: जैसा हरि को अच्छा लगता है, वैसा ही वे करते हैं ।

पतिव्रता निष्काम

दादू दूजा क्यों कहै, शिर पर साहिब एक ।
सो हम को क्यों बीसरे, जे जुग जाहिं अनेक ॥ २३ ॥

अपनी अनन्यता दिखा रहे हैं—हमारे तो एक अद्वैत निरंजन राम ही स्वामी हैं, यदि अनेक युग व्यतीत हो जायें तो भी वे हमको कैसे भूल सकते हैं ? फिर हम निष्काम भक्त लोग दूसरे को अपना स्वामी कैसे कह सकते हैं।

समर्थ साक्षी भूत

आप अकेला सब करे, औरों के शिर देइ ।
दादू शोभा दास को, अपना नाम न लेइ ॥ २४ ॥

२४-२५ में समर्थ परमेश्वर की साक्षीरूपता दिखा रहे हैं—समर्थ ईश्वर किसी अन्य की सहायता बिना ही कर्मानुसार सृष्टि और सब कार्य करते हैं किन्तु कर्त्ता के रूप में अपना नाम कोई न ले इसलिए दूसरों को निमित्त बना देते हैं। अच्छा कार्य करने की शोभा भक्तों के और अयोग्य कार्य करने का अपयश दुर्जनों के शिर डाल देते हैं और स्वयं साक्षी रूप से अलग ही रहते हैं।

आप अकेला सब करे, घट में लहर उठाइ ।
दादू शिर दे जीव के, यों न्यारा ह्वै जाइ ॥ २५ ॥

ईश्वर आप अकेले ही सब कुछ करते हैं। कारण, प्राणी के हृदय में प्रेरणा करके करने की इच्छा वे ही प्रकट करते हैं किन्तु फिर भी कार्य-भार जीव के शिर पर डालकर आप साक्षी रूप से अलग ही रहते हैं।

ईश्वर समर्थता

ज्यों यहु समझैं त्यों कहो, यहु जीव अज्ञानी ।
जेती बाबा तैं कही, इन एक न मानी ॥ २६ ॥

२६-२८ में ईश्वर की सामर्थ्य दिखा रहे हैं—हे विश्व के पितामह परमात्मन् ! जितनी ज्ञान की बातें मेरे द्वारा आपने कही, उनमें से इन शाह तिलोक आदि ने एक भी धारण नहीं की है, ये अज्ञानी जीव हैं। अत: जैसे ये लोग समझ सकें, वैसे ही कृपा करके आप मेरे द्वारा इन्हें समझावें। कारण, आप तो सर्व-समर्थ हैं।

दादू परचा[1] माँगें लोग सब, कहैं हमको कुछ दिखलाइ ।
समरथ मेरा सांइयाँ, ज्यों समझैं त्यों समझाइ ॥ २७ ॥

ये सब लोग चमत्कार[1] देखना चाहते हैं और कहते भी हैं कि 'हमें कुछ तो दिखलाओ' अत: हे मेरे समर्थ प्रभु ! आप तो समर्थ हैं, जैसे ये लोग समझ सकें, वैसे ही इन्हें समझाइये।

२६-२७ से भगवान् को प्रार्थना करके साहपुरा में तिलोकशाह को अपनी योगशक्ति दिखाकर २८ से उपदेश किया था। प्रसंग कथा दृ. सु.सि.त. ११-८८ में देखो।

दादू तन मन लाइ कर, सेवा दृढ़ कर लेइ ।
ऐसा समरथ राम है, जे माँगे सो देइ ॥ २८ ॥

हे लोगो ! जो तन-मन को परमात्मा की ओर लगाकर दृढ़ता से भक्ति करता है, उस भक्त को जो वह माँगे वही देते हैं, निरंजन राम ऐसे समर्थ हैं। ये चमत्कार तो उनके लिए कुछ भी नहीं। अत: निष्काम भाव से भक्ति करो।

समर्थ साक्षी भूत

समरथ सो सेरी[1] समझाइ ने, कर अणकरता होइ ।
घट घट व्यापक पूर सब, रहै निरंतर सोइ ॥ २९ ॥

२९-३० में समर्थ ईश्वर की साक्षीरूपता समझने के लिए प्रार्थना कर रहे हैं—हे समर्थ ! वह रहस्य मार्ग[1] हमें वा इन जीवों को समझाइये, जिसके द्वारा आप घट-घट में तथा संपूर्ण चराचर विश्व में व्यापक रूप से निरंतर परिपूर्ण होकर, सब कुछ करते हुये भी अकर्त्ता होकर रहते हैं।

रहै नियारा सब करे, काहू लिप्त न होइ ।
आदि अंत भाने[1] घड़े, ऐसा समर्थ सोइ ॥ ३० ॥

सृष्टि के आदि काल में सब को उत्पन्न करते हैं और प्रलय काल में सब को नष्ट कर देते हैं, फिर भी किसी के हर्ष-शोक से लिप्त नहीं होते, सब से अलग साक्षीरूप होकर रहते हैं। वे परमात्मा ऐसे समर्थ हैं।

कर्त्ता साक्षी भूत

श्रम नाहीं सब कुछ करे, यों कल[1] धरी बनाइ।
कौतिकहारा ह्वै रह्या, सब कुछ होता जाइ ॥ ३१ ॥

३१-३३ में विश्व कर्ता की साक्षीरूपता दिखा रहे हैं—वह सब कुछ करता है किन्तु उसे परिश्रम कुछ नहीं होता। उस वीर्यवान् ईश्वर ने बिना ही श्रम यह सृष्टि[1] बना कर रख दी है। इस में उसकी सत्ता[1] मात्र से ही अपने आप सब कुछ होता जा रहा है और आप खेल देखने वाले के समान साक्षी रूप से अलग हो रहा है।

लिपे छिपे नहिं सब करे, गुण नहिं व्यापे कोइ।
दादू निश्चल एक रस, सहजैं सब कुछ होइ ॥ ३२ ॥

वह ईश्वर सब कुछ करता है, तो भी किसी में अनुरक्त तथा लय नहीं होता। सत्त्वादिक गुण उस पर प्रभाव नहीं डाल सकते। वह एकरस निश्चल रहता है और उस की सत्ता से अनायास ही संसार में सब कुछ होता रहता है।

बिन गुण व्यापे सब किया, समर्थ आपै आप।
निराकार न्यारा रहै, दादू पुन्य न पाप ॥ ३३ ॥

वह परमेश्वर है बिना किसी की सहायता के आप स्वयं ही ऐसा समर्थ कि जिसने निर्गुण होने पर भी सब संसार को गुण-दोषमय बना दिया है। उसमें न पाप है, न पुण्य है; वह निराकार परमात्मा तो सबसे अलग ही रहता है।

ईश्वर समर्थता

समता के घर सहज में, दादू दुविध्या नांहिं ।
सांई समर्थ सब किया, समझ देख मन मांहिं ॥ ३४ ॥

३४-४३ में ईश्वर की सामर्थ्य दिखा रहे हैं—समता के धाम सहज-स्वरूप परमेश्वर में भली-बुरी मति रूप दुविधा नहीं होती, तभी तो उस समर्थ परमेश्वर ने गुण-दोष मय संपूर्ण संसार की रचना की है। तुम विचार द्वारा अपने मन में उसकी सामर्थ्य देखो।

पैदा कीया घाट घड़, आपै आप उपाइ ।
हिकमत[1] हुनर[2] कारीगरी[3], दादू लखी न जाइ ॥ ३५ ॥

अकेले ईश्वर ने भूतों की रचना करके, उनसे शरीर को बनाकर जीव को उत्पन्न किया है। उसकी निर्माण-बुद्धि[1], गुण[2] और निर्माण-कला[3] का अन्त नहीं देखा जाता।

यंत्र बजाया साज कर, कारीगर करतार ।
पंचों का रस[1] नाद[2] है, दादू बोलणहार ॥ ३६ ॥

ईश्वर-कारीगर ने मन-बुद्धि आदि सामग्री को यथा स्थान सजा, शरीर यंत्र बनाकर बजाया है अर्थात् बोलने वाला किया है, सो दिखा रहे हैं—पंच सूक्ष्म भूतों का कारण[1] तन्मात्रा रूप शब्द[2] है और पंच स्थूल भूतों का मेल ही स्थूल शब्द की अभिव्यक्ति का हेतु है तथा वह 'शब्द' रूप ब्रह्म ही जीवरूप से शरीर में बोलने वाला है।

पंच ऊपना[1] शब्द तैं, शब्द पंच सौं होइ ।
सांई मेरे सब किया, बूझे बिरला कोइ ॥ ३७ ॥

सूक्ष्म तन्मात्रा शब्द से क्रम से पांचों सूक्ष्म भूतों की उत्पत्ति होती है और पांचों भूतों के पंचीकरण होने पर ध्वन्यात्मक तथा वर्णात्मक शब्द उत्पन्न[1] होते हैं। इस प्रकार हमारे 'प्रभु' शब्द ब्रह्म से ही सब संसार की रचना होती है किन्तु इस परमेश्वर की सामर्थ्य को कोई विरले विचारशील संत ही जानते हैं।

है तो रती, नहीं तो नांहीं, सब कुछ उत्पति होइ ।
हुक्मैं हाजिर सब किया, बूझे बिरला कोइ ॥ ३८ ॥

ईश्वर को संसार के अस्तित्व का संकल्प होता है तो किंचित् काल में ही सब कुछ उत्पन्न हो जाता है और अभाव का संकल्प होता है तो क्षण मात्र में संसार का अभाव हो जाता है। उस परमेश्वर ने संसार के उत्पत्ति-नाशादि सब अपनी आज्ञा के अधीन रक्खे हैं। इस रहस्य को कोई विरला संत ही जानता है।

नहीं तहाँ तैं सब किया, आपै आप उपाइ ।
निज तत न्यारा ना किया, दूजा आवे जाइ ॥ ३९ ॥

जो मिथ्या माया वास्तव में कुछ भी नहीं है, उससे अपनी सत्ता द्वारा स्वयं परमेश्वर ने ही पंचभूतों को उत्पन्न करके सब संसार बना दिया है, ऐसी उसकी सामर्थ्य है। जिसने इस संसार में

अपने स्वरूप तत्त्व को पहचान लिया, उनको तो अपने से भिन्न नहीं रहने दिया है। अन्य अज्ञानी लोग जन्म लेकर इस लोक में आते हैं और मर कर परलोक में जाते हैं। इसी प्रकार संसार में भटकते रहते हैं।

नहीं तहां तैं सब किया, फिर नांहीं ह्वै जाइ।
दादू नांहीं होइ रहु, साहिब सौं ल्यौ लाइ ॥ ४० ॥

जिस स्वरूप में गुण-विकारादि कुछ भी नहीं है, उसी अपने स्वरूप से परमेश्वर ने गुण-विकारादि युक्त यह सब संसार रच दिया है, ऐसी उसकी अद्भुत सामर्थ्य है और पुन: परब्रह्म के ज्ञान से जीव गुण-विकारादि से रहित हो जाता है। अत: हे साधको ! उस परब्रह्म के चिन्तन में वृत्ति लगाकर गुणातीत परब्रह्म में ही लय होकर रहो।

दादू खालिक खेले खेल कर, बूझे बिरला कोइ।
लेकर सुखिया ना भया, देकर सुखिया होइ ॥ ४१ ॥

परमेश्वर संसार रूप खेल को रचकर उसमें खेल रहा है, वह अपने खेल के साधन रूप जीवों से कुछ लेकर सुखी नहीं होता। कारण, सब कुछ उसी का है किन्तु देकर सुखी होता है। न देने से उसका खेल बिगड़ता है, अथवा उसके खेल रूप सांसारिक वस्तुओं को जिसने अपहरण करके अपनी बनायी है, वह कोई भी सुखी नहीं हुआ और जो लौकिक दृष्टि से अपनी वस्तुओं को भी प्रभु की समझ कर उन्हें प्रभु के समर्पण करता है, वही सुखी होता है। किन्तु इस रहस्य को कोई विरला संत ही जानता है।

देबे की सब भूख है, लेबे की कुछ नांहिं।
सांई मेरे सब किया, समझ देख मन मांहिं ॥ ४२ ॥

उस हमारे परमेश्वर ने ही यह सब संसार रचा है। यह तुम अपने मन में विचार करके देखो तो तुम्हें ज्ञान होगा। उस परमेश्वर को देने की ही इच्छा रहती है, लेने की नहीं। वह तो पूर्ण काम है वा उसके निष्काम भक्तों को अपना सर्वस्व भगवत् के ही समर्पण करने की इच्छा रहती है, भगवान् से सांसारिक पदार्थ लेने की नहीं।

दादू जे साहिब सिरजे नहीं, तो आपै क्यों कर होइ।
जे आपै ही ऊपजे, तो मर कर जीवै कोइ ॥ ४३ ॥

यदि संसार की रचना परमेश्वर न करे तो अपने आप कैसे होगा ? और यदि ऐसा ही मान लो कि—जीव अपने आप ही उत्पन्न होता है तो कोई अपनी इच्छा से मर कर पुन: जीवित भी होना चाहिए, किन्तु होता है नहीं। अत: ईश्वर के बिना सृष्टि नहीं होती।

करतूत-कर्म

कर्म फिरावे जीव को, कर्मों को करतार।
करतार को कोई नहीं, दादू फेरनहार ॥ ४४ ॥

इति समर्थाई का अंग समाप्त ॥ २१ ॥ सा. १९२७ ॥

४४ में कहते हैं—कर्म-व्यवस्था द्वारा समर्थ ईश्वर ही संसार का कर्त्ता सिद्ध होता है। अपने किये हुये कर्म ही जीव को ऊँच-नीच लोकों में फिराते हैं और कर्मों की व्यवस्था ईश्वर करता है। ईश्वर को प्रेरणा करके फिराने वाला कोई भी नहीं है। अत: संसार का कर्त्ता ईश्वर ही है। यह उसी का सामर्थ्य है।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका समर्थता का अंग समाप्त: ॥ २१ ॥

अथ शब्द का अंग २२

समर्थता-अंग के अनन्तर शब्द सामर्थ्य का निरूपण करने के लिए ''शब्द का अंग'' कहने में प्रवृत्त मंगल कर रहे हैं—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत: ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक सांसारिक शब्द जाल से पार होकर ज्ञानपूर्ण-शब्दों के विचार द्वारा परब्रह्म को प्राप्त होता है, उन निरंजन राम, सद्गुरु और सर्व संतों को हम अनेक प्रणाम करते हैं।

दादू शब्दैं बंध्या सब रहै, शब्दैं ही सब जाइ।
शब्दैं ही सब ऊपजै, शब्दैं सबै समाइ ॥ २ ॥

२-५ में शब्द सामर्थ्य दिखा रहे हैं—ईश्वर, नृप और सद्गुरु के शब्दों से संसार, प्रजा और साधक बद्ध रहते हैं, आने के बोधक शब्दों से आते हैं और जाने के बोधक शब्दों से जाते हैं। ''मैं एक से अनेक हो जाऊँ'' इस ईश्वर-शब्द से संसार बन जाता है। नृप-शब्द से प्रजा के कार्य हो जाते हैं। सद्गुरु-शब्द से दैवी गुण उत्पन्न हो जाते हैं। ''मैं अनेक से एक हो जाऊँ'' इस ईश्वर-शब्द से संसार उसी में लय हो जाता है। नृप-शब्द से अनीतिपूर्ण सर्व कार्य नष्ट हो जाते हैं। सद्गुरु-शब्द से आसुरीगुण नष्ट हो जाते हैं।

दादू शब्दैं ही सचु पाइये, शब्दैं ही संतोष।
शब्दैं ही सुस्थिर भया, शब्दैं भागा शोक ॥ ३ ॥

संत-शास्त्र और सद्गुरु-शब्दों से ही सुख-संतोष होता है। शब्दों से ही साधक का मन सम्यक् स्थिर होकर शोक दूर हुआ है। ('संतोष' के 'ष' को 'ख' पढ़ें।)

दादू शब्दैं ही सूक्ष्म भया, शब्दैं सहज समान।
शब्दैं ही निर्गुण मिले, शब्दैं निर्मल ज्ञान ॥ ४ ॥

पूर्व काल में वैराग्य-पूर्ण शब्दों से ही साधकों का मन विषय-संकल्प रूप स्थूलता को त्याग कर एक परमात्माकार रूप सूक्ष्मता को प्राप्त हुआ है। वर्तमान में भी समता पूर्ण शब्दों से मन अनायास ही समान अवस्था को प्राप्त होकर संशय-विपर्यय रहित निर्मल ज्ञान द्वारा निर्गुण ब्रह्म को प्राप्त होता है।

४४ में कहते हैं—कर्म-व्यवस्था द्वारा समर्थ ईश्वर ही संसार का कर्त्ता सिद्ध होता है। अपने किये हुये कर्म ही जीव को ऊँच-नीच लोकों में फिराते हैं और कर्मों की व्यवस्था ईश्वर करता है। ईश्वर को प्रेरणा करके फिराने वाला कोई भी नहीं है। अत: संसार का कर्त्ता ईश्वर ही है। यह उसी का सामर्थ्य है।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका समर्थता का अंग समाप्त: ॥ २१ ॥

अथ शब्द का अंग २२

समर्थता-अंग के अनन्तर शब्द सामर्थ्य का निरूपण करने के लिए ''शब्द का अंग'' कहने में प्रवृत्त मंगल कर रहे हैं—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत: ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक सांसारिक शब्द जाल से पार होकर ज्ञानपूर्ण-शब्दों के विचार द्वारा परब्रह्म को प्राप्त होता है, उन निरंजन राम, सद्गुरु और सर्व संतों को हम अनेक प्रणाम करते हैं।

दादू शब्दैं बंध्या सब रहै, शब्दैं ही सब जाइ।
शब्दैं ही सब ऊपजै, शब्दैं सबै समाइ ॥ २ ॥

२-५ में शब्द सामर्थ्य दिखा रहे हैं—ईश्वर, नृप और सद्गुरु के शब्दों से संसार, प्रजा और साधक बद्ध रहते हैं, आने के बोधक शब्दों से आते हैं और जाने के बोधक शब्दों से जाते हैं। ''मैं एक से अनेक हो जाऊँ'' इस ईश्वर-शब्द से संसार बन जाता है। नृप-शब्द से प्रजा के कार्य हो जाते हैं। सद्गुरु-शब्द से दैवी गुण उत्पन्न हो जाते हैं। ''मैं अनेक से एक हो जाऊँ'' इस ईश्वर-शब्द से संसार उसी में लय हो जाता है। नृप-शब्द से अनीतिपूर्ण सर्व कार्य नष्ट हो जाते हैं। सद्गुरु-शब्द से आसुरीगुण नष्ट हो जाते हैं।

दादू शब्दैं ही सचु पाइये, शब्दैं ही संतोष।
शब्दैं ही सुस्थिर भया, शब्दैं भागा शोक ॥ ३ ॥

संत-शास्त्र और सद्गुरु-शब्दों से ही सुख-संतोष होता है। शब्दों से ही साधक का मन सम्यक् स्थिर होकर शोक दूर हुआ है। ('संतोष' के 'ष' को 'ख' पढ़ें।)

दादू शब्दैं ही सूक्ष्म भया, शब्दैं सहज समान।
शब्दैं ही निर्गुण मिले, शब्दैं निर्मल ज्ञान ॥ ४ ॥

पूर्व काल में वैराग्य-पूर्ण शब्दों से ही साधकों का मन विषय-संकल्प रूप स्थूलता को त्याग कर एक परमात्माकार रूप सूक्ष्मता को प्राप्त हुआ है। वर्तमान में भी समता पूर्ण शब्दों से मन अनायास ही समान अवस्था को प्राप्त होकर संशय-विपर्यय रहित निर्मल ज्ञान द्वारा निर्गुण ब्रह्म को प्राप्त होता है।

दादू शब्दैं ही मुक्ता भया, शब्दैं समझे प्राण ।
शब्दैं ही सूझे सबै, शब्दैं सुरझे जाण ॥ ५ ॥

ब्रह्म एकता पूर्ण शब्दों से ही पूर्वकाल में साधक मुक्त हुये हैं। वर्तमान में भी प्राणी शब्दों द्वारा ही सब कुछ समझने में समर्थ होता है। विवेक पूर्ण शब्दों से ही साधक को सत्यासत्य सभी भिन्न-भिन्न दीखने लगते हैं और ज्ञान पूर्ण शब्दों के विचार से ही अपना स्वरूप जानकर साधक संसार-बन्धन से निकलता है।

सृष्टि क्रम

दादू ओंकार तैं ऊपजे, अरस परस संजोग ।
अंकुर बीज द्वै पाप पुण्य, इहिं विधि जोग रु भोग॥ ६ ॥

६-१२ में शब्द से सृष्टि का निरूपण करते हुये ओंकार शब्द से सृष्टि बतला रहे हैं—ओंकार से प्रकृति पुरुष संयोग अथवा अविद्या और चेतन का परस्पर (आध्यासिक) सम्बन्ध रूप अंकुर उत्पन्न होता है। इस संयोग रूप अँकुर में प्राणियों के पाप व पुण्य भी सहकारी कारण हैं, क्योंकि—इस प्रकार इस पाप-पुण्य रूप कारण के सहयोग से प्रकृति-पुरुष रूप संयोग और भोग रूप सृष्टि उत्पन्न होती है।

ओंकार तैं ऊपजे, विनशै बहुत विकार ।
भाव भक्ति लै थिर रहै, दादू आतम सार ॥ ७ ॥

ओंकार के चिन्तन से अनन्त विकार नाश होकर, शुद्ध विचार, भक्ति आदि की उत्पत्ति होती है और ब्रह्माकार वृत्ति की स्थिरता द्वारा आत्मा को विश्व का साररूप ब्रह्म प्राप्त होता है।

पहली कीया आप तैं, उत्पत्ति ओंकार ।
ओंकार तैं ऊपजे, पंच तत्त्व आकार ॥ ८ ॥

प्रथम त्रिगुण मय त्रिवर्ण वाले प्रकृति रूप ओंकार में अपनी सत्ता द्वारा सृजन-शक्ति उत्पन्न की, फिर उस प्रकृति रूप ओंकार से पंचभूत उत्पन्न हुये।

पंच तत्त्व तैं घट भया, बहु विधि सब विस्तार।
दादू घट तैं ऊपजे, मैं तैं वरण विकार ॥ ९ ॥

पंच सूक्ष्म भूतों से सूक्ष्म शरीर और स्थूल भूतों से नाना प्रकार वाले इस सारे संसार का विस्तार हुआ। सूक्ष्म शरीर रूप अंत:करण से ''मैं-तू'' आदि वर्ण और कामादिक विकार उत्पन्न हुये।

एक शब्द सब कुछ किया, ऐसा समर्थ सोइ।
आगे पीछे तो करे, जे बलहीना होइ ॥ १० ॥

वह ईश्वर ऐसा समर्थ है—''मैं एक से अनेक हो जाऊँ'' ऐसी इच्छा होते ही प्रकृति प्रणव रूप एक शब्द के द्वारा उसने एक साथ ही सब कुछ रच दिया है। प्रथम कारण, फिर कार्य, इस क्रम से आगे पीछे रचना तो वही करता है, जो सर्व-शक्ति-सम्पन्न नहीं होता।

अकबर बादशाह ने प्रश्न किया था—प्रथम नारी उत्पन्न हुई या पुरुष या पदार्थ ? इसका उत्तर १० से दिया था। प्रसंग कथा दृ. सु. सि. त. ८। ६० में देखो।

निरंजन निराकार है, ओंकार आकार ।
दादू सब रँग रूप सब, सब विधि सब विस्तार ॥ ११ ॥

प्रणव का अमात्रिक चतुर्थ पाद माया-रहित और निराकार है। त्रिपादात्मक शब्द-रूप 'ओंकार' माया-मय होने से साकार है। अत: संपूर्ण-रंग, रूप, नामादि सब प्रकार का सृष्टि-विस्तार माया-मय त्रिपादात्मक ओंकार से ही होता है।

आदि शब्द ओंकार है, बोले सब घट मांहिं ।
दादू माया विस्तरी, परम तत्त यहु नांहिं ॥ १२ ॥

शब्द-सृष्टि का भी आदि शब्द ओंकार ही है और सब के हृदय में स्थित अनाहत-चक्र में ''हंस'' ध्वनि रूप से निरन्तर उच्चारण होता रहता है अथवा सर्व सृष्टि का आदि कारण प्रकृति रूप प्रणव शब्द ही है, वही जीव रूप से शरीरों में बोल रहा है। अतः इस संसार में माया ही फैली हुई है। यह इन्द्रियों का विषय-प्रपंच तत्त्व रूप परब्रह्म नहीं।

शब्द समर्थता

दादू एक शब्द सौं ऊनवे[१], वर्षन लागे आइ ।
एक शब्द सौं बीखरे, आप आपको जाइ ॥ १३ ॥

१३-२५ में शब्द सामर्थ्य बता रहे हैं—एक ईश्वर की आज्ञा रूप शब्द से मेघ चढ़[१] आते हैं और बरसने लगते हैं। निषेध रूप एक शब्द से छिन्न-भिन्न होकर अपने आप अपने कारण में जा मिलते हैं अथवा एक ओंकार शब्द के चिन्तन से अंतःकारण के कामादि विकार छिन्न-भिन्न हो, आप अपने कारण में जा मिलते हैं और भक्ति-ज्ञानादि वृद्धि[१] को प्राप्त होकर आनन्द की वृष्टि करने लगते हैं।

दादू साधु शब्द सौं मिल रहै, मन राखे बिलमाइ ।
साधु शब्द बिन क्यों रहै, तब ही बीखर जाइ ॥ १४ ॥

संत-शब्दों के विचार में लगकर मन को परमात्मा के स्वरूप में लगाये रहना चाहिये। संत शब्दों के बिना यह मन रुक नहीं सकता, तत्काल इन्द्रियों के विषयों में फैल जाता है।

दादू शब्द जरै[१] सो मिल रहै, एक रस पूरा ।
कायर भाजे जीव ले, पग मांडे शूरा ॥ १५ ॥

जो ब्रह्म-ज्ञान पूर्ण सद्गुरु-शब्दों को धारण[१] करता है, वह एकरस पूर्ण ब्रह्म में मिलकर ही रहता है। किन्तु सद्गुरु-शब्दों को धारण करने में वैराग्य रूप शौर्य-संपन्न साधक ही वृत्ति रूप पैर को रोपता है। विषयासक्ति रूप कायरता युक्त जीव अपनी वृत्ति को सद्गुरु-शब्दों से हटाकर विषयों की ओर दौड़ता है।

शब्द विचारे, करणी करे, राम नाम निज हिरदै धरे ।
काया मांहीं शोधे सार, दादू कहै, लहै सो पार ॥ १६ ॥

जो सद्गुरु-शब्दों को सम्यक् विचार करके, उनके अनुसार साधन करता हुआ राम-नाम को अपने हृदय में धारण करता है तथा आन्तर-वृत्ति द्वारा शरीर के भीतर ही विश्व के सार रूप ब्रह्म की खोज करता है, वह संसार से पार होकर ब्रह्म को प्राप्त करता है।

दादू काहे कौड़ी खर्चिये, जे पैके[1] सीझे काम ।
शब्दों कारज सिध भया, तो सुरभ[2] न दीजे राम ॥ १७ ॥

(प्राचीन समय में एक पैसा=तीन पाई (सबसे छोटा सिक्का) तथा कौड़ी विनिमय का साधन थी। अतः कौड़ी को वराटक, मनी या जुवेल्स कहते हैं। इसका अर्थ कहीं कम और कहीं अधिक है। 'आरमेनियका' नामक एक कौड़ी की कीमत २००० अमरीकी डालर है। -सं.)

''यदि एक पाई[1] से ही कार्य सिद्ध होता हो तो सुभलक्षी कीमती कौड़ी क्यों खर्च करते हो ?'' सद्गुरु-शब्दों के विचार से ही वैराग्य द्वारा सम्पूर्ण आशाओं की निवृत्ति होकर मुक्ति रूप कार्य सिद्ध होता है, तब सकाम कठोर तपादिक करके अपनी आशा पूर्ति के लिये राम को परिश्रम क्यों देते हो ? 'राम-भजन से ही राम मिले तो कठिन-साधन[2] त्यागने में झिझक[2] मत करो।

दादू राम हृदय रस भेलि कर, को साधू शब्द सुनाइ ।
जानो कर दीपक दिया, भरम तिमिर सब जाइ ॥ १८ ॥

कोई विरले संत ही अपने हृदय का भक्ति-रस शब्दों में मिलाकर साधकों को सुनाते हैं। श्रवण द्वारा वे शब्द साधकों के हृदय में जाते ही, जैसे हाथ में दीपक देने से बाहर का अन्धकार दूर चला जाता है, वैसे ही हृदय का भ्रम रूप अंधकार सब दूर हो जाता है, यह सत्य जानो।

दादू वाणी प्रेम की, कमल विकासे होहि ।
साधु शब्द माता कहै, तिन शब्दों मोह्या मोहि ॥ १९ ॥

विचार द्वारा हृदय-कमल संशय विपर्य्य से रहित होकर जब विकसित होता है तब, भगवत्-प्रेमपूर्ण और प्रभाव डालने वाली वाणी निकलती है। आत्मानुभव से मस्त संत जो शब्द बोलते हैं, उन शब्दों ने ही हमको मोहित किया है।

दादू हरि भुरकी वाणी साधु की, सो परियो मेरे शीश ।
छूटे माया मोह तैं, प्रेम भजन जगदीश ॥ २० ॥

हरि-भक्ति रूप भुरकी (मंत्र प्रयोग युक्त चूर्ण) से परिपूर्ण संत की वाणी मेरे अन्तःकरण रूप मस्तक पर पड़नी चाहिये, जिससे मेरा मन मायिक-मोह से मुक्त होकर प्रेम-पूर्वक जगदीश्वर का भजन कर सके।

दादू भुरकी राम है, शब्द कहै गुरु ज्ञान ।
तिन शब्दों मन मोहिया, उन मन लागा ध्यान ॥ २१ ॥

राम-भक्ति ही भुरकी है, उसको अपने शब्दों में मिलाकर गुरुजन ज्ञानोपदेश करते हैं। उन शब्दों में ही हमारा मन मोहित होकर ध्यान द्वारा निर्विकल्प समाधि में लगा रहता है।

शब्दों मांहीं राम धन, जे कोई लेइ विचार।
दादू इस संसार में, कबहुँ न आवे हार ॥ २२ ॥

संतों के शब्दों में राम रूप धन है, जो भी कोई साधक विचार द्वारा उसे अभेद रूप से धारण करता है, वह विषयासक्ति से हार न मानकर, इस संसार के जन्म मरण रूप प्रवाह में कभी नहीं आता।

दादू राम रसायन भर धरया, साधुन शब्द मंझार।
कोई पारिख पीवे प्रीति सौं, समझे शब्द विचार ॥ २३ ॥

संतों ने अपने शब्दों में जन्म-मृत्यु आदि सम्पूर्ण रोगों को नष्ट करने वाला राम भक्तिर-सायन भर रक्खा है। उनका परीक्षक कार्य विरला साधक ही बारंबार विचार द्वारा उन्हें समझ कर प्रीतिपूर्वक रामभक्ति-रसायन पान करता है।

शब्द सरोवर सूभर[1] भरया, हरि जल निर्मल नीर ।
दादू पीवे प्रीति सौं, तिन के अखिल शरीर ॥ २४ ॥

संतों का शब्द रूप सुन्दर[1] सरोवर ब्रह्म-ज्ञान रूप निर्मल जल से परिपूर्ण रूप से भरा है। उस नीर को जो पान करते हैं, उनके आगे आने वाले संपूर्ण शरीर उन्हें ब्रह्म-रूप ही भासते हैं और वे ब्रह्म में ही लय हो जाते हैं।

शब्दों मांहीं राम-रस, साधौं भर दीया ।
आदि अंत अब संत मिल, यौं दादू पीया ॥ २५ ॥

सिद्ध संतों ने अपने शब्दों में राम-रस भर दिया है। अतः साधक संतों ने मिलकर उसे ही सृष्टि के आदि, मध्य और अंत तक उक्त विचार पद्धति से पान किया है।

गुरु मुख कसौटी

कारज को सीझै नहीं, मीठा बोले बीर ।
दादू साचे शब्द बिन, कटे न तन की पीर ॥ २६ ॥

गुरु-मुख से निकले मुक्तिद शब्द की परीक्षा बता रहे हैं—भोगाशा के समर्थक होने से मधुर लगने वाले सकाम कर्मों के उपदेश देने से मुक्ति तथा काम-क्रोधादि की निवृत्ति आदि कोई भी कार्य सिद्ध नहीं होता। निष्काम संतों के यथार्थ ज्ञान-पूर्ण शब्दों के उपदेश बिना सूक्ष्म-शरीर के आसुरी गुण तथा आवागमन रूप पीड़ा नहीं मिटती।

शब्द

दादू गुण तज निर्गुण बोलिये, तेता बोल अबोल ।
गुण गह आपा बोलिये, तेता कहिये बोल ॥ २७ ॥

२७-२८ में शब्द-व्यवहार की पद्धति बता रहे हैं—अहंकारादिक आसुरी-गुण तथा पक्षपात को त्यागकर निर्गुण ब्रह्म संबंधी वचन बोलने चाहिये। ऐसे वचनों से किसी को भी कष्ट नहीं होता। अतः ऐसे वचन बोलना मौन के समान ही है। अहंकारादि आसुरी-गुण तथा एक पक्ष को ग्रहण कर के जो शब्द बोले जाते हैं, वे वचन दूसरों को क्लेशप्रद होने से बोल कहलाते हैं।

साचा शब्द कबीर का, मीठा लागे मोहि ।
दादू सुनतां परम सुख, केता आनँद होइ ॥ २८ ॥

इति शब्द का अंग समाप्त ॥ २२ ॥ सा. १९५५ ॥

अहंकारादिक गुणों से रहित निर्गुण ब्रह्म संबंधी कबीर के यथार्थ वचन हमें प्रिय लगते हैं । उनके श्रवण करते ही परम सुख प्राप्त होता है और विचार से तो कितना आनन्द आता है, उसे तो कह भी नहीं सकते ।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका शब्द का अंग समाप्तः ॥ २२ ॥

अथ जीवित मृतक का अंग २३

शब्द-अंग के अनन्तर जीवन्मुक्त संबन्धी विचार करने के लिये 'जीवित मृतक का अंग' कहने में प्रवत्त हुये मंगल कर रहे हैं—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवतः ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक संसार-बन्धन से निकलकर जीवन्मुक्त होता है, उन निरंजन राम, सद्गुरु और सर्व संतों को हम अनेक प्रणाम करते हैं ।

धरती मत आकाश का, चंद सूर का लेइ ।
दादू पानी पवन का, राम नाम कहि देइ ॥ २ ॥

२-४ में जीवन्मुक्त सम्बन्धी विचार कह रहे हैं—पृथ्वी की सहन शक्ति, आकाश की निर्लेपता, चन्द्रमा की सौम्यता, सूर्य की तेजस्विता, जल की निर्मलता, वायु की अनासक्ति इन सबका मत ग्रहण करके रामनाम चिन्तन करता हुआ जो साधक देहाध्यास त्याग देता है, वही जीवन्मुक्तावस्था को प्राप्त होता है ।

दादू धरती ह्वै रहै, तज कूड़[1] कपट ऽहंकार[2] ।
सांई कारण शिर सहै, ताको प्रत्यक्ष सिरजनहार ॥ ३ ॥

झूठ[1], कपट, अहंकार[2] आदि को त्याग कर तथा पृथ्वी के समान सहनशील होकर प्रभु-प्राप्ति के लिये कटु-शब्दादि से जन्य दुःखों को सहन करता है, उसे ब्रह्म का साक्षात्कार होता है और वह जीवन्मुक्त हो जाता है ।

जीवित माटी मिल रहै, सांई सन्मुख होइ ।
दादू पहली मर रहै, पीछे तो सब कोइ ॥ ४ ॥

भजन द्वारा परमात्मा के सन्मुख हो, पृथ्वी की सहन शक्ति रूप मत से मिलकर आयु-समाप्ति से पूर्व ही मृतक के समान निरभिमान और सम होकर रहे, वही जीवन्मुक्त है । आयु

साचा शब्द कबीर का, मीठा लागे मोहि ।
दादू सुनतां परम सुख, केता आनँद होइ ॥ २८ ॥

इति शब्द का अंग समाप्त ॥ २२ ॥ सा. १९५५ ॥

अहंकारादिक गुणों से रहित निर्गुण ब्रह्म संबंधी कबीर के यथार्थ वचन हमें प्रिय लगते हैं । उनके श्रवण करते ही परम सुख प्राप्त होता है और विचार से तो कितना आनन्द आता है, उसे तो कह भी नहीं सकते ।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका शब्द का अंग समाप्तः ॥ २२ ॥

अथ जीवित मृतक का अंग २३

शब्द-अंग के अनन्तर जीवन्मुक्त संबन्धी विचार करने के लिये 'जीवित मृतक का अंग' कहने में प्रवत्त हुये मंगल कर रहे हैं—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवतः ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक संसार-बन्धन से निकलकर जीवन्मुक्त होता है, उन निरंजन राम, सद्गुरु और सर्व संतों को हम अनेक प्रणाम करते हैं ।

धरती मत आकाश का, चंद सूर का लेइ ।
दादू पानी पवन का, राम नाम कहि देइ ॥ २ ॥

२-४ में जीवन्मुक्त सम्बन्धी विचार कह रहे हैं—पृथ्वी की सहन शक्ति, आकाश की निर्लेपता, चन्द्रमा की सौम्यता, सूर्य की तेजस्विता, जल की निर्मलता, वायु की अनासक्ति इन सबका मत ग्रहण करके रामनाम चिन्तन करता हुआ जो साधक देहाध्यास त्याग देता है, वही जीवन्मुक्तावस्था को प्राप्त होता है ।

दादू धरती ह्वै रहै, तज कूड़[1] कपट ऽहंकार[2] ।
सांई कारण शिर सहै, ताको प्रत्यक्ष सिरजनहार ॥ ३ ॥

झूठ[1], कपट, अहंकार[2] आदि को त्याग कर तथा पृथ्वी के समान सहनशील होकर प्रभु-प्राप्ति के लिये कटु-शब्दादि से जन्य दुःखों को सहन करता है, उसे ब्रह्म का साक्षात्कार होता है और वह जीवन्मुक्त हो जाता है ।

जीवित माटी मिल रहै, सांई सन्मुख होइ ।
दादू पहली मर रहै, पीछे तो सब कोइ ॥ ४ ॥

भजन द्वारा परमात्मा के सन्मुख हो, पृथ्वी की सहन शक्ति रूप मत से मिलकर आयु-समाप्ति से पूर्व ही मृतक के समान निरभिमान और सम होकर रहे, वही जीवन्मुक्त है । आयु समाप्ति के बाद तो सभी मरते हैं ।

दीनता-गरीबी

आपा गर्व गुमान तज, मद मत्सर अहंकार ।
गहै गरीबी बंदगी, सेवा सिरजनहार ॥ ५ ॥

५-७ में दीन होकर रहने की प्रेरणा कर रहे हैं —जाति का अभिमान, शरीर बल का गर्व, धन का घमंड, विद्या का मद, अन्यों से ईर्ष्या और रूप के अहंकार को त्याग कर विनम्र भाव से ईश्वर को प्रणाम करते हुये उनकी भक्ति कर।

मद मत्सर आपा नहीं, कैसा गर्व गुमान ।
स्वप्ने ही समझे नहीं, दादू क्या अभिमान ॥ ६ ॥

जिसके हृदय में विद्या-मद, अन्यों से ईर्ष्या, जाति का अभिमान, बल का गर्व, धन का घमंड नहीं है और जो किसी भी प्रकार के अभिमान के विषय में स्वप्न में भी नहीं समझता कि अभिमान क्या होता है, वही गरीब माना जाता है।

झूठा गर्व गुमान तज, तज आपा अभिमान ।
दादू दीन गरीब है, पाया पद निर्वाण ॥ ७ ॥

जो सब प्रकार के अभिमान को त्याग कर, लौकिक दीन प्राणियों से भी अति गरीब होकर रहा है, उसी ने काल कर्म के बाणाघात से रहित मुक्ति पद प्राप्त किया है।

जीवित-मृतक

दादू भाव भक्ति दीनता अंग, प्रेम प्रीति सदा तिहिं संग ॥ ८ ॥

८-१२ में जीवन्मुक्त सम्बन्धी विचार कर रहे हैं—जिसके हृदय में श्रद्धा, सेवा-भाव, दीनता, भगवत्-प्रेम, संतों में प्रीति रहती है, भगवान् उसके संग रहते हैं।

तब साहिब को सिजदा किया, जब शिर धरा उतार ।
यों दादू जीवित मरे, हिर्स हवा को मार ॥ ९ ॥

जब सब प्रकार के अभिमान रूप शिर को उतार कर जिस साधक ने परमात्मा की वंदना भक्ति की है, तब ही वह अन्य विषयों की तृष्णा तथा स्वर्गादि भोगों की वासना को नष्ट करके जीवन्मुक्त हुआ है। ऐसे ही जीवितावस्था में मरण होता है।

राव रंक सब मरेंगे, जीवे नांहीं कोइ।
सोई कहिये जीवता, जे मरजीवा होइ ॥ १० ॥

राजा, रंक आदि सभी मरेंगे, जीवित कोई भी न रहेगा किन्तु जो सब प्रकार के अभिमान को त्याग कर तथा ब्रह्म का साक्षात्कार करके जीवित है, वही ब्रह्मरूप होने से मर कर भी जीवित कहा जाता है।

दादू मेरा वैरी मैं मुवा, मुझे न मारे कोइ ।
मैं ही मुझको मारता, मैं मरजीवा होइ ॥ ११ ॥

'मैं' रूप अहंकार ही मुझ को मारता है, मेरा शत्रु 'मैं' रूप अहंकार मरा कि फिर कोई नहीं मार सकता। फिर तो मैं सहज ही जीवन्मुक्त हो जाता हूं।

वैरी मारे मर गये, चित तैं विसरे नांहिं ।
दादू अजहूँ साल है, समझ देख मन मांहिं ॥ १२ ॥

काम, क्रोधादिक शत्रु साधक द्वारा मारने से मर तो गये हैं किन्तु यदि उनका स्मरण हृदय से नहीं हटा है तो अब भी वे कष्ट दे सकते हैं। यह तुम स्वयं भी मन में विचार करके देख सकते हो।

उभय असमाव

दादू तो तूं पावे पीव को, जे जीवित मृतक होइ।
आप गँवाये पीव मिले, जानत हैं सब कोइ ॥ १३ ॥

१३-१७ में कहते हैं—जीवत्व अहंकार और ब्रह्म-साक्षात्कार एक काल में एक हृदय में नहीं रहते। हे साधक ! यदि तू जीवितावस्था में ही शव के समान निर्द्वन्द्व हो जाय तभी ब्रह्म को प्राप्त कर सकता है। ''मैं-तू'' आदि जीवत्व भाव व रूप अहंकार नष्ट करने से ही ब्रह्म प्राप्त होता है। यह बात शास्त्र संतों द्वारा सभी कोई जानते हैं।

दादू तो तूं पावे पीव को, आपा कछू न जान।
आपा जिस तैं ऊपजे, सोई सहज पिछान ॥ १४ ॥

अहंकार को कुछ भी न जानकर अर्थात् मिथ्या समझ कर, जिस चेतन आत्मा की सत्ता से अहंकार उत्पन्न होता है, उस सहज स्वरूप साक्षी आत्मा को पहचान लेगा, तो तू परब्रह्म को प्राप्त कर सकेगा।

दादू तो तूं पावे पीव को, मैं मेरा सब खोइ ।
मैं मेरा सहजैं गया, तब निर्मल दर्शन होइ ॥ १५ ॥

यदि तू ''मैं और मेरा'' रूप अहंकार नष्ट कर देगा तो परब्रह्म को प्राप्त कर सकेगा। आत्मज्ञान द्वारा ''मैं-मेरा'' रूप अहंकार नष्ट हो जाता है, तब अनायास ही अविद्या-मल रहित परब्रह्म का साक्षात्कार होता है।

मैं ही मेरे पोट शिर, मरिये ताके भार ।
दादू गुरु परसाद सौं, शिर तैं धरी उतार ॥ १६ ॥

''मैं'' रूप अहंकार की विशाल गठरी जीव के अन्तःकरण रूप शिर पर रक्खी है, उसके भार से जीव बारंबार व्यथित होता है। जिन साधकों ने सद्गुरु के ज्ञानोपदेश-प्रसाद से उसे उतार कर दूर धर दी है, वे सुखी हैं।

मेरे आगे मैं खड़ा, ता तैं रह्या लुकाइ[१] ।
दादू परकट पीव है, जे यहु आपा[२] जाइ ॥ १७ ॥

मुझ आत्मा के आगे ''मैं सुखी-दुखी'' आदि अहंकार खड़ा है। इसीलिये इसकी आड़ में परब्रह्म छिप[१] रहा है। यदि अहंकार[२] नष्ट हो जाय तो परब्रह्म प्रत्यक्ष ही भासेगा।

सूक्ष्म-मार्ग

दादू जीवित मृतक होइ कर, मारग मांहीं आव।
पहली शीश उतार कर, पीछे धरिये पाँव ॥ १८ ॥

१८-२१ में शिष्य बड़े सुन्दरदासजी को निर्गुण भक्ति रूप सूक्ष्म मार्ग में गति का उपदेश कर रहे हैं—प्रथम सब प्रकार के सांसारिक अहंकार को अन्त:करण रूप शिर से उतार के जीवितावस्था में ही मृतक के समान राग-द्वेषादि से रहित सम होकर पीछे ही निर्गुण भक्ति रूप सूक्ष्म मार्ग में पैर रख कर आगे बढ़ो।

दादू मारग साधु का, खरा दुहेला जान ।
जीवित मृतक ह्वै चले, राम नाम नीशान ॥ १९ ॥

संतों का निर्गुण उपासना रूप मार्ग सच्चा है किन्तु कठिन भी है, यह सत्य समझो। परन्तु परब्रह्म को लक्ष्य बनाकर, राम-नाम का चिन्तन करते हुए जीवितावस्था में ही शव के समान सम हो जाता है, वह अनायास ही इस सूक्ष्म मार्ग में चल सकता है।

दादू मारग कठिन है, जीवित चले न कोइ ।
सोई चलि है बापुरा[१], जो जीवित मृतक होइ ॥ २० ॥

संतों का निर्गुण मार्ग कठिन है, राग-द्वेषादि रूप जीवन युक्त प्राणी उसमें कोई भी नहीं चल सकता। वही शरीरधारी[१] उसमें चल सकता है, जो जीवितावस्था में ही शव के समान राग-द्वेषादि से रहित सम होता है।

मृतक होवे तो चले, निरंजन की बाट ।
दादू पावे पीव को, लंघे औघट घाट ॥ २१ ॥

जो जीवितावस्था में ही शव के समान राग-द्वेषादि से रहित सम हो जाता है वही निरंजन राम की प्राप्ति के मार्ग में चलकर, अविद्या रूप विकट घाटी को लांघ के ब्रह्म को प्राप्त करता है।

जीवित-मृतक

दादू मृतक तब ही जानिये, जब गुण इन्द्रिय नांहिं ।
जब मन आपा मिट गया, तब ब्रह्म समाना मांहिं ॥ २२ ॥

२२-२३ में जीवित-मृतक विषयक विचार कर रहे हैं—जब आसुरी गुण और इन्द्रियों के विषयों की आसक्ति न रहे, तब जानना चाहिए-यह जीवित मृतक है। जब सब प्रकार का अहंकार नष्ट होकर मन ब्रह्म-चिन्तन में ही लीन रहता है, तब वह साधक शरीर में रहते हुए भी ब्रह्म के समान ही है।

दादू जीवित ही मर जाइये, मर मांहीं मिल जाइ ।
सांई का सँग छाड़ कर, कौन सहे दुख आइ ॥ २३ ॥

हे साधको ! जीवितावस्था में ही शव के समान हो जाना चाहिए और इस प्रकार मर कर परब्रह्म में लय हो जाना चाहिए। ऐसा कौन बुद्धिमान् साधक होगा जो परब्रह्म के अभेद रूप संग को छोड़कर, राग-द्वेषादि के चक्कर में आकर क्लेश सहेगा ?

उभय असमाव

दादू आपा कहा दिखाइये, जे कुछ आपा होइ।
यहु तो जाता देखिये, रहता चीन्हो सोइ ॥ २४ ॥

२४-२५ में सांसारिक अहंकार और ब्रह्म साक्षात्कार दोनों साथ नहीं रहते, यह कह रहे हैं—अहंकार क्या दिखाते हो ? यदि अहंकार कुछ हो तो भी मिथ्या है। जिन धनादि का अहंकार करते हो, वे सब मिथ्या हैं, वे नष्ट होने वाले हैं, तब उनके साथ ही उनका अहंकार भी नष्ट होता देखा जाता है । अत: अहंकार को छोड़कर जो सदा अचल रहने वाले अविनाशी परब्रह्म है, विचार द्वारा उन्हीं का साक्षात्कार करो।

दादू आप छिपाइये, जहां न देखे कोइ ।
पिव को देख दिखाइये, त्यों त्यों आनंद होइ ॥ २५ ॥

अपने सांसारिक अहंकार को जहां रहने पर उसे कोई भी न देख सके, ऐसी उसकी सर्वथा अभाव रूप अवस्था में छिपा दो अर्थात् नष्ट कर दो। फिर परब्रह्म का साक्षात्कार करके ज्यों-ज्यों दूसरे साधकों को साक्षात्कार संबंधी उपदेश करोगे, त्यों-त्यों ही अधिक आनंद प्राप्त होगा।

आपा निर्दोष

दादू अंतर गति आपा[१] नहीं, मुख सौं मैं तैं होइ ।
दादू दोष न दीजिये, यों मिल खेलैं दोइ ॥ २६ ॥

२६-२७ में निर्दोष अहंकार का परिचय दे रहे हैं—जिन संतों के हृदय में ''मैं-तू'' आदि का अहंकार[१] नहीं है, वे भी मुख से 'मैं आपका दास हूँ, तू मेरा स्वामी है', इत्यादिक भगवान् से विनय करते हैं, उनको 'मैं-तू' आदि अहंकार का दोष न देना चाहिए। वे तो परब्रह्म में मिलकर ही इस प्रकार के प्रतीति मात्र द्वैत रूप अहंकार द्वारा भक्ति का आनंद लेते हैं।

जे जन आपा मेट कर, रहे राम ल्यौ लाइ ।
दादू सब ही देखतां, साहिब सौं मिल जाइ ॥ २७ ॥

जो साधक अपने सांसारिक अहंकार को नष्ट करके प्रतीति मात्र सेवक-स्वामी रूप अहंकार से निरंतर अपनी वृत्ति निरंजन राम में लगाते हैं, वे अनासक्ति भाव से सबको देखते हुये वा सबके देखते-देखते ही परब्रह्म को प्राप्त हो जाते हैं।

दीनता-गरीबी

गरीब गरीबी गह रह्या, मस्कीनी मस्कीन ।
दादू आपा मेट कर, होइ रह्या लै लीन ॥ २८ ॥

प्रसंग आमेर नरेश मानसिंह ने प्रश्न किया था—गरीबदास तथा मस्कीनदास नाम आपके शिष्यों के क्यों रक्खे गये हैं ? २८ में उसी का उत्तर दे रहे हैं—गरीबदास गरीबी और मस्कीनदास मिस्कीनी (दीनता) ग्रहण करके सब प्रकार का अहंकार हटा कर परब्रह्म में वृत्ति लगाकर लीन हो रहे हैं, इसीलिए रक्खे गये हैं।

उभय असमाव

मैं हूँ मेरी जब लगे, तब लग विलसे खाइ ।
मैं नाहीं मेरी मिटे, तब दादू निकट न जाइ ॥ २९ ॥

२९-३१ में कहते हैं—"मैं और मेरी" रूप अहंकार के रहते ब्रह्म प्राप्ति नहीं होती। जब तक 'मैं हूँ और ये नारी आदि सब मेरी वस्तुएँ हैं' यह भावना है, तब तक ही प्राणी का मन आसक्ति पूर्वक उनके उपभोग में अनुरक्त रहता है और जब "मैं" रूप अहंकार नहीं रहता, तब 'ये सब वस्तुएँ मेरी हैं', यह भावना भी मिटकर 'सब भगवान् की हैं', ऐसी भावना आ जाती है फिर आसक्ति पूर्वक मन उनके पास नहीं जाता, वैराग्य-पूर्वक ही जाता है।

दादू मना मनी[1] सब ले रहे, मनी न मेटी जाइ।
मना मनी जब मिट गई, तब ही मिले खुदाइ ॥ ३० ॥

यह मन सब प्रकार का अहंकार[1] लिये रहता है। इससे अहंकार नहीं मेटा जाता। जब साधन द्वारा साधकों का अहंकार मिट जाता है, तब ही उन्हें परब्रह्म प्राप्त होता है।

दादू मैं मैं जालदे, मेरे लागो आग।
मैं मैं मेरा दूर कर, साहिब के सँग लाग ॥ ३१ ॥

मैं बलवान्, मैं रूपवान्, इत्यादि मैं-पना और ये धनादिक मेरे हैं, इस अहंकार को ज्ञानाग्नि द्वारा जला दे और वैराग्य द्वारा मैं तथा मेरा-पन की आसक्ति को दूर कर के अद्वैत भाव से परब्रह्म के संग लग जा।

मनमुखी (यथेष्ट) मान

दादू खोई आपणी, लज्जा कुल की कार[1] ।
मान बड़ाई पति[2] गई, तब सन्मुख सिरजनहार ॥ ३२ ॥

३२ में कहते हैं—मन चाहे सम्मान के त्याग से ही प्रभु प्राप्ति होती है—जब अपनी प्रतिष्ठा खोकर भजन करता है और कुल की लज्जा, मर्यादा[1], मान, बड़ाई, लोक-लाज[2] आदि हृदय से चले जाते हैं, तब परमात्मा सन्मुख ही भासने लगते हैं।

परिचय करुणा विनती

नूर सरीखा कर लिया, बंदों का बंदा ।
दादू दूजा को नहीं, मुझ सरीखा गंदा ॥ ३३ ॥

साक्षात्कार होने पर विनय कर रहे हैं—हे प्रभो ! "मैं और मम" भाव रूप अहंकार के

समान अन्य कोई भी मलीन नहीं है। जब तक मेरे में वह था, तब तक मैं आपके भक्तों के भक्त के समान था किन्तु उसके हटते ही आपने दया करके मुझे अपने स्वरूप के समान निर्मल और अद्वैत बना लिया है, यह आपकी महान् कृपा है।

जीवित-मृतक

दादू सीख्यों प्रेम न पाइये, सीख्यों प्रीति न होइ।
सीख्यों दर्द न ऊपजे, जब लग आप न खोइ ॥ ३४ ॥

३४-४२ में जीवित-मृतक विषयक विचार कर रहे हैं—जब तक सब प्रकार का अहंकार नष्ट करके जीवित ही मृतक समान न हो, तब तक प्रेम के लक्षण कंठस्थ करने वा कहने से प्रेम नहीं प्राप्त होता है। न प्रीति की बातें सीखने वा कहने से मन में प्रीति उत्पन्न होती है और न विरही भक्तों की कथाएँ याद करने से हृदय में वियोग-जन्य दर्द उत्पन्न होता।

कहबा सुनबा गत भया, आपा पर का नाश।
दादू मैं तैं मिट गया, पूरण ब्रह्म प्रकाश ॥ ३५ ॥

जब अपना-पराया भेद-वृत्ति रूप अहंकार नष्ट हो जाता है, तब ही ब्रह्म-ज्ञान का कहना-सुनना सफल होता है। जिनका ''मैं-तू'' रूप अहंकार मिट गया है, उन्हीं को प्रकाश-स्वरूप पूर्ण ब्रह्म प्राप्त हुआ है।

सांई कारण मांस का, लोही पानी होइ।
सूखे आटा अस्थि का, दादू पावे सोइ ॥ ३६ ॥

परमात्मा की प्राप्ति के लिए तीव्रतम साधना करते-करते किसी साधक के शरीर का मांस रक्त के समान शिथिल हो जाता है और रक्त पानी के समान पतला हो जाता है, कदाचिद् हड्डी की मज्जा सूखकर आटे के समान हो जाती है। जब साधक ऐसा जीवित-मृतक होता है तब वह परमात्मा को प्राप्त करता है। इसमें मंकण ऋषि और शंकरजी का उदाहरण प्रसिद्ध है।

तन मन मैदा पीसकर, छाँण छाँण ल्यौ लाइ।
यौं बिन दादू जीव का, कबहूँ साल न जाइ ॥ ३७ ॥

स्थूल शरीर की क्रियाओं को और मन के मनोरथों को विवेक रूप चक्की से मैदा के समान पीसकर अर्थात् अच्छे-बुरे कर्म तथा मनोरथों का सम्बन्ध-विच्छेद करके फिर विचार रूप चलनी से बारंबार छाँण कर बुरे कर्म और बुरे मनोरथों को निकाल कर फेंक दें, पश्चात् अपनी वृत्ति परमात्मा के स्वरूप में लगायें। ऐसा किये बिना जीव का जन्मादिक संसार-क्लेश कभी भी नष्ट नहीं होता।

पीसे ऊपर पीसिये, छाँणे ऊपरि छाण।
तो आत्म कण ऊबरे, दादू ऐसी जाण ॥ ३८ ॥

३७ में कथित पद्धति से पीसना और छानना बारंबार करने पर आत्म रूप कण जन्म रूप उगने से बच जाता है। जैसे पीसने-छानने से दाणे की उगने की शक्ति नष्ट हो जाती है, वैसे ही

विवेक-विचार द्वारा कर्म और आसुरी गुणों के नष्ट हो जाने से जीवात्मा के जन्म का अभाव हो जाता है, तुम यह निश्चय पूर्वक जानो। जन्माभाव की साधन पद्धति ऐसी ही है।

पहली तन मन मारिये, इनका मर्दै मान।
दादू काढे जंत्र में, पीछे सहज समान ॥ ३९ ॥

प्रथम संयम के द्वारा अनावश्यक क्रिया और मनोरथों को हटाकर स्थूल शरीर तथा मन को जय कर लेना चाहिए, इस प्रकार इनका सांसारिक अभिमान नष्ट करके ज्ञान रूप जंतरी (तार को खैंच कर सीधा करने का औजार) में से निकाल कर सरल कर लेना चाहिए, फिर ये अनायास ही परमात्मा के स्वरूप में लग जायेंगे।

काटे ऊपर काटिये, दाधे को दौं[1] लाइ।
दादू नीर न सींचिये, तो तरुवर बधता जाइ ॥ ४० ॥

अहंकारादिक आसुरी गुणों को नष्ट कर देने पर भी उनका खंडन ही करते रहना चाहिए। यह अभिमान न करना चाहिए कि मैंने सबको जीत लिया है, अब वे मेरा क्या कर सकते हैं ? भोग-वासना को जला देने पर भी विचार अग्नि[1] द्वारा जलाते ही रहना चाहिए। विषय-प्रवृत्ति रूप जल अन्त:करण रूप आल-बाल (वृक्ष-थांवला) में कभी भी नहीं सींचना चाहिए। यदि ऐसा करोगे तब तो तुम्हारा ज्ञानरूप वृक्ष प्रतिदिन बढ़ता ही जायेगा।

दादू सबको संकट एक दिन, काल गहैगा आइ।
जीवित मृतक ह्वै रहै, ताके निकट न जाइ ॥ ४१ ॥

एक दिन काल आकर पकड़ेगा तब सबको संकट होगा, किन्तु जो जीवन्मुक्त हो जाता है, उसके निकट काल नहीं आता। उसका तो स्थूल सूक्ष्म संघात अपने आप ही अपने-अपने कारण में लय हो जाता है और चेतन व्यापक-चेतन में लय हो जाता है। अत: अन्य के समान उसे लेने काल दूत नहीं आता।

दादू जीवित मृतक ह्वै रहै, सबको विरक्त होइ।
काढो काढो सब कहैं, नाम न लेवे कोइ ॥ ४२ ॥

जो महानुभाव जीवितावस्था में ही मृतक के समान सबसे उदासीन रहता है तो घर के स्वार्थी लोग जैसे मृतक को शीघ्र निकालो-२ कहते हैं, वैसे ही उसे भी कहते हैं, रखने का नाम कोई भी नहीं लेता।

जरण

सारा[1] गहिला[2] ह्वै रहै, अन्तरयामी जाणि।
तो छूटे संसार तैं, रस पीवे सारंगपाणि[3] ॥ ४३ ॥

४३-४४ में अपनी पारमार्थिक योग्यता अन्यों के आगे प्रकट न करने की विशेषता बता रहे हैं—जो प्राणी अन्तर्यामी परमात्मा के स्वरूप को जानकर, सांसारिक प्राणियों से सब[1] प्रकार पागल[2]-सा होकर रहते हुये परमेश्वर[3] के भजन -रस का पान करे, तो ही संसार बंधन से मुक्त हो सकता है।

गूंगा गहिला बावरा, सांई कारण होइ ।
दादू दिवाना ह्वै रहै, ताको लखे न कोइ ॥ ४४ ॥

परमात्मा की प्राप्ति के लिए भजन में इतना मस्त होकर रहे कि संसारी प्राणी उसे गूंगा, अनसमझ तथा पागल समझें और कोई पहचान भी न सके कि यह संत है।

जीवित-मृतक

जीवित मृतक साध की, वाणी का परकास ।
दादू मोहे रामजी, लीन भये सब दास ॥ ४५ ॥

जीवन्मुक्त संत की वाणी की विशेषता बता रहे हैं—जीवन्मुक्त संत की वाणी का ज्ञान-प्रकाश इतना अद्‌भुत होता है कि उसे सुनकर स्वयं रामजी भी मोहित होते हैं और सब भक्तजन उसमें लीन रहते हैं।

उभय असमाव

दादू जे तूं मोटा मीर[१] है, सब जीवों में जीव ।
आपा देख न भूलिये, खरा दुहेला पीव ॥ ४६ ॥

४६-४८ में कहते हैं—अहंकार रहते भगवत् प्राप्ति असंभव है-४६ में साँभर के काजी और विलंदखान को उपदेश कर रहे हैं-हे काजी ! यदि तुम धर्माचार्य[१] हो तथा हे विलंदखान ! तुम सब जीवों में बड़े सरदार[१] हो तो, इस बड़ेपन के अहंकार को देखकर भगवत्-प्राप्ति का मार्ग मत भूलो। कारण, अहंकार के रहते हुए परमेश्वर प्राप्ति कठिन है। यह वचन सत्य समझो।

आपा मेट समाइ रहु, दूजा धंधा बाद ।
दादू काहे पच मरे, सहजैं सुमिरण साध ॥ ४७ ॥

कठोर तप-व्रतादिक करने में पच-पच कर क्यों कष्ट उठाता है ? नाम-स्मरण रूप साधना द्वारा अनायास ही सब अहंकार को मिटाकर परब्रह्म के स्वरूप में समाकर रह। अन्य सब सांसारिक कार्य परब्रह्म प्राप्ति के साधन न होने से तथा बन्धन के कारण होने से व्यर्थ हैं।

दादू आपा मेटे एक रस, मन अस्थिर लै लीन ।
अरस परस आनन्द करे, सदा सुखी सो दीन ॥ ४८ ॥

प्रथम सब प्रकार के अहंकार को मिटाता है और चंचल मन को सम्यक् स्थिर करके एकरस परमात्मा के स्वरूप में वृत्ति लीन करता है, वह दीन साधक परमात्मा से साक्षात् मिलने का आनंद प्राप्त करता हुआ सदा के लिए सुखी हो जाता है।

स्मरण नाम निस्संशय

हमौं हमारा कर लिया, जीवित करणी सार ।
पीछे संशय को नहीं, दादू अगम अपार ॥ ४९ ॥

अपनी स्मरण-साधना का संशय रहित फल बता रहे हैं—हमने अपनी जीवितावस्था में ही स्मरण रूप कर्त्तव्य करके विश्व के सार अगम अपार परब्रह्म को प्राप्त कर लिया है। देहान्त के पीछे क्या होगा ? ऐसा कोई संशय हमारे मन में नहीं है।

मध्य निर्पक्ष

माटी[1] मांहीं ठौर कर, माटी[2] माटी[3] मांहिं ।
दादू सम[4] कर राखिये, द्वै पख दुविधा[5] नांहिं ॥ ५० ॥

इति जीवत मृतक का अंग समाप्त ॥ २३ ॥ सा. २००५ ॥

मध्य निष्पक्ष मार्ग द्वारा जीवित-मृतक होकर ब्रह्म में अभेद होने की प्रेरणा कर रहे हैं— मुमुक्षु इस मिट्टी रूप स्थूल-शरीर[2] के अहंकार को मिट्टी[3] में मिला दे अर्थात् नष्ट कर दे और जीवित रहते हुए भी स्वयं को मृतक-मृत्तिकावत्[4] समझे ताकि द्वैत - बुद्धि व पक्षपात रूप दुविधा न रहे। इस प्रकार अन्त:करण को सहज सम करके जरणाधारी क्षमाशील[1] परमात्मा के स्वरूप में अपने रहने की ठौर तैयार कर निःसंशय[5] उसी में लय हो जाये।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका जीवित मृतक का अंग समाप्त : ॥ २३ ॥

अथ शूरातन का अंग २४

जीवित-मृतक अंग के अनन्तर संत-शौर्य का विचार करने के लिये ''सूरातन का अंग'' कहने में प्रवृत हुये मंगल कर रहे हैं—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत: ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक साधन करने की कायरता से पार होकर, आसुरी गुण तथा अज्ञान को नष्ट करने में शूरता दिखाता हुआ परब्रह्म को प्राप्त होता है, उन निरंजन राम, सद्गुरु और सर्व संतों को हम अनेक प्रणाम करते हैं।

शूर, सती, साधु निर्णय

साचा सिर सौं खेलहै, यह साधू जन का काम ।
दादू मरणा आसँघे, सोई कहेगा राम ॥ २ ॥

२-४ में संत शूर का परिचय दे रहे हैं—जैसे युद्ध में शूरवीर के लिए अपना शिर देकर (खै=) रण क्षेत्र की मिट्टी में (लहै=मिलना) मरना स्वर्ग को प्राप्त करता है, सती सहर्ष पति के साथ चिता में जलती है तब पति-लोक को प्राप्त होती है, वैसे ही सच्चा संत अपना अहंकार रूप शिर काट कर ब्रह्म को प्राप्त होता है। यह संतजन का ही विशेष कार्य है, शूरसती का नहीं। अत: जो जीवितावस्था में ही मृतक सम निर्द्वन्द्व होना स्वीकार करेगा, वही संत निरंजन राम का भजन करके उसे पायेगा।

राम कहैं ते मर कहैं, जीवित कह्या न जाइ ।
दादू ऐसैं राम कह, सती शूर सम भाइ ॥ ३ ॥

जो निरंजन राम का भजन करते हैं, वे जीवितावस्था में मृतक सम होकर ही करते हैं। अहंकार के जीवित रहने पर वास्तविक भजन नहीं किया जाता। अत: जैसे सती और शूर मरण को प्रिय समझ कर पति-लोक तथा स्वर्ग-लोक में जाते हैं, वैसे ही तुम भी अहंकार को नष्ट करने को प्रिय समझ कर भजन करो, तभी राम को प्राप्त कर सकोगे।

मध्य निर्पक्ष

माटी[1] मांहीं ठौर कर, माटी[2] माटी[3] मांहिं ।
दादू सम[4] कर राखिये, द्वै पख दुविधा[5] नांहिं ॥ ५० ॥

इति जीवत मृतक का अंग समाप्त ॥ २३ ॥ सा. २००५ ॥

मध्य निष्पक्ष मार्ग द्वारा जीवित-मृतक होकर ब्रह्म में अभेद होने की प्रेरणा कर रहे हैं— मुमुक्षु इस मिट्टी रूप स्थूल-शरीर[2] के अहंकार को मिट्टी[3] में मिला दे अर्थात् नष्ट कर दे और जीवित रहते हुए भी स्वयं को मृतक-मृत्तिकावत्[4] समझे ताकि द्वैत - बुद्धि व पक्षपात रूप दुविधा न रहे। इस प्रकार अन्त:करण को सहज सम करके जरणाधारी क्षमाशील[1] परमात्मा के स्वरूप में अपने रहने की ठौर तैयार कर निःसंशय[5] उसी में लय हो जाये।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका जीवित मृतक का अंग समाप्त : ॥ २३ ॥

अथ शूरातन का अंग २४

जीवित-मृतक अंग के अनन्तर संत-शौर्य का विचार करने के लिये ''सूरातन का अंग'' कहने में प्रवृत हुये मंगल कर रहे हैं—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत: ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक साधन करने की कायरता से पार होकर, आसुरी गुण तथा अज्ञान को नष्ट करने में शूरता दिखाता हुआ परब्रह्म को प्राप्त होता है, उन निरंजन राम, सद्गुरु और सर्व संतों को हम अनेक प्रणाम करते हैं।

शूर, सती, साधु निर्णय

साचा सिर सौं खेलहै, यह साधू जन का काम ।
दादू मरणा आसँघे, सोई कहेगा राम ॥ २ ॥

२-४ में संत शूर का परिचय दे रहे हैं—जैसे युद्ध में शूरवीर के लिए अपना शिर देकर (खै=) रण क्षेत्र की मिट्टी में (लहै=मिलना) मरना स्वर्ग को प्राप्त करता है, सती सहर्ष पति के साथ चिता में जलती है तब पति-लोक को प्राप्त होती है, वैसे ही सच्चा संत अपना अहंकार रूप शिर काट कर ब्रह्म को प्राप्त होता है। यह संतजन का ही विशेष कार्य है, शूरसती का नहीं। अत: जो जीवितावस्था में ही मृतक सम निर्द्वन्द्व होना स्वीकार करेगा, वही संत निरंजन राम का भजन करके उसे पायेगा।

राम कहैं ते मर कहैं, जीवित कह्या न जाइ ।
दादू ऐसैं राम कह, सती शूर सम भाइ ॥ ३ ॥

जो निरंजन राम का भजन करते हैं, वे जीवितावस्था में मृतक सम होकर ही करते हैं। अहंकार के जीवित रहने पर वास्तविक भजन नहीं किया जाता। अत: जैसे सती और शूर मरण को प्रिय समझ कर पति-लोक तथा स्वर्ग-लोक में जाते हैं, वैसे ही तुम भी अहंकार को नष्ट करने को प्रिय समझ कर भजन करो, तभी राम को प्राप्त कर सकोगे।

जब दादू मरबा गहै, तब लोगों की क्या लाज ?
सती राम साचा कहै, सब तज पति सौं काज ॥ ४ ॥

जब मरणा स्वीकार कर लिया जाय, तब संसारी लोगों से लज्जा करने की क्या आवश्यकता है ? फिर तो जैसे सती का सब कुछ त्याग कर अपने पति से ही काम रहता है, वैसे ही सच्चे साधक का भी सब कुछ त्यागकर राम २ कहने से ही काम रहता है।

दादू हम कायर कड़बा[१] कर रहे, शूर निराला होइ।
निकस खड़ा मैदान में, ता सम और न कोइ ॥ ५ ॥

कायर-शूर का परिचय दे रहे हैं—युद्ध के समय कायर लोग तो उत्तेजना के गीत गाते हुये युद्ध-प्रयाण[१] की तैयारी ही करते रहते हैं किन्तु वीर उन कायरों से भिन्न ही होता है। वह तो कायरों के यूथ से निकलकर युद्ध के मैदान में झट खड़ा हो जाता है, उसके समान वे कायर नहीं हो सकते। वैसे ही जीवित-मृतक होने की बातें करने वाले ही बहुत हैं, होने वाला उनसे भिन्न ही होता है। उसके समान बातें करने वाले नहीं हो सकते।

शूर सती साधु निर्णय

मडा[१] न जीवे तो संग जले, जीवे तो घर आण।
जीवन मरणा राम सौं, सोइ सती कर जाण ॥ ६ ॥

६-१२ में सच्चे शूर, सती और संत का परिचय दे रहे हैं—यदि मरणासन्न[१] पति जीवित नहीं रहे तो उसके साथ जल जाती है और जीवित हो जाय तो घर ले आती है, उसे ही सती समझना चाहिये। वैसे ही जिसका जीवन-मरण राम के लिये ही है, वही संत शूर है।

जन्म लगैं व्यभिचारणी, नख शिख भरी कलंक ।
पलक एक सन्मुख जली, दादू धोये अंक ॥ ७ ॥

जो जीव रूप सुन्दरी जन्म-भर भगवान् से विमुख हो, विषयों में लगना रूप व्यभिचार करती रही और नख से शिखा तक दोषों से भरी रही, किन्तु अन्त में भगवद्-भक्ति करके एक पलक भी भगवान् का साक्षात्कार कर लिया, उसकी अविद्या जल गई और जन्म-जन्मान्तरों के संपूर्ण कर्मों के अंक मैल धुल गये, यह निश्चय समझो।

स्वाँग सती का पहर कर, करे कुटुम्ब का सोच ।
बाहर शूरा देखिये, दादू भीतर पोच ॥ ८ ॥

जो सती और शूर का भेष पहन कर कुटुम्ब के पोषण की चिन्ता करे तथा संत का भेष धारण करके इन्द्रिय-पोषण का विचार करे, वे बाहर से ही सती, शूर और संत दिखाई देते हैं, भीतर हृदय उनका तुच्छ है।

दादू सती तो सिरजनहार सौं, जले विरह की झाल ।
ना वह मरे, न जल बुझे, ऐसे संग दयाल ॥ ९ ॥

वास्तविक सती तो वही है जो परमात्मा की प्राप्ति के लिये विरहाग्नि में जलती है। दयालु परमात्मा के संग के लिये जो विरहाग्नि से सदा जलती रहती है, वह ब्रह्मलीन हो अमर हो जाती है।

जे मुझ होते लाख शिर, तो लाखों देती वारि ।
सह[१] मुझ दिया एक शिर, सोई सौंपे नारि ॥ १० ॥

यदि मेरे लाख शिर होते तो मैं लाखों के लाखों शिर ही परमात्मा पर निछावर कर देती, किन्तु उस समर्थ प्रभु ने मुझे एक ही शिर साथ[१] में दिया है अत: मैं संत रूप पतिव्रता सुन्दरी उसे भी उसी को समर्पण करती हूं।

सती जल कोयला भई, मुये मड़े की लार ।
यों जे जलती राम सौं, साँचे सँग भरतार ॥ ११ ॥

अनेक सती नारियाँ मरे हुये पतियों के साथ जलकर कोयला हो गई हैं। ऐसे यदि जीवात्मा सच्चे स्वामी राम की विरहाग्नि में जलती तो राम को प्राप्त होकर रामरूप ही हो जाती।

मुये मड़े से हेत क्या, जे जिव की जाने नांहिं।
हेत हरी सौं कीजिये, जे अन्तरजामी मांहिं ॥ १२ ॥

जो हृदय की प्रीति को नहीं जानता, उस मरे हुये मुर्दे से प्रेम करने से क्या लाभ है ? पूर्ववत् जन्म-मरण रूप संसार ही प्राप्त होगा। जो हृदय के प्रेम को जानने वाला अन्तर्यामी परमात्मा तुम्हारे भीतर ही स्थित है उससे प्रेम करो, तुम्हें मुक्ति पद प्राप्त होगा।

शूरवीर-कायर

शूरा चढ संग्राम को, पाछा पग क्यों देइ ?
साहिब लाजे भाजतां, ध्रिग् जीवन दादू तेइ ॥ १३ ॥

१३-१८ में साधक शूर और कायर का परिचय दे रहे हैं—साधक-शूर साधन-संग्राम से कैसे हट सकता है ? हटने से उसके स्वामी को लाज लगती है और उसके शेष जीवन में लोग उसे धिक्कार ही देते हैं।

सेवक शूरा राम का, सोई कहेगा राम ।
दादू शूर सन्मुख रहै, नहिं कायर का काम ॥ १४ ॥

जो अहंकारादिक को नष्ट करने में वीर होगा, वही राम का सेवक राम-भजन कर सकेगा। कारण, वीर ही साधन-संग्राम में आसुरी-गुण रूप शत्रुओं को नष्ट करके परमात्मा के सन्मुख रहता है। विषयी-कायर का यह काम नहीं है, वह तो कामादिक से हार-मानकर विषयों में ही लगा रहता है।

कायर काम न आवही, यहु शूरे का खेत ।
तन मन सौंपे राम को, दादू शीश सहेत ॥ १५ ॥

कामी-कायर इस साधना-रणक्षेत्र में काम नहीं आते। यह तो जो तन, मन और अहंकार रूप शीश सप्रेम राम को समर्पण करते हैं, उन साधक शूरों के योग्य है।

जब लग लालच जीव का, तब लग निर्भय हुआ न जाइ ।
काया माया मन तजे, तब चौड़े[1] रहै बजाइ ॥ १६ ॥

जब तक साधक को अहंकार और शूर को शरीर जीवित रखने का लालच है, तब तक निर्भय नहीं हुआ जाता और जब मन शरीराध्यास तथा माया की आसक्ति त्याग देता है तब साधक अपना अनाहत नाद बजाकर अहंकारादि को नष्ट करने के लिये साधन-क्षेत्र में, और शूर अपना शंख बजाकर शत्रुओं को नष्ट करने के लिये युद्ध-क्षेत्र के मैदान[1] में, आ डटता है।

दादू चौड़े में आनन्द है, नाम धर्‌या रणजीत।
साहिब अपना कर लिया, अंतरगत की प्रीति ॥ १७ ॥

युद्ध के मैदान में युद्ध करने से निर्भयता का आनन्द रहता है। लोग रणजीत नाम धरते हैं तथा उसका स्वामी भी उसके हृदय की प्रीति को पहचान कर उसे अपनाता है। वैसे ही साधक को पक्षपात तथा लोक-लाज रहित प्रत्यक्ष में साधन करने से आनन्द रहता है और लोग उसका भक्त तथा संत नाम धरते हैं और परमात्मा उसके हृदय की प्रीति को पहचान कर उसे अपनाते हैं।

दादू जे तुझ काम करीम सौं, तो चौहट चढ़ कर नाच ।
झूठा है सो जाइगा, निहचै रहसी साच ॥ १८ ॥

यदि तुझे ईश्वर-मिलन से ही काम है तो अन्त:करण-चतुष्टय रूप बाजार के चौक के विषयाकार-वृत्ति रूप स्थान के ऊपर चढ़कर अर्थात् विषयाकार वृत्तियों को दबा कर भगवद्-भक्ति रूप नृत्य कर, फिर भक्ति का अभ्यास बढ़ने पर अन्त:करण में जो मिथ्या विषयों का राग है वह अपने आप चला जायगा और सत्य परमात्मा का चिन्तन अन्त:करण में निश्चयपूर्वक निरन्तर रहेगा तथा ईश्वर प्राप्त होगा।

जीवित-मृतक

राम कहेगा एक को, जे जीवित–मृतक होइ ।
दादू ढूंढे पाइये, कोटी मध्ये कोइ ॥ १९ ॥

१९ में कहते हैं-जीवन्मुक्त दुर्लभ है—जीवितावस्था में शव समान निर्द्वन्द्व होकर राम-भजन करने वाला कोई विरला ही मिलेगा। खोजने पर संभव है, करोड़ों व्यक्तियों में कोई एक मिल जाय।

शूर सती साधु निर्णय

शूरा पूरा संत जन, सांई को सेवे ।
दादू साहिब कारणे, शिर अपना देवे ॥ २० ॥

२०-२२ में साधक शूर का परिचय दे रहे हैं—पूरे शूर संतजन ही परमात्मा की प्राप्ति के लिये अपना अहंकार रूप शिर उतारकर परमात्मा की भक्ति करते हैं।

शूरा झूझे खेत में, सांई सन्मुख आइ ।
शूरे को सांई मिले, तब दादू काल न खाइ ॥ २१ ॥

साधक-शूर साधन-संग्राम द्वारा अहंकारादि को नष्ट करके परमात्मा के सन्मुख आता है। जब साधक-शूर को परमात्मा मिल जाते हैं तब उसे काल नहीं खाता, वह परमात्मा से ही मिल जाता है।

मरबे ऊपरि एक पग, करता करे सो होहि ।
दादू साहिब कारणे, तालाबेली[1] मोहि ॥ २२ ॥

हमने तो अहंकारादिक को नष्ट करने के लिये एक निश्चय से साधन-संग्राम में पैर रोप रक्खा है, नष्ट करके ही हटेंगे। आगे जो ईश्वर करेंगे वही होगा, किन्तु हमें परमात्मा के दर्शनार्थ बड़ी व्याकुलता[1] है।

हरि भरोस

दादू अंग न खैंचिये, कह समझाऊँ तोहि ।
मोहि भरोसा राम का, बंका बाल न होहि ॥ २३ ॥

२३-२४ में राम का भरोसा दिला रहे हैं—हे साधक ! साधन-संग्राम से शरीर को बाहर मत खैंच अर्थात् साधन मत छोड़। मुझे राम का दृढ़ भरोसा है, वही तुझे कह कर समझा रहा हूं। अहंकारादिक आसुरी गुण तेरा बाल भी बांका न कर सकेंगे, तू राम के बल पर विजयी होकर राम को प्राप्त होगा।

बहुत गया थोड़ा रह्या, अब जिव सोच निवार ।
दादू मरणा मांड रहु, साहिब के दरबार ॥ २४ ॥

हे जीव ! जीवन का बहुत-सा समय चला गया है, थोड़ा ही शेष रहा है। अब तो सांसारिक चिन्ताओं को त्याग कर तथा अहंकारादि को नष्ट करने की तैयारी करके परमात्मा के भक्ति रूप दरबार में जाकर रह अर्थात् भक्ति कर।

शूरवीर-कायर

जीवों का संशय पड़्या, को काको तारे ।
दादू सोई शूरवाँ, जे आप उबारे ॥ २५ ॥

२५-३१ में शूर और कायर का परिचय दे रहे हैं—सब जीवों का उद्धार का साधन भी संशय में पड़ा है अर्थात् जो उद्धार का साधन करते हैं, उनमें संशय रहता है कि इससे हमारा उद्धार होगा या नहीं ? फिर कौन किसका उद्धार कर सकता है ? अत: वही शूरवीर है, जो प्रथम अहंकारादि से अपना उद्धार करता है।

जे निकसे संसार तैं, सांई की दिशि धाइ ।
जे कबहूं दादू बाहुड़े, तो पीछे मार्‌या जाइ ॥ २६ ॥

जो परमात्मा की भक्ति करने सांसारिक भोग-वासनाओं को त्याग कर निकल भी जाता है, उसकी वृत्ति भी यदि संग-दोष से पुन: विषयों में आयेगी तो कामादिक शत्रुओं के द्वारा वह फिर भी मारा जायेगा। संसार में लोक-निन्दा के बोलों से भी मारा जायगा।

दादू कोई पीछे हेला[२] जनि[३] करे[४], आगे हेला[१] आव[५] ।
आगे एक अनूप है, नहिं पीछे का भाव[६] ॥ २७ ॥

जैसे वीर आगे युद्ध-भूमि में वीरों के बुलावे[१] पर ही आता[५] है, पीछे से कोई कायर आवाज[२] दे कि शत्रु बलवान् है, लौट आओ, उसको नहीं[३] स्वीकार करता[४]। वैसे ही साधक अन्तर्मुख वृत्ति होने पर आने वाली अनाहत ध्वनि की ओर ही बढ़ता जाता है, कोई विषय-स्मृति रूप आवाज आती है तो उसकी ओर वृत्ति को नहीं जाने देता, कारण, आगे उसे अद्वैत अनुपम सुख प्राप्त होता है। अत: पीछे के क्षणिक विषय-सुख की भावना[६] उसमें नहीं रहती।

पीछे को पग ना भरे, आगे को पग देइ ।
दादू यहु मत शूर का, अगम ठौर को लेइ ॥ २८ ॥

वीर घर की ओर पैर नहीं रखता, रणक्षेत्र की ओर ही पैर बढ़ाता है और युद्ध में मर के सर्व साधारण से अगम स्वर्ग-धाम को प्राप्त करता है, यही वीर का मत है। वैसे ही साधक विषयों की ओर वृत्ति नहीं जाने देता। ब्रह्माकार वृत्ति की ही वृद्धि करता है और ब्रह्म रूप अगम-धाम को प्राप्त होता है। यही शूरवीर साधक का मत है।

आगा चल पीछा फिरे, ताका मुँह मा[१] दीठ[२] ।
दादू देखे दोइ दल, भागे देकर पीठ ॥ २९ ॥

जो शूर वीर आगे रणभूमि में जाकर, भय से रणभूमि से वापस लौट आता है अथवा जो दोनों ओर के सैन्य दलों को भयानक लड़ते देखकर बिना विजय किये ही भयभीतावस्था में पीठ दिखाकर भाग जाता है, ऐसे कायर का मुख देखने[२] योग्य नहीं[१]। वैसे ही साधक साधन में आगे बढ़कर, प्रतिष्ठा वा विषयों के फंद में आ जाता है, वह अपने कर्म-बीज को ज्ञानाग्नि द्वारा नहीं भून सकता, उसके अदृष्ट तथा वासना रूप दोनों दलों को पुन: देखता है=जन्म-मरण में आता है। अत: वह पतन की ओर आने से दर्शनीय नहीं।

दादू मरणा माँड[१] कर, रहै नहीं ल्यौ लाइ ।
कायर भाजे जीव ले, आ[२] रण[३] छाड़े जाइ ॥ ३० ॥

कायर रणभूमि में मरने की तैयारी[१] करके भी रुकता नहीं। रण में आया[२] हुआ भी, भय से रण को छोड़, अपना जीव लेकर भागता है और घर को आ जाता है। वैसे ही विषयी जीवन अहंकारादि के नष्ट करने की तैयारी[१] करके भी परब्रह्म में वृत्ति लगाकर संयम से नहीं रह सकता। साधन[३] छोड़कर विषयों में ही आसक्त होता है। अरण्य को त्याग गृहस्थाश्रम में फँसता है।

शूरा होइ सु[१] मेर[२] उलंघे, सब गुण बंध्या छूटे ।
दादू निर्भय ह्वै रहै, कायर तिणा[३] न टूटे ॥ ३१ ॥

वीर होता है वह घर, नारी आदि की आसक्ति आदि रूप गुणों से बँधा हुआ होने पर भी उन्हें छोड़कर सुमेरू रूप युद्ध के समय अपनी सेना की सीमा[२] को सम्यक्[१] उल्लंघन करके शत्रु-दल में निर्भय होकर युद्ध करता रहता है किन्तु कायर से एक तृण[३] भी नहीं टूटता। वैसे ही साधक अहंकारादि गुणों से बँधा हुआ होने पर भी भक्ति आदि के बल से छूट जाता है और घंटे-दो घंटे भजन करने की सीमा[२] को सम्यक्[१] लांघकर निर्भयता से निरन्तर भजन करता रहता है किन्तु विषयी से विषय-राग रूप तृण भी नहीं टूटता।

शूर सती साधु निर्णय

सर्प केशरि काल कुंजर, बहु जोध मारग मांहिं।
कोटि में कोई एक ऐसा, मरण आसँघ जांहिं॥ ३२॥

३२-३७ में शूर सती साधु का परिचय दे रहे हैं—प्रभु प्राप्ति मार्ग के मध्य संसार-वन में संशय रूप सर्प, क्रोध रूप सिंह, काम रूप हाथी आदि काल के समान महा बलवान् बहुत योद्धा विघ्नरूप हैं। अत: ऐसा साधक शूर कोटि में कोई एक ही होगा, जो मृत्यु को स्वीकार करके इनसे संघर्ष करता हुआ संसार-वन से पार परमात्मा के पास चला जाय।

दादू जब जागे तब मारिये, वैरी जिय के साल।
मनसा डायनि काम रिपु, क्रोध महाबली काल॥ ३३॥

सांसारिक वासना रूप डाकिनी और काल के समान महा बलवान् काम-क्रोध रूप शत्रुओं को जब भी हृदय में उत्पन्न हों, तब ही वैराग्य, वस्तु-विचार और क्षमा से मार देने चाहिये। क्योंकि ये जीव के लिए महाक्लेश रूप हैं।

पंच चोर चितवत रहैं, माया मोह विष झाल[१]।
चेतन पहरे आपने, कर गह खड्ग सँभाल॥ ३४॥

पंच ज्ञानेन्द्रिय रूप चोर देखते ही रहते हैं, किंचित् प्रमाद होते ही भगवदाकार वृत्ति को चुरा कर मायिक मोह और विषय रूप विष की ज्वाला[१] में डालकर व्यथित करते हैं। अत: वैराग्य रूप तलवार मन रूपी हाथ में लेकर अपने पहरे पर सावधान रहते हुये वृत्ति की निरन्तर सँभाल पूर्वक रक्षा करनी चाहिये।

काया कबज[१] कमान[२] कर, सार शब्द कर तीर।
दादू यहु शर सांध कर, मारै मोटे मीर[३]॥ ३५॥

सूक्ष्म शरीर को संयम में रखना रूप धनुष[२] धारण[१] करे तथा सार रूप परब्रह्म की प्राप्ति के साधनों के सहायक सद्गुरु के शब्द रूप बाणों से अन्त:करण-तूणीर भरकर तैयार रहे, फिर जो भी आसुरी-गुणों का सरदार[३] वृत्ति के सामने आवे, उसे मारने योग्य बाण को संधान करके मार दे अर्थात् क्रोध उत्पन्न हो तो क्षमा-प्रधान शब्द विचार से नष्ट कर दे। इसी प्रकार सद्गुरु के शब्द-बाणों द्वारा सब को मारे।

काया कठिन कमान है, खाँचे विरला कोइ।
मारे पंचों मृगला, दादू शूरा सोइ॥ ३६॥

सूक्ष्म-शरीर को संयम में रखना रूप धनुष धारण करना सर्व साधारण के लिये कठिन है। कोई विरला साधक ही सद्गुरु शब्द-बाण उस पर रखकर खैंचता है और जो उसके द्वारा पंच-ज्ञानेन्द्रिय रूप मृगों को मारता है=विषयासक्ति से रहित करता है, वही सच्चा शूर माना जाता है।

जे हरि कोप करे इन ऊपर, तो काम कटक दल जांहिं कहाँ।
लालच लोभ क्रोध कत भाजे, प्रकट रहे हरि जहाँ तहाँ ॥ ३७ ॥

साधक-शंका—हमारे प्रयत्न बिना ही हरि कामादि को क्यों नहीं भगा देते ? उत्तर-यदि हरि इन काम-सेना, लालच, लोभ क्रोधादि के दल पर कोप करे तो ये भाग कर कहां जायेंगे ? कारण, हरि तो जहाँ-तहाँ सर्वत्र व्यापक हैं। यह बात विश्व में अति प्रकट है। अत: साधक को ही साधन द्वारा कामादि को हृदय से हटाना चाहिये।

शूरातन

दादू तन मन काम करीम के, आवे तो नीका।
जिसका तिसको सौंपिये, सोच क्या जी[1] का ॥ ३८ ॥

३८-४४ में शौर्य का परिचय दे रहे है स्थूल-सूक्ष्म शरीर ईश्वर-भक्ति रूप काम में लगे तब ही अच्छे माने जाते हैं। अत: जिस ईश्वर के तन, मन, धनादि हैं, उसी को समर्पण कर दो। फिर इस जीव[1] के लिये चिंता की क्या बात रह जाती है ? कुछ नहीं, उसका योगक्षेम ईश्वर ही करता है।

जे शिर सौंप्या राम को, सो शिर भया सनाथ।
दादू दे ऊरण[1] भया, जिसका तिसके हाथ ॥ ३९ ॥

जो सिर राम के समर्पण कर दिया गया, वह सनाथ हो गया। वह जिस राम का था, उसी के हाथ में देकर ऋण-उतार[1] कर कृतज्ञ हो गया= भक्ति द्वारा भगवान् को प्राप्त करके अपना कर्त्तव्य पूरा कर दिया।

जिसका है तिसकौं चढे, दादू ऊरण[1] होइ।
पहली देवे सो भला, पीछे तो सब कोइ ॥ ४० ॥

तन-धनादि जिस ईश्वर के हैं, उसी को यदि समर्पण हो जायें तो जीव ईश्वर के ऋण[1] से रहित हो जाता है। जो जीवितावस्था में ही भगवान् को समर्पण कर देता है, वही श्रेष्ठ भक्त माना जाता है, मृत्यु के समय तो सभी त्यागते हैं।

सांई तेरे नांव पर, शिर जीव करूं कुरबान।
तन मन तुम पर वारणे, दादू पिंड पराण ॥ ४१ ॥

हे ईश्वर ! मैं आपके नाम पर अपना अहंकार रूप शिर और जीवन बलिदान करता हूं तथा अपना तन, मन और शरीर में संचार करने वाला प्राण भी आप पर निछावर करता हूं।

अपने सांई कारणे, क्या क्या नहिं कीजे ?
दादू सब आरंभ तज, अपणा शिर दीजे ॥ ४२ ॥

अपने स्वामी परमात्मा की प्राप्ति के लिये क्या क्या नहीं किया जाता ? सब कुछ किया जा सकता है। अत: सम्पूर्ण काम्य कर्मों का करना छोड़कर अपना अहंकार रूप शिर उतार दो और हरि की अनन्य शरण हो जाओ।

शिर के साटे लीजिये, साहिबजी का नांव।
खेले शीश उतार कर, दादू मैं बलि जांव ॥ ४३ ॥

अहंकार रूप शिर देकर परमात्मा का नाम चिन्तन करना चाहिये। जो सब प्रकार का अहंकार रूप शिर उतार कर परब्रह्म का साक्षात्कार रूप खेल खेलता है, उसकी हम बलिहारी जाते हैं।

खेले शीश उतार कर, अधर एक सौं आइ ।
दादू पावे प्रेम रस, सुख में रहै समाइ ॥ ४४ ॥

जो मायिक संसार से ऊपर आकर तथा अपना अहंकार रूप शिर उतार कर साधन-संग्राम में निरंजन अद्वैत ब्रह्म से खेलता है, वह परब्रह्म के परम प्रेम-रस को प्राप्त करके परम सुख में समा कर रहता है।

मरण भय निवारण

दादू मरणे थीं तूं मत डरे, सब जग मरता जोइ।
मिल कर मरणा राम सौं, तो कलि अजरावर[१] होइ॥ ४५॥

४५-५१ में मृत्यु-भय दूर कर रहे हैं—तू मरणे से मत डरे, देख तो सही, सभी जगत् के प्राणी मरते हैं, फिर तू कैसे न मरेगा ? किन्तु जो राम का साक्षात्कार करके मरता है, वह संसार में देवताओं[१] से भी श्रेष्ठ अजर-अमर[१] रूप परमात्मा रूप ही हो जाता है।

दादू मरणे थीं तूं मत डरे, मरणा अंत निदान।
रे मन मरणा सिरजिया, कहले केवल राम ॥ ४६ ॥

अरे मन! मरणे से तू मत डर, मरणा तो अंत में निश्चित ही है। वह तो जन्म के समय ही नियत हो चुका था। जो जन्मता है, वह अवश्य मरता है। अत: माया रहित परब्रह्म का चिन्तन कर, यही तेरा कर्त्तव्य है।

दादू मरणे थीं तूं मत डरे, मरणा पहुँच्या आइ ।
रे मन मेरा राम कह, बेगा बार न लाइ ॥ ४७ ॥

अरे मेरे मन! तू मरणे से मत डर, मरणा तो पास ही आ पहुँचा है, अब शीघ्र ही राम का भजन करने में लग जा, देर मत कर।

दादू मरणे थीं तूं मत डरे, मरणा आज कि काल्ह ।
मरणा मरणा क्या करे, बेगा राम सँभाल ॥ ४८ ॥

मरणे से मत डर, आज या कल मरणा तो है ही, मरणा-मरणा क्या पुकारता है। शीघ्र राम भजन करने में लग।

दादू मरणा खूब है, निपट[1] बुरा व्यभिचार ।
दादू पति को छाड़ कर, आन[2] भजे भरतार ॥ ४९ ॥

अहंकार रहित होना रूप मरणा तो अति श्रेष्ठ है, किन्तु परमात्मा रूप पति को छोड़ अन्य[2] देवतादि को भरतार समझ कर भजना सर्वथा[1] बुरा और व्यभिचार है।

दादू तन तैं कहा डराइये, जे विनश जाइ पल बार ।
कायर हुआ न छूटिये, रे मन हो हुसियार ॥ ५० ॥

जो एक क्षण जितने समय में नष्ट हो जाता है, ऐसे भजन में विघ्न करने वाले विरोधी शरीर से क्यों डरता है ? कायर होकर डरने से तेरे कर्म का भोग तो नहीं छूटेगा ? अत: हे मन ! भजन के लिये सावधान हो।

दादू मरणा खूब है, मर मांहीं मिल जाइ ।
साहिब का सँग छाड़ कर, कौन सहे दुख आइ ॥ ५१ ॥

अहंकार का नष्ट करना रूप मरणा अति श्रेष्ठ है। कारण, साधक मर कर परमात्मा में ही मिल जाता है। अत: फिर परमात्मा का एकता रूप संग छोड़कर कौन बुद्धिमान् संसार में आकर जन्मादि दु:ख सहन करेगा ?

शूरातन

दादू मांहीं मन सौं झूझ कर, ऐसा शूरा वीर ।
इन्द्रिय अरि दल भान सब, यों कलि हुआ कबीर ॥ ५२ ॥

५२-५५ में शौर्य का परिचय दे रहे हैं—शरीर के भीतर मन से युद्ध करके उसमें रहने वाले कामादि रूप सब शत्रु-दल को नष्ट करके तथा इन्द्रियों को जीत कर निर्भय हुआ है, ऐसा साधक ही शूर कहलाता है। ऐसे ही वीर कलियुग में कबीर हुये हैं।

सांई कारण शीश दे, तन मन सकल शरीर ।
दादू प्राणी पंच दे, यों हरि मिल्या कबीर ॥ ५३ ॥

परमात्मा की प्राप्ति के लिये अपना अहंकार रूप सिर उतार कर, मन और पांचों ज्ञानेन्द्रियों को जो प्राणी परमात्मा के भजन में लगाता है, वही परमात्मा को प्राप्त होता है। इसी प्रकार कबीर जी हरि को प्राप्त हुये हैं।

सबै कसौटी शिर सहै, सेवक सांई काज ।
दादू जीवन क्यों तजे, भाजे हरि को लाज ॥ ५४ ॥

साधक परमात्मा की प्राप्ति के लिये सभी कठोर परीक्षा रूप कष्टों को सहन करे किन्तु अपनी जीवन रूप भक्ति को किसी प्रकार भी न त्यागे। कारण, भक्ति को त्याग कर विषयों की ओर भागने से हरि को लाज लगती है। लोग कहते हैं—देखो, हरि-भक्त होकर भी विषयों में गिर गया।

सांई कारण सब तजे, जन का ऐसा भाव ।
दादू राम न छाड़िये, भावे तन मन जाव[1] ॥ ५५ ॥

भक्त का ऐसा ही प्रेम होता है—वह परमात्मा की प्राप्ति के लिये सम्पूर्ण सांसारिक भावनाओं को त्याग देता है। अत: चाहे विषय और वासनादि के त्याग व साधना से तन मन क्षीण हो जाय,[1] किन्तु साधक को राम-भजन न छोड़ना चाहिये।

पतिव्रत निष्काम

दादू सेवक सो भला, सेवे तन मन लाइ ।
दादू साहिब छाड़कर, काहू संग न जाइ ॥ ५६ ॥

५६-५७ में निष्काम पतिव्रत का परिचय दे रहे हैं—जो परमात्मा का भजन छोड़ कर किसी भी प्रकार सांसारिक वासना के पीछे नहीं लगता और अपना तन-मन भगवद्-भक्ति में ही लगाकर भक्ति करता है, वही भक्त अच्छा है।

पतिव्रता निज पीव को, सेवे दिन अरु रात ।
दादू पति को छाड़कर, काहू संग न जात ॥ ५७ ॥

जैसे पतिव्रता रात-दिन अपने पति की सेवा करती है, पति को छोड़कर किसी अन्य के साथ नहीं जाती। वैसे ही भक्त जीवन-भर परमात्मा की भक्ति करता है, अन्य किसी विषय-वासना के संग नहीं लगता।

शूरातन

दादू मरबो एक जु बार, अमर झुकेड़े[1] मारिये ।
तो तिरिये संसार, आतम कारज सारिये ॥ ५८ ॥

५८-५९ में शूरता का परिचय दे रहे हैं—अहंकार का नाश रूप मरण तो एक ही बार होता है फिर तो अमरता प्राप्त हो जाती है। अत: अमर ब्रह्म की ओर ही मन के धक्के[1] लगाओ=मन को अहंकार रहित करो, तब ही संसार से पार होकर परब्रह्म-प्राप्ति रूप अपना कार्य सिद्ध कर सकोगे।

दादू जे तूं प्यासा प्रेम का, तो जीवन की क्या आस।
शिर के साटे पाइये, तो भर भर पीवे दास ॥ ५९ ॥

हे साधक ! यदि तू भगवत् प्रेम का प्यासा है, तो अहंकार को जीवित रखने की क्यों आशा करता है ? सच्चे भक्त-जन तो अहंकार रूप शिर देने पर भी प्रभु-प्रेम मिले, तब भी सहर्ष अपने कर्ण-पुटों को भर-भर कर पान करते हैं। जीवन से अधिक महत्त्व भगवत्कथा-श्रवण को देते है।

कायर

मन मनसा जीते नहीं, पंच न जीते प्राण ।
दादू रिपु जीते नहीं, कहैं हम शूर सुजान ॥ ६० ॥

६०-६१ में कायर का परिचय दे रहे हैं—जिनने मन को, अन्त:करण की नाना सांसारिक

वासनाएँ, पंच ज्ञानेन्द्रिय, और काम क्रोधादिक रिपुओं को विजय किया नहीं, फिर भी कहते हैं—''हम रण चतुर शूर हैं''। वे शूर न होकर कायर ही हैं।

मन मनसा मारे नहीं, काया मारण जांहिं ।
दादू बांबी मारिये, सर्प मरे क्यों मांहिं ॥ ६१ ॥

लोग मन तथा सांसारिक वासनाओं को तो नहीं मारते किन्तु शरीर को नष्ट करने के लिये काशी-करवत लेने, हिमालय में गलाने आदि के लिये जाते हैं। यह उनका उद्योग सर्प को न मार कर बाँबी को दंडे मारने के समान है। बाँबी के मारने से सर्प नहीं करता, वैसे ही कठोर तपादि से शरीर को क्षीण करने से मन क्षीण नहीं होता और शरीर को मारने से मन नहीं मरता।

शूरातन

दादू पाखर[१] पहर कर, सब को झूझण जाइ ।
अंग उघाड़े शूरवाँ, चोट मुँहैं मुँह खाइ ॥ ६२ ॥

६२-६८ में शौर्य का परिचय दे रहे हैं—जैसे हाथी लोहे की झूल[१] पहन कर संग्राम में जाता है, वैसे ही सकाम भक्ति रूप कवच[१] वा भेषरूप कवच पहन कर प्रतिमा-पूजा, जप, तपादि बाह्य साधन-संग्राम तो सभी करते हैं किन्तु उक्त कवच को उतार कर निष्काम भाव युक्त और बिना भेष के ही जो कामादि से युद्ध करता हुआ उनके वेग रूप आघात को अपने विचार रूप मुख पर झेल कर उन्हें कमजोर करके नष्ट करता है, वही वीर है।

जब झूझे तब जाणिये, काछ[१] खड़े क्या होइ ।
चोट मुँहैं मुँह खाइगा, दादू शूरा सोइ ॥ ६३ ॥

साधक-शूर का भेष[१] बना कर खड़े रहने से ही क्या शूर मान लिया जाता है, नहीं। जब कामादि से युद्ध करते हुये उनके वेग रूप आघात को अपने विचार रूप मुख ही मुख पर खायगा=विचार द्वारा नष्ट कर देगा, वही शूर है।

शूरातन सहजैं सदा, साच शेल हथियार ।
साहिब के बल झूझताँ, केते लिये सु[१] मार ॥ ६४ ॥

साधक-शूर सत्य रूप भाला तथा सद्गुरु के यथार्थ शब्द रूप अन्यान्य हथियार ग्रहण करके परमात्मा के बल पर सदा युद्ध करता हुआ कितने ही कामादि शत्रुओं को अनायास सम्यक्[१] प्रकार मार कर शौर्य दिखाता है।

दादू जब लग जिय लागे नहीं, प्रेम प्रीति के सेल[१] ।
तब लग पिव क्यों पाइये, नहिं बाजीगर का खेल ॥ ६५ ॥

जब तक भगवत्-प्रेम पूर्ण संतों के वचन रूप भाले[१] अन्त:करण में प्रीतिपूर्वक नहीं लगते, तब तक परमात्मा कैसे प्राप्त हो सकते हैं ? यह साधन-संग्राम है, बाजीगर का खेल तो नहीं है।

दादू जे तूं प्यासा प्रेम का, तो किसको सैंतैं[१] जीव ।
शिर के साटे लीजिये, जे तुझ प्यारा पीव ॥ ६६ ॥

हे जीव ! यदि तू प्रभु-प्रेम का प्यासा है तो बलिदानार्थ किसी जीव को क्यों सताता[१] है ? वा वीरता पूर्वक नाना वस्तुओं का संचय[२] किसके लिये करता है ? यह तेरा शौर्य उचित नहीं। जो तुझे परमात्मा प्यारे लगते हैं तो अपने अहंकार रूप शिर को उतार करके उन्हें प्राप्त कर।

दादू महा जोध मोटा बली, सो सदा हमारी भीर[१] ।
सब जग रूठा क्या करे, जहाँ तहाँ रणधीर ॥ ६७ ॥

जो सबसे महान् अति बली महायोद्धा परमात्मा हैं, वे विपत्ति[१] में सदा हमारी सहायता करते हैं। अत: यदि सब जगत् भी हम से रुष्ट हो जाय तो क्या करेगा ? हमारे सहायक रणधीर प्रभु तो सदा हमारी सहायतार्थ तैयार ही रहते हैं।

दादू रहते पहते राम जन, तिन भी माँड्या झूझ ।
साचा मुँह मोड़े नहीं, अर्थ इता ही बूझ ॥ ६८ ॥

संसारी जन तो हम से झगड़ा करते ही रहते थे किन्तु शेष बचे राम के भक्त-जन भी युद्ध करने लगे हैं। तथापि हे सज्जनो ! सच्चा भक्त किसी संप्रदायादि की ओर मुख नहीं करता, बस, इतने में ही हमारा भावार्थ समझ जाओ।

प्रसंग-गलता से चार साधु इस ध्येय से महाराज के पास साँभर आये थे कि इन्हें अपने वैष्णव संप्रदाय में मिला लिया जाय। दादूजी महाराज ने उनका प्रस्ताव नहीं स्वीकार किया, तब वे रुष्ट होकर लड़ने लगे थे। उन्हें ही ६८ वीं साखी कही थी।

हरि भरोस

दादू काँधे सबल के, निर्वाहेगा और ।
आसन अपने ले चल्या, दादू निश्चल ठौर ॥ ६९ ॥

हरि का भरोसा दिखा रहे हैं—हम तो सबल ईश्वर के ही आश्रय हैं, वे ही हमको अन्त तक निभायेंगे। उन्हीं का स्वरूप ज्ञान अब हमको निश्चल-धाम रूप अपने आसन पर ले चला है।

शूरातन

दादू क्या बल कहा पतंग का, जलत न लागे बार ।
बल तो हरि बलवन्त का, जीवे जिहिं आधार ॥ ७० ॥

७०-७१ में शौर्य दिखा रहे हैं—जीव रूप पतंग जिसका भरोसा करके शरण जाता है, उस देवता रूप दीपक का क्या बल कहा जाय ? जीव रूप पंतग को काल-ज्योति में जलकर मरते कुछ भी देर नहीं लगती, वह शरणागत की रक्षा काल-ज्योति से नहीं कर सकता। बल तो अति बलवान् हरि का ही है जिस का आश्रय पाकर जीव अमर हो जाता है।

राखणहारा राम है, शिर ऊपर मेरे ।
दादू केते पच गये, बैरी बहुतेरे ॥ ७१ ॥

काम-क्रोधादिक कितने ही शत्रु हमारा पतन करने के लिये पच २ कर नष्ट हो गये, कारण, हमारे रक्षक समर्थ राम हमारे शिर पर हैं। अत: कामादि हमारा पतन नहीं कर सके।

शूरातन विनती

दादू बल तुम्हारे बापजी, गिणत न राणा राव ।
मीर[1] मलिक[2] प्रधान[3] पति[4], तुम बिन सब ही बाव[5] ॥ ७२ ॥

७२-७५ में शौर्यार्थ विनय कर कहे हैं-हे बापजी ! आपके बल पर भक्त जन, राणा, राजा आदि को महान् नहीं समझते, क्योंकि-वे आपके बिना सरदार[1], सम्राट्[2], प्रधान मंत्री[3], सेनापति[4] आदि सभी को विषय[5]'-प्रद समझते हैं, मुक्ति-प्रद नहीं।

दादू राखी राम पर, अपणी आप संवाह[1] ।
दूजा को देखूं नहीं, ज्यों जानैं त्यों निर्वाह ॥ ७३ ॥

हमने सम्पूर्ण व्यवस्था निरंजन राम पर ही रक्खी है, वे अपनी संस्था जान कर अपने आप ही चलायेंगे[1]। दूसरा कोई उपाय हम नहीं देखते। जैसे निरंजन राम तुमको जानेंगे, वैसे ही तुम्हारा निर्वाह करते रहेंगे।

प्रसंग-महाराज के ब्रह्मलीन होने के समय गरीबदासजी ने प्रश्न किया था-आपके पश्चात् आपका यह समाज किस उपाय से और कैसे चलेगा ? उसी का उत्तर ७३ से दिया था।

तुम बिन मेरे को नहीं, हमको राखनहार ।
जे तूं राखे सांइयाँ, तो कोई न सके मार ॥ ७४ ॥

हे निरंजन राम ! आपके बिना हमारा सहायक कोई नहीं है, हमारे रक्षक तो आप ही हैं। यदि आप रक्षा करें तो हमें कोई भी नहीं मार सकता।

सब जग छाड़े हाथ तैं, तो तुम जनि छाड़हु राम ।
नहिं कुछ कारज जगत सौं, तुमही सेती काम ॥ ७५ ॥

यदि सब जगत् हमको छोड़ दे तो भी हे राम ! आप अपने कृपा रूप हाथ से हम भक्तों को नहीं छोड़ना, कारण, जगत् से तो हमारा कोई कार्य नहीं है, हमारा काम तो आपसे ही है।

शूरातन

दादू जाते जिव[1] तैं तो डरूं, जे जिव मेरा होइ।
जिन यहु जीव उपाइया, सार करेगा सोइ ॥ ७६ ॥

७६-७८ में शौर्य दिखा रहे हैं—यदि प्राण[1] हमारा हो तो इसे जाते हुये देख कर हमें भय हो सकता है किन्तु यह तो जिनने उत्पन्न किया है, उन्हीं प्रभु का है, वे ही इसकी रक्षा करेंगे, हमें क्या चिन्ता है ?

दादू जिनको सांई पाधरा[1], तिन बंका नाहिं कोइ ।
सब जग रूठा क्या करे, राखणहारा सोइ ॥ ७७ ॥

जिनसे परमात्मा सीधे[१] रहते हैं उनसे कोई भी बाँका नहीं होता और यदि सब जगत् रुष्ट हो जाय तो भी उन भक्तों का क्या कर सकता है ? क्योंकि उनके रक्षक वे सर्व-समर्थ परमात्मा हैं।

दादू साचा साहिब शिर ऊपरै, तती[१] न लागे बाव[२]।
चरण कमल की छाया रहै, कीया बहुत पसाव[३] ॥ ७८ ॥

जिनके शिर पर रक्षक सत्यस्वरूप परमात्मा हैं, उनके तो उष्ण[१] विषयप्रद वायु[२] भी नहीं लग सकती। उन पर भगवान् ने बड़ा अनुग्रह[३] किया है, जिससे वे भगवान् के चरण-कमलों की छाया में रहते हैं, जो अति शीतल-सुखद है।

विनती

दादू कहै–जे तूं राखे सांइयाँ, तो मार सके ना कोइ ।
बाल न बांका कर सके, जे जग बैरी होइ ॥ ७९ ॥

७९-८२ में विनय कर रहे हैं—हे प्रभो ! यदि आप रक्षा करें तो कोई भी नहीं मार सकता। सब जगत् भी शत्रु बन जाय तो भी एक बाल भी टेढ़ा नहीं कर सकता।

राखणहारा राखे, तिसे कौन मारे। उसे कौन डुबोवे, जिसे सांई तारे ।
कहै दादू सो कबहूं न हारे, जे जन सांई सँभारे ॥ ८० ॥

जिसकी रक्षा राम करे, उसे कौन मार सकता है ? जिसको ईश्वर संसार से तारे, उसे संसार में कौन डुबो सकता है ? जिसकी परमात्मा सँभाल रखते हैं, वह कामादि शत्रुओं से कभी भी नहीं हारता।

निर्भय बैठा राम जप, कबहूँ काल न खाइ ।
जब दादू कुंजर चढ़े, तब सुनहाँ[१] झख जाइ ॥ ८१ ॥

जैसे हाथी पर बैठे हुये व्यक्ति को श्वान[१] भौंक२ चला जाता है, काट नहीं सकता। वैसे ही हे साधक ! भगवान् के बल पर निर्भयता से बैठ कर राम का चिन्तन कर, फिर तुझे कभी भी काल न खा सकेगा।

कायर कूकर कोटि मिल, भौंकें अरु भागें ।
दादू गरवा[१] गुरुमुखी, हस्ती नहिं लागें ॥ ८२ ॥

इति श्री सूरातन का अंग समाप्त ॥ २४ ॥ सा. २०८७ ॥

जैसे अनेक श्वान मिलकर हाथी की ओर भौंक २ कर भागते हैं किन्तु हाथी के नहीं लग सकते। वैसे ही अनेक विषयी, निन्दक, कायर मिलकर साधक को निन्दादि द्वारा व्यथित करना चाहते हैं, किन्तु गुरु आज्ञा में चलने वाला गंभीर[१] साधक उनकी नहीं सुनता।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका शूरातन का अंग समाप्त : ॥ २४ ॥

अथ काल का अंग २५

शूरातन-अंग के अनन्तर काल का विचार करने के लिये ''काल का अंग'' कहने में प्रवृत्त हुये मंगल कर रहे हैं—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत: ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक काल-भय से मुक्त होकर परब्रह्म को प्राप्त होता है, उन निरंजनराम, सद्गुरु और सर्व संतों को हम अनेक प्रणाम करते हैं।

काल न सूझे कंध पर, मन चितवे बहु आश ।
दादू जीव जाने नहीं, कठिन काल की पाश ॥ २ ॥

२-२५ में काल की चेतावनी दे रहे हैं—प्राणी बहुत-सी आशायें करके निरन्तर विषयों का चिन्तन करता रहता है, उसे कंधे पर आया हुआ काल भी नहीं दीखता। काल की फाँसी कितनी कठिन है, इस बात को जीव जानता ही नहीं।

काल हमारे कंध चढ, सदा बजावे तूर[1] ।
कालहरण कर्त्ता पुरुष, क्यौं न सँभाले शूर ॥ ३ ॥

काल हमारे कंधे पर चढ़कर सदा प्रस्थान का नगाड़ा[1] बजा रहा है। हे मन ! फिर भी तू काल के भय को नष्ट करने वाले महाशूर कर्त्ता पुरुष परमात्मा का स्मरण क्यों नहीं करता ?

जहँ जहँ दादू पग धरे, तहां काल का फंध ।
शिर ऊपर सांधे खड़ा, अजहुं न चेते अंध ॥ ४ ॥

प्राणी जिस जिस विषय पर अपना मन रूप पैर रखता है, वहां-वहां ही उसे विषयासक्ति रूप काल का फँदा बाँध लेता है और काल रूप शिकारी अन्त-समय रूप बाण सांधे खड़ा रहता है, ऐसा होने पर भी यह अंध प्राणी अब तक भी सावधान नहीं हो रहा है।

दादू काल गिरासन का कहै, काल रहित कह सोइ।
काल रहित सुमिरण सदा, बिना गिरासन होइ ॥ ५ ॥

जो काल के ग्रास हैं, उनकी कथा क्या कहता है ? जो काल रहित है, उन परमात्मा की कथा कह। जो काल रहित परमात्मा का सदा स्मरण करता है, वह काल का ग्रास होने से बच कर ब्रह्म स्वरूप ही हो जाता है।

दादू मरिये राम बिन, जीजे राम सँभाल ।
अमृत पीवे आतमा, यों साधू बंचे काल ॥ ६ ॥

राम-भजन के बिना प्राणी बारम्बार मृत्यु को प्राप्त होता है। अत: राम-भजन करके परब्रह्म प्राप्ति रूप जीवन प्राप्त करना चाहिये। इसी प्रकार संतों का मन राम-भजन द्वारा ज्ञानामृत का पान करता रहता है, तब ही संत काल से बचते हैं।

दादू यहु घट काचा जल भरा, विनशत नाहीं बार ।
यहु घट फूटा जल गया, समझत नहीं गँवार ॥ ७ ॥

इस कच्चे घट रूप शरीर में प्राण-जल भरा है, इसे नाश होते देर न लगेगी। यह कच्चा घट रूप शरीर प्रारब्ध-समाप्ति रूप चोट से फूटते ही प्राण-जल चला जायेगा, फिर नहीं रुक सकता। मूर्ख मानव इस बात को नहीं समझते, तभी तो काल से बचने के लिये राम-भजन नहीं करते।

फूटी काया जाजरी[1], नव ठाहर काँणी ।
ता में दादू क्यों रहै, जीव सरीखा पाणी ॥ ८ ॥

यह काया-गगरी फूटी हुई है, रोम कूप-सूक्ष्म छिद्रों के कारण जर्जर[1] है और एक मुख, दो कान, दो आँख, दो नाक, मल तथा मूत्र मार्ग, इन नो स्थूल छिद्रों वाली है। फिर इसमें जीव जैसा सूक्ष्म-जल कैसे रह सकता है ? अत: चिरस्थायित्व का विश्वास छोड़कर राम भजन करो।

बाव[1] भरी इस खाल का, झूठा गर्व गुमान ।
दादू विनशे देखतां, तिसका क्या अभिमान ॥ ९ ॥

इस प्राण वायु[1] से भरी हुई, चर्म से आच्छादित काया के बल का गर्व और सौन्दर्य का घमण्ड मिथ्या है। जो देखते-देखते क्षणभर में नष्ट हो जाय, उसका अभिमान ही क्या है ? कुछ नहीं।

दादू हम तो मूये मांहिं हैं, जीवन का रु[1] भरंम ।
झूठे का क्या गर्वबा, पाया मुझे मरंम ॥ १० ॥

हम तो अहंकार नष्ट हो जाने से मुर्दों की गणना में ही हैं हमारे जीने का तो[1] तुम्हें भ्रम हो रहा है और[1] जो हमारे अहंकार को जीवित समझते हैं, उन्हें भी भ्रम ही है। हमने तो आत्मानात्मा का रहस्य जान लिया है। अत: हम मिथ्या शरीर का क्या अभिमान करेंगे ?

यहु वन हरिया देखकर, फूल्यो फिरे गँवार ।
दादू यहु मन मृगला, काल अहेड़ी लार ॥ ११ ॥

यह मूर्ख मन रूप मृग इस संसार वन के विषय-वृक्षों की अनुकूलता-हरियाली को देखकर हर्ष से फूला फिरता है, किन्तु अपने पीछे लगे हुये काल-शिकारी को नहीं देखता, यह इसका प्रमाद है।

सब ही दीसैं काल मुख, आपा गह कर दीन्ह ।
विनशे घट आकार का, दादू जे कुछ कीन्ह ॥ १२ ॥

अहंकार को ग्रहण करके प्राणियों ने अपने को काल के मुख में दे रक्खा है । अत: अविवेकी अहंकार-युक्त सभी प्राणी काल के मुख में दिखाई दे रहे हैं। अहंकार युक्त जो कुछ किया गया है, वह और स्थूल-शरीर काल के द्वारा नष्ट होता रहता है।

काल कीट तन काठ को, जरा जन्म को खाइ।
दादू दिन दिन जीव की, आयु घटंती जाइ ॥ १३ ॥

शरीर रूप काष्ठ को काल-कीट जन्म से ही खा रहा है। प्रतिदिन आयु क्षीण होती जा रही है। इस प्रकार जरावस्था से जीर्ण करके शरीर को मृत्यु द्वारा नष्ट कर देगा।

काल गिरासे जीव को, पल पल श्वासैं श्वास।
पग पग मांहीं दिन घड़ी, दादू लखे न तास ॥ १४ ॥

प्रतिदिन, प्रति घड़ी, पद-पद पर तथा प्रति पल और प्रति श्वास में काल प्राणों को खा रहा है किन्तु प्राणी उसे देखता भी नहीं, यह उसका प्रमाद है।

पग[१] पलक की सुधि नहीं, श्वास शब्द क्या होइ।
कर मुख मांहीं मेल्हतां, दादू लखे न कोइ ॥ १५ ॥

पैर उठाते-रखते, चौथाई पल या पलक खोलते-मींचते, श्वास आते-जाते, शब्द बोलते और हाथ से ग्रास मुख में रखते समय भी क्या हो जाय, यह जीव को ज्ञात नहीं है। काल की गति को तो कोई भी नहीं जानता। ('पाव'[१] पाठान्तर है। पाव=पग, चौथाई।)

दादू काया कारवीं[१], देखत ही चल जाइ ।
जब लग श्वास शरीर में, राम नाम ल्यौ लाइ ॥ १६ ॥

यह काया सराय[१] के समान है। देखते-देखते ही इसे छोड़कर श्वास पथिक चला जायगा। अत: जब तक शरीर में श्वास है, तब तक तो राम-नाम में वृत्ति लगाकर अपना कल्याण कर ले।

दादू काया कारवीं[१], मोहि भरोसा नांहिं ।
आसन कुंजर शिर छत्र, विनश जाहिं क्षण मांहिं ॥ १७ ॥

यह काया मुसाफिरखाने[१] के समान है, इसमें स्थायी रूप से रहने का हमें भरोसा नहीं है। जो हाथी पर बैठते हैं और जिनके शिर पर छत्र रहता है, उनकी भी काया क्षण भर में छूटकर नष्ट हो जाती है। कोई सैन्य-बल रक्षा नहीं कर सकता।

दादू काया कारवीं[१], पड़त न लागे बार[२] ।
बोलणहारा महल में, सो भी चालणहार ॥ १८ ॥

यह काया यात्री-घर[१] के समान है, इसे पड़ते देर[२] न लगेगी और इसके हृदय-महल में बोलने वाला जीव रूप यात्री है, वह भी जाने वाला ही है।

दादू काया कारवीं[१], कदे न चाले संग ।
कोटि वर्ष जे जीवना, तऊ होइला भंग ॥ १९ ॥

यह काया पथिक-विश्राम स्थान[१] के समान है, कभी भी जीव-पथिक के साथ नहीं चल सकेगी। यदि इसमें कोटि वर्ष जीवन धारण करके रहे, तो भी इसका संग तो छूटेगा ही।

कहतां, सुनतां, देखतां, लेतां, देतां प्राण ।
दादू सो कतहूँ गया, माटी धरी मसाण ॥ २० ॥

जो कहता था, सुनता था, देखता था, लेता था, देता था, वह प्राणधारी जीवात्मा कहां गया ? पता नहीं, अब तो केवल मिट्टी श्मशान में रक्खी है।

सींगी नाद न बाज ही, कत गये सो जोगी ।
दादू रहते मढ़ी में, करते रस भोगी ॥ २१ ॥

शरीर रूप कुटिया में रह कर सब रसों का उपभोग करते थे, वे जीवरूप योगी कहाँ गये ? आज उनका श्वास-प्रश्वास रूप सींगी नाद नहीं बज रहा है।

प्रसंग कथा-आमेर में महाराज के समीप की पहाड़ी पर एक नाथ योगी प्रात: सींगी बजाया करता था। एक दिन नहीं बजी तब महाराज ने २१ वीं साखी से उसकी मृत्यु सूचित की थी।

दादू जियरा जायगा, यहु तन माटी होइ ।
जे उपज्या सो विनश है, अमर नहीं कलि कोइ ॥ २२ ॥

सूक्ष्म-शरीर रूप जीव चला जायगा और स्थूल-शरीर मिट्टी हो जायगा। जो उत्पन्न हुआ है, वह नष्ट होगा, कलियुग में अमर कोई नहीं रहेगा।

दादू देही[1] देखतां, सब किसही की जाइ ।
जब लग श्वास शरीर में, गोविन्द के गुण गाइ ॥ २३ ॥

देखते-देखते स्थूल शरीर को छोड़कर सभी का जीवात्मा[1] जायगा। अत: जब तक शरीर में श्वास हैं, तब तक गोविन्द का गुण-गान करके अपना कल्याण करो।

दादू देही[1] पाहुणी, हंस बटाऊ मांहिं ।
का जाणूं कब चालसी, मोहि भरोसा नांहिं ॥ २४ ॥

स्थूल-देह को धारण करने वाला सूक्ष्म-शरीर रूप देही अतिथि है और इसमें रहने वाला जीव रूप हंस भी पथिक है। हम नहीं जानते कि यह कब चला जाये। हमें इसके रहने का भरोसा नहीं है।

दादू सब को[1] पाहुणा, दिवस चार संसार ।
अवसर-अवसर सब चले, हम भी इहै विचार ॥ २५ ॥

इस संसार में सभी कोई[1] चार दिन के अतिथि हैं, समय-समय पर सब चले जा रहे हैं। हम भी इसी विचार में हैं कि हमें भी चलना होगा। अतः इस अमूल्य जीवन-समय को भक्ति में लगाओ।

भय मय-पंथ विषमता

सबको बैठे पंथ शिर, रहे बटाऊ होइ ।
जे आये ते जाहिंगे, इस मारग सब कोइ ॥ २६ ॥

२६-३१ में भय रूप मार्ग की कठिनता दिखा रहे हैं—सभी कोई श्वास क्षीण होना रूप मार्ग के ऊपर बैठे हैं और पथिक होकर ही रह रहे हैं। आयु समाप्त होते ही जो जन्म कर आये हैं, वे सभी मृत्यु के मार्ग से अवश्य जायेंगे।

बेग बटाऊ पंथ शिर, अब विलंब न कीजे ।
दादू बैठा क्या करे, राम जप लीजे ॥ २७ ॥

हे पथिक ! तू जीवन-मार्ग पर चल रहा है अर्थात् पल-पल मृत्यु के समीप जा रहा है, शीघ्रता कर, अब देर मत कर, व्यर्थ बैठा-बैठा क्या कर रहा है ? राम-नाम का चिन्तन करके अपने स्वरूप ब्रह्म को प्राप्त कर ले, जिससे इस मार्ग के कष्ट से बच जाय और जीवन सफल हो जाय।

संझ्या चले उतावला, बटाऊ वन खँड मांहिं।
बरियाँ[1] नांहीं ढील की, दादू बेगि घर जांहिं ॥ २८ ॥

जैसे सायंकाल के समय पथिक वन खंड के मार्ग से शीघ्र ही निकल कर घर जाता है, देर नहीं करता, वैसे ही अब मेरी आयु का अन्तिम समय है, यह देर करने का समय[1] नहीं है, शीघ्र राम-भजन द्वारा अपने ब्रह्म रूप घर को जाना चाहिए।

दादू करह[1] पलाण[2] कर, को चेतन चढ जाइ ।
मिल साहिब दिन देखतां, सांझ पड़े जनि आइ ॥ २९ ॥

हे साधक रूप पथिक ! अपने साधन मार्ग से युवावस्था रूप दिन को देखते-देखते ही अर्थात् शरीर में बल रहते-रहते ही परमात्मा को प्राप्त कर ले। कहीं अति वृद्धावस्था रूप सायंकाल न आ पड़े। यदि अति वृद्ध हो गया तो फिर कुछ भी न होगा। कोई सावधान साधक ही मन रूप ऊंट[1] पर भक्ति-ज्ञानादि रूप जीन[2] कसके तथा उस पर अभेद निष्ठा द्वारा चढ़ कर देहान्त से पूर्व ही परब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।

पंथ दुहेला दूर घर, संग न साथी कोइ ।
उस मारग हम जाहिंगे, दादू क्यों सुख सोइ ॥ ३० ॥

निष्काम भाव से निर्गुण-भक्ति करना रूप मार्ग कठिन है और निर्गुण-ब्रह्म रूप हमारा घर भी माया से परे होने के कारण अति दूर है। उस निर्गुण-साधन रूप मार्ग में कुटुम्बी आदि संग नहीं रह सकते और धन भी साथ नहीं देता। उसी मार्ग से हम परमात्मा के पास जायेंगे। अत: सुख से न सो कर, हमें निरंतर भक्ति-साधन करना चाहिए।

लंघण[1] के लकु[2] घणा[3], कपर[4] चाट[5] डीन्ह[6] ।
अल्लह[7] पाँधी[8] पंध[9] में, बिहंदा[10] आहीन[11] ॥ ३१ ॥

संसार-सागर पार कर ईश्वर[7] के पास जाने-वाले[1] पथिक[8] ऐसे पंथ[9] में खड़े[10] हैं[11], जिसमें काम-क्रोधादिक बहुत[3]-सी चौड़ी घाटियाँ[2] आती हैं और विषयाशा रूप नदी का तट[4], तृष्णा[5] रूप उत्ताल तरंगों से भय दे-रहा[6] है।

काल चेतावनी

दादू हँसतां रोतां पाहुणा[1], काहू छाड़ न जाइ।
काल खड़ा शिर ऊपरै, आवणहारा आइ ॥ ३२ ॥

३२-४३ में काल की चेतावनी दे रहे हैं—जब पति अपनी पत्नी को लेने सुसराल आता है तब उसके साथ वह हँसती हुई जाय वा रोती हुई, वह पत्नी को किसी प्रकार भी छोड़कर नहीं जाता, ले ही जाता है। वैसे ही आने वाला काल आकर शिर पर खड़ा है, ले ही जायेगा।

दादू जोरा[1] वैरी काल है, सो जीव न जानै ।
सब जग सूता नींदड़ी, इस तानै बानै ॥ ३३ ॥

जो अपना प्रबल[1] शत्रु है उस काल को जीव नहीं जानते। इस सांसारिक लेन-देन व्यवहार रूप ताने-बाने में लगकर सब जगत् के जीव मोह-निद्रा में सोये पड़े हैं।

दादू करणी काल की, सब जग परलै होइ ।
राम विमुख सब मर गये, चेत न देखे कोइ ॥ ३४ ॥

पूर्व काल में राम से विमुख सभी मर कर संसार चक्कर में ही गये हैं और वर्तमान में भी काल के मुख में जाने योग्य कर्त्तव्य करके सब जगत् के प्राणी नष्ट हो रहे हैं। कोई भी सावधान होकर कल्याण-मार्ग की ओर नहीं देखता।

साहिब को सुमिरे नहीं, बहुत उठावे भार ।
दादू करणी काल की, सब परलै संसार ॥ ३५ ॥

नाना कुकर्म करके उनके फल रूप पाप का बोझा तो शिर पर उठाते हैं किन्तु भगवान् का स्मरण नहीं करते। इस प्रकार काल के मुख में जाने योग्य कर्त्तव्य करके संसार के सब प्राणी नष्ट हो रहे हैं।

सूता काल जगाइ कर, सब पैसैं मुख मांहिं ।
दादू अचरज देखिया, कोई चेतै नांहिं ॥ ३६ ॥

जैसे सुप्त सिंह को जगाने वाला उसी के मुख में जाता है, वैसे ही सब प्राणी अपने कामक्रोधादि से पूर्ण कार्यों द्वारा प्रसुप्त काल को जगाकर उसके मुख में जाते हैं। यह बड़ा आश्चर्य है—सब को काल के मुख में जाते देख कर भी कोई सावधान नहीं होता।

सब जीव विसाहैं[1] काल को, कर कर कोटि उपाइ ।
साहिब को समझैं नहीं, यों परलै है जाइ ॥ ३७ ॥

सब जीव नाना प्रकार के सकाम कर्म रूप कोटि उपाय करके काल को ही मोल[1] लेते हैं, निष्काम भक्ति-ज्ञानादि द्वारा परब्रह्म को अद्वैत रूप से नहीं समझते, इसीलिए इस प्रकार नष्ट होते हैं।

दादू कारण काल के, सकल सँवारैं आप ।
मीच बिसाहैं[1] मरण को, दादू शोक संताप ॥ ३८ ॥

काल के मुख में पहुँचाने के हेतु कामक्रोधादि संपूर्ण आसुरी गुणों को प्राणी स्वयं ही अपने हृदय में सजाता है। इस प्रकार मरने के लिए मृत्यु को मोल[1] लेकर शोक-संताप करता है।

दादू अमृत छाड़ कर, विषय हलाहल खाइ ।
जीव विसाहै काल को, मूढ़ा मर मर जाइ ॥ ३९ ॥

मूर्ख प्राणी भगवद्-भजनामृत को छोड़कर विषय रूप तीव्र विष खाते हैं। इस प्रकार अपने हाथों ही मृत्यु को मोल ले के मर-मर कर अन्य शरीरों में जाते हैं।

निर्मल नाम विसार कर, दादू जीव जंजाल ।
नहीं तहां तैं कर लिया, मनसा मांहीं काल ॥ ४० ॥

जीव ने निर्गुण परमात्मा का निर्मल नाम भूल कर जिस आत्मा में प्रपंच नहीं था, उसी की सत्ता से बुद्धि में आरोप करके काल को खड़ा कर लिया है।

सब जग छेली काल कसाई, कर्द लिये कँठ काटे ।
पंच तत्त्व की पंच पँसुरी, खंड-खंड कर बाँटे ॥ ४१ ॥

सब जगत् के प्राणी बकरी हैं, काल कसाई कर्मफल छुरी रात्रि दिन हाथों में लेकर आयु-रूपी कंठ काट रहा है और पंच तत्त्वों से बनी हुई पंच ज्ञानेन्द्रिय रूप पंसुलियों को खंड-खंड करके अर्थात् उनकी वृत्ति छिन्न-भिन्न करके विषय रूप ग्राहकों को वितरण करता है।

काल झाल में जग जले, भाज न निकसे कोइ ।
दादू शरणैं साच के, अभय अमर पद होइ ॥ ४२ ॥

कालाग्नि की ज्वाला में संसार के प्राणी जल रहे हैं, फिर भी भगवद्-भजन रूप दौड़ लगाकर कोई भी नहीं निकलता। यदि कोई सत्य परब्रह्म की शरण चला जाय, तब तो निर्भय होकर अमर पद को प्राप्त हो जाता है। फिर उस पर काल का बल नहीं चलता।

सब जग सूता नींद भर, जागे नाहीं कोइ ।
आगे पीछे देखिये, प्रत्यक्ष परलै होइ ॥ ४३ ॥

जगत् के सब अज्ञानी प्राणी पूर्ण रूप से मोह-निद्रा में सो रहे हैं, कोई भी तो ज्ञान-जाग्रत में नहीं आता। इसी कारण देखिये, प्रत्यक्ष ही आगे पीछे सब नष्ट हो रहे हैं।

ये सज्जन दुर्जन भये, अंत काल की बार ।
दादू इन में को नहीं, विपति बटावनहार ॥ ४४ ॥

४४-४५ में कुटुम्बियों में होने वाले आसक्ति रूप मोह से सचेत कर रहे हैं—जिन में तुम्हारी आसक्ति है वे कुटुम्बी रूप सज्जन मृत्यु के समय कल्याणार्थ धन खर्च में बाधक होने से तथा निर्दयता पूर्वक दाह करने से सभी के दुर्जन होते रहे हैं। इनमें विपत्ति बटाने वाला कोई भी नहीं है। स्वयं की इन्द्रियाँ भी साथ नहीं देती। अत: इनके मोह को छोड़कर भगवद्-भजन करो।

संगी सज्जन आपणा, साथी सिरजनहार ।
दादू दूजा को नहीं, इहिँ कलि इहिँ संसार ॥ ४५ ॥

सदा संग रह कर साथ देने वाला अपना मित्र एक परमात्मा ही है, उसको छोड़ कर संसार में तथा विशेष करके इस कलियुग में तो कोई भी नहीं है।

काल चेतावनी

ए दिन बीते चल गये, वे दिन आये धाइ ।
राम नाम बिन जीव को, काल गरासे जाइ ॥ ४६ ॥

४६-४९ में काल से सावधान कर रहे हैं—ये बाल्य-युवावस्था के दिन चले गये हैं और दौड़कर वे मृत्यु दिन आ गये हैं। अब राम-नाम के चिन्तन बिना ही जीव के शरीर को काल खाकर चला जायगा।

जे उपज्या सो विनश है, जे दीसे सो जाइ ।
दादू निर्गुण राम जप, निश्चल चित्त लगाइ ॥ ४७ ॥

जो उत्पन्न हुआ है वह नष्ट होगा, जो दीखता है, वह चला जायेगा। अत: चित्त को स्थिर करके निर्गुण राम के नाम-जप में लगा।

जे उपज्या सो विनश है, कोई थिर न रहाइ ।
दादू बारी आपणी, जे दीसे सो जाइ ॥ ४८ ॥

जो उत्पन्न हुआ है वह नष्ट होगा, विनाशी पदार्थ कोई भी स्थिर नहीं रहता। जो दीखते हैं, वे सब अपनी-अपनी बारी से चले जायेंगे।

दादू सब जग मर मर जात है, अमर उपावणहार ।
रहता रमता राम है, बहता सब संसार ॥ ४९ ॥

सब जगत् के प्राणी मर-मर कर अन्य शरीरों में जा रहे हैं। अमर तो केवल संसार को उत्पन्न करने वाला परमात्मा ही है। अत: यह सब संसार चलने वाला है और इस में व्यापक रूप से रमने वाला राम ही स्थिर रहता है।

सजीवन

दादू कोई थिर नहीं, यहु सब आवै जाइ ।
अमर पुरुष आपै रहै, कै साधू ल्यौ लाइ ॥ ५० ॥

न मरने वाले सजीवनों का परिचय दे रहे हैं—यह सभी मायिक प्रपंच उत्पत्ति नाश वाला है, इसमें कोई भी स्थिर नहीं है। अमर स्वयं पुरुषोत्तम भगवान् ही रहते हैं वा उनमें वृत्ति लगाकर उन्हें प्राप्त करके संत अमर हो जाते हैं।

काल चेतावनी

यहु जग जाता देखकर, दादू करी पुकार ।
घड़ी महूरत चालना, राखै सिरजनहार ॥ ५१ ॥

५१-५२ में काल से सावधान कर रहे हैं—सब जगत् के प्राणी काल के मुख में जा रहे हैं, यह देखकर संतों ने उच्च स्वर से कहा है-भाइयो ! घड़ी वा दो घड़ी आगे-पीछे सबको चलना होगा, यदि रक्षा चाहते हो तो रक्षक परमात्मा ही हैं। उनका भजन करने से वे रक्षा कर लेंगे।

दादू विषय सुख मांहीं खेलतां, काल पहुँच्या आइ ।
उपजे विनशे देखतां, यहु जग यों हीं जाइ ॥ ५२ ॥

उत्पन्न होकर विषय सुखार्थ क्रीड़ा करते ही काल आ पहुँचता है और देखते-देखते ही प्राणी नष्ट हो जाता है। यह जगत् इसी प्रकार काल के मुख में जा रहा है।

राम नाम बिन जीव जे, केते मुये अकाल ।
मीच बिना जे मरत हैं, तातैं दादू साल ॥ ५३ ॥

रामनाम चिन्तन बिना अहंकार के कारण मृत्यु का समय न आने से पहले कितने ही जीव बिना ही मौत मर गये हैं। अर्थात् राम की भक्ति और ज्ञान प्राप्ति बिना जीव मरे हुए के समान ही है, फिर भी वे जीने का उपाय नहीं करते, इसी कारण दु:ख होता है।

कठोरता

सर्प सिंह हस्ती घणा, राक्षस भूत परेत ।
तिस वन में दादू पड़्या, चेते नहीं अचेत ॥ ५४ ॥

५४-५५ में जीव की कठोरता दिखा रहे हैं—जिस शरीर रूपी वन में संशय-सर्प, क्रोध-सिंह, काम-हस्ती, मन-राक्षस, पंचज्ञानेन्द्रिय-भूत, त्रिगुण-प्रेत आदि बहुत हैं, हे जीव ! उसमें तू आ पड़ा है। अत: हे असावधान प्राणी ! इससे पार होने के लिए राम-भजन द्वारा सावधान क्यों नहीं होता ? तू बड़ा कठोर है, जो ऐसे कष्ट सहन कर रहा है।

पूत पिता तैं बीछुट्या, भूल पड़्या किस ठौर ।
मरे नहीं उर फाट कर, दादू बड़ा कठोर ॥ ५५ ॥

जीव रूप पुत्र परमात्मा-पिता से अविद्या के द्वारा बिछुड़ गया है और विषय जन्य सुखों में पिता को भूलकर कैसे दुख-मय संसार में भटक रहा है। परमात्मा के वियोगजन्य दुःख से इसका अहंकार रूप हृदय फटकर यह मरता भी नहीं है, यह बड़ा निर्मम व कठोर है।

काल चेतावनी

जे दिन जाइ सो बहुरि न आवे, आयु घटे तन छीजे ।
अंत काल दिन आइ पहुँचा, दादू ढील न कीजे ॥ ५६ ॥

५६-६७ में काल से सावधान कर रहे हैं—हे प्राणी ! तेरी आयु तथा शरीर प्रति क्षण क्षीण हो रहे हैं, जो दिन जाता है, वह पुन: नहीं आता और मृत्यु का दिन भी समीप आ पहुँचा है। अब राम भजन कर जीवन को सफल बना लें, इसमें ढील मर कर।

दादू अवसर चल गया, बरियाँ[१] गई बिहाइ ।
कर छिटके कहँ पाइये, जन्म अमोलक जाइ ॥ ५७ ॥

आयु का बहुत-सा समय[१] व्यतीत हो गया है और यौवनकाल व स्वस्थ जीवन के अच्छे-अच्छे अवसर भी चले गये हैं । अब तो सावधान हो। यह तेरा शेष अमूल्य जन्म भी व्यर्थ जा रहा है। यदि राम भजन बिना यह जीवन हाथ से चला गया तो ऐसा जन्म चौरासी में कहां मिलेगा ?

दादू गाफिल ह्वै रह्या, गहिला हुआ गँवार ।
सो दिन चित्त न आवही, सोवे पाँव पसार ॥ ५८ ॥

हे मूर्ख ! तू विषयों से उन्मत होकर अचेत हो रहा है, तुझे मृत्यु का वह दिन याद नहीं आता, जिस दिन पैर पसार कर सदा के लिये सोयेगा।

दादू काल हमारा कर गहै, दिन दिन खैंचत जाइ ।
अजहुँ जीव जागे नहीं, सोवत गई बिहाइ ॥ ५९ ॥

काल सब जीवों के आयु-हाथ को पकड़ कर प्रतिदिन अपनी ओर खैंचता जा रहा है। हे जीव ! मोह निद्रा में सोते-सोते सब आयु नष्ट हो गई, अब भी तू ज्ञान करके सचेत में नहीं होता।

सूता आवे सूता जाइ, सूता खेले सूता खाइ ।
सूता लेवे सूता देवे, दादू सूता जाइ ॥ ६० ॥

संसारी प्राणी अज्ञान निद्रा में प्रसुप्त ही जन्मता है, अज्ञानावस्था में आता जाता है, खेलता-कूदता है, खाता है, लेता है, देता है, और अन्त में मर कर अन्य शरीर में जाता है।

दादू देखत ही भया, श्याम वर्ण तैं सेत[1] ।
तन मन यौवन सब गया, अजहुँ न हरिसों हेत ॥ ६१ ॥

मन के अनेक मनोरथ, शरीर की सुन्दरता और यौवन सब नष्ट हो गये तथा देखते-देखते ही काले केश भी श्वेत[1] हो गये। किन्तु हे प्राणी ! अब भी तू भगवान् से प्रेम नहीं करता, यह तेरा दुर्भाग्य है।

दादू झूठे के घर देख कर, झूठे पूछे जाइ ।
झूठे झूठा बोलते, रहे मसाणों जाइ ॥ ६२ ॥

मिथ्या-व्यवहार में संलग्न मानव के घर पर मिथ्या प्रपंच की अधिकता देखकर अन्य मानव जाते हैं और मिथ्या-व्यवहार की ही बातें पूछते हैं तथा मिथ्या-व्यवहार में रत मानव, मिथ्या-व्यवहार की बातें बोलते हैं। इस प्रकार मिथ्या-व्यवहार करते-करते मर कर श्मशान में चले जाते हैं।

दादू प्राण पयाणा कर गया, माटी धरी मसाण ।
जालणहारे देखकर, चेतैं नहीं अजाण ॥ ६३ ॥

प्राण तो प्रस्थान कर गये हैं और यह शव श्मशान में पड़ा है। ये जलाने वाले भी कितने अनजान हैं, जो अपनी भावी गति देख करके भी हरि भजन के लिए सावधान नहीं होते।

केई जाले केई जालिये, केई जालन जांहिं ।
केई जालन की करैं, दादू जीवन नांहिं ॥ ६४ ॥

कितने ही तो जला दिये हैं, कितने ही को जला रहे हैं, कितने ही को जलाने ले जा रहे हैं और कितने ही को जलाने की तैयारी कर रहे हैं। अत: संसार में सदा जीवित रहना असंभव है।

केई गाड़े केइ गाड़िये, केई गाड़न जांहिं ।
केई गाड़न की करैं, दादू जीवन नांहिं ॥ ६५ ॥

कितने ही पृथ्वी में गाड़ दिये हैं, कितने ही को गाड़ रहे हैं, कितने ही को गाड़ने के लिये ले जा रहे हैं, कितने ही को गाड़ने की तैयारी कर रहे हैं। अत: संसार में सदा जीवित रहना संभव नहीं है।

दादू कहै–उठ रे प्राणी जाग जीव, अपना सजन सँभाल ।
गाफिल नींद न कीजिये, आइ पहुँता काल ॥ ६६ ॥

हे प्राणी ! विषयासक्ति रूप अचेतता सहित मोह निद्रा में मत पड़ा रह, उठकर ज्ञान जाग्रत में आ, और मन से अपने सच्चे मित्र परमात्मा का चिन्तन कर, काल समीप ही आ पहुँचा है।

समरथ का शरणा तजे, गहै आन की ओट ।
दादू बलवंत काल की, क्यों कर बंचे चोट ॥ ६७ ॥

समर्थ परमेश्वर की शरण को छोड़कर, अन्य असमर्थ देवी-देवतादि की शरण पकड़ने से बलवान् काल के आघात से कैसे बच सकता है ?

सजीवन

अविनाशी के आसरे, अजरावर[१] की ओट ।
दादू शरणे साच के, कदे न लागे चोट ॥ ६८ ॥

काल रहित होने का उपाय बता रहे हैं—देवताओं[१] से अति श्रेष्ठ, अविनाशी परमात्मा का आश्रय लेकर उसकी शरण में रहो। सत्य स्वरूप परब्रह्म की शरण में रहने से कभी भी काल की चोट नहीं लग सकती।

काल चेतावनी

मूसा भागा मरण तैं, जहां जाय तहँ गोर[२] ।
दादू स्वर्ग पयाल[१] सब, कठिन काल का शोर ॥ ६९ ॥

६९-७७ में काल से सावधान कर रहे हैं—यहूदियों के धर्म गुरु मूसा साहब को जब ज्ञात हुआ-मेरी मृत्यु होने वाली है, तब वे अपने स्थान को छोड़कर रक्षार्थ भाग निकले। वे जहाँ-जहाँ जाते थे वहाँ-वहाँ ही उन्हें कब्र[२] खोदते हुये मानव मिलते थे और पूछने पर कहते थे मूसा के लिये खोद रहे हैं। अन्त में एक स्थान में मूसा ने कहा-कब्र छोटी है, मूसा इसमें नहीं समायेगा। खोदने वाले बोले-समा जायेगा। मूसा उसमें लेट कर मापने लगे कि उनके प्राण प्रस्थान कर गये। और क्या कहें, काल के भय से स्वर्ग, पाताल[१] आदि सभी स्थानों में भयंकर कोलाहल मच रहा है।

सब मुख मांहीं काल के, मांड्या माया जाल ।
दादू गोर मसाण में, झंखे[१] स्वर्ग पयाल[२] ॥ ७० ॥

काल ने माया-जाल बिछाकर सबको पकड़ रखा है। सब काल के मुख में हैं। स्वर्ग

पाताल[२] आदि सभी कब्र तथा श्मशान में ही हैं अर्थात् नष्ट होने वाले हैं और भगवद्-भजन बिना सभी पश्चात्ताप[१] कर रहे हैं।

दादू मड़ा[१] मसाण का, केता करे डफान[२] ।
मृतक मुरदा गोर का, बहुत करे अभिमान ॥ ७१ ॥

यह प्राणी श्मशान का मुर्दा[१] होकर भी अपने शरीर, बलादि का कितना घमंड[२] करता है। कब्र का मरा हुआ मुर्दा होकर भी जाति-धर्मादि के अनेक अभिमान करता है।

राजा राणा राव मैं, मैं खानों[१] शिर खान ।
माया मोह पसारे एता, सब धरती आसमान ॥ ७२ ॥

मैं राव हूँ, मैं राजा हूँ, मैं महाराणा हूँ, मैं सरदारों[१] का भी शिरोमणि सरदार हूँ, इत्यादिक अहंकार करके माया से मोहित मन को इतना फैलाता है कि पृथ्वी तथा आकाश में स्वर्गादि लोक सभी मेरे अधिकार में आ जायें और यह देखता ही नहीं कि मैं काल का ग्रास हूँ।

पंच तत्त्व का पूतला, यहु पिंड सँवारा ।
मंदिर माटी मांस का, विनशत नहिं बारा[१] ॥ ७३ ॥

यह अस्थि-मांस प्रधान शरीर-मंदिर पंच तत्त्वों से बना हुआ पुतला है। इसे नष्ट होकर मिट्टी में मिलते देर[१] न लगेगी, फिर भी प्राणी इसे कितना सजाता है।

हाड़ चाम का पींजरा, बिच बोलणहारा ।
दादू तामें पैस कर, बहुत किया पसारा ॥ ७४ ॥

यह शरीर हड्डी-चर्मादि से बना हुआ पिंजरा है, बोलने वाले जीवात्मा ने इसके मध्य-हृदय में प्रवेश करके "मैं-तू" आदि भेद व्यवहार द्वारा बहुत प्रपंच फैला लिया है।

बहुत पसारा कर गया, कुछ हाथ न आया ।
दादू हरि की भक्ति बिन, प्राणी पछताया ॥ ७५ ॥

यह प्राणी बहुत-से कार्यों को फैला कर मृत्यु-दिन के समीप आ जाता है किन्तु उन से इसे कुछ भी संतोष नहीं मिलता और हरि भक्ति बिना अन्त में पश्चात्ताप ही करता है।

माणस[१] जल का बुद्बुदा, पानी का पोटा ।
दादू काया कोट में, मेवासी[२] मोटा[३] ॥ ७६ ॥

मनुष्य[१] शरीर वीर्य-रूप जल का बुद्बुदा है तथा वायु से भरे बुलबुले के समान क्षणिक है। प्राणी ऐसे काया रूप कच्चे किले में अपने को बहुत सुरक्षित महान्[३] गढ़पति[२] समझता है, कारण, उसमें (मोटा=) प्रबल (मैं=) अहंकार (वासी=) भरा हुआ है, किन्तु शरीर नाशवान् होने से उसका यह अहंकार व्यर्थ है।

बाहर गढ़ निर्भय करे, जीबे के तांईं ।
दादू मांहीं काल है, सो जाणै नांहीं ॥ ७७ ॥

प्राणी बाहर के शत्रुओं से निर्भय रह कर जीवित रहने के लिए सुदृढ़ दुर्ग बनाता है, किन्तु शरीर के भीतर जो काम-क्रोधादि रूप काल हैं, उन्हें वह शत्रु रूप में समझता ही नहीं।

चित्त कपटी

दादू साचे मत[1] साहिब मिले, कपट मिलेगा काल[2] ।
सांच परम पद पाइये, कपट काया में साल[3] ॥ ७८ ॥

चित्त कपटी को चेतावनी दे रहे हैं—निष्कपट भाव से सच्चे सिद्धान्त[1] का आश्रय लेकर साधन करने से सत्य परम पद स्वरूप परब्रह्म प्राप्त होते हैं और प्रतिष्ठादि के लिए कपट पूर्ण साधन करने से जीवन काल में पोल न खुल जाय, ऐसी चिन्ता रूप दु:ख[3] मन में बना रहता है और अन्त में यमदूत[2] पकड़ कर ले जाते हैं।

काल चेतावनी

मन ही मांहीं मीच है, सारों के शिर साल।
जे कुछ व्यापे राम बिन, दादू सोई काल ॥ ७९ ॥

७९-८९ में काल से सावधान कर रहे हैं—जिसका सबके शिर पर दु:ख बना रहता है, वह मृत्यु मन में ही है। क्या है ? उत्तर-राम भजन बिना जो कुछ भी गुण-विकार मन में रहते हैं, वे ही काल रूप हैं।

दादू जेती लहर विकार की, काल कँवल[1] में सोइ।
प्रेम लहर सो पीव की, भिन्न-भिन्न यों होइ ॥ ८० ॥

मन में जितनी विकारों की उमंग उठती हैं, वे सब काल का ग्रास[1] बनाने में सहायक होती हैं और जितनी भगवत् प्रेम की लहरें उठती हैं वे भगवत् प्राप्ति में सहायक होती हैं। इस प्रकार मन की भिन्न-भिन्न उमंगों से ही भिन्न-भिन्न फल होता है।

दादू काल रूप मांहीं बसे, कोई न जाने ताहि।
यह कूड़ी करणी काल है, सब काहू को खाइ ॥ ८१ ॥

काल का स्वरूप मन में ही रहता है किन्तु अज्ञानी कोई भी उसे नहीं जानता। भगवदर्थ-कर्मों को छोड़कर-कर्म तथा यह जो कुकर्मों के करने की भावना है, वही काल है और सभी भगवद्-विमुखों को खाता रहता है।

दादू विष अमृत घट में बसे, दोन्यों एकै ठाँव।
माया विषय विकार सब, अमृत हरि का नाँव ॥ ८२ ॥

विष और अमृत दोनों अन्त:करण रूप एक स्थान में ही रहते हैं। संपूर्ण मायिक विषय-विकार विष हैं और हरि का नाम अमृत है।

दादू कहां मुहम्मद मीर[1] था, सब नबियों[2] शिरताज।
सो भी मर माटी हुआ, अमर अलह का राज ॥ ८३ ॥

जो संपूर्ण ईश्वर-दूतों[2] में शिरोमणि सरदार[1] मुहम्मद थे, वे अब कहाँ हैं ? वे भी मर गये, उनका भी शरीर मिट्टी में मिल गया। अमर तो एक ईश्वर का राज्य ही है।

केते मर माटी भये, बहुत बड़े बलवंत ।
दादू केते ह्वै गये, दाना देव अनंत ॥ ८४ ॥

कितने ही बहुत बड़े बलवान् मानव, कितने ही दानव और अनन्त देवता हो गये, किन्तु सभी मर कर मिट्टी हो गये।

दादू धरती करते एक डग[१], दरिया करते फाल[२]।
हाकों पर्वत फाड़ते, सो भी खाये काल ॥ ८५ ॥

जिस (वामन) ने पृथ्वी को एक कदम[१] में नाप लिया, जिस (हनुमान) ने समुद्र को एक फलांग[२] में लांघ लिया और जिस (रावण) ने एक गर्जना से पर्वत को भी फाड़ डाला, उन सबको भी काल खा गया।

दादू सब जग कँपै काल तैं, ब्रह्मा विष्णु महेश ।
सुर नर मुनिजन लोक सब, स्वर्ग रसातल शेष ॥ ८६ ॥

स्वर्ग, मृत्यु, रसातल (पृथ्वी के नीचे के ७ लोकों में से ६ठा लोक) आदि सब लोकों के देवता, नर, मुनिजन, ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, शेषजी आदि सभी काल से काँपते हैं।

चंद, सूर, धर, पवन, जल, ब्रह्मंड खंड प्रवेश ।
सो काल डरे करतार तैं, जै जै तुम आदेश ॥ ८७ ॥

ब्रह्मांड के सभी खंडों में काल प्रविष्ट होकर चन्द्रमा, सूर्य, पृथ्वी, वायु, जल आदि सब को नष्ट करता है। वह काल परमेश्वर से डरता है। हे परमेश्वर ! आप की जय हो, जय हो, हम आपको प्रणाम करते हैं। (यह साखी वाणी के मध्य में है। अत: मध्य मंगलाचरण रूप है।)

पवना पानी धरती अंबर, विनशे रवि, शशि, तारा ।
पंच तत्त्व सब माया विनशे, मानुष कहा विचारा ॥ ८८ ॥

मिथ्या माया से रचित-पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, ये पांचों तत्त्व तथा इन से रचित सूर्य, चन्द्रमा, तारा आदि सभी मायिक प्रपंच नष्ट होगा, तब बेचारे मनुष्य शरीर की तो बात ही क्या है ? यह तो क्षण भंगुर है ही।

दादू विनशे तेज के, माटी के किस मांहिं ।
अमर उपावणहार है, दूजा कोई नांहिं ॥ ८९ ॥

जब तेजोमय सूर्य, चन्द्रादि देव शरीर भी नष्ट होंगे, तब माँस-हड्डी रूप मिट्टी के बने हुये मनुष्यादि शरीर किस गणना में हैं ? वे तो अवश्य नष्ट होंगे ही। अमर तो एक सृष्टि-कर्ता ईश्वर ही है, अन्य कोई भी नहीं।

स्वकीय शत्रु-मित्रता

मन ही मांहीं ह्वै मरे, जीवे मन ही मांहिं ।
साहिब साक्षीभूत है, दादू दूषण नांहिं ॥ ९० ॥

९० में कहते हैं, प्राणी अपना आप ही शत्रु तथा मित्र है—मन में सकाम कर्मों के विचार होते हैं तब ही कर्म करके जन्मता-मरता है और मन में निष्कामता होती है तब ज्ञान द्वारा परब्रह्म प्राप्ति रूप अमर जीवन प्राप्त होता है। अत: परब्रह्म तो साक्षी रूप है, जीव के जन्म-मरणादि का उन्हें कोई दोष नहीं।

मत्सर=ईर्ष्या

दीसे माणस प्रत्यक्ष काल, ज्यों कर त्यों कर दादू टाल ॥ ९१ ॥

इति काल का अंग समाप्त: ॥ २५ ॥ सा. २१७८ ॥

ईर्ष्यालु, कृतघ्नी मानव से दूर रहने की प्रेरणा कर रहे हैं—ईर्ष्यालु कृतघ्नी मानव प्रत्यक्ष ही काल रूप दिखाई देता है। अत: उसे जैसे-तैसे दूर से ही टाल दो और काल से बचने का उपाय निरंजन राम का भजन करो।

इति श्रीदादू गिरार्थ प्रकाशिका काल का अंग समाप्त: ॥ २५ ॥

अथ सजीवन का अंग २६

काल-अंगके अनन्तर सजीवन का विचार करने के लिए ''सजीवन का अंग'' कथन करने में प्रवृत्त हुये मंगल कर रहे हैं—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत: ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक संपूर्ण गुण विकार रूप काल से मुक्त होकर सजीवन ब्रह्म को प्राप्त होता है, उन निरंजन राम, सद्गुरु और सर्व संतों को हम अनेक प्रणाम करते हैं।

दादू जे तूं योगी गुरुमुखी, तो लेना तत्त्व विचार।
गह आयुध गुरु ज्ञान का, काल पुरुष को मार ॥ २ ॥

२-७ से सजीवनता की प्राप्ति आदि का विचार कह रहे हैं—हे योगी ! यदि तू गुरु आज्ञा में चलने वाला है तो आत्म-तत्त्व के विचार द्वारा गुरु के अभेद-ज्ञान रूप शस्त्र को अन्त:करण-रूपी हाथ में ग्रहण करके काल-पुरुष को मार दे।

नाद बिन्दु सौं घट भरे, सो जोगी जीवे ।
दादू काहे को मरे, राम रस पीवे ॥ ३ ॥

योगी जिसका ध्यान करते हैं ऐसे प्रणव पर रहने वाले अर्ध चन्द्ररूप नाद और उसके ऊपर की बिन्दु के ध्यान से अन्त:करण परिपूर्ण रखता है वा ''सोऽहं रामादि मंत्र'' रूप नाद के चिन्तन से अन्त:करण और ब्रह्मचर्य द्वारा वीर्य से शरीर परिपूर्ण रखता है, वह योगी ब्रह्म को प्राप्त होकर सदा जीवित रहता है। उक्त प्रकार जो रामरस का पान करते हैं, वे क्यों मरेंगे ?

साधू जन की वासना[1], शब्द रहै संसार ।
दादू आतम ले मिले, अमर उपावनहार ॥ ४ ॥

संत अपने आत्मा को ज्ञान द्वारा सांसारिक भावनाओं से ऊंचे उठा, परमात्मा में मिलकर

९० में कहते हैं, प्राणी अपना आप ही शत्रु तथा मित्र है—मन में सकाम कर्मों के विचार होते हैं तब ही कर्म करके जन्मता-मरता है और मन में निष्कामता होती है तब ज्ञान द्वारा परब्रह्म प्राप्ति रूप अमर जीवन प्राप्त होता है। अत: परब्रह्म तो साक्षी रूप है, जीव के जन्म-मरणादि का उन्हें कोई दोष नहीं।

मत्सर=ईर्ष्या

दीसे माणस प्रत्यक्ष काल, ज्यों कर त्यों कर दादू टाल ॥ ९१ ॥

इति काल का अंग समाप्त: ॥ २५ ॥ सा. २१७८ ॥

ईर्ष्यालु, कृतघ्नी मानव से दूर रहने की प्रेरणा कर रहे हैं—ईर्ष्यालु कृतघ्नी मानव प्रत्यक्ष ही काल रूप दिखाई देता है। अत: उसे जैसे-तैसे दूर से ही टाल दो और काल से बचने का उपाय निरंजन राम का भजन करो।

इति श्रीदादू गिरार्थ प्रकाशिका काल का अंग समाप्त: ॥ २५ ॥

अथ सजीवन का अंग २६

काल-अंगके अनन्तर सजीवन का विचार करने के लिए ''सजीवन का अंग'' कथन करने में प्रवृत्त हुये मंगल कर रहे हैं—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत: ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक संपूर्ण गुण विकार रूप काल से मुक्त होकर सजीवन ब्रह्म को प्राप्त होता है, उन निरंजन राम, सद्गुरु और सर्व संतों को हम अनेक प्रणाम करते हैं।

दादू जे तूं योगी गुरुमुखी, तो लेना तत्त्व विचार।
गह आयुध गुरु ज्ञान का, काल पुरुष को मार ॥ २ ॥

२-७ से सजीवनता की प्राप्ति आदि का विचार कह रहे हैं—हे योगी! यदि तू गुरु आज्ञा में चलने वाला है तो आत्म-तत्त्व के विचार द्वारा गुरु के अभेद-ज्ञान रूप शस्त्र को अन्त:करण-रूपी हाथ में ग्रहण करके काल-पुरुष को मार दे।

नाद बिन्दु सौं घट भरे, सो जोगी जीवे ।
दादू काहे को मरे, राम रस पीवे ॥ ३ ॥

योगी जिसका ध्यान करते हैं ऐसे प्रणव पर रहने वाले अर्ध चन्द्ररूप नाद और उसके ऊपर की बिन्दु के ध्यान से अन्त:करण परिपूर्ण रखता है वा ''सोऽहं रामादि मंत्र'' रूप नाद के चिन्तन से अन्त:करण और ब्रह्मचर्य द्वारा वीर्य से शरीर परिपूर्ण रखता है, वह योगी ब्रह्म को प्राप्त होकर सदा जीवित रहता है। उक्त प्रकार जो रामरस का पान करते हैं, वे क्यों मरेंगे ?

साधू जन की वासना[1], शब्द रहै संसार ।
दादू आतम ले मिले, अमर उपावनहार ॥ ४ ॥

संत अपने आत्मा को ज्ञान द्वारा सांसारिक भावनाओं से ऊंचे उठा, परमात्मा में मिलकर

अमर हो जाते हैं और उनके लोक कल्याणार्थ विचार[१] उन्हीं के शब्दों द्वारा संसार में रह जाते हैं।

राम सरीखे ह्वै रहैं, यहु नाहीं उनहार ।
दादू साधू अमर हैं, विनशे सब संसार ॥ ५ ॥

यह दृष्टिगोचर शरीर संतों का स्वरूप नहीं होता, वे तो राम के समान ही होकर रहते हैं। अत: संत अमर हैं और सारा संसार नष्ट होता है।

जे कोई सेवे राम को, तो राम सरीखा होइ ।
दादू नाम कबीर ज्यों, साखी बोले सोइ ॥ ६ ॥

जो कोई राम की भक्ति करता है, वह राम के समान ही हो जाता है और नामदेव कबीरादि के समान राम संबंधी पद बोलने लगता है।

अर्थ न आया, सो गया, आया सो क्यों जाइ ।
दादू तन मन जीवतां, आपा ठौर लगाइ ॥ ७ ॥

जिसका जीवन राम-भजन रूप कार्य में नहीं लगा, वही काल के मुख में गया है और जिसका जीवन भजन में खर्च हो गया, वह काल के मुख में क्यों जायेगा ? अत: जीवितावस्था में ही तन को ब्रह्म रूप संतों की सेवा में, मन को ब्रह्म चिन्तन में और अहंकार को 'अहंब्रह्म' रूप स्थान में लगाकर अमर हो जाओ।

दया विनती

दादू कहै सब रँग तेरे तैं रँगे, तूं ही सब रँग मांहिं ।
सब रँग तेरे तैं किये, दूजा कोई नांहिं ॥ ८ ॥

दया तथा सजीवनावस्था प्राप्ति के लिए विनय कर रहे हैं—हे राम ! यह जो संसार में विचित्र रचना रूप रंग हैं, वे आपके रचे हुये होने से आपके ही हैं। आप इन सब में व्यापक भी हैं। शास्त्र संत भी यही कहते आये हैं कि सम्पूर्ण लोक रचना रूप रंग आपकी सत्ता से ही रचे जाते हैं और आप ही इनके अधिष्ठान हैं, अन्य कोई भी नहीं है। आप सर्व समर्थ हैं, अत: दया करके हमें मुक्ति रूप सजीवन अवस्था प्रदान करें।

सजीवन

छूटे दंद तो लागे बंद, लागे बंद तो अमर कंद ।
अमर कंद दादू आनन्द ॥ ९ ॥

९-१४ में सजीवनता का उपाय कह रहे हैं—जब काम-क्रोधादिक द्वन्द्व अन्त:करण से हटते हैं, तब सहज समाधि लगती है और सहज समाधि लगती है तब अमरता के मूल आत्म-स्वरूप ब्रह्म की प्राप्ति होती है और ब्रह्म प्राप्त होते ही साधक स्वयं आनंद स्वरूप ब्रह्म हो जाता है।

प्रश्न— कहँ जम जौरा[१] भंजिये, कहाँ काल को दंड ?
कहाँ मीच को मारिये, कहाँ जरा[२] सत खंड ? १० ॥

हे गुरो ! जिस स्थान में रहने से बलवान् यम की शक्ति[१] नष्ट की जा सकती है, काल को

दंड देने की योग्यता आ जाती है, मृत्यु को मारा जा सकता है और वृद्वावस्था[२] को भी सैकंडों खंड करके नष्ट किया जा सकता है, वह कहां है ?

उत्तर— **अमर ठौर अविनाशी आसन, तहाँ निरंजन लाग रहे।**
दादू जोगी जुग जुग जीवे, काल व्याल सब सहज गये॥ ११॥
षट् चक्र पवना फिरै, छः सहस्र इक बीस।
जोग अमर जम को गिलै, दादू बिसवा बीस॥ ११॥

१० के प्रश्न का १४ तक उत्तर दे रहे हैं—जहां अविनाशी ब्रह्म का आसन है अर्थात् साक्षात्कार होता है, उस निर्विकल्प समाधि अवस्था रूप अमर स्थान में पहुँचकर निरंजन ब्रह्म के साक्षात्कार में ही लगा रहता है, वह योगी ब्रह्म रूप होकर सदा जीवित रहता है, ऐसे योगी के उक्त कालादि तथा सर्पादि के सभी भय अनायास ही नष्ट हो जाते हैं।

रोम रोम लै लाइ धुनि, ऐसे सदा अखंड।
दादू अविनाशी मिले, तो जम को दीजे दंड॥ १२॥

नाम चिन्तन में वृत्ति लगाते-लगाते नाम की ध्वनि रोम-रोम से होने लगती है और वह अखंड रूप से सदा ही होती रहती है, तब अविनाशी ब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है। उसी समय यम की शक्ति व्यर्थ करना रूप यम को दंड देने का बल, साधक में आ जाता है।

दादू जरा काल जामण मरण, जहां जहां जिव जाइ।
भक्ति परायण लीन मन, ताको काल न खाइ॥ १३॥

विषय-वासना द्वारा जीव जहां-जहां जाता है, वहां वहां ही जन्म, जरा और मृत्यु रूप काल इसे प्राप्त होता है, किन्तु जिसका मन भगवत्-परायण होकर भक्ति में लीन रहता है, उसको काल नहीं खाता।

मरणा भागा मरण तैं, दु:खैं नाठा दु:ख।
दादू भय सौं भय गया, सुखैं छूटा सुख॥ १४॥

अहंकार नष्ट होने रूप मरने से पुन:-पुन: मरना मिट जाता है। साधन के दु:ख से कामादि रूप सांसारिक दु:ख नष्ट हो जाते हैं। ईश्वर का भय हृदय में रखने से संसार के भय चले जाते हैं और ब्रह्म-प्राप्ति रूप सुख के प्राप्त होते ही विषय-सुख छूट जाता है।

मुक्ति-अमोक्ष

जीवित मिले सो जीविते, मूये मिल मर जाइ।
दादू दोन्यों देखकर, जहँ जाने तहँ लाइ॥ १५॥

मुक्ति और बन्ध का हेतु बता रहे हैं—जो सदा जीवित रहने वाले परमात्मा से वृत्ति लगाकर उसी में मिले हैं, वे संत ही हैं और जो विनाशी संसार में वृत्ति लगाकर उसी में मिले हुये रहते हैं, वे मर कर अन्य शरीरों में जाते हैं। अत: दोनों में वृत्ति लगाने का परिणाम विचार द्वारा देख कर जिसमें लगाना अच्छा समझो, उसी में वृत्ति लगाओ।

सजीवन

दादू साधन सब किया, जब उनमन लागा मन।
दादू सुस्थिर आतमा, यों जुग जुग जीवैं जन ॥ १६ ॥

१६-२३ सजीवनता प्राप्ति का विचार कह रहे हैं—जब मन निर्विकल्प समाधि में लग जाता है तब जप-तपादि सभी साधन हो चुकते हैं और आत्मा सदा के लिए ब्रह्म में अभेद होकर सम्यक् स्थिर हो जाता है। इस प्रकार संतजन ब्रह्म में मिल कर सदा जीवित रहते हैं।

रहते[1] सेती लाग रहु, तो अजरावर होइ।
दादू देख विचार कर, जुदा न जीवे कोइ ॥ १७ ॥

हे साधक ! सदा एक रस रहने वाले परब्रह्म में वृत्ति लगाकर रहे[1], तो तू देवताओं से भी अति श्रेष्ठ परब्रह्म को प्राप्त हो जायेगा। तू स्वयं ही विचार करके देख, ब्रह्म से भिन्न रह कर कोई भी सदा जीवित नहीं रह सकता।

जेती करणी[1] काल की, तेती परिहर प्राण।
दादू आतमराम सौं, जे तूं खरा सुजाण ॥ १८ ॥

जितने सकाम कर्म हैं वे जन्मादि के हेतु होने से काल की फाँसी में फँसाने वाले कार्य[1] हैं। अत: हे प्राणी ! यदि तू सच्चा बुद्धिमान् है तो सबको त्याग कर आत्म-स्वरूप राम में ही वृत्ति लगा।

विष अमृत घट में बसे, विरला जाने कोइ।
जिन विष खाया ते मुये, अमर अमी सौं होइ ॥ १९ ॥

कामादिक विकार रूप विष और साक्षी राम रूप अमृत दोनों अन्त:करण में रहते हैं किन्तु इनको मारक और तारक रूप से कोई विरला संत ही जानता है। जिनने विषय-विकारों का चिन्तन किया है, वे मृत्यु को ही प्राप्त हुये हैं। अमर तो राम-चिन्तन रूप अमृत-पान करने से ही होता है।

दादू सब ही मर रहे, जीवे नांहीं कोइ।
सोई कहिये जीविता, जे कलि अजरावर होइ ॥ २० ॥

सभी काल के मुख में जाने योग्य सकाम कर्म करके मृत्यु को प्राप्त हो रहे हैं, सकाम कर्म करने वाला कोई भी परब्रह्म को प्राप्त नहीं होता। जीवित तो वही कहा जाता है, जो इस कलियुग में भी देवताओं से अति श्रेष्ठ परब्रह्म को प्राप्त हो कर अजर अमर हो गया।

दादू तज संसार सब, रहै निराला होइ।
अविनाशी के आसरे, काल न लागे कोइ ॥ २१ ॥

जो संपूर्ण सांसारिक प्रपंच को त्यागकर तथा सभी गुण विकारों से अलग होकर अविनाशी परब्रह्म के आश्रय रहता है, उसके पीछे काल नहीं लगता।

जागहु लागहु राम सौं, रैन बिहानी[१] जाइ ।
सुमिर सनेही आपणा, दादू काल न खाइ ॥ २२ ॥

हे लोगो ! तुम्हारी आयु-रात्रि व्यतीत[१] होकर मृत्यु का दिन रूप प्रात:काल होने वाला है। अत: मोह निद्रा से जागकर राम की भक्ति में लगो। उस अपने सच्चे स्नेही राम का स्मरण करोगे तो तुम्हें काल नहीं खा सकेगा।

दादू जागहु लागहु राम सौं, छाड़हु विषय विकार।
जीवहु पीवहु राम रस, आतम साधन सार ॥ २३ ॥

विषय-विकारों को छोड़ो तथा मोह-निद्रा से जाग कर राम की भक्ति में लगो और जब तक जीवित रहो, तब तक निरंतर राम-भक्ति-रस का पान करते रहो ! आत्म-कल्याण का यही सार साधन है।

स्मरण नाम निस्संशय

मरे तो पावे पीव को, जीवित बंचे काल ।
दादू निर्भय नाम ले, दोनों हाथ दयाल ॥ २४ ॥

२४-२५ में स्मरण की विशेषता बता रहे हैं—स्मरण करते हुये यदि मृत्यु हो जाती है तो परमात्मा को प्राप्त करता है और जीवित रहता है तो कामादि रूप काल से बचा रहकर सब में प्रभु को देखता रहता है। अत: निर्भय होकर नाम-स्मरण करने से जीवन-मरण रूप दोनों हाथों में ही दयालु परमात्मा की प्राप्ति है।

दादू मरणे को चल्या, सजीवन के साथ ।
दादू लाहा[१] मूल सौं, दोन्यों आये हाथ ॥ २५ ॥

जब साधक स्मरण द्वारा सजीवन ब्रह्म से मिलकर मृत्यु के लिए प्रस्थान करता है तब मनुष्य जीवन रूप मूल और उससे होने वाला भक्ति रूप लाभ[१], दोनों ही उसके हाथ आ जाते हैं अर्थात् उसका जीवन सार्थक हो जाता है।

करुणा

दादू जाता देखिये, लाहा मूल गमाइ ।
साहिब की गति अगम है, सो कुछ लखी न जाइ ॥ २६ ॥

भगवद्-विमुख प्राणियों पर दया दिखा रहे हैं—सांसारिक मानवों का समूह, मनुष्य जीवन रूप मूल तथा उससे होने वाला भक्ति रूप लाभ, दोनों को ही खोकर विषय-विकार रूप पाश में बँधा हुआ काल के मुख में जाता दिखाई दे रहा है। अहो ! सबको भ्रम में डालने वाली भगवान् की माया रूप गति अचिन्त्य है, वह कुछ भी समझ में नहीं आती।

सजीवन

साहिब मिले तो जीविये, नहीं तो जीवै नांहिं ।
भावै अनंत उपाय कर, दादू मूवों मांहिं ॥ २७ ॥

२७-२९ में सजीवनता का विचार कह रहे हैं—परब्रह्म प्राप्त हो तब ही नित्य जीवन प्राप्त हो सकता है, नहीं तो सदा जीवित नहीं रह सकता। चाहे सकाम कर्म रूप अनन्त उपाय करे तो भी मरनेवालों की गणना में ही रहेगा।

सजीवनि साधे नहीं, तातैं मर मर जाइ।
दादू पीवे रामरस, सुख में रहै समाइ ॥ २८ ॥

भक्ति रूप सजीवनी विद्या का साधन नहीं करता, इसीलिए बारंबार मर कर अन्य शरीरों में जाता है और जो राम भक्ति-रस का पान करता है, वह सुख-स्वरूप ब्रह्म में समाकर ब्रह्म रूप से अचल रहता है।

दिन दिन लहुड़े[१] होंहिं सब, कहैं मोटा होता जाइ ।
दादू दिन दिन ते बढ़ैं, जे रहैं राम ल्यौ लाइ ॥ २९ ॥

जन्म के दिन से ही सब प्रति दिन छोटे[१] होते जाते हैं किन्तु संसारी लोग कहते हैं—बड़ा होता जा रहा है। हाँ, प्रतिदिन उनकी उन्नति परमार्थ में अवश्य होती है, जो वृत्ति को राम-भजन में लगाये रहते हैं।

मुक्ति, अमोक्ष, जीवन्मुक्ति

दादू जीवित छूटे देह गुण, जीवित मुक्ता होइ ।
जीवित काटे कर्म सब, मुक्ति कहावे सोइ ॥ ३० ॥

३०-४३ में मुक्ति, बन्धन और जीवन्मुक्ति विषयक विचार कह रहे हैं—जो जीवितावस्था में ही स्थूल-सूक्ष्म शरीर के हिंसा-कामादि गुणों से छूट कर तथा ज्ञान द्वारा संपूर्ण कर्मों को काट कर निष्काम होता है, उसकी वह अवस्था ही जीवन्मुक्ति कहलाती है।

जीवित ही दुस्तर तिरे, जीवित लंघे पार।
जीवित पाया जगद्गुरु, दादू ज्ञान विचार ॥ ३१ ॥

संत जीवितावस्था में ही संसार-सरिता की कामादि-गुण रूप दुस्तर तीव्र-धारा को तैरते हुये सरिता को लांघ कर पार गये हैं और जीवितावस्था में ही ज्ञान-विचार द्वारा जगद्-गुरु परब्रह्म को प्राप्त किया है।

जीवित जगपति को मिले, जीवित आतमराम ।
जीवित दर्शन देखिये, दादू मन विश्राम ॥ ३२ ॥

जीवितावस्था में ही जगत्पति राम से जीवात्मा मिलता है और जीवितावस्था में ही ब्रह्म का साक्षात्कार करने से मन को विश्राम मिलता है।

जीवित पाया प्रेम रस, जीवित पिया अघाइ।
जीवित पाया स्वाद सुख, दादू रहे समाइ ॥ ३३ ॥

संतों ने जीते जी ही राम-प्रेम-रस को प्राप्त किया और तृप्त होकर पान किया तथा जीते जी ही ब्रह्मानंद का आस्वादन प्राप्त करके सुख स्वरूप ब्रह्म में समा कर स्थिर रहे हैं।

जीवित भागे भरम सब, छूटे कर्म अनेक ।
जीवित मुक्त सद्गति भये, दादू दर्शन एक[१] ॥ ३४ ॥

जीवितावस्था में ही ज्ञान द्वारा ब्रह्म[१] का साक्षात्कार करने से जिनके सब भ्रम और अनेक संचित कर्म नष्ट हुये हैं, वे ही जीते जी मुक्त होकर ब्रह्म-प्राप्ति रूप सद्गति को प्राप्त हुये हैं।

जीवित मेला ना भया, जीवित परस न होइ ।
जीवित जगपति ना मिले, दादू बूडे[१] सोइ ॥ ३५ ॥

जीवितावस्था में सद्गुरु से मिलाप नहीं हुआ, अत: ज्ञान द्वारा जगत्पति परब्रह्म से नहीं मिल सके, वे संसार-समुद्र के जन्म-मरण रूप प्रवाह में ही डूब[१] रहे हैं।

जीवित दुस्तर ना तिरे, जीवित न लंघे पार ।
जीवित निर्भय ना भये, दादू ते संसार ॥ ३६ ॥

जीते-जी ही दुस्तर आशा-नदी की तीव्र धार को तैर कर तथा अज्ञानांधकार से पार होकर निर्भय नहीं हुये, वे संसार में ही जन्मते-मरते रहते हैं।

जीवित परकट ना भया, जीवित परिचय नांहिं ।
जीवित न पाया पीव को, बूडे भवजल मांहिं ॥ ३७ ॥

जिनने जीते-जी ही आत्म-ज्ञान प्रकटता द्वारा परब्रह्म को पहचान कर अभेद रूप से प्राप्त नहीं किया, वे संसार-समुद्र के विषय-जल में निमग्न होकर जन्म-मरण रूप गोते लगा रहे हैं।

जीवित पद पाया नहीं, जीवित मिले न जाइ ।
जीवित जे छूटे नहीं, दादू गये विलाइ ॥ ३८ ॥

जो जीते-जी ज्ञानी का पद प्राप्त कर धर्म-बन्धन से मुक्त हो, निर्विकल्प रूप सहजावस्था में जाकर अभेद रूप से परब्रह्म में नहीं मिले, वे चौरासी लक्ष योनियों में ही विलीन हुये हैं।

दादू छूटे जीवितां, मूवाँ छूटे नांहिं ।
मूवाँ पीछे छूटिये, तो सब आये उस मांहिं ॥ ३९ ॥

भव-बन्धन से जीवितावस्था में ही छूटता है, मरने के पश्चात् नहीं। यदि मरने के पश्चात् मुक्ति हो जाती हो तब तो मरने पर सभी उस ब्रह्म में मिल जाने चाहिए, किन्तु ऐसा नहीं होता।

मूवाँ पीछे मुक्ति बतावैं, मूवाँ पीछे मेला ।
मूवाँ पीछे अमर अभय पद, दादू भूले गहिला ॥ ४० ॥

मरने के पश्चात् गयादि तीर्थों में श्राद्धादि करने से पापों से मुक्त होकर अमर पद के मिलने की बात कहते है, वे विषयों में उन्मत्त होने के कारण वास्तविक तत्त्व को भूले हुये हैं।

मूवाँ पीछे वैकुंठ वासा, मूवाँ स्वर्ग पठावैं ।
मूवाँ पीछे मुक्ति बतावैं, दादू जग बोरावैं ॥ ४१ ॥

मरने के पीछे किये गये श्राद्ध, यज्ञ, दानादि धर्म द्वारा वैकुंठ, स्वर्ग और मुक्ति प्राप्त कराने

की बात कहते हैं, वे जगत् के अज्ञानी प्राणियों को बहकाते ही हैं।

मूवाँ पीछे पद पहुंचावैं, मूवाँ पीछे तारैं ।
मूवाँ पीछे सद्गति होवै, दादू जीवित मारैं ॥ ४२ ॥

अज्ञानी प्राणी जीते-जी तो अपने पिता को डंडों से मारते हैं और मरने के पीछे श्राद्धादि द्वारा पापों से उद्धार करके श्रेष्ठ पद को पहुंचाने का यत्न करते हैं और पुरोहित से कहते हैं—हमारे पिता की सद्गति हो, वैसा ही कर्म कराइये।

मूवाँ पीछे भक्ति बतावैं, मूवाँ पीछे सेवा ।
मूवाँ पीछे संयम राखैं, दादू दोजख देवा ॥ ४३ ॥

मरने के पीछे लोगों को श्राद्धादि पूजन-पाठ द्वारा पिता की भक्ति बताते हुये पिता के कल्याणार्थ द्रव्य खर्च रूप सेवा कराते हैं और नियत समय तक स्वयं भी संयम से रहते हैं किन्तु जीते-जी पिता की आज्ञानुसार कार्य न करके उनकी सेवा नहीं की तो मरणोपरान्त उक्त सभी कार्य तुम्हारे पिता के लिए कोई फल दायक नहीं है। तुम तो अपने हठ के कारण पाप कर्मानुसार अपने पिता को नरक यातना देने वाले ही हैं।

सजीवन

दादू धरती क्या साधन किया, अंबर[१] कौन अभ्यास ?
रवि शशि किस आरंभ तैं ? अमर भये निज दास ॥ ४४ ॥

४४-४६ में कहते हैं—भगवत् कृपा से ही अमरता प्राप्त होती है—पृथ्वी ने कौन तपादि साधन किये हैं ? आकाश[१] ने कौन-सा योगाभ्यास किया है ? और सूर्य चन्द्रमा ने किस यज्ञ का अनुष्ठान किया है ? जिससे अमर हुये हैं। उत्तर-भगवान् के निजी भक्त होने से भगवत्-कृपा द्वारा ही अमर हुये हैं।

साहिब मारे ते मुये, कोई जीवै नांहिं ।
साहिब राखै ते रहे, दादू निज घर मांहिं ॥ ४५ ॥

सकाम कर्मों में प्रवृत्त प्राणियों को उनके प्रारब्ध कर्म की समाप्ति पर ईश्वर इच्छानुसार काल ने मारे हैं, वे ही मृत्यु को प्राप्त हुये हैं तथा आगे भी उनमें कोई भी जीवित न रहेगा और निष्काम भक्ति करने वालों की गुण-विकारादि से भगवान् ने रक्षा की है, वे मृत्यु से बच कर परब्रह्म रूप निज घर में रहते हैं।

जे जन राखे रामजी, अपने अंग लगाइ ।
दादू कुछ व्यापै नहीं, जे कोटि काल झख जाइ ॥ ४६ ॥

इति सजीवन का अंग समाप्त ॥ २६ ॥ सा. २२२४ ॥

भक्ति से प्रसन्न होकर जिन भक्तों की रामजी ने अपने वास्तविक स्वरूप में लगा कर रक्षा की है, उनको व्यथित करने के लिए यदि कोटि काल भी परिश्रम करें तो भी उन्हें कुछ भी व्यथा न होगी, उनका परिश्रम व्यर्थ ही जायेगा।

इति श्रीदादू गिरार्थ प्रकाशिका सजीवन का अंग समाप्त: ॥ २६ ॥

अथ पारिख का अंग २७

सजीवन-अंग के अनन्तर परीक्षा सम्बन्धी विचार करने के लिए ''पारिख का अंग'' कहने में प्रवृत्त हुये मंगल कर रहे हैं—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत: ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ।। १ ।।

जिनकी कृपा से साधक प्रमाद से पार होकर यथार्थ परीक्षा द्वारा परब्रह्म को प्राप्त होता है, उन निरंजन राम, सद्गुरु और सर्व संतों को हम अनेक प्रणाम करते हैं।

साधुत्व परीक्षा

दादू मन चित आतम[१] देखिये, लागा है किस ठौर ?
जहँ लागा तैसा जानिये, का देखे दादू और ।। २ ।।

२-१० में साधुत्व की परीक्षा विषयक विचार कर रहे हैं—बुद्धि[१] किसके विचार में, चित्त किसके चिन्तन में, मन किसके अनुराग में लगा है, यही देखना चाहिए। यदि ईश्वर के विचारादि में लगे हैं, तब तो साधु, और विषयों के विचारादि में लगे हैं तब असाधु, जानना चाहिए। अन्य भेषादि बाह्य चिन्हों को क्या देखते हो ? उनके द्वारा वास्तविक परीक्षा नहीं होगी।

दादू साधू परखिये, अंतर आतम[१] देख ।
मन मांहीं माया रहै, कै आपै आप अलेख ।। ३ ।।

संत की परीक्षा आन्तर अन्त:करण[१] को देख करके ही करनी चाहिए। मन में मायिक विचार है या अपने आत्म-स्वरूप असीम ब्रह्म का विचार है ? यदि मन में ब्रह्म-विचार हो तो संत समझना चाहिए।

दादू मन की देख कर, पीछे धरिये नांव ।
अंतरगति की जे लखैं, तिनकी मैं बलि जांव ।। ४ ।।

मन की शुभाशुभ भावनाओं को देखने के पश्चात् ही भावनानुसार साधु, असाधु नाम रखना चाहिए। जो मन की आन्तर वृत्ति रूप गति को देखते हैं, उनकी हम बलिहारी जाते हैं।

दादू जे नांहीं सो सब कहैं, है सो कहै न कोइ ।
खोटा खरा परखिये, तब ज्यों था त्यों ही होइ ।। ५ ।।

भेषादि बाह्य चिन्ह साधुता के नहीं हैं, उनसे युक्त को सब साधु कहते हैं और जो भेषादि बाह्य चिन्हों से रहित हृदय से साधु हैं, कोई भी अज्ञानी उसे साधु नहीं कहता। किन्तु जब परीक्षकों के द्वारा परीक्षा की जाती है, तब असाधु और साधु जो जैसा था, वैसा ही सिद्ध होता है।

घट की भान अनीति सब, मन की मेट उपाध ।
दादू परिहर पंच की, राम कहैं ते साध ।। ६ ।।

हिंसादि शरीर की अनीति, क्रोधादिक मन की उपाधि और पंच-ज्ञानेन्द्रियों की विषयार्थ चपलता को त्याग कर, राम का चिन्तन करते हैं, वे ही संत हैं।

अर्थ आया तब जानिये, जब अनर्थ छूटे ।
दादू भाँडा भरम का, गिर चौड़े फूटे ॥ ७ ॥

जब सत्संग द्वारा संपूर्ण कुकर्म रूप अनर्थ छूट जायँ तथा देहाध्यास रूप भ्रम का बर्तन अन्त:करण से गिर कर फूट जाय अर्थात् ''मैं देह हूँ'' ऐसी अन्त:करण की वृत्ति नष्ट हो जाय और ब्रह्माकार वृत्ति बनी रहे, तभी जानना चाहिए, इसे वास्तविक अर्थ समझ में आ गया है।

दादू दूजा कहबे को रह्या, अंतर डारा धोइ ।
ऊपर की ये सब कहैं, मांहिं न देखे कोइ ॥ ८ ॥

वास्तव में, संत कहने मात्र के ही परब्रह्म से भिन्न हैं, कारण, अन्त:करण के भेद रूप धब्बे को तो वे ज्ञान-जल द्वारा धो डालते हैं फिर उनका परब्रह्म से भेद कैसे रहेगा ? किन्तु शरीर के निर्वाहार्थ उनके ''मैं-तू'' रूप उनकी ऊपर की प्रवृत्ति को देखकर संसारीजन उन्हें भेद कहते हैं, भीतर की अद्वैत निष्ठा को कोई भी अज्ञानी नहीं देख पाता।

दादू जैसे मांहीं जीव रहै, तैसी आवे बास ।
मुख बोले तब जानिये, अंतर का परकास ॥ ९ ॥

जैसी भावना अन्त:करण में होती है, वैसी ही उसकी वाणी रूप गंध निकलती है। अत: मुख से बोलते ही भीतर की भावना प्रकट हो जाती है, तब सब जानते हैं कि यह संत है वा असंत।

दादू ऊपर देख कर, सब को राखे नांव ।
अंतरगति की जे लखैं, तिनकी मैं बलि जांव ॥ १० ॥

सभी अज्ञानी प्राणी शरीर के ऊपर की भेषादि प्रवृत्ति को देखकर 'संत', आदि नाम रखते हैं, किन्तु जो मन की भावना रूप गति को देखकर नाम रखते हैं, उनकी हम बलिहारी जाते हैं।

जग जन विपरीत

तन मन आतम एक है, दूजा सब उनहार ।
दादू मूल पाया नहीं, दुविध्या भरम विकार ॥ ११ ॥

११-१४ में संसारी जनों की और संतों की विपरीतता दिखा रहे हैं—सभी प्राणियों के स्थूल-शरीर स्थूल-भूतों से और अन्त:करण सूक्ष्म-भूतों से बने हुये होने से एक हैं, और आत्मा सब का चेतन होने से एक है। बाह्य भेष से भी एक-से दिखाई देते हैं। भिन्न-भिन्न तो केवल स्थूल शरीर की आकृतियाँ तथा अन्त:करण की भावनाएँ ही हैं। किन्तु जिन-जिन ज्ञानियों ने इस मूल तत्त्व को नहीं समझा, वे भ्रम जन्य विकारों से दुविधा में पड़े हुये हैं और मूल तत्त्व को जानने वाले संत उक्त दुविधा से अलग हैं। यही संत असंतों में विपरीतता है।

काया के सब गुण बँधे, चौरासी लख जीव ।
दादू सेवक सो नहीं, जे रँग राते पीव ॥ १२ ॥

चौरासी लक्ष योनियों के सभी जीव कामादि गुणों से बँधकर देहाध्यासी बने हुये हैं किन्तु जो परमात्मा की भक्ति रंग में रत हैं वे संत शरीर के सेवक नहीं होते, यही विपरीतता है।

काया के वश जीव सब, ह्वै गये अनंत अपार ।
दादू काया वश करे, निरंजन निराकार ॥ १३ ॥

शारीरिक कामादि गुणों के वश होकर सभी जीव अनन्त बार जन्म कर अनन्त बार ही काल के मुख में गये हैं किन्तु जो संत शारीरिक कामादि गुणों को अपने वश करते हैं, वे निरंजन निराकार परब्रह्म को प्राप्त होते हैं।

पूरण ब्रह्म विचारिये, तब सकल आतमा एक ।
काया के गुण देखिये, तो नाना वरण[1] अनेक ॥ १४ ॥

यदि व्यापक ब्रह्म का विचार करें, तब तो आत्मा ब्रह्म रूप होने से सभी एक हैं और शरीर के गुण, दोष, रंग[1] आकृतियों को देखें तो नाना गुण, दोष, रंग और अनेक जातियाँ[1] व आकृतियाँ दृष्टि में आती हैं। संत ब्रह्म विचार द्वारा सब आत्माओं को एक रूप से देखते हैं और संसारी जन शरीर के गुण, दोष, रंग[1] आकृतियों को देखते हैं। यही संतों व असंतों में विपरीतता है।

नर विड[1] रूप

(मति) बुद्धि विवेक विचार बिन, माणस पशू समान ।
समझाया समझे नहीं, दादू परम गियान ॥ १५ ॥

१५-१६ में नर की तुच्छ[1] रूपता दिखा रहे हैं—धर्म बुद्धि, आत्मानात्मा विवेक, और ब्रह्म विचार के बिना मनुष्य पशु तुल्य ही है, इसीलिए श्रेष्ठ ज्ञान समझाने पर भी नहीं समझता।

सब जीव प्राणी भूत हैं, साधु मिले तब देव ।
ब्रह्म मिले तब ब्रह्म हैं, दादू अलख अभेव ॥ १६ ॥

सभी प्राणधारी अज्ञानी जीव भूतों के समान नीच प्रवृत्ति वाले होने से भूत समान ही हैं। संत मिलने पर दैवी गुण प्राप्ति द्वारा देव समान हो जाते हैं और ब्रह्म-ज्ञान द्वारा ब्रह्म प्राप्त होने पर तो मन-इन्द्रियों के अविषय भेदरहित ब्रह्म रूप ही हो जाते हैं।

करतूति=कर्म

दादू बँध्या जीव है, छूटा ब्रह्म समान ।
दादू दोनों देखिये, दूजा नाहीं आन ॥ १७ ॥

१७-१८ में जीव ब्रह्म का लक्षण कर रहे हैं—जो कर्म पाश में बँधा है, वही जीव है और जो कर्मों से मुक्त है, वही ब्रह्म है। जीव और ब्रह्म के भेद में कर्म का होना, न होना, ही हेतु देखा जाता है, अन्य दूसरा हेतु कोई भी नहीं है।

कर्मों के बस जीव है, कर्म रहित सो ब्रह्म ।
जहँ आतम तहँ परमात्मा, दादू भागा भर्म ॥ १८ ॥

जीव कर्मों के वश में है और ब्रह्म कर्म रहित है। जब ब्रह्मनिष्ठ गुरु के ज्ञानोपदेश से अज्ञान नष्ट हो जाता है तब, जहां आत्मा का साक्षात्कार होता है, वहां ही ब्रह्म का साक्षात्कार होता है अर्थात् दोनों एकरूप ही भासते हैं।

पारिख अपारिख

काचा उछलै ऊफणै, काया हाँडी मांहिं ।
दादू पाका मिल रहै, जीव ब्रह्म द्वै नांहिं ॥ १९ ॥

१९-२२ में परीक्षक अपरीक्षक का परिचय दे रहे हैं—जैसे अग्नि पर चढ़ी हँडिया में अन्न का दाना जब तक कच्चा रहता है तब तक उछलता-उफनता है, पक जाने पर जल के साथ मिल कर रहता है। वैसे ही जीव को जब तक ब्रह्मज्ञान नहीं होता तब तक ही शरीर में आता जाता है, ब्रह्म ज्ञान होते ही जीव ब्रह्म में अभेद होकर रहता है। उस अवस्था में जीव और ब्रह्म दो प्रमाणित नहीं होते।

दादू बाँधे सुर नवाये[1] बाजैं, एह्वा[2] शोध रु लीज्यो ।
राम-सनेही साधू हाथैं, बेगा मोकल[3] दीज्यो ॥ २० ॥

प्रसंग-महाराज ने गुजरात से मंजीरे मँगवाने के लिए यह २० वीं साखी लिख भेजी थी।

जैसे बँधे स्वर, विलक्षण तेज[1] ध्वनि से बजने वाले हों, ऐसे[2] खोज कर लेना और राम के प्यारे किसी संत के हाथ शीघ्र ही भेज[3] देना। अध्यात्म अर्थ-जिसने इन्द्रिय रूप सुरों को संयम में बाँध रक्खे हो और अपने अहंकार-शिर को नीचे[1] करके भजन रूप ध्वनि करने वाला हो, ऐसे[2] जिज्ञासु को खोज करके उसी राम के प्यारे जिज्ञासु के अन्त:करण हाथ में शीघ्र अपना ज्ञान धन दे दो[3] वा ऐसे सिद्ध संत के हाथ में अपने उद्धार के लिए अपने को समर्पण कर दो[3]।

प्राण जौहरी पारिखू[1], मन खोटा ले आवे ।
खोटा मन के माथे मारे, दादू दूर उड़ावे[2] ॥ २१ ॥

प्राण रूप रत्न की परीक्षा[1] करने वाले संत-जौहरी के पास यदि कोई प्राणी दोषों से परिपूर्ण बुरे मन को लेकर आता है तो बुरे मन वाले के अहंकार रूप शिर पर भक्ति-विचारादि दंडे मार कर, उसके दोषों को दूर हटा[2] देता है और अपरीक्षक हो तो नहीं हटा सकता।

श्रवणा हैं नैना नहीं, ता तैं खोटा खाहिं ।
ज्ञान विचार न ऊपजे, साच झूठ समझाहिं ॥ २२ ॥

जिसके श्रवण तो हों और नेत्र न हों, वह भोजन के गुणों को तो सुनकर जान लेगा किन्तु उसमें पड़ी मक्खी खाकर वमन का क्लेश उठायेगा। वैसे ही जिनके श्रवण करने पर भी मन में

ज्ञान-विचार नहीं उत्पन्न होते, वे सत्य को मिथ्या और मिथ्या को सत्य समझ कर दु:ख ही पाते हैं। अत: अपरीक्षक हैं।

साच

दादू साचा लीजिये, झूठा दीजे डार।
साचा सन्मुख राखिये, झूठा नेह निवार ॥ २३ ॥

२३-२४ में सत्य ग्रहण की प्रेरणा तथा विशेषता का वर्णन कर रहे हैं—सत्य विचारों को ही धारण करो, मिथ्या मनोरथों को छोड़ दो और सत्य परब्रह्म को ही व्यापक जानकर सर्वदा सामने देखते रहो, मिथ्या विषयों का प्रेम हृदय से हटा दो।

साचे को साचा कहै, झूठे को झूठा।
दादू दुविधा को नहीं, ज्यों था त्यों दीठा ॥ २४ ॥

जो संत सत्य परब्रह्म को सत्य और मिथ्या मायिक प्रपंच को मिथ्या कहते हैं, उन्होंने जैसा ब्रह्म था, वैसा ही देख लिया है,अत: उनके हृदय में भ्रांति रूप कोई भी दुविधा नहीं रही।

पारिख अपारिख

हीरे को कंकर कहैं, मूरख लोग अजान।
दादू हीरा हाथ ले, परखैं साधु सुजान ॥ २५ ॥

२५ में परीक्षक अपरीक्षक का परिचय दे रहे हैं—अनजान हीरे को कंकर कहकर पटक देता है किन्तु जौहरी उसकी परीक्षा करके अपनाता है। वैसे ही मूर्ख लोग संतों के शब्दों को न समझने के कारण 'कुछ नहीं' कह कर छोड़ देते हैं किन्तु बुद्धिमान् साधक संत उनको अन्त:करण रूपी हाथ में लेकर उनकी यथार्थ जानना रूप परीक्षा करके अपनाते हैं।

सगुरा-निगुरा

सगुरा निगुरा परखिये, साधु कहैं सब कोइ।
सगुरा साचा, निगुरा झूठा, साहिब के दर होइ ॥ २६ ॥

२६-२७ में गुरु उपदेश युक्त हृदय सगुरा होता है इसका परिचय दे रहे हैं—सभी संत कहते हैं—गुरु उपदेश सहित हृदय सगुरा और उपदेश से रहित हृदय निगुरा की परीक्षा करके सगुरा से ही व्यवहार रखना चाहिये। परमात्मा के दरबार में सगुरा सच्चा और निगुरा झूठा सिद्ध होता है।

सगुरा सत संयम रहै, सन्मुख सिरजनहार।
निगुरा लोभी लालची, भूंचे[1] विषय विकार ॥ २७ ॥

सगुरा व्यक्ति सत्य-व्यवहार और संयम के द्वारा ईश्वर के सन्मुख रहता है। निगुरा द्रव्य का लोभी और विषयों का लालची होता है और कामादि विकारों में पड़ा रह कर विषयों को ही भोगता[1] रहता है।

कर्त्ता कसौटी

खोटा खरा परखिये, दादू कस कस लेय ।
साचा है सो राखिये, झूठा रहण न देय ॥ २८ ॥

२८ में कहते हैं—ईश्वर भी भक्त की परीक्षा करते हैं—बुरे-भले की परीक्षा अवश्य करनी चाहिए। ईश्वर भी बारंबार परीक्षा करके सच्चे भक्त को ही अपनाते हैं और झूठे को भक्तों की गणना में नहीं रहने देते। अत: जो सच्चा साधक हो, उसे ही पास रखना चाहिए।

पारिख अपारिख

खोटा खरा कर देवे पारिख, तो कैसे बन आवे।
खरे खोटे का न्याय नबेरे[1], साहिब के मन भावे॥ २९॥

२९-३० में परीक्षक अपरीक्षक के विषय में कहते हैं—मिथ्या मायिक प्रपंच वाले तथा दंभी भक्त की परीक्षा करके उसे कोई परीक्षक सच्चा बता दे तो वह परीक्षा यथार्थ कैसे मानी जायेगी ? सच्चे को सच्चा और मिथ्या को मिथ्या कह कर परीक्षा रूप न्याय पूरा[1] किया जाय, तभी वह न्याय भगवान् के मन को प्रिय लगता है।

दादू जिन्हैं ज्यों कही तिन्हैं त्यों मानी, ज्ञान विचार न कीन्हा ।
खोटा खरा जीव परख न जाने, झूठ साच कर लीन्हा ॥ ३० ॥

स्वार्थपरायण वक्ताओं ने जिन अज्ञानियों को जैसा कहा, उनने वैसा ही मान लिया। बुद्धिहीन होने से वे सुने हुये ज्ञान की यथार्थता वा अयथार्थता का विचार नहीं कर सके और स्वयं बुरे भले की परीक्षा अपने मन से करना जानते नहीं। अत: ऐसे लोगों ने मिथ्या मायिक प्रपंच की वस्तुओं को ही सत्य मान कर उपास्य रूप से धारण कर लिया।

कर्त्ता कसौटी

जे निधि कहीं न पाइये, सो निधि घर-घर आहि।
दादू महँगे मोल बिन, कोई न लेवे ताहि ॥ ३१ ॥

३१-३८ में ईश्वर सम्बन्धी परीक्षा का परिचय दे रहे हैं—जो परब्रह्म रूप निधि बाहर खोजने पर कहीं भी नहीं मिलती, वह प्रत्येक प्राणी के अंत:करण में साक्षी रूप से स्थित है किन्तु साधन रूप महामूल्य चुकाये बिना उसे कोई भी प्राप्त नहीं कर सकता।

प्रसंगार्थ—जो ज्ञान-निधि संतों के बिना कहीं भी नहीं मिलती, वह संतों द्वारा घर-घर आ रही है, किन्तु श्रद्धारूप महामूल्य बिना उसे कोई भी नहीं ले सकता।

प्रसंग—अकबर बादशाह से मिल कर सीकरी से आते समय दादूजी महाराज अपने शिष्यों के साथ दौसा ग्राम पहुँचे, तब वहां किसी ने भी उनकी आवभगत नहीं की। तब महाराज ने शिष्यों को यह ३१ वीं साखी कही थी। प्रसंग कथा दृ. सु. सि. त. ७-१३४ में देखो।

खरी कसौटी कीजिये, बानी[1] बधती जाइ ।
दादू साचा परखिये, महँगे मोल बिकाइ ॥ ३२ ॥

जैसे सच्चे रत्न की परीक्षा कसौटी पर की जाती है तब वह महामूल्य में बिकता है, वैसे ही संतों के वचनों की सच्ची परीक्षा जीवन में अनुभूति द्वारा करनी चाहिए। सच्चे सिद्ध होने पर ये वचन अनमोल ज्ञात होंगे और इनकी महिमा रूप[1] कांति बढ़ती ही जायेगी।

राम कसे[1] सेवक खरा, कदे न मोड़े अंग ।
दादू जब लग राम है, तब लग सेवक संग ॥ ३३ ॥

राम के द्वारा परीक्षा[1] करने पर जो सेवक सच्चा सिद्ध होता है वह कभी भी राम से अपने तन मनादि नहीं मोड़ता, जब तक राम है तब तक वह सेवक अभेद रूप से राम के साथ रहता है।

दादू कस[1] कस लीजिये, यहु ताते परिमान[2] ।
खोटा गांठ न बाँधिये, साहिब के दीवान[3] ॥ ३४ ॥

जैसे सुवर्ण को तपा-तपा कर शुद्ध करते हैं, वैसे ही संयम के द्वारा तपा-तपा कर मन-शुद्धता की परीक्षा[1] बारंबार कर लेनी चाहिए। मन-शुद्धि का यही माप[2] है-उसमें दोष न रहने चाहिए। अत: दोषों की गठरी मत बाँधो, क्योंकि-दोष सहित परमात्मा के दरबार[3] में न जा सकोगे।

दादू खरी कसौटी पीव की, कोइ विरला पहुँचनहार ।
जे पहुँचे ते ऊबरे, ताइ किये तत सार ॥ ३५ ॥

जिनने अपने तन-मनादि को संयम द्वारा तपा कर ब्रह्म रूप सार तत्त्व के परायण किये हैं, उनमें कोई विरले ही परमात्मा की सच्ची परीक्षा में उत्तीर्ण होकर परब्रह्म तक पहुँचने वाले होते हैं और जो पहुँचे हैं, वे संसार से पार होकर ब्रह्म रूप ही हो गये हैं।

दुर्बल देही, निर्मल वाणी । दादूपंथी ऐसा जाणी ॥ ३६ ॥

योग रूपी पथ के द्वारा प्रभु के पास जाने वाले पथिकों की जीवात्मा विकार रूप स्थूलता युक्त नहीं होती और उनकी वाणी भी निर्मल ब्रह्म का वर्णन करने से निर्मल होती है। प्रभु-पथ के पथिकों को उक्त प्रकार लक्षणों द्वारा ही पहचानो।

दादू साहिब कसे सेवक खरा, सेवक को सुख होइ।
साहिब करे सो सब भला, बुरा न कहिये कोइ ॥ ३७ ॥

परमात्मा द्वारा ली गई परीक्षा में जो सेवक सच्चा सिद्ध होता है, उसी सेवक को ब्रह्मानन्द प्राप्त होता है। अत: जो भी परमात्मा करता है, वह सब अच्छा ही है। उसके किसी भी कार्य को बुरा न कहना चाहिए।

दादू ठग आमेर में, साधौं सौं कहियो ।
हम शरणाई राम की, तुम नीके रहियो ॥ ३८ ॥

इति पारिख का अंग समाप्त ॥ २७ सा. २२६२ ॥

उन संतों से कहना—आमेर का दादू तो ठग है तो भी राम की शरण है किन्तु आप सावधान रहना, कहीं आपको माया न ठग ले। प्रसंग-आमेर से उत्तरी ओर गुढा ग्राम में एक साधु अपने को दादू बतला कर कहता था- आमेर का दादू ठग है। यही बात किसी ने आकर महाराज को कही थी। उसी पर ३८ वीं साखी कह कर कहने वाले के द्वारा उस साधु के पास भेजी थी। विशेष कथा - दृ. सु. सि. त. ११। ४१९ में देखो।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका पारिख का अंग समाप्त: ॥ २७॥

अथ उपजन का अंग २८

पारिख-अंग के अनन्तर उत्पत्ति का विचार करने के लिए ''उपजन का अंग'' कहने में प्रवृत्त हुये मंगल कर रहे हैं—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत: ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक उत्पत्ति सम्बन्धी भ्रम से पार होकर, यथार्थ ज्ञान द्वारा परब्रह्म को प्राप्त होता है, उन निरंजन राम, सद्‌गुरु और सब संतों को हम अनेक प्रणाम करते हैं।

विचार

दादू माया का गुण बल करे, आपा[१] उपजे आइ।
राजस तामस सात्विकी, मन चंचल ह्वै जाइ ॥ २ ॥

२-३ में मायिक विचार उत्पत्ति, उनका परिणाम और उनकी अभाव अवस्था का विचार कर रहे हैं—जब अन्त:करण में अहंकार[१] उत्पन्न होता है तब मायिक गुण सत्त्व, रज, तम अपना बल प्रकट करते हैं, जिससे सात्विकी, राजसी और तामसी प्रवृत्ति द्वारा मन चंचल हो जाता है।

आपा नाहीं बल मिटे, त्रिविध तिमिर नहिं होइ ।
दादू यहु गुण ब्रह्म का, शून्य समाना सोइ ॥ ३ ॥

जब अहंकार नहीं रहता तब त्रिगुण का बल नष्टप्राय: होता है और अज्ञान न रहने के कारण, सात्विकी, राजसी, तामसी तीन प्रकार की प्रवृत्ति भी नहीं होती वा मूला, तूला और लेशा अविद्या नहीं रहतीं, सहजावस्था रहती है। सहजावस्था रूप गुण ही ब्रह्म-साक्षात्कार का हेतु है जो प्राप्त होने पर साधक ब्रह्म का साक्षात्कार करके सहज-शून्य स्वरूप ब्रह्म में ही समा जाता है।

उपजन

दादू अनुभव उपजी गुणमयी, गुण ही पै ले जाइ ।
गुण हीं सौं गह बंधिया, छूटे कौन उपाइ ॥ ४ ॥

४-११ में अनुभव उत्पत्ति सम्बन्धी विचार कह रहे हैं—जब बुद्धि में त्रिगुणमय अनुभव उत्पन्न होता है तब वह मन को विषय रूप गुण पर ही ले जाता है और मन विषयों को ग्रहण करके उनकी आसक्ति से बँध जाता है। उस त्रिगुणमय अनुभव में कौन ऐसा है जिसके द्वारा मन विषयासक्ति से मुक्त हो सके ? अर्थात् कोई नहीं है।

उन संतों से कहना—आमेर का दादू तो ठग है तो भी राम की शरण है किन्तु आप सावधान रहना, कहीं आपको माया न ठग ले। प्रसंग-आमेर से उत्तरी ओर गुढा ग्राम में एक साधु अपने को दादू बतला कर कहता था- आमेर का दादू ठग है। यही बात किसी ने आकर महाराज को कही थी। उसी पर ३८ वीं साखी कह कर कहने वाले के द्वारा उस साधु के पास भेजी थी। विशेष कथा - दृ. सु. सि. त. ११। ४१९ में देखो।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका पारिख का अंग समाप्त: ॥ २७॥

अथ उपजन का अंग २८

पारिख-अंग के अनन्तर उत्पत्ति का विचार करने के लिए ''उपजन का अंग'' कहने में प्रवृत्त हुये मंगल कर रहे हैं—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत: ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक उत्पत्ति सम्बन्धी भ्रम से पार होकर, यथार्थ ज्ञान द्वारा परब्रह्म को प्राप्त होता है, उन निरंजन राम, सद्गुरु और सब संतों को हम अनेक प्रणाम करते हैं।

विचार

दादू माया का गुण बल करे, आपा[१] उपजे आइ।
राजस तामस सात्विकी, मन चंचल ह्वै जाइ ॥ २ ॥

२-३ में मायिक विचार उत्पत्ति, उनका परिणाम और उनकी अभाव अवस्था का विचार कर रहे हैं—जब अन्त:करण में अहंकार[१] उत्पन्न होता है तब मायिक गुण सत्त्व, रज, तम अपना बल प्रकट करते हैं, जिससे सात्विकी, राजसी और तामसी प्रवृत्ति द्वारा मन चंचल हो जाता है।

आपा नाहीं बल मिटे, त्रिविध तिमिर नहिं होइ ।
दादू यहु गुण ब्रह्म का, शून्य समाना सोइ ॥ ३ ॥

जब अहंकार नहीं रहता तब त्रिगुण का बल नष्टप्राय: होता है और अज्ञान न रहने के कारण, सात्विकी, राजसी, तामसी तीन प्रकार की प्रवृत्ति भी नहीं होती वा मूला, तूला और लेशा अविद्या नहीं रहतीं, सहजावस्था रहती है। सहजावस्था रूप गुण ही ब्रह्म-साक्षात्कार का हेतु है जो प्राप्त होने पर साधक ब्रह्म का साक्षात्कार करके सहज-शून्य स्वरूप ब्रह्म में ही समा जाता है।

उपजन

दादू अनुभव उपजी गुणमयी, गुण ही पै ले जाइ ।
गुण हीं सौं गह बंधिया, छूटे कौन उपाइ ॥ ४ ॥

४-११ में अनुभव उत्पत्ति सम्बन्धी विचार कह रहे हैं—जब बुद्धि में त्रिगुणमय अनुभव उत्पन्न होता है तब वह मन को विषय रूप गुण पर ही ले जाता है और मन विषयों को ग्रहण करके उनकी आसक्ति से बँध जाता है। उस त्रिगुणमय अनुभव में कौन ऐसा है जिसके द्वारा मन विषयासक्ति से मुक्त हो सके ? अर्थात् कोई नहीं है।

द्वै पख उपजी परिहरे, निर्पख अनुभव सार ।
एक राम दूजा नहीं, दादू लेहु विचार ॥ ५ ॥

मत-मतान्तर रूप द्वैत और पक्ष से युक्त उत्पन्न अनुभव को त्याग देना चाहिए और निष्पक्ष अद्वैत अनुभव का आदर करना चाहिए, उसके द्वारा विश्व का सार राम ही प्राप्त होता है, अन्य नहीं। अत: निष्पक्ष अनुभव पूर्ण संत वचनों को विचार कर अद्वैत निरंजन राम को प्राप्त करो।

दादू काया ब्यावर[१] गुणमयी, मनमुख उपजे ज्ञान ।
चौरासी लख जीव को, इस माया का ध्यान ॥ ६ ॥

काया की जननी[१] गुणमयी माया है,अत: उसकी बुद्धि में स्वाभावतः तो मन की इच्छानुसार बाह्य-विषय-ज्ञान ही उत्पन्न होता है। इसी कारण चौरासी लक्ष योनियों के सभी जीवों की बुद्धि को, इस अपनी जननी माया का ही ध्यान रहता है।

आतम उपज[१] अकाश[२] की, सुनि[५] धरती[३] की बाट ।
दादू मारग गैब[४] का, कोई लखे न घाट ॥ ७ ॥

ब्रह्म ज्ञान[१] प्राप्ति के तीन मार्ग बतला रहे हैं— (१) **आतम उपज अकाश की =** विहंगम मार्ग (निर्लेपावस्था)[२] - जैसे पक्षी उड़कर बीच के स्थान से कोई सम्बन्ध न रखकर उसे लांघता हुआ गन्तव्य स्थान पर पहुंच जाता है अर्थात् अकारादि अक्षर ज्ञान से ही पूर्ण अक्षर ब्रह्म का ज्ञान हो जाना; (२) **सुनि धरती की बाट =** पिपीलिका मार्ग (निर्विकल्पावस्था)[३] - मायिक पदार्थों से अपना अवधान हटाकर अनवरत अपने लक्ष्य की ओर शून्यवत्[५] चींटी की तरह अग्रसर होते हुए ब्रह्म ज्ञान प्राप्ति (३) **मारग गैव का =** गैवीमार्ग (संकल्पावस्था) अनायास ही भावानुकूल या नियतियोग से अकस्मात् ब्रह्म-दर्शन व ज्ञान प्राप्ति। जैसे बालक दादू को वृद्ध भगवान् का दर्शनोपदेश। इस आत्मानुभव रूप गुप्त[४] मार्ग का ब्रह्म प्राप्ति रूप घाट प्रदेश कोई भी नहीं देख सकता।

आतम बोधी अनुभवी, साधू निर्पख होइ ।
दादू राता राम सौं, रस पीवेगा सोइ ॥ ८ ॥

जो आत्म-बोध संपन्न अनुभवी संत होगा, वही निष्पक्ष होकर राम चिन्तन में रत रहते हुये पराभक्ति रूप रस का पान कर सकेगा।

प्रेम भक्ति जब ऊपजे, निश्चल सहज समाधि ।
दादू पीवे राम रस, सद्गुरु के परसाद ॥ ९ ॥

जब सद्गुरु की कृपा से हृदय में प्रेमाभक्ति उत्पन्न हो जाती है तब मन निश्चल होकर स्वाभाविक ही समाधिस्थ हुआ राम-चिन्तन रूप ब्रह्म-रस का पान करता है।

प्रेम भक्ति जब ऊपजे, पंगुल ज्ञान विचार ।
दादू हरि रस पाइये, छूटे सकल विकार ॥ १० ॥

जब प्रेमाभक्ति होती है, तब बुद्धि में गुण रूप पैरों से रहित निर्गुण-ज्ञान के विचार उत्पन्न होते हैं। उन विचारों से संपूर्ण विकार हट कर रस रूप ब्रह्म की प्राप्ति होती है।

दादू बंझ बियाई आतमा, उपज्या आनँद भाव[1] ।
सहज शील संतोष सत, प्रेम मगन मन राव ॥ ११ ॥

भक्ति युक्त स्थिर बुद्धि रूप बँध्या प्रसूता हुई है उससे अक्षयानन्द प्रद आत्म विचार[1] रूप पुत्र उत्पन्न हुआ है। अब तो मन स्वाभाविक ही शील-संतोष से युक्त हुआ, सत्य-स्वरूप ब्रह्म के अभेद प्रेम-रस में निमग्न होकर राजा के समान निरपेक्ष हो गया है।

निन्दा

जब हम ऊजड़ चालते, तब कहते मारग मांहिं।
दादू पहुँचे पंथ चल, कहैं यहु मारग नांहिं ॥ १२ ॥

लोक निन्दा की उपेक्षा दिखा रहे हैं—जब हम मार्ग रहित संसार-विपिन के विषय-वृक्षों में भटकते थे, तब संसारी लोग कहते थे-ये ठीक मार्ग पर चल रहे हैं और जब हम संसार-विपिन को त्याग कर ठीक प्रभु प्राप्ति के मार्ग में आये हैं, तो संसारी लोग कहते हैं यह मार्ग नहीं है। अत: हमें उनके इस निन्दा रूप कथन की ओर ध्यान नहीं कर भगवद्-भक्ति मार्ग अपनाना चाहिये।

उपजन

पहले हम सब कुछ किया, भरम करम संसार ।
दादू अनुभव उपजी, राते सिरजनहार ॥ १३ ॥

१३-१४ में यथार्थ अनुभव और उसका फल बता रहे हैं—पहले हमने भी अज्ञान द्वारा होने वाले संसारिक सभी कुछ कर्म किये हैं किन्तु जब से अनुभव ज्ञान उत्पन्न हुआ है, तब से सब को त्यागकर भगवत्-चिन्तन में ही रत हैं।

सोइ अनुभव सोइ ऊपजी, सोइ शब्द तत सार ।
सुनतां ही साहिब मिले, मन के जाहिं विकार ॥ १४ ॥

वही अनुभव, उपज और विश्व के सार ब्रह्म-तत्त्व के बोधक शब्द श्रेष्ठ माने जाते हैं, जिनके श्रवण करने से मन के संपूर्ण विकार नष्ट होकर अभेद रूप से ब्रह्म प्राप्त होता है।

परिचय जिज्ञासा उपदेश

पारब्रह्म कह्या प्राण[1] सौं, प्राण कह्या घट[2] सोइ ।
दादू घट सब सौं कह्या, विष अमृत गुण दोइ ॥ १५ ॥

१५-१६ में जिज्ञासा वालों को उपदेश द्वारा प्रवृत्ति-निवृत्ति रूप ज्ञान प्राप्ति की परंपरा बता रहे हैं—परब्रह्म ने हिरण्यगर्भ[1] को कहा, हिरण्यगर्भ ने ऋषियों[2] को कहा, ऋषियों ने सब सांसारिक प्राणियों को कहा, इस प्रकार विष-अमृत रूप प्रवृत्ति-निवृत्ति मार्गों का प्रसार हुआ है।

दादू मालिक[1] कह्या, अरवाह[2] सौं, अरवाह कह्या औजूद[3] ।
औजूद आलम[4] सौं कह्या, हुकम खबर मौजूद ॥ १६ ॥

ईश्वर[1] ने फरिश्ताओं[2] को कहा, फरिश्ताओं ने स्थूल शरीरधारी पीरों[3] को कहा, पीरों ने सब संसार[4] को कहा, वही प्रवृत्ति-निवृत्ति की आज्ञा रूप समाचार संसार में विद्यमान है, अर्थात् प्रवृत्ति और निवृत्ति की दोनों धाराएँ चल रही हैं।

उपजन

दादू जैसा ब्रह्म है, तैसी अनुभव उपजी होइ ।
जैसा है तैसा कहै, दादू विरला कोइ ॥ १७ ॥

इति उपजन का अंग समाप्त ॥ २८सा. २२७९ ॥

१७ में कहते हैं—यथार्थ अनुभवी ही यथार्थ उपदेश कर सकते हैं—जैसा ब्रह्म का स्वरूप है वैसा ही अनुभव-ज्ञान उत्पन्न हो, तब ही कोई विरला संत, जैसा वास्तविक तत्त्व है वैसा उपदेश कर सकता है, अन्यथा नहीं।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका उपजन का अंग समाप्त: ॥ २८ ॥

अथ दया निर्वैरता का अंग २९

उपजन-अंग के अनन्तर दया-पूर्वक निर्वैरता का विचार करने के लिए ''दया निर्वैरता का अंग'' कहने में प्रवृत्त हुये मंगल कर रहे हैं—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत: ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक क्रूरता तथा वैर भाव से पार होकर दया-निर्वैरता द्वारा परब्रह्म को प्राप्त होता है, उन निरंजन राम, सद्गुरु और सर्वसंतों को हम अनेक प्रणाम करते हैं।

आपा मेटे हरि भजे, मन मन तजे विकार ।
निर्वैरी सब जीव सौं, दादू यहु मत सार ॥ २ ॥

२-१८ में दया निर्वैरता की विशेषता के विचार दिखा रहे हैं—अहंकार निवृत्ति द्वारा तन-मन के सभी विकारों को त्याग कर तथा सभी जीवों से निर्वैर होकर हरि भजन करना, यही सब संतों का सार मत है।

निर्वैरी निज आतमा, साधन का मत सार ।
दादू दूजा राम बिन, वैरी मंझ विकार ॥ ३ ॥

जैसे प्राणी निजात्मा से निर्वैर रहता है, वैसे ही सबसे निर्वैर रहना चाहिए। यही संतों का सार सिद्धान्त है। आत्माराम को छोड़कर दूसरे जो अन्त:करण में कामादि विकार हैं, वे ही वैरी हैं।

निर्वैरी सब जीव सौं, संत जन सोई ।
दादू एकै आतमा, बैरी नहिं कोई ॥ ४ ॥

'संपूर्ण आत्मा एक ही है, वैरी कोई भी नहीं है' इस यथार्थ विचार द्वारा जो सब जीवों से निर्वैर रहता है, वही संत पुरुष है।

सब हम देख्या शोध कर, दूजा नांहीं आन ।
सब घट एकै आतमा, क्या हिन्दू मुसलमान ॥ ५ ॥

क्या हिन्दू और क्या मुसलमान, सभी के शरीरों में एक ही आत्मा है। हमने सब प्रकार विचार करके देखा है, आत्मा से भिन्न दूसरा कोई भी सत्य नहीं है।

उपजन

दादू जैसा ब्रह्म है, तैसी अनुभव उपजी होइ ।
जैसा है तैसा कहै, दादू विरला कोइ ॥ १७ ॥

इति उपजन का अंग समाप्त ॥ २८सा. २२७९ ॥

१७ में कहते हैं—यथार्थ अनुभवी ही यथार्थ उपदेश कर सकते हैं—जैसा ब्रह्म का स्वरूप है वैसा ही अनुभव-ज्ञान उत्पन्न हो, तब ही कोई विरला संत, जैसा वास्तविक तत्त्व है वैसा उपदेश कर सकता है, अन्यथा नहीं।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका उपजन का अंग समाप्तः ॥ २८ ॥

अथ दया निर्वैरता का अंग २९

उपजन-अंग के अनन्तर दया-पूर्वक निर्वैरता का विचार करने के लिए ''दया निर्वैरता का अंग'' कहने में प्रवृत्त हुये मंगल कर रहे हैं—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवतः ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक क्रूरता तथा वैर भाव से पार होकर दया-निर्वैरता द्वारा परब्रह्म को प्राप्त होता है, उन निरंजन राम, सद्गुरु और सर्वसंतों को हम अनेक प्रणाम करते हैं।

आपा मेटे हरि भजे, मन मन तजे विकार ।
निर्वैरी सब जीव सौं, दादू यहु मत सार ॥ २ ॥

२-१८ में दया निर्वैरता की विशेषता के विचार दिखा रहे हैं—अहंकार निवृत्ति द्वारा तन-मन के सभी विकारों को त्याग कर तथा सभी जीवों से निर्वैर होकर हरि भजन करना, यही सब संतों का सार मत है।

निर्वैरी निज आतमा, साधन का मत सार ।
दादू दूजा राम बिन, वैरी मंझ विकार ॥ ३ ॥

जैसे प्राणी निजात्मा से निर्वैर रहता है, वैसे ही सबसे निर्वैर रहना चाहिए। यही संतों का सार सिद्धान्त है। आत्माराम को छोड़कर दूसरे जो अन्तःकरण में कामादि विकार हैं, वे ही वैरी हैं।

निर्वैरी सब जीव सौं, संत जन सोई ।
दादू एकै आतमा, बैरी नहिं कोई ॥ ४ ॥

'संपूर्ण आत्मा एक ही है, वैरी कोई भी नहीं है' इस यथार्थ विचार द्वारा जो सब जीवों से निर्वैर रहता है, वही संत पुरुष है।

सब हम देख्या शोध कर, दूजा नांहीं आन ।
सब घट एकै आतमा, क्या हिन्दू मुसलमान ॥ ५ ॥

क्या हिन्दू और क्या मुसलमान, सभी के शरीरों में एक ही आत्मा है। हमने सब प्रकार विचार करके देखा है, आत्मा से भिन्न दूसरा कोई भी सत्य नहीं है।

दादू नारि पुरुष का नाम धर, इहिं संशय भरम भुलान।
सब घट एकै आतमा, क्या हिन्दू मुसलमान ॥ ६ ॥

इस स्थूल शरीर के चिन्ह भेद से संशय में पड़कर, अज्ञान द्वारा एक आत्मा का ही नारी व पुरुष नाम रख कर परस्पर की आसक्ति द्वारा तथा हिन्दू मुसलमान के भेद भ्रम द्वारा वैर भावादि से युक्त हो संसार में भटक रहे हैं।

दादू दोनों भाई हाथ पग, दोनों भाई कान।
दोनों भाई नैन हैं, हिन्दू मुसलमान ॥ ७ ॥

जैसे दोनों हाथ, दोनों कान, दोनों नेत्र बराबर हैं, वैसे ही हिन्दू-मुसलमान दोनों बराबर के भाई हैं।

दादू संशय आरसी, देखत दूजा होइ ।
भ्रम गया दुविधा मिटी, तब दूसर नांहीं कोइ ॥ ८ ॥

जैसे दर्पण में देखने से प्रतिबिम्ब रूप दूसरा शरीर भासता है, वैसे ही संशय-भ्रम द्वारा आत्मा में द्वैत भास कर वैर-भाव होता है। जब संशय-भ्रम नष्ट होकर द्वैत रूप दुविधा नष्ट हो जाती है, तब आत्म-भिन्न अन्य कोई भी सत्य नहीं भासता अतः वैर भी नहीं होता।

किस सौं बैरी ह्वै रह्या, दूजा कोई नांहिं ।
जिसके अंग तैं ऊपजे, सोई है सब मांहिं ॥ ९ ॥

जिस ईश्वर के स्वरूप से सबकी उत्पत्ति होती है, वही तो आत्म रूप से सब में स्थित है, फिर तू किसका वैरी बन रहा है ? दूसरा तो कोई है ही नहीं।

सब घट एकै आतमा, जाने सो नीका ।
आपा पर में चीन्ह ले, दर्शन है पीव का ॥ १० ॥

जो सब शरीरों में एक आत्मा जानता है, वही श्रेष्ठ है। तुम विचार द्वारा आत्म-स्वरूप परब्रह्म को प्रथम पहचान लो फिर अपने या अन्यों के शरीरों में देखो, तुम्हें परब्रह्म का ही साक्षात्कार होगा।

काहे को दुख दीजिये, घट घट आतम राम ।
दादू सब संतोषिये, यह साधू का काम ॥ ११ ॥

क्यों किसी को दु:ख देते हो ? सब शरीरों में अपना आत्म स्वरूप राम ही है। साधु का तो यही काम है—सबको संतुष्ट ही करे।

काहे को दुख दीजिये, सांई है सब मांहिं ।
दादू एकै आतमा, दूजा कोई नांहिं ॥ १२ ॥

क्यों किसी को दु:ख देते हो ? सब शरीरों में एक आत्म-स्वरूप परमात्मा ही है, अन्य कोई भी नहीं है।

साहिब जी की आतमा, दीजे सुख संतोख ।
दादू दूजा को नहीं, चौदह तीनों लोक ॥ १३ ॥

तीन लोक चौदह भुवनों में सभी आत्माएँ परमात्मा के अंश रूप हैं। अन्य कोई भी नहीं है। अत: सबको ही सुख देकर संतुष्ट करना चाहिए। (संतोख= संतोष)

दादू जब प्राण पिछाने आपको, आतम सब भाई ।
सिरजनहारा सबन का, तासौं ल्यौ लाई ॥ १४ ॥

जब प्राणी अपने आत्म-स्वरूप को पहचानता है, तब सभी भाई प्रतीत होते हैं। फिर तो वैर-भाव छोड़कर सबके स्रष्टा परमात्मा के स्वरूप में ही वृत्ति लगाता है।

आत्मा राम विचार कर, घट घट देव दयाल ।
दादू सब संतोषिये, सब जीवों प्रतिपाल ॥ १५ ॥

आत्म-स्वरूप राम के स्वरूप का विचार करके देखो, सभी शरीरों में वह दयालु परमात्मा देव आत्मा रूप से स्थित है। अत: सभी जीवों का प्रतिपालन करते हुये सभी को संतुष्ट करना चाहिए।

दादू पूरण ब्रह्म विचारले, द्वैत भाव कर दूर ।
सब घट साहिब देखिये, राम रह्या भरपूर ॥ १६ ॥

बुद्धि से द्वैत भाव को दूर करके, ब्रह्म-ज्ञान-विचार द्वारा पूर्ण ब्रह्म को प्राप्त कर लो। वह निरंजन राम व्यापक होने से सभी शरीरों में परिपूर्ण रूप से स्थित है, तुम ज्ञान-नेत्रों से देखो।

दादू मंदिर काच का, मर्कट[१] सुनहां[२] जाइ ।
दादू एक अनेक ह्वै, आप आपको खाइ ॥ १७ ॥

जैसे काँच खंडों से बने हुये महल में वानर[१] वा श्वान[२] चला जाय तो अपने एक के अनेक प्रतिबिम्ब देख कर आप ही अपने प्रतिबिम्बों को खाने के लिये उछलता-कूदता है और कष्ट पाता है। वैसे ही मानव अपने ही आत्मा को सब शरीरों में अन्य रूप से देख कर, अपने से ही वैर करके कष्ट उठाते हैं तथा नष्ट होते हैं।

आतम भाई जीव सब, एक पेट परिवार ।
दादू मूल विचारिये, तो दूजा कौन गँवार ॥ १८ ॥

हे अज्ञ जन ! यदि मूल कारण का विचार किया जाय तो दूसरा कौन प्रतीत होगा ? सभी जीवात्माएँ एक ईश्वर से उत्पन्न होने के कारण, एक ही परिवार के भाई हैं।

अदया हिंसा-वनस्पतियों में जीव भाव

दादू सूखा सहजैं कीजिये, नीला भानैं नांहिं ।
काहे को दुख दीजिये, साहिब है सब मांहिं ॥ १९ ॥

१९ में कहते हैं—वनस्पतियों में जीव है अतः उनका तोड़ना हिंसा है। सूखे दाँतुन को ही शनैः-शनैः मुख में चबाकर दाँत साफ कर लेने चाहिये, हरा नहीं तोड़ना चाहिये। सभी वनस्पतियों

में जीव रूप से परमात्मा स्थित है। अतः किसी को भी दुःख नहीं देना चाहिये।

ईडवा ग्राम में हरा दाँतुन लाने पर दूजनदासजी को यह १९वीं साखी कही थी। प्रसंग कथा-दृ. सु.सि.त. ७। ११९ में देखो।

दया निर्वैरता

घट घट के उनहार सब, प्राण परस ह्वै जाइ ।
दादू एक अनेक ह्वै, बरते नाना भाइ[1] ॥ २० ॥

२०-२५ में दया निर्वैरता के विचार दिखा रहे हैं—प्राणधारी जीव-चेतन जब शरीरों में प्रविष्ट होता है तब वह प्रत्येक शरीर की आकृति जैसा ही भासने लगता है=हाथी में हाथी जैसा महान्,चींटी में चींटी जैसा लघु दीखता है। इस प्रकार एक ही जीवात्मा अनेक होकर नाना भावों[1] द्वारा संसार में व्यवहार करता है।

आये एकंकार[1] सब, सांई दिये पठाइ ।
दादू न्यारे नाम धर, भिन्न भिन्न ह्वै जाइ ॥ २१ ॥

परमात्मा ने अपने अंशों को ही संसार में भेजा है। अतः सब एकरूप[1] में ही आये हुये हैं किन्तु यहाँ वर्ण, आश्रम, धर्म, जाति, पंथ आदि की कल्पना द्वारा अलग-अलग नाम रख कर भिन्न २ हो गये हैं।

आये एकंकार सब, सांई दिये पठाइ ।
आदि अंत सब एक है, दादू सहज समाइ ॥ २२ ॥

परमात्मा ने अपने अंशों को ही भेजा है, अतः सब एक रूप में ही आये हैं। केवल मध्य में अपनी कल्पना द्वारा भिन्न हो जाते हैं। सृष्टि के आदि में एक रूप थे और ज्ञान होने पर अन्त में भी एक रूप हो जाते हैं। अतः सब से निर्वैर रह कर ज्ञान द्वारा सहज स्वरूप ब्रह्म में ही समाना चाहिये।

आतम देव अराधिये, विरोधिये नहीं कोइ ।
आराधे सुख पाइये, विरोधे दुःख होइ ॥ २३ ॥

आत्मा-रूप देव की सेवा ही करनी चाहिये, किसी भी आत्मा से विरोध नहीं करना चाहिये। सेवा द्वारा अन्यात्मा को संतुष्ट करने से तुम भी सुख पाओगे और विरोध करने से तुम्हें भी दुःख ही प्राप्त होगा।

ज्यों आपै देखे आप को, यों जे दूसर होइ ।
तो दादू दूसर नहीं, दुःख न पावे कोइ ॥ २४ ॥

जैसे प्राणी अपनी अनुकूलता व प्रतिकूलता को देखता है, वैसे ही यदि दूसरे की भी देखे तो दूसरा कोई नहीं भासता और द्वैत के अभाव से द्वैत जन्य दुःख किसी को नहीं होता।

दादू सम कर देखिये, कुंजर कीट समान ।
दादू दुविधा दूर कर, तज आपा अभिमान ॥ २५ ॥

यदि आत्मा भाव रूप समता से देखोगे तो तुम्हें हाथी और अति लघु कीट भी समान भासेंगे। अतः अपनी योग्यता का अहंकार और जाति आदि के अभिमान को त्याग कर द्वैत रूप दुविधा को मन से दूर करो।

अदया-हिंसा

दादू अर्श[1] खुदाय का, अजरावर का थान।
दादू सो क्यों ढाहिये, साहिब का नीशान[2] ॥ २६ ॥

२५-३३ में अदया और हिंसा को त्यागने की प्रेरणा कर रहे हैं—देवताओं से अति श्रेष्ठ परमात्मा का जो सबसे ऊंचा हृदयाकाश[1] रूप स्थान है, उस स्थान के चिन्ह[2] शरीर को क्यों नष्ट करते हो ?

दादू आप चिणावे देहुरा, तिसका करहि जतन।
प्रत्यक्ष परमेश्वर किया, सो भाने[1] जीव रतन ॥ २७ ॥

जो मन्दिर आप बनाते हैं, उसकी रक्षा के तो अनेक उपाय करते हैं और जो परमेश्वर ने अपना मन्दिर बना कर प्रकट किया है तथा परमेश्वर के साक्षात्कार का कारण है, उस रत्न रूप जीव के शरीर-मन्दिर को नष्ट[1] करते हैं।

मसीत[1] सँवारी माणसौं, तिसको करैं सलाम।
ऐन[2] आप पैदा किया, सो ढाहैं मुसलमान ॥ २८ ॥

जो मस्जिद[1] मनुष्यों ने बनाकर तैयार की है, उसको तो मुसलमान प्रणाम करते हैं और जिस शरीर को साक्षात्[2] खुदा ने उत्पन्न किया है उसे इन्द्रिय-लोलुपता के कारण नष्ट करते हैं, कैसा आश्चर्य है !

दादू जंगल मांहीं जीव जे, जग तैं रहैं उदास।
भयभीत भयानक रात दिन, निश्चल नांही वास ॥ २९ ॥

जो जीव मानव जगत् से दुःखी होकर वन में रहते हैं, वे मानवों के भय से डरे हुये दिन तथा भयानक रात्रि में भी निश्चल होकर एक स्थान में नहीं रह सकते।

वाचा बंधी जीव सब, भोजन पानी घास।
आतम ज्ञान न ऊपजे, दादू करहि विनास ॥ ३० ॥

जो अपनी वाणी से अपने सुख-दुःखादि को नहीं समझा सकते और जिनका भोजन केवल घास तथा जल ही है, ऐसे निर्दोष जीवों को भी आत्मा-ज्ञान रहित इन्द्रिय-लोलुप मानव निर्दयता-पूर्वक मार डालते हैं।

काला मुँह कर करद[1] का, दिल तैं दूर निवार।
सब सूरत[2] सुबहान[3] की, मुल्ला मुग्ध[4] न मार ॥ ३१ ॥

हे मूर्ख[4] मुल्ला ! कुर्बानी[1] का छुरा त्याग दे और जीवों को मारने की बात दिल से सर्वथा हटा दे। ये सभी जीव पवित्र[3] परमात्मा की आकृतियाँ[2] हैं, इनको मत मार।

गला गुस्से का काटिये, मियाँ मनी[१] को मार।
पंचों बिस्मिल[२] कीजिये, ये सब जीव उबार ॥ ३२ ॥

हे मियाँ ! क्रोध का गला काट, अहंकार[१] को मार, पंच ज्ञानेन्द्रियों को अन्तर्मुख रूप कुर्बानी[२] कर और इन दीन जीवों की रक्षा कर।

वैर विरोधे आतमा, दया नहीं दिल मांहिं।
दादू मूरति राम की, ताको मारन जांहि ॥ ३३ ॥

मन में दया न होने के कारण वैर-भाव द्वारा जीवात्माओं से विरोध करता है और जो राम की ही मूर्ति है, उस जीव को मारने के लिये जाता है।

दया निर्वैरता

कुल आलम यके[७] दीदम,[५] अरवाहे इखलास[६]।
बद[१] अमल[२] बदकार[३] दुई[४], पाक यारां पास ॥ ३४ ॥

३४-३६ में दया निर्वैरता दिखा रहे हैं—संपूर्ण संसार को हम एक[७] दृष्टि[५] से देखते हैं, सभी आत्माओं से हमारा प्रेम[६] है। दुराचारियों[३] से बुरे[१] कार्य[२] द्वैत[४]-भाव द्वारा होते हैं। हम मित्रों की पक्ष लेने वाला पवित्र परमेश्वर हमारे पास है। हमारी क्या परीक्षा लेते हो ?

आमेर में, महाराज श्रेष्ठ संत हैं, या नहीं, यह परीक्षा करने को एक तुर्क ने मुख बँधा मांस-पात्र प्रसाद रूप से सत्संग सभा में रखा था, उसका विचार था, यदि बिना खोले पहचान जायेंगे तो मैं श्रेष्ठ संत मान लूंगा। उसी को ३४ वीं साखी कही थी। प्रसंग कथा-दृ. सु. सि. १०। ८ में देखो।

काल झाल तैं काढ कर, आतम अंग लगाइ।
जीव दया यहु पालिये, दादू अमृत खाइ ॥ ३५ ॥

जीवों के मन को काल की विषयाशा रूप ज्वाला से उपदेश द्वारा निकाल कर आत्मा के स्वरूप में लगाओ,जिससे आत्मा ज्ञानामृत पान करके अमर हो जाये। जीवों के मन से मृत्यु-भय दूर कर उनसे आत्मवत् स्नेह करो, यही उत्तम जीव दया है, इसका पालन करो।

दादू बुरा न बांछे जीव का, सदा सजीवन सोइ।
परलै विषय विकार सब,भाव भक्ति रत होइ ॥ ३६ ॥

जो किसी भी जीव का बुरा नहीं चाहता, वह सभी विषय-विकारों को नष्ट करके भगवान् की प्रेमाभक्ति में रत होकर ब्रह्म प्राप्ति रूप सदा सजीवनावस्था को प्राप्त होता है।

मत्सर=ईर्ष्या

ना को बैरी, ना को मिन्त, दादू राम मिलन की चिन्त ॥ ३७ ॥

इति दया निर्वैरता का अंग समाप्त ॥ २९ ॥ सा. २३१६ ॥

संतों की निर्द्वन्द्वता दिखा रहे हैं—संतों का न तो कोई वैरी है, न कोई मित्र है। राग-द्वेष रहित उनके चित्त में तो राम के मिलन की ही इच्छा बनी रहती है।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका दया निर्वैरता का अंग समाप्तः ॥ २९ ॥

अथ सुन्दरी का अंग ३०

दया-निर्वैरता-अंग के अनन्तर भगवद्-वियोगी जीवात्मा रूप सुन्दरी के भगवत्प्रेम आदि का परिचय देने के लिये 'सुन्दरी का अंग' कहने में प्रवृत्त हुये मंगल कर रहे हैं—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवतः ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से जीवात्मा-सुन्दरी वियोग जन्य क्लेश से पार होकर परब्रह्म-पति को प्राप्त करती है, उन निरंजन राम, सद्गुरु और सर्व संतों को हम अनेक प्रणाम करते हैं।

सुन्दरी विलाप

आरत[१]-वन्ती[२] सुन्दरी, पल पल चाहे पीव ।
दादू कारण कंत के, तालाबेली[३] जीव ॥ २ ॥

२-८ में वियोगिनी जीवात्मा का विलाप दिखा रहे हैं—भगवद् वियोग जन्य दुःख[१] से युक्त[२] जीवात्मारूप सुन्दरी पल-पल में परमात्मा रूप स्वामी के मिलने की इच्छा करती हुई विलाप करती है और स्वामी की प्राप्ति के लिये अपने मन में व्याकुल[३] होती रहती है।

काहे न आवहु कंत घर,क्यों तुम रहे रिसाइ ?
दादू सुन्दरि सेज पर, जन्म अमोलक जाइ ॥ ३ ॥

हे स्वामिन् ! आप क्यों रुष्ट हो रहे हैं ? अन्तःकरण घर में आकर मेरी वृत्ति-शय्या पर क्यों नहीं विराजते ? आपकी स्वरूपाकार वृत्ति बिना मेरा यह अमूल्य नर जन्म व्यर्थ ही जा रहा है।

आतम अंतर आव तूं, या है तेरी ठौर ।
दादू सुन्दरि पीव तूं,दूजा नाहीं और ॥ ४ ॥

आप अन्तःकरण में पधारिये,यह आप ही का स्थान है, मुझ सुन्दरी के तो आप ही स्वामी हैं और कोई दूसरा हमारा स्वामी नहीं है।

दादू पीव न देख्या नैन भर, कंठ न लागी धाइ।
सूती नहिं गल बाँह दे, बिच ही गई विलाइ ॥ ५ ॥

परब्रह्म को ज्ञान-नेत्र से इच्छा भरके न देख सकी, न सांसारिक भावनाओं से दूर दौड़ कर ब्रह्माकार रूप कंठ से लग सकी और न अभेद अवस्था रूप गल बाँह देकर लय रूप निद्रा में सो सकी, बीच में ही वृत्ति-प्रमाद द्वारा विषयों में विलीन हो गई।

सुरति पुकारे सुन्दरी, अगम अगोचर जाइ ।
दादू विरहनि आतमा, उठ उठ आतुर धाइ ॥ ६ ॥

वियोगिनी जीवात्मा-सुन्दरी, सांसारिक भावनाओं से ऊपर उठ-उठ कर शीघ्रता के साथ भगवत् प्रेम-पंथ में दौड़ती है= अर्थात् भगवत् में अति प्रेम करती है और वृत्ति द्वारा अगम अगोचर परब्रह्म के समीप जाकर उससे अभेद होने के लिए प्रार्थना करती है।

साँई कारण सेज सँवारी, सब तैं सुन्दर ठौर ।
दादू नारी नाह[१] बिन, आण[१] बिठाये और ॥ ७ ॥

हे स्वामिन् ! आप के लिए सबसे अति सुन्दर स्थान अन्तःकरण में शुद्ध वृत्ति रूप शय्या तैयार की है । अब यदि आप नहीं पधार रहे हैं, तब हम जीवात्मा रूप वियोगिनी नारी आप परमेश्वर पति[१] के बिना इस पर अन्य[१] विषयादि को लाकर[१] बिठावें, यह तो उचित नहीं । अतः शीघ्र पधारने की कृपा करें ।

कोई अवगुण मन बस्या, चित तैं धरी उतार ।
दादू पति बिन सुन्दरी, हांढे घर घर–बार ॥ ८ ॥

अवश्य ही कोई न कोई अवगुण मेरे प्रभु के मन में बस रहा है, तभी तो उन्होंने मुझे अपने मन से हटा दिया है, किन्तु हे स्वामिन् ! आपके बिना व्यथित यह सुन्दरी आप की प्राप्ति के लिये शास्त्र और संत रूप घर-घर के विचार रूप द्वार पर भटक रही है । इसे आपकी प्राप्ति पर ही शान्ति मिल सकेगी । परमेश्वर की अनुरक्ति के बिना यह जीवात्मा सांसारिक विषयों में भटक जायगी ।

अन्य लग्न व्यभिचार

प्रेम प्रीति सनेह बिन, सब झूठे श्रृंगार ।
दादू आतम रत नहीं, क्यों माने भरतार[१] ॥ ९ ॥

९ में कहते हैं—भगवद् भिन्न अन्य विषयादि से प्रीति करना व्यभिचार है-भगवद् वचनों में प्रेम, संतों में प्रीति और परमात्मा में स्नेह बिना आडम्बर मात्र साधन रूप सभी श्रृङ्गार व्यर्थ हैं । जब तक जीवात्मा-सुन्दरी परमात्मा रूप स्वामी से अनुरक्त न हो तब तक परमात्मा पति[१] उसे अपनी प्रियतमा कैसे मानेगा ?

सुन्दरी विलाप

दादू हूं सुख सूती नींद भर, जागे मेरा पीव ।
क्यों कर मेला होइगा, जागे नांहीं जीव ॥ १० ॥

१०-१६ में वियोगिनी सुन्दरी का विलाप दिखा रहे हैं—मेरा स्वामी परमात्मा तो निरंतर जागता ही रहता है किन्तु मैं ही वियोग जन्य दुःख से व्यथित नहीं हुई तथा विषयों में ही सुख मान कर घोर अज्ञान-निद्रा में सूती हूं । जब तक मेरा अन्तःकरण अज्ञान-निद्रा को त्याग कर, ज्ञान-जागृत में नहीं आयेगा, तब तक उससे मिलन कैसे होगा ?

सखी न खेले सुन्दरी, अपने पीव सौं जाग ।
स्वाद न पाया प्रेम का, रही नहीं उर लाग ॥ ११ ॥

हे संत-सखी ! जब तक इस जीवात्मा-सुन्दरी ने अज्ञान निद्रा से जागकर परब्रह्म स्वामी के साथ उसी का चिन्तन रूप खेल खेलते हुये उसके स्वरूप रूप छाती से लगकर अभेद स्थिति में परमानन्द नहीं प्राप्त किया, तो जीवन व्यर्थ ही है ।

पंच दिहाड़े पीव सौं, मिल काहे न खेले ।
दादू गहली सुन्दरी, क्यों रहै अकेले ॥ १२ ॥

अरी मेरी जीवात्मा रूप पगली सुन्दरी ! सप्ताह में एक दिन जन्म का और एक मरण का छोड़ कर पांच ही दिन तो जीवन के हैं । तू शीघ्र ही साधन द्वारा परब्रह्म से मिलकर उनका साक्षात्कार रूप खेल क्यों नहीं खेलती ? तू अकेली रह कर क्यों खेद उठा रही है ?

सखी सुहागिनि सब कहैं, हूं री[१] दुहागिनि आहि।
पिव का महल न पाइये, कहां पुकारूं जाइ ॥ १३ ॥

हे संत-सखी ! मुझे सभी लोग कहते हैं, इसे परमात्मा-पति प्राप्त है । अरी[१], मुझे वह प्राप्त नहीं है । मुझे उस परमात्मा का समाधि रूप महल भी नहीं मिल रहा है । यदि दर्शनार्थ प्रार्थना भी करूं, तो कहां जाकर करूं ?

सखी सुहागिनि सब कहैं, कंत न बूझे बात ।
मनसा वाचा कर्मणा, मूर्च्छ मूर्च्छ जिव जात ॥ १४ ॥

संत-सखी ! मुझे सभी कहते हैं—इसे परमात्मा प्राप्त है, किन्तु परमात्मा तो हमारे सुख दुःख की बात भी नहीं पूछते । हम मन-वचन-कर्म से सत्य ही कहते हैं, उनके दर्शन के लिये हमारा मन बारंबार मूर्छित हो जाता है ।

सखी सुहागिनि सब कहैं, पिव सौं परस न होइ।
निशवासर दुख पाइये,यहु व्यथा न जाने कोइ ॥ १५ ॥

संत-सखी ! मुझे सब कहते हैं—इसे परमात्मा प्राप्त है, किन्तु परमात्मा से मिलन तो होता ही नहीं । उससे मिलने के लिए रात्रि-दिन वियोग जन्य क्लेश पा रही हूँ । यह हमारी व्यथा कोई भी नहीं जानता ।

सखी सुहागिनि सब कहैं, प्रकट न खेले पीव ।
सेज सुहाग न पाइये, दुखिया मेरा जीव ॥ १६ ॥

संत-सखी ! मुझे सभी कहते हैं—इसे प्रभु प्राप्त हैं, किन्तु प्रकट रूप से तो परमात्मा मेरे साथ अरस-परस रूप खेल नहीं खेलते । मेरी हृदय-शय्या पर निरन्तर विराजे रहें, ऐसा सुहाग-सुख मुझे नहीं प्राप्त हो रहा है । अतः मेरा मन बड़ा दुःखी है ।

प्रसंग—साँभर-सरोवर के मध्य की छतरी पर महाराज ध्यानस्थ थे । उसी समय वहां एक संत जा पहुँचे और ध्यान खुलने पर 'आप भगवत् प्राप्त संत हैं', ऐसी बातों द्वारा महाराज की स्तुति करने लगे तब उन्हीं संतजी को १३ से १६ तक की साखियाँ कही थीं ।

अन्य लग्न व्यभिचार

पुरुष पुरातन छाड़कर, चली आन के साथ ।
सो भी सँग तैं बीछुट्या, खड़ी मरोड़े हाथ ॥ १७ ॥

१७ में कहते हैं-व्यभिचार से दुःख होता है—जो जीवात्मा-सुन्दरी परब्रह्म रूप पुराने पुरुष

सनातन को छोड़, अन्य नूतन पति देव के साथ लगती है, तो वह पतिदेव विनाशी होने से उसके संग से जब बिछुड़ता है, तब ''हाय ! अब क्या करूं'' कह कर खड़ी-खड़ी अपने हाथ मरोड़ती हुई पछताती है। अतः अविनाशी परमात्मा को ही सच्चा स्वामी मानें।

सुन्दरी-विलाप

सुन्दरि कबहूं कंत का, मुख सौं नाम न लेइ।
अपने पिव के कारणैं, दादू तन मन देइ ॥ १८ ॥

१८-२२ में साधक सुन्दरी का विलाप दिखा रहे हैं—जैसे सुन्दरी अपने मुख से तो पति का नाम उच्चारण भी नहीं करती किन्तु पति के लिए अपने तन मन को निछावर कर देती है। वैसे ही उच्चकोटि के संत उच्च-स्वर से तो हरि का नाम उच्चारण नहीं करते, किन्तु भीतर उसकी प्राप्ति के लिये निरंतर विलाप करते हुये अपने तन-मन को प्रभु पर निछावर कर देते हैं।

नैन बैन कर वारणै, तन मन पिंड पराण।
दादू सुन्दरि बलि गई, तुम पर कंत सुजान ॥ १९ ॥

मेरे हृदय को अच्छी प्रकार जानने वाले स्वामिन् ! मैं जीवात्मा-सुन्दरी अपने नेत्र, वचन, मन, प्राणादि सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीर आप पर निछावर करके आपकी बलिहारी जाती हूँ।

तन भी तेरा मन भी तेरा, तेरा पिंड पराण।
सब कुछ तेरा तूं है मेरा, यहु दादू का ज्ञान ॥ २० ॥

मेरे मन, प्राणादि सूक्ष्म शरीर तथा स्थूल शरीरादि सब आपके ही हैं और आप मेरे हैं, यही मेरा ज्ञान है।

सुन्दरि मोहै पीव को, बहुत भांति भरतार।
त्यों दादू रिझवे राम को, अनन्त कला करतार ॥ २१ ॥

जैसे सुन्दरी अपने पति को नाना श्रृंगार और सेवादि से अपने में अनुरक्त करती है, वैसे ही विश्व-रचयिता अपने स्वामी राम को हम अनन्त साधना रूप कलाओं से रिझाते हैं।

नदिया नीर उलंघ कर, दरिया पैली पार।
दादू सुन्दरि सो भली, जाय मिले भरतार ॥ २२ ॥

आशा-नदी के विषय-मनोरथ-जल को उल्लंघन करके तथा संसार-समुद्र के पार जाकर, परमात्मा रूप अपने स्वामी को मिलती है, वही संत-सुन्दरी श्रेष्ठ है।

सुन्दरी सुहाग

प्रेम लहर गह ले गई, अपने प्रीतम पास।
आत्मा सुन्दरि पीव को, विलसे दादू दास ॥ २३ ॥

२३-२७ में संत-सुन्दरी का सौभाग्य दिखा रहे हैं—प्रेम-समुद्र की अनन्यावस्था रूप लहरें हमारी आत्म-सुन्दरी की वृत्ति को विषय रूप तट से पकड़ कर अपने प्रियतम परमात्मा के पास ले गई है। अतः अब वह परमात्मा से निरन्तर साक्षात्कार करके परम आनन्द का उपभोग कर रही है।

सुन्दरि को सांई मिल्या, पाया सेज सुहाग ।
पिव सौं खेले प्रेम रस, दादू मोटे भाग ॥ २४ ॥

आत्मा-सुन्दरी को परमात्मा की प्राप्ति हुई। अब वह हृदय-शय्या पर प्रभु की उपस्थिति रूप सौभाग्य युक्त होकर अपने स्वामी परमात्मा से अरस-परस रूप खेल खेलती हुई प्रेम-रस का पान करती है। यह उसके महान् सौ भाग्य का ही फल है।

दादू सुन्दरि देह में, सांई को सेवे ।
राती अपने पीव सौं, प्रेम रस लेवे ॥ २५ ॥

संतात्मा-सुन्दरी अपने शरीर के हृदय-देश में ही परमात्मा की भक्ति करती है और अपने प्रभु से अनुरक्त होकर प्रेम-रस का पान करती है।

दादू निर्मल सुन्दरी, निर्मल मेरा नाह ।
दोन्यों निर्मल मिल रहे, निर्मल प्रेम प्रवाह ॥ २६ ॥

मेरी जीवात्मा-सुन्दरी विषय-वासनादि-मल से रहित होकर, माया-मल रहित परब्रह्म से जा मिली है, अब दोनों निर्मल होने से कामना-मल-रहित प्रेम के अखंड प्रवाह में मिले हुये रहते हैं।

सांई सुन्दरि सेज पर, सदा एक रस होइ ।
दादू खेले पीव सौं, ता सम और न कोइ ॥ २७ ॥

इति सुन्दरी का अंग समाप्त ॥ ३० ॥ सा. २३४३ ॥

जिस संत-सुन्दरी की हृदय-शय्या पर परमात्मा सदा एकरस रहते हैं और जो उनसे अभेद रूप खेल खेलती है, उसके समान सौभाग्यवती और कोई भी नहीं हो सकती।

इति श्रीदादू गिरार्थ प्रकाशिका सुन्दरी का अंग समाप्तः ॥ ३० ॥

अथ कस्तूरिया मृग का अंग ३१

सुन्दरी अंग के अनन्तर कस्तूरिया मृग के दृष्टांत से हृदयस्थ परमात्मा को बताने के लिये ''कस्तूरिया मृग का अंग'' कथन में प्रवृत्त हुये मंगल कर रहे हैं—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवतः ।
वंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से प्राणी भ्रम से पार होकर हृदयस्थ आत्मा स्वरूप परब्रह्म को प्राप्त होता है, उन निरंजन राम, सद्गुरु और सर्व संतों को हम अनेक प्रणाम करते हैं।

दादू घट कस्तूरी मृग के, भ्रमत फिरे उदास ।
अंतरगत जाने नहीं, तातैं सूंघे घास ॥ २ ॥

२-१३ में हृदयस्थ परमात्मा के स्वरूप को समझा रहे हैं—जैसे कस्तूरिया मृग ''अपने शरीर की नाभि में कस्तूरी है'', यह न जानकर कस्तूरी के लिए दुःखी हुआ उसे घास में सूंघ कर

सुन्दरि को सांई मिल्या, पाया सेज सुहाग ।
पिव सौं खेले प्रेम रस, दादू मोटे भाग ॥ २४ ॥

आत्मा-सुन्दरी को परमात्मा की प्राप्ति हुई। अब वह हृदय-शय्या पर प्रभु की उपस्थिति रूप सौभाग्य युक्त होकर अपने स्वामी परमात्मा से अरस-परस रूप खेल खेलती हुई प्रेम-रस का पान करती है। यह उसके महान् सौ भाग्य का ही फल है।

दादू सुन्दरि देह में, सांई को सेवे ।
राती अपने पीव सौं, प्रेम रस लेवे ॥ २५ ॥

संतात्मा-सुन्दरी अपने शरीर के हृदय-देश में ही परमात्मा की भक्ति करती है और अपने प्रभु से अनुरक्त होकर प्रेम-रस का पान करती है।

दादू निर्मल सुन्दरी, निर्मल मेरा नाह ।
दोन्यों निर्मल मिल रहे, निर्मल प्रेम प्रवाह ॥ २६ ॥

मेरी जीवात्मा-सुन्दरी विषय-वासनादि-मल से रहित होकर, माया-मल रहित परब्रह्म से जा मिली है, अब दोनों निर्मल होने से कामना-मल-रहित प्रेम के अखंड प्रवाह में मिले हुये रहते हैं।

सांई सुन्दरि सेज पर, सदा एक रस होइ ।
दादू खेले पीव सौं, ता सम और न कोइ ॥ २७ ॥

इति सुन्दरी का अंग समाप्त ॥ ३० ॥ सा. २३४३ ॥

जिस संत-सुन्दरी की हृदय-शय्या पर परमात्मा सदा एकरस रहते हैं और जो उनसे अभेद रूप खेल खेलती है, उसके समान सौभाग्यवती और कोई भी नहीं हो सकती।

इति श्रीदादू गिरार्थ प्रकाशिका सुन्दरी का अंग समाप्तः ॥ ३० ॥

अथ कस्तूरिया मृग का अंग ३१

सुन्दरी अंग के अनन्तर कस्तूरिया मृग के दृष्टांत से हृदयस्थ परमात्मा को बताने के लिये ''कस्तूरिया मृग का अंग'' कथन में प्रवृत्त हुये मंगल कर रहे हैं—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवतः ।
वंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से प्राणी भ्रम से पार होकर हृदयस्थ आत्मा स्वरूप परब्रह्म को प्राप्त होता है, उन निरंजन राम, सद्गुरु और सर्व संतों को हम अनेक प्रणाम करते हैं।

दादू घट कस्तूरी मृग के, भ्रमत फिरे उदास ।
अंतरगत जाने नहीं, तातैं सूंघे घास ॥ २ ॥

२-१३ में हृदयस्थ परमात्मा के स्वरूप को समझा रहे हैं—जैसे कस्तूरिया मृग ''अपने शरीर की नाभि में कस्तूरी है'', यह न जानकर कस्तूरी के लिए दुःखी हुआ उसे घास में सूंघ कर

ढूंढता हुआ वन में भटकता फिरता है, वैसे ही अपने हृदय में स्थित परमात्मा को न जानकर लोग भ्रम-वश तीर्थादि में खोजते फिरते हैं।

दादू सब घट में गोविन्द है, संग रहै हरि पास ।
कस्तूरी मृग में बसे, सूंघत डोले घास ॥ ३ ॥

हरि व्यापक होने से सब के पास है और वेद वाणी के द्वारा प्राप्त होने योग्य गोविन्द सबके अन्तःकरण में आत्मा रूप से विद्यमान है, तो भी जैसे कस्तूरिया मृग, कस्तूरी अपने में होने पर भी घास सूंघता फिरता है, वैसे ही प्राणी भ्रम-वश परमात्मा को दूर तीर्थादि में खोजते फिरते हैं।

दादू जीव न जाने राम को, राम जीव के पास।
गुरु के शब्दों बाहिरा, तातैं फिरे उदास ॥ ४ ॥

राम तो व्यापक होने से जीव के पास ही है किन्तु गुरु के शब्दों को धारण न करने के कारण बहिर्मुख है, इसलिये जीव राम को नहीं जान पाता और भ्रम वश दुःखी हो कर फिरता है।

दादू जा कारण जग ढूंढिया, सो तो घट ही मांहिं ।
मैं तैं पड़दा भरम का, तातैं जानत नांहिं ॥ ५ ॥

जिसकी प्राप्ति के लिये संपूर्ण जगत् खोज लिया है, वह परमात्मा तो अपने अन्तः करण में ही है किन्तु ''मैं तू'' आदि अहंकार रूप भ्रम का पड़दा उसे छिपा रहा है। इसीलिये जीव उसे नहीं जान पाता।

दादू दूर कहैं ते दूर हैं, राम रह्या भरपूर ।
नैनहुँ बिन सूझे नहीं, तातैं रवि कत[१] दूर ॥ ६ ॥

जैसे नेत्रहीन को सूर्य नहीं दीखता तो क्या वह कहीं[१] दूर चला जाता है ? नहीं, वैसे ही ज्ञानहीन को न भासने से राम दूर नहीं कहा जाता, वह तो सर्वत्र परिपूर्ण है, किन्तु जो राम को दूर कहते हैं, वे ही दूर न होने पर भी अज्ञान-वश राम से दूर हो रहे हैं।

दादू ओडो[१] हूंवो[२] पाण[३] सैं, न लधाऊं[४] मंझ[५]।
न जातांऊ[६] पाण[७] में, तांई[८] क्याऊ[९] पंध[१०] ॥ ७ ॥

राम तो अपने[३] से समीप[१] हृदय[५] में, ही था[२] किन्तु अज्ञान के कारण नहीं मिला[४]। जो अपने[७] में स्थित को भी न जाना[६] और बाहर भटक रहा है, उसे[८] अन्तरंग साधन पथ[१०] का क्या उपदेश करना[९] है ? कारण वह बहिर्मुख होने से उसमें लगेगा ही नहीं।

दादू केई दौड़े द्वारिका, केई काशी जांहिं ।
केई मथुरा को चले, साहिब घट ही मांहिं ॥ ८ ॥

ईश्वर दर्शनार्थ कितने ही दौड़े-दौड़े द्वारिका, कितने ही काशी और कितने ही मथुरा को जा रहे हैं किन्तु परमात्मा तो अपने अन्तःकरण में ही है।

दादू सब घट मांहीं रम रह्या, विरला बूझे कोइ।
सोई बूझे राम को, जे राम सनेही होइ ॥ ९ ॥

राम सभी शरीरों में दूध में घृत के समान रमा हुआ है किन्तु उसे इस प्रकार कोई विरला ही समझता है। जो राम का प्यारा है, वही राम को यथार्थ रूप से समझता है।

दादू जड़मति जीव जाणे नहीं, परम स्वाद सुख जाइ ।
चेतन समझे स्वाद सुख, पीवे प्रेम अघाइ ॥ १० ॥

जिनकी बुद्धि मायिक जड़ पदार्थों में ही लगी रहती है, वे जीव परमानन्द स्वरूप ब्रह्म को नहीं जान पाते। इसीलिये ब्रह्म-सुख के आस्वादन से वंचित रह कर जन्म-मरणादि प्रवाह में ही बह जाते हैं, और जो सावधान साधक उस आनन्द स्वरूप ब्रह्म को अद्वैत रूप से समझते हैं, वे उसके प्रेम रस का पान करते हुये, आनन्द रूप आस्वादन से तृप्त होकर सुख-स्वरूप ही हो जाते हैं।

जागत जे आनन्द करे, सो पावे सुख स्वाद।
सूते सुख ना पाइये, प्रेम गमाया बाद ॥ ११ ॥

जो ज्ञान रूप जाग्रतावस्था में हैं, वे समता द्वारा सबके लिये आनन्द का विधान करते हुये ब्रह्म-सुख का रस लेते हैं और जो अज्ञान निद्रा में सूते हुये हैं, उन्हें ब्रह्म सुख नहीं मिलता। अतः उन्होंने अपने हृदय के प्रेम रूप गुण को विषयों में लगा कर व्यर्थ ही खो दिया।

दादू जिसका साहिब जागणा, सेवक सदा सचेत ।
सावधान सन्मुख रहै, गिर गिर पड़ै अचेत ॥ १२ ॥

जिस संत का स्वामी सदा जाग्रत रहने वाला परमात्मा है, तो वह संत सेवक भी ज्ञान द्वारा सावधान रहते हुये, उसकी आज्ञापालन तथा भजन द्वारा उसके सन्मुख रहता है और जिन संसारी लोगों के स्वामी देवादिक सर्वज्ञ न होने के कारण सदा सचेत नहीं रह सकते, तो उनके सेवक संसारी जन भी ज्ञानरूप चेतना से रहित होने के कारण अपनी वर्तमान अवस्था से भी बारंबार नीचे गिर कर चौरासी में पड़ते हैं।

दादू सांई सावधान, हम ही भये अचेत ।
प्राणी राख न जानहीं, तातैं निर्फल खेत ॥ १३ ॥

हम सबका वास्तविक स्वामी परमात्मा तो हमारे कर्मों के अनुसार फल देने के लिये सदा सावधान ही है, किन्तु हम प्राणधारी जीव ही असावधान हो रहे हैं, जो अपने काया-खेत के दैवी-गुण भक्ति-ज्ञानादि रूप सत्य की रक्षा नहीं कर पाते। इसीलिये कामादि पशुओं द्वारा वह नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है और हमें ब्रह्म-स्वरूप फल की प्राप्ति नहीं होती।

सगुना निगुना कृतघ्नी

दादू गोविन्द के गुण बहुत हैं, कोइ न जाने जीव।
अपनी बूझे आप गति, जे कुछ कीया पीव ॥ १४ ॥

इति कस्तूरिया मृग का अंग समाप्त ॥ ३१ ॥ सा. २३५७ ॥

अनन्त गुण युक्त ईश्वर और दैवीगुण रहित कृतघ्नी जीवों का परिचय दे रहे हैं—वेद-वाणी के प्राप्त होने योग्य भगवान् के जीवों पर किये गये उपकार रूप गुण बहुत हैं किन्तु भक्ति विचारादि गुणों से रहित कोई भी जीव उनको नहीं जानता। अत: उस परमात्मा ने जो कुछ भी किया है, उस रचना रूप अपनी गति को वह आप ही समझता है, अन्य नहीं।

इति श्रीदादू गिरार्थ प्रकाशिका कस्तूरिया मृग का अंग समाप्त: ॥ ३१ ॥

अथ निन्दा का अंग ३२

''कस्तूरिया मृग काअंग'' के अनन्तर निन्दा सम्बन्धी विचार करने के लिए ''निन्दा का अंग'' कहने में प्रवृत्त हुये मंगल कर रहे हैं—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत: ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक एकात्म-भाव द्वारा निन्दा से पार होकर परब्रह्म को प्राप्त होता है, उन निरंजन राम, सद्गुरु और सर्व संतों को हम अनेक प्रणाम करते हैं।

मत्सर=ईर्ष्या

साधू निर्मल मल नहीं, राम रमै सम भाइ ।
दादू अवगुण काढ़ कर, जीव रसातल जाइ ॥ २ ॥

२-३ में ईर्ष्या का परिणाम बता रहे हैं—कामादि-मल से रहित संत समत्व-भाव से निरंजन राम का चिन्तन करते हुए आनंद लेते हैं, उनमें भी ईर्ष्यालु प्राणी दोष निकालकर उनकी निन्दा करने से स्वयं अधः पतन को प्राप्त होते हैं।

दादू जब ही साधु सताइये, तब ही ऊंध पलट ।
आकाश धसे, धरती खिसे, तीनों लोक गरक ॥ ३ ॥

ईर्ष्या द्वारा जब भी संत सताया जाता है, तब ही उसका परिणाम विपरीत निकलता है। सताने वाला आकाश में हो या पृथ्वी पर, उसका पतन ही होता है। संतों को सताने वाला तीनों लोकों में से किसी में भी क्यों न हो, वह तो नष्ट ही होगा।

निंदा

दादू जिहिं घर निन्दा साधु की, सो घर गये समूल ।
तिन की नींव न पाइये, नांव न ठाँव न धूल ॥ ४ ॥

४-८ में निन्दा के दोष और निन्दा न करने की प्रेरणा कर रहे हैं-जिन घरों में संतों की निन्दा होती रही है, वे घर सर्वथा नष्ट हो गये हैं। उनके नाम के साथ उनके स्थान की नींव और धूलि भी अब नहीं मिल रही है और उनका कोई भी चिन्ह शेष नहीं रहा है।

दादू निन्दा नाम न लीजिये, स्वप्ने ही जनि[1] होइ ।
ना हम कहैं, न तुम सुनो, हम जनि भाषै[2] कोइ ॥ ५ ॥

अनन्त गुण युक्त ईश्वर और दैवीगुण रहित कृतघ्नी जीवों का परिचय दे रहे हैं—वेद-वाणी के प्राप्त होने योग्य भगवान् के जीवों पर किये गये उपकार रूप गुण बहुत हैं किन्तु भक्ति विचारादि गुणों से रहित कोई भी जीव उनको नहीं जानता। अत: उस परमात्मा ने जो कुछ भी किया है, उस रचना रूप अपनी गति को वह आप ही समझता है, अन्य नहीं।

इति श्रीदादू गिरार्थ प्रकाशिका कस्तूरिया मृग का अंग समाप्त: ॥ ३१ ॥

अथ निन्दा का अंग ३२

''कस्तूरिया मृग काअंग'' के अनन्तर निन्दा सम्बन्धी विचार करने के लिए ''निन्दा का अंग'' कहने में प्रवृत्त हुये मंगल कर रहे हैं—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत: ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक एकात्म-भाव द्वारा निन्दा से पार होकर परब्रह्म को प्राप्त होता है, उन निरंजन राम, सद्गुरु और सर्व संतों को हम अनेक प्रणाम करते हैं।

मत्सर=ईर्ष्या

साधू निर्मल मल नहीं, राम रमै सम भाइ ।
दादू अवगुण काढ़ कर, जीव रसातल जाइ ॥ २ ॥

२-३ में ईर्ष्या का परिणाम बता रहे हैं—कामादि-मल से रहित संत समत्व-भाव से निरंजन राम का चिन्तन करते हुए आनंद लेते हैं, उनमें भी ईर्ष्यालु प्राणी दोष निकालकर उनकी निन्दा करने से स्वयं अधः पतन को प्राप्त होते हैं।

दादू जब ही साधु सताइये, तब ही ऊंध पलट ।
आकाश धसे, धरती खिसे, तीनों लोक गरक ॥ ३ ॥

ईर्ष्या द्वारा जब भी संत सताया जाता है, तब ही उसका परिणाम विपरीत निकलता है। सताने वाला आकाश में हो या पृथ्वी पर, उसका पतन ही होता है। संतों को सताने वाला तीनों लोकों में से किसी में भी क्यों न हो, वह तो नष्ट ही होगा।

निंदा

दादू जिहिं घर निन्दा साधु की, सो घर गये समूल ।
तिन की नींव न पाइये, नांव न ठाँव न धूल ॥ ४ ॥

४-८ में निन्दा के दोष और निन्दा न करने की प्रेरणा कर रहे हैं-जिन घरों में संतों की निन्दा होती रही है, वे घर सर्वथा नष्ट हो गये हैं। उनके नाम के साथ उनके स्थान की नींव और धूलि भी अब नहीं मिल रही है और उनका कोई भी चिन्ह शेष नहीं रहा है।

दादू निन्दा नाम न लीजिये, स्वप्ने ही जनि[1] होइ ।
ना हम कहैं, न तुम सुनो, हम जनि भाषै[2] कोइ ॥ ५ ॥

हे साधको ! निन्दा का तो नाम भी मत लो, निन्दा तो स्वप्न में भी किसी की नहीं[१] होनी चाहिए। हम तो कभी भी किसी की निन्दा नहीं करते, तुम भी मत सुना करो और हमें भी कोई आकर दूसरे की निंदा बोलकर[२] न सुनावे।

दादू निन्दा किये नरक है, कीट पड़ैं मुख मांहिं।
राम विमुख जामैं मरैं, भग–मुख आवैं जांहिं ॥ ६ ॥

निन्दा करने से नरक मिलता है और नरक कुण्ड में पड़ने पर मुख में कीट प्रविष्ट होते हैं वा घोर निन्दा करने से मुख में भी कीड़े पड़ जाते हैं। राम से विमुख होने से निन्दक बारम्बार योनि-मुख में आकर जन्मता है और मर कर चौरासी लक्ष योनियों में जाता है।

दादू निन्दक बपुरा जनि मरे, पर उपकारी सोइ ।
हम को करता ऊजला, आपण मैला होइ ॥ ७ ॥

बेचारे निंदक की मृत्यु नहीं होनी चाहिए, क्योंकि वह निंदा द्वारा हमको तो पवित्र करता है और आप निन्दा-जन्य पाप से मलीन हो रहा है, अत: वह तो परोपकारी है।

दादू जिहिं विधि आतम उद्धरे, परसे[१] प्रीतम प्राण।
साधु शब्द को निन्दणा, समझैं चतुर सुजाण ॥ ८ ॥

संत-शब्दों के जिस विधि विधान से जीवात्मा संसार से पार होकर प्रियतम परमात्मा को प्राप्त[१] होता है, उन संत-शब्दों की निंदा करने से कितनी हानि होती है, उसको श्रेष्ठ बुद्धि वाले चतुर मानव ही समझते हैं। अतः संतों की वाणी की निंदा नहीं करनी चाहिये।

मत्सर=ईर्ष्या

अनदेख्या अनरथ कहैं, कलि पृथ्वी का पाप ।
धरती अम्बर जब लगैं, तब लग करैं कलाप[१] ॥ ९ ॥

९-११ में ईर्ष्या द्वारा मिथ्या दोष लगाने वालों का परिचय दे रहे हैं—जो स्वयं बिना देखे ही दूसरों को दोषी ठहराने के लिए अनिष्ट बातें कहते हैं, वे इस कलियुग में पृथ्वी के पापों को ही संग्रह कर रहे हैं और जब तक पृथ्वी आकाश रहेंगे, तब तक उन पापों के फल दु:ख-समूह को भोगते हुये विलाप[१] करते रहेंगे।

अनदेख्या अनरथ कहैं, अपराधी संसार ।
जद[१] तद[२] लेखा लेइगा, समर्थ सिरजनहार ॥ १० ॥

संसार के अपराधी प्राणी स्वयं बिना देखे ही मिथ्या बुरी बातें कह कर सरल स्वभाव वाले सज्जनों को दोषी ठहराते हैं किन्तु जब[१] तब[२] कभी तो सृष्टिकर्त्ता समर्थ परमात्मा उनके इन निन्दाकृत पापों का हिसाब उनसे लेंगे ही और दंड भी देंगे ही।

दादू डरिये लोक तैं, कैसी धरहिं उठाइ ।
अनदेखी अजगैब[१] की, ऐसी कहैं बनाइ ॥ ११ ॥

स्वयं द्वारा बिना देखी, सर्वथा अज्ञात[१], कैसी मिथ्या बात उठाकर अपने हृदय में धर लेते हैं और ऐसी रीति से बना कर कहते हैं, जिससे दूसरों को क्लेश हो। अत: ऐसे लोगों से डरकर बचते ही रहना चाहिए।

अमिट पाप प्रचंड

दादू अमृत को विष, विष को अमृत, फेरि धरैं सब नाम ।
निर्मल मैला, मैला निर्मल, जाहिंगे किस ठाम ॥ १२ ॥

ईर्ष्यालु जनों के प्रचंड अमिट पाप का परिचय दे रहे हैं—ज्ञानामृत को तो यह कहकर कि यह तो जन्माभाव के द्वारा अपने अस्तित्व को ही नष्ट करता है इसलिए विष है, और जो मारक विष हैं, उनके अधरामृत आदि नाम रख लिये हैं। जो भगवान् के निर्मल भक्त हैं, उन्हें ईर्ष्या द्वारा मलीन, और जो विषय-वासनाओं से मलीन हृदय हैं, उन्हें निर्मल कहते हैं। इसी प्रकार ईर्ष्यालु मानवों ने मदिरादि सभी मलीन वस्तुओं के 'सुरा' जैसे नाम बदल कर इच्छानुसार रख लिये हैं। किन्तु इस प्रचंड अमिट पाप के द्वारा पतित होकर ये नरक के किस स्थान में जायेंगे ? अर्थात् अवश्य कुंभी-पाकादि घोर नरक में ही जायेंगे।

मत्सर-ईर्ष्या

दादू साचे को झूठा कहैं, झूठे को साचा ।
राम दुहाई काढिये, कंठ तैं वाचा ॥ १३ ॥

१३-१६ में ईर्ष्यालुओं का परिचय दे रहे हैं—ईर्ष्यालु लोग ईर्ष्यावश कंठ से राम की शपथ रूप वचन निकाल कर के भी सच्चे को झूठा और झूठे को सच्चा कह देते हैं।

झूठ न कहिये साँच को, साँच न कहिये झूठ ।
दादू साहिब माने नहीं, लागे पाप अखूट[१] ॥ १४ ॥

झूठ को सत्य और सत्य को झूठा नहीं कहना चाहिए। इस विपरीत कथन को भगवान् अच्छा नहीं मानते और कहने वाले को अक्षय[१] पाप लगता है।

दादू झूठ दिखावै साँच को, भयानक भयभीत ।
साँचा राता साँच सौं, झूठ न आनै चीत ॥ १५ ॥

ईर्ष्यालु लोग सत्य को मिथ्या करके दिखाते हैं-यदि उनकी बात कोई नहीं माने तो वे भयानक परिणाम दिखा कर उसे भयभीत करते हैं, किन्तु फिर भी सच्चा व्यक्ति तो सत्य में ही अनुरक्त रहता है। वह उनके भय से अपने चित्त में मिथ्या को नहीं लाता।

साँचे को झूठा कहै, झूठा साँच समान ।
दादू अचरज देखिया, यहु लोगों का ज्ञान ॥ १६ ॥

सच्चे को तो झूठा कहते हैं और झूठे को सच्चे के समान समझते हैं, संसार में यह बड़ा ही आश्चर्य देखा गया है। ईर्ष्यालु लोगों का यही ज्ञान है।

निन्दा

दादू ज्यों ज्यों निन्दै लोग विचारा, त्यों त्यों छीजै रोग हमारा ॥ १७ ॥

इति निन्दा का अंग समाप्त ॥ ३२ ॥ सा. २३७४ ॥

सारग्राहक दृष्टि से निन्दा को उपकार बता रहे हैं—जैसे-जैसे साधक-संतों की लोग निन्दा करते हैं, वैसे-वैसे ही उनका साधन-प्रमाद-रोग घट कर ईश्वर में दृढ़-विश्वास रूप निरोगता बढ़ती जाती है।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका निन्दा का अंग समाप्त : ॥ ३२ ॥

अथ निगुणा का अंग ३३

निन्दा-अंग के अनन्तर कृतघ्नी संबंधी विचार करने के लिए ''निगुणा का अंग'' निरूपण करने में प्रवृत्त हुये मंगल कर रहे हैं।

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत: ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से प्राणी कृतघ्नता से पार होकर, कृतज्ञता पूर्वक भक्तिज्ञानादि द्वारा परब्रह्म को प्राप्त होता है, उन निरंजन राम, सद्गुरु और सर्व संतों को हम अनेक प्रणाम करते हैं।

सगुणा निगुणा कृतघ्नी

दादू चंदन बावना, बसे बटाऊ आइ ।
सुखदाई शीतल किये, तीन्यों ताप नशाइ ॥ २ ॥

२-३ में सुगुणी और सुगुण रहित कृतघ्नी का परिचय दे रहे हैं—जैसे सबसे श्रेष्ठ बावना चंदन अपने नीचे आकर बैठने वाले पथिक के, सुखप्रद सुगंधित शीतल छाया से (१) आतप जन्य, (२) दुर्गन्ध जन्य और (३) मार्ग जन्य तीनों दु:खों को नष्ट करता है, वैसे ही भक्ति-ज्ञानादि गुण-युक्त संत के पास, प्रभु-पथ का पथिक जिज्ञासु जाता है तो संत परम सुखप्रद ज्ञानयुक्त भक्ति प्रदान करके उसके १ दैहिक २ भौतिक और ३ दैविक, तीनों तापों को नष्ट करते हैं।

काल कुहाड़ा हाथ ले, काटन लागा ढाइ ।
ऐसा यहु संसार है, डाल मूल ले जाइ ॥ ३ ॥

२ में कथित उपकारक चन्दन के नीचे यदि कोई कृतघ्नी आकर बैठ जाय तो उसके उपकार को न मान कर द्रव्य के लोभ से कुल्हाड़ा लेकर उसे काटने लगता है और उसे गिराकर, डाल- मूलादि सभी को बेच देता है। वैसे ही संसार में ये कृतघ्नी प्राणी संतों के पास जाकर समय रूप कुल्हाड़े के द्वारा उनके मूल-ज्ञान और युक्ति आदि डालों के सहित सब शिक्षा छीन लाता है, फिर उनकी निन्दा करते हुये उक्त ज्ञान जनता को सुना कर अपने इन्द्रिय-पोषण के लिये धनराशि संग्रह करके विलासी बन जाता है।

निन्दा

दादू ज्यों ज्यों निन्दै लोग विचारा, त्यों त्यों छीजै रोग हमारा ॥ १७ ॥

इति निन्दा का अंग समाप्त ॥ ३२ ॥ सा. २३७४ ॥

सारग्राहक दृष्टि से निन्दा को उपकार बता रहे हैं—जैसे-जैसे साधक-संतों की लोग निन्दा करते हैं, वैसे-वैसे ही उनका साधन-प्रमाद-रोग घट कर ईश्वर में दृढ़-विश्वास रूप निरोगता बढ़ती जाती है।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका निन्दा का अंग समाप्त : ॥ ३२ ॥

अथ निगुणा का अंग ३३

निन्दा-अंग के अनन्तर कृतघ्नी संबंधी विचार करने के लिए ''निगुणा का अंग'' निरूपण करने में प्रवृत्त हुये मंगल कर रहे हैं।

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत: ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से प्राणी कृतघ्नता से पार होकर, कृतज्ञता पूर्वक भक्तिज्ञानादि द्वारा परब्रह्म को प्राप्त होता है, उन निरंजन राम, सद्गुरु और सर्व संतों को हम अनेक प्रणाम करते हैं।

सगुणा निगुणा कृतघ्नी

दादू चंदन बावना, बसे बटाऊ आइ ।
सुखदाई शीतल किये, तीन्यों ताप नशाइ ॥ २ ॥

२-३ में सुगुणी और सुगुण रहित कृतघ्नी का परिचय दे रहे हैं—जैसे सबसे श्रेष्ठ बावना चंदन अपने नीचे आकर बैठने वाले पथिक के, सुखप्रद सुगंधित शीतल छाया से (१) आतप जन्य, (२) दुर्गन्ध जन्य और (३) मार्ग जन्य तीनों दु:खों को नष्ट करता है, वैसे ही भक्ति-ज्ञानादि गुण-युक्त संत के पास, प्रभु-पथ का पथिक जिज्ञासु जाता है तो संत परम सुखप्रद ज्ञानयुक्त भक्ति प्रदान करके उसके १ दैहिक २ भौतिक और ३ दैविक, तीनों तापों को नष्ट करते हैं।

काल कुहाड़ा हाथ ले, काटन लागा ढाइ ।
ऐसा यहु संसार है, डाल मूल ले जाइ ॥ ३ ॥

२ में कथित उपकारक चन्दन के नीचे यदि कोई कृतघ्नी आकर बैठ जाय तो उसके उपकार को न मान कर द्रव्य के लोभ से कुल्हाड़ा लेकर उसे काटने लगता है और उसे गिराकर, डाल- मूलादि सभी को बेच देता है। वैसे ही संसार में ये कृतघ्नी प्राणी संतों के पास जाकर समय रूप कुल्हाड़े के द्वारा उनके मूल-ज्ञान और युक्ति आदि डालों के सहित सब शिक्षा छीन लाता है, फिर उनकी निन्दा करते हुये उक्त ज्ञान जनता को सुना कर अपने इन्द्रिय-पोषण के लिये धनराशि संग्रह करके विलासी बन जाता है।

अज्ञ स्वभाव अपलट

सद्‌गुरु चन्दन बावना, लागे रहैं भुवंग ।
दादू विष छाड़ै नहीं, कहा करै सत्संग ॥ ४ ॥

४-१० में कहते हैं—अज्ञानी कृतघ्न का स्वभाव नहीं बदलता, जैसे सर्प विष-शांति के लिए बावने चन्दन पर लिपटे तो रहते हैं किन्तु अपने दोष विष को नहीं छोड़ते, वैसे ही अज्ञानी कृतघ्नी प्राणी संतों के पास तो रहते हैं किन्तु अपने दोषों को नहीं छोड़ते। तब सत्संग उनका क्या भला करेगा ?

दादू कीड़ा नरक[१] का, राख्या चन्दन मांहिं ।
उलट अपूठा नरक में, चन्दन भावै नांहिं ॥ ५ ॥

जैसे मल[१] कीट को चन्दन में रख दें तो उसे चंदन अच्छा नहीं लगता, वह पुन: लौटकर मल में ही जायेगा। वैसे ही अज्ञानी कृतघ्नी को भक्ति ज्ञानादि अच्छे नहीं लगते, उनका उपदेश करने पर भी उन्हें छोड़ कर विषयों में ही जायगा।

सद्‌गुरु साधु सुजान है, शिष का गुण नहिं जाइ।
दादू अमृत छाड़ कर, विषय हलाहल खाइ ॥ ६ ॥

सद्गुरु तो अच्छे ज्ञानी और श्रेष्ठ स्वभाव के हैं किन्तु शिष्य का कृतघ्नता-दोष रूप गुण हृदय से नहीं दूर होता। वह ज्ञानामृत को छोड़कर विषय रूप महा-विष ही खाता है। अत: अज्ञानी कृतघ्नी का स्वभाव नहीं बदलता।

कोटि वर्ष लौं राखिये, बंसा चंदन पास ।
दादू गुण लीये रहै, कदे न लागै बास ॥ ७ ॥

कोटि वर्ष तक बांस को चंदन के पास रखने पर भी वह अपने बांसपने के गुण को ही लिये रहता है, चन्दन की सुगन्ध उसमें नहीं प्रविष्ट होती। वैसे ही अज्ञानी कृतघ्न को चाहे दीर्घकाल तक संत के पास रक्खो तो भी वह अपने कृतघ्नता रूप दोष को नहीं त्यागता और न भक्ति-ज्ञानादि को धारण करता है।

कोटि वर्ष लौं राखिये, पत्थर पानी मांहिं ।
दादू आडा अंग है, भीतर भेदै नांहिं ॥ ८ ॥

कोटि वर्ष तक पत्थर को जल में रक्खो तो भी उसके कठोरता रूप लक्षण की आड़ होने से जल उसमें प्रविष्ट होकर उसे नर्म नहीं कर सकता। वैसे ही अज्ञानी कृतघ्न को दीर्घकाल तक संत के पास रक्खो तो भी उसके कृतघ्नता रूप लक्षण की आड़ होने से संत वचन उसके भीतर के अज्ञान को नहीं काट सकते।

कोटि वर्ष लौं राखिये, लोहा पारस संग ।
दादू रोम का अंतरा[१], पलटे नांहीं अंग ॥ ९ ॥

एक बाल जितनी दूरी[१] बीच में रखकर कोटि वर्ष तक लोहे को पारस के पास रक्खो तो भी

लोहा सुवर्ण नहीं हो सकेगा। वैसे ही किंचित् भी कृतघ्नता रूप दोष रहने पर संत के संग से कृतघ्न व्यक्ति भक्त नहीं हो सकता।

कोटि वर्ष लौं राखिये, जीव ब्रह्म सँग दोइ।
दादू मांहीं वासना, कदे न मेला होइ॥ १०॥

ब्रह्म रूप संत और कृतघ्नी जीव को चाहे कोटि वर्ष तक साथ रखो, तो भी कृतघ्नी के भीतर भोग-वासना रहने से उसे कभी भी ब्रह्म प्राप्ति नहीं हो सकती।

सगुणा निगुणा कृतघ्नी

मूसा जलता देखकर, दादू हंस दयाल।
मानसरोवर ले चल्या, पंखाँ काटे काल॥ ११॥

११-१३ में सुगुणी और दैवी गुण रहित कृतघ्नी का परिचय दे रहे हैं—एक चूहा अग्नि के घेरे में आकर जलने वाला ही था कि एक दयालु हंस ने उसे वहां से उठाकर अपनी पीठ पर रखा और मानसरोवर को चल दिया, किन्तु कृतघ्नी चूहे ने उसी के पंख काटना आरंभ कर दिया। ऐसे ही दयालु संत त्रिताप से जलते हुये जीव को उपदेश द्वारा उठा कर भगवान् की ओर ले जाते हैं, तब वह कृतघ्नी जीव उन्हीं के उपदेश का खंडन करने लगता है।

सब जीव भुवंगम कूप में, साधू काढ़े आइ।
दादू विषहरि विष भरे, फिर ताही को खाइ॥ १२॥

जैसे कूप में पड़े हुये सर्प को कोई भला मानव निकालता है तो वह उसे ही खाने को तैयार होता है। वैसे ही सभी कृतघ्नी संसारी जीव विषय-वासना रूप विष से भरे हुये संसार-कूप में पड़े हैं, उन्हें संत उपदेश द्वारा निकालने का उद्योग करते हैं तो वे उलटे उन्हें ही व्यथित करने में प्रवृत्त होते हैं।

दादू दूध पिलाइये, विषहरि[1] विष कर लेइ।
गुण का अवगुण कर लिया, ताही को दुख देइ॥ १३॥

जैसे सर्प[1] को दूध पिलाने पर वह दूध उसमें विष बनकर उसी को जलाता है, वैसे ही कृतघ्न को उपदेश देने पर वह गुण रूप उपदेश भी उसमें दूसरों को जाल में फँसाने का साधन बनकर पाप द्वारा उसे दु:ख ही देता है।

अज्ञ स्वभाव अपलट

बिन ही पावक जल मुवा, जवासा जल मांहिं।
दादू सूखे सींचताँ, तो जल को दूषण नांहिं॥ १४॥

अज्ञानी कृतघ्न का स्वभाव नहीं बदलता, यह कह रहे हैं—जैसे जवासा बादल द्वारा जल सींचते रहने पर भी बिना अग्नि ही सूख कर जल मरता है, तब जल को क्या दोष है ? वैसे ही संतों के द्वारा सुन्दर उपदेश देते रहने पर भी कृतघ्न पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता और वह दुष्कर्म करने के अपने स्वभाव से ही दुखी हो, तब उपदेश को क्या दोष है ?

सगुणा, निगुणा कृतघ्नी

सुफल वृक्ष परमार्थी,सुख देवे फल फूल ।
दादू ऊपर बैस कर, निगुणा काटे मूल ॥ १५ ॥

१५-२८ में सुगुणी कृतज्ञ और दुर्गुणी कृतघ्न सम्बन्धी विचार कह रहे हैं—ज्ञान, भक्ति आदि सुन्दर फल-फूलों वाला परमार्थी संत-वृक्ष ज्ञान-भक्ति आदि फल-फूल प्रदान करके सभी को सुख ही देता है, किन्तु कृतघ्न उसी पर बैठकर अर्थात् संत-वृक्ष के आश्रय निर्वाह करता हुआ भी निन्दादि-कुल्हाड़े से उन्हीं की जड़ काटता है और उससे होने वाली अपनी हानि को नहीं समझता ।

दादू सगुणा गुण करे, निगुणा माने नांहिं ।
निगुणा मर निष्फल गया, सगुणा साहिब मांहिं ॥ १६ ॥

सुन्दर गुण वाले संत तो सभी का उपकार ही करते हैं किन्तु गुण रहित कृतघ्न उनके उपकार रूप गुण को नहीं मानता। अत: वह ज्ञान-फल के प्राप्त हुये बिना ही मर कर अन्य शरीर को धारण करने जाता है और ज्ञान-भक्ति आदि सुन्दर गुणों से युक्त संत ब्रह्म में लय होता है।

निगुणा गुण माने नहीं, कोटि करे जे कोइ ।
दादू सब कुछ सौंपिये, सो फिर बैरी होइ ॥ १७ ॥

गुण न मानने वाले कृतघ्न के प्रति कोटि उपकार भी करें, तो भी वह गुण नहीं मानता। यदि उसे अपना सब कुछ भी समर्पण कर दें, तो भी वह आगे शत्रु ही बन जायेगा।

दादू सगुणा लीजिये, निगुणा दीजे डार ।
सगुणा सन्मुख राखिये, निगुणा नेह निवार ॥ १८ ॥

सुन्दर गुण युक्त कृतज्ञ को ही मित्र रूप से ग्रहण करना चाहिए और गुण न मानने वाले कृतघ्न को त्याग देना चाहिए। सुगुण युक्त कृतज्ञ को अपने पास सन्मुख ही रखना चाहिए और गुण न मानने वाले कृतघ्न से प्रेम हो, तो उससे प्रेम हटा लेना चाहिए।

सगुणा गुण केते करै, निगुणा न माने एक ।
दादू साधू सब कहैं, निगुणा नरक अनेक ॥ १९ ॥

सुगुण युक्त कृतज्ञ अपने पर किये उपकार को बहुत बढ़ाकर मानता है किन्तु सुगुण रहित कृतघ्न के कितने ही उपकार करो तो भी वह एक नहीं मानता। इसीलिए सब संत कहते हैं—कृतघ्न को अनेक नरक प्राप्त होते हैं अर्थात् वह अनेक वर्षों तक नरक में रहता है।

सगुणा गुण केते करै, निगुणा नाखे[1] ढाहि[2] ।
दादू साधू सब कहैं, निगुणा निष्फल जाइ ॥ २० ॥

सुगुण संपन्न मानव चाहे कितने ही उपकार करे, किन्तु कृतघ्न तो उन सब के अहसास को मिटाकर[2] रख[1] देता है, लेश भी नहीं मानता। इसीलिए सब संत कहते हैं कि कृतघ्न ज्ञान-फल प्राप्त किये बिना ही मर जाता है।

सगुणा गुण केते करै, निगुणा न माने कोइ ।
दादू साधू सब कहैं, भला कहां तैं होइ ॥ २१ ॥

सुगुण संपन्न पुरुष अनेक उपकार करता है किन्तु कृतघ्न किसी एक को भी नहीं मानता। इसीलिए सब संत कहते हैं—"कृतघ्न का भला किस प्रकार से हो सकता है ?"

सगुणा गुण केते करै, निगुणा न माने नीच ।
दादू साधू सब कहैं, निगुणा के शिर मीच[१] ॥ २२ ॥

सुन्दर गुण वाला कृतज्ञ पुरुष अनेक भलाई करे तो भी कृतघ्न अपने कृतघ्नता रूप नीच स्वभाव के कारण उनको नहीं मानता। इसीलिए सब संत कहते हैं—कृतघ्न के सिर पर तो सदा मौत[१] मँडराती रहती है अर्थात् वह बारंबार मरता ही रहेगा।

साहिबजी सब गुण करै, सद्गुरु के घट होइ ।
दादू काढ़ै काल मुख, निगुणा न माने कोइ ॥ २३ ॥

परमात्मा सद्गुरु के शरीर द्वारा जीवों को काल-मुख से बचाने का प्रयत्न करते हैं, किन्तु कृतघ्न जीव गुरु के उपदेश को मानते ही नहीं।

साहिबजी सब गुण करै, सद्गुरु मांहीं आइ ।
दादू राखै जीव दे, निगुणा मेटे जाइ ॥ २४ ॥

परमात्मा जीवों के कल्याण की भावना से सद्गुरु रूप में आकर सब प्रकार से उपकार करते हुए जीव के वास्तविक-स्वरूप का बोध प्रदान करके रक्षा करते हैं, किन्तु कृतघ्न विषयासक्ति के कारण उस ज्ञान का खंडन करता जाता है, मानता ही नहीं।

साहिबजी सब गुण करै, सद्गुरु का दे संग ।
दादू परलै[१] राखिले, निगुणा न पलटे अंग[१] ॥ २५ ॥

परमात्मा सद्गुरु का संग देकर ज्ञानोपदेश द्वारा जीवों को बारंबार विनाश[१] से बचाकर अपने स्वरूप में लय करते हैं, किन्तु सद्गुरु का ज्ञानोपदेश न मानकर कृतघ्न अपने कृतघ्नता आदि लक्षण[१] बदलता ही नहीं, तब उसका उद्धार कैसे हो ?

साहिबजी सब गुण करै, सद्गुरु आडा[१] देइ ।
दादू तारे देखतां, निगुणा गुण नहिं लेइ ॥ २६ ॥

परमात्मा सद्गुरु को बीच[१] में रखकर जीवों के लिए सब प्रकार से उपकार ही करते हैं और जीवन काल में ही देखते-देखते ज्ञान द्वारा उद्धार कर देते हैं, किन्तु कृतघ्न तो उनके ज्ञान-गुण को धारण करता ही नहीं, तब उसका उद्धार कैसे हो ?

सद्गुरु दीया रामधन, रहै सुबुद्धि बताइ ।
मनसा वाचा कर्मणा, बिलसे वितड़े खाइ ॥ २७ ॥

सद्गुरु ने सभी को रामस्वरूप सम्बन्धी ज्ञान-धन दिया है, किन्तु जो कृतज्ञ साधक अपनी श्रेष्ठ बुद्धि का परिचय देता है अर्थात् मनन द्वारा उसे स्मरण रखता है, उसी में वह ज्ञान-

धन रहता है और वही बुद्धि द्वारा विचार से उसका आनन्द लेता है। वाणी से उसे वितरण करता है और समता पूर्वक क्रिया द्वारा परम सुख का उपभोग करता है, अन्य कृतघ्न आदि को यह लाभ नहीं होता है।

कीया कृत मेटै नहीं, गुण हीं मांहिं समाइ ।
दादू बधै अनन्त धन, कबहूँ कदे न जाइ ॥ २८ ॥

इति निगुणा का अंग समाप्त: ॥ ३३ ॥ सा. २४०२ ॥

जो कृतज्ञ साधक अपने पर किये हुये सद्गुरु के ज्ञानोपदेश रूप उपकार को भूलता नहीं, उसमें अपने मन को लगा कर, परोपकारी बनकर स्वयं उपदेश करता है, तब उसके ज्ञान-धन की अपार वृद्धि होती है और कभी भी किसी भी अवस्था में वह ज्ञान-धन नष्ट नहीं होता।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका निगुणा का अंग समाप्त: ॥ ३३ ॥

अथ विनती का अंग ३४

निगुणा-अंग के अनन्तर भगवदनुग्रहार्थ भगवान् से विनय करने के लिए 'विनती का अंग' कहने में प्रवृत्त हुये मंगल कर रहे हैं—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत: ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से प्राणी भगवद् भक्ति युक्त हो भगवद् विनय द्वारा निर्दोष होकर परब्रह्म को प्राप्त होता है, उन निरंजन राम, सद्गुरु और सर्व संतों को हम अनेक प्रणाम करते हैं।

करुणा

दादू बहुत बुरा किया, तुम्हें न करना रोष ।
साहिब समाई का धनी, बन्दे को सब दोष ॥ २ ॥

२-१० में पूर्व-प्रमाद का खेद प्रकट करते हुये विनय कर रहे हैं—प्रभो ! प्राणी को स्वभावत: ही सब दोष आ घेरते हैं, उन दोषों के कारण हमने प्राय: अधिकतर बुरे ही कार्य किये हैं, किन्तु फिर भी आप तो क्षमा-धन के धनी हैं। अत: क्रोध न करके कृपा ही करेंगे।

साखी दो तथा विनती अंग की विशेष रचना आमेर-जयपुर के मध्य की घाटी में हुई थी। प्रसंग कथा=दृ. सु. सि. त. ९-१५२ में देखो।

दादू बुरा बुरा सब हम किया, सो मुख कह्या न जाइ ।
निर्मल मेरा सांइयाँ, ताको दोष न लाइ ॥ ३ ॥

अहो ! हमने तो सब बुरे ही बुरे कर्म किये हैं और वे इतने बुरे हैं कि—संकोचवश हम अपने मुख से उनका कथन भी नहीं कर सकते। अत: परमात्मा को यह दोष कभी नहीं लगाना चाहिए कि "वे दु:ख दे रहे हैं।" कारण, वे हमारे परमेश्वर तो परम निर्मल हैं, उनमें दोष कैसा ?

सांई सेवा चोर मैं, अपराधी बन्दा ।
दादू दूजा को नहीं, मुझ सरीषा[1] गन्दा ॥ ४ ॥

धन रहता है और वही बुद्धि द्वारा विचार से उसका आनन्द लेता है। वाणी से उसे वितरण करता है और समता पूर्वक क्रिया द्वारा परम सुख का उपभोग करता है, अन्य कृतघ्न आदि को यह लाभ नहीं होता है।

कीया कृत मेटै नहीं, गुण हीं मांहिं समाइ ।
दादू बधै अनन्त धन, कबहूँ कदे न जाइ ॥ २८ ॥

इति निगुणा का अंग समाप्त: ॥ ३३ ॥ सा. २४०२ ॥

जो कृतज्ञ साधक अपने पर किये हुये सद्गुरु के ज्ञानोपदेश रूप उपकार को भूलता नहीं, उसमें अपने मन को लगा कर, परोपकारी बनकर स्वयं उपदेश करता है, तब उसके ज्ञान-धन की अपार वृद्धि होती है और कभी भी किसी भी अवस्था में वह ज्ञान-धन नष्ट नहीं होता।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका निगुणा का अंग समाप्त: ॥ ३३ ॥

अथ विनती का अंग ३४

निगुणा-अंग के अनन्तर भगवदनुग्रहार्थ भगवान् से विनय करने के लिए 'विनती का अंग' कहने में प्रवृत्त हुये मंगल कर रहे हैं—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत: ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से प्राणी भगवद् भक्ति युक्त हो भगवद् विनय द्वारा निर्दोष होकर परब्रह्म को प्राप्त होता है, उन निरंजन राम, सद्गुरु और सर्व संतों को हम अनेक प्रणाम करते हैं।

करुणा

दादू बहुत बुरा किया, तुम्हें न करना रोष ।
साहिब समाई का धनी, बन्दे को सब दोष ॥ २ ॥

२-१० में पूर्व-प्रमाद का खेद प्रकट करते हुये विनय कर रहे हैं—प्रभो! प्राणी को स्वभावत: ही सब दोष आ घेरते हैं, उन दोषों के कारण हमने प्राय: अधिकतर बुरे ही कार्य किये हैं, किन्तु फिर भी आप तो क्षमा-धन के धनी हैं। अत: क्रोध न करके कृपा ही करेंगे।

साखी दो तथा विनती अंग की विशेष रचना आमेर-जयपुर के मध्य की घाटी में हुई थी। प्रसंग कथा=दृ. सु. सि. त. ९-१५२ में देखो।

दादू बुरा बुरा सब हम किया, सो मुख कह्या न जाइ ।
निर्मल मेरा सांइयाँ, ताको दोष न लाइ ॥ ३ ॥

अहो! हमने तो सब बुरे ही बुरे कर्म किये हैं और वे इतने बुरे हैं कि—संकोचवश हम अपने मुख से उनका कथन भी नहीं कर सकते। अत: परमात्मा को यह दोष कभी नहीं लगाना चाहिए कि "वे दु:ख दे रहे हैं।" कारण, वे हमारे परमेश्वर तो परम निर्मल हैं, उनमें दोष कैसा ?

सांई सेवा चोर मैं, अपराधी बन्दा ।
दादू दूजा को नहीं, मुझ सरीषा[1] गन्दा ॥ ४ ॥

अहो ! मैं भगवत् की आज्ञानुसार भक्ति नहीं कर रहा हूँ। अत: मेरे समान[१] मलिन और अपराधी दास अन्य कौन होगा ?

तिल तिल का अपराधी तेरा, रती रती का चोर ।
पल पल का मैं गुनही[१] तेरा, बख्शो[२] अवगुण मोर ॥ ५ ॥

हे प्रभो ! मैं तो एक-एक क्षण के संकल्प रूप कार्यों में भी निर्दोष नहीं रहने से आपका अपराधी हूँ और छोटे-छोटे कार्य भी आपकी आज्ञानुसार नहीं कर सकने से चोर हूं। यदि मैं अपने जीवन के समय की ओर देखता हूँ तो प्रत्येक पल में आपका अपराधी[१] ठहरता हूँ। मैं अपने पुरुषार्थ से आपके सन्मुख निर्दोष बन सकूं, ऐसी मुझे आशा नहीं है। अत: आप मेरे अवगुण क्षमा[२] करने की कृपा करें।

महा अपराधी एक मैं, सारे इहिँ संसार ।
अवगुण मेरे अति घणे, अंत न आवे पार ॥ ६ ॥

प्रभो ! इस संपूर्ण संसार में एक मैं ही महान् अपराधी हूँ। मेरे अवगुण तो इतने अत्यधिक हैं कि मैं अपने पुरुषार्थ से उनका अन्त करके उनके पार चला जाऊं, ऐसा संभव ज्ञात नहीं होता।

बे मरयादा[१] मित नहीं, ऐसे किये अपार ।
मैं अपराधी बापजी[२], मेरे तुमहीं एक आधार ॥ ७ ॥

जिन में लोक मर्यादा और वेद मर्यादा की सीमा[१] का निर्वाह नहीं होता, ऐसे अनन्त कार्य मैंने किये हैं। अत: मैं अपराधी तो हूँ ही, किन्तु हे पिताश्री[२] ! अब मैंने केवल आपका ही आश्रय लिया है। इससे मुझे आशा है-आप मेरा उद्धार करेंगे।

दोष अनेक कलंक सब, बहुत बुरा मुझ मांहिं ।
मैं कीये अपराध सब, तुम तैं छाना नांहिं ॥ ८ ॥

प्रभो ! मैंने अनेक अवगुण किये हैं, मुझ में सभी दोष हैं तथा और भी बहुत बुरापन है। अत: मैंने अपनी आयु में सब अपराध ही किये हैं। आप सर्वज्ञ होने से उन सबको जानते ही हैं।

गुनहगार[१] अपराधी तेरा, भाज कहां हम जांहिं ।
दादू देख्या शोध सब, तुम बिन कहिं न समाहिं ॥ ९ ॥

प्रभो ! हम पापी[१] होने से आपके अपराधी हैं, किन्तु अब आप से डर कर भागें तो जावें कहां ? कारण, आप सर्वव्यापक हैं, जहां हम जायेंगे वहां ही आप आगे मिलेंगे। अत: हमने तो सब प्रकार का विचार करके देख लिया है-आपके बिना हमारा आश्रय अन्य कोई नहीं हो सकता।

आदि अंत लौं आय कर, सुकृत कछू ना कीन्ह।
माया मोह मद मत्सरा, स्वाद सबै चित दीन्ह ॥ १० ॥

मैंने इस संसार में जन्म धारण करके जन्म से आज तक कुछ भी पुण्य कार्य नहीं किया,

प्रत्युत धनादि के मोह में, शरीरादि के गर्व में, प्रतिकूल व्यक्तियों से ईर्ष्या में और इन्द्रिय-विषय-जन्य आनन्द में ही अपना मन लगाया है।

विनती

काम क्रोध संशय सदा, कबहूँ नाम न लीन ।
पाखंड प्रपंच पाप में, दादू ऐसे खीन[१] ॥ ११ ॥

११-२० में विनय कर रहे हैं—मेरे अन्त:करण में सदा काम, क्रोध और नाना प्रकार के संशय भरे रहे, कभी भी मन से भगवान् का नाम नहीं लिया। बाहर के आडम्बर और वचन-चातुर्य रूप छल से पाप कार्यों में ही प्रवृत्त होता रहा। इसी प्रकार मेरी आयु क्षीण[१] हो गई।

दादू बहु बन्धन सौं बंधिया, एक विचारा जीव।
अपने बल छूटे नहीं, छोड़नहारा पीव ॥ १२ ॥

यह पराधीन अकेला जीव कर्म, विषयाशा, देहाध्यास, अज्ञानादि नाना बन्धनों से बँधा हुआ है। अपने उद्योग-बल से छूटना संभव नहीं। अत: उक्त बंधनों से मुक्त कराने वाले तो एक आप परमात्मा ही हैं।

दादू बन्दीवान है, तूं बंदि छोड़ दीवान[१] ।
अब जनि[४] राखो बंदि में, मीराँ[२] महरबान[३] ॥ १३ ॥

हे मेरे न्यायकारी[१] स्वामिन्[२] ! जीव कर्म-कैदखाने में कैदी बन रहे हैं और आप बद्ध को मुक्त करने वाले हैं। ऐसा शास्त्र और संतों से सुनते आ रहे हैं। अत: हे दयालो[३] ! अब हमें भव-बन्धन में मत[४] रखिये, हमारी अज्ञानबेड़ी काट कर हमें कर्म-कारागृह से मुक्त कर दीजिये।

दादू अंतर कालिमा, हिरदै बहुत विकार ।
परकट पूरा दूर कर, दादू करे पुकार ॥ १४ ॥

प्रभो ! मेरे हृदय में पाप और काम क्रोधादिक बहुत विकार स्थित हैं। अत: मेरी यही प्रार्थना है-आप मेरे हृदय में पूर्ण रूप से प्रकट होकर सब विकारों को दूर करें।

सब कुछ व्यापे रामजी, कुछ छूटा नांहीं ।
तुम तैं कहा छिपाइये, सब देखो मांहीं ॥ १५ ॥

रामजी ! हमारे अन्त:करणों में तो सर्व कामादिक विकार व्याप्त हो रहे हैं, कोई भी विकार छूटा हुआ नहीं है। यह हम सत्य ही कह रहे हैं, क्योंकि-आप तो हृदय में बैठे हुये संकल्प की सूक्ष्म अवस्था को भी जानते हैं। फिर आप से क्या छिपाया जा सकता है ?

सबल साल मन में रहै, राम बिसर क्यों जाइ ।
यहु दुख दादू क्यों सहै, सांई करो सहाइ ॥ १६ ॥

हे भगवन् ! मेरे मन में यह महान् दु:ख बना रहता है कि—इन कामादि विकारों के कारण, मैं किसी प्रकार राम को न भूल जाऊं। क्योंकि आपके विस्मरण से होने वाले खेद को मैं कैसे सह सकूंगा ? अत: मेरे कामादि विकारों को नष्ट करके मेरी सहायता करें।

राखणहारा राख तूं, यहु मन मेरा राखि ।
तुम बिन दूजा को नहीं, साधू बोलैं साखि ॥ १७ ॥

विश्व के रक्षक राम ! कामादि विकारों से मेरे मन की रक्षा कीजिये। इस कार्य को करने में सिवा आपके बिना अन्य कोई भी समर्थ नहीं है। ऐसा ही संत-जन कहते आ रहे हैं।

माया विषय विकार तैं, मेरा मन भागे ।
सोई कीजे सांइयाँ, तूं मीठा लागे ॥ १८ ॥

स्वामिन् ! ऐसी कृपा करिये-जिससे मेरा मन माया तथा विषय-विकारों से दूर भागे और उसे एक मात्र आपका चिन्तन ही मधुर लगे।

सांई दीजे सो रती[१], तूं मीठा लागे ।
दूजा खारा होइ सब, सूता जीव जागे ॥ १९ ॥

स्वामिन् ! आप मुझे अपनी वह प्रेमाभक्ति[१] दीजिये, जिसके द्वारा एक मात्र आप ही प्रिय लगें और आपसे भिन्न स्वर्गादि के सभी भोग अप्रिय लगने लगें तथा अज्ञान-निद्रा में प्रसुप्त जीवात्मा जग जाय।

ज्यों आपै देखे आपको, सो नैना दे मुझ ।
मीरां[१] मेरा मेहर[२] कर, दादू देखे तुझ ॥ २० ॥

मेरे स्वामिन्[१] ! जैसा सच्चिदानन्द आपका स्वरूप है, उसको हम वैसा का वैसा देख सकें, कृपा[२] करके ऐसे ही ज्ञान-नेत्र हमें प्रदान कीजिये। क्योंकि मैं निरंतर आपको ही देखना चाहता हूँ।

करुणा

दादू पछतावा रह्या, सके न ठाहर लाइ ।
अर्थ न आया राम के, यहु तन योंही जाइ ॥ २१ ॥

साधन प्रमाद का खेद दिखा रहे हैं—अहो ! हमें यह पश्चात्ताप ही रह गया कि—बुद्धि आदि के संघात रूप शरीर को राम की भक्ति रूप कार्य में लगाकर, अपने आत्मा को परमात्मा रूप निज धाम में नहीं पहुंचा सके। अत: यह मानव तन व्यर्थ ही जा रहा है।

विनती

दादू कहै–दिन दिन नवतम भक्ति दे, दिन दिन नवतम नांव ।
दिन दिन नवतम नेह दे, मैं बलिहारी जांव ॥ २२ ॥

२२-२३ में भक्ति आदि के लिए विनय कर रहे हैं—भगवन् ! मेरी प्रार्थना है-आप मुझे प्रतिदिन तरुण रहने वाली नवधा भक्ति; नये-नये नाम और नामी के अभेद को प्रतिदिन दृढ़ कराने वाले विचार; तथा प्रतिदिन बढ़ने वाली प्रेमाभक्ति; देकर मुझे अपनाइये। मैं आप की बलिहारी जाता हूँ।

सांई संशय दूर कर, कर शंका का नाश।
भान[२] भ्रम[२] दुविध्या दुख दारुण, समता सहज प्रकाश॥ २३॥

स्वामिन्! हमारे मन के प्रमाणगत और प्रमेयगत सब संशय दूर करें, अज्ञान[२] और दुविधा रूप भयंकर दु:खों को नाश[२] करके जन्मादिक भय अपहरण करें। तथा साम्य दृष्टि प्रदान कर हमारे अन्त:करण में अपने सहज निर्विकार स्वरूप का प्रकाश कर दें।

दया विनती

नांहीं परकट ह्वै रह्या, है सो रह्या लुकाइ[१]।
संइयाँ पड़दा दूर कर, तूं ह्वै परकट आइ॥ २४॥

२४-२९ में भगवद्-दया प्रदर्शन-पूर्वक दर्शनार्थ विनय कर रहे हैं—असत्य मायिक प्रपंच तो प्रत्यक्ष भास रहा है और जो सत्य स्वरूप ब्रह्म है, वह अज्ञान रूप पड़दे के नीचे छिप[१] रहा है। अत: हे स्वामिन्! अज्ञान-पड़दे को दूर करके हमारे अन्त:करण में प्रकट होकर आप हमें दर्शन देने की दया कीजिये।

दादू माया परकट ह्वै रही, यों जे होता राम।
अरस परस मिल खेलते, सब जिव सब ही ठाम॥ २५॥

जैसे मायिक प्रपंच प्रकट रूप से भास रहा है, वैसे ही यदि राम भासते, तो जिस प्रकार मायिक विषयों से सभी जीव आनन्दित होते हैं, उसी प्रकार सभी स्थानों में सभी प्राणी भगवान् से प्रत्यक्ष रूप में मिलकर अखंडानन्द प्राप्त कर सकते थे।

दया करै तब अंग लगावे, भक्ति अखंडित देवे।
दादू दर्शन आप अकेला, दूजा हरि[१] सब लेवे॥ २६॥

हरि[१] जब दया करते हैं तब अपने से भिन्न संपूर्ण मायिक विषय-वासनादि रूप द्वैत भक्त के हृदय से हटा[१] देते हैं और अपनी अखंड भक्ति प्रदान करके उसकी चित्त-वृत्ति को अपने स्वरूप में ही लगा लेते हैं, फिर अपने अद्वैत स्वरूप का साक्षात्कार करा देते हैं।

दादू साध सिखावैं आत्मा, सेवा दिढ़ कर लेहु।
पारब्रह्म सौं बीनती, दया कर दर्शन देहु॥ २७॥

संत-जन निरंतर शिक्षा दे रहे हैं—हे जीवात्मा! दृढ़ विश्वास पूर्वक भगवान् की अखंड भक्ति करके, उन परब्रह्म से दर्शन प्राप्त करने की प्रार्थना करेगा, तब वे अवश्य दया करके दर्शन दे देंगे।

साहिब साध दयालु हैं, हम ही अपराधी।
दादू जीव अभागिया, अविद्या[२] साधी[१]॥ २८॥

भगवान् और संत-जन तो परम दयालु हैं। संत-जन सदा हित की शिक्षा देते रहते हैं और भगवान् निष्कपट भाव से किंचित् प्रार्थना करने पर भी अनन्त जन्मों के पापों को भस्म कर डालते हैं। अत: हम मंदभागी जीव ही अपराधी हैं, कारण, हमने निरंतर असत्य माया[२] को प्राप्त करने की ही साधना[१] की है।

सब जीव तोरैं राम सौं, पै राम न तोरे।
दादू काचे ताग ज्यों, टूटे त्यों जोरे ॥ २९ ॥

संपूर्ण प्राणी अविद्यावश हो भगवान् से अपना प्रेम संबंध तोड़ रहे हैं अर्थात् भगवद्-भिन्न मायिक पदार्थों में आसक्त हो रहे हैं किन्तु भगवान् प्रेम संबंध को कभी भी नहीं तोड़ते। वे तो सूत कातने वाली माता के समान प्राणियों का शिथिल प्रेम-तन्तु ज्यों-ज्यों टूटता है त्यों-त्यों अपने उपदेश रूपी हाथों से उसे जोड़ते रहते हैं।

सजीवन

फूटा फेरि सँवार कर, ले पहुँचावे ओर[1]।
ऐसा कोई ना मिले, दादू गई बहोर[2] ॥ ३० ॥

३०-३१ में सजीवन ब्रह्म के साक्षात्कार कराने वाले महापुरुष के मिलन की इच्छा प्रकट कर रहे हैं—ऐसा कोई संत नहीं मिल रहा है-जो भगवान् से टूटे हुये हमारे प्रेम-संबंध को अपने उपदेश द्वारा पुन: जोड़ करके हमारे आदि स्वरूप परब्रह्म के पास[1] पहुँचा दे। इसी आशा में हमारी बहुत अवधि[2] रूप आयु चली गई और फिर[2] भी जा ही रही है।

ऐसा कोई ना मिले, तन फेरि सँवारे ।
बूढ़े तैं बाला करे, खै[1] काल निवारे ॥ ३१ ॥

कोई ऐसा महापुरुष नहीं मिल रहा है, जो व्यर्थ चेष्टा से दूषित स्थूल शरीर को अविहित विषय-प्रवृत्ति से, कुलषित इन्द्रियों को विषयासक्ति से, छिन्न भिन्न हुये मन को और नाना विचारों से विचलित हुई बुद्धि को पुन: भगवत्-परायणता रूप उत्तम गुण से सजा दे, अज्ञान रूप वृद्धावस्था को हटा दे व[1] ब्रह्म-साक्षात्कार रूप नित नूतन बाल्यावस्था की प्राप्ति करा कर काल के द्वारा होने वाली (खैक्षय) क्षीणता[1] को दूर कर दे।

परिचय करुणा विनती

गलै[1] विलै[2] कर बीनती, एकमेक अरदास ।
अरस परस करुणा करै, तब दरवै दादू दास ॥ ३२ ॥

३२-३३ में करुणा पूर्वक परिचयार्थ विनय की विशेषता बता रहे हैं—जब प्राणी परमात्मा का प्रत्यक्ष दर्शन करने के लिए व्यथित होता है और भगवत् प्रेम में चित्त को लय[1] और लीन[2] करके जन्मादि दु:ख निवृत्ति के लिए विनय करता है तथा परब्रह्म में अभेद होने के लिए प्रार्थना करता है, तब परमात्मा भक्त पर कृपा[3] करते हैं।

सांई तेरे डर डरूं, सदा रहूँ भयभीत ।
अजा[1] सिंह ज्यों भय घणा, दादू लीया जीत ॥ ३३ ॥

स्वामिन् ! जैसे बकरियों[1] को सिंह से भारी भय रहता है, वैसे ही मैं आपके डर से डरता हुआ अत्यंत भयभीत रहता हूँ। अत: इस भय के द्वारा ही मैंने अपने मन, बुद्धि और इन्द्रियों की चपलता पर विजय प्राप्त की है।

पोष प्रतिपाल रक्षक

दादू पलक मांहिं प्रकटे सही, जे जन करैं पुकार।
दीन दुखी तब देखकर, अति आतुर तिहिं बार॥ ३४॥

३४-३६ में प्रभु के भक्त-पोषक, प्रतिपालक और रक्षक विरुद का परिचय दे रहे हैं—जब भक्त अत्यन्त व्याकुल होकर भगवद् दर्शनार्थ प्रार्थना करता है तब उसे दीन दुखित देखकर भगवान् उसी समय एक क्षण में ही दर्शन द्वारा उसकी रक्षा करने के लिए अवश्य प्रकट हो जाते हैं।

आगे पीछे संग रहै, आप उठाये भार।
साधु दुखी तब हरि दुखी, ऐसा सिरजनहार॥ ३५॥

सृष्टि कर्त्ता परमेश्वर ऐसे परम दयालु हैं—अपने परम भक्त संतों के चारों ओर बसते हुये सदा संग ही रहते हैं। संत के दुखी होने पर हरि दुखी हो जाते हैं और संतों के योग-क्षेम का संपूर्ण कार्य-भार स्वयं ही उठाते रहते हैं।

सेवक की रक्षा करै, सेवक की प्रतिपाल।
सेवक की बाहर[१] चढ़ै, दादू दीन दयाल॥ ३६॥

श्री दीनदयालु भगवान् अपने भक्त की कामादि विकारों से रक्षा करते हैं, भोजनादि द्वारा पालन-पोषण करते हैं और दुष्टों से बचाने के लिए सदा मदद[१] चढ़ै=सहायक[१] होते रहते हैं।

विनती सागर तरण

दादू काया नाव समंद में, औघट[१] बूडे[२] आइ।
इहिँ अवसर एक अगाध[३] बिन, दादू कौन सहाइ॥ ३७॥

३७-४५ में संसार-सागर संतरणार्थ विनय कर रहे हैं—सूक्ष्म शरीर रूप हमारी नौका इस संसार समुद्र के विषय-वासनासक्ति रूप दुस्तर[१] स्थल में आकर डूब[२] रही है। इस महान् विपत्ति के समय, त्रिविधि भेद-शून्य अपार-शक्ति-परमात्मा[३] के बिना कौन सहायक हो सकता है ? अर्थात् प्राणी का संसार से उद्धार तो एक परमात्मा ही कर सकते हैं।

यहु तन भेरा[१] भवजला[२], क्यों कर लंघे तीर।
खेवट बिन कैसे तिरै, दादू गहर गंभीर॥ ३८॥

हमारा सूक्ष्म शरीर बाँसों के बँधे हुये बेड़े[१] के समान है। यह संसार-समुद्र[२] के विषय-वासना रूप अत्यंत घने और गंभीर जल से परमात्मा-केवट के बिना सुख से तैरता हुआ पार कैसे जा सकता है ?

पिंड परोहन[१] सिन्धु जल, भव-सागर संसार।
राम बिना सूझे नहीं, दादू खेवनहार॥ ३९॥

जैसे सिन्धु के जल से छोटी नौका[१] को चतुर केवट ही पार कर सकता है, वैसे ही संसार, समुद्र के जन्म-मरण रूप जल से हमारे सूक्ष्म-शरीर रूप लघु नौका को पार करने वाला भगवान् के बिना कोई भी दृष्टि नहीं आता।

यहु घट बोहित[1] धार में, दरिया वार न पार ।
भयभीत भयानक देखकर, दादू करी पुकार ॥ ४० ॥

जिस संसार रूप महानद का वार-पार ज्ञात नहीं होता, उसकी विषय-वासना रूप प्रबल धार में मेरी काया रूप विशाल नाव[1] पड़ गई है। उसकी भयानकता को देखकर मैं भयभीत हुआ पुकार रहा हूँ—हे भगवान् ! मुझे पार करिये।

कलियुग घोर अँधार है, तिसका वार न पार ।
दादू तुम बिन क्यों तिरै, समरथ सिरजनहार ॥ ४१ ॥

यह कलियुग का समय पाप रूप महान् अंधकार से परिपूर्ण है। इसका आदि-अंत भी नहीं ज्ञात होता। अत: हे समर्थ सृजनहार परमात्मा ! हम आपकी कृपा बिना इससे कैसे पार हो सकते हैं ?

काया के वश जीव है, कस-कस बंध्या मांहिं ।
दादू आत्मराम बिन, क्यों ही छूटै नांहिं ॥ ४२ ॥

यह जीवात्मा शरीर के अधीन होने से देहाध्यास रूप बन्धन से अत्यधिक खिंचकर बँधा हुआ है। अत: आत्माराम के अभेद ज्ञान बिना किसी भी प्रकार मुक्त नहीं हो सकता।

दादू प्राणी बंध्या पंच सौं, क्यों ही छूटै नांहिं ।
नीधणि[1] आया मारिये, यहु जिव काया मांहिं ॥ ४३ ॥

प्रभो ! यह प्राणी पंच विषयों की आसक्ति-बंधन से बँधा हुआ है, आप की कृपा के बिना अन्य किसी भी उपाय से मुक्त नहीं हो सकता। आप जैसे स्वामी के रहते हुये, यह जीवात्मा बारंबार शरीर में आकर स्वामी-हीन[1] वस्तु के समान काल के द्वारा आहत किया जा रहा है, अत: आपको रक्षा करनी चाहिए।

दादू कहै-तुम बिन धणी न धोरी जीव का, यों ही आवे जाइ ।
जे तूं सांई सत्य है, तो बेगा प्रकटहु आइ ॥ ४४ ॥

भगवन् ! जीव का स्वामी और जीव के शरीर-रथ के जीवन-धुर को धारण करने वाला आप से भिन्न कोई भी नहीं है। आपकी कृपा के बिना जीव वर्तमान समय के समान ही सृष्टि के आदि से अंत तक बारंबार जन्मता-मरता रहता है। अत: हे स्वामिन् ! यदि आप सत्य-स्वरूप और सच्चे रक्षक हैं, तो शीघ्र ही हमारे हृदय में आकर तथा प्रकट रूप से दर्शन देकर जन्मादि क्लेशों से हमारी रक्षा करिये।

नीधणि आया मारिये, धणी न धोरी कोइ ।
दादू सो क्यों मारिये, साहिब शिर पर होइ ॥ ४५ ॥

यह जीवात्मा स्वामी-रहित वस्तु के समान जन्म-जन्म कर काल के द्वारा मारा जाता है। क्योंकि इसने अपने रक्षक स्वामी परमात्मा को किसी प्रकार भी न अपनाया। जो सर्व-भाव से

भगवान् की शरण हो जाता है और जिसके शिर पर रक्षक ईश्वर है, वह काल के द्वारा किसी प्रकार भी नहीं मारा जा सकता।

दया विनती

राम विमुख युग युग दुखी, लख चौरासी जीव।
जामे[1] मरे जग आवटे, राखणहारा पीव ॥ ४६ ॥

रक्षार्थ दया करने की प्रार्थना कर रहे हैं—भगवान् से विमुख जीव प्रत्येक युग में संसार की चौरासी लक्ष योनियों में त्रिविध ताप से सन्तप्त रह कर, जन्मता-मरता हुआ परम दु:खी हो रहा है। अत: हे रक्षक प्रभो ! दया करके हमारी रक्षा करें।

पोष प्रतिपाल रक्षक

समरथ सिरजनहार है, जे कुछ करे सो होइ।
दादू सेवक राख ले, काल न लागे कोइ ॥ ४७ ॥

पोषक, प्रतिपालक, रक्षक ईश्वर की सामर्थ्य दिखा रहे हैं—सृजनहार परमात्मा सर्व समर्थ हैं, वे जो कुछ भी करना चाहते हैं, वह ही होता है। वे जिस सेवक की रक्षा कर लेते हैं उसके पीछे काल नहीं लग सकता।

विनती

सांई साँचा नाम दे, काल झाल मिट जाइ।
दादू निर्भय ह्वै रहै, कबहूँ काल न खाइ ॥ ४८ ॥

४८-५३ में रक्षार्थ विनय कर रहे हैं—हे स्वामिन् ! आप हमको अपने नाम का निष्कपट और निष्काम भाव युक्त स्मरण-साधन प्रदान कीजिये, जिससे कालाग्नि की कामादिक-ज्वालायें शांत हो जायें और हम आपके स्वरूप को प्राप्त करके निर्भय बन जायें। बस, इतनी कृपा कर दीजिये, फिर हमको कभी भी काल नष्ट नहीं कर सकेगा।

कोई नहिं करतार बिन, प्राण उधारणहार।
जियरा दुखिया राम बिन, दादू इहिं संसार ॥ ४९ ॥

भगवत्-साक्षात्कार के बिना इस संसार में प्राणी परम दु:खी है, कारण, जन्मादि दु:खों से प्राणी को मुक्त कराने वाला भगवान् के बिना अन्य कोई भी नहीं है।

जिनकी रक्षा तूं करे, ते उबरे करतार।
जे तैं छाड़े हाथ तैं, ते डूबे संसार ॥ ५० ॥

हे करतार ! जिन भक्तों की कामादिक विकारों से आप रक्षा करते हैं, वे जन्मादिक संसार से मुक्त हो जाते हैं और आपने जिनको त्याग दिया है, वे इस संसार-समुद्र में जन्म-मरणादिक रूप गोते लगा रहे हैं।

राखणहारा एक तूं, मारणहार अनेक।
दादू के दूजा नहीं, तूं आपै ही देख ॥ ५१ ॥

हे भगवन् ! सकाम कर्मों के करने की प्रेरणा द्वारा जन्म-मरणादि प्रवाह में पटकने वाले तो अनेक हैं, किन्तु जन्मादि-प्रवाह से बचाने वाले एक मात्र आप ही हैं। मेरे तो आपके बिना अन्य कोई भी आश्रय नहीं है। आप सर्वज्ञ हैं ही, अत: मेरे इस कथन की यथार्थता स्वयं ही देख लें।

दादू जग ज्वाला जम रूप है, साहिब राखणहार ।
तुम बिच अंतर जनि पड़े, तातैं करूं पुकार ॥ ५२ ॥

अहो ! काम-क्रोधादिक से परिपूर्ण ये सांसारिक प्राणी तो कालाग्नि की ज्वाला रूप होने से संतप्त करने वाले ही हैं, रक्षक तो एक मात्र भगवान् ही हैं। इसी कारण मैं बारंबार प्रार्थना करता हूं—हे भगवन् ! अब आप और मेरे मध्य में कोई सांसारिक अन्तराय नहीं पड़नी चाहिये।

जहँ तहँ विषय विकार तैं, तुम ही राखणहार ।
तन मन तुमको सौंपिया, साचा सिरजनहार ॥ ५३ ॥

हे भगवन् ! हमने अपना तन और मन आपके ही समर्पण कर दिया है। अत: अब जहां कहीं भी हमारी चित्त-वृत्ति विषय-विकारों में जाय तो आपको ही रक्षा करनी चाहिये, क्योंकि—यह वृत्ति आपकी ही है। हे सृजनहार ! सर्व प्रकार से हमारी रक्षा करके अपने भक्त रक्षक विरुद को सत्य कीजिये।

दया विनती

दादू कहै–गरक रसातल जात है, तुम बिन सब संसार ।
करगहि कर्ता काढि ले, दे अवलम्बन आधार ॥ ५४ ॥

५४-५९ में सबके उद्धारार्थ दया करने की प्रार्थना कर रहे हैं—हे भगवन् ! आपके आश्रय बिना संपूर्ण संसार के प्राणी पापों में निमग्न होकर नष्ट हो रहे हैं। अत: हे सृष्टिकर्ता परमेश्वर ! आपको अपने कृपा रूप हाथों से ग्रहण करके हमें निकाल लीजिये और अपनी अनन्य भक्ति का अवलम्बन देते हुये अपना आधार दीजिये।

दादू दौं[1] लागी जग परजलै, घट घट सब संसार ।
हम तैं कछू न होत है, तुम बरसि बुझावणहार ॥ ५५ ॥

इस संसार-वन के प्रत्येक शरीर-वृक्ष में विषय-चिन्तन रूप दावाग्नि[1] प्रज्वलित हो रही है। जैसे वनाग्नि बादलों के बरसे बिना अन्य उपाय से नहीं बुझती, वैसे ही विषय-चिन्तन रूप अग्नि के बुझाने का कार्य हम से कुछ भी नहीं हो सकेगा। केवल आप ही अपनी कृपा-वृष्टि द्वारा इसे बुझाने में समर्थ हैं, अत: इसे बुझाकर हमारी रक्षा कीजिये।

दादू आत्म जीव अनाथ सब, करतार उबारे ।
राम निहोरा[1] कीजिये, जनि[2] काहू मारे ॥ ५६ ॥

यह जीवात्मा सभी प्रकार से असहाय है, केवल भगवान् ही इसे संसार दु:खों से मुक्त कर सकते हैं। अत: हे राम ! हम आपसे प्रार्थना करते हैं—आप ऐसी कृपा-दृष्टि[1] करें जिससे अब हमें कामादि नहीं[2] मार सकें।

अर्श[२] जमीं औजूद में, तहां तपे अफताब[१] ।
सब जग जलता देखकर, दादू पुकारे साध ॥ ५७ ॥

जैसे सूर्य[१] से पृथ्वी और आकाश[२] के प्राणी तपते हैं, वैसे ही संपूर्ण संसार के शरीरों को त्रिविध ताप से संतप्त देखकर संत-जन प्रार्थना करते हैं।

सकल भुवन सब आत्मा, निर्विष कर हरि लेइ ।
पड़दा है सो दूर कर, कश्मल[१] रहण न देइ ॥ ५८ ॥

हे हरे ! संपूर्ण भुवनों के सभी जीवात्माओं को विषय-विष से रहित करके पाप[१] रहित कर लीजिये और जो अविद्या रूप पड़दा है, उसे दूर करके अपने दर्शन देने की कृपा कीजिये।

तन मन निर्मल आत्मा, सब काहू की होइ ।
दादू विषय विकार की, बात न बूझे कोइ ॥ ५९ ॥

सभी प्राणियों के तन, मन और बुद्धि इतने निर्मल हो जायँ कि कोई भी विषय-विकार सम्बन्धी बात न तो पूछे और न समझने का प्रयत्न ही करे। (सर्वे भवन्तु सुखिनः …….।)

विनती

समर्थ धोरी ! कंध धर, रथ ले ओर निवाहि ।
मारग मांहि न मेलिये, पीछे बिड़द लजाहि ॥ ६० ॥

६०-६५ में सदा अपनाये रखने के लिये प्रभु को विनय कर रहे हैं—मेरे जीवन-रथ को धारण करने वाले समर्थ धोरी प्रभो ! आप इस रथ को कृपा-कंधे पर लेकर अंत तक निभा दीजिये=मुझे अपने स्वरूप से मिला दीजिये, मार्ग में कभी न त्यागिये। यदि त्याग देंगे तो पीछे आपका मुक्ति-प्रदाता विरुद लज्जित होगा।

दादू गगन गिरै तब को धरे, धरती-धर[१] छंडै ।
जे तुम छाड़हु राम रथ, कंधा को मंडै ॥ ६१ ॥

यदि स्तम्भहीन आसमान टूटकर गिर पड़े तो कौन-सा बली स्तम्भ उसे अधर धारण कर सकता है ओर यदि इस अतुल वर्तुल धरा को निष्पाद सहस्रफणी शेषनाग[१] धारण करना छोड़ दे तो इसे धरती को धारण करने में कौन शूर समर्थ होगा ? अथवा आकाश से जो पदार्थ गिरता है उसे पृथ्वी धारण करती है। यदि वह धैर्य पूर्वक उसे धारण न करे तो कौन करेगा ? अर्थात् कोई नहीं। वैसे ही हे राम ! यदि आप मेरे जीवन-रथ को अपने स्वरूप तक न पहुँचा कर मार्ग में ही त्याग देंगे तो फिर उसके नीचे कंधा लगा कर कौन सहारा देगा ? अत: आप मुझ पतित को अपनी शरण लेकर मेरा उद्धार करने की कृपा अवश्य करिये।

अंतरयामी एक तूं, आतम के आधार ।
जे तुम छाड़हु हाथ तैं, तो कौन संबाहनहार[१] ॥ ६२ ॥

हे अन्तर्यामी प्रभो ! हम जीवात्माओं के आश्रय तो एक मात्र आपही हैं। यदि आप हमें अपने अनुग्रह-हाथ से त्याग देंगे तो फिर इस संसार में हमें आपके स्वरूप तक पहुँचाने वाला[१], कौन है ? अत: आप सदैव कृपा ही करते रहें।

तेरा सेवक तुम लगै, तुमहीं माथे भार ।
दादू डूबत रामजी, बेगि उतारो पार ॥ ६३ ॥

हे रामजी ! आपका भक्त प्रार्थनादि सभी साधन आपकी प्राप्ति के लिए ही करता है और उसके उद्धार का भार भी आप पर ही रहता है। अत: संसार-समुद्र के विषय-जल में गोते लगाते हुये हमको शीघ्र ही इससे पार करके अपने स्वरूप में स्थित कीजिये।

सत छूटा शूरातन गया, बल पौरुष भागा जाइ।
कोई धीरज ना धरै, काल पहूँचा आइ ॥ ६४ ॥

अहो ! सत्य स्वरूप परमात्मा का शाश्वत चिन्तन नहीं हो रहा है। साधन करने का उत्साह रूप शौर्य भी हृदय से चला गया है। शारीरिक-शक्ति और मनोबल भी न्यून होता जा रहा है। बुद्धि-इन्द्रियादिक सभी अधीर हो गये हैं और इधर देहपात का समय भी आ पहुँचा है। अत: हे प्रभो ! ऐसी अवस्था में आप ही रक्षा कर सकते हैं।

संगी थाके संग के, मेरा कुछ न बशाइ ।
भाव भक्ति धन लूटिये, दादू दुखी खुदाइ ॥ ६५ ॥

साधना में साथ देने वाले-बुद्धि, मन और इन्द्रियादिक मेरे संगी भी शिथिल हो चले हैं। बुद्धि आदि के सावधान नहीं रहने से कामादिक-विकार रूप डाकू भाव-भक्ति रूप धन को लूट रहे हैं। उन्हें हटाने में मैं असमर्थ होकर दुःखी हो रहा हूं। अत: हे राम ! रक्षा करो, रक्षा करो !

परिचय करुणा विनती

दादू जियरे जक नहीं, विश्राम न पावे ।
आतम पाणी लौंण ज्यों, ऐसे होइ न आवे ॥ ६६ ॥

परिचयार्थ करुणा-पूर्वक विनय कर रहे हैं-जैसे जल में नमक मिल जाता है, वैसा आत्मा और परमात्मा का ऐक्य नहीं हो पाता और प्राणी के अन्त:करण में शांति नहीं होती। शांति के अभाव से परमात्मा के स्वरूप में जल में नमक मिलने के समान अखंड विश्रांति नहीं प्राप्त होती। अत: प्रभो ! कृपा करके आप हमें अपने में अभेद कर लीजिये।

दया विनती

दादू तेरी खूबी[1] खूब[2] है, सब नीका लागे ।
सुन्दर शोभा काढ ले, सब कोई भागे ॥ ६७ ॥

भगवद्-दया प्रदर्शन-पूर्वक विनय कर रहे हैं—प्रभो ! आपकी सूक्ष्म शरीर-रचना रूप विशेषता[1] अति ही उत्तम[2] है। उसके रहने तक शरीर के सभी अंग सुन्दर लगते हैं और जब आप अपनी रचित सूक्ष्म-शरीर रूप शोभा को स्थूल-शरीर से निकाल लेते हैं तब उस स्थूल शरीर को देखकर अति प्रिय पुत्रादि भी भयभीत होकर दूर जाने लगते हैं। अत: अब आप हम पर अखंड दया करके अपने स्वरूप में लय कर लीजिये, जिससे हम अखंड सुन्दर शोभा रूप ही हो जायँ।

विनती

तुम हो तैसी कीजियो, तो छूटैंगे जीव ।
हम हैं ऐसी जनि करो, मैं सदके[1] जाऊं पीव ॥ ६८ ॥

६८-७५ में साक्षात्कारार्थ विनय कर रहे हैं—भगवन् ! जैसी आपकी पतित-पावनादि रूप अखंड कीर्ति है, वैसी ही अखंड कृपा करेंगे, तब ही हम जीवों का उद्धार हो सकेगा। जैसे हमारे कुकर्म हैं, वैसी कुदृष्टि हम पर नहीं करना। यदि ऐसा ही करोगे तो हमारा कल्याण नहीं हो सकेगा। प्रभो ! मैं आपके क्षमाभाव पर बलिहारी[1] जाता हूँ, मेरा उद्धार करें।

अनाथों का आसरा, निराधारों आधार ।
निर्धन का धन राम है, दादू सिरजनहार ॥ ६९ ॥

हे सृजनहार राम ! हमारे अनाथों के आश्रय, निराधारों के आधार और निर्धनों के धन, आप ही हैं। अत: आप हम पर अवश्य कृपा करें।

साहिब दर[1] दादू खड़ा, निशदिन करै पुकार ।
मीराँ[1] मेरा महर कर, साहिब दे दीदार ॥ ७० ॥

हे मेरे स्वामी[1] ! मैं आप परब्रह्म के स्वरूप-सदन में प्रवेश करने के साधन चित्त की एकाग्रता रूप द्वार[1] पर स्थित होकर रात्रि-दिन दर्शनार्थ प्रार्थना कर रहा हूं। अत: हे भगवन् ! आप मुझे दर्शन देने की कृपा अवश्य करें।

दादू प्यासा प्रेम का, साहिब राम पिलाइ ।
प्रकट प्याला देहु भर, मृतक लेहु जिलाइ ॥ ७१ ॥

हे स्वामिन् राम ! मैं आपके प्रेम-रस का प्यासा हूं, कृपा करके प्रत्यक्ष रूप से अपने प्रेम-रस को मेरी श्रद्धा रूप प्याले में भर-भर के मुझे पिलाते हुये अज्ञान रूप मृतक-अवस्था से ब्रह्म-स्थिति रूप जीवन प्रदान करने की कृपा करें।

अल्लह आली[1] नूर[2] का, भर–भर प्याला देहु ।
हमको प्रेम पिलाइ कर, मतवाला कर लेहु ॥ ७२ ॥

हे भगवन् ! अपने अति उत्तम[1] ज्योति-स्वरूप के प्रेम-रस के प्याले भर-भर कर पिलाते हुये हमको मतवाले बना दीजिये अर्थात् हम बाह्य प्रपंच को भूल कर आपके स्वरूप में ही लीन हो जायँ, ऐसी कृपा कीजिये।

तुम को हम से बहुत हैं, हमको तुमसे नांहिं ।
दादू को जनि[1] परिहरै[2], तूं रहु नैनहुँ मांहिं ॥ ७३ ॥

प्रभो ! आपको तो मेरे जैसे अनेक भक्त हैं किन्तु मेरे लिये आपके समान स्वामी अन्य कोई भी नहीं है। अत: आप मुझे न[1] त्याग[2] कर नित्य मेरे नेत्रों में निवास करें अर्थात् प्रति क्षण मुझे दर्शन देते रहें।

तुम तैं तब ही होइ सब, दरश परश दर[1] हाल[2] ।
हम तैं कबहुँ न होइगा, जे बीतहिं युग काल ॥ ७४ ॥

भगवन् ! आप कृपा करें तब तो उसी[२] समय-में[२] तत्काल आपका मिलन दर्शनादि सभी कार्य हो जाते हैं, किन्तु हमारे पुरुषार्थ से तो यदि अनन्त युगों का समय व्यतीत हो जाय तो भी आपका दर्शन होना कभी संभव न हो सकेगा।

तुमहीं तैं तुम को मिले, एक पलक में आइ ।
हम तैं कबहुँ न होइगा, कोटि कल्प जे जाइ ॥ ७५ ॥

प्रभो ! आपकी कृपा से तो यह जीव एक क्षण में ही संसार दशा से ऊँचा उठकर आपको मिल सकता है किन्तु हमारे पुरुषार्थ से तो यदि करोड़ों कल्प व्यतीत हो जायँ तो भी आपका दर्शन होना कभी संभव नहीं हो सकता।

क्षण विछोह

साहिब सौं मिल खेलते, होता प्रेम सनेह ।
दादू प्रेम सनेह बिन, खरी[१] दुहेली[२] देह[३] ॥ ७६ ॥

७६-७७ में कहते हैं—प्रभु का एक क्षण का वियोग भी हमें दु:खप्रद है—यदि हमारा सच्चा प्रेम होता तो हमारे भगवान् भी हम से स्नेह करते और भगवान् से मिलकर हम दर्शनानन्द रूप खेल खेलते, किन्तु हमारे प्रेम और उनके स्नेह के अभाव से उनके दर्शन न होने के कारण मेरी जीवात्मा[३] वास्तव[१] में दुखी[२] है।

साहिब सौं मिल खेलते, होता प्रेम सनेह ।
परकट[१] दर्शन देखते, दादू सुखिया देह ॥ ७७ ॥

यदि हमारा भगवत् में अनन्य प्रेम होता और भगवान् का भी हम में स्नेह होता तो हम प्रत्यक्ष[१] में उनके दर्शन करते हुये ब्रह्मानन्द प्राप्ति रूप खेल खेलते और हमारा जीवात्मा परम सुख को प्राप्त हो जाता।

करुणा

तुमको भावे और कुछ, हम कुछ कीया और ।
मिहर करो तो छूटिये, नहीं तो नांहीं ठौर ॥ ७८ ॥

७८-८१ में करुणा दिखा रहे हैं—भगवन् ! आपको तो भक्ति, वैराग्यादि कुछ और प्रिय लगते हैं और हमने पर-पीड़न,विषयासक्ति आदि कुछ अन्य ही कार्य किये हैं। अत: अब आप ही कृपा करें तो, हम जन्मादि संसार से छूट सकते हैं, नहीं तो हमें परम धाम कभी भी नहीं मिलेगा।

मुझ भावै सो मैं किया, तुझ भावै सो नांहिं ।
दादू गुनहगार है, मैं देख्या मन मांहिं ॥ ७९ ॥

प्रभो ! मेरे इन्द्रियादिक को जो अच्छे लगे, वे ही कार्य मैंने किये हैं। आपको प्रिय लगने वाले भक्ति, वैराग्यादि साधन नहीं कर सका। अत: मैंने अपने मन में भली भाँति विचार करके देख लिया है कि मैं आपका अपराधी हूँ।

खुसी तुम्हारी त्यों करो, हम तो मानी हार ।
भावै बन्दा[1] बख्शिये[2], भावै गह कर मार ॥ ८० ॥

हे भगवन् ! अपने पुरुषार्थ से अपना उद्धार करने में हमने तो हार मान ली है, अब आपकी इच्छा हो वैसा ही करें। चाहे आप इस सेवक[1] के दोषों को क्षमा[2] करके मुक्त कर दें और चाहे दोषों का दंड देने के लिये पकड़ कर बारम्बार मारते रहें, किन्तु आपकी शोभा तो तारने में ही है।

दादू जे साहिब लेखा लिया, तो शीश काट शूली दिया ।
मिहर[1] मया[2] कर फिल[3] किया, तो जीये जीये कर जिया ॥ ८१ ॥

इति विनती का अंग समाप्त: ॥ ३४ ॥ सा. २४८३ ॥

यदि भगवान् हमारे जीवन के शुभाशुभ कर्मों का हिसाब लेंगे तब तो शिर काटने वा शूली पर चढ़ाने से भी हमारे पापों का दंड पूर्ण नहीं हो सकेगा। यदि उन्होंने हम पर दया[2] कृपा[1] करके क्षमा[3] कर दिया तो हम आत्म-स्वरूप की प्राप्ति रूप सार्थक जीवन फल प्राप्त कर ही लेंगे। अत: हे भगवन् ! हमारे संपूर्ण दोषों को क्षमा करके हमें अपनाइये, यही हमारी अंतिम प्रार्थना है।

इति श्रीदादू गिरार्थ प्रकाशिका विनती का अंग समाप्त: ॥ ३४ ॥

अथ साक्षीभूत का अंग ३५

विनती-अंग के अनन्तर साक्षी स्वरूप का विचार करने के लिये ''साक्षी भूत का अंग'' निरूपण में प्रवृत्त हुये मंगल कर रहे हैं—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत: ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक भ्रम से पार हो, साक्षी के स्वरूप को पहचान कर परब्रह्म को प्राप्त होता है, उन निरंजन राम, सद्गुरु और सर्व संतों को हम अनेक प्रणाम करते हैं।

भ्रम विध्वंसन

सब देखणहारा जगत का, अंतर पूरे साखि ।
दादू साबित[1] सो सही[2], दूजा और न राखि ॥ २ ॥

साक्षी सम्बन्धी भ्रम दूर कर रहे हैं—जो संपूर्ण सांसारिक प्राणियों के शुभाशुभ कर्मों को देखने वाला है तथा आन्तर हृदय में जो साक्षी भरता है अर्थात् चेतन ही सत्य है, ऐसी भावना होती है, वही यथार्थ[2] सिद्ध[1] होती है। अत: अपने अन्त:करण में अन्य किसी को भी उपास्य रूप से मत रख।

मांहीं तैं मुझ को कहै, अंतरजामी आप ।
दादू दूजा धंध है, साचा मेरा जाप ॥ ३ ॥

स्वयं अन्तर्यामी परमात्मा साक्षी रूप से अन्त:करण में स्थित होकर हमको प्रेरणा करते हैं—''सत्य तो मेरा चिन्तन ही है, अन्य सब आडम्बर है।''

खुसी तुम्हारी त्यों करो, हम तो मानी हार ।
भावै बन्दा[1] बख्शिये[2], भावै गह कर मार ॥ ८० ॥

हे भगवन् ! अपने पुरुषार्थ से अपना उद्धार करने में हमने तो हार मान ली है, अब आपकी इच्छा हो वैसा ही करें। चाहे आप इस सेवक[1] के दोषों को क्षमा[2] करके मुक्त कर दें और चाहे दोषों का दंड देने के लिये पकड़ कर बारम्बार मारते रहें, किन्तु आपकी शोभा तो तारने में ही है।

दादू जे साहिब लेखा लिया, तो शीश काट शूली दिया ।
मिहर[1] मया[2] कर फिल[3] किया, तो जीये जीये कर जिया ॥ ८१ ॥

इति विनती का अंग समाप्त: ॥ ३४ ॥ सा. २४८३ ॥

यदि भगवान् हमारे जीवन के शुभाशुभ कर्मों का हिसाब लेंगे तब तो शिर काटने वा शूली पर चढ़ाने से भी हमारे पापों का दंड पूर्ण नहीं हो सकेगा। यदि उन्होंने हम पर दया[2] कृपा[1] करके क्षमा[3] कर दिया तो हम आत्म-स्वरूप की प्राप्ति रूप सार्थक जीवन फल प्राप्त कर ही लेंगे। अत: हे भगवन् ! हमारे संपूर्ण दोषों को क्षमा करके हमें अपनाइये, यही हमारी अंतिम प्रार्थना है।

इति श्रीदादू गिरार्थ प्रकाशिका विनती का अंग समाप्त: ॥ ३४ ॥

अथ साक्षीभूत का अंग ३५

विनती-अंग के अनन्तर साक्षी स्वरूप का विचार करने के लिये ''साक्षी भूत का अंग'' निरूपण में प्रवृत्त हुये मंगल कर रहे हैं—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत: ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक भ्रम से पार हो, साक्षी के स्वरूप को पहचान कर परब्रह्म को प्राप्त होता है, उन निरंजन राम, सद्गुरु और सर्व संतों को हम अनेक प्रणाम करते हैं।

भ्रम विध्वंसन

सब देखणहारा जगत का, अंतर पूरे साखि ।
दादू साबित[1] सो सही[2], दूजा और न राखि ॥ २ ॥

साक्षी सम्बन्धी भ्रम दूर कर रहे हैं—जो संपूर्ण सांसारिक प्राणियों के शुभाशुभ कर्मों को देखने वाला है तथा आन्तर हृदय में जो साक्षी भरता है अर्थात् चेतन ही सत्य है, ऐसी भावना होती है, वही यथार्थ[2] सिद्ध[1] होती है। अत: अपने अन्त:करण में अन्य किसी को भी उपास्य रूप से मत रख।

मांहीं तैं मुझ को कहै, अंतरजामी आप ।
दादू दूजा धंध है, साचा मेरा जाप ॥ ३ ॥

स्वयं अन्तर्यामी परमात्मा साक्षी रूप से अन्त:करण में स्थित होकर हमको प्रेरणा करते हैं—''सत्य तो मेरा चिन्तन ही है, अन्य सब आडम्बर है।''

कर्त्ता साक्षीभूत

करता है सो करेगा, दादू साक्षीभूत ।
कौतिकहारा[1] ह्वै रह्या, अणकरता अवधूत[2] ॥ ४ ॥

४-६ में परमात्मा की साक्षी रूपता दिखा रहे हैं—साक्षी रूप परमात्मा ही सत्ता द्वारा सब कुछ करता है और करेगा, किन्तु फिर भी वह खेल[1] करने वाले वा खेल देखने वाले के समान अकर्त्ता रह कर कर्म-फलादि सबसे मुक्त[2] रहता है।

दादू राजस कर उत्पत्ति करै, सात्विक कर प्रतिपाल।
तामस कर परलै करै, निर्गुण कौतिकहार ॥ ५ ॥

साक्षी रूप परमात्मा सत्ता द्वारा राजस शक्ति से उत्पत्ति, सात्विक शक्ति से पालन, तामस शक्ति से प्रलय करते हैं और निर्गुणरूप से खिलाड़ी के वा खेल देखने वाले के समान इस खेल से अलग ही रहते हैं।

दादू ब्रह्म जीव हरि आत्मा, खेलैं गोपी कान्ह ।
सकल निरन्तर भर रह्या, साक्षीभूत सुजान ॥ ६ ॥

हे सुजान साधक ! वह साक्षी रूप परमात्मा ही ब्रह्म, ईश्वर, जीव और आत्मा रूप से पुकारा जाता है तथा सब चराचर जगत् में निरन्तर परिपूर्ण रूप से रहता है और वही कृष्ण बन कर अपनी भक्त गोपियों की इच्छा पूर्ति के लिए रास खेलता है।

स्वकीय मित्र-शत्रुता

दादू जामन मरणा सान[1] कर, यहु पिंड उपाया।
सांई दीया जीव को, ले जग में आया ॥ ७ ॥

७-१० में अपनी ही बनाई हुई मित्रता तथा शत्रुता का परिचय दे रहे हैं—जन्म-मरण से युक्त[1] करके यह शरीर बना कर भगवान् ने जीव को प्रदान किया है। जीव इसे लेकर संसार में आया है और अपने भेद व्यवहार द्वारा इस ने मित्रता-शत्रुता खड़ी कर ली है।

विष अमृत सब पावक पाणी, सतगुरु समझाया।
मनसा वाचा कर्मणा, सोई फल पाया ॥ ८ ॥

सद्गुरु ने जीवों को समझा दिया था—विषयासक्ति विष है, ब्रह्म-ज्ञान अमृत है, आसुरी गुण अग्नि है, दैवी गुण जल है, फिर तो जीव मन, वचन, कर्म से जिसमें संलग्न हुआ, उसे वैसा ही फल मिला अर्थात् विषयासक्ति विष से बारम्बार मृत्यु, ज्ञानामृत से ब्रह्म प्राप्ति रूप अमरता, आसुरी गुण-अग्नि से हृदय दाह और दैवी गुण-जल से हृदय में स्वच्छता, शीतलता रूप फल प्राप्त किया।

दादू जानै बूझै जीव सब, गुण औगुण कीजे ।
जान बूझ पावक पड़ै, दई दोष न दीजै ॥ ९ ॥

जीव गुण-अवगुणादि सब को जानता है और उनमें संलग्न होने के परिणाम को भी

समझता है, किन्तु जान-बूझकर भी अवगुण रूप अग्नि में ही गिरता है, तब दैव को क्या दोष दिया जाय ! यह तो आप ही अपना शत्रु-मित्र बनता है।

बुरा भला शिर जीव के, होवे इस ही मांहिं ।
दादू कर्ता कर रह्या, सो शिर दीजै नांहिं ॥ १० ॥

जीव के किये हुए बुरे-भले कर्म का फल जीव को ही भोगना पड़ता है, कारण, बुरे-भले कर्म के करने की भावना इस जीव के अन्त:करण में ही होती है, अतः स्वत: संसार व्यवस्थार्थ ईश्वर ने जो रचना की है, उस का कर्म-फल उसके शिर नहीं पटकना चाहिये।

साधु साक्षीभूत

कर्ता ह्वै कर कुछ करे, उस मांहि बँधावे ।
दादू उसको पूछिये, उत्तर नहीं आवै ॥ ११ ॥

११-१६ में सन्त की साक्षीरूपता दिखा रहे हैं—जो अपने को कर्त्ता मानकर जो कुछ कर्म करता है, वह उसकी फलाशा से बंध कर, अपने कर्मों फल सुख-दुःख को भोगता है, अतः इस सुख-दुःख का कारण पूछने पर वह निरुत्तर हो जाता है। किन्तु जो ज्ञानी सन्त फलाशा से रहित, कर्म का साक्षी रूप होकर कर्म करते हैं वे कर्म का फल चाहते ही नहीं। अतः उन्हें सुख-दुःख अनुभूति भी नहीं होती।

दादू केई उतारैं आरती, केई सेवा कर जाहिं ।
केई आइ पूजा करैं, केई खुलावें खाहिं ॥ १२ ॥

फलाशा से कितने ही लोग भक्ति करने का भाव हृदय में रखकर आरती उतारते हैं, सेवा करते हैं, समय पर आकर पूजा करते हैं, और खिलाने के पश्चात् प्रसाद खाते हैं।

केई सेवक ह्वै रहे, केई साधु संगति मांहिं ।
केई आइ दर्शन करैं, हम तैं होता नांहिं ॥ १३ ॥

और कितने ही सेवक बन कर रहते हैं, साधु संगति में आते हैं, नियम से प्रतिदिन आकर दर्शन करते हैं। किन्तु ये सब कर्म, स्वयं को अकर्त्ता समझने वाले साक्षी रूप संत से नहीं होते। कारण, इन सबका फल-ज्ञान उन्हें प्राप्त है, अत: वे निरन्तर ब्रह्म-चिन्तन में ही रत रहते हैं।

ना हम करैं करावैं आरती, ना हम पिवैं पिलावैं नीर ।
करे करावै सांइयाँ, दादू सकल शरीर ॥ १४ ॥

न तो हम आरती करते हैं और न कराते हैं। न हम चरणोदक पीते हैं और न पिलाते हैं, किन्तु ये सब तो संपूर्ण शरीरों में आत्म रूप से स्थित परमात्मा ही प्रेरणा द्वारा करते कराते हैं।

करै करावै सांइयाँ, जिन दीया औजूद ।
दादू बन्दा बीच मैं, शोभा को मौजूद ॥ १५ ॥

जिन परमात्मा ने शरीर दिया है, वे ही लोक-कल्याणादि सब कुछ कार्य करते कराते हैं। संत रूपी दास तो कार्य करवाने के मध्य में साक्षी रूप से शोभा के लिए ही उपस्थित रहता है।

देवे लेवे सब करे, जिन सिरजे सब लोइ[१] ।
दादू बन्दा महल में, शोभा करैं सब कोइ ॥ १६ ॥

जिन परमात्मा ने सब लोगों[१] को रचा है, वही परमात्मा सबको अनुकूलता देते हैं, प्रतिकूलता अपहरण करते हैं। सन्त तो समाधि महल में परब्रह्म-परायण रह कर साक्षी रूप से ही रहता है, तो भी लोग अपने सुख का निमित्त उसे ही मानकर उसकी शोभा करते हैं।

कर्ता साक्षी-भूत

दादू जुवा खेले जाणराइ, ताको लखै न कोइ ।
सब जग बैठा जीत कर, काहू लिप्त न होइ ॥ १७ ॥

इति साक्षीभूत का अंग समाप्त: ॥ ३५ ॥ सा. २५०० ॥

कर्त्ता की साक्षीरूपता दिखा रहे हैं—संपूर्ण ज्ञानियों से श्रेष्ठ सर्वज्ञ परमात्मा संसार की उत्पत्ति, पालन, प्रलय रूप जुआँ का खेल खेल रहा है, किन्तु खेल के साधन रूप संसारी जीवों में से उसे कोई भी नहीं देख पाता। वह लाभ-हानि के हर्ष-शोकादिक किसी भी गुण से लिप्त नहीं होता और सब जगत् को अपने अधीन करके अपनी महिमा में स्थित है।

इति श्रीदादू गिरार्थ प्रकाशिका साक्षीभूत का अंग समाप्त: ॥ ३५ ॥

अथ बेली का अंग ३६

साक्षी-भूत अंग के अनन्तर बेली के रूपक से आत्मा का परिचय कराने के लिये, ''बेली का अंग'' निरूपण करने में प्रवृत्त हुये मंगल कर रहे हैं—

दादू नमो नमो निरंजनं नमस्कार गुरुदेवत: ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक आत्म-ज्ञान द्वारा अज्ञान से पार होकर परब्रह्म को प्राप्त होता है, उन निरंजन राम, सद्गुरु, और सर्व संतों को हम अनेक प्रणाम करते हैं।

दादू अमृत रूपी नाम ले, आतम तत्त्वहिं पोषे ।
सहजैं सहज समाधि में, धरणी[१] जल शोषे ॥ २ ॥

२-१६ आत्मा का बेलि के रूपक से परिचय करा रहे हैं—परमात्मा का अमृत रूप नाम-चिन्तन करते हुए तत्त्व-ज्ञान द्वारा अन्त:करण की अज्ञान से रक्षा करे और साधन द्वारा शनै: २ सहज समाधि धारण रूप धरती[१], मायिक विषय-जल का शोषण करे अर्थात् वृत्ति निर्विषय करके ब्रह्म में लय करे।

पसरे तीनों लोक में, लिपत नहीं धोखे ।
सो फल लागे सहज में, सुन्दर सब लोके ॥ ३ ॥

वृत्ति ब्रह्म में लीन होने पर, जैसे बेलि वृक्ष से मिलकर फैल जाती है वैसे ही, जीवात्मा ब्रह्म से अभेद होकर तीनों लोकों में फैल जाता है अर्थात् अपने को व्यापक समझने लगता है, फिर जो

देवे लेवे सब करे, जिन सिरजे सब लोइ[१] ।
दादू बन्दा महल में, शोभा करैं सब कोइ ॥ १६ ॥

जिन परमात्मा ने सब लोगों[१] को रचा है, वही परमात्मा सबको अनुकूलता देते हैं, प्रतिकूलता अपहरण करते हैं। सन्त तो समाधि महल में परब्रह्म-परायण रह कर साक्षी रूप से ही रहता है, तो भी लोग अपने सुख का निमित्त उसे ही मानकर उसकी शोभा करते हैं।

कर्ता साक्षी-भूत

दादू जुवा खेले जाणराइ, ताको लखै न कोइ ।
सब जग बैठा जीत कर, काहू लिप्त न होइ ॥ १७ ॥

इति साक्षीभूत का अंग समाप्त: ॥ ३५ ॥ सा. २५०० ॥

कर्त्ता की साक्षीरूपता दिखा रहे हैं—संपूर्ण ज्ञानियों से श्रेष्ठ सर्वज्ञ परमात्मा संसार की उत्पत्ति, पालन, प्रलय रूप जुआँ का खेल खेल रहा है, किन्तु खेल के साधन रूप संसारी जीवों में से उसे कोई भी नहीं देख पाता। वह लाभ-हानि के हर्ष-शोकादिक किसी भी गुण से लिप्त नहीं होता और सब जगत् को अपने अधीन करके अपनी महिमा में स्थित है।

इति श्रीदादू गिरार्थ प्रकाशिका साक्षीभूत का अंग समाप्त: ॥ ३५ ॥

अथ बेली का अंग ३६

साक्षी-भूत अंग के अनन्तर बेली के रूपक से आत्मा का परिचय कराने के लिये, ''बेली का अंग'' निरूपण करने में प्रवृत्त हुये मंगल कर रहे हैं—

दादू नमो नमो निरंजनं नमस्कार गुरुदेवत: ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक आत्म-ज्ञान द्वारा अज्ञान से पार होकर परब्रह्म को प्राप्त होता है, उन निरंजन राम, सद्‌गुरु, और सर्व संतों को हम अनेक प्रणाम करते हैं।

दादू अमृत रूपी नाम ले, आतम तत्त्वहिं पोषे ।
सहजैं सहज समाधि में, धरणी[१] जल शोषे ॥ २ ॥

२-१६ आत्मा का बेलि के रूपक से परिचय करा रहे हैं—परमात्मा का अमृत रूप नाम-चिन्तन करते हुए तत्त्व-ज्ञान द्वारा अन्त:करण की अज्ञान से रक्षा करे और साधन द्वारा शनै: २ सहज समाधि धारण रूप धरती[१], मायिक विषय-जल का शोषण करे अर्थात् वृत्ति निर्विषय करके ब्रह्म में लय करे।

पसरे तीनों लोक में, लिपत नहीं धोखे ।
सो फल लागे सहज में, सुन्दर सब लोके ॥ ३ ॥

वृत्ति ब्रह्म में लीन होने पर, जैसे बेलि वृक्ष से मिलकर फैल जाती है वैसे ही, जीवात्मा ब्रह्म से अभेद होकर तीनों लोकों में फैल जाता है अर्थात् अपने को व्यापक समझने लगता है, फिर जो

सब लोगों में श्रेष्ठ माना जाता है, वही ब्रह्मानन्द रूप फल उसे प्राप्त होता है और वह विषयानन्द के धोखे में आकर विषयों में लिपायमान नहीं होता।

दादू बेली आत्मा, सहज फूल फल होइ।
सहज सहज सतगुरु कहै, बूझे बिरला कोइ॥ ४॥

उक्त प्रकार साधन द्वारा जीवात्मा रूप बेलि को अनायास ही भक्ति-फूल और ज्ञान-फल प्राप्त होता है। सद्गुरु इस पद्धति को कहते रहते हैं किन्तु कोई विरला साधक ही शनैःशनैः समझ पाता है।

जे साहिब सींचे नहीं, तो बेली कुम्हलाइ।
दादू सींचे सांइयाँ, तो बेली बधती जाइ॥ ५॥

यदि परमात्मा जीवात्मा-बेलि को अपने अनुग्रह-जल से न सींचे तो वह कुम्हला जाती है अर्थात् पतन की ओर जाती है और यदि वे सींचते रहें तो भक्ति-ज्ञानादि द्वारा बढ़ती जाती है।

हरि तरुवर तत आत्मा, बेली कर विस्तार।
दादू लागे अमर फल, कोई साधू सींचनहार॥ ६॥

यदि कोई संत तत्त्व ज्ञान द्वारा सींचने वाला हो तो परमात्मा रूप श्रेष्ठ वृक्ष के आश्रय से जीवात्मा-बेलि अपना विस्तार कर लेती है और उसके अमरता देने वाला ब्रह्म ज्ञान रूप फल लग जाता है।

दादू सूखा रूंखड़ा, काहे न हरिया होइ।
आपै सींचै अमीरस, सुफल फलिया सोइ॥ ७॥

भक्ति रूप हरियाली से रहित सूखे अन्तःकरण रूप वृक्ष को, यदि स्वयं भगवान् अपने कृपामृत-रस से सींचें तो वह क्यों न हरा होगा? और जो भक्ति रूप हरियाली को प्राप्त हुआ है, उसने ज्ञानरूप फल भी अवश्य ही दिया है।

कदे न सूखै रूंखड़ा, जे अमृत सींच्या आप।
दादू हरिया सो फलै, कछू न व्यापे ताप॥ ८॥

यदि जीवात्मा स्वयं ही सचेत होकर राम-नाम चिन्तन रूप अमृत सींचता रहे तो, अन्तःकरण रूप वृक्ष, काम-क्रोधादि रूप आतप से कभी भी नहीं सूख सकेगा। और जो भक्ति रूप हरियाली से युक्त रहेगा, वह अवश्य ज्ञान रूप फल को प्राप्त होगा तथा उसे कोई भी दुःख न हो सकेगा।

जे घट रोपे रामजी, सींचै अमी अघाइ।
दादू लागै अमर फल, कबहूँ सूख न जाइ॥ ९॥

यदि अन्तःकरण में रामजी भक्ति बेलि लगा दें और इतना कृपामृत सींचें कि कोई भी आशा न रहे, पूर्ण तृप्ति आ जाय, तब तो अवश्य ही अमरता देने वाला परब्रह्म-प्राप्ति रूप अमर-फल लगेगा ही। फिर तो यह कभी भी पुनर्जन्म रूप शुष्कता को प्राप्त न हो सकेगा।

दादू अमर बेलि है आतमा, खार समंदां मांहिं।
सूखे खारे नीर सौं, अमर फल लागे नांहिं ॥ १० ॥

यद्यपि जीवात्मा रूप बेलि अमर है, तो भी संसार रूप क्षार समुद्र में अनित्यता रूप क्षार से युक्त विषय-जल से भ्रम रूप शुष्कता आ जाती है। 'मैं अमर हूँ' यह ज्ञान नहीं रहता और संशय के कारण अमरता का ज्ञान कराने वाला ब्रह्म-ज्ञान रूप फल भी नहीं लगता।

दादू बहु गुणवन्ती बेलि है, ऊगी कालर मांहिं ।
सींचे खारे नीर सौं, तातैं निपजे नांहिं ॥ ११ ॥

जीवात्मा रूप बेलि बहुत-से दैवी गुणों से युक्त है किन्तु कुसंग रूप ऊसर भूमि में उत्पन्न होने और विषय रूप खारे जल से सींचने से इसके भक्ति-ज्ञान रूप फूल-फल नहीं लगते।

बहु गुणवन्ती बेलि है, मीठी धरती बाहि ।
मीठा पानी सींचिये, दादू अमर फल खाहि ॥ १२ ॥

जीवात्मा-बेलि बहुत-से दैवीगुणों से युक्त है, इसे सत्संग रूप मधुर उर्वर भूमि में लगाकर भगवत्प्राप्ति के साधन रूप भक्ति मधुर जल से सींचो और इसके ज्ञान रूप अमर फल को खाकर अमर हो जाओ।

अमृत बेली बाहिये, अमृत का फल होइ ।
अमृत का फल खाय कर, मुवा न सुणिया कोइ ॥ १३ ॥

अमृत बेलि लगाने से अमृत का ही फल लगेगा और अमृत फल खाकर कोई मर गया हो, ऐसा नहीं सुना जाता। वैसे ही भक्ति द्वारा मोक्ष प्राप्त करके पुन: कोई जन्म-मरणादि में आया हो, ऐसा नहीं सुना जाता।

दादू विष की बेलि बाहिये, विष ही का फल होइ।
विष ही का फल खाय कर, अमर नहीं कलि कोइ॥ १४ ॥

विष की बेलि बोने से विष का ही फल देगी और विष का फल खाकर इस कलियुग में कोई भी अमर नहीं होता। वैसे ही हृदय में विषय-वासना रखने से चित्त विषयों में ही जायेगा और विषयासक्त कोई भी अमर ब्रह्म को प्राप्त नहीं होता।

सतगुरु संगति नीपजे, साहिब सींचनहार ।
प्राण वृक्ष पीवै सदा, दादू फले अपार ॥ १५ ॥

सद्गुरु की संगति से जीवात्मा में भक्ति उत्पन्न होती है, फिर यदि परमात्मा अपने अनुग्रह जल से सींचने वाले हों और प्राणी-वृक्ष उस जल को सदा पान करता रहे अर्थात् भगवत्-कृपा का अनुभव करता रहे तो असीम अभेद-ज्ञान रूप फल प्राप्त होता है।

दया धर्म का रूंखड़ा[१], सत सौं बधता जाइ ।
संतोष सौं फूलै फलै, दादू अमर फल खाइ ॥ १६ ॥

इति बेली का अंग समाप्त: ॥ ३६ ॥ सा. २५१६ ॥

दया रूप धर्म का वृक्ष[१] सत्यपालन द्वारा बढ़ता है, पूर्ण संतोष से उसके भक्ति रूप फूल और ब्रह्मज्ञान रूप फल आता है। उस फल को जो खाता है अर्थात् अभेद रूप से धारण करता है, वह अमर हो जाता है।

इति श्रीदादू गिरार्थ प्रकाशिका बेली का अंग समाप्त: ॥ ३६ ॥

अथ अबिहड़ का अंग ३७

बेली-अंग के अनन्तर जिसका सदा संयोग रहता है, उस एकरस अद्वैत अविनाशी ब्रह्म-तत्त्व के विचार ''अबिहड़ का अंग'' निरूपण करने में प्रवृत्त हुये मंगल कर रहे हैं—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत: ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक अज्ञान से पार हो, ब्रह्म के नित्य संयोग को समझ कर ब्रह्मरूप ही हो जाता है, उन निरंजन राम, सद्गुरु और सर्व संतों को हम अनेक प्रणाम करते हैं।

दादू संगी सोई कीजिये, जे कलि अजरावर होइ।
ना वह मरै न बीछुटे, ना दुख व्यापे कोइ ॥ २ ॥

२-५ में सदा एकरस रहने वाले परमात्मा को ही अपना साथी बनाने की प्रेरणा कर रहे हैं—जो संसार में देवताओं से भी अति श्रेष्ठ है, न मरता है, न किसी से बिछुड़ता है और न ही जिसको कोई दु:ख होता है, उसी परमात्मा को अपना साथी बनाओ।

दादू संगी सोई कीजिये, जे थिर इहिँ संसार ।
ना वह खिरै[१] न हम खपैं[२], ऐसा लेहु विचार ॥ ३ ॥

जो इस संसार में सदा सम्यक् स्थिर रहता है, कभी भी अपनी स्थिति से क्षय[१] होकरनहीं गिरता और जिसको साथी बनाकर हम भी नष्ट[२] नहीं हों, विचार करने पर जो ऐसा सिद्ध हो, उसी को अपना साथी बनाओ।

संगी सोई कीजिये, सुख दुख का साथी ।
दादू जीवन-मरण का, सो सदा संगाती ॥ ४ ॥

जो सुख दु:ख में साथ देने वाला हो, जीवन काल और मरने के पश्चात् भी सदा संग रह सकता हो, उसी को अपना साथी बनाओ।

दादू संगी सोई कीजिये, जे कबहूँ पलट न जाइ।
आदि अंत बिहड़ै नहीं, तासन यहु मन लाइ ॥ ५ ॥

जिसमें बाल-युवादि काल-जन्य परिवर्तन कभी भी नहीं होते और जो सृष्टि के आदि काल से प्रलय पर्यन्त किसी से भी अलग नहीं होता, उसी परमेश्वर को अपना साथी बनाकर, यह मन उसी में लगाओ।

दया रूप धर्म का वृक्ष[१] सत्यपालन द्वारा बढ़ता है, पूर्ण संतोष से उसके भक्ति रूप फूल और ब्रह्मज्ञान रूप फल आता है। उस फल को जो खाता है अर्थात् अभेद रूप से धारण करता है, वह अमर हो जाता है।

इति श्रीदादू गिरार्थ प्रकाशिका बेली का अंग समाप्त: ॥ ३६ ॥

अथ अबिहड़ का अंग ३७

बेली-अंग के अनन्तर जिसका सदा संयोग रहता है, उस एकरस अद्वैत अविनाशी ब्रह्म-तत्त्व के विचार "अबिहड़ का अंग" निरूपण करने में प्रवृत्त हुये मंगल कर रहे हैं—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत: ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक अज्ञान से पार हो, ब्रह्म के नित्य संयोग को समझ कर ब्रह्मरूप ही हो जाता है, उन निरंजन राम, सद्गुरु और सर्व संतों को हम अनेक प्रणाम करते हैं।

दादू संगी सोई कीजिये, जे कलि अजरावर होइ।
ना वह मरै न बीछुटे, ना दुख व्यापे कोइ ॥ २ ॥

२-५ में सदा एकरस रहने वाले परमात्मा को ही अपना साथी बनाने की प्रेरणा कर रहे हैं—जो संसार में देवताओं से भी अति श्रेष्ठ है, न मरता है, न किसी से बिछुड़ता है और न ही जिसको कोई दु:ख होता है, उसी परमात्मा को अपना साथी बनाओ।

दादू संगी सोई कीजिये, जे थिर इहिँ संसार।
ना वह खिरै[१] न हम खपैं[२], ऐसा लेहु विचार ॥ ३ ॥

जो इस संसार में सदा सम्यक् स्थिर रहता है, कभी भी अपनी स्थिति से क्षय[१] होकरनहीं गिरता और जिसको साथी बनाकर हम भी नष्ट[२] नहीं हों, विचार करने पर जो ऐसा सिद्ध हो, उसी को अपना साथी बनाओ।

संगी सोई कीजिये, सुख दुख का साथी।
दादू जीवन-मरण का, सो सदा संगाती ॥ ४ ॥

जो सुख दु:ख में साथ देने वाला हो, जीवन काल और मरने के पश्चात् भी सदा संग रह सकता हो, उसी को अपना साथी बनाओ।

दादू संगी सोई कीजिये, जे कबहूँ पलट न जाइ।
आदि अंत बिहड़ै नहीं, तासन यहु मन लाइ ॥ ५ ॥

जिसमें बाल-युवादि काल-जन्य परिवर्तन कभी भी नहीं होते और जो सृष्टि के आदि काल से प्रलय पर्यन्त किसी से भी अलग नहीं होता, उसी परमेश्वर को अपना साथी बनाकर, यह मन उसी में लगाओ।

दादू अबिहड़ आप है, अमर उपावनहार ।
अविनाशी आपै रहै, बिनसे सब संसार ॥ ६ ॥

६-१० में नित्य साथ रहने वाले ब्रह्म-तत्त्व का परिचय दे रहे हैं—सब संसार नष्ट होता है, संसार को उत्पन्न करने वाले अविनाशी परमात्मा, साधनादि उपाय बिना, अपने आप ही अमर रहते हैं। अत: सबके साथ नित्य संयोग स्वयं ब्रह्म का ही रहता है, अन्य का नहीं।

दादू अबिहड़ आप है, साचा सिरजनहार ।
आदि अंत बिहड़े नहीं, बिनसै सब आकार ॥ ७ ॥

विनाशी होने से सभी आकारों का वियोग होता है, किन्तु सत्य निराकार सृष्टिकर्ता परमेश्वर का सृष्टि के आदि से अन्त तक कभी भी किसी से वियोग नहीं होता, अत: व्यापक होने से स्वयं ब्रह्म ही सदा सबके साथ संयोग वाला है।

दादू अबिहड़ आप है, अविचल रह्या समाइ ।
निहचल रमता राम है, जो दीसै सो जाइ ॥ ८ ॥

जो नाम रूपात्मक कार्य है, वे सब नष्ट हो जायेंगे, निश्चल तो एक सब में रमने वाला राम ही है और वह अचल होकर सब में परिपूर्ण है। अत: स्वयं ब्रह्म ही सदा साथ रहने वाला है।

दादू अबिहड़ आप है, कबहूँ बिहड़ै नांहिं ।
घटै बधै नहिं एक रस, सब उपज खपै उस मांहिं ॥ ९ ॥

स्वयं ब्रह्म ही सदा सबके साथ रहते हैं, कभी भी किसी से अलग नहीं होते। सदा एक रस रहते हैं, घटते बढ़ते नहीं। अन्य सब मायिक संसार उन्हीं में जल केबुद्बुदे की तरह उत्पन्न होकर लय होता रहता है।

अबिहड़ अंग बिहड़ै नहीं, अपलट पलट न जाइ ।
दादू अघट एक रस, सब में रह्या समाइ ॥ १० ॥

व्यापक-स्वरूप ब्रह्म कभी भी किसी से अलग नहीं होता, वह अपरिवर्तन रूप है, बदल कर कहीं भी नहीं जाता। अत: न घटने-बढ़ने वाला एकरस ब्रह्म सब में परिपूर्ण है।

अंत समय की साखी

जेते गुण व्यापैं जीव को, तेते तैं तजे रे मन ।
साहिब अपणे कारणैं, (भलो निबाह्यो पण) ॥ ११ ॥

इति अबिहड़ का अंग समाप्त: ॥ ३७ ॥ सा. २५२७ ॥

हे मन ! जितने भी मायिक गुण अन्त:करण में व्याप्त होते हैं, उन सबको त्याग करके और उन्हें अन्त:करण में पुन: न आने देने का प्रण करके अपने प्रभु-प्राप्ति के लिए उस प्रण का तूने अच्छा निर्वाह किया है। इस साखी के तीन चरण ही ब्रह्मलीन होने के समय उच्चारण किये थे।

इति श्री पूज्यचरण स्वामी धनराम के शिष्य स्वामी नारायणदास कृत
श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका अबिहड़ का अंग तथा साखी भाग समाप्त: ॥

श्री परमात्मने नम:

अथ श्री स्वामी दादूदयालजी की अनुभव वाणी

द्वितीय भाग : शब्द

अथ राग गौड़ी १

(गायन समय दिन ३ से ६)

शब्द-१ स्मरण शूरातन नाम निश्चय। त्रिताल

राम नाम नहीं छाडूं भाई, प्राण तजूं निकट जिव जाई ॥ टेक॥
रती रती कर डारै मोहि, सांई संग न छाडूं तोहि ॥ १ ॥
भावै ले शिर करवत दे, जीवन मूरी न छाडूं ते ॥ २ ॥
पावक में ले डारै मोहि, जरै शरीर न छाडूं तोहि ॥ ३ ॥
अब दादू ऐसी बन आई, मिलूं गोपाल निसान[1] बजाई ॥ ४ ॥

नाम स्मरण में दृढ़ निश्चय पूर्वक शौर्य्य दिखा रहे हैं—हे भाई ! हम प्राण त्याग सकते हैं, चाहे निकट भविष्य में ही हमारा जीव शरीर को त्यागकर चला जाय, तो भी हम राम-नाम को नहीं त्यागेंगे। चाहे शरीर के गुँजा समान टुकड़े-टुकड़े कर डालें, शिर पर आरा चलावें, शरीर को अग्नि में डाल कर जलावें तो भी हम परमात्मा का स्मरण रूप संग नहीं छोडेंगे। अब तो हमारी ऐसी अवस्था हो गई है कि—हम नगाड़ा[1] बजाकर डंके की चोट भगवान् से मिलेंगे।

२-अन्य उपदेश। त्रिताल

राम नाम जनि[1] छाड़े कोई, राम कहत जन निर्मल होई॥ टेक॥
राम कहत सुख संपति सार, राम नाम तिर लंघै पार ॥ १ ॥
राम कहत सुधि बुधि मति पाई, राम नाम जनि छाडहु भाई॥ २ ॥
राम कहत जन निर्मल होई, राम नाम कह कश्मल[2] धोई॥ ३ ॥
राम कहत को को नहिं तारे, यहु तत दादू प्राण हमारे ॥ ४ ॥

नाम स्मरण का उपदेश कर रहे हैं—हे भाइयो ! राम नाम का स्मरण किसी को भी नहीं[1] त्यागना चाहिए। राम-नाम चिन्तन से प्राणी निष्पाप होता है, श्रेष्ठ सुख सम्पत्ति मिलती है, बुद्धि को शुद्ध ज्ञान प्राप्त होता है, हृदय के कामादिक दोष[2] हटते हैं; मन का मोह नष्ट होता है और प्राणी

संसार-समुद्र को तैर कर पार चला जाता है। कहो ? राम-नाम से किस-किस का उद्धार नहीं हुआ ? सभी का हुआ है। यह राम-नाम स्मरण रूप तत्त्व हमारे प्राणों का तो आधार ही है।

३-स्मरण उपदेश। राज मृगांक ताल

मेरे मन भैया राम कहो रे,
राम नाम मोहि सहज सुनावै, उनहीं चरण मन लीन रहो रे ॥ टेक॥
राम नाम ले संत सुहावे, कोई कहै सब शीश सहो रे।
वाही सौं मन जोरे राखो, नीके राशि लिये निबहो रे ॥ १ ॥
कहत सुनत तेरो कछू न जावै, पापन[१] छेदन सोइ लहो रे।
दादू रे जन हरि गुण गावो, कालहि जालहि फेरि दहो रे॥ २ ॥

नाम स्मरण का उपदेश कर रहे हैं—ऐ भैया ! तुम मन के द्वारा राम-नाम का चिंतन करो, समाधि रूप सहजावस्था में मुझे भगवान् राम-नाम ही सुनाते हैं। अत: उन्हीं के स्वरूप रूप चरणों में मन को लगाये रहो। राम-नाम चिन्तन से ही सन्त अच्छा लगता है। इसलिए उसी से मन लगाये रक्खो, यह नाम ही संपूर्ण श्रेष्ठताओं की राशि है, इसे हृदय में रखते हुये, अपना निर्वाह करो। यदि कोई तुम्हारे विपरीत वचन कहे, उसे सहन कर लो, क्योंकि—कहने, सुनने से तुम्हारा कुछ भी न बिगड़ेगा और तुम पापों को नष्ट[१] करने वाले परमात्मा को प्राप्त कर लोगे। अत: हे जनो ! तुम तो शीघ्र ही हरि के गुणों का गान करो, नहीं तो फिर कालाग्नि की ज्वाला में जलोगे।

४-विरह। एकताल

कौण विधि पाइये रे, मीत हमारा सोइ॥ टेक॥
पास पीव परदेश है रे, जब लग प्रकटै नांहिं।
बिन देखे दुख पाइये, यहु सालै मन मांहिं ॥ १ ॥
जब लग नैन न देखिये, परगट मिले न आइ।
एक सेज संगहि रहै, यहु दुख सह्या न जाइ॥ २ ॥
तब लग नेड़े दूर है रे, जब लग मिलै न मोहि।
नैन निकट नहिं देखिये, संग रहे क्या होइ ॥ ३ ॥
कहा करूं कैसे मिलै रे, तलफै मेरा जीव।
दादू ऐसे आतुर विरहनी, कारण अपने पीव॥ ४ ॥

भगवद् विरह दिखा रहे हैं—वे हमारे मित्र किस प्रकार मिलेंगे ? यद्यपि परमात्मा व्यापक होने से अति समीप ही है, किन्तु जब तक प्रत्यक्ष दर्शन नहीं होते, तब तक विदेश में होने के समान ही है। उनके दर्शन बिना ही हम जन्मादि क्लेश भोग रहे हैं। जब तक ज्ञान-नेत्रों द्वारा उनको न देख लेंगे तथा हृदय में प्रकट होकर वे न मिलेंगे, तब तक यह वियोग का दु:ख मन में बना ही रहेगा। वे और हम एक ही अन्त:करण शय्या पर रहते हैं फिर भी उनका दर्शन नहीं होता, यह महा क्लेश

हमसे नहीं सहा जाता। जब तक वे हम से नहीं मिलते तब तक समीप रहने पर भी दूर ही हैं। साथ रहने से क्या हो ? जब तक समीप में नेत्रों से न देख लें। हाय ! हम क्या करें ? हमारा मन व्याकुल हो रहा है, वे कैसे मिलेंगे ? इस प्रकार अपने स्वामी परमात्मा से मिलने के लिए वियोगिनी संतात्मा व्याकुल रहती है।

५-विरह विलाप। षडताल

जियरा क्यों रहै रे, तुम्हारे दर्शन बिन बेहाल॥ टेक॥
परदा अंतर कर रहे, हम जीवैं किहिं आधार।
सदा संगाती प्रीतमा, अब के लेहु उबार॥ १ ॥
गोप्य[१] गुसाँई ह्वै रहै, अब काहे न प्रकट होइ।
राम सनेही संगिया, दूजा नांहीं कोइ॥ २ ॥
अंतरयामी छिप रहे, हम क्यों जीवैं दूर।
तुम बिन व्याकुल केशवा, नैन रहे जल पूर॥ ३ ॥
आप अपरछन[२] ह्वै रहे, हम क्यों रैनि बिहाइ।
दादू दर्शन कारणैं, तलफ-तलफ जिव जाइ॥ ४ ॥

विरह-जन्य विलाप दिखा रहे हैं—हे प्रभो ! हमारा मन शांति से कैसे रहे ? यह तो आपके दर्शन बिना व्याकुल हो रहा है। आप हमारे भीतर रहकर भी अज्ञान का पड़दा लगाये रहते हैं। कहिये, फिर हम किस आधार पर जीवित रहेंगे ? हे प्रियतम ! यद्यपि आप हमारे सदा साथ रहने वाले हैं, तो भी इस मनुष्य शरीर में ही हमारा उद्धार कर लें। अन्य शरीरों में हमें आपको प्राप्त करने की ऐसी सुविधा नहीं मिलेगी। हे स्वामिन् ! आप गुप्त[१] क्यों हो रहे हो ? अब क्या कारण है जो आप प्रकट नहीं होते ? हे प्यारे राम ! हमारे साथी तो आप ही हैं, अन्य कोई भी नहीं है। हे अन्तर्यामी ! आप हमसे छिप रहे हैं, फिर हम आप से दूर रहकर कैसे जीवित रहेंगे ? हे केशव ! आपके साक्षात्कार के बिना हम व्याकुल हैं, नेत्रों में जल भरा ही रहता है, फिर भी आप छिप[२] ही रहे हैं। अहो ! हम इस आयु रूप रात्रि को कैसे व्यतीत कर सकेंगे ? प्रभु दर्शन के लिये हमारे प्राण तो बारंबार छटपटाते हुये जाने को तैयार हो रहे हैं।

६-विरह हैरान। त्रिताल

अजहुँ न निकसैं प्राण कठोर।
दर्शन बिना बहुत दिन बीते, सुन्दर प्रीतम मोर॥ टेक॥
चार पहर चारों युग बीते, रैनि गमाई भोर।
अवधि गई अजहूँ नहिं आये, कतहूँ रहे चित चोर॥ १ ॥
कबहूँ नैन निरख नहिं देखे, मारग चितवत तोर।
दादू ऐसे आतुर विरहणि, जैसे चंद चकोर॥ २ ॥

आश्चर्य पूर्वक व्याकुलता दिखा रहे हैं—मेरे मनोहर प्रियतम परमात्मा के दर्शन बिना जीवन के बहुत-से दिन व्यतीत हो गये किन्तु ये कठोर प्राण अब भी शरीर से बाहर नहीं निकलते। आयु-रात्रि के शिशु, किशोर, युवा, वृद्धावस्था रूप चारों पहर चार युगों के समान व्यतीत हुये हैं और अब अति वृद्धावस्था रूप अरुणोदय हो रहा है। उनकी अवधि थी-''अहंकार गलित होने पर दर्शन देंगे।'' सो भी चली गई है अर्थात् अहंकार गलित हो चुका है, किन्तु अभी भी नहीं आये। वे भक्तों के चित्त को चुराने वाले कहां रुक रहे हैं, पता नहीं। हे प्रभो ! हम सतत् आपका मार्ग देख रहे हैं किन्तु इस प्रकार देखते रहने पर भी, हम कभी भी आपको नेत्रों से नहीं देख सके हैं। अत: आपके दर्शनार्थ हम वियोगी जन ऐसे व्याकुल हैं, जैसे चन्द्र दर्शन के लिये चकोर।

७- सुन्दरी श्रृंगार। त्रिताल

सो-धन[१] पीवजी साज सँवारी, अब बेगि मिलो तन जाइ बनवारी ॥ टेक ॥
साज श्रृंगार किया मन मांहीं, अजहूँ पीव पतीजै[२] नांहीं ॥ १ ॥
पीव मिलन को अहनिश जागी, अजहूँ मेरी पलक न लागी ॥ २ ॥
जतन-जतन कर पंथ निहारूं, पिव भावै त्यों आप सँवारूं ॥ ३ ॥
अब सुख दीजै जाऊं बलिहारी, कहै दादू सुन विपति हमारी ॥ ४ ॥

वियोगिनी का श्रृंगार दिखा रहे हैं—हे प्रियतम प्रभो ! आपकी जीवात्मा नारी[१] विचार पूर्वक तन-मन सुधार[१] कर आपके स्वागत की सामग्री तैयार की है। हे बनवारी ! अब शीघ्र ही दर्शन दो, देर करने से यह शरीर चला जायगा। मैंने तन-मनादि सभी को साधन सामग्री द्वारा सजाया है, किन्तु प्रभु अभी भी मन में विश्वास[२] नहीं कर रहे हैं। प्रभु से मिलने के लिए जीवन के दिन-रात्रियों में, मैं भजन करना रूप जाग्रतावस्था में ही रही हूँ। अब तक भी मेरी वृत्ति रूप पलक विषयों में नहीं लगी है। मैं नाना साधन रूप यत्न करके प्रभु का मार्ग देख रही हूँ और जैसे प्रभु को अच्छा लगे, वैसे ही अपने को सजा रही हूँ। प्रभो ! मेरी इस वियोग-जन्य विपत्ति निवारण की प्रार्थना सुन कर अब मुझे दर्शन द्वारा आनन्द दीजिये, मैं आपकी बलिहारी जाती हूँ।

८-विरह चिन्ता। गजताल

सो दिन कबहूँ आवैगा, दादूड़ा पीव पावैगा ॥ टेक ॥
क्यों ही अपने अंग लगावैगा, तब सब दुख मेरा जावैगा ॥ १ ॥
पीव अपने बैन सुनावैगा, तब आनँद अंग न मावैगा ॥ २ ॥
पीव मेरी प्यास मिटावैगा, तब आपहि प्रेम पिलावैगा ॥ ३ ॥
दे अपना दर्श दिखावैगा, तब दादू मंगल गावैगा ॥ ४ ॥

वियोगी के विचार दिखा रहे हैं—वह दिन कब आयेगा, जिस दिन मुझे प्रभु मिलेंगे। जब किसी भी प्रकार वे मुझे अपने स्वरूप में लगायेंगे, तब ही वियोगजन्य मेरा सम्पूर्ण दु:ख नष्ट होगा। वे प्रभु जब अपने स्वरूप में लीन करने सम्बन्धी वचन सुनायेंगे तब उनसे जन्य आनंद मेरे अन्त:करण में न समायेगा। वे प्रभु आप ही मुझे प्रेम-प्याला पिलाते हुये मेरी प्यास मिटायेंगे अर्थात् पूर्ण प्रेम

प्रदान करके प्रेम की इच्छा पूर्ण करेंगे और दिव्य ज्ञान चक्षु देकर अपना साक्षात्कार करायेंगे, तब मैं आनंद-पूर्वक मंगल गीत गाऊंगा।

९- विरह प्रीति। पंचमताल

तैं मन मोह्यो मोर रे, रह न सकूं हौं[१] राम जी॥टेक॥
तोरे नाम चित लाइया रे, औरन[२] भया उदास।
सांई ये समझाइया, हौं संग न छाडूं पास रे॥ १॥
जाणूं तिलहि न बीछुटूं रे, जनि पछतावा होइ।
गुण तेरे रसना जपूं, सुणसी सांई सोइ रे॥ २॥
भोरैं[३] जन्म गमाइया रे, चीन्हा नहिं सो सार।
अजहूँ यह अचेत है, अवर[२] नहीं आधार रे॥ ३॥
पीव की प्रीति तो पाइये रे, जो शिर होवे भाग।
यो तो अनत[५] न जाइसी, रहसी चरणहुँ लागरे॥ ४॥
अनतैं मन निवारिया रे, मोहि एकै सेती काज।
अनत गये दुख ऊपजै, मोहि एकहि सेती राज[६] रे॥ ५॥
सांई सौं सहजैं रमूं रे, और नहीं आन[४] देव।
तहां मन विलम्बिया, जहां अखल अभेव[७] रे॥ ६॥
चरण कमल चित लाइया रे, भोरैं[८] ही ले भाव।
दादू जन अचेत है, सहजैं हीं तूं आव रे॥ ७॥

विरह पूर्वक प्रीति दिखा रहे हैं—हे रामजी! आपने मेरे मन को मोहित किया है, मैं[१] आपके बिना नहीं रह सकता। अन्य[२] सबसे उपराम होकर, मैंने अपना चित्त आपके नाम चिन्तन में ही लगाया है। स्वामिन्! संतों ने भी ऐसे ही विचार समझाये हैं, जिनसे मैं आपका साथ न छोड़कर आपके पास ही रहूंगा। अब तो मैं समझता हूँ—एक तिल भर भी आप से दूर न रहूंगा, फिर मुझे पश्चाताप भी क्यों होगा? जिह्वा से आपके गुण गान करूंगा और नाम जपूंगा, कान उन्हीं नाम और गुणों को सुनेंगे। अहो! मैंने भोलेपन[३] से अनेक जन्म खो दिये, जो वास्तव में सार तत्त्व था, उसे नहीं पहचाना। यह मन अभी तक असावधान है और अन्य[२] देवी-देवताओं को पूजता फिरता है। अच्छा भाग्य हो तो ही प्रभु का प्रेम प्राप्त होता है। मैंने यह समझकर कि—''मेरा अन्य से कुछ भी काम नहीं है'' मन को बारंबार अन्य से हटाया है। आशा है, अब यह मन अन्यत्र[५] नहीं जायगा, प्रभु के चरणों में ही लगा रहेगा। अन्य की ओर जाने से तो दु:ख ही होता है और मेरी शोभा[६] भी एक प्रभु में लगे रहने से ही है। अब मैं सहजावस्था द्वारा प्रभु के साथ आनंद लूंगा और कोई दूसरा[४] देवता मेरा उपास्य न होगा। अब तो मन उसी समाधि अवस्था में लग गया है, जिसमें

मन इन्द्रियों के अविषय अद्वैत[७] ब्रह्म की अनुभूति होती है। मैंने तो सरल[८] भाव से प्रभु का ही आश्रय लेकर, उनके चरण-कमलों में चित्त लगाया है। हे प्रभो ! मैं आपका जन, आपकी प्राप्ति के साधन में अधिक सावधान नहीं हूँ। अत: आप मेरे सहज-सरल स्वभाव से ही प्रसन्न होकर पधारिये।

१०-विरह विलाप। पंचमताल

विरहनि को श्रृंगार न भावै, है कोई ऐसा राम मिलावै ॥टेक॥
विसरे अंजन मंजन चीरा, विरह व्यथा यहु व्यापे पीरा ॥ १ ॥
नव-सत[१] थाके सकल श्रृंगारा, है कोई पीड़ मिटावणहारा ॥ २ ॥
देह गेह[२] नहिं सुधि शरीरा, निशदिन चितवत चातक नीरा ॥ ३ ॥
दादू ताहि न भावे आन, राम बिना भई मृतक समान ॥ ४ ॥

विरह पूर्वक विलाप दिखा रहे हैं—वियोगिनी सन्त-सुन्दरी को शरीर सजाना प्रिय नहीं लगता। वह तो यही पुकारती रहती है—"कोई ऐसा सज्जन है, जो राम को मिला सके।" यह विरह की व्यथा हृदय में व्याप्त होकर, उसे इतना पीड़ित करती है कि उसका आँख का अंजन, दाँत का मंजन व स्नान करना और अच्छे वस्त्र पहनना भी छूट जाता है। नवधा भक्ति और सात समाधि के साधन रूप सोलह[१] श्रृंगार ये सभी शिथिल हो जाते हैं। वह तो यही पुकारती रहती है—"कोई मेरी पीड़ा मिटाने वाला सिद्ध संत है क्या ?" उसे देह और घर[२] के सम्बन्ध का तथा शरीर का भी स्मरण नहीं रहता। वह तो जैसे चातक पक्षी स्वाति जल की प्रतीक्षा करता रहता है, वैसे ही रात्रि-दिन प्रभु की प्रतीक्षा करती रहती है, उसे अन्य कुछ भी अच्छा नहीं लगता। वह अपने प्यारे राम के बिना मृतकवत् हो जाती है।

११- करुणा विनती। पंजाबी त्रिताल

अब तो मोहि लागी बाइ[१], उन निश्चल चित लियो चुराइ ॥टेक॥
आन[२] न रुचै और नहिं भावै, अगम अगोचर तहँ मन जाइ।
रूप न रेख वरण कहूँ कैसा, तिन चरणों चित रह्या समाइ ॥ १ ॥
तिन चरणों चित सहज समाना, सो रस भीना[३] तहँ मन धाइ।
अब तो ऐसी बन आई, विष तजै अरु अमृत खाइ॥ २ ॥
कहा करूं मेरा वश नांहीं, और न मेरे अंग सुहाइ।
पल इक दादू देखन पावे, तो जन्म जन्म की तृषा बुझाइ ॥ ३ ॥

दु:ख पूर्वक विनय कर रहे हैं—अहो ! अब तो मेरे विरह रूप प्रचंड वायु[१] आ लगी है। उसके द्वारा ही उन निश्चल परमात्मा ने मेरे चित्त को अपहरण किया है। मेरा अन्य[२] देवता में प्रेम नहीं होता, न मुझे सांसारिक विषय प्रिय लगते, मेरा मन तो अगम अगोचर परब्रह्म के चिन्तन में ही जाता है। यदि प्रश्न करो—"वह कैसा है ?" तो उनका आकार, चिन्ह और रंग कोई है ही नहीं, फिर कैसा कहूं ? वे तो अनुभव-वेद्य हैं। उन्हीं के स्वरूप-भूत चरणों में मेरा चित्त लय हो रहा है।

सहजावस्था में उनके चरणों में चित्त प्रविष्ट हुआ है, अत: वहां के आनन्द-रस-पान में निमग्न[३] हुआ मन वहां ही दौड़ता है। अब चित्त की ऐसी अवस्था बन गई है कि विषय-विष को त्याग कर प्रभु-चिन्तनामृत का ही पान करता है। मेरे अन्त:करण को प्रभु से भिन्न कुछ भी प्रिय नहीं लगता। क्या करूं, मेरा वश नहीं चलता। यदि मैं एक पलक भी अपने प्रभु को देख पाऊं तो मेरी जन्म-जमान्तरों की दर्शनाभिलाषा मिट जाय। अत: मुझे कृपा करके दर्शन दें।

१२-करुणा विनती। पंजाबी त्रिताल

तूं जनि[१] छाड़े केशवा, मेरे और[२] निवाहनहार हो ॥ टेक॥
अवगुण मेरे देखकर, तू ना कर मैला मन।
दीनानाथ दयाल है, अपराधी सेवक जन हो ॥ १ ॥
हम अपराधी जनम के, नख शिख भरे विकार।
मेट हमारे अवगुणां, तूं गरवा[३] सिरजनहार हो ॥ २ ॥
मैं जन बहुत बिगारिया, अब तुम ही लेहु सँवार।
समर्थ मेरा सांइयाँ, तूं आपै आप उधार हो ॥ ३ ॥
तूं न विसारी केशवा, मैं जन भूला तोहि।
दादू को ओर[२] निवाह ले, अब जनि छाड़े मोहि हो ॥ ४ ॥

वियोग जन्य दु:खपूर्वक विनय कर रहे हैं—मेरे को अन्त तक निवाहने वाले केशव ! आप मुझे मत[१] छोड़ देना। आप तो मेरे को अन्त[२] तक निवाहने वाले हो, अन्य कोई मेरा भार वहन करने वाला नहीं है। (''जो हरि, और कोउ हितु पाऊँ।'' - सूरदास) मेरे दोष देखकर आप अपने मन को मेरे से उपराम न करना। यद्यपि सेवक जन अपराधी होते हैं, तो भी हे दीनानाथ ! आप तो दयालु ही रहते हैं। हम तो जन्म-जन्म के अपराधी हैं, नख से शिखा पर्यन्त विकारों से भरे रहने के कारण तुच्छ हैं, किन्तु आप तो सब प्रकार महान्[३] हैं। अत: हे विश्वकर्त्ता ! मेरे दोषों को नष्ट करिये। मैंने दोषों के द्वारा बहुत कुछ बिगाड़ लिया है। अब आप ही सुधार करके मुझे अपनाइये। हे मेरे समर्थ प्रभो ! आप अपने जनवत्सल स्वभाव के द्वारा ही मेरा उद्धार करो। हे केशव ! यद्यपि मैं सेवक आपको भूल गया हूँ, तो भी आप मुझे मत भूलना। अब मुझे अवश्य अन्त[२] तक निभाना, छोड़ना नहीं।

१३-केवल विनती। गजताल

राम सँभालिये रे, विषम[१] दुहेली[२] बार ॥ टेक॥
मंझ समुद्राँ नावरी रे, बूडे खेवट-बाज[३]।
काढनहारा को नहीं, एक राम बिन आज ॥ १ ॥
पार न पहुँचे राम बिन, भेरा भवजल मांहिं।
तारणहारा एक तूं, दूजा कोई नांहिं ॥ २ ॥

पार परोहन[४] तो चले, तुम खेवहु सिरजनहार ।
भवसागर में डूब है, तुम बिन प्राण अधार ।। ३ ।।
औघट[६] दरिया क्यौं तिरै, बोहिथ[५] बैसणहार ।
दादू खेवट राम बिन, कौण उतारे पार ।। ४ ।।

१३-१५ में केवल उद्धारार्थ विनय कर रहे हैं—हे राम ! यह समय कठिन[१] संकट[२] का है, हमारी सँभाल करो। हमारी जीवन-नौका ऐसे संसार-समुद्र के मध्य है, जहां अच्छे-अच्छे होशियार केवटिया[३] भी डूब जाते हैं। आज हमें निकालने वाला एक राम के बिना अन्य कोई भी नहीं दीखता। हमारा जीवन-बेड़ा संसार-समुद्र के विषय-जल में रुक रहा है, राम के बिना पार नहीं पहुंच सकता। राम ! आप ही एक तारने वाले हैं, अन्य कोई नहीं दीखता। हे सृष्टि कर्ता ! यदि आप खेओ तो ही हमारी नौका[४] पार जा सकती है, प्राणाधार ! आप बिना तो भव-सागर में डूबेहीगी। यह संसार-सागर दुस्तर[६] है, इससे कैसे तैरा जाय ? जीवन-जहाज[५] विषय-जल में बैठने वाला ही है। राम के बिना कौन पार उतारेगा ? राम ! कृपा करके पार करो।

१४-रंगताल

पार नहिं पाइये रे, राम बिना को निर्वाहणहार[१] ।। टेक ।।
तुम बिन तारण को नहीं, दूभर[१] यहु संसार ।
पैरत थाके केशवा, सूझे वार न पार ।। १ ।।
विषम[२] भयानक भव-जला, तुम बिन भारी होइ ।
तू हरि तारण केशवा, दूजा नांहीं कोइ ।। २ ।।
तुम बिन खेवट को नहीं, अतिर तिरा नहिं जाइ ।
औघट[३] भेरा डूब है, नांहीं आन उपाइ ।। ३ ।।
यहु घट[४] औघट विषम[५] है, डूबत मांहिं शरीर ।
दादू कायर राम बिन, मन नहिं बाँधे धीर ।। ४ ।।

हम संसार-सिन्धु का पार नहीं पा रहे हैं। राम ! आप बिना हमको निभाने वाला[१] कौन है ? यह संसार-समुद्र तैरने में कठिन[१] है, आप बिना हमें कोई तारने वाला नहीं है। हे ! केशव ! योगादि साधनों से तैरते हुये हम थक गये हैं और अभी तक मध्य में ही हैं। अब तो हमको इसका वार-पार भी नहीं दीख रहा है। दुस्तर[२] भयानक भव-जल आप के बिना तैरने में भारी हो रहा है। हरे ! आप ही संतारक हैं। केशव ! आपके बिना इससे पार करने वाला केवट अन्य कोई भी नहीं है और हमारे लिये यह अतिर है, तैरा नहीं जाता। अन्य कोई उपाय दीखता नहीं। अत: दुस्तर[३] संसार-समुद्र में हमारा जीवन-बेड़ा डूबेगाही। यह हमारा अन्त:करण[४] भयंकर[५] दुस्तर विषय जल में है और

इन्द्रियादि शरीर डूब रहा है। राम ! आपके बिना मन कायर हो रहा है, धैर्य नहीं रख सकता। अत: आप हमारा उद्धार शीघ्र ही करने की कृपा करें।

१५-रंगताल

क्यों हम जीवैं दास गुसांईं, जे तुम छाड़हु समर्थ सांईं ॥टेक॥
जे तुम जन को मनहिं विसारा, तो दूसर कौण सँभालनहारा ॥ १ ॥
जे तुम परिहर रहो नियारे[1], तो सेवक जाइ कवन[2] के द्वारे ॥ २ ॥
जे जन सेवक बहुत बिगारे, तो साहिब गरवा[3] दोष निवारे ॥ ३ ॥
समर्थ सांई साहिब मेरा, दादू दास दीन है तेरा ॥ ४ ॥

हे समर्थ स्वामिन् ! यदि आप हमको त्याग देंगे तो हम आपके भक्त कैसे जीवित रह सकेंगे ? यदि आप अपने भक्त को मन से भूल जायँ तो उसे अन्य कौन सँभालने वाला है ? यदि आप सेवक को त्याग कर अलग[1] रहेंगे तो वह किसके[2] द्वार पर जायगा ? यदि सेवकजन बहुत बिगाड़ कर देते हैं, तो भी गंभीर[3] हृदय स्वामी उनके दोषों को अपने मन से हटा कर उनकी रक्षा ही करते हैं। भगवन् ! मेरे स्वामी तो आप सर्व प्रकार से समर्थ हैं और मैं आपका दीन दास हूँ। अत: आप मुझे न त्यागिये, मेरा उद्धार करिये।

१६-करुणा। वीर विक्रम ताल

क्यों कर मिलै मोकौं राम गुसांईं, यहु विषिया[1] मेरे वश नाहीं ॥ टेक ॥
यहु मन मेरा दह[2] दिशि धावै, नियरे राम न देखन पावे ॥ १ ॥
जिह्वा स्वाद सबै रस लागे, इन्द्री भोग विषय को जागे ॥ २ ॥
श्रवणहुँ साच कदे नहिं भावै, नैन रूप तहँ देख लुभावै ॥ ३ ॥
काम क्रोध कदे नहिं छीजै, लालच लाग विषय रस पीजै ॥ ४ ॥
दादू देख मिलै क्यों सांईं, विषय विकार बसैं मन मांहीं ॥ ५ ॥

वियोग जन्य दु:ख प्रकट कर रहे हैं—ये विषय[1] लोलुप मन इन्द्रियादि, मेरे वश में नहीं हो रहे हैं, तब मुझे स्वामी राम कैसे मिलेंगे ? यह मेरा मन विषयों के लिए तो दशों[2] दिशाओं में दौड़ता है, किन्तु अति समीप हृदयस्थ राम को नहीं देख पाता। इन्द्रियां विषय-भोगों के लिए जाग्रत रहती हैं। जिह्वा संपूर्ण रसों के आस्वादन में लगती है, श्रवणों को सत्य ब्रह्म-विचार कभी भी प्रिय नहीं लगता, नेत्र सुन्दर रूप को देखकर वहां ही आसक्त हो जाते हैं। काम क्रोधादि कभी भी कम नहीं होते, इस प्रकार लोभ में पड़कर विषय रस का ही पान कर रहा हूँ। अत: मैं देखता हूँ, जब मन में विषय-विकार बसते हैं, तब स्वामी कैसे मिलेंगे ?

१७ परिचय विनती। वीर विक्रम ताल

जो रे भाई राम दया नहिं करते।
नवका नाम, खेवट हरि आपै, यों बिन क्यों निस्तरते ॥ टेक ॥

करणी कठिन होत नहिं मोपैं, क्यों कर ये दिन भरते।
लालच लाग परत पावक में, आपहि आपैं जरते ॥ १ ॥
स्वाद हि संग विषय नहिं छूटै, मन निश्चल नहिं धरते।
खाय हलाहल सुख के तांई, आपैं हीं पच मरते ॥ २ ॥
मैं[1] कामी कपटी क्रोध काया में, कूप परत नहिं डरते।
करवत काम शीश धर अपने, आपहि आप विहरते[2] ॥ ३ ॥
हरि अपना अंग[3] आप नहिं छाड़ै, अपनी आप विचरते।
पिता क्यों पूत को मारै, दादू यों जन तिरते ॥ ४ ॥

साक्षात्कार होने पर उपकार दर्शन रूप विनय कर रहे हैं—हे भाई ! यदि राम दया नहीं करते तो नाम-नौका देकर वे हरि स्वयं ही केवट कैसे बनते ? और ऐसा नहीं करते तो हम संसार से कैसे पार होते ? हठयोगादिक कठिन कर्त्तव्य तो हम से होता नहीं। फिर ये वियोग जन्य दु:ख पूर्ण जीवन के दिन कैसे पूरे करते ? लोभ में लग कर अपने आप ही चिन्ताग्नि में पड़कर जलते रहते। विषयों के स्वाद के संसर्ग से विषयों का त्याग नहीं होता और मन को स्थिर करके भगवद् भजन में नहीं रख पाते, सुखाशा से विषय रूप महा विष खाकर, सांसारिक कार्यों में ही पच-पच कर मर जाते। अहंकार[1] के कारण शरीर में आसक्त हो, कामी, कपटी और क्रोधी बनकर संसार कूप में पड़ने से कभी भी नहीं डरते तथा काम रूप आरा अपने अहंकार रूप शिर पर रखकर आप ही अपने को विदीर्ण[2] करते रहते। किन्तु स्वयं हरि अपना भक्त-वत्सलतादि लक्षण[3] नहीं छोड़ते, वे अपनी नीति में आप ही चलते रहते हैं अर्थात् भक्तों का उद्धार करते रहते हैं। ठीक तो है परम-पिता परमेश्वर भक्त-पुत्रों को कैसे मार सकते हैं ? वे तो उद्धार ही करते हैं। इस प्रकार भगवान् की कृपा से भक्तजन संसार से पार होते हैं।

१८-विरह विलाप विनती। द्वितीय ताल

तो लग[1] जनि मारे तूं मोहि, जो लग मैं देखूं नहिं तोहि ॥टेक॥
अब के विछुरे मिलन कैसे होइ, इहि विधि बहुरि न चीन्हे कोइ ॥ १ ॥
दीन दयाल दया कर जोइ, सब सुख आनंद तुम तैं होइ ॥ २ ॥
जन्म-जन्म के बन्धन खोइ, देखन दादू अहनिश रोइ ॥ ३ ॥

भक्त वत्सलता का निश्चय करके विरह दुख निवारणार्थ विलाप युक्त विनय कर रहे हैं—प्रभो ! तब तक आप मेरे प्राण पिंड का वियोग मत[1] करना, जब तक मैं आपके दर्शन न कर लूं। इस मानव देह में आकर भी आप से न मिल सका तब अन्य शरीरों में तो इस शरीर के समान मेरे मन, बुद्धि आदि कोई भी आपको न पहचान सकेंगे, फिर उनमें मिलना कैसे होगा ? हे आनंद-स्वरूप ! आपके मिलने से ही जन्म जन्मान्तरों के कर्म-बन्धन नष्ट होकर, मुझे सब प्रकार से सुख होगा। मैं वियोगी आप के दर्शनार्थ दिन-रात रो रहा हूँ; अत: हे दीनदयालो ! दया करके मेरी ओर देखिये।

१९-स्पर्श विनती । द्वितीय ताल

संग न छाडूं मेरा पावन पीव, मैं बलि तेरे जीवन जीव ॥ टेक ॥
संग तुम्हारे सब सुख होहि, चरण कमल मुख देखूं तोहि ॥ १ ॥
अनेक जतन कर पाया सोइ, देखूं नैनहुँ तो सुख होइ ॥ २ ॥
शरण तुम्हारी अंतर वास, चरण कमल तहँ देहु निवास ॥ ३ ॥
अब दादू मन अनत न जाइ, अंतर वेधि[१] रह्यो ल्यौ लाइ ॥ ४ ॥

नित्य मिलनार्थ विनय कर रहे हैं—मेरे प्राणाधार स्वामिन् ! मैं आप की बलिहारी जाता हूँ। आप मुझ पर ऐसी दया करो, जिससे मैं आपका संग न छोड़ सकूं। आपके संग से मुझे संपूर्ण सुख होते हैं, मैं आपके चरण-कमल और मुखारविन्द का दर्शन करता रहता हूँ। भक्ति आदि नाना साधन करके आपके स्वरूप को प्राप्त किया है, उसे निरन्तर नेत्रों से देखता रहूं, तभी आनन्द रहता है। मैं आपकी शरण हूँ। आन्तर समाधि अवस्था में जहां आपके चरण-कमलों का वास है, वहां ही मुझे निवास दीजिये। अब मेरा मन अन्य ओर नहीं जाता। मैं सभी अन्तरायों को छेदन[१] करके आपके स्वरूप में ही वृत्ति लगाये रहता हूँ।

२०-परिचय विनती (गुजराती भाषा) त्रिताल

नहिं मेलूं, राम ! नहिं मेलूं।
मैं सोधि[१] लीधो[२] नहिं मेलूं[३], चित तूं सूं बाँधूं नहिं मेलूं ॥ टेक॥
हूं तारे[४] काजे तालाबेली, हवे[५] केम[६] मने जाशे मेली ॥ १ ॥
साहसि[७] तूं ने मनसों गाढ़ौ[८], चरण समानो केवी[९] पेरे[१०] काढौ ॥ २ ॥
राखिश[१४] हृदे, तूं मारो स्वामी, मैं दुहिले[११] पाम्यों[१२] अंतरजामी ॥ ३ ॥
हवे न मेलूं, तूं स्वामी मारो[१३], दादू सन्मुख सेवक तारो ॥ ४ ॥

साक्षात्कार होने पर विनय कर रहे हैं—हे राम ! मैंने आपको खोज[१] लिया[२] है। अब मन, वचन, कर्म से कभी भी नहीं त्यागूंगा[३]। अपने चित्त को आपके चिन्तन में ही बांधूंगा, चिन्तन कभी न छोडूंगा। मैं आपके[४] लिये व्याकुल हूं, अब[५] मुझे त्याग कर कैसे[६] जाओगे ? मैंने उत्साह[७] पूर्वक दृढ़[८] मन से आपको पकड़ा है और आपके चरणों में ही लगा हुआ हूँ, आप मुझे दूर[१०] कैसे[९] निकालते हो ? हे अन्तर्यामी ! मैंने विरह-व्यथा सहते हुये बड़ी कठिनता[११] से आपको प्राप्त[१२] किया है, आप मेरे[१३] स्वामी हैं, मैं तो आपको हृदय में रखूंगा[१४] अब नहीं त्यागूंगा। आप मेरे स्वामी हैं और मैं आपका सेवक हूँ, अत: आपके सन्मुख ही रहूंगा।

२१-परिचय करुणा विनती । दादरा

राम ! सुनहुन विपति हमारी हो, तेरी मूरति की बलिहारी हो ॥ टेक ॥
मैं जु चरण चित चाहना, तुम सेवक साधारना ॥ १ ॥
तेरे दिन प्रति चरण दिखावना, कर दया अंतर आवना ॥ २ ॥
जन दादू विपति सुनावना, तुम गोविन्द तपत बुझावना ॥ ३ ॥

प्रत्यक्ष दर्शनार्थ दु:ख पूर्ण विनय कर रहे हैं—हे राम ! मैं आपके स्वरूप की बलिहारी जाता हूँ, मेरा दु:ख सुनो। मैं आपके चरण-दर्शन की इच्छा कर रहा हूँ, आप भी साधारणत: सेवक के लिए हितकर ही हैं। अत: दया करके मेरे हृदय में आओ, प्रतिदिन अपने चरणों का दर्शन कराओ। मैं आपका जन यह वियोग-व्यथा सुना रहा हूँ। हे गोविन्द ! आप दर्शन देकर मेरी विरहाग्नि बुझाना।

२२-परिचय-विनती प्रश्न। द्रुतताल

कौण भांति भल मानैं गुसाईं, तुम भावै सो मैं जानत नाहीं॥ टेक॥
कै भल मानैं नाचें गायें, कै भल मानैं लोक रिझायें ॥ १ ॥
कै भल मानैं तीरथ न्हायें, कै भल मानैं मूंड मुंडायें ॥ २ ॥
कै भल मानैं सब घर त्यागी, कै भल मानैं भये वैरागी ॥ ३ ॥
कै भल मानैं जटा बधायें, कै भल मानैं भस्म लगायें ॥ ४ ॥
कै भल मानैं वन वन डोलें, कै भल मानैं मुख ही न बोलें ॥ ५ ॥
कै भल मानैं जप तप कीयें, कै भल मानैं करवत लीयें ॥ ६ ॥
कै भल मानैं ब्रह्म गियानी, कै भल मानैं अधिक धियानी ॥ ७ ॥
जे तुम भावै सो तुम पै आहि, दादू न जाणैं कह समझाइ ॥ ८ ॥

परिचय होने पर प्रश्न रूप विनय कर रहे हैं—स्वामिन् ! किस प्रकार आपकी उपासना करने से आप अच्छा मानते हैं ? आपको जो प्रिय है वह प्रकार मैं नहीं जानता। क्या आप नाच-गान करने से, वा लोगों के रिझाने से, वा तीर्थ स्नान से, वा शिर मुंडाने से वा घर आदि सर्वस्व त्याग कर विरक्त होने से, वा जटा बढ़ाने से, वा भस्म लगाने से, वा वन-वन विचरने से, वा मौन रखने से, वा जप-तप करने से, वा काशी-करवत लेने से, वा विशेष ध्यानी होने से, वा ब्रह्म-ज्ञानी होने से अच्छा मानते हैं ? जो भी आपको प्रिय है, वह आप ही जानते हैं, मैं नहीं जानता। अत: आप कहकर समझा दीजिये, फिर मैं वहीं करूंगा। उक्त प्रश्नों के उत्तर वाणी की साखियों द्वारा इस प्रकार हैं—

साखी से उत्तर—

दादू जे तूं समझै तो कहूं, साचा एक अलेख। (१४-१०)
डाल पान तज मूल गहि, क्या दिखलावै भेख॥ १॥
दादू सचु बिन सांई ना मिलै, भावै भेष बनाइ। (१४-४१)
भावै करवत उरध मुख, भावै तीरथ जाइ॥ २॥

२३ - परिचय विनती। द्रुतताल

अहो ! गुण तोर, अवगुण मोर, गुसांईं ?
तुम कृत कीन्हा, सो मैं जानत नांहीं॥ टेक॥

तुम उपकार किये हरि केते, सो हम विसर गये।
आप उपाइ अग्निमुख[१] राखे, तहां प्रतिपाल भये हो गुसांईं ॥ १ ॥
नख-शिख साज किये हो सजीवन, उदर आधार दिये ।
अन्न-पान जहँ जाइ भस्म हो, तहँ तैं राखि लिये हो गुसांईं ॥ २ ॥
दिन दिन जान जतन कर पोखे, सदा समीप रहे।
अगम अपार किये गुन केते, कबहुँ नांहिं कहे हो गुसांईं ॥ ३ ॥
कबहूँ नांहिं न तुम तन चितवत, माया मोह परे ।
दादू तुम तज जाइ , गुसांईं, विषया मांहिं जरे हो गुसांईं ॥ ४ ॥

साक्षात्कार होने पर उपकार प्रदर्शन रूप विनय कर रहे हैं—अहो ! आपके अनन्त उपकार हैं, किन्तु हे स्वामिन् ! आपके किये हुये उपकारों को मैं नहीं जानता, सो मेरा महान् दोष है। हरे ! आपने कितने ही उपकार किये हैं, उनको हम भूल गये हैं। आपने उत्पन्न किया और जठराग्नि[१] के मुख में रख करके भी आप हमारे रक्षक हुये। नख से शिखा पर्यन्त शरीर को यथायोग्य अंगों से सजाकर जीविनी शक्ति से युक्त किया और उदर-गुहा में आश्रय दिया, जहां जाकर अन्न-जल पच जाते हैं, वहां पर आपने ही रक्षा की। प्रतिदिन हमारे पोषण का विचार रखते हुये प्रयत्नपूर्वक हमारा पोषण किया और सदा समीप ही रहे। इस प्रकार आपने कितने ही उपकार किये हैं, जो अगम अपार हैं, फिर भी आपने कभी यह नहीं कहा—"हमने तेरे प्रति उपकार किया है।" और हमारा इतना महान् दोष है—आपके स्वरूप की ओर हमने देखा भी नहीं। आपको छोड़ कर मायिक मोह में पड़े हुये विषयों में रत रहे और विषयाग्नि में ही जलते रहे।

२४-उपदेश चेतावनी । एकताल

कैसे जीविये रे, सांई संग न पास।
चंचल मन निश्चल नहीं, निशि दिन फिरे उदास ॥ टेक ॥
नेह नहीं रे राम का, प्रीति नहीं परकाश।
साहिब का सुमिरण नहीं, करे मिलन की आश ॥ १ ॥
जिससे देखे तूं फूलियारे, पाणी पिंड बँधाणा मांस ।
सो भी जल-बल जाइगा, झूठा भोग विलास॥ २ ॥
तो जीवीजै जीवणा, सुमरै श्वासैं श्वास।
दादू परकट पिव मिलै, तो अंतर होइ उजास॥ ३ ॥

प्राणी को उपदेश द्वारा सावधान कर रहे हैं—प्रभु पास नहीं हैं, चंचल मन प्रभु से उपराम होकर रात-दिन विषयों में विचर रहा है, ऐसी स्थिति में तू कैसे जी रहा है ? राम में स्नेह नहीं है और राम में प्रीति न होने से हृदय में ज्ञान का प्रकाश भी नहीं हो सका है। प्रभु का स्मरण भी नहीं करता, फिर भी प्रभु से मिलने की आशा करता है, यह कैसे सफल होगी ? जिसे देखकर तू फूल रहा है, यह शरीर तो जल-बिन्दु से बना हुआ है और मांस वृद्धि से ही सुन्दर लग रहा है। सो भी जल कर

भस्म हो जायेगा। भोग-सुख भी मिथ्या हैं। अत: प्रति श्वास प्रभु का स्मरण करते हुए जीवित रहना चाहिए। ऐसा ही जीवन अच्छा होता है। ऐसा जीवन होगा तो ही अन्त:करण में ज्ञान का प्रकाश होकर प्रभु का प्रत्यक्ष मिलन होगा।

२५- हितोपदेश । चटताल

जियरा मेरे सुमिर सार, काम क्रोध मद तज विकार॥ टेक॥
तूं जनि भूलै मन गँवार, शिर भार न लीजै मान हार ॥ १ ॥
सुन समझायो बार बार, अजहूँ न चेतै, हो हुसियार ॥ २ ॥
कर तैसें भव तिरिये पार, दादू अबतैं यही विचार ॥ ३ ॥

मन को कल्याणप्रद उपदेश कर रहे हैं—हे मेरे मन ! काम, क्रोध, मदादि विकारों को त्याग कर विश्व के सार परब्रह्म का स्मरण कर। मूर्ख मन ! तू प्रभु को मत भूल, स्मरण करने में हार मान कर अपने शिर पर पापों का भार मत ले। अरे कुछ सुन तो सही, मैंने तुझे बारंबार समझाया है, फिर भी तू अभी तक सचेत नहीं हो रहा है। शीघ्र सावधान होकर, अभी से ऐसे विचार और ऐसे कार्य कर, जिनसे संसार-समुद्र से पार हो सके।

२६ (क) भय चेतावनी । त्रिताल

जियरा चेत रे जनि जारे।
हेजैं हरि सौं प्रीति न कीन्ही, जनम अमोलक हारे ॥ टेक॥
बेर बेर समझायो रे जियरा, अचेत न होइ गँवारे।
यहु तन है कागद की गुड़िया, कछु इक चेत विचारे ॥ १ ॥
तिल तिल तुझ को हानि होत है, जे पल राम विसारे ।
भय भारी दादू के जिय में, कहु कैसे कर डारे ॥ २ ॥

मन को भय से सावधान कर रहे हैं—हे मन ! सावधान हो, चिन्तादि से क्यों जल रहा है ? तूने स्नेह से हरि की भक्ति नहीं की, इस अमूल्य जन्म को खो रहा है ?

अरे मूर्ख मन ! तू असावधान मत हो । तुझे बारंबार समझाया है, यह शरीर कागज की गुड़िया के समान है, इसे नष्ट होते क्या देर लगेगी ? सचेत होकर कुछ तो विचार कर, क्षण-क्षण में तेरी हानि हो रही है। यदि तू एक पल भर भी राम को भूलेगा तो तेरे हृदय में महान् भय की संभावना है कि यह मन पता नहीं किस प्रकार के कुटिल कर्म कर डाले और कैसी योनि में डाल दे । अत: कर्म-बंधन काटने के लिए शीघ्र राम का भजन कर।

२६ (ख) पंजाबी-त्रिताल

जियरा, काहे रे मूढ डोले,
वनवासी लाला पुकारे, तुंहीं तुंहीं कर बोले ॥ टेक॥
साथ सवारी ले न गयो रे, चालण लागो बोले।
तब जाइ जियरा जाणैगो रे, बाँधे ही कोइ खोले ॥ १ ॥

तिल तिल मांहीं चेत चली रे, पंथ हमारा तोले।
गहिला दादू कछू न जाणै, राख लेहु मेरे मोले॥ २ ॥

अरे मूढ़ मन ! वन की चिड़िया भी 'तुंहीं तुंही'' बोलकर भगवान् को पुकारती है, फिर तू भगवान् का चिन्तन छोड़कर विषयों में क्यों भटक रहा है ? कोई भी साथ में अश्वादि सवारी नहीं ले गया है, स्वयं जाने वाला ही बोलता है- 'मेरे साथ कुछ भी नहीं जा रहा है, मैं खाली हाथ जा रहा हूँ।' जब तू भी यमदूतों के हाथ जायेगा, तब जानेगा, वह क्लेश कैसा होता है ! वे तुझे अपनी पाश में बाँधकर ले जायेंगे, कोई भी न खोल सकेगा। अत: सावधान होकर क्षण-क्षण में अपने हित का विचार करते हुये, हमारे भगवद्-भजन रूप मार्ग में चल। हे मेरे परमेश्वर ! यह मन अनजान है और मैं इसे आप में निरंतर स्थापन कर सकूं, ऐसा साधन कुछ भी नहीं जानता। अत: आप ही इसको अपने स्वरूप में स्थिर रखने की कृपा करिये। (यह भजन हस्तलिखित सब पुस्तकों में नहीं है, किसी-किसी में है।-सं.)

२७-अपरबल वैराग्य । त्रिताल

ता सुख को कहो का कीजे, जातैं पल पल यहु तन छीजे॥ टेक॥
आसन कुंजर शिर छत्र धरीजे, तातैं फिर फिर दु:ख सहीजे॥ १ ॥
सेज सँवार सुन्दरि संग रमीजे, खाइ हलाहल भरम मरीजे॥ २ ॥
बहु विधि भोजन मान रुचि लीजे, स्वाद संकट भ्रम पाश परीजे॥ ३ ॥
ये तज दादू प्राण पतीजे, सब सुख रसना राम रमीजे॥ ४ ॥

प्रचंड वैराग्य दिखा रहे हैं—जिससे क्षण-क्षण में यह शरीर क्षीण होता है, उस विषय-सुख को प्राप्त करके क्या करना है, बताओ ? यदि हस्ति पर बैठ, शिर पर छत्र धारण करके राजा बनेंगे तो राज-मद से किये हुये अनर्थों के कारण पुन: दु:ख सहने होंगे। सजी हुई शय्या पर सुन्दरी के साथ रमण करना, भ्रमवश विषय रूप महाविष खाकर मरना है। स्वादिष्ट मानकर नाना प्रकार के भोजन करते रहेंगे तो स्वाद के द्वारा स्वादु भोजन-प्राप्ति के संकट में पड़कर भ्रम-पाश में ही बँधे होंगे। अत: ये सब विषय त्यागकर जब प्राणी विश्वास पूर्वक भगवद्-भजन करता है, तब ही उसे सब प्रकार से परमानन्द प्राप्त होता है।

२८-उपदेश । एकताल

मन निर्मल तन निर्मल भाई, आन उपाइ विकार न जाई ॥ टेक॥
जो मन कोयला तो तन कारा, कोटि करै नहिं जाइ विकारा ॥ १ ॥
जो मन विषहर तो तन भुवंगा, करे उपाइ विषय पुनि संगा ॥ २ ॥
मन मैला तन उज्ज्वल नांहीं, बहु पचहारे विकार न जांहीं ॥ ३ ॥
मन निर्मल तन निर्मल होई, दादू साच विचारे कोई ॥ ४ ॥

सत्योपदेश कर रहे हैं—हे भाई ! यदि मन निर्मल होगा तो इन्द्रियादि शरीर भी निर्मल होगा। मन निर्मल हुये बिना अन्य उपाय से विकार नष्ट नहीं होते। यदि मन मलीन है तो इन्द्रियादि

शरीर भी मलीन ही रहेगा, चाहे कोटि उपाय करो, विकार दूर न हो सकेंगे। यदि मन विषय-विष युक्त सर्प बन रहा है तो शरीर भी सर्प ही है और फिर भी विषयों के साथ रहने का उपाय करता रहता है। जब तक मन मलिन है तब तक इन्द्रियादि शरीर उज्ज्वल नहीं हो सकता। बहुत लोग परिश्रम करके हार गये हैं किन्तु मन शुद्धि बिना इन्द्रियों के विकार नष्ट नहीं होते। मन निर्मल होते ही इन्द्रियादि शरीर निर्मल हो जाता है। यह बात सत्य है, कोई भी विचार करके देख ले।

२९-उपदेश चेतावनी। त्रिताल

मैं मैं करत सबै जग जावै, अजहूँ अंध न चेते रे ।
यह दुनिया सब देख दिवानी, भूल गये हैं के ते रे ॥टेक॥
मैं मेरे में भूल रहे रे, साजन सोइ विसारा ।
आया हीरा हाथ अमोलक, जन्म जुवा ज्यों हारा ॥ १ ॥
लालच लोभैं लाग रहे रे, जानत मेरी मेरा ।
आपहि आप विचारत नांहीं, तूं काको को तेरा ॥ २ ॥
आवत है सब जाता दीसे, इनमें तेरा नांहीं ।
इन सौं लाग जन्म जनि खोवे, शोधि देख सचु[१] मांहीं ॥ ३ ॥
निहचल सौं मन माने मेरा, सांई सौं बन आई ।
दादू एक तुम्हारा साजन, जिन यहु भुरकी लाई ॥ ४ ॥

उपदेश द्वारा सावधान कर रहे हैं—मैं धनी, मैं बली, आदि अहंकार करते हुये जगत् के सभी प्राणी काल के मुख में जा रहे हैं, यह देख करके भी अभी तक मदांध प्राणी सचेत नहीं होते। यह सब संसार पागल है। इसे देखकर कितने ही विचारशील लोग भी अपना हित साधन करना भूल गये हैं। "मैं और मेरे" अभिमान में आकर अपना जो सच्चा स्वामी परमात्मा था, उसके उपकार को भूलकर उसे भी भूल रहे हैं। यह मनुष्य जन्म रूप अमूल्य हीरा हाथ में आया था किन्तु इसे भी जैसे जुआरी अपने धन को जुआ में हारता है, वैसे ही विषयों में खो रहा है। लोभ-लालच में लग रहे हैं और जानते हैं—'यह नारी मेरी है, यह धन-धाम मेरा है', किन्तु अपने हृदय में स्वयं विचार नहीं करते कि तू किसका है और तेरा कौन है! ये सब धनादि तो आते हैं और जाते हुये भी दीख रहे हैं। इनमें तो तेरा कुछ भी नहीं है। यदि तेरे हों तो तेरे हाथ से क्यों चले जाते हैं ? इनमें आसक्त होकर अपना जन्म व्यर्थ ही क्यों खोता है ? विचार द्वारा खोज करके देख, परम सुख[१] तो तेरे भीतर ही है। हमारा मन तो उस निश्चल परमात्मा के भजन में ही सुख मानता है, उसी से हमारी सब बात ठीक बनी है। तुम सब भी याद रक्खो, जिस परमात्मा ने यह माया-मोहनी डाली है, वही तुम्हारा सच्चा मित्र है, अन्य सब तो स्वार्थ के ही साथी हैं।

३०-उपदेश चेतावनी। त्रिताल

का जिवना का मरणा रे भाई, जो तैं राम न रमसि अघाई ॥ टेक ॥
का सुख संपति छत्रपति राजा, वनखंड जाइ बसे किहिं काजा ॥ १ ॥

का विद्या गुन पाठ पुरानां, का मूरख जो तैं राम न जानां ॥ २ ॥
का आसन कर अहनिशि जागे, का फिर सोवत राम न लागे ॥ ३ ॥
का मुक्ता, का बंधे होई, दादू राम न जाना सोई॥ ४ ॥

यथार्थ ब्रह्मज्ञान से ही जीवन की सफलता है यह बता रहे हैं—हे भाई ! यदि तू राम के स्वरूप में अरस-परस होकर अद्वैतानन्द से तृप्त नहीं हुआ तो अधिक जीने में और मरणे में क्या विशेषता है ? छत्रपति राजा होकर संपत्ति का सुख लिया तो भी क्या तृप्ति होती है ? यदि राज्यादि से तृप्ति हो जाती तो राजा लोग किस लिये वन में जाकर बसे थे ? हे अज्ञ ! यदि तूने राम को नहीं जाना तो तेरे अधिक विद्या, गुनने, कला सीखने और पुराण-पाठ करने से क्या लाभ है ? यदि राम के चिन्तन में नहीं लगे तो सिद्धि प्राप्ति के लिये आसन लगा कर दिन-रात जागने से या सोने से क्या लाभ है ? जिनने राम को अद्वैत रूप से नहीं जाना, उनकी मुक्तता और बद्धता में क्या विशेषता है ? वे तो दोनों ही समान हैं, अर्थात् वाणी मात्र से अपने को मुक्त कहने वाला भी बद्ध ही है।

३१-मन प्रबोध । पंजाबी त्रिताल

मन रे, राम बिना तन छीजे।
जब यहु जाय मिले माटी में, तब कहु कैसे कीजे॥ टेक॥
पारस परस कंचन कर लीजे, सहज सुरति सुखदाई।
माया बेलि विषय फल लागे, तापर भूल न भाई॥ १ ॥
जब लग प्राण पिंड है नीका, तब लग ताहि जनि[1] भूले।
यहु संसार सेमल के सुख ज्यों, तापर तूं जनि फूले ॥ २ ॥
अवसर यही जान जगजीवन, समझ देख सचु पावे।
अंग अनेक आन मत भूले, दादू जनि[1] डहकावे॥ ३ ॥

मन को उपदेश कर रहे हैं—हे मन ! राम भजन के बिना शरीर क्षीण हो रहा है, फिर जब यह नर शरीर मिट्टी में मिल जायेगा, तब बता तू अन्य शरीरों में कैसे राम-भजन कर सकेगा ? अत: शीघ्र ही ब्रह्माकार वृत्ति द्वारा सुखप्रद सहज समाधि में ब्रह्मरूप पारस से मिलकर मन-लौह को कंचन-सा निर्मल कर ले। हे भाई ! माया बेलि के तो विषय रूप विष-फल ही लगे हैं, उन पर तू भूल कर भी मत जाना। जब तक स्थूल-सूक्ष्म-शरीर अच्छे हैं तब तक प्रभु का भजन करना मत[1] भूल। शरीर रोगी या अति वृद्ध होने पर भजन होना कठिन है। यह संसार सेमल वृक्ष के समान प्रतीति मात्र ही सुखप्रद है। सेमल के लाल फूलों को देखकर मांस के लोभ से गिद्ध आते हैं और निराश होते हैं। शुक पक्षी उसके फल को खाने के लिए उसके पास जाता है किन्तु उसमें रुई निकलने से वह भी निराश ही होता है। वैसे ही सांसारिक सुख से किसी की भी आशा पूर्ण नहीं होती, उस सुख पर तू मत प्रसन्न हो। यह अच्छा अवसर है, जग-जीवन परमात्मा को ही अपना जान कर विचार द्वारा उनका साक्षात्कार कर, तो तुझे परमानन्द प्राप्त होगा। परमात्मा से अन्य

स्त्री-पुत्रादि अनेक शरीरों को देखकर उनकी आसक्ति द्वारा प्रभु को मत भूल व उनमें मोह बहकावे में मत आ।

३२-मृगोक्ति उपदेश । झपताल

मोह्यो मृग देख वन अंधा, सूझत नहीं काल के फंधा॥ टेक॥
फूल्यो फिरत सकल वन मांहीं, शिर सांधे शर सूझत नांहीं ॥ १ ॥
उदमद[1] मातो वन के ठाट, छाड़ चल्यौ सब बारह[2] बाट ॥ २ ॥
फंध्यो न जाने वन के चाइ[3], दादू स्वाद बँधानो आइ ॥ ३ ॥

मृग के दृष्टांत से उपदेश कर रहे हैं—विचार नेत्रों से हीन जीव रूप मृग, संसार-वन को देखकर मोहित हो रहा है। इसे काल का कर्म-फल रूप जाल का फंदा नहीं दीख रहा है। यह प्रसन्न हुआ वन के संपूर्ण विषय-वृक्षों में विचर रहा है, किन्तु इसके पीछे कालरूप व्याध, इसके शिर पर आयु समाप्ति रूप बाण संधान किये हुये आ रहा है, वह इसे नहीं दीखता। यह स्त्री-पुत्रादि रूप वृक्षों द्वारा संसार-वन की सजावट देखकर मतवाले के समान उन्मत्त[1] हो रहा है और अपने कल्याण के सभी साधनों को छोड़कर, बहिर्मुख[2] हुआ पतन की ओर जा रहा है। यह संसार-वन के विषय-वृक्षों को खाने की आशा[3] में जाल नहीं दिखने से अपने को फंदे में आया हुआ नहीं समझता किन्तु विषय स्वाद के कारण ही कर्म-बंधन में आ बँधा है।

३३-मन प्रति उपदेश । निसारुक ताल

काहे रे मन राम विसारे, मानुष जन्म जाय जिय हारे ॥टेक॥
मात पिता को बन्ध न भाई, सब ही स्वप्ना कहा सगाई ॥ १ ॥
तन धन जौबन झूठा जाणी, राम हृदय धर सारंग[1] प्राणी[2] ॥ २ ॥
चंचल चित वित झूठी माया, काहे न चेते सो दिन आया ॥ ३ ॥
दादू तन मन झूठा कहिये, राम-चरण गह काहे न रहिये ॥ ४ ॥

मन को उपदेश कर रहे हैं-हे मन ! राम को क्यों भूल रहा है ? देख, यह मनुष्य-जन्म भोगों में व्यर्थ ही नष्ट हो रहा है, तू स्वयं ही इसे हार रहा है। माता-पिता-भाई-बान्धव कोई भी तेरे नहीं हैं। यह सब संसार स्वप्न ही है। इससे क्या सम्बन्ध बाँध रहा है ? शरीर, यौवन और धनादि को मिथ्या समझ कर हृदय में प्राणाधार[2] परमेश्वर[1] राम का ध्यान धर। अरे चंचल चित्त ! यह द्रव्यादि सभी माया मिथ्या है। जिस दिन इन सबको छोड़ने की इच्छा के बिना भी छोड़ना है, वह मृत्यु का दिन भी समीप आ रहा है फिर तू क्यों नहीं सावधान होता ? हे मन ! यह तन शास्त्र द्वारा मिथ्या ही कहा गया है, तू राम के चरणों को ग्रहण करके क्यों नहीं स्थिर रहता है ?

३४- मनुष्य देह महात्म्य । झपताल

ऐसा जन्म अमोलक भाई, जामें आइ मिलै राम राई ॥टेक॥
जामें प्राण प्रेम रस पीवै, सदा सुहाग सेज सुख जीवै ॥ १ ॥
आत्मा आइ राम सौं राती, अखिल अमर धन पावे थाती ॥ २ ॥

प्रकट दर्शन परसन पावै, परम पुरुष मिल मांहिं समावै ॥ ३ ॥
ऐसा जन्म नहीं नर आवै, सो क्यों दादू रत्न गवावैं ॥ ४ ॥

मानव-तन की महिमा कह रहे हैं—हे भाई ! मनुष्य जन्म ऐसा अमूल्य है कि—इसमें आने पर विश्व के राजा राम भी मिल जाते हैं । प्राणी भगवत्-प्रेम रस का पान करता है और सदा हृदय शय्या पर प्रभु को देखते हुये सौभाग्य सुख से जीवन व्यतीत करता है । जीवात्मा सांसारिक भावनाओं से ऊपर आकर राम में अनुरक्त होता है और सम्पूर्ण विश्व के अमर धन परब्रह्म रूप धरोहर प्राप्त करता है । इस प्रकार प्रत्यक्ष दर्शन, स्पर्श प्राप्त करके आत्मा परमपुरुष परमात्मा में मिल कर उसी में समा जाता है । हे नर ! ऐसा जन्म चौरासी में अन्य नहीं प्राप्त होता, सो ऐसे रत्न रूप जन्म को विषयों में क्यों खो रहा है ?

३५-परिचय सत्संग । दीपचन्दी ताल

सत्संगति मगन पाइये, गुरु प्रसादैं राम गाइये ॥ टेक ॥
आकाश धरणि धरीजे, धरणी आकाश कीजे,
शून्य मांहिं निरख लीजे ॥ १ ॥
निरख मुक्ताहल मांहीं साइर[१] आयो, अपने पीया हौं ध्यावत खोजत पायो ॥ २ ॥
सोच साइर अगोचर लहिये, देव देहुरे मांहीं कवन कहिये ॥ ३ ॥
हरि को हितारथ ऐसो लखै न कोई, दादू जे पीव पावै अमर होई ॥ ४ ॥

सत्संग से साक्षात्कार की पद्धति बता रहे हैं—निरंतर सत्संग में लगे रहकर, कृपा पूर्वक सद्‌गुरु की बताई हुई विधि से राम-गुण गान करते हुये राम को प्राप्त करो । ब्रह्म-स्वरूप आकाश को वृत्ति रूप पृथ्वी में धरो अर्थात् निरंतर ब्रह्माकार वृत्ति रक्खो । वृत्ति रूप पृथ्वी को ब्रह्म रूप आकाश बनाओ अर्थात् वृत्ति को निर्विकार करो, फिर शून्य रूप सहज समाधि में परब्रह्म का साक्षात्कार कर लो । इस प्रकार देखने पर ही हृदय-सागर[१] में परब्रह्म रूप मोती हमारी ज्ञान-दृष्टि में आया है । हमने ध्यान तथा विचार द्वारा खोजते हुये ही अपने प्रभु को प्राप्त किया है । तुम भी विचार द्वारा हृदय-सरोवर में ही इन्द्रियातीत परब्रह्म को प्राप्त करो । परब्रह्म देव चूना पत्थर के मंदिर में ही है, यह कौन कहता है ? वह एकदेशी नहीं हो सकता, वह तो सर्वत्र ही व्यापक है । अपने कल्याणार्थ हरि को उक्त प्रकार कोई भी अज्ञानी नहीं जानता । यदि यह जानकर ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है तो वह ब्रह्म रूप होकर अमर हो जाता है ।

३६-उपदेश चेतावनी । एकताल

कौण जनम कहँ जाता है, अरे भाई, राम छाड़ि कहँ राता है ॥ टेक ॥
मैं मैं मेरी इन सौं लाग, स्वाद पतंग न सूझै आग ॥ १ ॥
विषयां सौं रत गर्व गुमान, कुंजर काम बँधे अभिमान ॥ २ ॥
लोभ मोह मद माया फंध, ज्यों जल मीन न चेतै अंध ॥ ३ ॥
दादू यहु तन यों ही जाइ, राम विमुख मर गये विलाइ ॥ ४ ॥

३६-३८ में उपदेश द्वारा सावधान कर रहे हैं—अरे भाई ! तेरा यह नर-जन्म किस लिये हुआ है और तू किधर जा रहा है ? यह तो राम की प्राप्ति के लिए हुआ था, किन्तु तू राम भक्ति को छोड़कर कहां अनुरक्त हो रहा है ? जिन विषयों में, "मैं महान् हूँ, ये नारी, सम्पत्ति मेरी है।" इस प्रकार अहंकार द्वारा अनुरक्त हो रहा है, वे तेरे कल्याण में बाधक हैं। रूपास्वादन के वश पतंग को जैसे दीपक-ज्योति अग्नि रूप नहीं भासती और वह उसमें जल मरता है, वैसे ही तुझे भी सौन्दर्य अग्नि रूप नहीं दीखता, तू भी उसमें पड़कर परमार्थ दृष्टि से मर जाता है। जैसे हस्ति काम-वश होकर अपने मिथ्याभिमान से बन्धन में पड़ जाता है (हस्ति को पकड़ने वाले गहरे गड्ढे को छाप कर उस पर कागज की हथिनी रख देते हैं, हाथी उस पर कूद कर गड्ढे में पड़ जाता है। फिर भूख-प्यास से निर्बल करके उसे बाँध लाते हैं) वैसे ही तू बल के घमंड और धन के अभिमान से विषयों में अनुरक्त हो रहा है। जैसे जल में मच्छी स्वतंत्र होकर भी जिह्वा-रस के वश होकर फंदे में पड़ जाती है, वैसे ही ज्ञान-नेत्रों से हीन तू भी लोभ, मोह, मदादि रूप माया के फंदे में पड़ता है, सावधान नहीं होता। राम से विमुख अनेक मानव जन्म-जन्म कर चौरासी में चले गये हैं, उनका कोई पता नहीं। वैसे ही यह तेरा नर शरीर भी व्यर्थ ही नष्ट हो जायेगा। अत: राम-भजन कर।

३७-एकताल

मन मूरखा तैं क्या कीया, कुछ पीव कारण वैराग ना लीया।
रे तैं जप तप साधी क्या दीया ॥ टेक ॥
रे तैं करवत काशी कद सह्या, रे तू गंगा मांहीं ना बह्या।
रे तैं विरहनि ज्यों दुख ना सह्या॥ १ ॥
रे तूं पाले पर्वत ना गल्या, रे तैं आप ही आपा ना दह्या।
रे तैं पीव पुकारी कद कह्या ॥ २ ॥
होइ प्यासे हरि जल ना पिया, रे तूं वज्र न फाटो रे हिया।
धिक् जीवन दादू ये जिया ॥ ३ ॥

हे मूर्ख मन ! तूने प्रभु प्राप्ति के लिए कुछ भी वैराग्य धारण नहीं किया, यह क्या प्रमाद किया है ? अरे ! तूने प्रभु के लिए जप, तप, योग-साधन और दान किया है क्या ? तूने काशी-करवत लेने का कष्ट कब सहा है और न गंगा में ही बहा है। न तूने वियोगिनी के समान प्रभु-प्राप्ति के लिए दु:ख सहा है ? न तू हिमालय पर्वत के हिम में गला है। न तूने अपना अहंकार जलाया है। तूने व्यथित होकर प्रभु को कब पुकारा है कि 'प्रभो ! दर्शन दो !'। तीव्र प्यास-युक्त होकर हरि-भक्ति रूप जल भी नहीं पान किया। अरे हृदय ! इतना होने पर भी तू फटा नहीं, तो अवश्य ही वज्र का है। हे मन ! प्रभु प्राप्ति के साधन से रहित ये जीवन के दिन धिक्कार के योग्य ही हैं।

३८-यतिताल

क्या कीजे मानुष जन्म को, राम न जपहि गँवारा ।
माया के मद मातो बहै, भूल रह्या संसारा ॥ टेक ॥

हिरदै राम न आवई, आवै विषय विकारा रे।
हरि मारग सूझै नहीं, कूप परत नहिं बारा रे ॥ १ ॥
आपा अग्नि जु आप में, तातैं अहनिशि जरै शरीरा रे ।
भाव भक्ति भावै नहीं, पीवै न हरि जल नीरा रे ॥ २ ॥
मैं मेरी सब सूझई, सूझै माया जालो रे।
राम नाम सूझै नहीं, अंध न सूझे कालो रे ॥ ३ ॥
ऐसे ही जन्म गमाइया, जित आया तित जाइ रे ।
राम रसायन ना पिया, जन दादू हेत लगाइ रे ॥ ४ ॥

हे मूर्ख ! यदि राम नाम न जपा, तब इस मनुष्य जन्म का क्या उपयोग करेगा ? विषय-सुख तो सभी योनियों में प्राप्त थे, यह तो प्रभु भक्ति के लिए ही मिला है। तू प्रभु को भूलकर माया-मद से मतवाला हुआ संसार में विचर रहा है। तेरे हृदय में राम का स्मरण तो कभी नहीं आता, सदा विषय-विकारों का ही चिन्तन होता रहता है। प्रभु के पास पहुंचाने वाला भक्ति-मार्ग तुझे नहीं दीखता, किन्तु विषय कूप को देखकर भी उसमें अति शीघ्र पड़ता है। अपने में जो अहंकार रूप अग्नि है, उससे दिन रात शरीर जलता रहता है, फिर भी तुझे श्रद्धा-भक्ति प्रिय नहीं लगती, तू हरि-भक्ति-जल नहीं पान करता। मुझे ''मैं और मेरी'' सम्बन्धी बातें तथा माया-जाल ही दीखता है। हे अंध ! तू काल और राम-नाम को नहीं देखता। तूने अपना मानव जन्म व्यर्थ ही खो दिया है। प्रेम सहित राम भक्ति-रसायन का पान नहीं किया। अत: अब जिधर से आया था, उधर चौरासी लाख योनियों में ही फिर जा रहा है।

३९-परिचय वैराग्य । दादरा

इनमें क्या लीजै क्या दीजे, जन्म अमोलक छीजे ॥ टेक ॥
सोवत सुपिनां होई, जागे तैं नहिं कोई ।
मृगतृष्णा जल जैसा, चेत देख जग ऐसा ॥ १ ॥
बाजी भरम दिखावा, बाजीगर डहकावा[1] ।
दादू संगी तेरा, कोई नहीं किस केरा ॥ २ ॥

प्रत्यक्ष रूप से वैराग्य का उपदेश कर रहे हैं—अरे ! इन विषयों में क्या लेना देना है ? व्यर्थ ही अमूल्य मानव जन्म क्षीण होता है। ये तो अज्ञान निद्रा में सोया हुआ है, तब तक ही स्वप्नवत् भास रहे हैं, ज्ञान जाग्रत होते ही कोई भी न रहेगा। सचेत होकर देख, यह संसार मृग-तृष्णा के जलवत् प्रतीति मात्र ही है। जैसे बाजीगर बाजी दिखा कर बहकाता[1] है, वैसे ही भ्रम से सत्य भास रहा है। वास्तव में इस संसार में न तेरा कोई साथी है और न तू ही किसी का है।

४०-चेतावनी उपदेश। सिंह लील ताल

खालिक जागे जियरा सोवे, क्यों कर मेला होवे ॥ टेक ॥
सेज एक नहिं मेला, तातैं प्रेम न खेला ॥ १ ॥
सांई संग न पावा, सोवत जन्म गमावा ॥ २ ॥
गाफिल नींद न कीजे, आयु घटे तन छीजे ॥ ३ ॥
दादू जीव अयाना, झूठे भरम भुलाना ॥ ४ ॥

सावधान करने के लिए उपदेश कर रहे हैं—ईश्वर तो जीवों की रक्षा करने के लिए सदा जागते रहते हैं और जीव अज्ञान निद्रा में सोया रहता है, फिर ईश्वर से कैसे मिल सकता है ? दोनों एक हृदय शय्या पर ही रहते हैं, फिर भी मिलन नहीं हुआ, इससे ज्ञात होता है—जीव ने ईश्वर से प्रेम ही नहीं किया। प्रभु के साथ रह कर भी प्रभु को नहीं प्राप्त कर सका, अज्ञान निद्रा में सोते हुये ही सारा जन्म खो दिया। आयु घटती जा रही है, शरीर क्षीण हो रहा है, तो भी यह अज्ञानी जीव मिथ्या भ्रम में पड़कर प्रभु को भूल रहा है। अरे ! अब तो अज्ञान निद्रा में मत पड़ा रह।

राग जंगली गौड़ी

४१-पहरा (पंजाबी भाषा)। कहरवा ताल

पहले पहरे रैणि[1] दे, बणिजारिया, तूं आया इहिं संसार वे ।
मायादा[2] रस पीवण लग्गा, विसरा सिरजनहार वे ॥
सिरजनहार विसारा, किया पसारा, मात पिता कुल नार[3] वे ।
झूठी माया, आप बँधाया, चेते नहीं गँवार वे ॥
गँवार न चेते, अवगुण केते, बंध्या सब परिवार वे।
दादू दास कहै बणिजारा, तूं आया इहिं संसार वे ॥ १ ॥
दूजे पहरे रैणि दे, बणिजारिया, तू रत्ता तरुणी नाल[4] वे।
माया मोह फिरे मतवाला, राम न सक्या सँभाल वे ॥
राम न संभाले, रत्ता नाले, अंध न सूझे काल वे।
हरि नहिं ध्याया, जन्म गमाया, दह दिशि फूटा ताल वे ॥
दह दिशि फूटा, नीर निखूटा, लेखा डेवण[5] साल वे।
दादू दास कहै बणिजारा, तूं रत्ता तरुणी नाल वे ॥ २ ॥
तीजे पहरे रैणि दे, बणिजारिया, तैं बहुत उठाया भार वे ।
जो मन भाया, सो कर आया, ना कुछ किया विचार वे ॥
विचार न कीया, नाम न लीया, क्यों कर लंघे पार वे ।
पार न पावे, फिर पछतावे, डूबण लग्गा धार वे॥

डूबण लग्गा, भेरा[६] भग्गा,[७] हाथ न आया सार वे।
दादू दास कहै बणिजारा, तैं बहुत उठाया भार वे॥ ३ ॥
चौथे पहरे रैणि दे, बणिजारिया, तू पक्का[८] हूवा पीर[९] वे।
जौबन गया, जरा वियापी[१०], नांहीं सुधि शरीर वे॥
सुधि ना पाई, रैणि गंवाई, नैनों आया नीर वे।
भव जल भेरा डूबण लग्गा, कोई न बंधे धीर वे॥
कोई धीर न बंधे, जम के फंधे, क्यों कर लंघे तीर वे।
दादू दास कहै बणिजारा, तू पक्का हूवा पीर वे॥ ४॥

जीव को उपदेश कर रहे हैं—हे जीव रूप बनजारे ! तू इस संसार में आया है और आयु रूप रात्रि[१] के प्रथम पहर में है, किन्तु अभी से सृष्टिकर्ता ईश्वर को भूल कर माया[२] के विषय-रस को पान करने लगा है। प्रभु को भूल कर माता-पिता और कुटुम्बियों के साथ[३] बहुत फैलाव फैला लिया है। तू मिथ्या माया में स्वयं ही बँध गया है। हे मूर्ख ! सावधान नहीं होता। मूर्ख ! तू सचेत नहीं होता। देख, तूने कितने अवगुण किये हैं। अपने दोषों के कारण ही तू सब परिवार में बँधा हुआ है। हम तुझे कह रहे हैं, तू इस मायिक संसार में आया है, सचेत रहना॥ १ ॥ हे जीव-बनजारे ! तू आयु-रात्रि के दूसरे पहर में आया है और आते ही तरुण नारी के साथ[४] अनुरक्त हो गया है। मायिक मोह से मतवाला होकर विचर रहा है। राम का स्मरण नहीं कर सका। तू राम का स्मरण नहीं करता, तरुणी के साथ ही प्रेम करता है। अरे अंध ! तुझे काल भी नहीं दीखता। तूने हरि की उपासना नहीं की, व्यर्थ ही जन्म खो दिया। तेरा संयम-सरोवर फूट कर बल रूप जल दश इन्द्रिय रूप दश दिशाओं में फैल गया है। इस प्रकार लोलुपता से बल रूप जल समाप्त हो चुका है। अब तुझे अपने जीवन का हिसाब देनें[५] में बड़ा कष्ट होगा। हम तुझे कह रहे हैं-तू युवती में अनुरक्त होकर अपना सर्वस्व खो बैठा है॥ २ ॥ हे जीव-बनजारे ! आयु रात्रि के तीसरे पहर में तूने ममता रूप बहुत भार उठा लिया है। जो मन को प्रिय लगा, वही तूने किया है। भले-बुरे का कुछ भी विचार नहीं किया। न परमात्मा का नाम चिन्तन किया और न आत्म-विचार ही किया। तू संसार-सिन्धु को उल्लंघन करके पार कैसे जा सकेगा ? जब पार न जा सकेगा और डूबने लगेगा तब पश्चात्ताप ही करेगा। अब तू डूबने ही लगा है, तेरा धैर्य रूप बेड़ा[६] टूट गया[७] है और तत्त्व विचार भी तेरे हाथ न लगा। हम तुझे कह रहे हैं-कि तूने ममता रूप भार तो बहुत उठाया है, किन्तु जीवन को सफल नहीं कर सका॥ ३ ॥ जीव-बनजारे ! अब तू आयु रात्रि के चतुर्थ पहर में आया है और सांसारिक परिस्थितियों का अनुभवी[८] तथा वृद्ध[९] हो गया है। तेरे शरीर का यौवन चला गया है और देह में वृद्धावस्था[११] आगई[१०] है, अब तुझे शरीर की सुधि भी नहीं रहती। प्रभु-प्राप्ति की हेतु शुद्ध बुद्धि भी तुझे प्राप्त न हो सकी। तूने आयु-रात्रि व्यर्थ ही खो दी। अब तेरे नेत्रों में दु:ख के अश्रु आ रहे हैं

। तेरा जीवन-बेड़ा संसार-सिन्धु के क्लेश-जल में डूब रहा है। जिनके लिए तूने अनर्थ किये, उन कुटुम्बियों में से कोई भी धैर्य नहीं बँधाता। यम के फंदे में पड़ने पर कौन धैर्य बँधा सकता है ? अब तू संसार-सिन्धु को लांघकर अगले तट पर कैसे जायगा ? हम तुझे कहते हैं- अब तू सांसारिक परिस्थितियों का अनुभवी और वृद्ध तो हो गया, किन्तु खेद है-भगवत् का साक्षात्कार न कर सका ।

४२-काल चेतावनी ? राग गौड़ी । पंजाबी त्रिताल

काहे रे नर करहु डफाण[1], अन्त काल घर गोर[2] मसाण ॥टेक॥
पहले बलवँत गये विलाइ, ब्रह्मा आदि महेश्वर जाइ॥ १॥
आगैं होते मोटे मीर, गये छाड़ पैगम्बर पीर॥ २॥
काची देह कहा गर्बाना, जे उपज्या सो सबै विलाना॥ ३॥
दादू अमर उपावनहार, आपहि आप रहै करतार॥ ४॥

काल से सावधान कर रहे हैं—हे मानव ! अपने को महान् समझ कर क्यों व्यर्थ ही डींग[1] मारता है ? अन्त में तो तेरा घर कब्र[2] वा श्मशान ही होगा। तेरे पहले अनेक बलवान् हो गये हैं, वे सभी मिट्टी में मिल गये। ब्रह्मा, महेश्वर आदि भी चले जायेंगे। पहले बड़े-बड़े सरदार, पैगम्बर और पीर हुये हैं, वे भी अपना सब कुछ छोड़ कर चले गये। यह कच्चा शरीर है, इसका क्या गर्व करना है ? जो उत्पन्न हुये हैं, वे सभी नष्ट होने वाले हैं। अमर तो एक सृष्टि-रचयिता स्वयं ईश्वर ही रहता है।

४३-उपदेश । पंजाबी त्रिताल

इत[1] घर चोर न मूसे[2] कोई, अंतर है जे जाने सोई॥टेक॥
जागहु रे जन तत्त न जाइ, जागत है सो रह्या समाइ॥ १ ॥
जतन-जतन कर राखहु सार, तस्कर उपजै कौन विचार॥ २ ॥
इब[3] कर दादू जाणैं जे, तो साहिब शरणागति ले॥ ३ ॥

कल्याणप्रद उपदेश कर रहे हैं—जो अपने भीतर आत्म-स्वरूप ब्रह्म है, उसे जो जानते हैं, उनके यहां[1] अन्त:करण रूप घर से काम-क्रोधादिक चोर ज्ञान-धन को नहीं चुरा[2] सकते। हे लोगो ! मोह निद्रा से जागो, जिससे ज्ञान जन्य सार आनन्द न जा सकेगा। जो ज्ञान जाग्रत में है, वह उसी आनंद में समाया रहता है। यदि तुम बारंबार विचार रूप उपाय द्वारा सार-ज्ञान की रक्षा करोगे, तो किस विचार से हृदय में कामादि चोर उत्पन्न हो सकेंगे ? अर्थात् आत्म-ज्ञान के रहते कामादि को उत्पन्न करने वाला कोई भी विचार हृदय में नहीं आता। इस[3] प्रकार, जो मन से जन्य कामादि को चोर जानकर सचेत रहता है तो उसे प्रभु अपनी शरण में लेते हैं अर्थात् अपने में ही लय कर लेते हैं।

४४-उपदेश चेतावनी। पंचमताल

मेरी मेरी करत जग खीना[१], देखत ही चल जावै।
काम क्रोध तृष्णा तन जालै, तातैं पार न पावे॥ टेक॥
मूरख ममता जन्म गमावे, भूल रहे इहिं बाजी।
बाजीगर को जानत नांहीं, जनम गंवावै वादी॥ १॥
प्रपंच पंच करै बहुतेरा, काल कुटुम्ब के तांईं।
विष के स्वाद सबै ये लागे, तातैं चीन्हत नांहीं॥ २॥
येता जिय में जानत नांहीं, आइ कहां चल जावै।
आगे पीछे समझै नांहीं, मूरख यों डहकावै॥ ३॥
ये सब भ्रम भान भल पावै, शोध लेहु सो सांईं।
सोई एक तुम्हारा साजन, दादू दूसर नांहीं॥ ४॥

उपदेश द्वारा सचेत कर रहे हैं—जगत के प्राणी ''यह नारी मेरी है, यह संपत्ति मेरी है'' ऐसे करते-करते ही क्षीण[१] हो जाते हैं और नारी तथा संपत्ति भी देखते-देखते ही उनके हाथ से चली जाती है। काम, क्रोध, तृष्णादि हृदय को जलाते रहते हैं, इसीलिए संसार से पार जा नहीं सकते। मूर्ख ममता द्वारा इस संसार रूप बाजी में ही मोहित रहते हैं और परमेश्वर रूप बाजीगर को न जान कर अपना जन्म व्यर्थ ही खो देते हैं। पंच ज्ञानेन्द्रियों के तथा काल रूप कुटुम्ब के पोषणार्थ बहुत प्रपंच करते हैं और ये सब प्राणी विषय-विष के स्वाद में ही लगे रहते हैं। इसीलिए अपने वास्तविक हित को नहीं पहचानते। इतना भी नहीं जानते—''कहां से आये हैं और कहां जा रहे हैं।'' पहले भोगकर आये उनको तथा अपने दुष्कर्म से होने वाले भविष्य क्लेशों को नहीं समझते, इसीलिए इस प्रकार विषयों में बहक जाते हैं। इन सांसारिक संपूर्ण भ्रमों को अच्छी प्रकार नष्ट करके प्रभु की खोज करता है, वही प्रभु को प्राप्त करता है। वह एक परमात्मा ही तुम्हारा सच्चा मित्र है, अन्य कोई भी नहीं है।

४५-गर्व हानिकर। पंचम ताल।

गर्व न कीजिये रे, गर्वैं होइ विनास।
गर्वैं गोविन्द ना मिलै, गर्वैं नरक निवास॥ टेक॥
गर्वैं रसातल जाइये, गर्वैं घोर अंधार।
गर्वैं भौ-जल डूबिये, गर्वैं वार न पार॥ १॥
गर्वैं पार न पाइये, गर्वैं जमपुर जाइ।
गर्वैं को छूटै नहीं, गर्वैं बँधे आइ॥ २॥
गर्वैं भाव न ऊपजै, गर्वैं भक्ति न होइ।
गर्वैं पिव क्यों पाइये, गर्वैं करै जनि कोइ॥ ३॥

गर्वैं बहुत विनाश है, गर्वैं बहुत विकार।
दादू गर्व न कीजिये, सन्मुख सिरजनहार ॥ ४ ॥

गर्व को हानिकर बताते हुये उसे न करने की प्रेरणा कर रहे हैं—अरे ! गर्व मत करो, गर्व से विनाश होता है। गर्व करने से साधना द्वारा भी गोविन्द नहीं मिलते, गर्व से नरक में निवास होता है, रसातल में जाता है, घोर अंधकार में पड़ता है। वार-पार न पाकर संसार-सिन्धु के मध्य क्लेश-जल में ही डूबता है, किसी प्रकार पार नहीं जा सकता, यमपुरी में जाता है, मुक्त नहीं होता, प्रत्युत बन्धन में पड़ता है, सात्विक श्रद्धा और भक्ति नहीं होती, किसी प्रकार भी प्रभु की प्राप्ति नहीं होती, इसलिए गर्व कोई भी न करे। गर्व से अति विनाश होता है, बहुत विकार उत्पन्न होते हैं। अत: गर्व न करके भजन द्वारा परमात्मा के सन्मुख रहो।

४६-हितोपदेश। नट ताल

हुसियार रहो, मन मारेगा, सांई सतगुरु तारेगा॥ टेक॥
माया का सुख भावै, मूरख मन बौरावै रे॥ १ ॥
झूठ साच कर जाना, इन्द्री स्वाद भुलाना रे॥ २ ॥
दुख को सुख कर मानै, काल झाल नहिं जानै रे॥ ३ ॥
दादू कह समझावै, यहु अवसर बहुरि न पावै रे॥ ४ ॥

कल्याणप्रद उपदेश कर रहे हैं—हे साधक ! सावधान रहना, कारण अचेत रहने पर यह चंचल मन तुझे परमार्थ दृष्टि से मार देगा अर्थात् विषयों में डाल देगा। यदि कहीं मन के धोखे में आकर गिर भी जाये तो परमात्मा और सद्गुरु की शरण जाना, वे तेरा उद्धार कर देंगे। इस मन को मायिक सुख ही अच्छे लगते हैं। यह मूर्ख उन्हीं में पागल हो जाता है। इन्द्रियों के विषय-रस में मोहित होकर इसने मिथ्या को सत्य समझ लिया है, दु:ख को सुख मान लिया है। यह कालाग्नि की ज्वाला को नहीं जानता। हम तुम्हें समझा कर कहते हैं, यह समय जाने पर फिर नहीं मिलेगा।

अपने शिष्य आंधी ग्राम निवासी गरीबदासजी को यह पद उपदेश रूप में लिख भेजा था। गरीबदास जी ने फिर उत्तर में इसी को ''सांई सद्गुरु तारेगा'' तुक लिख भेजी थी।

४७-विश्वास। नटताल

साहिबजी सत मेरा रे, लोग झखैं बहुतेरा रे॥ टेक॥
जीव जन्म जब पाया रे, मस्तक लेख लिखाया रे ॥ १ ॥
घटै बधै कुछ नांहीं रे, कर्म लिख्या उस मांहीं रे ॥ २ ॥
विधाता विधि कीन्हा रे, सिरज सबन को दीन्हा रे ॥ ३ ॥
समर्थ सिरजनहारा रे, सो तेरे निकट गँवारा रे॥ ४ ॥
सकल लोक फिर आवै रे, तो दादू दीया पावै रे॥ ५ ॥

४७-४८ में अपना भगवद् विश्वास दिखा रहे हैं—लोग तो अपने धन, जन, बल का आश्रय लेकर बहुत प्रकार बकवाद करते हैं किन्तु हमारा आश्रय तो एक सत्य स्वरूप परमात्मा ही है। हमें तो उसी का विश्वास है। जीव ने जन्म लिया है, तब ही इसका प्रारब्ध निश्चित कर दिया गया है। उस निर्धारित कर्म में कुछ भी घटता बढ़ता नहीं। जिस विधाता ने शरीर उत्पन्न करके सबको कर्मानुसार आजीविका दी है, हे मूर्ख ! वह समर्थ सृष्टि कर्ता प्रभु तेरे पास ही है। चाहे तू संपूर्ण लोकों में फिर आवे, जो भी तेरे कर्मानुसार भगवान् देंगे, वही तुझे मिलेगा।

४८-राज विद्याधर ताल

पूर रह्या परमेश्वर मेरा, अणमाँग्या देवै बहुतेरा ॥ टेक॥
सिरजनहार सहज में देइ, तो काहे धाइ माँग जन लेइ ॥ १ ॥
विश्वंभर सब जग को पूरै, उदर काज नर काहे झूरै[१] ॥ २ ॥
पूरक[२] पूरा[३] है गोपाल, सबकी चिन्त[४] करै दरहाल[५] ॥ ३ ॥
समर्थ सोई है जगन्नाथ, दादू देख रहे संग साथ॥ ४ ॥

मेरा मनोरथ परमेश्वर पूर्ण कर रहे हैं, बिना याचना ही बहुत देते हैं। जब परमात्मा अनायास ही देते हैं,तब लोग क्यों दौड़ के माँग कर लेने का प्रयत्न करते हैं ? विश्वम्भर परमात्मा तो संपूर्ण जगत् का भरण-पोषण करते हैं, फिर नर शरीर पाकर भी पेट भरने के लिए क्यों विकल[१] हो रहा है ? वह परिपूर्ण[३] परमात्मा सब मनोरथ पूर्ण करनेवाला[२] है। प्रतिक्षण[५] सबकी चिन्ता[४] करके सँभाल करता है। तू विचार करके देख, वह समर्थ जगन्नाथ तेरे संग है और तू भी उनके साथ ही है।

४९-नाम विश्वास। राज मृगांक ताल

राम-धन खात न खूटै रे !
अपरंपार पार नहिं आवै, आथि[१]न टूटै रे ॥ टेक॥
तस्कर[२] लेइ न पावक[२] जालै, प्रेम न छूटै रे।
चहुँ दिशि पसरयो बिन रखवाले, चोर न लूटै रे ॥ १ ॥
हरि हीरा है राम रसायन, सरस[४] न सूखै रे ॥ २ ॥
दादू और आथि[५] बहुतेरी, तुस[६] नर कूटे रे॥ ३ ॥

राम-नाम में विश्वास करा रहे हैं—राम-रूपी-धन खाने से अर्थात् चिन्तन करने से समाप्त नहीं होता, अपार होता जाता है। उसके फल का पार नहीं आता। यह धन राशि[१] कम नहीं होती। इसे चोर[२] नहीं चुरा सकता, अग्नि[३] नहीं जला सकता, इसीलिए इससे प्रेम नहीं हटता। बिना ही रक्षक यह धन चारों दिशाओं में फैला रहता है अर्थात् भजन की कीर्ति सब ओर रहती है, तो भी उसे निंदक रूप लुटेरे लूट नहीं सकते। हरि नाम अमूल्य हीरा है। राम-भक्ति-रसायन सदा हरा[४] रहता है, कभी भी नहीं सूखता। राम धन बिना, अन्य अर्थ-राशि[५] की प्राप्ति का साधन करना, भूसा[६] कूटने के समान है, उससे अन्न नहीं निकलता, वैसे ही अन्य धन तृप्ति प्रद नहीं है। किसी-किसी प्रति में ''तुस'' के स्थान में ''उस'' भी है। उसका अर्थ रामधन से अन्य जो बहुत-सी

धनराशियां[॰] हैं, उन धन-राशियों वाले नर को तो डाकू आदि मारते हैं किन्तु राम-धन के लिये कोई नहीं मारता, प्रत्युत सेवा करते हैं।

५०-तत्त्व-उपदेश। राजमृगांक ताल

तूं है तूं है तूं है तेरा, मैं नहिं मैं नहिं मैं नहिं मेरा ॥ टेक॥
तूं है तेरा जगत उपाया, मैं मैं मेरा धंधै लाया ॥ १ ॥
तूं है तेरा खेल पसारा, मैं मैं मेरा कहै गँवारा ॥ २ ॥
तूं है तेरा सब संसारा, मैं मैं मेरा तिन शिर भारा ॥ ३ ॥
तूं है तेरा काल न खाइ, मैं मैं मेरा मर मर जाइ ॥ ४ ॥
तूं है तेरा रह्या समाइ, मैं मैं मेरा गया विलाइ ॥ ५ ॥
तूं है तेरा तुमहीं मांहिं, मैं मैं मेरा मैं कुछ नांहिं ॥ ६ ॥
तूं है तेरा तूं ही होइ, मैं मैं मेरा मिल्या न कोइ ॥ ७ ॥
तूं है तेरा लंघै पार, दादू पाया ज्ञान विचार ॥ ८ ॥

तत्त्व का उपदेश कर रहे हैं—संत मन, वचन, कर्म से कहते हैं-हे परमेश्वर! आप ही सत्य हैं और सब कुछ आपका ही है। प्राणियों का कायिक, वाचिक, मानसिक ''मैं'' तथा मेरा रूप अहंकार सत्य नहीं है। आप ही समर्थ हैं, आपका ही उत्पन्न किया हुआ यह जगत् है। 'मैं युवा हूं, मैं बली हूं, शरीर मेरा है' इस प्रकार अहंकार करने वालों को आपने संसार के धंधों में लगा रक्खा है। आप ही अद्भुत रचना में निपुण हैं। आपका ही यह संसार-खेल फैलाया हुआ है। मैं रचना में निपुण हूँ, मैं और मेरा कार्य अद्भुत है। यह धन मेरा है, ऐसा अज्ञानी लोग ही कहते हैं। आप सदा स्थायी हैं, सब संसार आपका ही है। 'मैं स्थायी रहूंगा, मैं महान् हूँ, यह ऐश्वर्य मेरा है।' ऐसा कहने वालों के शिर पर पाप-भार ही पड़ता है। आप नित्य हैं और जो आपका भक्त है, उसे भी काल नहीं खाता। 'मैं चिरजीवी हूं, अजय हूँ, यह दुर्ग मेरा है।' ऐसा अहंकार करने वाले मर-मर कर चौरासी में जाते हैं। आप ही अखंड हैं, आपका ज्ञानी भक्त भी आप में ही समाकर रहता है। 'मैं गुणी हूँ, मैं धनी हूँ, यह मेरा परिवार है।' ऐसा कहने वाले मिट्टी में मिल गये। आप ही शुद्ध हैं, आपका ज्ञानी भक्त भी आप में ही संलग्न रहता है। 'मैं राजा हूँ, मैं वीर हूँ, मेरा देश है।' ऐसा कहने वालों का कुछ भी नहीं होता। आप ही व्यापक हैं, आपका ज्ञानी भक्त भी आपका ही रूप हो जाता है। 'मैं कुलवान् हूँ, मैं विद्वान हूँ, यह सब पसारा मेरा है।' ऐसा अहंकार करने वाला, आप में कोई भी न मिल सका। आप माया से परे हैं और आपका ज्ञानी भक्त भी मायिक मोह को लांघ कर, संसार के पार जाकर आप ही में लय होता है। विचारादि साधन द्वारा हमने यह यथार्थ ज्ञान प्राप्त किया है।

५१-संजीवनी। पंचम ताल

राम विमुख जग मर मर जाइ, जीवैं संत रहैं ल्यौ लाइ॥ टेक॥

लीन भये जे आतम रामा, सदा सजीवन कीये नामा ॥ १ ॥
अमृत राम रसायन पीया, तातैं अमर कबीरा कीया ॥ २ ॥
राम राम कह राम समाना, जन रैदास मिले भगवाना ॥ ३ ॥
आदि अन्त केते कलि जागे, अमर भये अविनासी लागे ॥ ४ ॥
राम रसायन दादू माते, अविचल भये राम रंग राते ॥ ५ ॥

५१-५२ में संजीवनी राम रसायन का परिचय दे रहे हैं—राम से विमुख मानव मर-मर कर चौरासी लक्ष योनियों में जा रहे हैं। जो संत अपनी वृत्ति राम में लगाये रहते हैं, वे राम रूप होकर सदा जीवित रहते हैं। जो भी आत्म स्वरूप राम के भजन में लीन हुये हैं, वे सभी सजीवन भाव को प्राप्त हुये हैं। राम-भजन ने नामदेव को सदा के लिए संजीवन कर दिया। राम-भक्ति रूप अमृत रसायन पान किया, इसी से कबीर अमर हो गये। राम-राम करके राम के समान निर्विकार होकर भक्त रैदास भगवान् में मिल गये। सृष्टि के आदि से इस कलियुग के समय तक कितने ही संत अविनाशी परब्रह्म के चिन्तन में लगकर अज्ञान निद्रा से जगे हैं, वे सभी परब्रह्म को प्राप्त होकर अमर हो गये हैं।

५२-पंचम ताल

निकट निरंजन लाग रहे, तब हम जीवित मुक्त भये ॥ टेक ॥
मर कर मुक्ति जहां जग जाइ, तहां न मेरा मन पतियाइ ॥ १ ॥
आगैं जन्म लहैं अवतारा, तहां न मानैं मना हमारा ॥ २ ॥
तन छूटे गति जो पद होइ, मृतक जीव मिलैं सब कोइ ॥ ३ ॥
जीवित जन्म सफल कर जाना, दादू राम मिले मन माना ॥ ४ ॥

जब हम अति समीप हृदयस्थ व्यापक निरंजन राम के चिन्तन में लगकर रामस्वरूप में स्थिर हुये हैं, तब ही जीवितावस्था में संसार-बन्धन से मुक्त हो सके हैं। जगत के प्राणी मर कर जिस मुक्तिधाम को जाते हैं, उसमें हमारा मन विश्वास नहीं करता। मुक्तिधाम में चिरकाल रह कर फिर अवतार रूप से जन्मते हैं, ऐसे सिद्धान्त में भी हमारा मन सन्तोष नहीं मानता। यदि शरीर छूटने पर ही मुक्ति पद प्राप्त होता हो तो सभी जीव ब्रह्म में मिल जाते। जो जीवितावस्था में ही राम का यथार्थ रूप जानकर अपने जन्म को सफल कर लेता है, तभी हमारा मन मानता है— यह राम में मिलकर सदा सजीवन रहेगा।

५३-हैरान प्रश्न। वर्ण भिन्न ताल

कादिर[1] कुदरत[2] लखी न जाइ, कहां तैं उपजै कहां समाइ ॥ टेक ॥
कहां तैं कीन्ह पवन अरु पानी, धरणि गगन गति जाइ न जानी ॥ १ ॥
कहां तैं काया प्राण प्रकासा, कहां पंच मिल एक निवासा ॥ २ ॥
कहां तैं एक अनेक दिखावा, कहां तैं सकल एक ह्वै आवा ॥ ३ ॥
दादू कुदरत बहु हैराना, कहां तैं राख रहे रहमाना[3] ॥ ४ ॥

आश्चर्ययुक्त प्रश्न कर रहे हैं—समर्थ[१] परमात्मा की माया[२] जानी नहीं जाती, बड़ी आश्चर्य रूप है। १. यह संसार कहां से उत्पन्न होता है और कहां समा जाता है ? २. आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी कहां से प्रकट किये हैं ? उनकी चेष्टा जानी नहीं जाती। ३. कहां से शरीर को रचा ? ४. कैसे उसमें प्राण प्रकट कर दिये ? ५. कैसे पांचों ज्ञानेन्द्रियां मिलकर एक शरीर में निवास करती हैं ? ६. कैसे अपने एक स्वरूप से अनेक जीव दिखा देते हैं ? ७. कैसे प्रलय काल में सब एक हो जाते हैं ? ८. वे दयालु[३] ईश्वर सबकी रक्षा करते हुये भी कैसे निर्विकार रहते हैं ? उनकी माया अति आश्चर्य रूप है। क्रमशः प्रश्नों के उत्तर हैं-१. ईश्वर से उत्पन्न होकर उसी में समाता है। २. अहंकार से। ३. वीर्य से। ४-७. अपनी सत्ता से। ८. निर्द्वन्द्व होने से।

साखी उत्तर की-

रहै नियारा सब करै, काहू लिप्त न होइ ।
आदि अन्त भानै घड़े, ऐसा समर्थ सोइ ॥(२१-३०)
श्रम नाहीं सब कुछ करै, यों कल धरी बनाइ ।
कौतिकहारा ह्वै रह्या, सब कुछ होता जाइ ॥(२१-३१)
दादू शब्दैं बंध्या सब रहै, शब्दैं ही सब जाइ ।
शब्दैं ही सब ऊपजै, शब्दैं सबै समाइ ॥(२२-२)

५४-स्वरूप गति हैरान। वर्ण भिन्न ताल

ऐसा राम हमारे आवै, वार पार कोइ अंत न पावै ॥ टेक ॥
हलका भारी कह्या न जाइ, मोल माप नहिं रह्या समाइ ॥ १ ॥
कीमत लेखा नहिं परिमाण, सब पचहारे साधु सुजाण ॥ २ ॥
आगो पीछो परिमित नांहीं, केते पारिख आवहिं जांहीं ॥ ३ ॥
आदि अन्त मधि कहै न कोइ, दादू देखै अचरज होइ ॥ ४ ॥

राम-स्वरूप साक्षात्कार अवस्था का आश्चर्य दिखा रहे हैं—हमारे अनुभव में ऐसा राम आता है जिसका वार-पार जानकर कोई भी अन्त नहीं पाता। वह हलका वा भारी नहीं कहा जाता। वह अमूल्य है तथा माप रहित है। सब विश्व में समा रहा है। उसकी कीमत नहीं हो सकती, तोल का हिसाब नहीं हो सकता। सब बुद्धिमान् संत परिश्रम करके हार गये हैं किन्तु उसके आगे पीछे का माप नहीं कर सके। कितने ही लक्षणों द्वारा परीक्षा करने वाले विद्वान् संसार में आते हैं और उसके स्वरूप परीक्षण के लिए पूर्ण प्रयत्न करते हैं किन्तु उसका आदि, मध्य, अन्त कहे बिना ही चले जाते हैं। अत: हमें उसके स्वरूप को देखकर अति आश्चर्य होता है।

५५-प्रश्न। गज ताल

कौण शब्द कौण परखणहार, कौण सुरति कहु कौण विचार ॥ टेक ॥
कौण सुज्ञाता कौण गियान, कौण उन्मनी कौण धियान ॥ १ ॥

कौण सहज कहु कौण समाध, कौण भक्ति कहु कौण अराध ॥ २ ॥
कौण जाप कहु कौण अभ्यास, कौण प्रेम कहु कौण पियास ॥ ३ ॥
सेवा कौण कहो गुरुदेव, दादू पूछै अलख अभेव ॥ ४ ॥

जिज्ञासुओं के बोधार्थ प्रभु से प्रश्न कर रहे हैं—आदि शब्द कौन है ? ओंकार। परीक्षक कौन है ? संत। वृत्ति कौन श्रेष्ठ है ? सहजा। उत्तम विचार कौन है ? ब्रह्म विचार। श्रेष्ठ ज्ञाता कौन है ? ब्रह्म-ज्ञानी। उत्तम ज्ञान कौन है ? अभेद ज्ञान। उनमनी कौन है ? नासिकाग्र पर बाह्य दृष्टि रख, भृकुटी को किंचित् ऊपर मोड़कर अन्तर्लक्ष्य रखते हुये प्राण लय करना। श्रेष्ठ ध्यान कौन है ? बाह्य ज्ञान रहित परब्रह्म का अखंड ध्यान। सहजावस्था कौन है ? द्वन्द्व रहित। उत्तम समाधि कौन है ? निर्विकल्प। श्रेष्ठ भक्ति कौन है ? परा। आराध्य कौन है ? आत्मा। श्रेष्ठ जाप कौन है ? अजपा जाप। श्रेष्ठ अभ्यास कौन है ? अहंकार रहित होने का अभ्यास। उत्तम प्रेम कौन है ? निष्काम अनन्य प्रेम। श्रेष्ठ अभिलाषा कौन है ? राम-मिलन की। उत्तम सेवा कौन है ? राम को प्राप्त करके भी भक्ति करना। मन इन्द्रियों के अविषय अद्वैत परब्रह्म गुरुदेव ! कहिये आपका इन सब प्रश्नों के विषय में क्या मत है ? **उत्तर -** सब जीवों से निर्वैर हो, तन मन के विकार त्याग, अहंकार को मेटकर मेरा भजन करना ही उत्तम मत है। इसी से सब प्रश्न हल हो जाते हैं।

उक्त प्रश्नों के उत्तर की साखी—

कौण शब्द ?—**दादू शब्द अनाहद हम सुन्या, नख शिख सकल शरीर ।**
सब घट हरि हरि होत है, सहजैं ही मन थीर ॥ (४-१७२)

कौण परखणहार ?—**प्राण जौहरी पारिखू, मन खोटा ले आवै।**
खोटा मन के माथे मारै, दादू दूर उड़ावे॥ (२७-२०)

कौण सुरति ?—**दादू सहजैं सुरति समाइ ले, पारब्रह्म के अंग।**
अरस परस मिल एक ह्वै, सन्मुख रहिबा संग ॥ (७-२६)

कौण विचार ?—**सहज विचार सुख में रहै, दादू बड़ा विवेक ।**
मन इन्द्री पसरै नहीं, अंतर राखै एक ॥ (१८-३१)

कौण सुज्ञाता ?—**दादू सोई पंडित ज्ञाता, राम मिलण की बूझै ॥ (शब्द १९४)**

कौण गियान ?—**हंस गियानी सो भला, अंतर राखै एक।**
विष में अमृत काढ़ ले, दादू बड़ा विवेक॥ (१७-३)

कौण उनमनी ?—**मन लवरू के पंख हैं, उनमनि चढे आकाश।**
पग रह पूरे साच के, रोप रह्या हरि पास ॥ (४-३४६)

कौण धियान ?—**जहँ विरहा तहँ और क्या ? सुधि बुधि नाठे ज्ञान ।**
लोक वेद मारग तजे, दादू एकै ध्यान॥ (३-७५)

कौण सहज ?—**सहज रूप मन का भया, जब द्वै द्वै मिटी तरंग।**
ताता शीला सम भया, तब दादू एकै अंग॥ (१०-४४)

कौण समाधि ?—**सहज शून्य मन राखिये, इन दोनों के मांहिं।**
लै समाधि रस पीजिये, तहां काल भय नांहिं॥ (७-१०)

कौण भक्ति ?—**जोग समाधि सुख सुरति सौं, सहजैं सहजैं आव।**
मुक्ता द्वारा महल का, इहै भक्ति का भाव॥ (७-९)

कौण अराध ?—**आतम देव अराधिये, विरोधिये नहिं कोइ।**
आराधे सुख ऊपजे, विरोधे दुख होइ॥ (२९-२३)

कौण जाप ?—**सद्गुरु माला मन दिया, पवन सुरति सौ पांइ।**
बिन हाथों निशिदिन जपे, परम जाप यों होइ॥ (१-६९)

कौण अभ्यास ?—**दादू धरती ह्वै रहै, तज कूड़ कपट अहंकार।**
सांई कारण शिर सहै, ताको प्रत्यक्ष सिरजनहार॥ (२३-३)

कौण प्रेम ?—**प्रेम लहर की पालकी, आतम बैसे आइ।**
दादू खेलै पीव सौं, सो सुख कह्या न जाइ॥ (४-२७६)

कौण पियास ?—**कोई बांछे मुक्ति फल, कोई अमरापुरि बास।**
कोई बांछे परम गति, दादू राम मिलन की प्यास॥ (८-८१)

सेवा कौण ?—**तेज पुंज को विलसना, मिल खेलैं इक ठाम।**
भर-भर पीवै राम रस, सेवा इसका नाम॥ (४-२७२)
आपा गर्व गुमान तज, मद मत्सर अहंकार।
गहै गरीबी बन्दगी, सेवा सिरजनहार॥ (२९-२)

सार मत कौण है ?—**आपा मेटै हरि भजै, तन मन तजे विकार।**
निर्वैरी सब जीव सौं, दादू यहु मत सार॥ (२३-५)

यद्यपि अन्तिम प्रश्न भजन में नहीं है, किन्तु उत्तर की साखियों में यह साखी मिलती है। अत: इसका भाव यह ज्ञात होता है कि—ऐसा करने से सब प्रश्न हल हो जायेंगे।

५६-प्रश्न। पंचम ताल

मैं नहिं जानूं सिरजनहार, ज्यों है त्योंहि कहो करतार ॥टेक॥
मस्तक कहां कहां कर पाइ, अविगत नाथ कहो समझाइ ॥ १॥
कहँ मुख नैनां श्रवणां सांईं, जानराइ सब कहो गुसांईं ॥ २॥
पेट पीठ कहां है काया, पड़दा खोल कहो गुरुराया ॥ ३॥
ज्यों है त्यों कह अंतरजामी, दादू पूछै सतगुरु स्वामी ॥ ४॥

स्वरूप विषयक प्रश्न कर रहे हैं—हे सृष्टिकर्ता प्रभो ! मैं नहीं जानता, आपका स्वरूप कैसा है ? इसलिए आप जैसे हो, वैसे ही कृपा करके अपना स्वरूप हमें कहो। आपका मस्तक कहां है ? कहां हाथ पैर हैं ? मन इन्द्रियों से अज्ञात स्वामिन् ! समझाकर कहो, आपके मुख, नेत्र और श्रवण कहां हैं ? हे ज्ञानियों में अति श्रेष्ठ स्वामिन् ! आपका पेट, पीठ आदि अंगों से युक्त शरीर कहां है ? हे गुरुजनों के शिरोमणि, अन्तर्यामी सद्गुरु स्वामिन् ! पड़दा हटा कर, जैसे आप हैं, वैसे ही स्पष्ट रूप से कहो। इन सब प्रश्नों का उत्तर आगे की दो साखियों द्वारा दे रहे हैं—

उत्तर की साखी

दादू सबै दिशा सो सारिखा, सबै दिशा मुख बैन।
सबै दिशा श्रवणहुँ सुने, सबै दिशा कर नैन॥ (४-२१२)
सबै दिशा पग शीश है, सबै दिशा मन चैन।
सबै दिशा सन्मुख रहै, सबै दिशा अंग ऐन॥ (४-२१३)

५७-प्रश्न। पंजाबी त्रिताल

अलख देव गुरु देहु बताइ, कहां रहो त्रिभुवनपति राइ॥टेक॥
धरती गगन बसहु कैलास, तिहूं लोक में कहां निवास॥ १॥
जल थल पावक पवना पूर, चंद सूर निकट कै दूर॥ २॥
मंदिर कौण कौण घरबार, आसन कौण कहो करतार॥ ३॥
अलख देव गति लखी न जाइ, दादू पूछै कह समझाइ॥ ४॥

परमेश्वर से निवास विषयक प्रश्न कर रहे हैं—तीनों लोकों के स्वामियों के राजा, मन इन्द्रियों के अविषय, परब्रह्म गुरुदेव ! आप कहाँ रहते हैं, यह बताइये। पृथ्वी पर या आकाश में या कैलाश में बसते हैं ? तीनों लोकों में से आपका निवास स्थान किस स्थान पर है ? जल में वा स्थल में वा अग्नि में वा वायु में आप परिपूर्ण रूप से रहते हैं ? चन्द्र सूर्य के निकट वा दूर रहते हैं ? आपकी उपासना करने योग्य मन्दिर कौन-सा है ? आपका घर बार कहां है ? हे करतार ! आपके विराजने का आसन कहां है ? हे अलख देव ! आपकी माया हमसे नहीं जानी जाती, इसलिये आपसे पूछते हैं, आप समझाकर कहो। इन सब प्रश्नों का उत्तर अगली साखियाँ दे रही हैं—

उत्तर की साखी—

दादू मुझ ही मांहीं मैं रहूं, मैं मेरा घरबार।
मुझ ही मांहीं मैं बसूं, आप कहै करतार॥(४-२०८)
दादू मैं ही मेरा अर्श में, मैं ही मेरा थान।
मैं ही मेरी ठौर में, आप कहै रहमान॥ (४-२०९)

दादू मैं ही मेरे आसरे, मैं मेरे आधार ।
मेरे तकिये मैं रहूं, कहै सिरजनहार ॥(४-२१०)
दादू मैं ही मेरी जाति में, मैं ही मेरा अंग ।
मैं ही मेरा जीव में, आप कहै परसंग ॥(४-२११)

५८-रस । त्रिताल

राम रस मीठा रे, पीवै साधु सुजाण।
सदा रस पीवै प्रेम सौं, सो अविनाशी प्राण ॥ टेक॥
इहि रस मुनि लागे सबै, ब्रह्मा विष्णु महेश।
सुर नर साधू संत जन, सो रस पीवें शेष ॥ १ ॥
सिध साधक जोगी जती, सती सबै शुकदेव।
पीवत अंत न आवही, ऐसा अलख अभेव ॥ २ ॥
इहिँ रस राते नामदेव, पीपा अरु रैदास ।
पीवत कबीरा ना थक्या, अजहूँ प्रेम पियास ॥ ३ ॥
यहु रस मीठा जिन पिया, सो रस ही मांहिं समाइ ।
मीठे मीठा मिल रह्या, दादू अनत न जाइ ॥ ४ ॥

५८-६० में राम-भक्ति-रस का परिचय दे रहे हैं—हे भाई ! राम-भक्ति-रस अति मधुर है, उसे बुद्धिमान् संत पान करते हैं। जो प्राणी प्रेम से सदा राम-भक्ति-रस का पान करता है, वह अविनाशी हो जाता है। सब मुनि, ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, इन्द्रादि देव, नर श्रेष्ठ संत-जन भी इसके पान में लगे हैं। शेष जी भी इसी रस का पान करते हैं। सिद्ध, साधक, योगी, यति, सती आदि सभी तथा परम विरक्त शुकदेव भी पान करते रहे हैं, किन्तु फिर भी इसका अन्त नहीं आता, यह ऐसा है। मन इन्द्रियों का अविषय और अद्वैत है। नामदेव, पीपा और रैदास भी इसी रस में अनुरक्त रहे हैं। कबीर भी इस रस के पान करने में थके नहीं। इस समय के सन्तों को भी राम-भक्ति-रस पान की प्रेम-पूर्वक प्यास है। यह मधुर-रस जिसने पान किया है, वह रस में ही समा गया है। राम-भक्ति-रस पान से मधुर हुआ सन्त मधुर परमात्मा में मिलकर ही रहता है, अन्य शरीरों में नहीं जाता।

५९-त्रिताल

मन मतवाला मधु पीवै, पीवे बारंबारो रे।
हरि रस रातो राम के, सदा रहै इकतारो रे ॥ टेक॥
भाव भक्ति भाठी भई, काया कसणी[1] सारो[2] रे ।
पोता[3] मेरे प्रेम का, सदा अखंडित धारो रे ॥ १ ॥
ब्रह्म अग्नि जौबन जरै, चेतन चितहि उजासो रे ।

सुमति कलाली सार वे, कोइ पीवै विरला दासो रे॥ २ ॥
प्रीति पियाले पीवही, छिन-छिन बारंबारो रे।
आपा धन सब सौंपिया, तब रस पाया सारो रे॥ ३ ॥
आपा पर नहिं जाणिया, भूलो माया जालो रे।
दादू हरि रस जे पिवै, ताको कदे ना लागे कालो रे॥ ४ ॥

मद्य के रूपक से राम-भक्ति-रस का परिचय दे रहे हैं—हमारा मन परब्रह्म का साक्षात्कार रूप मद्य-रस का पान करता है और मतवाला रहता है, फिर भी बारंबार पान करता हुआ पाप-ताप हरने वाले राम-रस में सदा एकरस अनुरक्त रहता है। अब राम-रस के बनाने की पद्धति बता रहे हैं—श्रद्धा-भूमि पर भक्ति-भट्टी बनाई गई है। निर्दोष रखने हेतु शरीर को साधन कसौटी[१] द्वारा संयम में रखना, यही उस भट्टी पर रस निकालने[२] के लिए पात्र रक्खा गया है। ब्रह्म-ज्ञान अग्नि है, युवावस्था के विकार रूप काष्ठ जलाया जाता है। चित्त में निरंतर चेतनात्मा का चिन्तन रहना ही उक्त अग्नि का प्रकाश है। सुबुद्धि कलाली है। आत्म-प्रेम गीला-कपड़ा[३] है, उसे पात्र पर फेरते हुये यह राम-रस रूप मद्य निकालती है। इस पद्धति से यह रस सदा एकरस अखंड धार से निकलता रहता है। अब रस के अधिकारियों का परिचय दे रहे हैं—इस प्रकार निकाले हुये राम-रस का कोई विरले भक्त-जन ही अनन्य प्रेम-प्याले द्वारा क्षण-क्षण में बारंबार पान करते हैं। जब अपने पराये के भेद को कुछ न समझ के, सम्पूर्ण मायिक संसार-जाल को हृदय से भूल कर, अपना सब प्रकार का अहंकार रूप धन प्रभु को समर्पण किया है; तब संतों को यह पूर्ण सार रूप रस प्राप्त हुआ है। उक्त प्रकार निकाले हुए हरि-रस का जो पान करते हैं, वे परब्रह्म में ही समा कर रहते हैं। अत: उन पर कभी भी काल का बल नहीं चलता।

६०-पंचम ताल

रस के रसिया लीन भये, सकल शिरोमणि तहां गये॥टेक॥
राम रसायन अमृत माते, अविचल भये नरक नहिं जाते॥ १ ॥
राम रसायन भर भर पीवै, सदा सजीवन जुग जुग जीवे॥ २ ॥
राम रसायन त्रिभुवन सार, राम रसिक सब उतरे पार॥ ३ ॥
दादू अमली बहुरि न आये, सुख सागर ता मांहिं समाये॥ ४ ॥

राम रसायन का माहात्म्य कह रहे हैं—राम-रसिक राम-रस में लीन होकर, सर्व-शिरोमणि परब्रह्म जिस निर्विकार स्थिति में है, उसी निर्विकार अवस्था को प्राप्त हुये हैं। जो राम-रसायन रूप अमृत में मस्त हैं, वे कभी भी नरक में नहीं जाते, वे तो निश्चल ब्रह्म रूप हो जाते हैं। जो राम-रसायन को प्रेम-प्याले में भर-भर कर पान करते हैं, वे सदा सजीवन ब्रह्मभाव को प्राप्त होकर युग-युग प्रति जीवित रहते हैं। यह राम-रसायन स्वर्ग, मृत्यु, पाताल तीनों भुवनों का सार तत्त्व है। जो

भी राम-रसिक हुये हैं, वे सभी संसार-सिन्धु से पार हो गये हैं। राम-रसायन का व्यसनी पुन: जन्म-मरण के प्रवाह में नहीं आता। सुख-सागर रूप जो ब्रह्म है, उसी में समा जाता है।

६१-भेष। पंचम ताल

भेष न रीझै मेरा निज भरतार, तातैं कीजै प्रीति विचार॥टेक॥
दुराचारिणी रच भेष बनावै, शील साच नहिं पिव को भावे॥ १ ॥
कंत न भावे करै श्रृंगार, डिंभपणैं रीझै संसार॥ २ ॥
जो पै पतिव्रता ह्वै है नारी, सो धन[1] भावै पियहिं पियारी॥ ३ ॥
पिव पहचानै, आन नहिं कोई, दादू सोई सुहागिनि होई ॥ ४ ॥

प्रभु प्राप्ति में भेष कारण नहीं, यह कह रहे हैं—मेरे निजी स्वामी राम बाहर के भेष से प्रसन्न नहीं होते। अत: प्रेम भक्ति द्वारा ही उनको प्रसन्न करने का विचार कर, यदि दुराचारिणी नारी श्रृंगार करके अपना भेष अच्छा बना ले तो उसमें शील, सत्य-व्रत नहीं होने से वह स्वामी को प्रिय नहीं लगती। इस प्रकार भेष रूप श्रृंगार हमारे स्वामी राम को प्रिय नहीं होता। भेष-दंभ से तो सांसारिक लोग ही प्रसन्न होते हैं किन्तु जो भेष रूप श्रृंगार से रहित राम रूप स्वामी का व्रत रखने वाली संतात्मा-नारी[1] है, वही सखी हम को अच्छी लगती है और राम रूप पति को प्यारी होती है। जो संतात्मा-नारी राम को ही पति रूप से पहचानती है, अन्य किसी को भी नहीं, वही सदा सुहागिनी होगी।

६२-विरह। घटताल

हम सब नारी एक भरतार, सब कोई तन करैं श्रृंगार ॥टेक॥
घर घर अपने सेज सँवारैं, कंत पियारे पंथ निहारैं ॥ १ ॥
आरत अपने पीव को धावैं, मिलै नाह[1] कब अंग लगावैं ॥ २ ॥
अति आतुर ये खोजत डोलैं, बान परी वियोगिनी बोलैं ॥ ३ ॥
सब हम नारी दादू दीन, दे सुहाग काहू सँग लीन ॥ ४ ॥

विरह दिखा रहे हैं—हम सभी संतात्मा रूप नारियों के स्वामी एक परमात्मा ही हैं और हम सब ही अपने इन्द्रियादि शरीर को निर्दोष करना रूप श्रृंगार कर रही हैं तथा अपने-अपने अन्त:करण घर की वृत्ति-शय्या को ब्रह्माकार रूप से सजा रही हैं और प्यारे परब्रह्म स्वामी का मार्ग देख रही हैं। वियोग से दु:खी होकर अपने प्रभु को प्राप्त करने के लिये ध्यान-साधन रूप दौड़ लगा रही हैं तथा मन में विचार कर रही हैं, वे स्वामी[1] कब मिलेंगे और कब हमें अपने स्वरूप में एक करेंगे। हे प्रभो ! ये हम सब वियोगिनी संतात्मा रूप दीन नारियां, अति व्यथित होकर, आप को खोजती फिर रही हैं और पुकार रही हैं। आपको पुकारने का तो हमारा स्वभाव ही हो गया है, किन्तु आप सुनते ही नहीं। क्या पता किस के संग लीन हो रहे हो ? अब तो कृपा करके हमको भी नित्य मिलन रूप

सुहाग दो।

६३-आत्मार्थी भेष। घट ताल

सोई सुहागिनि साच श्रृंगार, तन मन लाइ भजै भरतार॥ टेक॥
भाव भक्ति प्रेम ल्यौ लावै, नारी सोइ सार सुख पावै॥ १ ॥
सहज संतोष शील सब आया, तब नारी नाह अमोलक पाया ॥ २ ॥
तन मन जौबन सौंप सब दीन्हा, तब कंत रिझाइ आप बस कीन्हा ॥ ३ ॥
दादू बहुरि वियोग न होई, पिव सौं प्रीति सुहागिनि सोई ॥ ४ ॥

आत्म स्वरूप ब्रह्म प्राप्ति में उपयोगी भेष बता रहे हैं—जो तन मन को लगाकर अपने स्वामी की सेवा करती है, वही सुहागिनी है और उसी का साधन-श्रृंगार सत्य है। जो श्रद्धापूर्वक प्रेमाभक्ति से अपनी वृत्ति प्रभु में लगाती है, वह संतात्मारूप नारी ही सार रूप ब्रह्मानन्द प्राप्त करती है। जब स्वाभाविक संतोष, शील आदि सब दिव्य गुण हृदय में आये हैं, तब ही साधक आत्मा रूप नारियों ने अपार महिमा युक्त परब्रह्म पति को प्राप्त किया है। जब अपना तन, मन और सम्पूर्ण कर्त्तव्य रूप यौवन प्रभु के समर्पण किया है, तब ही संतात्माओं ने प्रभु को प्रसन्न करके अपने अनुकूल किया है। पुन: वियोग न हो, ऐसी प्रीति प्रभु से जिसने की है, वही संतात्मा सदा सुहागिनी है।

६४-समता। वर्ण भिन्न ताल

तब हम एक भये रे भाई, मोहन मिलि साँची मति आई॥ टेक॥
पारस परस भये सुखदाई, तब दुतिया दुर्मति दूर गमाई ॥ १ ॥
मलयागिरि मरम मिल पाया, तब बंस वरण कुल भरम गमाया॥ २ ॥
हरि जल नीर निकट जब आया, तब बूंद-बूंद मिल सहज समाया ॥ ३ ॥
नाना भेद भरम सब भागा, तब दादू एक रँगै रँग लागा ॥ ४ ॥

६४-६६ में समता दिखा रहे हैं—हे भाई ! विश्व-विमोहन प्रभु के मिलने पर जब हमारे में यथार्थ बुद्धि आयी तब हम प्रभु से एक हुये हैं। जब परमात्मा-पारस से जीव-लोह मिला, तब जो पहले व्यवहार रूप शस्त्रादि से सबको दु:खप्रद होता था, उसी दुर्बुद्धि जन्य द्वैत-भाव रूप काट को खोकर सबको सुखप्रद भक्त रूप सुवर्ण बना दिया। जब अन्त:करण रूप मलयागिरि में रहने वाले ब्रह्म-चंदन का रहस्य प्राप्त हुआ, तब जीव रूप वृक्ष अपना वंश, वर्ण, कुल आदि का भ्रम हृदय से दूर करके ब्रह्म रूप चंदन ही बन गया। जब हरि समुद्र-जल के पास उपासना द्वारा जीव-जल आया तब शरीरों में बिन्दु-बिन्दु रूप हुआ रहने पर भी अनायास अभेद ज्ञान होकर ब्रह्म-समुद्र-जल में समा गया। इस प्रकार जब ज्ञान द्वारा नाना प्रकार के सब भेद भ्रम हृदय से भाग जाते हैं, तब ब्रह्म रूप रंग राशि में अंश रूप जीव रंग अद्वैत रूप से मिल कर एक रंग हो जाता है।

६५-वर्ण भिन्न ताल

अलह राम छूटा भ्रम मोरा।
हिन्दू तुरक भेद कुछ नांहीं, देखूं दर्शन तोरा ॥ टेक॥
सोई प्राण पिंड पुनि सोई, सोई लोही मांसा ।
सोई नैन नासिका सोई, सहजैं कीन्ह तमासा ॥ १ ॥
श्रवणों शब्द बाजता सुनिये, जिह्वा मीठा लागै ।
सोई भूख सबन को व्यापै, एक युक्ति सोइ जागै ॥ २ ॥
सोई संधि बंध पुनि सोई, सोई सुख सोइ पीरा ।
सोई हस्त पाँव पुनि सोई, सोई एक शरीरा॥ ३ ॥
यह सब खेल खालिक[1] हरि तेरा, तैं हि एक कर लीना ।
दादू जुगति जान कर ऐसी, तब यहु प्राण पतीना ॥ ४ ॥

अल्लह और राम भिन्न है, यह हमारा भ्रम दूर हो गया है। यह तो नाम भेद ही है, नामी एक ही है। हिन्दू और मुसलमानों के शरीर में भी कुछ भेद नहीं है। हे प्रभो ! मैं तो दोनों ही में आपके दर्शन करता हूँ। दोनों में वही प्राण, वही शरीर, वही रक्त, मांस और वे ही नेत्र-नासिकादि इन्द्रियाँ हैं। आपने यह सब अद्भुत दृश्य रूप तमाशा इच्छा मात्र से अनायास ही रच दिया है। इसमें भेद को कहां अवकाश है ? दोनों को ही बजता हुआ ध्वनि रूप शब्द और वचन रूप शब्द समान सुनने में आता है। दोनों की ही जिह्वा को मधुर-रस मधुर लगता है। क्षुधा भी सब को ही लगती है। एक ही प्रकार से सब सोते जागते हैं। दोनों के ही शरीरों में सन्धियां तथा बन्ध भी समान ही हैं। सुख-दु:ख भी समान ही होते हैं। एक जैसी ही दोनों के हाथ-पैर और शरीर की बनावट है। हे सृष्टि[1] रचना करने वाले हरे ! यह सब संसार आपका ही खेल है। आपने ही इसे एक-सा बनाया है और आप ही इसमें जीव रूप से लीन हो रहे हैं। हम ऐसी ही युक्ति पूर्वक विचार धारा से जगत् में एकता जानकर एकनिष्ठ हुये हैं, तब ही हमारे मन को यथार्थता का विश्वास हुआ है।

६६-नटताल

भाई रे, ऐसा पंथ हमारा।
द्वै पख रहित पंथ गह पूरा, अवरण एक अधारा॥ टेक॥
वाद विवाद काहू सौं नांहीं, मांहिं जगत तैं न्यारा।
सम दृष्टि स्वभाव सहज में, आपहि आप विचारा ॥ १ ॥
मैं तैं मेरी यहु मति नांहीं, निर्वैरी निरकारा।
पूरण सबै देख आपा पर, निरालम्ब निरधारा॥ २ ॥

काहू के सँग मोह न ममता, संगी सिरजनहारा ।
मनहीं मन सौं समझ सयाना, आनंद एक अपारा ॥ ३ ॥
काम कल्पना कदे न कीजे, पूरण ब्रह्म पियारा ।
इहिं पथ पहुँच पार गह दादू, सो तत सहज संभारा ॥ ४ ॥

हे भाई ! हमारा पंथ तो ऐसा है—उसमें एक ब्रह्म का ही आधार रहता है, हिन्दू मुसलमान पना आदि द्वैत पक्ष नहीं होता। न वर्ण विभाग ही है। उसको जो ग्रहण करता है, वह पूर्ण ब्रह्म को प्राप्त होकर, स्वयं भी पूर्ण ही हो जाता है। उसमें किसी से वाद-विवाद करने की आवश्यकता नहीं रहती। उसका पथिक, जगत् में रह कर भी, जगत् से अलग ही रहता है। सहज स्वभाव ही उसमें समदृष्टि रहती है तथा अपने आप ही आत्म-स्वरूप का विचार रहता है। ''मैं, तूं, मेरी, तेरी।'' यह भेद बुद्धि उसमें नहीं रहती। वह सब से निर्वैर होकर, अपने पराये सबमें निराकार, निरालम्ब, पूर्ण ब्रह्म को निश्चयपूर्वक देखकर सम हो जाता है। किसी के साथ मोह ममता नहीं करता। परमात्मा को ही अपना साथी समझता है तथा वह बुद्धिमान् विचार द्वारा अपने मन ही मन में समझकर अपार अद्वैतानन्द को प्राप्त होता है। अत: सांसारिक-कामना युक्त कल्पना कभी भी मत कर और इस उक्त मार्ग के द्वारा संसार के पार पहुँच कर परम प्रिय पूर्ण ब्रह्म को अद्वैतात्म रूप से ग्रहण कर। वही परब्रह्म-तत्त्व हमने सहज समाधि में देखा है।

६७-परिचय हैरान । नटताल

ऐसो खेल बन्यो मेरी माई, कैसे कहूं कछु जान्यो न जाई ॥ टेक ॥
सुर नर मुनिजन अचरज आई, राम-चरण को भेद न पाई ॥ १ ॥
मन्दिर मांहीं सुरति समाई, कोऊ है सो देहु दिखाई ॥ २ ॥
मनहिं विचार करहु ल्यौ लाई, दिवा समान कहँ ज्योति छिपाई ॥ ३ ॥
देह निरंतर शून्य[1] ल्यौ लाई, तहँ कौण रमे[2] कौण सूता रे भाई ॥ ४ ॥
दादू न जाणे ये चतुराई, सोइ गुरु मेरा जिन सुधि पाई ॥ ५ ॥

ब्रह्म-साक्षात्कार का आश्चर्य प्रकट कर रहे हैं—हे भाई ! मेरी अनुभूति में राम के साक्षात्कार का ऐसा खेल बना हुआ है जिसे कहूं भी कैसे ? कारण, वाणी से कहने का तो कुछ उपाय भी नहीं जानने में आता। देवता, साधक, नर, मुनिजनादि को राम के चरणों का दर्शन करके आश्चर्य ही होता है। राम के वास्तविक स्वरूप के आदि, मध्य, अन्त का रहस्य प्राप्त नहीं होता। हृदय मंदिर में स्थित साक्षी चेतन में जब वृत्ति लय होती है तब जो कोई सत्य तत्त्व है, वही दिखाई देता है। मन के द्वारा साक्षी चेतन के स्वरूप का सम्यक् विचार करो, फिर वृत्ति साक्षी चेतन में लगाओ। वृत्ति सम्यक् अन्तर्मुख होकर लगने पर आत्मा का साक्षात्कार अवश्य होगा। क्योंकि, वह दीपक ज्योति के समान भासने वाली आत्म ज्योति कहाँ छिप जायेगी ? देह में अन्त:करण के भीतर निरन्तर शुद्ध[1] चेतन में वृत्ति लगाई जाती है, तब हे भाई ! कौन विचरता[2] हुआ और कौन सोता

हुआ दिखाई देता है ? अर्थात् विचरना आदि तो शरीर के धर्म हैं, वहां शरीर नहीं भासता। हम तो जो परब्रह्म के स्वरूप सम्बन्धी विलक्षणतायें हैं, उनका आदि अन्त भी नहीं जान पाते। परब्रह्म के स्वरूप की विलक्षणताओं को परब्रह्म ही जानते हैं और वे ही दादूजी के गुरु हैं। अहमदाबाद में कांकरिये तालाब पर भगवान् ने वृद्ध-स्वरूप बनाकर बचपन में दादूजी को उपदेश दिया था।

यह भजन ठट्टा नगर से आई हुई माता को संबोधन करके सत्संग में कहा गया था। चतुर्थ पाद में भाई ! भी आया है। जो पास बैठे हुये अन्य संत को कहा है, ऐसा ज्ञात होता है।

६८-निज घर परिचय। पंचम ताल

भाई रे, घर ही में घर पाया।
सहज समाइ रह्यो ता मांहीं, सतगुरु खोज बताया॥टेक॥
ता घर काज सबै फिर आया, आपै आप लखाया।
खोल कपाट महल के दीन्हें, थिर सुस्थान दिखाया॥ १ ॥
भय औ[1] भेद, भरम सब भागा, साच सोइ मन लाया।
पिंड परै जहां जिव जावै, ता में सहज समाया॥ २ ॥
निश्चल सदा चलै नहिं कबहूँ, देख्या सब में सोई।
ताही सौं मेरा मन लागा, और न दूजा कोई॥ ३ ॥
आदि अनन्त सोइ घर पाया, अब मन अनत[2] न जाई।
दादू एक रँगै रँग लागा, ता में रह्या समाई॥ ४ ॥

ब्रह्म रूप परमधाम का परिचय दे रहे हैं—हे भाई ! सद्गुरु जनों ने विचार द्वारा खोज करके बताया है, वह विश्व का निवास स्थान परब्रह्म रूप घर हमने शरीर रूप घर में ही प्राप्त किया है और सहजावस्था द्वारा उसी में समाये रहते हैं। उस परब्रह्म घर के लिये प्रथम हम अनेक स्थानों में तथा साधनों में फिर आये थे किन्तु अन्त में वह अपने आत्म-स्वरूप का विचार करने पर दिखाई दिया है। जब विचार ने हृदय-महल के अज्ञान रूप कपाट खोल दिये तब अचल ब्रह्म रूप स्थान दिखाई दिया है। अब तो भय और[1] भेद जन्य सारा भ्रम बुद्धि से भाग गया है और जो सत्य ब्रह्म है, उसी में मन लगा है। शरीर का राग गिरने पर मुक्तात्मा जहां जाता है वा शरीराध्यास दूर होने पर जीवात्मा जहां जाता है, उसी सहज स्वरूप ब्रह्म चिन्तन में मन समाया रहता है। जो सदा निश्चल रहता है, कभी भी चलायमान नहीं होता, उसी ब्रह्म को हमने सबमें देखा है और सभी अवस्थाओं में हमारा मन उसी में लगा रहता है। मन में अन्य वस्तु-चिन्तन वा दूसरा कोई भी विचार नहीं आता। संसार का आदि और अनन्त जो ब्रह्म रूप घर है, वही हमने पा लिया है। अब मन अन्यत्र[2] नहीं जाता। एक अद्वैत ब्रह्म रंग के समीप आत्मा रूप रंग लगकर अद्वैत भाव से उसी में समा गया है।

६९-मानस तीर्थ । पंचमताल

इत है नीर नहाँवन जोग, अनतहि भ्रम भूला रे लोग ॥ टेक॥
तिहिँ तट न्हाये निर्मल होइ, वस्तु अगोचर लखै रे सोइ ॥ १ ॥
सुघट घाट अरु तिरबो तीर, बैठे तहां जगत-गुरु पीर ॥ २ ॥
दादू न जानै तिन का भेव, आप लखावै अंतर देव॥ ३ ॥

६९-७० में मानव तीर्थ का परिचय दे रहे हैं—यहां मनुष्य शरीर में ही स्नान करने योग्य आत्मा नदी का संयम रूप जल है। अन्य तीर्थों में तो लोग भ्रम से ही भटक रहे हैं। जब आत्मा नदी के संयम-जल से स्नान करता है, तब ही प्राणी निर्मल होकर मन इन्द्रियों के अविषय ब्रह्म रूप सत्य वस्तु को देखता है। हृदय रूप सुन्दर घाट पर विचार-नौका का आश्रय ले संयम तीर्थ को तैर कर उसके अगले तीर अर्थात् संयम की पूर्णावस्था में जहां जगत् के सिद्ध-गुरु शुद्ध ब्रह्म विराजते हैं, वहां ही जाता है। उन शुद्ध ब्रह्म के स्वरूप रहस्य आदि, मध्य, अन्त को हम नहीं जानते। वे आन्तर स्थित ब्रह्म-देव जिन पर कृपा करते हैं, उनको ही अपना स्वरूप रहस्य बताते हैं।

७०-पंजाबी त्रिताल

ऐसा ज्ञान कथो मन ज्ञानी, इहिँ घर होइ सहज सुख जानी ॥ टेक॥
गंग जमुन तहँ नीर नहाइ, सुषमन नारी रंग लगाइ॥ १ ॥
आप तेज तन रह्यौ समाइ, मैं बलि ताकी देखूं अघाइ ॥ २ ॥
बास निरंतर सो समझाइ, बिन नैनहुँ देखूं तहँ जाइ ॥ ३ ॥
दादू रे यहु अगम अपार, सो धन मेरे अधर अधार॥ ४ ॥

हे ज्ञानी नर ! हमारे आगे तो ऐसा ज्ञान कथन करो, जिससे हम ज्ञानी होकर, इस शरीर रूप घर में ही सहज स्वरूप ब्रह्म को जान कर सुखी हो जावें। पिंगला नाड़ी रूप गंगा, इड़ा रूप यमुना, इनके प्राणायाम-प्रवाह में स्नान करके पवित्र होऊं और सुषुम्ना नाड़ी द्वारा ध्यान रूप रंग लगाऊं, फिर ध्यान द्वारा जो अपना आत्म स्वरूप प्रकाश शरीर में समा रहा है, उसे तृप्त होकर देखूं और उसकी बलिहारी जाऊं। जिसमें हम निरंतर बस रहे हैं वा जिसका हमारे में निरंतर निवास है, उसी को इस प्रकार समझाओ कि विचार द्वारा उसके स्वरूप के समीप जाकर बाह्य नेत्रों के बिना ही प्राणी उसका साक्षात्कार कर सके। अरे भाई ! यह जो अगम अपार ब्रह्म तत्त्व है, सोई हमारा धन और निरालंब का आधार है।

७१-परिचय सत्संग । पंजाबी त्रिताल

अब तो ऐसी बन आई, राम-चरण बिन रह्यो न जाई ॥ टेक॥
सांईं को मिलबे के कारण, त्रिकुटी संगम नीर नहाई ।
चरण-कमल की तहँ ल्यौ लागै, जतन जतन कर प्रीति बनाई ॥ १ ॥
जे रस भीना छावर[1] जावै, सुन्दरि सहजैं संग समाई ।
अनहद बाजे बाजन लागे, जिह्वाहीणैं कीरति गाई॥ २ ॥

कहा कहूं कुछ वरणि न जाई, अविगत अंतर ज्योति जगाई ।
दादू उनका मरम न जानैं, आप सुरंगे बैन[२] बजाई ॥ ३ ॥

७१-७२ में आन्तर साक्षात् सत्संग का परिचय दे रहे हैं—अब तो हमारी ऐसी अवस्था बन गई है-राम-चरण से दूर नहीं रहा जाता। हम प्रभु से मिलने के लिए ही त्रिकुटी में होने वाले इड़ा-गंगा, पिंगला-यमुना और सुषुम्ना-सरस्वती के संगम में ध्यान रूप स्नान करते हैं अर्थात् आज्ञा-चक्र में ध्यान करते हैं। वहां भगवत् चरणों में वृत्ति अच्छी प्रकार लगती है। इस प्रकार ध्यान रूप उपाय बारंबार करके हमने भगवान् में अनन्य प्रीति की है। अब जो अद्भुत प्रभु-प्रेम-रस है, उसमें भीगा हुआ मन प्रभु पर निछावर[१] हो रहा है और वृत्ति रूप सुन्दरी अनायास ही उनके संग रह कर उन्हीं में समा रही है अर्थात् ब्रह्माकार हो रही है। अब तो अनाहत बाजे बजने लग गये हैं और बिना ही जिह्वा से सविकल्प समाधि में हम भगवान् का यशोगान करते हैं। हे साधको ! अब तो हमारी अवस्था ऐसी हो गई है, क्या कहें, कुछ कहा नहीं जाता। हृदय के भीतर अखंड ब्रह्म-ज्योति जग रही है। उन परब्रह्म का ठीक-ठीक रहस्य तो हम नहीं जान पाते, किन्तु वे मनोहर प्रभु हमारे हृदय में आनंद की बेणु[२] बजा रहे हैं।

७२-राजमृगांक ताल

नीके राम कहत है बपुरा[१] ।
घर मांहीं घर निर्मल राखै, पंचों धोवै काया कपरा ॥टेक॥
सहज समर्पण सुमिरण सेवा, तिरवेणी तट संजम सपरा[२] ।
सुन्दरि सन्मुख जागण लागी, तहँ मोहन मेरा मन पकरा[३] ॥ १ ॥
बिन रसना मोहन गुण गावै, नाना वाणी अनुभव अपरा[४] ।
दादू अनहद[६] ऐसे कहिये, भक्ति तत्त्व यहु मारग सकरा[५] ॥ २ ॥

भगवद् विरह से दुखी[१] साधक अच्छी प्रकार राम का चिन्तन करता है। स्थूल शरीर रूप घर में रहने वाले अन्त:करण घर को काम क्रोधादिक-मल से रहित रखता है और शरीर के रक्षक पंच ज्ञानेन्द्रियों रूप वस्त्रों को शुद्ध विचार-जल से धोकर निर्मल रखता है। मन, प्राण, बुद्धि द्वारा इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना की एकाग्रता रूप त्रिवेणी-संगम के आज्ञा-चक्र तट पर ध्यान रूप स्नान करके संयम-वस्त्र[२] (साफी[२]) से स्वच्छ रखता है। सहजावस्था रूप नैवेद्य समर्पण करता है अर्थात् अपने को निर्विकार करके सहजावस्था में रहता है। इतना होने पर ही हमारी वृत्ति-सुन्दरी प्रभु के सन्मुख अर्थात् ब्रह्माकार हो, अज्ञान निद्रा से जाग कर प्रभु में लगी है। जहां बुद्धि वृत्ति लगी है वहां ही विश्व-विमोहन प्रभु ने मेरे मन को भी पकड़[३] लिया है अर्थात् बुद्धि-वृत्ति और मन दोनों प्रभु-परायण रहते हैं। अब हमारा मन सविकल्प समाधि में जिह्वा का आश्रय लिये बिना ही नाना प्रकार से अपनी परा[४] व अनुभव वाणी द्वारा भगवान् के गुण गाता है। ऐसे गुण गान करने को ही असीम[६] गुणगान करना कहते हैं। यह आन्तर भक्ति-तत्त्व का मार्ग सूक्ष्म[५] है। अत: इसमें सहज ही सब का मन नहीं लगता।

७३-मनसा गायत्री । राजमृगांक ताल

अवधू कामधेनु गह राखी ।
वश कीन्ही तब अमृत सरवै[1], आगै चार न नाखी ॥ टेक ॥
पोषंतां पहली उठ गरजै, पीछे हाथ न आवै ।
भूखी भलै दूध नित दूणाँ, यों या धेनु दुहावै ॥ १ ॥
ज्यों ज्यों खीण पड़ै त्यों दूझै, मुकता[2] मेल्याँ मारै ।
घाटा रोक घेर घर आणैं, बाँधी कारज सारै ॥ २ ॥
सहजैं बाँधी कदे न छूटै, कर्म बंधन छुट जाई ।
काटै कर्म सहज सौं बाँधै, सहजैं रहै समाई ॥ ३ ॥
छिन छिन मांहिं मनोरथ पूरै, दिन दिन होइ अनंदा ।
दादू सोई देखतां पावै, कलि अजरावर कंदा ॥ ४ ॥

बुद्धि को पवित्र करके परमार्थ परायण करने के लिए संयम रूप गायत्री मंत्र बता रहे हैं—हे अवधूत ! शरीर के वस्त्र त्याग कर शीतोष्ण सहन करने से ही विशेष लाभ न होगा । जो नाना कामनाओं को उत्पन्न करने वाली बुद्धि रूप कामधेनु है, उसको संयम द्वारा पकड़ कर रक्खो अर्थात् विषय-वासनाओं में मत जाने दो । हमने इसे संयम द्वारा अपने अधीन की है, तब ही यह ब्रह्मानन्द रूप अमृत टपकाती है[1] । इसके आगे भोग वासना रूप चारा मत डालो, भोग-वासना रूप भोजन देना आरंभ करते ही यह अधिक प्राप्ति की इच्छा रूप गर्जना करके उठती है और सांसारिक भोगों की ओर भाग जाती है, पीछे सहज ही संयम रूप हाथ में नहीं आती। इसे अच्छी प्रकार भूखी अर्थात् विषय-वासनाओं से रहित रखकर ही भगवद्-विचार रूप दूध दुहना चाहिए। यह बुद्धि-धेनु इसी प्रकार दुहाती है। भोग-वासना-रूप भोजन नहीं मिलने से जैसे-जैसे यह विकार रहित होकर क्षीणता को प्राप्त होती जायेगी, वैसे-वैसे ही भगवद् विचार रूप दूध अधिक देती जायेगी । यदि इसकी इच्छानुसार अधिक[2] मात्रा में विषय-वासना रूप चारा इसके आगे रखते जाओगे तो यह विषयों में पटक कर मारेगी, अर्थात् परमार्थ से गिरा देगी। इसकी विषयों में जाने की पंच ज्ञानेन्द्रिय रूप घाटियों को रोक कर अर्थात् इन्द्रियों को अपने अधीन करके वैराग्य द्वारा इसे वापस घेर कर अपने अधिष्ठान चेतन रूप घर में लाना चाहिए । यह ब्रह्म-विचार खूंटे के बँधी रहती है, तब ही मुक्ति रूप कार्य सिद्ध करती है। सहज निर्विकार अवस्था द्वारा जब यह स्वस्वरूप में बँध जाती है तब कभी भी नहीं खुल सकती। कर्म-बन्धन कट जाता है। जो इसे सहज स्वरूप ब्रह्म के विचार में बाँधता है, वह कर्मों को काट कर सहजावस्था द्वारा सहज स्वरूप ब्रह्म में ही समा जाता है। सहज स्वरूप ब्रह्म में बँधी हुई यह क्षण-क्षण में प्राणी के मनोरथों को पूर्ण करती है और प्रतिदिन आनंद ही होता जाता है। इस कलयुग में भी वह साधक देखते-देखते जीवितावस्था में ही देवताओं से अतिश्रेष्ठ आनंद-कंद परब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।

७४-परिचय । कहरवा

जब घट परगट राम मिले,
आतम मंगल चार चहूं दिशि, जन्म सुफल कर जीत चले ॥ टेक ॥
भक्ति मुक्ति अभय कर राखे, सकल शिरोमणि आप किये ।
निर्गुण राम निरंजन आपै, अजरावर उर लाइ लिये ॥ १ ॥
अपने अंग संग कर राखे, निर्भय नाम निशान बजावा ।
अविगत नाथ अमर अविनाशी,परम पुरुष निज सो पावा॥ २ ॥
सोई बड़भागी सदा सुहागी, परकट प्रीतम संग भये।
दादू भाग बड़े वर[१] वर[२] कर, सो अजरावर[१] जीत गये॥ ३ ॥

ब्रह्म साक्षात्कार संबंधी परिचय दे रहे हैं—जब अन्त:करण में राम का आत्म रूप से प्रत्यक्ष मिलन हुआ, तब जीवात्मा के लिए चतुष्टय अन्त:करण रूप चारों दिशाओं में तथा बाह्य चारों दिशाओं में आनंद मंगल का ही व्यवहार होने लगा है। अब सांसारिक आशाओं को जीत कर तथा अपने जन्म को सफल करके हम परब्रह्म स्वरूप में लय होने को चले हैं। सर्व-शिरोमणि प्रभु ने ही हमको भक्ति द्वारा सांसारिक वासनाओं से मुक्त किया है और अभय कर रखा हैं। देवताओं से अति श्रेष्ठ निर्गुण निरंजन राम ने स्वयं ही हमको अपने हृदय में लगाया है। अपने निर्विकार स्वरूप के साथ हमें भी निर्विकार कर रखा है। हमने भी निर्भयता के साथ राम-नाम रूप नगाड़ा बजाकर मन इन्द्रियों के अविषय देवताओं के नाथ अविनाशी अपना जो परम पुरुष है, उन्हीं को प्राप्त किया है। जो संतजन प्रत्यक्ष में अपने प्रियतम प्रभु के संग हो गये हैं, वे ही सदा सौभाग्य-संपन्न और बड़भागी हैं। हमारे भी बड़े भाग्य हैं, जो हम उन देवताओं से अति श्रेष्ठ[१] परब्रह्म वर[१] को वरण[२] करके उसके तद्रूप अजन्मा[१] स्थिति प्राप्त करने से यह मानव-देह-गढ को जीत गये हैं।

७५-परा भक्ति प्रार्थना । कहरवा

रमैया, यहु दुख सालै मोहि ।
सेज सुहाग न प्रीति प्रेम रस, दरशन नांहीं तोहि ॥ टेक॥
अंग प्रसंग एक रस नांहीं, सदा समीप न पावै।
ज्यों रस में रस बहुरि न निकसै, ऐसे होइ न आवै॥ १ ॥
आत्मलीन नहीं निशिवासर, भक्ति अखंडित सेवा।
सन्मुख सदा परस्पर नांहीं, तातैं दुख मोहि देवा॥ २ ॥
मगन गलित महारस माता, तूं है तब लग पीजै।
दादू जब लग अंत न आवै, तब लग देखन दीजै॥ ३ ॥

पराभक्ति को प्राप्त करने के लिए प्रार्थना कर रहे हैं—हे सबमें रमने वाले राम ! आप मेरी हृदय-शय्या पर पधार करके मुझे सुहाग सुख नहीं देते, न मेरी प्रीति के अनुसार अपना प्रेम-रस

प्रदान करते और न आपका दर्शन ही होता है। यही दु:ख मुझे दु:खी कर रहा है। आपके स्वरूप से निरंतर संयोग का अवसर नहीं मिलता, न आपकी सदा समीपता ही प्राप्त होती है। जैसे इक्षु-रस में इक्षु-रस मिलकर फिर अलग नहीं निकलता, वैसे ही आप के स्वरूप में हमारा आत्मा लय होकर फिर अलग नहीं निकल सके, ऐसी अद्वैत अवस्था प्राप्त नहीं हो रही है। बुद्धि अखंडित सेवा-भक्ति द्वारा सदा आपके सन्मुख रह कर दिन-रात आप में लीन नहीं रहती और आप परमात्मा तथा मेरी आत्मा परस्पर एक नहीं होते। हे देव ! इसीलिए मुझे दु:ख है। प्रभो ! जब तक आप का स्वरूप प्रतीति मात्र भिन्न भास रहा है, तब तक अहंकार को नष्ट करके आपके प्रेम में निमग्न होकर आप के साक्षात्कार रूप महा-रस का पान करते हुये मस्त रहूँ, ऐसी कृपा करिये। प्रभो ! जब तक मेरे देह का अन्त समय न आवे तब तक तो मुझे उक्त प्रकार पराभक्ति द्वारा आपका दर्शन करने दीजिये, फिर तो मैं आपका रूप हो ही जाऊंगा।

७६-लांबी (अधीरता, अस्थिरता) दादरा

गुरुमुख पाइये रे, ऐसा ज्ञान विचार।
समझ समझ समझ्या नहीं, लागा रंग अपार ॥टेक॥
जाँण जाँण जाँण्या नहीं, ऐसी उपजै आइ ।
बूझ बूझ बूझ्या नहीं, ढोरी[1] लागा जाइ ॥ १ ॥
ले ले ले लीया नहीं, हौंस[2] रही मन मांहिं ।
राख राख राख्या नहीं, मैं रस पीया नांहिं ॥ २ ॥
पाय पाय पाया नहीं, तेजैं तेज समाइ ।
कर कर कुछ कीया नहीं, आतम अंग लगाइ ॥ ३ ॥
खेल खेल खेल्या नहीं, सन्मुख सिरजनहार ।
देख देख देख्या नहीं, दादू सेवक सार ॥ ४ ॥

परब्रह्म के अखंड साक्षात्कारार्थ संत में अधैर्य रहता है, उसे प्रकट कर रहे हैं—अरे भाई ! गुरुजनों के मुख से ही ऐसा ज्ञान विचार सुनने में आता है कि—उस परब्रह्म का अपार प्रेम-रंग लग गया है, किन्तु शास्त्र संतों द्वारा उसे बारंबार समझ कर भी उसका आदि, मध्य, अन्त नहीं समझ सके हैं। उसे व्यापक तथा अपना स्वरूप जान कर भी बुद्धि में ऐसी भावना उत्पन्न होती रहती है कि अभी पूर्ण रूप से नहीं जाना गया। उसके विषय में बारंबार प्रश्न करके भी अभी तक न पूछने के समान भावना होती रहती है और संत ब्रह्माकार वृत्ति द्वारा लगन[1] पूर्वक उसकी ओर आगे बढ़ता रहता है। मन, वचन, कर्म से उसकी प्राप्ति होने का निश्चय कर लेने पर भी नहीं प्राप्त करने की-सी स्थिति प्रतीत होती रहती है और प्राप्त करने की इच्छा[2] मन में बनी रहती है। ध्यान द्वारा हृदय में और विचार द्वारा बुद्धि में रखने पर भी नहीं रखने के समान प्रतीत होता है। कारण, मैंने निदिध्यासन रूप अखंड रस का पान नहीं किया। उसे व्यापक रूप से तथा आत्मा रूप से प्राप्त तो कर लिया किन्तु आत्म-प्रकाश, परमात्म-प्रकाश में लय होकर व्यवहार में भी उसकी भिन्न

प्रतीति न हो, ऐसे नहीं प्राप्त कर सके। बारंबार योगादि साधन करके भी जब तक आत्मा को परमात्म स्वरूप में अभेद न कर सके, तब तक कुछ भी नहीं करने के समान भावना बनी रहती है। ध्यानावस्था में और सविकल्प समाधि में परब्रह्म दर्शनानंद रूप खेल खेल कर भी जब तक ब्रह्म ज्ञान द्वारा ब्रह्म के सन्मुख होकर उनसे अभेद न हुआ, तब तक अखंडानन्द प्राप्ति रूप खेल न खेलने के समान ही भावना बनी रहती है। निर्विकल्पसमाधि में बारंबार साक्षात्कार करने पर भी नहीं देखने के समान देखने की इच्छा जिसमें बनी रहती है, वही सेवक श्रेष्ठ है।

७७-गुरु अधीन ज्ञान। दादरा

बाबा गुरु मुख ज्ञाना रे, गुरु मुख ध्याना रे॥ टेक॥
गुरु मुख दाता, गुरु मुख राता , गुरु मुख गवना रे ।
गुरु मुख भवना, गुरु मुख छवना[1], गुरु मुख रवना रे[2] ॥ १ ॥
गुरु मुख पूरा[3] गुरु मुख शूरा, गुरु मुख वाणी रे ।
गुरु मुख देणा, गुरु मुख लेणा, गुरु मुख जाणी रे ॥ २ ॥
गुरु मुख गहबा, गुरु मुख रहबा, गुरु मुख न्यारा रे ।
गुरु मुख सारा, गुरु मुख तारा, गुरु मुख पारा रे ॥ ३ ॥
गुरु मुख राया, गुरु मुख पाया, गुरु मुख मेला रे ।
गुरु मुख तेजं, गुरु मुख सेजं, दादू खेला रे ॥ ४ ॥

यथार्थ ज्ञान गुरु मुख द्वारा ही प्राप्त होता है, यह कह रहे हैं—हे बाबा ! सभी प्रकार के ज्ञान गुरुमुख से सुनने पर ही होते हैं। गुरुमुख से ही ध्यान का, दाता होने का, प्रभु में अनुरक्त होने का, प्रभु के पास जाने का, अपने अधिष्ठान परब्रह्म रूप घर का, उस घर में स्थिर रूप से रहने[1] का, प्रभु से आनंद[2] प्राप्त करने का, पूर्णावस्था प्राप्त करने का, साधन में वीर रहने का, वाणी बोलने का, उपदेश देने तथा लेने का, ज्ञानी होने का, ज्ञान को धारण करने का, स्वस्वरूप में स्थित रहने का, सांसारिक भावनाओं से अलग रहने का, सार तत्त्व का, संसार-सिन्धु से तैरने का, संसार पार की स्थिति का, राजा समान निर्पेक्ष रहने का, ब्रह्म प्राप्ति का, हृदय शय्या पर प्रभु की अनुभूति का ब्रह्म प्रकाश, परा भक्ति द्वारा प्रभु से आनंद रूप खेल खेलने और ब्रह्म में अभेद रूप से मिलने का इत्यादि सभी यथार्थ ज्ञान गुरु द्वारा ही होता है।

७८-निज स्थान निर्णय। दीपचन्दी

मैं मेरे में हेरा, मध्य मांहिं पीव नेरा॥टेक॥
जहँ अगम अनूप अवासा, तहँ महापुरुष का वासा ।
तहँ जानेगा जन कोई, हरि मांहिं समाना सोई॥ १॥
अखंड ज्योति जहँ जागे, तहँ राम नाम ल्यौ लागे ।
तहँ राम रहै भर पूरा, हरि संग रहै नहिं दूरा॥ २॥
तिरवेणी तट तीरा, तहँ अमर अमोलक हीरा।

उस हीरे सौं मन लागा, तब भरम गया भय भागा ॥ ३ ॥
दादू देख हरि पावा, हरि सहजैं संग लखावा ।
पूरण परम निधाना, निज निरखत हौं भगवाना ॥ ४ ॥

७८-७९ में निश्चय किये हुये अपने अधिष्ठान रूप स्थान को बता रहे हैं—जब मैंने ध्यान द्वारा अपने में ही खोजा, तब परमात्मा मेरे अति समीप हृदय के मध्य में ही प्राप्त हुये। जहां बाह्य इन्द्रियों से अगम अनुपम अष्टदल-कमल रूप निवासस्थान है, उसी में ही महापुरुष परब्रह्म का विशेष रूप से निवास है। ध्यान द्वारा वहां पर स्थित परब्रह्म को जो भी जन जानेगा, वह परब्रह्म में ही समा जायगा। जहां हृदय देश में आत्म रूप अखंड ज्योति जगती है, वहां ही राम-नाम द्वारा राम में वृत्ति लगती है। वहां ही विश्व में परिपूर्ण राम विशेष रूप से रहते हैं, इसलिए हरि संग ही रहते हैं, दूर नहीं। आज्ञा-चक्र में इडा, पिंगला, सुषुम्ना का संगम रूप त्रिवेणी तट है। वहां उसके तीर पर ही ध्यान द्वारा अमर ब्रह्म रूप अमूल्य हीरा प्राप्त होता है। जब उस ज्ञान रूप हीरे के विचार में हमारा मन लगा, तब हमारा सम्पूर्ण भेद-जन्य भ्रम और भय नष्ट हो गया। उस ज्ञान के द्वारा हम अनायास ही ब्रह्म को देख पाये हैं और वह हमारे संग ही प्रतीत हुआ है। अब उस परमाश्रय पूर्णब्रह्म अपने भगवान् को हम निरन्तर देखते रहते हैं।

७९-दीपचन्दी

मेरा मन लागा सकल करा[१], हम निशदिन हिरदै सो धरा ॥ टेक ॥
हम हिरदै मांहीं हेरा, पीव परकट पाया नेरा।
सो नेरे ही निज लीजे, तब सहजैं अमृत पीजे ॥ १ ॥
जब मन ही सौं मन लागा, तब ज्योति स्वरूपी जागा ।
जब ज्योति स्वरूपी पाया, तब अंतर मांहिं समाया ॥ २ ॥
जब चित्त हि चित्त समाना, हम हरि बिन और न जाना ।
जाना जीवन सोई, अब हरि बिन और न कोई ॥ ३ ॥
जब आतम एकै बासा, परमातम मांहिं प्रकाशा।
परकाशा पीव पियारा, सो दादू मींत हमारा ॥ ४ ॥

इति राग गौड़ी समाप्त: ॥ १ ॥ पद ७९ ॥

जिसने सम्पूर्ण विश्व उत्पन्न किया[१] है वही मेरे मन को प्रिय लग रहा है और हम ने रात-दिन उसी को हृदय में रखा है। हमने उसे ध्यान द्वारा हृदय में खोजा था, इसलिये वह परमात्मा अति समीप हृदय में ही प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त हुआ है। उसे ध्यान द्वारा समीप निज हृदय में ही प्राप्त करो, तब ही अनायास आनंदामृत पान कर सकोगे। जब हमारा मन, मन की अंतर वृत्ति के द्वारा परब्रह्म के चिन्तन में लगा, तब ही ज्योति-स्वरूप से जगमगाते हुये परब्रह्म को हमने देखा और जब ज्योति-स्वरूप से उसे प्राप्त किया तो उसी में समा गये। इस प्रकार जब चित्त, चित्त की अन्तर्मुखता के द्वारा, उसमें लीन हुआ तब हमें परब्रह्म से भिन्न कुछ भी ज्ञान न रहा। हमने उसी परब्रह्म को

अपना जीवन समझा है। अब प्रभु के बिना अन्य कोई भी सत्य नहीं भासता। जब भीतर परमात्म-प्रकाश प्रकट होकर, आत्मा का परमात्मा में अद्वैत रूप से वास हो गया तो अब वह प्रकाश-स्वरूप प्रियतम परब्रह्म ही हमारा मित्र है।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग गौड़ी समाप्त: ।। १ ।।

अथ राग माली गौड़ २

(गायन समय संध्या ६ से ९ रात्रि)

८०- नाम महिमा । झपताल

गोविन्द ! नाम तेरा, जीवन मेरा, तारण भव पारा ।
आगे इहिं नाम लागे, संतन आधारा ॥ टेक॥
कर विचार तत्त्व सार, पूरण धन पाया।
अखिल नाम अगम ठाम, भाग हमारे आया ॥ १ ॥
भक्ति मूल मुक्ति मूल, भव जल निस्तरना।
भरम कर्म भंजना भय, किल्विष सब हरना ॥ २ ॥
सकल सिद्धि नव निधि, पूरण सब कामा।
राम रूप तत्त्व अनूप, दादू निज नामा॥ ३ ॥

नाम महिमा कह रहे हैं—हे गोविन्द ! आपका नाम मेरा जीवन है और सांसारिक वासना-सरिता से तार कर संसार-सागर से पार करने वाला है। पूर्व काल के सन्त इस नाम के चिन्तन में ही लगे थे। यह आप का नाम ही संतों का आधार है। हमने विचार करके ही तत्त्व-ज्ञान का भी सार नाम रूप धन प्राप्त किया है। नाम ही हमारा सर्वस्व है। नाम ही अगम धाम रूप परब्रह्म को प्राप्त कराता है। यह भाग्यवश ही हमारे हृदय में आया है। नाम ही भक्ति और मुक्ति का मूल कारण है। संसार-सिन्धु के मनोरथ-जल से पार करने वाला है। भ्रम, कर्म और भय को नष्ट करने वाला है। सम्पूर्ण पाप और विकारों को नष्ट करने वाला है। सम्पूर्ण सिद्धियों और नव निधियों को देने वाला है। सम्पूर्ण कामना पूर्ण करने वाला यह राम नाम निज नाम होने से अनुपम तत्त्व है।

८१-करुणा । झपताल

गोविन्द ! कैसे तरिये।
नाव नांहीं खेव[1] नांहीं, राम विमुख मरिये ॥ टेक॥
ज्ञान नांहीं ध्यान नांहीं, लै समाधि नांहीं ।
विरहा वैराग नांहीं, पंचौं गुण[2] मांहीं ॥ १ ॥
प्रेम नांहीं प्रीति नांहीं, नाम नांहीं तेरा।
भाव नांहीं भक्ति नांहीं, कायर जीव मेरा॥ २ ॥

के द्वारा, उसमें लीन हुआ तब हमें परब्रह्म से भिन्न कुछ भी ज्ञान न रहा। हमने उसी परब्रह्म को अपना जीवन समझा है। अब प्रभु के बिना अन्य कोई भी सत्य नहीं भासता। जब भीतर परमात्म-प्रकाश प्रकट होकर, आत्मा का परमात्मा में अद्वैत रूप से वास हो गया तो अब वह प्रकाश-स्वरूप प्रियतम परब्रह्म ही हमारा मित्र है।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग गौड़ी समाप्त: ॥ १ ॥

अथ राग माली गौड़ २

(गायन समय संध्या ६ से ९ रात्रि)

८०- नाम महिमा । झपताल

गोविन्द ! नाम तेरा, जीवन मेरा, तारण भव पारा ।
आगे इहिं नाम लागे, संतन आधारा ॥ टेक॥
कर विचार तत्त्व सार, पूरण धन पाया।
अखिल नाम अगम ठाम, भाग हमारे आया॥ १ ॥
भक्ति मूल मुक्ति मूल, भव जल निस्तरना।
भरम कर्म भंजना भय, किल्विष सब हरना ॥ २ ॥
सकल सिद्धि नव निधि, पूरण सब कामा।
राम रूप तत्त्व अनूप, दादू निज नामा॥ ३ ॥

नाम महिमा कह रहे हैं—हे गोविन्द ! आपका नाम मेरा जीवन है और सांसारिक वासना-सरिता से तार कर संसार-सागर से पार करने वाला है। पूर्व काल के सन्त इस नाम के चिन्तन में ही लगे थे। यह आप का नाम ही संतों का आधार है। हमने विचार करके ही तत्त्व-ज्ञान का भी सार नाम रूप धन प्राप्त किया है। नाम ही हमारा सर्वस्व है। नाम ही अगम धाम रूप परब्रह्म को प्राप्त कराता है। यह भाग्यवश ही हमारे हृदय में आया है। नाम ही भक्ति और मुक्ति का मूल कारण है। संसार-सिन्धु के मनोरथ-जल से पार करने वाला है। भ्रम, कर्म और भय को नष्ट करने वाला है। सम्पूर्ण पाप और विकारों को नष्ट करने वाला है। सम्पूर्ण सिद्धियों और नव निधियों को देने वाला है। सम्पूर्ण कामना पूर्ण करने वाला यह राम नाम निज नाम होने से अनुपम तत्त्व है।

८१-करुणा। झपताल

गोविन्द ! कैसे तरिये।
नाव नांहीं खेव[1] नांहीं, राम विमुख मरिये ॥ टेक॥
ज्ञान नांहीं ध्यान नांहीं, लै समाधि नांहीं ।
विरहा वैराग नांहीं, पंचौं गुण[2] मांहीं ॥ १ ॥
प्रेम नांहीं प्रीति नांहीं, नाम नांहीं तेरा।
भाव नांहीं भक्ति नांहीं, कायर जीव मेरा॥ २ ॥

घाट नांहीं बाट नांहीं, कैसे पग धरिये ।
वार नांहीं पार नांहीं, दादू बहु डरिये ॥ ३ ॥

भगवत् प्राप्ति के लिए दुःख प्रकट कर रहे हैं—हे गोविन्द ! हम इस संसार-सागर से कैसे पार होंगे ? न तो हमारे पास साधन रूप नौका है, न साधन-नौका द्वारा पार कराने वाला गुरु-केवट[६] है और न देने को किराया[७] है। हम तो राम से विमुख रह कर संसार-सिन्धु में डूबकर मरने वाले ही हैं। न हमारे में आत्म-ज्ञान है, न ध्यान ही करते हैं, न स्वस्वरूपाकार वृत्ति ही रखते हैं, न समाधि ही लगाते हैं, न हमारे में विरह है, न वैराग्य ही है। मन विषयों[८] में फँस रहा है वा पंचों इन्द्रियाँ विषयों[२] में फँस रही हैं। न सन्तों में प्रेम है, न आप में प्रीति है, न आपका नाम चिन्तन ही करते हैं। न आप में श्रद्धा-भक्ति है। यह हमारा मन उक्त साधनों के करने में तो बड़ा ही कायर है। तैरने योग्य संसार-सिन्धु का ऐसा कोई घाट और मार्ग नहीं दृष्टि पड़ता, जिससे हम पार हो सकें। फिर पार जाने के लिए इस अथाह संसार-सिन्धु में कैसे पैर रक्खें, इसका वार-पार भी तो ज्ञात नहीं होता। अत: इसको पार करने में हम बहुत डर रहे हैं।

८२-विरह। शंखताल

पिव आव हमारे रे, मिल प्राण पियारे रे, बलि जाऊं तुम्हारे रे ॥टेक॥
सुन सखी सयानी रे, मैं सेव न जानी रे, हौं भई दिवानी रे ॥ १ ॥
सुन सखी सहेली रे, क्यों रहूं अकेली रे, हौं खरी दुहेली रे ॥ २ ॥
हौं करूं पुकारा रे, सुन सिरजनहारा रे, दादू दास तुम्हारा रे ॥ ३ ॥

८२-८५ में वियोग व्यथा दिखा रहे हैं—हे प्राण प्रिय स्वामिन् ! मेरे हृदय में आकर मुझसे मिलें, मैं आपकी बलिहारी जाती हूँ। हे ज्ञानी सन्त सखी ! मेरी बात ध्यान देकर सुन, मैं तो प्रभु के वियोग से पगली हो रही हूँ, अत: मुझे उनकी सेवा-भक्ति करना भी नहीं आता। बता तो सही, कैसे उनकी उपासना की जाती है ? हे साधक रूप संगिनी सखी ! मेरी बात सुन तो सही, मैं प्रभु बिना अकेली कैसे रहूं ? प्रभु के बिना मैं अति दुःखी हूं। सृष्टिकर्ता परमेश्वर ! मैं आपका दास हूँ और बारंबार पुकार कर प्रार्थना कर रहा हूँ। मेरी प्रार्थना सुनकर मुझे दर्शन देने की कृपा कीजिये।

८३-शंख ताल

वाल्हा[१] सेज हमारी रे, तूं आव हूं वारी रे, हूं दासी तुम्हारी रे॥ टेक॥
तेरा पंथ निहारूं रे, सुन्दर सेज सँवारूं रे, जियरा तुम पर वारूं रे ॥ १ ॥
तेरा अंगड़ा पेखूं रे, तेरा मुखड़ा देखूं रे, तब जीवन लेखूं रे॥ २ ॥
मिल सुखड़ा दीजै रे, यहु लाहड़ा[२] लीजै रे, तुम देखैं जीजै रे॥ ३ ॥
तेरे प्रेम की माती रे, तेरे रँगड़े राती रे, दादू वारणे जाती रे ॥ ४ ॥

हे प्रियतम[१] परमेश्वर ! आप हमारी हृदय शय्या पर पधारिये, मैं आपकी बलिहारी जाती हूँ। मैं आप की दासी हूं, आपका मार्ग देख रही हूँ और आपके लिए हृदय रूप सुन्दर शय्या दैवी-गुणों से सजा रही हूँ, अपने प्राण आप पर निछावर करने को तैयार हूं, आप पधारिये। मैं विचार द्वारा संशय-विपर्य्य रहित आपका स्वरूप देखूंगी, और अभेद दर्शन रूप मुख देखूंगी तब ही अपने जीवन को सफल समझूंगी। आप मुझसे मिलकर मुझे परमानंद दे कर जीवन प्रदान करने का महान् लाभ[२] लें। मैं आपको देखने से ही जीवित रह सकूंगी। मैं आपके प्रेम में मस्त होकर आपके चिन्तन रूप रंग में अनुरक्त हूं और आपकी बलिहारी जाती हूं।

८४-(फारसी) शूल ताल

दरबार तुम्हारे दरदवंद[१], पीव पीव पुकारे ।
दीदार दरूनैं[२] दीजिये, सुन खसम[३] हमारे ॥ टेक॥
तनहां[४] के तन पीर है, सुन तूंही निवारे ।
करम[५] करीमा[६] कीजिये, मिल पीव पियारे ॥ १ ॥
शूल[७] सुलाको[८] सो सहूं, तेग तन मारे ।
मिल सांई सुख दीजिये, तूंही तूं सँभारे ॥ २ ॥
मैं शुहूदा[९] तन सोखता[१०], विरहा दुख जारे ।
जिय तरसे दीदार को, दादू न विसारे ॥ ३ ॥

प्रभो ! आपके अष्टदल-कमल रूप दरबार के हृदय-द्वार पर आपके वियोग से विकल[१] हो 'पीव', 'पीव' ! पुकार रहे हैं। हमारे स्वामिन्[३] ! हमारी प्रार्थना सुनकर हृदय[२] में प्रकट होकर हमें दर्शन दीजिये। आपके बिना अकेले[४] रहने से मेरे शरीर में बड़ी पीड़ा होती है। आप ही मेरी प्रार्थना सुन कर इसे दूर कर सकते हैं। हमारे प्रियतम स्वामिन् ! कृपालो[६] ! कृपा[५] करके हमारे हृदय में प्रकट होकर हमें मिलें। वह विरह रूप शत्रु मेरे शरीर पर विकलता रूप तलवार मारता है, उसके घावों[८] की वह पीड़ा[७] मैं सहन करता हूँ और ''तूं ही तूं'' करते हुये आपका स्मरण करता हूँ। विरह-दु:खाग्नि जला[१०] रही है, मेरा शरीर इससे व्याकुल[९] हो गया है। मैं सब में आपको व्यापक रूप से देख रहा हूँ, किन्तु मेरा मन आपके प्रत्यक्ष दर्शनार्थ तरस रहा है। आप मुझे न भूलें, दर्शन देकर कृतार्थ करें।

८५-(फ़ारसी) शंखताल

संइयां[१] तूं है साहिब मेरा, मैं हूँ बन्दा[२] तेरा ॥ टेक ॥
बन्दा[३] वरदा[४] चेरा[५] तेरा, हुक्मी मैं बेचारा[६] ।
मीरां[७] महरवान[८] गुसांई, तूं सिरताज हमारा ॥ १ ॥
गुलाम[१७] तुम्हारा मुल्ला[९] जादा[१०], लौंडा[११] घर का जाया ।
राजिक[१२] रिजक[१३]जीव तैं दिया, हुक्म तुम्हारे आया ॥ २ ॥

शादील[१४] बै[१५] हाजिर बन्दा, हुक्म तुम्हारे मांहीं ।
जब ही बुलाया तब ही आया, मैं मेवासी[१६] नांहीं ॥ ३ ॥
खसम हमारा सिरजनहारा, साहिब समर्थ सांईं ।
मीरां मेरा महर मया कर, दादू तुम ही तांईं ॥ ४ ॥

हे परमेश्वर ! आप मेरे स्वामी हैं और मैं आपका दास[२] हूँ आपका जन[३] हूँ, आपकी आज्ञा में चलने वाला दास[४] और दीन[५] सेवक[६] हूँ। स्वामिन् ! आप हमारे शिरोमणि दयालु[८] सरदार[७] हैं और मैं विद्वान्[९] के घर जन्मा[१०] हुआ, आपका मोल[१७] लिया हुआ नौकर हूं, वा आपके घर का जन्मा बालक[११] हूँ। हे जीविका[१२] देने वाले ईश्वर ! आपने ही मुझे जीविका[१३] और जीवन दिया है। आपकी ही आज्ञा से मैं संसार में आया हूँ। आप चाहे बेचें[१५] वा पास रक्खें, मैं दास तो आपकी आज्ञा में ही प्रसन्न[१४] हूँ। जब भी आपने बुलाया, तब ही मुझे आपकी सेवा में आया हुआ ही समझो, मैं अपने को बड़ा[१६] समझने वाला नहीं हूं। प्रभो ! सृष्टिकर्ता समर्थ परमेश्वर ! आप ही हमारे स्वामी हैं। मेरे सरदार ! दया करो, दया करो, मैं तो आपकी सेवा के लिए ही हूं।

८६-करुणा। शंखताल

मुझ थीं कुछ न भया रे, यहु यों ही गयारे, पछतावा रह्या रे ॥ टेक ॥
मैं शीश न दीया रे, भर प्रेम न पीया रे, मैं क्या कीया रे ॥ १ ॥
हौं रंग न राता रे, रस प्रेम न माता रे, नहिं गलित गाता रे ॥ २ ॥
मैं पीव न पाया रे, कीया मन का भाया रे, कुछ होइ न आया रे ॥ ३ ॥
हूं रहूं उदासा रे, मुझै तेरी आशा रे, कहै दादू दासा रे ॥ ४ ॥

खेद प्रकट कर रहे हैं—अहो ! मेरे से प्रभु प्राप्ति का कुछ भी साधन नहीं हुआ, यह जीवन व्यर्थ ही चला गया, अब केवल पश्चात्ताप ही रह गया है। मैंने प्रभु के लिए अपना अहंकार रूप शिर नहीं दिया, न इच्छा भरके प्रभु-प्रेम रस का पान ही किया। मैंने प्रभु प्राप्ति के लिए क्या किया ? कुछ नहीं। मैं प्रभु चिन्तन के रंग में अनुरक्त नहीं हुआ, न प्रेम रस में मस्त हुआ, न शरीर का अध्यास ही नष्ट कर सका। मैंने मन को प्रिय लगने वाले काम ही किये हैं, प्रभु में मन लगाने का साधन मुझ से कुछ भी न हो सका मैं प्रभु को प्राप्त न कर सका, इसीलिए उदास रहता हूँ, किन्तु हे प्रभो ! मैं यथार्थ कहता हूं, मुझे अब भी आशा है कि आप दर्शन अवश्य देंगे।

८७-वैराग्य उपदेश। निसारुक ताल।

मेरा मेरा छाड़ गँवारा, शिर पर तेरे सिरजनहारा।
अपनैं जीव विचारत नांहीं, क्या ले गइला[१] वंश तुम्हारा ॥ टेक ॥
तब मेरा कृत[२] करता नांहीं, आवत है हाकारा[३] ।
काल चक्र सौं खरी[४] परी रे, विसर गया घरबारा ॥ १ ॥
जाइ तहां का संजम कीजे, विकट पंथ गिरिधारा।
दादू रे तन अपना नांहीं, तो कैसे भया संसारा ॥ २ ॥

८७-८८ में वैराग्य प्रद उपदेश कर रहे हैं—हे मूर्ख ! यह द्रव्य मेरा है, यह धाम मेरा है, ऐसा करना छोड़ दे। ये सब तो तेरे शिर पर रहने वाले सृष्टि-कर्ता प्रभु के हैं। तू अपने मन में विचार नहीं करता, तेरे से पहले के वंश वाले, तेरे पितामह, प्रपितामह, क्या साथ ले गये[१] हैं ? तेरा मेरा जो कर्तव्य[२] है उसे तो निष्काम भाव से करता नहीं और कर्तृव्य का मिथ्याहंकार[३] मन में पहले आ जाता है। जब यमदूतों का हल्ला[३] आता है तब तो तू मेरा मेरा नहीं करता, उस समय मेरा मेरा कहना कहां चला जाता है ? पूर्वजन्म में भी जब वास्तव[४] में काल-चक्र की महान् विपत्ति पड़ी थी, तब तू अपने असली घर वाले परमात्मा को भूल गया था। जहाँ तू काल-पाश में बँधकर जायेगा वहाँ के तप्त पर्वत और वैतरणी नदी की भयंकर धारा वाले विकट मार्ग का संयम रूप साधन कर। अरे भाई ! जब यह अपना शरीर भी अपना नहीं है, तब सांसारिक द्रव्य, धामादि अपने कैसे हो सकेंगे ? अत: मेरा-मेरा छोड़ कर भगवद् भजन कर।

८८-निसारुक ताल

दादू दास पुकारै रे, शिर काल तुम्हारै रे, शर सांधे मारै रे ॥ टेक ॥
यम काल निवारी रे, मन मनसा मारी रे, यहु जन्म न हारी रे ॥ १ ॥
सुख नींद न सोई रे, अपना दुख रोई रे, मन मूल न खोई रे ॥ २ ॥
शिर भार न लीजी रे, जिसका तिसको दीजी रे, अब ढील न कीजी रे ॥ ३ ॥
यहु औसर तेरा रे, पंथी जाग सवेरा रे, सब बाट बसेरा रे ॥ ४ ॥
सब तरुवर छाया रे, धन जौबन माया रे, यहु काची काया रे॥ ५ ॥
इस भ्रम न भूली रे, बाजी देख न फूली रे, सुख सागर झूली रे ॥ ६ ॥
रस अमृत पीजी रे, विष का नाम न लीजी रे, कह्या सो कीजी रे ॥ ७ ॥
सब आतम जाणी रे, अपणा पीव पिछाणी रे, यहु दादू वाणी रे ॥ ८ ॥

हे लोगो ! हम पुकार कर कह रहे हैं—तुम्हारे शिर पर काल खड़ा है और तुम्हें लक्ष्य बना करके वय रूप धनुष द्वारा रात्रि-दिन रूप बाण मार रहा है। तुम अपने मन और बुद्धि को जीत कर, अपने नाशक यम को हटाओ। यह मानव-जन्म व्यर्थ ही मत खोओ। सुख की निद्रा में मत सोओ। जन्म-मरण रूप दु:ख निवृत्ति के लिए रोते हुये भगवान् से प्रार्थना करो। मन से अपने मूल कारण परमात्मा को दूर मत होने दो। धन-धामादिक ममता का भार अपने शिर पर मत लो। जिस प्रभु के ये सब हैं, उसी को समर्पण कर दो। अब विलंब मत करो। हे जीव रूप पथिको ! प्रभु के पास जाने को यह मानव शरीर का समय बहुत अच्छा है। अत: जीवन-रात्रि के समाप्त होने से पहले ही जाग कर चल पड़ो। हम मोक्ष-मार्ग पर ही बस रहे हैं। यहां सदा रहने वाला कोई भी नहीं है। यह यौवन और धनादि सभी मायिक पदार्थ वृक्ष की छाया के समान चंचल हैं। यह शरीर भी कच्चे घट के समान है। ये धनादि सदा रहेंगे, ऐसे भ्रम में पड़ कर भगवान् को मत भूलो। संसार बाजी को देखकर मत प्रसन्न हो। सुख-सिन्धु परब्रह्म के चिन्तन रूप झूले पर झूलो अर्थात् निरंतर चिन्तन करो।

ज्ञानामृत रस का पान करो। विषय-विष का नाम भी मत लो। संत, शास्त्रों ने जो आत्म-कल्याण के साधन कहे हैं, उनको करो। सबको अपनी ही आत्मा समझ कर अपने प्रियतम परमात्मा को पहचानो। यही हमारी वाणी है।

८९-भक्ति उपदेश। त्रिताल

पूजूं पहली गणपति राइ, पड़िहूं पावों चरणों धाइ ।
आगैं ह्वै कर तीर लगावै, सहजैं अपने बैन सुनाइ ॥टेक॥
कहूं कथा कुछ कही न जाइ, इक तिल में ले सबै समाइ ॥ १ ॥
गुण हु गहीर धीर तन देही, ऐसा समरथ सबै सुहाइ ॥ २ ॥
जिस दिशि देखूं ओही है रे, आप रह्या गिरि तरुवर छाइ ॥ ३ ॥
दादू रे आगै क्या होवै, प्रीति पिया कर जोड़ लगाइ ॥ ४ ॥

भक्ति का उपदेश कर रहे हैं—जो सुर-गण, मुनि-गण, नर-गण आदि सभी समूहों के स्वामी हैं, विश्व के राजा हैं। हम दौड़ के उन प्रभु के चरणों में पड़कर प्रथम उनके पाद-पद्मों की ही पूजा करते हैं। वे साधन पथ में हमारे आगे रहकर, मकर-मत्स्य रूप कामादि शत्रुओं को वस्तु-विचारादि बाण मार कर भवसागर से पार किनारे लगाते रहते हैं और ध्यानावस्था में अनायास ही अपने मधुर वचन सुना कर हम को साधन-मार्ग दिखाते रहते हैं। उनके बल की कथा क्या कहूं, कुछ कहने में नहीं आती। वे एक क्षण मात्र में संसार को अपने में वा तिल मात्र स्थल में लयकर लेते हैं। उनके गुण अथाह हैं। शरीर पर अपार धैर्य है। संपूर्ण जीवों के शरीरों को अपनी सत्ता से धारण करते हैं, ऐसे समर्थ और सब प्रकार सुन्दर हैं। जिस दिशा में भी हम देखते हैं, वे ही दीखते हैं। वे पर्वत-वृक्षादि सभी में स्थित हैं। अत: हे लोगो ! अभी से हाथ जोड़ कर उन प्रभु में प्रीति पूर्वक मन को लगाओ। आगे वृद्धावस्था में शरीर की क्रिया भी करना कठिन होगा, तब तुम से प्रभु प्राप्ति का क्या साधन हो सकेगा ?

९०-परिचय। पंचमताल

नीको धन हरि कर मैं जान्यौं, मेरे अखई[१] ओही[२] ।
आगे पीछे सोई है रे, और न दूजा कोई ॥टेक॥
कबहुँ न छाडूं संग पिया को, हरि के दर्शन मोही ।
भाग हमारे जो हौं[३] पाऊं, शरणैं आयो तोही ॥ १ ॥
आनँद भयो सखी जिय मेरे, चरण कमल को जोई[४] ।
दादू हरि को बावरो[५], बहुरि वियोग न होई ॥ २ ॥

प्रभु साक्षात्कार का परिचय दे रहे हैं—मैंने विचार द्वारा निश्चय करके राम-धन को ही श्रेष्ठ धन समझा है। मेरे लिये वही[२] अक्षय[१] धन है। मेरे आगे पीछे रहने वाला संबंधी भी वह राम ही है, और दूसरा कोई नहीं है। यदि मेरे भाग्यवश मैं[३] प्रभु को प्राप्त कर पाऊँगा, उसके दर्शन मुझे हो जायेंगे तब तो मैं उस प्रियतम का साथ कभी भी न छोडूंगा। प्रभो ! मैं आपकी शरण आया हूँ,

कृपा करके दर्शन दो। हे संत-सखी ! अब तो प्रभु के चरण-कमलों को देखकर[४] मेरे हृदय में परमानन्द हो रहा है तथा मैं हरि का दीवाना[५] हो रहा हूँ। अतः अब पुन: वियोग न होगा।

९१- (फ़ारसी) हितोपदेश। पंचमताल

बाबा मर्द मर्दां गोइ[१], ये दिल पाक[२] करदम[३] धोइ॥ टेक॥
तर्क[४] दुनियां दूर कर दिल, फ़र्ज[५] फारिग[६] होइ।
पैवस्त[७] परवरदिगार[८] सौं, आकिलां[९] सिर[१०] सोइ ॥ १॥
मनी[११] मुरद:[१२] हिर्स[१३] फानी[१४], नफ्स[१५] रा[१६] पामाल[१७] ।
बदी[१८] रा बरतरफ[१९] करद:[२०], नाम[२१] नेकी ख्याल[२२]॥ २॥
जिंदगानी[२३] मुरद: बाशद[२४], कुंजे[२५] कादिर[२६] कार[२७]।
तालिबां[२८] रा हक[२९] हासिल[३०], पासबाने[३१] यार ॥ ३॥
मर्दे मर्दां सालिकां[३२] सर[३३], आशिकां[३४] सुलतान[३५]।
हजूरी होशियार दादू, इहै गो[३६] मैदान ॥ ४॥

कल्याणप्रद उपदेश कर रहे हैं—हे बाबा ! मर्दों में मर्द उसी को कहना[१] चाहिए, जिसने पाप-कीचड़[३] धोकर अपना हृदय पवित्र[२] कर लिया है। सांसारिक बातों को त्याग[४] कर अपने मन को संसार से दूर कर लिया तथा अपने कर्त्तव्य[५] कर्म को करके निश्चिन्त[६] हो विश्व-पालक[८] परमात्मा से मिला[७] रहता है, वही बुद्धिमानों[९] में शिरोमणि है वा यही बुद्धिमानों[८] का रहस्यमय[१०] सिद्धान्त है। अहंकार[११] को मार[१२] कर नश्वर[१४] पदार्थों की तृष्णा[१३] और विषय-वासना[१५] को[१६] नष्ट[१७] कर, बुराई[१८] को दूर[१९] कर[२०], इज्जत[२१] तथा भलाई का विचार[२२] रख। जीवितावस्था[२३] में ही मृतक समान निर्द्वन्द्व हो कुछ भी परवा[२४] न रख कर, समर्थ[२६] प्रभु की प्राप्ति रूप काम[२७] के लिए संसार के किनारे[२५] बैठ। ऐसा करने से ही जिज्ञासुओं[२८] को सत्य[२९] रूप फल प्राप्त[३०] होता है और सच्चा मित्र परमात्मा रक्षक[३१] होता है। मर्दों में मर्द संत-यात्री[३२] हैं। वे ही ईश्वर प्रेमी[३४] साधकों के सरदार[३३] और बादशाह[३५] हैं। प्रभु के निकटवर्ती रहने में ही सावधान रहते हैं। इन्द्रियों[३६] को जीतने का युद्ध क्षेत्र यही (मनुष्य) शरीर है। अत: इन्द्रियों को जीत कर प्रभु के पास जाना चाहिए।

९२-ईश्वर चरित। त्रिताल

ये सब चरित तुम्हारे मोहना, मोहे सब ब्रह्मंड खंडा।
मोहे पवन पानी परमेश्वर, सब मुनि मोहे रवि चंदा॥ टेक॥
साइर[१] सप्त मोहे धरणी धरा, अष्ट कुली[५] पर्वत मेरु मोहे।
तीन लोक मोहे जग जीवन, सकल भुवन तेरी सेव सोहे॥ १ ॥
शिव विरंचि नारद मुनि मोहे, मोहे सुर सब सकल देवा।
मोहे इन्द्र फणींद्र[२] पुनि मोहे, मुनि मोहे तेरी करत सेवा॥ २ ॥

अगम अगोचर अपार अपरं[३] परा[४], को यहु तेरे चरित न जाने।
ये शोभा तुमको सोहे सुन्दर, बलि बलि जाऊं दादू न जाने॥ ३ ॥

ईश्वर के कार्य की अपारता दिखा रहे हैं—हे विश्व-विमोहन प्रभु ! ये जो भी दिखाई दे रहे हैं, सब आप ही के काम हैं। आपने अपने कार्यों से ब्रह्मांड के सभी भागों को मोहित किया है। परमेश्वर ! आपने वायु, जल, सब मुनि, सूर्य, चन्द्रमा, सप्त समुद्र[१] पृथ्वी को धारण करने वाले शेष, अष्ट जाति[८] के पर्वत, सुमेरु और तीनों लोकों को मोहित किया है। हे जगजीवन ! सम्पूर्ण भुवन आपकी सेवा में लगे रहने से ही सुन्दर लगते हैं। शिव, ब्रह्मा, नारद मुनि, सब सुरगण तथा सम्पूर्ण ग्राम देव, इन्द्र, वासुकी[२] तथा शेष और आपकी सेवा करने वाले भक्त मुनियों को भी आपने मोहित किया है। आपसे परे[३] कोई नहीं, आप सबसे परे[४] हैं, वा माया[४] रहित[३] प्रभो ! आपके ये चरित्र बुद्धि की गम से परे हैं, इन्द्रियातीत हैं और अपार है। इनको कौन जान सकता है ? इन चरित्रों की सुन्दर शोभा आप ही के लिये शोभनीय है। मैं तो इनका आदि, अन्त न जानकर आपकी बारंबार बलिहारी जाता हूं।

९३-गुरु ज्ञान। त्रिताल

ऐसा रे गुरु ज्ञान लखाया, आवै जाइ सो दृष्टि न आया ॥ टेक॥
मन थिर करूंगा, नाद भरूंगा, राम रमूंगा, रस माता॥ १ ॥
अधर[१] रहूंगा, करम दहूंगा, एक भजूंगा भगवन्ता॥ २ ॥
अलख लखूंगा, अकथ कथूंगा, एक मथूंगा, गोविन्दा॥ ३ ॥
अगह गहूंगा, अकह कहूंगा, अलह लहूंगा, खोजन्ता ॥ ४ ॥
अचर चरूंगा, अजर जरूंगा, अतिर तिरूंगा, आनंदा ॥ ५ ॥
यहु तन तारूं, विषय निवारूं, आप उबारूं, साधंता॥ ६ ॥
आऊं न जाऊं, उनमनि लाऊं, सहज समाऊं, गुणवंत्ता ॥ ७॥
नूर पिछाणूं, तेजहि जाणूं, दादू ज्योतिहि देखन्ता ॥ ८ ॥

गुरु ज्ञान से होने वाले लाभों को बता रहे हैं—गुरुदेव ने ज्ञान द्वारा ऐसा समझा दिया है कि बारंबार जन्म ने और मरने वाले प्राणी की दृष्टि में वह परमात्मा नहीं आता। मैं तो मन को स्थिर करके अनाहत नाद से कर्ण भरूंगा अर्थात् सुनूंगा। राम-भक्ति-रस में मस्त होकर राम में ही रमण करूंगा। मायिक[१] गुणों से रहित रहूंगा। एकमात्र भगवान् का भजन करते हुए कर्मों को जलाऊंगा। मन इन्द्रियों के अविषय परब्रह्म को भजकर आत्मरूप से देखूंगा। जो सर्वसाधारण से न कथन किया जाय, ऐसे ब्रह्म-ज्ञान को कथन करूंगा। वेद-वाणी से प्राप्त होने योग्य गोविन्द के स्वरूप का मनन करूंगा। जो ब्रह्म इन्द्रियादि से नहीं ग्रहण किया जाता , उसे ही स्वस्वरूप से ग्रहण करूंगा व अवर्णनीय ब्रह्म का स्वस्वरूप से वर्णन करूंगा, जो सर्व साधारण को प्राप्त नहीं होता, उसी ब्रह्म को साधना द्वारा खोजकर निर्विकल्प समाधि में प्राप्त करूंगा। इस शरीर को पाप-ताप

से तारूंगा। इस प्रकार अन्तरंग साधनों द्वारा अपना उद्धार करके अचर ब्रह्म में विचरूंगा। नहीं पचाने योग्य अनुभव को पचाऊंगा और दुस्तर संसार को तैरकर परमानद प्राप्त करूंगा। मैं किसी शरीर वा लोक में नहीं जाऊं-आऊंगा। उन्मनी मुद्रा द्वारा प्राण लय करके, अपने तेज स्वरूप को सम्यक् पहचान कर, आत्म-ज्योति को देखते हुये गुणवान् शरीर के सहित ही सहज-स्वरूप ब्रह्म में समा जाऊंगा।

इस अपने निश्चय के अनुसार ही अन्त समय में महाराज का स्थूल शरीर भी लय हो गया था। यह कथा दृष्टांत सुधा-सिन्धु तरंग ९-२३८ में देखो।

९४-तत्त्व उपदेश। पंचम ताल

बंदे हाजिरां हजूर वे, अल्लह आली[१] नूर[२] वे।
आशिकां[३] रा[४] सिदक[५] साबित, तालिबां[६] भरपूर वे ॥ टेक ॥
वजूद[७] में मौजूद है, पाक[८] परवरदिगार[९] वे।
देख ले दीदार को, गैब[१०] गोता मार वे ॥ १ ॥
मौजूद मालिक तख्त खालिक[११], आशिकां रा ऐन[१२] वे।
गुदर[१३] कर दिल मग्ज भीतर, अजब है यहु सैंन वे ॥ २ ॥
अर्श[१४] ऊपर आप बैठा, दोस्त दाना[१५] यार वे।
खोज कर दिल कब्ज[१६] करले, दरूने[१७] दीदार वे ॥ ३ ॥
हुशियार हाजिर चुस्त[१८] करदा[१९], मीरां मेहरवान वे।
देख ले दर[२०] हाल[२१] दादू, आप है दीवान[२२] वे ॥ ४ ॥

सार-तत्त्व का उपदेश कर रहे हैं—जो प्रेमी[३] जिज्ञासु[६] भक्त, पूर्ण सत्यता[५] पूर्वक भजन द्वारा भगवान् के सम्मुख रहते हैं, उनको[४] उस सर्वश्रेष्ठ[१] परमात्मा का रूप[२] सभी में परिपूर्ण रूप से भासता रहता है। वह विश्व-पालक[९] पवित्र[८] ईश्वर शरीर[७] में विद्यमान है। उन छिपे हुये प्रभु का स्वरूप तू वृत्ति को अन्तर्मुख[१०] करना रूप गोता मार कर निर्विकल्प समाधि में देख। वे सृष्टि-कर्ता[११] प्रभु हृदय-सिंहासन पर विराजमान हैं और प्रेमी भक्तों को यथार्थ[१२] रूप से भासते हैं। तू मस्तिष्क के भीतर जानकर[१३] हृदय में देख, यह संतों का अद्भुत संकेत है। वे सर्वज्ञ[१५], सर्व-सुहृद तेरे मित्र प्रभु हृदयाकाश[१४] के ऊपर अष्टदल-कमल में विराज रहे हैं। तू अपने मन को अपने अधीन[१६] करके हृदय[१७] के भीतर, प्रभु का दर्शन कर ले। मन को भजन में सावधान और दृढ़[१८] करके[१९] दयालु सरदार प्रभु के सम्मुख रखते हुये प्रभु को देख ले। वे हृदय-दरबार[२२] में[२०] प्रति क्षण[२१] रहते हैं।

९५-वस्तु निर्देश। चौताल

निर्मल तत निर्मल तत, निर्मल तत ऐसा।
निर्गुण निज निधि निरंजन, जैसा है तैसा ॥ टेक ॥

उतपति आकार नांहीं, जीव नांहीं काया।
काल नांहीं कर्म नांहीं, रहिता राम राया॥ १ ॥
शीत नांहीं घाम नांहीं, धूप नांहीं छाया ।
बाव[१] नांहीं वर्ण नांहीं, मोह नांहीं माया॥ २ ॥
धरणि आकाश अगम, चंद सूर नांहीं ।
रजनी निशि दिवस नाहीं, पवना नहिं जाँहीं ॥ ३ ॥
कृत्रिम[१] घट कला नांहीं, सकल रहित सोई ।
दादू निज अगम निगम, दूजा नहिं कोई॥ ४ ॥

इति राम माली गौड़ समाप्तः ॥ २ ॥ पद १६ ॥

परब्रह्म रूप सत्य वस्तु को बता रहे हैं—हम मन वचन कर्म से कहते हैं, परब्रह्म तत्त्व ऐसा निर्मल है कि उसकी निर्मलता कही नहीं जाती। वह निर्गुण है, संतों की मुख्य निजी निधि है, निरंजन है और जैसा है वैसा ही है। उसके विषय में वह इतना है, ऐसा ही है, यह नहीं कहा जाता। कारण, न उसकी उत्पत्ति है, न आकार है, न प्राण है, न शरीर है। वह विश्व का राजा राम काल-कर्मादि से रहित है। उसमें शीत, उष्ण, धूप, छाया, वायु[१], रंग, मोह, माया, पृथ्वी, आकाश नहीं है। वह मन इन्द्रियातीत होने से अगम है। उस तक चन्द्रमा, सूर्य, अंधेरी रात्रि, चांदनी रात्रि, दिन और पवनादि नहीं जा सकते। वह माया कृत बनावटी[१] शरीर रूप नहीं है, न उसमें कला विभाग है। वह सबसे रहित है। वह वेद से अगम हमारा निज स्वरूप परब्रह्म सत्य है, अन्य कोई भी सत्य नहीं है।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग माली गौड़ समाप्तः ॥ २ ॥

अथ राग कल्याण ३

(गायन समय संध्या ६ से ९ रात्रि)

९६-उपदेश चेतावनी । त्रिताल

मन मेरे कछु भी चेत गँवार !
पीछे फिर पछतावैगा रे, आवे न दूजी बार ॥टेक॥
काहे रे मन भूलो फिरत है, काया सोच विचार ।
जिन पंथों चलना है तुझको, सोई पंथ सँवार ॥ १ ॥
आगै बाट विषम जो मन रे, जैसी खांडे की धार ।
दादू दास सांईं सौं सूत[१] कर, कूड़े काम निवार ॥ २ ॥

मन के ब्याज से उपदेश द्वारा साधकों को सचेत कर रहे हैं—हे मन ! कुछ तो सावधान हो, नहीं तो पीछे पश्चात्ताप ही करेगा। कारण, अचेत रहने से तू पुनः मनुष्य शरीर में भी न आ सकेगा।

उतपति आकार नांहीं, जीव नांहीं काया।
काल नांहीं कर्म नांहीं, रहिता राम राया॥ १ ॥
शीत नांहीं घाम नांहीं, धूप नांहीं छाया।
बाव[१] नांहीं वर्ण नांहीं, मोह नांहीं माया॥ २ ॥
धरणि आकाश अगम, चंद सूर नांहीं।
रजनी निशि दिवस नाहीं, पवना नहिं जाँहीं ॥ ३ ॥
कृत्रिम[१] घट कला नांहीं, सकल रहित सोई।
दादू निज अगम निगम, दूजा नहिं कोई॥ ४ ॥

इति राम माली गौड़ समाप्त: ॥ २ ॥ पद १६ ॥

परब्रह्म रूप सत्य वस्तु को बता रहे हैं—हम मन वचन कर्म से कहते हैं, परब्रह्म तत्त्व ऐसा निर्मल है कि उसकी निर्मलता कही नहीं जाती। वह निर्गुण है, संतों की मुख्य निजी निधि है, निरंजन है और जैसा है वैसा ही है। उसके विषय में वह इतना है, ऐसा ही है, यह नहीं कहा जाता। कारण, न उसकी उत्पत्ति है, न आकार है, न प्राण है, न शरीर है। वह विश्व का राजा राम काल-कर्मादि से रहित है। उसमें शीत, उष्ण, धूप, छाया, वायु[१], रंग, मोह, माया, पृथ्वी, आकाश नहीं है। वह मन इन्द्रियातीत होने से अगम है। उस तक चन्द्रमा, सूर्य, अंधेरी रात्रि, चांदनी रात्रि, दिन और पवनादि नहीं जा सकते। वह माया कृत बनावटी[१] शरीर रूप नहीं है, न उसमें कला विभाग है। वह सबसे रहित है। वह वेद से अगम हमारा निज स्वरूप परब्रह्म सत्य है, अन्य कोई भी सत्य नहीं है।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग माली गौड़ समाप्त: ॥ २ ॥

अथ राग कल्याण ३

(गायन समय संध्या ६ से ९ रात्रि)

९६-उपदेश चेतावनी। त्रिताल

मन मेरे कछु भी चेत गँवार !
पीछे फिर पछतावैगा रे, आवे न दूजी बार ॥टेक॥
काहे रे मन भूलो फिरत है, काया सोच विचार।
जिन पंथों चलना है तुझको, सोई पंथ सँवार ॥ १ ॥
आगै बाट विषम जो मन रे, जैसी खांडे की धार।
दादू दास सांईं सौं सूत[१] कर, कूड़े काम निवार ॥ २ ॥

मन के ब्याज से उपदेश द्वारा साधकों को सचेत कर रहे हैं—हे मन ! कुछ तो सावधान हो, नहीं तो पीछे पश्चात्ताप ही करेगा। कारण, अचेत रहने से तू पुन: मनुष्य शरीर में भी न आ सकेगा।

अरे ! तू प्रभु को भूल कर विषयों में भटक रहा है। इस शरीर की अनित्यता को ध्यान में रखते हुये जिन साधन मार्गों से तुझे चलना है, विचार द्वारा उन साधन-पथों को ठीक कर। रे मन ! आगे चलने का जो परमार्थ मार्ग है, वह कामादि द्वारा भयंकर हो रहा है, उसमें चलना खांडे की धार पर चलना है। अत: तू बुरे कामों को छोड़कर सीधा भजन द्वारा परमात्मा से मेल[१] कर, तो ही तेरा आगे निर्वाह होगा।

९७-परिचय। त्रिताल

जग सौं कहा हमारा, जब देख्या नूर तुम्हारा ॥ टेक॥
परम तेज घर मेरा, सुख सागर माहिं बसेरा॥ १ ॥
झिलमिल अति आनन्दा, तहँ पाया परमानन्दा ॥ २ ॥
ज्योति अपार अनन्ता, खेलैं फाग वसन्ता॥ ३ ॥
आदि अंत सुस्थाना, जन दादू सो पहचाना॥ ४ ॥

इति राग कल्याण समाप्त: ॥ ३ ॥ पद २ ॥

ब्रह्म साक्षात्कार होने पर जगत् से निरपेक्षता दिखा रहे हैं—हे परमेश्वर ! जब हमने आपके स्वरूप का साक्षात्कार कर लिया है, तब हमारा जगत् से क्या काम है ? अब तो हमारा घर परम तेज स्वरूप परब्रह्म ही है। उसी सुख-सागर में हम बसते हैं। जहां आत्म-ज्योति के झिलमिलाहट का अति आनंद हो रहा है, वहां ही हमें परमानन्द प्राप्त हुआ है। यह आत्म-ज्योति अपार है, इसका अन्त नहीं दीखता। इसी के पास हमारा वसंतोत्सव के समान आनन्द से समय निकल रहा है। अब हमने जो हमारा सृष्टि के आदि और अन्त में सुन्दर निवास-स्थान रहता है, उसी परब्रह्म स्थान को पहचान लिया है।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग कल्याण ॥ समाप्त: ॥ ३ ॥

अथ राग कान्हड़ा ४

(गायन समय रात्रि १२ से ३)

९८-विरह विनती। वर्ण भिन्नताल

दे दर्शन देखन तेरा, तो जिय जक[१] पावै मेरा॥ टेक॥
पीव तूं मेरी वेदन जानै, हौं[६] कहा दुराऊं छानै, मेरा तुम देखै मन मानैं ॥ १ ॥
पीव करक[२] कलेजे मांहीं, सो क्यों ही निकसै नांहीं, पीव पकर हमारी बाँहीं ॥ २ ॥
पीव रोम रोम दुख सालै, इन पीरों पिंजर जालै, जीव जाता क्यों ही बालै[३] ॥ ३ ॥
पीव सेज अकेली मेरी, मुझ आरति[४] मिलणै तेरी, धन[५] दादू वारी फेरी ॥ ४ ॥

९८-१०१ में विरह पूर्वक दर्शनार्थ विनय कर रहे हैं—प्रभो ! मुझे आपके दर्शन करने दीजिये तब मेरा मन शांति[१] प्राप्त कर सकेगा। स्वामिन् ! आप मेरी व्यथा को तो जानते ही हैं, मैं[६]

अरे ! तू प्रभु को भूल कर विषयों में भटक रहा है। इस शरीर की अनित्यता को ध्यान में रखते हुये जिन साधन मार्गों से तुझे चलना है, विचार द्वारा उन साधन-पथों को ठीक कर। रे मन ! आगे चलने का जो परमार्थ मार्ग है, वह कामादि द्वारा भयंकर हो रहा है, उसमें चलना खांडे की धार पर चलना है। अत: तू बुरे कामों को छोड़कर सीधा भजन द्वारा परमात्मा से मेल[१] कर, तो ही तेरा आगे निर्वाह होगा।

९७-परिचय। त्रिताल

जग सौं कहा हमारा, जब देख्या नूर तुम्हारा ॥ टेक॥
परम तेज घर मेरा, सुख सागर माहिं बसेरा॥ १ ॥
झिलमिल अति आनन्दा, तहँ पाया परमानन्दा ॥ २ ॥
ज्योति अपार अनन्ता, खेलैं फाग वसन्ता॥ ३ ॥
आदि अंत सुस्थाना, जन दादू सो पहचाना॥ ४ ॥

इति राग कल्याण समाप्त: ॥ ३ ॥ पद २ ॥

ब्रह्म साक्षात्कार होने पर जगत् से निरपेक्षता दिखा रहे हैं—हे परमेश्वर ! जब हमने आपके स्वरूप का साक्षात्कार कर लिया है, तब हमारा जगत् से क्या काम है ? अब तो हमारा घर परम तेज स्वरूप परब्रह्म ही है। उसी सुख-सागर में हम बसते हैं। जहां आत्म-ज्योति के झिलमिलाहट का अति आनंद हो रहा है, वहां ही हमें परमानन्द प्राप्त हुआ है। यह आत्म-ज्योति अपार है, इसका अन्त नहीं दीखता। इसी के पास हमारा वसंतोत्सव के समान आनन्द से समय निकल रहा है। अब हमने जो हमारा सृष्टि के आदि और अन्त में सुन्दर निवास-स्थान रहता है, उसी परब्रह्म स्थान को पहचान लिया है।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग कल्याण ॥ समाप्त: ॥ ३ ॥

अथ राग कान्हड़ा ४

(गायन समय रात्रि १२ से ३)

९८-विरह विनती। वर्ण भिन्नताल

दे दर्शन देखन तेरा, तो जिय जक[१] पावै मेरा॥ टेक॥
पीव तूं मेरी वेदन जानै, हौं[६] कहा दुराऊं छानै, मेरा तुम देखै मन मानैं ॥ १ ॥
पीव करक[२] कलेजे मांहीं, सो क्यों ही निकसै नांहीं, पीव पकर हमारी बाँहीं ॥ २ ॥
पीव रोम रोम दुख सालै, इन पीरों पिंजर जालै, जीव जाता क्यों ही बालै[३] ॥ ३ ॥
पीव सेज अकेली मेरी, मुझ आरति[४] मिलणै तेरी, धन[५] दादू वारी फेरी ॥ ४ ॥

९८-१०१ में विरह पूर्वक दर्शनार्थ विनय कर रहे हैं—प्रभो ! मुझे आपके दर्शन करने दीजिये तब मेरा मन शांति[१] प्राप्त कर सकेगा। स्वामिन् ! आप मेरी व्यथा को तो जानते ही हैं, मैं[६]

उसे आपसे छिपाऊं तो कहां छिपा सकता हूँ ? आप तो सर्वत्र व्यापक हैं। आपको देखने पर ही मेरा मन सन्तोष मानेगा। प्रभो ! मेरे कलेजे में रुक-रुक कर बारम्बार पीड़ा[२] हो रही है। वह आपके दर्शन किये बिना किसी प्रकार भी दूर न होगी। अत: प्रभो ! मेरी वृत्ति रूप भुजा पकड़िये। स्वामिन् ! मेरे रोम २ में व्यथा होकर मुझे व्यथित कर रही है। इन रोम २ की पीड़ाओं ने मेरा शरीर-पिंजरा जलाना आरम्भ कर रक्खा है। मेरे प्राण जा रहे हैं, किसी भी प्रकार से रोकियेँ। स्वामिन् ! मेरी हृदय-शय्या आपके बिना खाली पड़ी है; आपसे मिलने के लिये मुझे महान् वियोग-व्यथा[४] हो रही है। मैं सखी[५] आपकी बलिहारी जाती हूं, दर्शन देने की कृपा करिये।

९९-वर्ण भिन्न ताल

आव सलौंने देखन दे रे, बलि बलि जाऊँ बलिहारी तेरे ॥ टेक॥
आव पिया तूं सेज हमारी, निश दिन देखूं बाट तुम्हारी॥ १ ॥
सब गुण तेरे अवगुण मेरे, पीव हमारी आह[१] न ले रे ॥ २ ॥
सब गुणवन्ता साहिब मेरा, लाड[२] गहेला दादू केरा[३]॥ ३ ॥

हे मनोहर प्रभो ! आइये मुझे, आपके दर्शन करने दीजिये। मैं मन-वचन, कर्म से आपकी बलिहारी जाता हूं। प्रभो ! आप हमारी हृदय शय्या पर पधारिये, मैं रात-दिन आपका मार्ग देख रहा हूं। आपने तो सब प्रकार से हमारे ऊपर उपकार रूप गुण ही गुण किये हैं। मेरे द्वारा तो अवगुण ही हुये हैं। प्रभो ! क्या इसीलिए आप हमारी दु:खभरी पुकार[१] भी नहीं सुनते हो ? हे मेरे सर्वगुण-सम्पन्न स्वामिन् ! अब प्यार[२] पूर्वक मुझ भक्त का[३] हाथ अवश्य ग्रहण करिये।

१००-पंचम ताल

आव पियारे मींत हमारे, निश दिन देखूं पाँव तुम्हारे ॥ टेक॥
सेज हमारी पीव सँवारी, दासी तुम्हारी सो धन[१] वारी ॥ १ ॥
जे तुझ पाऊं अंग लगाऊं, क्यों समझाऊं वारणे जाऊं ॥ २ ॥
पंथ निहारूं बाट सँवारूं, दादू तारूं तन मन वारूं ॥ ३ ॥

हे हमारे प्यारे मित्र ! हमारे पधारिये। मैं रात-दिन आपके स्वरूप भूत चरणों का दर्शन करूंगी। स्वामिन् ! मैंने अपनी हृदय-शय्या दैवी गुणों से सजाली है और मैं आपकी पत्नी[१] रूप में दासी हूँ, सो अपनी वृत्ति रूप सखी[१] को आप कर निछावर करती हूँ। यदि मैं आपको प्राप्त कर लूंगी तब तो अपने को आपके स्वरूप में अद्वैत रूप से लगा दूंगी किन्तु आप तो आते ही नहीं। आपको कैसे समझाऊं ? केवल आपकी बलिहारी जाती हूँ। आपकी प्राप्ति के साधन रूप मार्ग को ठीक करते हुये आपका पंथ देख रही हूँ। आप पर तन-मन निछावर करके अपने को संसार से तारना चाहती हूँ, कृपा करके दर्शन दीजिये।

१०१-पंजाबी भाषा। पंचम ताल

आ वे सजणां आव, शिर पर धर पाँव।
जाँनी[१] मैंडा[२] जिन्द[३] असाडे[४], तूं रावैंदा[५] राव वे, सजणां आव ॥ टेक॥

इत्थां[६] उत्थां[७] जित्थां[८] कित्थां[९], हूं जीवाँ तो[१०] नाल[११] वे।
मीयाँ[१२] मैंडा आव असाडे, तूं लालों शिर लाल[१३] वे, सजणां आव ॥ १ ॥
तन भी डेवाँ[१४] मन भी डेवाँ, डेवाँ पिंड पराण वे।
सच्चा सांईं मिल इत्थांईं, जिन्द कराँ कुरबाण वे, सजणां आव ॥ २ ॥
तू पाकों[१५] शिर पाक वे सजणां, तू खूबों[१६] शिर खूब।
दादू भावै सजणां आवै, तूं मिट्ठा महबूब[१७] वे, सजणां आव ॥ ३ ॥

हे सज्जन ! आइये, आइये, मेरे शिर पर अपना कृपा-पैर रखिये। आपही मेरे[२] सच्चे मित्र[१] हैं। हम वियोगी-जनों के आप ही जीवन[३] और राजाओं[४] के राजा हैं इस[६], लोक में वा परलोक[७] में जहां[८] कहीं[९] भी हम रहें किन्तु आपके[१०] साथ[११] रह कर ही जीवित रह सकेंगे। हे मेरे स्वामिन्[१२] पधारिये। आप ही हमारे[५] प्रियतमों के भी शिरोमणि प्रियतम[१३] हैं। हम अपना इन्द्रिय रूप तन, मन, स्थूल शरीर और प्राण भी आपके समर्पण[१४] करते हैं। हे सच्चे स्वामिन् ! इस वर्तमान शरीर में ही मिलिये। हम आप पर अपना जीवन निछावर करते हैं। आप ही पवित्रों[१५] के शिरोमणि पवित्र, श्रेष्ठों[१६] के शिरोमणि श्रेष्ठ हैं। हमको प्रिय लगते हैं। आप अति मधुर और हमारे प्रेम-पात्र[१७] हैं। अत: हे सज्जन ! अवश्य शीघ्र ही पधारिये।

१०२-विनती, राज विद्याधर ताल

दयाल अपने चरनिन मेरा चित्त लगावहु, नीकैं ही करी ॥ टेक ॥
नख शिख सुरति शरीर, तूं नांव रहौं भरी ॥ १ ॥
मैं अजाण मतिहींण, जम की पाश तैं रहत हूं डरी ॥ २ ॥
सबै दोष दादू के दूर कर, तुम ही रहो हरी ॥ ३ ॥

नित्य प्रभु परायण रहने के लिये प्रभु से विनय कर रहे हैं—दयालो ! बहुत अच्छी प्रकार दया करके मेरा चित्त निरन्तर अपने चरणों में ही लगाओ। नख से शिखा पर्यन्त शरीर और मेरी वृत्ति में आप अपना नाम परिपूर्ण करके मेरे हृदय में ही रहो। आपको कैसा साधन प्रिय है, यह मैं नहीं जानता। कारण, पारमार्थिक बुद्धि से रहित हूं और निरन्तर यम की फाँसी से डरता रहता हूं। हे प्रभो ! अब तो मेरे सब दोष दूर करके मेरे हृदय में निरन्तर एक मात्र आपही निवास करो।

१०३-तर्क चेतावनी। राज विद्याधर ताल

मन मति हींण[१] धरै, मूरख मन कछु समझत नाहीं, ऐसे जाइ जरै ॥ टेक ॥
नांव विसार अवर चित राखै, कूड़े काज करै ।
सेवा हरि की मन हूँ न आणै, मूरख बहुरि मरै ॥ १ ॥
नांव संगम कर लीजै प्राणी, जम तैं कहा डरै ।
दादू रे जे राम सँभारै, सागर तीर तिरै ॥ २ ॥

तर्क-पूर्वक सावधान कर रहे हैं—मूर्ख-मन के मानव कुछ भी नहीं समझते, मन में नीच[१] बुद्धि धारण करके व्यर्थ ही विषयों में जाकर चिन्ता द्वारा जलते हैं। भगवान् के नाम को भूलकर अन्य नीच भावना ही चित्त में रखते हैं और बुरे काम करते हैं। मन से भगवान् की भक्ति नहीं करते, इसीलिये मूर्ख लोग बारम्बार मरते हैं। प्राणी ! यम से क्यों डरता है ? भगवन्नाम-चिन्तन द्वारा भगवान् का साथ करले, फिर यम तेरा कुछ न बिगाड़ सकेगा। अरे ! यदि तू राम का स्मरण करेगा तो संसार-सागर को तैर कर, उसके अगले तीर पर प्रभु को जा मिलेगा।

१०४ सन्त सहाय रक्षा। राजमृगांक ताल

पीव तैं अपने काज सँवारै।
कोई दुष्ट दीन को मारन, सोई गह तैं मारै ॥टेक॥
मेरु समान ताप तन व्यापै, सहजैं ही सो टारै।
संतन को सुखदाई माधो, बिन पावक फँद जारै ॥ १ ॥
तुम तैं होइ सबै विधि समर्थ, आगम सबै विचारै।
संत उबार दुष्ट दुख दीन्हा, अंध कूप में डारै ॥ २ ॥
ऐसा है शिर खसम हमारे, तुम जीते खल हारै।
दादू सौं ऐसे निर्बहिये, प्रेम प्रीति पिव प्यारै ॥ ३ ॥

भगवान् सदा सन्तों के सहायक होकर उनकी रक्षा करते हैं, यह कह रहे हैं—प्रभो ! आप अपने संसार रक्षा सम्बन्धी कार्य अच्छी प्रकार ही करते रहते हैं। यदि कोई दुष्ट किसी प्राणी को मारने आता है तो आप उसे पकड़ कर मार देते हैं। यदि मेरु पर्वत के समान भारी दु:ख भी सन्त पर आ जाये तो उसे भी आप अनायास ही हटा देते हैं। माधव ! आप सन्तों को सदा ही सुख देने वाले हैं। आपने बिना अग्नि भी सन्तों को फँसाने वाले फँदे जलाये हैं। समर्थ ! आपसे सब प्रकार अच्छा ही होता है। आपके तो आगे आने वाले सभी कार्य पहले ही विचारे हुये रहते हैं। आपने सन्त की रक्षा की है और दुष्टों को अन्ध कूप में डालकर दु:ख दिया है। हमारे शिर पर ऐसे समर्थ स्वामी हैं। फिर आप तो सदा ही जीतते रहे हैं और दुष्ट[१] आप से हारते रहे हैं। हे मेरे प्यारे प्रभो ! मेरे प्रेम की ओर देखते हुये आप प्रीति पूर्वक मेरे साथ सदा ऐसे ही निभाना।

१०५-माया। मल्लिका मोद ताल

काहू तेरा मरम न जाना रे, सब भये दीवाना[१] रे ॥ टेक ॥
माया के रस राते माते[२], जगत भुलाना रे।
को काहू का कह्या न मानै, भये अयाना रे ॥ १ ॥
माया मोहे मुदित मगन, खान खाना रे।
विषिया रस अरस परस, साच ठाना रे ॥ २ ॥

आदि अंत जीव जन्त, किया पयाना[३] रे ।
दादू सब भरम भूले, देखि दाना[४] रे ॥ ३ ॥

सांसारिक प्राणी मायिक सुखों में फँस कर परमात्मा को भूल रहे हैं, यह कहते हैं—प्रभो ! आपके रहस्य मय स्वरूप को किसी भी संसारी प्राणी ने नहीं जाना है। सब जगत् के प्राणी मायिक विषय-रस की अनुरक्ति से मस्त[२] पागल[१] हुये आपको भूल रहे हैं और ऐसे अनजान हो रहे हैं—कोई भी किसी भी भले मानव का कहना नहीं मानते। माया से मोहित विषय-रस में मग्न प्रसन्नता से अपने को सरदारों का सरदार मान रहे हैं। विषय-रस से अरस-परस मिलकर विषयानन्द को ही सच्चा सुख मान लिया है और जन्म से मरण पर्यन्त जीव जन्तुओं ने विषयों की ओर ही गमन[३] किया है। सब बल-बुद्धिशाली[४] जीव भी विषयाहार[५] को देखकर भ्रम-वश भगवान् को भूल रहे हैं।

१०६-अनन्य-शरण। मल्लिका मोद ताल

तूं ही तूं गुरुदेव हमारा, सब कुछ मेरे, नाम तुम्हारा॥ टेक॥
तुम हीं पूजा तुम हीं सेवा, तुम हीं पाती तुम हीं देवा॥ १ ॥
योग यज्ञ तूं साधन जापं, तुम हीं मेरे आपै आपं॥ २ ॥
तप तीरथ तूं व्रत स्नाना, तुम हीं ज्ञाना तुम हीं ध्याना ॥ ३ ॥
वेद भेद तूं पाठ पुराणा, दादू के तुम पिंड पराणा॥ ४ ॥

१०६-१०७ में अपनी अनन्यता दिखा रहे हैं—प्रभो ! हम मन वचन से कह रहे हैं-आप ही हमारे गुरुदेव हैं। आपका नाम ही मेरा सर्वस्व है। आपही पूजा, सेवा, तुलसी-पत्र और इष्ट-देव हैं। योग, यज्ञादिक साधन और जाप भी मेरे आप स्वयं ही हैं। आपही तप, तीर्थ, व्रत, स्नान, ज्ञान, ध्यान, वेद का रहस्य, पुराण-पाठ हैं और आप ही मेरे शरीर के प्राण हैं।

१०७ गजताल

तूं ही तूं आधार हमारे, सेवक सुत हम, राम तुम्हारे ॥ टेक॥
माइ बाप तूं साहिब मेरा, भक्ति-हीण मैं सेवक तेरा॥ १ ॥
मात पिता तूं बान्धव भाई, तुम हीं मेरे सजन सहाई॥ २ ॥
तुम हीं तातं तुम हीं मातं, तुम हीं जातं तुम हीं न्यातं॥ ३ ॥
कुल कुटुम्ब तूं सब परिवारा, दादू का तूं तारणहारा॥ ४ ॥

हे राम ! हम मन वचन से कहते हैं—आपही हमारे आश्रय हैं और हम आपके सेवक तथा सुत हैं। आप ही हमारे माता-पिता और स्वामी हैं और मैं आपका भक्तिहीन सेवक हूं। आप ही हमारे जन्म-जन्मान्तरों के माता, पिता, बान्धव, भ्राता, मित्र और सहायक हैं। आप ही हमारे पारमार्थिक माता-पिता हैं। आप ही मेरे जाति, न्याति, कुल, कुटुम्ब, परिवार आदि सब कुछ हैं, मेरा उद्धार करने वाले भी आप ही हैं।

१०८-परिचय विनती । भंगताल

नूर नैन भर देखन दीजै, अमी महारस भर भर पीजै ॥ टेक ॥
अमृत धारा वार न पारा, निर्मल सारा तेज तुम्हारा ॥ १ ॥
अजर जरंता अमी झरंता, तार अनन्ता बहु गुणवन्ता ॥ २ ॥
झिलमिल सांईं ज्योति गुसांईं, दादू माँहीं नूर रहांईं ॥ ३ ॥

निरन्तर साक्षात्कारार्थ विनय कर रहे हैं—प्रभो ! अपना रूप हमें ज्ञान-विचार नेत्रों से इच्छा भरके देखने दीजिये । हम स्वरूपामृत रूप महारस का इच्छा भर २ कर पान करेंगे । आपके निर्मल पूर्ण तेज स्वरूप अमृत की धारा का वार-पार नहीं है । आप न पचने वाले को भी पचाने वाले हैं । भक्तों के लिये दर्शनामृत टपकाने वाले हैं । अनन्तों का उद्धार करने वाले हैं । अपार गुणों वाले हैं । प्रभो ! आपकी स्वरूप ज्योति झिलमिल रूप से मेरे अन्दर ही प्रकाशित हो रही है ।

१०९-परिचय । भंगताल

ऐंन[1] एक सो मीठा लागै, ज्योति स्वरूपी ठाढ़ा आगै ॥ टेक ॥
झिलमिल करणा, अजरा जरणा, नीझर झरणा, तहँ मन धरणा ॥ १ ॥
निज निरधारं, निर्मल सारं, तेज अपारं, प्राण अधारं ॥ २ ॥
अगहा गहणा, अकहा कहणा, अलहा लहणा, तहँ मिल रहणा ॥ ३ ॥
निरसंध नूरं, सब भरपूरं, सदा हजूरं, दादू सूरं ॥ ४ ॥

साक्षात्कार किये स्वरूप का परिचय दे रहे हैं—जो यथार्थ[1] ज्योति-स्वरूप अद्वैत ब्रह्म हमारे ज्ञान-विचार नेत्रों के सामने खड़े हैं, वे ही हमें अति प्रिय लगते हैं । जिनका प्रकाश झिलमिलाहट कर रहा है; जो अन्य से न पचने वाले संसार को पचाने वाले हैं; परमानन्द-रस के गिराने वाले निर्झर हैं; निज-स्वरूप हैं; निराधार, निर्मल, विश्व के सार, प्राणाधार, अपार तेज-स्वरूप हैं; उन्हीं परब्रह्म के स्वरूप में हमें मन रखना है । जो ग्रहण करने में नहीं आते, उन्हीं ब्रह्म को व्यापक रूप से ग्रहण करना; जिनका पूर्ण रूप से कथन नहीं होता, उन्हीं ब्रह्म के विषय में कहना; जो अन्य रूप से प्राप्त नहीं होते, उन्हीं ब्रह्म को स्वस्वरूप रूप से प्राप्त करना है । जिनका स्वरूप संधि-रहित सारे विश्व में परिपूर्ण है, सूर्यवत् सदा ज्ञान-विचार-नेत्रों से उसमें रहना है ।

११०-निस्पृहता । प्रतिताल

तो काहे की परवाह हमारे, राते माते नाम तुम्हारे ॥ टेक ॥
झिलमिल झिलमिल तेज तुम्हारा, परगट खेले प्राण हमारा ॥ १ ॥
नूर तुम्हारा नैनों मांहीं, तन मन लागा छूटै नांहीं ॥ २ ॥
सुख का सागर वार न पारा, अमी महारस पीवनहारा ॥ ३ ॥
प्रेम मगन मतवाला माता, रंग तुम्हारे दादू राता ॥ ४ ॥

इति राग कान्हड़ा समाप्त : ॥ ४ ॥ पद १३ ॥

अपनी निर्लोभता दिखा रहे हैं—प्रभो ! जब हम आपके नाम-चिन्तन में अनुरक्त होकर मस्त हैं, तब हमें किसकी परवाह है ? झिलमिल २ करता हुआ आपका स्वरूप प्रकाशमय है, उसी से हमारी आत्मा प्रत्यक्ष में दर्शनानन्द रूप खेल खेल रही है। आपका स्वरूप हमारे ज्ञान-विचार-नेत्रों में प्रतिक्षण रहता है और हमारे तन-मन उसी में लगे हैं,वे कभी भी अलग नहीं होते। आप वार-पार रहित सुख-सिन्धु हैं। मैं आपके स्वरूपामृत-महारस का पान करने वाला हूँ और आपके प्रेम में निमग्न हुआ मतवाले के समान मस्त रहता हुये आपके चिन्तन-रंग में अनुरक्त रहता हूँ। मुझे मायिक सुखों का किंचित् भी लोभ नहीं है।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग कान्हडा समाप्तः ॥ ४ ॥

अथ राग अडाणा ५

(गायन समय रात्रि १२ से ३)

१११-समर्थ गुरु महिमा। त्रिताल

भाई रे, ऐसा सतगुरु कहिये, भक्ति मुक्ति फल लहिये ॥टेक॥
अविचल अमर अविनाशी, अठ सिधि नव निधि दासी ॥ १ ॥
ऐसा सतगुरु राया, चार पदारथ पाया ॥ २ ॥
अमी महारस माता, अमर अभय पद दाता ॥ ३ ॥
सतगुरु त्रिभुवन तारै, दादू पार उतारै ॥ ४ ॥

समर्थ सद्गुरु की महिमा कह रहे हैं—अरे भाई ! ऐसा व्यक्ति ही सद्गुरु कहा जाता है-जिससे साधक भक्ति और मुक्ति को प्राप्त कर सके और जो निश्चल, अमर, अविनाशी ब्रह्म में अभेद निष्ठा रखता हो, जिसकी सेवा में अष्ट-सिद्धि और नव-निधि दासीवत् रहती हों, जिसने अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारों पदार्थ प्राप्त कर लिये हों, ऐसा महानुभाव ही श्रेष्ठ सद्गुरु कहा जाता है। जो अद्वैतामृत महारस में मस्त और अमर, अभय पद को प्रदान करने वाला होता है, वही सद्गुरु वैराग्य पूर्ण उपदेश द्वारा त्रिभुवन के विषयों की आशा से बचा कर संसार-सिन्धु से पार करता है। अष्ट सिद्धि और नव निधि के नाम अंग २-१०४ में देखो।

११२-गुरु मुख कसौटी। ललित ताल।

भाई रे, भान घड़ै गुरु मेरा, मैं सेवग उस केरा॥टेक॥
कंचन कर ले काया, घड़ घड़ घाट निपाया॥ १ ॥
मुख दर्पण मांहिं दिखावै, पीव प्रकट आन मिलावै॥ २ ॥
सतगुरु साचा धोवै, तो बहुरि न मैला होवै॥ ३ ॥
तन मन फेरि सँवारै, दादू कर गह तारै॥ ४ ॥

अपनी निर्लोभता दिखा रहे हैं—प्रभो ! जब हम आपके नाम-चिन्तन में अनुरक्त होकर मस्त हैं, तब हमें किसकी परवाह है ? झिलमिल २ करता हुआ आपका स्वरूप प्रकाशमय है, उसी से हमारी आत्मा प्रत्यक्ष में दर्शनानन्द रूप खेल खेल रही है। आपका स्वरूप हमारे ज्ञान-विचार-नेत्रों में प्रतिक्षण रहता है और हमारे तन-मन उसी में लगे हैं,वे कभी भी अलग नहीं होते। आप वार-पार रहित सुख-सिन्धु हैं। मैं आपके स्वरूपामृत-महारस का पान करने वाला हूँ और आपके प्रेम में निमग्न हुआ मतवाले के समान मस्त रहता हुये आपके चिन्तन-रंग में अनुरक्त रहता हूँ। मुझे मायिक सुखों का किंचित् भी लोभ नहीं है।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग कान्हडा समाप्तः ॥ ४ ॥

अथ राग अडाणा ५

(गायन समय रात्रि १२ से ३)

१११-समर्थ गुरु महिमा। त्रिताल

भाई रे, ऐसा सतगुरु कहिये, भक्ति मुक्ति फल लहिये ॥टेक॥
अविचल अमर अविनाशी, अठ सिधि नव निधि दासी ॥ १ ॥
ऐसा सतगुरु राया, चार पदारथ पाया ॥ २ ॥
अमी महारस माता, अमर अभय पद दाता ॥ ३ ॥
सतगुरु त्रिभुवन तारै, दादू पार उतारै ॥ ४ ॥

समर्थ सद्गुरु की महिमा कह रहे हैं—अरे भाई ! ऐसा व्यक्ति ही सद्गुरु कहा जाता है- जिससे साधक भक्ति और मुक्ति को प्राप्त कर सके और जो निश्चल, अमर, अविनाशी ब्रह्म में अभेद निष्ठा रखता हो, जिसकी सेवा में अष्ट-सिद्धि और नव-निधि दासीवत् रहती हों, जिसने अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारों पदार्थ प्राप्त कर लिये हों, ऐसा महानुभाव ही श्रेष्ठ सद्गुरु कहा जाता है। जो अद्वैतामृत महारस में मस्त और अमर, अभय पद को प्रदान करने वाला होता है, वही सद्गुरु वैराग्य पूर्ण उपदेश द्वारा त्रिभुवन के विषयों की आशा से बचा कर संसार-सिन्धु से पार करता है। अष्ट सिद्धि और नव निधि के नाम अंग २-१०४ में देखो।

११२-गुरु मुख कसौटी। ललित ताल।

भाई रे, भान घड़ै गुरु मेरा, मैं सेवग उस केरा॥टेक॥
कंचन कर ले काया, घड़ घड़ घाट निपाया॥ १ ॥
मुख दर्पण मांहिं दिखावै, पीव प्रकट आन मिलावै॥ २ ॥
सतगुरु साचा धोवै, तो बहुरि न मैला होवै॥ ३ ॥
तन मन फेरि सँवारै, दादू कर गह तारै॥ ४ ॥

गुरु-मुख से निकले शब्द रूप कसौटी और उसका लाभ बता रहे हैं—अरे भाई ! मेरे सद्गुरु काम-क्रोधादि आसुर गुणों को नष्ट करके, वैराग्यादि दैवी गुणों से युक्त करके मेरा अन्त:करण बनाते हैं, अत: मैं उनका सेवक हूँ। वे शरीर को सुवर्ण के समान निर्दोष करके अति उत्तम बना देते हैं। उन्होंने हमारे तन मनादि को उत्तम बना २ कर प्रभु के साक्षात्कार करने योग्य अन्त:करण तैयार किया है। वे ज्ञान दर्पण द्वारा अपना आत्म-स्वरूप मुख दिखाते हैं और अभेदावस्था में लाकर प्रत्यक्ष में परब्रह्म को मिला देते हैं। सच्चा सद्गुरु यदि साधक के अन्त:करण को ज्ञान-जल द्वारा धो डाले, तो वह पुन: कभी भी अज्ञान-मैल से मैला नहीं हो सकता। सच्चे सद्गुरु विषयों से तन-मन को हटा, परमात्मा की ओर फेर कर सुधारते हैं और साधक का वृत्ति रूप हाथ पकड़ कर अर्थात् वृत्ति को ब्रह्माकार करके संसार से पार कर देते हैं।

११३-गुरु उपदेश। ललित ताल।

भाई रे, तेन्हौं रूड़ौ[1] थाये[2], जे गुरुमुख मारग जाये ॥टेक॥
कुसंगति परिहरिये, सत्संगति अणसरिये ॥ १ ॥
काम क्रोध नहिं आणैं, वाणी ब्रह्म बखाणैं ॥ २ ॥
विषिया तैं मन वारै, ते आपणपो तारै ॥ ३ ॥
विष मूकी[3] अमृत लीधो, दादू रूड़ौ[1] कीधो ॥ ४ ॥

गुरुमुख उपदेश की विशेषता बता रहे हैं—हे भाई ! तुम्हारे लिये बहुत सुन्दर[1] हुआ[2] कि तुम गुरु की आज्ञानुसार साधन मार्ग पर चल रहे है हो जो कल्याण कारक है। और कुसंगति को त्याग कर सत्संग में रहते हुये काम-क्रोधादि को हृदय में स्थान न देकर, ब्रह्म सम्बन्धी वाणी बोलते हो जो विषयों से मन को दूर रखते हैं, वे अपने को संसार से तार लेते हैं। तुमने विषय-विष को त्याग[3] कर भगवन्नामामृत का पान कर लिया है, यह बहुत अच्छा[1] किया है।

११४-विनती। पंचम ताल

बाबा ! मन अपराधी मेरा, कह्या न मानै तेरा ॥टेक॥
माया मोह मद माता, कनक कामिनी राता ॥ १ ॥
काम क्रोध अहंकारा, भावै विषय विकारा ॥ २ ॥
काल मीच[1] नहिं सूझै, आतम राम न बूझै ॥ ३ ॥
सम्रथ सिरजनहारा, दादू करै पुकारा ॥ ४ ॥

मन-सुधारार्थ प्रभु से विनय कर रहे हैं—हे पितामह परमेश्वर ! यह मेरा मन बड़ा अपराधी है। मायिक मोह-मद से मतवाला हो, कनक-कामिनी में अनुरक्त रहता है। इसे काम, क्रोध, अहंकार और विषय-विकार ही प्रिय लगते हैं। जाता हुआ आयु का समय और आने वाली मृत्यु[1] इसे नहीं दीखती। यह अपने आत्म-स्वरूप राम को समझने का प्रयत्न नहीं करता। अत: हे समर्थ सृष्टि-कर्ता परमेश्वर ! मैं आपके आगे प्रार्थना करता हूं, आप इसे ठीक करें।

११५-चेतावनी । पंचमताल

भाई रे, यों विनशै संसारा, काम क्रोध अहंकारा ॥ टेक॥
लोभ मोह मैं मेरा, मद मत्सर बहुतेरा॥ १ ॥
आपा पर अभिमाना, केता गर्व गुमाना॥ २ ॥
तीन तिमिर नहिं जांहीं, पंचों के गुण मांहीं॥ ३ ॥
आतमराम न जाना, दादू जगत दिवाना॥ ४ ॥

तर्क पूर्वक सावधान कर रहे हैं—अरे भाई ! संसारी प्राणी इस प्रकार नष्ट होते हैं—काम, क्रोध, अहंकार, लोभ, मोह, मैं और मेरापन, मद, अति मात्रा में मत्सर, अपने पराये का अभिमान, गुण-कलादि कितने ही प्रकार के गर्व, बल आदि का घमण्ड हृदय में रखते हैं और पंच ज्ञानेन्द्रियों के विषयों में अनुरक्त रहते हैं। इससे मूला, तूला और लेशा अविद्या रूप तीन प्रकार का अंधकार नष्ट नहीं होता और त्रिविध अंधकार के न नष्ट होने से अपने आत्म-स्वरूप राम को न जानकर मायिक सुखों में पागल हुये रहते हैं, इसलिये बारम्बार मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

११६-ज्ञान । रूपक ताल

भाई रे, तब क्या कथसि गियाना, जब दूसर नांहीं आना ॥ टेक॥
जब तत्त्वहिं तत्त्व समाना, जहँ का तहँ ले साना ॥ १ ॥
जहां का तहां मिलावा, ज्यों था त्यों होइ आवा ॥ २ ॥
संधे संधि मिलाई, जहां तहां थिति पाई ॥ ३ ॥
सब अंग सब ही ठांईं, दादू दूसर नांहीं ॥ ४ ॥

इति राग अडाणा समाप्तः ॥ ५ ॥ पद ६ ॥

अद्वैतावस्था में ज्ञानोपदेश देने का अवकाश नहीं रहता, यह कह रहे हैं—हे भाई ! जब हृदय में स्वस्वरूप से भिन्न भावना आती ही नहीं, तब उस अद्वैतावस्था को प्राप्त ज्ञानी क्या ज्ञान का कथन कर सकेगा ? आत्मा जिस ब्रह्म का स्वरूप था, उसे विचार द्वारा सांसारिक भावनाओं से ऊपर लेकर ब्रह्म में मिला दिया। (आत्म-तत्व ब्रह्म-तत्व में समा गया, ब्रह्म ज्ञान से जिस ब्रह्म का स्वरूपांश आत्मा था, उसी में मिला दिया), पूर्व में जैसा था वैसा ही निर्विकार हो गया। जो भेद रूप संधि भास रही थी, वह अद्वैत रूप से मिल गई। जहां की तहां स्थिति प्राप्त कर ली। जब सब ही अपने स्वरूप हैं और सब ही अपने स्थान हैं, तब कुछ भी कहना नहीं बनता।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग अडाणा समाप्तः ॥ ५ ॥

अथ राग केदार ६

(गायन समय संध्या ६ से ९ रात्रि)

११७-विनती । (गुजराती भाषा) दीपचन्दी ताल

मारा[10] नाथ जी, तारो[1] नाम लेवाड़[2] रे, राम रतन हृदया मों राखे।
मारा वाहला जी, विषया थी वारे[3] ॥ टेक॥

११५-चेतावनी । पंचमताल

भाई रे, यों विनशै संसारा, काम क्रोध अहंकारा ॥ टेक॥
लोभ मोह मैं मेरा, मद मत्सर बहुतेरा॥ १ ॥
आपा पर अभिमाना, केता गर्व गुमाना॥ २ ॥
तीन तिमिर नहिं जांहीं, पंचों के गुण मांहीं॥ ३ ॥
आतमराम न जाना, दादू जगत दिवाना॥ ४ ॥

तर्क पूर्वक सावधान कर रहे हैं—अरे भाई ! संसारी प्राणी इस प्रकार नष्ट होते हैं—काम, क्रोध, अहंकार, लोभ, मोह, मैं और मेरापन, मद, अति मात्रा में मत्सर, अपने पराये का अभिमान, गुण-कलादि कितने ही प्रकार के गर्व, बल आदि का घमण्ड हृदय में रखते हैं और पंच ज्ञानेन्द्रियों के विषयों में अनुरक्त रहते हैं। इससे मूला, तूला और लेशा अविद्या रूप तीन प्रकार का अंधकार नष्ट नहीं होता और त्रिविध अंधकार के न नष्ट होने से अपने आत्म-स्वरूप राम को न जानकर मायिक सुखों में पागल हुये रहते हैं, इसलिये बारम्बार मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

११६-ज्ञान । रूपक ताल

भाई रे, तब क्या कथसि गियाना, जब दूसर नांहीं आना ॥ टेक॥
जब तत्त्वहिं तत्त्व समाना, जहँ का तहँ ले साना ॥ १ ॥
जहां का तहां मिलावा, ज्यों था त्यों होइ आवा ॥ २ ॥
संधे संधि मिलाई, जहां तहां थिति पाई ॥ ३ ॥
सब अंग सब ही ठांईं, दादू दूसर नांहीं ॥ ४ ॥

इति राग अडाणा समाप्त: ॥ ५ ॥ पद ६ ॥

अद्वैतावस्था में ज्ञानोपदेश देने का अवकाश नहीं रहता, यह कह रहे हैं—हे भाई ! जब हृदय में स्वस्वरूप से भिन्न भावना आती ही नहीं, तब उस अद्वैतावस्था को प्राप्त ज्ञानी क्या ज्ञान का कथन कर सकेगा ? आत्मा जिस ब्रह्म का स्वरूप था, उसे विचार द्वारा सांसारिक भावनाओं से ऊपर लेकर ब्रह्म में मिला दिया। (आत्म-तत्व ब्रह्म-तत्व में समा गया, ब्रह्म ज्ञान से जिस ब्रह्म का स्वरूपांश आत्मा था, उसी में मिला दिया), पूर्व में जैसा था वैसा ही निर्विकार हो गया। जो भेद रूप संधि भास रही थी, वह अद्वैत रूप से मिल गई। जहां की तहां स्थिति प्राप्त कर ली। जब सब ही अपने स्वरूप हैं और सब ही अपने स्थान हैं, तब कुछ भी कहना नहीं बनता।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग अडाणा समाप्त: ॥ ५ ॥

अथ राग केदार ६

(गायन समय संध्या ६ से ९ रात्रि)

११७-विनती । (गुजराती भाषा) दीपचन्दी ताल

मारा[१०] नाथ जी, तारो[१] नाम लेवाड़[२] रे, राम रतन हृदया मों राखे।
मारा वाहला जी, विषया थी वारे[३] ॥ टेक॥

वाहला वाणी ने मन मांहे मारे, चितवन तारो चित्त राखे।
श्रवण नेत्र आ[४] इन्द्री ना गुण, मारा मांहेला मल ते नाखे ॥ १ ॥
वाहला जीवाड़े[५] तो राम रमाड़े[६], मनें जीव्यानो[७] फल ये आपे[८]।
तारा नाम बिना हूं ज्यां ज्यां बंध्यो, जन दादू ना बंधन कापे[९] ॥ २ ॥

भगवत् परायणतार्थ भगवान् से विनय कर रहे हैं—मेरे[१०] नाथ जी ! आप मुझे तुम्हारा[१] नाम चिन्तन कराइये[२]। मेरा मन राम नाम-रत्न को हृदय में रख सके, ऐसी कृपा कीजिये, हे मेरे प्रिय प्रभुजी ! विषयों से मुझे बचाइये[३]। हे प्रिय ! मेरी वाणी से आपका ही कथन हो, मन से आपका ही मनन हो, चित्त भी निरन्तर आपका ही चिन्तन करता रहे और इन[४] श्रवण नेत्रादि इन्द्रियों के विषयों की आसक्ति तथा मेरे भीतर के आसुरी गुण और पाप भावना रूप मल को त्याग दे, ऐसी कृपा कीजिये। हे प्रिय ! यदि मुझे जीवित[५] रखते हो, तो हे राम ! अपने स्वरूप में रमण[६] करने दीजिये। मेरे जीने[७] का यही फल प्राप्त[८] हो। आपके नाम बिना मैं जहां-जहां बंधा हूं अर्थात् जिस-जिस में मेरा राग है, वह राग-बन्धन मुझ भक्त का काट[९] दीजिये।

११८-विरह विनती। उत्सव ताल

अरे मेरे सदा संगाती रे राम, कारण तेरे ॥ टेक ॥
कंथा पहरूं, भस्म लगाऊं, वैरागिनि ह्वै ढूंढूं, रे राम ॥ १ ॥
गिरिवर वासा, रहूं उदासा, चढ शिर मेरु पुकारूं, रे राम ॥ २ ॥
यहु तन जालूं, यहु मन गालूं, करवत शीश चढाऊं, रे राम ॥ ३ ॥
शीश उतारूं, तुम पर वारूं, दादू बलि बलि जाऊं, रे राम ॥ ४ ॥

११८-११९ में विरह पूर्वक विनय कर रहे हैं—हे मेरे सदा साथ रहने वाले राम ! मैं आपके साक्षात्कारार्थ, यदि आपको रुचिकर हो तो, गुदड़ी पहन सकता हूं, भस्म लगा सकता हूं, इस प्रकार विरक्त होकर आपको खोज सकता हूं। सबसे उपराम होकर विशाल पर्वत पर रह सकता हूं, सुमेरु पर्वत पर चढ़कर पुकार २ कर आपसे प्रार्थना कर सकता हूं, यह शरीर अग्नि में जला सकता हूं, हिमालय में गला सकता हूं, शिर पर करवत चढ़ाकर शरीर को चीर सकता हूँ, शिर को काट कर आप पर निछावर कर सकता हूं। हे राम ! मैं बारम्बार आपकी बलिहारी जाता हूँ। कहिये, आपको क्या प्रिय है ? वही मैं करूंगा।

११९-गजताल

अरे मेरा अमर उपावणहार रे खालिक[१], आशिक[२] तेरा ॥ टेक ॥
तुम सौं राता, तुम सौं माता, तुम सौं लागा रँग, रे खालिक ॥ १ ॥
तुम सौं खेला, तुम सौं मेला, तुम सौं प्रेम स्नेह, रे खालिक ॥ २ ॥
तुम सौं लेणा, तुम सौं देणा, तुम हीं सौं रत होइ, रे खालिक ॥ ३ ॥
खालिक मेरा, आशिक तेरा, दादू अनत[३] न जाइ, रे खालिक ॥ ४ ॥

हे सृष्टि[१] कर्ता ! आप अमर और मुझे उत्पन्न करने वाले हैं, मैं आप में प्रेम[२] करने वाला हूं, आपमें अनुरक्त हूं। आपके प्रेम में मस्त हूं, आपके चिन्तन-रंग में लगा हूँ। आपसे ही खेलता हूं, आप से ही मेरा प्रेम पूर्वक मेल तथा सच्चा स्नेह है। मुझे आपको ही अपना सर्वस्व देकर, आप का स्वरूप प्राप्त करना है। इसीलिये मैं आप में ही अनुरक्त हो रहा हूँ। हे मेरे सृष्टि कर्ता स्वामिन् ! मैं आपका प्रेमी भक्त हूँ, अन्यत्र[३] अन्य के पास नहीं जा सकता।

१२०-स्तुति । गजताल

अरे मेरे समर्थ साहिब रे अल्लह, नूर तुम्हारा ॥ टेक ॥
सब दिशि देवै, सब दिशि लेवै, सब दिशि वार न पार, रे अल्लह ॥ १ ॥
सब दिशि कर्ता, सब दिशि हर्ता, सब दिशि तारणहार, रे अल्लह ॥ २ ॥
सब दिशि वक्ता, सब दिशि श्रोता, सब दिशि देखणहार, रे अल्लह ॥ ३ ॥
तू है तैसा कहिये ऐसा, दादू आनन्द होइ, रे अल्लह ॥ ४ ॥

परमेश्वर की स्तुति कर रहे हैं—हे मेरे समर्थ स्वामिन् ! परमेश्वर ! आपका स्वरूप ही मेरा आधार है। आप सब दिशाओं में सबको अन्नादि देते हैं और भक्तों की भेंट लेते हैं। आप सब दिशाओं में परिपूर्ण हैं आपका वार-पार नहीं है। सब दिशाओं में आप करने योग्य कार्य करते हैं, दुष्टों के प्राण हरते हैं, सज्जनों की रक्षा करते हैं। सब दिशाओं में ही आप, अपने भक्तों को अपने वचन सुनाते हैं और उनकी प्रार्थना सुनते हैं। आप सभी दिशाओं में सब कुछ देखते हैं। प्रभो ! वास्तव में आप जैसे हैं, वैसा ही अपना स्वरूप कह कर हमको समझाइये, ठीक समझने पर हमें परमानन्द प्राप्त होगा।

१२१-(गुजराती) विरह विलाप । मल्लिकामोद ताल

हाल असां[१] जो लालड़े[२], तो के सब मालूमड़े ॥ टेक ॥
मंझे खामा[३] मंझि बराला[४], मंझे लगी भाहिड़े[५] ।
मंझे मेड़ी[६] मुच[७] थईला[८], कै[९] दरि[१०] करियां[११] धाहड़े[१२] ॥ १ ॥
विरह कसाई मुं[१३] गरेला[१४], मंझे बढै[१५] माइहड़े[१६] ।
सीखों करे कवाब[१७] जीला[१८], इये[१९] दादू जे[२१] ह्याहड़े[२०] ॥ २ ॥

विरह विलाप दिखा रहे हैं—हे प्रियतम[२] ! हमारी[१] जो दशा है, वह सब आपको ज्ञात है। मेरे भीतर ही भीतर जलन[३] लग रही है, मेरे भीतर विरहाग्नि[५] प्रज्वलित[४] हो रही है। उससे मैं विशेष करके जल रहा हूँ। हृदय के भीतर मिल[६] कर आप से एक[७] हुये[८] बिना मुझे शांति नहीं मिलेगी। मैं आपको छोड़ कर किस[९] के द्वार[१०] पर पुकार[१२] करूं[११] हाय ! माँ[१६] ! यह विरह-कसाई मेरे[१३] सुख रूप गले[१४] को मेरे भीतर काट[१५] रहा है और जैसे लोह-शलाकाओं से मांस[१७] खंड को भूनते[१८] हैं, ऐसे[१९] ही मेरे हृदय[२०] की[२१] दशा हो रही है।

१२२-विनती । मल्लिकामोद ताल

पिवजी सेती नेह नवेला, अति मीठा मोहि भावै रे ।
निशदिन देखूं बाट तुम्हारी, कब मेरे घर आवै रे ॥ टेक॥
आइ बनी है, साहिब सेती, तिस बिन तिल क्यों जावै रे ।
दासी को दर्शन हरि दीजै, अब क्यों आप छिपावे रे ॥ १ ॥
तिल तिल देखूं साहिब मेरा, त्यों त्यों आनँद अंग न मावे रे ।
दादू ऊपर दया (मया) करि, कब, नैनहुं नैन मिलावै रे ॥ २ ॥

१२२-१२३ में दर्शनार्थ प्रभु से विनय कर रहे हैं—प्रभुजी से मेरा प्रेम नित्य नूतन बढ़ता जा रहा है, वे मुझे अति मधुर और प्रिय लगते हैं। हे प्रभो ! मैं रात्रि दिन आपका मार्ग देख रही हूं और विचार कर रही हूं-प्रभु मेरे हृदय घर में कब पधारेंगे ? अब तो प्रभु के साथ ऐसी प्रीति हो गई है कि उनके बिना एक क्षण भी कैसे व्यतीत होगा ? हे हरे ! दासी को दर्शन दो, अब अपने को क्यों छिपा रहे हो ? ज्यों २ मैं अपने स्वामी को प्रति क्षण देखूंगी, त्यों २ ही दर्शनानन्द मेरे अन्त:करण में नहीं समा सकेगा। वे प्रभु मुझ पर दया करके कब मेरे नेत्रों से अपने नेत्र मिलायेंगे ?

१२३ (गुजराती भाषा) राजमृगांक ताल

पीव घर आवै रे, वेदन मारी[1] जाणी रे।
विरह संताप कौण पर कीजै, कहूं छूं दुख नी कहाणी रे॥ टेक॥
अंतरजामी नाथ मारा, तुज बिण हूं सीदाणी[2] रे ।
मंदिर मारे केम[3] न आवे, रजनी जाइ बिहाणी रे ॥ १ ॥
तारी बाट हूं जोइ थाकी, नैण निखूट्या पाणी रे।
दादू तुज बिण दीन दुखी रे, तूं साथी रह्यो छे ताणी रे॥ २ ॥

हे प्रभो। मेरी[1] विरह व्यथा को जानकर, मेरे हृदय-घर में पधारिये। मैं अपना विरह दु:ख किसके आगे प्रकट करूं ? अपने दु:ख की कथा आप को ही कहती हूं। मेरे नाथ ! आप तो अन्तर्यामी हैं, अत: मेरे हृदय की अवस्था जानते ही हैं। मैं आप के बिना दुखी[2] हूँ। आप मेरे हृदय मंदिर में क्यों[3] नहीं आते ? यह मेरी आयु-रात्रि व्यतीत होती जा रही है, मैं आपका मार्ग देखते २ थक गई हूं और आप के दर्शनार्थ रोते २ मेरे नेत्रों का अश्रु-जल भी समाप्त हो गया है। आपके बिना मैं विरहनी अति दीन दुखी हो रही हूँ, इतने पर भी आप मेरे साथ खेंचातानी कर रहे हैं, दर्शन नहीं देते, यह कहां तक उचित है ?

१२४-विरह विनती । राजमृगांक ताल

कब मिलसी पीव ग्रह[1] छाती, हूं औराँ संग मिलाती ॥ टेक॥

तिसज लागी तिसही केरी, जन्म जन्म नो साथी।
मीत हमारा आव पियारा, ताहरा रंग नी राती ॥ १ ॥
पीव बिना मने नींद न आवे, गुण ताहरा लै गाती।
दादू ऊपर दया मया किर, ताहरे वारणे जाती ॥ २ ॥

विरह-पूर्वक विनय कर रहे हैं—मेरे प्रभु, मेरे हृदय-घर में आकर मेरी वृत्ति रूप छाती ग्रहण[१] कर अपने स्वरूप-छाती से कब मिलायेंगे ? आपके बिना मैं अपनी वृत्ति-छाती अन्य रागियों के साथ मिलाती हूं किन्तु मुझे तो जो मेरे जन्म २ के साथी प्रभु हैं, उन्हीं के दर्शनों की इच्छा है। हे हमारे प्यारे मित्र ! मेरे हृदय में पधारिये, मैं आपके ही प्रेमरंग में रंगी हूं। प्रियतम ! आपके बिना मुझे निद्रा भी नहीं आती। मैं अपनी वृत्ति लगा कर आपके ही गुण गाती रहती हूँ। मुझ पर प्रेमपूर्वक दर्शन देने की दया करिये, मैं आपकी बलिहारी जाती हूँ।

१२५-विरह। राज विद्याधर ताल

माहरा रे वाहला ने काजे, हृदय जोवा[१] ने (हूं) ध्यान धरूं।
आकुल थाये[२] प्राण माहरा, कोने कही पर[३] करूं ॥टेक॥
संभारयो[४] आवे रे वाहला, वेहला[५] एहों[६] जोई ठरूं[७]।
साथीजी साथे थई[८] ने, पेली तीरे पार तरूं ॥ १ ॥
पिव पाखे[९] दिन दुहेला जाये, घड़ी बरसां सौं केम[१०] भरूं।
दादू रे जन हरिगुण गातां, पूरण स्वामी ते वरूं ॥ २ ॥

विरह दिखा रहे हैं—मेरे प्रियतम को देखने[१] के लिये मैं हृदय में ध्यान करता हूं। उनके बिना मेरे प्राण व्याकुल हो[२] रहे हैं, मैं इस विरह व्यथा को किसे कह कर दूर[३] करूं। आप तो स्मरण[४] करते ही भक्तों के आ जाते हैं। मैं इन[६] मेरे प्रियतम के शीघ्र[५] दर्शन करने पर ही शांति[७] पा सकूंगा। मेरे मित्रजी ! मैं आपके साथ होकर[८], संसार-सिन्धु को तैरते हुये, इसके परली पार पहुँच जाऊंगा। प्रियतम के बिना[९] मेरे दिन बड़े ही कठिन निकलते हैं। घड़ी तो वर्षों के समान लगती है, मैं अपनी आयु के दिन कैसे[१०] व्यतीत कर सकूँगा ? फिर भी कष्ट चाहे कितने ही हों, किन्तु मैं आपका जन तो आपके गुण-गान करते हुये आप पूर्ण प्रभु को ही स्वामी रूप से स्वीकार करूंगा।

१२६ - विरहविलाप। झपताल

मरिये मीत विछोहे, जियरा जाइ अंदोहे[१] ॥ टेक ॥
ज्यों जल विछुरै मीना, तलफ तलफ जिव दीन्हा, यों हरि हम सौं कीन्हा ॥ १ ॥
चातक मरै पियासा, निशदिन रहै उदासा, जीवै किहिं बेसासा ॥ २ ॥
जल बिन कमल कुम्हलावै, प्यासा नीर न पावै, क्यों कर तृषा बुझावै ॥ ३ ॥
मिल जनि[४] विछुरो कोई, विछुरे बहु दुख होई, क्यों कर जीवै जन सोई ॥ ४ ॥
मरणा मीत सुहेला[२], विछुरन खरा दुहेला[३], दादू पीव सौं मेला ॥ ५ ॥

१२६-१२९ में विरह पूर्वक विलाप दिखा रहे हैं—हम हमारे मित्र प्रभु के वियोग जन्य दु:ख से मर रहे हैं, हमारा मन शोक[१] से व्याकुल हुआ जा रहा है। जैसे जल बिना मछली तड़प तड़प कर प्राण खो देती है, वैसी ही स्थिति हरि के वियोग ने हमारी कर दी है। जैसे चातक पक्षी स्वाति-बिन्दु बिना प्यासा मरता है और रात्रि दिन उदास रहता है, वैसी ही प्रभु बिना हमारी दशा है। हम किस के विश्वास पर जीवित रहें। जैसे जल बिना कमल मुरझा जाता है, वैसी ही प्रभु बिना हमारी दशा हो रही है। प्यासे को जल न मिलने पर उसकी प्यास कैसे मिट सकती है, वैसे ही प्रभु के मिले बिना हमारा क्लेश कैसे मिट सकता है ? प्रभु से मिल कर किसी की भी वृत्ति उनसे अलग नहीं[६] होनी चाहिये। कारण, वियोग से बहुत दु:ख होता है, फिर वह जन उस दु:ख से युक्त होकर कैसे जीवित रह सकता है ? हे मित्र ! मरणा तो हमारे लिये सुगम[२] है किन्तु आपका वियोग बड़ा दुखद[३] है। अत: निरन्तर प्रभु से मिले हुये ही रहना चाहिये।

१२७-त्रिताल

पीव ! हौं, कहा करूं रे ?

पाइ परूं कै प्राण हरूं रे, अब हौं मरणैं नाहिं डरूं रे ॥टेक॥
गाल मरूं कै जाल मरूं रे, कै हौं करवत शीश धरूं रे ॥ १ ॥
खाइ मरूं कै घाइ[१] मरूं रे, कै हौं कत हूं जाइ मरूं रे ॥ २ ॥
तलफ मरूं कै झूर मरूं रे, कै हौं विरही रोइ मरूं रे ॥ ३ ॥
टेर कह्या मैं मरण गह्या रे, दादू दुखिया दीन भया रे ॥ ४ ॥

प्रभो ! मैं आपसे मिलने के लिये क्या करूं ? आपके चरणों में पडूंगा, नहीं तो प्राण छोड़ दूंगा। अब मैं मरने से तो नहीं डरता। मैं शरीर को हिम में गलाकर वा अग्नि में जलाकर वा शिर पर करवत धारण कर वा विष खाकर वा शरीर पर शस्त्रों के आघात[१] करके मर जाऊं वा कहीं निर्जन स्थान में जाकर प्रायोपवेशन द्वारा मर जाऊं ? मैं विरही तड़प-तड़प कर विलाप करते हुये रो रो कर मर जाऊंगा। मैंने उच्चस्वर से पुकार कर यह कह दिया है कि आपके दर्शन बिना मुझे मरना स्वीकार है, क्योंकि मैं आपके दर्शन बिना अति दीन और दुखी हो रहा हूं।

१२८-(गुजराती भाषा) त्रिताल

वाहला हूं जाणूं जे रँग भरमिये, मारो नाथ निमिष नहिं मेलूं रे ।
अन्तरजामी नाह[१] न आवे, ते दिन आव्यो[२] छेलो[३] रे ॥टेक॥
वाहला सेज अमारी एकलड़ी रे, तहँ तुजने केम न पामूं[४] रे ।
आ[५] दत्त[६] अमारो[७] पूरबलो रे, तेतो आव्यो सामो रे ॥ १ ॥
वाहला मारा हृदया भीतर केम न आवे, मने चरण विलम्बन[८] दीजे रे ।
दादू तो अपराधी तारो, नाथ उधारी लीजे रे ॥ २ ॥

हे प्रियतम ! मैं चाहता हूं—वृत्ति में प्रेम-रंग भरकर प्रभु से खेलूं और मेरे स्वामी को एक निमेष मात्र भी न छोडूं किन्तु आप स्वामी[१] तो अन्तर्यामी होने पर भी नहीं आते और वह अन्त[३] समय का दिन समीप आ गया[२] है। प्रियतम ! मेरी हृदय-शय्या आपके बिना खाली है, उस पर मैं आपको क्यों नहीं प्राप्त[४] करता ? यह[५] आपके वियोग से व्यथित होना मेरे[७] पूर्व कर्म[६] का फल ही सामने आया है। प्रियतम ! मेरे हृदय में क्यों नहीं आते ? अब आप विलम्ब न करके मुझे अपने चरणों का आश्रय[८] दें। यद्यपि मैं अपराधी हूँ किन्तु हूँ आपका ही। अत: हे नाथ ! शीघ्र ही दर्शन देकर वियोग-व्यथा से मेरा उद्धार करें।

१२९-पंचमताल

तूं छे मारो राम गुसांई, पालवे[1] तारे बाँधी रे।
तुज बिना हूं आंतरे[2] र वल्यो[3], कीधी[4] कमाई लीधी रे ॥ टेक॥
जीवूं जेटला[5] हरि बिना रे, देहड़ी दुःखे दाधी रे।
अेणे[6] अवतारे कांई न जाण्यूं, माथे टक्कर खाधी रे ॥ १ ॥
छूट[7] को मारो क्यारे[8] थाशे[9], शक्यो न राम अराधी रे।
दादू ऊपर दया मया[10] कर, हूं तारो अपराधी रे॥ २ ॥

राम ! आप ही मेरे स्वामी हैं, मैंने आपका ही आश्रय[१] पकड़ा है। आपके भजन बिना मैं अब तक आप से दूर[२] ही भटकता[३] रहा, यह भी मेरे किये[४] कर्मों का ही फल मिला है। अब मैं हरि दर्शन बिना जब तक[५] जीवित रहूंगा, तब तक मेरा देह दु:खों से जलता रहेगा। इस[६] जन्म में मैं अपने कल्याण का साधन कुछ भी न समझ सका और शिर पर टक्करें ही खाता रहा अर्थात् इधर-उधर भटकता रहा। मेरा उद्धार[७] कब[८] होगा[९] ? मैं राम की उपासना भी न कर सका। प्रभो ! मैं अपराधी हूँ, किन्तु हूँ आपका ही। अत: मुझ पर प्रेम पूर्वक[१०] दया ही करना।

१३०-विनती। पंचमताल

तूं हीं तूं तन माहरे गुसांई, तूं बिना तूं केने[1] कहूं रे।
तूं त्यां[2] तूं ही थई[3] रह्यो रे, शरण तुम्हारी जाय रहूं रे ॥ टेक॥
तन मन मांहे जोइये त्यां तूं, तुज दीठां हूं सुख लहूं रे।
तूं त्यां जेटली[6] दूर रहूं रे, तेम[4] तेम त्यां हूं दुःख सहूं रे ॥ १ ॥
तुम बिन माहरो कोई नहीं रे, हूं तो ताहरा वण[5] बहूं रे।
दादू रे जण हरि गुण गातां, मैं मेलूं माहरो मैं हूं रे ॥ २ ॥

विनय कर रहे हैं—हे स्वामिन् ! मेरे शरीर में 'तू ही तू' ध्वनि होती रहती है, आपके बिना मैं 'तू' किस[१] को कहूँ अर्थात् अति स्नेही को ही 'तू' कहा जाता है। 'तू' तहां[२] है, तू तहां है,' इस प्रकार वृत्ति द्वारा आप ही व्यापक रूप से भासित हो रहे हैं। अत: मैं आपकी ही शरण रूप स्थिति में जा रहा हूँ। तन में तथा मन में जहां देखूं तहां तू ही है। तुझको देखकर मैं सुखी होता हूं। तू तहां

है इतना कहने में जितना[६] दूर रहता हूँ, उतना[७] उतना ही तहां मैं दुःख सहन करता हूँ। आपके बिना मेरा कोई भी नहीं है, मैं तो आपके बिना[८] भटक रहा हूँ, अतः आपका बन[९] कर ही रहूँगा। हे जनो ! मैं तो हरि गुण-गान करते हुये अहंकार को त्याग कर आत्म-स्वरूप से ही शेष रहूँगा।

१३१-केवल विनती । त्रिताल

हमारे तुम ही हो रखपाल।
तुम बिन और नहीं को मेरे, भव–दुख मेटणहार ॥ टेक ॥
वैरी पंच निमष नहिं न्यारे, रोक रहे जम काल ।
हा जगदीश दास दुख पावै, स्वामी करहु संभाल ।। १ ।।
तुम बिन राम दहैं ये द्वन्द्वर, दशों दिशा सब साल ।
देखत दीन दुखी क्यों कीजै, तुम हो दीन–दयाल ।। २ ।।
निर्भय नाम हेत हरि दीजै, दर्शन परसन लाल।
दादू दीन लीन कर लीजै, मेटहु सब जंजाल ।। ३ ।।

स्वस्वरूप स्थिति के लिये विनय कर रहे हैं—दुःखों से रक्षा करके हमारे पालन करने वाले आप ही हैं। आपके बिना हमारे संसार-दुःख को नष्ट करने वाला अन्य कोई भी नहीं है। काम क्रोधादिक शत्रु और पंच विषय, एक निमेष भी मुझ से अलग नहीं होते, वे आपकी ओर आने से रोक रहे हैं और यम-दंड भुगताते हैं तथा काल की ओर ले जा रहे हैं। हा ! जगदीश ! मैं आपका दास इनसे दुखी हो रहा हूँ। स्वामिन् ! मेरी सँभाल करो। आपके दर्शन बिना ये शोक-मोहादिक द्वन्द्व दशों दिशाओं में सब प्रकार दुःख ही दे रहे हैं। आप तो दीन दयालु हैं, फिर मुझ दीन को देखते हुये भी दुःखी क्यों कर रहे हैं ? प्रियतम ! अपना नाम, दर्शन और स्पर्श देकर मुझे निर्भय करिये, मेरे सब जंजाल नष्ट करके मुझ दीन को अपने स्वरूप में लीन कर लीजिये।

१३२-विनती त्रिताल

रे मन माधो बरजि बरजि[१] ।
अति गति विषयां सौं रत, उठत जु गरजि गरजि ॥ टेक ॥
विषय विलास अधिक अति आतुर, विलसत शंक न मानैं।
खाइ हलाहल मगन माया में, विष अमृत कर जानैं ॥ १ ॥
पंचन के संग बहत चहूं दिशि, उलट न कबहूं आवै ।
जहँ जहँ काल यह जाइ तहँ तहँ, मृग जल ज्यों मन धावे ॥ २ ॥
साधु कहैं गुरु ज्ञान न माने, भाव भजन न तुम्हारा ।
दादू के तुम सजन सहाई, कछू न बसाइ हमारा ॥ ३ ॥

मन-निग्रहार्थ विनय कर रहे हैं—हे माधव ! विषयों में जाते हुये मेरे मन को रोकिये[१]। यह

मन विषयों में विशेष करके जाता है और उन्हीं में अनुरक्त रहता है। विषयों में जाने के लिए बारम्बार उत्कंठा रूप गर्जना करके उठता है। विषय-विलास ही उसे अधिक प्रिय है। उनको प्राप्त करने के लिये अति शीघ्रता करता है। उनके उपभोग में कुछ भी संकोच नहीं करता। यह विषय-विष को अमृत रूप जानता है और उस महा विष को खाकर मायिक पदार्थों में मग्न रहता है। पंच ज्ञानेन्द्रियों के साथ चारों दिशाओं में भटकता है। विषयों से लौट कर आपके स्वरूप में नहीं आता। जैसे मृग, मृग-तृष्णा के जल के लिये दौड़ता है, वैसे ही जहां २ मृत्यु के कारण हैं, वहां ही जाता है। संतों के वचन तथा गुरु के ज्ञान को नहीं मानता, न आप में श्रद्धाभाव रखता है और न भजन ही करता है। इस मन पर मेरा कोई वश नहीं चलता, अतः इसे रोकने मैं आप मेरे हितैषी बन कर सहायता करें।

१३३-मनोपदेश। पंचम ताल

हां हमारे जियरा, राम गुण गाइ, एही वचन विचारी मान ॥ टेक ॥
केती कहूं मन कारणैं, तूं छाड़ी रे अभिमान।
कह समझाऊं बेर-बेर, तुझ अजहूं न आवै ज्ञान ॥ १ ॥
ऐसा संग कहाँ पाईये, गुण गावत आवै तान।
चरणों सौं चित राखिये, निश दिन हरि का ध्यान ॥ २ ॥
वे भी लेखा दे हिंगे, आप कहावैं खान।
जन दादू रे गुण गाइये, पूरण है निर्वाण॥ ३ ॥

सद्गुरु समझाते हुए इस मन को उपदेश कर रहे हैं—अरे हमारे मन ! राम का ही गुण-गान कर, इसी वचन को विचार पूर्वक मान। हे मन ! मैं तुझे कितनी शिक्षा की बातें कहता हूं, अब तो तू अपने अनात्म अहंकार को छोड़। मैं तुझे बारम्बार कह कर समझाता हूँ किन्तु तुझमें अब तक भी ज्ञान नहीं आ रहा है। अरे इस मानव देह में तो प्रभु गायन करते समय बड़ा आनन्द आता है, फिर चौरासी में ऐसा संयोग कहां मिलेगा ? इसलिये भगवत् चरणों में चित्त-वृत्ति रखते हुये रात्रि-दिन भगवान् का ध्यान कर। अरे ! तेरी कौन चलाई ? जो अपने को बादशाह सलामत खान कहलाते है, उनको भी अपने कर्मों का हिसाब देना पड़ेगा। अत: हम तुझे बारंबार यही कहते हैं—जो विश्व में परिपूर्ण और निर्वाण स्वरूप परमात्मा है, उसी का गुण-गान कर।

१३४-काल चेतावनी। पंचमताल

बटाऊ ! चलणां आज कि काल्ह।
समझ न देखै कहा सुख सोवै, रे मन राम सँभाल ॥ टेक ॥
जैसे तरुवर रेन बसेरा, पंखी बैठे आइ।
ऐसे यहु सब हाट पसारा, आप आपको जाइ ॥ १ ॥
कोई नहिं तेरा सजन संगाती, जनि खोवे मन मूल।
यहु संसार देख जनि भूले, सब ही सैंबल फूल ॥ २ ॥

तन नहिं तेरा, धन नहिं तेरा, कहा रह्यो इहिं लाग।
दादू हरि बिन क्यों सुख सोवै, काहे न देखै जाग ॥ ३ ॥

काल से सचेत कर रहे हैं—हे प्राणी-पथिक ! तुझे आज वा कल जाना होगा। तू विचार करके नहीं देखता, कैसे सुख से सो रहा है ? अरे ! मन से राम का चिन्तन कर। जैसे वृक्षों में श्रेष्ठ वृक्ष पर पक्षी आकर बैठते हैं और रात्रि को निवास करके प्रात: उड़ जाते हैं तथा जैसे हाट की वस्तुओं का फैलाव सायंकाल ठिकाने लग जाता है, वैसे ही ये सब संसार के प्राणी अपने २ कर्मानुसार अन्य शरीरादि में चले जाते हैं। इस संसार में तेरा सज्जन तथा साथी कोई भी नहीं है। तू अपने मन से मूल प्रभु का चिन्तन किये बिना ही समय क्यों खो रहा है ? इस मिथ्या संसार को देखकर प्रभु को मत भूल, यह तो सब सेमल पुष्प के समान बहकाने वाला है। यह शरीर और धन तेरे नहीं। तू इनमें क्यों अनुरक्त हो रहा है। प्रभु के दर्शन बिना क्यों सुख से सो रहा है ? अज्ञान-निद्रा से जाग कर प्रभु को क्यों नहीं देखता ?

१३५-तर्क चेतावनी। प्रति ताल

जात कत मद को मातो रे,
तन धन जौबन देख गर्वानो, माया रातो रे ॥ टेक ॥
अपनो हि रूप नैन भर देखै, कामिनि को संग भावै रे।
बारम्बार विषय रत मानै, मरबो चित्त न आवै रे ॥ १ ॥
मैं बड़ आगैं और न आवै, करत केत अभिमाना रे।
मेरी मेरी करि करि फूल्यो, माया मोह भुलाना रे ॥ २ ॥
मैं मैं करत जन्म सब खोयो, काल सिरहाणे आयो रे।
दादू देख मूढ नर प्राणी, हरि बिन जन्म गँवायो रे ॥ ३ ॥

तर्क पूर्वक सावधान कर रहे हैं—अरे प्राणी ! माया मद से मतवाला हुआ तू कहां जा रहा है ? तू अपने शरीर, यौवन और धन को देखकर गर्व कर रहा है और मायिक पदार्थों में ही अनुरक्त रहता है। तू अपने शरीर के रूप को नेत्रों से दर्पण द्वारा इच्छा भर करके देखता है। तुझे कामिनी का संग ही प्रिय लगता है। विषयों में सुख मानकर बारम्बार उन्हीं में अनुरक्त रहता है। मरने का विचार तो तेरे मन में कभी आता ही नहीं। तेरे मन में 'मैं बड़ा हूं' इसके आगे अन्य कोई सद्‌विचार आता ही नहीं। तू विद्या, बल, धन, जनादि के कितने ही अभिमान करता रहता है। यह मेरी नारी है, यह मेरी वस्तु है, इत्यादिक अहंकार द्वारा तू प्रभु को भूलकर मायिक मोह में भ्रम रहा है। मैं धनी हूं, मैं गुणी हूं, इस प्रकार अहंकार करते २ ही तूने अपना सब जन्म खो दिया। प्राणधारी मूर्ख नर ! देख तो सही तेरे शिरहाने काल आ गया है, तूने हरि भजन बिना व्यर्थ ही जन्म खो दिया है, यह अच्छा नहीं किया।

१३६-हितोपदेश । त्रिताल

जागत को कदे न मूसै[1] कोई,
जागत जान जतन कर राखै, चोर न लागू होई ॥ टेक ॥
सोवत साह वस्तु नहिं पावै, चोर मुसै घर घेरा ।
आस पास पहरे को नाहीं, वस्तैं कीन्ह नबेरा[2] ॥ १ ॥
पीछे कहु क्या जागै होई, वस्तु हाथ तैं जाई ।
बीती रैन बहुरि नहिं आवै, तब क्या करि है भाई ॥ २ ॥
पहले ही पहरै जे जागै, वस्तु कछू नहिं छीजै ।
दादू जुगति जान कर ऐसी, करना है सो कीजै ॥ ३ ॥

हितकर उपदेश कर रहे हैं—जागते हुये की वस्तु को कोई नहीं चुरा[1] सकता। जो जागते हुये अपनी विचारादि वस्तुओं को यत्न से रखता है, उसे सावधान जानकर उसकी वस्तु चुराने में कामादि चोर संलग्न नहीं होते। जो जीव-साह अज्ञान-निद्रा में सोता है, उसकी सद्विचारादि वस्तु उसे नहीं मिलती, अन्त:करण-घर के घेरा डालकर कामादिक चोर चुरा ले जाते हैं। अन्त:करण के आसपास दैवी गुण रूप पहरेदार नहीं होते, तब तो कामादिक चोर सद्विचार वस्तु को समाप्त[2] ही कर डालते हैं। निरोगावस्था के श्वास रूप वस्तु हाथ से चली जाने पर सावधान होने से क्या होगा ? यह आयु-रात्रि व्यतीत होने पर फिर नहीं आती। हे भाई ! तब अन्त समय में क्या कर सकेगा ? जो आयु-रात्रि के पहले पहर में ही जाग जाता है, उसकी सद्विचारादि वस्तु कुछ भी क्षीण नहीं होती। अत: ऐसी उक्त युक्ति द्वारा अच्छी प्रकार समझ कर जो तुझे कर्तव्य है, उसे शीघ्र ही कर।

१३७-उपदेश । त्रिताल

सजनी ! रजनी घटती जाइ ।
पल पल छीजै अवधि दिन आवै, अपनो लाल मनाइ ॥ टेक ॥
अति गति नींद कहा सुख सोवै, यहु अवसर चलि जाइ ।
यहु तन विछुरैं बहुरि कहँ पावैं, पीछैं ही पछिताइ ॥ १ ॥
प्राण-पति जागैं सुन्दरि क्यों सोवैं, उठ आतुर गहि पाइ ।
कोमल वचन करुणा कर आगैं, नख शिख रहु लपटाइ ॥ २ ॥
सखी सुहाग सेज सुख पावै, प्रीतम प्रेम बढाइ ।
दादू भाग बड़े पिव पावै, सकल शिरोमणि राइ ॥ ३ ॥

वृत्ति को उपदेश कर रहे हैं—मेरी बुद्धि-वृत्ति रूप सजनी ! आयु रात्रि पल २ क्षीण होती हुई घटती जा रही है और उसकी समाप्ति का दिन समीप आ रहा है। तू शीघ्र ही अपने प्रियतम प्रभु

को प्रसन्न कर, तुझे बहुत चलना है। तू अज्ञान निद्रा में अति सुख पूर्वक क्यों सो रही है ? इस प्रकार सोने से यह सुअवसर हाथ से चला जायेगा। यह मानव शरीर है, इसमें यदि भगवान् से अलग रही तो फिर किस शरीर में प्रभु को प्राप्त करेगी ? पीछे तो पश्चात्ताप ही करना होगा। प्राणेश्वर परमात्मा तो भक्तों के लिये सदा जाग्रत ही रहते हैं, फिर हे मेरी वृत्ति-सुन्दरी ! तू क्यों अज्ञान निद्रा में सो रही है ? शीघ्रता से उठकर प्रभु के चरण पकड़। नम्र और करुणा पूर्ण वचनों द्वारा प्रभु के आगे विनय कर तथा नख से शिखा पर्यन्त शरीर को प्रभु परायण कर। हे सखि ! प्रियतम से प्रेम बढ़ा, तभी हृदय-शय्या पर सुहाग-सुख प्राप्त कर सकेगी। जिनके भाग्य महान् होते हैं, वे ही सर्व शिरोमणि विश्व के राजा भगवान् को प्राप्त करते हैं।

१३८-प्रश्नोत्तर। दादरा

कोई जानै रे, मरम माधइये केरो ?
कैसे रहै, करे का ? सजनी प्राण मेरो॥टेक॥
कौन विनोद करत री सजनी, कवननि संग बसेरो ?
संत साधु गम आये उनके, करत जु प्रेम घणेरो ॥ १ ॥
कहां निवास वास कहँ, सजनी गवन तेरो ?
घट घट मांहीं रहै निरन्तर, ये दादू नेरो ॥ २ ॥

प्रश्न करके अन्तिम पाद से उत्तर दे रहे हैं—हे सन्त सजनी ! कोई माधव का रहस्यमय व्यवहार जानता है क्या ? वे मेरे प्राणाधार कैसे रहते हैं और क्या करते हैं ? वे क्या विनोद करते रहते हैं और किसके संग रहते हैं ? साधु सन्त उन्हीं के ध्यान विचारादि पथ में आये हैं और उनसे अति प्रेम करते हैं। हे सन्त सजनी ! तुम्हारा निवास कहां है और तुम्हारी वृत्ति का गमन कहां और किसमें होता है तथा तू कहां रहती है ? उत्तर—वे मेरे माधव सभी के घट में निरन्तर रहते हैं और जो भक्त हैं, वे भी उनके अति समीप ही रहते हैं।

१३९-विरह विनती। त्रिताल

मन वैरागी राम को, संगि रहे सुख होइ हो ॥टेक॥
हरि कारण मन जोगिया, क्योंहिं मिलै मुझ सोइ ।
निरखण का मोहि चाव है, क्यों आप दिखावै मोहि हो ॥ १ ॥
हिरदै में हरि आव तूं, मुख देखूं मन धोइ ।
तन मन में तूं ही बसै, दया न आवै तोहि हो ॥ २ ॥
निरखण का मोहि चाव है, ए दुख मेरा खोइ ।
दादू तुम्हारा दास है, नैन देखन कौं रोइ हो ॥ ३ ॥

विरह पूर्वक विनती कर रहे हैं—मेरा मन राम को प्राप्त करने के लिये विषयों से विरक्त हो

रहा है। प्रभु मेरे संग रहेंगे, तब ही मुझे परमानन्द प्राप्त होगा। हरि के लिये मन योगी बन रहा है, ताकि वे हरि मुझे किसी प्रकार मिले। मुझे उनका दर्शन करने का उत्साह है। कैसे वे मुझे अपना स्वरूप दिखायेंगे ? हरे ! आप हृदय में पधारिये, मैं अपने मन को पवित्र करके आपका मुखारविन्द देखूंगा। आप मेरे तन-मन में बसते हैं, फिर भी आप दर्शन नहीं देते, आपको दया नहीं आती ? मुझे तो आपके दर्शन का अति उत्साह है। मैं आपका दास हूं, मेरे नेत्र आप के दर्शनार्थ रो रहे हैं, आप अपना दर्शन देकर यह मेरा वियोग-जन्य दुःख दूर करिये।

१४०-अधीर उराहन। त्रिताल

धरणी धर बाह्या[1] धूतो[2] रे, अंग परस नहिं आपे[3] रे ।
कह्यो अमारो कांई न माने, मन भावे ते थापे[4] रे ॥टेक॥
वाही[5] वाही ने सर्वस लीधो,[6] अबला कोइ न जाणे रे ।
अलगो रहे येणी[7] परि तेड़े[8], आपनड़े घर आणे रे ॥ १ ॥
रमी रमी ने राम रजावी,[9] केन्हों[10] अंत न दीधो रे ।
गोप्य गुह्य ते कोइ न जाणे, एवो[11] अचरज कीधो[12] रे ॥ २ ॥
माता बालक रुदन करंतां, वाही वाही ने राखे रे ।
जेवो[13] छे तेवो[14] आपणपो, दादू ते नहिं दाखे रे ॥ ३ ॥

धैर्य रहित उपालंभ दे रहे हैं—धरती को धारण करने वाले ईश्वर ने मायिक प्रपंच द्वारा मन को बहका[1] कर हमको ठग[2] लिया है। अपने अंग का स्पर्श भी हमें प्रदान[3] नहीं करते तथा न हमारा कहा हुआ कुछ मानते हैं। उनके मन को जो प्रिय लगता है, वही करते[4] हैं। हमें बहका[5] बहका कर हमारा सर्वस्व ले लिया[6] है और हम निर्बलों को कुछ भी नहीं समझते। आप तो अलग रहते हैं और हम[7] को अपने घर की ओर आने की ऐसी प्रेरणा[8] करते हैं—अपने घर ले ही जाते हैं। हमारे साथ खेल २ कर उन रामजी ने ही हमें रिझाया[9] है किन्तु वे गुप्त से भी गुप्त हैं, उनके रहस्य मय स्वरूप का अन्त कोई भी नहीं जान सकता, ऐसा[11] आश्चर्य उनने कर[12] रक्खा है। जैसे माता रोते हुये बालक को बहका २ कर रखती है, वैसे ही उनने हमको बहका २ कर रक्खा है। जैसा[13] उनका वास्तव स्वरूप है, वैसा[14] वे किसी को भी नहीं दिखाते अर्थात् भेद दृष्टि रहते हुये उनका अद्वैत स्वरूप दीखता नहीं और अभेद होने पर देखने वाला रहतानहीं।

१४१-समर्थाई। राजमृगांक ताल

सिरजनहार तैं सब होइ।
उत्पति परले करै आपै, दूसर नांहीं कोइ ॥ टेक ॥
आप होइ कुलाल[1] करता, बूंद तैं सब लोइ ।
आप कर अगोच बैठा, दुनी मन को मोहि ॥ १ ॥

आप तैं उपाइ बाजी, निरख देखै सोइ ।
बाजीगर को यहु भेद आवै, सहज सौंज समोइ ॥ २ ॥
जे कुछ कीया सु करै आपै, येह उपजै मोहि ।
दादू रे हरि नांउं सेती, मैल कश्मल[२] धोहि ॥ ३ ॥

ईश्वर की सामर्थ्य दिखा रहे हैं—सृष्टिकर्ता ईश्वर से सब कुछ होता है, वे किसी अन्य की सहायता के बिना ही संसार की उत्पत्ति, प्रलय करते हैं। आप ही कुम्हार[१] के समान सम्पूर्ण शरीर रूप घटों के कर्त्ता बनते हैं। इच्छा मात्र से बिन्दु द्वारा सम्पूर्ण प्राणियों की रचना कर तथा सांसारिक प्राणियों के मन को मोहित करके इन्द्रियों से अगोचर होकर स्थित हैं। प्राणियों के कर्मों का निरीक्षण करके अपने से ही संसार-बाजी उत्पन्न करते हैं और वे ही सम्यक् प्रकार देखते हुये पालन करते हैं। ईश्वर-बाजीगर का यह रहस्य तब ही ज्ञात होता है, जब मन इन्द्रियादि बाह्य ज्ञान की सामग्री सहजावस्था में लय होती है। जो कुछ भी किया है वह सब किसी अन्य की सहायता बिना स्वयं ने ही किया है। हमारी बुद्धि की तो यही उपज है। रे प्राणी ! हरि नाम चिन्तन से अपने पाप[२] मैल को धो डाल, फिर तुझे यथार्थ ज्ञान होगा।

१४२-परिचय । राजमृंगाक ताल

देहुरे मंझे देव पायो, वस्तु अगोच लखायो ॥ टेक ॥
अति अनूप ज्योति पति, सोई अंतर आयो ।
पिंड ब्रह्माण्ड सम, तुल्य दिखायो ॥ १ ॥
सदा प्रकाश निवास निरन्तर, सब घट मांहिं समायो ।
नैन निरख नेरो, हिरदै हेत लायो ॥ २ ॥
पूरब भाग सुहाग सेज सुख, सो हरि लैन पठायो ।
देव को दादू पार न पावै, अहो पै उनहीं चितायो ॥ ३ ॥

इति राग केदार समाप्तः ॥ ६ ॥ पद २६ ॥

साक्षात्कार का परिचय दे रहे हैं—अगोचर वस्तु रूप इष्टदेव हृदय-मंदिर में ही ज्ञान द्वारा भास कर प्राप्त हुये हैं। जो अति अनुपम ज्योति-स्वरूप हैं, वे भीतर ही स्थित हैं। पिंड और ब्रह्माण्ड में सम-भाव से रहते हुये ज्ञान दृष्टि द्वारा एक रस दिखाई देते हैं। वे नित्य प्रकाश स्वरूप निरन्तर सबके निवास स्थान और सब घटों में परिपूर्ण रूप से समाये हुये ज्ञान-नेत्रों द्वारा अति समीप हृदय में ही देखकर हमने उनसे प्रेम किया है। पूर्व भाग्यवश ही हृदय-शय्या पर प्रभु के दर्शन तथा सुहाग सुख प्राप्त हुआ है। उसी सुख को प्राप्त करने के लिये प्रभु ने इस शरीर में भेजा है। मैं उन्हीं के द्वारा (कांकरिया तालाब पर) सावधान किया गया हूं और उनके दर्शन करता रहता हूं किन्तु आश्चर्य है—उनका पार नहीं पाता।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग केदार समाप्तः ॥ ६ ॥

अथ राग मारू (मारवा) ७

(गायन समय सांयकाल ६ से ९ रात्रि)

१४३-उपदेश । झपताल

मना, भज राम नाम लीजै ।
साधु संगति सुमिर सुमिर, रसना रस पीजै ॥ टेक ॥
साधू जन सुमिरन कर, केते जप जागे ।
अगम निगम अमर किये, काल कोइ न लागे ॥ १ ॥
नीच ऊंच चिन्तन कर, शरणागति लीये ।
भक्ति मुक्ति अपनी गति, ऐसे जन कीये ॥ २ ॥
केते तिर तीर लागे, बंधन भव छूटे ।
कलि मल विष जुग जुग के, राम नाम खूटे ॥ ३ ॥
भरम करम सब निवार, जीवन जप सोई ।
दादू दुख दूर करण, दूजा नहिं कोई ॥ ४ ॥

१४३-१४४ में मन को नाम-स्मरण का उपदेश कर रहे हैं—हे मन ! राम-नाम का चिन्तन कर, सन्तों की संगति में रह कर बारम्बार नाम स्मरण करते हुये रसना से राम भक्ति-रस का पान कर। सन्त जनों द्वारा बताई हुई स्मरण पद्धति से नाम जप करके कितने ही साधक मोह-निन्द्रा से जगे हैं, उनको नाम-जप ने वेद से भी अगम परब्रह्म में मिला कर अमर कर दिया है, उनमें से किसी के भी पीछे काल नहीं लगा है। नीच जाति वा उच्च जाति कोई भी हो, नाम-स्मरण करने पर सभी को भगवान् ने अपनी शरण में लिया है और प्रेमा भक्ति द्वारा मुक्ति प्रदान की है। स्मरण द्वारा अपनी ओर आने वाले जनों को अपने स्वरूप में लय किया है कि ऐसे स्मरण करने वालों के अन्त:करण में स्थित कलि के पाप और युग २ का बढ़ा हुआ विषय-विष राम-नाम के चिन्तन से नष्ट हो गया है । इस प्रकार भव-बन्धन से मुक्त होकर बहुत से साधक-संसार-सिन्धु को तैर कर पार चले गये हैं । अत: भ्रम-पूर्ण सम्पूर्ण कर्मों को त्याग के अपने शेष जीवन में जीवनाधार उसी प्रभु के नाम को जप, तेरे जन्मादिक दु:खों को दूर करने वाला उसके बिना अन्य कोई भी नहीं है।

१४४-झपताल

मना, जप राम नाम कहिये ।
राम नाम मन विश्राम, संगी सो गहिये ॥ टेक ॥
जाग जाग सोवै कहा, काल कंध तेरे ।
बारम्बार कर पुकार, आवत दिन नेरे ॥ १ ॥

सोवत सोवत जन्म बीते, अजहूँ न जीव जागे।
राम संभार नींद निवार, जन्म जरा लागे ॥ २ ॥
आश पाश भरम बंध्यो, नारी गृह मेरा।
अंत काल छाड़ चल्यो, कोई नहिं तेरा ॥ ३ ॥
तज काम क्रोध मोह माया, राम राम करणा।
जब लग जीव प्राण पिंड, दादू गह शरणा ॥ ४ ॥

हे मन ! राम-नाम को जप और बुद्धि आदि को भी राम-परायण होने की प्रेरणा कर। हे मन ! राम नाम ही तुझे शांति देने वाला है और वह राम ही तेरा सच्चा साथी है, उसी की शरण पकड़। अरे ! अब तो मोह-निद्रा से जाग, शीघ्र जाग, तेरे कंधे पर काल आ गया है, तू बारम्बार भवबन्धन से मुक्त होने के लिये प्रभु से प्रार्थना कर, तेरी मृत्यु का दिन समीप आ रहा है। अरे ! तुझे मोह-निद्रा में सोते २ अनेक जन्म निकल गये हैं, अब भी तू जीवत्व-भाव से नहीं जागता ? इस जन्म में तो मोह-निद्रा को त्याग कर शीघ्र राम का स्मरण कर। देख, शरीर के वृद्धावस्था लग रही है, इसकी वृद्धि होने पर कुछ न होगा। तू भ्रमवश ये नारी, घर, धन मेरे हैं, ऐसे कहता रहता है। किन्तु अन्त समय तू सब को यहां ही छोड़ कर चला जायेगा। इनमें कोई भी तेरा नहीं है। जब तक शरीर में प्राणधारी जीव है, तब तक ही प्रभु की शरण पकड़ और काम, क्रोध, मोह, मायादि को त्याग कर राम २ कर।

१४५-विरह। अड्डुताल

क्यों विसरे मेरा पीव पियारा, जीव की जीवन प्राण हमारा ॥ टेक ॥
क्यों कर जीवै मीन जल बिछुरै, तुम बिन प्राण सनेही।
चिन्तामणि जब कर तैं छूटै, तब दुख पावै देही ॥ १ ॥
माता बालक दूध न देवै, सो कैसे कर पीवै।
निर्धन का धन अनत भुलाना, सो कैसे कर जीवै ॥ २ ॥
वरषहु राम सदा सुख अमृत, नीझर निर्मल धारा।
प्रेम पियाला भर भर दीजै, दादू दास तुम्हारा ॥ ३ ॥

विरह दिखा रहे हैं—मेरे प्रियतम स्वामी ! मुझे क्यों भूल रहे हैं ? आप तो हमारे जीव के जीवन तथा प्राण ही हैं। जैसे जल से अलग होकर मच्छी जीवित नहीं रह सकती, वैसे ही हे प्राण-स्नेही ! आपके बिना हम कैसे जीवित रह सकते हैं ? जैसे किसी के हाथ में आई हुई चिन्तामणि हाथ से गिरकर खोई जाय, तब उस प्राणी को तो दु:ख ही होता है, वैसे ही आपके अलग होने से हमको क्लेश ही होता है। यदि माता बच्चे को दूध न दे तो वह कैसे पान कर सके ? वैसे ही यदि आप दर्शन न दें तो हम दर्शनामृत कैसे पान कर सकेंगे ? निर्धन को धन मिला हो और वह किसी अन्य स्थान में रखकर भूल जाय तो सुखपूर्वक कैसे जीवित रहेगा ? वैसे ही हमारे परम-धन !

आपके बिना हम कैसे सुखपूर्वक जीवित रह सकते हैं ? राम ! अपने स्वरूप-झरने से सदा सुखप्रद दर्शनामृत की निर्मल धार वर्षाओ और प्रेम-प्याले में भर २ कर मुझे दो, मैं आपका दास हूं, अत: अधिकारी हूं।

१४६ अत्यन्त विरह (गुजराती भाषा) अड्डुताल

कोई कहो रे मारा नाथ ने, नारी नेण निहारे बाट रे ॥ टेक॥
दीन दुखिया सुन्दरी, करुणा वचन कहे रे।
तुम बिन नाह[१] विरहणी व्याकुल, केम[२] कर नाथ रहे रे ॥ १ ॥
भूधर बिना भावे नहिं कोई, हरि बिन और न जाणे रे ।
देह गृह हूं तेने आपूं[३], जे कोइ गोविन्द आणे रे ॥ २ ॥
जगपति ने जोवा[४] ने काजे, आतुर थई[५] रही रे।
दादू ने देखाड़ो[६] स्वामी, व्याकुल होइ गई रे ॥ ३ ॥

अत्यन्त विरह दिखा रहे हैं—कोई मेरे नाथ को जाकर कहो तो सही—आपकी नारी के नेत्र आपका मार्ग देख रहे हैं, आप बिना वह सुन्दरी दीन-दुखिया हो रही है और करुणापूर्ण वचन कहते हुये आपके दर्शनार्थ प्रार्थना कर रही है। हे स्वामिन्[१] ! आपके बिना विरहनी अति व्याकुल है। हे नाथ ! वह अकेली कैसे[२] और किसका आश्रय करके रहे ? भूधर परमात्मा के बिना मुझे कोई भी अच्छा नहीं लगता। मेरी यह दशा हरि के बिना और कोई नहीं जानता। यदि कोई दयालु सन्त गोविन्द को लाकर मुझ से मिला दे तो मैं अपना देह और घर आदि सर्वस्व उस गोविन्द के समर्पण[३] कर दूं। मैं जगतपति को देखने[४] के लिये अति आतुर हो[५] रही हूं। हे स्वामिन् ! मुझे अपना स्वरूप दिखाओ[६], मैं दर्शनार्थ व्याकुल हो रही हूं।

१४७ विरह विलाप। पंजाबी त्रिताल

कबहूँ ऐसा विरह उपावे रै, पिव बिन देखे जिव जावै रे ॥ टेक॥
विपति हमारी सुनहु सहेली, पिव बिन चैन न आवै रे ।
ज्यों जल भिन्न मीन तन तलफै, पिव बिन वज्र बिहावै रे ॥ १ ॥
ऐसी प्रीति प्रेम की लागै, ज्यों पंखी पीव सुनावै रे ।
त्यों मन मेरा रहै निश वासर, कोइ पिव को आण मिलावै रे॥ २ ॥
तो मन मेरा धीरज धरही, कोइ आगम आण जनावै रे।
तो सुख जीव दादू का पावै, पल पिवजी आप दिखावै रे॥ ३ ॥

१४७-१४८ में विरह पूर्वक विलाप कर रहे हैं—वे प्रभु कभी ऐसा विरह मेरे हृदय में उत्पन्न करेंगे ? जिससे उन प्रभु के देखे बिना जीव शरीर से निकल कर उनके पास प्रस्थान कर जायेगा। हे संत-सहेली ! तुम मेरी विपत्ति को सुनो तो सही। मुझे प्रभु बिना किंचित् भी सुख नहीं मिलता। जैसे जल से अलग होने पर मच्छी का शरीर तड़फता है, वैसे ही प्रभु के बिना मेरा समय विरह-

वज्राघात दु:ख से तड़फते हुये ही जाता है। मेरे हृदय में प्रभु की ऐसी प्रीति लगी है, जैसे चातक को स्वाति बिन्दु के प्रेम की लग्न लगती है, वह पीव २ बोलता रहता है, वैसे ही मेरा मन रात्रि-दिन पीव २ पुकारता रहता है। कोई आकर भविष्य में प्रभु के आने के निश्चित समय की बात मुझे बतावे तो मेरा मन धैर्य रख सकता है। कोई प्रभु को लाकर मुझ से मिला दे और प्रभुजी मुझे प्रति क्षण अपना स्वरूप दिखाते रहें, तब ही मेरा मन परमानन्द प्राप्त करेगा।

१४८-गुजराती भाषा। पंजाबी त्रिताल।

अमे[१] विरहणिया राम तुम्हारड़िया।
तुम बिन नाथ अनाथ, कांइ[२] बिसारड़िया॥टेक॥
अपने अंग अनल परजाले, नाथ निकट नहिं आवे रे।
दर्शन कारण विरहनि व्याकुल, और न कोई भावे रे॥ १॥
आप अपरछन[३] अमने[४] देखे, आपणपो न दिखाड़े रे।
प्राणी पिंजर लेइ रह्यो रे, आड़ा अंतर पाड़े रे॥ २॥
देव देव कर दर्शन माँगे, अन्तरजामी आपे रे।
दादू विरहणि वन वन ढूंढे, यह दुख कांइ न कापे[५] रे॥ ३॥

हे राम! हम[१] आपकी विरहनी हैं और नाथ! आपके बिना हम अनाथ हो रही हैं, आप हमें क्यों[२] भूल गये हैं? स्वामी हमारे पास नहीं आते, इससे विरहाग्नि मेरे अंगों को विशेष रूप से जला रही है। प्रभु दर्शन के लिये मैं वियोगिनी व्याकुल हूँ अन्य कोई भी मुझे अच्छा नहीं लगता, प्रभु स्वयं तो छिपे[३] हुये हैं, हमको[४] देखते हैं और अपना स्वरूप हमको नहीं दिखाते हैं। मैं प्राणी शरीर पिंजर को इसलिये धारण किये हूँ कि वे दर्शन देंगे किन्तु आप तो उलटा दूर रहना रूप आड़ा पड़दा ही डाल रहे हैं, पास आते ही नहीं। भक्त जन जब दीजिये २ कह कर दर्शन मांगते हैं तब आप अन्तरयामी होने से उनकी प्रार्थना सुन कर दर्शन देते ही हैं, फिर मैं विरहनी आपको नाना साधन रूप वन २ में खोज रही हूँ, मुझे दर्शन देकर मेरा यह वियोगजन्य दु:ख क्यों नहीं काटते[५]?

१४९-विरह प्रश्न। राज विद्याधर ताल

पंथीड़ा बूझे विरहणी कहिनैं पीव की बात।
कब घर आवै कब मिलूं, जोऊं दिन अरु रात, पंथीड़ा॥टेक॥
कहां मेरा प्रीतम कहां बसै, कहां रहै कर बास।
कहँ ढूंढूं कहँ पाइये, कहां रहै किस पास, पंथीड़ा॥ १॥
कवन देश कहँ जाइये, कीजै कौन उपाइ।
कौण अंग कैसे रहै, कहा करै समझाइ, पंथीड़ा॥ २॥

परम सनेही प्राण का, सो कत देहु दिखाइ ।
जीवनि मेरे जीवकी, सो मुझ आण मिलाइ, पंथीड़ा ।। ३ ।।
नैन न आवै नींदड़ी, निश दिन तलफत जाइ ।
दादू आतुर विरहणी, क्यों कर रैन विहाइ, पंथीड़ा ।। ४ ।।

विरह-पूर्वक प्रश्न कर रहे हैं—हे संत-पथिक ! मैं विरहनी मेरे प्रियतम प्रभु की बात पूछ रही हूँ, आप बतायें—वे कब मेरे घर आयेंगे ? मैं उनसे कब मिल सकूंगी ? मैं दिन रात उनकी प्रतीक्षा कर रही हूँ। वे मेरे प्रियतम आज कहां हैं ? किसके ठहरे हुए हैं ? और सदा कहां निवास करते हैं ? मैं उनको कहां खोजूं, कहां मिलेंगे, वे कहां और किसके पास हैं ? वे किस देश में हैं ? मैं कहां जाऊं और उनसे मिलने के लिये क्या उपाय करूं ? उनका स्वरूप कैसा है ? वे कैसे रहते हैं ? और क्या करते हैं ? ये सब मुझे समझाइये। जो मेरे प्राणों के परम स्नेही हैं, वे प्रभु कहां हैं ? मुझे दिखाओ, वे ही मेरे जीव के जीवन स्वरूप हैं। उनको लाकर मुझे मिलाओ, उनके बिना मेरे नेत्रों में निद्रा भी नहीं आती, रात दिन तड़फते हुए व्यतीत होते हैं। मैं विरहनी उन प्रभु के बिना अति व्याकुल हूं, मेरी यह आयु रूप रात्रि कैसे व्यतीत होगी ?

१५०-समुच्चय उत्तर। राज विद्याधर ताल

पंथीड़ा पंथ पिछाणी रे पीव का, गहि विरहे की बाट ।
जीवत मृतक ह्वै चलै, लंघे औघट घाट, पंथीड़ा ।। टेक ।।
सद्गुरु शिर पर राखिये, निर्मल ज्ञान विचार ।
प्रेम भक्ति कर प्रीति सौं, सन्मुख सिरजनहार, पंथीड़ा ।। १ ।।
पर आतम सौं आतमा, ज्यों जल जलहि समाइ ।
मन हीं सौं मन लाइये, लै के मारग जाइ, पंथीड़ा ।। २ ।।
तालाबेली ऊपजै, आतुर पीड़ पुकार ।
सुमिर सनेही आपणा, निश दिन बारम्बार, पंथीड़ा ।। ३ ।।
देख देख पग राखिये, मारग खांडे धार ।
मनसा वाचा कर्मना, दादू लंघै पार, पंथीड़ा ।। ४ ।।

१४९ के सभी प्रश्नों का उत्तर इससे दे रहे हैं—हे साधक-पथिक ! प्रभु को प्राप्त करने का साधन-मार्ग सन्तों द्वारा पहचान और विरह का मार्ग पकड़ के आगे बढ़। जीवितावस्था में ही मृतक के समान निर्द्वन्द्व होकर चले, तब ही काम, क्रोधादिक रूप विकट घाटियों को लांघ सकता है। प्रीति-पूर्वक प्रेमाभक्ति द्वारा परमात्मा के सन्मुख रह अर्थात् भजन करता रह और सद्गुरु के उपदेश को शिरोधार्य मान कर, उनके संशय-विपर्य्य-मल से रहित ज्ञान का विचार करते हुये जैसे-जल में जल मिल जाता है वैसे ही आत्मा को परमात्मा में लीन कर। यद्यपि यह मार्ग कठिन है, तो भी जब प्रभु-प्राप्ति के लिए हृदय में व्याकुलता उत्पन्न हो, तब अति शीघ्रता से अपनी

व्यथा प्रभु को पुकार-पुकार कर सुनाते हुये अपने व्यष्टि मन को समष्टि मन में अर्थात् प्रभु के मन में लय करना चाहिए। इस प्रकार लय-योग के मार्ग द्वारा प्रभु-स्वरूप के पास पहुँच जाता है। उक्त प्रकार बारंबार रात्रि-दिन में अपने प्रियतम प्रभु का स्मरण कर और विचार नेत्रों द्वारा देख-देख कर इस मार्ग में पैर रख, उक्त मार्ग खांडे की धार के समान है। जैसे खांडे की धार पर चलना कठिन होता है, वैसे ही इसमें चलना कठिन है, किन्तु जो साधक मन-वचन-कर्म से सावधान रहता है, वह इस मार्ग के द्वारा संसार-सिन्धु को तैरते हुये पार जाकर परब्रह्म को प्राप्त होता है।

१५१-अनुक्रम से उत्तर। राजमृगांक ताल

साध कहैं उपदेश, विरहणी !
तन भूलै तब पाइये, निकट भया परदेश, विरहणी ॥ टेक ॥
तुम हीं मांहीं ते बसैं, तहां रहै कर बास ।
तहँ ढूंढ़े पिव पाइये, जीवन जिव के पास, विरहणी ॥ १ ॥
परम देश तहँ जाइये, आतम लीन उपाइ ।
एक अंग ऐसे रहै, ज्यों जल जलहि समाइ, विरहणी ॥ २ ॥
सदा संगाती आपणा, कबहूँ दूर न जाइ ।
प्राण सनेही पाइये, तन मन लेहु लगाइ, विरहणी ॥ ३ ॥
जागैं जगपति देखिये, प्रकट मिल है आइ ।
दादू सन्मुख ह्वै रहै, आनंद अंग न माइ, विरहणी ॥ ४ ॥

१४९ के प्रश्नों का अनुक्रम से उत्तर दे रहे हैं—संत कहते हैं, हे विरहनी ! जब शरीर का अध्यास भूलेगी, तब परदेश में भासने वाले प्रभु समीप में ही भासेंगे। वे तेरे में ही बसते हैं और शरीर में जहां अष्टदल-कमल है, वहां ही विशेष रूप से निवास करते हैं, वहां ध्यान द्वारा खोजने से वे प्रभु प्राप्त हो जाते हैं। वे जीवन स्वरूप प्रभु जीव के पास ही हैं। जहां समाधि रूप परम देश है, वहां ही जाओ और आत्मा को परब्रह्म में लीन करना रूप उपाय करो। उनका स्वरूप अद्वैत है और जैसे जल में मिलकर जल एक हो जाता है, वैसे ही वे संपूर्ण आत्माओं में समाये हुये हैं। वे अपने प्रभु सदा साथ ही रहते हैं, कभी भी दूर नहीं जाते। अपना तन-मन उन्हीं की सेवा और चिन्तन में लगाओगे, तब वे प्राणों के प्यारे प्राप्त होंगे। वे जगत्पति सदा जगते हुये तुम्हें देखते रहते हैं और उनके दर्शन योग्य तुम हो जाओगे, तब वे प्रकट रूप से भी तुम्हें आ मिलेंगे। फिर जब तुम उनके सन्मुख और वे तुम्हारे सन्मुख होकर स्थिर होंगे, उस समय इतना आनंद होगा कि तुम्हारे अन्त:करण में समा भी नहीं सकेगा।

१५२-विरह विनती। मकरन्द ताल

गोविन्दा, गाइबा दे रे, आडड़ी आन निवार, गोविन्दा गाइबा दे रे ।
अनुदिन[1] अंतर आनंद कीजै, भक्ति प्रेम रस सार रे ॥ टेक ॥

अनभै आतम अभै एक रस, निर्भय कांइ न कीजै रे।
अमी महारस अमृत आपै, अम्हे[२] रसिक रस पीजै रे॥ १ ॥
अविचल अमर अखै अविनाशी, ते रस कांइ न दीजे रे।
आतम राम अधार अम्हारो, जनम सुफल कर लीजे रे ॥ २ ॥
देव दयाल कृपाल दमोदर, प्रेम बिना क्यों रहिये रे।
दादू रँग भरि राम रमाड़ो[३], भक्त बछल तूं कहिये रे॥ ३ ॥

१५२-१५४ में विरह पूर्वकविनय कर रहे हैं—हे गोविन्द ! आपके भजन में विघ्न डालने वाले जो अन्यान्य प्रसंग हैं, उन्हें हटाइये और हमको आपके नाम तथा गुणगान करने दीजिये। प्रेमाभक्ति रूप सार-रस द्वारा हमारे हृदय में निरंतर[१] आनंद रहे, ऐसी कृपा कीजिये। अभय और एकरस आत्मा के अनुभव द्वारा हमें निर्भय क्यों नहीं करते ? यदि आप अमर भाव रूप महान् सुधा-रस दें तो हम[२] रसिक उस रस का पान करें। जो अचल, अमर, अक्षय और अविनाशी आपका स्वरूप रस है, वह आप क्यों नहीं देते ? आप आत्म-स्वरूप राम ही हमारे आधार हैं, हमारे जन्म को सफल करें। हे दयालो ! कृपालो ! दामोदर ! आप हमें अपना प्रेम-रस प्रदान करें। हम आपके प्रेम बिना कैसे सुखपूर्वक रह सकते हैं ? आप तो भक्त-वत्सल कहलाते हैं, अत: हमारा हृदय अपने प्रेम-रंग से भरकर हमें आनन्द प्रदान रूप खेल[३] खिलाइये।

नरेना के रघुनाथजी के मन्दिर में दादूजी विराजे, तब चित्रों द्वारा भजन में विघ्न होने से भजन-विघ्न निवृत्ति के लिए यह पद कहा था। प्रसंग कथा दृ.सु.सि. त. ७-३१७ में देखो।

१५३- (गुजराती) मकरन्द ताल

गोविन्दा, जोइबा देरे, जे बरजैं ते वारी रे, गोविन्दा जोइबा देरे।
आदि पुरुष तूं अछय अम्हारो, कंत तुम्हारी नारी रे ॥ टेक ॥
अंगैं संगैं रंगैं रमिये, देवा दूर न कीजै रे ।
रस मांहीं रस इम थई रहिये, ये सुख अमने दीजै रे ॥ १ ॥
सेजड़िये सुख रँग भर रमिये, प्रेम भक्ति रस लीजै रे ।
एकमेक रस केलि करंतां, अम्हे अबला इम जीजै रे ॥ २ ॥
सम्रथ स्वामी अंतरजामी, बार बार कांइ बाहे रे ।
आदैं अंतैं तेज तुम्हारो, दादू देखे गाये रे ॥ ३ ॥

हे गोविन्द ! आप अपने दर्शन करने दीजिये और जो आपके दर्शनों में विघ्न हैं, उनको दूर कीजिये। आप अक्षय आदि-पुरुष हमारे स्वामी हैं, मैं आपकी नारी हूं। हे देव ! आपके स्वरूप के साथ प्रेम-रंग द्वारा रमण करूं, ऐसी इच्छा है, आप मुझे अपने से दूर न करें। जैसे रस में रस मिल जाता है वैसे ही आपके स्वरूप में मिलकर रहूं, यह परमानन्द मुझे प्रदान करें। वृत्ति को प्रेम-रंग से भर कर हृदय-शय्या पर सुखपूर्वक आपसे रमण करते हुये प्रेमाभक्ति को ग्रहण कर सकूं और जल

में मच्छी के समान आपके स्वरूप में रहकर परमानन्द का उपभोग करते हुये रहूं। मैं अबला इस प्रकार ही जीवित रहूं, ऐसी कृपा करें। हे समर्थ स्वामिन् ! आप तो अन्तर्यामी हैं, फिर भी मुझे बारंबार क्यों बहका रहे हैं ? जो संसार के आदि से अन्त तक एक रस तेजोमय आपका शुद्ध स्वरूप है, उसी का साक्षात्कार करते हुए आपके नाम गुणों का गायन करता रहूं, ऐसी कृपा करें।

१५४-शूल ताल

तुम्ह सरसी[1] रंग रमाड़[2]।
आप अपरछन[3] थई[4] करी, मने मा भरमाड़[5] ॥ टेक ॥
मन भोलवे[6] कांइ थई वेगलो[7], आपणपो देखाड़ ।
केम जीवूं हूं एकली, बिरहणिया नार ॥ १ ॥
मने बाहिश[8] मा अलगो थई, आत्मा उद्धार।
दादू सूं रमिये सदा, येणे[9] परैं तार ॥ २ ॥

हे स्वामिन् ! जैसे[1] आप अखंड हैं, वैसे ही अखंड प्रेम-रंग द्वारा मुझे आनंद[2] दीजिये। आप गुप्त[3] होकर[4] मुझे भ्रम[5] में न डालें। मेरे मन को भुलावे[6] में डालकर मुझसे अलग[7] रहने से आपको क्या लाभ होगा ? अत: आप अपना स्वरूप दिखाइये। मैं विरहनी आपके बिना अकेली कैसे जीवित रह सकूंगी ? मुझे छोड़[8] कर अलग मत रहो, मेरी बुद्धि को वियोग जन्य दु:ख से बचाओ और मेरे साथ सदा खेलते हुये मुझको इस[9] संसार से तार कर पार करो।

१५५-काल चेतावनी। तुरंग लील ताल

जाग रे किस नींदड़ी सूता।
रैण बिहाई सब गई, दिन आइ पहूंता ॥ टेक ॥
सो क्यों सोवै नींदड़ी, जिस मरणा होवै रे ।
जौरा[1] वैरी जागणा, जीव तूं क्यों सोवे रे ॥ १ ॥
जाके शिर पर जम खड़ा, शर सांधे मारै रे ।
सो क्यों सोवे नींदड़ी, कहि क्यों न पुकारै रे ॥ २ ॥
दिन प्रति निश काल झंपै, जीव न जागै रे ।
दादू सूता नींदड़ी, उस अंग न लागै रे ॥ ३ ॥

१५५-१५७ में काल से सावधान कर रहे हैं—अरे प्राणी ! किस लिये मोह-निद्रा में सो रहा है ? तेरी आयु-रात्रि तो सब व्यतीत हो गई है, अब तो मृत्यु का दिन भी समीप आ पहुँचा है। जिसको मरणा स्मरण होगा, वह कैसे निद्रा में सोयगा ? हे जीव ! तेरा शत्रु बलवान्[1] काल तो सदा जगते हुये प्राणियों का नाश कर रहा है फिर तू कैसे सो रहा है ? जिसके शिर पर यम खड़ा हो और क्षण-घटिकादिक काल रूप संधान करके मार रहा हो, वह नींद में कैसे सोयेगा ? और 'रक्षा करो' ऐसा कह कर क्यों नहीं पुकार करेगा ? प्रतिदिन प्रतिरात्रि काल श्वासों को क्षीण करना रूप

झपट्टा मार रहा है फिर भी जीव नहीं जागता, मोह-निद्रा में ही सोता है, जागकर उस प्रभु के स्वरूप में नहीं लगता।

१५६-तुरंग लील ताल

जाग रे सब रैण बिहाणी, जाइ जन्म अंजली को पाणी॥ टेक॥
घड़ी घड़ी घड़ियाल बजावै, जे दिन जाइ सो, बहुरि न आवै ॥ १ ॥
सूरज चंद कहैं समझाइ, दिन दिन आयु घटंती जाइ॥ २ ॥
सरवर पाणी तरवर छाया, निश दिन काल गरासै काया॥ ३ ॥
हंस बटाऊ प्राण पयाना, दादू आतम राम न जाना॥ ४ ॥

अरे प्राणी ! मोह निद्रा से शीघ्र जाग, तेरी आयु-रात्रि क्षीण हो रही है, उसके साथ-साथ तेरा यह नर जन्म अंजलि के जल के समान क्षीण हो रहा है। घड़ी-घड़ी में पहरेदार घड़ियाल बजाकर सूचित कर रहा है—जैसे गई हुई घड़ी फिर नहीं आती, वैसे ही जो दिन चला जाता है, वह फिर नहीं आता। सूर्य-चन्द्र भी अपने आवागमन से यही समझा रहे हैं-प्रतिक्षण प्राणी की आयु घटती जा रही है। जैसे सरोवर का जल और वृक्ष की छाया प्रतिक्षण घटती जाती है, वैसे ही रात्रि-दिन के प्रतिक्षण में शरीर की आयु को काल क्षीण कर रहा है। इस प्रकार आत्म-स्वरूप राम के बिना जाने ही इस पथिक जीव रूप हंस के प्राण प्रस्थान कर जाते हैं।

१५७-चौताल

आदि काल अंत काल, मध्य काल भाई।
जन्म काल जरा काल, काल संग सदाई ॥ टेक॥
जागत काल सोवत काल, काल झंपै आई।
काल चलत काल फिरत, कबहूँ ले जाई ॥ १ ॥
आवत काल जात काल, काल कठिन खाई ।
लेत काल देत काल, काल ग्रसै धाई ॥ २ ॥
कहत काल सुनत काल, करत काल सगाई ।
काम काल क्रोध काल, काल जाल छाई ॥ ३ ॥
काल आगै काल पीछै, काल संग समाई ।
काल रहित राम गहित, दादू ल्यौ लाई ॥ ४ ॥

हे भाई ! आदि की शिशु अवस्था से अन्त की वृद्धावस्था तक तथा मध्य की युवावस्था में भी अपना प्रमाद रूप काल साथ ही रहता है। इस प्रकार जन्म से जरावस्था तक काल सदा ही संग रहता है। जागते, सोते, चलते, फिरते, कभी भी झपट्टा मार कर ले जाता है। आते-जाते, लेते-देते यह कठोर काल खा जाता है। कहते-सुनते, संबंध करते भी काल दौड़ कर ग्रस लेता है। काल ही काम-क्रोधादि रूप से जाल के समान सर्वत्र व्याप्त हो रहा है और आगे पीछे संग में रहता

है तथा अन्त:करण में समाया हुआ रहता है। अत: काल से बचने के लिए काल रहित राम की शरण ग्रहण करके उसी में अपनी वृत्ति लगाओ।

१५८-हितोपदेश। त्रिताल

तो को केता कह्या मन मेरे।
क्षण इक मांहीं जाइ अनेरे[१], प्राण उधारी लेरे॥ टेक॥
आगै है मन खरी बिमासणि[२], लेखा माँगै देरे।
काहे सोवै नींद भरी रे, कृत विचारै तेरे॥ १॥
ते पर[३] कीजै मन विचारै, राखै चरणहु नेरे।
रती एक जीवन मोहि न सूझै, दादू चेत सवेरे॥ २॥

१५८-१६० में मन को हितकर उपदेश कर रहे हैं— हे मन! तुझको बहुत ही हित का उपदेश किया है किन्तु तू उस पर ध्यान नहीं देता। एक क्षण में ये प्राण निकल कर दूर[१] अन्य योनि में चले जायेंगे, अतः तू भगवद्-भजन करके अपने प्राणों का उद्धार कर ले। अरे यमराज के आगे तेरी सच्ची परीक्षा[२] होने वाली है, तुझसे तेरे कर्मों का हिसाब माँगा जायगा, अत: अभी से तू ऐसा व्यवहार कर, जिससे सुखपूर्वक हिसाब दे सके। तू मोह-निद्रा में इच्छा भर के क्यों सो रहा है? अब भी तेरे किये हुये कर्मों का विचार करेंगे। जो बुरे कर्म हैं, उनको विचार पूर्वक दूर[३] कर, तब ही भगवान् तुझे अपने चरणों के पास रख सकेंगे। इस मायिक प्रपंच रात्रि में तो एक रत्ती भर भी अच्छा जीवन व्यतीत हो, ऐसा मुझे नहीं दीखता। अत: शीघ्र ही सावधान हो।

१५९-(गुजराती) त्रिताल

मन वाहला रे, कछू विचारी खेल, पड़शे रे गढ़ भेल॥ टेक॥
बहु भांतैं दुख देइगा वाहला, ज्यों तिल माँ लीजे तेल।
करणी ताहरी सोधसी, होशी रे शिर हेल[१]॥ १॥
अब हीं तैं कर लीजिये रे वाहला, सांईं सेती मेल।
दादू संग न छाड़ी पीव का, पाई है गुण की बेल॥ २॥

अरे प्रिय मन! कुछ विचार करके कर्त्तव्य कर्म करना रूप खेल खेल। बिना विचार सकाम निषिद्ध कर्म तथा बुरे संकल्प करने से तेरे काया किले में कठिन दु:ख आ पड़ेगा और विचारहीन तेरा अन्त:करण कामादि द्वारा नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा। आगे तेरे किये हुये कर्मों की खोज की जायगी और बुरे कर्म मिलने से तेरे शिर पर दंड का बोझ[१] पड़ेगा तथा जिस प्रकार तिलों को घाणी में पेल कर तेल निकालते हैं, वैसे ही तुझे बहुत प्रकार के दु:ख देंगे। अत: हे प्रिय! तुझे यह मानव-काया गुणों की बेलि रूप प्राप्त हुई है, इसमें अभी से दु:ख-भंजन प्रभु से प्रेम कर ले और उनका संग मत छोड़।

१६०-उदीक्षण ताल

मन बावरे हो, अनत जनि जाइ।
तो तूं जीवै अमी रस पीवै, अमर फल काहे न खाइ ॥ टेक ॥
रहु चरण शरण सुख पावै, देखहु नैन अघाइ[१] ।
भाग तेरे पीव नेरे, थीर थान बताइ ॥ १ ॥
संग तेरे रहै घेरे, सहजैं अंग समाइ।
शरीर मांहीं शोध सांईं, अनहद ध्यान लगाइ ॥ २ ॥
पीव पास आवै सुख पावै, तन की तपत बुझाइ।
दादू रे जहँ नाद उपजै, पीव पास दिखाइ ॥ ३ ॥

हे पागल मन ! प्रभु चिन्तन को छोड़कर अन्यत्र क्यों जाता है ? भक्ति रूप अमृत रस का पान करेगा, तब ही तू परमार्थ दृष्टि से जीवित रह सकेगा। तू भजन रूप अमृत फल क्यों नहीं खाता ? तू प्रभु के चरणों की शरण रह और तृप्त[१] होकर ज्ञान नेत्रों से प्रभु को देख, तो तुझे परमानन्द प्राप्त होगा। तेरे अच्छे भाग्य से प्रभु भी तेरे पास ही हैं। संत जन शरीर के भीतर ही अष्टदल कमल पर प्रभु का विशेष रूप से स्थिर स्थान बताते हैं। वे प्रभु तेरे शरीर को घेर कर तेरे साथ ही हैं और निर्द्वन्द्व तथा व्यापक रूप से तेरे शरीर में ही समाये हुये हैं। तू अनाहत ध्वनि के द्वारा उन्हें खोज, वे तेरे शरीर में ही हैं। यदि अनाहत ध्यान द्वारा तू प्रभु के पास जायगा, तो अपने तन की त्रिताप को शांत करके परम सुख प्राप्त करेगा। जहां नाद की उत्पत्ति होती है, उसके पास ही प्रभु का साक्षात्कार होता है।

१६१-भ्रम विध्वंसन। उदीक्षण ताल

निरंजन अंजन कीन्हा रे, सब आत्म लीन्हा रे ॥ टेक॥
अंजन माया अंजन काया, अंजन छाया रे।
अंजन राते अंजन माते, अंजन पाया रे ॥ १ ॥
अंजन मेरा अंजन तेरा, अंजन मेला रे।
अंजन लीया अंजन दीया, अंजन खेला रे ॥ २ ॥
अंजन देवा अंजन सेवा, अंजन पूजा रे।
अंजन ज्ञाना अंजन ध्याना, अंजन दूजा रे ॥ ३ ॥
अंजन वक्ता अंजन श्रोता, अंजन भावै रे।
अंजन राम निरंजन कीन्हा, दादू गावै रे ॥ ४ ॥

भ्रम को दूर कर रहे हैं—माया रूप अंजन को ही निरंजन मान लिया है और सब प्राणी उसी में लीन हो रहे हैं। यह धन आदि माया, शरीर और इनकी आसक्ति रूप छाया, माया रूप अंजन के ही कार्य हैं। सांसारिक प्राणी माया में ही अनुरक्त होकर मतवाले हो रहे हैं और ऐसे प्राणियों को

माया ही मिलती है। मायिक पदार्थों को ही 'यह मेरा है यह तेरा है' ऐसा कहते हैं तथा उन्हीं के लिए आपस में मिलते हैं। मायिक पदार्थ ही लिये-दिये जाते हैं तथा सभी लोक माया के ही खेल खेलते हैं। मायिक वस्तुओं के ही देवता बना देते हैं और मायिक पदार्थों से ही उनकी सेवा-पूजा करते हैं। माया से सम्बन्ध रखने वाला ज्ञान ही कथन करते हैं, उसका ही ध्यान करते हैं। निरंजन से भिन्न जो भी है, वह माया ही है। वक्ता भी माया सम्बन्धी प्रवचन करता है और सुनने वाले भी मायिक प्रवृत्ति की ही बातें सुनते हैं क्योंकि उनको माया ही प्रिय लगती है। इस प्रकार अंजन माया को ही निरंजन राम मानकर उसका यश गाते हैं।

१६२-निज वचन महिमा। चौताल ध्रुपद में

ऐन बैन चैन होवै, सुनतां सुख लागै रे।
तीनों गुण त्रिविधि तिमिर, भरम करम भागै रे ॥ टेक॥
होइ प्रकाश अति उजास, परम तत्त्व सूझै ।
परम सार निर्विकार, विरला कोई बूझै ॥ १ ॥
परम थान सुख निधान, परम शून्य खेलै ।
सहज भाइ सुख समाइ, जीव ब्रह्म मेलै ॥ २ ॥
अगम निगम होइ सुगम, दुस्तर तिर आवै।
आदि पुरुष दर्श परस, दादू सो पावै ॥ ३ ॥

भगवद्-वचन वा संत-वचन की महिमा बता रहे हैं—भगवद्-वचन वा संत-वचन यथार्थ आनंद के प्रदाता होते हैं। सुनते ही उनसे सुख का अनुभव होने लगता है। सत्त्व, रज, तम, ये तीनों गुण और मूला, तूला, लेशा ये अविद्या रूप तीनों अन्धकार, भ्रम और सकाम कर्म करने की इच्छा हृदय से भाग जाती है। हृदय में ज्ञान का प्रकाश प्रकट होकर अत्यंत उजाला हो जाता है, तब अपना स्वरूप परम तत्त्व दीखने लगता है। वह सबसे उत्कृष्ट, संसार का सार, निर्विकार है, कोई विरला ज्ञानी ही उसे समझ पाता है और ऐसा कहते हुये कि उसका स्थान अति उत्कृष्ट है, वह परम-सुख का निधान है, उसी परम निर्विकार ब्रह्म में अभेद रूप से आनंद लेना रूप खेल खेलता है। जीव ब्रह्म का अभेद ज्ञान होने पर अनायास ही परम-सुख में समाया रहता है। जो वेद से भी अगम स्थिति है, वह सुगम हो जाती है। दुस्तर संसार को तैर कर अद्वैत भाव में आ जाता है। जो भी भगवद्-वचन वा संत वचनों को विचारता है, वह आदि पुरुष ब्रह्म का साक्षात्कार करके उसी में लय हो जाता है।

१६३-साधु सांईं हेरे। त्रिताल।

कोई राम का राता रे, कोई प्रेम का माता रे ॥ टेक ॥
कोई मन को मारै रे, कोई तन को तारै रे, कोई आप उबारै रे ॥ १ ॥
कोई जोग जुगंता रे, कोई मोक्ष मुकंता रे, कोई है भगवंता रे ॥ २ ॥

कोई सद्गति सारा रे, कोई तारणहारा रे, कोई पीव का प्यारा रे ॥ ३ ॥
कोई पार को पाया रे, कोई मिल कर आया रे, कोई मन का भाया रे ॥ ४ ॥
कोई है बड़भागी रे, कोई सेज सुहागी रे, कोई है अनुरागी रे ॥ ५ ॥
कोई सब सुख दाता रे, कोई रूप विधाता रे, कोई अमृत खाता रे ॥ ६ ॥
कोई नूर पिछाणैं रे, कोई तेज को जाणैं रे, कोई ज्योति बखाणैं रे ॥ ७ ॥
कोई साहिब जैसा रे, कोई सांईं तैसा रे, कोई दादू ऐसा रे ॥ ८ ॥

संत-जन नाना प्रकार से प्रभु की खोज करते हैं, कह रहे हैं—कोई राम में अनुरक्त है, कोई राम-प्रेम में मस्त है, कोई साधन द्वारा मन को वश करने में लगा है। कोई संयम द्वारा शरीर को बुरी प्रवृत्तियों से बचा रहा है। कोई अपने को प्रपंच से बचाने में लगा है। कोई योग-युक्तियों में लगा है। कोई अपने को मुक्त समझ कर अन्यों की मुक्ति करने में लगा है। कोई कहता है, एक भगवान् ही सत्य है। कोई सद्गति को ही सार समझता है। कोई पारमार्थिक उपदेश द्वारा अन्यों का उद्धार कर रहा है। कोई प्रभु का प्रेमी बन रहा है। कोई ज्ञान द्वारा संसार के पार को देख रहा है। कोई समाधि में प्रभु से मिलकर आया हुआ है। कोई मन को प्रिय लगे, वैसा ही साधन करता है। कोई भाग्यशाली है, कोई हृदय-शय्या पर प्रभु का सुहाग-सुख ले रहा है। कोई अनुरागी बन रहा है। कोई समता द्वारा सबको सुख दे रहा है। कोई विधाता के स्वरूप में रत है। कोई ज्ञानामृत खाता है अर्थात् ज्ञान का विचार करता है। कोई ईश्वर स्वरूप को पहचानने में लगा है, कोई प्रभु के स्वरूप को तेजोमय जानकर भजता है। कोई प्रभु को ज्योति स्वरूप कहता है। कोई अपने को साहिब जैसा तथा ईश्वर जैसा मानता है, कोई मैं ऐसा हूँ इत्यादि साधन व्यवहार के द्वारा संतजन प्रभु को खोज रहे हैं।

१६४-साधु लक्षण । दीपचन्दी

सद्गति साधवा रे, सन्मुख सिरजनहार।
भवजल आप तिरैं ते तारैं, प्राण उधारनहार ॥ टेक ॥
पूरण ब्रह्म राम रँग राते, निर्मल नाम अधार।
सुख संतोष सदा सत संजम, मति गति वार न पार ॥ १ ॥
जुग जुग राते जुग जुग माते, जुग जुग संगति सार।
जुग जुग मेला जुग जुग जीवन, जुग जुग ज्ञान विचार ॥ २ ॥
सकल शिरोमणि सब सुख दाता, दुर्लभ इहिं संसार।
दादू हंस रहैं सुख सागर, आये पर उपकार ॥ ३ ॥

संत लक्षण बता रहे हैं—संतों के मन की गति सत्य ब्रह्म में ही होती है, वे भजन द्वारा परमात्मा के सन्मुख रहते हैं। संसार-सिन्धु के विषय-जल से स्वयं तैरते हैं और अन्यों को तारते हैं। वे सब प्रकार सांसारिक प्राणियों के उद्धार करने वाले होते हैं। पूर्ण ब्रह्म के भक्ति-रंग में अनुरक्त

रहते हुये उनके निर्मल नाम का ही आधार रखते हैं। उन्हें संतोष और संयम द्वारा सदा सुख रहता है, उनकी बुद्धि अपार होती है। वे सदा प्रभु-प्रेम में अनुरक्त रहते हुये मस्त रहते हैं। उनकी सदा संगति करने से विश्व के सार ब्रह्म का ज्ञान होता है। वे सदा प्रभु से मिले रह कर सबसे प्रेम करते हुये सदा सबके जीवन रूप बने रहते हैं। सबको सुख देने वाले, सब प्राणियों के शिरोमणि सन्त, इस संसार में सहज नहीं मिलते, वे सन्त हंस तो ब्रह्म रूप सुख-सागर में ही रहते हैं, संसार में तो परोपकारार्थ ही आये हैं।

१६५-(गुजराती) परिचय उत्साह मंगल। दीपचन्दी

अम्ह[1] घर पाहुणां ये, आव्या[2] आतम राम ॥टेक॥
चहुं दिशि मँगलाचार, आनन्द अति घणां ये।
वरत्या जै जैकार, विरुद[3] वधावणा ये॥ १ ॥
कनक कलश रस मांहिं, सखी भर ल्यावज्यो ये।
आनन्द अंग न माइ, अम्हारै आवज्यो ये॥ २ ॥
भावै भक्ति अपार, सेवा कीजिये ये।
सन्मुख सिरजनहार, सदा सुख लीजिये ये॥ ३ ॥
धन्य अम्हारा भाग, आव्या अम्ह भणी[4] ये।
दादू सेज सुहाग, तूं त्रिभुवन धणी ये॥ ४ ॥

१६५-६६में साक्षात्कार होने पर मंगल उत्साह दिखा रहे हैं—हे सन्त-सखि ! हमारे[1] अन्त:करण रूप घर में आत्म-स्वरूप अतिथि आये[2] हैं, अत: अन्त:करण की चारों वृत्ति रूप दिशाओं में मंगलाचार, अत्यधिक आनन्द और जय-जय शब्द हो रहा है, यश[3] वृद्धि के गीत गाये जा रहे हैं। हे संत-सखि ! अपने शुद्ध मन-कलश में प्रभु-प्रेम रूप रस भर कर लाना और हमारे आकर प्रेम-रस पिलाना। उस समय का आनन्द अन्त:करण में न समायेगा। भाव-भक्ति द्वारा उस अपार परमात्मा के सन्मुख होकर, उनकी सेवा करते हुये नित्य सुख प्राप्त करना। हे त्रिभुवन के स्वामिन् ! आप हमारे आकर हृदय-शय्या पर हमें सुहाग सुख दे रहे हैं, यह हमारा धन्य भाग्य है, यह मैं सत्य ही कहता[4] हूँ।

१६६-फरोदस्त ताल

गावहु मँगलाचार, आज वधावणां ये।
सुपनों देख्यो साँच, पीव घर आवणां ये ॥टेक॥
भाव कलश जल प्रेम का, सब सखियन के शीश।
गावत चली वधावणां, जै जै जै जगदीश ॥ १ ॥
पदम कोटि रवि झिलमिलै, अंग अंग तेज अनंत।
विकस वदन विरहनि मिली, घर आये हरि कंत ॥ २ ॥

सुन्दरि सुरति श्रृंगार कर, सन्मुख परसे पीव ।
मो मंदिर मोहन आविया, वारूं तन मन जीव ॥ ३ ॥
कवल निरन्तर नरहरी, प्रकट भये भगवंत ।
जहँ विरहनि गुण वीनवै[1], खेल फाग बसंत ॥ ४ ॥
वर आयौ विरहनि मिली, अरस परस सब अंग ।
दादू सुन्दरि सुख भया, जुग जुग यहु रस रंग ॥ ५ ॥

इति राग मारू (मारवा) समाप्त : ॥ ७ ॥ पद २४ ॥

हे सखियो ! आज बधाई के मंगल गीत गाओ । कारण, जो पहले हमें स्वप्न हुआ था कि प्रभु घर आयेंगे, वह आज प्रत्यक्ष रूप से सत्य देख लिया है, प्रभु हृदय-मंदिर में पधार गये हैं । इन्द्रियाँ तथा वृत्ति रूप सभी सखियों के गति रूप शिर पर प्रेम-जल से परिपूर्ण भाव-कलश रखे हुये हैं । सब प्रभु-प्रेम से युक्त होकर ही अपने कार्य करती हैं और वे सभी, हे जगदीश ! आपकी मन, वचन, कर्म से जय हो, इस प्रकार वृद्धि के गीत गाती हुई प्रभु के सन्मुख चली हैं अर्थात् सभी इन्द्रियां और बुद्धि आदि वृत्ति भगवदाकार हो गई हैं । उन प्रभु का तेजोमय स्वरूप कोटि पद्म सूर्यों के समान झिलमिलाता हुआ भास रहा है, उनके प्रत्येक अंग पर अनन्त तेज शोभित है । ऐसे हरि जब हृदय रूप घर में आये, तब विरहनी प्रसन्न-मुख होकर अपने स्वामी से मिली और वृत्ति-सुन्दरी साधन-श्रृंगार करके प्रभु के सन्मुख ही स्वरूपाकार होना रूप स्पर्श करती है तथा कहती है-मेरे हृदय-मंदिर में विश्व-विमोहन पधारे हैं । मैं उन पर अपना तन, मन और जीवन निछावर करती हूं । हमारे भगवान् नरहरि अष्ट दल-कमल पर जहां निरन्तर दर्शन दे रहे हैं, वहां ही विरहनी वृत्ति उनके गुण-कथन रूप वसंतोत्सव फाग का खेल खेलते हुये निरन्तर संयोगार्थ विनय[1] करती है । इस प्रकार ईश-वर हृदय में आया, तब वृत्ति-विरहनी उससे मिलकर उसके स्वरूप में अरस-परस रूप से एक हो गई है । अब वृत्ति-सुन्दरी के यह अभेद-रस का रंग लग जाने से सदा के लिये परमानन्द हो गया है ।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग मारू (मारवा) समाप्त : ॥ ७ ॥

अथ राग रामकली ८

(गायन समय प्रभात ३ से ६)

१६७-सद्गुरु शब्द महिमा । दादरा

शब्द समाना जो रहै, गुरु वाइक[1] बीधा ।
उनहीं लागा एक सौं, सोई जन सीधा ॥ टेक ॥
ऐसी लागी मर्म की, तन मन सब भूला ।
जीवत मृतक ह्वै रहै, गह आतम मूला ॥ १ ॥

सुन्दरि सुरति श्रृंगार कर, सन्मुख परसे पीव ।
मो मंदिर मोहन आविया, वारूं तन मन जीव ॥ ३ ॥
कवल निरन्तर नरहरी, प्रकट भये भगवंत ।
जहँ विरहनि गुण वीनवै[1], खेल फाग बसंत ॥ ४ ॥
वर आयौ विरहनि मिली, अरस परस सब अंग ।
दादू सुन्दरि सुख भया, जुग जुग यहु रस रंग ॥ ५ ॥

इति राग मारू (मारवा) समाप्त : ॥ ७ ॥ पद २४ ॥

हे सखियो ! आज बधाई के मंगल गीत गाओ । कारण, जो पहले हमें स्वप्न हुआ था कि प्रभु घर आयेंगे, वह आज प्रत्यक्ष रूप से सत्य देख लिया है, प्रभु हृदय-मंदिर में पधार गये हैं । इन्द्रियाँ तथा वृत्ति रूप सभी सखियों के गति रूप शिर पर प्रेम-जल से परिपूर्ण भाव-कलश रखे हुये हैं । सब प्रभु-प्रेम से युक्त होकर ही अपने कार्य करती हैं और वे सभी, हे जगदीश ! आपकी मन, वचन, कर्म से जय हो, इस प्रकार वृद्धि के गीत गाती हुई प्रभु के सन्मुख चली हैं अर्थात् सभी इन्द्रियां और बुद्धि आदि वृत्ति भगवदाकार हो गई हैं । उन प्रभु का तेजोमय स्वरूप कोटि पद्म सूर्यों के समान झिलमिलाता हुआ भास रहा है, उनके प्रत्येक अंग पर अनन्त तेज शोभित है । ऐसे हरि जब हृदय रूप घर में आये, तब विरहनी प्रसन्न-मुख होकर अपने स्वामी से मिली और वृत्ति-सुन्दरी साधन-श्रृंगार करके प्रभु के सन्मुख ही स्वरूपाकार होना रूप स्पर्श करती है तथा कहती है- मेरे हृदय-मंदिर में विश्व-विमोहन पधारे हैं । मैं उन पर अपना तन, मन और जीवन निछावर करती हूं । हमारे भगवान् नरहरि अष्ट दल-कमल पर जहां निरन्तर दर्शन दे रहे हैं, वहां ही विरहनी वृत्ति उनके गुण-कथन रूप वसंतोत्सव फाग का खेल खेलते हुये निरन्तर संयोगार्थ विनय[1] करती है । इस प्रकार ईश-वर हृदय में आया, तब वृत्ति-विरहनी उससे मिलकर उसके स्वरूप में अरस-परस रूप से एक हो गई है । अब वृत्ति-सुन्दरी के यह अभेद-रस का रंग लग जाने से सदा के लिये परमानन्द हो गया है ।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग मारू (मारवा) समाप्त : ॥ ७ ॥

अथ राग रामकली ८

(गायन समय प्रभात ३ से ६)

१६७-सद्गुरु शब्द महिमा । दादरा

शब्द समाना जो रहै, गुरु वाइक[1] बीधा ।
उनहीं लागा एक सौं, सोई जन सीधा ॥ टेक॥
ऐसी लागी मर्म की, तन मन सब भूला ।
जीवत मृतक ह्वै रहै, गह आतम मूला ॥ १ ॥

चेतन चितहिं न बीसरे, महा रस मीठा ।
शब्द निरंजन गह रह्या, उन साहिब दीठा ॥ २ ॥
एक शब्द जन उद्धरे, सुनि सहजैं जागे ।
अंतर राते एक सौं, शर सन्मुख लागे ॥ ३ ॥
शब्द समाना सन्मुख रहै, पर आतम आगे ।
दादू सीझै देखतां, अविनाशी लागे ॥ ४ ॥

सद्‌गुरु शब्दों को श्रद्धा सहित सुनने से ही मुक्ति होती है, यह कहते हैं—जो सद्‌गुरु शब्दों में मन लगा कर रहा है, उसका हृदय सद्‌गुरु शब्दों[1] से वेधा गया है और जो उन शब्दों के द्वारा एक परमात्मा के भजन में लगता है, वही जन अहंकारादि वक्रता को त्याग कर सरल स्वभाव बनता है । उसके हृदय पर शब्द की ऐसी मर्म की चोट लगती है-वह अपने तन मनादि सभी को भूल जाता है और अपने आत्मा के मूल परब्रह्म को अभेद रूप से ग्रहण कर, जीवन्मुक्त होकर रहता है। अति मधुर चेतन रूप महा-रस को चित्त से कभी भी नहीं भूलता। इस प्रकार जिसने निरंजन स्वरूप के बोधक सद्‌गुरु शब्दों को ग्रहण किया है, उसने परब्रह्म का साक्षात्कार किया है। सद्‌गुरु के एक शब्द से जिज्ञासु जन का उद्धार हो जाता है। जिनने एकाग्र मन से सद्‌गुरु शब्द सुने हैं, वे अनायास ही अज्ञान निद्रा से जगे हैं। जब भी जो श्रद्धा सहित गुरु के सन्मुख बैठ कर सुनते हैं, तब कान के द्वारा गुरु शब्द-बाण जाकर हृदय में लगता है और वे निरन्तर अपनी वृत्ति को भीतर एक परब्रह्म में ही अनुरक्त करके रहते हैं। जो सद्‌गुरु शब्दों में लग कर परमात्मा के सन्मुख रहते हैं, वे संसार दशा से आगे बढ़कर वर्तमान शरीर में देखते-देखते ही अविनाशी ब्रह्म में अभेद रूप से संलग्न हो कर मुक्त हो गये हैं।

१६८-नाम महिला । त्रिताल

अहो नर, नीका है हरि नाम,
दूजा नहीं नाम बिन नीका, कहले केवल राम ॥टेक॥
निर्मल सदा एक अविनाशी, अजर अकल रस ऐसा ।
दृढ़ गह राख मूल मन मांहीं, निरख देख निज कैसा ॥ १ ॥
यहु रस मीठा महा अमीरस, अमर अनुपम पीवै ।
राता रहै प्रेम सौं माता, ऐसे जुग जुग जीवै ॥ २ ॥
दूजा नहीं और को ऐसा, गुरु अंजन कर सूझै ।
दादू मोटे भाग हमारे, दास विवेकी बूझै ॥ ३ ॥

नाम महिमा कह रहे हैं—हे नर ! कल्याण के साधनों में हरि-नाम ही श्रेष्ठ है, जिसमें सब का सम अधिकार हो, ऐसे नाम को छोड़कर अन्य कोई भी साधन श्रेष्ठ नहीं है। अत: तू एक मात्र राम-नाम का ही चिन्तन कर। जो सदा निर्मल, अद्वैत, अविनाशी, अजर, कला विभाग से रहित,

ऐसा ब्रह्म रस है, वही तेरा मूल है, उसी का नाम मन में दृढ़ता से रख और विचार द्वारा उसका निरीक्षण करते हुये अपने स्वरूप को भी देख कैसा है ? यह नाम चिन्तन रूप अमृत-रस महान् मधुर है, जो इसका पान करता है और प्रेम से अनुरक्त रहते हुये मस्त रहता है, वह अमर अनुपम ब्रह्मरूप होकर प्रति युग में ऐसे जीवित रहता है कि उसके समान कोई भी नहीं रहता। नाम के समान श्रेष्ठ और सुगम अन्य साधन कोई भी नहीं है, किन्तु नाम की यथार्थ महिमा गुरु ज्ञानांजन को वृत्ति-नेत्र में आंजने से ही दीखती है, विवेकी भक्त ही उसे समझ पाता है। हरि-गुरु कृपा से ही हमारी समझ में आया है, अत: हमारा भाग्य महान् है।

१६९-अत्यन्त विरह। त्रिताल

कब आवैगा, कब आवैगा ?
पीव प्रकट आप दिखावैगा, मिठड़ा मुझको भावैगा ॥ टेक ॥
कंठड़े लाग रहूं रे, नैनों में बाहि धरूं रे, पिव तुझ बिन झूर मरूं रे ॥ १ ॥
पावों मस्तक मेरा रे, तन मन पिवजी तेरा रे, हौं राखूं नैनहूं नेरा रे ॥ २ ॥
हियड़े हेत लगाऊं रे, अब कै जे पिव पाऊं रे, तो बेर बेर बलि जाऊं रे ॥ ३ ॥
सेजड़िये पिव आवै रे, तब आनन्द अंग न मावै रे, दादू दर्श दिखावे रे ॥ ४ ॥

१६९-१७१ में अत्यन्त विरह दिखा रहे हैं—मेरे प्रियतम प्रभु कब आयेंगे, कब आयेंगे ? जब प्रभु प्रकट रूप से अपना स्वरूप दिखायेंगे, तब वे मधुर प्रभु मुझ को बहुत प्रिय लगेंगे। मैं उनके स्वरूप-कंठ में लग कर रहूंगा। उनको अपने ज्ञान-नेत्रों में अंजन के समान डाल कर रक्खूंगा। प्रभु के बिना मैं दु:खी होकर मर रहा हूँ। हे प्रभुजी ! मेरा मस्तक आपके चरणों में है। तन तथा मन भी आपके ही हैं, मैं आपको अपने नेत्रों के समीप ही रखना चाहता हूं, हृदय से प्रेम करता हूँ। यदि इस शरीर में प्रभु को प्राप्त कर लूंगा, तब तो मैं उनकी बारम्बार बलिहारी जाऊंगा। मेरी हृदय-शय्या पर प्रभु आयेंगे और मुझे अपने स्वरूप का दर्शन करायेंगे, तब मुझे इतना आनन्द होगा कि—मेरे अन्त:करण में भी न समायेगा।

१७०-(सिंधी) मल्लिका मोद ताल

पिरी[१] तूं पांण[२] पसाइडे[३], मूं[४] तनि लागी भाहिड़े[५] ॥ टेक ॥
पांधी[६] वींदो[७] निकरीला,[८] असां[९] साण[१०] गल्हाइड़े[११]।
सांईं सिकां[१३] सडकेला[१४], गुझी[१५] गालि[१६] सुनाइड़े ॥ १ ॥
पसां[१७] पाक[१८] दीदार केला,[१९] सिक[२०] असां जी लाहिड़े[२१]।
दादू मंझि कलूब[२२] मेला[२३], तोड़े[२४] बीयां[२५] न काइड़े[२६] ॥ २ ॥

हे प्रियतम[१] ! मेरे[४] शरीर में विरहाग्नि[५] प्रज्वलित हो रही है, आप अपने[२] दर्शन[३] दो, और शीघ्र हमारे[९] साथ[१०] बात[११] करो, नहीं तो यह प्राण पथिक[६] शरीर से निकल[८] जायगा[७]। हे प्रभो ! हम तीव्र इच्छा[१३] पूर्वक पुकार[१४] रहे हैं, आप अपने स्वरूप सम्बन्धी रहस्यमय गुप्त[१५] बात[१६] हमें सुनाओ।

हम आपके पवित्र[१८], अद्वैत[१९] स्वरूप को देखें,[१७] यह हमारी तीव्र इच्छा[२०] है, इसे आप पूरी[२१] करो। आप मेरे हृदय[२२] में प्रकट होकर मुझ से मिलो[२३]। आपके[२४] बिना अन्य[२५] कोई[२६] भी इच्छा मुझे नहीं है।

१७१-(सिंधी) मल्लिकामोद ताल

को[१] मेड़ी[२] दो सजणा, सुहारी[३] सुरति केला[४], लगे डीहु[५] घणां॥ टेक॥
पीरीयां[६] संदी[७] गाल्हड़ीला[८], पांधीड़ा[९] पूछां।
कडी[१०] ईंदो[११] मूं[१३] गरेला[१४], डीदों[१५] बांह असां[१६]॥ १॥
आहे[१७] सिक[१८] दीदार जीला[१९], पिरी[६] पूर[२०] पसां[२१]।
इयं[२२] दादू जे[२३] ज्यंद[२४] येला[२५], सजण सांण[२६] रहां॥ २॥

कोइ[१] संत दया करके अति सुन्दर[३] अद्वैत[४] स्वरूप मेरे सज्जन प्रभु को मिलाओ[२]। उसकी प्राप्ति के लिये प्रयत्न करते[२] बहुत दिन[५] लग गये हैं, अपने प्रियतम[६] की[७] बातें[८] संत रूप पथिकों[९] से पूछते हैं—वे प्रियतम! मेरे[१३] घर में आकर[११] कब[१०] हमारे[१६] गले[१४] में भुजा देंगे[१५]? उनके दर्शन करने के लिये[१९] तीव्र इच्छा[१८] लग रही है[१७]। हे प्रियतम! हम आपको देखें[२१], यह हमारी भीतर[२०] की उत्कंठा है। हे सज्जन! मैं सदा आपके साथ[२६] रहूं, मेरे जीवन[२४] के[२३] लिये[२५] ऐसी[२२] व्यवस्था कीजिये।

१७२-विनती। पंजाबी त्रिताल

हरि हां दिखाओ नैना,
सुन्दर मूरति मोहनां, बोलि सुनाओ बैनां॥ टेक॥
प्रकट पुरातन खंडनां, महीमान[१] सुख मंडनां॥ १॥
अविनाशी अपरम्परा, दीनदयाल गगन धरा॥ २॥
पारब्रह्म परिपूरणां, दर्श देहु दुख दूरणां॥ ३॥
कर कृपा करुणामई, तब दादू देखै तुम दई॥ ४॥

दर्शनार्थ विनय कर रहे हैं—दादूजी ने कहा—हे हरे! हरि ने कहा-'हां'। दादू। हे प्रभो। 'आप अपनी अति सुन्दर मोहनी मूर्ति मेरे नेत्रों को दिखाओ, मुख से बोलकर अपने रहस्यमय वचन सुनाओ, हृदय में प्रकट होकर मेरे पुरातन कर्म-बन्धन को काटो और अपनी महा महिमा-से[१] मेरे आनन्द की वृद्धि करो। हे अविनाशी! आप अपरम्पार, दीन-दयालु और अपनी सत्ता से आकाशादि को धारण करने वाले हैं। हे परिपूर्ण परब्रह्म! मेरे दु:ख को दूर करने वाला अपना दर्शन दो। करुणामय देव! जब आप कृपा करेंगे, तब ही मैं आप को देख पाऊंगा।'

१७३-निस्पृहता। पंजाबी त्रिताल

राम सुख सेवक जानै रे, दूजा दुख कर मानै रे॥ टेक॥
और अग्नि की झाला[१], फंद रोपे हैं जम जाला।
सम काल कठिन शर पेखै, ये सिंह रूप सब देखै॥ १॥

विष सागर लहर तरंगा, यहु ऐसा कूप भुवंगा[२]।
भयभीत भयानक भारी, रिपु करवत मीच विचारी ॥ २ ॥
यहु ऐसा रूप छलावा[३], ठग पासीहारा आवा ।
सब ऐसा देख विचारे, ये प्राण घात बटपारे[४] ॥ ३ ॥
ऐसा जन सेवक सोई, मन और न भावे कोई ।
हरि प्रेम मगन रँग राता, दादू राम रमै रस माता ॥ ४ ॥

भक्तों की निस्पृहता दिखा रहे हैं—भक्त एक राम को ही सुख स्वरूप समझते हैं, और राम से भिन्न को दु:ख रूप मानते हैं। राम से भिन्न जो कुछ भी है, अग्नि की ज्वाला[१] के समान चिन्ता द्वारा जलाने वाले हैं वा माया ने यम-जाल बिछाकर जीवों को फँसाने के लिये फँदा रोपा है। राम से भिन्न सब को काल के कठिन बाण के समान वा सिंह स्वरूप देखे। जो मन में विषयों की तरंग उठती है, वह विष-समुद्र की लहर के समान है। जैसे सर्पों[२] से परिपूर्ण कूप भयंकर होता है, ऐसा ही अति भयानक और भयभीत करने वाला यह संसार है। इसे करवत से चीरकर मारने वाले शत्रु के समान समझना चाहिये। यह ठग तथा गले में पाश डालने वाला है किन्तु ऐसे छलिया[३] के रूप में सामने आता है कि अज्ञानी प्राणी इसे हितकर मान लेते हैं, फिर भी साधक जन भगवान् से भिन्न सब को विचार पूर्वक ऐसा देखते हैं कि ये स्वार्थी प्राणी मार्ग में लूट[४] कर मारने वाले प्राण घातक हैं। जो कोई जन ऐसा निस्पृह भक्त होता है, उसके मन को भगवान् से बिना कोई भी प्रिय नहीं लगता। वह तो हरि में अनुरक्त रह कर हरि-प्रेम में निमग्न रहता है और प्रेम-रस से मस्त हुआ राम के साथ ही रमण करता है।

१७४ साधु महिमा। जय मंगल ताल

आप निरंजन यों कहै, कीरति करतार ।
मैं जन सेवक द्वै नहीं, एकै अंग सार ॥ टेक॥
मम कारण सब परहरै, आपा अभिमान।
सदा अखंडित उर धरै, बोले भगवान॥ १ ॥
अंतर पट जीवै नहीं, तब ही मर जाइ।
विछुरे तलफै मीन ज्यों, जीवे जल आइ॥ २ ॥
क्षीर नीर ज्यों मिल रहै, जल जलहि समान ।
आतम पाणी लौंण ज्यों, दूजा नाहीं आन॥ ३ ॥
मैं जन सेवक द्वै नहीं, मेरा विश्राम।
मेरा जन मुझ सारिखा, दादू कहै रे राम॥ ४ ॥

संत महिमा कह रहे हैं—स्वयं निरंजन राम संतों का यश इस प्रकार कहते हैं- ''मैं और मेरे भक्तजन दो नहीं है। हम दोनों एक ही स्वरूप हैं, यह मेरी निर्णय की हुई सार बात है। वे सन्तजन मेरे

लिये जीवत्व रूप अहंकार, गुण-कलादि के अभिमान और अपना सर्वस्व त्याग देते हैं। सदा अखंडित भाव से हृदय में मेरा ध्यान करते हैं और मुख से भगवान् आदि मेरे नामों का उच्चारण करते हैं। यदि मेरे और उनके बीच कुछ पड़दा आ जाता है, तो वे जीवित नहीं रह सकते, जैसे जल होने पर मच्छी जीवित रहती है और जल से बिछुड़ने पर तड़फ कर मर जाती है, वैसे ही मेरे बिना तत्काल मर जाते हैं। उनकी आत्मा जल में नमक के समान तो मेरे में मिली ही रहती है। उनके हृदय में द्वैत भाव नहीं होने से उनको मुझ से भिन्न कुछ भी नहीं भासता। वे साधन की मध्यावस्था में मुझ में जल में दूध के समान मिले रहते हैं और साधन की परिपाकावस्था में जल में जल के समान मुझ में मिल जाते हैं। अत: मैं और मेरे भक्त दो नहीं हैं, उनका विश्राम स्थान तो मेरा स्वरूप ही है। मेरा भक्त मेरे समान ही है'' यह स्वयं राम ही कहते हैं।

१७५-परिचय विनती। जय मंगल ताल

शरण तुम्हारी केशवा, मैं अनंत सुख पाया।
भाग बड़े तूं भेटिया, हौं चरणों आया॥ टेक॥
मेरी तपत मिटी तुम देखतां, शीतल भयो भारी।
भव बंधन मुक्ता भया, जब मिल्या मुरारी॥ १॥
भरम भेद सब भूलिया, चेतन चित लाया।
पारस सौं परिचय भया, उन सहज लखाया॥ २॥
मेरा चंचल चित निश्चल भया, अब अनत न जाई।
मगन भया शर बेधिया, रस पीया अघाई॥ ३॥
सन्मुख ह्वै तैं सुख दिया, यहु दया तुम्हारी।
दादू दर्शन पावई, पीव प्राण अधारी॥ ४॥

१७५-१७६ में परिचय पूर्वक विनय कर रहे हैं—हे केशव! आपकी शरण में आकर मैंने अनन्त सुख पाया है, बड़े भाग्य से ही आप मुझे मिले हैं और मैं आप के चरणों में आया हूँ। आपके दर्शन करते ही मेरी जलन मिट कर मेरा हृदय अति शीतल हो गया है। हे मुरारे! जब आप मिले, तब ही मैं भव-बन्धन से मुक्त हुआ हूँ। अब सम्पूर्ण भ्रम जन्य भेदों को भूल कर मैंने अपने चित्त को चेतन-स्वरूप में ही लगाया है। अब तो प्रभु पारस से मैं परिचित हो गया हूँ, उन्हींने मुझे सहजावस्था में अपना स्वरूप दिखाया है। उनका साक्षात्कार होने पर मेरा चंचल चित्त निश्चल हो गया है, अब उनके स्वरूप चिन्तन को छोड़ कर अन्य ओर नहीं जाता, ब्रह्म-चिन्तन-रस से मिल कर मन मग्न हो रहा है, इसने तृप्त होकर रस का पान किया है। हे प्रियतम प्राणाधार! आपने मेरे सन्मुख प्रकट होकर मुझे परमानन्द प्रदान किया है, मैं आपका दर्शन कर रहा हूं, यह आपकी महान् दया है।

१७६-तिलवाड़ा ताल

गोविन्द ! राखो अपनी ओट।
काम क्रोध भये बटपारे, तकि मारैं उर चोट ॥टेक॥
वैरी पंच सबल सँग मेरे, मारग रोक रहे ।
काल अहेड़ी[1] बधिक ह्वै लागे, ज्यों जिव बाज गहे ॥ १ ॥
ज्ञान ध्यान हिरदै हरि लीना, संग ही घेर रहे।
समझ न परई बाप रमैया, तुम बिन शूल सहे ॥ २ ॥
शरण तुम्हारी राखो गोविन्द, इन सौं संग न दीजै ।
इनके संग बहुत दुख पाया, दादू को गहि लीजै ॥ ३ ॥

हे गोविन्द ! अपनी शरण में रखो, हमारे परमार्थ मार्ग में काम-क्रोधादि लुटेरे हमें लूटने में तत्पर हो रहे हैं। ये ताक २ कर हृदय में चोट मारते हैं और पंच विषय रूप बलवान् शत्रु भी हमारे संग लगकर हमारा मार्ग रोक रहे हैं। जैसे व्याध मृगों के पीछे लगता है, वैसे ही काल रूप शिकारी[1] शत्रु होकर पीछे लग रहा है तथा जैसे बाज चिड़िया को पकड़ता है, वैसे ही काल जीव को पकड़ने के लिये कटिबद्ध हो रहा है। हे हरे ! मेरा हृदय आपके ज्ञान-ध्यानादिक साधन में लीन हो रहा है और ये मन में छिपे कामादिक शत्रु मुझे अपने साथ घेर रहे हैं अर्थात् कामी क्रोधी बना रहे हैं। हे रमैया राम पिताजी ! इन कामादिक को नष्ट करने का उपाय मेरी समझ में नहीं आ रहा है, मैंने आपके बिना बहुत दु:ख सहे हैं। हे गोविन्द ! अब तो मुझे इनका संग न देकर अपनी शरण में ही रक्खो । मैं इनके संग में बहुत दु:ख पा चुका हूँ। अत: कृपा करके मुझे अपने कृपा-हस्त से पकड़ कर अपने साथ ही रखिये।

१७७-भयमान विनती । रंगताल

राम ! कृपा कर होहु दयाला, दर्शन देहु करहु प्रतिपाला ॥ टेक ॥
बालक दूध न देई माता, तो वह क्यों कर जिवै विधाता॥ १ ॥
गुण औगुण हरि कुछ न विचारै, अंतर हेत प्रीति कर पालै॥ २ ॥
अपनों जान करै प्रतिपाला, नैन निकट उर धरै गोपाला॥ ३ ॥
दादू कहै नहीं वश मेरा, तूं माता मैं बालक तेरा॥ ४ ॥

भययुक्त विनय कर रहे हैं—हे राम ! कृपा करके मुझ पर दया करो और अपना दर्शन देकर मेरी रक्षा करो। जैसे माता शिशु को दूध न पिलावे तो वह कैसे जीवित रह सकता है ? वैसे ही हे विधाता ! मैं आपके दर्शन बिना कैसे जीवित रह सकूँगा ? हे हरे ! माता शिशु के गुण अवगुण का कुछ भी विचार न करके हृदय में प्रेम रखते हुये प्रीति से उसका पालन करती है और हे गोपाल ! उसे अपना समझ छाती से लगाकर, अपने नेत्रों के समीप रखती है। वैसे ही आप मेरी माता हैं, मैं आपका बच्चा हूं, आपके आगे मेरा क्या जोर चल सकता है ? अत: आप कृपा करें।

१७८-(गुजराती) विनती त्रिताल

भक्ति माँगू बाप ! भक्ति माँगू, मूने ताहरा नांउं नौं प्रेम लागो।
शिवपुर ब्रह्मपुर सर्व सौं[1] कीजिये, अमर थावा[2] नहीं लोक माँगू ॥ टेक॥
आप[3] अवलम्बन ताहरा अंगनौं, भगति सजीवनी रंग राचूं।
देहनैं गेहनौं बास वैकुण्ठ तणौं, इन्द्र आसण नहीं मुक्ति जाचूं ॥ १ ॥
भक्ति वाहली[4] खरी, आप अविचल हरी, निर्मलो नांउं रस पान भावे।
सिद्धि नैं ऋद्धि नैं राज रूडौ नहीं, देव पद माहरे काज न आवे ॥ २ ॥
आत्मा अंतर सदा निरन्तर, ताहरी बापजी भक्ति दीजे।
कहै दादू हिवै[5] कोड़ी[6] दत्त[7] आपै[8], तुम्ह बिना ते अम्हे नहीं लीजे ॥ ३ ॥

१७८-१७९ में अनन्य भक्ति की याचना कर रहे हैं—हे परम पिता ! मैं आप से बारंबार आपकी भक्ति की याचना करता हूं, मेरे हृदय में आपके नाम का प्रेम लगा है। मैं अमर होना[2] तथा कैलाश लोक, ब्रह्म लोकादिक नहीं माँगता, इन सब का मैं क्या[1] करूंगा ? मुझे तो आप अपने स्वरूप का आश्रय दें[3]। स्वरूप का साक्षात्कार करा कर सदा सजीवन बनाने वाली सजीवनी भक्ति-रंग में अनुरक्त रहूं, ऐसी कृपा करें। देह, घर, वैकुण्ठ का निवास, इन्द्रासन और मुक्ति भी मैं नहीं माँगता। हे निश्चल हरे ! आपकी सच्ची भक्ति ही मुझे प्रिय[4] लगती है, आपके निर्मल नाम का चिन्तन-रस मुझे अच्छा लगता है। ऋद्धि, सिद्धि, अच्छा राज्य और देव-पद भी मेरे काम नहीं आता। हे बाप जी ! मेरे अन्त:करण में निरन्तर होती रहे, ऐसी अनन्य भक्ति दीजिये। अब[5] चाहे आप करोड़ों[6] का धन[7] दें[8] तो भी तुम्हारे बिना वह धन हम न लेंगे, अत: भक्ति दीजिये।

१७९-(गुजराती) राज विद्याधर ताल

एह्वो[1] येक तूं रामजी नांउं रूड़ो[2]।
ताहरा नांउं बिना बीजो[3] सब ही कूडो[4] ॥ टेक ॥
तुम्ह बिना अवर कोई कलि मां नहीं, सुमरतां संत नै साद[5] आपै[6]।
कर्म कीधा[7] कोटि छौड़वै बाधौ, नांउं लेतां खिणत ही ये कापै[8]॥ १ ॥
संत नै सांकड़ो दुष्ट पीड़ा करै, वाहरै[9] वाहलौ[10] वेग आवे।
पापनां पुंज परांह करी लीधो[11], भाजिया भय भ्रम जोनि न आवे॥ २ ॥
साधनैं दुहेलो तहां तूं आकुलो, माहरो माहरो करी नैं धाए।
दुष्ट नैं मारिबा संत नैं तारिबा, प्रकट थावा[12] तहां आप जाए ॥ ३ ॥
नाम लेतां खिण नाथ तैं एकलै, कोटिनां कर्मनां छेद कीधा[13]।
कहै दादू हिवैं[14] तुम्ह बिना को नहीं, साखि बोलैं जे शरण लीधा ॥ ४ ॥

हे रामजी ! ऐसे[1] आप अद्वितीय हैं, और आपका नाम ऐसा श्रेष्ठ[2] है कि आपके नाम बिना अन्य[3] जो भी हैं, वे सब मिथ्या[4] हैं। स्मरण करने से संत को आनन्द[5] दे[6] ऐसा आपके बिना इस

कलियुग में अन्य कोई नहीं है। पूर्व में किये[७] हुये कोटि कर्म-बन्धन से बँधे प्राणी को आपका नाम स्मरण करने पर क्षण भर में बन्धन काट[८] कर मुक्त करता है। दुष्ट संत को सताते हैं, तब संतों के प्यारे[१०] ! आप शीघ्र ही संत की सहायतार्थ[९] संत के पास आते हैं, जिस संत ने स्मरण द्वारा पाप पुंज को दूर करके प्रभु स्वरूप का ज्ञान प्राप्त[११] किया है और जिसका भेद जन्य भय भ्रम हृदय से चला गया है तथा ज्ञान द्वारा भावी जन्म का अभाव हो गया है, ऐसे संत को जब दु:ख होता है तब आप व्याकुल होकर 'मेरा-मेरा' करते हुये उसकी सहायतार्थ, वह जहां होता है, वहां ही जाने के लिए दौड़ पड़ते हैं, दुष्ट को मारने और संत की रक्षा करने के लिए वहां जाकर प्रकट हो जाते[१२] हैं। हे नाथ ! आपने आपका नाम लेते ही अन्य किसी के सहयोग बिना अकेले ही भक्तों के करोड़ों कर्म काट दिये[१३] हैं। आपके बिना अब[१४] हमारा कोई भी आश्रय नहीं है, कारण, जिन संतों ने आपकी शरण ली है, वे आपकी महिमा की ऐसी ही साक्षी देते हैं।

साँभर में भूधरदास नामक एक साधु अपने शिष्यों के सहित महाराज को सताने गया था , उस समय यह पद कहा था। प्रसंग कथा दृ.सु.सि. त. ७-२६८ में देखो।

१८०-परिचय विनती। राज विद्याधर ताल

हरि नाम देहु निरंजन तेरा, हरि हर्ष जपै जिय मेरा॥ टेक॥
भाव भक्ति हेत हरि दीजे, प्रेम उमँग मन आवै।
कोमल बचन दीनता दीजे, राम रसायन भावै॥ १॥
विरह वैराग्य प्रीति मोहि दीजे, हृदय साच सत भाखूं।
चित चरणों चिंतामणि दीजे, अंतर दृढ़ कर राखूं॥ २॥
सहज संतोष शील सब दीजे, मन निश्चल तुम लागै।
चेतन चिन्तन सदा निवासी, संग तुम्हारे जागै॥ ३॥
ज्ञान ध्यान मोहन मोहि दीजे, सुरति सदा सँग तेरे।
दीन दयाल दादू को दीजे, परम ज्योति घट मेरे॥ ४॥

परिचय पूर्वक विनय कर रहे हैं—हे निरंजन ! आपका हरि नाम मुझे दें, मेरा मन हरि नाम को हर्षित होकर जपेगा। हे हरे ! भाव और प्रेमाभक्ति दीजिये, मेरे मन में प्रेम की लहर उठने लगे ऐसी कृपा कीजिये। कोमल वचन, दीनता, राम-रसायन प्रिय लगने की योग्यता, विरह, वैराग्य, प्रीति, हृदय में सत्य धारण और सत्य बोलने की क्षमता, चित्त में आपके चरण तथा हृदय में नाम चिन्तामणि को दृढ़ता से रख सकूं, ऐसा बल और स्वाभाविक शील, संतोषादि दिव्य गुण प्रदान करने की कृपा करिये। मेरा मन निश्चल होकर आप में ही लगे, सदा आपके चेतन स्वरूप का चिन्तन करते हुये तथा आपके संग जागते हुये निवास करे। हे विश्व-विमोहन ! अपना ध्यान और ज्ञान प्रदान करें। मेरी वृत्ति सदा आपके संग रहे और दीन दयालो ! मेरे अन्त:करण में आपके स्वरूप रूपा परम-ज्योति जगती रहे, ऐसी योग्यता प्रदान करें।

१८१-आशीर्वाद मंगल । झपताल

जय जय जय जगदीश तूं, तूं सम्रथ सांईं ।
सकल भुवन भानैं[२] घड़ै, दूजा को नांहीं ॥ टेक ॥
काल मीच[३] करुणा करे, जम किंकर[१] माया ।
महा जोध बलवंत बली, भय कँपै राया ॥ १ ॥
जरा[४] मरण तुम तैं डरे, मन को भय भारी ।
काम दलन करुणामई, तूं देव मुरारी ॥ २ ॥
सब कंपैं करतार तैं, भव बंधन पाशा ।
अरि रिपु भंजन भय गता, सर्व विघ्न विनाशा ॥ ३ ॥
सिर ऊपर सांई खड़ा, सोई हम मांहीं ।
दादू सेवक राम का निर्भय, न डरांहीं ॥ ४ ॥

आशीर्वादात्मक मंगल कर रहे हैं—हे जगदीश्वर ! आप सर्व प्रकार समर्थ स्वामी हैं । आपकी मन वचन कर्म से जय हो । संपूर्ण लोकों को आप ही उत्पन्न और नष्ट[२] करते हैं । इस कार्य को करने वाला आपके बिना अन्य कोई भी नहीं है । काल, मृत्यु[३], यमदूत[१] और माया ये सभी आपके आगे करुणा पूर्ण विनय करते हैं । महान् योद्धा, बल संपन्न बलि जैसे राजा भी आपके भय से कांपते हैं । बुढापा[४], मृत्यु भी आपसे डरते हैं, मन को भी आपसे बड़ा भय लगता है । मुरारि देव ! आप काम के नाशक और करुणामय हैं । आप सृष्टि-कर्त्ता से सभी सांसारिक बंधन व माया-जाल कांपते हैं । आप बाह्य शत्रु और आंतरिक कामादि वैरियों के संहारक तथा सभी विघ्नों के नाशक हैं । आपकी कृपा से भक्तों के भय दूर हो गये हैं । जो परमात्मा सबके शिर पर हैं, वे ही हमारे हृदय में हैं । इसीलिए हम राम-भक्त निर्भय हैं, डरते नहीं ।

१८२-हितोपदेश । त्रिताल

हरि के चरण पकर मन मेरा, यहु अविनाशी घर तेरा ॥ टेक ॥
जब चरण कमल रज पावै, तब काल व्याल बौरावै ।
तब त्रिविधि ताप तन नाशै, तब सुख की राशि विलासै ॥ १ ॥
जब चरण कमल चित लागै, तब माथै मीच न जागै ।
तब जन्म जरा सब क्षीना, तब पद पावन उर लीना ॥ २ ॥
जब चरण कमल रस पीवै, तब माया न व्यापै, जीवै ।
तब भरम करम भय भाजै, तब तीनों लोक विराजै ॥ ३ ॥
जब चरण कमल रुचि तेरी, तब चार पदारथ चेरी ।
तब दादू और न बांछै, जब मन लागे साँचै ॥ ४ ॥

मन को हितकर उपदेश कर रहे हैं—मेरे मन ! हरि के चरण ग्रहण कर, यह अविनाशी प्रभु ही तेरा सच्चा घर है। जब तू प्रभु के चरण-कमलों की रज प्राप्त करेगा, तब काल रूप सर्प पागल हो जायगा अर्थात् तेरी ओर धावा न कर सकेगा। शरीर की त्रिताप नष्ट हो जायगी, सुख राशि का उपभोग होगा। यह निश्चित बात है कि जब प्राणी का मन प्रभु के चरण-कमलों में लग जाता है, तब उसे मारने के लिए शिर पर मृत्यु सजग नहीं होती। पवित्र हृदय प्रभु-चरणों में लीन होने से जन्म, जराआदि सभी नष्ट हो जाते हैं। जब हरि के चरण-कमलों की भक्ति का रस पान करता है, तब जीव को माया भी नहीं व्यापती ऐसा भ्रम, कर्म और भय दूर हो जाते हैं। वह साधक तीनों लोकों में ही अधिक शोभा पाता है। हे मन ! जब तेरी प्रभु चरण-कमलों में प्रीति होकर तू सत्य प्रभु में लग जायगा, तब प्रभु को छोड़कर अन्य कुछ भी न चाहेगा और अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष, ये चारों पदार्थ दासी के समान तेरी सेवा करेंगे।

१८३-संत उपदेश। राजमृगांक ताल

संतो ! और कहो क्या कहिये,
हम तुम सीख इहै सतगुरु की, निकट राम के रहिये ॥ टेक ॥
हम तुम मांहिं बसै सो स्वामी, साचे सौं सचु लहिये।
दर्शन परसन जुग जुग कीजे, काहे को दुख सहिये ॥ १ ॥
हम तुम संग निकट रहैं नेरे, हरि केवल कर गहिये ।
चरण-कमल छाड़ि कर ऐसे, अनत काहे को बहिये ॥ २ ॥
हम तुम तारन तेज घन सुन्दर, नीके सौं निरबहिये ।
दादू देख और दुख सब ही, ता में तन क्यों दहिये ॥ ३ ॥

साधक सन्तों को उपदेश कर रहे हैं—सन्तो ! कहो ! हम आप से और क्या कहें ? हमको तथा तुम को सद्गुरु का तो यही उपदेश है कि—सदा भजन द्वारा राम के पास रहें। वे स्वामी राम, हम तथा आप में निवास करते हैं। भजन द्वारा उन सत्य प्रभु के दर्शन और स्पर्श का आनंद लो, अन्य ओर वृत्ति लगाकर क्यों दुःख सहन करते हो ? हम और आप साथ ही एक मात्र हरि के स्वरूप चरणों को अपने प्रीति-हाथों से ग्रहण करके उनके निकट ही रहें। ऐसे प्रभु के चरण कमलों को छोड़ कर अन्य स्थान में किस लिये जाना है ? संसार से तारने वाले चेतन-घन अति सुन्दर हैं और सब प्रकार से अच्छे परमात्मा के भजन में ही हमें तथा तुम्हें निर्वाह करना चाहिए। देखो ! अन्य सब तो दुःख रूप ही हैं, उनमें अपने शरीर को दुःखाग्नि से क्यों जला रहे हो ?

माला तिलकादि देने को गलता से वैरागी साधु आये थे, उन्हें यह पद कहा था। इसे सुनकर तीन तो उदास होकर चले गये थे, परन्तु छीतरदास जी दयालजी के शिष्य हो गये थे।

१८४ मन प्रति उपदेश । राजमृगांक ताल

मन रे, बहुरि न ऐसे होई ।
पीछे फिर पछतायेगा रे, नींद भरे जनि सोई ॥टेक॥
आगम सारे संचु करीले, तो सुख होवै तोही ।
प्रीति करी पीव पाइये, चरणों राखो मोही ॥ १ ॥
संसार सागर विषम अति भारी, जनि[1] राखै मन मोही ।
दादू रे जन राम नाम सौं, कश्मल[2] देही धोई ॥ २ ॥

मन को उपदेश कर रहे हैं—अरे मन ! फिर ऐसा अवसर नहीं प्राप्त होगा। तू मोहनिद्रा में इच्छा भर कर क्यों सो रहा है ? समय व्यतीत होने पर पीछे तुझे पश्चात्ताप करना होगा। सब वेदादिक शास्त्रों का सार जो परमात्मा का भजन ध्यान है उसका संग्रह करेगा तब ही तुझे सुख होगा। तू प्रभु में प्रीति कर तब ही मुझे प्रभु प्राप्त होंगे और अपने चरण-कमलों में रखेंगे। अरे मेरे मन ! अति महान् भयंकर संसार-सागर में मोह मत[1] रख। भक्त के समान राम-नाम चिन्तन द्वारा सूक्ष्म-शरीर के पापों[2] को धो डाल।

१८५-काल चेतावनी

साथी, सावधान ह्वै रहिये ।
पलक मांहिं परमेश्वर जानै, कहा होइ कहा कहिये ॥ टेक ॥
बाबा, बाट घाट कुछ समझ न आवे, दूर गवन हम जाना ।
परदेशी पथ चलै अकेला, औघट घाट पयाना ॥ १ ॥
बाबा, संग न साथी कोइ नहिं तेरा, यहु सब हाट पसारा ।
तरवर पंखी सबै सिधाये, तेरा कौण गँवारा ॥ २ ॥
बाबा, सबै बटाऊ पंथ सिरानैं, सुस्थिर नांहीं कोई ।
अंतकाल को आगे पीछे, विछुरत बार न होई ॥ ३ ॥
बाबा, काची काया कौण भरोसा, रैन गई क्या सोवै ।
दादू संबल[1] सुकृत लीजे, सावधान किन होवै ॥ ४ ॥

काल से सावधान कर रहे हैं—हे साथी ! सचेत होकर रह, आगामी पलक में क्या हो जाय, इसके विषय में क्या कहा जा सकता है, परमेश्वर ही जानते हैं। हे बाबा ! हमें चल कर दूर जाना है और इस मार्ग में काम-क्रोधादिक विकट घाटियों के उल्लंघन करने का कुछ उपाय भी नहीं समझ में आता। एक तो यह जीव परदेशी है और जिस पथ में कामादि-विकट घाटियां हैं, उसमें इसे एकाकी चलना है। हे बाबा ! इस संसार में तेरे संग चलने वाला तेरा साथी कोई भी नहीं है। यह धन-जनादिक सब तो हाट की वस्तुओं के फैलाव के समान हैं, जैसे उन वस्तुओं का फैलाव सायंकाल नहीं रहता, ऐसे ही ये सब नहीं रहने वाले हैं। जैसे सायंकाल को आकर वृक्ष पर बैठने वाले पक्षी प्रात: चले जाते हैं, वैसे ही तेरे कुटुम्बी चले गये हैं, हे मूर्ख ! बता, इनमें तेरा कौन

है ? सभी प्राणी पथिक हैं और मार्ग चल रहे हैं, स्थिर रहने वाला कोई भी नहीं है। अन्त समय आने पर किसी का पहले और किसी का पीछे वियोग होगा। अरे बाबा ! यह शरीर कच्चे घट के समान शीघ्र नष्ट होने वाला है, इसके स्थायी रहने का क्या भरोसा है ? तेरी आयु रात्रि व्यतीत हो गई है, अब क्यों सो रहा है ? इस कठिन मार्ग को पार करने के लिये पुण्य कार्यों का सहारा[१] लेना पड़ेगा। अतः अभी से सत्कर्म करने को सावधान क्यों नहीं होता ?

१८६-तर्क चेतावनी। शूल ताल

मेरा मेरा काहे को कीजे रे, जे कुछ संग न आवे।
अनत करी नै धन धरीला रे, तेऊ तो रीता जावे॥ टेक॥
माया बंधन अंध न चेते रे, मेर मांहिं लपटाया।
ते जाणूं हूं यह विलासौं, अनत विरोधें खाया॥ १ ॥
आप स्वारथ यह विलूधा[२] रे, आगम मरम न जांणें।
जम कर माथे बाण धरीला, ते तो मन ना आंणें॥ २ ॥
मन विचारि सारी ते लीजे, तिल मांहीं तन पड़िबा।
दादू रे तहँ तन ताड़ीजे, जेणें मारग चढिबा॥ ३ ॥

तर्क पूर्वक चेतावनी दे रहे हैं—जो भी संसार में पदार्थ हैं, वे प्राणी के साथ तो कुछ आते नहीं, फिर मेरा-मेरा क्यों किया जाय ? जो अहंकार-वश अनीति करके धन संग्रह करते हैं, वे भी तो खाली हाथ ही जाते हैं ? मदांध प्राणी माया बन्धन में बंधे हुये ममता[१] में लिप्त हो रहे हैं, विरोध द्वारा दूसरों से धन छीन कर खाते हैं और वे जानते हैं कि हम आनंद ले रहे हैं। ये लोग अपनी स्वार्थ सिद्धि में लगे[२] हैं किन्तु आगे इसका क्या परिणाम होगा, यह रहस्य नहीं जानते। इनके शिर पर मारने के लिए यम ने अपने हाथ में बाण धारण कर रक्खा है, उसे मन में स्मरण नहीं करते। अरे प्राणी ! यह शरीर क्षण भर में नष्ट होने वाला है, जिस मार्ग द्वारा तुझे प्रभु की ओर ऊंचे चढ़ना है, उसी में शरीर को साधन-ताड़ना दे और मन में विचार करके परब्रह्म रूप अखंड वस्तु को आत्म रूप से ग्रहण कर।

१८७-हितोपदेश विनती। शूल ताल

सन्मुख भइला रे, तब दुख गइला रे, ते मेरे प्राण अधारी।
निराकार निरंजन देवा रे, लेवा तेह विचारी॥ टेक॥
अपरंपार परम निज सोई, अलख तोरा विस्तारं।
अंकुर बीजे सहज समाना रे, ऐसा समर्थ सारं॥ १ ॥
जे तैं कीन्हा किन्हि इक चीन्हा रे, भइला ते परिमाणं।
अविगत तोरी विगति न जाणूं, मैं मूरख अयानं॥ २ ॥
सहजैं तोरा ए मन मोरा, साधन सौं रँग आई।
दादू तोरी गति नहिं जाने, निर्वाहो कर लाई॥ ३ ॥

हितकर उपदेश करके विनय कर रहे हैं—जो भजन द्वारा मेरे प्राणाधार प्रभु के सन्मुख होंगे, तब उनके दु:ख चले जायेंगे। वे निरंजन देव निराकार हैं, अपरंपार हैं, और वे ही सबके अत्यंत निजी हैं। हे मन इन्द्रियों के अविषय प्रभो ! यह सब विस्तार आप ही का है। जैसे बीज में अंकुर समाया हुआ रहता है, वैसे ही आपके सहज स्वरूप में सब संसार समाया हुआ है, आप ऐसे समर्थ और संसार के सार रूप हैं। जो आपने किया है, वह वास्तव में किसी-किसी महापुरुष ने ही पहचाना है और जिनने पहचाना है, वे आपके समान ही हो गये हैं। हे मन इन्द्रियों के अविषय प्रभो ! मैं तो आपकी विशेष रूप गति को नहीं जानता, कारण, मूर्ख और अज्ञानी हूँ। साधन-रंग से रंगा जाकर यह मेरा मन सहजे-सहजे आप का हुआ है, तो भी मैं आपकी गति नहीं जान पाता ! अत: आप ही मेरा हाथ पकड़ कर मुझे निभाओ।

१८८-मन प्रति शूरातन। त्रिताल

हरि मारग मस्तक दीजिये, तब निकट परम पद लीजिये ॥टेक॥
इस मारग मांहीं मरणा, तिल पीछे पांव न धरणा।
अब आगे होइ सो होई, पीछे सोच न करणा कोई ॥ १ ॥
ज्यों शूरा रण झूझै, तब आपा पर नहिं बूझै।
शिर साहिब काज सँवारै, घण घावाँ आपा डारै ॥ २ ॥
सती सत गहि साँचा बोलै, मन निश्चल कदे न डोलै।
वाके सोच पोच जिय ना आवै, जग देखत आप जलावै ॥ ३ ॥
इस शिर सौं साटा कीजै, तब अविनाशी पद लीजै।
ताका तब शिर साबत होवै, जब दादू आपा खोवै ॥ ४ ॥

मन को शौर्य की प्रेरणा कर रहे हैं—प्रभु प्राप्ति के मार्ग में अपना अहंकार रूप शिर दिया जायगा, तब हृदय में समीप ही परमात्मा रूप परम पद प्राप्त होगा। इस परमार्थ मार्ग में मरने का प्रसंग आ जाये तो भी एक तिल भर भी पीछे नहीं हटना चाहिए। इसमें प्रवृत्त होने पर आगे जो होता है, वही होगा अर्थात् प्रभु ही प्राप्त होगा। पीछे के धन, जनादि का सोच कोई भी न करे। जैसे वीर युद्ध क्षेत्र में युद्ध करता है, तब अपने पराये का ज्ञान उसे नहीं रहता। वह शिर देकर भी अपने स्वामी का कार्य ठीक करता है, वैसे ही साधक विवेक-वैराग्यादि शस्त्रों के बहुत-से घावों द्वारा अपना अहंकार त्याग कर प्रभु को प्राप्त करे। सती सत्य ग्रहण करके आगामी सत्य बातें कहती है, उसका मन निश्चल रहता है, कभी भी चंचल नहीं होता, उसके मन में कायरता और चिन्ता नहीं आती, जगत के प्राणियों के देखते-देखते अपने शरीर को जलाकर पति-लोक को जाती है, वैसे ही संत प्रभु-परायण होकर प्रभु को प्राप्त होते हैं। जब अविनाशी पद के बदले में अपना अहंकार-शिर दिया जाता है तब ही अविनाशी पद प्राप्त होता है। जब प्राणी अपने जीवत्व अहंकार को नष्ट कर देता है, तब उसका शिर पूर्ण प्रमाणित माना जाता है।

१८९-कलियुगी। त्रिताल

झूठा कलिजुग कह्या न जाइ, अमृत को विष कहैं बनाइ ॥ टेक॥
धन को निर्धन, निर्धन को धन, नीति अनीति पुकारै ।
निर्मल मैला, मैला निर्मल, साधु चोर कर मारै ॥ १ ॥
कंचन काच, काच को कंचन, हीरा कंकर भाखै[1] ।
माणिक मणियां, मणियां माणिक, साच झूठ कर नाखै ॥ २ ॥
पारस पत्थर, पत्थर पारस, कामधेनु पशु गावै।
चंदन काठ, काठ को चंदन, ऐसी बहुत बनावै॥ ३ ॥
रस को अणरस, अणरस को रस, मीठा खारा होई।
दादू कलिजुग ऐसा बरतै, साँचा विरला कोई ॥ ४ ॥

कलियुगी प्राणियों का परिचय दे रहे हैं—यह कलियुग का समय इतना झूठा है कि पूर्ण रूप से तो कहा भी नहीं जाता। कलियुगी प्राणी अमृत रूप वाणी को भी उसमें मिथ्या मिला, विष बना कर कहते हैं। राम-धन युक्त को निर्धन, राम-धन रहित पदार्थों को धन, भक्तियुक्त उत्तम नीति को अनीति, भजन द्वारा निर्मल को जाति दोष लगाकर मैला, दुर्गुणों से मलीन को जाति द्वारा निर्मल कहते हैं। साधु को चोर कहकर मारते हैं। कंचन समान श्रेष्ठों को तो काँच के समान और केवल वस्त्र भूषणादि की चमक युक्त काँच के सदृश्यों को कंचन के समान श्रेष्ठ और हरि नाम हीरा को कंकर के समान कहते[1] हैं। माणिक्य समान श्रेष्ठ विचारशीलों को काष्ठ-मणियां के समान, उत्तम-विचार हीन स्वार्थ सिद्धि के लिए मधुर बोलने वालों को माणिक्य के समान श्रेष्ठ कहते हैं और सत्य को मिथ्या कहकर त्याग देते हैं। सद्गुरु रूप पारस को साधारण नर रूप पत्थर, साधारण नर रूप पत्थर को ज्ञान की बातों द्वारा सद्गुरु रूप पारस और कामधेनु को पशु कहते हैं। संत रूप चंदन को सामान्य मनुष्य रूप काष्ठ और सामान्य मनुष्य रूप काष्ठ को सुन्दर बातों द्वारा संत रूप चंदन कहते हैं। राम-भजन रस को अनरस और हास्यादि को रस, अति मधुर ब्रह्म-विचार को खारा और कटु विषयों को मधुर कहते हैं। अन्य भी ऐसी ही बहुत-सी बातें बनाते हैं। इसी प्रकार कलियुग में बर्ताव करते हैं। सच्चा मानव कलियुग में कोई विरला ही होता है।

१९०-भगवन्त भरोसा। ललित ताल

दादू मोहि भरोसा मोटा[1] ।
तारण तिरण सोई संग मेरे, कहा करै कलि खोटा ॥ टेक॥
दौं[1] लागी दरिया तैं न्यारी, दरिया मंझ न जाई ।
मच्छ कच्छ रहैं जल जेते, तिन को काल न खाई ॥ १ ॥
जब सूवे पिंजर घर पाया, बाज रह्या बन मांहीं।
जिनका समर्थ राखणहारा, तिनको को डर नांहीं ॥ २ ॥

साचै झूठ न पूजै कबहूँ, सत्य न लागै काई ।
दादू साचा सहज समाना, फिर वै झूठ विलाई ॥ ३ ॥

भगवद् भरोसा दिखा रहे हैं—मुझको भगवान् का ही महान्[१] भरोसा है, भक्तों को संसार से तारने वाले और स्वयं सब विकारों से तिरे हुये प्रभु मेरे साथ हैं। अत: खोटा कलियुग मेरा क्या कर सकता है ? जैसे समुद्र वा नदी से बाहर वन में अग्नि[२] लगी हो, वह समुद्र वा नदी में नहीं जाती और उनके जल में रहने वाले मत्स्य, कच्छपादि को वह अग्नि रूप काल नहीं मार सकता और जैसे शुक पक्षी को घर तथा पिंजरा प्राप्त हो जाता है, तब उसका शत्रु बाज पक्षी वन में ही रह जाता है, घर आकर पिंजरे में स्थित शुक पक्षी को नहीं मार सकता। वैसे ही जिन भक्तों का रक्षक समर्थ परमात्मा है, उनको कलियुग और कालादिका कुछ भी भय नहीं होता। सच्चे की समता झूठा कभी नहीं कर सकता। सत्य को किसी प्रकार का दोष नहीं लगता। सच्चा भक्त तो सहज स्वरूप परब्रह्म में समाता है और झूठा पुन: संसार में ही विलीन होता है।

१९१-साच झूठ निर्णय। प्रतिताल

सांईं को साच पियारा,
साचै साच सुहावै देखो, साँचा सिरजनहारा॥टेक॥
ज्यों घण घावाँ[१] सार घड़ीजे, झूठ सबै झड़ जाई।
घण के घाऊं सार रहेगा, झूठ न मांहिं समाई॥ १ ॥
कनक कसौटी अग्नि मुख दीजे, पंक[२] सबै जल जाई।
यों तो कसणी साच सहेगा, झूठ सहै नहिं भाई॥ २ ॥
ज्यों घृत को ले ताता कीजे, ताइ ताइ तत कीन्हा।
तत्त्वैं तत्त्व रहेगा भाई, झूठ सबै जल खीना॥ ३ ॥
यों तो कसणी साच सहेगा, साचा कस कस लेवै।
दादू दर्शन साचा पावे, झूठे दरस न देवै॥ ४ ॥

सत्य झूठ का निर्णय दिखा रहे हैं—देखो भाई ! सच्चे को सत्य ही अच्छा लगता है। सृष्टि कर्ता परमात्मा सत्य है, अत: उन प्रभु को सत्य ही प्रिय है। जैसे घन की चोट[१] मार-मार कर लोहे का कुछ बनाते हैं, तब उसका काट अलग हो जाता है और लोहा रह जाता है, वैसे ही सद्गुरु-घन के शब्दाघातों से सत्य रूप सार ही रहेगा। मिथ्या उसमें न समाकर अलग हो जायगा। सुवर्ण की परीक्षा करने पर सदोष हो तो अग्नि देते हैं, तब उसका सब मैल[२] जल जाता है वैसे ही ऐसी कठोर परीक्षा सच्चा ही सह सकता है, झूठा नहीं सह सकता, वह तो नष्ट ही हो जाता है। जैसे घृत को उष्ण कर, उसके फूल आदि को निकाल के सार रूप घृत रख लेते हैं, वैसे ही अन्त:करण के सब दोष निकाल देने पर निर्दोष आत्म-तत्त्व ब्रह्म-तत्त्व में मिल कर रहेगा। संपूर्ण मिथ्या मायिक प्रपंच की सभी भावना क्षीण होकर ज्ञान द्वारा कर्म राशि जल जायगी किन्तु इस प्रकार की कठोर परीक्षा सच्चा साधक ही सह सकेगा और सच्चा सद्गुरु ही परीक्षा करके

उसके दोषों को दूर करेगा। इस प्रकार निर्मल और सच्चा साधक ही परमात्मा का दर्शन प्राप्त करेगा। झूठे को वे सत्य प्रभु अपना दर्शन नहीं देते।

१९२-करणी बिना कथनी। प्रतिताल

बातैं बाद जाहिंगी भइये, तुम जनि[1] जानो बातनि पइये ॥टेक॥
जब लग अपना आप न जानैं, जब लग कथनी काची।
आपा जान सांईं को जानैं, तब कथनी सब साची ॥ १ ॥
करनी बिना कंत नहिं पावै, कहै सुनै का होई।
जैसी कहै करै जे तैसी, पावैगा जन सोई ॥ २ ॥
बातनि ही जे निर्मल होवै, तो काहे को कस लीजै।
सोना अग्नि दहे दस बारा, तब यहु प्रान पतीजै ॥ ३ ॥
यों हम जाना मन पतियाना, करनी कठिन अपारा।
दादू तन का आपा जारे, तो तिरत न लागै बारा ॥ ४ ॥

कर्त्तव्य रहित कथन का परिचय दे रहे हैं—भाइयो ! केवल बातों द्वारा तो आयु व्यर्थ ही चली जायगी। तुम मत[1] समझो कि बातों से ही हमें प्रभु मिल जायेंगे। जब तक अपने आप को नहीं जानोगे, तब तक परमार्थ का कथन व्यर्थ ही है। आत्मस्वरूप जान कर प्रभु को पहचानोगे तब ही परमार्थ सम्बन्धी सब कथन सच्चा माना जायगा। कर्त्तव्य के बिना प्रभु प्राप्त नहीं होते, केवल कहने सुनने से ही क्या होता है ? जैसी प्रभु संबंधी बातें कहता है, वैसा ही करता है, वही प्रभु को प्राप्त करेगा। यदि बातों से ही हृदय निर्मल हो जाय तो साधक जन साधन कष्ट क्यों सहन करें ? सदोष सुवर्ण को अग्नि में दस बार जलाया जाता है, तब ही प्राणी को उसके शुद्ध होने का विश्वास होता है। इस प्रकार ही हमने परमात्मा को जाना है, तब ही हमारे मन को विश्वास हुआ है। कर्त्तव्य करना अति कठिन है। यदि तन का अहंकार जला दें तो संसार-सिन्धु को तैर कर पार करने में कुछ भी देर नहीं लगती।

१९३-उपदेश। पंजाबी त्रिताल

पंडित, राम मिलै सो कीजै,
पढ पढ वेद पुराण बखानैं, सोइ तत्त्व कह दीजै ॥टेक॥
आतम रोगी विषम बियाधी, सोई कर औषधि सारा।
परसत प्राणी होइ परम सुख, छूटै सब संसारा॥ १ ॥
ए गुण इन्द्री अग्नि अपारा, ता सन जलै शरीरा।
तन मन शीतल होइ सदा सुख, सो जल न्हाओ नीरा॥ २ ॥
सोई मारग हमहिं बताओ, जेहि पंथ पहुँचै पारा।
भूल न परै उलट नहिं आवै, सो कुछ करहु विचारा॥ ३ ॥

गुरु उपदेश देहु कर दीपक, तिमिर[१] मिटै सब सूझै ।
दादू सोई पंडित ज्ञाता, राम मिलन की बूझै ॥ ४ ॥

पंडित जगजीवनजी को उपदेश कर रहे हैं—हे पंडित ! जिससे राम प्राप्त हो, वही उपाय करो और वेद पुराणादि पढ़-पढ़ कर विद्वान् लोग जिस परब्रह्म तत्त्व का व्याख्यान करते हैं, उसी तत्त्व की बात हमारे को कहो। जीवात्मा-रोगी के जन्मादि रूप भयंकर रोग लगा है, उसकी जो सार रूपी औषधि है, वही करो, जिससे प्राणी प्रभु से मिलकर परम सुखी हो जाय। ये विषय और इन्द्रिय अपार अग्नि रूप है, उनसे शरीर जल रहा है। जिस जल के स्नान से तन-मन शांत होकर नित्य सुख प्राप्त हो उसी जल में स्नान करो और जिससे प्राणी संसार के पार पहुँच सके और भूलकर भी उसमें वापस न लौट सके अर्थात् पुनर्जन्म न हो, ऐसा मार्ग हमें बताओ और उसी का कुछ विचार करो। सद्गुरु उपदेश-दीपक अन्त:करण रूप हाथ में रक्खो, जिससे अज्ञान अन्धकार[१] नष्ट होकर सब कुछ भासने लगे। हमारे मत से तो वही ज्ञानी पंडित है, जो राम के मिलने का साधन सम्यक् प्रकार समझता-बूझता हो।

यह पद पं. जगजीवनजी को आमेर में कहा था। प्रसंग कथा दृ. सु. सि. ११-१७ में देखो।

१९४-उपदेश । प्रतिताल

हरि राम बिना सब भर्मि गये, कोई जन तेरा साच गहै॥ टेक॥
पीवे नीर तृषा तन भाजै, ज्ञान गुरु बिन कोइ न लहै।
प्रकट पूरा समझ न आवै, तातैं सो जल दूर रहै॥ १ ॥
हर्ष शोक दोउ सम कर राखै, एक एक के सँग न बहै।
अनतहि जाइ तहां दुख पावै, आपहि आपा आप दहै॥ २ ॥
आपा पर भरम सब छाड़ै, तीन लोक पर ताहि धरै।
सो जन सही साँच को परसै, अमर मिलै नहिं कबहुँ मरै ॥ ३ ॥
पारब्रह्म सौं प्रीति निरंतर, राम रसायन भर पीवै।
सदा आनंद सुखी साचे सौं, कहै दादू सो जन जीवै॥ ४ ॥

उपदेश कर रहे हैं—हरि, राम, आदि नामों के चिन्तन बिना सब संसारी प्राणी भ्रमित हो रहे हैं। प्रभो ! कोई विरला भक्त ही आपके सत्य स्वरूप को पहचान कर निरन्तर नाम-चिन्तन-साधन ग्रहण करता है। जैसे जल-पान करने से प्यास दूर होती है, जल बिना नहीं। वैसे ही गुरु से ज्ञान प्राप्त होता है, गुरु बिना कोई भी ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता और ज्ञान बिना प्रत्यक्ष रूप से पूर्ण ब्रह्म का स्वरूप समझ में नहीं आता। इसीलिए सांसारिक आशा-तृष्णा रूप प्यास को मिटाने वाला वह ब्रह्म-जल प्राणी को दूर ही प्रतीत होता है। जो हर्ष-शोकादि को सम रखता है अर्थात् उनके वेग को हृदय में नहीं आने देता, कभी आ भी जाय तो उनमें किसी एक-एक गुण के साथ न जाकर उनको विरोधी गुणों द्वारा नष्ट करता है क्योंकि उन-गुणों के साथ होकर जहां भी अनात्म पदार्थों

में जाता है, वहां ही दु:ख प्राप्त करता है। अत: साधक को चाहिए-वह स्वयं ही आत्म-ज्ञान द्वारा अपनी वृत्ति के अनात्म अहंकार को जलावे और अपना-पराया आदि भेद जन्य संपूर्ण भ्रम को त्याग कर त्रिगुणात्मक तीनों लोकों से परे शुद्ध चेतन में वृत्ति को रक्खे। वही जन निश्चित रूप से सत्य-स्वरूप ब्रह्म को प्राप्त होता है और अमर होकर उसी में मिल जाता है, फिर कभी भी मृत्यु को प्राप्त नहीं होता। हम यथार्थ ही कहते हैं, वह जन सत्य ब्रह्म से मिलकर ब्रह्मानन्द द्वारा सुखी हुआ सदा ब्रह्म रूप से जीवित रहता है।

१९५-भ्रम विध्वंसन। प्रतिताल

जग अंधा नैन न सूझै, जिन सिरजे ताहि न बूझै ॥ टेक ॥
पाहण की पूजा करै, करि आतम घाता ।
निर्मल नैन न आवई, दोजख दिशि जाता ॥ १ ॥
पूजैं देव दिहाड़िया, महा-माई मानैं ।
प्रकट देव निरंजना, ताकी सेव न जानैं ॥ २ ॥
भैरूं भूत सब भरम के, पशु प्राणी धावैं ।
सिरजनहारा सबन का, ताको नहिं पावैं ॥ ३ ॥
आप स्वारथ मेदनी[1], का का नहिं करही ।
दादू साचे राम बिन, मर मर दुख भरही ॥ ४ ॥

उपास्य सम्बन्धी भ्रम दूर कर रहे हैं—जगत् के प्राणी अज्ञान से अंधे हो रहे हैं, उनके नेत्रों से उनका हित अनहित भी नहीं दीखता और जिन प्रभु ने उन्हें उत्पन्न किया है, उनको भी वे नहीं समझ पाते, इसीलिए पत्थर की पूजा करते हैं और बलि देने के निमित्त बकरे आदि का घात करते हैं। निर्मल साधन इनकी दृष्टि में नहीं आता अर्थात् नहीं करते। इसी कारण नरक की ओर जाते दिखाई दे रहे हैं। भैरूं आदि देवताओं को पूजते हैं, महामाई को मानते हैं और बुरी दशा को प्राप्त होते हैं किन्तु जो सब विश्व में प्रकट निरंजन देव है, उनकी भक्ति करना नहीं जानते। भैरूं, भूतादि सब भ्रम मय हैं, पशुओं के समान प्राणी ही उनकी उपासना करते हैं। इसीलिए सर्व विश्व के रचयिता जो प्रभु हैं, उनको न प्राप्त होकर जन्मादि प्रवाह में ही बहते हैं। अपने स्वार्थ सिद्धि के लिये पृथ्वी[1] के प्राणी क्या-क्या नहीं करते ? सभी कुछ कर डालते हैं। किन्तु सत्य-स्वरूप राम की उपासना बिना बारंबार मर-मर कर जन्मते हैं और नाना क्लेश भोगते हैं।

१९६-अन्य उपासक विस्मयवादी भ्रम। रंगताल

साँचा राम न जाणैं रे, सब झूठ बखाणैं रे ॥ टेक ॥
झूठे देवा झूठी सेवा, झूठा करै पसारा ।
झूठी पूजा झूठी पाती, झूठा पूजणहारा ॥ १ ॥

झूठा पाक करै रे प्राणी, झूठा भोग लगावै।
झूठा आड़ा पड़दा देवै, झूठा थाल बजावै ॥ २ ॥
झूठे वक्ता झूठे श्रोता, झूठी कथा सुनावै।
झूठा कलिजुग सब को माने, झूठा भरम दृढावै ॥ ३ ॥
स्थावर जंगम जल थल महियल[१], घट घट तेज समाना ।
दादू आतम राम हमारा, आदि पुरुष पहिचानां ॥ ४ ॥

परमात्मा से भिन्न अन्य की उपासना करने वालों का आश्चर्य तथा उनका भ्रम दिखा रहे हैं—सांसारिक सभी प्राणी सत्य स्वरूप राम को नहीं जानते, मिथ्या का ही कथन करते हैं। उनके देव, सेवा, सब फैलाव, पूजा, पात्रादि, पुजारी सब मिथ्या ही हैं। प्राणी मिथ्या पदार्थों के पाक बनाते हैं, मिथ्या पड़दा लगाते हैं और मिथ्या ही भोग लगा कर मिथ्या ही थाल बजाते हैं। कर्त्तव्य शून्य झूठे वक्ता झूठी कथा सुनाते हैं और झूठे श्रोता सुनते हैं। झूठे कलियुगी प्राणी सब प्रकार मिथ्या को ही मानते हैं और अन्यों को भी मिथ्या भ्रम ही दृढ़ कराते हैं किन्तु हमने तो जल, स्थल तथा नभ[१] के स्थिर और चलने वाले सभी प्राणियों के घट-घट में जो आदि पुरुष चेतन तेज समाया हुआ है, उसी को पहचाना है। वह राम ही हमारा आत्म-स्वरूप है।

१९७-निज मार्ग निर्णय। चौताल

मैं पंथी एक अपार का, मन और न भावै।
सोइ पंथ पावै पीव का, जिसे आप लखावै ॥ टेक ॥
को पंथ हिन्दू तुरक के, को काहू राता।
को पंथ सोफी सेवड़े, को सन्यासी माता ॥ १ ॥
को पंथ जोगी जंगमा, को शक्ति पंथ ध्यावै।
को पंथ कमड़े कापड़ी, को बहुत मनावै ॥ २ ॥
को पंथ काहू के चलै, मैं और न जानूं।
दादू जिन जग सिरजिया, ताही को मानूं ॥ ३ ॥

अपने मार्ग का निर्णय करके दिखा रहे हैं—हम तो अद्वैत अपार परब्रह्म की प्राप्ति के साधन रूप मार्ग में चल रहे हैं। हमारे मन को अन्य कोई भी अच्छा नहीं लगता। उस प्रभु की प्राप्ति का मार्ग वही प्राप्त कर सकता है, जिसे वे स्वयं प्रभु ही दिखाते हैं। नहीं तो, कोई हिन्दू और कोई तुरकों के पंथ में चलता है। कोई अन्य किसी में अनुरक्त है। कोई सूफी, कोई सेवड़े, कोई सन्यासियों के पंथ में मस्त रहता है। कोई योगी, कोई जंगम और कोई शक्ति पंथ की उपासना करता है। कोई चमार-साधु कामड़ों के और कोई नाना कपड़ों की गुदड़ी रखने वाले अघोरियों के पंथ में चलता है। कोई बहुतों को मानता है। कोई किसी के भी पंथ में चले किन्तु हम तो अन्य को हितकर न जानकर, जिसने संसार की रचना की है, उस प्रभु की प्राप्ति के मार्ग को ही अपने कल्याण का साधन मानते हैं।

१९८-साधु मिलाप मंगल । चौताल

आज हमारे रांमजी, साधु घर आये ।
मँगलाचार चहुं दिशि भये, आनन्द बधाये ॥ टेक ॥
चौक पुराऊं मोतियां, घिस चन्दन लाऊं ।
पंच पदारथ पोइ के, यहु माल चढ़ाऊं ॥ १ ॥
तन मन धन करूं वारनैं, प्रदक्षिणा दीजे ।
शीश हमारा जीव ले, नौछावर कीजे ॥ २ ॥
भाव भक्ति कर प्रीति सौं, प्रेम रस पीजे ।
सेवा वन्दन आरती, यहु लाहा लीजे ॥ ३ ॥
भाग हमारा हे सखी, सुख सागर पाया ।
दादू को दर्शन भया, मिले त्रिभुवन राया ॥ ४ ॥

सन्तों के दर्शन से होने वाले मंगल का परिचय दे रहे हैं—आज हमारे सन्तरूप रामजी घर पर पधारे हैं। इस कारण चतुष्टय अन्तःकरण रूप चारों ही दिशाओं में तथा इन्द्रियादि में आनन्द की वृद्धि हुई है। हम मोतियों से चौक पूरते हैं, चंदन घिसके लगाते हैं। अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष और प्रेम इन पांचों पदार्थों वा पंच विषय-विरक्ति रूप पांच पदार्थों की माला बनाकर संतों के चढ़ाते हैं। तन, मन, धन, निछावर करके प्रदक्षिणा देते हैं तथा हमारा शिर और जीव भी लीजिये, हम आप पर निछावर करते हैं। हम भाव और प्रेमाभक्ति से प्रेम-रस का पान करते हुये सेवा, वन्दना और आरती करना रूप यह महान् लाभ ले रहे हैं। हे संत सखि ! हमारा महान् भाग्य था जिससे सुख-सागर संत प्राप्त हुये हैं। हम को इन संतों का दर्शन हुआ है तब से ऐसा ज्ञात होता है कि—मानो त्रिभुवन के राजा परब्रह्म ही मिल गये हैं।

नरेना में पूर्वकाल के संतों ने दर्शन दिया था, तब यह पद तथा साधु अंग की १२१ वीं साखी कही थी। प्रसंग कथा दृ. सु. सि. त. ११-१७ में देखो।

१९९ संत समागम प्रार्थना । दादरा

निरंजन नाम के रस माते, कोई पूरे प्राणी राते ॥ टेक ॥
सदा सनेही राम के, सोई जन साचे ।
तुम बिन और न जानहीं, रंग तेरे ही राचे ॥ १ ॥
आन न भावै एक तूं, सति साधु सोई ।
प्रेम पियासे पीव के, ऐसा जन कोई ॥ २ ॥
तुमहीं जीवन उर रहे, आनन्द अनुरागी ।
प्रेम मगन पिव प्रीतड़ी, लै तुम सौं लागी ॥ ३ ॥

जे जन तेरे रंग रंगे, दूजा रंग नांहीं ।
जन्म सुफल कर लीजिये, दादू उन मांहीं ॥ ४ ॥

संतों का समागम प्राप्त होने की प्रार्थना कर रहे हैं—जो कोई प्राणी पूर्ण रूप से निरंजन राम के नाम-चिन्तन रस में अनुरक्त होकर मस्त हैं और सदा राम-स्वरूप के प्रेमी हैं, वे ही जन सच्चे हैं और हे प्रभो ! जो आपके बिना अन्य किसी को भी सत्य नहीं जानते, आपकी भक्ति रूप रंग में ही रत हैं उनको अन्य कुछ भी प्रिय नहीं लगता, एक आप ही प्रिय लगते हैं, वे सच्चे साधु हैं । जिसके मन इन्द्रियादि एक मात्र प्रभु-प्रेम के ही प्यासे हों। ऐसा भक्त कोई विरला ही होता है। उसके हृदय में आप ही जीवन रूप से रहते हैं। वह आपके स्वरूपानन्द का ही प्रेमी होता है। अपने प्रियतम आपके प्रेम में मग्न रहता है, उसकी वृत्ति आप से ही लगी रहती है। इस प्रकार जो भक्त आपके भक्ति-रंग में रंगे हुये हैं, उनके हृदय पर दूसरा रंग नहीं चढ़ता। हमारा भी निवेदन है कि—उन संतों के समागम में रहकर अपने जीवन को सफल करें।

२००-अत्यन्त निर्मल उपदेश। दादरा

चल रे मन ! जहां अमृत वनां, निर्मल नीके संत जनां ॥ टेक ॥
निर्गुण नांव फल अगम अपार, संतन जीवन प्राण अधार ॥ १ ॥
सीतल छाया सुखी सरीर, चरण सरोवर निर्मल नीर ॥ २ ॥
सुफल सदा फल बारह मास, नाना वाणी धुनि प्रकाश ॥ ३ ॥
तहां बासे बसे अमर अनेक, तहं चलि दादू इहै विवेक ॥ ४ ॥

२००-२०१ में अत्यन्त निर्मल उपदेश कर रहे हैं—अरे मन ! जहां सत्संग रूप अमृत वन है, वहां ही चल, उस वन में परम निर्मल संत-वृक्ष हैं। उन वृक्षों में निर्गुण ब्रह्म का नाम-फल प्राप्त होता है, जिसका चिन्तन रूप भक्षण करने से सन्तों का जीवन-प्राणाधार, मन इन्द्रियों का अविषय अपार प्रभु प्राप्त होता है। उस वन के संत-वृक्षों की शान्ति छाया शीतल है, उससे शरीर सुखी होता है। भगवत्-चरण सरोवर है, उसका ध्यान-जल प्राणी को निर्मल करता है। इस वन के नाम, ज्ञान आदि सभी फल सुन्दर हैं और यह वन बारह मास सदा ही फल देता है। इस वन में इष्ट-पूर्त्ति, नीति, सदाचार, भक्ति, योग और ज्ञानादिक गर्वित नाना वाणी रूप ध्वनि प्रकट होती रहती है। सत्संग वन में निवास करके अनेक साधक अमर हो गये हैं। अत: वहां ही चलना चाहिये। इस सत्संग-वन में ही विवेक-ज्ञान प्राप्त होता है।

२०१-चौताल

चलो मन म्हारा, जहां मिंत्र हमारा,
तहँ जामण मरण नहिं जाणिये, नहिं जाणिये ॥टेक॥
मोह न माया मेरा न तेरा, आवागमन नहीं जम फेरा ॥ १ ॥

पिंड न पड़ै प्राण नहिं छूटै, काल न लागै आयु न खूटै ॥ २ ॥
अमर लोक तहँ अखिल शरीरा, व्याधि विकार न व्यापै पीरा ॥ ३ ॥
राम राज कोइ भिड़ै न भाजै, सुस्थिर रहणा बैठा छाजै ॥ ४ ॥
अलख निरंजन और न कोई, मिंत्र हमारा दादू सोई ॥ ५ ॥

हे मेरे मन ! वहां चल, जहां हमारा मित्र प्रभु है। मैं तुझे बारम्बार कहता हूं-वहां जाने पर जन्म-मरणादि क्लेशों को तो कोई जानता भी नहीं। वहां मोह-माया, मेरा-तेरा, आना-जाना, यम के द्वारा नरकों में फिराना आदि नहीं है, शरीर नहीं गिरता, प्राण नहीं निकलते, काल का कुछ भी बल नहीं लगता, आयु समाप्त नहीं होती। वह अमर लोक है, वहां पर सभी शरीरों को रोगादिक विकार जन्य पीड़ा नहीं होती। उस निरंजन राम के राज्य में न तो कोई युद्ध करता है और न कोई भयभीत होकर दौड़ता है। वहां तो सम्यक् स्थिरता पूर्वक बैठे हुये ही शोभा देते हैं अर्थात् ब्रह्म-निष्ठा ही रहती है। ऐसा अलख निरंजन राम का स्वरूप ही है, अन्य कोई देश विशेष नहीं है और हमारा परम मित्र भी वही है।

२०२-बेली। त्रिताल

बेली आनन्द प्रेम समाइ।
सहजैं मगन राम रस सींचै, दिन दिन बधती जाइ ॥ टेक ॥
सद्गुरु सहजैं बाही बेली, सहज गगन घर छाया।
सहजैं सहजैं कोंपल मेल्हे, जाने अवधू राया ॥ १ ॥
आतम बेली सहजैं फूलै, सदा फूल फल होई।
काया बाड़ी सहजैं निपजै, जानै विरला कोई ॥ २ ॥
मन हठ बेली सूखन लागी, सहजैं जुग जुग जीवै।
दादू बेलि अमर फल लागै, सहज सदा रस पीवै ॥ ३ ॥

परमार्थ बुद्धि-बेलि का परिचय दे रहे हैं—बुद्धि-लता प्रभु-प्रेमानन्द में समा रही है, राम-भक्ति-रस के सिंचन से प्रतिदिन बढ़ती जाती है और सहजावस्था में जाकर परब्रह्म में निमग्न होती है। यह परमार्थ बुद्धि-बेलि हृदय में सद्गुरु ने लगाई है, अब यह सहज-स्वरूप ब्रह्म में निमग्न होकर शरीर-घर पर फैल गई है अर्थात् इन्द्रिय अन्त:करणादि में परमार्थ भावना आ गई है और शनै:शनै: वृद्धि रूप अंकुर देती है। इस बेलि की वृद्धि के रहस्य को अवधूतों में श्रेष्ठ अवधूत संत ही जानते हैं। उक्त प्रकार बढ़कर यह परमार्थ बुद्धि-बेलि अनायास ही अनन्य-भक्ति रूप फूल और आत्म-ज्ञान रूप फल देती है, फिर तो इसके सदा ही फूल-फल लगते रहते हैं अर्थात् निरन्तर बुद्धि में भक्ति ज्ञान बने रहते हैं। इस प्रकार अनायास ही शरीर-बाड़ी की हृदय-क्यारी में यह उत्पन्न होती है और इसे कोई विरला संत ही यथार्थ रूप से जान पाता है। इस परमार्थ बुद्धि-बेलि के लगने पर विषयों में सत्यता के दुराग्रह-युक्त मन-मुखी बुद्धि-बेलि सूखने लगती है और जो परमार्थ-बुद्धि

बेलि के ज्ञान रूप अमर फल लगता है, साधक सहजावस्था में जाकर सदा उसका आनन्द-रस पान करता है और द्वन्दों के कष्ट से रहित होकर अनायास ही ब्रह्म रूप से सदा जीवित रहता है।

२०३-शब्द बाण। त्रिताल

संतो ! राम बाण मोहि लागे।
मारत मिरग मरम तब पायो, सब संगी मिल जागे॥ टेक॥
चित चेतन चिन्तामणि चीन्हा, उलट अपूठा आया।
मंदिर पैसि बहुरि नहिं निकसे, परम तत्त्व घर पाया॥ १ ॥
आवै न जाइ जाइ नहिं आवै, तिहिं रस मनवा माता।
पान करत परमानन्द पायो, थकित भयो चलि जाता॥ २ ॥
भयो अपंग पंक नहिं लागै, निर्मल संग सहाई।
पूरण ब्रह्म अखिल अविनाशी, तिहिं तज अन्त न जाई॥ ३ ॥
सो शर लागि प्रेम परकाशा, प्रकटी प्रीतम वाणी।
दादू दीनदयाल हि जानैं, सुख में सुरति समाणी॥ ४ ॥

शब्द-बाण की विशेषता बता रहे हैं—हे सन्तो ! सद्गुरु के द्वारा चलाये हुये राम सम्बन्धी शब्द-बाण मेरे लगे हैं। सद्गुरु ने शब्द-बाण से जब मन-मृग को मारा, तब मुझे परमार्थ का रहस्य मिला, फिर तो इन्द्रिय रूप सभी साथी भी उस रहस्य से मिल कर विषयासक्ति रूप निद्रा से जग गये हैं। चित्त ने चेतन-चिन्तामणि को पहचाना, तब विषयों से प्रसन्न न हो उनसे लौट आया तथा हृदय मंदिर में प्रविष्ट होकर फिर नहीं निकलता, कारण, परम तत्त्व ब्रह्म अपने घर में प्राप्त कर लिया है। मन ने ब्रह्म-चिन्तन रूप रस पान करते २ परमानन्द प्राप्त कर लिया है। अब उसी में मस्त है। अतः विषय सुख की आशा द्वारा एक विषय पर आकर दूसरे पर जाना और जाकर आना रुक गया है। पहले बारम्बार चला जाता था किन्तु अब थक गया है, आशा रूप पैरों से रहित हो गया है, अब इसके पाप रूप कीचड़ नहीं लगता। निर्मल ब्रह्म के साथ रहता है और वह इसका सहायक है। अब तो यह सर्वात्मा अविनाशी पूर्ण ब्रह्म को त्याग कर अन्य पर जाता ही नहीं। उस सद्गुरु शब्द-बाण के लगने से हृदय में प्रभु प्रेम प्रकट हुआ और प्रियतम प्रभु सम्बन्धी अनुभव वाणी प्रकट हुई है। अब एकमात्र दीन दयालु प्रभु को ही अपना जानता है और उसी सुख स्वरूप-ब्रह्म में मन-वृत्ति समाई रहती है।

२०४-निजस्थान निर्णय। झपताल

मध्य नैन निरखूं सदा, सो सहज स्वरूप।
देखत ही मन मोहिया, है सो तत्त्व अनूप॥ टेक॥
त्रिवेणी तट पाइया, मूरति अविनाशी।
जुग जुग मेरा भावता, सोई सुख राशी॥ १ ॥

तारूणी[1] तट देख हूं, तहां सुस्थाना ।
सेवक स्वामी संग रहै, बैठे भगवाना ॥ २ ॥
निर्भय थान सुहात सो, तहँ सेवग स्वामी ।
अनेक जतन कर पाइया, मैं अंतरजामी ॥ ३ ॥
तेज तार[2] परमिति नहीं, ऐसा उजियारा ।
दादू पार न पाइये, सो स्वरूप सँभारा ॥ ४ ॥

२०४-२०५ में निज स्वरूप साक्षात्कार के स्थान पर निर्णय दे रहे हैं—जो सहज स्वरूप ब्रह्म है उसी को मैं भीतर के नेत्रों से सदा देखता हूं, उसे देखते ही मेरा मन उससे मोहित हो गया था। वह है ही अनुपम तत्व, जहां आज्ञा चक्र में इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना रूप गंगा, यमुना, सरस्वती नदियों का संगम है, उसके ब्रह्म ध्यान रूप तट पर अविनाशी ब्रह्म के स्वरूप का साक्षात्कार हुआ है, वही सुख-राशि प्रति युग में मुझे प्रिय लगता रहा है, उक्त तारक त्रिवेणी[1] के ब्रह्म ध्यान तट पर देखता हूं। उसी ध्यान रूप स्थान में भगवान् विराजे हुये भासते हैं और वृत्ति रूप से सेवक भी स्वामी के संग ही रहता है। जहां सेवक स्वामी एक होकर विराजते हैं, वह समाधि स्थान काल कर्मादि भय से रहित है और प्रिय लगता है, अनेक साधन रूप यत्न करके मैंने अन्तर्यामी प्रभु को प्राप्त किया है। उनके स्वरूप तेज की किरणें[2] असीम हैं, ऐसा प्रकाश भास रहा है कि उसका पार नहीं मिलता, उसी प्रभु स्वरूप का मैंने स्मरण किया है।

२०५-झपताल

निकट निरंजन देखि हौं, छिन दूर न जाई ।
बाहर भीतर एक सा, सब रह्या समाई ॥टेक॥
सत्गुरु भेद लखाइया, तब पूरा पाया ।
नैनन हीं निरखूं सदा, घर सहजैं आया ॥ १ ॥
पूरे सौं परचा भया, पूरी मति जागी ।
जीव जांन जीवन मिल्या, ऐसे बड़ भागी ॥ २ ॥
रोम रोम में रम रह्या, सो जीवन मेरा ।
जीव पीव न्यारा नहीं, सब संग बसेरा ॥ ३ ॥
सुन्दर सो सहजैं रहै, घट अन्तरजामी ।
दादू सोई देखि हौं, सारों संग स्वामी ॥ ४ ॥

मैं अति निकट हृदय में ही निरंजन राम को देख रहा हूं, वे एक क्षण भी हृदय से दूर नहीं जाते, वे तो ब्रह्माण्ड के बाहर भीतर समान रूप से व्यापक हैं। इसीलिये सब में समा रहे हैं वा सब उनमें समा रहे हैं। सद्गुरु ने यह रहस्य बताया है तब ही हमने पूर्ण ब्रह्म को प्राप्त किया है। अब तो

वे अनायास ही हमारे हृदय-घर में आ गये हैं, मैं उनको अपने ज्ञान नेत्रों से सदा देखता हूं। पूरे गुरु से परिचय हुआ तब परमार्थ सम्बन्धी पूरी बुद्धि उत्पन्न हुई है और जीव अपने जीवन रूप प्रभु को जानकर उससे मिला है। इस प्रकार बड़भागी बना है। अब तो वह मेरा जीवन-प्रभु रोम २ में रमा हुआ भासता है, जीव से परमात्मा भिन्न नहीं है, वह अति सुन्दर अन्तर्यामी शरीर में रहकर अनायास ही सब के संग बसता है। जो सब के संग रहने वाला स्वामी है, उसी को मैं देखता हूं।

२०६-परिचय उपदेश । त्रिताल

सहज सहेलड़ी हे, तूं निर्मल नैन निहारि ।
रूप अरूप निर्गुण आगुण[१] में, त्रिभुवन देव मुरारि ॥टेक॥
बारम्बार निरख जगजीवन, इहि घर हरि अविनाशी ।
सुन्दरि जाइ सेज सुख विलसे, पूरण परम निवासी ॥ १ ॥
सहजैं संग परस जगजीवन, आसण अमर अकेला ।
सुन्दरि जाइ सेज सुख सोवै, जीव ब्रह्म का मेला ॥ २ ॥
मिलि आनन्द प्रीति करि पावन, अगम निगम जहँ राजा ।
जाइ तहां परस पावन को, सुन्दरि सारे काजा ॥ ३ ॥
मंगलाचार चहूं दिशि रोपै, जब सुन्दरि पिव पावै ।
परम ज्योति पूरे सौं मिल कर, दादू रंग लगावै ॥ ४ ॥

साक्षात्कारार्थ उपदेश कर रहे हैं—हे बुद्धि वृत्ति रूप सहेली ! तू निर्द्वन्द्व होकर संशय विपर्य्य-मल रहित ज्ञान नेत्रों से त्रिभुवन के रूपवान्, अरूप, गुण रहित, और सहगुण[१] सभी पदार्थों में मुरारि देव को देख, वे अविनाशी हरि इस हृदय घर में ही हैं, उन जगजीवन को बारम्बार देख। हे सुन्दरि ! ऐसा करने से तू सब विश्‍व में निवास करने वाले परम परिपूर्ण प्रभु की स्वरूपाकार शय्या पर जाकर परम सुख का उपभोग करेगी, अनायास ही जगजीवन प्रभु के संग होकर उनके स्पर्श द्वारा अद्वैत और अमर आसन प्राप्त करेगी। ऐसे जब वृत्ति सुन्दरी अद्वैत, अमर शय्या पर जाकर ब्रह्मानन्द रूप निद्रा में शयन करती है, तब जीव ब्रह्म एक हो जाते हैं। जहां वेद से अगम प्रभु शोभित हो रहे हैं, वहां ही पवित्र प्रीति द्वारा उनसे मिलकर आनन्द ले। वहां जाकर जो वृत्ति सुन्दरी पवित्र प्रभु का स्पर्श करती है वह अपने कार्य को पूर्ण कर लेती है। जब वृत्ति सुन्दरी पवित्र प्रभु को प्राप्त करती है, वह अपने कार्य को पूर्ण कर लेती है। जब वृत्ति सुन्दरी पवित्र प्रभु को प्राप्त करती है तब अन्त:करण चतुष्टय रूप चारों ही दिशाओं में मंगलाचरण होने लगते हैं और वह साधक परम ज्योति स्वरूप पूर्ण ब्रह्म से मिलकर अन्यों के भी वही रंग लगाता है।

२०७-वस्तु निर्देश । त्रिताल

तहँ आपै आप निरंजना, तहँ निशवासर नहिं संजमा ॥ टेक ॥
तहँ धरती अम्बर नांहीं, तहँ धूप न दीसै छांहीं ।
तहँ पवन न चालै पानी, तहँ आपै एक बिनानी ॥ १ ॥
तहँ चंद न ऊगै सूरा, मुख काल न बाजै तूरा ।
तहँ सुख दुख का गम नांहीं, ओ तो अगम अगोचर मांहीं ॥ २ ॥
तहँ काल काया नहिं लागै, तहँ को सोवै को जागै ।
तहँ पाप पुन्य नहिं कोई, तहँ अलख निरंजन सोई ॥ ३ ॥
तहँ सहज रहै सो स्वामी, सब घट अंतरजामी ।
सकल निरन्तर बासा, रट दादू संगम पासा ॥ ४ ॥

२०७-२०८ में ब्रह्म वस्तु का निर्देश कर रहे हैं—निर्विकल्प समाधि-देश में स्वयं आप माया रहित ब्रह्म ही है। संयमादि साधन, रात्रि, दिन, पृथ्वी, आकाश नहीं हैं। धूप और छाया नहीं दीखती। वायु नहीं चलता, पानी नहीं वरसता। वहाँ तो स्वयं एक विश्वकर्ता ही है। चन्द्रमा-सूर्य उदय नहीं होते। वहां यम वा यमदूतों का मुख नहीं देखना पड़ता, न यम का नगाड़ा बजता। विषय जन्य सुख-दु:ख नहीं होते। वह अगम अगोचर देश देह के भीतर ही है। वहां रहते हुये काया को काल नहीं खाता। वहां कौन सोता है और कौन जागता है ? अर्थात् वहां सोना जागना भी नहीं बनता, न कोई पाप-पुण्य है। वहां सहजावस्था में तो जो मन इन्द्रियों का अविषय निरंजन सब अन्त:करणों का अन्तर्यामी, निरन्तर सब में बसने वाला स्वामी ही रहता है। उसका इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना के संगम स्थान आज्ञा चक्र में ध्यान करते हैं या उसका नाम रटते हैं।

२०८-त्रिताल

अवधू बोल निरंजन बाणी, तहँ एकै अनहद जाणी ॥ टेक ॥
तहँ वसुधा का बल नाहीं, तहँ गगन घाम नहिं छाहीं।
तहँ चंद सूर नहिं जाई, तहँ काल काया नहिं भाई ॥ १ ॥
तहँ रैणि दिवस नहिं छाया, तहँ बाव वरण नहिं माया ।
तहँ उदय अस्त नहिं होई, तहँ मरै न जीवै कोई ॥ २ ॥
तहँ नांहीं पाठ पुराना, तहँ अगम निगम नहिं जाना।
तहँ विद्या वाद न ज्ञाना, नहिं तहाँ योग अरु ध्याना ॥ ३ ॥
तहँ निराकार निज ऐसा, तहँ जाण्या जाइ न जैसा ।
तहँ सब गुण रहिता गहिये, तहँ दादू अनहद कहिये ॥ ४ ॥

हे अवधूत ! निरंजन ब्रह्म सम्बन्धी वाणी बोलो, अन्य सब त्याग दो। कारण, अन्तर्मुख स्थिति में अनुभव द्वारा एक असीम ब्रह्म सम्बन्धी वाणी ही जानने में आती है। समाधि में पृथ्वी का जन धनादि बल नहीं है। आकाश, धूप और बादल छाया नहीं है। वहां चन्द्र सूर्य नहीं जा सकते। हे भाई ! वहां रहते हुये शरीर को काल नहीं खाता। वहां रात्रि दिन और वृक्ष छाया नहीं है। न वायु चलता है न माया और न मायिक रूप रंगादि हैं। वहां तारे आदि का उदय अस्त नहीं होता। न कोई मरता है, न कोई जीवित रहता है। न पुराण पाठ होता है। न वेद शास्त्र जानने में आते हैं। न नाना विद्या हैं, न जल्प-वितंडादि वाद हैं। न मन इन्द्रियों के ज्ञान हैं, न हठ योगादि योग हैं, न मूर्ति आदि का ध्यान है। वहां तो जैसा मन इन्द्रियों से न जाना जाय, ऐसा निराकार निज स्वरूप है। वहां जो सब गुणों से रहित है, उसे स्वस्वरूप करके ग्रहण करो और उसी असीम का कथन करो।

२०९-प्रसिद्ध साधु। प्रतिपाल

बाबा ! को ऐसा जन जोगी।
अंजन छाड़ै रहै निरंजन, सहज सदा रस भोगी॥ टेक॥
छाया माया रहै विवर्जित, पिंड ब्रह्मण्ड नियारे।
चंद सूर तैं अगम अगोचर, सो गह तत्व विचारे॥ १ ॥
पाप पुन्य लिपै नहिं कबहूँ, द्वै पख रहिता सोई।
धरणि आकाश ताहि तैं ऊपरि, तहां जाइ रत होई॥ २ ॥
जीवन मरण न बाँछै कबहूँ, आवागमन न फेरा।
पानी पवन परस नहिं लागै, तिहिँ संग करै बसेरा॥ ३ ॥
गुण आकार जहां गम नाँहीं, आपैं आप अकेला।
दादू जाइ तहां जन जोगी, परम पुरुष सौं मेला॥ ४ ॥

महान् संत का परिचय दे रहे हैं—हे बाबा ! ऐसा योगी कोई विरला जन ही होता है, जो मायिक प्रपंच को त्याग कर सदा निर्द्वन्द्वावस्था में निरंजन ब्रह्म के चिन्तन रूप रस के उपभोग में लगा रहे। जहां माया की प्रभाव रूप छाया पड़ती है, वहां से दूर रहे। शरीराध्यास और ब्रह्माण्ड के भोगों की आसक्ति से अलग रहे। जो चन्द्र सूर्यादि से अगम और इन्द्रियों का अविषय तत्व है, उसी को निज रूप से ग्रहण करके विचारे, आत्मा को अकर्ता जानकर कभी भी पाप-पुण्य से लिप्त न हो, निज वा पर दोनों पक्षों से रहित होकर, शरीरस्थ-मूलाधारादि पंच चक्र रूप पृथ्वी आदि पंच तत्त्वों से ऊपर आज्ञा चक्र में वृत्ति द्वारा जाकर, उसी ब्रह्म के स्वरूप में अनुरक्त होवे, अधिक जीवन वा शीघ्र मृत्यु की इच्छा कभी भी न करे, लोकान्तरों के गमनागमन रूप चक्कर में न पड़े। जिसको जल वायु आदि स्पर्श नहीं कर सकते, चिन्तन द्वारा उसी परब्रह्म के संग निवास करे। जहां गुण और आकारों की पहुंच नहीं है और आप स्वयं अद्वैत स्वरूप है उस समाधि में जाकर ऐसा योगी परम पुरुष ब्रह्म से मिल जाता है।

२१०-परिचय परा भक्ति। राज विद्याधर ताल

जोगी जान जान जन जीवै।
बिन हीं मनसा मन हिं विचारै, बिन रसना रस पीवे ॥ टेक॥
बिन हीं लोचन निरख नैन बिन, श्रवण रहित सुन सोई।
ऐसे आतम रहै एक रस, तो दूसर नाम न होई ॥ १ ॥
बिन हीं मारग चलै चरण बिन, निहचल बैठा जाई।
बिन ही काया मिलैं परस्पर, ज्यों जल जलहि समाई ॥ २ ॥
बिन हीं ठाहर आसण पूरै, बिन कर बैन बजावै।
बिन हीं पाँवों नाचै निशि दिन, बिन जिह्वा गुण गावै ॥ ३ ॥
सब गुण रहिता सकल बियापी, बिन इन्द्री रस भोगी।
दादू ऐसा गुरु हमारा, आप निरंजन जोगी ॥ ४ ॥

२१०-२११ में परिचय पूर्वक पराभक्ति दिखा रहे हैं—योगी जन साधन द्वारा मायिक प्रपंच को मिथ्या तथा परब्रह्म को सत्य स्वरूप जान कर जीवन्मुक्त हुये रहते हैं। वे सांसारिक भावना युक्त मन बुद्धि से रहित हो स्वरूप का विचार करते हैं। रसना बिना ही स्वरूपानन्द रस का पान करते हैं। बाह्य नेत्र तथा ज्ञान नेत्रों के बिना ही स्वस्वरूप स्थिति को देखते हैं। बाह्य श्रवणों-बिना ही उस आत्म स्वरूप ब्रह्म का अभेद निश्चय रूप श्रवण करते हैं। यदि उक्त प्रकार आत्मा ब्रह्म में अद्वैत रूप से निरन्तर स्थित रहे तो द्वैत का नाम भी ज्ञात नहीं होता। जो बाह्य मार्ग और चरणों के बिना ही साधन द्वारा चल कर निश्चल ब्रह्म के पास जा बैठा है और बिना ही शरीर के आत्मा तथा ब्रह्म परस्पर मिलकर जैसे जल में जल समा जाता है वैसे ही ब्रह्म में समा गया है। सांसारिक स्थान बिना परब्रह्म में पूर्ण अभेद रूप से आसन लगाया है और बाह्य हाथों के बिना ही अनाहत ध्वनि रूप आनन्द की वंशी बजाता है। बाह्य पैरों के बिना ही भावना द्वारा रात्रि दिन नृत्य करता है। बाह्य जिह्वा बिना ही ध्यानावस्था में प्रभु के गुण गान करता है। स्वस्वरूप को सब गुणों से रहित और सब में व्यापक समझते हुये बाह्य इन्द्रियों के बिना ही ब्रह्मानन्द रूप महारस का उपभोग करता है ऐसा योगी स्वयं निरंजन ब्रह्म रूप और हमारा गुरु है।

२११-रूपक ताल

इहै परम गुरु योगं, अमी महारस भोगं॥ टेक॥
मन पवना स्थिर साधं, अविगत नाथ अराधं, तहँ शब्द अनाहद नादं॥ १ ॥
पंच सखी परमोधं, अगम ज्ञान गुरु बोधं, तहँ नाथ निरंजन शोधं ॥ २ ॥
सद्गुरु मांहिं बतावा, निराधार घर छावा, तहँ ज्योति स्वरूपी पावा॥ ३ ॥
सहजैं सदा प्रकाशं, पूरण ब्रह्म विलासं, तहँ सेवक दादू दासं ॥ ४ ॥

इस शरीर में ही परम गुरु का बताया हुआ योग साधन तथा ज्ञानामृत रूप महारस का उपभोग होता है। जब साधन द्वारा मन प्राण को स्थिर करके मन इन्द्रियों के अविषय परमात्मा की उपासना की जाती है, तब अनाहत नाद रूप शब्द सुनने में आते हैं। पंच ज्ञानेन्द्रिय रूप सखियाँ विषयासक्ति रूप निद्रा से जगती हैं। गुरु उपदेश द्वारा आत्म स्वरूप ब्रह्म का परोक्ष ज्ञान होता है, फिर साधक हृदय में निदिध्यासन द्वारा निरंजन प्रभु की खोज करके उसे अभेद रूप से प्राप्त करता है। इस प्रकार सद्गुरु ने शरीर के भीतर ही बताया है और हमारा मन भी उस निराधार ब्रह्म रूप घर पर ही स्थित हुआ, तब वहां ही ज्योति स्वरूप ब्रह्म हमें प्राप्त हुआ है और अनायास ही सदा प्रकाश स्वरूप पूर्ण ब्रह्म के साक्षात्कार का आनन्द प्राप्त हो रहा है। हम वहां वृत्ति द्वारा उनके सेवक रूप से रहते हैं।

२१२-(गुजराती) अनभई। त्रिताल

मूनै येह अचंभो थाये, कीड़ीये[1] हस्ती विडारयो, तेन्है बैठी खाये ॥ टेक ॥

जाण हु तौ ते बैठो हारे, अजाण तेन्हैं ता वाहे[2]।
पांगुलोउ जावा लागो, तेन्हैं कर को साहे[3] ॥ १ ॥
नान्हो हुतो ते मोटो थायो, गगन मंडल नहिं माये ।
मोटे रो विस्तार भणीजे, ते तो केन्हे जाये[4] ॥ २ ॥
ते जाणैं जे निरखी जोवे, खोजी नैं वलीमांहे[5]।
दादू तेन्हौं मर्म न जाणैं, जे जिभ्या विहूंणौं गाये ॥ ३ ॥

इति राग रामकली समाप्त : ॥ ८ ॥ पद ४६ ॥

सांसारिक दशा में न होने वाली घटना बता रहे हैं—मुझे यह आश्चर्य है कि-जो प्रथम छिद्रान्वेषिणी वृत्ति रूप चींटी[1] थी वही साधन से निर्दोष हो वस्तु विचार द्वारा काम-करि को मारकर स्थिर बैठी हुई उसे खा रही है अर्थात् काम-जन्य विक्षेप को नष्ट कर रही है। जो जानकार था, वह तो संसार-भ्रमण से हार कर विचार द्वारा स्वरूप को समझ के उसी में स्थिरता पूर्वक बैठ गया है। जो अज्ञानी है, उसे वे पूर्व की सांसारिक वासनायें संसार में बहकाती[2] हैं। पहले गुणरूप पैरों से युक्त था तब तो मन प्रभु की ओर नहीं जाता था। अब निर्गुण रूप पंगुता आने पर परब्रह्म के स्वरूप में जाने लगा है। उसे कौन-सा विघ्न हाथ पकड़[3] सकता है ? अज्ञान दशा में मायिक प्रपंच महान् और परब्रह्म लघु दिखाई देता था। अब ज्ञान दशा में परब्रह्म इतना महान् दिखाई देने लगा है कि-गगन मंडल में नहीं समाता, ब्रह्माण्ड के बाहर भीतर सर्वत्र व्यापक रूप से भासता है। उस महान् ब्रह्म का विस्तार कथन कर सके ऐसे व्यक्ति को किस जननी ने जन्म[4] दिया है ? जो विचार द्वारा देखने का प्रयत्न करते हैं, वे ही उसे देखते हैं। वह खोजने वाले को भी बिलमाता[5] व अपने में लीन[5] कर लेता है। जिसका गुण-गान बिना ही जिह्वा के ध्यानावस्था में किया जाता है, मैं तो उसके आदि, अन्त, मध्य का यथार्थ रहस्य भी नहीं जानता।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग रामकली समाप्त: ॥ ८ ॥

अथ राग आसावरी ९

(गायन समय प्रातः ६ से ९)

२१३-उत्तम स्मरण । ब्रह्म ताल

तूं हीं मेरे रसना, तूं हीं मेरे बैना, तूं हीं मेरे श्रवना, तूं हीं मेरे नैना ॥ टेक॥
तूं ही मेरे आतम कँवल मंझारी, तूं हीं मेरी मनसा तुम परवारी ॥ १ ॥
तूं हीं मेरे मन हीं, तूं हीं मेरे श्वासा, तूं हीं मेरे सुरतैं प्राण निवासा॥ २ ॥
तूं हीं मेरे नखशिख सकल शरीरा, तूं हीं मेरे जियरे ज्यों जल नीरा ॥ ३ ॥
तुम बिन मेरे अवर को नांहीं, तूं ही मेरा जीवन दादू मांहीं॥ ४ ॥

उत्तम स्मरण का प्रकार दिखा रहे हैं—आप ही मेरी जिह्वा, वचन, श्रवण, नयनादि इन्द्रियाँ हैं। आप ही मेरे हृदय कमल में रहने वाली आत्मा हैं आप ही मेरी बुद्धि और परिवार हैं। आप ही मेरे मन, श्वास और वृत्ति हैं। प्राणों के निवास स्थान हैं। आप ही नख से शिखा पर्यन्त मेरा शरीर हैं। जैसे जल और नीर दो नाम होने पर भी वस्तु एक ही है वैसे ही जीव और ब्रह्म दो नाम होने पर भी आप अद्वैत रूप मेरे जीव हैं। आप के बिना संसार में मेरा सम्बन्धी और कोई भी नहीं है। आप ही मेरे जीवन हैं। मैं आपके ही भीतर स्थित हूँ। इस प्रकार सब कुछ प्रभु स्वरूप समझना ही उत्तम स्मरण है।

२१४-अनन्य शरण । झूमरा

तुम्हारे नाम लाग हरि जीवन मेरा,
मेरे साधन सकल नाम निज तेरा ॥ टेक॥
दान पुन्य तप तीरथ मेरे, केवल नाम तुम्हारा ।
ये सब मेरे सेवा पूजा, ऐसा बरत हमारा ॥ १ ॥
ये सब मेरे वेद पुराणा, शुचि संयम है सोई ।
ज्ञान ध्यान ये ही सब मेरे, और न दूजा कोई ॥ २ ॥
काम क्रोध काया वश करणाँ, ये सब मेरे नामा ।
मुक्ता गुप्ता परकट कहिये, मेरे केवल रामा ॥ ३ ॥
तारण तिरण नाम निज तेरा, तुम हीं एक अधारा ।
दादू अंग एक रस लागा, नाम गहै भव पारा ॥ ४ ॥

२१४-२१५ में अनन्य शरण दिखा रहे हैं—हे हरे ! आपके नाम स्मरण में लगे रहने से ही मेरा जीवन चलता है। मेरे सभी उपाय आपका निज नाम सत्य-राम ही हैं। मेरे तो केवल आपका नाम ही दान, पुन्य-तप तीर्थ हैं। आपके नाम ही मेरे सब प्रकार की सेवा-पूजा हैं। ऐसा ही मेरा व्रत है। ये आपके नाम ही मेरे वेद पुराणादि सब ग्रन्थ हैं, पवित्रता तथा संयम भी आपके नाम ही हैं। मेरे ज्ञान ध्यान भी आपके नाम ही है, और दूसरा साधन कोई भी मेरे पास नहीं है। काम, क्रोध और

शरीर को वश में करने के उपाय भी मेरे सब प्रकार आपके नाम ही हैं। बहुत गुप्त वा प्रकट जो भी कहें मेरे तो केवल राम-नाम ही हैं। आपका निज नाम ''सत्य राम'' संसार से भक्तों को तारने वाला है। एक आप ही मेरे आधार हैं। मेरा मन तो आपका नाम ग्रहण करके संसार से पार एक रस आपके स्वरूप में ही लगा है।

२१५-चतुष्ताल

हरि केवल एक अधारा, सोई तारण तिरण हमारा ॥ टेक ॥
ना मैं पंडित पढ़ गुण जानूं, ना कुछ ज्ञान विचारा।
ना मैं अगमी ज्योतिष जानूं, ना मुझ रूप सिंगारा ॥ १ ॥
ना तप मेरे इन्द्री निग्रह, ना कुछ तीरथ फिरणा।
देवल पूजा मेरे नाहीं, ध्यान कछू नहिं धरणा ॥ २ ॥
जोग जुगति कछू नहिं मेरे, ना मैं साधन जानूं।
औषधि मूली मेरे नांहीं, ना मैं देश बखानूं ॥ ३ ॥
मैं तो और कछू नहिं जानूं, कहो और क्या कीजै।
दादू एक गलित गोविन्द सौं, इहि विधि प्राण पतीजै ॥ ४ ॥

जो तिरने वालों को भी तारने वाले हैं वे हरि ही एक मात्र हमारे आश्रय हैं। न मैं पढ़ना-गुणना जानने वाला पंडित हूँ, न मुझ में कुछ ज्ञान-विचार ही है। न मैं भविष्य की बात कहने वाला हूं, न ज्योतिष ही जानता हूँ। न मुझे नाना प्रकार के रूप बनाना और श्रृंगार करना ही आता है। न मैंने इन्द्रिय-निग्रहादिक तप ही किये हैं, न मैंने तीर्थों में ही कुछ भ्रमण किया है। न मेरे द्वारा देव-मंदिरों की पूजा हो सकी है, न कुछ ध्यान ही करता हूं, न मेरे को कुछ योग-युक्ति ही आती है और न मैं कोई साधन ही जानता हूं। न मेरे पास जड़ी-बूंटी आदि औषधि ही है, न मैं देशान्तरों की कथाएं कहता हूं। मैं तो अन्य कुछ भी नहीं जानता और आप ही कहें क्या किया जाय ? मैं तो एक गोविन्द के प्रेम रस में गला हुआ हूं। इसी प्रकार प्रेमाभक्ति में रत होने पर ही मेरे मन को प्रभु प्राप्ति का विश्वास होता है।

२१६-परिचय। चतुष्ताल

पीव घर आवनो ए, अहो मोहि भावनो ते ॥ टेक ॥
मोहन नीको री हरी, देखूंगी अंखियाँ भरी।
राखूं हौं उर धरी प्रीति खरी, मोहन मेरो री माई।
रहूँगी चरणों धाई, आनन्द बधाई, हरि के गुण गाई ॥ १ ॥
दादू रे चरण गहिये, जाई ने तिहां तो रहिये।
तन मन सुख लहिये, बिनती गहिये ॥ २ ॥

२१६-२१७ में निरन्तर साक्षात्कारार्थ उत्कंठा दिखा रहे हैं—ए संत रूप माई ! प्रियतम प्रभु का घर में आना अत्यन्त हर्षप्रद है। वे मुझे अति प्रिय लगते हैं। अरी ! वे विश्व विमोहन हरि

बहुत ही अच्छे हैं। उनको मैं इच्छा भर कर नेत्रों से देखूंगी। हे माई ! वे मोहन मेरे हैं, उनमें मेरी सच्ची प्रीति है। उन्हें हृदय में विराजमान करके रक्खूंगी। मैं साधन रूप दौड़ लगाकर उनके चरणों में जाकर रहूंगी और उन हरि के गुण-गान करूंगी तब ही मेरे आनन्द की वृद्धि होगी। अरे ! अब तो वहां जाकर उन प्रभु के चरण पकड़ कर रहूंगी, वे मेरी प्रार्थना ग्रहण करेंगे तब ही मेरे तन मन को आनन्द प्राप्त होगा।

२१७-त्रिताल

हां माई ! मेरो राम बैरागी, तजि जनि जाई ॥ टेक ॥
राम विनोद करत उर अंतरि, मिलिहौं बैरागनि धाई ॥ १ ॥
जोगिन ह्वै कर फिरूंगी बिदेशा, राम नाम ल्यौ लाई ॥ २ ॥
दादू को स्वामी है रे उदासी, रहिहौं नैन दोइ लाई ॥ ३ ॥

अरी संत रूप माई ! हां, तुम ठीक कहती हो—मेरा राम विरक्त ही है वह मुझे त्यागकर न चला जाय। राम मेरे हृदय के भीतर क्रीड़ा कर रहे हैं। मैं भी विषयों से विरक्त हो, प्रेम रूप दौड़ लगाकर उन से मिलूंगी। वे नहीं मिलेंगे तो योगिनी होकर राम नाम में वृत्ति लगाते हुये विदेशों में भ्रमण करूंगी। यद्यपि मेरे स्वामी विरक्त हैं तो भी मैं अपने दोनों नेत्र उन्हीं के स्वरूप में लगाये रहूँगी।

२१८-उपदेश चेतावनी। राजमृगांक ताल

रे मन, गोविन्द गाइ रे गाइ, जन्म अविरथा जाइ रे जाइ॥ टेक॥
ऐसा जनम न बारम्बारा, तातैं जप ले राम पियारा॥ १ ॥
यहु तन ऐसा बहुरि न पावै, तातैं गोविन्द काहे न गावे॥ २ ॥
बहुरि न पावै मानुष देही, तातैं करले राम सनेही॥ ३ ॥
अब के दादू किया निहाला, गाइ निरंजन दीन दयाला॥ ४ ॥

उपदेश द्वारा मन को सचेत कर रहे हैं—अरे मन ! निरन्तर गोविन्द नाम का चिन्तन कर, भजन बिना यह नर जन्म प्रतिक्षण व्यर्थ जा रहा है। ऐसा जन्म बारम्बार नहीं मिलता। इसलिये प्रियतम राम के नाम का जप कर। जब मैं तुझे कह रहा हूँ कि ऐसा जन्म पुन: नहीं प्राप्त होगा, फिर भी तू गोविन्द के गुण क्यों नहीं गाता ? तू भजन द्वारा राम को अपना स्नेही कर ले, इससे तेरा आत्मा पुन: मनुष्य देह को भी न प्राप्त होकर राम में ही मिल जायेगा। उन भगवान् ने अबकी बार तुझे शरीर और सत्संग देकर आनन्दित कर दिया है। अत: उन दीनदयालु निरंजन राम के नाम और गुणों का गायन कर।

२१९ -काल चेतावनी। राजमृगांक ताल

मन रे, सोवत रैनि विहानी, तैं अजहूँ जात न जानी ॥ टेक ॥
बीती रैनि बहुरि नहिं आवै, जीव जाग जनि सोवै।
चारों दिशा चोर घर लागे, जाग देख क्या होवै॥ १ ॥

भोर भये पछतावन लागे, मांहिं महल कुछ नांहीं।
जब जाइ काल काया कर लागै, तब सोधै घर मांहीं ॥ २ ॥
जाग जतन कर राखो सोई, तब तन तत्त न जाई।
चेतन पहरै चेतत नांहीं, कह दादू समझाई ॥ ३ ॥

२१९-२२० में काल से सचेत कर रहे हैं—अरे मन ! मोह निद्रा में सोते २ जीवन-रात्रि व्यतीत होने पर आई, तूने अब तक भी इसे नष्ट होते हुये नहीं जाना। स्मरण रख, जीवन-रात्रि व्यतीत होने पर पुन: नहीं हाथ आयेगी। इसलिये हे मन ! शीघ्र जाग, सोवे मत। कामादिक चोर हृदय घर के चारों और तेरे ज्ञान धन को चुराने में लगे हैं। तू जाग करके देख तो सही क्या हो रहा है। जब आयु चली जाती है और शरीर काल के हाथ में आ जाता है, तब प्राणी हृदय घर में ज्ञानादिक धन और दैवी गुण रूप बल को खोजता है। वृद्धावस्था रूप प्रात: काल होने पर जब हृदय-महल में ज्ञानादिक कुछ भी नहीं मिलते, तब पश्चात्ताप करने लगता है। अत: जाग कर साधन रूप उपाय द्वारा उस ज्ञान और दैवीगुण रूप बल की रक्षा कर, तब तो तेरे शरीर से तत्त्व ज्ञान रूप धन नहीं जा सकेगा। हम तो तुझे बारम्बार कह कर समझाते हैं, तू चेतने के समय में सावधान नहीं हो रहा है, फिर सावधान होने से क्या बनेगा ?

२२०-राजविद्याधर ताल

देखत ही दिन आइ गये, पलट केश सब श्वेत भये॥टेक॥
आई जुरा मीच अरु मरणा, आया काल अबै क्या करणा॥ १ ॥
श्रवणों सुरति गई नैन न सूझै, सुधि बुधि नाठी कह्या न बूझै ॥ २ ॥
मुखतैं शब्द विकल भई बाणी, जन्म गया सब रैनि बिहाणी॥ ३ ॥
प्राण पुरुष पछतावन लागा, दादू अवसर काहे न जागा॥ ४ ॥

देखते २ ही काल के मुख में जाने के दिन आ गये हैं। सब केश भी श्याम रंग बदल कर श्वेत हो गये हैं। जरावस्था आ गई और मृत्यु भी समीप आ रही है। जाने का समय आ ही गया है, अब क्या किया जा सकता है ? अब तो मरना ही होगा। श्रवणों से सुनने की शक्ति चली गई, नेत्रों से दीखता नहीं, स्मरण-शक्ति नष्ट हो गई, मुख से कहा गया शब्द कोई समझता नहीं, बाणी विकल हो गई है, ठीक नहीं निकलती। अब आयु-रात्रि भी व्यतीत होने वाली ही है। सारा जन्म व्यर्थ ही चला गया। यह देखकर प्राण-धारी पुरुष पश्चात्ताप करने लगता है, किन्तु अब पश्चात्ताप करने से क्या हो ? समय पर क्यों नहीं जगा ? यह तेरा ही प्रमाद तुझे दु:खप्रद हुआ है।

२२१-उपदेश। राजविद्याधर ताल

हरि बिन हां हो कहुं सचु नांहीं, देखत जाइ विषय फल खाहीं ॥ टेक ॥
रस रसना के मीन मन भीरा, जल तैं जाइ यों दहै शरीरा ॥ १ ॥
गज के ज्ञान मगन मद माता, अंकुश डोरि गहै फँद गाता ॥ २ ॥

मरकट मूठी मांहीं मन लागा, दुख की राशि भ्रमै भ्रम भागा ॥ ३ ॥
दादू देखु हरी सुखदाता, ताको छाड़ि कहां मन राता ॥ ४ ॥

२२१-२२२ में हितकर उपदेश कर रहे हैं-संत-''हो मन !'' मन-हां। संत-हरि चिंतन बिना कहीं भी सुख नहीं है। तू यह देखते हुये भी संसार में जाकर विषय-फल ही खाता है, यह उचित नहीं। हे मन ! देख जिह्वा रस के वश हो, मच्छी जल से बाहर जा, विपद में पड़कर मरती है, वैसेही विषयों से मानव का शरीर संतापित होता है। हाथी के विषय ज्ञान की ओर देख, जो मद से मस्त मग्न हुआ वन में फिरता है। वही कागज की हथिनी पर गिरकर अपने को फँदे में डाल लेता है, डोरी बंधन और अंकुश के आघात सहता है, वैसे ही मानव स्पर्श-विषय से दु:ख में पड़ता है। वानर का मन जब चणों की मुट्ठी में लग जाता है तब उसके ऊपर दु:खों की राशि आ गिरती है, डोरी से बँध कर बाजीगर के साथ जहां तहां भ्रमण करता है, वैसे ही मानव चौरासी में भ्रमण करता है। देख, हमारा तो भ्रम भाग गया है और पूरा निश्चय हो गया-एक हरि ही सुखप्रद हैं। हे मन ! तू उन हरि को छोड़ कर कहां अनुरक्त हो रहा है ? शीघ्र हरि में ही अनुरक्त हो।

२२२-उदीघण ताल

सांईं बिना संतोष न पावै, भावै घर तज वन वन धावै॥ टेक ॥
भावै पढ गुन वेद उचारै, आगम निगम सबै विचारै ॥ १ ॥
भावै नव खंड सब फिर आवै, अजहूँ आगे काहे न जावै ॥ २ ॥
भावै सब तज रहै अकेला, भाई बन्धु न काहू मेला ॥ ३ ॥
दादू देखै सांईं सोई, साच बिना संतोष न होई ॥ ४ ॥

चाहे घर को त्याग कर वन में दौड़ जाय, तो भी भगवद्-भजन बिना संतोष नहीं मिलता। चाहे पढ़-गुन कर वेद मंत्रों का उच्चारण करे, संपूर्ण शास्त्र तथा सभी वेदों को विचारे, चाहे नव खंडों के सभी भागों में भ्रमण कर आवे और भ्रमण से अब भी तृप्त न हो तो बचे ब्रह्माण्ड में भी क्यों न जाय ? चाहे भाई-बांधवादि किसी से भी न मिले तथा सभी कुछ त्याग कर अकेला ही रहे, तो भी क्या होता है ? हम तो उस प्रभु को सर्वत्र ही देखते हैं। उस सत्य-स्वरूप के दर्शन बिना चाहे कुछ भी करो, संतोष नहीं होता।

२२३-मनोपदेश चेतावनी। उदीक्षण ताल

मन माया रातो भूले।
मेरी मेरी कर कर बोरे, कहा मुग्ध नर फूले ॥ टेक॥
माया कारण मूल गँवावै, समझ देख मन मेरा।
अंत काल जब आइ पहूंचा, कोई नहीं तब तेरा ॥ १ ॥
मेरी मेरी कर नर जाणैं, मन मेरी कर रहिया।
तब यहु मेरी काम न आवे, प्राण पुरुष जब गहिया ॥ २ ॥

राव रंक सब राजा राणा, सबहिन को बौरावै।
छत्रपति भूपति तिनके सँग, चलती बेर न आवै।। ३ ।।
चेत विचार जान जिय अपने, माया संग न जाई ।
दादू हरि भज समझ सयाना, रहो राम ल्यौ लाई।। ४ ।।

मन को उपदेश द्वारा सावधान कर रहे हैं— हे मन ! तू माया में अनुरक्त होकर प्रभु को भूल रहा है। अरे पागल ! मेरी २ करके मूर्ख नर के समान मिथ्या विषय-सुखों में क्यों फूल रहा है ? हे मेरे मन ! तू माया के लिए अपने जीवन रूप मूल धन को खो रहा है, कुछ विचार करके तो देख, जब अन्त समय आ पहुँचेगा, तब तेरा साथ कोई न देगा। जैसे साधारण नर सांसारिक वस्तुओं को मेरी २ कहते हुये मन में अपनी जानते हैं, वैसे ही तू मेरी २ कर रहा है किन्तु जब प्राणधारी पुरुष को काल पकड़ेगा तब यह मेरी २ करने की क्रिया कुछ भी काम न आयेगी। इस माया ने राव, रंक संपूर्ण राजा-राणादि सभी को पागल कर रखा है किन्तु शरीर छोड़कर जाते समय छत्रपति, भूपति भी इसे अपने साथ नहीं ले जा सके। यह माया किसी के भी संग नहीं जाती मन। हे चतुर ! सम्यक् समझ कर हरि को ही भज और राम में ही वृत्ति लगा कर रह।

२२४-काल चेतावनी। ललित ताल

रहसी एक उपावनहारा, और चलसी सब संसारा ॥टेक॥
चलसी गगन धरणि सब चलसी, चलसी पवन अरु पानी।
चलसी चंद सूर पुनि चलसी, चलसी सबै उपानी ।। १ ।।
चलसी दिवस रैण भी चलसी, चलसी जुग जम वारा।
चलसी काल व्याल पुनि चलसी, चलसी सबै पसारा ।। २ ।।
चलसी स्वर्ग नरक भी चलसी, चलसी भूचणहारा[१]।
चलसी सुःख दुःख भी चलसी, चलसी कर्म बिचारा ।। ३ ।।
चलसी चंचल निहचल रहसी, चलसी जे कुछ कीन्हा।
दादू देख रहै अविनाशी, और सबै घट खीना ।। ४ ।।

२२४-२२६ में काल से सावधान कर रहे हैं—स्थिर तो एक सृष्टिकर्ता ईश्वर ही रहेंगे, अन्य सब संसार नष्ट होगा। आकाश, पृथ्वी, वायु, जल, चन्द्र, सूर्यादि जो भी उत्पन्न हुई सृष्टि है, वह नष्ट होगी ही। दिन, रात्रि, युग, यम, वार, काल रूप सर्प और सभी विस्तार नष्ट होने वाला है। स्वर्ग, नरक, और उनके भोगनेवाले[१] सुख:दुख, कर्म और मनोराज्य रूप विचार तथा जो भी कुछ ईश्वर ने असत्य चंचल सृष्टि की रचना की है, वह सब नष्ट होने वाली हैं। तू विचार करके देख, एक निश्चल अविनाशी ब्रह्म ही रहेगा, अन्य सब घट तो नष्ट होंगे ही।

२२५-त्रिताल

इहि कलि हम मरणे को आये, मरण मीत उन संग पठाये ॥ टेक॥
जब तैं यहु हम मरण विचारा, तब तैं आगम पंथ सँवारा॥ १ ॥
मरण देख हम गर्व न कीन्हा, मरण पठाये सो हम लीन्हा॥ २ ॥
मरणा मीठा लागे मोहि, इहि मरणे मीठा सुख होहि॥ ३ ॥
मरणे पहली मरे जे कोई, दादू सो अजरावर होई॥ ४ ॥

इस कलियुग में हम मरणे के लिये ही आये हैं : उन हमारे मित्र प्रभु ने हमें मरणे के साथ ही भेजा है, जब से हमने मरणा है-यह विचारा है तब से संसार से आगे प्रभु के पास जाने का साधन-मार्ग तैयार किया है। हमने मरणे को देख कर हृदय में, हम क्यों मरेंगे ऐसा अहंकार नहीं किया। मरणे के लिये भेजा है अतः उसी प्रभु का भजन ग्रहण किया है। जीवित मृतक होना मुझे बहुत प्रिय लगता है। इस मरणे में तो अति मधुर सुख प्राप्त होता है। यदि कोई प्राणपिंड के वियोग रूप मरणे से पहले ही जीवित मृतक (जीवन्मुक्त) हो जाय, तो वह देवताओं से भी अति श्रेष्ठ ब्रह्म रूप ही होता है।

२२६-त्रिताल

रे मन! मरणे कहा डराई, आगे पीछे मरणा रे भाई ॥ टेक॥
जे कुछ आवै थिर न रहाई, देखत सबै चल्या जग जाई ॥ १ ॥
पीर पैगम्बर किया पयाना, शेख मुशायक[१] सबै समाना॥ २ ॥
ब्रह्मा विष्णु महेश महाबलि, मोटे मुनिजन गये सबै चलि ॥ ३ ॥
निश्चल सदा सोइ मन लाइ, दादू हर्ष राम गुण गाइ॥ ४ ॥

अरे भाई मन! मरणे से क्या डरता है ? मरणा तो आगे पीछे होगा ही, जो कुछ भी उत्पन्न होते हैं, वे स्थिर नहीं रहते। देखते २ संपूर्ण जगत् चला जा रहा है। पीर, पैगम्बर, शेख और मुल्ला[१] आदि-धर्म-के-ज्ञाता सभी काल के मुख में समा गये हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वरादि, महाबली और महान् मुनि जन सभी चले गये हैं। अत: हे मन! सदा जो निश्चल रहता है, उसी निरंजन राम में वृत्ति लगा कर हर्ष के साथ राम के ही गुण-गान कर।

२२७-वस्तु निर्देश निर्णय। मल्लिकामोद ताल

ऐसा तत्त्व अनूपम भाई, मरै न जीवे काल न खाई ॥ टेक॥
पावक जरै न मार्‍यो मरई, काट्यो कटे न टार्‍यो टरई ॥ १ ॥
अक्षर खिरै न लागै काई, शीत घाम जल डूब न जाई ॥ २ ॥
माटी मिले न गगन विलाई, अघट एक रस रह्या समाई ॥ ३ ॥
ऐसा तत्त्व अनूपं कहिये, सो गहि दादू काहे न रहिये॥ ४ ॥

ब्रह्मात्म वस्तु का निर्देश और निर्णय दिखा रहे हैं—हे भाई! ब्रह्मात्म तत्त्व ऐसा अनुपम है-न मरता है, न जीवित रहता है, न उसे काल खाता है। अग्नि से जलता नहीं, मारने से मरता नहीं,

काटने से कटता नहीं, हटाने से हटता नहीं, वह अविनाशी है उसका नाश नहीं होता। उसके मैल, शीत, घामादि नहीं लगते, वह जल में नहीं डूबता, मिट्टी में नहीं मिलता, आकाश में लय नहीं होता, वह घटता नहीं, एकरस है और सब में समाया हुआ है। ऐसा जो अनुपम आत्म-स्वरूप ब्रह्म तत्त्व कहलाता है, उसी को अभेद रूप से ग्रहण करके क्यों नहीं रहता ?

२२८-मनोपदेश। मल्लिकामोद ताल

मन रे, सेव निरंजन राई, ताको सेवो रे चित लाई ॥ टेक ॥
आदि अंतैं सोई उपावै, परलै लेहि छिपाई।
बिन थंभा जिन गगन रहाया, सो रह्या सबन में समाई ॥ १ ॥
पाताल मांहीं जे आराधै, वासुकि रे गुण गाई।
सहस्र मुख जिह्वा द्वै ताके, सोभी पार न पाई ॥ २ ॥
सुर नर जाको पार न पावैं, कोटि मुनिजन ध्याई।
दादू रे तन ताको है रै, जाको सकल लोक आराही॥ ३ ॥

मन को उपदेश कर रहे हैं—अरे मन ! निरंजन राम की भक्ति कर। अरे चित्त ! अपनी वृत्ति लगाकर जो विश्व का राजा है, उसी की सेवा कर।आदि में वही संसार को उत्पन्न करता है और अन्त में प्रलय के समय सबको अपने में ही लीन कर लेता है। बिना स्तम्भ के ही जिनने अपनी सत्ता से ही आकाश के सूर्य वह चन्द्रादि को ठहरा रक्खा है। प्रभु सभी में समाया हुआ है। पाताल में जो वासुकि नाग है वह भी उसकी आराधना करता है तथा सहस्रमुख और प्रति मुख दो जिह्वा वाले शेषनाग भी उसके गुण गाते रहते हैं किन्तु वे भी उसके गुणों का पार नहीं पाते। देवता, नर और कोटिन मुनिजन, उसकी उपासना करते हैं किन्तु कोई भी उसका पार नहीं पाता। अरे ! यह शरीर उसी प्रभु का है, जिसकी संपूर्ण लोक आराधना करते हैं।

२२९-जीव-उपदेश। भंगताल

निरंजन जोगी जान ले चेला, सकल वियापी रहै अकेला ॥ टेक ॥
खपर न झोली डंड अधारी[1], मढी न माया लेहु विचारी॥ १ ॥
सींगी मुद्रा विभूति न कंथा, जटा जाप आसण नहिं पंथा॥ २ ॥
तीरथ व्रत न वन-खंड वासा, मांग न खाइ नहीं जग आसा॥ ३ ॥
अमर गुरु अविनासी जोगी, दादू चेला महारस भोगी॥ ४ ॥

शिष्य के बहाने जीवों को उपदेश कर रहे हैं—हे शिष्य ! विचार द्वारा माया रहित योगी को जानकर स्वस्वरूप रूप से ग्रहण कर ले। वह सबमें व्यापक होकर भी सबसे अलग अद्वैत रूप से रहता है। उसके पास खप्पर, झोली और सहारा लगा कर बैठने का दंडा[1] नहीं है, न कुटिया आदि कोई मायिक विस्तार ही है। उसके स्वरूप को भली प्रकार विचार के अभेद रूप से अपना ले। उसके पास सींगी, मुद्रा नहीं है, वह भस्म नहीं लगाता, कंथा नहीं पहनता, जटा नहीं रखता, न जाप करता है, न आसन रखता है, न मार्ग चलता है, तीर्थों में भ्रमण नहीं करता, न व्रत ही करता है, न

वन-खंड में निवास करता है, माँग कर नहीं खाता, न जगत् के लोगों की आशा करता है। अमर भाव को प्राप्त हुये गुरुजनों ने इस अविनाशी ब्रह्म रूप योगी का परिचय दिया है। जो शिष्य इसको जान पाता है, वह ब्रह्मानन्द रूप महारस का उपभोग करता है।

२३०-उपदेश। भंगताल

जोगिया बैरागी बाबा, रहै अकेला उनमनि लागा ॥ टेक ॥
आतम जोगी धीरज कंथा, निश्चल आसण आगम पंथा ॥ १ ॥
सहजैं मुद्रा अलख अधारी[1], अनहद सींगी रहणि हमारी॥ २ ॥
काया वन-खंड पांचों चेला, ज्ञान गुफा में रहै अकेला ॥ ३ ॥
दादू दरशन कारण जागे, निरंजन नगरी भिक्षा मांगे॥ ४ ॥

जिज्ञासु जीवात्मा रूप योगी का परिचय रूप उपदेश कर रहे हैं—हे बाबा ! हमारा जिज्ञासु जीवात्मा ही विरक्त योगी है। यह विषयों से अलग अकेला रह कर समाधि में लगा है। इस योगी की धैर्य ही कंथा है, निश्चल रहना आसन है। प्रभु प्राप्ति के हेतु शास्त्र का विचार ही मार्ग चलना है, निर्द्वन्द्वावस्था ही मुद्रा है। मन इन्द्रियों का अविषय ब्रह्म ही आश्रय दंड[१] है। अनाहत नाद ही सींगी है। शरीर-वन खंड में निवास है। पंच ज्ञानेन्द्रियाँ ही शिष्य हैं। एकाकी ही ज्ञान गुफा में रहता है। ब्रह्म साक्षात्कारार्थ जागते हुये निरंजन ब्रह्म रूप नगरी से साक्षात्कार रूप भिक्षा माँगता है। यह हमारे रहने का ढंग है।

२३१-समता ज्ञान। ललित ताल

बाबा, कहु दूजा क्यों कहिये, तातैं इहि संशय दुख सहिये॥ टेक॥
यहु मति ऐसी पशुवां जैसी, काहे चेतत नांहीं।
अपना अंग आप नहिं जानैं, देखै दर्पण मांहीं ॥ १ ॥
इहि मति मीच मरण के तांई, कूप सिंह तहँ आया।
डूब मुवा मन मरम न जान्या, देखि आपनी छाया॥ २ ॥
मद के माते समझत नाहीं, मैगल[1] की मति आई।
आपै आप आप दुख दीया, देख आपणी झाँई ॥ ३ ॥
मन समझै तो दूजा नांहीं, बिन समझें दुख पावै ।
दादू ज्ञान गुरु का नाहीं, समझ कहां तैं आवै ॥ ४ ॥

२३१-२३२ में समत्व ज्ञान बिना क्लेश होता है, यह कह रहे हैं-बाबा कहो, द्वैत क्यों कहा जाय ? इस द्वैत के कहने से ही तो इस संसार में संशय जन्य क्लेश सहा जाता है। यह द्वैत बुद्धि पशुओं की बुद्धि के समान है। इससे क्यों नहीं सावधान होता ? श्वान दर्पण में देखता है, तब अपने शरीर को भी नहीं पहचानता और भूंक २ कर मर जाता है। इस भेद बुद्धि से ही तो शशक के कहने पर मृत्यु के वश होकर मरणे के लिये वहां कूप पर सिंह आया और अपनी छाया को देखकर अपने

मन में उस रहस्य को न जान सका, इसलिये कूप में कूद कर डूब मरा। मद से मस्त हाथी[१] समझता नहीं, चमकीले पत्थर में अपनी ही छाया को देख, दूसरा हाथी जानकर, उस पर आघात करके अपने आप ही अपने को दु:ख देता है, वैसे ही हाथी की सी द्वैत बुद्धि आने पर प्राणी अपने को आप ही दु:खी कर लेता है। मन में समझे तो द्वैत है ही नहीं, किन्तु बिना ही समझे दु:ख पाते हैं। जब गुरु का ज्ञान सुनते ही नहीं तब समझ भी कहां से आवे ?

२३२-ललित लाल

बाबा, नाहीं दूजा कोई, एक अनेक नाम तुम्हारे, मौपै और न होई ॥ टेक॥

अलख इलाही[१] एक तूं, तूं ही राम रहीम[२] ।
तूं ही मालिक मोहना, केशव नाम करीम[३] ॥ १ ॥
सांईं सिरजनहार तूं, तूं पावन तूं पाक[४] ।
तूं कायम[५] करतार तूं, तूं हरि हाजिर आप ॥ २ ॥
रमता राजिक[६] एक तूं, तूं सारँग[७] सुबहान[८] ।
कादिर[९] करता एक तूं, तूं साहिब सुलतान ॥ ३ ॥
अविगत[१०] अल्लह एक तूं, गनी[११] गुसांई एक ।
अजब अनूपम आप है, दादू नाम अनेक ॥ ४ ॥

हे बाबा ! दूसरा कोई भी नहीं है, आप एक के ही अनेक नाम हैं। मेरे से तो अन्य सिद्ध होता ही नहीं। एक आप ही अलख और ईश्वर[१] है, आप ही राम और बहुत दयालु[२] है, आप ही मालिक और मोहन है। आप ही का नाम केशव और उदार[३] है। आप ही सांईं और सिरजनहार हैं। आप ही पावन और पवित्र[४] है। आप ही स्थिर[५] और करतार है। आप ही हरि है और आप सभी स्थानों में सदा उपस्थित है। आप एक ही रमता राम और जीविका[६] देने वाला है, आप ही विष्णु[७] और पवित्र[८] है। एक आप ही समर्थ[९] और करतार है। आप ही साहिब और सुलतान हैं। एक आप ही मन इन्द्रियों के अविषय[१०] और अल्लाह है। एक आप ही स्वाधीन[११] और प्रभु है। आप ही अद्भुत और अनुपम है, आपके नाम अनेक हैं, किन्तु आप एक ही है।

२३३-समर्थाई । रंग ताल

जीवत मारे मुये जिलाये, बोलत गूंगे गूंग बुलाये ॥ टेक ॥
जागत निश भर सोई सुलाये, सोवत रैनी सोई जगाये ॥ १ ॥
सूझत नैनहुँ लोइन[१] लीये, अंध विचारे ता मुख दीये ॥ २ ॥
चलते भारी[२] ते बिठलाये, अपंग विचारे सोई चलाये ॥ ३ ॥
ऐसा अद्भुत हम कुछ पाया, दादू सद्गुरु कह समझाया ॥ ४ ॥

ईश्वर की सामर्थ्य दिखा रहे हैं—जिसने जीवितों को मारा और मृतकों को जीवित किया, बोलने वालों को गूंगे और गूंगों को बोलने वाले बना दिया। प्रति रात्रि भर जगने वालों को निद्राधीन कर दिया, प्रति रात्रि भर सोने वालों को जागने की शक्ति प्रदान की। नेत्रों से देखने वालों के नेत्र[१] ले लिये और जो बेचारे अंधे थे, उनके चेहरे पर नेत्र लगा दिये। बहुत[२] चलने वाले थे, उनको एक स्थान में बैठा दिये और जो बेचारे अपंग थे, उनको चला दिये। सद्‌गुरु ने बारंबार कहकर समझाया है, तब कुछ ऐसा अद्भुत तत्त्व हमने प्राप्त किया है।

२३४-प्रश्न। रंगताल

क्यों कर यह जग रच्यो गुसांईं, तेरे कौन विनोद बन्यो मन मांहीं॥ टेक॥
कै तुम आपा परकट करना, कै यहु रचले जीव उधरना॥ १॥
कै यहु तुम को सेवक जानैं, कै यहु रचले मन के मानैं॥ २॥
कै यहु तुम को सेवक भावै, कै यहु रचले खेल दिखावै॥ ३॥
कै यहु तुम को खेल पियारा, कै यहु भावै कीन्ह पसारा॥ ४॥
यहु सब दादू अकथ कहानी, कह समझावो सारंग[१] प्रानी॥ ५॥

प्रभु से जगत रचना विषयक प्रश्न कर रहे हैं—हे प्रभो ! यह संसार किसलिये रचा है ? आपके मन में कौन-सा खेल करने का संकल्प बन गया था ? क्या आप अपने को प्रकट करना चाहते थे वा जीवों के उद्धारार्थ यह रच लिया है ? वा यह इसलिए रचा है—आपके कार्य को देखकर आपके सेवक आपको पहचान जायें ? वा निष्प्रयोजन मनमाने ढंग से ही यह बना दिया है ? वा आपको सेवक प्रिय लगते हैं, इसलिए उनको उत्पन्न करने के लिए यह रचा है ? वा केवल खेल दिखाने के लिए ही यह रच दिया है ? वा आपको खेल प्रिय है, इसलिए यह रचा है ? वा फैलाव करना आपको अच्छा लगता है, इसलिए यह रचा है ? अन्यों के लिए यह सब कथा अकथनीय है। अत: हे परमेश्वर[१] ! प्राणी आदि सृष्टि-रचना में क्या हेतु है, आप ही कहकर समझाओ।

उत्तर की साखी—

दादू परमारथ को सब किया, आप स्वारथ नांहिं।
परमेश्वर परमारथी, कै साधू कलि मांहिं॥ (१५-५०)
खालिक खेले खेल कर, बूझै विरला कोइ।
लेकर सुखिया ना भया, देकर सुखिया होइ॥ (२१-३७)

२३५-समर्थाई। झपताल

हरे ! हरे !! सकल भुवन भरे, जुग जुग सब करे।
जुग जुग सब धरे, अकल सकल जरे, हरे हरे॥ टेक॥
सकल भुवन छाजै, सकल भुवन राजै, सकल कहै।
धरती अम्बर गहै, चंद सूर सुधि लहै, पवन प्रकट बहै॥ १॥

घट घट आप देवै, घट घट आप लेवै, मंडित माया।
जहां तहां आपराया, जहां तहां आप छाया, अगम अगम पाया ॥ २ ॥
रस मांहीं रस राता, रस मांहीं रस माता, अमृत पीया।
नूर मांहीं नूर लीया, तेज मांहीं तेज कीया, दादू दरश दीया॥ ३ ॥

ईश्वर सामर्थ्य दिखा रहे हैं—हे जन्मादि क्लेशों के अपहरण करने वाले हरे ! आप सम्पूर्ण भुवनों में परिपूर्ण हैं। प्रति युग में धर्म स्थापनादि सब कार्य आप ही करते हैं तथा प्रति युग में आप ही सबको धारण करते हैं। हरे ! आप कला रहित हैं और सब में आत्म रूप से प्रकाशित हो रहे हैं। सब कहते हैं—आप सब भुवनों में विराजते हैं, सब भुवन आप से ही अच्छे लगते हैं । आप ही अपनी सत्ता से पृथ्वी और आकाश को पकड़े हुये हैं। आपसे ही चन्द्र-सूर्य अपने गमनागमनादि का ज्ञान प्राप्त करते हैं। आपकी सत्ता से ही वायु प्रकट रूप से चल रहा है ? प्रति शरीर को आप ही अपनी सत्ता देते हैं और प्रति शरीर की भावना ग्रहण करते हैं। यह मायिक संसार आप से ही शोभित है। जहां तहां आप राजा रूप से व्याप्त हैं। आप अगम से भी अगम स्थान में प्राप्त होते हैं। जब आप रस-रूप प्रभु में मैं भक्ति-रस के द्वारा अनुरक्त हुआ तब ज्ञानामृत का पान करके आप रस-स्वरूप में रस-रूप होकर मस्त हो गया हूँ, अब तो आत्म-स्वरूप में ही ब्रह्म-स्वरूप प्राप्त कर लिया है। आत्म-तेज में ही ब्रह्म तेज प्राप्त किया है। उन प्रभु ने इस प्रकार कृपा करके दर्शन दिया है। यही उनकी सामर्थ्य है।

२३६-परिचय उपदेश । चौताल

पीव पीव आदि अंत पीव।
परसि परसि अंग संग, पीव तहां जीव ॥टेक॥
मन पवन भवन गवन, प्राण कवल मांहिं ।
निधि निवास विधि विलास, रात दिवस नांहिं ॥ १ ॥
श्वास बास आस पास, आत्म अंग लगाइ ।
ऐन बैन निरख नैन, गाइ गाइ रिझाइ ॥ २ ॥
आदि तेज अंत तेज, सहजैं सहज आइ ।
आदि नूर अंत नूर, दादू बलि बलि जाइ ॥ ३ ॥

२३६-२३७ में साक्षात्कार सम्बन्धी उपदेश कर रहे हैं—सृष्टि के आदि में प्रभु हैं, अन्त में प्रभु हैं और मध्य में भी प्रभु रहते हैं। वृत्ति द्वारा बारम्बार उनके स्वरूप से स्पर्श करके जीव उनके संग ही हो जाता है और जिस निर्द्वन्द्वावस्था में प्रभु रहते हैं, उसी में जीव रहता है। प्राणी मन और प्राणों को रोककर देह-भवन के अष्ट-दल कमल में जहां परमात्मा-रूप निधि का निवास है, गमन करता है। वहां सभी विधियाँ आनंद प्राप्त होने की होती है। ज्ञान-अज्ञान रूप रात्रि-दिन का भेद नहीं भासता। अपने अति समीप आत्म-स्वरूप ब्रह्म में ही वृत्ति लगाकर प्रति श्वास वहां ही बसता है। सद्गुरु वचनों के द्वारा ज्ञान-नेत्रों से प्रत्यक्ष देखकर ध्यानावस्था में बारम्बार गुण-गान करते हुये

प्रभु को प्रसन्न करता है। अब आदि अन्त में ब्रह्म-तेज ही भास रहा है। इस प्रकार ब्रह्म तेज को देखते-देखते अनायास ही सहजावस्था में आकर अपने आदि अन्त में भासने वाले प्रभु को मध्य में ही प्राप्त करके हम उसकी बलिहारी जाते हैं।

२३७-चौताल

नूर[१] नूर अव्वल[२] आखिर[३] नूर।
दायम[४] कायम[५], कायम दायम, हाजिर है भरपूर ॥टेक॥
आसमान नूर, जमीं नूर, पाक परवरदिगार[६]।
आब[७] नूर, बाद[८] नूर, खूब खूबां यार ॥ १ ॥
जाहिर[९] बातिन[१०] हाजिर नाजिर[११], दांना[१२] तूं दीवांन[१३]।
अजब अजाइब[१४] नूर दीदम,[१५] दादू है हैरांन ॥ २ ॥

स्वस्वरूप[१] ब्रह्म सृष्टि के प्रथम[२], मध्य और अन्त[३] में सदा[४] स्थिर है[५] तथा वह स्थिर ब्रह्म सदा सबके पास और विश्व में परिपूर्ण है। वही आकाश रूप, पृथ्वीरूप, पवित्र और पालन[६] करने वाला है। वही जल[७] रूप, वायु[८] और श्रेष्ठों से भी श्रेष्ठ तथा सब का मित्र है। अन्त:करण[१०] में स्थिर रहकर देखने[११] वाले और जानने वाले[१२] के रूप में प्रकाशित[९] होता है। प्रभो ! आप ही बुद्धिमान् मंत्री[१३] के समान सब को प्रेरणारूप परामर्श देते हैं, आप की रचित वस्तुयें आश्चर्य[१४] कारक हैं। आपका अद्भुत रूप देख[१५] कर हम चकित हैं।

२३८-रस। त्रिताल

मैं अमली मतवाला माता, प्रेम मगन मेरा मन राता॥ टेक॥
अमी महारस भर भर पीवै, मन मतवाला जोगी जीवै॥ १ ॥
रहै निरंतर गगन मंझारी, प्रेम पियाला सहज खुमारी॥ २ ॥
आसणि अवधू अमृतधारा, जुग जुग जीवै पीवनहारा॥ ३ ॥
दादू अमली इहि रस माते, राम रसायन पीवत छाके॥ ४ ॥

२३८ में प्रभु-प्रेम-रस की विशेषता दिखा रहे हैं—मैं प्रभु-प्रेम-रस का व्यसनी हूं, उससे मतवाला होकर मस्त हो रहा हूं। मेरा मन भी प्रभु-प्रेम में अनुरक्त होकर, उसी में निमग्न हो रहा है। प्रभु-प्रेमामृत महारस को इच्छा भर-भर के पान करता है और उसी से मतवाला होकर मन रूप योगी जीवित है तथा निरंतर हृदयाकाश में अष्ट-दल कमल पर प्रभु के पास ही रहता है। प्रेम प्याला का सहजावस्था रूप नशा भी उसके चढ़ा ही रहता है। उक्त अष्ट-दल कमल रूप आसन के पास स्थित रह कर जिस अवधूत का चित्त प्रभु प्रेमामृतधारा का पान करने वाला होता है, वह प्रभु को प्राप्त होकर प्रति युग में जीवित रहता है हम इस राम-रसायन रूप रस के व्यसनी हैं और इसको पान करते-करते तृप्त होकर इसी में मस्त हैं।

२३९-निज उपदेश। त्रिताल

सुख दुख संशय दूर किया, तब हम केवल राम लिया॥ टेक॥
सुख दुख दोऊ भरम विकारा, इन सौं बँध्या है जग सारा॥ १॥
मेरी मेरा सुख के तांईं, जाय जन्म नर चेते नांहीं॥ २॥
सुख के तांईं झूठा बोलै, बाँधे बन्धन कबहुं न खोलै॥ ३॥
दादू सुख दुख संग न जाई, प्रेम प्रीति पिव सौं ल्यौ लाई॥ ४॥

निज अनुभव युक्त उपदेश कर रहे हैं—साधन से सुख होगा वा दुःख होगा, यह संशय दूर करके प्रेम पूर्वक प्रभु का भजन किया जब हमने अद्वैत राम को आत्म रूप से प्राप्त किया है। भ्रम पूर्ण विचारों के द्वारा इन दोनों सुख-दुःख द्वन्द्वों से सब जगत् बँधा हुआ है। सांसारिक सुख के लिए मेरी-मेरी करते जीवन नष्ट होता जा रहा है किन्तु मनुष्य-कल्याणार्थ सावधान नहीं होता। विषय-सुख के लिए मिथ्या बोलता है। कर्म-बंधन बांध रक्खे हैं, आत्मज्ञान द्वारा उन्हें खोलने का प्रयत्न कभी भी नहीं करता किन्तु स्मरण रखना चाहिए सुख दुःख अनित्य हैं, साथ न जायेंगे, इसलिए प्रेम-साधना का आश्रय लेकर प्रीति सहित प्रभु में वृत्ति लगाओ।

२४०-हैरान। वर्णभिन्न ताल

कासौं कहूं हो अगम हरि बाता, गगन धरणि दिवस नहिं राता॥ टेक॥
संग न साथी गुरु नहिं चेला, आसन पास यों रहै अकेला॥ १॥
वेद न भेद न करत विचारा, अवरण वरण सबन तैं न्यारा॥ २॥
प्राण न पिंड रूप नहिं रेखा, सोइ तत सार नैन बिन देखा॥ ३॥
जोग न भोग मोह नहिं माया, दादू देख काल नहिं काया॥ ४॥

प्रभु सम्बन्धी आश्चर्य दिखा रहे हैं—हे साधक! उस हरि के स्वरूप सम्बन्धी वार्ता किस से कहूं? वह अगम है सहज ही समझ में नहीं आती। वे आकाश, पृथ्वी, दिन और रात्रि रूप नहीं हैं, उनके संग कोई साथी भी नहीं है, न उनके आसन के पास गुरु शिष्यादि ही हैं। इस प्रकार वे अद्वैत रूप से ही रहते हैं। न वहां वेद है, न भेद विचार किया जाता है। वे वर्ण-अवर्ण आदि सभी दशाओं से अलग हैं। वे प्राण पिंड और किसी प्रकार के रूप रेखादि से युक्त नहीं हैं। वे ही संसार के सार तत्त्व हैं। यह सब हमने बिना नेत्रों से स्वरूप स्थिति द्वारा देखा है। वहां योग, भोग, मोह, माया, काल, कायादि कुछ भी नहीं है। हे साधक! तू भी स्वरूप स्थिति द्वारा देख।

२४१-गुरु ज्ञान। वर्णभिन्न ताल

मेरा गुरु ऐसा ज्ञान बतावै।
काल न लागै संशय भागे, ज्यों हैं त्यों समझावै॥ टेक॥
अमर गुरु के आसन रहिये, परम ज्योति तहँ लहिये।
परम तेज सो दृढ़ कर गहिये, गहिये लहिये रहिये॥ १॥

मन पवना गहि आतम खेला, सहज शून्य घर मेला।
अगम अगोचर आप अकेला, अकेला मेला खेला ॥ २ ॥
धरती अम्बर चंद न सूरा, सकल निरंतर पूरा।
शब्द अनाहद बाजहि तूरा, तूरा पूरा सूरा ॥ ३ ॥
अविचल अमर अभय पद दाता, तहां निरंजन राता।
ज्ञान गुरु ले दादू माता, माता राता दाता ॥ ४ ॥

२४१-२४२ में गुरु ज्ञान का परिचय दे रहे हैं—हमारे गुरुदेव ऐसा ज्ञानोपदेश करते हैं, जिसके द्वारा सब संशय नष्ट हो जाते हैं और प्राणी के पीछे काल नहीं लगता। जैसा निज स्वरूप है, वैसा भली प्रकार समझा देते हैं। उन अमर ब्रह्म-भाव को प्राप्त हुये गुरुदेव के आसन के पास ही रहना चाहिए। वहां ज्ञानरूप परम ज्योति प्राप्त होती है। गुरु से प्राप्त ज्ञान रूप परम तेज को दृढ़ता से ग्रहण करना चाहिए और उसके ग्रहण द्वारा स्वस्वरूप को प्राप्त करके ही रहना चाहिए। जो मन प्राण को रोक कर आत्मा के साथ चिन्तन रूप खेल खेलता है वह विकार शून्य सहजावस्था रूप घर में जाकर प्रभु से मिलता है। जो मन से अगम इन्द्रियों से परे स्वयं अद्वैत प्रभु हैं उनसे अद्वैत स्थिति द्वारा मिल कर आनंद लेता है। उनके स्वरूप में पृथ्वी, आकाश, चन्द्र सूर्यादि नहीं हैं किन्तु वे सदा सब में परिपूर्ण रहते हैं। उनके साक्षात्कार से प्रथम अनाहत ध्वनिरूप नगाड़े बजते हैं। जो अनाहत ध्वनि रूप नगाड़े बजाकर आगे बढ़ता है, वह साधक पूरा वीर है और जो अविचल, अमर, अभयपद के प्रदाता निरंजन राम, जिस निर्विकल्प समाधि में भासते हैं, वहां ही उन निरंजन में अनुरक्त रहता है वह इस प्रकार गुरु का ज्ञान प्राप्त करके मस्त होता है। जो प्रभु में अनुरक्त होकर मस्त होता है, वही उत्तम ज्ञान का दाता होता है।

२४२-राज विद्याधर ताल

मेरा गुरु आप अकेला खेलै।
आपै देवै आपै लेवै, आपै द्वै कर मेलै ॥टेक॥
आपै आप उपावे माया, पंच तत्त्व कर काया।
जीव जन्म ले जग में आया, आया काया माया ॥ १ ॥
धरती अम्बर महल उपाया, सब जग धंधै लाया।
आपै अलख निरंजन राया, राया लाया उपाया ॥ २ ॥
चंद सूर दोइ दीपक कीन्हा, रात दिवस कर लीन्हा।
राजिक रिजक सबन को दीन्हा, दीन्हा लीन्हा कीन्हा ॥ ३ ॥
परम गुरु सो प्राण हमारा, सब सुख देवे सारा।
दादू खेलै अनंत अपारा, अपारा सारा हमारा ॥ ४ ॥

हमारे गुरु परब्रह्म विश्व में अद्वैत भाव से क्रीड़ा करते हैं, स्वयं सबकी भावनायें लेते हैं, कर्मानुसार सब को देते हैं। उपाधि द्वारा अपने से अन्य जीव खड़ा कर देते हैं। और ज्ञान द्वारा पुन: उसे निज में मिला लेते हैं। आप स्वयं ही माया को उत्पन्न कराके, उससे आकाशादि पंच तत्त्व और पंच तत्त्वों से शरीर रचते हैं। उनकी सत्ता से ही जीव जन्म धारण करके जगत् में आता है और शरीर में आकर माया में फँस जाता है। उसी प्रभु ने पृथ्वी और आकाश मय महल उत्पन्न करके सब जगत् को सांसारिक कार्यों में लगाया है। वे विश्व के राजा, मन इन्द्रियों के अविषय, माया रहित हैं। सबको उत्पन्न करके तथा कार्यों में लगाकर भी वे विश्व के स्वामी हर्षादि द्वन्द्वों से रहित हैं। उन्होंने चन्द्र-सूर्य दीपक रचे हैं और उन्होंने ही रात्रि तथा दिन रचा है। उन जीविका देने वाले प्रभु ने सबको जीविका दी है। उन्होंने सबको कार्यक्षम किया है। नाम चिन्तन द्वारा पाप दूरहरण किया है और ज्ञान दिया है। वे परम गुरु विश्व के सार और हमारे प्राण हैं। वे ही सम्पूर्ण सुख देते हैं। वे हमारे सर्वस्व अपार प्रभु उक्त प्रकार दीनता रहित अपार खेल खेलते हैं, फिर भी सबसे निर्लेप रहते हैं।

२४३-हैरान। राज विद्याधर ताल

थकित भयो मन कह्यो न जाई, सहज समाधि रह्यो ल्यौ लाई॥ टेक॥
जे कुछ कहिये सोच विचारा, ज्ञान अगोचर अगम अपारा॥ १ ॥
साइर[1] बूंद कैसे कर तोलै, आप अबोल कहा कह बोलै॥ २ ॥
अनल पंखि परे पर दूर, ऐसे राम रह्या भरपूर ॥ ३ ॥
अब मन मेरा ऐसे रे भाई, दादू कहबा कहण न जाई॥ ४ ॥

२४३-२४५ में परब्रह्म स्वरूप सम्बन्धी आश्चर्य दिखा रहे हैं—हम से तो उस परब्रह्म का अन्त नहीं कहा जाता। हमारा मन तो थक गया है। हम तो अब सहज समाधि में उसके स्वरूप में वृत्ति लगा करके ही स्थित रहते हैं। जो भी कुछ सोच विचार करके कहते हैं, तो वह ज्ञान के द्वारा इन्द्रियों से परे और मन से अगम, अपार ही कहा जाता है। बुद्धिरूप बिन्दु ब्रह्म-सागर[1] का माप-तोल कैसे कर सकती है ? और वह स्वयं तो वचनातीत है, उसे क्या कहकर कहा जाय ? जैसे अनल पक्षी आकाश में रहता है किन्तु आकाश उसके माप के परे ही रहता है, वह आकाश का पार नहीं पाता, वैसे ही राम में सब रहते हैं और राम सब में परिपूर्ण रूप से रहने पर भी सब से दूर हैं, उनका पार कोई भी नहीं पाता। हे भाई ! अब मेरे मन की तो ऐसी दशा हो रही है— वह प्रभु के स्वरूप सम्बन्ध में कहना चाहता है किन्तु उससे कहा नहीं जाता। कारण, उसमें अनुभव करने की शक्ति है, कहने की नहीं। वाणी में कहने की है, अनुभव करने की नहीं। अत: ब्रह्म स्वरूप अकथनीय तथा आश्चर्य रूप है।

२४४-मल्लिका मोद ताल

अविगत की गति कोइ न लहै, सब अपना उनमान कहै ॥ टेक ॥
केते ब्रह्मा वेद विचारैं, केते पंडित पाठ पढ़ैं ।
केते अनुभव आतम खोजैं, केते सुर नर नाम रटैं[1] ॥ १ ॥
केते ईश्वर आसन बैठे, केते जोगी ध्यान धरैं ।
केते मुनिवर मन को मारैं, केते ज्ञानी ज्ञान करैं ॥ २ ॥
केते पीर केते पैगम्बर, केते पढ़ैं कुराना ।
केते काजी केते मुल्ला, केते शेख सयाना ॥ ३ ॥
केते पारिख अंत न पावैं, वार पार कुछ नांहीं ।
दादू कीमत कोई न जानैं, केते आवैं जांहीं ॥ ४ ॥

सभी अपने-अपने अनुमान के अनुसार ब्रह्म के विषय में कहते हैं किन्तु उस मन इन्द्रिय के अविषय ब्रह्म के स्वरूप का पार कोई भी नहीं पाता। कितने ही ब्रह्मा वेद का विचार करते हैं। कितने ही पंडित पाठ पढ़ते हैं। कितने ही अनुभवी लोग अनुभव द्वारा आत्मा की खोज करते हैं। कितने ही देवता तथा नर नाम रटते[1] हैं। कितने ही शंकर आसन पर स्थित रहते हैं। कितने ही योगी ध्यान धरते हैं। कितने ही मुनिवर मन को जीतते हैं। कितने ही ज्ञानी-जन ज्ञानोपदेश करते हैं, कितने ही पीर-पैगम्बर प्रयत्नशील हैं। कितने ही काजी मुल्ला और शेखादि चतुर लोग कुरान पढ़ते हैं। कितने ही परीक्षक परीक्षार्थ संलग्न हैं, किन्तु कोई भी उस परब्रह्म के स्वरूप का अन्त नहीं पाता, कारण उसका वार-पार कुछ है ही नहीं, वह तो असीम है। कितने ही संसार में आते हैं और अति प्रयत्न करके चले जाते हैं किन्तु उस परब्रह्म की कीमत कोई भी नहीं जान पाता। अत: वह आश्चर्य रूप है।

२४५-मल्लिका मोद ताल

ए हौं बूझ रही पिव जैसा है, तैसा कोइ न कहै रे ।
अगम अगाध अपार अगोचर, सुधि बुधि कोइ न लहै रे॥ टेक॥
वार पार कोई अंत न पावै, आदि अंत मधि नांहीं रे ।
खरे सयाने भये दिवाने, कैसा कहां रहै रे ॥ १ ॥
ब्रह्मा विष्णु महेश्वर बूझै, केता कोई बतावै रे ।
शेख मुशायक[1] पीर पैगम्बर, है कोइ अगह गहै रे ॥ २ ॥
अम्बर धरती सूर शशि बूझै, वायु वर्ण सब सोधै रे ।
दादू चकित[2] है हैराना, को है कर्म दहै रे ॥ ३ ॥

इति राग आसावरी समाप्त: ॥ ९ ॥ पद ३२ ॥

ए लोगो ! मैं पूछ-पूछ कर हार गया हूं किन्तु प्रभु का जैसा स्वरूप है, वैसा कोई भी नहीं

कहता। वह अगाध, अपार, मन से अगम इन्द्रियों से परे है। इन्द्रियों में से कोई भी उसका ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकती। उसके वार पार का अन्त कोई भी नहीं पाता। आदि, अन्त, मध्य, भेद तो उसमें है ही नहीं। वह कैसा है? कहां रहता है? ऐसा विचार करते-करते सच्चे ज्ञानी भी पागल हो जाते हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महादेव से भी पूछे तो वे कितना कहेंगे? अर्थात् अपार ही कहेंगे। शेख और मुल्ला[१] आदि धर्म के ज्ञाता, वा पीर, पैगम्बरादि में कोई ऐसा है, जो मन इन्द्रियादि से न ग्रहण करने योग्य परब्रह्म को ग्रहण करके यथार्थ रूप से उसका अन्त कह सके? आकाश-पृथ्वी के बीच सूर्य-चन्द्रादि को भी पूछें, वायु तथा सभी रूप-रंगादि को खोजे तो भी उस ब्रह्म के बिना कर्म-बन्धन को जला सके ऐसा कौन है? अत: उसका स्वरूप देख कर हम तो आश्चर्य चकित[२] हो रहे हैं।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग आसावरी समाप्त: ॥ ९ ॥

अथ राग सिन्दूरा १०

(गायन समय रात्रि १२ से ३)

२४६-परिचय उपदेश। झपताल

हंस सरोवर तहां रमैं, सूभर हरि जल नीर।
प्राणी आप पखालिये, निर्मल सदा होइ शरीर ॥ टेक ॥
मुक्ताहल मन मानिया, चुगैं हंस सुजान।
मध्य निरंतर झूलिये, मधुर विमल रस पान॥ १ ॥
भ्रमर कमल रस वासना, रातो राम पीवंत।
अरस परस आनंद करै, तहां मन सदा होइ जीवंत ॥ २ ॥
मीन मगन मांही रहैं, मुदित सरोवर मांहिं।
सुख सागर क्रीड़ा करैं, पूरण परिमित नांहिं ॥ ३ ॥
निर्भय तहँ भय को नहीं, विलसैं बारंबार।
दादू दर्शन कीजिये, सन्मुख सिरजनहार॥ ४ ॥

२४६-२४९ में ब्रह्म साक्षात्कारार्थ उपदेश कर रहे हैं—जहां हृदय सरोवर में हरि स्वरूप जल परिपूर्ण रूप से भरा है, वहां ही संत-हंस रमण करते हैं। उस नीर में जो प्राणी अपने अहंकारादि दोषों को धोता है उसका शरीर सदा के लिए निर्मल हो जाता है। बुद्धिमान् संत-हंसों का मन ब्रह्म-स्वरूप मुक्ताहल के चिन्तन रूप चुगने में ही प्रसन्न हुआ है और अति मधुर, विमल दर्शन-रस पान करके उसी के आनंद में निरन्तर झूलता रहा है। जैसे भ्रमर कमल के वास-रस को पान करता है, वैसे ही संत-मन राम में अनुरक्त होकर राम-दर्शन रस पान द्वारा अरस-परस आनंद लेते हुये सदा सजीवन होने जा रहा है। जैसे मच्छी सरोवर में निमग्न रह कर प्रसन्न रहती है, वैसे ही अपरिमित परिपूर्ण सुख सागर ब्रह्म में संत क्रीड़ा करते हैं। वह ब्रह्म निर्भय स्थान है, वहां कोई भी प्रकार का भय नहीं है। संत वहां ही प्रतिक्षण ब्रह्मानन्द का उपभोग करते हैं। तुम भी स्मरण द्वारा सृजनहार परमात्मा के सन्मुख होकर उनके दर्शन करो।

कहता। वह अगाध, अपार, मन से अगम इन्द्रियों से परे है। इन्द्रियों में से कोई भी उसका ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकती। उसके वार पार का अन्त कोई भी नहीं पाता। आदि, अन्त, मध्य, भेद तो उसमें है ही नहीं। वह कैसा है ? कहां रहता है ? ऐसा विचार करते-करते सच्चे ज्ञानी भी पागल हो जाते हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महादेव से भी पूछे तो वे कितना कहेंगे ? अर्थात् अपार ही कहेंगे। शेख और मुल्ला[१] आदि धर्म के ज्ञाता, वा पीर, पैगम्बरादि में कोई ऐसा है, जो मन इन्द्रियादि से न ग्रहण करने योग्य परब्रह्म को ग्रहण करके यथार्थ रूप से उसका अन्त कह सके ? आकाश-पृथ्वी के बीच सूर्य-चन्द्रादि को भी पूछें, वायु तथा सभी रूप-रंगादि को खोजे तो भी उस ब्रह्म के बिना कर्म-बन्धन को जला सके ऐसा कौन है ? अत: उसका स्वरूप देख कर हम तो आश्चर्य चकित[२] हो रहे हैं।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग आसावरी समाप्त: ॥ ९ ॥

अथ राग सिन्दूरा १०

(गायन समय रात्रि १२ से ३)

२४६-परिचय उपदेश। झपताल

हंस सरोवर तहां रमैं, सूभर हरि जल नीर।
प्राणी आप पखालिये, निर्मल सदा होइ शरीर ॥ टेक ॥
मुक्ताहल मन मानिया, चुगैं हंस सुजान।
मध्य निरंतर झूलिये, मधुर विमल रस पान ॥ १ ॥
भ्रमर कमल रस वासना, रातो राम पीवंत।
अरस परस आनंद करै, तहां मन सदा होइ जीवंत ॥ २ ॥
मीन मगन मांही रहैं, मुदित सरोवर मांहिं।
सुख सागर क्रीड़ा करैं, पूरण परिमित नांहिं ॥ ३ ॥
निर्भय तहँ भय को नहीं, विलसैं बारंबार।
दादू दर्शन कीजिये, सन्मुख सिरजनहार ॥ ४ ॥

२४६-२४९ में ब्रह्म साक्षात्कारार्थ उपदेश कर रहे हैं—जहां हृदय सरोवर में हरि स्वरूप जल परिपूर्ण रूप से भरा है, वहां ही संत-हंस रमण करते हैं। उस नीर में जो प्राणी अपने अहंकारादि दोषों को धोता है उसका शरीर सदा के लिए निर्मल हो जाता है। बुद्धिमान् संत-हंसों का मन ब्रह्म-स्वरूप मुक्ताहल के चिन्तन रूप चुगने में ही प्रसन्न हुआ है और अति मधुर, विमल दर्शन-रस पान करके उसी के आनंद में निरन्तर झूलता रहा है। जैसे भ्रमर कमल के वास-रस को पान करता है, वैसे ही संत-मन राम में अनुरक्त होकर राम-दर्शन रस पान द्वारा अरस-परस आनंद लेते हुये सदा सजीवन होने जा रहा है। जैसे मच्छी सरोवर में निमग्न रह कर प्रसन्न रहती है, वैसे ही अपरिमित परिपूर्ण सुख सागर ब्रह्म में संत क्रीड़ा करते हैं। वह ब्रह्म निर्भय स्थान है, वहां कोई भी प्रकार का भय नहीं है। संत वहां ही प्रतिक्षण ब्रह्मानन्द का उपभोग करते हैं। तुम भी स्मरण द्वारा सृजनहार परमात्मा के सन्मुख होकर उनके दर्शन करो।

२४७-झपताल

सुख सागर में झूलबो, कश्मल झड़ै हो अपार।
निर्मल प्राणी होइबो, मिलिबो सिरजनहार ॥ टेक ॥
तिहिं संजम पावन सदा, पंक न लागे प्राण।
कमल विगासै तिहिं तणों, उपजै ब्रह्म गियान ॥ १ ॥
अगम निगम तहं गम करे, तत्त्वैं तत्त्व मिलान।
आसन गुरु के आइबो, मुक्तैं महल समान ॥ २ ॥
प्राणी परि पूजा करै, पूरै प्रेम विलास।
सहजैं सुन्दर सेविये, लागी लै कैलास ॥ ३ ॥
रैण दिवस दीसै नहीं, सहजैं पुंज प्रकास।
दादू दर्शन देखिये, इहि रस रातो हो दास ॥ ४ ॥

भगवद् भजन रूप सुख-सागर में स्नान करने से अपार पाप नष्ट हो जाते हैं। प्राणी निर्मल होकर सृष्टि-कर्ता ईश्वर से मिलता है। संयम पूर्वक भजन से प्राणी सदा के लिये अन्यों को पवित्र करने वाला बन जाता है और उसके कोई भी प्रकार का दोष रूप कीचड़ नहीं लगता। उसका हृदय-कमल खिल जाता है, उसमें ब्रह्म ज्ञान उत्पन्न हो जाता है। वेद से भी जो अगम है, उस ब्रह्म के पास पहुँच जाता है और ब्रह्म तत्त्व में आत्मतत्त्व को मिलाकर गुरु के बताये हुये स्वस्वरूप स्थिति रूप आसन पर स्थिर हो, शरीर-महल में रहते हुये भी शरीर से मुक्त के समान हो जाता है। प्राणी परिपूर्ण रूप से प्रभु की पूजा करता है, तब शनै: शनै: उस सुन्दर सेवा से उसकी वृत्ति सहस्रार रूप कैलास में जाकर ब्रह्म-स्वरूप में लगती है और वह प्रभु के पूर्ण परमानन्द का उपभोग करता है। समाधि में जहां प्रभु का दर्शन होता है, वहां रात्रि-दिन आदि काल-भेद नहीं दीखता, स्वाभाविक प्रकाश पुंज ब्रह्म ही भासता है। हे भगवान् के दास ! तू भी इस भजन-रस में अनुरक्त होकर उस परब्रह्म के दर्शन कर।

२४८-शूलताल

अविनाशी संग आत्मा, रमै हो रैण दिन राम।
एक निरंतर ते भजैं, हरि हरि प्राणी नाम ॥ टेक ॥
सदा अखंडित उर बसै, सो मन जाणी ले।
सकल निरंतर पूरि सब, आतम रातो ते ॥ १ ॥
निराधार निज बैसणों, जिहिं तत आसन पूर।
गुरु शिष आनंद ऊपजै, सन्मुख सदा हजूर ॥ २ ॥
निश्चल ते चालै नहीं, प्राणी ते परिमाण।
साथी साथैं ते रहैं, जाणैं जाण सुजाण ॥ ३ ॥

ते निर्गुण आगुण[1] धरी, मांहीं कौतुकहार।
देह अछत[2] अलगो रहै, दादू सेव अपार ॥ ४ ॥

जो प्राणी हरि हरि उच्चारण करते हुये निरंतर एक अविनाशी राम को भजते हैं, उनकी बुद्धि रात्रि-दिन उस राम में ही रमण करती है। जो सदा अखंडित भाव से हृदय में बसता है, उसी को साधन सम्पन्न मन से जान कर प्राप्त कर ले। जो निरंतर सब में परिपूर्ण है, उसी में हमारा जीवात्मा अनुरक्त है, जब उस निराधार निज स्वरूप तत्त्व में स्थिति रूप आसन लगा कर बैठना होता है, तब ब्रह्म तत्त्व सदा सन्मुख उपस्थित भासता है और गुरु शिष्य दोनों के हृदय में ब्रह्मानंद उत्पन्न होता है। वे साधक संयम रूप माप से स्वस्वरूप में निश्चल रहते हैं, उनकी वृत्ति विषयों में नहीं जाती। वे बुद्धिमान् ज्ञान द्वारा जानकर अपने सदा के साथी परब्रह्म के साथ ही रहते हैं। वे गुण-विस्तार वाली-माया[1] को त्याग कर सत्ता मात्र से संसार रूप खेल रचने वाले निर्गुण ब्रह्म में ही स्थित रहते हैं। इस प्रकार उस असीम प्रभु की उपासना करके शरीर में रहते हुये भी शरीराध्यास[2] से अलग रहते हैं।

२४९-शूलताल

पारब्रह्म भज प्राणिया, अविगत एक अपार।
अविनाशी गुरु सेविये, सहजैं प्राण अधार ॥टेक॥
ते पुर प्राणी तेहनो, अविचल सदा रहंत ।
आदि पुरुष ते आपणों, पूरण परम अनंत ॥ १ ॥
अविगत आसण कीजिये, आपैं आप निधान।
निरालम्ब भज तेहनों, आनंद आत्मराम ॥ २ ॥
निर्गुण निश्चल थिर रहै, निराकार निज सोइ ।
ते सति प्राणी सेविये, लै समाधि रत होइ ॥ ३ ॥
अमर आप रमता रमैं, घट घट सिरजनहार ।
गुणातीत भज प्राणिया, दादू येह विचार ॥ ४ ॥

हे प्राणी, गुरुजनों की सेवा करते हुये मन इन्द्रियों के अविषय, अपार, अद्वैत, अविनाशी, प्राणाधार, परब्रह्म का सहज स्वभाव से सदा ही भजन कर। वह सदा निश्चल रहने वाला प्रभु रूप पुर ही तेरा स्थान है। उस परम अनन्त, आदि पुरुष, मन इन्द्रियों के परे, विश्व में परिपूर्ण अपने निजी आश्रय रूप प्रभु में ही वृत्ति स्थिति रूप आसन लगा। अन्य आश्रय रहित, निर्गुण, निश्चल, निराकार, आत्म स्वरूप राम ही सदा स्थिर रहता है, वही तेरा है, उसे भज। हे प्राणी ! वृत्ति द्वारा समाधि में अनुरक्त होकर उस सत्य प्रभु की ही उपासना कर। वह सत्ता मात्र से सृष्टिकर्ता, गुणातीत, अमर, सब में रमने वाला, स्वयं घट-घट में रम रहा है। हे प्राणी ! तू अब उसी का भजन कर, हमारा विचारपूर्वक यही उपदेश है।

२४६-२४९ के ४ पदों से रतिया निवासी बाबा बनवारीजी को उपदेश किया था। उपदेश से ही वे कृतकृत्य होकर ''हरिजी भलो भयो संतन को, सुन-सुन सरस कथा दादू की, भ्रम भाग्यो या मन को'' यह पद महाराज की भेंट किया था।

२५०-शूरातन । झपताल

क्यों भाजै सेवक तेरा, ऐसा शिर साहिब मेरा ॥ टेक॥
जाके धरती गगन अकाशा, जाके चंद सूर कविलाशा।
जाके तेज पवन जल साजा, जाके पंच तत्त्व के बाजा॥ १ ॥
जाके अठारह भार वनमाला, गिरि पर्वत दीन दयाला।
जाके सायर[1] अनन्त तरंगा, जाके चौरासी लख संगा॥ २ ॥
जाके ऐसे लोक अनन्ता, रचि राखै विधि बहु भंता।
जाके ऐसा खेल पसारा, सब देखे कौतुकहारा॥ ३ ॥
जाके काल मीच डर नांहीं, सो बरत रह्या सब मांहीं।
मन भावै खेलै खेला, ऐसा है आप अकेला॥ ४ ॥
जाके ब्रह्मा ईश्वर[2] बंदा, सब मुनिजन लागे अंगा।
जाके साधु सिद्ध सब मांहीं, परिपूरण परिमित नांहीं॥ ५ ॥
सोइ भानै घड़े सँवारै, युग केते कबहुँ न हारै।
ऐसा हरि साहिब पूरा, सब जीवन आत्ममूरा[3] ॥ ६ ॥
सो सबहिन की सुधि जानैं, जो जैसा तैसी बानैं।
सर्वंगी राम सयाना, हरि करै सो होइ निदाना॥ ७ ॥
जे हरि जन सेवक भाजै, तो ऐसा साहिब लाजै।
अब मरण माँड हरि आगे, तो दादू बाण न लागे॥ ८ ॥

२५०-२५१ में साधन शौर्य दिखा रहे हैं—हे प्रभो ! आपका सेवक आपकी सेवा छोड़ कर, विषय-वासना की पूर्ति के लिए क्यों दौड़ेगा ? मेरे शिर पर आप ऐसे स्वामी हैं—जिनने इच्छा मात्र से तन्मात्रा रूप पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश रचे हैं ओर आकाश में चन्द्र, सूर्यादि सजाये हैं जिनके स्थूल पंच भूतों के ध्वनि रूप शब्द ही बाजे बज रहे हैं। जिन दीनदयालु ने अठारह भार वनस्पति के वनों की पंक्तियाँ, छोटे बड़े पर्वत, अनन्त तरंगों वाले समुद्र[1] रचे हैं, चौरासी लक्ष योनि जिनके साथ हैं, ऐसे अनन्त लोकों की बहुत प्रकार से रचना करके भली भांति रक्षा कर रहे हैं। जिनका यह ऐसा विचित्र संसार-खेल फैलाया हुआ है और वे खेल करने वाले के समान सबको देख रहे हैं। जिन को समय व्यतीत होने का वा मृत्यु का भय नहीं है, वे सब में स्थित रह कर उनके मन को अच्छा लगे वैसा खेल खेलते हैं। वे ऐसे अद्भुत और स्वयं अद्वैत हैं । जिनके ब्रह्मा और महादेव[2] भी भक्त हैं। सभी मुनिजन, साधु और सिद्ध भी जिनके स्वरूप चिन्तन में लगे हैं। जो

सब में परिपूर्ण और असीम हैं। वे ही अनन्त नारी पुरुषादिक जोड़े निरंतर बनाते हैं और नष्ट करते रहते हैं, किन्तु कभी भी थकते नहीं। वे हरि ऐसे पूर्ण प्रभु हैं, संपूर्ण जीवात्माओं के मूल[३] और जीवन हैं। वे सबके भाव विचारों को जानते हैं और जो जैसा होता है, उसके लिये वैसी ही व्यवस्था बना देते हैं। वे राम संपूर्ण जीवादि रूप अंगों के अंगी हैं अर्थात् सर्व रूप हैं और परम चतुर हैं। जो भी वे हरि करना चाहते हैं, अंत में वही होता है। यदि हरि का सेवक, हरि उपासना को छोड़ कर विषय-वासना पूर्ति के लिए दौड़ता है तो ऐसे प्रभु को लाज लगती है। इस लिये अब मरना स्वीकार करके भी भजन द्वारा हरि के आगे ही रहना चाहिए। ऐसा करने से काल-कर्म के बाण न लग सकेंगे और अन्त में साधक अभेद रूप से हरि को ही प्राप्त होगा।

२५१-झपताल

हरि भजतां किमि भाजिये, भाजैं भल नांहीं।
भागें भल क्यों पाइये, पछतावै मांहीं॥ टेक॥
सूरो सो सहजैं भिड़ै, सार उर झेलै।
रण रोकै भाजै नहीं, ते बाण न मेलै॥ १ ॥
सती सत साँचा गहै, मरणै न डराई।
प्राण तजे जग देखतां, पियड़ो उर लाई॥ २ ॥
प्राण पतंगा यों तजै, वो अंग न मोड़ै।
जौबन जारे ज्योति सौं, नैना भल जोड़ै॥ ३ ॥
सेवक सो स्वामी भजै, तन मन तज आसा।
दादू दर्शन ते लहैं, सुख संगम पासा॥ ४ ॥

हरि भजन करते समय विषयाशा पूर्ति के लिए नहीं दौड़ना चाहिए, उधर दौड़ने से भजन भली प्रकार नहीं होता। भक्त को विषयाशा पूर्ति के लिए दौड़ने से भलाई कैसे मिलेगी, प्रत्युत मन में पश्चात्ताप करना होगा। वीर तो वही है, जो सहजावस्था के द्वारा महा मोह को नष्ट करने के लिए युद्ध करता है और ब्रह्म सम्बन्धी गुरु के सार वचन रूप शस्त्रों को छाती पर झेलता है। साधन संग्राम में कामादि को रोकता है अर्थात् अपने हृदय में उनके वेग को नहीं आने देता। न साधन से हटता है और उक्त ब्रह्म सम्बन्धी गुरु वचन रूप बाण अन्तःकरण हाथ से दूर नहीं धरता। सती नारी पति से प्रेम करके सच्चा सत्य ग्रहण करती है तब मरणे से नहीं डरती। जगत् के लोगों को देखते-देखते पति के शव को हृदय से लगा कर प्राण छोड़ देती है, तब ही पति-लोक को प्राप्त होती है। इसी प्रकार पतंग अपने प्राणों को त्याग देता है, वह दीपक से अपने शरीर को नहीं लौटाता, भली प्रकार अपने नेत्र दीपक से जोड़कर उसी की ज्योति से अपने यौवन युक्त शरीर को जला देता है। वैसे ही तन और मानसिक सुखों की आशा को त्याग कर जो भगवान् को भजता है, वही सेवक स्वामी के दर्शन करता है और उनके अभेद रूप संगम का आनंद लेता है।

२५२-चेतावनी। रुद्रताल

सुन तूं मना रे, मूरख मूढ विचार।
आवै लहरि बिहावणी[1], दमै[2] देह अपार ॥टेक॥
करिबो है तिमि कीजिये रे, सुमिर सो आधार॥ १ ॥
चरण बिहूंणो चालबो रे, संभारी ले सार॥ २ ॥
दादू तेहज लीजिये रे, साचो सिरजनहार॥ ३ ॥

२५२-२५३ में मन को भगवद् भजनार्थ सावधान कर रहे हैं—हे मूर्ख मन ! तू हमारी बात सुन और हे मूढ़ ! उसे विचार भी। देख, आगे यथार्थ सुख को छुड़ाने[1] वाली विषयाशा रूप लहर हृदय में आयेगी, उससे देह का अपार दमन[2] होगा। अत: जैसा कल्याण का साधन करना योग्य है वैसा ही कर, जो अपने आधार प्रभु हैं उन्हीं का स्मरण कर। अरे ! उन प्रभु के पास बिना पैरों वृत्ति द्वारा ही चलना होता है। इसलिये शीघ्र ही विश्व के सार रूप प्रभु का स्मरण कर ले। इस प्रकार स्मरण द्वारा उस सत्ता मात्र से ही सृष्टि रचने वाले सत्य स्वरूप प्रभु को प्राप्त कर ले।

२५३-रुद्रताल

रे मन साथी माहरा, तूनैं समझायो कै बारो रे ।
रातो रंग कसूंभ के, तैं बिसार्‍यो आधारो रे ॥टेक॥
स्वप्ना सुख के कारणे, फिर पीछे दुख होई रे ।
दीपक दृष्टि पतंग ज्यों, यौं भर्मि जले जनि कोई रे ॥ १ ॥
जिह्वा स्वारथ आपणे, ज्यों मीन मरे तज नीरो रे ।
माँहैं जाल न जाणियो, तातैं उपनो दु:ख शरीरो रे ॥ २ ॥
स्वादैं हीं संकट पर्‍यो, देखत ही नर अंधो रे ।
मूरख मूठी छाड़ि दे, होइ रह्यो निर्बन्धो रे ॥ ३ ॥
मान सिखावण माहरी, तू हरि भज मूल न हारी रे ।
सुख सागर सोइ सेविये, जन दादू राम सँभारी रे ॥ ४ ॥

इति राग सिन्दूरा ॥ १० ॥ पद ८ ॥

अरे मेरे साथी मन ! मैंने तुझे कितनी ही बार समझाया है रे, किन्तु तू नहीं समझा, तभी तो तू अपने आधार प्रभु को भूल कर विषय-कुसुम्भ के प्रेम-रंग में अनुरक्त हो रहा है। अभी तो तू इस स्वप्न के समान मिथ्या विषय सुख के लिए अनर्थ कर रहा है, किन्तु फिर कुछ काल के पीछे तो इसका फल तुझे दु:ख ही मिलेगा। जैसे पतंग दीपक में दृष्टि लगा कर भ्रमवश जल मरता है, वैसे ही विषयों से भ्रमवश सुख की आशा करके कोई न मरे, उनमें सुख नहीं है। जिह्वा-सुखरूप निजी स्वार्थवश हो, मच्छी जल में जाल को नहीं जान पाती, इसीलिए उसके शरीर में क्लेश उत्पन्न होता है और वह जल को त्याग कर जैसे मर जाती है, वैसे ही विषय केलिये नर मरता है।

नर देखते हुये भी अन्धा होकर, इन्द्रिय स्वाद के कारण ही संकट में पड़ता है। यदि मूर्ख वानर चणे की मुट्ठी छोड़ दे तो बन्धन रहित है, बाजीगर के हाथ नहीं आता। वैसे ही नर विषय-रस को त्याग दे तो, वह मुक्त ही है, काल के फंदे में नहीं आयेगा। अरे मन ! हमारी शिक्षा मान, तू हरि का भजन कर, अपने मनुष्य शरीर रूप मूल धन को तो व्यर्थ मत खो। जो सुख सागर राम है उसी का भक्त बनकर उसकी स्मरण रूप सेवा कर।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग सिन्दूरा समाप्त: ॥ १० ॥

अथ राग देवगांधार ११

(गायन समय प्रात: ६ से ९)

२५४-विनती अनन्यशरण । त्रिताल

शरण तुम्हारी आइ परे।
जहां तहां हम सब फिर आये, राखि राखि हम दुखित खरे ॥ टेक॥
कस कस काया तप व्रत कर कर, भ्रमत भ्रमत हम भूल परे।
कहुँ शीतल कहुँ तप्त दहे तन, कहुँ हम करवत शीश धरे॥ १ ॥
कहुँ वन तीरथ फिर फिर थाके, कहुँ गिरि पर्वत जाइ चढ़े ।
कहूँ शिखर चढ़ परे धरणि पर, कहुँ हत आपा प्राण हरे ॥ २ ॥
अंध भये हम निकट न सूझै, तातैं तुम तज जाइ जरे।
हा हा हरि अब दीन लीन कर, दादू बहु अपराध भरे॥ ३ ॥

अनन्यशरण पूर्वक विनय कर रहे हैं—हे प्रभो ! हम संसार के सभी स्थलों में जहां तहां फिर आये हैं और सच्चे दुखित होकर अब आपकी शरण में आकर पड़े हैं। आप हमारी रक्षा करें, रक्षा करें। हमने बारंबार तप और व्रत करके शरीर को कष्ट दिया है। संसार में भ्रमते-भ्रमते मार्ग भूल कर हम कष्टों में पड़ गये थे। कहीं तो शीतल जल की पंच धारायें लेकर शरीर को काष्ठवत् शून्य किया। कहीं पंच धूनी तापते हुये शरीर को तप्त ज्वालाओं से जलाया। किसी शरीर में शिर पर करवत धारण करके शरीर को चीरा। कहीं वन, तीर्थों में फिरते-फिरते थक गये, कहीं जाकर छोटे बड़े पर्वतों पर चढ़े। किसी जन्म में पर्वत शिखर पर चढ़ कर पृथ्वी पर पड़े। कहीं अपने हाथों अपने को मार कर प्राण खोये। हम तो स्वार्थवश अंध हो गये थे, इसीलिए अति समीप हृदय में रहते हुये भी आप हमें नहीं दीख सके। आपके दर्शन न होने से ही आप को छोड़ संसार में जा नाना क्लेशाग्नि से जलते रहे हैं। हम बहुत अपराधों से भरे हुये हैं, हा-हा ! दु:ख, अति दु:ख है। हे हरे ! अब तो मुझ दीन को अपने स्वरूप में लीन कर लीजिये।

नर देखते हुये भी अन्धा होकर, इन्द्रिय स्वाद के कारण ही संकट में पड़ता है। यदि मूर्ख वानर चणे की मुट्ठी छोड़ दे तो बन्धन रहित है, बाजीगर के हाथ नहीं आता। वैसे ही नर विषय-रस को त्याग दे तो, वह मुक्त ही है, काल के फंदे में नहीं आयेगा। अरे मन ! हमारी शिक्षा मान, तू हरि का भजन कर, अपने मनुष्य शरीर रूप मूल धन को तो व्यर्थ मत खो। जो सुख सागर राम है उसी का भक्त बनकर उसकी स्मरण रूप सेवा कर।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग सिन्दूरा समाप्त: ॥ १० ॥

अथ राग देवगांधार ११

(गायन समय प्रात: ६ से ९)

२५४-विनती अनन्यशरण। त्रिताल

शरण तुम्हारी आइ परे।
जहां तहां हम सब फिर आये, राखि राखि हम दुखित खरे॥ टेक॥
कस कस काया तप व्रत कर कर, भ्रमत भ्रमत हम भूल परे।
कहुँ शीतल कहुँ तप्त दहे तन, कहुँ हम करवत शीश धरे॥ १ ॥
कहुँ वन तीरथ फिर फिर थाके, कहुँ गिरि पर्वत जाइ चढ़े।
कहूँ शिखर चढ़ परे धरणि पर, कहुँ हत आपा प्राण हरे॥ २ ॥
अंध भये हम निकट न सूझै, तातैं तुम तज जाइ जरे।
हा हा हरि अब दीन लीन कर, दादू बहु अपराध भरे॥ ३ ॥

अनन्यशरण पूर्वक विनय कर रहे हैं—हे प्रभो ! हम संसार के सभी स्थलों में जहां तहां फिर आये हैं और सच्चे दुखित होकर अब आपकी शरण में आकर पड़े हैं। आप हमारी रक्षा करें, रक्षा करें। हमने बारंबार तप और व्रत करके शरीर को कष्ट दिया है। संसार में भ्रमते-भ्रमते मार्ग भूल कर हम कष्टों में पड़ गये थे। कहीं तो शीतल जल की पंच धारायें लेकर शरीर को काष्ठवत् शून्य किया। कहीं पंच धूनी तापते हुये शरीर को तप्त ज्वालाओं से जलाया। किसी शरीर में शिर पर करवत धारण करके शरीर को चीरा। कहीं वन, तीर्थों में फिरते-फिरते थक गये, कहीं जाकर छोटे बड़े पर्वतों पर चढ़े। किसी जन्म में पर्वत शिखर पर चढ़ कर पृथ्वी पर पड़े। कहीं अपने हाथों अपने को मार कर प्राण खोये। हम तो स्वार्थवश अंध हो गये थे, इसीलिए अति समीप हृदय में रहते हुये भी आप हमें नहीं दीख सके। आपके दर्शन न होने से ही आप को छोड़ संसार में जा नाना क्लेशाग्नि से जलते रहे हैं। हम बहुत अपराधों से भरे हुये हैं, हा-हा ! दु:ख, अति दु:ख है। हे हरे ! अब तो मुझ दीन को अपने स्वरूप में लीन कर लीजिये।

२५५-पतिव्रत उपदेश । त्रिताल

बौरी ! तूं बार बार बौरानी ।
सखी सुहाग न पावै ऐसे, कैसे भरमि भुलानी ॥ टेक ॥
चरणों चेरी चित नहिं राख्यो, पतिव्रत नाहिंन जान्यों ।
सुन्दरि सेज संग नहिं जानैं, पीव सौं मन नहिं मान्यों ॥ १ ॥
तन मन सबै शरीर न सोंप्यो, शीश नाइ नहीं ठाढी ।
इक रस प्रीति रही नहिं कबहूं, प्रेम उमंग न बाढी ॥ २ ॥
प्रीतम अपनों परम सनेही, नैन निरख न अघानी ।
निशि-वासर आनि उर अंतर, परम पूज्य नहिं जानी ॥ ३ ॥
पतिव्रत आगैं जिन जिन पाल्यो, सुन्दरि तन सब छाजै ।
दादू पिव बिन और न जानैं, ताहि सुहाग विराजै ॥ ४ ॥

पतिव्रत का उपदेश कर रहे हैं—हे पगली बुद्धि ! तू विषयों में जाकर बारंबार पागल होती रही है । अरी सखी ! भ्रम वश प्रभु को क्यों भूल रही है ? ऐसे व्यवहार से तो प्रभु की समीपतारूप सुहाग न प्राप्त कर सकेगी । तूने दासी भाव से प्रभु के चरणों में अपना चित्त नहीं रक्खा और न पतिव्रत धर्म को ही सम्यक् पहचाना । हे सुन्दरी ! तूने प्रभु के संग एकता रूप शय्या-सुख का अनुभव नहीं किया । करती भी कैसे ? तेरा मन तो प्रभु से प्रसन्न हुआ ही नहीं । तूने अपना स्थूल शरीर और मनादिक संपूर्ण सूक्ष्म शरीर, प्रभु को समर्पण नहीं किया, न शिर झुकाकर उनके सन्मुख खड़ी हुई, न उनमें तेरी निरंतर प्रीति ही रही, न कभी तेरे हृदय में प्रभु-प्रेम की लहर ही बढ़ी, न तू अपने परम स्नेही प्रियतम को नेत्रों से देख कर तृप्त ही हुई । उन्हें परम पूज्य जान कर रात्रि-दिन अपने हृदय में उनका ध्यान भी नहीं किया । पहले जिन-जिन ने पतिव्रत पालन किया है, उन सुन्दरियों को सब शोभा प्राप्त हुई है । अब भी जो प्रियतम बिना अन्य को पुरुष नहीं जानती, उस बुद्धि-सुन्दरी को प्रियतम प्रभु का साक्षात्कार रूप सुहाग प्राप्त है ।

२५६-उपदेश चेतावनी । रंगताल

मन मूरखा ! तैं यों ही जन्म गँवायो ।
सांई केरी सेव न कीन्ही, इहि कलि काहे कों आयो ॥ टेक ॥
जिन बातन तेरो छूटिक नांहीं, सोइ मन तेरे भायो ।
कामी ह्वै विषया संग लागो, रोम रोम लपटायो ॥ १ ॥
कुछ इक चेत विचारी देखो, कहा पाप जिय लायो ।
दादू दास भजन कर लीजे, स्वप्नैं जग डहकायो ॥ २ ॥

इति राग देवगान्धार समाप्तः ॥ ११ ॥ पद ३ ॥

उपदेश से सावधान कर रहे हैं—अरे मूर्ख मन प्राणी ! तूने मानव जन्म को विषयों में व्यर्थ ही खो दिया है। परमात्मा की भक्ति नहीं करी, फिर तू इस कलियुग में मानव देह धारण करके आया ही क्यों था ? विषय तो अन्य योनियों में भी प्राप्त थे। जिन वचन और कर्मों से तेरा दुःखों से छुटकारा नहीं होता, वे ही तेरे मन को अच्छे लग रहे हैं। तू कामी होकर विषयों के साथ लगता है और नारी के रोम-रोम से चिपकता है। अरे ! कुछ तो सावधान होकर विचार द्वारा देख, यह विषयाशारूप पाप अपने हृदय में क्यों लगाया है ? संसार स्वप्न से क्यों बहक रहा है ? भगवद्-भजन करके भक्त बन और भगवान् को प्राप्त कर ले, यही तेरा सच्चा कर्त्तव्य है।

बखनाजी को उपदेश किया था और उन्होंने स्वीकार करके, यह पद कहा था- ''मेरा गुरां कह्यो सोइ करस्यां।'' प्रसंग कथा-दृ. सु. सि. त. ९-३१ में देखो।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग देवगान्धार समाप्तः ॥ ११ ॥

अथ राग कालिंगड़ा १२

(गायन समय प्रभात ३ से ६)

२५७-(गुजराती) विनती। रंग ताल

वाल्हा हूं ताहरी, तूं माहरो नाथ।
तुम सौं पहली प्रीतड़ी, पूरबलो साथ ॥टेक॥
वाल्हा मैं तूंम्हारो ओलखियो[1] रे, राखिस[2] तूनैं हृदा मंझारि।
हूं पामूं[3] पीव आपणों रे, त्रिभुवन दाता देव मुरारि॥ १ ॥
वाल्हा मन माहरो मन मांहीं राखिस, आतम एक निरंजन देव।
चित मांहैं चित सदा निरंतर, येणी[4] पेरें तुम्हारी सेव॥ २ ॥
वाल्हा भाव भक्ति हरि भजन तुम्हारो, प्रेमें पूरि कवल विगास।
अभि-अंतर आनंद अविनाशी, दादू नी एवैं पूरवी आस॥ ३ ॥

प्रभु से विनय कर रहे हैं—हे प्रियतम प्रभो ! मैं आपकी हूं, आप मेरे नाथ हैं। आपसे मेरी प्रीति पहले से ही है। आपका और मेरा साथ पहले से ही चला आ रहा है। प्रिय, मैंने पहचान[1] लिया है कि—आप मेरे हैं, मैं आपको हृदय में रक्खूंगी[2]। मैंने त्रिभुवन को जीविका देने वाले मुरारि देव अपने प्रियतम को प्राप्त[3] कर लिया है। हे आत्म स्वरूप अद्वैत निरंजन देव प्रियतम ! अब मेरे मन और चित्त को सदा के लिए निरंतर आप अपने मन और चित्त में रक्खें। इस[4] प्रकार अभेद भाव से आपकी सेवा करता रहूं तथा हे प्रियतम हरे ! आपकी श्रद्धा, भक्ति और पूर्ण प्रेम के द्वारा मेरा हृदय कमल खिला रहे। भीतर में अखंड आनंद का अनुभव होता रहे, ऐसे मेरी यह आशा पूर्ण करिये।

२५८-(गुजराती) उपदेश चेतावनी। वर्ण भिन्न ताल

बार हि बार कहूं रे गहिला, राम नाम कांइ विसार्स्यो रे।
जनम अमोलक पामियो[1], एह्वो[2] रतन कांइ हार्स्यो रे॥ टेक॥

उपदेश से सावधान कर रहे हैं—अरे मूर्ख मन प्राणी ! तूने मानव जन्म को विषयों में व्यर्थ ही खो दिया है। परमात्मा की भक्ति नहीं करी, फिर तू इस कलियुग में मानव देह धारण करके आया ही क्यों था ? विषय तो अन्य योनियों में भी प्राप्त थे। जिन वचन और कर्मों से तेरा दुःखों से छुटकारा नहीं होता, वे ही तेरे मन को अच्छे लग रहे हैं। तू कामी होकर विषयों के साथ लगता है और नारी के रोम-रोम से चिपकता है। अरे ! कुछ तो सावधान होकर विचार द्वारा देख, यह विषयाशारूप पाप अपने हृदय में क्यों लगाया है ? संसार स्वप्न से क्यों बहक रहा है ? भगवद्-भजन करके भक्त बन और भगवान् को प्राप्त कर ले, यही तेरा सच्चा कर्त्तव्य है।

बखनाजी को उपदेश किया था और उन्होंने स्वीकार करके, यह पद कहा था- ''मेरा गुरां कह्यो सोइ करस्यां।'' प्रसंग कथा-दृ. सु. सि. त. ९-३१ में देखो।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग देवगान्धार समाप्तः ॥ ११ ॥

अथ राग कालिंगड़ा १२

(गायन समय प्रभात ३ से ६)

२५७-(गुजराती) विनती। रंग ताल

वाल्हा हूं ताहरी, तूं माहरो नाथ।
तुम सौं पहली प्रीतड़ी, पूरबलो साथ॥टेक॥
वाल्हा मैं तूंम्हारो ओलखियो[1] रे, राखिस[2] तूनैं हृदा मंझारि।
हूं पामूं[3] पीव आपणों रे, त्रिभुवन दाता देव मुरारि॥ १ ॥
वाल्हा मन माहरो मन मांहीं राखिस, आतम एक निरंजन देव।
चित मांहैं चित सदा निरंतर, येणी[4] पेरें तुम्हारी सेवा॥ २ ॥
वाल्हा भाव भक्ति हरि भजन तुम्हारो, प्रेमें पूरि कवल विगास।
अभि-अंतर आनंद अविनाशी, दादू नी एवैं पूरवी आस॥ ३ ॥

प्रभु से विनय कर रहे हैं—हे प्रियतम प्रभो ! मैं आपकी हूं, आप मेरे नाथ हैं। आपसे मेरी प्रीति पहले से ही है। आपका और मेरा साथ पहले से ही चला आ रहा है। प्रिय, मैंने पहचान[1] लिया है कि—आप मेरे हैं, मैं आपको हृदय में रक्खूंगी[2]। मैंने त्रिभुवन को जीविका देने वाले मुरारि देव अपने प्रियतम को प्राप्त[3] कर लिया है। हे आत्म स्वरूप अद्वैत निरंजन देव प्रियतम ! अब मेरे मन और चित्त को सदा के लिए निरंतर आप अपने मन और चित्त में रक्खें। इस[4] प्रकार अभेद भाव से आपकी सेवा करता रहूं तथा हे प्रियतम हरे ! आपकी श्रद्धा, भक्ति और पूर्ण प्रेम के द्वारा मेरा हृदय कमल खिला रहे। भीतर में अखंड आनंद का अनुभव होता रहे, ऐसे मेरी यह आशा पूर्ण करिये।

२५८-(गुजराती) उपदेश चेतावनी। वर्ण भिन्न ताल

बार हि बार कहूं रे गहिला, राम नाम कांइ विसास्यो रे।
जनम अमोलक पामियो[1], एह्वो[2] रतन कांइ हास्यो रे॥ टेक॥

विषया वाह्यो[३] नैं तहँ धायो, कीधो[४] नहिं म्हारो वास्यो[५] रे ।
माया धन जोई नैं भूल्यो, सर्वस येणें[६] हास्यो रे ॥ १ ॥
गर्भवास देह दमतो[७] प्राणी, आश्रम तेह सँभास्यो रे ।
दादू रे जन रांम भणीजे, नहिं तो जथा विधि हास्यो रे ॥ २ ॥

इति राग कालिंगड़ा समाप्तः ॥ १२ ॥ पद २ ॥

उपदेश द्वारा सावधान कर रहे हैं—अरे पागल ! मैं तुझे बारंबार कहता हूं, तू राम नाम का चिन्तन क्यों भूला है ? यह अमूल्य मानव जन्म तुझे प्राप्त[१] हुआ है, ऐसा[२] रत्न विषयों में क्यों खो रहा है ? विषयों से बहक[३] करके जहां विषय प्राप्त हों, वहां ही दौड़ता है। मैंने जिनको त्यागनें[५] के लिए कहा, वे कामादि नहीं त्यागे, मेरा कहना नहीं किया[४]। मायिक कनकादि धनों को देखकर प्रभु को भूल रहा है। इस[६] व्यवहार से तो तू अपना सर्वस्व खो रहा है। हे प्राणी ! गर्भवास में तेरा सूक्ष्म देह बारंबार अति कष्ट[७] पाता रहा है। गर्भवासरूप आश्रम में तूने उस प्रभु को स्मरण किया था, अब फिर भूल गया है। अरे मन ! राम नाम चिन्तन तथा उच्चारण कर, नहीं करने से तो जैसी विधि से तू चल रहा है, ऐसे तो अपने जन्म को व्यर्थ ही खो रहा है।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग कालिंगडा समाप्तः ॥ १२ ॥

अथ राग परजिया (परज) १३

(गायन समय रात्रि ३ से ६)

२५९-परिचय । खेमटा ताल

नूर रह्या भरपूर, अमी रस पीजिये ।
रस मांहीं रस होइ, लाहा लीजिये ॥टेक॥
परकट तेज अनंत, पार नहिं पाइये ।
झिलमिल झिलमिल होइ, तहां मन लाइये ॥ १ ॥
सहजैं सदा प्रकाश, ज्योति जल पूरिया ।
तहां रहैं निज दास, सेवक सूरिया ॥ २ ॥
सुख सागर वार न पार, हमारा वास है ।
हंस रहैं ता मांहिं, दादू दास है ॥ ३ ॥

इति राग परजिया (परज) समाप्तः ॥ १३ ॥ पद १ ॥

साक्षात्कार की प्रेरणा करते हुये स्थिति बता रहे हैं—ब्रह्म प्रकाश सर्वत्र परिपूर्ण है, उसका चिन्तनरूप अमृत पान करो और उस रस रूप ब्रह्म में रस रूप आत्मा एक हो सके, ऐसा विचार करके अभेद स्थिति रूप लाभ लो। वह अनन्त तेज रूप ब्रह्म समाधि में प्रकट रूप से भासता है, किन्तु उसका आदि अन्त ज्ञात नहीं होता, वह अपार है। जहां झिलमिल-झिलमिल प्रकाश हो

रहा है वहां ही अपने मन को लगाओ। वह प्रकाश सदा सहज भाव से जल में ज्योति प्रतिविम्ब के समान भासता है। भगवान् के निज दास साधन में वीर निष्काम भक्त ही वृत्ति द्वारा उस प्रकाश के पास रहते हैं। जो वार-पार रहित सुख-सागर है, उसी में हम भक्त रूप हंसों का निवास रहता है।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग परजिया (परज) समाप्त: ॥ १३ ॥

अथ राग भांणमली (भवानी) १४

(गायन समय मध्य रात्रि, राम मंजरी मतानुसार)

२६०-(गुजराती) विनती। कव्वाली ताल

मारा वाल्हा रे ! तारे शरण रहेश।
बिनतड़ी वाल्हाने कहतां, अनंत सुख लहेश ॥टेक॥
स्वामी तणों हूं संग न मेलूं, बीनतड़ी कहेश ।
हूं अबला, तूं बलवंत राजा, ताहरा वना वहेश[१] ॥ १ ॥
संग रहूं तां सब सुख पामूं[२], अंतर थैं दहेश[३] ।
दादू ऊपर दया करीनैं, आवो आंणीं वेश[४] ॥ २ ॥

२६०-२६३ में विरह पूर्वक विनय कर रहे हैं—मेरे प्रियतम ! मैं आपकी शरण रहूंगी, प्रियतम को विनय करते-करते ही मैं अपार सुख प्राप्त कर सकूंगी। मैं स्वामी का साथ नहीं छोड़ूंगी, उनसे विनय करूंगी। प्रियतम ! आप बलवान् और विश्व के राजा हैं। मैं अबला हूं आपके अनुग्रह बिना विषय-प्रवृत्ति प्रवाह में बह[१] जाऊंगी। आपके संग रहूंगी तब तो सब प्रकार से सुख प्राप्त[२] कर सकूंगी, नहीं तो आपके वियोग जन्य दु:ख द्वारा भीतर से जल[३] जाऊंगी। अत: मुझ पर दया करके अपने वास्तव स्वरूप से मेरे हृदय में आकर विराजो[४]।

२६१-(गुजराती) जलद त्रिताल

चरण देखाड़ तो परमाण[१]।
स्वामी माहरै नैणों निरखूं, माँगूं येज[२] मान[३] ॥ टेक ॥
जोवूं तुझनें आशा मुझनें, लागूं येज ध्यान ।
वाहलो मारो मलो रे सहिये[४], आवे केवल ज्ञान ॥ १ ॥
जेणी पेरें[५] हूं देखूं तुझनें, मुझनें आलो[६] जाण।
पीव तणी हूं पर नहिं जाणूं, दादू रे अजाण ॥ २ ॥

हे प्रभो ! आप मुझे अपने चरणों का दर्शन दो, तब ही आपकी भक्त वत्सलता सत्य[१] सिद्ध होगी। स्वामिन् ! मैं मेरे नेत्रों से आपका दर्शन कर सकूं, यही[२] आप से माँगता हूं। मेरी प्रार्थना मानो[३]। मुझे यही आशा लगी है—मैं आपको देखूं ! इसीलिए आपका यह ध्यान करता हूं। यदि

उपदेश से सावधान कर रहे हैं—अरे मूर्ख मन प्राणी ! तूने मानव जन्म को विषयों में व्यर्थ ही खो दिया है। परमात्मा की भक्ति नहीं करी, फिर तू इस कलियुग में मानव देह धारण करके आया ही क्यों था ? विषय तो अन्य योनियों में भी प्राप्त थे। जिन वचन और कर्मों से तेरा दुःखों से छुटकारा नहीं होता, वे ही तेरे मन को अच्छे लग रहे हैं। तू कामी होकर विषयों के साथ लगता है और नारी के रोम-रोम से चिपकता है। अरे ! कुछ तो सावधान होकर विचार द्वारा देख, यह विषयाशारूप पाप अपने हृदय में क्यों लगाया है ? संसार स्वप्न से क्यों बहक रहा है ? भगवद्-भजन करके भक्त बन और भगवान् को प्राप्त कर ले, यही तेरा सच्चा कर्त्तव्य है।

बखनाजी को उपदेश किया था और उन्होंने स्वीकार करके, यह पद कहा था- ''मेरा गुरां कह्यो सोइ करस्यां।'' प्रसंग कथा-दृ. सु. सि. त. ९-३१ में देखो।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग देवगान्धार समाप्तः ॥ ११ ॥

अथ राग कालिंगड़ा १२

(गायन समय प्रभात ३ से ६)

२५७-(गुजराती) विनती। रंग ताल

वाल्हा हूं ताहरी, तूं माहरो नाथ।
तुम सौं पहली प्रीतड़ी, पूरबलो साथ॥टेक॥
वाल्हा मैं तूंम्हारो ओलखियो[१] रे, राखिस[२] तूनैं हृदा मंझारि।
हूं पामूं[३] पीव आपणों रे, त्रिभुवन दाता देव मुरारि॥ १ ॥
वाल्हा मन माहरो मन मांहीं राखिस, आतम एक निरंजन देव।
चित मांहैं चित सदा निरंतर, येणी[४] पेरें तुम्हारी सेवा॥ २ ॥
वाल्हा भाव भक्ति हरि भजन तुम्हारो, प्रेमें पूरि कवल विगास।
अभि-अंतर आनंद अविनाशी, दादू नी एवैं पूरवी आस॥ ३ ॥

प्रभु से विनय कर रहे हैं—हे प्रियतम प्रभो ! मैं आपकी हूं, आप मेरे नाथ हैं। आपसे मेरी प्रीति पहले से ही है। आपका और मेरा साथ पहले से ही चला आ रहा है। प्रिय, मैंने पहचान[१] लिया है कि—आप मेरे हैं, मैं आपको हृदय में रक्खूंगी[२]। मैंने त्रिभुवन को जीविका देने वाले मुरारि देव अपने प्रियतम को प्राप्त[३] कर लिया है। हे आत्म स्वरूप अद्वैत निरंजन देव प्रियतम ! अब मेरे मन और चित्त को सदा के लिए निरंतर आप अपने मन और चित्त में रक्खें। इस[४] प्रकार अभेद भाव से आपकी सेवा करता रहूं तथा हे प्रियतम हरे ! आपकी श्रद्धा, भक्ति और पूर्ण प्रेम के द्वारा मेरा हृदय कमल खिला रहे। भीतर में अखंड आनंद का अनुभव होता रहे, ऐसे मेरी यह आशा पूर्ण करिये।

२५८-(गुजराती) उपदेश चेतावनी। वर्ण भिन्न ताल

बार हि बार कहूं रे गहिला, राम नाम कांइ विसार्‍यो रे।
जनम अमोलक पामियो[१], एह्वो[२] रतन कांइ हार्‍यो रे॥टेक॥

विषया वाह्यो[३] नैं तहँ धायो, कीधो[४] नहिं म्हारो वास्यो[५] रे ।
माया धन जोई नैं भूल्यो, सर्वस येणें[६] हास्यो रे ॥ १ ॥
गर्भवास देह दमतो[७] प्राणी, आश्रम तेह सँभास्यो रे ।
दादू रे जन रांम भणीजे, नहिं तो जथा विधि हास्यो रे ॥ २ ॥

इति राग कालिंगड़ा समाप्तः ॥ १२ ॥ पद २ ॥

उपदेश द्वारा सावधान कर रहे हैं—अरे पागल ! मैं तुझे बारंबार कहता हूं, तू राम नाम का चिन्तन क्यों भूला है ? यह अमूल्य मानव जन्म तुझे प्राप्त[१] हुआ है, ऐसा[२] रत्न विषयों में क्यों खो रहा है ? विषयों से बहक[३] करके जहां विषय प्राप्त हों, वहां ही दौड़ता है। मैंने जिनको त्यागने[५] के लिए कहा, वे कामादि नहीं त्यागे, मेरा कहना नहीं किया[४]। मायिक कनकादि धनों को देखकर प्रभु को भूल रहा है। इस[६] व्यवहार से तो तू अपना सर्वस्व खो रहा है। हे प्राणी ! गर्भवास में तेरा सूक्ष्म देह बारंबार अति कष्ट[७] पाता रहा है। गर्भवासरूप आश्रम में तूने उस प्रभु को स्मरण किया था, अब फिर भूल गया है। अरे मन ! राम नाम चिन्तन तथा उच्चारण कर, नहीं करने से तो जैसी विधि से तू चल रहा है, ऐसे तो अपने जन्म को व्यर्थ ही खो रहा है।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग कालिंगडा समाप्तः ॥ १२ ॥

अथ राग परजिया (परज) १३

(गायन समय रात्रि ३ से ६)

२५९-परिचय । खेमटा ताल

नूर रह्या भरपूर, अमी रस पीजिये ।
रस मांहीं रस होइ, लाहा लीजिये ॥टेक॥
परकट तेज अनंत, पार नहिं पाइये ।
झिलमिल झिलमिल होइ, तहां मन लाइये ॥ १ ॥
सहजैं सदा प्रकाश, ज्योति जल पूरिया ।
तहां रहैं निज दास, सेवक सूरिया ॥ २ ॥
सुख सागर वार न पार, हमारा वास है ।
हंस रहैं ता मांहिं, दादू दास है ॥ ३ ॥

इति राग परजिया (परज) समाप्तः ॥ १३ ॥ पद १ ॥

साक्षात्कार की प्रेरणा करते हुये स्थिति बता रहे हैं—ब्रह्म प्रकाश सर्वत्र परिपूर्ण है, उसका चिन्तनरूप अमृत पान करो और उस रस रूप ब्रह्म में रस रूप आत्मा एक हो सके, ऐसा विचार करके अभेद स्थिति रूप लाभ लो। वह अनन्त तेज रूप ब्रह्म समाधि में प्रकट रूप से भासता है, किन्तु उसका आदि अन्त ज्ञात नहीं होता, वह अपार है। जहां झिलमिल-झिलमिल प्रकाश हो

रहा है वहां ही अपने मन को लगाओ। वह प्रकाश सदा सहज भाव से जल में ज्योति प्रतिविम्ब के समान भासता है। भगवान् के निज दास साधन में वीर निष्काम भक्त ही वृत्ति द्वारा उस प्रकाश के पास रहते हैं। जो वार-पार रहित सुख-सागर है, उसी में हम भक्त रूप हंसों का निवास रहता है।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग परजिया (परज) समाप्त: ॥ १३ ॥

अथ राग भांणमली (भवानी) १४

(गायन समय मध्य रात्रि, राम मंजरी मतानुसार)

२६०-(गुजराती) विनती। कव्वाली ताल

मारा वाल्हा रे ! तारे शरण रहेश।
बिनतड़ी वाल्हाने कहतां, अनंत सुख लहेश ॥टेक॥
स्वामी तणों हूं संग न मेलूं, बीनतड़ी कहेश ।
हूं अबला, तूं बलवंत राजा, ताहरा वना वहेश[१] ॥ १ ॥
संग रहूं तां सब सुख पामूं[२], अंतर थैं दहेश[३] ।
दादू ऊपर दया करीनैं, आवो आंणीं वेश[४] ॥ २ ॥

२६०-२६३ में विरह पूर्वक विनय कर रहे हैं—मेरे प्रियतम ! मैं आपकी शरण रहूंगी, प्रियतम को विनय करते-करते ही मैं अपार सुख प्राप्त कर सकूंगी। मैं स्वामी का साथ नहीं छोडूंगी, उनसे विनय करूंगी। प्रियतम ! आप बलवान् और विश्व के राजा हैं। मैं अबला हूं आपके अनुग्रह बिना विषय-प्रवृत्ति प्रवाह में बह[१] जाऊंगी। आपके संग रहूंगी तब तो सब प्रकार से सुख प्राप्त[२] कर सकूंगी, नहीं तो आपके वियोग जन्य दु:ख द्वारा भीतर से जल[३] जाऊंगी। अत: मुझ पर दया करके अपने वास्तव स्वरूप से मेरे हृदय में आकर विराजो[४]।

२६१-(गुजराती) जलद त्रिताल

चरण देखाड़ तो परमाण[१]।
स्वामी माहरै नैणों निरखूं, माँगूं येज[२] मान[३] ॥ टेक ॥
जोवूं तुझनें आशा मुझनें, लागूं येज ध्यान।
वाहलो मारो मलो रे सहिये[४], आवे केवल ज्ञान ॥ १ ॥
जेणी पेरें[५] हूं देखूं तुझनें, मुझनें आलो[६] जाण।
पीव तणी हूं पर नहिं जाणूं, दादू रे अजाण ॥ २ ॥

हे प्रभो ! आप मुझे अपने चरणों का दर्शन दो, तब ही आपकी भक्त वत्सलता सत्य[१] सिद्ध होगी। स्वामिन् ! मैं मेरे नेत्रों से आपका दर्शन कर सकूं, यही[२] आप से माँगता हूं। मेरी प्रार्थना मानो[३]। मुझे यही आशा लगी है—मैं आपको देखूं ! इसीलिए आपका यह ध्यान करता हूं। यदि

रहा है वहां ही अपने मन को लगाओ। वह प्रकाश सदा सहज भाव से जल में ज्योति प्रतिविम्ब के समान भासता है। भगवान् के निज दास साधन में वीर निष्काम भक्त ही वृत्ति द्वारा उस प्रकाश के पास रहते हैं। जो वार-पार रहित सुख-सागर है, उसी में हम भक्त रूप हंसों का निवास रहता है।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग परजिया (परज) समाप्त: ॥ १३ ॥

अथ राग भांणमली (भवानी) १४

(गायन समय मध्य रात्रि, राम मंजरी मतानुसार)

२६०-(गुजराती) विनती। कव्वाली ताल

मारा वाल्हा रे ! तारे शरण रहेश।
बिनतड़ी वाल्हाने कहतां, अनंत सुख लहेश ॥टेक॥
स्वामी तणों हूं संग न मेलूं, बीनतड़ी कहेश ।
हूं अबला, तूं बलवंत राजा, ताहरा वना वहेश[१] ॥ १ ॥
संग रहूं तां सब सुख पामूं[२], अंतर थैं दहेश[३] ।
दादू ऊपर दया करीनैं, आवो आंणीं वेश[४] ॥ २ ॥

२६०-२६३ में विरह पूर्वक विनय कर रहे हैं—मेरे प्रियतम ! मैं आपकी शरण रहूंगी, प्रियतम को विनय करते-करते ही मैं अपार सुख प्राप्त कर सकूंगी। मैं स्वामी का साथ नहीं छोड़ूंगी, उनसे विनय करूंगी। प्रियतम ! आप बलवान् और विश्व के राजा हैं। मैं अबला हूं आपके अनुग्रह बिना विषय-प्रवृत्ति प्रवाह में बह[१] जाऊंगी। आपके संग रहूंगी तब तो सब प्रकार से सुख प्राप्त[२] कर सकूंगी, नहीं तो आपके वियोग जन्य दु:ख द्वारा भीतर से जल[३] जाऊंगी। अत: मुझ पर दया करके अपने वास्तव स्वरूप से मेरे हृदय में आकर विराजो[४]।

२६१-(गुजराती) जलद त्रिताल

चरण देखाड़ तो परमाण[१]।
स्वामी माहरै नैणों निरखूं, माँगूं येज[२] मान[३] ॥ टेक ॥
जोवूं तुझनें आशा मुझनें, लागूं येज ध्यान ।
वाहलो मारो मलो रे सहिये[४], आवे केवल ज्ञान ॥ १ ॥
जेणी पेरें[५] हूं देखूं तुझनें, मुझनें आलो[६] जाण।
पीव तणी हूं पर नहिं जाणूं, दादू रे अजाण ॥ २ ॥

हे प्रभो ! आप मुझे अपने चरणों का दर्शन दो, तब ही आपकी भक्त वत्सलता सत्य[१] सिद्ध होगी। स्वामिन् ! मैं मेरे नेत्रों से आपका दर्शन कर सकूं, यही[२] आप से माँगता हूं। मेरी प्रार्थना मानो[३]। मुझे यही आशा लगी है—मैं आपको देखूं ! इसीलिए आपका यह ध्यान करता हूं। यदि

बुद्धि में अद्वैत ज्ञान आ जाय, तब तो मेरा प्रियतम मिला हुआ ही है। यह निश्चय[४] कर लूं। हे प्रभो ! जिस तरह[५] मैं आपको देख सकूं, वैसा ही अपना प्रिय[६] भक्त मुझे जान लो। मैं हूं तो प्रियतम का ही, किन्तु प्रियतम का पूर्ण स्वरूप नहीं जानता, इसलिए अजान ही हूं।

२६२-(गुजराती) जलद त्रिताल

ते हरि मिलूं मारो नाथ।
जोवा ने मारो तन तपै, केवी[१] पेरें[२] पामूं[३] साथ ॥टेक॥
ते कारण हूं आकुल व्याकुल, ऊभी करूं विलाप ।
स्वामी मारो नैणें निरखूं, ते तणों[४] मनें ताप ॥ १ ॥
एक बार घर आवे वाहला, नव[५] मेलूं कर हाथ ।
ये विनती साभल स्वामी, दादू तारो दास ॥ २ ॥

उन मेरे नाथ हरि से मैं मिलूंगी, उनको देखने के लिए मेरा शरीर वियोग-ताप से तप रहा है। मैं उनका साथ किस[१] तरह[२] प्राप्त[३] कर सकूंगी। मैं उनके लिये घबरा कर व्याकुल हो रही हूं और खड़ी-खड़ी विलाप करती हूं। अपने स्वामी को नेत्रों से देखूंगी। उनको[४] न देखने के कारण ही मुझे दु:ख है। यदि एक बार प्रियतम घर आ जायें, तब तो मैं अपने हाथ से उनका हाथ नहीं[५] छोडूंगी। हे स्वामिन् ! मेरी यह विनय सुनो, मैं आपकी दासी हूं।

२६३-(गुजराती) रंग ताल

ते केम[१] पामिये[२] रे, दुर्लभ जे आधार ।
ते बिना तारण को नहीं, केम उतरिये पार ॥ टेक॥
केवी[३] पेरें[४] कीजै आपणो रे, तत्त्व ते छे सार।
मन मनोरथ पूरे मारा, तननो ताप निवार ॥ १ ॥
संभार्‍यो आवे रे वाहला, वेला[५] ये अवार[६] ।
विरहणी विलाप करे, तेम[७] दादू मन विचार ॥ २ ॥

इति राग भांणमली (भवानी) समाप्त: ॥ १४ ॥ पद ४ ॥

जो हमारे आधार हैं, वे प्रभु तो दुर्लभ हो रहे हैं, उनको कैसे[१] प्राप्त कर सकेंगे ? उनके बिना संसार से तारने वाला कोई भी नहीं है। फिर हम कैसे पार उतर सकेंगे ? जो संसार का सार तत्त्व है उसे किस[३] तरह[४] अपना बना सकेंगे ? हे प्रियतम ! मेरे मन का मनोरथ पूर्ण करके शरीर की ताप दूर करो। प्रियतम ! भक्तों के स्मरण करने पर तो आप शीघ्र आते हैं, फिर इस समय[५] देर[६] क्यों कर रहे हो ? मैं विरहनी विलाप कर रही हूं, इसे[७] मन में विचार करके शीघ्र ही पधारिये।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग भांणमली (भवानी) समाप्त: ॥ १४ ॥

अथ राग सारंग १५

(गायन समय मध्य दिन)

२६४-गुरु ज्ञान । सूरफाख्ता ताल

हो ऐसा ज्ञान ध्यान, गुरु बिना क्यों पावै ।
वार पार पार वार, दुस्तर तिर आवै हो ॥ टेक ॥
भवन गवन गवन भवन, मन ही मन लावै ।
रवन छवन छवन रवन, सद्गुरु समझावै हो ॥ १ ॥
क्षीर नीर नीर क्षीर, प्रेम भक्ति भावै ।
प्राण कमल विकस विकस, गोविन्द गुण गावै हो ॥ २ ॥
ज्योति जुगति बाट घाट, लै समाधि ध्यावै ।
परम नूर परम तेज, दादू दिखलावै हो ॥ ३ ॥

सद्गुरु बिना यथार्थ ध्यान ज्ञान की दुर्लभता दिखा रहे हैं—हे भाई ! सद्गुरु बिना ऐसा ध्यान और ज्ञान कैसे प्राप्त हो सकता है ? जिसके द्वारा साधक दुस्तर संसार के इस विषयासक्ति रूप तट से तैर कर निरासक्ति रूप अगले तट पर आ पहुंचे और विषय-भवन में गमन करने वाली मन की वृत्ति को मन ही मन में ध्यान तथा ज्ञान विचार करके परब्रह्म में लगा सके तथा वृत्ति भी सब विश्व के निवास स्थान ब्रह्म-भवन में गमन कर सके और स्थिर रहकर, विषयों में रमण करना छोड़ दे तथा स्थिरता पूर्वक ब्रह्म में ही रमण करे। ऐसा ध्यान तथा ज्ञान तो सद्गुरु ही समझा सकते हैं। जैसे दूध में जल और जल में दूध एक हो जाता है, वैसे ही आत्मा परमात्मा में एक होने का निश्चय होने पर भी प्रेमाभक्ति प्रिय लगे तथा प्राणी का हृदय-कमल आनंद से बारंबार खिलता रहे और वह गोविन्द गुण-गान करता रहे। योग युक्ति द्वारा ब्रह्म-ज्योति के साक्षात्कारार्थ अन्तर्मुख वृत्ति रूप मार्ग से समाधि-घाट पर पहुंचा सके तथा परम तेज रूप अपने परम स्वरूप को दिखा सके, ऐसा ध्यान-ज्ञान सद्गुरु बिना नहीं मिलता।

२६५-केवल विनती। पंजाबी त्रिताल

तो निबहै जन सेवक तेरा, ऐसे दया कर साहिब मेरा ॥ टेक ॥
ज्यों हम तोरैं त्यों तूं जोरै, हम तोरैं पै तूं नहिं तोरै ॥ १ ॥
हम विसरैं पै तूं न विसारै, हम बिगरैं पै तूं न बिगारे ॥ २ ॥
हम भूलैं तूं आन मिलावै, हम बिछुरैं तूं अंग लगावै ॥ ३ ॥
तुम भावै सो हम पै नांहीं, दादू दर्शन देहु गुसांईं ॥ ४ ॥

दर्शनार्थ विनय कर रहे हैं—हे मेरे प्रभो ! ज्यों ही हम आप से प्रेम तोड़ें त्यों ही आप जोड़ते रहें, हम चाहे आप से सम्बन्ध तोड़ लें, किन्तु आप न तोड़ें। हम आप को भूल जायँ, किन्तु आप

हम को न भूलें। हम आप से बिगड़ जायँ, किन्तु आप हम से न बिगाड़ें। हम आपका चिन्तन भूल कर विषयों में जायें, तब आप विषयों से लाकर अपने स्वरूप में मिलावें। जब भी हम आप से अलग हों, तब आप हम को अपने स्वरूप में संलग्न करें। ऐसी दया करें तो ही आप के सेवक जन का आप की प्राप्ति-मार्ग में निर्वाह हो सकता है। आप को जो प्रिय लगे, वह साधन तो हमारे पास नहीं है। अत: स्वामिन् ! आप दया करके ही हमें दर्शन दें।

२६६-काल चेतावनी। पंजाबी त्रिताल

माया संसार की सब झूठी।
मात पिता सब ऊभे भाई, तिनहिं देखतां लूटी ॥टेक॥
जब लग जीव काया में थारे, खिण बैठी खिण ऊठी।
हंस जु था सो खेल गया रे, तब तैं संगति छूटी ॥ १ ॥
ए दिन पूगे आयु घटानी, तब निश्चिंत होइ सूती।
दादू दास कहै ऐसी काया, जैसे गगरिया फूटी ॥ २ ॥

काल से सावधान कर रहे हैं—संसार की सभी माया मिथ्या है, वैसे ही काया भी मिथ्या है। माता, पिता, भाई आदि सभी सम्बन्धियों के खड़े रहते भी उनके देखते-देखते ही लुट जाती है। जब तक काया में जीव था, तब तक तो यह किसी क्षण में बैठती थी और किसी क्षण में उठती थी किन्तु इसमें जो जीव-हंस था, वह जब से गमन रूप खेल खेल गया, तब से लोगों ने इसका संग छोड़ दिया। अब ये जीवन के दिन पूरे हो गये और आयु समाप्त हो गई, इससे यह काया निश्चिन्त होकर सूती पड़ी है। हम तो अनुभव करके कहते हैं कि—जैसे फूटी गागर बेकार होती है, वैसे ही यह काया जीवात्मा के गमन से बेकार हो जाती है।

२६७-माया मध्य मुक्ति। त्रिताल

ऐसे गृह में क्यों न रहै, मनसा वाचा राम कहै ॥टेक॥
संपति विपति नहीं मैं मेरा, हर्ष शोक दोउ नांहीं।
राग द्वेष रहित सुख दुख तैं, बैठा हरि पद मांहीं ॥ १ ॥
तन धन माया मोह न बाँधे, वैरी मीत न कोई।
आपा पर सम रहै निरंतर, निज जन सेवक सोई ॥ २ ॥
सरवर कमल रहै जल जैसे, दधि मथ घृत कर लीन्हा।
जैसे वन में रहै बटाऊ, काहू हेत न कीन्हा ॥ ३ ॥
भाव भक्ति रहै रस माता, प्रेम मगन गुण गावै।
जीवित मुक्त होइ जन दादू, अमर अभय पद पावै ॥ ४ ॥

जिस ज्ञान रूप घर में रहने से संत माया में रहते हुये भी मुक्त रहता है, उसमें रहने की प्रेरणा

कर रहे हैं—अरे ! मन, वचन से राम का भजन करते हुये ज्ञान रूप ऐसे घर में क्यों नहीं रहता ? जिसमें संपत्ति-विपत्ति, मैं-मेरा, हर्ष-शोक दोनों ही नहीं हैं, जो राग-द्वेष तथा वस्तु-जन्य सुख और दुख से रहित है, जिसमें रहने से हरि-स्वरूप में स्थिति रहती है। शरीर-धनादिक मायिक मोह नहीं बांध सकते, न कोई शत्रु मित्र ही भासते। अपने पराये में निरंतर समता रहती है। उस घर में जो रहता है, वह जन भगवान् का निज सेवक कहलाता है। जैसे कमल सरोवर के जल में रहते हुये भी ऊपर रहता है और मंथन करके दही से निकाला हुआ मक्खन छाछ में नहीं मिलता, वैसे ही संसार में मन नहीं मिलता। जैसे वन में विश्राम करने वाला पथिक वन के वृक्षादिक से प्रेम करके वहां ठहरता नहीं, अपने मार्ग पर चल पड़ता है, वैसे ही उसका किसी से राग नहीं होता। श्रद्धा भक्ति द्वारा ब्रह्म रस में मस्त रहता है। इस प्रकार भक्त-जन प्रेम में निमग्न होकर प्रभु के गुण गायन करते हुये अमर अभय पद प्राप्त करके जीवन्मुक्त हुये रहते हैं।

२६८-परिचय उपदेश। त्रिताल

चल चल रे मन तहां जाइये।
चरण बिन चलबो, श्रवण बिन सुनिबो, बिन कर बैन बजाइये ॥टेक॥
तन नांहीं जहँ, मन नाहीं तहँ, प्राण नहीं तहँ आइये ।
शब्द नहीं जहँ, जीव नहीं तहँ, बिन रसना मुख गाइये ॥ १ ॥
पवन पावक नहीं, धरणि अम्बर नहीं, उभय नहीं तहँ लाइये ।
चंद नहीं जहँ, सूर नहीं तहँ, परम ज्योति सुख पाइये ॥ २ ॥
तेज पुंज सो सुख का सागर, झिलमिल नूर नहाइये ।
तहँ चल दादू अगम अगोचर, तामैं सहज समाइये ॥ ३ ॥

इति राग सारंग समाप्तः ॥ १५ ॥ पद ५ ॥

ब्रह्म साक्षात्कारार्थ उपदेश कर रहे हैं—अरे मन ! साधन द्वारा चल कर वहां जा, जहां जाने के लिए तेरे आशा रूप पैरों के बिना ही चलना होता है। बाह्य श्रवणों के बिना ही सुनना होता है। बिना हाथों के ही अनाहत ध्वनि-रूप-बंसी बजाई जाती है। उस निर्विकल्प समाधि में शरीर, मन, प्राण, शब्द जीव नहीं है और बिना रसना ही भावना रूप मुख से प्रभु का यशोगान किया जाता है, वहां ही जा। वहां वायु, अग्नि, पृथ्वी, आकाश, और द्वैत-भाव नहीं है, वहां ही अपनी वृत्ति लगा, जहां चन्द्र-सूर्य भी नहीं है, वहां ही परम ज्योति दर्शन रूप सुख को प्राप्त कर, वह तेज-पुंज सुख का सागर है। इस झिलमिल स्वरूप में स्नान करके उस अगम अगोचर प्रभु में सहजावस्था द्वारा समा जा।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग सारंग समाप्त ॥ १५ ॥

अथ राग टोडी (तोडी) १६

(गायन समय दिन ६ से १२)

२६९-स्मरण उपदेश। राज मृगांक ताल

सो तत सहजैं सुषमन कहणा, साच पकड़ मन जुग जुग रहणा॥ टेक॥
प्रेम प्रीति कर नीका राखै, बारंबार सहज नर भाखै॥ १ ॥
मुख हिरदय सो सहज सँभारै, तिहिं तत रहणा कदे न विसारै॥ २ ॥
अंतर सोई नीका जाणै, निमिष न बिसरे ब्रह्म बखाणै॥ ३ ॥
सोई सुजाण सुधा रस पीवै, दादू देखि जुग जुग जीवै॥ ४ ॥

प्रभु-स्मरण सम्बन्धी उपदेश कर रहे हैं—जिस तत्त्व के विषय में योगियों का कहना है-सुषुम्ना नाड़ी के चलने पर शनैः शनैः साधन की प्रौढ़ावस्था में प्राप्त होता है। हे मन ! तुझे उसी सत्य ब्रह्म तत्त्व को प्रति क्षण पकड़े रहना चाहिए। योगी नर प्रीतिपूर्वक बारंबार सहजावस्था में जाकर अपने हृदय में अच्छी प्रकार प्रेम से उसका ध्यान करता है और सहज स्वरूप का नाम मुख से उच्चारण करता है, मन में स्मरण करता है, उस तत्त्व में वृत्ति रखना कभी भी नहीं भूलता, ज्ञान द्वारा संशय-विपर्य्यय रहित अच्छी प्रकार बुद्धि में जानता है। एक निमेष मात्र भी उसे भूलता नहीं, ब्रह्म का ही प्रवचन करता रहता है, वही बुद्धिमान्, इस प्रकार स्मरण-सुधा-रस का पान करते हुये उस ब्रह्म तत्त्व का साक्षात्कार करके ब्रह्म रूप से प्रति युग में जीवित रहता है।

२७०-नाम महिमा। राज मृगांक ताल

नांव रे नांव रे, सकल शिरोमणि नांव रे, मैं बलिहारी जाउं रे॥ टेक॥
दुस्तर तारे पार उतारे, नरक निवारे नांव रे॥ १ ॥
तारणहारा भव जल पारा, निर्मल सारा नांव रे॥ २ ॥
नूर दिखावे तेज मिलावे, ज्योति जगावे नांव रे॥ ३ ॥
सब सुख दाता अमृत राता, दादू माता नांव रे॥ ४ ॥

नाम महिमा कह रहे हैं—सर्व शिरोमणि परमात्मा के नामों का चिन्तन कर, नाम ही कल्याण के साधनों में श्रेष्ठ साधन है। मैं तो नाम की ही बलिहारी जाता हूँ। नाम दुस्तर दुःख से तारता है, विषयाशा नदी से पार उतारता है, नरक से बचाता है, नाम ही संसार के राग रूप जल से पार करने वाला होने से तारक है, निर्मल और शब्द सृष्टि का सार तत्त्व है। नाम ही बुद्धि में ज्ञान-ज्योति जगाकर स्वस्वरूप का साक्षात्कार कराता है तथा तेज स्वरूप ब्रह्म में मिलाता है। नाम ही संपूर्ण सुखों का प्रदाता है। हम उस नामामृत से ही अनुरक्त होकर मस्त हैं।

२७१-केवल विनती । राजविद्याधर ताल

राइ रे राइ रे, सकल भुवनपति राइ रे, अमृत देहु अघाइ रे राइ ॥ टेक ॥
परकट राता परकट माता, परकट नूर दिखाइ रे राइ ॥ १ ॥
सुस्थिर ज्ञाना सुस्थिर ध्याना, सुस्थिर तेज मिलाइ रे राइ ॥ २ ॥
अविचल मेला अविचल खेला, अविचल ज्योति जगाइ रे राइ ॥ ३ ॥
निश्चल बैना निश्चल नैना, दादू बलि बलि जाइ रे राइ ॥ ४ ॥

अद्वैत स्वरूप की प्राप्ति के लिए विनय कर रहे हैं—हे हृदयेश्वर ! परमेश्वर ! संपूर्ण भुवन-पतियों के भी ईश्वर ! आप अपना दर्शनामृत देकर हमें तृप्त करें, प्रकट रूप से अपना स्वरूप दिखावें, जिससे हम भी प्रकट रूप से उसमें अनुरक्त होकर मस्त हो जावें। निश्चल ध्यान और निश्चल ज्ञान के द्वारा हमको अपने निश्चल तेज में मिलावें। आप के स्थिर स्वरूप से मिलकर स्थिर आनंद रूप खेल खेलते रहें। आप हम को अपने स्थिर ज्योति स्वरूप में समाविष्ट कर लीजिये। अब हमारे वचन भी निश्चल ब्रह्म भावना युक्त ही निकलें, नेत्रों से भी सर्वत्र निश्चल ब्रह्म ही देखें, हम पर ऐसी कृपा करें, हम आप की बारंबार बलिहारी जाते हैं।

२७२-रसिक अवस्था । सवारी ताल

हरि रस माते मगन भये ।
सुमिर-सुमिर भये मतवाले, जामण मरण सब भूल गये ॥ टेक ॥
निर्मल भक्ति प्रेम रस पीवैं, आन न दूजा भाव धरैं ।
सहजैं सदा राम रंग राते, मुक्ति वैकुण्ठैं कहा करैं ॥ १ ॥
गाइ गाइ रस लीन भये हैं, कछू न मांगैं संत जना ।
और अनेक देहु दत आगैं, आन न भावै राम बिना ॥ २ ॥
इक टक ध्यान रहैं ल्यौ लागे, छाक परे हरि रस पीवैं ।
दादू मग्न रहैं रस माते, ऐसे हरि के जन जीवैं ॥ ३ ॥

भगवद् भक्ति रस के रसिक संतों की अवस्था बता रहे हैं—हरि भक्ति-रस के रसिक जन उसी में निमग्न होकर मस्त हो गये हैं। प्रतिक्षण स्मरण करते-करते उससे मतवाले होकर जन्म-मरण के मार्ग को भूल कर हरि के स्वरूप को ही प्राप्त हुये हैं। वर्तमान के संत भी निर्मल प्रेमाभक्ति-रस का पान करते हैं, अन्य कोई भी दूसरा भाव हृदय में नहीं रखते। वे तो सदा स्वाभाविक ही राम के प्रेम-रंग में अनुरक्त हैं और कह भी देते हैं—"हम वैकुण्ठवासादि चार मुक्तियों का क्या करेंगे ?" वे संत जन जो बारंबार हरि-यश गान करते हुये हरि में ही लीन हो रहे हैं , अन्य कुछ भी नहीं मांगते और उनके आगे लाकर उन्हें अनेक प्रकार का दान दे तो भी उनको राम के बिना अन्य कुछ भी अच्छा नहीं लगता। वे तो ध्यान में निर्निमेष दृष्टि से प्रभु को देखते हुये तथा उन्हीं में अपनी वृत्ति लगाते हुये हरि-रस पान से तृप्त हुये पड़े रहते हैं। इस प्रकार हरि-रस में निमग्न हो मस्त हुये हरि के भक्तजन जीवन धारण करते हैं।

२७३-(गुजराती) केवल विनती । सवारी ताल

ते मैं कीधेला राम, जे तैं वार्‍या ते ।
मारग मेल्हि, अमारग अणसरि, अकरम करम हरे ॥ टेक ॥
साधू को संग छाड़ीनै, असंगति अणसरियो ।
सुकृत मूकी अविद्या साधी, विषया विस्तरियो ॥ १ ॥
आन कह्यु आन सांभल्यु, नेणें आन दीठो ।
अमृत कड़वो, विष इमि लागो, खातां अति मीठो ॥ २ ॥
राम हृदाथी विसारी नै, माया मन दीधो ।
पांचों प्राणी गुरुमुख बरज्या, ते दादू कीधो॥ ३ ॥

बहिर्मुखता युक्त अनुचित व्यवहार प्रदर्शन रूप विनय कर रहे हैं—राम ! मैंने वे ही कार्य किये हैं, जो आपने निषेध किये थे । सन्मार्ग को छोड़ कर कुमार्ग का अनुसरण किया । सुकर्मों को त्याग कर कुकर्म किये । संतों का संग छोड़ कर कुसंगति में प्रवृत्त हुआ । सुकृत त्याग कर अविद्या को हृदय में रखते हुये विषयों का ही विस्तार किया । आपके यश तथा नाम को त्याग कर अन्य सांसारिक बातें ही कही और सुनी । नेत्रों से भी आप से अन्य असत्य प्रपंच ही देखा । आपका चिन्तनामृत तो कटु फल के समान लगा और विषय-विष खाते समय अमृत तुल्य अति मधुर लगा । इसीलिए राम ! मैंने आप का चिन्तन हृदय से भूल कर मायिक पदार्थों में मन दिया, गुरुमुख प्राणी संतों ने पंच विषयों में राग करना निषेध किया था किन्तु मैंने वही किया । अत: मैं दोषी हूं, फिर भी आप मेरा उद्धार करने की कृपा करें ।

२७४-विरह विनती । त्रिताल

कहो क्यों जन जीवै सांइयां ! दे चरण कमल आधार हो ।
डूबत है भव–सागरा, कारी[1] करो करतार हो ॥टेक॥
मीन मरै बिन पाणियाँ, तुम बिन येह विचार हो ।
जल बिन कैसैं जीवहीं, अब तो किती इक बार हो ॥ १ ॥
ज्यों परै पतंगा ज्योति में, देख देख निज सार हो ।
प्यासा बूंद न पावई, तब वन वन करै पुकार हो ॥ २ ॥
निश दिन पीर पुकारही, तन की ताप निवार हो ।
दादू विपति सुनावही, कर लोचन सन्मुख चार हो ॥ ३ ॥

विरह पूर्वक दर्शनार्थ विनय कर रहे हैं—हे प्रभो आप ही कहो ? आपका भक्त आपके बिना कैसे जीवित रह सकता है ? अत: मुझे अपने चरण-कमलों का आश्रय दो । मैं संसार-सिन्धु में डूब रहा हूं, हे भक्तों का उद्धार करने[1] वाले करतार ! मेरी सहायता[1] करो । जल बिना मच्छी कैसे जीवित रह सकती है ? वह तो पानी बिना मर ही जाती है । आपके बिना हमारी भी यही दशा है,

आप विचार कर लो। अब तो हम आपके बिना कितने समय तक जीवित रह सकते हैं ? अधिक नहीं रह सकेंगे। जैसे पतंग ज्योति को देख कर उसमें पड़ता है, वैसे ही विश्व के सार रूप मेरे प्रभो ! आप पर हम अपना बलिदान कर रहे हैं। जैसे प्यासे चातक पक्षी को स्वाति-बिन्दु नहीं मिलती तब वह उसके लिए प्रति वन में जाकर पुकार करता रहता है, वैसे ही हम रात्रि-दिन विरह व्यथा से युक्त होकर पुकार रहे हैं। हमारे शरीर का वियोगजन्य दुख दूर करो। हम अपनी विनय द्वारा आपको सुना रहे हैं। आप सन्मुख प्रकट होकर हमारे दोनों नेत्रों से अपने दोनों नेत्र मिलाकर चार नेत्र करो। हम आपको और आप हमको निर्निमेष दृष्टि से देखें, ऐसी कृपा करो।

२७५-केवल विनती। त्रिताल

तूं साचा साहिब मेरा।
कर्म करीम कृपालु निहारो, मैं जन बंदा तेरा ॥ टेक ॥
तुम दीवान सबहिन की जानो, दीनानाथ दयाला।
दिखाइ दीदार मौज बंदे को, काइम[1] करो निहाला ॥ १ ॥
मालिक सबै मुलिक के सांई, समर्थ सिरजनहारा।
खैर खुदाइ खलक में खेलत, दे दीदार तुम्हारा ॥ २ ॥
मैं शिकस्त:[2] दरगह तेरी, हरि हजूर तूं कहिये।
दादू द्वारै दीन पुकारै, काहे न दर्शन लहिये ॥ ३ ॥

दर्शनार्थ विनय कर रहे हैं—हे संसार रचनादि रूप कर्म करने वाले कृपालो ! आप मेरे सच्चे स्वामी हैं, मैं आपका दास हूं। मुझ जन की ओर देखो। आप सर्वज्ञ हैं, सभी के हृदय की स्थिति जानते हैं। हे दीनानाथ ! दयालो ! आप मुझ दास को अपने स्थिर[1] स्वरूप का दर्शन करा कर दर्शनानन्द से कृतकृत्य करो। हे समर्थ सृष्टि कर्ता प्रभो ! आप तो सभी संसार के स्वामी हैं। हे ईश्वर ! आपकी कृपा द्वारा ही मैं संसार में विचरना रूप खेल खेलता रहा हूं किन्तु अब हार[2] कर आपके दरबार में आया हूं। आप पाप-ताप हरने वाले हरि कहलाते हैं। आप दर्शन दें, मैं दीन आपके द्वारा दर्शनार्थ प्रार्थना कर रहा हूँ, फिर भी मुझे दर्शन क्यों नहीं प्राप्त हो रहे हैं ?

२७६-उपदेश चेतावनी। मकरन्द ताल

कुछ चेत रे कह क्या आया ?
इनमें बैठा फूल कर, तैं देखी माया ॥ टेक ॥
तूं जनि जानैं तन धन मेरा, मूरख देख भुलाया।
आज काल चल जावै देही, ऐसी सुन्दर काया ॥ १ ॥
राम नाम निज लीजिये, मैं कह समझाया।
दादू हरि की सेवा कीजे, सुन्दर साज मिलाया ॥ २ ॥

२७६-२८० में उपदेश द्वारा सचेत कर रहे हैं—अरे प्राणी ! कुछ तो सावधान हो, गर्भ में प्रभु से क्या कह आया था ? वहां तो तूने प्रतिज्ञा की थी-''मुझे शीघ्र गर्भ गुहा से निकालो, मैं

आपका भजन करूंगा।'' किन्तु बाहर आकर जब तूने माया देखी है, तब से इन विषयों के उपभोग में ही प्रसन्न होकर बैठा है। अरे मूर्ख ! तू धनादि को देखकर उस गर्भ में की हुई प्रतिज्ञा को भूल गया है, किन्तु तू मत समझ कि—यह तन धन मेरा है। ऐसी सुन्दर काया को छोड़ आज-कल में ही जीवात्मा चला जायेगा, अतः तू राम-नाम का स्मरण कर ले। मैंने बारंबार कह कर समझाया है—हरि ने मनुष्य देह जैसी सुन्दर सामग्री तुझे दी है, उस हरि की भक्ति कर।

२७७-मकरन्द ताल

नेटि[1] रे माटी में मिलना, मोड़ मोड़ देह काहे को चलना॥ टेक॥
काहे को अपना मन डुलावै, यहु तन अपना नीका धरना।
कोटि वर्ष तूं काहे न जीवै, विचार देख आगैं है मरना॥ १॥
काहे न अपनी बाट सँवारै, संयम रहना सुमिरण करणा।
गहिला ! दादू गर्व न कीजे, यहु संसार पंच दिन भरणा॥ २॥

अरे ! यह देह सत्य नहीं है, अन्त- में[1] इसे मिट्टी में मिलना है, फिर घमंड से इसे मोड़-मोड़ कर क्यों चलता है ? अपने मन को विषय प्राप्ति के लिए क्यों चंचल कर रहा है ? यह अपना शरीर अच्छी प्रकार सदाचार में ही रखना चाहिये। तू कोटि वर्ष तक जीवे तो भी विचार करके देख, आगे मरना ही होगा। क्यों नहीं अपने कल्याण का मार्ग सुधारता ? तुझे संयम से रहते हुये हरि स्मरण करना चाहिए। अरे ! तू विषयों से पागल होकर गर्व मत करे, यह संसार-यात्रा तुझे पांच दिन में ही पूरी करनी है अर्थात् सात वार में एक जन्म का और एक मरण का चला जाता है, पांच दिन ही जीवन के शेष रहते हैं। अत: तुझे शीघ्रातिशीघ्र कल्याण का साधन करना चाहिए।

२७८-ब्रह्म योग ताल

जाइ रे तन जाइ रे।
जन्म सुफल कर लेहु राम रमि, सुमिर सुमिर गुण गाइ रे ॥ टेक॥
नर नारायण सकल शिरोमणि, जन्म अमोलक आइ रे।
सो तन जाइ जगत नहिं जानै, सकै तो ठाहर लाइ रे ॥ १ ॥
जरा काल दिन जाइ गरासै, तासौं कुछ न बसाइ रे।
छिन छिन छीजत जाइ मुग्ध नर, अंत काल दिन आइ रे ॥ २ ॥
प्रेम भगति साधु की संगति, नाम निरन्तर गाइ रे।
जे शिर भाग तो सौंज[1] सुफल कर, दादू विलम्ब न लाइ रे॥ ३ ॥

अरे प्राणी ! मैं तुझे बारम्बार कह रहा हूँ-इस मानव देह के श्वास विषयों में लग कर व्यर्थ जा रहे हैं, तू बारम्बार राम का स्मरण और गुण-गान करते हुये, उस राम में अभेद रूप से रमण करके अपना मनुष्य जन्म सफल कर ले। नर शरीर सब शरीरों में श्रेष्ठ और नारायण की प्राप्ति का हेतु है, अत: यह जन्म अमूल्य है, वही तन विषय-उपभोग में व्यर्थ जा रहा है। संसारी प्राणी इस बात को नहीं जानते। जहां तक हो सके इसे शीघ्र ही भजन द्वारा अपने वास्तविक स्थान प्रभु के

स्वरूप में ही लगा। वृद्धावस्था इसकी सुन्दरता को तथा काल इसकी आयु के दिनों को ग्रास करता जा रहा है। उस पर तेरी शक्ति कुछ भी काम न देगी। मूर्ख नर ! यह शरीर क्षण २ में क्षीण होता जा रहा है। इस प्रकार अन्त का दिन आ जायगा। यदि तू मनुष्य शरीर प्राप्ति से अपना अच्छा भाग्य मानता है, तब तो संतों की संगति तथा निरन्तर भगवान् का नाम गायन करते हुये प्रेमाभक्ति करके इस नर जन्म रूप सामग्री[१] को सफल बनाने में देर मत कर।

२७९-त्रिताल

काहे रे बक मूल गमावै, राम के नाम भले सचु[1] पावे ॥टेक॥
वाद विवाद न कीजे लोई[2], वाद विवाद न हरि रस होई॥ 1 ॥
मैं तैं मेरी मानै नांहीं, मैं तैं मेट मिले हरि मांहीं॥ २ ॥
हार जीत सौं हरि रस जाई, समझ देख मेरे मन भाई॥ ३ ॥
मूल न छाड़ी दादू बौरे, जनि[1] भूलै तूं बकबे औरे॥ ४ ॥

अरे लोगो[२] ! कोई व्यर्थ बकवाद करके अपना श्वास रूप मूल धन क्यों खोवे, सुख तो भली प्रकार राम-नाम चिन्तन से ही प्राप्त होता है। अत: हे लोगो ! वाद-विवाद नहीं करना चाहिए। वाद-विवाद से हरि-भक्ति-रस प्राप्त नहीं होता। मैं, तू इत्यादिक भेद-ज्ञान को भगवान् अच्छा नहीं मानते, संत-जन 'मैं, तू' रूप भेद बुद्धि नष्ट कर के ही हरि-स्वरूप में मिलते हैं। भाई ! तुम भी अपने मन में समझ कर देख लो, हार जीत का प्रयत्न करने से हरि भक्ति-रस हृदय से चला जाता है। हे विद्या के गर्व से उन्मत्त ! तू भगवद् भिन्न बातों के बकने में ही प्रभु को मत[१] भूल, अपने मूल स्वरूप परब्रह्म का चिन्तन मत छोड़।

यह पद शास्त्रार्थ में प्रवृत्त साँभर के पंडित को कहा था।

२८०-त्रिताल

हुसियार हाकिम न्याव है, सांई के दीवान ।
कुल का हिसाब होगा, समझ मुसलमान ॥टेक॥
नीयत[2] नेकी सालिकां[4], रास्ता ईमान[5] ।
इखलास[6] अंदर आपणे, रखणाँ सुबहान[7]॥ 1 ॥
हुक्म हाजिर होइ बाबा, मुसल्लम[8] महरबान[9]।
अक्ल[10] सेती आपणा, शोध लेहु सुजान॥ २ ॥
हक[11] सौं हजूरी हूंणां, देखणां कर ज्ञान ।
दोस्त[12] दाना[13] दीन का, मनणां फरमान[14] ॥ ३ ॥
गुस्सा हैवानी[15] दूर कर, छाड़ दे अभिमान।
दुई[16] दरोगा[17] नांहिं खुशियाँ, दादू लेहु पिछान॥ ४ ॥

अरे हाकिम ! सावधान रहना, भगवान् के दरबार में न्याय है। हे मुसलमान ! समझ लेना वहां सबका[१] हिसाब होगा। अपनी इच्छा[२] भलाई[३] में रखना, सदा[४] ईमानदारी[५] के मार्ग पर चलना।

अपने भीतर सबसे प्रेम[६] रखना और पवित्र[७] प्रभु की आज्ञा में उपस्थित रहते हुये पूरा[८] दयालु[९] होना। हे बुद्धिमान् ! बुद्धि[१०] से अपने भीतर ही परमात्मा को खोजले और भजन द्वारा सत्य[११] स्वरूप प्रभु के समीप होकर ज्ञान से उसे देखने का यत्न करना। दीनों के मित्र[१२] और ज्ञाता[१३] परमात्मा तथा संतों की आज्ञा[१४] मानना। क्रोध और पाशविक[१५] वृत्ति हृदय से दूर करना, अभिमान को छोड़ देना। मिथ्या[१७] भेद[१६] जन्य प्रसन्नता में निमग्न मत होना। यही तुम्हारा कर्त्तव्य है, इसे पहचान कर पालन करना। इस पद से साँभर के हाकिम बिलंदखान को उपदेश दिया था और वह इस उपदेश को मानकर महाराज का भक्त ही बन गया था।

२८१-साधु प्रति उपदेश। ललित ताल

निर्पख रहणा, राम राम कहणा, काम क्रोध में देह न दहणा॥ टेक॥
जेणें मारग संसार जाइला, तेणें प्राणी आप बहाइला॥ १॥
जे जे करणी जगत करीला, सो करणी संत दूर धरीला॥ २॥
जेणें पंथैं लोक राता, तेणें पंथैं साधु न जाता॥ ३॥
राम राम दादू ऐसे कहिये, राम रमत रामहि मिल रहिये॥ ४॥

साधक संतों को उपदेश कर रहे हैं—साधक संतों को निर्पक्ष रहते हुये राम-राम उच्चारण करते रहना चाहिये। काम, क्रोधादिक से शरीर को नहीं जलाना चाहिये। जिस मार्ग में संसारी प्राणी जाते हैं, उसमें जाकर साधक प्राणी अपने को संसार-प्रवाह में ही बहाता है, अत: जो २ अनुचित कर्म जगत के प्राणी करते हैं, उन कर्मों को संत जन दूर ही से त्याग देते हैं और जिस मार्ग में संसारी लोग अनुरक्त हैं, उस भोग-राग रूप पंथ में संत नहीं जाते। साधक संतों को इस प्रकार राम २ करना चाहिये कि-राम से चिन्तन रूप आनन्द लेते २ राम में ही एक होकर रहें।

२८२-भेष बिडंवन। ललित ताल

हम पाया, हम पाया रे भाई, भेष बनाय ऐसी मन आई॥ टेक॥
भीतर का यहु भेद न जानैं, कहै सुहागिनि क्यों मन मानैं॥ १॥
अंतर पीव सौं परिचय नांहीं, भई सुहागिनि लोगन मांहीं॥ २॥
सांई स्वप्ने कबहुँ न आवैं, कहबा ऐसे महल बुलावैं॥ ३॥
इन बातन मोहि अचरज आवै, पटम[१] किये कैसे पिव पावै॥ ४॥
दादू सुहागिनि ऐसे कोई, आपा मेट राम रत होई॥ ५॥

संत-भेष के समान स्वरूप बनाने वालों के दंभ का परिचय दे रहे हैं—दंभी प्राणी संत के समान भेष बनाकर कहता है—भाइयो ! हमने प्रभु को प्राप्त कर लिया है, अवश्य प्राप्त कर लिया है। प्रतिष्ठा के लिये उसके मन में यह दंभपूर्ण भावना आती है। वह अपने अन्त:करण के भोग-राग रूप वा भीतर स्थित आत्मा-राम रूप रहस्य को तो नहीं जानता और अपने को प्रभु प्राप्ति रूप सुहाग से युक्त कहता है, परन्तु इस प्रकार कहने से प्रभु तथा हमारा मन कैसे माने ? भीतर तो प्रभु से परिचय नहीं हुआ है केवल दंभ से संसारी लोगों में अपने को प्रभु संयोग रूप सुहाग से युक्त कहता

है। प्रभु तो कभी स्वप्न में भी हृदय में नहीं आते और कहता ऐसा है-मेरे हृदय-महल में प्रभु को प्रतिदिन बुलाता हूं। ऐसी बातों से हमें बड़ा आश्चर्य होता है। पाखंड[१] करने से प्रभु कैसे मिलेंगे ? जो सब प्रकार का अहंकार नष्ट करके राम में अनुरक्त होता है, ऐसा कोई महानुभाव ही प्रभु प्राप्ति रूप सुहाग से युक्त होता है।

२८३-आत्म समता। उत्सव ताल

ऐसे बाबा राम रमीजै, आतम सौं अंतर नहिं कीजे ॥ टेक ॥
जैसे आतम आपा लेखै, जीव जन्तु ऐसे कर पेखै ॥ १ ॥
एक राम ऐसे कर जानैं, आपा पर अंतर नहिं आनैं ॥ २ ॥
सब घट आत्म एक विचारै, राम सनेही प्राण हमारै ॥ ३ ॥
दादू साँची राम सगाई, ऐसा भाव हमारे भाई ॥ ४ ॥

सब में सम-भाव से बर्ताव करते हुये भजन करने की प्रेरणा कर रहे हैं—हे बाबा ! ऐसा अभेद ज्ञान युक्त राम में राम का चिन्तन रूप रमण करना चाहिये। जिससे किसी भी आत्मा से भेद व्यवहार न किया जाय। जैसे अपनी आत्मा को देखे। वैसे ही अपनी आत्मा समझ कर सभी जीव-जन्तुओं को देखना चाहिये। विचार करके जाने-सब में एक ही राम स्थित है, अपने पराये का भेद हृदय में न आने दे तथा ऐसा विचार करे कि-सभी शरीरों में आत्मा एक ही है और राम हम सबका ही प्राण स्नेही है। हे भाई ! हमारे हृदय में तो ऐसा ही भाव है कि-आत्माराम से सम्बन्ध होना ही सच्चा सम्बन्ध है। शरीरादि का भेद युक्त सम्बन्ध मिथ्या है।

२८४-नाम समता। उत्सव ताल

माधइयो-माधइयो मीठो री माइ, माहवो-माहवो भेटियो आइ ॥ टेक ॥
कान्हइयो-कान्हइयो करतां जाइ, केशवो-केशवो केशवो धाइ ॥ १ ॥
भूधरो भूधरो भूधरो भाइ, रमैयो रमैयो रह्यो समाइ ॥ २ ॥
नरहरि नरहरि नरहरि राइ, गोविन्दो गोविन्दो दादू गाइ ॥ ३ ॥

भगवद् नामों में साम्यता दिखा रहे हैं—हे भाई ! माधव २ करना मुझे मधुर लगता है। माहवो २ (गुजराती नाम) करने से वे प्रभु आकर मुझ से मिले हैं। कृष्ण २ करते ही मेरा समय जाता है। केशव २ करने से केशव दौड़कर आते हैं। भूधर २ करना भूधर प्रभु को प्रिय लगता है। हम रमैया २ करते हुये उसी में समा रहे हैं। हम नरहरि २ करते रहते हैं, नरहरि सबका राजा है। गोविन्द २ गाते रहते हैं। इस प्रकार सभी भगवन्नाम हमको समान भाव से प्रिय लगते हैं।

२८५-समता। वसंत ताल

एकहीं एकैं भया अनंद, एकहीं एकैं भागे द्वन्द ॥ टेक ॥
एकहीं एकैं एक समान, एकहीं एकैं पद निर्वान ॥ १ ॥
एकहीं एकैं त्रिभुवन सार, एकहीं एकैं अगम अपार ॥ २ ॥
एकहीं एकैं निर्भय होइ, एकहीं एकैं काल न कोइ ॥ ३ ॥

एकहीं एकैं घट परकाश, एकहीं एकैं निरंजन वास ॥ ४ ॥
एकहीं एकैं आपहि आप, एकहीं एकैं माइ न बाप ॥ ५ ॥
एकहीं एकैं सहज स्वरूप, एकहीं एकैं भये अनूप ॥ ६ ॥
एकहीं एकैं अनत न जाइ, एकहीं एकैं रह्या समाइ ॥ ७ ॥
एकहीं एकैं भये लै लीन, एकहीं एकैं दादू दीन ॥ ८ ॥

समता की विशेषता दिखा रहे हैं—एकता के द्वारा एक आत्मस्वरूप ब्रह्म में स्थित हुये तब आनन्द प्राप्त हुआ। हृदय से द्वन्द्व भाग गये, सब एक समान भासने लगे, निर्वाण पद प्राप्त हुआ। त्रिभुवन के सार, अगम, अपार प्रभु से परिचय हुआ। निर्भय हो गये, काल का कोई भय नहीं रहा। अन्त:करण में ज्ञान प्रकाश हुआ, निरंजन राम में निवास हुआ। कोई माता-पितादि कारण न भास कर आप ही स्वरूप स्थिति रह गई। अनुपम होकर सहज स्वरूप में आ गये। अन्य स्थान न जाकर अपने स्वरूप में ही समा गये। इस प्रकार हम दीनता द्वारा साम्य भाव में आकर अद्वैत ब्रह्म में वृत्ति लगाते हुये उसी में लीन हो गये हैं।

२८३-विनती। वसंत ताल

आदि है आदि अनादि मेरा, संसार सागर भक्ति भेरा[1]।
आदि है अंत है, अंत है आदि है, विरुद तेरा ॥टेक॥
काल है झाल है, झाल है काल है, राखिले राखिले प्राण घेरा ।
जीव का जन्म का, जन्म का जीव का, आपहीं आपले भान झेरा[2] ॥ १ ॥
भ्रम का कर्म का, कर्म का भ्रम का, आइबा जाइबा मेट फेरा ।
तारले पारले, पारले तारले, जीव सौं शिव[3] है निकट नेरा ॥ २ ॥
आत्मा राम है, राम है आत्मा, ज्योति है युक्ति सौं करो मेला ।
तेज है सेज है, सेज है तेज है, एक रस दादू खेल खेला ॥ ३ ॥

अद्वैत स्थिति के लिये प्रभु से विनय कर रहे हैं—उत्पत्ति रहित, मेरे मूल-कारण आदि देव परमेश्वर ! आप की भक्ति संसार-सागर को पार करने के लिए बेड़ा[1] है। आप ही सृष्टि के आदि और अन्त में रहते हैं। आप का यश सृष्टि के आदि से अन्त तक संसार में फैला रहता है। काल की जो दु:ख रूप तरंगे हैं, वे ही काल रूप होकर मेरे प्राण निकालने के लिए घेरा लगा रही हैं, आप रक्षा करो, रक्षा करो। जीव का जो जन्म धारण करने का कारण कर्म रूप और जीव पर जो जन्म का प्रभाव कर्तृत्व रूप झगड़ा[2] है, उसे तोड़ कर आप ही अपने अंशात्मा को अपनालें। इस प्रकार भ्रम तथा कर्म का दु:ख और कर्म तथा भ्रमवश आना-जाना रूप चक्कर मेटिये। कामादि से रक्षा करके उनके वेग से पार करिये और उनसे पार दैवी गुणों से भी तार कर निर्गुण स्थिति द्वारा जीव को अपने शिव स्वरूप ब्रह्म के निकट और शिव रूप को जीव के समीप करिये। आत्मा राम-रूप है, राम आत्म-ज्योति रूप हैं ऐसी अभेद बोधक युक्तियाँ हृदय में उत्पन्न करके दोनों को मिलाओ। ब्रह्म तेज है वही वृत्ति रूप शय्या है, वृत्ति रूप शय्या है वही ब्रह्म तेज है। इस प्रकार वृत्ति ब्रह्म की

एक रस एकता रहे और हम अद्वैतानन्द रूप खेल खेलते रहें।

२८७-परिचय। कोकिल ताल

सुन्दर राम राया।
परम ज्ञान परम ध्यान, परम प्राण आया ॥ टेक ॥
अकल सकल अति अनूप, छाया नहिं माया।
निराकार निराधार, वार पार न पाया ॥ १ ॥
गंभीर धीर निधि शरीर, निर्गुण निरकारा।
अखिल अमर परम पुरुष, निर्मल निज सारा ॥ २ ॥
परम नूर परम तेज, परम ज्योति प्रकाशा।
परम पुंज परापरं, दादू निज दासा ॥ ३ ॥

साक्षात्कार की स्थिति बता रहे हैं—निर्गुण के उत्कृष्ट ध्यान तथा उत्कृष्ट ज्ञान के द्वारा परम सुन्दर विश्व को सत्ता मात्र से चलाने वाला राजा, परम प्राण रूप सब में रमने वाला राम अपने आत्म-स्वरूप से ही भास आया है। वह काल रहित, सर्व रूप, अति अनुपम, निराकार होने से छाया तथा माया रहित निराधार है। उसका आदि अन्त नहीं प्राप्त होता। वह अति गंभीर है, उसका स्वरूप धैर्य की निधि रूप है किन्तु निर्गुण होने से अकार का वाच्य विष्णु नहीं है और वह परम पुरुष अखिल आकारों में अमर भाव से स्थित है। ऐसा उसका निर्मल वास्तविक स्वरूप है। वह परम तेज रूप है, उस परम ज्योति का प्रकाश ज्ञान रूप से सबमें फैला हुआ है। वह सब प्रकार की परमता की राशि है, माया से परे है, हम उसी के निजी भक्त हैं।

२८८-परिचय पराभक्ति। कोकिल ताल

अखिल भाव अखिल भक्ति, अखिल नाम देवा।
अखिल प्रेम अखिल प्रीति, अखिल सुरति सेवा ॥ टेक॥
अखिल अंग अखिल संग, अखिल रंग रामा।
अखिलारत अखिलामत, अखिलानिज नामा ॥ १ ॥
अखिल ज्ञान अखिल ध्यान, अखिल आनन्द कीजै।
अखिला लै अखिला मैं, अखिला रस पीजै ॥ २ ॥
अखिल मगन अखिल मुदित, अखिल गलित सांईं।
अखिल दरश अखिल परस, दादू तुम मांहीं ॥ ३ ॥

इति राग टोडी (तोडी) समाप्त ॥ १६ ॥ पद २० ॥

परिचय होने पर पराभक्ति करने की प्रेरणा कर रहे हैं—परिचित परब्रह्म देव में सब प्रकार से श्रद्धा करनी चाहिए। सर्व समय नाम चिन्तन करना चाहिये। वे सर्व प्रकार से प्रेम-पात्र होने योग्य हैं। उनसे सर्व प्रकार प्रीति करनी चाहिये और उन सर्व रूप की वृत्ति द्वारा सेवा करते रहना चाहिये।

वे राम सब रंगों में, सबके साथ तथा सब शरीरों में विद्यमान हैं। सब अवस्थाओं में उनसे प्रेम करना। सब प्रकार उनके मत में रहना और सब प्रकार ही सत्यरामादि निज नामों का चिन्तन करना चाहिए। सब प्रकार से उसी का ध्यान करते हुए ज्ञान द्वारा सब में उसी को देखते हुए सर्व प्रकार से आनन्द करना चाहिए। सब में वृत्ति जाने पर भी सब प्रकार से सर्व रूप ब्रह्म दर्शन-रस का पान करना चाहिए। सर्व प्रकार प्रभु के प्रेम में गलित और सब भांति प्रसन्न रहते हुए उस सर्व रूप में ही निमग्न रहना चाहिये। वह सर्व में देखने योग्य, सर्व में स्पर्श करने योग्य परब्रह्म तुम्हारे भीतर ही है।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग टोडी (तोडी) समाप्तः ॥ १६ ॥

अथ राग हुसेनी बंगाल १७

(गायन समय पहर दिन चढ़े चन्द्रोदय ग्रंथ के मतानुसार)

२८९-(फ़ारसी) अनन्यता। त्रिताल

है दाना[1] है दाना[2], दिलदार[3] मेरे कान्हा।
तूं हीं मेरे जान[4] जिगर[5], यार मेरे खाना[6] ॥ टेक॥
तूं हीं मेरे मादर[7] पिदर[8], आलम[9] बेगाना[10]।
साहिब शिरताज मेरे, तूं हीं सुलताना ॥ १ ॥
दोस्त दिल तूं हीं मेरे, किसका खिल[11] खाना[12]।
नूर[13] चश्म[14] जिंद[15] मेरे, तूं हीं रहमाना[16] ॥ २ ॥
एकै असनाव[17] मेरे, तूं हीं हम जाना।
जानिबा[18] अजीज[19] मेरे, खूब खजाना ॥ ३ ॥
नेक[20] नज़र महर मीरां[21], बंदा मैं तेरा।
दादू दरबार तेरे, खूब साहिब मेरा ॥ ४ ॥

अनन्यता दिखा रहे हैं—हे महान्[1] और सर्वज्ञ[2] मेरे प्यारे[3] कृष्ण ! आप ही मेरे जीवन[4], कलेजा[5], सहायक, और निवास[6] स्थान हैं। आप ही संसार[9] में मेरे माता[7] पिता[8] और पराये[10] जन भी हैं, आप ही मेरे स्वामी, शिरोमणि बादशाह, सुहृद हैं और यह सब[11] शरीर रूप घर[12] भी किसका है, आप ही का है। हे दयालु[16] ईश्वर ! आपका स्वरूप[13] ही मेरे नेत्र[14] तथा जीवन[15] का लक्ष्य है। हमने जान लिया है-एक मात्र आप ही संसार वा मेरे (असना[17]=आव[17]) बीच[17] में शोभारूप[17] हैं। आप ही मेरे पक्ष[18] पर रहने वाले सम्बन्धी[19] और श्रेष्ठ धनराशि हैं। हे मेरे श्रेष्ठ स्वामिन् ! मैं आपके दरबार में आया हूं, आपका दास हूं। हे मेरे सरदार[21] ! मुझ पर उत्तम[20] दया युक्त दृष्टि करिये।

२९०-(गुजराती) विनय। त्रिताल

तूं घर आव सुलक्षण पीव।
हिक तिल मुख दिखलावहु तेरा, क्या तरसावै जीव ॥ टेक॥

वे राम सब रंगों में, सबके साथ तथा सब शरीरों में विद्यमान हैं। सब अवस्थाओं में उनसे प्रेम करना। सब प्रकार उनके मत में रहना और सब प्रकार ही सत्यरामादि निज नामों का चिन्तन करना चाहिए। सब प्रकार से उसी का ध्यान करते हुए ज्ञान द्वारा सब में उसी को देखते हुए सर्व प्रकार से आनन्द करना चाहिए। सब में वृत्ति जाने पर भी सब प्रकार से सर्व रूप ब्रह्म दर्शन-रस का पान करना चाहिए। सर्व प्रकार प्रभु के प्रेम में गलित और सब भांति प्रसन्न रहते हुए उस सर्व रूप में ही निमग्न रहना चाहिये। वह सर्व में देखने योग्य, सर्व में स्पर्श करने योग्य परब्रह्म तुम्हारे भीतर ही है।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग टोडी (तोडी) समाप्तः ॥ १६ ॥

अथ राग हुसेनी बंगाल १७

(गायन समय पहर दिन चढ़े चन्द्रोदय ग्रंथ के मतानुसार)

२८९-(फ़ारसी) अनन्यता। त्रिताल

है दाना[1] है दाना[2], दिलदार[3] मेरे कान्हा।
तूं हीं मेरे जान[4] जिगर[5], यार मेरे खाना[6]॥ टेक॥
तूं हीं मेरे मादर[7] पिदर[8], आलम[9] बेगाना[10]।
साहिब शिरताज मेरे, तूं हीं सुलताना॥ १॥
दोस्त दिल तूं हीं मेरे, किसका खिल[11] खाना[12]।
नूर[13] चश्म[14] जिंद[15] मेरे, तूं हीं रहमाना[16]॥ २॥
एकै असनाव[17] मेरे, तूं हीं हम जाना।
जानिबा[18] अजीज[19] मेरे, खूब खजाना॥ ३॥
नेक[20] नज़र महर मीरां[21], बंदा मैं तेरा।
दादू दरबार तेरे, खूब साहिब मेरा॥ ४॥

अनन्यता दिखा रहे हैं—हे महान्[1] और सर्वज्ञ[2] मेरे प्यारे[3] कृष्ण! आप ही मेरे जीवन[4], कलेजा[5], सहायक, और निवास[6] स्थान हैं। आप ही संसार[9] में मेरे माता[7] पिता[8] और पराये[10] जन भी हैं, आप ही मेरे स्वामी, शिरोमणि बादशाह, सुहृद हैं और यह सब[11] शरीर रूप घर[12] भी किसका है, आप ही का है। हे दयालु[16] ईश्वर! आपका स्वरूप[13] ही मेरे नेत्र[14] तथा जीवन[15] का लक्ष्य है। हमने जान लिया है-एक मात्र आप ही संसार वा मेरे (असना[17]=आव[17]) बीच[17] में शोभारूप[17] हैं। आप ही मेरे पक्ष[18] पर रहने वाले सम्बन्धी[19] और श्रेष्ठ धनराशि हैं। हे मेरे श्रेष्ठ स्वामिन्! मैं आपके दरबार में आया हूं, आपका दास हूं। हे मेरे सरदार[21]! मुझ पर उत्तम[20] दया युक्त दृष्टि करिये।

२९०-(गुजराती) विनय। त्रिताल

तूं घर आव सुलक्षण पीव।
हिक तिल मुख दिखलावहु तेरा, क्या तरसावै जीव॥ टेक॥

निश दिन तेरा पंथ निहारूं, तूं घर मेरे आव।
हिरदा भीतर हेत सौं रे वाहला, तेरा मुख दिखलाव ॥ १ ॥
वारी फेरी बलि गई रे, शोभित सोई कपोल।
दादू ऊपरि दया करीनें, सुनाइ सुहावे बोल ॥ २ ॥

इति राग हुसेनी बंगाल समाप्त: ॥ १७ ॥ पद २ ॥

दर्शनार्थ विनय कर रहे हैं—हे मेरे शुभ लक्षणों युक्त प्रियतम ! आप मेरे हृदय घर में पधारिये। मुझे थोड़ा-सा दर्शन देने के लिए भी आप मेरे मन को इतना क्यों तरसा रहे हैं ? मैं दिन-रात आपका मार्ग देख रही हूं, आप मेरे घर पधारिये। प्रियतम ! हृदय घर में आकर प्रेम पूर्वक अपना सुन्दर शोभा युक्त कपोलों वाला मुख दिखलाइये। मैं अपना सब कुछ आप पर निछावर करके आपकी बलिहारी जा रही हूं। आप मुझ पर दया करके, मुझे प्रिय लगें ऐसे वचन सुनाने की कृपा कीजिये।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग हुसेनी बंगाल समाप्त : ॥ १७ ॥

अथ राग नट नारायण १८

(गायन समय रात्रि ९ से १२)

२९१-हितोपदेश। गजताल

ताको काहे न प्राण सँभालै।
कोटि अपराध कल्प के लागे, मांहिं महूरत टालै ॥ टेक ॥
अनेक जन्म के बन्धन बाढ़े, बिन पावक फँद जालै।
ऐसो है मन नाम हरी को, कबहूं दु:ख न सालै ॥ १ ॥
चिन्तामणि जुगति सों राखै, ज्यों जननी सुत पालै।
दादू देखु दया करै ऐसी, जन को जाल न रालै[१] ॥ २ ॥

हितकर उपदेश कर रहे हैं—अरे प्राणी ! जो कल्प (ब्रह्मा का एक दिन) भर के हृदय में लगे हुये पापों को एक मूहर्त्त (४८ मिनट वा १ क्षण) में हटा लेते हैं, उन प्रभु का स्मरण क्यों नहीं करता ? वे अनेक जन्मों के कर्म बन्धनों को काट डालते हैं, बिना अग्नि ही भक्तों के फंद को जला देते हैं। अरे ! तू अपने मन में सोच तो सही, उन हरि का नाम ऐसा शक्तिशाली है कि—स्मरण करने वाले को कोई भी प्रकार का दु:ख व्यथित नहीं करता। जैसे माता अपने पुत्र का पालन करती है, वैसे ही युक्ति से चिन्तामणि रूप हरि अपने भक्तों की रक्षा करते हैं। अरे ! देख तो सही, वे ऐसी दया करते हैं कि—उनके भक्त को यमदूत अपने जाल में नहीं डाल[१] सकते।

२९२-विरह। जयमंगल तील

गोविन्द ! कबहुं मिलै पीव मेरा ?
चरण-कमल क्यों हीं कर देखूं, राखूं नैनहुँ नेरा ॥ टेक ॥

निश दिन तेरा पंथ निहारूं, तूं घर मेरे आव।
हिरदा भीतर हेत सौं रे वाहला, तेरा मुख दिखलाव ॥ १ ॥
वारी फेरी बलि गई रे, शोभित सोई कपोल।
दादू ऊपरि दया करीनें, सुनाइ सुहावे बोल ॥ २ ॥

इति राग हुसेनी बंगाल समाप्त: ॥ १७ ॥ पद २ ॥

दर्शनार्थ विनय कर रहे हैं—हे मेरे शुभ लक्षणों युक्त प्रियतम ! आप मेरे हृदय घर में पधारिये। मुझे थोड़ा-सा दर्शन देने के लिए भी आप मेरे मन को इतना क्यों तरसा रहे हैं ? मैं दिन-रात आपका मार्ग देख रही हूं, आप मेरे घर पधारिये। प्रियतम ! हृदय घर में आकर प्रेम पूर्वक अपना सुन्दर शोभा युक्त कपोलों वाला मुख दिखलाइये। मैं अपना सब कुछ आप पर निछावर करके आपकी बलिहारी जा रही हूं। आप मुझ पर दया करके, मुझे प्रिय लगें ऐसे वचन सुनाने की कृपा कीजिये।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग हुसेनी बंगाल समाप्त : ॥ १७ ॥

अथ राग नट नारायण १८

(गायन समय रात्रि ९ से १२)

२९१-हितोपदेश। गजताल

ताको काहे न प्राण सँभालै।
कोटि अपराध कल्प के लागे, मांहिं महूरत टालै ॥ टेक ॥
अनेक जन्म के बन्धन बाढ़े, बिन पावक फँद जालै।
ऐसो है मन नाम हरी को, कबहूं दु:ख न सालै ॥ १ ॥
चिन्तामणि जुगति सों राखै, ज्यों जननी सुत पालै।
दादू देखु दया करै ऐसी, जन को जाल न रालै[१] ॥ २ ॥

हितकर उपदेश कर रहे हैं—अरे प्राणी ! जो कल्प (ब्रह्मा का एक दिन) भर के हृदय में लगे हुये पापों को एक मूहर्त्त (४८ मिनट वा १ क्षण) में हटा लेते हैं, उन प्रभु का स्मरण क्यों नहीं करता ? वे अनेक जन्मों के कर्म बन्धनों को काट डालते हैं, बिना अग्नि ही भक्तों के फंद को जला देते हैं। अरे ! तू अपने मन में सोच तो सही, उन हरि का नाम ऐसा शक्तिशाली है कि—स्मरण करने वाले को कोई भी प्रकार का दु:ख व्यथित नहीं करता। जैसे माता अपने पुत्र का पालन करती है, वैसे ही युक्ति से चिन्तामणि रूप हरि अपने भक्तों की रक्षा करते हैं। अरे ! देख तो सही, वे ऐसी दया करते हैं कि—उनके भक्त को यमदूत अपने जाल में नहीं डाल[१] सकते।

२९२-विरह। जयमंगल तील

गोविन्द ! कबहुं मिलै पीव मेरा ?
चरण-कमल क्यों हीं कर देखूं, राखूं नैनहुँ नेरा ॥ टेक ॥

निरखण का मोहि चाव घणेरा, कब मुख देखूं तेरा ?
प्राण मिलन को भयी उदासी, मिल तूं मीत सवेरा ॥ १ ॥
व्याकुल तातैं भई तन देही, शिर पर जम का हेरा ।
दादू रे जन राम मिलन को, तपई तन बहुतेरा ॥ २ ॥

२९२-२९४ में विरह दिखा रहे हैं—मेरे प्रियतम गोविन्द ! आप मुझे कब मिलेंगे ? किस प्रकार मैं आपके चरण-कमलों को देख कर उन्हें अपने नेत्रों के समीप रख सकूंगा ? मुझे आपका मुख देखने का बड़ा उत्साह है किन्तु पता नहीं कब देख सकूँगा ? आप से मिलने के लिये मेरा मन दु:खी हो रहा है। मेरे सिर पर यम का हमला भी हो रहा है। इससे स्थूल शरीर में स्थित जीवात्मा व्याकुल हो रहा है। अरे ! मुझ भक्त का तन राम से मिलने के लिये बहुत प्रकार से संतप्त रहता है। अत: हे मित्र ! शीघ्र ही मुझ से मिलो।

२९३-राज मृगांक ताल

कब देखूं नैनहुं रेख[१] रती, प्राण मिलन को भई मती ।
हरि सों खेलूं हरी गती[२], कब मिलि हैं मोहि प्राणपती ॥ टेक ॥
बल कीती[३] क्यों देखूंगी रे, मुझ मांहीं अति बात अनेरी[४] ।
सुन साहिब इक विनती मेरी, जन्म जन्म हूं दासी तेरी ॥ १ ॥
कहै दादू सो सुनसी सांईं, हौं अबला बल मुझ में नांहीं ।
करम[५] करी घर मेरे आई, तो शोभा पिव तेरे तांई ॥ २ ॥

मेरा जीवात्मा प्रभु से मिले, इसके लिये मेरी बुद्धि आतुर हो रही है। मैं उन प्रभु का कभी किंचित् मात्र भी स्वरूप[१] देख पाऊंगी तो मुझे शांति मिलेगी। वे प्राणपति मुझे कब मिलेंगे ? और मैं उन हरि का ही रूप[२] धारण करके हरि के साथ कब खेल सकूंगी ? अरे ! मैं अपने बल करके[३] (द्वारा) तो उनको कैसे देख सकूंगी ? कारण, मेरे में तो ऐसी बहुत-सी दोष[४] रूप बातें हैं, जो उनसे दूर करती हैं। किन्तु हे स्वामिन् ! मेरी एक विनय सुनिये, मैं जन्म २ से आपकी दासी रही हूं और विनय कर रही हूं, आप मेरे प्रभु होने से वह विनय अवश्य सुनेंगे, ऐसी आशा है। हे प्रियतम ! मैं अबला हूं, मुझ में कुछ भी बल नहीं है, अत: आप कृपा[५] करके मेरे हृदय घर में पधारेंगे, तब ही आपके लिये शोभा की बात रहेगी।

२९४-राज मृंगाक ताल बसंत में

नीके मोहन सौं प्रीति लाई।
तन मन प्राण देत बजाई, रंग रस के बनाई ॥ टेक ॥
ये ही जीयरे वे ही पीवरे, छोड्यो न जाई, माई।
बाण भेद के देत लगाई, देखत ही मुरझाई ॥ १ ॥
निर्मल नेह पिया सौं लागो, रती न राखी काई।
दादू रे तिल में तन जावे, संग न छाडूं, माई ॥ २ ॥

अब तो हमने अच्छी प्रकार मोहन से प्रीति कर ली है। हृदय पर प्रेम रस का अच्छा रंग बनाकर ढोल बजाते हुये अपना तन और प्राण उनको समर्पण कर रहे हैं। हे माई ! वे ही हमारे प्रियतम हैं, यह जीवन उन्हीं का है, उन्हें छोड़ा नहीं जा सकता। वे वियोग के बाण लगा सकते हैं, तब देखते २ ही हमारा हृदय-कमल कुम्हला जाता है। अब तो प्रियतम से निर्मल स्नेह हो गया है, रत्ती मात्र भी कपट रूप मैल नहीं रहा है। अरी माई ! अब हम उनका संग कभी भी नहीं छोड़ सकते, कारण, यह शरीर तो पल भर में जाने वाला है।

२९५-परमेश्वर महिमा। राज विद्याधर ताल

तुम बिन ऐसै कौन करे।
गरीब निवाज गुसांई मेरो, माथैं मुकुट धरै ॥ टेक॥
नीच ऊंच ले करै गुसांई, टार्‍यो हूँ न टरै।
हस्त कमल की छाया राखै, काहूँ तैं न डरै ॥ १ ॥
जाकी छोत जगत को लागै, तापर तूं ही ढरै।
अमर आप ले करै गुसांई, मार्‍यो हूँ न मरै ॥ २ ॥
नामदेव कबीर जुलाहो, जन रैदास तिरै।
दादू वेगि बार नहिं लागै, हरि सौं सबै सरै ॥ ३ ॥

परमेश्वर की महिमा कह रहे हैं—दीन-हीन प्राणियों पर कृपा करने वाले हे मेरे स्वामिन् ! भक्तिवश अपवित्र अवस्था में भी आपने वेश्या के हाथ से अपने मस्तक पर मुकुट धारण किया था, आपके बिना ऐसे कौन कर सकता है ? (मुकुट धारण की कथा भक्तमाल में प्रसिद्ध है)। प्रभो ! आप नीच को उच्च कर लेते हैं, वह आपकी कृपा से प्राप्त उच्चस्थिति से हटाने से भी नहीं हटता, उच्च ही रहता है। उसे आप अपने कर-कमलों की रक्षा रूप छाया में रखते हैं, अत: वह किसी से भी नहीं डरता। जिसको जगत् में लोग अछूत समझते हैं, उस पर आप ही कृपा करते हैं। प्रभो ! उसे आप अपनी शरण में लेकर अमर कर लेते हैं, वह प्रहलाद के समान किसी के मारने से भी नहीं मरता। आपके भजन बल से नामदेव, जुलाहे कबीर और भक्त रैदास संसार सिन्धु से तैर गये हैं। आप हरि की कृपा से कुछ भी देर न लग कर अति शीघ्र ही सब कार्य सिद्ध हो जाते हैं।

२९६-मंगलाचरण। राजविद्याधर ताल

नमो नमो हरि नमो नमो।
ताहि गुसांई नमो नमो, अकल निरंजन नमो नमो।
सकल वियापी जिहि जग कीन्हा, नारायण निज नमो नमो ॥ टेक॥
जिन सिरजे जल शीश चरण कर, अविगत जीव दियो।
श्रवण सँवारि नैन रसना मुख, ऐसो चित्र कियो ॥ १ ॥

आप उपाइ किये जग जीवन, सुरनर शंकर साजे।
पीर पैगम्बर सिद्ध रु साधक, अपने नाम निवाजे॥ २ ॥
धरती अम्बर चंद सूर जिन, पाणी पवन किये।
भानण घड़न पलक में केते, सकल सँवार लिये॥ ३ ॥
आप अखंडित खंडित नांहीं, सब सम पूर रहे।
दादू दीन ताहि नइ वंदित, अगम अगाध कहे॥ ४ ॥

नमस्कारात्मक मंगल कर रहे हैं—हम हरि को बारम्बार नमस्कार करते हैं, जो कला रहित निरंजन स्वामी हैं, उनको बारम्बार नमस्कार करते हैं। जो सर्व व्यापक हैं और जिनने इच्छा मात्र से जगत की रचना की है, उन अपने प्रभु नारायण को बारम्बार नमस्कार करते हैं। जिन मन इन्द्रियों के अविषय प्रभु ने वीर्य-बिन्दु से ही चरण से शिर तक श्रवण, नेत्र, रसना, मुख आदि अंग-उपांग रच कर सजाये हैं और ऐसा विचित्र शरीर बना कर उसमें जीव रख दिया है, किसी अन्य की सहायता के बिना, उन जग जीवन ने स्वयं ही संसार के सब पदार्थ तथा जीव उत्पन्न किये हैं और उनमें महादेवादि सुर, नर, पीर, पैगम्बर, सिद्ध और साधकादि सजा कर, उन पर अपने नाम चिन्तन द्वारा कृपा की है तथा जिनने पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र रचे हैं, जो एक पलक में कितने ही को नष्ट करके पुन: उत्पन्न कर देते हैं, उन्होंने भक्त-जनों के सब कार्य सुधार कर भक्तों को अपनाया है। वे स्वयं प्रभु अखंड भाव से सदा सर्व-स्थानों में रहते हैं, कभी भी खंडित नहीं होते। वे संपूर्ण प्राणियों तथा पदार्थों में समभाव से परिपूर्ण हो रहे हैं। जिनको वेदादि शास्त्र और संत-जन अगम अगाध कहते हैं, उन निरंजन राम को हम दीन भाव से मस्तक नवा कर वन्दना करते हैं।

२९७-हैरान। उत्सव ताल

हम तैं दूर रही गति तेरी।
तुम हो तैसे तुम हीं जानो, कहा बपरी मति मेरी ॥टेक॥
मन तैं अगम दृष्टि अगोचर, मनसा की गम नांहीं।
सुरति समाइ बुद्धि बल थाके, वचन न पहुँचैं तांहीं ॥ १ ॥
योग न ध्यान ज्ञान गम नांहीं, समझ-समझ सब हारे।
उनमनी रहत प्राण घट साधे, पार न गहत तुम्हारे ॥ २ ॥
खोजि परे गति जाइ न जानी, अगह गहन कैसे आवै।
दादू अविगत देहु दया कर, भाग बड़े सो पावै ॥ ३ ॥

इति राग नट नारायण समाप्तः ॥ १८ ॥ पद ७ ॥

ब्रह्म स्वरूप की आश्चर्यता दिखा रहे हैं—प्रभो आपका स्वरूप हमारे मन इन्द्रियों के ज्ञान से दूर ही रहा है। जैसे आप हैं, वैसे तो अपने को आप ही जानते हो। मेरी तुच्छ बुद्धि तो आपको जान ही क्या सकती है ? आप मन से अगम और दृष्टि से अगोचर हैं, बुद्धि आपके स्वरूप में प्रविष्ट

नहीं हो सकती। जहां बुद्धि की शक्ति थक जाती है, वहां वचन तो पहुँचता ही नहीं, अत: संत-जन ब्रह्माकार वृत्ति द्वारा ही आप में समाये रहते हैं। आपके वास्तविक स्वरूप के अन्त तक योग, ध्यान और ज्ञान द्वारा भी गमन नहीं होता। योगी, ध्यानी, ज्ञानी आदि आपके स्वरूप को समझकर मध्य में ही थक गये हैं, पार नहीं पा सके। शरीरस्थ प्राण को साधना द्वारा अधीन करके समाधि में रहने वाले भी आपके स्वरूप का पार नहीं पा सकते। अनेक खोजी लोक आपको खोजने के लिये पीछे पड़े, किन्तु वे भी स्वरूप का अन्त न जान सके। वह अग्राह्य है, ग्रहण करने में कैसे आवे। हां, वे मन इन्द्रियों के अविषय परब्रह्म ही यदि अपना साक्षात्कार करा देवें, तो जिसका महान् भाग्य हो, वह उनका दर्शन प्राप्त करता है।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग नट नारायण समाप्त : ॥ १८ ॥

अथ राग सोरठ १९

(गायन समय रात्रि ९ से १२)

२९८-स्मरण। उत्सव ताल

कोली साल न छाड़ै रे, सब घावर[1] काढै रे ॥टेक॥
प्रेम पाण लगाई धागे, तत्त्व तेल निज दीया।
एक मना इस आरम्भ लागा, ज्ञान राछ[2] भर लीया ॥ १ ॥
नाम नली भर बुणकर लागा, अंतर गति रँग राता।
ताँणैं बाँणैं जीव जुलाहा, परम तत्त्व सौं माता॥ २ ॥
सकल शिरोमणि बुनै विचारा, सान्हा[3] सूत न तोड़ै।
सदा सचेत रहै ल्यौ लागा, ज्यों टूटै त्यों जोड़ै ॥ ३ ॥
ऐसे तनि बुनि गहर गजीना[4], सांई के मन भावै।
दादू कोली करता के सँग, बहुरि न इहि जग आवै॥ ४ ॥

जुलाहा और खद्दर के रूपक द्वारा साधक के ब्रह्म भजन तथा ब्रह्म प्राप्ति का परिचय दे रहे हैं—साधक-जीव-जुलाहा ब्रह्म-भजन रूप पट बुनने के हृदय स्थान को नहीं छोड़ता। वृत्ति धागे से मल विक्षेपादि सम्पूर्ण दोष[1] निकाल देता है और उस धागे में प्रभु प्रेम रूप पाण लगाता है। तत्व विचार रूप तेल द्वारा प्रकाशित उन साक्षी रूप दीपक के सत्ता प्रकाश का आश्रय लेकर एकाग्र मन से इस ब्रह्म-भजन पट को बुनना आरम्भ करता है। ज्ञान रूप अच्छे औजार[2] लेता है, तथा नाम-नलिका में वृत्ति-धागा भरता है अर्थात् नामाकार वृत्ति रखता है। इस प्रकार नलिका भरकर पट बुनने लगता है और भीतर प्रभु-प्रेम रंग में अनुरक्त रहता है। यह जीव-जुलाहा वृत्ति-सूत्र को परम तत्व रूप ताने-बाने में लगाते हुये मस्त रहता है। यह विनम्र जीव-जुलाहा वृत्ति सूत्र को ब्रह्म-भजन-पट में संलग्न[3] करके तोड़ता नहीं, सर्व शिरोमणि पट बुनता है। सदा सावधान हो वृत्ति को ब्रह्म-भजन में लगाये रहता है। किसी कारण से वृत्ति टूट जाय तो ज्यों टूटती है, त्यों ही शीघ्र जोड़ देता है। उक्त प्रकार ताने बाने द्वारा बहुत गाढ़ा ब्रह्म-भजन रूप खद्दर बुन के तैयार करता है, तब

नहीं हो सकती। जहां बुद्धि की शक्ति थक जाती है, वहां वचन तो पहुँचता ही नहीं, अत: संत-जन ब्रह्माकार वृत्ति द्वारा ही आप में समाये रहते हैं। आपके वास्तविक स्वरूप के अन्त तक योग, ध्यान और ज्ञान द्वारा भी गमन नहीं होता। योगी, ध्यानी, ज्ञानी आदि आपके स्वरूप को समझकर मध्य में ही थक गये हैं, पार नहीं पा सके। शरीरस्थ प्राण को साधना द्वारा अधीन करके समाधि में रहने वाले भी आपके स्वरूप का पार नहीं पा सकते। अनेक खोजी लोक आपको खोजने के लिये पीछे पड़े, किन्तु वे भी स्वरूप का अन्त न जान सके। वह अग्राह्य है, ग्रहण करने में कैसे आवे। हां, वे मन इन्द्रियों के अविषय परब्रह्म ही यदि अपना साक्षात्कार करा देवें, तो जिसका महान् भाग्य हो, वह उनका दर्शन प्राप्त करता है।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग नट नारायण समाप्त : ॥ १८ ॥

अथ राग सोरठ १९

(गायन समय रात्रि ९ से १२)

२९८-स्मरण। उत्सव ताल

कोली साल न छाड़ै रे, सब घावर[1] काढै रे ॥ टेक॥
प्रेम पाण लगाई धागे, तत्त्व तेल निज दीया।
एक मना इस आरम्भ लागा, ज्ञान राछ[2] भर लीया ॥ १ ॥
नाम नली भर बुणकर लागा, अंतर गति रँग राता।
ताँणैं बाँणैं जीव जुलाहा, परम तत्त्व सौं माता॥ २ ॥
सकल शिरोमणि बुनै विचारा, सान्हा[3] सूत न तोड़ै।
सदा सचेत रहै ल्यौ लागा, ज्यों टूटै त्यों जोड़ै ॥ ३ ॥
ऐसे तनि बुनि गहर गजीना[4], सांई के मन भावै।
दादू कोली करता के सँग, बहुरि न इहि जग आवै॥ ४ ॥

जुलाहा और खद्दर के रूपक द्वारा साधक के ब्रह्म भजन तथा ब्रह्म प्राप्ति का परिचय दे रहे हैं—साधक-जीव-जुलाहा ब्रह्म-भजन रूप पट बुनने के हृदय स्थान को नहीं छोड़ता। वृत्ति धागे से मल विक्षेपादि सम्पूर्ण दोष[1] निकाल देता है और उस धागे में प्रभु प्रेम रूप पाण लगाता है। तत्व विचार रूप तेल द्वारा प्रकाशित उन साक्षी रूप दीपक के सत्ता प्रकाश का आश्रय लेकर एकाग्र मन से इस ब्रह्म-भजन पट को बुनना आरम्भ करता है। ज्ञान रूप अच्छे औजार[2] लेता है, तथा नाम-नलिका में वृत्ति-धागा भरता है अर्थात् नामाकार वृत्ति रखता है। इस प्रकार नलिका भरकर पट बुनने लगता है और भीतर प्रभु-प्रेम रंग में अनुरक्त रहता है। यह जीव-जुलाहा वृत्ति-सूत्र को परम तत्व रूप ताने-बाने में लगाते हुये मस्त रहता है। यह विनम्र जीव-जुलाहा वृत्ति सूत्र को ब्रह्म-भजन-पट में संलग्न[3] करके तोड़ता नहीं, सर्व शिरोमणि पट बुनता है। सदा सावधान हो वृत्ति को ब्रह्म-भजन में लगाये रहता है। किसी कारण से वृत्ति टूट जाय तो ज्यों टूटती है, त्यों ही शीघ्र जोड़ देता है। उक्त प्रकार ताने बाने द्वारा बहुत गाढ़ा ब्रह्म-भजन रूप खद्दर बुन के तैयार करता है, तब

ब्रह्म के मन को वह प्रिय लगता है और ऐसे पट को बुनने वाला जीव-जुलाहा अभेद रूप से ब्रह्म के संग ही रहता है, पुन: जन्म लेकर संसार में नहीं आता।

२९९-विरही। ललित ताल

विरहणी वपु[१]न सँभारै।
निश दिन तलफै राम के कारण, अंतर एक विचारै॥ टेक॥
आतुर भई मिलन के कारण, कहि कहि राम पुकारै।
श्वास उश्वास निमिष नहिं विसरै, जित तित पंथ निहारै॥ १॥
फिरै उदास चहूँ दिशि चितवत, नैन नीर भर आवै।
राम वियोग विरह की जारी, और न कोई भावै॥ २॥
व्याकुल भई शरीर न समझै, विषम बाण हरि मारै।
दादू दर्शन बिन क्यों जीवै, राम सनेही हमारै॥ ३॥

विरही की स्थिति का परिचय दे रहे हैं—वियोगिनी शरीर[१] की संभाल भी नहीं कर पाती, रात्रि दिन राम के दर्शनार्थ तड़फती रहती है और प्रभु के दर्शन कैसे हो सकेंगे, एक मात्र यही विचार भीतर करती रहती है। प्रभु से मिलने के लिये व्याकुल हो रही है। पुन: २ राम-राम कर प्रभु के दर्शनार्थ प्रार्थना करती रहती है। वेग से श्वास लेते छोड़ते हुये भी एक निमेष मात्र प्रभु को नहीं भूलती। जहां तहां उन्हीं का मार्ग देखती है। खिन्न होकर फिरती है। चारों ओर देखती है। नेत्रों में अश्रु-जल भर आता है। राम न मिलने के कारण विरह से जली हुई रहती है, अन्य कुछ भी प्रिय नहीं लगता। व्याकुल हो रही है, शरीर की दशा को भी नहीं समझ पाती, कारण, हरि ने वियोग रूप भयंकर बाण मारे हैं। हे हमारे प्यारे राम ! हम आपके दर्शन बिना कैसे जीवेंगे ?

३००-उपदेश चेतावनी। धीमा ताल

मन रे, राम रटत क्यों रहिये, यहु तत बार बार क्यों न कहिये॥ टेक॥
जब लग जिह्वा वाणी, तो लौं जपिलै सारंगपाणी।
जब पवना चल जावै, तब प्राणी पछतावै॥ १॥
जब लग श्रवण सुणीजै, तो लौं साध शब्द सुण लीजै।
श्रवणों सुरति जब जाई, ए तब का सुणि है भाई॥ २॥
जब लग नैनहुं पेखै, तो लौं चरण-कमल क्यों न देखै।
जब नैनहुँ कछू न सूझै, ये तब मूरख क्या बूझै॥ ३॥
जब लग तन मन नीका, तो लौं जपिलै जीवन जी का।
जब दादू जीव आवै, तब हरि के मन भावै॥ ४॥

३००-३०४ में उपदेश द्वारा मन को सावधान कर रहे हैं—अरे मन ! राम-नाम चिन्तन करने में तू पीछे क्यों रह जाता है ? अरे ! यह नाम तो सभी साधनों में सार तत्व है, इसका तो

बारम्बार प्रतिक्षण ही चिन्तन करना चाहिये। जब तक जिह्वा से वाणी उच्चारण होती है तब तक परमेश्वर का नाम जप ले। जब श्वास निकल जाते हैं तब भजन न करने वाले प्राणी पश्चात्ताप करते हैं। जब तक श्रवणों से सुनता है, संतों के शब्द सुनले। हे भाई ! जब श्रवणों से सुनने की शक्ति नष्ट हो जायगी और श्रवण से सम्बन्ध वृत्ति विफल हो जायगा, तब क्या सुन सकेगा ? जब तक नेत्रों से तू अच्छी प्रकार देखता है, तब तक प्रभु के तथा सन्तों के चरण-कमलों का दर्शन क्यों नहीं करता ? जब नेत्रों से कुछ भी न दीखेगा तब हे मूर्ख ! तू उन प्रभु के रूप को क्या समझ सकेगा ? जब तक शरीर, मन अच्छे हैं, जीव के जीवन स्वरूप प्रभु का नाम जपले। जब जीव भजन द्वारा हरि की ओर आता है, तब हरि के मन को प्रिय लगता है।

३०१-धीमा ताल

मन रे, तेरा कौन गँवारा, जप जीवन प्राण अधारा॥ टेक॥
रे मात पिता कुल जाती, धन जोबन सजन सँगाती।
रे गृह दारा[१] सुत भाई, हरि बिन सब झूठा ह्वै जाई॥ १॥
रे तूं अंत अकेला जावै, काहू के संग न आवै।
रे तूं ना कर मेरी मेरा, हरि राम बिना को तेरा॥ २॥
रे तूं चेत न देखै अंधा, यहु माया मोह सब धंधा।
रे काल मीच शिर जागै, हरि सुमिरण काहे न लागै॥ ३॥
यहु औसर बहुरि न आवै, फिर मनिषा[२] जनम न पावे।
अब दादू ढील न कीजै, हरि राम भजन कर लीजै॥ ४॥

अरे मूर्ख मन ! इस जगत् में तेरा कौन है ? कोई भी नहीं है। अपने जीवन और प्राणों के आधार राम का नाम जप। अरे ! माता, पिता, भाई, स्त्री[१], पुत्र, कुलवाले, जाति वाले, मित्रादिक साथी यौवन, धन, और घर आदि सभी मिथ्या सिद्ध होंगे। अन्त में तू अकेला ही जायगा और न किसी के साथ आता भी है। अरे पाप-ताप हरने वाले राम के बिना तेरा कोई भी नहीं है। तूं यह मेरी है और यह मेरा है, ऐसा मत कर। अरे ! विचार-नेत्रों से हीन ! सावधान होकर नहीं देखता, ये सब कारबार तो मायिक मोह में डालने वाले हैं। अरे ! तेरे शिर पर काल प्रेरित मृत्यु आ गया है, सावधान होकर हरि-स्मरण में क्यों नहीं लगता ? यह सुअवसर पुनः हाथ न आयेगा। कारण, तू जिन कर्मों में प्रवृत्त है उनके द्वारा पुनः मनुष्य[२] जन्म भी नही प्राप्त कर सकेगा। अतः देर न कर, जन्मादि दुःखों के हरने वाले राम का भजन करके उन्हें प्राप्त कर।

३०२-प्रति ताल

मन रे, देखत जन्म गयो, तातैं काज न कोई भयो रे॥ टेक॥
मन इन्द्री ज्ञान विचारा, तातैं जन्म जुआ ज्यों हारा।
मन झूठ साच कर जानैं, हरि साध कहैं, नहिं मानैं॥ १॥
मन रे बादि गहे चतुराई, तातैं मनमुख बात बनाई।

मन आप आप को थापै, करता होइ बैठा आपै ॥ २ ॥
मन स्वादी बहुत बनावै, मैं जान्यां विषय बतावै ।
मन माँगै सोई दीजै, हमहिं राम दुखी क्यों कीजै ॥ ३ ॥
मन सब ही छाड़ विकारा, प्राणी होइ गुणन तैं न्यारा ।
निर्गुण निज गहि रहिये, दादू साध कहैं ते कहिये ॥ ४ ॥

अरे मन ! विषयों में लगे रहने से देखते २ मानव-जन्म चला गया । विषय-राग के कारण कोई भी कल्याण का हेतु कार्य नहीं हो सका । न मन इन्द्रियों के अनुकूल ज्ञान का ही विचार किया । इसलिये जैसे जुआरी अपना मूल धन जुआ मैं हार कर खो देता है, वैसे ही मानव जन्म को खो दिया । अरे मन ! तू मिथ्या को सत्य समझता है । हरि और संत कहते हैं, उन वचनों को नहीं मानता । अरे ! तू व्यर्थ की चतुराई ग्रहण करता है, इसीलिये मनमुखता से संतों के सामने ही बातें बनाता है, बारम्बार समर्थन द्वारा अपनी ही बातों को ठीक ठहराता है और आप ही सब कुछ का कर्त्ता होकर बैठा है । तू विषयों का स्वाद लेने वाला है, विषय-स्वाद सम्बन्धी बहुत-सी बातें बनाता है । मैंने तुझे पहचान लिया, तू विषय-भोग को ही उत्तम बताता है । हे राम ! मन माँगे वही पदार्थ देकर आप हम को दुखी क्यों कर रहे हैं ? अरे मन ! सब विकारों को छोड़कर, जिस प्रकार जीवात्मा गुणों से अलग हो निज स्वरूप निर्गुण ब्रह्म के चिन्तन को ग्रहण कर उसी में अभेद रूप से रह सके, ऐसा कर और संत-जन जैसे वचन बोलते हैं, वैसे ही सर्व-प्रिय वचन बोल ।

३०३-प्रतिपाल

मन रे अंतकाल दिन आया, तातैं यहु सब भया पराया ॥ टेक ॥
श्रवणों सुनै न नैनहुँ सूझै, रसना कह्या न जाई ।
शीश चरण कर कंपन लागे, सो दिन पहुँच्या आई ॥ १ ॥
काले धोले वरण पलटिया, तन मन का बल भागा ।
जौबन गया जरा चल आई, तब पछतावन लागा ॥ २ ॥
आयु घटै घट छीजै काया, यहु तन भया पुराना ।
पांचों थाके कह्या न मानैं, ताका मर्म न जाना ॥ ३ ॥
हंस बटाऊ प्राण पयाना, समझ देख मन मांहीं ।
दिन दिन काल गरासै जियरा, दादू चेतै नांहीं ॥ ४ ॥

अरे मन ! अंत समय का दिन समीप आ गया है, इससे यह धन दूसरों का हो गया है । अब श्रवणों से सुनता नहीं, नेत्रों से दीखता नहीं, वाणी से बोला नहीं जाता । शिर, पैर, हाथ कांपने लग गये हैं, वह मृत्यु का दिन भी अति समीप आ पहुँचा है । काले केश श्वेत हो गये हैं, शरीर का रंग बदल गया है, शरीर कमजोर हो गया है, मन भी विकल हो रहा है, यौवन चला गया, वृद्धावस्था

आ गई, तब तू पश्चाताप करने लगा है कि—"मैंने कोई भी कल्याण का साधन नहीं किया।" आयु प्रतिदिन घटती जा रही है, शरीर क्षीण होता जा रहा है। यह शरीर अब अति जीर्ण हो गया है। पंच ज्ञानेन्द्रियों के ज्ञान थक गए, अब कहना नहीं मानतीं अर्थात् काम नहीं दे सकती, किन्तु फिर भी तू पथिक जीवात्मा रूप हंस का प्राणों के सहित प्रयाण का रहस्य नहीं जान सका। अरे मन ! अपने भीतर समझ कर देख तो सही, प्रतिदिन काल तेरी आयु का ग्रास करता जा रहा है, तू सावधान नहीं होता।

३०४-राज विद्याधर ताल

मन रे, तूं देखे सो नांहीं, है सो अगम अगोचर मांहीं ॥टेक॥
निश अंधियारी कछू न सूझै, संशय सर्प दिखावा ।
ऐसे अंध जगत नहिं जानै, जीव जेवड़ी खावा ॥ १ ॥
मृग जल देख तहां मन धावै, दिन दिन झूठी आशा ।
जहँ जहँ जाइ तहां जल नांहीं, निश्चय मरे पियासा ॥ २ ॥
भ्रम विलास बहुत विधि कीन्हा, ज्यों स्वप्ने सुख पावै ।
जागत झूठ तहां कुछ नांहीं, फिर पीछे पछितावै ॥ ३ ॥
जब लग सूता तब लग देखै, जागत भरम विलाना ।
दादू अंत इहां कुछ नांहीं, है सो सोध सयाना ॥ ४ ॥

अरे मन ! जिस मायिक प्रपंच को तू सत्य रूप से देख रहा है, यह सत्य नहीं है। जो सत्य है वह तो तेरे अगम, इन्द्रियों से परे और सभी के भीतर है किन्तु जैसे अन्धेरी रात्रि में अच्छी प्रकार कुछ नहीं दीखता, तब अपने ही भ्रम से रस्सी में सर्प दिखाई देता है और उस रस्सी को ही जीव सर्प समझ कर कहता है—यह खा जायगा, वैसे ही जगत् के अज्ञानी प्राणी ब्रह्म को न जान कर उसके विवर्त्त को शत्रु आदि मान कर व्यथित होते हैं। जैसे मृग मरीचिका के जल को देख कर वहां जाता है किन्तु जहां २ जाता है, वहां जल नहीं मिलता और वह उस मिथ्या-जल की आशा से प्यासा ही मरता है। वैसे ही प्राणी सांसारिक मिथ्या विषयों की आशा करके प्रतिदिन उनसे सुख प्राप्ति के लिए उनके पीछे दौड़ता है और निश्चय पूर्वक दुःख ही पाता है। जैसे स्वप्न में प्राणी नाना भांति के सुख पाता है किन्तु जागने पर सबको मिथ्या जानता है, वहां उसे कुछ भी नहीं मिलता, वैसे ही प्राणी भ्रमवश मिथ्या पदार्थों के उपभोग में आनन्द मानता है किन्तु ज्ञान जाग्रत में आने पर उन सब को मिथ्या जानता है, तब फिर उनके उपभोग में व्यतीत हुई आयु के लिए पश्चात्ताप करता है। अरे ! तू भी जब तक अज्ञान-निद्रा में प्रसुप्त है, तब तक ही इन मायिक पदार्थों को सत्य देखता है। ज्ञान जाग्रत में आते ही यह भ्रम नष्ट हो जायेगा। मोह-निद्रा के अन्त में इस मायिक प्रपंच में सत्य कुछ भी न मिलेगा। अत: हे चतुर ! जो इस प्रपंच में सत्य तत्त्व है, उसी ब्रह्म की खोज कर।

३०५-उपदेश। त्रिताल

भाई रे, बाजीगर नट खेला, ऐसैं आपै रहै अकेला॥ टेक॥
यहु बाजी खेल पसारा, सब मोहे कौतुकहारा।
यहु बाजी खेल दिखावा, बाजीगर किनहुं न पावा॥ १॥
इहि बाजी जगत भुलाना, बाजीगर किनहुँ न जाना।
कुछ नांहीं सो पेखा, है सो किनहुँ न देखा॥ २॥
कुछ ऐसा चेटक कीन्हा, तन मन सब हर लीन्हा।
बाजीगर भुरकी बाही, काहू पै लखी न जाही॥ ३॥
बाजीगर परकासा, यहु बाजी झूठ तमासा।
दादू पावा सोई, जो इहि बाजी लिप्त न होई॥ ४॥

ईश्वर तथा उसके कार्य की अद्भुतता दिखाते हुए उपदेश कर रहे हैं—हे भाई! ईश्वर रूप बाजीगर ने यह संसार नट-खेल के समान रचा है और आप इस प्रकार अद्वैत रूप से रहता है कि इस खेल सम्बन्धी कोई भी विकार उसमें नहीं भासते। उस खेल करने वाले ईश्वर ने ही यह संसार बाजी रूप खेल फैलाया है। जिसने यह बाजी रूप खेल दिखाया है, उस बाजीगर की समता किसी ने भी प्राप्त नहीं की है। उसने इस बाजी में ही जगत् को भुला रखा है, इसी कारण बाजीगर के आदि, अन्त को किसी ने भी नहीं जाना। जो वास्तव में सत्य नहीं है, वह मायिक प्रपंच ही इन नेत्रों से देखा जाता है और जो सत्य ब्रह्म है उसको इन नेत्रों से किसी ने भी नहीं देखा। इस बाजीगर ने कुछ ऐसा जादू करके माया रूप भुरकी डाली है, जिसने सब के तन-मन हर लिये हैं, इस कारण उसकी वास्तविकता को कोई भी नहीं जान पाता, किन्तु यह निश्चित है—हृदय में ईश्वर रूप बाजीगर का प्रकाश आते ही यह बाजी मिथ्या खेल रूप भासने लगती है। जिसने इस बाजी में आसक्त न होकर ईश्वर का भजन किया है, उसी ने ईश्वर के स्वरूप प्रकाश को प्राप्त किया है।

३०६-ज्ञानोपदेश। त्रिताल

भाई रे, ऐसा एक विचारा, यूं हरि गुरु कहै हमारा॥ टेक॥
जागत सूते, सोवत सूते, जब लग राम न जाना।
जागत जागे, सोवत जागे, जब राम नाम मन माना॥ १॥
देखत अंधे, अंध भी अंधे, जब लग सत्य न सूझै।
देखत देखे, अंध भी देखे, जब राम सनेही बूझै॥ २॥
बोलत गूंगे, गूंग भी गूंगे, जब लग सत्य न चीन्हा।
बोलत बोले, गूंग भी बोले, जब राम नाम कह दीन्हा॥ ३॥
जीवत मूये, मुये भी मूये, जब लग नहीं प्रकासा।
जीवत जीये, मुये भी जीये, दादू राम निवासा॥ ४॥

ज्ञानोपदेश कर रहे हैं—हे भाई ! हमारे गुरुदेव हरि एक ऐसा अद्भुत विचार कहते हैं, जो इस प्रकार है—जो व्यवहार-काल में सावधानता रूप जाग्रत अवस्था में हैं और जो सोते हैं, उनने जब तक राम के वास्तविक स्वरूप को न जाना, तब तक वे दोनों प्रकार के मानव प्रसुप्त ही हैं और जब जिनके मन ने राम-नाम को कल्याण का साधन मानकर सतत चिन्तन आरम्भ कर दिया वे जागते हुये तथा सोते हुये होने पर भी जाग गये हैं। जब तक सत्य-सत्व नहीं भासता तब तक व्यवहारिक नेत्रों से देखने वाले तथा अंधे दोनों, ही अन्धे हैं और जब अपने परम स्नेही राम को आत्म-स्वरूप से समझ लिया, तब देखने वाले तथा अन्धे दोनों ही देखने वाले हैं। जब तक सत्य ब्रह्म नहीं पहचाना तब तक वेदादि का उच्चारण करने वाले भी गूंगे और गूंगे भी गूंगे ही हैं और जब जीवन में सतत राम-नाम उच्चारण वा मन से चिन्तन किया है, तब बोलने वाले और गूंगे दोनों ही बोलने वाले हैं। जब तक बुद्धि में आत्म-ज्ञान का प्रकाश नहीं हुआ तब तक जीवित तथा मृतक दोनों ही मृतक हैं और जब ज्ञान द्वारा राम के वास्तविक स्वरूप में निष्ठा रूप निवास हो गया तब जीवित और मृतक दोनों ही ब्रह्मरूप से जीवित रहते हैं।

३०७-नाम महिमा। एक ताल

रामजी ! नाम बिना दुख भारी, तेरे साधुन कही विचारी ॥ टेक ॥
केई जोग ध्यान गह रहिया, केई कुल के मारग बहिया।
केई सकल देव को ध्यावैं, केई रिधि सिधि चाहैं पावैं ॥ १ ॥
केई वेद पुराणों माते, केई माया के संग राते।
केई देश दिशंतर डोलैं, केई ज्ञानी ह्वै बहु बोलैं ॥ २ ॥
केई काया कसैं अपारा, केई मरैं खड़ग की धारा।
केई अनंत जीवन की आशा, केई करैं गुफा में बासा ॥ ३ ॥
आदि अंत जे जागे, सो तो राम नाम ल्यौ लागे।
अब दादू इहै विचारा, हरि लागा प्राण हमारा ॥ ४ ॥

नाम की महिमा बता रहे हैं—हे रामजी ! आपके नाम-चिन्तन बिना संसार में महान् क्लेश उठाने पड़ते हैं। यही आपके संतों ने विचार पूर्वक कहा है किन्तु उनके कथन पर ध्यान न देकर संसार के प्राणी कितने ही तो हठ योग और षट्चक्र ध्यान को ही ग्रहण करके रुक रहे हैं। कितने ही कुल परम्परागत रीति में ही चलते हैं। कितने ही सब देवताओं की उपासना करते हैं। कितने ही ऋद्धि-सिद्धि की इच्छा करके उनकी प्राप्ति के यत्न में लगे हैं। कितने ही वेद-पुराणों के पाठ में ही मस्त हैं। कितने ही मायिक प्रवाह में बह रहे हैं। कितने ही देश देशान्तरों में भ्रमण करते हैं। कितने ही ज्ञानी बनकर बहुत प्रकार से प्रवचन करते हैं। कितने ही पंच धूणी आदि कठोर तप से शरीर को अपार कष्ट देते हैं। कितने ही तलवार की धार से मरते हैं। कितने ही बहुत काल जीने की आशा करके कायाकल्प करते हैं। कितने ही गुफा में रहते हैं, किन्तु ये सब बाह्य-साधना, निरन्तर राम-नाम चिन्तन के समान नहीं है। सृष्टि के आदि से अन्त तक जो भी ज्ञान जाग्रत में आये हैं, वे सभी

तो राम-नाम में वृत्ति लगाकर के ही आये हैं। यही विचार करके हमारा मन तो अब निरन्तर हरि नाम चिन्तन में ही लगा है।

३०८-भ्रम विध्वंसन। एकताल

साधो ! हरि सौं हेत हमारा, जिन यहु कीन्ह पसारा॥ टेक॥
जा कारण व्रत कीजै, तिल तिल यहु तन छीजै।
सहजैं ही सो जाना, हरि जानत ही मन माना॥ १॥
जा कारण तप जइये, धूप शीत शिर सहिये।
सहजैं ही सो आवा, हरि आवत ही सचु पावा॥ २॥
जा कारण बहु फिरिये, कर तीरथ भ्रमि भ्रमि[1] मरिये।
सहजैं ही सो चीन्हा, हरि चीन्ह सबै सुख लीन्हा॥ ३॥
प्रेम भक्ति जिन जानी, सो काहे भरमैं प्रानी।
हरि सहजैं ही भल मानैं, तातैं दादू और न जानैं॥ ४॥

भ्रम नाश कर रहे हैं—हे संतो ! जिनने यह मायिक विस्तार रूप संसार इच्छा मात्र से रचा है, उन हरि से ही हमारा प्रेम है। जिनके लिये अज्ञानी लोगों का इन कठोर व्रतों से यह शरीर क्षण-क्षण में क्षीण होता रहता है, ऐसे व्रत करते हैं, उन हरि को हमने प्रेम पूर्वक चिन्तन करके बिना श्रम ही जान लिया है और उन हरि को जानते ही हमारे मनने संतोष मान लिया है। जिनके लिये तप करने जाते हैं, घाम और शीत शिर पर सहन करते हैं, वे हरि भजन द्वारा बिना भ्रमे ही हमारे हृदय में प्रकट रूप से आ गये हैं और उनके हृदय में आते ही हमें आनन्द प्राप्त हुआ है। जिनके लिये लोग बहुत फिरते हैं, तीर्थों में भ्रमण[1] कर २ के व्यथित होते हैं, उनको प्रेमाभक्ति पूर्वक ज्ञान द्वारा हमने अनायास ही पहचान लिया है और उन हरि को पहचानते ही सब प्रकार से आनन्द प्राप्त किया है। जिन प्राणियों की प्रेमाभक्ति जान ली है, वे किसलिये नाना बाह्य-साधनों में भटकेंगे ? प्रेमाभक्ति से हरि स्वाभाविक ही भक्त को अच्छा मानते हैं। इसलिये हम तो प्रेमाभक्ति को छोड़कर अन्य साधन को श्रेष्ठ नहीं जानते।

३०९-परिचय विनती। वर्ण भिन्नताल

रामजी जनि[1] भरमावो हम को, तातैं करूं वीनती तुमको॥ टेक॥
चरण तुम्हारे सब ही देखूं, तप तीरथ व्रत दाना।
गंग जमुन पास पाइन के, तहां देहु अस्नाना॥ १॥
संग तुम्हारे सब ही लागे, जोग जज्ञ जे कीजै।
साधन सकल ये ही सब मेरे, संग आपनो दीजे॥ २॥
पूजा पाती देवी देवल, सब देखूं तुम मांहीं।
मोको ओट आपणी दीजे, चरण कवल की छांहीं॥ ३॥

ये अरदास दास की सुनिये, दूर करो भ्रम मेरा।
दादू तुम बिन और न जानैं, राखो चरणों नेरा ॥ ४ ॥

प्रत्यक्ष रूप से प्रभु के पास निवासार्थ विनय कर रहे हैं—हे रामजी ! आप मुझे नाना बाह्य साधनों में नहीं[१] भटकावें, इसलिये मैं आप से विनय करता हूँ, मुझे ऐसी बुद्धि दीजिये कि-मैं आपके चरणों में ही तप, तीर्थ, व्रत, दानादि देखूं। गंगा, यमुना भी आपके चरणों की समीपता को ही समझूं और वहां ही स्नान कर सकूं, ऐसी बुद्धि दें। योग, यज्ञादि जो भी कुछ किये जाते हैं, वे सभी आपके चरणों के संग लगने में ही मानलूं। निरन्तर अपना संग दें, वही मेरे सब साधन रूप है। पूजा, तुलसी-पत्र, देवी-देवालय, सब आप के भीतर ही देख सकूं, ऐसी बुद्धि दें। मुझे तो अपनी शरणागति देकर अपने चरण-कमलों की छाया में ही रखिये। मुझ दास की यह विनय सुनकर मेरा भ्रम दूर करो। मुझे अपने चरणों के समीप ही रक्खो, मेरा मन आपके बिना अन्य किसी को भी उपास्य न जाने, ऐसी कृपा करिये।

३१०-उपास्य परिचय। वर्ण भिन्न ताल

सोई देव पूजूं, जे टांची नहिं घड़िया, गर्भवास नहीं औतरिया ॥ टेक ॥
बिन जल संजम सदा सोइ देवा, भाव भक्ति करूं हरि सेवा ॥ १ ॥
पाती प्राण हरि देव चढ़ाऊँ, सहज समाधि प्रेम ल्यौ लाऊँ ॥ २ ॥
इहि विधि सेवा सदा तहँ होई, अलख निरंजन लखै न कोई ॥ ३ ॥
ये पूजा मेरे मनि मानैं, जिहि विधि होइ सु दादू न जानै ॥ ४ ॥

अपने उपास्य देव का परिचय दे रहे हैं—मैं उसी उपास्य देव की पूजा करता हूँ, जो टांकी से नहीं गढ़ा गया है, गर्भवास द्वारा अवतार नहीं लिया है। जिसका बिना जल ही स्नान होता है तथा सदा ही संयम बना रहता है, वही मेरा उपास्य-देव है। उस हरि की श्रद्धा भक्ति द्वारा ही मैं पूजा करता हूँ। उस मेरे उपास्य देव हरि के प्राण रूप तुलसी-दल चढ़ाता हूँ। प्रेम पूर्वक उसमें वृत्ति लगाकर सहज समाधि द्वारा उसके पास रहता हूँ। इस प्रकार मेरे हृदय में सदा सेवा-पूजा होती रहती है। मेरा उपास्य देव अलख और निरंजन है, उसे चर्म-चक्षुओं से कोई भी नहीं देख सकता। मेरे मन को यह उक्त प्रकार की पूजा करना ही अच्छा लगता है किन्तु उस देव की यह पूजा जिस प्रकार होनी चाहिये वा जिस प्रकार करने से उसे प्रिय लगे सो तो वही जानता है, मैं नहीं जानता।

आमेर नरेश मानसिंह ने पूछा था, आप किस देव की पूजा करते हैं ? उसी का उत्तर इस पद से दिया था।

३११-परिचय हैरान। खेमटा ताल

राम राइ ! मोकों अचरज आवै, तेरा पार न कोई पावै ॥ टेक ॥
ब्रह्मादिक सनकादिक नारद, नेति नेति जे गावै।
शरण तुम्हारी रहैं निश वासर, तिन को तूं न लखावै॥ १ ॥

शंकर शेष सबै सुर मुनिजन, तिनको तूं न जनावै ।
तीन लोक रटैं रसना भर, तिनको तूं न दिखावै ॥ २ ॥
दीन लीन राम रँग राते, तिनको तूं संग लावै ।
अपने अंग की युक्ति न जानैं, सो मन तेरे भावै ॥ ३ ॥
सेवा संजम करैं जप पूजा, शब्द न तिन्हैं सुनावै ।
मैं अछोप हीन मति मेरी, दादू को दिखलावै ॥ ४ ॥

इति राग सोरठ समाप्तः ॥ १९ ॥ पद १४ ॥

साक्षात्कार किये स्वरूप की अद्भुतता बता रहे हैं—विश्व के राजा राम ! आपके स्वरूप का साक्षात्कार करने पर मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है। आप का पार कोई भी नहीं पा सकता। ब्रह्मादिक प्रजापति, सनकादिक ज्ञानी, नारदादिक देवर्षि जो हैं- वे आपके स्वरूप के विषय में, ''यह नहीं, यह नहीं'' कह करके ही प्रवचन करते हैं। जो आपकी शरण में रात्रि-दिन निरंतर रहते हैं, उनको भी आप अपना आदि, अन्त नहीं दिखाते। जो आपके विशेष भक्त शंकरजी व शेषजी हैं तथा संपूर्ण देवता और जितने मुनिजन हैं, उनको भी आप अपना आदि, अन्त नहीं बताते और जो भी तीनों लोकों में भक्तजन आपके नाम को रसना से इच्छा भर कर रटते हैं, उनको भी आप अपना आदि, अन्त नहीं दिखाते। जो सर्व प्रकार के अभिमान से रहित, दीन भाव से आप राम के प्रेम-रंग में अनुरक्त होकर आप में ही लीन हुए रहते हैं, उनको आप अपने अभेद रूप संग में ले लेते हैं। जो अपने शरीर की आसक्ति पूर्वक पोषण की युक्ति नहीं जानते, वे भक्त ही आप के मन को प्रिय लगते हैं। जो साभिमान आपकी सेवा करते हैं, संयम पूर्वक जप तथा पूजा करते हैं, उनको आप अपने मुख का शब्द तक नहीं सुनाते। देखिये, मैं हीन-मति हूं, अपने बुद्धि-बल से तो आपको छू भी नहीं सकता, किन्तु निरभिमान और दीन भाव से आपका भजन करने से ही आप अपने अति अद्भुत स्वरूप को मुझे दिखा रहे हैं।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग सोरठ समाप्तः ॥ १९ ॥

अथ राग गुंड (गौंड) २०

(गायन समय वर्षा ऋतु में सब समय, संगीत-प्रकाश के मतानुसार)

३१२-भक्ति निष्काम । सुरफाख्ता ताल

दर्शन दे राम ! दर्शन दे, हौं[1] तो तेरी मुक्ति न माँगूं ॥टेक॥
सिद्धि न माँगूं, ऋद्धि न माँगूं, तुम्ह हीं माँगूं गोविन्दा ॥ १ ॥
जोग न माँगूं, भोग न माँगूं, तुम्ह हीं माँगूं रामजी ॥ २ ॥
घर नहिं माँगूं, वन नहिं माँगूं, तुम्ह हीं माँगूं देवजी ॥ ३ ॥
दादू तुम बिन और न माँगूं, दर्शन माँगूं देहुजी ॥ ४ ॥

शंकर शेष सबै सुर मुनिजन, तिनको तूं न जनावै ।
तीन लोक रटैं रसना भर, तिनको तूं न दिखावै ॥ २ ॥
दीन लीन राम रँग राते, तिनको तूं संग लावै ।
अपने अंग की युक्ति न जानैं, सो मन तेरे भावै ॥ ३ ॥
सेवा संजम करैं जप पूजा, शब्द न तिन्हैं सुनावै ।
मैं अछोप हीन मति मेरी, दादू को दिखलावै ॥ ४ ॥

इति राग सोरठ समाप्तः ॥ १९ ॥ पद १४ ॥

साक्षात्कार किये स्वरूप की अद्भुतता बता रहे हैं—विश्व के राजा राम ! आपके स्वरूप का साक्षात्कार करने पर मुझे बड़ा आश्‍चर्य हो रहा है । आप का पार कोई भी नहीं पा सकता । ब्रह्मादिक प्रजापति, सनकादिक ज्ञानी, नारदादिक देवर्षि जो हैं- वे आपके स्वरूप के विषय में, ''यह नहीं, यह नहीं'' कह करके ही प्रवचन करते हैं । जो आपकी शरण में रात्रि-दिन निरंतर रहते हैं, उनको भी आप अपना आदि, अन्त नहीं दिखाते । जो आपके विशेष भक्त शंकरजी व शेषजी हैं तथा संपूर्ण देवता और जितने मुनिजन हैं, उनको भी आप अपना आदि, अन्त नहीं बताते और जो भी तीनों लोकों में भक्तजन आपके नाम को रसना से इच्छा भर कर रटते हैं, उनको भी आप अपना आदि, अन्त नहीं दिखाते । जो सर्व प्रकार के अभिमान से रहित, दीन भाव से आप राम के प्रेम-रंग में अनुरक्त होकर आप में ही लीन हुए रहते हैं, उनको आप अपने अभेद रूप संग में ले लेते हैं । जो अपने शरीर की आसक्ति पूर्वक पोषण की युक्ति नहीं जानते, वे भक्त ही आप के मन को प्रिय लगते हैं । जो साभिमान आपकी सेवा करते हैं, संयम पूर्वक जप तथा पूजा करते हैं, उनको आप अपने मुख का शब्द तक नहीं सुनाते । देखिये, मैं हीन-मति हूं, अपने बुद्धि-बल से तो आपको छू भी नहीं सकता, किन्तु निरभिमान और दीन भाव से आपका भजन करने से ही आप अपने अति अद्भुत स्वरूप को मुझे दिखा रहे हैं ।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग सोरठ समाप्तः ॥ १९ ॥

अथ राग गुंड (गौंड) २०

(गायन समय वर्षा ऋतु में सब समय, संगीत-प्रकाश के मतानुसार)

३१२-भक्ति निष्काम । सुरफाख्ता ताल

दर्शन दे राम ! दर्शन दे, हौं[1] तो तेरी मुक्ति न माँगूं ॥टेक॥
सिद्धि न माँगूं, ऋद्धि न माँगूं, तुम्ह हीं माँगूं गोविन्दा ॥ १ ॥
जोग न माँगूं, भोग न माँगूं, तुम्ह हीं माँगूं रामजी ॥ २ ॥
घर नहिं माँगूं, वन नहिं माँगूं, तुम्ह हीं माँगूं देवजी ॥ ३ ॥
दादू तुम बिन और न माँगूं, दर्शन माँगूं देहुजी ॥ ४ ॥

निष्काम भक्ति दिखा रहे हैं—हे प्रभो ! मैं[१] आपसे मुक्ति या मोक्ष नहीं माँगता किन्तु बारंबार यह प्रार्थना करता हूं-आप मुझे दर्शन दें। हे गोविन्द ! मैं ऋद्धि-सिद्धि नहीं माँगता केवल आपके स्वरूप का साक्षात्कार ही माँगता हूँ। हे रामजी ! मैं भोग वा योग नहीं मांगता, आपको ही चाहता हूँ। हे इष्टदेव जी ! घर वा वन का निवास नहीं मांगता, आपको ही चाहता हूं। मैं तो आप के बिना अन्य कुछ भी नहीं मांगता, आप का दर्शन ही मांगता हूं, कृपा करके दीजिये।

३१३-विरह विनती। सुरफाखता ताल

तूं आपै हीं विचार, तुझ बिन क्यों रहूं ?
मेरे और न दूजा कोइ, दुःख किसको कहूं ॥टेक॥
मीत हमारा सोइ, आदैं जे पीया।
मुझे मिलावै कोइ, वै जीवन जीया ॥ १ ॥
तेरे नैन दिखाइ, जीऊं जिस आस रे।
सो धन[१] जीवै क्यों, नहीं जिस पास रे ॥ २ ॥
पिंजर मांहीं प्राण, तुझ बिन जाइसी।
जन जादू माँगै मान, कब घर आइसी ॥ ३ ॥

३१३-३१५ में विरह पूर्वक विनय कर रहे हैं—हे प्रभो ! आप स्वयं ही विचार करके कहो, मैं आप के बिना सुख से कैसे रह सकता हूँ ? मेरे दुःख को मिटाने वाला आप से भिन्न दूसरा कोई भी नहीं है, फिर अपना दुःख कहूँ भी किसको ? जो सब संसार के आदि स्वरूप और स्वामी हैं, वे ही हमारे मित्र हैं, वे ही मेरे जीवन के जीव हैं, कोई संत उनको मुझे मिला दे तो बड़ा अनुग्रह मानूंगा। प्रभो ! आप अपने नेत्र दिखाइये, जिससे उनका आश्रय लेकर सुख पूर्वक जीवित रह सकूं। जिसके पास उसका प्रियतम न हो, वह नारी[१] सुख पूर्वक कैसे जीवित रहेगी ? वैसे ही मेरे शरीर-पिंजरे में स्थित जो प्राण पक्षी है, वह आपके बिना चला ही जायगा। मैं आपका भक्त आप से विनय करता हूँ, मेरी विनय मान कर कहिये—आप मेरे हृदय-घर में कब पधारेंगे ?

३१४-(गुजराती) सुरफाखता ताल

हूं जोइ रही रे बाट, तूं घर आवने।
तारा दर्शन थी सुख होइ, ते तूं ल्यावने ॥ टेक ॥
चरण जोवा ने खांत[१], ते तूं देखाड़ने।
तुझ बिना जीव देइ, दुहेली कामिनी ॥ १ ॥
नैणे निहारूं बाट, ऊभी चावनी।
तूं अंतर थी ऊरो आव, देही जावनी ॥ २ ॥
तूं दया करी घर आव, दासी गांवनी।
जन दादू राम संभाल, बैन सुहावनी ॥ ३ ॥

हे प्रियतम ! मैं आपका मार्ग देख रही हूँ, आप मेरे हृदय-घर में आइये, आपके दर्शन से ही मुझे सुख होगा, आप अपने स्वरूप को मेरे हृदय में लाने की कृपा करें। आपके चरण-कमलों को देखने के लिए प्रबल इच्छा[१] हो रही है, आप अपने चरण दिखावें। आपके बिना आप की कामिनी दुःखी है और अपना प्राण त्याग देगी। मैं आपके दर्शन की प्रबल इच्छा से युक्त होकर नेत्रों से आपका मार्ग देख रही हूँ, आप माया-पटल से निकल कर शीघ्र मेरे पास आइये, नहीं तो मेरा जीवात्मा शरीर को छोड़कर जाने वाला ही है। आप दया करके हृदय-घर में पधारिये। मैं आपका गुण-गान करने वाली दासी हूं और आपको विनय सुना रही हूँ, हे राम ! मुझ दासी की सँभाल करिये (पाठान्तर - सुनावनी) और अपनी सुन्दर वंशी या वाणाी से मधुर बोल सुनाइये।

३१५-झपताल

पीव देखे बिन क्यों रहूं, जिय तलफै मेरा।
सब सुख आनंद पाइये, मुख देखूं तेरा ॥टेक॥
पिव बिन कैसा जीवना, मोहि चैन न आवै ।
निर्धन ज्यों धन पाइये, जब दर्श दिखावै ॥ १ ॥
तुम बिन क्यों धीरज धरूँ, जो लौं तोहि न पाऊं ।
सन्मुख ह्वै सुख दीजिये, बलिहारी जाऊं ॥ २ ॥
विरह वियोग न सह सकूं, कायर घट काचा ।
पावन परस न पाइये, सुनि साहिब साचा ॥ ३ ॥
सुनिये मेरी वीनती, अब दर्शन दीजे ।
दादू देखन पावही, तैसें कुछ कीजे ॥ ४ ॥

हे प्रियतम ! मेरा जीवात्मा आपके दर्शनार्थ तड़फ रहा है, आपको देखे बिना मैं शरीर में कैसे रह सकूंगा ? यदि मैं आपका मुख देख सकूं तो सम्पूर्ण सांसारिक सुख तथा परमानन्द प्राप्त कर लूंगा। प्रियतम के बिना यह जीवन कैसा दुःख रूप हो रहा है। मुझे किंचित् मात्र भी तो सुख नहीं मिलता। जैसे निर्धन को धन मिलने से सुख होता है, वैसे ही आप दर्शन देंगे तब मुझे सुख होगा। जब तक मैं आपको नहीं प्राप्त कर सकूंगा तब तक आपके बिना धैर्य कैसे रख सकूंगा ? आप मेरे सन्मुख प्रकट होकर मुझे दर्शनानन्द प्रदान करें, मैं आपकी बलिहारी जाता हूँ। मुझसे वियोग जन्य विरह दुःख सहन नहीं होता, कारण, मेरा शरीर कच्चे घट के समान क्षणिक है और आपका पवित्र स्पर्श मिल नहीं रहा है। इससे मैं डरता हूँ-कहीं आपके दर्शन करे बिना ही न चला जाय। हे सच्चे स्वामिन् ! मेरी प्रार्थना सुनिये और मुझे आपके चरणों का स्पर्श मिले, ऐसी कृपा करिये। इस प्रकार यह मेरी विनय सुनकर अब दर्शन दीजिये। जैसे भी मैं आपको देख सकूं, वैसे ही कुछ उपाय करिये।

३१६-प्रीति अखंडित । दादरा

इहि विधि वेध्यो मोर मना, ज्यों लै भृंगी कीट तना ॥ टेक ॥
चातक रटतैं रैन बिहाइ, पिंड परै पै बान न जाइ ॥ १ ॥
मरै मीन बिसरै न हिं पानी, प्राण तजे उन और न जानी ॥ २ ॥
जलै शरीर न मोडै अंगा, ज्योति न छाड़ै पड़े पतंगा ॥ ३ ॥
दादू अब तैं ऐसै होइ, पिंड परै, नहीं छाडूं तोहि ॥ ४ ॥

अखंड प्रीति का प्रदर्शन कर रहे हैं—जैसे भृंगी के शब्द द्वारा कीट का शरीर विद्ध होकर बदल जाता है, वैसे ही मेरा यह मन प्रभु-प्रेम से विद्ध होकर बदल गया है। जैसे चातक पक्षी स्वाति बिन्दु को पुकारता है, वैसे ही प्रभु का नाम रटते-रटते आयु रात्रि व्यतीत हो गई है। यह शरीर छूट जायगा किन्तु प्रभु-नाम रटन का स्वभाव नहीं जा सकेगा, कारण, वह मन में है और मन प्रभु प्राप्ति पर्यन्त एक ही रहता है। जैसे मच्छी मर जाती है, पर जल का त्याग नहीं करती। वह जल के वियोग से प्राण छोड़ देती है किन्तु किसी अन्य को अपना आधार नहीं जानती। वैसे ही मेरा आधार प्रभु ही है। पतंग का शरीर जल जाता है किन्तु वह अपने शरीर को दीपक से नहीं हटाता। ज्योति को न छोड़ कर उसी में पड़ता है। अब से वैसी ही हमारी दशा है, शरीर गिर जायगा किन्तु हे प्रभो ! मैं आपका त्याग न करूंगा।

३१७-विरह । त्रिताल

आओ राम दया कर मेरे, बार बार बलिहारी तेरे॥ टेक॥
विरहनी आतुर पंथ निहारै, राम राम कह पीव पुकारै॥ १ ॥
पंथी बूझे मारग जोवै, नैन नीर जल भर भर रोवे॥ २ ॥
निश दिन तलफै रहै उदास, आतम राम तुम्हारे पास॥ ३ ॥
वपु[१] विसरै तन की सुधि नाहीं, दादू विरहनी मृतक मांहीं ॥ ४ ॥

विरह मिथ्या दिखा रहे हैं—हे राम ! दया करके आप मेरे यहां पधारिये, मैं बार-बार आपकी बलिहारी जाती हूं आपकी वियोग व्यथा से व्याकुल विरहनी आपका मार्ग देख रही है। राम-राम उच्चारण करते हुये आप प्रियतम को पुकार रही है। बारंबार संत-पथिकों से आपके समाचार पूछती है और मार्ग देखती है। नेत्रों में अश्रु जल भर-भर कर रुदन करती है। हे आत्म स्वरूप राम ! आप तो व्यापक हैं, इससे आपके पास ही तो रात्रि-दिन खिन्न होकर तड़फती रहती है, स्थूल व सूक्ष्म देह[१] का अध्यास भूल गई है, यह विरहनी तो जीवित मृतक हो चुकी है।

३१८-केवल विनती । रूपक ताल

निरंजन क्यों रहै, मौन गहे वैराग, केते जुग गये ॥ टेक ॥
जागै जगपति राइ, हँस बोलै नहीं ।
परगट घूंघट मांहिं, पट खोलै नहीं ॥ १ ॥

सदके करूं संसार, सब जग वारणैं ।
छाडूं सब परिवार, तेरे कारणैं ॥ २ ॥
वारूं पिंड पराण, पांवों शिर धरूं ।
ज्यों ज्यों भावै राम, सो सेवा करूं ॥ ३ ॥
दीनानाथ दयाल ! विलंब न कीजिये ।
दादू बलि बलि जाय, सेज सुख दीजिये॥ ४ ॥

निरंजन स्वरूप स्थिति प्रश्न पूर्वक ब्रह्मानन्द प्राप्ति के लिए विनय कर रहे हैं—निरंजन कैसे रहते हैं ? उनको वैराग्य युक्त हो मौन ग्रहण किये कितने ही युग व्यतीत हो गये, यद्यपि वे जगत् को रंजन करने वाले जगत् के स्वामी संसार-व्यवस्था के लिए सदा जागते रहते हैं किन्तु कभी भी हम से हँस कर नहीं बोलते। उनके विषय में यह बात प्रकट है कि जैसे कामिनी का मुख घूंघट में रहता है, वैसे ही वे माया से अच्छादित रहते हैं। जब तक प्राणी ज्ञान द्वारा उस माया के पड़दे को अपने हृदय से नहीं हटाता तब तक वे नहीं दीखते, किन्तु मैं तो अपनी सब सांसारिक वस्तुयें तथा सब जगत् ही उन पर निछावर करता हूँ, और हे प्रभो ! आप के लिए सब परिवार छोड़ सकता हूं, अपना शरीर और प्राण आप पर निछावर कर सकता हूं, सदा के लिए आपको जैसी सेवा प्रिय लगे, वैसी ही सेवा कर सकता हूँ, फिर आप मुझसे क्यों छिपे रहते हैं ? हे दीनानाथ दयालो ! अब देर न कीजिये, मेरी हृदय-शय्या पर आकर मुझे ब्रह्मानन्द दीजिये, मैं आप की पुन: बलिहारी जाता हूं।

३१९-निरंजन स्वरूप । त्रिताल

निरंजन यूं रहै, काहू लिप्त न होइ ।
जल थल स्थावर जंगमा, गुण नहिं लागै कोइ ॥ टेक ॥
धर अम्बर लागै नहीं, नहिं लागै शशिहर सूर ।
पाणी पवन लागै नहीं, जहां तहां भरपूर ॥ १ ॥
निश वासर लागै नहीं, नहिं लागै शीतल घाम ।
क्षुधा तृषा लागै नहीं, घट-घट आतम राम ॥ २ ॥
माया मोह लागै नहीं, नहिं लागै काया जीव ।
काल कर्म लागै नहीं, परकट मेरा पीव ॥ ३ ॥
इकलस एकै नूर है, इकलस एकै तेज ।
इकलस एकै ज्योति है, दादू खेलै सेज ॥ ४ ॥

३१८ में किये प्रश्न के उत्तर में निरंजन का स्वरूप बता रहे हैं—निरंजन ऐसे रहते हैं-किसी से भी लिपायमान नहीं होते। जल, स्थल, स्थावर और चलने वाले प्राणियों के गुण उनके नहीं लगते। पृथ्वी, आकाश के गुण भी उनके नहीं लगते। चन्द्रमा का शीतल गुण और सूर्य का तप्त गुण नहीं लगता। न उनको जल तथा वायु ही लगता। वे जहां तहां सर्वत्र परिपूर्ण रूप से रहते हैं।

उनके स्वरूप में रात्रि-दिन भेद नहीं है, उनको शीत, घाम, क्षुधा और प्यास भी नहीं लगती, उन घट-घट में रहने वाले आत्माराम के माया-मोह नहीं लगता। नहीं शरीराध्यास और जीवत्व ही लगता है। वे मेरे प्रियतम जब जिसके हृदय में प्रकट नहीं होते हैं, तब उस साधक के भी काल कर्म नहीं लगते, फिर तो एक रस अद्वैत स्वरूप में एक रस अद्वैत आत्मा तेज एक हो जाता है। जहां एकरस अद्वैत आत्म ज्योति का प्रकाश है, वहां ही हृदय-शय्या पर हम प्रभु से ब्रह्मानन्द प्राप्ति रूप खेल खेलते हैं।

३२०-विनय। त्रिताल

जगजीवन प्राण अधार, वाचा पालना ।
हौं कहां पुकारूं जाइ, मेरे लालना ॥टेक॥
मेरे वेदन अंग अपार, सो दुख टालना ।
सागर यह निस्तार, गहरा अति घणा ॥ १ ॥
अंतर है सो टाल, कीजै आपणा ।
मेरे तुम बिन और न कोइ, इहै विचारणा ॥ २ ॥
तातैं करूं पुकार, यहु तन चालणा ।
दादू को दर्शन देहु, जाय दुख सालणा ॥ ३ ॥

दर्शनार्थ विनय कर रहे हैं—मेरे प्राणाधार जगजीवन! "भक्त मुझको प्रिय है" इस अपने वचन या "भक्तों को भगवान् दर्शन देते हैं" इस संतों के वचन को सत्य करिये। मेरे प्रियतम! मैं आपको छोड़ कहां जाकर पुकारूं? मेरे तो सब कुछ आप ही हैं। मेरे शरीर में आपके बिना अपार व्यथा हो रही है, वह दूर करो। मायिक मोह रूप अत्यधिक गहराई वाला जो यह संसार-समुद्र है, इससे मुझे पार करो। आप और मेरे मिलने में जो अन्तराय है, वह हटाओ। आप यह भी विचार कर लेना, मेरे आपके बिना अन्य आश्रय कोई भी नहीं है और यह शरीर भी जाने वाला है। इसीलिए मैं प्रार्थना कर रहा हूं, मुझे शीघ्र दर्शन दो, जिससे मेरे को व्यथित करने वाला विरह दु:ख नष्ट हो।

३२१-मन का नीकी विनती। मल्लिका मोद ताल

मेरे तुम ही राखणहार, दूजा को नहीं ।
ये चंचल चहुँ दिशि जाय, काल तहीं तहीं ॥टेक॥
मैं केते किये उपाय, निश्चल ना रहै ।
जहँ बरजूं तहँ जाय, मद मातो बहै ॥ १ ॥
जहँ जाणा तहँ जाय, तुम तैं ना डरै ।
तासों कहा बसाइ, भावै त्यों करै ॥ २ ॥
सकल पुकारैं साध, मैं केता कह्या ।
गुरु अंकुश मानैं नांहिं, निर्भय ह्वै रह्या ॥ ३ ॥

तुम बिन और न कोइ, इस मन को गहै ।
तूं राखै राखणहार, दादू तो रहै ॥ ४ ॥

मन की चपलता-शमनार्थ विनय कर रहे हैं—प्रभो ! मेरे रक्षक तो आप ही हैं, अन्य कोई भी नहीं है। यह मेरा चंचल मन चारों ओर विषयों में जाता है और जहां-जहां जाता है, वहां-वहां ही वे विषय मुझे काल रूप भासते हैं। मैंने इसे स्थिर करने के कितने ही उपाय किये किन्तु यह निश्चल नहीं रहता। मैं इसे जहां जाने से रोकता हूं, यह वहां ही जाता है। विषय-मद्य से मतवाला होकर फिरता रहता है। जहां इसे जाना होता है वहां ही जाता है ! आप से भी नहीं डरता। जो इसको को अच्छा लगे, वही करता है। इसके आगे समझाने वाले की शक्ति क्या काम दे सकती है ? सब संत इसे पुकार-पुकार कर कहते रहते हैं और मैंने भी कितना ही कहा है, किन्तु यह मन रूप मस्त-हस्ती गुरुजनो के वचन रूप अंकुश को भी नहीं मानता, निर्भय हो रहा है। मुझे तो विश्वास हो गया है-आपके बिना इस मन को पकड़ सके, ऐसा अन्य कोई भी नहीं है। हे रक्षक ! इस मन को आप ही रोक कर रक्खो तो यह स्थिर रह सकता है।

३२२-संसार की नीकी विनती । दीपचन्द ताल

निरंजन, कायर कंपै प्राणिया, देख यहु दरिया।
वार पार सूझै नहीं, मन मेरा डरिया ॥ टेक॥
अति अथाह यह भौजला, आसंघ नहिं आवै ।
देख देख डरपै घणा, प्राणी दुख पावै ॥ १ ॥
विष जल भरिया सागरा, सब थके सयाना ।
तुम बिन कहु कैसे तिरूं, मैं मूढ़ अयाना ॥ २ ॥
आगे हौं डरपे घणा, मेरी का कहिये ।
कर गहि काढ़ो केशवा, पार तो लहिये ॥ ३ ॥
एक भरोसा तोर है, जे तुम होहु दयाला ।
दादू कहु कैसे तिरै, तूं तार गोपाला ॥ ४ ॥

संसार से संतारणार्थ विनय कर रहे हैं—हे निरंजन देव ! इस संसार-समुद्र को देख कर भय से साधक प्राणी कांप रहे हैं। इसका वार-पार भी नहीं दीख रहा है। इस कारण मेरा मन और भी अधिक डर रहा है। एक तो यह संसार-सिन्धु का विषय जल अति अथाह, दूसरे यह सांसारिक संबंधियों का समाज भी इसके पार करने में काम नहीं आता, प्रत्युत डुबोने का यत्न करता है, इस कारण इसे देख-देखकर मन अधिक डरता है और प्राणी दुःख पाता है। यह संसार-सागर-विषय-रस जल से भरा है। इसके तैरने में सभी बुद्धिमान् थके हैं और आपकी कृपा से ही पार हुये हैं, फिर व्यवहार में मूर्ख और स्वस्वरूप ज्ञान से रहित, मैं कहिये आपकी कृपा बिना कैसे तैर सकता हूँ ? पहले भी बहुत भक्त इस संसार-सागर से डरे हैं। फिर मेरी शक्ति इसके आगे क्या कही जा सकती

है ? अर्थात् नगण्य है। हे केशव ! आप ही मेरा भाव रूप हाथ पकड़ कर निकालो तो ही इसका पार मैं पा सकता हूं। मुझे तो एक मात्र आपका ही भरोसा है, यदि आप दया करो तब तो आपके लिए यह बड़ी बात नहीं है। कहिये, मैं अपने बल से तो कैसे तैर सकता हूँ ? हे गोपाल ! आप ही मुझे संसार-सिन्धु से पार करो।

३२३-समर्थ-उपदेश। दादरा ताल

समर्थ मेरा सांइयां, सकल अघ[1] जारै ।
सुखदाता मेरे प्राण का, संकोच निवारै ॥टेक॥
त्रिविध ताप तन की हरै, चौथे[2] जन राखै ।
आप समागम सेवका, साधू यूं भाखै[3] ॥ १ ॥
आप करै प्रतिपालना, दारुण दुख टारै ।
इच्छा जन की पूरवै, सब कारज सारै ॥ २ ॥
कर्म कोटि भय भंजना, सुख मंडन सोई ।
मन मनोरथ पूरणा, ऐसा और न कोई ॥ ३ ॥
ऐसा और न देखि हौं, सब पूरण कामा ।
दादू साधु संगी किये, उन आतम रामा ॥ ४ ॥

प्रभु की सामर्थ्य का परिचय देते हुये उपदेश कर रहे हैं—मेरे स्वामी निरंजन राम समर्थ हैं, संपूर्ण पापों[1] को भस्म कर डालते हैं। मेरे हित के लिए संकोच दूर करके मेरे मन को सुख देने वाले हैं। तन की त्रिताप हरके भक्त को तुर्यावस्था[2] में रखते हैं। वे स्वयं सेवक से मिलते हैं, ऐसा संतजन कहते[3] हैं। कठिन दुःखों को दूर करके भक्तों की स्वयं ही रक्षा करते हैं, सब कार्य सिद्ध करके भक्त की इच्छा पूर्ण करते हैं। कोटि कर्म और भयनाश करके सुख की वृद्धि करते हैं। मन के मनोरथों को पूर्ण करने वाला ऐसा अन्य कोई भी नहीं है। मैं ऐसी संपूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाले प्रभु के बिना अन्य कोई भी नहीं देखता। उन आत्मा राम ने संतों को अपना साथी बनाया है अर्थात् वे विशेष रूप से संतों के ही पास रहते हैं।

३२४-(गुजराती) स्थिरार्थ विनय। त्रिताल

तुम बिन राम कौन कलि माँहीं, विषया तैं कोई वारे रे ।
मुनिवर मोटा मनवैं बाह्या, येन्हा कौन मनोरथ मारे रे॥ टेक॥
छिन एकैं मनवो मर्कट माहरो, घर घरबार नचावे रे।
छिन एकैं मनवो चंचल माहरो, छिन एकैं घरमां आवे रे ॥ १ ॥
छिन एकैं मनवो मीन अम्हारो, सचराचर में धाये रे ।
छिन एकैं मनवो उदमद मातो, स्वादैं लागो खाये रे॥ २ ॥

छिन एकैं मनवो ज्योति पतंगा, भ्रम भ्रम स्वादैं दाझे रे ।
छिन एकैं मनवो लोभैं लागो, आपा पर में बाझे रे ॥ ३ ॥
छिन एकैं मनवो कुंजर माहरो, वन वन मांहिं भ्रमाड़े रे ।
छिन एकैं मनवो कामी माहरो, विषया रंग रमाड़े रे ॥ ४ ॥
छिन एकैं मनवो मिरग अम्हारो, नादैं मोह्यो जाये रे ।
छिन एकैं मनवो माया रातो, छिन एकैं हमने बाहे रे ॥ ५ ॥
छिन एकैं मनवो भँवर अम्हारो, बासैं कवल बँधाणें रे ।
छिन एकैं मनवो चहुँ दिशि जाये, मनवां ने[1] कोई आणें रे ॥ ६ ॥
तुम बिन राखे कौन विधाता, मुनिवर साखी आणें रे ।
दादू मृतक छिन में जीवे, मनवां[2] चरित न जाणें रे ॥ ७ ॥

मन व्यवहार प्रदर्शन पूर्वक उसे ठीक करने की विनय कर रहे हैं—हे राम ! इस कलियुग में आपके बिना ऐसा कोई नहीं है, जो मन को विषयों से हटावे। मन ने महान् मुनिवरों को भी बहकाया है। इसके मनोरथों को कौन नष्ट कर सकता है ? यह मेरा मन एक क्षण में वानर बनकर विषय रूप प्रति घर के प्राप्ति यत्न रूप द्वार पर प्रसन्नता रूप नृत्य करता है। एक क्षण में चंचल होकर दौड़ जाता है और एक क्षण में ही हृदय घर में आ जाता है। वह एक क्षण में ही मच्छी बनकर चराचर रूप विषय-जल में दौड़ता है। क्षण में विषयाशा से उन्मत्त विषय स्वाद में संलग्नता पूर्वक विषयों का उपभोग करता है। क्षण भर में रूप ज्योति के लिए भ्रमण कर-कर के स्वाद वश जलता है। क्षण में हाथी बनकर विषय-विपिन में भटकता है। क्षण में कामी बनकर प्रेम से विषयों में रमण करता है। क्षण में मृग बनकर नाद से मोहित हो जाता है। क्षण में माया में अनुरक्त होता है और क्षण भर में हमको बहकाता है। क्षण में भ्रमर बनकर विषय-कमल की अनुराग-गंध में फँस जाता है, क्षण भर में चारों दिशाओं में चला जाता है। ऐसा है कोई जो मन को[1] बाह्य-विषयों से हटा, हृदय में लाकर हरि में लगावे ? प्रभो ! आपके बिना इस मन को कौन स्थिर रख सकता है ? इस विषय में तो मुनिवर भी यही साक्षी देते हैं कि प्रभु-कृपा से ही मन निश्चल होता है। यह तो मृतक होकर भी क्षण भर में जीवित हो जाता है। यह मन अपार चरित करता है। हम तो मन का[2] सब चरित्र जानते भी नहीं, अतः कृपा करके इसे ठीक करो।

३२५-बेखर्च व्यसनी। ब्रह्म ताल

करणी पोच[1], सोच सुख करई, लोह की नाव कैसे भौजल तिरई ॥ टेक॥
दक्षिण जात, पच्छिम कैसे आवै, नैन बिन भूल बाट कित पावै॥ १ ॥
विष वन बेलि, अमृत फल चाहै, खाइ हलाहल, अमर उमाहै ॥ २ ॥
अग्नि गृह पैसि कर सुख क्यों सोवै, जलन लागी घणी, शीतल क्यों होवै॥ ३ ॥

पाप पाखंड कीये, पुन्य क्यों पाइये, कूप खन पड़िबा, गगन क्यों जाइये ॥ ४ ॥
कहै दादू मोहि अचरज भारी, हृदय कपट क्यों मिलै मुरारी ॥ ५ ॥

सरलता पूर्वक साधन-संबल बिना मनोरथ करने वा कथन रूप व्यसन वाले को प्रभु प्राप्त नहीं होते, यह कह रहे हैं—काम तो बुरे[१] और विचार सुख पाने का करे, ऐसा मानव केवल लोह की नाव से समुद्र तैरने वाले के समान है। वह कैसे संसार-सिन्धु के विषय-जल से पार हो सकेगा ? दक्षिण को जाने वाला पश्चिम में कैसे आयेगा ? मार्ग भूल कर नेत्रों बिना उसे कहां पा सकेगा ? विषय, बेलियों के वन में अमृत-फल चाहे तो कहां मिलेगा ? खाय तो हलाहल विष और अमर होने की प्रसन्नता दिखावे, सो व्यर्थ ही है। अग्नि-गृह में प्रवेश करके सुख से कैसे सोयेगा ? वहां तो अति जलन ही उत्पन्न होगी, शीतलता कैसे प्राप्त होगी ? पाप और पाखंड करने से पुन्य कैसे मिलेगा ? कूप खोद कर उसमें गिरने से आकाश में कैसे जायगा ? वैसे ही हमें बड़ा आश्चर्य हो रहा है कि हृदय में कपट रहते हुये परमात्मा कैसे मिलेंगे ?

३२६-परिचय प्राप्ति । खेमटा ताल

मेरा मन के मन सौं मन लागा, शब्द के शब्द सौं नाद बागा[१] ॥ टेक ॥
श्रवण के श्रवण सुन सुख पाया, नैन के नैन सौं निरख राया ॥ १ ॥
प्राण के प्राण सौं खेल प्राणी, मुख के मुख सौं बोल वाणी ॥ २ ॥
जीव के जीव सौं रंग राता, चित्त के चित्त सौं प्रेम माता ॥ ३ ॥
शीश के शीश सौं शीश मेरा, देखिरे दादू वा भाग तेरा ॥ ४ ॥

प्रत्यक्ष ब्रह्म प्राप्ति का परिचय दे रहे हैं—मन के भी मन ब्रह्म से ही मेरा मन लगा है। शब्द के भी शब्द ब्रह्म से ही मेरा वाणी रूप नाद लगा[१] है अर्थात् ब्रह्म सम्बन्धी ही वाणी निकलती है। श्रवण के भी श्रवण ब्रह्म को ही सुन कर सुख प्राप्त किया है। नेत्रों के भी नेत्र ब्रह्म रूप से विश्व को देखकर मैं सबको रंजन करने वाला हुआ हूँ। हे प्राणी ! प्राणों के भी प्राण ब्रह्म से ही मिल कर आनन्द ले। मुख के भी मुख ब्रह्म संबंधी वाणी बोल। मैं तो जीव के भी जीव ब्रह्म के सत्य चेतनादि रूप रंग में अनुरक्त हूँ। चित्त के भी चित्त ब्रह्म से प्रेम करके मस्त हूँ। शिर के भी शिर ब्रह्म को शिर नमाने से ही मेरा शिर शोभा युक्त हुआ है। देखो ! मेरा कितना उत्तम भाग्य है, जो ब्रह्म के साथ साक्षात् परिचय प्राप्त हुआ है।

३२७-मन को उपदेश । त्रिताल मलार में

मेरु शिखर चढ बोल मन मोरा, राम जल वर्षै शब्द सुन तोरा ॥ टेक ॥
आरत आतुर पीव पुकारै, सोवत जागत पंथ निहारे ॥ १ ॥
निश वासर कह अमृत वाणी, राम नाम ल्यौ लाइ ले प्राणी ॥ २ ॥
टेर मन भाई जब लग जीवै, प्रीति कर गाढी प्रेम रस पीवै ॥ ३ ॥
दादू अवसर जे जन जागे, राम घटा जल वरषण लागे ॥ ४ ॥

मन को उपदेश कर रहे हैं—अरे मन-मयूर ! देहाभिमान पर्वत-शिखर के ऊपर चढ़कर बोल, अर्थात् देहाध्यास से रहित होकर प्रार्थना कर, तब तेरा शब्द सुनकर राम दर्शन रूप जल की वृष्टि करेंगे। यदि प्राणी दु:ख और शीघ्रता से युक्त प्रभु को पुकारे तथा सोते जागते प्रभु का मार्ग देखे, दिन-रात प्रभु को प्रसन्न करने के लिए अमृत-तुल्य प्रिय वाणी से प्रार्थना करे और राम-नाम में वृत्ति लगाये रहे तो प्रभु अवश्य कृपा करते हैं। अत: हे भैया मन ! जब तक हम जीवित हैं, तब तक दृढ़ प्रीति के साथ उनका प्रेम-रस पान कर सके, वैसे ही उनको पुकार। यदि भक्त मन-मयूर ठीक अवसर पर मोह निद्रा से जाग के उन प्रभु से प्रार्थना करे तो राम रूप घटा अवश्य दर्शन-रूप जल वर्षाने लगती है।

३२८-वैराग्य उपदेश । त्रिताल

नारी नेह न कीजिये, जे तुझ राम पियारा।
माया मोह न बंधिये, तजिये संसारा ॥ टेक॥
विषया रँग राचे नहीं, नहिं करे पसारा ।
देह गेह परिवार में, सब तैं रहै नियारा ॥ १ ॥
आपा पर उरझे नहीं, नाहीं मैं मेरा ।
मनसा वाचा कर्मना, सांई सब तेरा ॥ २ ॥
मन इन्द्रिय सुस्थिर करे, कतहूं नहिं डोले ।
जग विकार सब परिहरै, मिथ्या नहिं बोले ॥ ३ ॥
रहै निरंतर राम सौं, अंतर गति राता ।
गावे गुण गोविन्द का, दादू रस माता ॥ ४ ॥

वैराग्य का उपदेश कर रहे हैं—यदि तुझे राम प्रिय है तो नारी से प्रेम मत कर, मायिक-मोह-पाश में मत बँध, सांसारिक भावना त्याग दे। विषय-रंग में अनुरक्त मत हो, वृत्ति को विषयों में मत फैलने दे। शरीर, घर, परिवार आदि सबकी आसक्ति से अलग रह। अपने पराये के राग-द्वेष तथा मैं-मेरे आदि अहंकार में मत पड़। मन, वचन, कर्म से ऐसा व्यवहार कर कि—हे प्रभो ! सब कुछ आपका ही है। इस प्रकार मन इन्द्रियों को सम्यक् स्थिर कर, व्यर्थ कहीं मत फिर। संपूर्ण सांसारिक विकारों को त्याग दे, मिथ्या वचन मत बोल। भीतर वृत्ति द्वारा निरंतर राम में अनुरक्त रहते हुये भक्ति रस में मस्त होकर गोविन्द-गुण-गान कर।

३२९-आज्ञाकारी । झपताल

तूं राखै त्यों हीं रहैं, तेई जन तेरा ।
तुम बिन और न जानहीं, सो सेवक नेरा ॥ टेक ॥

अम्बर आपै ही धर्‌या, अजहूं उपकारी।
धरती धारी आप तैं, सबही सुखकारी॥ १ ॥
पवन पास सब के चलै, जैसे तुम कीन्हा।
पानी परकट देखि हूं, सब सौं रहै भीना॥ २ ॥
चंद चिराकी चहुँ दिशा, सब शीतल जाने।
सूरज भी सेवा करै, जैसे भल मानै॥ ३ ॥
ये निज सेवक तेरड़े, सब आज्ञाकारी।
मोकों ऐसे कीजिये, दादू बलिहारी॥ ४ ॥

निरंतर प्रभु आज्ञा में रहने के लिए प्रार्थना कर रहे हैं—जैसे आप रक्खें वैसे ही रहें, वे ही आपके भक्त हैं आपके बिना अन्य को सत्य नहीं जानता, वही आप का सच्चा सेवक है। आकाश आपने ही रच कर रखा है जो अब तक सबका उपकार कर रहा है। सबको सुखकारक पृथ्वी आप से ही उत्पन्न हुई है और आपने ही इसे धारण कर रक्खी है। जैसे आपने विधान बनाया है, उसी विधान से वायु सबके पास चल रहा है। प्रकट रूप से देखता हूं कि जल सब में समाया हुआ रहता है, आपका रचित चन्द्रमा-दीपक चारों दिशाओं में प्रकाश कर रहा है। उसे सभी शीतल जान कर प्रसन्न होते हैं और सूर्य भी जैसे आप अच्छा मानते हैं वैसे ही सेवा करता है। ये उक्त सभी आपकी आज्ञानुसार कार्य करने वाले सेवक हैं। मुझे भी इसी प्रकार निरंतर आप की सेवा-भक्ति करने वाला सेवक बना लीजिये, मैं आपकी बलिहारी जाता हूं।

३३०-निन्दक। झपताल

निन्दक बाबा बीर हमारा, बिनहीं कौड़े बहै विचारा॥ टेक॥
कर्म कोटि के कश्मल काटै, काज सँवारै बिन ही साटै॥ १ ॥
आपण डूबै और को तारै, ऐसा प्रीतम पार उतारै॥ २ ॥
जुग जुग जीवो निन्दक मोरा, रामदेव तुम करो निहोरा॥ ३ ॥
निन्दक बपुरा पर उपकारी, दादू निन्दा करै हमारी॥ ४ ॥

अपनी सार-ग्राहक दृष्टि से निन्दक को हितकारक बता रहे हैं—हे बाबा ! निन्दक तो बेचारा हमारा भाई है, तभी तो बिना ही पैसे हमारा काम करता है। कोटि कर्म-जन्य पापों को निन्दा द्वारा नष्ट करता है, उसके बदले में हम से कुछ भी न लेकर हमारा कार्य सिद्ध करता है। आप पाप-समुद्र में डूबता है, अन्यों को तारता है। यह तो अघ-समुद्र से पार उतारने के कारण ऐसा प्रियतम भासता है कि इसकी क्या बड़ाई करें ?

हे निरंजन देव राम ! आप ऐसा अनुग्रह करो कि मेरी निन्दा करने वाला निन्दक युग-युग प्रति जीवित रहे, कारण, वह बेचारा बड़ा ही परोपकारी है, जो हमारी निन्दा करके हमारे पाप धोता रहता है।

साँभर में निन्दक को यह पद सुनाया था, फिर उसने मिठाई भेंट धर के क्षमा याचना की थी।

३३१-विरह। विनती शूलताल

देहुजी देहुजी, प्रेम पियाला देहुजी, देकर बहुरि न लेहुजी ॥ टेक ॥
ज्यों-ज्यों नूर न देखूं तेरा, त्यों-त्यों जियरा तलफै मेरा ॥ १ ॥
अमी महारस नाम न आवै, त्यों-त्यों प्राण बहुत दुख पावै ॥ २ ॥
प्रेम भक्ति-रस पावै नाहीं, त्यों त्यों साले मन हीं मांहीं ॥ ३ ॥
सेज सुहाग सदा सुख दीजै, दादू दुखिया, विलम्ब न कीजे ॥ ४ ॥

विरह-पूर्वक सदा ब्रह्म-सुख प्राप्ति के लिए विनय कर रहे हैं-हे प्रभो ! मैं मन, वचन कर्म से प्रार्थना करता हूँ- मुझे आप अपना प्रेम प्याला दें और देकर के पुन: कभी भी न लें। जैसे-जैसे आपके स्वरूप-दर्शन में देर होती है, वैसे-वैसे ही मेरा हृदय व्याकुलता से तड़पने लगता है। जैसे-जैसे नामामृत महारस-पान करने में देर होती है वैसे-वैसे ही मेरे प्राणों को अति दु:ख होता है। जैसे-जैसे प्रेमा-भक्ति-रस प्राप्ति में विलम्ब होता है वैसे-वैसे ही मन में व्यथा होती है। प्रभो ! मैं आपके वियोग-दु:ख से दु:खी हूं, मेरी वृत्ति-शय्या पर पधार कर मुझे सदा के लिए ब्रह्मानन्द सुहाग सुख दीजिये, देर न करिये।

३३२-परिचय विनती। त्रिताल मल्हार में

वर्षहु राम अमृत धारा, झिलमिल झिलमिल सींचनहारा ॥ टेक ॥
प्राण बेलि निज नीर न पावै, जलहर[१] बिना कमल कुम्हलावै ॥ १ ॥
सूखै बेलि सकल वनराय, रामदेव जल वर्षहु आय ॥ २ ॥
आतम बेली मरै पियास, नीर न पावै दादू दास ॥ ३ ॥

इति राग गुंड (गौड) समाप्त: ॥ २० ॥ पद २० ॥

साक्षात्कारार्थ विनय कर रहे हैं—झिलमिल झिलमिल स्वरूप प्रकाश के द्वारा तृप्ति रूप सेचन करने वाले हे राम ! दर्शनामृत धारा बरसाइये। जीवात्मा रूप बेलि निज स्वरूप साक्षात्कारार्थ-सरोवर[१] के जल बिना कमल के समान कुम्हला जायेगी। हे निरंजन देव राम ! यदि जल नहीं वर्षे तो सम्पूर्ण बेलि और वन के श्रेष्ठ वृक्ष भी सूख जाते हैं, वैसे ही मुझ दास की जीवात्मा रूप बेलि आपका दर्शन रूप नीर न प्राप्त होने से दर्शनाशा प्यास से पीड़ित है। अत: आप शीघ्र पधार कर, दर्शनामृत धारा वरसाइये।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग गुंड (गौड़) समाप्त: ॥ २० ॥

अथ राग विलावल २१

(गायन समय प्रात: ६ से ९)

३३३-परिचय विनती । त्रिताल

दया तुम्हारी दर्शन पइये।
जानत हो तुम अंतरजामी, जानराय तुम सौं कहा कहिये ॥ टेक॥
तुम सौं कहा चतुराई कीजे, कौन कर्म कर तुम्ह पाये।
को नहिं मिले प्राण बल अपने, दया तुम्हारी तुम आये॥ १ ॥
कहा हमारो आन तुम आगे, कौन कला कर वश कीये।
जीते कौन बुद्धि बल पौरुष, रुचि अपनी तैं शरण लीये॥ २ ॥
तुम हीं आदि अंत पुनि तुम हीं, तुम कर्ता त्रय लोक मंझार ।
कुछ नांहीं तैं कहा होत है, दादू बलि पावै दीदार॥ ३ ॥

साक्षात्कारार्थ विनय कर रहे हैं—हे प्रभो ! आपकी दया हो तो ही हमें आपका दर्शन मिलेगा। आप हमारे हृदय की स्थिति को जानते ही हो। कारण, जानने वालों में श्रेष्ठ और अन्तर्यामी हो, फिर आपसे मैं क्या कहूं और क्या चतुराई करूं ? कृपया आप ही बतावें कि कौन-सा कर्म करके आपको प्राप्त कर सकूंगा ? कोई भी प्राणी अपनी शक्ति से तो आपसे नहीं मिल सकता, आपकी दया से ही आप पधारते हैं। आपके आगे हमारा तो यही कथन है कि—अन्य भक्तों ने किस उपाय द्वारा आपको अपने वश किया था ? किन्तु विचार द्वारा तो यही ज्ञात होता है कि बुद्धि-बल और अन्य शरीर-शक्ति आदि परिश्रम से तो आपको कौन जीत सकता है ? आपने अपनी इच्छा से ही उनको अपनी शरण लिया था। आप ही सृष्टि के आदि-अन्त हैं और त्रिलोक में जो कुछ भी है, उसके कर्ता आप ही हैं। जिसकी शक्ति आपके आगे कुछ भी नहीं, उस जीव से क्या हो सकता है ? जो वह अपने बल द्वारा आपके दर्शन पा सके ? अत: आप ही कृपा करके दर्शन दें।

३३४-विनती। उदीक्षण ताल

मालिक महरबान[१] करीम[२],
गुनहगार[३] हररोज[४] हरदम[५], पनह[६] राख रहीम[७] ॥ टेक॥
अव्वल[८] आखिर बंदा गुनहीं, अमल[९] बद[१०] विसियार[११]।
गरक[१२] दुनिया सत्तार[१३] साहिब, दरदवंद पुकार ॥ १ ॥
फरामोश[१४] नेकी बदी, करदा[१५] बुराई बद[२३] फैल।
बखशिन्द:[१६] तूं अजीब[१७] आखिर, हुक्म हाजिर सैल[१८] ॥ २ ॥
नाम नेक रहीम राजिक[१९], पाक परवरदिगार[२०]।
गुनह फिल[२१] कर देहु दादू, तलब[२२] दर दीदार[२३] ॥ ३ ॥

३३४-३३५ में प्रभु से प्रार्थना कर रहे हैं—संसार-रचनादि कर्म[२] करने वाले हे दयालु[१] स्वामिन् ! मैं प्रतिदिन[४], और प्रति श्वास[५] अपराधी[३] हूं। हे अति कृपालो[७] ! मेरे दोष न देखकर मुझे शरण[६] में रखिये। मैंने जीवन के प्रथम[८] भाग से अंत तक बहुत[११] बुरे[१०] कर्म[९] किये हैं। इसलिए मैं अपराधी दास हूं, संसार-सिन्धु में डूब[१२] रहा हूँ। हे दोषों[१३] को ढाँकने वाले स्वामिन् ! मुझ दुःखी की पुकार सुनिये। मैंने भलाई को भूल[१४] कर बुराई की है[१५]। मैं बुराई में अनुरक्त बुरे[२३] काम करने वाला हूं, किन्तु आप तो अन्त तक अद्भुत[१७] क्षमा[१६] करने वाले हैं। आपकी आज्ञा में उपस्थित रहने से ही मुझे आनंद[१८] प्राप्त होता है। अत: हे आजीविका[१९] देने वाले पालक[२०] ! पवित्र ! अति कृपालो ! मेरे दोषों को क्षमा[२१] करके मुझे परोपकार-परायणता, आपका नाम-चिन्तन और हृदय में आपके दर्शनों[२३] की प्रबल इच्छा[२२] दीजिये।

३३५-उदीक्षण ताल

कौण आदमी कमींण[1] विचारा, किसको पूजै गरीब पियारा॥ टेक॥
मैं जन एक अनेक पसारा, भौजल भरिया अधिक अपारा॥ १ ॥
एक होइ तो कह समझाऊं, अनेक अरुझे क्यों सुरझाऊं॥ २ ॥
मैं हौं निबल सबल ये सारे, क्यों कर पूंजूं बहुत पसारे॥ ३ ॥
पीव पुकारूं समझत नांहीं, दादू देखु दशों दिशि जांहीं॥ ४ ॥

हे गरीबों के प्यारे प्रभु ! तुच्छ[१] विचार वाले मानव आपको छोड़कर कोई किसको और कोई किसको इष्ट मान कर पूजते हैं। इस प्रकार अनेक देवी-देवताओं की उपासना का फैलाव हो रहा है। आपका जन तो मैं एक हूं और संसार-समुद्र के विषय-जल से परिपूर्ण हृदय वाले प्राणी अति अपार हैं। यदि एक हो तो अपने विचार कह कर समझाऊं भी, किन्तु ये तो अनेक हैं और माया-जाल में उलझे हुये हैं, इन्हें कैसे सुलझाऊं ? दूसरे मैं तो धन, जन तनादि बल से रहित हूं और ये सब धन, जन, तनादि शक्तियों से युक्त हैं, तथा मुझे अपनी उपासना रूप फैलाव में लगाना चाहते हैं, किन्तु मैं आपको छोड़, इन बहुत फैलाव रूप देवी-देवादि को कैसे पूज सकता हूँ ? हे प्रियतम ! मैं इनको पुकार-पुकार कर कहता हूं कि एक ईश्वर की ही उपासना करो, किन्तु ये लोग समझते ही नहीं और मेरे देखते-देखते देवादि उपासना रूप दशों दिशाओं में ही जाते हैं। कृपया आप ही इनको मार्ग पर लावें तो ये आ सकते हैं, अन्यथा कठिन है। इसी प्रकार इसका अर्थ मन, बुद्धि इन्द्रियादि पर भी घट सकता है।

३३६-उपदेश चेतावनी। भंग ताल

जागहु जियरा काहे सोवै, सेव करीमा[1] तो सुख होवै॥ टेक॥
जातैं जीवन सो तैं विसारा, पच्छिम जाना पथ न सँवारा।
मैं मेरी कर बहुत भुलाना, अजहुं न चेतै दूर पयाना॥ १ ॥
सांई केरी सेवा नांहीं, फिर फिर डूबै दरिया मांहीं।
ओर न आवा, पार न पावा, झूठा जीवन बहुत भुलावा॥ २ ॥

मूल न राख्या लाह न लीया, कौड़ी बदले हीरा दीया।
फिर पछताना संबल नाहीं, हार चल्या क्यों पावै सांईं ॥ ३ ॥
अब सुख कारण फिर दुख पावै, अजहुं न चेतै क्यों डहकावै[२] ।
दादू कहै सीख सुन मेरी, कहु करीम[३] संभाल सवेरी ॥ ४ ॥

३३६-३३७ में उपदेश द्वारा सावधान कर रहे हैं—अरे जीव ! मोह निद्रा में क्यों सो रहा है ? शीघ्र जाग और कृपालु[१] ईश्वर की भक्ति कर, तब ही तुझे सुख मिलेगा। जिससे तेरा जीवन सुखमय हो सकता था, उस परब्रह्म के चिन्तन को तू भूल गया और मेरु-दंड होकर पीछा प्रभु के पास जाने योग सुषुम्ना-मार्ग को ठीक नहीं किया। मैं और मेरी कहते-कहते अत्यधिक भूल गया। तुझे सांसारिक भावनाओं से अति दूर जाना है किन्तु तू अब भी सावधान नहीं हो रहा है। प्रभु की भक्ति नहीं करता, पुन: २ संसार-सागर में ही डूब रहा है। इस सांसारिक विषयाशा का अन्त कभी न आयेगा। भोगों को भोग कर किसी ने भी इसका पार नहीं पाया। तू इस मिथ्या जीवन में बहुत ही भूल गया है। तू न तो मनुष्य जन्म का प्रभु-प्राप्ति रूप लाभ ही ले सका और न पुन: मनुष्य जन्म-प्राप्ति के हेतु शुभ कर्म रूप मूल धन की ही रक्षा कर सका। तूने विषय रूप कौड़ी के बदले में ही मनुष्य जन्म रूप हीरा दे दिया किन्तु फिर आगे तो तुझे पश्चात्ताप ही करना होगा, कारण, तेरे पास साधन रूप पाथेय तो है नहीं। तू तो अपने जीवन को हार चला है, प्रभु को तो कैसे प्राप्त कर सकेगा ? अरे ! तू इस समय के तुच्छ सुख के लिए अनर्थ कर रहा है किन्तु इसका फल फिर आगे अति दु:ख ही पायेगा। अब भी सावधान नहीं हो रहा है ? क्यों धोखे[२] में आ रहा है ? अरे मेरी हितकारणी शिक्षा सुनकर तो शीघ्र कृपालु[३] भगवान् का नाम मुख से उच्चारण कर और मन से स्मरण कर।

३३७-भंगताल

बार बार तन नहीं बावरे, काहे को बाद[१] गमावै रे।
बिनसत बार कछू नहिं लागै, बहुरि कहां को पावै रे ॥टेक॥
तेरे भाग बड़े भाव धर कीन्हा, क्यों कर चित्र बनावे रे।
सो तूं लेइ विषय में डारै, कंचन छार मिलावै रे ॥ १ ॥
तूं मत जानै बहुरि पाइये, अब कै जनि डहकावै रे ।
तीन लोक की पूंजी तेरे, बनिज बेगि सो आवै रे ॥ २ ॥
जब लग घट में श्वास बास है, तब लग काहे न धावै रे।
दादू तन धर नाम न लीन्हा, सो प्राणी पछतावे रे ॥ ३ ॥

अरे पागल ! यह मानव जन्म बारंबार नहीं मिलता, इसे विषयों में व्यर्थ[१] ही क्यों खो रहा है ? इस शरीर को नष्ट होने में कुछ भी देर नहीं लगती, फिर इसे कोई सहज ही कहां प्राप्त कर सकता है ? तेरे बड़े भाग्य और श्रेष्ठ भाव को हृदय में धारण करके ही प्रभु ने यह शरीर उत्पन्न किया है, नहीं तो ऐसा विचित्र शरीर वे प्रभु कैसे बनाते ? उसी शरीर को तू धारण करके विषयों में

डाल रहा है, यह तेरा कार्य ऐसा है, जैसे—भस्म में सुवर्ण मिलाना। तू बुद्धि में समझता होगा—यह फिर मिल जायेगा, सो यह फिर मिलने वाला नहीं है। अत: अब की बार विषयों के धोखे में मत आ। अरे तू शीघ्र भजन रूप व्यापार कर, उससे प्रभु प्राप्ति द्वारा तीनों लोकों का जो भी धन है वह तेरे पास आ जायगा। जब तक तेरे शरीर में श्वासों का निवास है, तब तक तू भजन ध्यान क्यों नहीं करता ? जो मनुष्य शरीर धारण करके भी प्रभु का नाम चिन्तन नहीं करता, वह प्राणी अन्त में पश्चात्ताप ही करता है।

३३८-ललित ताल

राम विसार्‍यो रे जगन्नाथ।
हीरा हार्‍यो देखत ही रे, कौड़ी कीन्ही हाथ ॥टेक॥
काचहुता कंचन कर जानैं, भूल्यो रे भ्रम पास ।
साँचे सौ पल परिचय नाहीं, कर काचे की आस ॥ १ ॥
विष ताको अमृत कर जानै, सो संग न आवै साथ।
सेमल के फूलन पर फूल्यो, चूकयो अब की घात॥ २ ॥
हरि भज रे मन सहज पिछानै, ये सुन साची बात।
दादू रे अब तैं कर लीजै, आयु घटै दिन जात ॥ ३ ॥

अरे ! तू जगन्नाथ राम को भूल गया और विषय-चिन्तन रूप कौड़ी अन्त:करण रूप हाथ में लेकर देखते-देखते मानव जन्म-हीरा खो दिया। भ्रमपाश में फँसकर तू सत्य को भूल गया तथा विषय-कांच को ही कंचन जानने लगा है। सत्य प्रभु का परिचय प्राप्त करने के लिए तो एक क्षण भी नहीं देता, निरंतर असत्य विषयों की ही आशा करता है। जो विषय-विष है, उसे अमृत समझकर उसके लिए अनर्थ करता है किन्तु वह न तेरे संग आता है और न साथ जाता है। जैसे सेमल वृक्ष के पुष्पों को गिद्धादिक मांस समझ, धोखे में आकर प्रसन्न होते हैं, किन्तु अन्त में पश्चात्ताप ही करते हैं। वैसे ही तू विषयों को देखकर फूल रहा है किन्तु याद रख अब के यह अच्छा दाँव चूक गया है। अरे ! फिर भी मेरी यह सत्य बात सुन कर हरि भजन करे, तो तेरा मन अनायास ही उस प्रभु को पहचान जायगा। यह भजन रूप कार्य अब से ही आरंभ कर दे क्योंकि प्रति दिन जाने के साथ-साथ ही तेरी आयु कम होती जा रही है।

३३९-मन। ललित ताल

मन चंचल मेरो कह्यो न मानै ,दशों दिशा दौरावै रे ।
आवत जात बार नहिं लागै, बहुत भांति बौरावै रे ॥टेक॥
बेर बेर बरजत या मन को, किंचित सीख न मानैं रे ।
ऐसे निकस जाइ या तन तैं, जैसे जीव न जाने रे ॥ १ ॥

कोटिक जतन करत या मन को, निश्चल निमष न होई रे ।
चंचल चपल चहूं दिशि भरमै, कहा करै जन कोई रे ॥ २ ॥
सदा सोच रहत घट भीतर, मन थिर कैसे कीजै रे ।
सहजैं सहज साधु की संगति, दादू हरि भज लीजै रे ॥ ३ ॥

मन का स्वभाव और उसके जय करने का साधारण साधन बता रहे हैं—चंचल मन हमारा कहा नहीं मानता और अपनी इच्छा पूर्ति के लिए हमें दशों दिशाओं में दौड़ाता है। उसको आते जाते कुछ भी देर नहीं लगती। यह हमें बहुत प्रकार से बहकाता है। इसे विषयों में जाने से बारंबार रोकते हैं किन्तु यह किंचित् मात्र भी शिक्षा नहीं मानता। इस शरीर से ऐसे ढंग से निकलता है जिस ढंग से जाने पर जीव इसके जाने को जान भी न सके। इस मन को स्थिर करने के लिए कोटि यत्न करते हैं, किन्तु यह एक निमेष मात्र भी निश्चल नहीं रहता। यह अति चंचल और चालाक है, दशों दिशाओं में भ्रमण करता है। इसको रोकने के लिए भक्त जन यत्न करें तो भी क्या करें ? अन्त:करण में सदा यही विचार रहता है कि मन को स्थिर कैसे करें ? अन्त में सद्गुरु और संत वचनों द्वारा यही निश्चय होता है कि संतों की संगति और भजन करते रहने से शनै: शनै: इसे स्थिर कर लिया जायगा।

३४०-माया उत्सव ताल

इन कामिनी घर घाले रे ।
प्रीति लगाइ प्राण सब सोखै, बिन पावक जिय जालै रे ॥ टेक ॥
अंग लगाइ सार सब लेवै, इन तैं कोई न बाचै रे ।
यहु संसार जीत सब लीया, मिलन न देइ सांचै रे ॥ १ ॥
हेत लगाइ सबै धन लेवै, बाकी कछू न राखे रे ।
माखन मांहिं शोध सब लेवै, छाछ छिया कर नाखै रे ॥ २ ॥
जे जन जान जुगति सौं त्यागैं, तिनको निज पद परसै रे ।
काल न खाइ, मरैं नहिं कबहूं, दादू तिनको दरशै रे ॥ ३ ॥

जो साधक कामिनी रूप माया का त्याग करते हैं, उन्ही को ब्रह्म प्राप्त होता है, यह कह रहे हैं—इस कामिनी रूप माया ने अनेक घर नष्ट किये हैं। प्रीति करके सब प्रकार प्राणों का शोषण करती है। बिना ही अग्नि के चिन्ता द्वारा हृदय जलाती है। शरीर से लगकर शरीर का सार सब बिन्दु अपहरण करती है। इससे कोई भी नहीं बचता। इसने यह सब संसार जीत लिया है। यह प्राणी को सत्य ब्रह्म से नहीं मिलने देती। स्नेह करके सब धन ले लेती हैं। शेष कुछ भी नहीं छोड़ती। शरीर के भीतर जो वीर्य रूप मक्खन है उसे खोज कर सारा अपहरण करती है, फिर शरीर को छाछवत् निस्सार जान कर त्याग देती है। जो संतजन इसको इस प्रकार जान के, मन निरुद्ध करने की युक्ति अभ्यास-वैराग्य द्वारा इसे त्यागते हैं उनको काल नहीं खाता, वे कभी भी नहीं

मरते। उन्हें स्वस्वरूप स्थिति प्रत्यक्ष दिखाई देती है और उन्हीं को ब्रह्म स्वरूप निज पद की प्राप्ति होती है।

३४१-विश्वास। उत्सव ताल

जनि[1] सत छाड़ै बावरे, पूरक है पूरा।
सिरजे की सब चिन्त है, देबे को सूरा॥ टेक॥
गर्भवास जिन राखिया, पावक तैं न्यारा।
युक्ति यत्न कर सींचिया, दे प्राण अधारा॥ १॥
कुंज[2] कहां धर संचरै, तहां को रखवारा।
हिमहर[3] तैं जिन राखिया, सो खसम हमारा॥ २॥
जल थल जीव जिते रहैं, सो सब को पूरे।
संपट शिला में देत है, काहे नर झूरै[4]॥ ३॥
जिन यहु भार उठाइया, निरवाहै सोई।
दादू छिन न बिसारिये, तातैं जीवन होई॥ ४॥

३४१-३४२ में भगवद् विश्वास पूर्वक भजन करने की प्रेरणा कर रहे हैं—हे पागल! सत्य स्वरूप प्रभु का भजन मत[1] छोड़, वे पूर्ण प्रभु सबकी इच्छा पूर्ण करने वाले हैं। उनने तुझे उत्पन्न किया है, इससे उनको तेरे भरण-पोषण की सारी चिन्ता है और वे तुझे देने में सदा वीर रहते हैं। गर्भवास में जिन्होंने जठराग्नि के पास रहने पर भी उसकी तप्त से तुझे अलग रखकर युक्ति पूर्वक शीतलता सेंचन करते हुये माता के खानपानादि से प्राणों का आधार भोजन दिया। देख, क्रौंच[2] पक्षी कहां अंडा धरता है और कहां संचार करता है, वहां हिमालय[3] में प्रभु को छोड़ कर उसका रक्षक कौन है? हिमालय के बर्फ में गलने से बचाकर क्रौंच के अंडों की रक्षा करते आ रहे हैं वे ही हमारे स्वामी हैं। जल, स्थल और नभ में जितने भी जीव हैं, उन सबका वे भरण-पोषण करते हैं। अरे! तू नर होकर भी क्यों दुःखी[4] हो रहा है? वे प्रभु तो शिला के बीच, जहां पहुंचाने का कोई मार्ग ही नहीं, वहां भी शक्कर खाने वाले कीट को शक्कर पहुंचा देते हैं। जिन प्रभु ने यह सृष्टि रचना का भार अपने ऊपर लिया है, वे ही निर्वाह करेंगे। उन प्रभु को एक क्षण भी मत भूल, इसी से तेरा जीवन सार्थक होगा।

३४२-गज ताल

सोई राम सँभाल जियरा, प्राण पिंड जिन दीन्हा रे।
अम्बर आप उपावनहारा, मांहिं चित्र जिन कीन्हा रे॥ टेक॥
चंद सूर जिन किये चिराका[4], चरणों बिना चलावै रे।
इक शीतल इक ताता डोलै, अनंत कला दिखलावै रे॥ १॥

धरती धरनि वरण बहु वाणी, रचिले सप्त समंदा रे ।
जल थल जीव सँभालनहारा, पूर रह्या सब संगा रे ॥ २ ॥
प्रकट पवन पानी जिन कीन्हा, वरषावै बहु धारा रे ।
अठारह भार वृक्ष बहुविधि के, सबका सींचनहारा रे ॥ ३ ॥
पंच तत्त्व जिन किये पसारा, सब कर देखन लागा रे ।
निश्चल राम जपो मेरे जियरा, दादू तातैं जागा रे ॥ ४ ॥

हे मन ! जिनने शरीर रच कर उसमें प्राण रख दिया है, उन्हीं राम का स्मरण कर। जो स्वयं ही आकाश को उत्पन्न करने वाले हैं और जिन्होंने इस आकाश में कितनी ही विचित्रताएं उत्पन्न की हैं। चन्द्रमा और सूर्य दो दीपक बनाये हैं। उन दोनों गोलाकार ज्योतियों के पैर नहीं हैं तो भी रात-दिन बिना ही पैरों उनको चलाते हैं। एक शीतल रह कर शीतल किरण और दूसरा उष्ण रहकर उष्ण किरण वरसता हुआ घूम रहा है और भी तारक बिजली आदि अनन्त कला आकाश में दिखाते हैं। बहुत रंगों को धारण करने वाली पृथ्वी जिन्होंने बनाई हैं, सप्त समुद्र रचे हैं, जलचर तथा स्थल चरादि सभी जीवों की सँभाल करने वाले हैं और सबमें परिपूर्ण होने से सब के साथ हैं, रूप रहित वायु को उत्पन्न करके प्रकट कर रक्खा है, जल को उत्पन्न करके बहुत धाराओं के रूप में वरसाते हैं, बहुत प्रकार के अठारह भार वृक्षों को रचकर उन सबको सींचने वाले हैं। इस प्रकार पंच तत्त्वों को रच के इनके द्वारा संपूर्ण संसार को फैलाकर साक्षीभाव से सबको देख रहे हैं। हे मेरे मन ! उन्हीं निश्चल राम का नाम जप, कारण, मोह-निद्रा से जो भी जगा है, वह नाम जप द्वारा ही जगा है।

३४३-परिचय। गज ताल

जब मैं रहते की रह जानी।
काल काया के निकट न आवै, पावत है सुख प्राणी ॥टेक॥
शोक संताप नैन नहिं देखूं, राग द्वेष नहिं आवै ।
जागत है जासौं रुचि मेरी, स्वप्नैं सोइ दिखावै ॥ १ ॥
भरम कर्म मोह नहिं ममता, वाद विवाद न जानूं ।
मोहन सौं मेरी बन आई, रसना सोई बखानूं ॥ २ ॥
निश वासर मोहन तन मेरे, चरण कवल मन मानै ।
सोई निधि निरख देख सचु पाऊं, दादू और न जानैं ॥ ३ ॥

३४३-३४४ में साक्षात्कार से होने वाला लाभ बता रहे हैं—जब से मैंने निश्चल परब्रह्म-प्राप्ति का हेतु रहस्यमय अभेद ज्ञान रूप मार्ग समझा है, तब से काम क्रोधादि रूप काल शरीर के पास भी नहीं आता और जीवात्मा सुख पा रहा है। शोक, जन्य संताप तो मैं ज्ञान-नेत्रों से देखता ही नहीं। राग-द्वेषादि भी हृदय में नहीं आते। जाग्रत अवस्था में जिस सत्य स्वरूप में मेरी प्रीति है,

स्वप्न में भी मुझे परमात्मा वही स्वरूप दिखाते रहते हैं। भ्रम द्वारा नाना कर्म करना रूप कर्त्तव्य मेरा समाप्त हो गया है। मोह और ममता मुझमें नहीं रही। वाद विवाद करना तो मैं अब जानता ही नहीं। विश्व-विमोहन भगवान् से मेरी प्रीति अब अच्छी प्रकार हो गई है। इसलिए वाणी से उसी का नाम और यश बोलता हूं, मेरे शरीर के हृदय-प्रदेश में रात्रि-दिन विश्व-विमोहन भगवान् विशेष रूप से विराजते हैं। उनके चरण-कमलों में ही मेरा मन संतोष मानता है। मैं उन परमात्मा रूप परम निधि को विचारपूर्वक देखकर परमानन्द पा रहा हूं, अन्य किसी को भी उनके समान नहीं जानता।

३४४-राज मृगांक ताल

जब मैं साचे की सुधि पाई।
तब तैं अंग और नहिं आवै, देखत हूं सुखदाई ॥टेक॥
ता दिन तैं तन ताप न व्यापै, सुख दुख संग न जाऊं ।
पावन पीव परस पद लीन्हा, आनंद भर गुन गाऊं ॥ १ ॥
सब सौं संग नहीं पुनि मेरे, अरस परस कुछ नांहीं ।
एक अनन्त सोई सँग मेरे, निरखत हूं निज मांहीं ॥ २ ॥
तन मन मांहिं शोध सो लीन्हा, निरखत हूं निज सारा ।
सोई संग सबै सुखदाई, दादू भाग्य हमारा ॥ ३ ॥

जब से मैंने सत्य ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त किया है तब से मेरे अन्त:करण में उनसे भिन्न विचार नहीं आते। निरंतर ज्ञान-नेत्रों से उन सुखप्रद प्रभु को ही देखता हूं। जिस दिन से उनको देखने लगा हूं, उस दिन से शरीर को भेद-ज्ञान जन्य वियोग व्यथा नहीं होती। वस्तु संयोग-वियोग जन्य सुख दु:ख के साथ मैं नहीं जाता अर्थात् वे मुझे नहीं होते। पवित्र प्रियतम के पद-कमलों का स्पर्श कर लिया है, अत: आनंद में निमग्न हो इच्छा भर कर उनके गुण-गान करता हूं। शरीर दृष्टि से तो शिष्यादि सब संबंधी दीख रहे हैं फिर भी आत्म स्वरूप में कुछ भी सम्बन्ध नहीं बनता, मेरा आत्मा तो ब्रह्म से अरस-परस मिली हुई है, आत्मा-परमात्मा में कुछ भी भेद नहीं है। जो अद्वैत, अनन्त ब्रह्म है, वही अभेद रूप से मेरे साथ है। उसको मैं अपने भीतर ही ज्ञान-नेत्रों द्वारा देखता हूं। मैंने वह आत्म स्वरूप ब्रह्म विचार द्वारा खोज कर तन-मन में ही प्राप्त किया है और उस विश्व के सार स्वरूप निजात्मा ब्रह्म को ही सर्वत्र देखता हूं। वह सुखप्रद ब्रह्म है तो सभी के साथ, किन्तु हमारा अच्छा भाग्य होने से हमें दीखता है, अन्य अज्ञानियों को अज्ञान के कारण नहीं दीखता।

३४५-साँच निदान। राज मृगांक ताल

हरि बिन निश्चल कहीं न देखूं, तीन लोक फिरि शोधा रे ।
जे दीसै सो विनश जायगा, ऐसा गुरु परमोधा रे ॥टेक॥
धरती गगन पवन अरु पानी, चंद सूर थिर नांहीं रे ।
रैनि दिवस रहत नहिं दीसै, एक रहै कलि मांहीं रे ॥ १ ॥

पीर पैगम्बर शेख मुशायख[१], शिव विरंचि सब देवा रे।
कलि आया सो कोइ न रहसी, रहसी अलख अभेवा रे ॥ २ ॥
सवा लाख मेरु गिरि पर्वत, समंद न रहसी थीरा रे।
नदी निवान कछू नहिं दीसै, रहसी अकल शरीरा रे ॥ ३ ॥
अविनाशी वह एक रहेगा, जिन यहु सब कुछ कीन्हा रे।
दादू जाता सब जग देखूं, एक रहत सो चीन्हा रे ॥ ४ ॥

संसार का कारण ब्रह्म ही सत्य है, यह कह रहे हैं—तीनों लोकों में फिर कर खोजा है किन्तु कहीं भी हरि बिना अन्य कोई निश्चल नहीं देखा। जो दीखता है वह सब नष्ट हो जायेगा, ऐसा गुरुदेव ने ज्ञानोपदेश द्वारा समझाया है। पृथ्वी, आकाश, वायु, जल, चन्द्र और सूर्य स्थिर नहीं रहेंगे। रात्रि दिन भी स्थिर रहते हुये नहीं दिखाई देते, स्थिर तो इस संसार में एक ब्रह्म ही रहता है। पीर, पैगम्बर, शेख, मुल्ला आदि धर्म-के-ज्ञाता;[१] शिव, ब्रह्मादि सभी देवता जो उत्पन्न होकर संसार में आये हैं; उनमें से कोई भी स्थिर नहीं रहेगा। अलख, अद्वैत ब्रह्म ही स्थिर रहेगा। मेरु, गिरि, पर्वतादि भेदों वाले सवा लक्ष अचल भी निश्चल नहीं रहेंगे। समुद्र भी स्थिर नहीं रहेंगे। नदी, तालाबादि जलाशय कुछ भी स्थिर नहीं दीखते। जिसका शरीर (स्वरूप) कला विभाग से रहित है, वही ब्रह्म स्थिर रहेगा। जिनने यह दिखाई देने वाला सब कुछ प्रपंच रचा है, वे एक अविनाशी ही स्थिर रहेंगे और तो सभी जगत् को जाते हुये देख रहा हूँ। मैंने उसी स्थिर रहने वाले अद्वैत ब्रह्म को निजात्मा स्वरूप से पहचान लिया है।

३४६-पतिव्रता। राजविद्याधर ताल

मूल सींच बधै ज्यों बेला, सो तत तरुवर रहै अकेला ॥टेक॥
देवी देखत फिरै ज्यों भूले, खाय हलाहल विष को फूले ।
सुख को चाहै पड़ै गल पासी, देखत हीरा हाथ तैं जासी ॥ १ ॥
केई पूजा रच ध्यान लगावैं, देवल देखैं खबर न पावें।
तोरैं पाती जुगति न जानी, इहिं भ्रम भूल रहे अभिमानी ॥ २ ॥
तीर्थ व्रत न पूजैं आसा, वन खंड जांहिं रहैं उदासा ।
यूं तप कर कर देह जलावैं, भरमत डोलैं जन्म गवावैं ॥ ३ ॥
सतगुरु मिलै न संशय जाई, ये बन्धन सब देइ छुड़ाई।
तब दादू परम गति पावै, सो निज मूरति माहिं लखावै ॥ ४ ॥

संत रूप पतिव्रता परब्रह्म पति को छोड़ अन्य भ्रम में नहीं पड़ती, तभी परमगति रूप पति को प्राप्त करती है, यह कह रहे हैं—जैसे वृक्ष, बेलि आदि के मूल को सींचा जाय तब वृक्ष, बेलि के पत्ते अपने आप ही बढ़ते हैं और फिर गिर जाते हैं, मूल ही रहता है, वैसे ही सबके मूल तत्त्व परब्रह्म की उपासना करने से सबकी उपासना हो जाती है। देवी-देवादि पत्तों के समान विनाशी हैं, अद्वैत

ब्रह्म ही स्थिर रहते हैं। जैसे कोई हलाहल विष खाकर मृत्यु को भूला हुआ फूला फिरता हो वैसे ही देवी के उपासक देवी के दर्शन करके तथा मांस-मदिरादि अभक्ष्य-भक्षण, अपेय-पान करके उनके परिणाम में होने वाले दुःख को भूल कर फूले फिरते हैं। वे चाहते तो सुख को हैं किन्तु अन्त में उनके गले में यम-पाश ही पड़ता है। ऐसे लोगों का मानव-जन्म-हीरा देखते-देखते ही हाथ से चला जायगा। कितने ही अन्य देवताओं की पूजा करके ध्यान करते हैं, देव-मंदिर में जाकर देवता का दर्शन करते हैं किन्तु वे अपनी आत्मा स्वरूप प्रभु का कुछ भी ज्ञान प्राप्त नहीं करते। अभिमानी होने के कारण संतों के पास जाकर प्रभु-उपासना की युक्ति न जानने से अति मात्रा में तुलसी, विल्व पत्रादि तोड़ते हैं और इन पत्रों के चढ़ाने से ही प्रभु मिल जायेंगे इस भ्रम से आन्तर साधन भूल रहे हैं। ग्राम से विरक्त हो वन के भयंकर भाग में जाकर रहने से, तीर्थ-व्रत करने से, प्राणी की आशा पूर्ण नहीं होती। इस प्रकार तपस्या करके तथा पंच धूनी ताप कर शरीर को जलाते हैं। भ्रमवश इधर-उधर घूमते हुये अपने मानव-जन्म को खो देते हैं। उन्हें जब तक सद्गुरु न मिलें तब तक उनका संशय दूर नहीं होता। सद्गुरु मिल जायं तब तो ये उक्त सभी बन्धन रूप कर्म छुड़ा दें। जो प्रभु पतिव्रत से युक्त, प्रभु उपासना करता है, उसी संत रूप पतिव्रता को प्रभु अपना स्वरूप उसके हृदय में दिखाता है। वह जब प्रभु का साक्षात्कार कर लेता है, तब प्रभु से अभेद स्थिति रूप परमगति प्राप्त करता है।

३४७-साधु-परीक्षा। दादरा

सोई साधु शिरोमणि, गोविन्द गुण गावै।
राम भजै विषया तजै, आपा न जनावै ॥ टेक॥
मिथ्या मुख बोलै नहीं, पर निन्दा नांहीं।
औगुण छाड़े गुण गहै, मन हरि पद माहीं ॥ १ ॥
निर्वैरी सब आतमा, पर आतम जानैं।
सुखदाई समता गहै, आपा नहिं आनैं ॥ २ ॥
आपा पर अन्तर नहीं, निर्मल निज सारा।
सतवादी साचा कहै, लै लीन विचारा ॥ ३ ॥
निर्भय भज न्यारा रहै, काहू लिप्त न होई।
दादू सब संसार में, ऐसा जन कोई ॥ ४ ॥

लक्षणों द्वारा संत की परीक्षा करना बता रहे हैं—जो वाणी से गोविन्द गुण-गान करता है, विषय-राग को त्याग कर निरन्तर राम-भजन करता है, फिर भी अहंकार वश अपने भजनादि साधन प्रतिष्ठा के लिये अन्यों को नहीं बताता। मुख से मिथ्या नहीं बोलता, दूसरों की निन्दा नहीं करता, अवगुणों को त्याग कर गुण ही ग्रहण करता है, मन को हरि के स्वरूप में रखता है, सभी जीवात्माओं से निर्वैर रहता है, अन्यों को भी अपनी आत्मा ही जानता है, सबको सुख प्रदायिनी समता ग्रहण करता है, कभी भी हृदय में अभिमान नहीं आने देता, अपने पराये का भेद नहीं

रखता, सबको विश्व के सार, निर्मल, निजात्म ब्रह्म रूप ही देखता है। सत्यवादी होता है, सत्य ब्रह्म सम्बन्धी ही वचन कहता है और विचार द्वारा वृत्ति ब्रह्म में ही लीन रखता है, निर्भयता पूर्वक ब्रह्म का भजन करता हुआ सबसे अलग रहता है, किसी में लिपायमान नहीं होता। वही शिरोमणि संत है किन्तु ऐसा संत-मानव इस सारे संसार में कोई विरला ही मिलता है।

इसी पद को सुन कर ठट्ठा नगर से वृद्धामाता आई थी। प्रसंग कथा दृ० सु० सि० त० ११-१३२ देखो।

३४८-परिचय परीक्षा। यति ताल

राम मिल्या यूं जानिये, जाको काल न व्यापै।
जरा मरण ताको नहीं, अरु मेटै आपै ॥ टेक॥
सुख दुख कबहूँ न ऊपजै, अरु सब जग सूझै।
करम को बाँधै नहीं, सब आगम बूझै ॥ १ ॥
जागत ह्वै सो जन रहै, अरु जुग जुग जागै।
अंतरजामी सौं रहै, कुछ काई न लागै ॥ २ ॥
काम दहै सहजैं रहै, अरु शून्य विचारै।
दादू सो सब की लहै, अरु कबहुँ न हारै ॥ ३ ॥

साक्षात्कार किये हुये व्यक्ति की लक्षणों द्वारा परीक्षा करना बता रहे हैं—निरंजन राम के साक्षात्कार किये हुये व्यक्ति को इस प्रकार लक्षणों द्वारा जानना चाहिये-जिसको राम का दर्शन हो जाता है, उसे यम का भय नहीं होता। वृद्धावस्था तथा मरणे का भय भी नहीं होता। उसका सभी प्रकार का सांसारिक अभिमान नष्ट हो जाता है। उसके मन में संयोग-वियोग जन्य सुख दुःख उत्पन्न नहीं होते। सब संसार उसे मायिक-विकार रूप दीखता है। उसे कोई भी कर्म-बंधन में नहीं डालता, कारण, वह सब शास्त्र के प्रतिपाद्य परब्रह्म को अपना स्वरूप समझता है। यह ज्ञानी भक्त मोह निद्रा से जाग्रत होकर रहता है और अज्ञान निवृत्त हो जाने से प्रति युग में जागता ही रहता है। अन्तर्यामी ब्रह्म से अभेद होकर रहता है, उसके कुछ भी विकार नहीं लगते। वस्तु विचार द्वारा काम को जला कर शून्य स्वरूप ब्रह्म-विचार करते हुये अनायास संसार में रहता है। सबकी वाणी अपने विचारानुकूल ग्रहण करता है किन्तु किसी के विचारों से हार नहीं मानता, निज निष्ठा में ही आरूढ़ रहता है।

३४९-समता ज्ञान। त्रिताल

इन बातनि मेरा मन मानैं।
दुतिया दोइ नहीं उर अंतर, एक एक कर पीव को जानैं ॥ टेक ॥
पूर्ण ब्रह्म देखै सबहिन में, भ्रम न जीव काहू तैं आनै।
होइ दयालु दीनता सब सौं, अरि पांचनि को करै किसानै[1] ॥ १ ॥

आपा पर सम सब तत चीन्हैं, हरी भजै केवल जस गानैं।
दादू सोई सहज घर आनैं, संकट सबै जीव के भानैं ॥ २ ॥

समता पूर्वक ज्ञान की विशेषता बता रहे हैं-इन निम्नांकित बातों से ही हमारा मन संतोष मानता है-द्वैत भाव द्वारा हृदय में ''मैं तूं'' ये दो ज्ञान नहीं रहने चाहिये, अद्वैत भाव से एक ब्रह्म दृष्टि द्वारा प्रियतम ब्रह्म को जानना चाहिये। सभी में पूर्ण ब्रह्म को देखे, भ्रमवश किसी भी जीव से भेद व्यवहार न करे। दयालु होकर दीनता पूर्वक सबसे वचनादि व्यवहार करे। काम क्रोधादिक शत्रुओं को तथा पंच ज्ञानेन्द्रियों की विषयासक्ति को उखाड़ फेंके। अपने पराये को समान जानकर सब में ब्रह्म तत्व को ही पहचाने। हरि भजन करते हुये एक मात्र हरि का यश गान करे। कारण, उक्त समत्व-ज्ञान युक्त जो संत होता है, वही जीव के सब संकटों को नष्ट करके जीव को सहज निर्द्वन्द्व ब्रह्म रूप घर में लाकर स्थिर करता है।

३५०-परिचय। एक ताल

ये मन मेरा पीव सौं, औरनि सौं नांहीं ।
पीव बिन पलहि न जीव सौं, येह उपजै मांहीं ॥ टेक॥
देख देख सुख जीव सौं, तहँ धूप न छाहीं ।
अजरावर मन बंधिया, तातैं अनत न जाहीं ॥ १ ॥
तेज पुंज फल पाइया, तहां रस खाहीं ।
अमर बेलि अमृत झरै, पीव पीव अघाहीं ॥ २ ॥
प्राणपती तहँ पाइया, जहँ उलट समाई ।
दादू पीव परचा भया, हियरे हित लाई ॥ ३ ॥

३५०-३५१ में अपने साक्षात्कार की स्थिति बता रहे हैं-यह मेरा मन प्रियतम प्रभु के चिन्तन से ही प्रसन्न रहता है, अन्य किसी से भी प्रसन्न नहीं होता। मेरे हृदय में यही भावना उत्पन्न होती है-प्रियतम बिना एक क्षण भी जीवित न रह सकूंगा। जहां इन्द्रिय ज्ञान रूप धूप और अज्ञान रूप छाया नहीं होती, उसी समाधि रूप स्थान में प्रभु को देख २ कर सुख से जीवित रहूंगा। मेरा मन देवताओं से भी अति श्रेष्ठ प्रभु स्वरूप में ही बँध रहा है, उसे छोड़कर अन्य स्थान को नहीं जाता। उसने अपने साधन का फल प्रकाश-राशि प्रभु का दर्शन प्राप्त कर लिया है और सहजावस्था में आनन्द रस का उपभोग करता है। आत्मा रूप अमर बेलि के साक्षात्कार से आनन्दामृत सदा ही टपकता रहता है और हम वृत्ति द्वारा उसका बारम्बार पान करके तृप्त होते हैं। वृत्ति विषयों से बदल के भीतर जाकर जहां लीन हो जाती है, वहां ही प्रभु प्राप्त होते हैं। हमें उस प्रभु का साक्षात्कार हो गया है और अब हम निरन्तर विशेषरूप से हृदय में स्थित उन प्रभु से ही स्नेह करते हैं।

३५१-त्रिताल

आज प्रभात मिले हरि लाल।
दिल की व्यथा पीड़ सब भागी, मिट्यो जीव को साल[१] ॥ टेक॥
देखत नैन संतोष भयो है, इहै तुम्हारो ख्याल ॥ १ ॥
दादू जन सौं हिल-मिल रहिबो, तुम हो दीनदयाल ॥ २ ॥

आज प्रात:काल ही प्रियतम हरि मिल गये, अब हमारे मन की वियोग जन्य सभी व्यथा दूर हो गई। जीवात्मा का जन्मादि दु:ख[१] मिट गया। उनके दर्शन करते ही नेत्रों को संतोष हो गया। हे प्रभो ! अब तो इस हृदय में आप का ही ध्यान रहेगा। आप तो दीन दयालु हैं आप को मुझ भक्त से घनिष्ठ सम्बन्ध रख कर ही रहना चाहिये।

३५२-(पंजाबी) निज स्थान निर्णय उपदेश। एक ताल

अर्श[१] इलाही[२] रब्बदा[३], इथांई[४] रहमान[५] वे ।
मक्का बिचि मुसाफरीला[६], मदीना मुलतान वे ॥ टेक॥
नबी[८] नाल[९] पैगम्बरे, पीरों हंदा[१०] थान वे ।
जन तहुँ ले हिकसा[११] ला[१२], इथां बहिश्त[१३] मुकाम वे ॥ १ ॥
इथां आब[१४] जमजमा[१५], इथांई सुबहान[१६] वे ।
तख्त रबानी[१७] कंगुरेला[१८], इथांई सुलतान वे ॥ २ ॥
सब इथां अंदर आव वे, इथाई ईमान[१९] वे ।
दादू आप[७] वंजाइ[२०] बेला[२१], इथांई आसान वे ॥ ३ ॥

३५२-३५३ में निर्णय करके संपूर्ण तीर्थादि रूप अपने आदि स्थान ब्रह्म की स्थिति का उपदेश कर रहे हैं—जगत्-पालक[३] दयालु[५] ईश्वर[२] के रहने का सबसे ऊंचा स्वर्ग[१] (सहस्रारचक्र) यहां[४] शरीर में ही है। यात्रा[६] करने वालों के लिए, मक्का, मदीना और मुलतान, ये ईश्वर-दूतों[८] पैगम्बरों और पीरों के[१०] स्थान भी अपने साथ[९] (नाभि, हृदय, त्रिकुटी) शरीर के बीच में ही हैं। हे जन ! वृत्ति को संसार दशा से ऊंची लेकर उक्त शरीरस्थ स्थानों में ही स्थिर करके एक[११] परब्रह्म से ही लगा[१२]। यही ब्रह्माकार वृत्ति जन्य जो सुख है, वही स्वर्ग[१३] स्थान है। अरब में स्थित मक्का नगर के काबे का जो ''जम जम''* नामक कूप[१५] (मुसलमानों का पवित्र तीर्थ) है, उसका पवित्र[१६] जल[१४] भी शरीर में ही (तालु मूल से टपक रहा) है। छोटे-छोटे शिखरों[१८] जगत-पालक[१७] ईश्वर का सिंहासन (अष्टदल कमल) भी शरीर में ही है। शरीर में ही बादशाह (मन) है। सब कुछ यहां शरीर में ही है। तुम सब प्रकार के अंहकार[७] का त्याग[२०] करो, यही समय[२१] अहंकार के त्यागने का है, फिर वृत्ति को अन्तर्मुख करके भीतर आओ शांति प्रदान करने वाला (सत्य ईश्वर रूप) धर्म[१९]

---

* मुहम्मद के वंश में मुहम्मद से १८ पीढ़ी पहले शिशु इस्मायल ने जन्म लेने के बाद माता की प्यास मिटाने के लिए एड़ियां घिसकर भूमि से जल निकाल लिया था।

शरीर में ही है जिसे प्राप्त करना इस मानव शरीर में ही सुगम है। इस पद से निजामजी को उपदेश किया था।

३५३-(पंजाबी) क्रीड़ा तालश्वंडनि

आसण रमदा[१] रामदा[२], हरि इथां[३] अविगत आप वे।
काया काशी वंजणां[४], हरि इथैं पूजा जाप वे ॥ टेक॥
महादेव मुनि देवते, सिद्धैंदा विश्राम वे।
स्वर्ग सुखासण हुलणें[५], हरि इथैं आत्मराम वे ॥ १ ॥
अमीं सरोवर आतमा, इथांई आधार वे।
अमर थान अविगत रहै, हरि इथैं सिरजनहार वे ॥ २ ॥
सब कुछ इथैं आव वे, इथां परमानन्द वे।
दादू आपा दूर कर, हरि इथांईं आनन्द वे ॥ ३ ॥

इति राग विलावल समाप्त: ॥ २१ ॥ पद २० ॥

सब में रमने[१] वाले राम[२] का सिंहासन (अष्टदल कमल) शरीर[३] में ही है और वे मन इन्द्रियों के अविषय स्वयं हरि भी आत्म रूप से शरीर में हैं। काया में ही (सहस्रार चक्र रूप) काशी में जाना[४] होता है और शरीर के हृदय देश में ही हरि की मानस-पूजा तथा जाप होता है। महादेव, मुनिगण, देवता और सिद्धों के विश्राम स्थान-सहस्रार चक्र, विचार, इन्द्रिय और ध्यान भी शरीर में ही हैं। पाप-ताप हरने वाले आत्म स्वरूप राम के दर्शन जन्य जो आनन्द[५] प्राप्त होता है वही शरीर में स्वर्ग का सुखासन है। सबका आधार अमृत-सरोवर आत्मा भी शरीर में ही पाया जाता है। जिसमें मन इन्द्रियों के अविषय, सृष्टि कर्ता हरि रहते हैं और प्राप्त होते हैं, वह समाधि स्थान भी शरीर में ही है। सब कुछ शरीर में ही है, शरीर में ही परमानन्द प्राप्त होता है। तुम सब प्रकार के अहंकार को दूर करके अन्तर्मुख वृत्ति द्वारा भीतर आओ तो आनन्द स्वरूप हरि प्राप्त होंगे।

इस पद से नागरजी को उपदेश दिया था। नागर निजामजी की प्रसंग कथा दृष्टांत-सुधा-सिन्धु तरंग ३-२४ में देखो। ३५२-३५३ पदों का विषय विस्तार से काया बेली ग्रंथ है।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग विलावल समाप्त: ॥ २१ ॥

अथ राग सूहा २२

(गायन समय दिन ९ से १२)

३५४-विनती। एकताल

तुम बिच अंतर जनि[१] परै माधव, भावै तन धन लेहु।
भावै स्वर्ग नरक रसातल, भावै करवत देहु ॥ टेक॥
भावै विपति देहु दुख संकट, भावै संपति सुख शरीर।
भावै घर वन राव रंक कर, भावै सागर तीर, माधवे ॥ १ ॥

शरीर में ही है जिसे प्राप्त करना इस मानव शरीर में ही सुगम है। इस पद से निजामजी को उपदेश किया था।

३५३-(पंजाबी) क्रीड़ा तालश्वंडनि

आसण रमदा[1] रामदा[2], हरि इथां[3] अविगत आप वे।
काया काशी वंजणां[4], हरि इथैं पूजा जाप वे ॥टेक॥
महादेव मुनि देवते, सिद्धैंदा विश्राम वे।
स्वर्ग सुखासण हुलणें[5], हरि इथैं आत्मराम वे ॥ १ ॥
अमीं सरोवर आतमा, इथांई आधार वे।
अमर थान अविगत रहै, हरि इथैं सिरजनहार वे ॥ २ ॥
सब कुछ इथैं आव वे, इथां परमानन्द वे।
दादू आपा दूर कर, हरि इथांईं आनन्द वे ॥ ३ ॥

इति राग विलावल समाप्तः ॥ २१ ॥ पद २० ॥

सब में रमने[1] वाले राम[2] का सिंहासन (अष्टदल कमल) शरीर[3] में ही है और वे मन इन्द्रियों के अविषय स्वयं हरि भी आत्म रूप से शरीर में हैं। काया में ही (सहस्रार चक्र रूप) काशी में जाना[4] होता है और शरीर के हृदय देश में ही हरि की मानस-पूजा तथा जाप होता है। महादेव, मुनिगण, देवता और सिद्धों के विश्राम स्थान-सहस्रार चक्र, विचार, इन्द्रिय और ध्यान भी शरीर में ही हैं। पाप-ताप हरने वाले आत्म स्वरूप राम के दर्शन जन्य जो आनन्द[5] प्राप्त होता है वही शरीर में स्वर्ग का सुखासन है। सबका आधार अमृत-सरोवर आत्मा भी शरीर में ही पाया जाता है। जिसमें मन इन्द्रियों के अविषय, सृष्टि कर्ता हरि रहते हैं और प्राप्त होते हैं, वह समाधि स्थान भी शरीर में ही है। सब कुछ शरीर में ही है, शरीर में ही परमानन्द प्राप्त होता है। तुम सब प्रकार के अहंकार को दूर करके अन्तर्मुख वृत्ति द्वारा भीतर आओ तो आनन्द स्वरूप हरि प्राप्त होंगे।

इस पद से नागरजी को उपदेश दिया था। नागर निजामजी की प्रसंग कथा दृष्टांत-सुधा-सिन्धु तरंग ३-२४ में देखो। ३५२-३५३ पदों का विषय विस्तार से काया बेली ग्रंथ है।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग विलावल समाप्तः ॥ २१ ॥

अथ राग सूहा २२

(गायन समय दिन ९ से १२)

३५४-विनती। एकताल

तुम बिच अंतर जनि[1] परै माधव, भावै तन धन लेहु।
भावै स्वर्ग नरक रसातल, भावै करवत देहु ॥टेक॥
भावै विपति देहु दुख संकट, भावै संपति सुख शरीर।
भावै घर वन राव रंक कर, भावै सागर तीर, माधवे ॥ १ ॥

भावै बन्ध मुक्त कर माधव, भावै त्रिभुवन सार।
भावै सकल दोष धर माधव, भावै सकल निवार, माधवे ॥ २ ॥
भावै धरणि गगन धर माधव, भावै शीतल सूर।
दादू निकट सदा संग माधव, तू जनि होवै दूर, माधवे ॥ ३ ॥

हे माधव ! चाहे आप हमारा तन धनादि सर्वस्व ले लें किन्तु आपके और मेरे बीच में कोई अन्तराय नहीं[१] पड़ना चाहिए, मुझे आपके दर्शन सदा होते रहने चाहिए। चाहे मुझे स्वर्ग, नरक या रसातल में भेज दें, शिर पर करवत चला दें, चाहे विपत्ति में डाल दें, शारीरिक दुःख दें, मानसिक संकट दें। चाहे संपत्ति और शारीरिक सुख दे, घर वा वन में रक्खें, राजा वा रंक कर दें। चाहे सागर तीर रक्खें, बन्धन में डाल दें, मुक्त कर दें, त्रिभुवन की सारी वस्तुयें प्रदान कर दें। चाहे सब दोष मुझ पर डाल दें, वा सम्पूर्ण दोष दूर कर दें। चाहे पृथ्वी में रखें वा आकाशा में धर दें। चाहे शीतल बना दें वा सूर्य समान उष्ण बना दें। हे माधव ! चाहे आप कुछ भी कर दें किन्तु सदा आप मेरे निकट रहते हुये मुझे अपने संग रखिये। कभी भी आप दूर न हों, यही मेरी विनय है।

३५५-परिचय। पंजाबी त्रिताल

अब हम राम सनेही पाया, आगम अनहद सों चित लाया ॥ टेक ॥
तन मन आतम ताको दीन्हा, तब हरि हम अपना कर लीन्हा ॥ १ ॥
वाणी विमल पंच परांनां, पहली शीश मिले भगवांनां ॥ २ ॥
जीवित जन्म सफल कर लीन्हां, पहली चेते तिन भल कीन्हां ॥ ३ ॥
अवसर आपा ठौर लगावा, दादू जीवित ले पहुँचावा ॥ ४ ॥

साक्षात्कार सम्बन्धी विचार प्रकट कर रहे हैं—अब हमने अनाहत शब्द श्रवण में चित्त लगाकर शास्त्र-प्रतिपाद्य अपने प्रेम-पात्र राम को प्राप्त कर लिया है। प्रथम हमने अपना तन मनादि सर्वस्व समर्पण किया है, तब उन हरि को हमने आत्म स्वरूप करके प्राप्त किया है। जिनने अपनी वाणी, पंच ज्ञानेन्द्रिय, मन और प्राणों को विमल करके पहले उन भगवान् को अपना सर्वस्व समर्पण किया है, उन्होंने जीवितावस्था में ही अपना जन्म सफल किया है। जो पहली अवस्था में ही सावधान हो गये हैं उन्होंने बहुत अच्छा किया है क्योंकि ठीक समय पर अपने जीवत्व अहंकार रूप शिर को भगवत् के समर्पण करके जीवितावस्था में ही विवेक द्वारा अपने आत्मा को असत्य से उठाकर सत्य परब्रह्म के स्वरूप में पहुँचा दिया है।

अथ काया बेली ग्रन्थ

३५६-पिंड ब्रह्मांड शोधन। पंजाबी त्रिताल

साचा सतगुरु राम मिलावै, सब कुछ काया मांहिं दिखावै ॥ टेक ॥
काया माँहीं सिरजनहार, काया माँहीं है ओंकार।
काया माँहीं है आकाश, काया माँहीं धरती पास ॥ १ ॥

काया मांहीं पवन प्रकाश,काया माँहीं नीर निवास ।
काया माँहीं शशिहर सूर, काया माँहीं बाजैं तूर॥ २ ॥
काया माँहीं तीनों देव, काया माँहीं अलख अभेव।
काया माँहीं चारों वेद, काया माँहीं पाया भेद॥ ३ ॥
काया माँहीं चारों खाणी, काया माँहीं चारों वाणी।
काया माँहीं उपजै आइ, काया माँहीं मर मर जाइ॥ ४ ॥
काया माँहीं जामैं मरै, काया माँहीं चौरासी फिरै।
काया माँहीं ले अवतार, काया माँहीं बारम्बार॥ ५ ॥
काया माँहीं रात दिन, उदय अस्त इकतार।
दादू पाया परम गुरु, कीया एकंकार॥ ६ ॥

३५६-३६३ में जो ब्रह्मांड में है वही काया में भी है यह दिखाते हुये पिंड ब्रह्मांड की एकता बता रहे हैं—**साचा सतगुरु राम मिलावै, सब कुछ काया मांहिं दिखावै** = गुरु के लक्षण जिनमें घटित हों, ऐसे सच्चे सद्‌गुरु शरीर के भीतर ही हृदय में निरंजन राम का दर्शन करा देते हैं और जो ब्रह्मांड में है, वह सब कुछ शरीर के भीतर ही दिखा देते हैं।**काया मांहीं सिरजनहार** = सृष्टि कर्ता ईश्वर व्यापक होने से शरीर में विद्यमान है।**काया मांहीं है ओंकार** = हृदय स्थान के अनाहत पद्म में ओंकार स्थित है। वहां जो 'हंस' ध्वनि होती है, वही ओंकार है। 'हंस' से उलटकर 'सोऽहं' होता है और 'सोऽहं' से सकार हकार निकल कर 'ओं' बनता है। **काया माँहीं है आकाश** = वैसे तो अवकाश रूप आकाश शरीर में प्रसिद्ध ही है और योगियों के मतानुसार कंठ स्थित विशुद्ध चक्र में आकाश का विशेष निवास है। उसमें अनन्त श्लोकादि विद्या स्थित रहती है, लोक में भी प्रसिद्ध है, इसे बहुत पाठ कंठस्थ हैं। **काया माँहीं धरती पास** = कार्य रूप से पृथ्वी स्थूल शरीर में प्रसिद्ध है, योगियों के मतानुसार पृथ्वी का विशेष निवास मूलाधार चक्र है तथा क्षमा रूप से मन के समीप रहती है।**काया माँहीं पवन प्रकाश** = शरीर में प्राण रूप से वायु प्रसिद्ध है, योगीजन मत से वायु का विशेष निवास अनाहत चक्र में है। प्राणायाम से पापादि को नष्ट करके ज्ञान प्रकाश का परंपरा हेतु है।**काया माँहीं नीर निवास** = शरीर में मूत्र, लारादि रूप से जल प्रसिद्ध है, योगियों के मतानुसार जल का विशेष स्थान स्वाधिष्ठान चक्र है। हृदय में प्रेम रूप से स्थित है। **काया माँहीं शशिहर सूर** = शरीर में वाम-दक्षिण नेत्र रूप से चन्द्र-सूर्य स्थित हैं, योगियों के मतानुसार इड़ा नाड़ी चन्द्र और पिंगला सूर्य रूप है। **काया माँहीं बाजै तूर** = शरीर में अनाहत ध्वनि रूप नगाड़ा और तुरही बाजे बजते हैं। जब मूलाधार चक्र में स्थित ब्रह्म-ग्रंथि का भली प्रकार भेदन होता है, तब हृदयावस्था में अनाहत ध्वनि आरंभ होती है।**काया माँहीं तीनौं देव** = नाभि स्थान पर ब्रह्मा, हृदय में विष्णु, मस्तक में सहस्रार चक्र में महादेव विराजते हैं।**काया मांहीं अलख अभेव** = मनेन्द्रियों का अविषय अद्वैत ब्रह्म व्यापक होने से शरीर के प्रत्येक अणु में स्थित है। **काया माँहीं चारों वेद** = योगियों के मतानुसार-नाभि स्थान में ऋग्, हृदय में यजु, कंठ में साम और मुख में अथर्वण कहा जाता है वा संत जन नाम रटन को ऋग्, जरणा को यजु,

सहन शक्ति को साम और अनुभव को अथर्वण कहते हैं, ये चारों शरीर में ही रहते हैं। **काया माँहीं पाया भेद** = शरीर में ही भेद ज्ञान मिलता है, शरीर रहित चेतन में भेद कहां है ? वा साधन द्वारा शरीर में ही ब्रह्मात्म एकता का रहस्य मिलता है। **काया माँहीं चारों खाणी** = चार प्रकार के जीवों की उत्पत्ति १ जरायुज (मनुष्य, चौपाये), २ अंडज (पक्षी, सर्पादि), ३ उद्भिज (वनस्पति) ४ स्वेदज (जूं, लीख) रूप चार खानियाँ भी शरीर में हैं। १ नाड़ी जरायुज, २ नेत्र अंडज ३ रोम उद्भिज ४ हड्डियाँ स्वेदज हैं, वा आत्मा, मन, प्रकृति, ज्ञान ये चार, आनंद, संकल्प, प्रवृत्ति, प्रकाश पूर्ण होने से खानि रूप हैं। **काया माँहीं चारो वाणी** = ब्रह्म वाणी-परा, देवताओं की पश्यन्ती, पशु-पक्षियों की मध्यमा, मनुष्यों के वैखरी। शरीर में इनके रूप स्थान, अवस्था और देवता इस प्रकार हैं—

नाम	रूप	स्थान	अवस्था	देवता
परा	बीज	मूलाधार	तुरीया	सोऽहं
पश्यन्ति	अँकुर	स्वाधिष्ठान	सुषुप्ति	ईश्वर
मध्यमा	पात	हृदय	स्वप्न	विष्णु
वैखरी	वृक्ष विस्तार	मुख	जाग्रत	ब्रह्मा

काया माँहीं उपजै आइ, काया माँहीं मर मर जाइ = श्रवण द्वारा संस्कार हृदय में आकर भावनायें उत्पन्न होती हैं और विरोधी विचार धाराओं से वे बारंबार मिथ्या निश्चय रूप मरण को प्राप्त होकर हृदय से निकल जाती हैं। **काया माँहीं जामैं मरै** = शरीर में मन के मनोरथ उत्पन्न और नष्ट होते रहते हैं। **काया माँहीं चौरासी फिरै** = विविध भावनाओं में मन का गमनागमन ही चौरासी में फिरना है। **काया माँहीं ले अवतार, काया मांहीं बारंबार** = जैसे धर्म स्थापना के लिए ब्रह्मांड में ईश्वर बारंबार नृसिंहादि अवतार लेते हैं, वैसे ही शरीर में मर्यादा स्थापन के लिए विवेकादि दिव्य गुण बारंबार प्रकट होते रहते हैं। **काया माँहीं रात दिन** = शरीर में अज्ञान पूर्ण व्यवहार वा स्वप्न, रात्रि हैं और ज्ञान युक्त व्यवहार वा जाग्रत अवस्था रूप दिन होते ही रहते हैं। **उदय अस्त इकतार** = व्यावहारिक ज्ञान के उत्पत्ति-नाश रूप उदय-अस्त लगातार होते ही रहते हैं। **दादू पाया परम गुरु, कीया एकंकार** = जब हमने परम गुरु ब्रह्म को उसी की कृपा से प्राप्त किया, तब शरीर में ही अद्वैत निष्ठा द्वारा संपूर्ण द्वैत का अद्वैत रूप में ही दर्शन किया।

३५७-त्रिताल

काया माँहीं खेल पसारा, काया माँहीं प्राण अधारा।
काया माँहीं अठारह भारा, काया माँहीं उपावनहारा॥ १ ॥
काया माँहीं सब बन राइ, काया माँहीं रहे घर छाइ।
काया माँहीं कंदलि[1] वास, काया माँहीं है कैलाश॥ २ ॥
काया माँहीं तरुवर छाया, काया माँहीं पंखी माया।
काया माँहीं आदि अनंत, काया माँहीं है भगवन्त ॥ ३ ॥

काया माँहीं त्रिभुवन राइ, काया माँहीं रहे समाइ ।
काया माँहीं चौदह भवन, काया माँहीं आवागवन ॥ ४ ॥
काया माँहीं सब ब्रह्मंड, काया माँही हैं नव खंड ।
काया माँहीं स्वर्ग पयाल[३], काया माँहीं आप दयाल ॥ ५ ॥
काया माँहीं लोक सब, दादू दिये दिखाइ ।
मनसा वाचा कर्मना, गुरु बिन लख्या न जाइ ॥ ६ ॥

काया मांहीं खेल पसारा = जैसे ब्रह्मांड में विविध लीलाओं के फैलाव हैं, वैसे ही काया में भी मन, बुद्धि,चित्त, अहंकार, इन्द्रियादि के विविध व्यवहार ही विविध लीलाओं के फैलाव हैं—नि:शंक निर्भय मनोवृत्ति ही राजा है, अन्य वृत्तियाँ प्रजा है, संतोष धन, आशा दरिद्रता है, दैवी गुण उत्तम जन हैं, आसुर गुण अधम जन हैं इत्यादि सभी विस्तार शरीर में हैं। **काया मांहीं प्राण अधारा** = जैसे ब्रह्मांड का आधार ईश्वर चेतन है वैसे ही काया में प्राणों का आधार जीव चेतन है। **काया मांहीं अठारह भारा** = जैसे ब्रह्मांड में अठारह भार वनस्पति हैं, वैसे ही शरीर में रोमावली ही अठारह भार वनस्पति हैं। बीस पंसेरी का माप एक भार कहलाता है। प्रत्येक वनस्पति का एक-एक पत्ता लेकर तोलने से अठारह भार (४५ मण) बोझ होता है, इसीलिए वनस्पतियों को अठारह भार कहते हैं। **काया मांहीं उपावनहारा** = जैसे ब्रह्मांड का उत्पन्न करने वाला ईश्वर ब्रह्मांड में है, वैसे ही स्वप्नादि रूप जीव सृष्टि का उत्पन्न करने वाला जीव चेतन शरीर में स्थित है। **काया मांहीं सब वनराइ** = जैसे ब्रह्मांड में नाना वन हैं, वैसे ही शरीर में शिर-केश, चिबुक-केश, बगलकेशादि सब वन पंक्ति हैं। **काया मांहीं रहे घर छाइ** = जैसे ब्रह्मांड के प्रदेश में घर बना कर रहते हैं वैसे ही काया के हृदय देश में निज निश्चय रूप घर बना कर, उसमें जीवात्मा स्थिर रहता है । **काया मांहीं कंदलि[१] वास** = जैसे ब्रह्मांड की गुफा में साधक निवास करते हैं, वैसे ही काया की भ्रमर कंदरा[१] में साधक का चित्त निवास करता है। **काया मांहीं है कैलाश** = शरीर में शून्य चक्र ही कैलाश है। **काया माँहीं तरुवर छाया, काया मांहीं पंखी माया** = शरीर में ब्रह्म-वृक्ष है और सुख ही उसकी छाया है, माया-मोहित जीव ही ब्रह्म-वृक्ष पर रहने वाला पक्षी है। **काया माँहीं आदि अनन्त** = ब्रह्मांड में जैसे वृक्षादि का आदि बीज होता है फिर उसका विस्तार अनन्त हो जाता है, वैसे ही काया में किसी भी कार्य का प्रथम संकल्प आदि है फिर उसका विस्तार अनन्त हो जाता है वा शब्द सृष्टि का आदि ओंकार हृदय में है और उसका कार्य रूप विस्तार भी अनन्त शब्द हृदय में है । **काया मांहीं है भगवंत** = शरीर में आत्म रूप से भगवान् स्थित हैं । **काया मांही त्रिभुवन राह** = स्वर्ग, मृत्यु, पाताल, इन तीनों भुवनों के राजा प्रभु शरीर के अष्ट दल कमल पर विराजते हैं। **काया मांहीं रहे समाइ** = शरीर में स्थित प्राणी अपनी भावनानुसार वृत्ति द्वारा माया वा ब्रह्म में समाये रहते हैं। **काया मांहीं चौदह भवन** = जैसे ब्रह्मांड में १४ लोक[२] हैं । वैसे ही शरीर में हैं—भक्ति पक्ष में दश इन्द्रियां, चतुष्टय अन्त:करण ही १४ भुवन हैं। ब्रह्मांड के १४ भुवन और योगानुसार शरीर के भुवनों के नाम निम्न प्रकार हैं—

लोक	निवासी	काय स्थान
१ भूः	मनुष्य, पशु	नाभि
२ भुवः	भूत, पक्षी	उर
३ स्वः	देवता	हृदय
४ महर्	ऋषि	छाती
५ जन	सकामी भक्त	कंठ
६ तप	सूर, सती, सन्यासी	नासिका
७ सत्य	ज्ञानी, सन्यासी	दशम द्वार
८ अतल	महादेव	उदर
९ वितल	बाणासुर	कमर
१० सुतल	मयनामा०	जंघा
११ तलातल	बलि	घुटने
१२ महातल	वासुकि नाग	पिंडली
१३ रसातल	शेष	गिरियां (टखने)
१४ पाताल	कद्रू के पुत्र	पगतली

काया माँहीं आवागमन = मन का एक स्थान से आना और दूसरे पर जाना ही शरीर में आवागमन है। **काया माँहीं सब ब्रह्मंड** = शरीर में चौदह भुवन रूप सभी ब्रह्मांड हैं। चौदह भुवन निकट पूर्व में ही बता आये हैं और १४ में से भी एक-एक में बहुत लोक भेद हैं जैसे एक स्व: के ही २१ भेद हैं—१ आसुरी स्वर्ग, २ भूत, ३ यम, ४ किन्नर, ५ ब्रह्म राक्षस, ६ राक्षस, ७ काल, ८ चित्रगुप्त, ९ योगिनी, १० गन्धर्व, ११ अर्यमा, १२ महा स्वर्ग, १३ तप, १४ जन, १५ सत्य, १६ दवि, १७ सुरलोक, १८ देव स्वर्ग, १९ पयाली, २० विश्वकर्मा, २१ खंड स्वर्ग तथा अग्निपुराण में नाम भेद से निम्न प्रकार बताये हैं—१ आनंद, २ प्रमोद, ३ सौख्य, ४ निर्मल, ५ त्रिविष्टप, ६ नाकपृष्ठ, ७ निर्वृत्ति, ८ पौष्टिक, ९ सौभाग्य, १० अप्सरस, ११ निरहंकार, १२ शान्तिक, १३ अमल, १४ पुण्याय, १५ मंगल, १६ श्वेत, १७, मन्मथ, १८ उपसोहन, १९ शांति, २० निर्वेद, २१ अभेद। शरीर में मेरु दंड की २१ गांठे हैं वे ही २१ स्वर्ग हैं। इसी प्रकार संपूर्ण ब्रह्मांड भेद काया में स्थित है। **काया माँहीं है नव खंड** = जैसे जम्बू द्वीप की पृथ्वी के (१ इलावृत २ रम्यक ३ हिरण्यमय ४ कुरू ५ हरिवर्ष ६ किंपुरुष ७ भारतवर्ष ८ केतुमाल वर्ष ९ भद्राश्व वर्ष) नवखंड हैं वैसे ही शरीर में नव द्वार रूप नवखंड और योगमतानुसार नव चक्र ही नवखंड हैं। वे इस प्रकार हैं—

चक्र नाम	पंखुड़ी	अक्षर	देवता	स्थान
१ आधार	४	४	गणेश	गुदा
२ स्वाधिष्ठान	८	८	ब्रह्मा	लिंग
३ मणिपूर	१०	१०	वायु	नाभि
४ निरंजन	८	८	मन	उदर
५ उद्यद	१२	१२	सूर्य	हृदय
६ विशुद्ध	१६	१६	चन्द्रमा	कंठ
७ बत्तीसा	३२	३२	विष्णु	तालू
८ आज्ञा	२	२	महादेव	मस्तक
९ ब्रह्मरंध्र	१०००	१०००	दशों दिशा	दशम द्वार

काया मांहीं स्वर्ग पयाल, काया मांहीं आप दयाल ॥ काया माँही लोक सब, दादू दिये दिखाय। मनसा वाचा कर्मना, गुरु बिन लख्या न जाय = काया में ही दशम द्वार स्वर्ग, उदर मर्त्यलोक, पदतल पाताल[३] हैं। अन्य भी १४ भुवन २१ स्वर्गादि सभी ब्रह्मांड के स्थानादि काया में दिखा दिये गये हैं किन्तु हम मन-वचन-कर्म से कहते हैं—सद्गुरु कृपा बिना यह बाह्य ब्रह्मांड शरीर में नहीं देखा जा सकता।

३५८-रंग ताल

काया माँहीं सागर सात, काया माँहीं अविगत नाथ।
काया माँहीं नदिया नीर, काया माँहीं गहर गंभीर ॥ १ ॥
काया माँहीं सरवर पाणी, काया माँहीं बसै विनाणी[१]।
काया माँहीं नीर निवान[२], काया माँहीं हंस सुजान ॥ २ ॥
काया माँहीं गंग तरंग, काया माँहीं जमुना संग।
काया माँहीं है सुरसती, काया माँहीं द्वारावती ॥ ३ ॥
काया माँहीं काशी स्थान, काया माँहीं करै स्नान।
काया माँहीं पूजा पाती, काया माँहीं तीरथ जाती ॥ ४ ॥
काया माँहीं मुनियर मेला, काया माँहीं आप अकेला।
काया माँहीं जपिये जाप, काया माँहीं आपै आप ॥ ५ ॥
काया नगर निधान है, माँहीं कौतिक होइ ।
दादू सतगुरु संग ले, भूल पड़ै जनि कोइ ॥ ६ ॥

काया माँहीं सागर सात = जैसे ब्रह्मांड के ७ द्वीपों के ७ सागर हैं वैसे ही शरीर में सप्त सागर हैं। ब्रह्मांड में द्वीप और सागर इस प्रकार हैं १ जम्बूद्वीप में क्षार समुद्र, २ प्लक्ष में ईक्षुरस समुद्र

३ कुश में क्षीर सागर ४ शाल्मलि में सुरा सागर ५ क्रौंच में दधि सागर ६ शाक में घृत सागर ७ पुष्कर में सुधा सागर है, वैसे ही शरीर में १ श्रवण २ नेत्र ३ नासिका ४ मुख ५ हस्त ६ उदर ७ पद, इन सप्त द्वीपों में उक्त सप्त समुद्र हैं वा रस, रक्त, मांस, मेद, मज्जा, अस्थि, वीर्य, ये सात धातु ही सप्त समुद्र हैं। **काया मांहीं अविगत नाथ** = ब्रह्मांड में जैसे इन्द्रियों का अविषय ब्रह्म है वैसे ही काया में कूटस्थ चेतन स्थित है। **काया मांहीं नदियां नीर, काया मांहीं गहर गंभीर** = जैसे ब्रह्मांड में अथाह नीर वाहनी नदी हैं, वैसे ही शरीर में रस, उदक, रक्त, शुक्र वाहिनी नाड़ियां ही गंभीर नदियाँ हैं वा मनोरथ जल से परिपूर्ण आशा-नदी है वा राम जल से युक्त नवधा भक्ति ही नदियाँ हैं। **काया मांहीं सरवर पाणी** = ब्रह्मांड में जैसे विशुद्ध जल युक्त मानसरोवर है, वैसे ही काया में प्रेम-जल परिपूर्ण हृदय-सरोवर है। **काया मांहीं बसे बिनाणी** = ब्रह्मांड में जैसे विशेष ज्ञान युक्त व्यक्ति बसता है, वैसे ही काया में विशेष-ज्ञान-युक्त-बुद्धि[१] बसती है। **काया मांहीं नीर निवान** = शरीर में निर्मल ज्ञान-जल का निरभिमान रूप तालाब[२] है। **काया मांहीं हंस सुजान** = उस तालाब पर ज्ञानी संतों का मन-हंस रहता है। वा सहज स्वरूप ब्रह्म सरोवर पर ज्ञानी-संत-हंस रहता है। **काया मांहीं गंग तरंग** = पिंगला नाड़ी रूप गंगा की श्वास गति रूप तरंग काया में है। **काया मांहीं जमुना संग** = इड़ा नाड़ी रूप यमुना का पिंगला से मेल काया में होता है। **काया मांहीं सरस्वती** = सुषुम्ना नाड़ी रूप सरस्वती काया में है। **काया मांही द्वारावती** = जैसे ब्रह्मांड में द्वारिकापुरी है, वैसे ही काया में सहस्रार चक्र द्वारिका है। **काया मांही काशी थान** = जैसे संसार में काशी है वैसे ही काया में आत्मा ही काशी है। **काया मांहीं करे सनान** = काया में आत्म चिन्तन रूप स्नान संत जन करते हैं। **काया मांहीं पूजा पाती** = जैसे बाह्य पूजा होती है, वैसे ही काया में मानस पूजा होती है। बाहर पूजा के समय तुलसी पत्र चढ़ाते हैं, वैसे ही मानस पूजा में प्रेम रूप तुलसी पत्र चढ़ाया जाता है। **काया मांहीं तीरथ जाती** = जैसे जनता तीर्थों में जाती है, वैसे ही काया में वृत्ति तीर्थों में जाती है। जैसे भारत में केदार, गंगासागर, गया, प्रयाग और काशी पंच तीर्थ प्रधान हैं वैसे ही काया में शिर-केदार, कंठ-गया, नाभि-प्रयाग, उपस्थ-गंगा सागर, और चेतन ही काशी है। **काया मांहीं मुनियर मेला** = जैसे बाह्य मुनिवरों का सम्मेलन होता है, वैसे ही मननशील मन इन्द्रियों का एकाग्रता रूप सम्मेलन शरीर में होता है। **काया मांहीं आप अकेला** = जैसे ब्रह्मांड में ब्रह्म सब में रह कर भी सबसे अलग ही रहता है वैसे ही शरीर में भी जीव चेतन सब से अलग अकेला ही रहता है। **काया मांहीं जपिये जाप** = काया में अजपा जाप निरंतर जपा ही जाता है। **काया मांहीं आपै आप** = जैसे ब्रह्मांड में ब्रह्म है वैसे ही काया में भी आत्म रूप से स्वयं आप ही स्थित है। **काया नगर निधान हैं** = जैसे ब्रह्मांड में नाना निधियां हैं, वैसे ही काया नगर में दया, धर्म, क्षमा, संतोष, शील, प्रेम, ज्ञानादि निधियों का कोश है। **मांहीं कौतिक होइ** = जैसे ब्रह्मांड में नाना खेल होते हैं वैसे ही काया में भी नाना वृत्ति व्यापार और वृत्ति स्थैर्य रूप खेल होते ही रहते हैं। वा भगवत् प्राप्ति रूप अद्भुत खेल होता है। **दादू सद्गुरु संग ले, भूल पड़े जनि कोइ** = साधक सद्गुरु के सत्संग द्वारा आन्तर साधना से उस प्रभु को ही प्राप्त करे, भ्रम वश उसे भूल कर बाह्य तीर्थादि भ्रमण में ही कोई न पड़े।

३५९-रंग ताल

काया माँहीं विषमी बाट, काया माँहीं औघट घाट ।
काया माँहीं पट्टण गाँव, काया माँहीं उत्तम ठाँव ॥ १ ॥
काया माँहीं मण्डप छाजे, काया माँहीं आप विराजे ।
काया माँहीं महल अवास, काया माँहीं निश्चल वास ॥ २ ॥
काया माँहीं राजद्वार, काया माँहीं बोलणहार ।
काया माँहीं भरे भण्डार, काया माँहीं वस्तु अपार ॥ ३ ॥
काया माँहीं नौ निधि होइ, काया माँहीं अठ सिधि सोइ ।
काया माँहीं हीरा साल, काया माँहीं निपजैं लाल ॥ ४ ॥
काया माँहीं माणिक भरे, काया माँहीं ले ले धरे ।
काया माँहीं रत्न अमोल, काया माँहीं मोल न तोल ॥ ५ ॥
काया माँहीं कर्तार है, सो निधि जानैं नाँहिं ।
दादू गुरुमुख पाइये, सब कुछ काया माँहिं ॥ ६ ॥

काया मांही विषमी बाट = जैसे ब्रह्मांड में बदरी, केदारादि के मार्ग अति कठिन हैं, वैसे ही काया में ब्रह्म-प्राप्ति का मार्ग अति कठिन है। **काया मांहीं औघट घाट** = जैसे बदरीनाथादि के मार्ग में दुर्गम घाटियाँ होती हैं, वैसे ही शरीर में ज्ञान के मार्ग में काम क्रोधादिक दुर्गम घाटियाँ हैं। **काया मांहीं पट्टण गांव** = ब्रह्मांड में जैसे पट्टण (पाटलीपुत्र) आदि विशाल नगर हैं और उनमें अनेक वस्तुयें प्राप्त होती हैं, वैसे ही काया में प्रभु-प्रेम, विचारादि नगर हैं, उनमें प्रभु द्वारा सब कुछ प्राप्त होता है, वा जैसे ब्रह्मांड में कोई ग्राम पट्टण (भूमि में मिलकर समतल) हो जाता है, वैसे ही काया में भी कोई विचार नष्ट हो जाता है। **काया माँहीं उत्तम ठाँव** = ब्रह्मांड में जैसे वैकुण्ठादि उत्तम स्थान हैं, वहां विष्णु आदि के दर्शन होते हैं, वैसे ही काया में अष्टदल-कमलादि उत्तम स्थान हैं, उनमें भगवान् के दर्शन होते हैं। **काया मांहीं मण्डप छाजे, काया माँही आप विराजे** = जैसे ब्रह्मांड में लोग मंडप बनाकर उसमें बैठते हैं वैसे ही काया में मन वासनाओं का मंडप बनाकर उसमें स्थित रहता है वा काया में मन साधना रूप मंडप बनाता है, उसमें स्वयं भगवान् विराजते हैं। **काया माँहीं महल अवास** = जैसे ब्रह्मांड में महल होते हैं, वैसे ही काया में अन्नमय, प्राणमय,मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय ये पंच कोश ही महल हैं। **काया माँहीं निश्चल वास** = ब्रह्मांड में जैसे लोग काशी में कल्याणार्थ स्थिर निवास करते हैं, वैसे ही काया में ब्रह्म में वृत्ति स्थिरता रूप निश्चल निवास होता है। **काया माँहीं राज द्वार** = जैसे लोक में राज द्वार होता है, उस द्वार से राजा के पास जाते हैं वैसे ही काया में दशम द्वार राज द्वार है, उसके द्वारा ही ब्रह्म रूप राजा को प्राप्त होते हैं। **काया माँहीं बोलणहार** = जैसे ब्रह्मांड में वक्ता होते हैं वैसे ही काया में बोलने वाला वाक् इन्द्रिय है वा उसका प्रेरक आत्मा है। **काया माँहीं भरे भंडार** = जैसे लोक में नाना पदार्थों के भंडार भरे रहते हैं, वैसे ही काया में भी सब कला-गुण-ज्ञानादि के

भंडार भरे हैं किन्तु उनके अज्ञान रूप ताले लगे हैं जो कलाज्ञ, गुणज्ञ और ज्ञानी लोगों द्वारा खोले जाते हैं, तब सब काया में ही मिलते हैं। **काया माँहीं वस्तु अपार** = जैसे ब्रह्मांड में अपार वस्तुएँ हैं वैसे ही काया में भी सप्तधातु, दैवीगुण, आसुर-गुण आदि अनन्त वस्तुयें हैं वा जिसका पार नहीं आता ऐसी परब्रह्म वस्तु जैसे ब्रह्मांड में है, वैसे ही काया में भी हैं। **काया माँहीं नौ निधि होइ** = जैसे ब्रह्मांड में १ पद्म २ महापद्म ३ शंख ४ मकर ५ कच्छप ६ मुकुन्द ७ कुन्द ८ नील ९ वर्च्चः, ये नौ निधि हैं। वैसे ही काया में १ श्रवण २ कीर्तन ३ स्मरण ४ पाद सेवन ५ अर्चना ६ वंदना ७ दास्य ८ सख्य ९ आत्म निवेदन, ये नवधा भक्ति ही नवनिधि हैं।**काया मांहीं अठ सिधि सोइ** = जैसे ब्रह्मांड में १ अणिमा २ महिमा ३ लघिमा ४ गरिमा ५ प्राप्ति ६ प्रकाम्य ७ ईशत्व, ८ वशित्व, ये अष्ट सिद्धि हैं, वैसे ही काया में मन, बुद्धि, चित्त और पंच ज्ञानेन्द्रिय ये अष्ट सिद्धि हैं। जैसे लोक में अन्य १ सर्वज्ञता २ दूर श्रवण ३ पर काय प्रवेश ४ वाक् सिद्धि ५ कल्प वृक्षत्व ६ सृजन शक्ति ७ संहार शक्ति ८ ईशता ९ अमरत्व १० सर्व्वांग, ये दश सिद्धियां हैं, वैसे ही काया में १ इड़ा २ पिंगला ३ सुषुम्ना ४ गांधारी ५ हस्तिजिह्वा ६ पूषा ७ यशस्विनी ८ अलम्बुषा ९ कुहू १० शंखिनी, ये नाड़ियां ही दश सिद्धियां हैं। इनके स्थान क्रम से १ वाम नासिका २ दक्षिण नासिका ३ दोनों नासिका का मध्य भाग ४ वाम नेत्र ५ दक्षिण नेत्र ६ दाहिना कान ७ वाम कान ८ मुख ९ लिंग १० गुदा हैं। ये अभ्यास के द्वारा सिद्धि प्रदाता होने से सिद्धियां हैं। **काया माँहीं हीरा साल** = जैसे लोक में हीरों की दुकान होती है, वैसे ही काया में विचार रूप हीरों का साल (घर) बुद्धि है। **काया माँहीं निपजे लाल** = लोक में जैसे खानियों से लाल निपजते हैं वैसे ही काया में भजनादि द्वारा मन इन्द्रियों की श्रेष्ठता, एकाग्रतादि लाल उत्पन्न होते हैं अर्थात् जैसे पत्थरों की खान से लाल निकलते हैं वैसे ही मन इन्द्रिय विषयों से निकल कर हरि की ओर लगता है तब लाल रूप ही हो जाता है। **काया माँहीं माणिक भरे** = जैसे लोक में जौहरियों की पेटियों में माणिक्य भरे रहते हैं, वैसे ही काया में भी श्वास रूप माणिक्य भरे हैं।**काया माँहीं ले ले धरे** = जैसे लोक में बाह्य पदार्थों को ले लेकर घर में धरते हैं वैसे ही साधक संत विचारों को ले लेकर काया की बुद्धि में धरते हैं। **काया माँहीं रत्न अमोल, काया मांहीं मोल न तोल** = जैसे लोक में अमूल्य रत्न होता है, उसका मोल-तोल नहीं होता, वैसे ही काया में ज्ञान रूप अमूल्य रत्न हैं, उसका कोई मोल-तोल नहीं वा जैसे ब्रह्मांड में—१ लक्ष्मी २ कौस्तुभ ३ पारिजात ४ सुरा ५ धन्वन्तरि ६ चन्द्रमा ७ कामधेनु ८ ऐरावत हस्ति ९ रंभा १० सप्तमुखा उच्चै: श्रवा अश्व ११ विष १२ हरि धनुष १३ शंख १४ अमृत, ये १४ रत्न हैं। वैसे ही काया में १ भक्ति २ शांति ३ ज्ञान ४ सत्य बुद्धि ५ श्रेष्ठ वचन ६ अहं बुद्धि ७ अनाहत नाद ८ अष्टांग योग ९ संतोष १० काम ११ मन १२ धैर्य १३ युक्ति १४ गुरु शब्द, ये १४ रत्न हैं, कहा भी है—

लक्ष्मि भक्ति, मणि शांति, कल्पतरु ज्ञान विचारो। कामधेनु सतबुद्धि, बैन शुभ अमृत धारो ।
अहं बुद्धि विष जान, शंख अनहद ध्वनि बाजै। धन्वन्तरि अष्टांग, चन्द्र संतोष विराजै।
सुरा काम, मद सप्तमुख हय, गज धीरज जानि येहु ।
तहां जुगति रंभा, शब्द गुरु, 'नृसिंह' धनु, पहिचानि लेहु।

काया माँही करतार है, सो निधि जानैं नाहिं = जैसे ब्रह्मांड में सृष्टि कर्ता ईश्वर है, वैसे ही काया में भी जीव सृष्टि का कर्ता जीव चेतन स्थित है। किन्तु संपूर्ण सुखों के कोश उसके वास्तविक स्वरूप को नहीं जानता, इसी से जन्मादि क्लेश भोगता है।**दादू गुरु मुख पाइये, सब कुछ काया मांहिं** = काया में सभी कुछ है किन्तु गुरु मुख द्वारा उसका परिचय प्राप्त करके खोजने से ही सब कुछ प्राप्त होता है, अन्यथा नहीं।

३६०-वर्ण भिन्न ताल

काया माँहीं सब कुछ जान, काया माँहीं लेहु पिछान।
काया माँहीं बहु विस्तार, काया माँहीं अनन्त अपार॥ १ ॥
काया माँहीं अगम अगाध, काया माँहीं निपजे साध।
काया माँहीं कह्या न जाइ, काया माँहीं रहै ल्यौ लाइ॥ २ ॥
काया माँहीं साधन सार, काया माँहीं करै विचार ।
काया माँहीं अमृत वाणी, काया माँहीं सारङ्ग प्राणी ॥ ३ ॥
काया माँहीं खेलै प्राण, काया माँहीं पद निर्वाण ।
काया माँहीं मूल गह रहै, काया माँहीं सब कुछ लहै ॥ ४ ॥
काया माँहीं निज निरधार, काया माँहीं अपरम्पार।
काया माँहीं सेवा करै, काया माँहीं नीझर झरै ॥ ५ ॥
काया माँहीं वास कर, रहै निरंतर छाइ ।
दादू पाया आदि घर, सतगुरु दिया दिखाइ ॥ ६ ॥

काया माँहीं सब कुछ जान, काया माँहीं लेहु पिछान = जो ब्रह्मांड में है सो सभी कुछ काया में है, यह गुरु द्वारा जानकर साधन से काया में उनका प्रत्यक्ष परिचय प्राप्त करते हुये सबके आधार परब्रह्म को पहचान कर आत्म स्वरूप को प्राप्त कर लो। **काया माँहीं बहु विस्तार** = जैसे ब्रह्मांड में माया का बहुत विस्तार हो रहा है, वैसे ही काया में मन के मनोरथों का स्वप्न बहुत विस्तृत भासता है। **काया माँहीं अनन्त अपार** = जिसका शुभ अनन्त है, वह अपार प्रभु भी काया में विद्यमान है। **काया माँहीं अगम अगाध** = जिसमें मन इन्द्रियों की गति नहीं होती वह अगाध व्यापक ब्रह्म भी काया के प्रत्येक अणु में है। **काया माँहीं निपजे साध** = संत भी बाह्य भेष द्वारा न होकर भजनादि साधन द्वारा काया में ही बसते हैं। **काया माँहीं कह्या न जाइ** = जो वाणी से कहा नहीं जाता वह ब्रह्म काया में ही है।**काया माँहीं रहै ल्यौ लाइ** = संत जन बाह्य प्रपंच से उपराम रहकर काया में ही उस ब्रह्म में वृत्ति लगाकर स्थिरता पूर्वक रहते हैं। **काया माँहीं साधन सार** = ब्रह्म चिन्तन रूप सार-साधन भी काया में ही होता है।

काया माँहीं करै विचार = विचारक संत काया में ही बुद्धि द्वारा ब्रह्म विचार करते हैं। **काया माँहीं अमृत वाणी** = अहंकार रहित प्रिय, ब्रह्म विचार संपन्न, अमरत्व प्रदान करने वाली, अमृत वाणी भी शरीर में है, तभी तो संतों के मुख द्वारा बोली जाती है। **काया माँहीं सारंग**

प्राणी = काया में सारंग (परमेश्वर) और प्राणधारी जीव दोनों ही स्थित हैं। **काया माँहीं खेले प्राण** = काया में संत प्राणी परमेश्वर के साक्षात्कार जन्य आनंद का अनुभव रूप खेल खेलते हैं। **काया माँहीं पद निर्वाण** = काल-कर्म के बाणाघात से रहित निर्वाण पद स्वरूप आत्मा काया में स्थित है। **काया माँहीं मूल गह रहै** = सबका मूल ब्रह्म वा शब्द सृष्टि का मूल ओंकार उसको संत काया में ही ग्रहण करके उसी में स्थिर रहते हैं। **काया माँहीं सब कुछ लहै** = साधक काया में ही ब्रह्म-चिन्तन रूप चिन्तामणि से सब कुछ प्राप्त करते हैं। **काया माँहीं निज निरधार, काया माँहीं अपरंपार** = काया में ही विचार द्वारा निज स्वरूप का निर्णय करो, वह अपरंपार स्वरूप कूटस्थ काया में ही है। **काया माँहीं सेवा करै** = संतजन काया में ही परब्रह्म की सेवा-पूजा करते हैं। **काया माँहीं नीझर झरै** = काया में निरंतर तालु मूल से अमृत झरता रहता है वा उक्त प्रकार सेवा-पूजा करने वालों को प्रभु-प्रेमामृत वा आनन्दामृत निरंतर प्राप्त रहता है। **काया माँहीं बास कर, रहे निरंतर छाइ** = काया में स्थित प्रभु के स्वरूप में वृत्ति द्वारा निवास करते हुये, और निरंतर ब्रह्माकार वृत्ति रखते हुये स्थिर रहना चाहिए। **दादू पाया आदि घर, सतगुरु दिया दिखाइ** = यह मार्ग हमको सद्गुरु ने दिखाया है और हमने निरंतर ब्रह्माकार वृत्ति रखते हुये ब्रह्म रूप अपना आदि स्थान प्राप्त किया है।

३६१-वर्ण भिन्न ताल।

काया माँहीं अनुभै सार, काया माँहीं करै विचार।
काया माँहीं उपजै ज्ञान, काया माँहीं लागै ध्यान ॥ १ ॥
काया माँहीं अमर स्थान, काया माँहीं आत्मराम ।
काया माँहीं कला अनेक, काया माँहीं कर्ता एक ॥ २ ॥
काया माँहीं लागै रंग, काया माँहीं साईं संग ।
काया माँहीं सरवर तीर, काया माँहीं कोकिल कीर[1] ॥ ३ ॥
काया माँहीं कच्छप नैन, काया माँहीं कुँजी[2] बैन ।
काया माँहीं कवल प्रकास, काया माँहीं मधुकर वास ॥ ४ ॥
काया माँहीं नाद कुरङ्ग[3], काया माँहीं ज्योति पतङ्ग ।
काया माँहीं चातक मोर, काया माँहीं चंद चकोर ॥ ५ ॥
काया माँहीं प्रीति कर, काया माँहीं सनेह।
काया माँहीं प्रेम रस, दादू गुरुमुख येह ॥ ६ ॥

काया माँहीं अनुभवसार = काया में ही विश्व के सार परब्रह्म का अनुभव होता है। **काया माँहीं करै विचार** = काया में ही बुद्धि द्वारा ब्रह्म विचार करते रहना चाहिए। **काया माँहीं उपजै ज्ञान** = काया में ही आत्मज्ञान की उत्पत्ति होती है। **काया माँहीं लागै ध्यान** = काया में ही ब्रह्म का ध्यान लगता है। **काया माँहीं अमर स्थान** = काया में निर्विकल्प समाधि ही अमर स्थान है। निर्विकल्प समाधि में स्थित को काल नहीं मार सकता। **काया माँहीं आत्मराम** =

व्यापक होने से काया में आत्मस्वरूप राम है। **काया माँहीं कला अनेक** = जैसे लोक में गीत, वाद्य,नृत्य आदि काम शास्त्र की ६४ कला तथा अन्य अनेक कलाएँ हैं, वैसे ही शरीर में भी इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि आदि अनेक कला हैं। **काया माँहीं कर्ता एक** = जैसे ब्रह्मांड में प्रेरक कर्त्ता एक ईश्वर ही हैं, वैसे ही काया में भी वह एक ही प्रेरक कर्त्ता है। **काया माँहीं लागै रँग** = परमेश्वर की भक्ति रूप रंग काया में ही लगता है। **काया माँहीं साईं संग** = ईश्वर व्यापक होने से काया में जीव के साथ ही है। **काया माँहीं सरवर तीर, काया माँहीं कोकिल कीर** = काया में हृदय सरोवर है और उसके तीर पर काया में ही बुद्धि रूप कोकिल, मन रूप शुक[१] पक्षी है। **काया माँहीं कच्छप नैन** = जैसे कूर्म की दृष्टि एकाग्र अंडों पर रहती है, वैसे ही परब्रह्म में लगी विचार रूप दृष्टि कच्छप-नेत्र काया में हैं। **काया माँहीं कुंजी बैन** = जैसे क्रौंच[२] पक्षी की आवाज एक अंडाकार वृत्ति रखते हुये होती है, वैसे ही काया में एक ब्रह्माकार वृत्ति रखते हुये ध्यानावस्था में वचन व्यवहार होता है। **काया माँहीं कमल प्रकाश** = साधन-सूर्य की किरणों से काया में हृदय-कमल खिलता है। **काया माँहीं मधुकर वास** = उक्त कमल की ब्रह्म रूप सुगंध का अनुभव मन-भ्रमर काया में रहता है। **काया माँहीं नाद कुरंग** = जैसे लोक में नाद पर मृग[३] मोहित होता है, वैसे ही काया में शब्द से श्रवण इन्द्रिय रूप मृग मोहित होता है। **काया माँहीं ज्योति पतंग** = जैसे लोक में ज्योति पर पतंग मोहित होता है, वैसे ही काया में नेत्र रूप पतंग रूप-ज्योति पर मोहित होता है। **काया माँहीं चातक मोर** = जैसे स्वाति बिन्दु के लिए चातक पुकारता है, वैसे ही काया में इच्छित वस्तु के लिए मन रूप चातक पुकारता है। जैसे बादल से जल वृष्टि के लिए मोर पुकारते हैं वैसे ही काया में प्राण रूप मोर जल के लिए पुकारते हैं। **काया माँहीं चन्द चकोर** = जैसे चन्द्रमा पर चकोर दृष्टि स्थिर रखता है, वैसे ही काया में संत चित्त रूप चकोर, ब्रह्म रूप चन्द्रमा पर चिन्तन रूप दृष्टि सदा रखता है। **काया माँहीं प्रीति कर** = काया में ही इन्द्रियों द्वारा प्रभु से प्रीति करो। **काया माँहीं सनेह** = शरीर में ही मन द्वारा प्रभु से स्नेह करो। **काया माँहीं प्रेम रस** = शरीर में ही प्रभु-प्रेम रस प्राप्त होता है। **दादू गुरुमुख येह** = ये उक्त सभी बातें गुरुमुख द्वारा जान कर साधन करने से काया में प्रत्यक्ष भासती है।

३६२-राज विद्याधर ताल

काया माँहीं तारणहार, काया माँहीं उतरे पार ।
काया माँहीं दुस्तर तारे, काया माँहीं आप उबारे ॥ १ ॥
काया माँहीं दुस्तर तिरे, काया माँहीं होइ उद्धरे ।
काया माँहीं निपजै आइ, काया माँहीं रहै समाइ ॥ २ ॥
काया माँहीं खुले कपाट, काया माँहीं निरंजन हाट ।
काया माँहीं है दीदार, काया माँहीं देखणहार ॥ ३ ॥
काया माँहीं राम रँग राते, काया माँहीं प्रेम रस माते ।
काया माँहीं अविचल भये, काया माँहीं निश्चल रहे ॥ ४ ॥

काया माँहीं जीवै जीव, काया माँहीं पाया पीव ।
काया माँहीं सदा अनंद, काया माँहीं परमानंद॥ ५ ॥
काया माँहीं कुशल है, सो हम देख्या आइ ।
दादू गुरुमुख पाइये, साधु कहैं समझाइ ॥ ६ ॥

काया मांहीं तारणहार = संसार सिन्धु से तारने वाला परमात्मा आत्मरूप से काया में है। **काया मांहीं उतरे पार** = साधक काया में रहते हुये ही भक्ति-ज्ञानादि द्वारा संसार के पार गये हैं। **काया मांहीं दुस्तर तारे** = काया में रहते ही साधक वैराग्यादि साधन द्वारा अपने को दुस्तर भोगाशा से तारता है। **काया मांहीं आप उबारे** = काया में रहते ही साधन द्वारा जीवात्मा स्वयं ही अपना पतन से उद्धार करता है। **काया मांहीं दुस्तर तिरे** = काया में रहते हुये ही ईश्वर कृपा से साधक दुस्तर काम-क्रोधादि से तिरे हैं। **काया मांहीं होइ उद्धरे** = पूर्व काल के साधक मनुष्य शरीर में ही हरि में अनुरक्त होकर मुक्त हुये हैं। **काया माँहीं निपजै आइ** = विषयों से लौटकर मन साधन में आता है, तब शरीर में ही ज्ञानादि उत्पन्न होते हैं। **काया मांहीं रहै समाइ** = ज्ञानादि की उत्पत्ति के अनन्तर शरीरस्थ चेतन में ही वृत्ति समाई रहती है। **काया मांहीं खुले कपाट** = पूर्व कालीन साधकों के अज्ञान कपाट काया में रहते ही खुले हैं। **काया माँहीं निरंजन हाट** = निरंजन ब्रह्म वस्तु को प्राप्त करने योग्य निर्विकल्प समाधि रूप हाट भी काया में ही है। **काया माँहीं है दीदार** = काया में ही ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। **काया मांहीं देखणहार** = ब्रह्म साक्षात्कार करने वाला जीवात्मा भी काया में ही है। **काया मांहीं राम रँग राते** = भक्त जन राम-भक्ति-रंग में अनुरक्त भी काया में रहते ही होते हैं। **काया मांहीं प्रेम रस माते** = काया में रहते हुये ही संत प्रभु-प्रेम में मस्त होते हैं। **काया मांहीं अविचल भये** = शरीर रहते हुये ही साधकों के मन, बुद्धि आदि स्थिर हुये हैं। **काया मांहीं निश्चल रहे** = काया में रहते हुये ही संत निश्चल ब्रह्म में लीन रहे हैं। **काया मांहीं जीवै जीव** = काया में ही जीव जीवित कहलाता है। **काया मांहीं पाया पीव** = संतों ने काया में ही प्रभु को प्राप्त किया है। **काया मांहीं सदा अनंद** = पदार्थ प्राप्ति जन्य आनन्द सदा काया में ही मिलता है। **काया मांहीं परमानन्द** = ब्रह्म प्राप्ति जन्य परमानन्द भी काया में ही मिलता है। **काया मांही कुशल है, सो हम देख्या आइ** = काया में जो ब्रह्मानन्द प्राप्त होता है, वह हमने समाधि अवस्था में आकर प्रत्यक्ष अनुभव किया है। **दादू गुरु मुख पाइये, साधु कहैं समझाइ** = वह ब्रह्मानंद गुरुमुख से उपदेश श्रवण करके मनन, निदिध्यासन द्वारा प्राप्त किया जाता है, ऐसा ही संतजन समझा-समझा कर कहते रहते हैं।

३६३-राज विद्याधर ताल

काया माँहीं देख्या नूर, काया माँहीं रह्या भरपूर।
काया माँहीं पाया तेज, काया माँहीं सुन्दर सेज॥ १ ॥

काया माँहीं पुंज प्रकाश, काया माँहीं सदा उजास ।
काया माँहीं झिलमिल सारा, काया माँहीं सब तैं न्यारा ॥ २ ॥
काया माँहीं ज्योति अनन्त, काया माँहीं सदा बसन्त ।
काया माँहीं खेलैं फाग, काया माँहीं सब वन बाग ॥ ३ ॥
काया माँहीं खेलैं रास, काया माँहीं विविध विलास ।
काया माँहीं बाजैं बाजे, काया मांहीं नाद धुनि साजे ॥ ४ ॥
काया माँहीं सेज सुहाग, काया माँहीं मोटे भाग ।
काया माँहीं मँगल चार, काया माँहीं जै जै कार ॥ ५ ॥
काया अगम अगाध है, मांहीं तूर बजाइ ।
दादू परगट पीव मिल्या, गुरुमुख रहे समाइ ॥ ६ ॥

इति राग सूहा (काया बेली ग्रंथ) समाप्त: ॥ २२ ॥ पद १० ॥

काया मांहीं देख्या नूर = संतों ने ब्रह्म स्वरूप का साक्षात्कार काया में ही किया है। **काया मांहीं रह्या भरपूर** = ब्रह्म व्यापक होने से काया के नख से शिखा पर्यन्त रोम-रोम में परिपूर्ण है। **काया माँहीं पाया तेज** = ऋषियों ने ब्रह्म-तेज भी काया में रहते ही पाया था। **काया मांहीं सुन्दर सेज** = शरीर में ही सबसे अधिक सुन्दर हृदय शय्या है। **काया माँहीं पुंज प्रकाश** = साधन द्वारा काया में ही प्रकाश राशि भासती है। **काया माँहीं सदा उजास** = शरीर में सदा ज्ञान रूप प्रकाश रहता है। **काया मांहीं झिलमिल सारा** = शरीर में ध्यानावस्था के समय विश्व के सार ब्रह्म ज्योति की झिलमिलाहट देखने में आती है, अत: शरीर में ही है। **काया मांहीं सब तैं न्यारा** = ब्रह्मात्मा काया में रह कर भी सब से अलग ही है। **काया मांहीं ज्योति अनन्त** = जिसका अन्त नहीं आवे, ऐसी आत्म ज्योति काया में ही है। **काया मांहीं सदा बसंत** = शरीर में ब्रह्म साक्षात्कार होने पर सदा वसंत के समान आनन्दोत्सव ही रहता है। **काया मांहीं खेले फाग** = संतजन काया में ही अपने प्रियतम प्रभु से परम प्रेम रूप फाग का खेल खेलते हैं। **काया मांहीं सब वन बाग** = जैसे ब्रह्मांड में नन्दनवनादि हैं वैसे ही शरीर में संकल्पवन-मन, विचार-वन बुद्धि इत्यादिक सब वन और ज्ञान-बाग शरीर में है। **काया मांहीं खेलैं रास** = साक्षी चेतन रूप कृष्ण और वृत्ति रूप गोपिकाएं शरीर में रास खेलते हैं। **काया मांहीं विविध विलास** = शब्दानन्द, रूपानन्द, गंधानन्द रसनान्द आदि विविध भांति के सुख काया में हैं। **काया मांहीं बाजै बाजे** = अखंड नाम चिन्तन रूप बाजे संतों के रोम रोम में बजते हैं। **काया मांहीं नाद धुनि साजे** = काया में ही अनाहत ध्वनि सजाई जाती है अर्थात् क्रम से स्थूल ध्वनियों से सूक्ष्म ध्वनियों में मन लगाया जाता है। **काया मांहीं सेज सुहाग** = शरीर में ही हृदय शय्या पर प्रभु साक्षात्कार रूप सुहाग सुख होता है। **काया मांहीं मोटे भाग** = काया में साधन करने से मानव बड़ भागी बनता है। **काया माँहीं मंगलचार** = ब्रह्म प्राप्ति होने पर काया में अति आनन्द रूप मंगल का ही व्यवहार होता है। **काया मांहीं जै जैकार** = काया में ही आसुर गुणों को विजय करने पर जयकार

वाली ध्वनि होने लगती है। **काया अगम अगाध है, मांहीं तूर बजाइ। दादू परकट पीव मिल्या, गुरुमुख रहे समाइ।** = जैसे ब्रह्मांड अगम अगाध है, वैसे ही काया भी अगम अगाध है। हमने काया में ही अनाहत ध्वनि रूप नगाड़ा बजा कर मन को स्थिर किया, तब काया में ही प्रत्यक्ष रूप से प्रभु की प्राप्ति हुई है। इस प्रकार गुरुमुख द्वारा श्रवण करी पद्धति से साधन करके शरीर में ही हम प्रभु से मिले और उसी में वृत्ति द्वारा समा रहे हैं।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग सूहा (काया बेली ग्रंथ) समाप्तः ॥ २२ ॥

अथ राग वसंत २३

(गायन समय प्रभात ३ से ६ तथा वसंत ऋतु)

३६४-भजन भेद। मल्लिका मोद ताल

निर्मल नाम न लीया जाइ, जाके भाग बड़े सोई फल खाइ ॥ टेक ॥
मन माया मोह मद माते, कर्म कठिन ता माँहिं परे।
विषय विकार मान मन माँहीं, सकल मनोरथ स्वाद खरे ॥ १ ॥
काम क्रोध ये काल कल्पना, मैं मैं मेरी अति अहंकार।
तृष्णा तृप्ति न मानै कबहूँ, सदा कुसंगी पंच विकार ॥ २ ॥
अनेक जोध रहैं रखवाले, दुर्लभ दूर फल अगम अपार।
जाके भाग बड़े सोई फल पावै, दादू दाता सिरजनहार ॥ ३ ॥

सांसारिक प्राणियों के और संतों के भजन में भेद रहता है, यह कह रहे हैं—सर्व साधारण प्राणियों से भगवान् का निर्मल नाम-चिन्तन नहीं किया जाता,जिसके महान् भाग्य होते हैं, वही संत नाम-चिन्तन के आनन्द रूप फल का उपभोग करता है। प्राणियों के मन, मायिक मोह और धनादि मद से मतवाले हो रहे हैं। प्राणी तो जो निर्दयतापूर्ण कर्म हैं, उनको कर रहे हैं। मन में विषय-विकार, सम्पूर्ण मनोरथ और विषय स्वाद को सत्य मान रहे हैं। ये जो काल रूप काम, क्रोध, नाना कल्पना, ''मैं-मैं और मेरी'' इत्यादि उच्चारण करते हुये अति अहंकार कर रहे हैं, इनकी तृष्णा कभी भी तृप्त नहीं होती। पंच विषय-विकारों में फँस कर सदा कुसंगी बन रहे हैं। क्षमा, वस्तुविचारादि अनेक योद्धा रक्षक होने पर भी, इस कलियुग में अगम अपार प्रभु रूप फल प्राप्त होना कठिन है, अतः वे दूर ही भास रहे हैं। जिसके बड़े भाग्य होते हैं, वही सृष्टिकर्त्ता सब कुछ प्रदाता प्रभु रूप फल संशय-विपर्यय रहित प्राप्त करता है।

३६५-(गुजराती) विरह। धीमा ताल

तूं घर आवने[1] माहरे रे, हूं जाउं वारणे ताहरे रे ॥ टेक ॥
रैन दिवस मूनै निरखताँ जाये,
वेलो[2] थई[3] घर आवे रे वाहला[4] आकुल थाये[5] ॥ १ ॥

वाली ध्वनि होने लगती है। **काया अगम अगाध है, मांहीं तूर बजाइ। दादू परकट पीव मिल्या, गुरुमुख रहे समाइ।** = जैसे ब्रह्मांड अगम अगाध है, वैसे ही काया भी अगम अगाध है। हमने काया में ही अनाहत ध्वनि रूप नगाड़ा बजा कर मन को स्थिर किया, तब काया में ही प्रत्यक्ष रूप से प्रभु की प्राप्ति हुई है। इस प्रकार गुरुमुख द्वारा श्रवण करी पद्धति से साधन करके शरीर में ही हम प्रभु से मिले और उसी में वृत्ति द्वारा समा रहे हैं।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग सूहा (काया बेली ग्रंथ) समाप्तः ॥ २२ ॥

अथ राग वसंत २३

(गायन समय प्रभात ३ से ६ तथा वसंत ऋतु)

३६४-भजन भेद। मल्लिका मोद ताल

निर्मल नाम न लीया जाइ, जाके भाग बड़े सोई फल खाइ॥ टेक॥
मन माया मोह मद माते, कर्म कठिन ता माँहिं परे।
विषय विकार मान मन माँहीं, सकल मनोरथ स्वाद खरे॥ १ ॥
काम क्रोध ये काल कल्पना, मैं मैं मेरी अति अहंकार।
तृष्णा तृप्ति न मानै कबहूँ, सदा कुसंगी पंच विकार॥ २ ॥
अनेक जोध रहैं रखवाले, दुर्लभ दूर फल अगम अपार।
जाके भाग बड़े सोई फल पावै, दादू दाता सिरजनहार॥ ३ ॥

सांसारिक प्राणियों के और संतों के भजन में भेद रहता है, यह कह रहे हैं—सर्व साधारण प्राणियों से भगवान् का निर्मल नाम-चिन्तन नहीं किया जाता,जिसके महान् भाग्य होते हैं, वही संत नाम-चिन्तन के आनन्द रूप फल का उपभोग करता है। प्राणियों के मन, मायिक मोह और धनादि मद से मतवाले हो रहे हैं। प्राणी तो जो निर्दयतापूर्ण कर्म हैं, उनको कर रहे हैं। मन में विषय-विकार, सम्पूर्ण मनोरथ और विषय स्वाद को सत्य मान रहे हैं। ये जो काल रूप काम, क्रोध, नाना कल्पना, ''मैं-मैं और मेरी'' इत्यादि उच्चारण करते हुये अति अहंकार कर रहे हैं, इनकी तृष्णा कभी भी तृप्त नहीं होती। पंच विषय-विकारों में फँस कर सदा कुसंगी बन रहे हैं। क्षमा, वस्तुविचारादि अनेक योद्धा रक्षक होने पर भी, इस कलियुग में अगम अपार प्रभु रूप फल प्राप्त होना कठिन है, अतः वे दूर ही भास रहे हैं। जिसके बड़े भाग्य होते हैं, वही सृष्टिकर्त्ता सब कुछ प्रदाता प्रभु रूप फल संशय-विपर्यय रहित प्राप्त करता है।

३६५-(गुजराती) विरह। धीमा ताल

तूं घर आवने[1] माहरे रे, हूं जाउं वारणे ताहरे रे॥ टेक॥
रैन दिवस मूनै निरखताँ जाये,
वेलो[2] थई[3] घर आवे रे वाहला[4] आकुल थाये[5] ॥ १ ॥

तिल तिल हूं तो ताहरी वाटड़ी जोऊं,
एने[६] रे आँसूड़े वाहला मुखड़ो धोऊं ॥ २ ॥
ताहरी दया करि घर आवे रे वाहला,
दादू तो ताहरो छे रे मा[८] कर टाला[७] ॥ ३ ॥

विरह दिखा रहे हैं—हे प्रभो ! आप मेरे घर पधारिये[४], मैं आपकी बलिहारी जाता हूँ। आप मुझे रात्रि दिन विरह-व्यथा में देखते जा रहे हैं, फिर भी क्यों नहीं आते ? प्रियतम[४] ! बहुत समय[२] व्यतीत हो गया[३], अब तो पधारिये। आपके बिना मेरा मन व्याकुल हो रहा[५] है। मैं तो प्रति क्षण आपका मार्ग देख रहा हूँ और प्रियतम ! इन[६] विरह अश्रुओं से अपना मुख धो रहा हूँ। प्रियतम !अन्य प्रकार से आप न आ सकें तो अपनी दया करके ही मेरे घर पधारें। मैं तो आपका ही हूँ, कोई बहाना[७] करके मुझ से अलग मत[८] रहिये।

३६६- करुणा विनती। तेवरा ताल

मोहन दुख दीरघ तूं निवार, मोहि सतावै बारंबार ॥टेक॥
काम कठिन घट रहै माँहिं, तातैं ज्ञान ध्यान दोउ उदय नाँहिं ।
गति मति मोहन विकल मोर, तातैं चित्त न आवै नाम तोर ॥ १ ॥
पांचों द्वन्द्वर देह पूरि, तातैं सहज शील सत रहैं दूरि ।
सुधि बुधि मेरी गई भाज, तातैं तुम विसरे महाराज ॥ २ ॥
क्रोध न कबहूँ तजै संग, तातैं भाव भजन का होइ भंग ।
समझि न काई मन मंझारि, तातैं चरण विमुख भये श्री मुरारि ॥ ३ ॥
अंतरजामी कर सहाइ, तेरो दीन दुखित भयो जन्म जाइ ।
त्राहि त्राहि प्रभु तूं दयाल, कहै दादू हरि कर सँभाल ॥ ४ ॥

विरह-दु:ख पूर्वक विनय कर रहे हैं—हे विश्व-विमोहन भगवान् ! यह जन्म-मरण रूप विशाल दु:ख मुझे बारंबार व्यथित कर रहा है, आप इसे दूर करें। जीतने में अति कठिन काम अन्त:करण में रहता है इसलिए उसमें न तो ध्यान करने की योग्यता प्रकट होती है और न आपके स्वरूप का ज्ञान ही प्रकट होता है। हे मोहन ! मेरी बुद्धि आपके स्वरूप सम्बन्धी विचारों में जाती है, तब कामादि उसे व्याकुल कर देते हैं, इससे आपका नाम चित्त पर आता ही नहीं। पांचों ज्ञानेन्द्रियें चपल रहती हैं तथा राग-द्वेषादि द्वन्द्व अन्त:करण में भरे रहते हैं। इससे निर्द्वन्द्वता, शील और सत्य अन्त:करण से दूर ही रहते हैं। मेरी निर्मल बुद्धि (ज्ञान) मेरे हृदय से भाग गई है, इसी से हे महाराज ! मैं आपको भूल गया हूँ। क्रोध कभी भी मेरा साथ नहीं छोड़ता, इससे श्रद्धा-भक्ति नष्ट हो जाती है। मन में पाप रूप काई होने से सुविचार स्थिर नहीं रहते, आने पर भी फिसल जाते हैं। इससे हे श्री मुरारे ! मेरे मन बुद्धि आदि आपके चरणों से विमुख हो रहे हैं। हे अन्तर्यामी ! मैं आपका हूँ, अति दीन दुखित हो रहा हूँ। इसी अवस्था में ही मेरा जन्म व्यतीत हो रहा है। मेरी

सहायता करो रक्षा करो, रक्षा करो। प्रभो ! आप दयालु हैं, मैं आप से विनय कर रहा हूँ, मेरी संभाल करिये।

३६७-मन स्थिरार्थ बिनती। एक ताल

मेरे मोहन मूरति राखि मोहि, निश वासर गुण रमूं तोहि ॥ टेक॥
मन मीन होइ ज्यों स्वाद खाइ, लालच लागो जल तैं जाइ ।
मन हस्ती मातो अपार, काम अंध गज लहै न सार ॥ १ ॥
मन पतंग पावक परै, अग्नि न देखे ज्यों जरे ।
मन मृगा ज्यों सुनैं नाद, प्राण तजै यूं जाइ बाद ॥ २ ॥
मन मधुकर जैसे लुब्ध वास, कवल बँधावै होइ नास ।
मनसा वाचा शरण तोर, दादू को राखो गोविन्द मोर॥ ३ ॥

मन की चपलताजन्य क्लेश से रक्षार्थ विनय कर रहे हैं—हे मेरे मोहन ! मुझे अपने स्वरूप में संलग्न रखिये। मैं रात्रि-दिन आपके गुणों में रमण करता रहूं, ऐसी कृपा करिये। जैसे मच्छी स्वाद-वश लोभ में लगकर मांस युक्त कंटक खाती है, तब जल से बाहर जाती है,वैसे ही यह मन आपके स्वरूप को छोड़ कर विषयों में जाता है। जैसे कामांध गज अत्यधिक मस्ती में आकर कागज की हथिनी पर पड़ता है, वैसे ही यह मन आपके स्वरूप-ज्ञान रूप सार को न ग्रहण करके काम-वश हो बन्धन में पड़ता है। जैसे पतंग दीप-ज्योति रूप अग्नि में पड़कर जलता है, वैसे ही यह मन सुन्दर रूप को अग्नि न समझ कर उसमें पड़ता है और चिन्ता से जलता है। जैसे मृग नाद सुनने के लिए प्राण छोड़ देता है, वैसे ही यह मन अनुचित शब्दों पर जाकर व्यर्थ दु:ख पाता है। जैसे भ्रमर गंध के लोभ से सायंकाल में सूर्यमुखी कमल पर जाकर बैठता है और कमल-कोश बन्द होने पर उसी में बन्द होकर नाश हो जाता है, वैसे ही मन गंधाधीन होकर व्यथित होता है। हे मेरे गोविन्द ! मैं मन वचन से आपकी शरण हूँ, मेरे मन को अपने स्वरूप में स्थिर करके उसकी चलपता जन्य दु:ख से मेरी रक्षा करिये।

३६८-उपदेश। एक ताल

बहुरि न कीजै कपट काम, हृदय जपिये राम नाम ॥टेक॥
हरि पाखैं[1] नहिं कहूँ ठाम, पीव बिन खड़भड़ गाँव गाँव ।
तुम राखो जियरा अपनी माँम[2], अनत जनि जाय रहो विश्राम ॥ १ ॥
कपट काम नहिं कीजै हांम[3], रहु चरण कमल कहु राम नांम ।
जब अंतरयामी रहै जांम[4], तब अक्षय पद जन दादू पांम[5] ॥ २ ॥

उपदेश कर रहे हैं—फिर कभी भी कपट पूर्ण काम न करना। हृदय में हरि का ध्यान करते हुये राम-नाम जपना चाहिए। हरि बिना[1] कहीं भी शांति का स्थान नहीं है। प्रभु रक्षा न करें तो प्रति ग्राम में गड़बड़ हो सकती है। तुम मन तथा अपनी ममता[2] प्रभु में ही रक्खो। अन्य में ममता न जायगी, तब ही सुख से रह सकोगे। कपट-पूर्ण काम के करने की हिम्मत[3] न करो। वृत्ति द्वारा

भगवद् चरण-कमलों में रहते हुये राम का नाम कहो। जब अन्तर्यामी प्रभु एक पहर[४] भी तुम्हारे हृदय में प्रकट होकर रहेंगे तो तुम भक्त बनकर अक्षय पद प्राप्त[५] कर लोगे।

(उक्त भजन दुबारा डाका मारने पर पीथा को कहा था।)

३६९-परिचय प्राप्ति। कड्डुक ताल

तहँ खेलूं पीव सूं नित ही फाग, देख सखी री मेरे भाग॥ टेक॥
तहँ दिन दिन अति आनन्द होइ, प्रेम पिलावै आप सोइ।
संगियन सेती रमूं रास, तहँ पूजा अरचा चरण पास ॥ १ ॥
तहँ वचन अमोलक सब ही सार, तहँ बरतै लीला अति अपार ।
उमंग देइ तब मेरे भाग, तिहिँ तरुवर फल अमर लाग ॥ २ ॥
अलख देव कोइ जानै देव, तहँ अलख देव की कीजै सेव ।
दादू बलि बलि बारंबार, तहँ आप निरंजन निराधार ॥ ३ ॥

प्रत्यक्ष प्राप्ति का परिचय दे रहे हैं—हे सखी! देख तो सही, मेरा कैसा अच्छा भाग्य है जो ध्यानावस्था में मैं अपने प्रियतम प्रभु के साथ प्रतिदिन होली के उत्सव के समान प्रेम का खेल खेलती हूँ। उन प्रभु के पास प्रतिदिन ही आनंद होता रहता है, वे स्वयं ही मुझे प्रेम-प्याला पिलाते हैं। मैं अपने साथी अन्त:करण इन्द्रियों के सहित उन प्रभु से रास खेलती हूँ। वहां उन प्रभु के चरणों के पास रह कर ही अर्चना भक्ति द्वारा उनकी आराधना करती हूँ। वहां का वचन-व्यवहार सभी सार रूप और अमूल्य होता है तथा अति अपार लीलायें होती रहती हैं। प्रभु मेरे भाग्यवश प्रसन्न होकर मुझे शुभाशीर्वाद देंगे, तब मेरे साधन वृक्ष पर अमर करने वाला अभेद ज्ञान रूप फल लगेगा। वे प्रभु मन-इन्द्रिय के अविषय हैं, उन निरंजन देव के रहस्यमय स्वरूप का आदि अन्त कोई नहीं जान सकता। वहां ध्यानावस्था में ही, उन अलख देव की सेवा करनी चाहिए। जो सविकल्प समाधि में निरंजन, निराधार, प्रभु भासते हैं, उनकी मैं बारंबार बलिहारी जाती हूँ।

३७०-परिचय सुख वर्णन। षड् ताल

मोहन माली सहज समाना, कोई जानैं साध सुजाना॥ टेक॥
काया बाड़ी माँहीं माली, तहाँ रास बनाया ।
सेवग सौं स्वामी खेलन को, आप दया कर आया ॥ १ ॥
बाहर भीतर सर्व निरंतर, सब में रह्या समाई ।
परगट गुप्त गुप्त पुनि परगट, अविगत लख्या न जाई ॥ २ ॥
ता माली की अकथ कहानी, कहत कही नहिं आवै ।
अगम अगोचर करत अनंदा, दादू ये जस गावै ॥ ३ ॥

साक्षात्कार जन्य आनन्द का वर्णन कर रहे हैं—विश्व-बाग लगाने वाले और उसके संरक्षक भगवान् रूप माली स्वाभाविक रूप से सब में समाये हुये हैं किन्तु इस प्रकार उनको कोई ज्ञानी संत ही जानते हैं। जैसे विश्व में वे हैं, वैसे ही काया-वाटिका में भी हैं। वे स्वामी मुझ सेवक

के साथ क्रीड़ा करने के लिए स्वयं ही दया करके मेरे हृदय में प्रकट हो आये हैं और वृत्ति रूप गोपियों के साथ रास रच कर आनन्द दे रहे हैं, तो भी वे विश्व के बाहर भीतर स्थित रहते हुये निरंतर सब में समाये हुये रहते हैं। वे कभी हृदय में प्रकट रूप से भासते हैं, तो कभी गुप्त हो जाते हैं, गुप्त होकर पुन: प्रकट हो जाते हैं। वे इन्द्रियों के अविषय प्रभु बाह्य नेत्रों से नहीं दीखते। उन प्रभु रूप माली की कथा, अकथनीय है वाणी द्वारा कहने पर भी यथार्थ रूप से कही नहीं जाती। वे मन से अगम और इन्द्रियों से परे रहकर भी हमारे को परमानन्द देते रहते हैं और हम उनका उक्त प्रकार यश गान करते रहते हैं।

३७१-परिचय। षड़ताल

मन मोहन मेरे मन ही माँहिं, कीजै सेवा अति तहाँ॥ टेक॥
तहँ पायो देव निरंजनां, परगट भयो हरि यह तना।
नैनन हीं देखूं अघाइ, प्रकट्यो है हरि मेरे भाइ॥ १॥
मोहि कर नैनन की सैन देइ, प्राण मूंस हरि मोर लेइ।
तब उपजै मोकों इहै बानि, निज निरखत हूं सारंगपानि॥ २॥
अंकुर आदैं प्रकट्यो सोइ, बैन बाण तातैं लागे मोहि।
शरणै दादू रह्यो जाइ, हरि चरण दिखावै आप आइ॥ ३॥

साक्षात्कार की स्थिति बता रहे हैं—मेरे मनमोहन भगवान् मन में ही स्थित हैं, उनकी सेवा-पूजा वहां मन में ही विशेष रूप से करनी चाहिए। वहां ही हमने निरंजन देव को प्राप्त किया है। वे हरि दया करके इस शरीर के हृदय-देश में मेरे भावाधीन ही प्रकट हुये हैं, मैं उन्हें ज्ञान-नेत्रों से तृप्त[१] देखता हूं। वे हरि ध्यानावस्था में मुझे अपने से अभिन्न करने के लिए, अपने हाथ और नेत्रों की सैन देते हैं तथा मेरे मन को चुरा लेते हैं। तब मेरे हृदय में अद्वैत रूप से देखने का स्वभाव उत्पन्न हो जाता है फिर मैं भगवान् को निज स्वरूप ही देखने लगता हूँ। यह अद्वैत स्वभाव बीज रूप से मुझ में आदि काल का ही है। उसी का भक्ति रूप अँकुर प्रकट हुआ है। इस अँकुर के प्रकट होने से ही मेरे सद्गुरु के वचन-बाण लगे हैं और मैं हरि की शरण होकर, भजन द्वारा उनके पास ही जा रहा हूँ। तब ही तो स्वयं हरि आकर अपने चरणों का दर्शन कराते हुये मुझे अपने से अभिन्न कर रहे हैं।

३७२-थकित निश्चल। मदन ताल

मतिवाले पंचूं प्रेम पूर, निमष न इत उत जाहिं दूर॥ टेक॥
हरि रस माते दया दीन, राम रमत ह्वै रहे लीन।
उलट अपूठे भये थीर, अमृत धारा पीवहिं नीर॥ १॥
सहज समाधी तज विकार, अविनाशी रस पीवहिं सार।
थकित भये मिल महल माँहिं, मनसा वाचा आन नाँहिं॥ २॥

मन मतवाला राम रंग, मिल आसन बैठे एक संग ।
सुस्थिर दादू एक अंग, प्राणनाथ तहँ परमानन्द ॥ ३ ॥

इति राग वसन्त समाप्त: ॥ २३ ॥ पद ९ ॥

संसार भ्रमण से हार कर प्रभु स्वरूप में निश्चल हो रहे हैं, यह कह रहे हैं—शुद्ध बुद्धि वाले हम पांचों ज्ञानेन्द्रियों में प्रभु-प्रेम भर कर स्थित हैं, अब हमारी इन्द्रियाँ प्रभु को त्याग कर क्षणिक भी इधर-उधर नहीं जाती और हम दया-दीनता से संपन्न हरि-रस में मस्त होकर, भजन द्वारा राम में रमण करते हुये उसी में लीन रहते हैं। मन इन्द्रियों को विषयों से बदल कर तथा संसार को पीठ देकर भगवत् स्वरूप में स्थिर हो रहे हैं। तालु-मूल से झरने वाली अमृत-धारा को जल के समान पीते हैं। विकारों को त्याग कर सहज समाधि में अविनाशी और विश्व के सार ब्रह्मानंद रस का पान करते हैं। समाधि महल में प्रभु से मिलने के पश्चात् विषयों में जाने से हार मान गये हैं। हम मन-वचन से कहते हैं, अब हमें अन्य कुछ भी प्रिय नहीं लगता, मन भी राम-प्रेम में मस्त होकर, इन्द्रियों के साथ एक भगवद् स्वरूप आसन पर ही बैठता है। इस प्रकार परमानन्द रूप प्राणनाथ अद्वैत प्रभु के स्वरूप में ही स्थिर हो रहे हैं।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग वसन्त समाप्त: ॥ २३ ॥

अथ राग भैरूं २४

(गायन समय प्रात:काल)

३७३-सद्‌गुरु तथा नाम महिमा । त्रिताल ।

सतगुरु चरणां मस्तक धरणां, राम नाम कहि दुस्तर तिरणां ॥ टेक ॥
अठ सिधि नव निधि सहजैं पावै, अमर अभै पद सुख में आवै ॥ १ ॥
भगति मुकति बैकुण्ठाँ जाइ, अमर लोक फल लेवै आइ ॥ २ ॥
परम पदारथ मंगल चार, साहिब के सब भरे भंडार ॥ ३ ॥
नूर तेज है ज्योति अपार, दादू राता सिरजनहार ॥ ४ ॥

गुरु और नाम की महिमा बता रहे हैं—सद्‌गुरु के चरणों में शिर रख कर राम-नाम कहने से प्राणी दुस्तर संसार से पार हो जाता है। अनायास ही अष्टसिद्धि, नव निधि और अमर अभय पद को प्राप्त कर लेता है। सब प्रकार के दु:खों से मुक्त होकर सुख में स्थित होता है। परब्रह्म रूप परम पदार्थ प्राप्त होता है। अन्य भी सब प्रकार मंगल का ही व्यवहार होता है। कारण प्रभु के तो सभी वस्तुओं के भंडार भरे हैं, फिर उनके भक्त को क्या नहीं मिलेगा ? जो तेज स्वरूप हैं, जिनकी स्वरूप ज्योति अपार है, उन्हीं सृष्टिकर्ता प्रभु के स्वरूप में, हम सद्‌गुरु चरणों में मस्तक रखकर तथा नाम-चिन्तन करके ही अनुरक्त हुये हैं।

मन मतवाला राम रंग, मिल आसन बैठे एक संग ।
सुस्थिर दादू एक अंग, प्राणनाथ तहँ परमानन्द ॥ ३ ॥

इति राग वसन्त समाप्त: ॥ २३ ॥ पद ९ ॥

संसार भ्रमण से हार कर प्रभु स्वरूप में निश्चल हो रहे हैं, यह कह रहे हैं—शुद्ध बुद्धि वाले हम पांचों ज्ञानेन्द्रियों में प्रभु-प्रेम भर कर स्थित हैं, अब हमारी इन्द्रियाँ प्रभु को त्याग कर क्षणिक भी इधर-उधर नहीं जाती और हम दया-दीनता से संपन्न हरि-रस में मस्त होकर, भजन द्वारा राम में रमण करते हुये उसी में लीन रहते हैं। मन इन्द्रियों को विषयों से बदल कर तथा संसार को पीठ देकर भगवत् स्वरूप में स्थिर हो रहे हैं। तालु-मूल से झरने वाली अमृत-धारा को जल के समान पीते हैं। विकारों को त्याग कर सहज समाधि में अविनाशी और विश्व के सार ब्रह्मानंद रस का पान करते हैं। समाधि महल में प्रभु से मिलने के पश्चात् विषयों में जाने से हार मान गये हैं। हम मन-वचन से कहते हैं, अब हमें अन्य कुछ भी प्रिय नहीं लगता, मन भी राम-प्रेम में मस्त होकर, इन्द्रियों के साथ एक भगवद् स्वरूप आसन पर ही बैठता है। इस प्रकार परमानन्द रूप प्राणनाथ अद्वैत प्रभु के स्वरूप में ही स्थिर हो रहे हैं।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग वसन्त समाप्त: ॥ २३ ॥

अथ राग भैरूं २४

(गायन समय प्रात:काल)

३७३-सद्गुरु तथा नाम महिमा । त्रिताल ।

सतगुरु चरणां मस्तक धरणां, राम नाम कहि दुस्तर तिरणां ॥ टेक ॥
अठ सिधि नव निधि सहजैं पावै, अमर अभै पद सुख में आवै ॥ १ ॥
भगति मुकति बैकुण्ठाँ जाइ, अमर लोक फल लेवै आइ ॥ २ ॥
परम पदारथ मंगल चार, साहिब के सब भरे भंडार ॥ ३ ॥
नूर तेज है ज्योति अपार, दादू राता सिरजनहार ॥ ४ ॥

गुरु और नाम की महिमा बता रहे हैं—सद्गुरु के चरणों में शिर रख कर राम-नाम कहने से प्राणी दुस्तर संसार से पार हो जाता है। अनायास ही अष्टसिद्धि, नव निधि और अमर अभय पद को प्राप्त कर लेता है। सब प्रकार के दु:खों से मुक्त होकर सुख में स्थित होता है। परब्रह्म रूप परम पदार्थ प्राप्त होता है। अन्य भी सब प्रकार मंगल का ही व्यवहार होता है। कारण प्रभु के तो सभी वस्तुओं के भंडार भरे हैं, फिर उनके भक्त को क्या नहीं मिलेगा ? जो तेज स्वरूप हैं, जिनकी स्वरूप ज्योति अपार है, उन्हीं सृष्टिकर्ता प्रभु के स्वरूप में, हम सद्गुरु चरणों में मस्तक रखकर तथा नाम-चिन्तन करके ही अनुरक्त हुये हैं।

३७४-उत्तम ज्ञान-स्मरण । चौताल

तन ही राम मन ही राम, राम हृदय रमि राखी ले ।
मनसा राम सकल परिपूरण, सहज सदा रस चाखी ले ॥ टेक ॥
नैनां राम बैनां राम, रसनां राम सँभारी ले ।
श्रवणां राम सन्मुख राम, रमता राम विचारी ले ॥ १ ॥
श्वासैं राम सुरतैं राम, शब्दैं राम समाई ले ।
अंतर राम निरंतर राम, आत्माराम ध्याई ले ॥ २ ॥
सर्वैं राम संगैं राम, राम नाम ल्यौ लाई ले ।
बाहर राम भीतर राम, दादू गोविन्द गाई ले ॥ ३ ॥

श्रेष्ठ ज्ञान तथा श्रेष्ठ स्मरण बता रहे हैं—तन, मन और हृदय में राम रम रहे हैं उन्हीं का ध्यान रख। राम बुद्धि में तथा सब में परिपूर्ण हैं। सहजावस्था में जाकर सदा राम-रस का आस्वादन कर नेत्रों से राम को देख, वचन से राम बोल, रसना से रसास्वादन करते हुये भी राम का चिन्तन कर, श्रवणों से राम सम्बन्धी शब्द सुन और विचार पूर्वक राम को सब में रमने वाला जान कर, सन्मुख भी राम को ही देख। प्रत्येक श्वास, वृत्ति, और शब्द में राम को समाहित रख, राम निरंतर सबके भीतर स्थित हैं। राम को आत्म स्वरूप जान कर उनकी आराधना कर, राम सर्व रूप हैं, सबके संग हैं, ऐसा समझ कर राम-नाम में वृत्ति लगा। राम को बाहर-भीतर समान जान कर, वेद वाणी द्वारा प्राप्त होने वाले राम का नाम और यश गान करते हुये उन्हें प्राप्त कर ले।

३७५-उत्तम स्मरण। मदन ताल।

ऐसी सुरति राम ल्यौ लाइ, हरि हृदय जनि बिसरि जाइ ॥ टेक ॥
छिन छिन मात सँभारे पूत, बिंद राखे जोगी अवधूत ।
त्रिया कुरूप रूप को रटै, नटणी निरख बांस बरत[१] चढ़ै ॥ १ ॥
कच्छप दृष्टि धरै धियांन, चातक नीर प्रेम की बांन ।
कुंजी कुरलि सँभालै सोइ, भृंगी ध्यान कीट को होइ ॥ २ ॥
श्रवणों शब्द ज्यों सुनै कुरंग, ज्योति पतंग न मोड़ै अंग ।
जल बिन मीन तलफि ज्यों मरै, दादू सेवक ऐसैं करे ॥ ३ ॥

श्रेष्ठ स्मरण पद्धति बता रहे हैं—राम के स्वरूप में ऐसी दृढ़ वृत्ति लगाओ कि वृत्ति विषयों में जाकर हरि का स्मरण कभी न भूल सके, निरंतर हृदय में स्मरण बना रहे जैसे माता अपने नवजात शिशु को बारंबार सँभालती है। अवधूत योगी विशेष संयम से वीर्य की रक्षा करता है। कुरूपा नारी रूपवती होने का चिन्तन करती है। नटनी बाँसों पर बंधे हुये रस्से[१] पर चढ़ कर, उस रस्से को ध्यान से देखती है। कछुवी अपनी दृष्टि अंडों पर रखती है। चातक पक्षी स्वाति जल से प्रेम रखता है, अपने स्वभाव को नहीं छोड़ता। कूंजी बोलते हुये वृत्ति से अंडों का स्मरण करती है। कीट भृंगी का

ध्यान करता है। मृग ध्यान पूर्वक शब्द सुनता है। पतंग दीप ज्योति से अपने शरीर को न हटाकर उससे प्रेम करता है। मच्छी जल बिना मर जाती है। उक्त सभी प्रेमियों के समान भक्त भगवान् का सप्रेम स्मरण करता है, वही उत्तम स्मरण कहलाता है।

३७६-स्मरण फल। एक ताल

निर्गुण राम रहै ल्यौ लाइ, सहजें सहज मिलै हरि जाइ ॥ टेक॥
भौजल व्याधि लिपै नहिं कबहूँ, कर्म न कोई लागै आइ ।
तीनों ताप जरै नहिं जियरा, सो पद परसै सहज सुभाइ ॥ १ ॥
जन्म जरा जोनी नहिं आवै, माया मोह न लागै ताहि ।
पांचों पीड़ प्राण नहिं व्यापै, सकल सोधि सब इहै उपाइ॥ २ ॥
संकट संशय नरक न नैनहुं, ताको कबहूँ काल न खाइ ।
कंप न काई भय भ्रम भागै, सब विधि ऐसी एक लगाइ ॥ ३ ॥
सहज समाधि गहो जे दिढ़ कर, जासौं लागै सोई आइ ।
भृंगी होइ कीट की न्यॉंई, हरि जन दादू एक दिखाइ ॥ ४ ॥

स्मरण का फल बता रहे हैं—निर्गुण राम में वृत्ति लगाकर स्थिर रहने से साधक शनैः शनैः वृत्ति द्वारा जाकर हरि से मिलता है। संसार-सिन्धु के दुःख रूप जल से लिपायमान नहीं होता। हरि में मन रहने से कुकर्म नहीं होता। इससे कुकर्म का फल कोई भी पाप आकर हृदय में नहीं लगता। जिसमें दैहिक, दैविक, भौतिक इन तीनों तापों से हृदय नहीं जलता, वह पद अनायास ही प्राप्त होता है। योनि में आकर जन्म-जरावस्था को प्राप्त नहीं होता। उस भक्त के हृदय में मायिक मोह नहीं लगता। पंच विषय जन्य दुःख मन को नहीं होता। हमने सर्व प्रकार सब कुछ खोज लिया है, इस संसार में परम सुख का उत्तम उपाय तो यह हरि स्मरण ही है। इसके करने वाले प्राणी का मन कभी संकट और संशय में नहीं पड़ता। वह अपने नेत्रों से नरक नहीं देखता। उसे कभी भी काल नहीं खाता। उसके हृदय में विक्षेप और पाप रूप काई नहीं रहती, भय और भ्रम भाग जाते हैं। अतः सब प्रकार से उस एक प्रभु में ही ऐसी दृढ़ वृत्ति लगाओ, जिससे सहज समाधि होकर उसका दर्शन हो जाय। दृढ़ता से जिसका नाम ग्रहण करके जिसमें लग जाता है, वही हृदय में आ जाता है, यह नियम है। जैसे कीट भृंगी बन जाता है, वैसे ही भक्त हरि बन जाता है, फिर दोनों एक रूप ही दिखाई देते हैं।

३७७-आशीर्वाद। षड्ताल

धन्य धन्य तूं धन्य धणी, तुम सौं मेरी आइ बणी ॥ टेक ॥
धन्य धन्य तूं तारे जगदीश, सुर नर मुनिजन सेवैं ईश।
धन्य धन्य तूं केवल राम, शेष सहस्र मुख ले हरि नाम ॥ १ ॥

धन्य धन्य तूं सिरजनहार, तेरा कोई न पावै पार।
धन्य धन्य तूं निरंजन देव, दादू तेरा लखे न भेव॥ २॥

आशीर्वादात्मक मंगल कर रहे हैं—हे स्वामिन् ! आपकी शरण आने पर ही मेरी बात ठीक बनी है अर्थात् शांति मिली है। आप धन्य हैं, धन्य हैं, धन्य हैं। हे जगदीश ! नर, मुनि जन देवता और महादेव भी आपकी भक्ति करते हैं। आप ही संसार से तारते हैं। आप धन्य हैं, धन्य हैं। हे अद्वैत स्वरूप राम ! शेष भी अपने सहस्र-मुखों से आप हरि के नाम लेते हैं। आप धन्य हैं, धन्य हैं। हे सृष्टिकर्त्ता ! आपका कोई भी पार नहीं पा सकता, आप धन्य हैं, धन्य हैं। हे निरंजन देव ! मैं भी आपके रहस्य मय स्वरूप का आदि अन्त नहीं देख सकता। आप धन्य हैं, धन्य हैं।

३७८-भयभीत भयानक। दादरा

का जानों मोहि का ले करसी, तनहिं ताप मोहि छिन न विसरसी॥ टेक॥
आगम मोपै जान्यूं न जाइ, इहै विमासण[1] जियरे माँहिं॥ १॥
मैं नहिं जानों क्या शिर होइ, तातैं जियरा डरपै रोइ॥ २॥
काहू तैं ले कछू करै, तातैं मइया जीव डरै॥ ३॥
दादू न जानै कैसे कहै, तुम शरणागति आइ रहै॥ ४॥

३७८-३८० में भयानक संसार से डर कर उसका निर्देश कर रहे हैं—क्या पता है ? उन प्रभु की प्राप्ति बिना काल मुझे ग्रहण करके मेरे कर्मानुसार क्या-क्या करेगा ? उन प्रभु की प्राप्ति के बिना दु:ख शरीर को एक क्षण भी नहीं छोड़ेगा ? भविष्य की बात मुझ से जानी नहीं जाती। अत: मेरे हृदय में यही विमर्शन[1] (विचार) आता है कि—मेरे शिर पर क्या होने वाला है, मैं नहीं जानता। इसी से मन डर रहा है और मैं उन प्रभु की प्राप्ति के लिए रो रहा हूँ। वे प्रभु किसी से मन तो लेते हैं फिर कुछ का कुछ कर देते हैं अर्थात् दर्शन नहीं देते। इसी से मेरा मन डर रहा है। मैं तो आपकी शरण आ गया हूँ, अब नहीं जानता कि—आपको मेरे मन की व्यथा कैसे कहूँ ?

३७९-क्रीड़ा तालश्वण्डनि

का जानों राम को गति मेरी, मैं विषयी मनसा नहिं फेरी॥ टेक॥
जे मन माँगै सोई दीन्हा, जाता देख फेरि नहिं लीन्हा॥ १॥
देवा द्वन्द्वर अधिक पसारे, पांचों पकर पटक नहिं मारे॥ २॥
इन बातन घट भरे विकारा, तृष्णा तेज मोह नहिं हारा॥ ३॥
इनहिं लाग मैं सेव न जानी, कहै दादू सुन कर्म कहानी॥ ४॥

हे राम ! मैं नहीं समझता कि—मेरी कौन गति होगी ? कारण मैंने अपनी बुद्धि विषयों से हटाकर आपके स्वरूप में नहीं लगाई। जो भी मन ने माँगा वही उसे दिया, मन को अनुचित विषय में जाता देखकर भी पीछा नहीं बदला। इन्द्रिय रूप देवताओं के आधीन होकर, काम क्रोधादिक

द्वन्द्वों को ही अधिक फैलाया। पंच ज्ञानेन्द्रियों को इच्छानुसार देता रहा, संयम द्वारा पकड़ के तथा भक्ति-भूमि में पटककर, वैराग्य-दंडों से नहीं मारा। इन उक्त विषय-उपभोगादि बातों में ही लगा रहा। अन्त:करण में विषय-विकार ही भरे। अति तृष्णा और मोह का त्याग नहीं किया। इनमें लगे रहने के कारण ही मैं आपकी भक्ति करना भी न जान सका। वही अपनी कर्म कथा मैं आपको कह रहा हूँ।

३८०-क्रीड़ा तालश्चण्डनि

डरिये रे डरिये, तातैं राम नाम चित धरिये ॥ टेक ॥
जिन ये पंच पसारे रे, मारे रे ते मारे रे ॥ १ ॥
जिन ये पंच समेटे रे, भेटे रे ते भेटे रे ॥ २ ॥
कच्छप ज्यों कर लीये रे, जीये रे ते जीये रे ॥ ३ ॥
भृंगी कीट समाना रे, ध्याना रे यहु ध्याना रे ॥ ४ ॥
अजा[१] सिंह ज्यों रहिये रे, दादू दर्शन लहिये रे ॥ ५ ॥

अरे ! परमेश्वर से डरो, डरो ! वे राम-नाम चिन्तन से प्रसन्न होते हैं, इसलिये राम-राम को चित्त में रक्खो। जिन लोगों ने इन पंच ज्ञानेन्द्रियों को विषयों में फैलाया है, वे बारंबार यम दूतों के द्वारा मारे गये हैं और जिन्होंने विषयों में फैले हुये इन पंचों को एकत्र करके प्रभु के स्वरूप में लगाया है, वे प्रतिक्षण प्रभु से मिले रहे हैं। जैसे कछुआ भय से अपने अंगों को अपनी ढाल के नीचे ले आता है, वैसे ही जिनने अपने मन, बुद्धि और इन्द्रियों को आत्म परायण किया है वे ब्रह्म रूप होकर प्रति युग में जीवित रहे हैं। ब्रह्म रूप होने के लिए जैसे कीट भृंगी का ध्यान करता है, वैसे ही ब्रह्म का ध्यान करना चाहिए। यही ध्यान वास्तविक ध्यान है। जैसे दो सिंहों के पिंजरों के बीच बकरी[१] बांध दी जाय और उसे खाने-पीने को भी खूब दिया जाय तो भी वह सिंहों के भय से भीत रह कर स्थूल नहीं होती, वैसे ही काल और भगवान् के भय से युक्त होकर जो भजन करता है, वह विषयों से नहीं फूलता और अन्त में भगवद् दर्शन करता है।

३८१-हरि प्राप्ति दुर्लभ। त्रिताल

तहँ मुझ कमीन[१] की कौन चलावै, जाको अजहुँ मुनिजन महल न पावै ॥ टेक ॥
शिव विरंचि नारद यश गावैं, कौन भांति कर निकट बुलावें॥ १ ॥
देवा सकल तेतीसों क्रोरि, रहे दरबार ठाढे कर जोरि ॥ २ ॥
सिध साधक रहे ल्यौ लाइ, अजहूँ मोटे महल न पाइ ॥ ३ ॥
सब तैं नीच मैं नाम न जाना, कहै दादू क्यों मिलै सयाना ॥ ४ ॥

भगवद् मिलन कठिन है, यह कह रहे हैं—उन परमेश्वर के पास मुझ तुच्छ[१] की बात कौन चलायेगा ? जिनके स्वरूप-महल को मुनिजन अति प्रयत्न करके अभी तक भी प्राप्त न कर सके हैं। शिव, ब्रह्मा और नारदादि देवर्षि जिनका यश-गान करते हैं, वे मुझे किस रीति से अपने समीप बुलायेंगे ? जिनके दरबार के द्वार पर तेतीस कोटि सब देवता हाथ जोड़ कर खड़े रहते हैं। सिद्ध

और साधक जन अपनी वृत्ति जिनके स्वरूप में लगा कर स्थिर रहते हैं, किन्तु अभी भी जिसमें संपूर्ण विश्व रहता है, ऐसे विशाल महल रूप प्रभु को नहीं पा सके हैं, तब मैं तो सबसे तुच्छ हूँ और उनके नाम का वास्तविक रीति से चिन्तन करना भी नहीं जान सका हूँ, फिर वे परम चतुर प्रभु मुझ से कैसे मिलेंगे ? उनका मिलना कठिन ही है।

३८२ करुणा विनती। त्रिताल

तुम बिन कहु क्यों जीवन मेरा, अजहूँ न देख्या दर्शन तेरा॥ टेक॥
होहु दयाल दीन के दाता, तुम पति पूरण सब विधि साचा ॥ १ ॥
जो तुम करो सोइ तुम्ह छाजै, अपने जन को काहे न निवाजै॥ २ ॥
अकरन करन ऐसैं अब कीजे, अपनो जान कर दर्शन दीजै ॥ ३ ॥
दादू कहै सुनहु हरि सांई, दर्शन दीजै मिलो गुसांई ॥ ४ ॥

दु:खपूर्वक दर्शनार्थ विनय कर रहे हैं—हे प्रभो ! मैं अति प्रयत्न करके भी अभी तक आपका दर्शन न कर सका, तो कहिये, आपके बिना अब मेरा जीवित रहना कैसे संभव होगा ? हे स्वामिन् ! आप सब में परिपूर्ण और सब प्रकार सत्य का पालन करने वाले हैं, दीनों के लिए देवता कहलाते हैं । अत: आप मुझ पर दयालु होकर अपनी दयालुता का यथार्थ परिचय दीजिये। आप तो जो भी करते हैं, वही आप को शोभा देता है, फिर अपने भक्त पर क्यों नहीं दया करते ? न करने योग्य के भी करने वाले प्रभो ! अब तो इस प्रकार अनुग्रह कीजिये कि—मुझे अपना जानकर दर्शन दीजिये। हे विश्व स्वामिन् हरे ! मैं आप से प्रार्थना कर रहा हूँ, प्रभो ! मुझे दर्शन देकर मुझ से मिलें।

३८३-उपदेश चेतावनी। पंजाबी त्रिताल

कागा रे करंक[1] पर बोले, खाइ मांस अरु लग[2] ही डोले ॥टेक॥
जा तन को रचि अधिक सँवारा, सो तन ले माटी में डारा ॥ १ ॥
जा तन देख अधिक नर फूले, सो तन छाड़ि चल्या रे भूले॥ २ ॥
जा तन देख मन में गर्वाना, मिल गया माटी तज अभिमाना ॥ ३ ॥
दादू तन की कहा बड़ाई, निमष माँहिं माटी मिल जाई ॥ ४ ॥

उपदेश द्वारा सावधान कर रहे हैं—अरे ! जैसे मृतक पशु के पंजर[1] पर काक पक्षी बैठकर बोलता है और मांस खाकर पास[2] ही फिरता रहता है, वैसे ही संसार के प्राणी स्वार्थी हैं, अपनी आशा पूर्ति के लिए आकर बोलते हैं, प्रेम करते हैं, पास-पास फिरते हैं। जिस शरीर को तूने वस्त्र, भूषणादि श्रृंगार रचकर अधिक सुन्दर बनाया है, वही तन उठाकर मिट्टी में डालेंगे। जिस शरीर को देखकर मनुष्य बहुत प्रसन्न होता था और फूला नहीं समाता था, उस शरीर को छोड़ कर चला गया। यह देखते हुए भी शरीराध्यास से सब प्रभु को भूल रहे हैं। जिस सुन्दर शरीर को देखकर प्राणी मन में गर्व करता था, वह भी मिट्टी में मिल गया है। अतः शरीर के अभिमान को छोड़ राम नाम जप। अरे ! इस शरीर की क्या बड़ाई करता है, यह निमेष में मिट्टी में मिल जाने वाला है।

३८४-उपदेश । त्रिताल

जप गोविन्द विसर जनि जाइ, जन्म सुफल करिये लै लाइ ॥टेक॥
हरि सुमिरण सौं हेत लगाइ, भजन प्रेम यश गोविन्द गाइ।
मानुष देह मुक्ति का द्वारा, राम सुमिर जग सिरज नहारा॥ १ ॥
जब लग विषम व्याधि नहिं आई, जब लग काल काया नहिं खाई।
जब लग शब्द पलट नहिं जाई, तब लग सेवा कर राम राई ॥ २ ॥
अवसर राम कहसि नहिं लोई[१], जनम गया तब कहै न कोई।
जब लग जीवै तब लग सोई, पीछैं फिर पछतावा होई ॥ ३ ॥
सांई सेवा सेवक लागे, सोई पावै जे कोई जागे।
गुरुमुख भरम तिमिर सब भागे, बहुरि न उलटे मारग लागे॥ ४ ॥
ऐसा अवसर बहुरि न तेरा, देख विचार समझ जिय मेरा।
दादू हारि जीत जग आया, बहुत भांति कह-कह समझाया ॥ ५ ॥

३८४-३८५ में हितकर उपदेश कर रहे हैं—अरे मन ! गोविन्द का नाम जप, गोविन्द को भूल कर संसार में क्यों भटक रहा है ? भगवान् के स्वरूप में वृत्ति लगा कर अपने जन्म को सफल कर। हरि स्मरण से स्नेह लगाकर भजन कर, प्रेम से गोविन्द का यश गान कर। मनुष्य देह मुक्ति-महल का द्वार है, इसमें जगत् के रचने वाले राम का स्मरण कर। जब तक शरीर में भयंकर रोग नहीं आवे, शब्द न बदले अर्थात् वाणी विकल न हो और शरीर को काल न खाय, उससे पहले ही विश्व के राजा राम की भक्ति कर ले। लोग[१] राम भजन करने के समय में तो भजन करते नहीं, फिर जन्म व्यतीत हो जायगा तब अन्त समय में राम-राम कोई भी न कह सकेगा। जब तक सुख से जीते हैं, तब तक तो मोह निद्रा में सोते हैं, फिर पीछे वृद्धावस्था में दु:ख पड़ेगा तब पश्चात्ताप ही होगा। जो कोई सेवक मोह निद्रा से जाग कर प्रभु की भक्ति में लगे हैं, वे ही प्रभु को प्राप्त करेंगे। गुरुमुख द्वारा सुने उपदेश से भ्रम रूप सम्पूर्ण अंधकार हृदय से भाग जाता है, तब प्राणी विपरीत मार्ग में नहीं जाता। अरे मन ! विचार द्वारा समझ कर देख, ऐसा समय पुन: तेरे हाथ न लगेगा। मैंने तुझे बहुत प्रकार कह-कह कर समझाया है कि—तू जगत् में जीतने के लिए मनुष्य शरीर में आया है, फिर हार क्यों रहा है ? भजन-विचार करके मोह-दल को शीघ्र विजय कर।

३८५-प्रतिताल

राम नाम तत काहे न बोलै, रे मन मूढ़ अनत जनि डोलै ॥ टेक॥
भूला भरमत जन्म गमावै, यहु रस रसना काहे न गावै॥ १ ॥
क्या झक औरै परत जंजाले, वाणी विमल हरि काहे न सँभालै ॥ २ ॥
राम विसार जन्म जनि खोवै, जपले जीवन साफल होवै ॥ ३ ॥
सार सुधा सदा रस पीजे, दादू तन धर लाहा लीजे ॥ ४ ॥

अरे मूर्ख मन ! अन्य स्थानों में क्यों भटकता है ? कल्याण-साधनों का सार राम-नाम क्यों नहीं बोलता ? भ्रम वश भूल कर भटकते हुये अपने मानव जन्म को व्यर्थ खो रहा है, राम का नाम तथा यश-गान करते हुये यह उत्तम रस रसना से क्यों नहीं लेता ? क्यों व्यर्थ परिश्रम करके यम-जाल में पड़ता है ? संतों की पवित्र वाणी का आश्रय लेकर हरि स्मरण क्यों नहीं करता ? राम को भूल कर जन्म व्यर्थ क्यों खो रहा है ? राम नाम का जप कर, जिससे तेरा जीवन सफल हो। अरे साधनों का सार स्मरण-सुधा-रस का सदा पान कर, मानव शरीर को धारण करके यह लाभ तो अवश्य ले।

३८६-तत्त्वोपदेश। प्रतिताल

आप आपण में खोजो रे भाई, वस्तु अगोचर गुरु लखाई ॥ टेक ॥
ज्यों मही बिलोयें माखण आवै, त्यों मन मथियाँ तैं तत पावै ॥ १ ॥
काष्ठ हुताशन[1] रह्या समाई, त्यों मन माँहीं निरंजन राई ॥ २ ॥
ज्यों अवनी[2] में नीर समाना, त्यों मन माँहीं साच सयाना ॥ ३ ॥
ज्यों दर्पण के नहिं लागै काई, त्यों मूरति माँहीं निरख लखाई॥ ४ ॥
सहजैं मन मथियां तैं तत पाया, दादू उन तो आप लखाया॥ ५ ॥

आत्म तत्त्व प्राप्ति के लिए उपदेश कर रहे हैं—हे भाई ! तुम स्वयं ही गुरु की बताई हुई पद्धति से भजन-विचारादि साधन द्वारा इन्द्रियातीत आत्म वस्तु को खोजोगे, तब गुरुदेव संकेत मात्र से ही तुम्हें दिखा देंगे। जैसे दही को मन्थन करने से मक्खन हाथ आता है, वैसे ही मन में ध्यान-विचार करने से आत्म-तत्त्व प्राप्त होता है। जैसे काष्ठ में व्यापक अग्नि[1] रहता है, वैसे ही मन में विश्व के राजा निरंजन ब्रह्म है। जैसे पृथ्वी[2] में जल है, वैसे ही हे चतुर ! मन में सत्य ब्रह्म है। जैसे दर्पण में स्थित प्रतिविम्ब के दर्पण का मैल नहीं लगता, वैसे ही शरीर में स्थित आत्म-स्वरूप ब्रह्म को शरीर के विकार नहीं लगते। तू विचार द्वारा देख, तो दिखाई देगा। जिसने मन से ध्यान-विचार किया है, उसने ब्रह्मात्म-तत्त्व को प्राप्त किया है और उसने अन्य साधकों को भी निजात्म-रूप से ब्रह्म का साक्षात्कार कराया है।

३८७-उपदेश। धीमा ताल

मन मैला मन ही सौं धोइ, उनमनि लागै निर्मल होइ ॥ टेक ॥
मन ही उपजै विषय विकार, मन ही निर्मल त्रिभुवन सार ॥ १ ॥
मन ही दुविधा नाना भेद, मन ही समझै द्वै पख छेद ॥ २ ॥
मन ही चंचल चहुँ दिशि जाइ, मन ही निश्चल रह्या समाइ ॥ ३ ॥
मन ही उपजै अग्नि शरीर, मन ही शीतल निर्मल नीर ॥ ४ ॥
मन उपदेश मनहिं समझाइ, दादू यहु मन उनमनि लाइ॥ ५ ॥

मन को समाधि द्वारा स्वरूप में लगाने का उपदेश कर रहे हैं—पापों से मन मलीन हो गया है, उस मैल को मन के द्वारा ही पवित्र-निष्काम कर्म करके धोओ। जब मन निर्मल होगा, तब समाधि में लगेगा वा समाधि में लगकर ही परम निर्मल होगा। कुसंग द्वारा मन में ही विषय-विकार उत्पन्न होते हैं और जब सत्संग द्वारा मन निर्विकार होकर निर्मल होता है तब मन ही में त्रिभुवन के सार परमात्मा का ज्ञान होता है। भेदवादियों के संग से मन ही में नाना भेद तथा दुविधा खड़ी होती है और अद्वैतवादियों के संग से मन ही में अभेद विचार उत्पन्न होकर द्वैत-पक्ष का छेदन होता है। विषयों के संग से मन में ही चंचलता उत्पन्न होती है और वह चारों दिशाओं में गमन करता है तथा भगवद् ध्यान द्वारा मन ही निश्चल स्थिति में आकर प्रभु स्वरूप में समाया हुआ रहता है। प्रतिपक्ष के कारण मन ही से शरीर में क्रोधाग्नि उत्पन्न होती है। अनुकूल परिस्थिति से मन ही में शांतिरूप निर्मल जल उत्पन्न होता है। अत: मन को ही उपदेश द्वारा सम्यक् समझाओ। इस मन को समाधि में लगाकर ही तुम परब्रह्म का साक्षात्कार कर सकोगे।

३८८-मन प्रति शूरातन। धीमा ताल

रहु रे रहु मन मारूंगा, रती रती कर डारूंगा ॥ टेक॥
खंड खंड कर नाखूंगा, जहाँ राम तहँ राखूंगा ॥ १ ॥
कह्या न मानै मेरा, शिर भानूंगा तेरा ॥ २ ॥
घर में कदे न आवै, बाहर को उठ धावै ॥ ३ ॥
आतम राम न जानै, मेरा कह्या न मानैं ॥ ४ ॥
दादू गुरुमुख पूरा, मन सौं झूझै शूरा ॥ ५ ॥

मन को जीतने के लिए शौर्यता दिखा रहे हैं—अरे मन! तू कुमार्ग में जाने से रुक जा, नहीं रुकेगा तो मैं तुझे रत्ती-रत्ती कर डालूंगा अर्थात् संकल्प ही नहीं बनने दूंगा। वैराग्य, भजन विचारादि साधनों से मैं तेरे टुकड़े-टुकड़े कर डालूंगा। इस प्रकार तुझे कमजोर करके ध्यानावस्था में जहां अष्टदल-कमल पर राम का दर्शन होता है वहां ही तुझे स्थिर रक्खूंगा। तू मेरा कहा नहीं मानता, याद रख, मैं संयम-दंड से तेरा चपलता रूप शिर फोड़ डालूंगा। तू अन्तर्मुखता रूप घर में कभी भी नहीं आता और बाह्य विषयों में बारंबार दौड़ जाता है। आत्म-स्वरूप राम को जानने का उपाय भी नहीं करता। तुझे बारंबार कहने पर भी तू मेरा कहा नहीं मानता। इस प्रकार गुरु मुख से सुने उपदेश में पूर्ण रूप से चलने वाला वीर साधक मन से युद्ध करता रहता है।

३८९-नाम शूरातन। मकरनन्द ताल

निर्भय नाम निरंजन लीजै, इन लोगन का भय नहिं कीजै॥ टेक॥
सेवक शूर शंक नहीं मानै, राणा राव रंक कर जानै॥ १ ॥
नाम निशंक मगन मतवाला, राम रसायन पिवै पियाला॥ २ ॥
सहजैं सदा राम रंग राता, पूरण ब्रह्म प्रेम रस माता॥ ३ ॥
हरि बलवन्त सकल सिर गाजै, दादू सेवक कैसैं भाजै॥ ४ ॥

नाम चिन्तन करने में शौर्यता की प्रेरणा कर रहे हैं—इन सांसारिक लोगों का कुछ भी भय न करके निर्भयता पूर्वक निरंजन-राम का नाम चिन्तन कर। भक्त वीर किसी का भी भय न मान कर, महाराणा, और राजा आदि को भी रंक समान जानकर निर्भयता से राम-चिन्तन में निमग्न रहता है। इस प्रकार राम-भक्ति रसायन का प्याला पान करके मतवाला बना रहता है। सदा स्वाभाविक रीति से राम-रंग में अनुरक्त रहता है। जो ऐसे पूर्ण ब्रह्म के प्रेम-रस में मस्त है, वह भक्त किसी से भयभीत होकर भजन से कैसे भागेगा ? कारण-जो सबके शिर पर गर्जना करने वाले अपार बल सम्पन्न हरि हैं, वे उसके सदा सहायक हैं, तब उसे किसका भय हो।

३९०-समर्थाई । प्रतिपाल

ऐसो अलख अनंत अपारा, तीन लोक जाको विस्तारा ॥टेक॥
निर्मल सदा सहज घर रहै, ताको पार न कोई लहै ।
निर्गुण निकट सब रह्यो समाइ, निश्चल सदा न आवै जाइ ॥ १ ॥
अविनाशी है अपरंपार, आदि अनन्त रहै निरधार ।
पावन सदा निरन्तर आप, कला अतीत लिपत नहिं पाप ॥ २ ॥
समर्थ सोई सकल भरपूर, बाहर भीतर नेड़ा न दूर ।
अकल आप कलै नहिं कोई, सब घट रह्यो निरंजन होई ॥ ३ ॥
अवरण आपैं अजर अलेख, अगम अगाध रूप नहिं रेख ।
अविगत की गति लखी न जाइ, दादू दीन ताहि चित लाइ ॥ ४ ॥

प्रभु की सामर्थ्य बता रहे हैं—यह त्रिलोकी जिनका विस्तरित विराट रूप है, वे प्रभु ऐसे अनन्त अपार हैं कि—उनका वास्तविक स्वरूप मन इन्द्रियों से नहीं देखा जाता। वे निर्मल हैं, सदा सहजावस्था रूप घर में रहते हैं, उनका पार कोई भी नहीं पाता। वे निर्गुण हैं, सबके समीप और सब में समाये हुये हैं। सदा निश्चल रहते हैं। व्यापक होने से उनमें जाना-आना नहीं बनता। वे सृष्टि के आदि और अन्त में भी निश्चय पूर्वक अविनाशी तथा अपरंपार रूप से रहते हैं। वे सदा पवित्र, निरन्तर कला विभाग से रहित रहते हैं, पाप से लिपायमान नहीं होते, वे समर्थ सब में परिपूर्ण हैं; बाहर भीतर एक रस हैं, सबके आत्म-स्वरूप होने से समीप वा दूर नहीं कहे जा सकते। वे स्वयं निराकार हैं, इससे कालादि कोई भी उन्हें नष्ट नहीं कर सकते। माया रहित होकर भी सबके अन्त:करण में आत्म रूप से स्थित हैं। उनका कोई रंग नहीं। परिवर्तन बिना स्वयं ही जरा रहित हैं। लेख-बद्ध नहीं हो सकते। अगम अगाध हैं, रूप-रेखा रहित हैं। जिन इन्द्रियों के अविषय प्रभु की सामर्थ्य अपार है, उनकी सीमा देखी नहीं जा सकती। मैं दीन तो उन प्रभु में ही चित्त लगाये रहता हूँ।

३९१-समर्थ लीला । तिलवाड़ा

ऐसो राजा सेऊं ताहि, और अनेक सब लागे जाहि ॥ टेक ॥
तीन लोक ग्रह धरे रचाइ, चंद सूर दोऊ दीपक लाइ ।
पवन बुहारे गृह अंगणां, छपन कोटि जल जाके घरां ॥ १ ॥
राते सेवा शंकर देव, ब्रह्म कुलाल[1] न जाने भेव ।
कीरति करणां चारों वेद, नेति नेति न विजाणैं भेद ॥ २ ॥
सकल देवपति सेवा करैं, मुनि अनेक एक चित धरैं ।
चित्र विचित्र लिखैं दरबार, धर्मराइ ठाढ़े गुण सार ॥ ३ ॥
रिधि सिधि दासी आगे रहैं, चार पदारथ जी जी कहैं ।
सकल सिद्ध रहैं ल्यौ लाइ, सब परिपूरण ऐसो राइ ॥ ४ ॥
खलक खजीना भरे भंडार, ता घर बरतै सब संसार ।
पूरि दीवान सहज सब दे, सदा निरंजन ऐसो हे ॥ ५ ॥
नारद गाये गुण गोविन्द, करे सारदा सब ही छंद ।
नटवर नाचैं कला अनेक, आपन देखै चरित अलेख ॥ ६ ॥
सकल साध बाजैं नीशान, जै-जै कार न मेटै आन ।
मालिनि पुहप अठारह भार, आपण दाता सिरजनहार ॥ ७ ॥
ऐसो राजा सोई आहि, चौदह भुवन में रह्यो समाहि ।
दादू ताकी सेवा करै, जिन यहु रचिले अधर धरै ॥ ८ ॥

समर्थ प्रभु की सामर्थ्य रूप लीला दिखा रहे हैं—मैं ऐसे राजा की समीपता सेवन करता हूँ जिसकी सेवा में अन्य अनेक राजा लगे हैं, जिसने त्रिलोक रचे हैं और ग्रहों को रच कर यथा स्थान रक्खे हैं। सूर्य चन्द्र दो दीपक लगाये हैं। जिनके घर वायु गृहांगण को साफ करते हैं, छप्पन कोटि जलद जल भरते हैं, शंकरादि देवता सेवा में अनुरक्त हैं, विष्णु और प्रजापति[1] शरीरों की रचना व पालन सेवा में संलग्न हैं, किन्तु वे भी प्रभु के स्वरूप रहस्य को पूर्ण रूप से नहीं जानते। ऋग्, यजु, साम और अथर्व चारों वेद यश-गान करते हैं किन्तु उनके स्वरूप रहस्य को विशेष रूप से न जानकर 'यह नहीं, यह नहीं'' कह के मौन हो जाते हैं। सब देवताओं के स्वामी इन्द्र भी उनकी सेवा करते हैं। अनेक मुनि उन अद्वैत प्रभु में ही चित्त को लगाये रखते हैं। जिनके दरबार में चित्रगुप्त प्राणियों के पाप-पुण्य का हिसाब विचित्र ढंग से लिखते रहते हैं, श्रेष्ठ गुण वाले धर्मराज खड़े रहते हैं, ऋद्धि-सिद्धि दासी के समान आगे खड़ी रहती हैं। अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष, चारों पदार्थ 'जी भगवन्! जी भगवन्' करते रहते हैं। संपूर्ण सिद्ध अपनी वृत्ति उनके स्वरूप में लगा कर रहते हैं, वे ऐसे राजा हैं, जो सभी कलाओं में परिपूर्ण हैं, संसार के लिये उनने धन के कोश और वस्तुओं के भंडार भर रक्खे हैं। सब संसार उन्हीं से लेकर सब वस्तुएँ बरतता है। वे महान् प्रभु अनायास ही

भक्तों की कमी पूर्ण कर देते हैं। वे ऐसा कार्य करने पर भी सदा निरंजन ही बने रहते हैं, माया-अंजन उनके नहीं लगता। नारद उन गोविन्द के गुण-गान करते हैं, सब प्रकार के छंदों से सरस्वती उनकी स्तुति करती रहती है। वे नटवर अनेक कलाओं द्वारा नृत्य करते हैं और वे अलेख प्रभु अपने चरित्र को आप ही देखते हैं। संपूर्ण संत ही उनके नगाड़े हैं, उन प्रभु की महिमा रूप ध्वनि उनसे निकलना ही उनका बजना है वा सभी सन्तों के उनकी महिमा रूप नगाड़े बजते रहते हैं, जै जै आकार वाली ध्वनि होती ही रहती है। सन्त उनकी मार्यादा नहीं मेटते, अठारह भार वनस्पति उनके पुष्प पहुँचाने वाली मालिनी है। वे सृष्टि-कर्ता प्रभु आप ही सबको कर्मानुसार देते रहते हैं। चौदह भुवनों में समाये हुये ऐसे जो राजा हैं, वे ही हमारे उपास्य हैं। जिनने यह संसार रच कर अधर धर रक्खा है, हम उन्हीं प्रभु की सेवा-भक्ति करते हैं।

यह पद खाटू में राव रायसिंह को कहा था। प्रसंगकथा-दृ सु. सि. त. ११-१९ में देखो।

३९२-जीवित मृतक। एक ताल

जब यहु मैं मैं मेरी जाइ, तब देखत वेग मिलै राम राइ ॥ टेक ॥
मैं मैं मेरी तब लग दूर, मैं मैं मेटि मिलै भरपूर ॥ १ ॥
मैं मैं मेरी तब लग नाँहिं, मैं मैं मेटि मिलै मन माँहि॥ २ ॥
मैं मैं मेरी न पावै कोइ, मैं मैं मेटि मिले जन सोइ ॥ ३ ॥
दादू मैं मैं मेरी मेटि, तब तूं जान राम सौं भेटि॥ ४ ॥

जीवितावस्था में ही मृतक के समान निर्द्वन्द्व होने से ब्रह्म साक्षात्कार होता है, यह कहते हैं—जब ''मैं बली हूं, मैं धनी हूँ, यह मेरी सम्पत्ति है'' इत्यादिक अहंकार हृदय से चला जायगा, तब देखते २ जीवितावस्था में ही शीघ्र विश्व के राजा राम मिल जायेंगे। जब तक ''मैं-मैं, मेरी'' है तब तक राम दूर ही रहेंगे। ''मैं-मैं'' को मिटा दे, फिर तो सब विश्व में परिपूर्ण रूप से भासते हुये तुझे प्रभु मिलेंगे। जब तक ''मैं मैं मेरी'' है तब तक वे प्रभु नहीं के समान ही हैं। ''मैं मैं'' मिटादे फिर तो तेरे मन में ही तुझे मिल जायेंगे। ''मैं-मैं, मेरी'' रहते हुये उन प्रभु को कोई भी नहीं प्राप्त कर सकता। ''मैं मैं'' को मिटा कर प्रभु से मिलता है वही भक्त है। पहले ''मैं मैं मेरी'' यह अहंकार मिटा और जब मिट जाय तब तू समझना कि अब राम से मिलन होगा।

३९३-ज्ञान प्रलह। मदन ताल

नाँहीं रे हम नाँहीं रे, सत्य राम सब माँहीं रे ॥ टेक ॥
नाँहीं धरणि अकाशा रे, नाँहीं पवन प्रकाशा रे ।
नाँहीं रवि शशि तारा रे, नांहिं पावक प्रजारा रे ॥ १ ॥
नाँहीं पंच पसारा रे, नाँहीं सब संसारा रे ।
नहिं काया जीव हमारा रे, नहिं बाजी कौतिकहारा रे ॥ २ ॥
नाँहीं तरूवर छाया रे, नहीं पंखी नहीं माया रे ।
नाँहीं गिरिवर वासा रे, नाँहिं समंद निवासा रे ॥ ३ ॥

नाँहीं जल थल खंडा रे, नाँहीं सब ब्रह्मंडा रे।
नाँहीं आदि अनंता रे, दादू राम रहंता रे ॥ ४ ॥

ज्ञान प्रलय का स्वरूप दिखा रहे हैं—हम जिस रूप से दिखाई दे रहे हैं, उस रूप से सत्य नहीं हैं। जो हम सब में आत्म स्वरूप राम हैं, वे ही सत्य हैं। पृथ्वी, आकाश, वायु, प्रकाश, प्रकाश के हेतु सूर्य, चन्द्र और तारे सत्य नहीं हैं। भली भांति जलाने वाली अग्नि सत्य नहीं हैं। वृक्ष, उनकी छाया, पक्षी, श्रेष्ठ पर्वत तथा उनमें निवास, समुद्र और समुद्र में निवास, जल और जल के बीच नाना द्वीप रूप स्थल खण्ड, सब ब्रह्माण्ड, पंच भूतों का फैलाव सब संसार, काया, हमारा जीवत्व भाव इत्यादिक संसार रूप खेल और माया सत्य नहीं हैं। जब संसार रूप खेल सत्य नहीं है, तब उसका कर्त्ता ईश्वर भाव सत्य नहीं है, कारण-वह भी माया उपाधि से ही भासता है। अत: जो आदि-अन्त से रहित अनन्त निरंजन राम हैं, वे ही सत्य रूप से रहते हैं।

३९४-मध्य मार्ग निष्पक्ष। षड्ताल

अलह कहो भावै राम कहो, डाल तजो सब मूल गहो॥टेक॥
अलह राम कहि कर्म दहो, झूठे मारग कहा बहो ॥ १ ॥
साधू संगति तो निबहो, आइ परै सो शीश सहो ॥ २ ॥
काया कमल दिल लाइ रहो, अलख अलह दीदार लहो॥ ३ ॥
सतगुरु की सुन सीख अहो, दादू पहुँचै पार पहो ॥ ४ ॥

३९४-३९६ में निष्पक्ष मध्य मार्ग से चलने की प्रेरणा कर रहे हैं—अल्लाह नाम कहो चाहे राम नाम कहो, ये दोनों एक ही ईश्वर के नाम हैं। भेद रूप शाखाओं को त्याग कर सबके मूल परमात्मा की शरण ग्रहण करो। अल्लाह वा राम-नाम कहते हुये ज्ञान प्राप्ति द्वारा अपने कर्म-समूह को जलाओ। संसार के मिथ्या मार्ग में क्यों जाते हो ? सन्तों की संगति करोगे, तब ही तुम्हारा सत्य-मार्ग में निर्वाह हो सकेगा। जो भी प्रारब्धवश शिर पर सुख-दु:ख आ पड़े, उसे सहन करो। शरीर के हृदय-कमल में स्थित प्रभु के स्वरूप में वृत्ति लगाये रहोगे, तो तुम मन इन्द्रियों के अविषय ईश्वर का साक्षात्कार कर सकोगे। जब सद्गुरु-शिक्षा को सम्यक् सुनकर उसके अनुसार साधन करते हुये सांसारिक भावनाओं से पार पहुँचोगे, तब परमानन्द स्वरूप प्रभु को प्राप्त कर सकोगे।

३९५-दादरा

हिन्दू तुरक न जानूं दोइ।
सांईं सबन का सोई है रे, और न दूजा देखूं कोइ ॥टेक॥
कीट पतंग सबै योनिन में, जल थल संग समाना सोइ।
पीर पैगम्बर देवा दानव, मीर मलिक मुनिजन को मोहि॥ १ ॥

कर्ता है रे सोई चीन्हौं, जनि[1] वै क्रोध करै रे कोइ।
जैसे आरसी मंजन कीजै, राम रहीम देही तन धोइ ॥ २ ॥
सांई केरी सेवा कीजै, पायो धन काहे को खोइ।
दादू रे जन हरि जप लीजै, जन्म जन्म जे सुरजन[2] होइ ॥ ३ ॥

हिन्दू-मुसलमान, दो मत समझो, सब का उत्पन्न करने वाला वह एक ही परमात्मा है और किसी दूसरे को मैं नहीं देखता। जल तथा स्थल के कीट पतंगादि सभी योनियों में वह ईश्वर समाया हुआ रह कर साथ रहता है। पीरों, पैगम्बरों, देवताओं, दानवों, सरदारों, बादशाह और मुनिजनादि सबको वह मोहित करता है। वास्तविक कर्ता जो ईश्वर है, उसी को पहचानो। बिना विचार एक पक्ष को पकड़ कर कोई किसी पर क्रोध न[1] करें। जैसे दर्पण को मांजकर साफ करने से मुखादि शरीर ठीक दीखता है, वैसे ही अन्त:करण को भजन द्वारा मांजकर पवित्र करो, फिर राम और रहीम एक ही भासेंगे। इस प्रकार निष्पक्ष मध्य मार्ग-द्वारा परमात्मा की भक्ति करो। मानव देह रूप धन प्राप्त होने पर भी इसे व्यर्थ विषयों में क्यों खो रहे हो ? हे जनो ! जो परमात्मा तुम्हारे प्रति-जन्म में सहायक होते हैं, उन्हीं हरि का नाम जप कर उन्हें प्राप्त कर लो, तब ही बार-बार के जन्मजात जग-जंजाल के बन्धन से तुम्हारा निर्विवाद सुलझन[2] होगा अर्थात् आवागमन मिटने से यह मानव-जन्म सफल होगा।

३९६-मदन ताल

को स्वामी को शेख कहै, इस दुनियाँ का मर्म न कोई लहै ॥ टेक ॥
कोई राम कोई अलह सुनावै, पुनि अलह राम का भेद न पावै ॥ १ ॥
कोई हिन्दू कोई तुर्क कर मानैं, पुनि हिन्दू तुर्क की खबर न जानैं ॥ २ ॥
यहु सब करणी दोनों वेद, समझ परी तब पाया भेद ॥ ३ ॥
दादू देखै आतम एक, कहबा सुनबा अनंत अनेक ॥ ४ ॥

हिन्दू-संत को स्वामी और मुस्लिम संत को शेख कहते हैं, ऐसे नाम भेदों में ही हम फँस रहे हैं। इस संसार में मानव-जन्म का जो भगवत्-प्राप्ति रूप रहस्य है, उसे कोई नहीं जानता। कोई राम और कोई अल्लाह सुनाते हैं, किन्तु अल्लाह और राम के सुनाने का जो एक ही रहस्यमय फल है, उसको नहीं पहचान पाते और भ्रमवश एक दूसरे से ईर्ष्या करते हैं। कोई अपने को हिन्दू और कोई मुसलमान मानते हैं, किन्तु हिन्दू और मुसलमान पने का क्या रहस्य है, इसका कुछ भी वृत्तान्त नहीं जानते। ये उक्त वा सभी भेद रूप कर्म का व्यवहार-मय ज्ञान इन दोनों हिन्दू-मुसलमानों में है। हिन्दू भी अनन्त विचार कहते-सुनते हैं तथा मुसलमान भी अनेक बातें कहते सुनते हैं किन्तु हमारी बुद्धि में जब यथार्थ विचार आया, तब हम इसका रहस्य समझ पाये हैं और तभी से हम सब में एक ही आत्मा देखते हैं।

३९७-निन्दा । त्रिताल

निन्दत है सब लोक विचारा, हमको भावै राम पियारा ॥ टेक॥
निस्संशय निर्दोष लगावै, तातैं मोकौं अचरज आवे ॥ १ ॥
दुविधा द्वै पख रहिता जे, तासन कहत गये रे ये ॥ २ ॥
निर्वैरी निष्कामी साध, ता शिर देत बहुत अपराध॥ ३ ॥
लोहा कंचन एक समान, तासन कहत करत अभिमान ॥ ४ ॥
निन्दा औ स्तुति एकै तोलै, तासन कहैं अपवाद हि बोलै ॥ ५ ॥
दादू निन्दा ताको भावै, जाके हिरदै राम न आवै ॥ ६ ॥

राम भक्ति रहित लोगों को ही परनिन्दा प्रिय होती है, यह कह रहे हैं—कल्याण साधन से हीन बेचारे लोग हमारी राम-भक्ति की निन्दा करते हैं, किन्तु हम को तो राम ही प्रिय है। ये लोग संशय रहित, निर्दोष को भी दोष लगाते हैं, इसी से मुझे आश्चर्य होता है। जो ज्ञानी दुविधा मय द्वैत पक्ष से रहित हैं, उनको कहते हैं कि—ये तो उभय लोक से भ्रष्ट हो गये हैं। जो निर्वैरी और निष्कामी संत हैं, उनके शिर भी बहुत दोष लगाते हैं। जो विरक्त लोह और सुवर्ण को एक-सा समझते हैं उन्हें कहते हैं, ये अभिमान करते हैं। जो निन्दा और स्तुति को एक समान समझते हैं, उन्हें कहते हैं, ये ठीक नहीं कहते। उक्त प्रकार निन्दा करना उसी को अच्छा लगता है, जिसके हृदय में राम चिन्तन द्वारा राम का साक्षात्कार नहीं होता।

३९८-(गुजराती) अनन्य शरण । उदीक्षण ताल

माहरूं[१] सूं[२] जेहूं आपूं[३], ताहरूं[४] छै तूनें थापूं[५] ॥ टेक॥
सर्व जीव नें तूं दातार, तैं सिरज्या नें तू प्रतिपाल ॥ १ ॥
तन धन ताहरो तैं दीधो[६], हूं ताहरो नें तैं कीधो[७] ॥ २ ॥
सहुवे[८] ताहरो साचौ ये, मैं मैं माहरो झूठो ते ॥ ३ ॥
दादू नें मन और न आवे, तूं कर्ता नें तूं हि जु भावे ॥ ४ ॥

अनन्य शरण का परिचय दे रहे हैं—मेरा[१] क्या[२] है ? जो मैं आपको दूं[३], आपका[४] ही सब कुछ है। अत: आपको ही समर्पण[५] करता हूँ। सब जीवों को आप ही देने वाले हैं। आपने ही सबको उत्पन्न किया है और आप ही सबके पालने वाले हैं। ये तन धनादि आप के ही हैं, आपने ही दिये[६] हैं। मैं भी आपका ही हूँ क्योंकि आपका ही रचा[७] हुआ हूँ। सत्य तो यही है कि सब[८] कुछ आपका ही है, मैं और मेरापन जो है, वह सब मिथ्या है। मेरे मन में तो अन्य कोई कर्ता है, यह विचार आता ही नहीं। आप ही कर्ता हैं और आप ही मुझे प्रिय हैं।

३९९-निष्काम साधु । उदीक्षण ताल

ऐसा अवधू राम पियारा, प्राण पिंड तैं रहै नियारा ॥टेक॥
जब लग काया तब लग माया, रहै निरन्तर अवधू राया ॥ १ ॥
अठ सिधि भाई नौ निधि आई, निकट न जाई राम दुहाई ॥ २ ॥
अमर अभय पद वैकुण्ठ वास, छाया माया रहै उदास॥ ३ ॥
सांई सेवक सब दिखलावै, दादू दूजा दृष्टि न आवै ॥ ४ ॥

निष्काम संत का परिचय दे रहे हैं—ऐसा अवधूत संत राम का प्यारा होता है-जो स्थूल-सूक्ष्म संघात की आसक्ति से अलग रहता है। जब तक शरीराध्यास है तब तक ही माया है। श्रेष्ठ अवधूत शरीराध्यास से रहित होकर वृत्ति द्वारा निरन्तर आत्म-स्वरूप ब्रह्म में ही स्थिर रहता है। हे भाई ! अष्टसिद्धि तथा नव निधि आयें तो भी उनके पास तक नहीं जाता और कहता है—तुम्हें राम की शपथ है, मेरे पास न आना। देवताओं का अभय स्थान, वैकुण्ठ का निवास, इनको माया की छाया जान कर इनसे उपराम रहता है वा माया की छाया रूप संसार से विरक्त होकर परब्रह्म का जो अमर अभय स्वरूप है, उसी में निवास करता है अर्थात् ब्रह्म से अभिन्न होकर रहता है। भगवान् सेवक को देने के लिये सभी कुछ दिखलाते हैं किन्तु उक्त प्रकार निष्काम अवधूत संत की दृष्टि में आत्म-स्वरूप ब्रह्म को छोड़कर अन्य कुछ भी नहीं आता।

४००-शूरातन कसौटी । भंगताल

तूं साहिब मैं सेवक तेरा, भावै शिर दे शूली मेरा ॥टेक॥
भावै करवत शिर पर सार, भावै लेकर गरदन मार ॥ १ ॥
भावै चहुँ दिशि अग्नि लगाइ, भावै काल दशों दिशि खाइ ॥ २ ॥
भावै गिरि वर गगन गिराइ, भावै दरिया माँहिं बहाइ ॥ ३ ॥
भावै कनक कसौटी देहु, दादू सेवक कस कस लेहु ॥ ४ ॥

भगवान् के बनने में कष्ट सहनता रूप शौर्य दिखा रहे हैं—आप मेरे स्वामी हैं, मैं आपका सेवक हूँ। चाहे आप मेरे शिर के शूली लगादें, शिर पर करवत चलावें, गले में तलवार मारें, चारों ओर अग्नि लगादें, चाहे दशों दिशा काल रूप होकर मुझे खाने लगें, चाहे विशाल पर्वत वा बहुत ऊंचे ले जाकर आकाश से गिरादें, दरिया में बहादें सुवर्ण को जैसे सुनार बारम्बार अग्नि लगाते हैं, वैसे ही मुझे बारम्बार कष्ट दें और भी आप चाहे नाना प्रकार के कष्ट देकर मुझे अपनायें, तो भी सभी मुझे स्वीकार हैं।

४०१-साधु । भंगताल

काम क्रोध नहीं आवै मेरे, तातैं गोविन्द पाया नेरे ॥ टेक ॥
भरम कर्म जाल सब दीन्हा, रमता राम सबन में चीन्हा ॥ १ ॥
दुविधा दुर्मति दूर गमाई, राम रमत साची मन आई ॥ २ ॥

नीच ऊंच मध्यम को नांहीं, देखूं राम सबन के मांहीं ॥ ३ ॥
दादू साच सबन में सोई, पेड[१] पकर जन निर्भय होई ॥ ४ ॥

अपनी संतत्व रूप स्थिति बता रहे हैं—काम-क्रोध मेरे हृदय में नहीं आते, इसी से मैंने अति समीप हृदय में ही गोविन्द को प्राप्त किया है। जब मैंने संपूर्ण भ्रम और कर्म-जन्य सभी पाप ज्ञानाग्नि द्वारा जला दिये, तब ही विश्व में रमने वाले राम को सभी में पहचाना है। दुविधा और दुर्मति जब हृदय से चली गई, तब ही राम के स्वरूप में रमण करने की सच्ची भावना मन में आई है। अब नीच, ऊंच और मध्यम कोई भी नहीं भासता, सभी में राम को ही देखता हूँ। वह सत्य ब्रह्म सब में है। सबके मूल[१] रूप भगवान् की शरण का मार्ग[१] ग्रहण करके ही भक्त जन निर्भय होते हैं।

४०२-हितोपदेश। खेमटाताल

हाजिरां[१] हजूर[२] सांईं, है हरि नेड़ा दूर नांहीं॥टेक॥
मनी[३] मेट महल में पावै, काहे खोजन दूरा जावे ॥ १ ॥
हिर्स[४] न होइ गुस्सा सब खाइ, तातैं संइयां दूर न जाइ॥ २ ॥
दुई[५] दूर दरोग[६] न होइ, मालिक मन में देखै सोइ॥ ३ ॥
अरि ये पंच शोध सब मारै, तब दादू देखै निकट विचारे॥ ४ ॥

४०२-४०३ में हित का उपदेश कर रहे हैं-हम प्रभु के निकट[२] ही उपस्थित[१] हैं, वे हरि व्यापक होने से समीप ही हैं, दूर नहीं है। अभिमान[३] को मिटा, फिर तो हृदय-महल में ही वे मिल जाँयेगे। उनको खोजने के लिये दूर क्यों जाता है ? संत-जनों में भोगों का लोभ[४] नहीं होता और वे संपूर्ण क्रोध को नष्ट कर देते हैं इसी से परमात्मा उनसे दूर नहीं जाते। जिसका द्वैत[५] भाव दूर हो गया और जिससे मिथ्या व्यवहार नहीं होता वह परमात्मा को अपने हृदय में ही देखता है। ये जो पंच ज्ञानेन्द्रिय और काम, क्रोधादि शत्रु हैं, इन सबको जो खोज कर मारता है, वही विचार द्वारा प्रभु को निकट देखता है।

४०३-खेमटा ताल

राम रमत देखै नहिं कोई, जो देखै सो पावन होई ॥टेक॥
बाहर भीतर नेड़ा न दूर, स्वामी सकल रह्या भरपूर ॥ १ ॥
जहँ देखूं तहँ दूसर नाँहिं, सब घट राम समाना माँहिं॥ २ ॥
जहां जाऊँ तहँ सोई साथ, पूर रह्या हरि त्रिभुवन नाथ॥ ३ ॥
दादू हरि देखैं सुख होइ, निश दिन निरखन दीजै मोहि॥ ४ ॥

राम तो सब में रम रहे हैं, किन्तु कोई भी उनको देखता नहीं और जो उनको व्यापक रूप से देखता है, वह पवित्र होकर अन्य को भी पवित्र करने वाला हो जाता है। उन प्रभु को बाहर-भीतर, समीप वा दूर नहीं कह सकते, वे सब में परिपूर्ण हो रहे हैं। मैं तो जहां भी देखता हूँ वहां अन्य को देखता ही नहीं। सभी घटों में राम समाये हुये हैं। मैं जहां जाता हूँ, वहां ही उन्हें साथ देखता हूँ, वे त्रिभुवन स्वामी हरि सर्वत्र परिपूर्ण हो रहे हैं। जब हम हरि को देखते हैं, तब

आनन्द होता है। हे प्रभो ! आप अपना स्वरूप मुझे रात्रि दिन प्रतिक्षण देखने दीजिये, मुझ से छिप कर न रहिये।

४०४-अध्यात्म। एकताल

मन पवन ले उनमन रहै, अगम निगम मूल सो लहै ॥ टेक॥
पंच वायु जे सहज समावै, शशिहर के घर आंणे सूर।
शीतल सदा मिलै सुखदाई, अनहद शब्द बजावै तूर ॥ १ ॥
बंकनालि[१] सदा रस पीवै, तब यहु मनवा कहीं न जाइ।
विकसे कमल प्रेम जब उपजै, ब्रह्म जीव की करै सहाइ ॥ २ ॥
बैस गुफा मैं ज्योति विचारै, तब तेहिं सूझै त्रिभुवन राइ ।
अंतर आप मिलै अविनाशी, पद आनन्द काल नहिं खाइ ॥ ३ ॥
जामण मरण जाइ भव भाजै, अवरण के घर वरण समाइ ।
दादू जाय मिलै जगजीवन, तब यहु आवागवन विलाइ॥ ४ ॥

४०४-४०५ में अध्यात्म विषय कह रहे हैं—जो साधन द्वारा प्रथम मन और प्राणों को अपने वश कर लेता है, वही समाधि में स्थिर रहता है और वेद से भी अगम ब्रह्म को प्राप्त करता है। इड़ा नाड़ी रूप चन्द्र के वाम स्वर रूप घर में पिंगला नाड़ी रूप सूर्य को लाता है, फिर दोनों सुषुम्ना[१] में लाकर, पंच प्राणों को सहजावस्था रूप समाधि में लीन करता है, तब सदा शीतल और सुखदायिनी अवस्था प्राप्त होती है और वहां रुका हुआ प्राण अनाहत नाद रूप नगाड़ा बजाने लगता है तथा साधक सुषुम्ना के द्वारा सदा आनन्द-रस का पान करता है, तब यह मन उस स्थान को छोड़ कर कहीं भी नहीं जाता। इस प्रकार साधन से जब परम-प्रेम उत्पन्न होता है, तब हृदय-कमल खिल जाता है और ब्रह्म, जीव को अपनी ओर आगे बढ़ाने की सहायता करता है, फिर साधक भ्रमर गुफा में ध्यान रूप आसन लगा कर परब्रह्म ज्योति को देखते हुये विचार करता है, तब उसे त्रिभुवन के राजा परब्रह्म भासने लगते हैं और वह स्वयं भीतर ही अविनाशी ब्रह्म में अभेदरूप से मिल जाता है, वह ब्रह्म पद आनन्द रूप है, उसमें स्थित को काल नहीं खाता, जन्मना-मरना दूर हो जाता है, सांसारिक भावनाएँ हृदय से भाग जाती हैं। अवर्ण ब्रह्म के स्वरूप में वर्ण रूप जीव समा जाता है। इस प्रकार जब जीवात्मा जगजीवन ब्रह्म में जा मिलता है, तब यह आना जाना रूप संसार उसका नष्ट हो जाता है।

४०५-एकताल

जीवन मूरी[१] मेरे आतम राम, भाग बड़े पायो निज ठाम॥ टेक॥
शब्द अनाहत उपजै जहां, सुषुम्न रंग लगावै तहां।
तहं रँग लागै निर्मल होइ, ये तत उपजै जानैं सोइ॥ १ ॥

सरवर तहां हंसा रहै, कर स्नान सबै सुख लहै ।
सुखदाई को नैनहुँ जोइ, त्यों त्यों मन अति आनन्द होइ ॥ २ ।
सो हंसा शरणागति जाइ, सुन्दरि तहां पखालै पाइ ।
पीवै अमृत नीझर नीर, बैठे तहां जगत गुरु पीर ॥ ३ ॥
तहँ भाव प्रेम की पूजा होइ, जा पर किरपा जानै सोइ ।
कृपा कर हरि देइ उमंग, तहँ जन पायो निर्भय संग ॥ ४ ॥
तब हंसा मन आनंद होइ, वस्तु अगोचर लखै रे सोइ ।
जाको हरी लखावै आप, ताहि न लिपैं पुन्य न पाप ॥ ५ ॥
तहँ अनहद बाजे अद्भुत खेल, दीपक जलै बाती बिन तेल।
अखंड ज्योति तहँ भयो प्रकास, फाग बसंत ज्यों बारह मास ॥ ६ ॥
त्रय-स्थान निरन्तर निरधार, तहँ प्रभु बैठे समर्थ सार ।
नैनहुँ निरखूं तो सुख होइ, ताहि पुरुष को लखै न कोइ ॥ ७ ॥
ऐसा है हरि दीनदयाल, सेवक की जानैं प्रतिपाल ।
चलु हंसा तहँ चरण समान, तहँ दादू पहुँचे परिवान[१] ॥ ८ ॥

आत्म स्वरूप राम ही मेरे लिये जीवन जड़ी[१] हैं। मेरे विशाल भाग्य थे, तब ही तो मैंने निज धाम ब्रह्म को प्राप्त किया है। जहां हृदय देश में अनाहत नाद उत्पन्न होता है, वहां ही हम सुषुम्ना द्वारा प्रभु के स्वरूप में प्रेम लगाते हैं। वहां प्रेम लगाने पर प्राणी निर्मल हो जाता है। यह प्रेम-तत्व जिसमें उत्पन्न होता है, वही इसके महत्व को जानता है। वहां ही हृदय सरोवर में संत-हंस वृत्ति द्वारा रहते हुये ब्रह्म चिन्तन रूप जल में निमग्नता रूप स्नान करके सब प्रकार से ही सुख प्राप्त करते हैं। जैसे २ सुख प्रदाता आत्म-ज्योति को ज्ञान नेत्रों से देखते हैं, वैसे २ ही मन में अति आनन्द होता है। जहां अष्टदल-कमल पर संपूर्ण सिद्धियों से युक्त जगतगुरु परमात्मा विशेष रूप से विराजे हैं वहां जो संत-हंस उनकी शरण जाता है, उस संत की बुद्धि-सुन्दरी वहां पर उन प्रभु के पद-कमलों को प्रेम-जल से धोती है और अमृत-झरने रूप प्रभु का दर्शन-नीर पान करती है। वहां श्रद्धा-प्रेम से बनी सामग्री से पूजा होती है। जिस पर उन प्रभु की कृपा होती है, वही उस पूजा पद्धति को जानता है। कृपा करके हरि ही प्रेम की लहर प्रदान करते हैं। मुझ दास ने उनकी कृपा से ही उनका निर्भय संग प्राप्त किया है। जब जो इन्द्रियातीत ब्रह्म वस्तु को लखता है तब उसी संत-हंस के मन में आनन्द होता है। जिसको हरि अपना स्वरूप स्वयं दिखाते हैं वा जिसको हरि अपना स्वरूप ही भासते हैं, उसे पुण्य-पाप लिपायमान नहीं करते। वहां हृदय देश में अनाहत बाजे बजना रूप अद्भुत खेल होता है। बिना बत्ती तेल ही दीपक जलता है, उसकी आत्म-ज्योति का अखण्ड प्रकाश हो रहा है। ज्यों वसंतोत्सव फाग का आनन्द होता है, उसके समान बारह मास ही आनन्द रहता है। निश्चय ही, त्रिकुटी-तीर[१]; मन, बुद्धि, चित्त वा जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति रूप तीनों स्थानों

में विश्व के सार, समर्थ प्रभु निरन्तर विराजमान हैं। मैं उनको भीतर के नेत्रों से देखता हूँ तो आनन्द होता है। उन परम-पुरुष को बहिर्मुख अज्ञानी कोई भी नहीं देख सकता। वे दीन दयालु हरि ऐसे सर्वज्ञ और उदार हैं—सेवक के मन की इच्छा और परिस्थिति को जानकर तत्काल उसकी रक्षा करते हैं। अरे जीव रूप हंस ! जहां उन सम स्वरूप प्रभु के चरण हैं वहां ही चल, वहां पहुँचने पर ही तेरा मानव-जन्म ठीक समझा जायगा।

४०६-आत्म परमात्मा रास। एकताल

घट घट गोपी घट घट कान्ह, घट घट राम अमर अस्थान ॥ टेक ॥
गंगा जमना अंतर-वेद, सरस्वती नीर बहै प्रस्वेद ॥ १ ॥
कुंज केलि तहँ परम विलास, सब संगी मिल खेलैं रास ॥ २ ॥
तहाँ बिन बैना बाजैं तूर, विकसै कवल चंद अरु सूर ॥ ३ ॥
पूरण ब्रह्म परम परकास, तहँ निज देखै दादू दास ॥ ४ ॥

इति राग भैंरू समाप्त : ॥ २४ ॥ पद ३४ ॥

आत्म स्वरूप परमात्मा के रास का रूपक बता रहे हैं—प्रत्येक शरीर में वृत्ति रूप गोपियां और साक्षी चेतन रूप कृष्ण हैं तथा प्रत्येक शरीर में ही अमर राम रूप कृष्ण का अष्टदल-कमल रूप वृन्दावन स्थान है। पिंगला रूप गंगा और इड़ा रूप यमुना है। उन दोनों के मध्य षट् चक्र रूप अन्तर्वेद देश है। जैसे सरस्वती पृथ्वी से उमंगती है, वैसे ही सुषुम्ना रूप सरस्वती मिलने पर अर्थात् कुंभक होने पर शरीर से प्रस्वेद आता है, वही सरस्वती का नीर प्रवाह है। साक्षी-चेतनाकार वृत्तियों को जो परमानन्द होता है वह कुंज क्रीड़ा है। मन, बुद्धि इन्द्रियादि सभी साथी मिलकर भगवत् परायणता रूप रास खेलते हैं। उस अन्तर रास में बिना वाणी ही वृत्ति मात्र से गान होता है, बिना हाथों ही अनाहत नाद रूप नगाड़ा बजता है। हृदय-कमल खिल जाता है। इड़ा नाड़ी रूप चन्द्रमा और पिंगला रूप सूर्य, सुषुम्ना रूप अग्नि में लय हो जाते हैं, तब वहां पर एक मात्र परम प्रकाश स्वरूप पूर्ण ब्रह्म को उनके निजी भक्त निजात्मा रूप से देखते हैं।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग भैरव समाप्त : ॥ २४ ॥

अथ राग ललित २५

(गायन समय प्रात: ३ से ६)

४०७-पराभक्ति। त्रिताल

राम तूं मोरा हौं तोरा, पाइन परत निहोरा ॥ टेक ॥
एकैं संगैं वासा, तुम ठाकुर हम दासा ॥ १ ॥
तन मन तुम को देबा, तेज पुंज हम लेबा ॥ २ ॥
रस माँहीं रस होइबा, ज्योति स्वरूपी जोइबा ॥ ३ ॥
ब्रह्म जीव का मेला, दादू नूर अकेला ॥ ४ ॥

में विश्व के सार, समर्थ प्रभु निरन्तर विराजमान हैं। मैं उनको भीतर के नेत्रों से देखता हूँ तो आनन्द होता है। उन परम-पुरुष को बहिर्मुख अज्ञानी कोई भी नहीं देख सकता। वे दीन दयालु हरि ऐसे सर्वज्ञ और उदार हैं—सेवक के मन की इच्छा और परिस्थिति को जानकर तत्काल उसकी रक्षा करते हैं। अरे जीव रूप हंस! जहां उन सम स्वरूप प्रभु के चरण हैं वहां ही चल, वहां पहुँचने पर ही तेरा मानव-जन्म ठीक समझा जायगा।

४०६-आत्म परमात्मा रास। एकताल

घट घट गोपी घट घट कान्ह, घट घट राम अमर अस्थान॥ टेक॥
गंगा जमना अंतर-वेद, सरस्वती नीर बहै प्रस्वेद॥ १॥
कुंज केलि तहँ परम विलास, सब संगी मिल खेलैं रास॥ २॥
तहाँ बिन बैना बाजैं तूर, विकसै कवल चंद अरु सूर॥ ३॥
पूरण ब्रह्म परम परकास, तहँ निज देखै दादू दास॥ ४॥

इति राग भैंरू समाप्त:॥ २४॥ पद ३४॥

आत्म स्वरूप परमात्मा के रास का रूपक बता रहे हैं—प्रत्येक शरीर में वृत्ति रूप गोपियां और साक्षी चेतन रूप कृष्ण हैं तथा प्रत्येक शरीर में ही अमर राम रूप कृष्ण का अष्टदल-कमल रूप वृन्दावन स्थान है। पिंगला रूप गंगा और इड़ा रूप यमुना है। उन दोनों के मध्य षट् चक्र रूप अन्तर्वेद देश है। जैसे सरस्वती पृथ्वी से उमंगती है, वैसे ही सुषुम्ना रूप सरस्वती मिलने पर अर्थात् कुंभक होने पर शरीर से प्रस्वेद आता है, वही सरस्वती का नीर प्रवाह है। साक्षी-चेतनाकार वृत्तियों को जो परमानन्द होता है वह कुंज क्रीड़ा है। मन, बुद्धि इन्द्रियादि सभी साथी मिलकर भगवत् परायणता रूप रास खेलते हैं। उस अन्तर रास में बिना वाणी ही वृत्ति मात्र से गान होता है, बिना हाथों ही अनाहत नाद रूप नगाड़ा बजता है। हृदय-कमल खिल जाता है। इड़ा नाड़ी रूप चन्द्रमा और पिंगला रूप सूर्य, सुषुम्ना रूप अग्नि में लय हो जाते हैं, तब वहां पर एक मात्र परम प्रकाश स्वरूप पूर्ण ब्रह्म को उनके निजी भक्त निजात्मा रूप से देखते हैं।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग भैरव समाप्त:॥ २४॥

अथ राग ललित २५

(गायन समय प्रात: ३ से ६)

४०७-पराभक्ति। त्रिताल

राम तूं मोरा हौं तोरा, पाइन परत निहोरा॥ टेक॥
एकैं संगैं वासा, तुम ठाकुर हम दासा॥ १॥
तन मन तुम को देबा, तेज पुंज हम लेबा॥ २॥
रस माँहीं रस होइबा, ज्योति स्वरूपी जोइबा॥ ३॥
ब्रह्म जीव का मेला, दादू नूर अकेला॥ ४॥

पराभक्ति दिखा रहे हैं—हे राम ! आप मेरे हैं और मैं आपका हूँ। मैं आपके चरणों में पकड़कर प्रार्थना कर रहा हूं—आप स्वामी और मैं आपका दास हूं। अत: हम दोनों एक होकर के साथ ही निवास करें। मैं अपना तन मन आपको दूं और आपका तेज-पुंज लूं। जैसे रस में रस एक हो जाता है वैसे ही आपके स्वरूप में अपने आत्मा को एक करके ज्योति स्वरूप को ही देखूं। ब्रह्म और जीव का मिलन हो जाय, और मैं एक मात्र अद्वैत रूप ही होकर रहूं, ऐसी कृपा कीजिये।

४०८-(मिराठी) अनन्यशरण। त्रिताल

मेरे गृह आव हो गुरु मेरा, मैं बालक सेवक तेरा ॥ टेक ॥
मात पिता तूं अम्हचा[१] स्वामी, देव हमारे अंतरजामी ॥ १ ॥
अम्हचा सज्जन अम्हचा बंधू, प्राण हमारे अम्हचा जिन्दू ॥ २ ॥
अम्हचा प्रीतम अम्हचा मेला, अम्हचा जीवन आप अकेला ॥ ३ ॥
अम्हचा साथी संग सनेही, राम बिना दुख दादू देही ॥ ४ ॥

अनन्य शरण दिखा रहे हैं—हे मेरे गुरुदेव राम ! मेरे अन्त:करण रूप घर में पधारिये। मैं आपका ही बालक और सेवक हूँ। हे अन्तर्यामी ! हमारे[१] तो माता, पिता, स्वामी, देवता, सज्जन, बान्धव, जीवित रखने वाले प्राण, प्रियतम-सम्मेलन, जीवन-सहायक और संग रहने वाले स्नेही, आदि सब कुछ आप अकेले ही हैं। हे राम ! आप के बिना मेरे जीवात्मा को अति दु:ख रहता है।

४०९-(गुजराती) हितोपदेश। गजताल

वाहला माहरा ! प्रेम भक्ति रस पीजिये,
रमिये रमता राम, माहरा वाहला रे ।
हिरदा कमल में राखिये, उत्तम एहज ठाम,
माहरा वाहला रे ॥ टेक ॥
वाहला माहरा ! सतगुरु शरणे अणसरे,
साधु समागम थाइ, माहरा वाहला रे ।
वाणी ब्रह्म बखाणिये, आनन्द में दिन जाइ, माहरा वाहला रे ॥ १ ॥
वाहला माहरा ! आतम अनुभव ऊपजे,
उपजे ब्रह्म गियान, माहरा वाहला रे ।
सुख सागर में झूलिये, साचो स्नान, माहरा वाहला रे ॥ २ ॥
वाहला माहरा ! भव बन्धन सब छूटिये,
कर्म न लागे कोइ, माहरा वाहला रे ।
जीवन मुक्ति फल पामिये[१], अमर अभय पद होइ, माहरा वाहला रे ॥ ३ ॥

वाहला माहरा ! अठ सिधि नौ निधि आँगणें,
परम पदारथ चार, माहरा वाहला रे ।
दादू जन देखे नहीं, रातो सिरजनहार, माहरा वाहला रे ॥ ४ ॥

हित कर उपदेश कर रहे हैं—हे प्रिय शिष्य ! प्रेमाभक्ति-रस का पान करो। हृदय-कमल में सदा राम का ध्यान रक्खो, राम के ध्यान के लिये, यही उत्तम स्थान है किन्तु सद्गुरु की शरण लिये बिना यह काम नहीं चलता, संतों का समागम भी होना ही चाहिये। संत ब्रह्म सम्बन्धी वाणी कहते हैं, उनके संग के दिन आनन्द पूर्वक निकलते हैं। बुद्धि में आत्मानुभव उत्पन्न होकर ब्रह्म ज्ञान प्रकट होता है फिर तो साधक सुख-सागर में झूलता है। यही सच्चा स्नान है। इस स्नान से संपूर्ण संसार बन्धन खुल जाते हैं, कर्तव्य भाव न रहने से कोई भी कर्म का फल नहीं लगता। जीवन्मुक्ति रूप फल प्राप्त[१] करके अमर-अभय पद को प्राप्त होता है। फिर उसके निवास स्थान के आँगण में अष्टसिद्धि, नवनिधि, और अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष, ये चारों परम पदार्थ आते हैं किन्तु वह भक्त उनकी ओर देखता भी नहीं, वह तो सृष्टिकर्ता प्रभु के स्वरूप में ही अनुक्त रहता है।

४१०-अखंड प्रीति । गज ताल

हमारो मन माई ! राम नाम रँग रातो ।
पिव पिव करै पीव को जानैं, मगन रहै रस मातो ॥ टेक ॥
सदा शील संतोष सुहावत, चरण कवल मन बाँधो ।
हिरदा माँही जतन कर राखो, मानो रंक धन लाधो ॥ १ ॥
प्रेम भक्ति प्रीति हरि जानौं, हरि सेवा सुखदाई ।
ज्ञान ध्यान मोहन को मेरे, कंप न लागै काई ॥ २ ॥
संगि सदा हेत हरि लागो, अंग और नहिं आवे ।
दादू दीन दयाल दमोदर, सार सुधा रस भावे ॥ ३ ॥

अखण्ड प्रीति दिखा रहे हैं—हे भाई ! हमारा मन राम-नाम के प्रेम में ही अनुरक्त है। प्रियतम-प्रियतम करता रहता है, एक मात्र प्रियतम को ही जानता है। प्रियतम के चिन्तन में निमग्न रह कर उसी के प्रेम-रस में मस्त रहता है। सदा ही शील, संतोषादि दैवी गुण अच्छे लगते हैं, मन प्रभु के चरण-कमलों में ही बँधा रहता है। जैसे किसी रंक को धन मिल जाय तब वह उसे बड़े यत्न से रखता है, वैसे ही मैं राम-नाम को यत्न पूर्वक हृदय में रखता हूँ। मैं लौकिक प्रेम, नवधा-भक्ति और प्रेमाभक्ति एक मात्र हरि को ही समझता हूं। हरि सेवा ही मुझे सुखप्रद है। मेरे हृदय में ज्ञान और ध्यान भी विश्व-विमोहन भगवान् का ही हे। इससे हृदय में मल-विक्षेप नहीं लग पाते। सदा साथ रहने वाले हरि से मेरा प्रेम लगा है। मेरे हृदय में प्रेम-पात्र के रूप से अन्य कोई भी नहीं आता। दीन-दयालु दामोदर भगवान् ही अमृत-सार के समान मुझे प्रिय लगते हैं।

४११-साहिब सिफत। राजमृगांक ताल

महरवान[१] महरवान,
आब[२] बाद[३] खाक[४] आतिश[५] आदम[६] नीशान ॥ टेक ॥
शीश पाँव हाथ कीये, नैन कीये कान।
मुख कीया जीव दीया, राजिक[७] रहमान[८] ॥ १ ॥
मादर[९] पिदर[१०] परदः पोश[११], सांईं सुबहान[१२] ।
संग रहै दस्त[१३] गहै, साहिब सुलतान ॥ २ ॥
या[२०] करीम[१४] या रहीम[१५], दाना[१६] तूं दीवान[१७] ।
पाक[१८] नूर है हजूर[१९], दादू है हैरान ॥ ३ ॥

ईश्वर के गुण दिखा रहे हैं—वे प्रभु दयालु[१] हैं, अति दयालु हैं। जल[२], वायु[३], पृथ्वी[४], अग्नि[५] और मानव[६] उन्हीं के सृजन रूप विशाल गुण के चिन्ह हैं। उन्हीं प्रभु ने मानव के शिर, पैर, हाथ नेत्र, श्रवण, मुखादि अंग शोभार्थ ठीक स्थानों पर रचे हैं। शरीर में अपना अंश स्वरूप जीव रख दिया है और वे दयालु[८] ही जीविका[७] प्रदान करते हैं। वे पवित्र[१२] प्रभु ही माता[९], पिता[१०] और दोषों[११] को छिपाने वाले हैं। वे भक्त के साथ रहते हैं, विपत्ति में हाथ[१३] पकड़ते हैं, वे ही भक्तों के बादशाह हैं। हे[२०] संसार रचना रूप कर्म[१४] करने वाले, अति कृपालो[१५] ! आप सर्वज्ञ[१६] और महान्[१७] हैं। प्रभो[१९] ! आपका स्वरूप पवित्र[१८] है, मैं आपके गुणों को देखकर आश्चर्य-चकित हूँ।

इति श्रीदादू गिरार्थ प्रकाशिक राग ललित समाप्तः ॥ २५ ॥ पद ५ ॥

अथ राग जैतश्री २६

(गायन समय दिन ३ से ६)

४१२ अमिट नाम विनती। पंजाबी त्रिताल

तेरे नाम की बलि जाऊँ, जहाँ रहूं जिस ठाऊँ ॥ टेक ॥
तेरे बैनों की बलिहारी, तेरे नैनहुँ ऊपरि वारी ।
तेरी मूरति की बलि कीती, बार-बार हौं दीती ॥ १ ॥
शोभित नूर तुम्हारा, सुन्दर ज्योति उजारा।
मीठा प्राण पियारा, तू है पीव हमारा ॥ २ ॥
तेज तुम्हारा कहिये, निर्मल काहेन लहिये।
दादू बलि बलि तेरे, आव पिया तूं मेरे ॥ ३ ॥

नाम और नामी में अखण्ड प्रेम हुये नामी की प्राप्ति के लिये विनय कर रहे हैं—प्रियतम राम ! मैं जिस अवस्था में और जिस स्थान में रहूँगा, आपके नाम की तथा वचनों की बलिहारी

४११-साहिब सिफत। राजमृगांक ताल

महरवान[१] महरवान,
आब[२] बाद[३] खाक[४] आतिश[५] आदम[६] नीशान ॥ टेक ॥
शीश पाँव हाथ कीये, नैन कीये कान।
मुख कीया जीव दीया, राजिक[७] रहमान[८] ॥ १ ॥
मादर[९] पिदर[१०] परदः पोश[११], सांईं सुबहान[१२] ।
संग रहै दस्त[१३] गहै, साहिब सुलतान ॥ २ ॥
या[२०] करीम[१४] या रहीम[१५], दाना[१६] तूं दीवान[१७] ।
पाक[१८] नूर है हजूर[१९], दादू है हैरान ॥ ३ ॥

ईश्वर के गुण दिखा रहे हैं—वे प्रभु दयालु[१] हैं, अति दयालु हैं। जल[२], वायु[३], पृथ्वी[४], अग्नि[५] और मानव[६] उन्हीं के सृजन रूप विशाल गुण के चिन्ह हैं। उन्हीं प्रभु ने मानव के शिर, पैर, हाथ नेत्र, श्रवण, मुखादि अंग शोभार्थ ठीक स्थानों पर रचे हैं। शरीर में अपना अंश स्वरूप जीव रख दिया है और वे दयालु[८] ही जीविका[७] प्रदान करते हैं। वे पवित्र[१२] प्रभु ही माता[९], पिता[१०] और दोषों[११] को छिपाने वाले हैं। वे भक्त के साथ रहते हैं, विपत्ति में हाथ[१३] पकड़ते हैं, वे ही भक्तों के बादशाह हैं। हे[२०] संसार रचना रूप कर्म[१४] करने वाले, अति कृपालो[१५] ! आप सर्वज्ञ[१६] और महान्[१७] हैं। प्रभो[१९] ! आपका स्वरूप पवित्र[१८] है, मैं आपके गुणों को देखकर आश्चर्य-चकित हूँ।

इति श्रीदादू गिरार्थ प्रकाशिक राग ललित समाप्तः ॥ २५ ॥ पद ५ ॥

अथ राग जैतश्री २६

(गायन समय दिन ३ से ६)

४१२ अमिट नाम विनती। पंजाबी त्रिताल

तेरे नाम की बलि जाऊँ, जहाँ रहूं जिस ठाऊँ ॥ टेक॥
तेरे बैनों की बलिहारी, तेरे नैनहुँ ऊपरि वारी ।
तेरी मूरति की बलि कीती, बार-बार हौं दीती ॥ १ ॥
शोभित नूर तुम्हारा, सुन्दर ज्योति उजारा।
मीठा प्राण पियारा, तू है पीव हमारा ॥ २ ॥
तेज तुम्हारा कहिये, निर्मल काहेन लहिये।
दादू बलि बलि तेरे, आव पिया तूं मेरे ॥ ३ ॥

नाम और नामी में अखण्ड प्रेम हुये नामी की प्राप्ति के लिये विनय कर रहे हैं—प्रियतम राम ! मैं जिस अवस्था में और जिस स्थान में रहूँगा, आपके नाम की तथा वचनों की बलिहारी

जाता रहूँगा। आपके नेत्रों पर अपने को निछावर करता हूं। बार-बार आपकी मूर्ति पर अपना सर्वस्व निछावर करके आपको समर्पण कर देता हूँ। आपका रूप सुन्दर-ज्योति के प्रकाश सहित होने से शोभायमान हो रहा है। आप हमारे अति मधुर प्राण-प्रिय स्वामी हैं। कहिये, मैं आपके तेजोमय निर्मल स्वरूप को क्यों नहीं प्राप्त करूंगा ? मैं आपकी बारंबार बलिहारी जाता हूँ। प्रियतम ! आप मेरे हृदय में पधारिये।

४१३-विरह विनती। पंजाबी त्रिताल

मेरे जीव की जानैं जानराइ, तुम तैं सेवक कहा दुराइ[१] ॥ टेक ॥
जल बिन जैसे जाइ जिय तलफत, तुम बिन तैसे हमहु विहाइ।
तन मन व्याकुल होइ विरहनी, दरश पियासी प्राण जाइ॥ १ ॥
जैसे चित्त चकोर चंद मन, ऐसे मोहन हमहि आइ।
विरह अग्नि दहत दादू को, दर्शन परसन तना सिराइ[१]॥ २ ॥

इति श्री राग जेतश्री समाप्तः ॥ २६ ॥ पद २ ॥

विरह पूर्वक दर्शनार्थ विनय कर रहे हैं—हे जानने वालों में अति श्रेष्ठ प्रभो ! मेरे मन की सब स्थिति आप जानते हैं, आपसे सेवक क्या छिपा सकेगा ? जैसे जल बिना प्यासे प्राणी का प्राण तड़फ-तड़फ कर शरीर से निकल जाने को तैयार होता है, वैसे ही आपके बिना हमारा समय व्यतीत हो रहा है। मुझ विरहनी के तन मन व्याकुल हो रहे हैं, दर्शन-वारि की प्यास से व्यथित होकर प्राण शरीर से निकल जाने को उद्यत हैं। जैसे चकोर के चित्त में चन्द्रमा बसा रहता है, वैसे ही हमारे मन में मोहन बसे हुये हैं। मुझे विरहाग्नि जला रही है, आप अपने दर्शन तथा स्पर्श देकर मेरे शरीर को शीतल[१] करिये।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग जैतश्री समाप्तः ॥ २६ ॥

अथ राग धनाश्री २७

(गायन समय दिन ३ से ६)

४१४-अमिट अविनाशी रंग। धीमा ताल

रँग लागो रे राम को, सो रँग कदे न जाई रे।
हरि रँग मेरो मन रँग्यो, और न रंग सुहाई रे ॥ टेक॥
अविनाशी रँग ऊपनो, रच मच लागो चोलो रे ।
सो रँग सदा सुहावनो, ऐसो रंग अमोलो रे ॥ १ ॥
हरि रँग कदे न ऊतरै, दिन दिन होइ सुरङ्गो रे ।
नित नवो निर्वाण है, कदे न ह्वैला भंगो रे ॥ २ ॥
साचो रँग सहजैं मिल्यो, सुन्दर रङ्ग अपारो रे ।
भाग बिना क्यों पाइये, सब रँग माँहीं सारो रे ॥ ३ ॥

जाता रहूँगा। आपके नेत्रों पर अपने को निछावर करता हूं। बार-बार आपकी मूर्ति पर अपना सर्वस्व निछावर करके आपको समर्पण कर देता हूँ। आपका रूप सुन्दर-ज्योति के प्रकाश सहित होने से शोभायमान हो रहा है। आप हमारे अति मधुर प्राण-प्रिय स्वामी हैं। कहिये, मैं आपके तेजोमय निर्मल स्वरूप को क्यों नहीं प्राप्त करूंगा ? मैं आपकी बारंबार बलिहारी जाता हूँ। प्रियतम ! आप मेरे हृदय में पधारिये।

४१३-विरह विनती। पंजाबी त्रिताल

मेरे जीव की जानैं जानराइ, तुम तैं सेवक कहा दुराइ[१]॥ टेक॥
जल बिन जैसे जाइ जिय तलफत, तुम बिन तैसे हमहु विहाइ।
तन मन व्याकुल होइ विरहनी, दरश पियासी प्राण जाइ॥ १ ॥
जैसे चित्त चकोर चंद मन, ऐसे मोहन हमहि आइ।
विरह अग्नि दहत दादू को, दर्शन परसन तना सिराइ[१]॥ २ ॥

इति श्री राग जेतश्री समाप्तः॥ २६॥ पद २॥

विरह पूर्वक दर्शनार्थ विनय कर रहे हैं—हे जानने वालों में अति श्रेष्ठ प्रभो ! मेरे मन की सब स्थिति आप जानते हैं, आपसे सेवक क्या छिपा सकेगा ? जैसे जल बिना प्यासे प्राणी का प्राण तड़फ-तड़फ कर शरीर से निकल जाने को तैयार होता है, वैसे ही आपके बिना हमारा समय व्यतीत हो रहा है। मुझ विरहनी के तन मन व्याकुल हो रहे हैं, दर्शन-वारि की प्यास से व्यथित होकर प्राण शरीर से निकल जाने को उद्यत हैं। जैसे चकोर के चित्त में चन्द्रमा बसा रहता है, वैसे ही हमारे मन में मोहन बसे हुये हैं। मुझे विरहाग्नि जला रही है, आप अपने दर्शन तथा स्पर्श देकर मेरे शरीर को शीतल[१] करिये।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग जैतश्री समाप्तः॥ २६॥

अथ राग धनाश्री २७

(गायन समय दिन ३ से ६)

४१४-अमिट अविनाशी रंग। धीमा ताल

रँग लागो रे राम को, सो रँग कदे न जाई रे।
हरि रँग मेरो मन रँग्यो, और न रंग सुहाई रे॥ टेक॥
अविनाशी रँग ऊपनो, रच मच लागो चोलो रे।
सो रँग सदा सुहावनो, ऐसो रंग अमोलो रे॥ १ ॥
हरि रँग कदे न ऊतरै, दिन दिन होइ सुरङ्गो रे।
नित नवो निर्वाण है, कदे न ह्वैला भंगो रे॥ २ ॥
साचो रँग सहजैं मिल्यो, सुन्दर रङ्ग अपारो रे।
भाग बिना क्यों पाइये, सब रँग माँहीं सारो रे॥ ३ ॥

अवरण को का वरणिये, सो रँग सहज स्वरूपो रे ।
बलिहारी उस रङ्ग की, जन दादू देख अनूपो रे ॥ ४ ॥

४१४-४१५ में न मिटने वाले अविनाशी ब्रह्म रूप रंग का परिचय दे रहे हैं-अरे ! मेरे निरंजन-राम रूप रंग लगा है, वह कभी भी हटने वाला नहीं है। मेरा मन हरि-रँग से रँग गया है, अब अन्य रंग अच्छा नहीं लगता। यह अविनाशी रंग हृदय में ही उत्पन्न हुआ है और मेरे मन रूप चोला के खूब रचमच कर लगा है। वह ऐसा अमूल्य रंग है जो सदा ही सुन्दर लगता है और वह हरि रंग कभी भी उतरता नहीं, प्रत्युत प्रतिदिन सुन्दर होता जाता है। नित्य नूतन रहता है, क्षीणता रूप वाणाघात से रहित है, कभी भी नष्ट न होगा। यह सच्चा रंग संतो की संगति से अनायास ही मिला है और सुन्दर तथा अपार है। यह संपूर्ण रंगों में सार रूप रंग भाग्य बिना कैसे प्राप्त हो सकता है ? अवर्णनीय का क्या वर्णन किया जाय ? यह रंग तो सहज ही सुन्दर है। मैं इस अनुपम रंग को देख कर इसकी बलिहारी जाता हूँ।

४१५-धीमा ताल

लाग रह्यो मन राम सौं, अब अनतैं नहिं जाये रे ।
अचला सौं थिर ह्वै रह्यो, सकै न चित्त डुलाये रे ॥ टेक॥
ज्यों फुनिंग[१] चंदन रहै, परिमल[२] रहै लुभाये रे ।
त्यों मन मेरा राम सौं, अब की बेर अघाये रे ॥ १ ॥
भँवर न छाड़ै बास को, कवल हि रह्यो बँधाये रे ।
त्यों मन मेरा राम सौं, वेध रह्यो चित लाइ रे ॥ २ ॥
जल बिन मीन न जीवई, विछुरत ही मर जाये रे ।
त्यों मन मेरा राम सौं, ऐसी प्रीति बनाये रे ॥ ३ ॥
ज्यों चातक जल को रटै, पिव पिव करत बिहाये रे ।
त्यों मन मेरा राम सौं, जन दादू हेत लगाये रे ॥ ४ ॥

हमारा मन निरंजन राम के स्वरूप चिन्तन में लगा है, अब अन्य में नहीं जाता। अचल ब्रह्म में स्थिर हो रहा है, इसी से चित्त चंचल नहीं हो सकता। जैसे सर्प[१] सुगंध[२] के लोभ से चंदन पर रहता है, वैसे ही मेरा मन परमानन्द के लोभ से राम के स्वरूप चिन्तन में लगा रहता है। इसी से इस वर्तमान जन्म के समय में हम तृप्त हुये हैं। जैसे भ्रमर कमल-गंध के लिए कमल को नहीं छोड़ता, सायंकाल सूर्य छिपने पर उसी में बन्द हो जाता है, वैसे ही मेरा मन राम के स्वरूप-चिन्तन से विद्ध होकर उसी में लगा रहता है। जैसे जल बिना मच्छी जीवित नहीं रह सकती, बिछुड़ते ही मर जाती है, वैसे ही मेरे मन ने राम से मीन की-सी प्रीति कर ली है, उनको छोड़ कर नहीं रह सकता। जैसे चातक पक्षी स्वाति जल को रटता रहता है, उसका समय पीव-पीव करते ही जाता है, हे जन ! वैसे ही मेरा मन राम से स्नेह लगाये रहता है।

४१६-विनती । वीर विक्रम ताल

मनमोहन हो ! कठिन विरह की पीर, सुन्दर दर्श दिखाइये ॥ टेक ॥

सुनहुन दीनदयाल, तव[1] मुख बैन सुनाइये ॥ १ ॥

करुणामय कृपाल, सकल शिरोमणि आइये ॥ २ ॥

मम जीवन प्राण अधार, अविनाशी उर लाइये ॥ ३ ॥

अब हरि दर्शन देहु, दादू प्रेम बढ़ाइये ॥ ४ ॥

४१६-४१९ में विरह पूर्वक दर्शनार्थ विनय कर रहे हैं—हे मनमोहन ! विरह की व्यथा बड़ी कठिन है। अपने सुन्दर दर्शन कराइये। हे दयालो ! मेरी विनय सुनिये और अपने[1] से मुख के वचन सुनाइये। सर्व शिरोमणि, करुणामय कृपालो ! पधारिये। हे मेरे जीवन तथा प्राणों के आधार अविनाशी प्रभो ! अब मुझे शीघ्र ही दर्शन देकर हृदय से लगाइये और मुझ से प्रेम बढ़ाइये।

४१७-वीर विक्रम ताल

कतहूँ रहे हो विदेश, हरि नहिं आये हो।
जन्म सिरानों जाइ, पीव नहिं पाये हो ॥ टेक ॥
विपति हमारी जाइ, हरि सौं को कहै हो।
तुम बिन नाथ अनाथ, विरहनि क्यों रहै हो ॥ १ ॥
पीव के विरह वियोग, तन की सुधि नहीं हो।
तलफि तलफि जिव जाइ, मृतक ह्वै रही हो ॥ २ ॥
दुखित भई हम नारि, कब हरि आवै हो।
तुम बिन प्राण अधार, जीव दुख पावै हो ॥ ३ ॥
प्रगटहु दीनदयाल, विलम्ब न कीजिये हो।
दादू दुखी बेहाल, दर्शन दीजिये हो ॥ ४ ॥

वे हरि विदेश में कहां रह गये, आये नहीं। अभी तक प्रियतम प्राप्त नहीं हो सके और यह जन्म व्यतीत हो रहा है। कोई दयालु संत हरि के पास जाकर मेरी विपत्ति उनसे कहे तो अच्छा हो। हे नाथ ! आपके बिना अनाथ विरहनी कैसे जीवित रह सकती है ? प्रियतम के वियोग-व्यथा के कारण शरीर की सुध भी नहीं रही है, तड़फ-तड़फ कर प्राण जाने को उद्यत हैं, मृतक समान हो रही हूँ। मैं वियोगिनी नारी उन हरि का मार्ग देखते-देखते दुखित हो गई हूँ, वे हरि कब पधारेंगे ? हे प्राणाधार ! आपके बिना मेरा मन दुःख ही पा रहा है। हे दीनदयालो ! देर न करिये, प्रकट होइये, मैं आपके वियोग-दुःख से अति व्याकुल हूँ, शीघ्र दर्शन दीजिये।

४१८-(सिंधी) रंग ताल

सुरजन[1] मेरा वे[2] ! कीहैं[3] पार लहांउँ[4] ।
जे सुरजन[1] घर आवै वे, हिक[5] कहाण[6] कहांउँ[7] ॥ टेक ॥

तो बाझें[८] मेकौं[९] चैन न आवै, ये दु:ख कींह[१०] कहांउँ ।
तो बाझें मेकौं नींद न आवै, अँखियाँ नीर भरांउँ ॥ १ ॥
जे तूं मेकौं सुरजन डेवै[११], सो हौं शीश सहांउँ ।
ये जन दादू सुरजन आवै, दरगह[१२] सेव करांउँ ॥ २ ॥

सुर-भी-आपके-भक्त-हैं[१], ऐसे हे[२] मेरे प्रभो ! मैं इस वियोग-व्यथा का पार कैसे[३] पा सकूंगा[४] ? हे परमेश्वर[५] ! यदि आप मेरे घर पधारेंगे तब तो मैं एक मात्र[६] अपने वियोग-दु:ख की ही कथा[६] कहूंगा[७] । आपके बिना[८] मुझे[९] किंचित भी सुख नहीं मिलता किन्तु यह दु:ख की बात किस[१०] को कहूँ ? आपके बिना मुझे निद्रा भी नहीं आती, नेत्रों में अश्रु-जल भरा ही रहता है। परमेश्वर ! मेरे को आप पास में रखकर जो भी दण्ड देंगे[११], वह सभी मैं शिर पर सहन कर लूंगा। किन्तु प्रभो ! आप मेरे हृदय-दरबार[१२] में पधारें, मैं दास आपकी सेवा करूंगा।

४१९-रंगताल

मोहन माधव कब मिलै, सकल शिरोमणि राइ ।
तन मन व्याकुल होत है, दर्श दिखाओ आइ ॥ टेक ॥
नैन रहे पथ जोवताँ, रोवत रैनि बिहाइ ।
बाल सनेही कब मिलै, मोपैं रह्या न जाइ ॥ १ ॥
छिन छिन अंग अनल दहै, हरिजी कब मिलि हैं आइ ।
अन्तरजामी जान कर, मेरे तन की तप्त बुझाइ ॥ २ ॥
तुम दाता सुख देत हो, हां हो सुन दीनदयाल ।
चाहैं नैन उतावले, हां हो कब देखूं लाल ॥ ३ ॥
चरण कमल कब देख हौं, हां हो सन्मुख सिरजनहार ।
सांई संग सदा रहौं, हां हो तब भाग हमार ॥ ४ ॥
जीवनि मेरी जब मिलै, हां हो तब ही सुख होइ ।
तन मन में तूं ही बसै, हां हो कब देखूं सोइ ॥ ५ ॥
तन मन की तूं ही लखै, हां हो सुन चतुर सुजान ।
तुम देखे बिन क्यों रहौं, हां हो मोहि लागे बान ॥ ६ ॥
बिन देखे दुख पाइये, हां हो इब विलम्ब न लाइ ।
दादू दरशन कारणैं, हां हो सुख दीजै आइ ॥ ७ ॥

सर्व शिरोमणि, विश्व के राजा मनमोहन, माधव ! आप मुझे कब प्राप्त होंगे ? आप बिना मेरे तन-मन व्याकुल हो रहे हैं, आप आकर दर्शन दें। आपका मार्ग देखते २ नेत्र थक रहे हैं, रोते २

रात्रि व्यतीत होती है। बाल-स्नेही राम ! आप कब मिलेंगे ? आपके बिना मुझसे सुख पूर्वक नहीं रहा जाता। क्षण २ में विरहाग्नि मेरे अंगों को जला रही है। आप प्रभु मेरे हृदय में आकर कब मिलेंगे ? प्रभो ! आप तो अन्तर्यामी हैं, मेरी स्थिति जानकर, मेरे शरीर की जलन मिटाइये ! हां, आप दाता हैं, भक्तों को सुख देते हैं। दीनदयालो ! मेरी भी विनय सुनिये। आपको देखने के लिये मेरे नेत्र शीघ्रता कर रहे हैं। प्रिय ! मैं आपको कब देख सकूंगा ? सृष्टि कर्ता प्रभो ! आप मेरे सन्मुख कब आयेंगे; मैं आपके चरण-कमल कब देख सकूंगा ? हाँ, मेरा विशाल भाग्य तो तभी माना जायेगा, जब मैं सदा प्रभु के साथ रहूँगा। जब मेरी जीवन-शक्ति के आधार प्रभु मिलेंगे तब ही मुझे सुख होगा। शास्त्र-संतों के द्वारा सुना जाता है कि तन-मन में आप बसते हैं किन्तु उस आपके रूप को मैं देख सकूंगा ? आप तो तन-मन की स्थिति देखते रहते हैं फिर हे चतुर सुजान ! मेरी वर्तमान स्थिति में आपको देखे बिना मैं कैसे जीवित रह सकूंगा ? मेरे विरह-बाण लग रहे हैं, आपको देखे बिना दु:ख ही पा रहा हूँ, अब आप दर्शन देने के लिये देर न करें। मेरे हृदय में आपके दर्शन द्वारा सुख दीजिये। इस पद में भगवान् को बाल-स्नेही इसलिये कहा है कि ११ वर्ष की अवस्था में भगवान् ने कांकरिया तालाब पर दर्शन दिया था, तभी से दादूजी का भगवान् में अति प्रेम रहा है। प्रसंग कथा—दृ. सु. सि. त.-७१९२ में देखो।

४२०-वैराग्य। वर्णभिन्न ताल

ये खूहि[1] पयें[2] सब भोग विलासन, तैसेहु बाझौ[3] छत्र सिंहासन॥ टेक॥

जन तिहुँरा[4] बहिश्त नहिं भावे, लाल[5] पिलंग क्या कीजे।

भाहि[6] लगे इह सेज सुखासन, मेकौं[7] देखण दीजै॥ १॥

वैकुण्ठ मुक्ति स्वर्ग क्या कीजे, सकल भुवन नहिं भावै।

भठी पयें सब मंडप छाजे, जे घर कंत न आवै॥ २॥

लोक अनन्त अभय क्या कीजे, मैं विरही जन तेरा।

दादू दर्शन देखण दीजे, ये सुन साहिब मेरा॥ ३॥

वैराग्य दिखा रहे हैं—हे राम ! आपके बिना ये सब भोग-विलास कूप[1] में पड़ें[2] और वैसे ही राज-छत्र से युक्त सिंहासन भी आपके बिना व्यर्थ[3] है। आपके[4] बिना मुझ को स्वर्ग भी प्रिय नहीं लगता, फिर हे प्रिय[5]। सुहाग[5] पिलंग का मैं करूं क्या ? इस शय्या सुखासन के भी अग्नि[6] लगे, मुझे[7] तो आप का स्वरूप देखने दीजिये। स्वर्ग, वैकुण्ठ और चतुर्मुक्तियों का भी मैं क्या करूंगा ? मुझे तो आप के बिना सभी विश्व के भुवन अच्छे नहीं लगते। यदि स्वामी घर पर नहीं आवें तो सुन्दर शोभा देने वाले सभी मंडप भट्ठी में पड़ें, उनका क्या करना है ? भय रहित अनन्त लोकों का भी मैं क्या करूंगा ? मैं तो आपका विरही भक्त हूँ। हे प्रभो ! ये मेरे वैराग्य प्रधान वचन सुन करके तो मुझे निष्काम जानकर दर्शन दीजिये।

४२१-ईमान साबित (राग काफी) राजमृंगाक ताल

अल्लह आशिकाँ ईमान[१]।
बहिश्त[२] दोजख[३] दीन दुनिया, चे[४] कारे[५] रहमान[६] ॥ टेक॥
मीर[७] मीरी पीर पीरी, फ़रिश्त:[८] फरमान[९]।
आब[११] आतिश[१२] अर्श[१३] कुर्सी[१४], दीदनी[१५] दीवान[१६] ॥ १ ॥
हरदो[१७] आलम ख़लक ख़ाना, मोमिना इसलाम।
हजा हाजी क़ज़ा क़ाजी, खान तू सुलतान ॥ २ ॥
इल्म आलम मुल्क मालुम, हाजते[१८] हैरान।
अजब यारां ख़बरदारां, सूरते सुबहान[१९] ॥ ३ ॥
अव्वल[२०] आख़िर एक तू ही, जिन्द[२१] है कुरबान[२२]।
आशिकां दीदार दादू, नूर का नीशान[२३] ॥ ४ ॥

धर्म में दृढ़ता विषयक विचार कह रहे हैं—ईश्वर प्रेमियों का धर्म[१] ईश्वर ही है। हे दयालु[६] ईश्वर ! स्वर्ग[२]—नर्क[३] और संसार के संप्रदाय रूप धर्म से आपके प्रेमियों का क्या[४] काम[५] है ? सरदारों[७] की सरदारी, पीरों की पीरी, फरिश्ताओं[८] की आज्ञा[९], जल[११], अग्नि[१२], आकाश[१३] और पृथ्वी[१४] की विशेषता खोजने की भी उन्हें क्या आवश्यकता है। हे महान्[१६] ! उनके लिये तो आप ही देखने[१५] योग्य हैं। इस लोक या परलोक दोनों[१७] ही लोक रूप संसार के प्रत्येक प्राणी के घर के, मुसलमान धर्म और उसमें निष्ठा रखने वाले मोमिनों के, नियत समय पर यात्रा करने वाले हाजियों के, न्याय करने वाले काजियों के, आप ही मुखिया और बादशाह हैं। संसार की ज्ञानादि विद्या, देश के प्राणियों को व्याकुल करने वाली उनकी इच्छायें[१८] आदि सब कुछ ही उन प्रभु को ज्ञात हैं। अत: हे अद्भुत प्रभु के प्रेमियो ! उन पवित्र[१९] प्रभु के स्वरूप चिन्तन में सावधान रहो। हे प्रभो ! सृष्टि के आदि[२०] और अन्त में आप ही रहते हैं। हम अपना जीवन[२१] आप पर निछावर[२२] करते हैं। हमारा लक्ष्य[२३] आप का ज्योति-स्वरूप देखना है, आप हम प्रेमियों को दर्शन दीजिये।

४२२-विरह विनती (राग काफी) वर्ण भिन्न ताल

अल्लह ! तेरा ज़िकर[१] फ़िकर[२] करते हैं।
आशिकां मुश्ताक[३] तेरे, तर्स[४] तर्स मरते हैं ॥ टेक॥
खलक ख़ेश[५] दिगर[६] नेस्त[७], बैठे दिन भरते हैं।
दायम[८] दरबार तेरे, ग़ैर[९] महल डरते हैं ॥ १ ॥
तन शहीद[१०] मन शहीद, रात दिवस लड़ते हैं।
ज्ञान तेरा ध्यान तेरा, इश्क आग जलते हैं॥ २ ॥
जान[११] तेरा ज़िन्द[१२] तेरा, पाँवों शिर धरते हैं।
दादू दीवान[१३] तेरा, ज़र[१४] ख़रीद घर के हैं ॥ ३ ॥

४२२-४२३ में विरह पूर्वक विनय कर रहे हैं—हे ईश्वर ! हम आपकी ही चर्चा[१] और ध्यान[२] करते हैं, आपके प्रेमी हैं, आपके दर्शनों के लिये उत्कंठित[३] हुये दुःखी[४] हो होकर मरते हैं। संसार में अपने[५] या पराये[६] जो कुछ हैं सभी नष्ट[७] होने वाले हैं, ऐसे विचार द्वारा आपकी ही आशा में दिन व्यतीत कर रहे हैं। भजन द्वारा सदा[८] आपके दरबार में रहते हैं, अन्य[९] राजादि के महल में जाने से डरते हैं, कारण—वहां विलासियों के संग से भक्ति में विघ्न होने की संभावना रहती है। तन मन को आप पर बलिदान[१०] करने के लिये रात्रि-दिन आसक्ति त्याग का अभ्यास रूप युद्ध करते हैं। आप ही के ज्ञान का विचार करते हैं, आप ही का ध्यान करते हैं, आपके प्रेम से उत्पन्न विरहाग्नि में जलते हैं। हमारे प्राण[११] और जीवन[१२] आपके ही हैं, हम आपके चरणों में शिर रखते हैं। हे महान्[१३] ! हम तो आपके धन[१४] से खरीदे हुये घर के दास हैं, कृपा करिये।

एक समय भगवान् ने स्वामीजी से प्रश्न किया था—तुम क्या करते हो ? उसी का उत्तर इस पद से दिया था।

४२३-गज ताल

मुख बोल स्वामी, तूं अन्तर्यामी, तेरा शब्द सुहावै रामजी ॥ टेक ॥
धेनु चरावन बेनु बजावन, दर्श दिखावन कामिनी ॥ १ ॥
विरह उपावन तप्त बुझावन, अंग लगावन भामिनी ॥ २ ॥
संग खिलावन रास बनावन, गोपी भावन भूधरा ॥ ३ ॥
दादू तारन दुरित निवारण, संत सुधारण रामजी ॥ ४ ॥

हे स्वामिन् ! आप अन्तर्यामी हैं, मेरे मन की बात जानते हैं। रामजी ! आपका शब्द मुझे प्रिय लगता है, आप अपने मुख से बोलिये। आप ज्ञानेन्द्रिय रूप गोओं को चराते हैं, वाणी रूप बंशी बजाते हैं, दर्शन की कामनायुक्त बुद्धि को ज्ञान रूप से दर्शन देते हैं। भक्तों की बुद्धि में विरह उत्पन्न करते हैं। उन्हें दर्शन देकर वियोगाग्नि बुझाते हैं, प्रेमाभक्ति युक्त बुद्धि को अपने स्वरूप में लगाते हैं और उसे अपने साथ आनन्द रूप रास खिलाते हैं। संत वृत्ति रूप गोपियों को प्रिय लगते हैं, सत्ता मात्र से पृथ्वी को धारण करते हैं। रामजी ! आप संतों का कार्य सब प्रकार की बाधाओं को दूर कर सुधारते हैं और उन संतों का शीघ्र उद्धार कर देते हैं।

(इस पद में भगवान् कृष्ण के चरित्र का रूपक देकर निरंजन राम से विनय की है।)

४२४-केवल विनती। गज ताल

हाथ दे हो रामा, तुम सब पूरण कामा, हौं तो उरझ रह्यो संसार ॥ टेक ॥
अंध कूप गृह में पर्‌यो, मेरी करहु सँभाल।
तुम बिन दूजा को नहीं, मेरे दीनानाथ दयाल ॥ १ ॥
मारग को सूझै नहीं, दह दिशि माया जाल।
काल पाश कसि बाँधियो, मेरे कोइ न छुड़ावनहार ॥ २ ॥

राम बिना छूटै नहीं, कीजे बहुत उपाइ ।
कोटि किया सुलझै नहीं, अधिक अलूझत जाइ ॥ ३ ॥
दीन दुखी तुम देखताँ, भय दुख भंजन राम ।
दादू कहै कर हाथ दे हो, तुम सब पूरण काम ॥ ४ ॥

भगवान् से सहायतार्थ विनय कर रहे हैं—सब कामनाओं को पूर्ण करने वाले राम ! मैं संसार में फँस रहा हूँ, मुझे अपना हाथ पकड़ा दीजिये, उसके सहारे मैं संसार से बाहर निकल जाऊंगा। गृह रूप अंध-कूप में पड़ा हूँ, मेरी सँभाल करिये। हे दीनानाथ दयालो ! मेरे उद्धार का प्रयत्न करे, ऐसा आपके बिना अन्य कोई भी मुझे नहीं दीख रहा है। दशों दिशाओं में माया-जाल फैल रहा है, काल ने खूब खेंचकर अपनी पाश में बाँध रक्खा है, आपके बिना मेरे को छुड़ाने वाला कोई भी नहीं है। यह काल-पाश बहुत उपाय करें तो भी राम की कृपा बिना नहीं खुल सकता। सकाम-कर्म रूप कोटि यत्न करने पर भी प्राणी माया-जाल से नहीं निकल सकता, अधिक ही फँसता जाता है। काल-भय और संसार दुःख को नष्ट करने वाले राम ! आप के देखते हुये भी मैं आपका जन दुखी हूँ, यह कहां तक उचित है ? आप तो संपूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं। मैं आप से विनय कर रहा हूँ—आपका हाथ मेरे हाथ में पकड़ा दीजिये, मैं उसके सहारे संसार से निकल आऊंगा अतः मेरी सहायता कीजिये।

४२५-करुणा विनती। त्रिताल

जनि[1] छाडै राम, जनि छाडै, हमहिं विसार, जनि छाडै।
जीव जात न लागै बार, जनि छाडै ॥टेक॥
माता क्यों बालक तजै, सुत अपराधी होइ ।
कबहुँ न छाडै जीव तैं, जनि दुख पावै सोइ ॥ १ ॥
ठाकुर दीनदयाल है, सेवक सदा अचेत ।
गुण औगुण हरि ना गिणैं, अंतर तासौं हेत ॥ २ ॥
अपराधी सुत सेवका, तुम हो दीन दयाल ।
हम तैं औगुण होत हैं, तुम पूरण प्रतिपाल ॥ ३ ॥
जब मोहन प्राणी चलै, तब देही किहि काम ।
तुम जानत दादू का कहै, अब जनि छाड़ै राम ॥ ४ ॥

४२५-४२६ में विरह दुःख पूर्वक विनय कर रहे हैं—हे राम जी ! हम बारम्बार विनय कर रहे हैं, आप हमको भूल कर भी न[1] त्यागिये। जीव को शरीर से जाते देर नहीं लगती, न जाने वह कब चला जाय, इसलिये हमें कभी भी न त्यागिये। पुत्र दोषी भी हो तो भी माता, बालक पुत्र को कैसे तजेगी ? वह सुत को अपने मन से कभी भी नहीं त्यागती और सुत दुःख न पावे ऐसा ही व्यवहार करती है। वैसे ही आप स्वामी तो दीनदयालु हैं, सेवक की रक्षा के लिये सदा सचेत रहते

हैं। हे हरे ! आप शरीर के सुरूप कुरूपादि गुण अवगुण तो नहीं देखते, जो भक्त के भीतर हृदय का भाव है, उसी से प्रेम करते हो। हम तो आपके अपराधी सुत सेवक हैं, आप दीन दयालु हो। हमारे से तो अवगुण ही होते हैं किन्तु आप तो फिर भी पूर्ण रूप से रक्षा करते हैं। हे मोहन ! जब जीव चला जाय तब शरीर किस काम का है ? यह सब आप जानते ही हैं, मैं आपको क्या कहूँ ? मेरी तो यही विनय है कि—आप मुझे न छोड़ें।

४२६-चौताल

विषम बार हरि अधार, करुणा बहु नामी।
भक्ति भाव बेग आइ, भीड़ भंजन स्वामी॥ टेक॥
अंत अधार संत सुधार, सुन्दर सुखदाई।
काम क्रोध काल ग्रसत, प्रकटो हरि आई॥ १ ॥
पूरण प्रतिपाल कहिये, सुमिरे तैं आवै।
भरम कर्म मोह लागे, काहे न छुड़ावै॥ २ ॥
दीनदयालु होहु कृपालु, अंतरयामी कहिये।
एक जीव अनेक लागे, कैसैं दुख सहिये॥ ३ ॥
पावन पीव चरण शरण, युग युग तैं तारे।
अनाथ नाथ दादू के, हरि जी हमारे॥ ४ ॥

कठिन समय में अति दयालु और अति प्रसिद्ध हरि ही आश्रय देते हैं। वे विपद्-विनाशक स्वामी, भक्ति-भाव युक्त भक्त के पास शीघ्र ही आ जाते हैं। वे ही अन्तिम आश्रय हैं और संतों के कार्य सुधार कर सुन्दर सुख प्रदान करते हैं। हे हरे ! काम क्रोध काल हमें खा रहा है, आप हृदय में आकर प्रकट रूप से दर्शन दीजिये। आपको संतशास्त्र पूर्ण रूप से भक्तों के रक्षक कहते हैं और आप भी स्मरण करने पर भक्तों के पास हृदयकमल में आते हैं। भ्रम, नाना प्रकार के कर्म और मोहादि मेरे पीछे लगे हैं, आप इनसे मुझे क्यों नहीं छुड़ाते ? आप तो अन्तर्यामी और दीनदयालु कहलाते हैं, कृपा करिये। एक जीव के पीछे अनेक कामादिक लग रहे हैं, इनका क्लेश कैसे सहा जाय ? हे पावन प्रियतम ! मैं आपके चरणों की शरण हूँ। शरणागतों का आपने युग २ में उद्धार किया है, अत: अनाथों के नाथ हमारे हरिजी ! मेरा भी उद्धार करिये।

४२७-विनती। त्रिताल

साजनियां ! नेह न तोरी रे।
जे हम तोरैं महा अपराधी, तो तूं जोरी रे॥ टेक॥
प्रेम बिना रस फीका लागै, मीठा मधुर न होई।
सकल शिरोमणि सब तैं नीका, कड़वा लागै सोई॥ १ ॥

जब लग प्रीति[१] प्रेम रस नांहीं, तृषा बिना जल ऐसा।
सब तैं सुन्दर एक अमीरस, होइ हलाहल जैसा ॥ २ ॥
सुन्दरि सांई खरा पियारा, नेह नवा नित होवै ।
दादू मेरा तब मन मानै, सेज सदा सुख सोवै ॥ ३ ॥

अखंड स्नेहार्थ विनय कर रहे हैं—हे सज्जन परमेश्वर ! आप हमारे से स्नेह न तोड़ना, यदि हम महा अपराधी होने से तोड़ने लगें तो भी आप उसे जोड़ने की ही कृपा करना। जैसे प्रेम बिना मधुर रस भी मधुर नहीं लगता, फीका लगता है, वैसे ही प्रेम बिना जो सर्व शिरोमणि और सबसे अच्छे प्रभु हैं, वे भी कटु लगते हैं, प्रिय नहीं लगते। जैसे प्यास बिना जल से प्रसन्नता नहीं होती, वैसे ही जब तक प्रेम नहीं होता तब तक रस से प्रसन्नता[१] नहीं होती, प्रेम बिना सबसे सुन्दर अमृत-रस भी महा विष जैसा भासता है, वैसे ही प्रेम बिना अद्वैत ब्रह्म भी प्रिय नहीं होता। मुझ सुन्दरी को मेरे स्वामी परमेश्वर अत्यधिक प्रिय हैं और उनमें मेरा स्नेह नित्य नूतन होता जाता है, किन्तु मेरा मन तब संतोष मानेगा जब वे मेरे प्रभु मेरी हृदय-शय्या पर सदा के लिये सुख-पूर्वक शयन करेंगे।

४२८-कर्ता कीर्ति । त्रिताल

काइमां[१] ! कीर्ति करूंली रे, तूं मोटो दातार ।
सब तैं सिरजीला साहिबजी, तूं मोटो कर्तार ॥ टेक ॥
चौदह भुवन भानै घड़ै, घड़त न लागे बार ।
थापै उथपै तूं धणी, धन्य धन्य सिरजनहार ॥ १ ॥
धरती अम्बर तैं धस्या, पाणी पवन अपार ।
चंद सूर दीपक रच्या, रैन दिवस विस्तार ॥ २ ॥
ब्रह्मा शंकर तैं किया, विष्णु दिया अवतार ।
सुर नर साधू सिरजिया, कर ले जीव विचार ॥ ३ ॥
आप निरंजन ह्वै रह्या, काइमां कौतिकहार ।
दादू निर्गुण गुण कहै, जाऊंली हौं बलिहार ॥ ४ ॥

ईश्वर का यश गान कर रहे हैं—हे अचल[१] परमेश्वर ! मैं आपका यश गान करूंगा, आप सबसे महान् दाता हैं। हे प्रभो ! सब संसार आपने ही रचा है, आप ही महान् और संसार के कर्ता हैं। आप चौदह भुवनों को बना कर नष्ट कर देते हैं और पुन: बनाने में आपको कुछ भी देर नहीं लगती। आप ही सबको स्थापित करने वाले और उखाड़ने वाले स्वामी हैं। सृष्टि-कर्ता ! आपको धन्य है, धन्य है। आपने ही पृथ्वी और आकाश को बना कर रक्खा है। हे अपार ! आपने ही जल, वायु, चन्द्र, सूर्य, दीपक और रात्रि-दिनादि संसार का विस्तार रचा है। ब्रह्मा तथा शंकर आपने ही बनाये हैं। संसार की रक्षा के लिये आपने ही विष्णु तथा अन्य अवतार प्रकट कर दिये हैं। देवता, नर और संत आपने ही उत्पन्न किये हैं। अरे जीव ! उन प्रभु के गुण और स्वरूप

सम्बन्धी विचार करके उन्हें प्राप्त कर। वे प्रभु सत्ता मात्र से संसार रूप खेल करने वाले हैं, स्वयं तो माया रहित होकर अचल हो रहे हैं। मैं उन्हीं निर्गुण प्रभु के गुण कह रहा हूँ और उन्हीं की बलिहारी जाऊंगा।

४२९-उपदेश चेतावनी। प्रति ताल

जियरा ! राम भजन कर लीजै।
साहिब लेखा माँगेगा रे, उत्तर कैसै दीजै॥ टेक॥
आगै जाइ पछतावन लागो, पल पल यहु तन छीजै।
तातैं जिय समझाइ कहूं रे, सुकृत अब तैं कीजै॥ १॥
राम जपत जम काल न लागै, संग रहैं जन जीजे।
दादू दास भजन कर लीजै, हरिजी की रास रमीजै॥ २॥

उपदेश द्वारा सावधान कर रहे हैं-अरे मन ! शरीर के ठीक रहते २ ही राम का भजन कर ले, फिर न होगा। जब प्रभु तेरे से जीवन का हिसाब माँगेंगे तब बिना भजन किये उन्हें कैसे उत्तर देगा ? कारण-तू गर्भ में उनके आगे भजन करने की प्रतिज्ञा करके आया था। यह शरीर क्षण २ में क्षीण हो रहा है, आगे वृद्धावस्था में जाकर तू पश्चात्ताप करने लगेगा, इसीलिये हे मन ! तुझे समझाकर कह रहा हूँ, तू अभी से भजनादि सुकृत कर ले। राम-नाम जपने से यम और काम का जोर जापक पर नहीं लगता। भक्त भगवान् के साथ अभेद भाव से रह कर जीवित रहता है। मेरी बात मान कर भजन द्वारा उन प्रभु को प्राप्त कर लो। उन हरि की शरण में रह कर उनके साथ अभेद स्थिति का आनन्दानुभव रूप रास खेल।

४३०-(गुजराती) काल चेतावनी। प्रतिताल

काल काया गढ़ भेलसी, छीजे दशों दुवारो रे।
देखतड़ां ते लूटिये, होसी हाहाकारो रे॥ टेक॥
नाइक नगर न मीलसी, एकलड़ो ते जाई रे।
संग न साथी कोई न आसी, तहँ को जाणे किम थाई रे॥ १॥
सत जत साधो माहरा भाईड़ा, कांई सुकृत लीजे सारो रे।
मारग विषम चालिबो, कांई लीजे प्राण अधारो रे॥ २॥
जिमि नीर निवाणा[1] ठाहरे, तिमि साजी बाँधो पालो रे।
समर्थ सोई सेविये, तो काया न लागे कालो रे॥ ३॥
दादू मन घर आंणिये, तो निहचल थिर थाये रे।
प्राणी ने पूरो मिलो, तो काया न मेल्ही जाये रे॥ ४॥

काल से सावधान कर रहे हैं-काल काया-किले को नष्ट करेगा। दो नेत्र, दो श्रवण, दो नाक, मल-मूत्रेन्द्रियाँ, मुख और ब्रह्म-रंध्र, ये दशों द्वार क्षीण होंगे। देखते २ ही आयु-धन को

काल लूट ले जायगा तब हाहाकार होगा। काया नगर के स्वामी जीवात्मा को भी नगर में न रहने देगा, वह कर्मानुसार अकेला ही परलोक को जायगा। परलोक में उसके साथ कोई भी उसका साथी बन कर न जायगा। वहां कौन जानता है क्या होगा ? हे मेरे भाइयो ! सत्य तथा ब्रह्मचर्य पूर्वक कुछ तो सुकृत-सार रूप साधन करो। कठिन मार्ग में चलना है, कुछ प्राणों का आश्रय अवश्य अपनाओ। जैसे नीची-भूमि[१] में जल ठहरता है, वैसे ही तुम भी संयमादि साधन सज कर भजन का बांध बांधो तो मन रूप जल ठहरेगा। फिर उस समर्थ प्रभु की भक्ति करोगे, तब काया के काल न लगेगा अर्थात् सूक्ष्म शरीर को काल पकड़ कर न ले जा सकेगा। यदि मन को स्थिर करोगे तो वह निश्चल ब्रह्म में स्थिर हो जायगा। प्राणी को पूर्ण ब्रह्म मिलने पर उसका सूक्ष्म शरीर संसार में नहीं रहता। जैसे उसकी आत्मा ब्रह्म में लय हो जाती है, वैसे ही सूक्ष्म शरीर के इन्द्रियादि भी अपने २ कारण में मिल जाते हैं। ('संत जन साधो' पाठान्तर भी है।)

४३१-भयभीत भयानक। दीपचन्दी

डरिये रे डरिये, परमेश्वर तैं डरिये रे।
लेखा लेवे, भर भर देवै, तातैं बुरा न करिये रे, डरिये ॥ टेक॥
साचा लीजे, साचा दीजे, साँचा सौदा कीजे रे ।
साचा राखी, झूठा नाखी, विष ना पीजी रे ॥ १ ॥
निर्मल गहिये, निर्मल रहिये, निर्मल कहिये रे।
निर्मल लीजै, निर्मल दीजी, अनत न बहिये रे ॥ २ ॥
साह पठाया, बनिजन आया, जनि डहकावै रे।
झूठ न भावै, फेरि पठावै, किया पावै रे॥ ३ ॥
पंथ दुहेला, जाइ अकेला, भार न लीजी रे।
दादू मेला होइ सुहेला, सो कुछ कीजी रे॥ ४ ॥

४३१-४३२ में कह रहे हैं—भयानक कर्मों से तथा परमेश्वर से डरते रहना चाहिये, हम बारम्बार कहते हैं-हृदय में ईश्वर का भय रख कर ही जीवन यापन करो, क्योंकि-वे प्रभु जीवन का हिसाब लेते हैं और कर्मो के अनुसार ही अन्त:करण में भावी जन्म का विधान तथा संस्कार भर कर जन्म प्रदान करते हैं। इसलिये बुरे कर्म न करो। सत्य को हृदय में रखकर, वस्तु लो और दो, सत्य का ही व्यापार करो। सत्य प्रभु का ही चिन्तन हृदय में रक्खो, मिथ्या का चिन्तन त्यागो। विषय-विष का पान मत करो। शुद्ध ब्रह्म को ही उपास्य रूप से ग्रहण करो, निर्विकार रहो, निर्मल ब्रह्म का नाम उच्चारण करो, शुद्ध ब्रह्म सम्बन्धी उपदेश लो और दो। ब्रह्म-चिन्तन से भिन्न विषय-वासनादि में वृत्ति मत जाने दो। प्रभु ने तुम्हें भेजा है, तुम सत्य का व्यापार करने आये हो, विषयों से बहको मत। प्रभु को मिथ्या विषयों का व्यापार अच्छा नहीं लगता। यदि तुम विषय-व्यापार में ही जीवन व्यतीत करोगे तो प्रभु तुम्हें फिर चौरासी में भेजेंगे और तुम अपने किये कर्मों का फल पाओगे। प्रभु प्राप्ति का मार्ग अति कठिन है, उसमें एकाकी जाना पड़ता है। अत: निषिद्ध

तथा शुभ सकाम कार्मों का भार मत उठाओ, जो कुछ करो वह निष्काम भाव से करो और वैसा ही विचार करो, जिससे आत्मा और ब्रह्म का अभेद रूप मिलन सुगम हो।

४३२-दीपचन्दी

डरिये रे डरिये, देख देख पग धरिये।
तारे तरिये मारे मरिये, तातैं गर्व न करिये रे, डरिये ॥ टेक।
देवै लेवै समर्थ दाता, सब कुछ छाजै रे।
तारै मारै गर्व निवारै, बैठा गाजे रे॥ १ ॥
राखैं रहिये बाहैं बहिये, अनत न लहिये रे।
भानैं घड़ै संवारैं आपै, ऐसा कहिये रे॥ २ ॥
निकट बुलावै दूर पठावै, सब बन आवै रे।
पाके काचे काचे पाके, ज्यों मन भावै रे ॥ ३ ॥
पावक पाणी पाणी पावक, कर दिखलावै रे।
लोहा कंचन कंचन लोहा, कहि समझावै रे ॥ ४ ॥
शशिहर सूर सूर तैं शशिहर, परगट खेलै रे ।
धरती अम्बर अम्बर धरती, दादू मेलै रे ॥ ५ ॥

पाप कर्म और परमात्मा से डरते रहो, पृथ्वी को देख २ कर पैर धरो वा पुन: २ विचार करके शुभ कर्मों में वृत्ति लगाओ। ईश्वर उद्धार करे तब ही प्राणी का उद्धार होता है और वे मारें तो मरण होता है। इसीलिये गर्व न करके ईश्वर से डरते रहना चाहिए। वे प्रभु उदार और तारने- मारने तथा गर्व नष्ट करने में समर्थ हैं, सदा स्थिर बैठे गर्जना करते हैं। प्राणियों की भावना ग्रहण करते हैं तथा कर्मानुसार फल देते हैं। उनको सभी कुछ शोभा देता है। उनके रखने से प्राणी स्थिर रहता है, चलाने से चलता है। वे स्वयं ही सब को नष्ट करते हैं, बनाते हैं और सुधारते हैं। संत और शास्त्र उनके विषय में ऐसा ही कहते हैं। अत: अन्य को उपास्य रूप से ग्रहण न करो। वे समीप बुलाते हैं, दूर भेज देते हैं। उनके द्वारा सभी कुछ होता है। यदि उनके मन को अच्छा लगे तो वे पक्के को कच्चा और कच्चे को पक्का कर देते हैं। अग्नि को जल, जल को अग्नि, लोहे को सुवर्ण, सुवर्ण को लोहा करके दिखा देते हैं। ऐसा कह-कह कर प्रभु की समर्थता समझा रहे हैं। वे चन्द्र से सूर्य, सूर्य से चन्द्र बना कर प्रकट रूप से उनके साथ खेल सकते हैं। उन्होंने पृथ्वी को आकाश में और आकाश को पृथ्वी पर अधर धर रखा है, उसकी लीला अपार है।

४३३-हितोपदेश। चौताल

मनसा मन शब्द सुरति, पांचों थिर कीजै।
एक अंग सदा संग, सहजैं रस पीजै ॥ टेक ॥

सकल रहित मूल गहित, आपा नहिं जानैं ।
अंतर गति निर्मल रति, एकै मन मानैं ॥ १ ॥
हिरदै सुधि विमल बुधि, पूरण परकासै ।
रसना निज नाम निरख, अंतर गति[1] वासै ॥ २ ॥
आत्म मति पूरण गति, प्रेम भगति राता ।
मगन गलित अरस परस, दादू रस माता ॥ ३ ॥

हितकर उपदेश कर रहे हैं—बुद्धि, मन, शब्द, वृत्ति, पंच प्राण और पंच ज्ञानेन्द्रियों को स्थिर करके सहजावस्था द्वारा सदा अद्वैत ब्रह्म स्वरूप के अभेद रूप संग में रह कर ब्रह्मानन्द-रस का पान करो। जो अहंकार को भूल कर संपूर्ण मायिक प्रपंच से रहित अपने मूल ब्रह्म को उपास्य रूप से ग्रहण करता है और निर्मल प्रीति से वृत्ति हृदयस्थ आत्मा में ही रखता है, उसका मन अद्वैत ब्रह्म चिन्तन से ही संतोष मानता है। उसके शुद्ध हृदय में और विमल बुद्धि में पूर्ण ब्रह्म का प्रकाश प्रकट होता है, जिह्वा पर सत्य राम आदि निज नाम रहते हैं। उक्त साधना द्वारा स्वस्वरूप ब्रह्म का साक्षात्कार करके अन्तर्मुख वृत्ति[1] द्वारा ब्रह्म में ही बसता है। आत्म चिन्तन में ही बुद्धि लगी रहने से उसका गमन पूर्ण ब्रह्म में ही होता है और साधक प्रेमाभक्ति में अनुरक्त रहता है, स्वरूप चिन्तन में निमग्न होने से अहंकार गल जाता है और ब्रह्म से अरस-परस अभेद होकर अद्वैत-रस में मस्त रहता है।

४३४-विनती। त्रिताल

गोविन्द के चरणों ही ल्यौ लाऊं।
जैसे चातक वन में बोलै, पीव पीव कर ध्याऊं ॥टेक॥
सुरजन मेरी सुनहु वीनती, मैं बलि तेरे जाऊं ।
विपति हमारी तोहि सुनाऊं, दे दर्शन क्यों हिं पाऊं ॥ १ ॥
जात दुख सुख उपजत तन को, तुम शरणागति आऊं ।
दादू को दया कर दीजै, नांउं तुम्हारो गाऊं ॥ २ ॥

४३४-४३५ में दर्शनार्थ विनय कर रहे हैं—गोविन्द के ही चरणों में वृत्ति लगाता हूँ। जैसे चातक पक्षी वन में स्वाति बिन्दु के लिये पीव २ बोलता है, वैसे ही प्रियतम २ करते हुये उन प्रभु का ध्यान करता हूँ। हे सुर-गणों के स्वामिन्! मेरी विनय सुनिये, मैं आपकी बलिहारी जाता हूँ और अपनी विपत्ति आपको सुनाता हूँ। आप मुझे दर्शन दीजिये। मैं आपको कैसे प्राप्त कर सकूंगा, वह उपाय भी बताइये? जो आपकी शरण आते हैं, उनके दु:ख चले जाते हैं और शरीर में सुख उत्पन्न होता है। मैं भी आपकी शरण आया हूँ, आपका नाम गान करता हूँ, मुझे भी दया करके दर्शन द्वारा सुख प्रदान करिये।

४३५-त्रिताल

ए ! प्रेम भक्ति बिन रह्यो न जाई, परगट दर्शन देहु अघाई ॥ टेक ॥
तालाबेली तलफै माँहीं, तुम बिन राम जियरे जक[1] नाँहीं ॥ १ ॥
निशिवासर मन रहै उदासा, मैं जन व्याकुल सास उसासा ॥ २ ॥
एकमेक रस होइ न आवै, तातैं प्राण बहुत दुख पावै ॥ ३ ॥
अंग संग मिल यहु सुख दीजै, दादू राम रसायन पीजै ॥ ४ ॥

हे प्रभो ! आपकी प्रेमाभक्ति बिना मुझसे नहीं रहा जाता और आपके दर्शन न होने से इस प्रेमाभक्ति में दु:ख होता है, अत: आप हृदय में प्रकट होकर दर्शन दें, जिससे मैं तृप्त होकर सुखी हो जाऊं। भीतर मेरा मन व्याकुलता से तड़फ रहा है। राम ! आपके बिना हृदय को शांति[1] नहीं है। मेरा मन रात्रि-दिन खिन्न रहता है। मैं आपका भक्त श्वास २ प्रति व्याकुल होता रहता हूँ। आपके स्वरूप में अभेद होकर अद्वैतानन्द-रस नहीं मिल रहा है, इससे मन बहुत दु:ख पा रहा है। आप मेरे आत्म रूप अंग के साथ मिलकर इस अभेद स्थिति का सुख दीजिये, जिससे मैं एकत्व चिन्तन रूप राम-रसायन पान करके मस्त रहूँ।

४३६-परिचय-उपदेश। पंजाबी त्रिताल

तिस घर जाना वे, जहां वे अकल स्वरूप।
सोइ अब ध्याइये रे, सब देवन का भूप ॥ टेक ॥
अकल स्वरूप पीव का, बान बरन न पाइये ।
अखंड मंडल माँहिं रहै, सोई प्रीतम गाइये ॥
गावहु मन विचारा वे, मन विचारा सोई सारा, प्रकट पीव ते पाइये।
सांई सेती संग साचा, जीवित तिस घर जाइये ॥ १ ॥
अकल स्वरूप पीव का, कैसे करि आलेखिये ।
शून्य मंडल माँहिं साचा, नैन भर सो देखिये ॥
देखो लोचन सार वे, देखो लोचन सार, सोई प्रकट होई,
यह अचंभा पेखिये।
दयावन्त दयालु ऐसो, बरण अति विशेखिये ॥ २ ॥
अकल स्वरूप पीव का, प्राण जीव का, सोई जन जे पावही।
दयावन्त दयालु ऐसो, सहजैं आप लखावही ॥
लखै सु लखणहार वे, लखै सोई संग होई, अगम बैन सुनावही।
सब दुख भागा रंग लागा, काहे न मंगल गावही ॥ ३ ॥

अकल स्वरूपी पीव का, कर कैसे करि आंणिये ।
निरन्तर निर्धार आपै, अंतर सोई जांणिये ।
जाणहुँ मन विचारा वे, मन विचारा सोई सारा, सुमिर सोई बखानिये ।
श्री रंग सेती रंग लागा, दादू तो सुख मानिये ॥ ४ ॥

४३६-४३९ में साक्षात्कार सम्बन्धी उपदेश कर रहे हैं—हे साधक ! उस निर्विकल्प समाधि रूप घर में जाना चाहिये, जिसमें कला विभाग से रहित वे निरंजन ब्रह्म प्राप्त होते हैं। अब सब देवताओं के राजा उसी ब्रह्म का ध्यान कर ॥ टेक ॥ उस निराकार स्वरूप प्रियतम के भेष, रंग, जाति नहीं मिलते। जो अपनी महिमा रूप अखंड मंडल में रहता हैं, उसी प्रियतम ब्रह्म का नाम गान कर और यश गान करते हुये अन्त:करण से विचार कर, जो उस सार स्वरूप ब्रह्म का अन्त:करण से विचार करते हैं वे उसे प्रत्यक्ष आत्म रूप से प्राप्त करते हैं। निर्विकल्प समाधि-घर में जाकर जीवितावस्था में ही उस परब्रह्म के साथ अभेद रूप सच्चा संग प्राप्त कर॥ १ ॥ निरवयव स्वरूप प्रियतम ब्रह्म का किसी भी प्रकार साक्षात्कार कर, वह सत्य ब्रह्म सहस्रार रूप शून्य मंडल में स्थित भासता है, उसे ज्ञान-नेत्रों से इच्छा भर के देखो। उस विश्व के सार को ज्ञान-नेत्रों से बारम्बार देखो। वहां यह आश्चर्य देखने में आता है कि-जो निराकार है, वही ब्रह्म प्रकट हो रहा है। वह ऐसा दया-गुण से युक्त दयालु है कि—रंग रूप रहित होने पर भी भक्तों पर कृपा करने के लिये अति विशेष ओंकारवर्ण रूप से वा भक्त भावनानुसार रंग-रूप से भासता रहता हैं॥ २ ॥ जो जीव का प्राणाधार हैं, उनका निरंग प्रियतम ब्रह्म के स्वरूप को जो उसका भक्त होता है, वही प्राप्त करता है, वह ऐसा दया गुण सम्पन्न दयालु है कि भक्त को अनायास ही अपना स्वरूप दिखा देता है। सुन्दर लक्षणों वाला भक्त ही देखता है। जो देखता है, वह अभेद रूप से उसके संग ही हो जाता है और उस अगम ब्रह्म सम्बन्धी ही वचन सुनाता है। उसके सब दु:ख नष्ट हो जाते हैं, ब्रह्म का अभेद भाव रूप अमिट रंग लग जाता है फिर वह क्यों नहीं ब्रह्म सम्बन्धी मंगल गीत गायेगा ? ॥ ३ ॥ उस कला विभाग रहित प्रियतम ब्रह्म के स्वरूप का कृपा रूप हाथ किसी भी प्रकार साधन करके पकड़ना चाहिये। अविचल ब्रह्म का अपने आत्म स्वरूप से अभेद निर्णय करके उसी अद्वैत निष्ठा को भीतर रखना चाहिये। अन्त:करण से विचार करके उसे जानो, अन्त:करण में विचार करने से वही विश्व का सार ज्ञात होगा। उसी का स्मरण करो, उसी का कथन करो। इस प्रकार यदि परब्रह्म रूप श्री रंग से तुम्हारा प्रेम लग जाय तभी तुमको सुख मानना चाहिए। इस स्थिति से पूर्व तो विरह पूर्वक निरन्तर हरि चिन्तन करते रहना चाहिये॥ ४ ॥

४३७-दीपचन्दी

राम तहाँ प्रगट रहे भरपूर।
आत्मा कमल जहाँ,परम पुरुष तहाँ, झिलमिल झिलमिल नूर॥ टेक॥

चन्द सूर मध्य भाइ, तहाँ बसै राम राइ, गंग जमुन के तीर ।
त्रिवेणी संगम जहाँ, निर्मल विमल तहाँ, निरख-निरख निज नीर ॥ १ ॥
आत्मा उलट जहाँ, तेज पुंज रहै तहाँ, सहज समाइ ।
अगम निगम अति, जहाँ बसे प्राणपति, परसि परसि निज आइ ॥ २ ॥
कोमल कुसुम दल, निराकार ज्योति जल, वार न पार ।
शून्य सरोवर जहाँ, दादू हंसा रहै तहाँ, विलसि-विलसि निज सार ॥ ३ ॥

यों तो राम सर्वत्र परिपूर्ण हैं किन्तु जहां जीवात्मा का अष्टदल-कमल है वहां ध्यानावस्था में प्रकट रूप से भी भासते हैं। वहां उन परम पुरुष का स्वरूप प्रकाश झिलमिल रूप से भासता है। हे भाई ! इड़ा रूप चन्द्र और पिंगला रूप सूर्य के मध्य की सुषुम्ना चलती है तब वहां अष्टदल कमल पर बसे हुये राजा राम भासते हैं तथा इड़ा-गंगा, पिंगला-यमुना, सुषुम्ना सरस्वती है जहां आज्ञाचक्र में इन तीनों का संगम होता है। उस संगम रूप त्रिवेणी के विमल तट पर निज स्वरूप-निर्मल नीर को बारंबार देख। जहाँ प्रकाश राशि आत्म स्वरूप ब्रह्म विशेष रूप से स्थित हैं, वृत्ति को अन्तर्मुख करके वहां ही उनके सहज स्वरूप में वृत्ति लय कर। जो वेद से भी अति अगम है, उस अपनी महिमा में ही प्राणपति ब्रह्म बसते हैं, उनका वृत्ति द्वारा बारंबार चिन्तन रूप स्पर्श करके ही निज स्वरूप में आया जाता है। कोमल अष्टदल-कमल पुष्प के दल पर दल प्रतिविम्बित ज्योति के समान वार पार सर्वत्र निराकार ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। जहां ब्रह्म रूप शून्य सरोवर का साक्षात्कार होता है, वहां ही विश्व के सार निज स्वरूप ब्रह्म के साक्षात्कार जन्य आनन्द का उपभोग करते हुये हम हंस रहते हैं।

४३८-फरोदस्त ताल

गोविन्द पाया मन भाया, अमर कीये संग लीये ।
अक्षय अभय दान दीये, छाया नहिं माया ॥ टेक ॥
अगम गगन अगम तूर, अगम चंद अगम सूर ।
काल झाल रहे दूर, जीव नहीं काया ॥ १ ॥
आदि अंत नहीं कोइ, रात दिवस नहीं होइ ।
उदय अस्त नहीं दोइ, मन ही मन लाया ॥ २ ॥
अमर गुरु अमर ज्ञान, अमर पुरुष अमर ध्यान ।
अमर ब्रह्म अमर थान, सहज शून्य आया ॥ ३ ॥
अमर नूर अमर बास, अमर तेज सुख निवास ।
अमर ज्योति दादू दास, सकल भुवन राया ॥ ४ ॥

मनभावन गोविन्द को हमने प्राप्त कर लिया है। उन्होंने हमें अभेद रूप से अपने संग लेकर हमको अमर कर दिया है। अक्षय आनन्द और अभय पद भी प्रदान किया है। उनके स्वरूप में

आभास रूप छाया और माया दोनों ही नहीं है। वे हृदयाकाश से ऊपर तथा अनाहत-नगाड़े की ध्वनि से आगे हैं। चन्द्र-सूर्य के प्रकाश से अगम्य हैं। काल की लहर उनसे दूर ही रहती है। उनमें जीवत्व भाव नहीं है, न वे स्थूल शरीर रूप ही हैं। उनके स्वरूप का आदि अंत किसी प्रकार भी नहीं ज्ञात होता। न उनके पास रात्रि-दिन रूप काल-भेद ही है वा उनके स्वरूप में अज्ञान रूप रात्रि और इन्द्रिय ज्ञान रूप दिन नहीं हैं। उनके पास चन्द्र-सूर्यादि उदय-अस्त नहीं होते व उनके स्वरूप में ज्ञान का उदय-अस्त नहीं होता, वे नित्य ज्ञान स्वरूप हैं। मन के द्वारा उनका चिन्तन करके हमने अपना मन उनमें लगाया है। उन अमर गुरु देव का ज्ञान अमर करता है तथा उन अमर पुरुष का ध्यान भी अमर करता है। वे अमर ब्रह्म ही देवताओं के आश्रय रूप स्थान हैं। वे विकार शून्य ब्रह्म निर्विकल्प समाधि रूप सहजावस्था में ज्ञान-नेत्रों द्वारा देखने में आये हैं। उनका स्वरूप, महिमा रूप वासस्थान, प्रताप और प्रकाश अमर है। वे संपूर्ण भुवनों के राजा हैं। मुझ दास का उन नित्यानन्द स्वरूप में ही निवास है।

४३९-फरोदस्त ताल

राम की राती भई माती, लोक वेद विधि निषेध,
भागे सब भ्रम भेद, अमृत रस पीवै ॥टेक॥
भागे सब काल झाल, छूटे सब जग जंजाल।
विसरे सब हाल चाल, हरि की सुधि पाई ॥ १ ॥
प्राण पवन तहाँ जाइ, अगम निगम मिले आइ,
प्रेम मगन रहे समाइ, विलसै वपु नाहीं ॥ २ ॥
परम नूर परम तेज, परम पुंज परम सेज,
परम ज्योति परम हेज, सुन्दरि सुख पावै ॥ ३ ॥
परम पुरुष परम रास, परम लाल सुख विलास,
परम मंगल दादू दास, पीव सौं मिल खेलै ॥ ४ ॥

हमारी बुद्धि राम की भक्ति में अनुरक्त होकर मस्त हो गई है। अब लोक लाज और वेद के विधि निषेध रूप विहित सकाम कर्म तथा निषिद्ध कर्मों का करना हमने छोड़ दिया है। भ्रम जन्य सभी भेद हमारे हृदय से भाग गये हैं। केवल अभेद चिन्तन रूप अमृत-रस ही हम सदा पान करते हैं। काल की ज्वाला रूप काम-क्रोधादिक सभी आसुरी गुण अन्त:करण से भाग गये हैं। यम-जाल रूप जगत् के कपट पूर्ण सभी व्यवहार छूट गये हैं। संसारी प्राणियों के वृत्तान्त हम भूल गये हैं और हरि की स्मरण-भक्ति प्राप्त की है। प्राण-वायु सहस्रार में जाकर जहाँ स्थित होता है, वहां आकर के हम वेद से भी अगम ब्रह्म से मिले हैं। उनके प्रेम में निमग्न होकर वृत्ति द्वारा उन्हीं में समा रहे हैं। शरीराध्यास पूर्वक विषयों का उपभोग नहीं करते। उन ब्रह्म का रूप और प्रताप उत्कृष्ट है, वे उत्कृष्टता की राशि हैं। उनकी हृदय, शय्या श्रेष्ठ है। उनका स्वरूप प्रकाश अति उत्कृष्ट है।

उनसे अत्यंत प्रेम करके हमारी मति सुन्दरी सुख पा रही है। उन परम प्रिय परम पुरुष स्वामी के साथ मिलकर हम दास, अभेद भावना रूप रास खेलते हुये, परमानन्द का उपभोग कर रहे हैं। इस प्रकार हमारे यहां परम मंगल हो रहा है। ४३६-४३९ के ४ पद वाणी रूप मंदिर के कलश हैं।

४४०-आरती। त्रिताल

इहि विधि आरती राम की कीजै, आत्मा अंतर वारणा लीजै ॥ टेक ॥
तन मन चंदन प्रेम की माला, अनहद घंटा दीन दयाला ॥ १ ॥
ज्ञान का दीपक पवन की बाती, देव निरंजन पांचों पाती ॥ २ ॥
आनंद मंगल भाव की सेवा, मनसा मंदिर आतम देवा ॥ ३ ॥
भक्ति निरंतर मैं बलिहारी, दादू न जानै सेव तुम्हारी ॥ ४ ॥

४४०-४४४ में निरंजन राम की आरती की पद्धति बताते हुये आरती कर रहे हैं—निरंजन राम की आरती इस प्रकार करनी चाहिए और अन्त:करण के भीतर ही उन पर निछावर होना चाहिए। तन और मन को चन्दन बनाओ, प्रेम मय पुष्पमाला पहनाओ और उन दीनदयालु के आगे अनाहत नाद रूप घंटा बजाओ, ज्ञान-दीपक जलाओ। पंच-प्राण रूप वायु की पांच बत्ती बनाओ, उन निरंजन देव पर पंच, ज्ञानेन्द्रिय रूप तुलसी-पत्र चढ़ाओ। इस प्रकार आनंद रूप मंगला आरती करो। भाव मय सेवा करो। उन आत्म-स्वरूप निरंजन देव का मंदिर बुद्धि ही है। हे प्रभो ! किस प्रकार की सेवा आपको प्रिय है, यह आप ही जानते हैं, मैं नहीं जानता, किन्तु मैं मति-मंदिर में निरंतर आपकी भक्ति करते हुये आप पर निछावर होता हूँ।

४४१-उदीक्षण ताल

आरती जगजीवन तेरी, तेरे चरण कवल पर वारी फेरी ॥ टेक॥
चित चाँवर हेत हरि ढारै, दीपक ज्ञान हरि ज्योति विचारै ॥ १ ॥
घंटा शब्द अनाहद बाजै, आनंद आरती गगन गाजै ॥ २ ॥
धूप ध्यान हरि सेती कीजै, पुहुप प्रीति हरि भाँवरि लीजै ॥ ३ ॥
सेवा सार आतमा पूजा, देव निरंजन और न दूजा॥ ४ ॥
भाव भक्ति सौं आरती कीजै, इहि विधि दादू जुग जुग जीजै ॥ ५ ॥

हे जग-जीवन ! हम आपकी आरती करते हैं और आपके चरण-कमलों पर निछावर होते हैं। शुद्ध चित्त से चिन्तन करना रूप चँवर हरि पर सस्नेह करते हैं। विचार रूप ज्योति वाला ज्ञान-दीपक जलाते हैं। अनाहत नाद रूप घंटा बजाते हैं। आनन्द रूप आरती गाने की ध्वनि-गर्जना हृदयाकाश में हो रही है। हरि के आगे जीवात्मा रूप उपासक की सार रूप सेवा पूजा है, निरंजन देव ही उपास्य देव है, अन्य दूसरा कोई नहीं है। इस प्रकार भाव-भक्ति से जो आरती करता है, वह ब्रह्म रूप होकर प्रति युग में जीवित रहता है।

४४२-उदीक्षण ताल

अविचल आरती देव तुम्हारी, जुग जुग जीवन राम हमारी॥ टेक॥
मरण मीच जम काल न लागै, आवागवन सकल भ्रम भागै॥ १ ॥
जोनी जीव जनम नहिं आवै, निर्भय नांव अमर पद पावै॥ २ ॥
कल्विष[1], कश्मल[2] बन्धन कापे[3], पार पहूंचे, थिर कर थापै ॥ ३ ॥
अनेक उधारे तैं जन तारे, दादू आरती नरक निवारे॥ ४॥

हे निश्चल निरंजन देव ! आप की आरती हम भक्तों की प्रति युग में जीवन रूप रही है। आप की आरती करने से दु:ख रूप मरण, मृत्यु, यमदूत और काल, जीव के पीछे नहीं लगते। लोकान्तर में जाना-आना रूप चक्कर मिट जाता है। जीव चौरासी लक्ष योनियों में जन्म कर संसार में नहीं आता, निर्भयता पूर्वक नाम-चिन्तन करता हुआ अमर पद रूप अपने स्वरूप को प्राप्त करता है। आपकी आरती करने से नाना प्रकार के (कल्विष[1]) विकार[1] और (कश्मल[2]) पाप रूप बन्धन कट[3] जाते हैं। साधक आपकी आरती करके संसार से पार पहुँचे हैं। आरती करने के फल ने उन्हें आप परब्रह्म के स्वरूप में स्थिर करके स्थापन किया है। आपकी आरती करने से आपने अनेक भक्तों का दु:खों से उद्धार करके उन्हें संसार से पार किया है। आपकी आरती प्राणी को नरकादिक क्लेशों से बचाती है।

४४३-भंगताल

निराकार तेरी आरती, ... बलि जाउं .... अनन्त भवन[1] के राइ॥ टेक॥
सुर नर सब सेवा करैं, ब्रह्मा विष्णु महेश।
देव तुम्हारा भेव न जानै, पार न पावै शेष ॥ १ ॥
चंद सूर आरती करैं, नमो निरंजन देव।
धरणि पवन आकाश अराधैं, सबै तुम्हारी सेव॥ २ ॥
सकल भवन सेवा करैं, मुनियर सिद्ध समाधि।
दीन लीन ह्वै रहे संत जन, अविगत के आराधि ॥ ३ ॥
जै जै जीवनि राम हमारी, भक्ति करैं ल्यौ लाइ।
निराकार की आरती कीजै, दादू बलि बलि जाइ॥ ४ ॥

अनन्त लोकों[1] के राजन् ! निरंजन देव ! आपकी आरती करते हुये मैं आपकी बलिहारी जाता हूँ। सुर, नरादि सभी आपकी सेवा करते हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वरादि देव आपके रहस्यमय स्वरूप का आदि अन्त नहीं जानते। शेष हजार मुखों से नित्य नूतन नाम-गान करने पर भी आपके नामों का पार नहीं पाते। चन्द्र-सूर्य आपकी आरती करते हैं। पृथ्वी, वायु, आकाश, आपकी उपासना करते हैं तथा सभी महाभूत आपकी सेवा करते हैं। निरंजन देव ! आपको मैं नमस्कार करता हूँ। संपूर्ण भुवन, मुनिवर, समाधि में स्थित सिद्ध भी आपकी सेवा करते हैं। आप मन, इन्द्रियों के अविषय ब्रह्म की आराधना द्वारा संत-जन दीन भाव से आपके स्वरूप में लयलीन हो

रहे हैं। हे हमारे जीवन रूप राम ! हम आपकी 'जय हो, जय हो' इस प्रकार जय ध्वनि करते हुये वृत्ति लगा कर आप की भक्ति करते हैं और आप निराकार की आरती करते हुये बारंबार आपकी बलिहारी जाते हैं।

४४४-दीपचन्दी

तेरी आरती ए, जुग जुग जै जै कार ॥टेक॥
जुग जुग आत्म रांम, जुग जुग सेवा कीजिये ॥ १ ॥
जुग जुग लंघे पार, जुग जुग जगपति कों मिले ॥ २ ॥
जुग जुग तारणहार, जुग जुग दर्शन देखिये ॥ ३ ॥
जुग जुग मंगलचार, जुग जुग दादू गाइये ॥ ४ ॥
(प्राण उधारणहार॥)

इति राग धनाश्री सम्पूर्ण ॥ २७ ॥ पद ३० ॥

इति श्री संत प्रवर दादू दयालुजी महाराज की अनुभव वाणी सम्पूर्ण ॥

हे निरंजन देव ! आपकी आरती प्रतियुग में भक्त-जन करते हुये बारंबार जय ध्वनि करते हैं। प्रतियुग में ही जीवात्मा और परमात्मा रहते हैं, प्रतियुग में ही भक्ति करनी चाहिए। प्रतियुग में ही परब्रह्म की आरती करके प्राणी संसार को लांघ कर पार गये हैं और प्रतियुग में ही विश्वपति राम को मिले हैं। प्रतियुग में ही प्रभु भक्तों को संसार से तारने वाले के रूप में स्थित रहते हैं। प्रतियुग में ही उनका दर्शन करो। परब्रह्म की आरती गाने से प्रतियुग में ही मंगलाचार रहता है। अत: प्रतियुग में ही परब्रह्म की आरती गानी चाहिए। यह आरती प्राणों का उद्धार करती है।

पद्य गिरा पर गद्य मय, रच कर तिलक विशाल।
प्रणति करूं श्री दादु को, करिये कृपा दयाल ॥ १ ॥
क्लान्त निहार त्रितापन से भव, आय अनुग्रह दादु करा है।
लाइ गिरामय श्रेष्ठ लता, रस ज्ञान स्वरूप निगूढ़ धरा है॥
ताहि निचोड़ 'नारायण' ने यह, गद्य सुपात्रहि मांहिं भरा है।
पान करो सु प्रमाद विसार, परात्म प्रदर्शक हेतु खरा है॥ २ ॥
दोय सहस सत्रह अधिक, विक्रम अषाढ मास।
शुक्ला छठ गुरुवार को, आरँभ ले सुख आस ॥ ३ ॥
दोय सहस अट्ठारह, विक्रम वैशाख मास।
शुक्ला तेरस शुक्र को, पूरण सहित हुलास ॥ ४ ॥
श्री कृष्ण कृपा कुटीर में, पुष्कर तीरथ मांहिं।
दादू गिरार्थ प्रकाशिका, पूर्ण पढ़े दुख जांहिं॥ ५ ॥

इति श्री पूज्य चरण स्वामी धनराम जी के शिष्य स्वामी नारायण दास कृत
श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका टीका सम्पूर्ण।

अथ संतप्रवर श्री स्वामी दादूदयालजी महाराज का

संक्षिप्त जीवन चरित्र

संतों को परब्रह्ममय जान रु शीश नमाय ।
चरित लिखूं श्री दादु का, पढ़त सुनत अघ जाय ॥ १ ॥
दादू चरित विशाल है, कविता मांहिं अनेक ।
अत: लिखूं संक्षिप्त अति, गद्य मांहिं यह एक ॥ २ ॥

ईश्वर निज इच्छा से समय २ पर जो लोक कल्याणार्थ संसार में महान् संतों के रूप में प्रकट होते रहते हैं। ऐसे ही महान् संत श्री दादूजी महाराज हुये हैं—अहमदाबाद नगर में लोधीराम नागर के पुत्र नहीं था, उसे पुत्र की बड़ी अभिलाषा थी, वह अपनी इच्छा पूर्ति के लिये सन्तों की सेवा करता रहता था। एक दिन उसे एक सिद्ध सन्त का दर्शन हुआ, उसने बड़े प्रेम से प्रणाम किया। सन्त प्रसन्न होकर बोले—जो इच्छा हो वही माँगो। लोधीराम बोला—और तो आपकी कृपा से सब आनन्द हैं; किन्तु पुत्र न होने से दु:खी हूं। संत ने कहा—तुम प्रात: साबरमती नदी पर स्नान करने जाते हो, वहाँ ही नदी जल पर तैरता हुआ एक बालक तुम्हें मिलेगा, उसे ही अपना पुत्र मान कर घर ले आना, वह महान् ब्रह्मज्ञानी होगा। सन्त के कथनानुसार वि. सं. १६०१ फाल्गुन शुक्ला अष्टमी गुरुवार को प्रात: काल पुनीत पुष्य नक्षत्र में अहमदाबाद में साबरमती नदी प्रवाह में कमल-दल समूह पर तैरता हुआ बालक मिला, उसे लाकर अपनी पत्नी को दे दिया। बालक को देख कर वात्सल्य प्रेम से उसके स्तनों में दूध आ गया । बड़े स्नेह से बालक का लालन-पालन होता रहा। बालक का अधिकतर अपनी वस्तु अन्य को देने का स्वभाव देखकर लोधीराम ने 'दादू' नाम रख दिया। जब वे एकादश वर्ष के हुये तब एक दिन तीसरे पहर सायंकाल से कुछ पहले बालकों के साथ कांकरिया तालाब पर खेल रहे थे। उसी समय भगवान् एक वृद्ध ऋषि के रूप में बालकों के पास ही प्रकट हुये। उन्हें देख कर अन्य बालक तो भाग गये किन्तु दादूजी ने पास जाकर बड़े प्रेम से प्रणाम किया और अपने पास से एक पैसा भेंट दिया। भगवान् ने कहा—इस पैसे की जो वस्तु प्रथम मिले वही ले आ। पहले पान की दुकान आई । दादूजी पान लेकर शीघ्र चले आये और भगवान् को समर्पण कर दिया। भगवान् उनके व्यवहार से बड़े प्रसन्न हुये और प्रसाद देकर कृपा-पूर्वक सिर पर हाथ रखा। उसी समय दादूजी के मुख से—''दादू गैब मांहि गुरु देव मिल्या, पाया हम परसाद। मस्तक मेरे कर धर्‍या, दक्ष्या अगम अगाध।'' यह साखी निकली थी। फिर भगवान् निर्गुण भक्ति का उपदेश देकर अन्तर्ध्यान हो गये ।

सात वर्ष के पश्चात् फिर भगवान ने दर्शन दिया और राजस्थान में जाकर निर्गुण भक्ति का प्रचार करने की आज्ञा दी। १९वें वर्ष में महाराज ने अहमदाबाद से राजस्थान के लिये प्रस्थान किया। आबू पहाड़ होते हुये मार्ग में ज्ञानदास-माणकदास को केदार देश का हिंसा से उद्धार करने

का आदेश दिया और पुष्कर होते हुये कुचामण रोड से दक्षिण लगभग १२ मील 'करडाला' ग्राम के पर्वत को अपना साधन स्थल चुना और लगभग १२ वर्ष वहां ही रहे। पर्वत के मध्य एक ककेड़े का वृक्ष था, उसके नीचे जाकर प्राय: ध्यानस्थ रहते थे। वहां अब छत्री बनी है। वहां की प्रेत-पहाड़ी में एक प्रेत रहता था, वह महाराज के पास आकर कुछ अपने चरित्र करने लगा, तब महाराज ने उस पर दया कर उसे मुक्त किया।

पीथा की चोरी छुड़ाई। उसने फिर रास देखने के निमित्त डाका डाला। तब वह माल माल-वालों को दिला कर उसे पर्वत शिखर पर महारास दिखाया। वह शिखर रास-स्थान के नाम से वहां प्रसिद्ध है। रास देख कर पीथा ने कहा—"गंग यमुन उल्टी बहे, पश्चिम उगे भान। पीथा चोरी ना करे, गुरु दादू की आन।" करडाले से साँभर आये। वहां उनके उपदेश का प्रभाव देख कर हिन्दू तथा मुसलमान दोनों को ईर्ष्या हुई। उन्होंने तत्कालीन सरकार से ऐसा फरमान निकलवाया कि "जो दादू के पास जायगा, वह ५००) रुपये दंड देगा।" इस फरमान का प्रचार नगर में करवा दिया गया किन्तु फिर भी दो सेवक दर्शनार्थ दूसरे दिन चले गये। महाराज ने कहा—"तुम क्यों आये हो, तुम दोनों धनी हो, पाँच सौ रुपये दण्ड देने से तुम्हारा पैसा व्यर्थ सरकार में जायगा।" उन्होंने कहा—"जब तक पैसा है, दण्ड देंगे और दर्शन करेंगे।" उनकी दृढ़ श्रद्धा देखकर महाराज ने कहा—फिर पत्र को अच्छी प्रकार पढ़ कर दण्ड देना। आश्रम से बाहर आते ही राजपुरुषों ने उन्हें पकड़ लिया और कचहरी में ले गये। उन्होंने पत्र दिखाने को कहा, पत्र में लिखा मिला—जो दादू के पास न जायगा, उसे पाँच सौ रुपये दण्ड देना होगा। सब राज-कर्मचारी यह देखकर अवाक् रह गये और उन्हें छोड़ दिया। एक दिन एक काजी ने कहा—"तुम हिन्दू तथा मुसलमान दोनों धर्मों के विधान के अनुसार न चल कर इच्छानुसार चलते हो, यह ठीक नहीं, तुम काफिर हो।" महाराज ने कहा—"जो मिथ्या बोले, वह काफिर होता है, चाहे कोई हो।" इस पर काजी ने रुष्ट होकर महाराज के मुख पर मुक्का मारा। महाराज ने कहा—यदि तुम्हें मारने से प्रसन्नता है तो दूसरी ओर मार लो। उसने दूसरी ओर मारने को हाथ उठाया तब हाथ ऊपर ही रह गया, न मार सका और तीन मास के भीतर ही हाथ गल कर वह काजी मर गया। उसका जमाई उरमायल अजमेर में रहता था, उसने जब अपने श्वसुर की मृत्यु घटना सुनी तब वह रुष्ट होकर बोला—"मैं साँभर जाकर उस साधु को गले तक भूमि में गाड़ कर मुख के दोनों ओर मुक्के मारूंगा।" वह रुई का व्यापारी था, जिस दिन महाराज के मुक्के मारने का विचार आया, उसी दिन रुई में बिना अग्नि ही अग्नि लग गयी और सात सौ मण रुई तथा उसकी स्त्री बाल-बच्चे जल कर नष्ट हो गये। उस घटना से वह डर गया, फिर महाराज को सताने नहीं गया। एक दिन महाराज बाहर से नगर में आ रहे थे, उसी समय वहाँ के शासकों ने उन पर मतवाला हाथी छोड़ा, मार्ग की जनता में हाहाकार मच गया किन्तु महाराज निर्भय रहे। हाथी ने आकर अपनी सूँड से महाराज के चरण छुये और प्रणाम करके लौट गया। एक दिन रात्रि के समय आश्रम में चोर घुसा और पुस्तकें उठाने लगा। संतों को ज्ञात हुआ तो परस्पर कहने लगे, बोलता नहीं है, अत: चोर ज्ञात होता है। महाराज ने शिष्य संतों को कहा—"हल्ला मत करो" और चोर को कहा 'यहां से शीघ्र चला जा, विशेष जाग होने से तुझे राज-पुरुष पकड़ लेंगे और दु:ख देंगे।' चोर पर महाराज के वचन का बड़ा प्रभाव पड़ा, वह प्रात:

प्रसाद लेकर आया और महाराज के उपदेश से चोरी छोड़ कर ईश्वर भजन में लग गया। एक दिन प्रात:काल स्वामीजी पद गा रहे थे, वह काजी मुल्लाओं को अच्छा न लगा। उनकी आज्ञा से दस-बीस मुसलमान आये और महाराज को पकड़ कर विलन्दखान खोजा के पास ले गये। उसने महाराज को कैद की कोटड़ी में बंद कर दिया। उस समय विलन्दखान को तथा सब जनता को महाराज का एक शरीर कैद की कोटड़ी में और एक बाहर दीख रहा था। यह देखकर विलन्दखान चरणों में पड़ गया और क्षमा माँगी। दयालु संतजी ने क्षमा प्रदान की। उक्त चमत्कारों को देखकर लोगों ने एक साथ सात महोत्सव आरम्भ किये। सातों में एक ही समय पधारने का महाराज को निमंत्रण दिया। महाराज ध्यानस्थ रहे, किसी के भी नहीं गये। भगवान् ही महाराज के सात शरीर धारण करके सातों महोत्सवों में एक ही समय जा पहुंचे। तब से नगर-निवासियों की महाराज पर विशेष श्रद्धा हो गई किन्तु विट्ठल व्यास के चित्त में ऐसी फुरणा हुई कि पास जाऊं, तब दादू जी बिना हुई माला मुझे देंगे तो मैं समझूंगा, महान् संत हैं। व्यास के जाने पर इच्छानुसार माला मिल गई। जैसे मुकन्द भारती की भविष्यवाणी जो जयमल की माता को कही थी कि—मैं तेरे पुत्र को शिष्य नहीं बनाऊंगा, कुछ समय में संतप्रवर दादूजी महाराज प्रकट होने वाले हैं उन्हीं का यह शिष्य होगा, इससे साधकों को तो महाराज पर विश्वास था ही किन्तु साँभर की उक्त घटनाओं से महाराज की बड़ी ख्याति हो गई थी।

वृन्दावन के श्रेष्ठ संत चतुरा नागाजी ने भी अपने पास शिष्य होने को आये बड़े सुन्दरदासजी को महाराज का शिष्य होने का आदेश दिया था। महाराज की विशेषताओं को देखकर महाराज को अपने संप्रदाय में मिलाने के लिये गलता के महन्त ने माला तिलक देने को चार साधु सांभर भेजे थे किन्तु महाराज ने उन्हें कहा—"हमारा मन ही हमारी माला है, गुरु उपदेश ही तिलक है, मुझे माला तिलक नहीं चाहिये।" इस पर वे रुष्ट होकर बोले, यदि आमेर का राज्य होता तो हम अवश्य तुम्हें हमारे संप्रदाय में मिला लेते। महाराज ने कहा— ठीक है कभी आमेर राज्य में भी यह शरीर आ ही जायगा। फिर महाराज आमेर पधार गये। वहाँ के राजा तथा प्रजा के लोग भी महाराज के भक्त हो गये। महापंडित जगजीवनजी, रज्जबजी आदि शिष्य आमेर में हुये।

उन्हीं दिनों महाराज के शिष्य माधवदासजी घूमते हुये सीकरी जा पहुंचे और एक मंदिर में मध्याह्न के समय शयन कर रहे थे, निद्रा में पैर मंदिर की ओर हो गये। पुजारियों ने कहा—"तू बड़ा नामदेव बन गया है जो भगवान् की ओर पैर करके सोया है।" माघवदासजी ने कहा—"नामदेव ने क्या किया था ?" पुजारी बोले—भगवान् को दूध पिलाया था।" माघवदासजी ने कहा-भगवान् तो प्रेम होने से अब भी दूध पी सकते हैं। दूध लाया गया, माघवदासजी ने प्याला दीवाल की ओर किया। भगवान् ने दीवाल से मुख निकाल कर दूध पान किया। यह देख तुलसीराम ने अकबर को कहा—यह साधु दम्भी है इसे मार देना ठीक होगा। फिर उन्हें सिंह के पिंजरे में बन्द कर दिया। प्रात: जनता के लोग देखने आये, तो देखा कि सिंह डरा हुआ पिंजरे के एक कोने में बैठा है और सन्त मध्य में ध्यानस्थ हैं। अकबर स्वयं आया और पिंजरे से निकाल कर क्षमा माँगी। उस समय तुलसीराम ने कहा—इनके गुरु दादूजी इनसे भी अच्छे संत है, आमेर में विराजते हैं। अकबर ने आमेर नरेश भगवतदासजी को कहा—संतों को यहाँ बुलाओ, न आयेंगे तो हम वहां

चलेंगे। भगवतदासजी ने सूर्यसिंह खींची को आमेर भेजा। प्रथम तो महाराज ने ना कर दिया, किन्तु सूर्यसिंह ने कहा—''यदि आप न पधारेंगे तो मैं प्रायोपवेशन व्रत द्वारा यहीं शरीर छोड़ दूंगा।''

तब दादूजी ने नरहिंसा उचित नहीं जानकर अपने सात शिष्यों के साथ सीकरी को प्रस्थान किया, वहाँ पहुंचने पर भगवतदास बड़े सत्कार से अपने यहां ले गये और आतिथेय सेवा के बाद बादशाह को सूचना दी। फिर बादशाह की प्रार्थना से आतिशखाना नामक स्थान में रहे। बादशाह ने अब्बुलफजल, राजा बीरबल और तुलसीराम इन तीनों को कहा—तुम महाराज के पास जाओ। तुलसीराम ने आते ही कहा—''अकबराय नम:'' महाराज ने कहा—''नमो निरंजन आतमरामा''। फिर तीनों ने महाराज से अपने विचारों के अनुसार प्रश्न किये और महाराज के समाधान रूप विचारों से सन्तुष्ट हुये। बादशाह के पास जाकर महाराज की विशेषताएं बताईं। शेख अब्बुलफजल और राजा भगवत् दास के द्वारा महाराज को अकबर ने बुलाया और सत्संग किया। प्रतिदिन सत्संग होता रहा। फिर अकबर को ज्ञात हुआ कि-महाराज राज-अन्न नहीं खाते। कुछ लोगों ने कहा—किले के भीतर ठहरे हैं, भिक्षा को जावें तब द्वार बन्द करा दो, आप खायेंगे। वैसा ही किया। जग्गा जी भिक्षा को जाते थे, द्वार बन्द देखकर द्वारपाल को आवाज दी, न बोलने पर उन्होंने अपने योग बल से सब बात जान ली और अपना शरीर बढ़ा के दीवाल लांघकर भिक्षा ले आये। यह जानकर अकबर डर गया और आज्ञा दे दी कि संतों को अपनी इच्छानुसार ही रहने दो। अकबर ने चालीस दिन सत्संग किया, फिर महाराज को भेंट के रूप में विशाल धन राशि देने लगा तब महाराज ने मना कर दिया।

अकबर के पास एक कुरान पढ़ा हुआ तोता था, उसका पिंजरा रत्न जटित स्वर्ण का था। अकबर ने सोचा, महाराज तोता लेना स्वीकार कर लें तो पिंजरे का धन उनकी सेवा में जा सकता है, किन्तु उन्होंने अपने मन को ही तोता बता कर लेना स्वीकार नहीं किया। सेवा के लिये विशेष आग्रह करने पर ''गो-हिंसा बन्द कर दो यही हमारी सबसे बड़ी सेवा है।'' अकबर ने स्वीकार किया, यह देख कर वहाँ के काजी-मुल्लाओं ने अकबर से कहा—''आपने एक साधारण साधु के कहने से गो-वध बंद की आज्ञा दे दी है, उसकी कोई करामात तो देखी होती। अकबर ने उनके कहने से सभा में महाराज को बुलाया और बैठने के योग्य स्थान खाली नहीं रक्खा। महाराज उसके मन की बात जान गये और अपने योग बल से सभा के आकाश में तेजोमय सिंहासन रच कर उस पर विराज गये। यह देख कर सभी सभासदों को महान् आश्चर्य हुआ और बादशाह आदि सभी अपने-अपने आसन छोड़ कर प्रणाम करते हुये क्षमा माँगने लगे।

अकबर से बिदा होकर राजा बीरबल के रहे, उसे उपदेश करके आमेर नरेश भगवतदास के बुलाने पर उसके रहे, आमेर नरेश ने बड़े सत्कार पूर्वक सीकरी से विदा किया। वहां से विदा होकर सात दिन तक वन ही वन से आये। कारण, ग्रामों में जाने से जनता की भीड़ लगती थी। इस प्रकार चलते हुये एक दिन प्रात: काल दौसा के गेटोलाव तालाब पर प्रात:काल पहुंचे और शिष्य संतों को कहा—''स्नान कर लो।'' जग्गाजी ने कहा—''स्नान करा कर क्या गर्म जलेबी जिमाओगे।'' महाराज ने कहा—''जलेबी तुम्हारे लिये क्या दुर्लभ है, किन्तु तुम अपना काम तो करो, फिर

ईश्वर का काम वे आप करेंगे।'' सब संत स्नान करके भजन करने बैठे। भोजन के समय पर तालाब में एक छाब तैरती हुई दिखाई दी और महाराज के पास तट पर आ गई। सब संतों को गर्म जलेबी जिमाई, फिर भी बच गई, वह तालाब में ही छोड़ दी, कुछ दूर जाकर वह जल में डूब गई।

इस प्रकार घूमते हुये आमेर आ पहुंचे। आमेर में मार्ग के पास एक योगी रहता था, एक दिन महाराज और टीलाजी मार्ग से आ रहे थे। योगी बोला—''ए ! दादूड़ा ! आज कल कहां जाता आता है, अकबर के पास जाकर अपने को बहुत बड़ा मानने लगा है, किन्तु तुझ में कुछ भी शक्ति नहीं, तुझे तो मैं अभी आकाश में उड़ा सकता हूं।'' ''महाराज कुछ भी न बोले किन्तु टीलाजी ने कहा—जो कहता है वही उड़ेगा, इतना कह कर टीलाजी ने कहा—''उड़ जा शिला सहित।'' वह तत्काल उड़ गया। फिर करुणा पूर्ण शब्दों में महाराज से प्रार्थना की तब महाराज ने टीलाजी को कहा—'उतार दें।'' महाराज की आज्ञा मान कर उसे भूमि पर उतार दिया। योगी ने फिर चरणों में पड़कर क्षमा माँगी।

आमेर में एक तुर्क ने सत्संग सभा में मुख-बन्द मांस का पात्र इस भावना से लाकर रक्खा था कि महाराज पहचान जायेंगे तो मैं उन्हें उच्च कोटि का संत मानूंगा। महाराज उसकी बात को जान गये। उसे खोलने पर उसमें खांड भात निकला। आमेर में रहते हुये ही समुद्र में डूबती हुई व्यापारियों के एक जहाज को उनकी प्रार्थना योग-बल द्वारा जान कर तारी थी। धर्‌या जैमल नरेश और उसकी प्रजा की प्रार्थना पर योग बल से केदार (कच्छ) देश में देवी के मंदिर में प्रकट हुये। वहां के नरेश पद्मसिंह उस समय देवी की पूजा कर रहे थे। उन्होंने महाराज को बाहर निकालने की आज्ञा दी। महाराज का एक शरीर बाहर निकाला तो वहां दो शरीर खड़े हो गये, इस प्रकार ज्यों २ राज पुरुष निकालते थे, त्यों-त्यों दूने होते जाते थे। सब मंदिर महाराज के शरीरों से परिपूर्ण हो गया तब पद्मसिंह चरणों में पड़ गया और क्षमा माँगी। महाराज ने उसे अहिंसा का उपदेश किया, उसने स्वीकार किया और देवी को बलि देना बन्द कर दिया। इस प्रकार महाराज की कृपा से केदार देश अहिंसक बना। ज्ञानदास और माणकदास जी का प्रयत्न सफल हुआ।

आमेर में रहते हुये ही योगबल से हिमालय की भंभर घाटी में राजा बीरबल की महाराज ने हिम से रक्षा की थी। आमेर में ही गुफा के कपाट बन्द रहने पर भी दो सिद्ध सूक्ष्म शरीर बना गुफा में घुसे और महाराज के पास बैठ कर बात करने लगे कि जो काश्मीर में घोड़े दौड़ रहे हैं सो दादूजी को नहीं दीख रहे होंगे। उनके दूरदर्शन रूप दर्प को देख कर महाराज ने कहा—फिर बताओ अगले घोड़े के कान किस रंग के हैं ? सिद्ध न बता सके। महाराज ने कहा—''नीले कानों वाला घोड़ा आगे दौड़ रहा है।'' ऐसा, कह कर महाराज बोले-जब तक अपना आत्म स्वरूप ब्रह्म नहीं जाना जाय, तब तक दूर-दर्शनादि सिद्धियों से भव-बन्धन नहीं कटता। अत: परब्रह्म को जानने का यत्न करो। सिद्धजी महाराज का उपदेश स्वीकार करके चले गये।

टोंक निवासी नरहरिदास और माधवदासजी ने महोत्सव पर महाराज को आग्रहपूर्वक बुलाया था, उस समय अंधेरे बाग में संत-समूह एकत्र हुआ और संत दर्शनार्थ जनता भी अधिक आ गई थी। भोजन सामग्री कम पड़ने की बात माधवदासजी ने कही, महाराज ने कहा—''कोई चिन्ता नहीं, भगवान् के भोग लगाने का थाल यहां ले आओ।'' माधवदासजी ने वैसा ही किया।

महाराज ने भगवान् के भोग लगाया और थाल माधवदासजी को देकर कहा—''इसे भोजन राशि में मिला दो, कभी भी कम न होगा।'' वैसा ही हुआ।

साधु समाज का आग्रह था कि महाराज ही हम सबको प्रथम अपने हाथ से प्रसाद दें, तब ही जीमेंगे। माधवदासजी ने महाराज को कहा। महाराज ने कहा-ऐसा हो जायगा। फिर चार मुट्ठी लौंग लेकर महाराज ने अनेक शरीर धारण करके एक साथ सबको अपने हाथ से प्रसाद दे दिया। माधवदास जी ने पूछा-किसी को ५, किसी को ६ और किसी को ७ लौंग मिली हैं, यह क्या बात है[१] महाराज ने कहा-तीन प्रकार की श्रद्धा वाले लोग थे, जिनकी जैसी श्रद्धा थी उतनी ही लौंग उनको मिली है। ७ दिन तक टोंक में सत्संग होता रहा।

महाराज गुठले ग्राम को जा रहे थे, मार्ग बताने को कुछ बाल-भक्त भी साथ थे। मार्ग में गो मंडल मिला और महाराज को घेर कर खड़ा हो गया। प्रत्येक गाय महाराज को बारंबार प्रणाम करती थी, महाराज चलने लगते तो चलने लगती थी, खड़े रहने पर शीश नमाती थी। साथ के संतों को यह घटना देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ। गो-यूथ का प्रेम देखकर महाराज ने उनको मुक्ति प्रदान की।

आँधी ग्राम के पूर्णदास आदि भक्त विशेष आग्रह करके महाराज को चातुर्मास में आँधी ले गये, वहां वर्षा न होने से जनता को व्यथित देख कर भगवान् से प्रार्थना करके वर्षा बरसाई। फिर पीथा के आग्रह से करडाले पधारे और पादू, रीवां, ईडवा आदि ग्रामों में भक्ति ज्ञानादिका उपदेश करते हुये मारवाड़ प्रदेश में पधारे। बीकानेर नरेश भुरटिये राव रायसिंह ने खाटू ग्राम में बुलाया। महाराज ने स्वीकार किया, किन्तु पीछे किसी मंत्री ने राव को बहका दिया, इस कारण राव को अश्रद्धा हो गई। महाराज के आने पर राव ने प्रश्न किये—आपका धर्म क्या है ? रहनी क्या है ? कर्त्तव्य क्या है, कथनी क्या है ? महाराज बोले-राम-नाम चिन्तन ही हमारा धर्म है, पांचों इन्द्रियों का संयम ही हमारी रहनी है, संतों ने जो किया है वही हमारा कर्त्तव्य है, और राम में वृत्ति लगाओ यही हमारा कथन है। राव ने कहा—यह ज्ञान नहीं, चतुराई है। महाराज शांति प्रिय थे, वे चुप रहे । फिर राव ने महाराज को मारने का षड्यंत्र किया। जहां महाराज ठहरे थे उस स्थान के मार्ग में मतवाला हाथी छोड़ दिया। हाथी को आते देख गरीबदासजी ने कहा—''इस मार्ग में षड्यंत्र ज्ञात होता है।'' महाराज बोले—''षड्यंत्रकारियों को उनके कर्म का फल मिलेगा और हमारी रक्षा निरंजन राम अवश्य करेंगे।'' गरीबदासजी तथा रज्जबजी बड़ी सावधानी से महाराज के साथ चल रहे थे। हाथी जब समीप आया तो रज्जबजी उसे हटाने के लिये आगे बढ़ना चाहते थे, किन्तु महाराज ने उनको रोक दिया। हाथी आया और मंत्रमुग्ध के समान खड़ा रह गया। फिर उसने सूंड से महाराज के चरण छूये, मस्तक नमाया। महाराज ने उसके सिर पर हाथ रक्खा, फिर वह हाथी शांतिपूर्वक लौट गया।

भुरटिये राव ने यह विचित्र घटना देखी, तब बहकाने वाले मंत्री को उलाहना दिया और श्रद्धापूर्वक महाराज के पास गया, सत्संग किया तथा अपने यहां ले जाने का आग्रह करके बोला—''संतों के स्थान, खानपानादि का प्रबन्ध मैं कर दूंगा आप सदा ही मेरे यहां रहा करें ।'' महाराज बोले-हम तो एक परब्रह्म रूप राजा के ही आश्रित रहते हैं, अन्य राजाओं के आश्रित

नहीं । फिर उधर से अनेक ग्रामों में भक्तों को सत्-शिक्षा देते हुये नरेना में आये, मार्ग में जाते हुये बखना को होली गाते हुये देखकर कहा—''जिन भगवान् ने तेरा सुन्दर शरीर बनाया है, उनके गुण तो नहीं गाता और अपने पतन के कारण गंदे गीत गाता है, यह उचित नहीं।'' यह सुनते ही बखना चरणों में पड़ा और शिष्य बन गया। (बखनाजी बड़े प्रसिद्ध गायक भक्त हुए हैं। — सं.)

फिर अनेक भक्तों के यहां घूमते हुये घाटवा के लाडखानियों के आग्रह पर घाटवा पधारे । फिर प्रयागदासजी महाजन डीडवाने ले गये। वहां से किरडोली जाने लगे, तब बीच में ही आग्रह करके तिलोकशाह अपने ग्राम साहपुरा ले गये। बड़ी श्रद्धा से सेवा की किन्तु वहां से पधारते समय तिलोक के फुरणा हुई ? महाराज के विषय में बड़ी अद्भुत बातें सुनी जाती हैं किन्तु यहां पर तो कोई भी आश्चर्यकारक घटना नहीं घटी। महाराज उसके मन की बात जान गये और स्थान से बाहर जाकर बोले—''हम शरीर साफने का साफा छोड़ आये सो ले आओ।'' तिलोक लाने गया तो देखा वहां भी महाराज बिराज रहे हैं; उसने मार्ग की ओर देखा तो मार्ग में भी खड़े हैं। फिर साफा ले आया। महाराज ने कहा—''मेरी कमर के बाँध दो।'' बाँधने लगा तो गांठ तो आ जाय किन्तु कमर नहीं बँधे, यह देखकर तिलोक चरणों में पड़ गया। फिर महाराज उसे निष्काम भाव से संत सेवा करने का उपदेश देकर पधार गये। एक दिन अजमेर ख्वाजा पीर की दरगाह के पीर ने एक फकीर के हाथ एक दोने में मिश्री और फूल भेजे। उसने सामने रख कर सत्संग की बातें चलाई। आध घंटे में वे फूल और मिश्री बतासों के रूप में बदल गये। वे उस फकीर को प्रसाद रूप देकर विदा किया। संतों ने पूछा—भगवन् ! यह क्या बात थी जो अपने आप फूल और मिश्री बतासे बन गये ? महाराज ने कहा—'वह मिश्री अपने काम की न थी और किसी का अपमान करना भी अच्छा नहीं, भगवत् कृपा से बतासे बन गये और उसे ही दे दिये।'' फकीर ने उक्त घटना पीरजी को कही, तब पीर भी श्रद्धापूर्वक महाराज के दर्शनार्थ गये और बोले—मैंने भूल की जो फकीर को भेजा, क्षमा कीजिये। महाराज ने उन्हें मधुर बचनों से हितकर उपदेश किया। वह संतुष्ट होकर लौट गये।

फिर विचरते हुये महाराज आल्हनवास आये और वहां से पादू गये। अल्लहण भक्त ने महाराज को आग्रहपूर्वक इसलिये रोका कि महाराज के सत्संग से लोगों को लाभ होगा किन्तु परशुरामजी के अनुयायियों ने लोगों को बहकाया, अत: वे सत्संग में सम्मिलित नहीं हुये। अल्लहण श्रीमान् न था, महाराज के साथ संत बहुत थे। उसने महाराज से कहा-''ग्राम के लोग दूसरों के बहकाने से भोजनादि का सहयोग नहीं दे रहे हैं।'' महाराज बोले-'तुम अपने घर का ही जिमाओ कोई कमी न आयेगी।'' फिर तो उसकी वस्तुयें अपार हो गईं, कोई भी कम न पड़ी। खूब आगत-अतिथियों तथा गरीबों को दिया जाता था। यह आश्चर्य देखकर ग्राम की श्रद्धा हो गई। अल्लहण ने महाराज के लिये कम्बली बनाई थी, जब वह भेंट दी तो महाराज ने कहा ''मुझे तो अभी आवश्यकता नहीं है।'' यह सुन कर अल्लहण को बड़ा दु:ख हुआ। तब भगवान् की आज्ञा हुई, कम्बली ग्रहण करो और अल्लहण को प्रसाद दो। महाराज ने भगवद्-आज्ञा के अनुसार ही किया, झारी जल प्रसाद देते ही अल्लहण की दिव्य दृष्टि हो गई। फिर महाराज वहां से विचरण कर गये ।

अल्लहण को परशुरामजी के अनुयायियों ने कहा-''दादू का मत अच्छा नहीं है, हमारा

मत अच्छा है, हमारी दीक्षा लो।'' अल्लहण बोला—सभी संतों का मत अच्छा है, फिर भी आपका आग्रह है तो यह दो मास की पाडी बैठी है, जो इसका दूध निकाल ले, उसी का मत अच्छा माना जायगा। परशुरामजी के अनुयायियों से न निकला। अल्लहण ने पाडी की पीठ पर थप्पी मार कर तथा 'सत्यराम' बोल कर पाडी का दूध निकाल कर चरी भर दी तब वे लज्जित होकर चले गये।

ईडवा ग्राम में दाँतुन के समय दूजन दासजी ने हरा दाँतुन लाकर दे दिया, तब महाराज ने कहा—''सूखे से भी दाँत साफ हो जाते हैं, तुम हरे वृक्ष को क्यों तोड़ लाये।'' फिर दाँतुन करके उसे पृथ्वी में गाड़ दिया, उसकी इमली ईडवा में अब तक है। फिर घूमते हुये बखनाजी के आग्रह से नरेना आये, तब वहां से ऊधवजी भैराना ले गये। मालवा के सिरौंज ग्राम में मोहनजी दफ्तरी ठहर रहे थे। एक दिन महोत्सव के समय भोग-थाल मोहनजी के पास आया तो उनके मन में संकल्प हुआ कि यह गुरुदेव पालें तो मेरा जन्म सफल हो जाय। महाराज आमेर में भोजन करने विराजे थे, टीलाजी थाल रसोई से लाने गये थे, लेकर आये तो आगे चौकी पर थाल रक्खा देख कर पूछा—थाल कहां से आया ? महाराज ने कहा—''सिरोंज से मोहन दफ्तरीजी ने भेजा है।'' महाराज ने भोजन किया और थाल सिरोंज को लौटा दिया। सिरौंज के भक्तों ने मोहनजी से पूछा—''थाल कहां गया था और कहां से आया ?'' मोहनजी ने कहा—गुरुदेवजी के पास आमेर गया था। महाराज ने तुम्हारा भोजन पाया है।

टहटड़ा में नागर-निजाम को सिद्ध पात्र दिया था। ऊंचा रख देने से इच्छानुसार भोजन आ जाता था। वहाँ से सेवकों के आग्रह पर दौसा पधारे और चौखाभूसर के पुत्र छोटे सुन्दरदास जी को अपना शिष्य बनाया। वहाँ से पुन: साँभर आये। यहां के भूधरदास वैरागी ने सोचा यह पहले के समान यहाँ न जम जाय, अत: यहां से मारपीट कर भगा देना चाहिये। अपने शिष्य को साथ लेकर एकान्त स्थान में महाराज के पास गया। वहां जाते ही शिष्य को उसके गुरु भूधरदास जी दादूजी के रूप में भासने लगे। इससे उसने गुरु को ही मारना आरम्भ कर दिया, गुरु ने कहा—''मैं तो तेरा गुरु हूं, मुझे क्यों मारता है।'' शिष्य बोला—''जैसा तू गुरु है वैसी ही तेरी पूजा कर रहा हूं।'' अन्त में गुरु अधमरा हुआ तब अपने रूप से भासा और महाराज अपने रूप में भासने लगे। अब तो वे दोनों समझ गये और चरणों में पड़कर क्षमा मांगी फिर वहां से करडाले पधारे।

उन्हीं दिनों महाराज के भक्त वणजारों ने मोरड़ा ग्राम के पास अपना पड़ाव डाला और करडाला से महाराज को अपने पड़ाव पर लाये तथा महान् उत्सव मनाया। महाराज ने भी उनको मुक्ति प्रदान की। वि. सं. १६५९ में जब भगवान् की आज्ञा ब्रह्मलीन होने की हुई तब शिष्य संतों के मन में कहीं धाम बनाने की इच्छा हुई। उनके मन की बात जानकर महाराज ने नरेना ग्राम के सरोवर तट पर धाम बनाना उचित समझा। नरेना नरेश नारायणसिंह दक्षिण में थे, उनके मन में भी फुरणा हुई-महाराज को नरेना लाकर सत्संग करना चाहिये। उन्होंने महाराज को बुलाया। वहां के विप्रों ने राजा से कहा, महाराज के यहां रहने पर तुम्हारा राज्य नहीं रहेगा, अत: उनको यहां मत रक्खो। किन्तु नरेश ने उनकी बात न मानी। महाराज तीन दिन रघुनाथ मंदिर में रहे, फिर ७ दिन त्रिपोलिया पर रहे। राजा सत्संग करने प्रतिदिन जाते थे। आठवें दिन जहां महाराज का आसन था, वहां एक महान् सर्प ने प्रकट होकर अपने फन से तीन बार

वहां से उठने का संकेत किया। महाराज भगवान् की आज्ञा मानकर उसके पीछे पीछे चल पड़े। एक खेजड़े के नीचे जाकर सर्प ने फन से वहां ही विराजने का संकेत किया तो महाराज वहां ही विराज गये। वह खेजड़ा अभी तक विद्यमान है।

वहां तालाब के तट और बाग के बीच एक मास में धाम तैयार हो गया। वहीं फिर एक दिन भूतकाल के संत पधारे और रात्रि को ब्रह्म विचार होता रहा। प्रात: टीलाजी ने पूछा-बाहर से तो कोई आया नहीं और रात्रि को आपके पास कई महानुभावों के वार्तालाप के शब्द सुनाई दे रहे थे, क्या बात थी ? महाराज ने कहा—भूतकाल के संत नभ-मार्ग से आये थे और नभ-मार्ग से ही चले गये।''

अन्त समय गरीबदासजी ने प्रश्न किया-स्वामिन् ! आपने ऐसा मार्ग दिखाया है जो हिन्दू मुसलमानों की सीमित सीमा से आगे का है। किन्तु इसका आगे कैसे निर्वाह होगा ? महाराज ने कहा-तुम ऐसा विचार मत करो, जो अपने धर्म में रहेंगे उनकी रक्षा राम करेंगे, और तुम विशेष चाहो तो हमारा शरीर रख लो, जो भी पूछना चाहोगे उसी का उत्तर इससे मिलता रहेगा ? तथा ऐसा भी न समझो कि-वह शरीर खराब हो जायगा, यह पंच तत्त्व से बना हुआ नहीं है, यह तो दर्पण में प्रतिबिम्बित शरीर के समान है। यदि तुम्हारे संशय हो तो हाथ फेर कर देख लो।'' गरीबदासजी ने हाथ फेरा तो दीपक ज्योति-सा प्रतीत हुआ। दीखता तो था किन्तु पकड़ने में नहीं आता था। फिर गरीबदासजी ने कहा-जब आपने ऐसा देह बना लिया तो कुछ दिन इसे और रखने से तो हम शवपूजक कहलायेंगे जो आपके उपदेश के अनुसार उचित नहीं।'' महाराज बोले 'तो फिर यहां एक बिना तेल-घृत और बत्ती के अखंड-ज्योति रहेगी उससे तुम्हारे सभी कार्य सिद्ध होते रहेंगे।'' गरीबदासजी ने कहा उस ज्योति के महान् चमत्कार को देखकर यहां जनता का अधिक आना जाना रहेगा जो हमारे साधन में पूर्ण विघ्न बनेगा, हम पंडे बन जायेंगे, अत: यह भी ठीक नहीं है।'' गरीबदासजी की निष्कामता देखकर महाराज प्रसन्न हुये और बोले ''जो हमारी वाणी का आश्रय लेकर निर्गुण भक्ति करेंगे, उनकी परब्रह्म रक्षा करेंगे और जो इष्ट-भ्रष्ट होगा, उसे परम पद नहीं मिलेगा।'' गरीबदासजी ने फिर पूछा ''स्वामिन्। आपको भविष्य का सब वृत्तान्त करामलकवत् ज्ञात है, अत: बताइये फिर भी कोई उत्तम भक्ति करने वाला संत आपके समाज में होगा या नहीं ? महाराज ने कहा—सौ वर्ष पीछे एक संत होगा।'' (वे ही श्री जयत साहब जी महाराज हुये, ऐसा संतों से सुनते आ रहे हैं)

ब्रह्मलीन होने से पूर्व महाराज ने सब संतों को बुलाया और दर्शन देकर तथा स्नान करके स्थान पर विराज गये। उस समय भगवान् की तीन बार आज्ञा हुई कि आओ३। तीसरी आज्ञा के साथ ही महाराज ने अपना देह त्याग दिया। वि. सं. १६६० ज्येष्ठ कृष्णा ८ शनिवार को एक पहर दिन चढ़े उक्त प्रकार से महाराज ब्रह्मलीन हुये। फिर एक सुन्दर पालकी में शरीर को रखकर महाराज की आज्ञानुसार संकीर्तन करते हुये भैराना गिरि पर ले गये। यहां पालकी ले जाकर रख दी। फिर अन्त्येष्टि संस्कार सम्बन्धी विचार कर रहे थे कि उसी समय टीलाजी को गिरि के मध्य भाग की गुफा के द्वार पर महाराज के दर्शन हुये। टीलाजी ने सबसे कहा, सबने दर्शन किये। इतने में ही महाराज-'संतो ! सत्यराम'' यह बोल कर अन्तर्ध्यान हो गये और पालकी में शरीर के स्थान

पर पुष्प मिले। कहा भी है: ''गुरु दादू रु कबीर की, काया भई कपूर। रज्जब अज्जब देखिया, सगुण हि निर्गुण नूर॥'' फिर गरीबदासजी ने महान् महोत्सव किया। इस प्रकार महाराज ५९ वर्ष २॥ मास धरातल पर रह कर लोक कल्याणार्थ उपदेश करते रहे और १५२ शिष्य करके ब्रह्मलीन हुये।

सौ शिष्यों ने केवल निरंजन राम का भजन ही किया और ५२ प्रचारक हुये तथा थाभांयती महन्त कहलाये। उनमें अधिकतर बाणीकार हुये हैं। ५२ के नाम और स्थान निम्न प्रकार है :-

दादूजी दयालु पाट गरीब मसकीन ठाट, युगल बाई निराट निराने विराज ही।
बखनो संकर पाक जैसो चांद प्रागटांक, बड़ोहु गोपाल ताके गुरु द्वारे राज ही॥
सांगानेर रज्जब सो देवले दयालदास घड़सी कडेल बसी धर्म ही की पाज ही।
ईडवे दूजनदास तेजानन्द जोधपुर, मोहन सो भजनीक आसोप निवाज ही॥१॥
गूलर में माधोदास विद्याद में हरिसिंह, चत्रदास सिंघ्रावट किये तन काज ही।
विहाणी प्रयागदास डीडवाणे है प्रसिद्ध, सुंदरदास भूसर सु फतेपुर गाज ही॥
बाबा बनवारी हरिदास दोऊ रतिया में, साधुराम मंडोठी में नीके नित्य छाज ही।
सुन्दर प्रहलाददास घाटड़े सु छीण मांहि, पूरब चतुरभुज रामपुर राज ही॥२॥
निराणदास मांगल्यो सु डांग मांहि एकलोद रणतभंवरगढ चरणदास जानियो।
हाड़ोती गंगाइचा में माखूजी मगन भये, जग्गोजी भडूंच मध्य प्रचाधारी मानियो॥
लालदास नायक सो पीरांणी पटणदास, फोफले मेवाड़ माँहि टीलोजी प्रमानियो।
सादा प्रमानन्द दोउ ईंदोखली रहे जप, जयमल चौहांण सो खालड़े हरि गानियो॥३॥
जैमल जोगी कछावो वनमाली चोकन्यों सु, सांभर भजन रूप सो वितान तानियो।
मोहन दफ्तरी सो तो मारोठ चिताई भले, रघुनाथ मेड़ते सु भाव कर आनियो।
कालेडेरे चत्रदास टीकूदास नांगल में, झोटवाड़े झांझूमांझू लघु गोपाल धानियो।
आमावती जगन्नाथ राहोरी में जनगोपाल, बारा हजारी संतदास चांवड़े लुभानियो।४।
आंधी में गरीबदास भानगढ़ माधव के, मोहन मेवाड़ा जोग साधन से रहे हैं।
टहटड़े में नागर निजाम हूं भजन कियो, दास जगजीवन सु दौसा हरि लहे हैं॥
मोहन दरियाई सो समाधी नागर चाल मध्य, बोकड़ास संत जु हिंगोल गिरि भये हैं।
चैनराम कांणोता में गोंड़ार कपिलमुनि श्यामदास झालाणा में चौड़ा का में ठये हैं॥५॥
सौंक्या लाखा नरहर आलूदे भगति कर, महाजन खंडेलवाल दादू गुरु गहे हैं।
पूर्णदास ताराचंद महाजन महरवाल, आंधी में भगति कर काम क्रोध दहे हैं।
रामदास राणीबाई क्रांजल्यां प्रकट भये, महाजन डंगायच सो जाति बोल सहे हैं॥
बावन ही थांभा अरु बावन ही महन्त ग्राम, दादू पंथी राघोदास सुने जैसे कहे हैं॥६॥

महाराज ने भक्तों को जो उपदेश किये हैं उन्हीं का संग्रह वाणी में है। महाराज का विस्तृत पद्यमय चरित्र श्री लक्ष्मीराम चिकित्सालय, सांगानेर दरवाजा, जयपुर में उपलब्ध है।

चरितामृत श्री दादु का यह संक्षिप्त स्वरूप। पढ़े प्रेम से देत हैं, मन बल परम अनूप।
ब्रह्म रूप श्री दादू को बारंबार प्रणाम। 'नारायण' के चित्त को, दें संतत विश्राम॥

ले.-संतकवि कविरत्न स्वामी नारायणदास श्री कृष्ण कृपा कुटीर, पुष्कर

श्री वाणी प्रार्थना पञ्चदशी

शिष्येभ्य: प्रतिबोधितां शमदमश्रद्धादिमद्भ्य: स्वयं
श्रीदादूगुरुभिर्दयाद्रहृदयैरंशावतारै: प्रभो ।
शुद्धब्रह्मविचारसाधनपरां मायाभ्रमोच्छेदिनीं
शिष्यत्वेन भजाम्यहं गुरुमिवं श्रीदादुवाणीमहो ॥ १ ॥

सुधाधारासारै: प्रवचनघनान्तविगलितै—
र्जनानां सिञ्चन्ती हृदयमतिशान्तिप्रजननै: ।
महाकालज्वालापतितजनसन्तापशमनी
गुरूणां वाणीयं परमसुखशान्तिं वहतु मे ॥ २ ॥

गुरोराशीर्वादात् मनुजजनिसाफल्यकरणै–
र्हृषीकेश–ध्यानस्मरण–मननाभ्यास–विधिभि: ।
स्वभक्तानां नित्यं परमपुरुषार्थं विदधती
गुरूणां वाणीयं परमसुखशान्तिं वहतु मे ॥ ३ ॥

समुद्दीप्यास्माकं हृदयपटले स्नेहबहुले
परब्रह्म–प्रेमानलमखिल—पापप्रदहनम् ।
प्रशस्तीकुर्वाणा परमप्रभुसायुज्यपदवीं
गुरूणां वाणीयं परमसुखशान्तिं वहतु मे ॥ ४ ॥

भ्रमन्तं संसारे चिरतरवियुक्तं प्रियतमात्
परब्रह्मस्थानात् परमपरमानन्दविभवात् ।
नयन्ती भूयोऽपि स्वभवनमिमं जीवनिवहं
गुरूणां वाणीयं परमसुखशान्तिं वहतु मे ॥ ५ ॥

महारण्ये भ्रष्टं जगति भयभीमेऽतिविषमे
गृहीत्वा हस्ताग्रं शिशुमिव रुदन्तं नरमिह ।
निविष्टं कुर्वाणा परमपितुरंके पुनरपि
गुरूणां वाणीयं परमसुखशान्तिं वहतु मे ॥ ६ ॥

इमं जीवात्मानं प्रियतमपरात्मानमभित:
प्रतिष्ठां प्रापय्य प्रियतमकराग्रेण मधुरम्।
परब्रह्मानन्दामृतचषकपानं प्रदिशती
गुरूणां वाणीयं परमसुखशान्तिं वहतु मे ॥ ७ ॥

अनादे: कालाद् वै चिरविरहिणोर्जीवशिवयो:
पुनर्योगं कृत्वा सरलसरलोपायविधिभि: ।

मिथ: प्रेमक्रीडोत्सवसुखरसास्वादनचणा
गुरूणां वाणीयं परमसुखशान्तिं वहतु मे ॥ ८ ॥
अमुष्मिन् वै मायामयचमचमत्कारपिहिते
प्रपञ्चे प्रच्छन्नं सकलरमणीयं शिवतमम् ।
परं सत्यं साक्षात् नयनगमनीय विदधती
गुरूणां वाणीयं परमसुखशान्तिं वहतु मे ॥ ९ ॥
प्रभुप्रेयोऽस्माकं भवति खलु नि:श्रेयस्कर:
तत: श्रेयस्कामै: सततमवधेयं प्रभुप्रियम्
इति श्रेयोमार्गानुगमनसुशिक्षावितरणी
गुरूणां वाणीयं परमसुखशान्तिं वहतु मे ॥ १० ॥
कथं मायामोहो विलयमुपनेयो मतिमतां
चलं चैतच्चित्तं कथमथ विधेयं प्रभुपदे ।
तदित्थं कल्याणोत्तमविधिविधानं विदधती
गुरूणां वाणीयं परमसुखशान्तिं वहतु मे ॥ ११ ॥
पशुत्वात् मानुष्यं मनुजपदत: सिद्धपदवीं
सुसिद्धाद् देवत्वं तदनु च परब्रह्मपदवीम्।
प्रदातुं सर्वेभ्य: सततकटिबद्धा सहृदया
गुरूणां वाणीयं परमसुखशान्तिं वहतु मे ॥ १२ ॥
यमन्वेष्टुं तीर्थप्रभृतिबहिरङ्गेषु बहुशो
भ्रमन् व्यर्थं लोक: समयमथ शक्तिं गमयते ।
महेशं तं स्वान्तर्हृदयभवने दर्शनपरा
गुरूणां वाणीयं परमसुखशान्तिं वहतु मे ॥ १३ ॥
पवित्रीकर्तव्यैर्यमनियमसंस्कार विधिभि-
र्दयादानौदार्य—प्रभृतिभिरनेकैर्गुणगणै: ।
जनानां चारित्र्येष्वभिनवपरिष्कारकुशला
गुरूणां वाणीयं परमसुखशान्तिं वहतु मे ॥ १४ ॥
अहो तत्तद्रागोन्नयननिपुणैरप्यतितरां
पदैर्गीतैर्गीतैर्भवविषय—वैराग्य—जननी ।
विरक्तानां भक्तौ रसिकमनसां प्रीतिनयनी
गुरूणां वाणीयं परमसुखशान्तिं वहतु मे ॥ १५ ॥

— स्वामी बलराम: शास्त्री प्राचार्य:

अथ विषय सूची

॥श्री॥

श्री दादूवाणी माहात्म्य

श्री दादूवाणी की महा महिमा कही न जाय। पद पद में अनुभव किये, श्रुति सिद्धान्त सुहाय॥
ब्रह्म रूप अहि ब्रह्मवित्, जाकी वाणी वेद। भाषा अथवा संस्कृत, करत भेद-भ्रम छेद॥
वाणी जाकी वेद सम, कीजै ताकी सेव। ह्वै प्रसन्न जब सेवतैं, तब जानैं निज भेव॥
वाणी दादू दयाल की, सब शास्त्रन को सार। पढ़ैं विचारैं प्रीति सूं, ते जन उतरैं पार॥
दादू दीन दयालु की, वाणी बिसवा बीस। तिनकूं खोजि विचार कर, अंग धरे सैंतीस॥
तिन मांहीं जो हारड़ै, तिनके तिते स्वरूप। को विवेकी केलवै, काढै अर्थ अनूप॥
दादू दीन दयाल की, वाणी कंचन रूप। कोइ एक सोनी संतजन, छड़ि है घाट अनूप॥
दादू दीन दयालु की, वाणी अनुभव सार। जो जन या हिरदै धरै, सो जन उतरै पार॥
जे जन पढ़ैं जु प्रीति सूं, उपजै आतम ज्ञान। तिनकूं आन न भास ही, एक निरंजन ध्यान॥
जिनके या हिरदै बसी, याही मैं मन दीन। तिनकूं अति मीठी लगी, आठ पहर लौ लीन॥
वेद पुराण व शास्त्र सब, और जिते जो ग्रन्थ। तिनको बोधि विलोकि के, यह काढ्या निज मंथ॥
बोले दादूदास जी, साचे शब्द रसाल। तिनकी उपमा को कहै, मानो उगले लाल॥
या वाणी सुनि ज्ञान ह्वै, याही तैं वैराग। भक्ति भाव यासैं बढ़ै, या सुनि माया त्याग॥
या वाणी पढि प्रेम ह्वै, या पढि प्रीति अपार। या पढि निश्चय नाम ह्वँ, या पढि प्राण अधार॥
या वाणी ह्वै खोजतां, क्षमा शील संतोष। याहि विचारत बुद्धि ह्वै, या धारत जिव मोक्ष॥
आदि निरंजन अन्त निरंजन, मध्य निरंजन आदू। कहि जगजीवन अलख निरंजन, तहां बसै गुरु दादू॥
कथी स्वामी दादू प्रति पद महा मोह दमनी। जिन्हैं निश्चय कीन्हीं, भव निधि तरे दुःख शमनी॥
कहो को न जानी, सुखतर भये सन्त सब ही। पढै जो या वाणी निशिदिन लहै ब्रह्म तब ही॥
जिनकी वाणी अमृत बखानी सन्तन मानी सुखदानी। जो सुनकर प्राणी हिरदै आनी, बुद्धि थिरानी उन जानी॥
यह अकथ कहानी प्रगट प्रवानी नाहिं न छानी गंगा सी। गुरु दादू आया शब्द सुनाया ब्रह्म बताया अविनाशी॥
जाकी वाणी पढत बढत मन राम हिम, हिय होत अनुभूति अलख अमल की।
जीव जीवभाव तज ब्रह्म को स्वरूप होत, रहे नहीं रेख भी अविद्यामय मल की॥
जिनकी शरण भवतरणि विख्यात भली, कट जाती झट पाश मोह माया बल की।
नारायण वारी बलिहारी जाऊं बार-बार, परम दयालु दादू चरण-कमल की॥
यदी या वाण्येषा ह्यमृत-रस-पूर्णा श्रमहरा। श्रुता यै: प्रीत्येयं विशदयति तेषां मतिमलम्॥
पुमांस्तां गायन् वै व्रजति भवपारं सुखतरम्। नमामस्तं दादूं प्रणत-जन-वृन्दार्चित-पदम्॥

श्री दादूवाणी जी की आरती

ओऽम् जय दादूवाणी ।
मुनिजन की मनभावनि, सन्तन सुखदानी ॥ टेक ॥ ॐ जय.
वेद शास्त्र से सम्मत, सतगुरु की वाणी ।
भक्ति वैराग्य उपावनि, करती ब्रह्मज्ञानी ॥ १ ॥ ॐ
अविचल अमर अखंडित परमानंद भरणी ।
निर्गुण नाम निरंजन, सुमिरण अनुसरणी ॥ २ ॥ ॐ
आपा गर्व मिटावनि, हरि भक्ति जननी ।
सबसे स्नेह बढ़ावनि, तन मन अघ हननी ॥ ३ ॥ ॐ
विषय वकार विनाशिनि, निर्मल मन करणी ।
तीनों ताप नशावनी, भव दु:ख भय हरणी ॥ ४ ॥ ॐ
आतम ज्योति जगावै, भ्रम तम विनशानी ।
माया मोह भगावै, ब्रह्म ही दरशानी ॥ ५ ॥ ॐ
काया मांहिं दिखावै, प्रभु सारंग-पाणी ।
जाहि निरन्तर ध्यावैं, सुरनर मुनि ज्ञानी ॥ ६ ॥ ॐ
उपदेशामृत पूर्णा, श्री दादू वाणी ।
प्रेम सहित जो धारै, अमर हुवै प्राणी ॥ ७ ॥ ॐ
श्री गुरु दादू दयालु कृत अनुभव वाणी ।
अधम उधारण 'स्वामी', श्री मुख प्रगटानी ॥ ८ ॥ ॐ

वन्दना

जिन मनोभाव से ही मेट दियो विद्यावाद, जगा जगजीवन में भक्ति की मशाल को ।
जाकी नैन-सैन ने छुड़ाय कर भिक्षावृत्ति, भक्ति की सद्वृत्ति दीनी सु जनगोपाल को ॥
जाके एक बैन से ही रज्जब विरक्त भये, बखनो गावन लागो भक्ति की धमाल को ।
पद पंकज की रज परसे गौ गज मुक्त, 'नारायण' वन्दौं ऐसे दादूजी दयाल को ॥

- रचयिता - मा. नारायण स्वामी, निवाई महन्तों का बाग, जयपुर-४

अथ मंगलाचरण

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरु देवत: । वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ।।
परब्रह्म परापरं, सो मम देव निरंजनम् । निराकारं निर्मलं, तस्य दादू वन्दनम् ।।
श्वेताम्बर धरं स्वामी, नूरतेज सुधामयम् । श्री दयालु दया कृत्यं, सर्व विघ्न विनाशनम् ।।
जो प्रभु जग में ज्योतिमय, कारण करण अभेव । विघ्न हरण मंगल करण, श्री नमो निरंजन देव ।।
विघ्न बचे हरिनाम सों, व्याधि विकार विलाय । ऐसा शरणा नाम का, सब दु:ख सहजैं जाय ।।
सदा हमारे राम जी, गुरु गोविन्द जी सहाय । जन रज्जब जोख्यू नहीं, विघ्न विलय हो जाय ।।
दादू दीन दयाल गुरु, सो मेरे सिरमौर । जन रज्जब उनकी दया, पाई निहचल ठौर ।।
रज्जब शिष दादू गुरु, दीया दीरघ ज्ञान । तन मन आत्म ब्रह्म का, समझ्या सबहि स्थान ।।
दादू दीन दयालु सा, नजर न आया कोय । घड़सी सारी मांड में, करता करै सु होय ।।
स्वामी दादू ब्रह्म है, फेर सार नहीं कोय । सुन्दर ताको सुमिरतां, सब सिध कारज होय ।।
स्वामी दादू सुमिरिये, गहिये निर्मल ज्ञान । मनसा वाचा कर्मणा, सुन्दर धरिये ध्यान ।।
स्वामी दादू सुमिरिये, निशिदिन हिरदै राखि । सुन्दर जब लग जीविये, तब लग और न भाखि ।।
स्वामी दादू सुमिरिये, हिरदै होय प्रकाश । सुन्दर सब कारज सरै, पूरै जीव की आश ।।
स्वामी जी शिर ऊपरै, स्वामी जी उर मांहि । स्वामी दादू सारिसा, सुन्दर दूजा नाहिं ।।
साहिब दादू एक है, अन्तर नाहीं रेख । परमारथ को वपु धरया, अन्त एक का एक ।।
'दा' कहतां दारिद मिटै, 'दू' कहतां दु:ख जाय । ''दादू दादू'' जे रटैं, आवागमन नशाय ।।
दाह जिती है जीव की, दू कहतां भई दूर । ऐसे दादू देव हैं, रहिये सदा हजूर ।।
''दादू दादू'' जे कहैं, तिन को काल न खाय । पार ब्रह्म दादू भया, ताहि रहो ल्यौलाय ।।
गुरु दादू चन्दा भया, सन्तन भये चकोर । ध्यान धरत ता नूर का, तहां बसै मन मोर ।।
नारायण सब विघ्न निवारे, परमेश्वर सब पीरा । आटे घाटे गोरख राखै, जहां जहां दास कबीरा ।।
काल झाल थैं दादू राखै, ऐसा गुरु गंभीरा । सभी सन्त सहायक भये, जगिया गोविन्द नेरा ।।
हरि बायें हरि दाहिने, हरि आगे हरि पीछ । टीला तूं काहे डरे, चल्यो जाय हरि बीच ।।
टीला के साथी दो जनां, गुरु दादू अरु राम । वह है दाता मुक्ति का, वह सुमिरावै राम ।।
सेवक की रक्षा करै, सेवक की प्रतिपाल । सेवक की वाहरै चढै, श्री दादू दीनदयाल ।।
नमस्कार सुन्दर करत, निशिदिन बारंबार । सदा रहो मम शीश पर, सतगुरु चरण तुम्हार ।।
भक्त कहा जोगी जती, षट् दर्शन विश्राम । जगन्नाथ जगदीश को, भजै ताहि प्रणाम ।।

श्री दादूवाणी जी की आरती

ॐ जय दादू दयालु गिरा, जय गुरु दादू दयालु गिरा ।
माधव के मन भावनि, भव भय सतत हरा ॥ॐ।१॥
जो गावे, सुख पावे, क्लेश हटे हिय का ॥
शम दमादि मन आवे, क्षौभ मिटे जिय का ॥ॐ॥२॥
काम क्रोध मद भंजनि, लोभ मोह हननी ॥
साधक जन मन रंजनि, शांति क्षमा जननी ॥ॐ॥३॥
संशय शोक नशावति, कहती हरि साथा ॥
श्रुति सिद्धान्त सुनावति, तारति भव पाथा ॥ॐ॥४॥
भेद विवाद मिटावनि, समता सुख-कारी ॥
पक्ष विपक्ष नशावनि, विषयाशाहारी ॥ॐ॥५॥
अखिल विकार विभंजति, मंजति मन नीका ॥
निगमांगम नवनीत, सु, गिर प्राकृत टीका ॥ॐ॥६॥
ब्रह्म विचार प्रदायिनि, पर वैराग्य प्रदा ॥
सफल करत नर तन को, सोचत सरति सदा ॥ॐ॥७॥
धारण करत बुद्धि को, ब्रह्म निष्ठ करती ॥
नारायण निश्चय ही, मुक्ति महल धरती ॥ॐ॥८॥

– सन्त कवि नारायण दासजी पुष्कर

अथ शान्ति पाठ

ॐ सर्वे भवन्तु सुखिन : सर्वे सन्तु निरामया: ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दु:खभाग्भवेत् ॥
तन मन निर्मल आत्मा, सब काहू की होय ।
दादू विषय विकार की, बात न बूझै कोय ॥
नाम लेत नवग्रह टलैं, भजन करत भय जाय ॥
जगजीवन अजपा जपै, सब ही विघ्न विलाय ॥

ब्रह्मा मुरारी त्रिपुरान्तकारी, भानु: शशि: भूमिसुतौ बुधश्च ।
गुरुश्च शुक्र: शनिराहुकेतव:, सर्वे ग्रहा: शान्तिकरा भवन्तु ॥
ओऽम् सहनाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै ।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा कश्चिद् विद्विषावहै ॥
ॐ पूर्णमद: पूर्णमिदं, पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय, पूर्णमिवावशिष्यते ॥

ॐ शान्ति: शान्ति: शान्ति:

❋ आरती ❋

आरती गुरु दादू की कीजै, दरसन देखि जुगै जुग जीजै ॥ टेक ॥
नूर तेज मैं तेरा बासा, झिलमिल चमकै ज्योति प्रकाशा ॥ १ ॥
कहां लौं आरती साधू गावैं, दरसन देखि परम सुख पावैं ॥ २ ॥
प्रेम पियाला भरि भरि दीजै, गरीबदास अपनों करि लीजै ॥ ३ ॥

❋❋❋

आरती दादू दास तुम्हारी, तुम पुरवौ सद्गुरु आस हमारी ॥ टेक ॥
प्राण पिंड न्यौछावर कीजै, प्रसन्न होय परम सुख दीजै ॥ १ ॥
प्रफुल्लित प्राण मुदित गुण गाऊं, दीन होय चरणों चित लाऊं ॥ २ ॥
द्रवो देव दयानिधि स्वामी, सकल शिरोमणि अंतरयामी ॥ ३ ॥
विनती यही करो जनि दूरी, चैन कहै मोहि राखो हजूरी ॥ ४ ॥

❋❋❋

आरती गुरु दादू की गाऊं, निशदिन हिरदा भीतर ध्याऊं ॥ टेक ॥
चरण राउरे कमल सुरंगा, मकरंद लेवे मो मन भृंगा ॥ १ ॥
धन्य तुम दरस धन्य तव दासा, मैं गुन गाऊं, स्वासौं स्वासा ॥ २ ॥
नूर रूप तुम स्वामी मेरो, कहाँ लगि वरणों जस बहुतेरो ॥ ३ ॥
जन प्रहलाद शरण आयो तेरी, यह अरदास मानियो मेरी ॥ ४ ॥

❋❋❋

आरती गुरु दादू की कीजै, ब्रह्मरूप निज ध्यान धरीजै ॥ टेक ॥
प्रेम जल ले चन्दन चरचाऊं, भाव भक्ति के पुहुप चढ़ाऊं ॥ १ ॥
तन मन थाली घृत संजोऊं, नूर तेज के दीपक जोऊं ॥ २ ॥
जगमग जोति भया उजियारा, भरम करम नाशत अंधियारा ॥ ३ ॥
जन मसकीन मिले गुरु राया, आरती करत परम पद पाया ॥ ४ ॥

❋❋❋

यूं आरती गुरु ऊपर कीजै, जामें आतम राम लहीजै ॥ टेक ॥
ज्ञान ध्यान गुरु मांहीं पाया , विषम विषय सौं प्राण छुड़ाया ।
दुख दरिया मांहीं तैं काढ़ै, नाम जहाज जीव लै चाढ़े ।
माया मोह काढ़ि मन धौवै, परम पवित्र गुरु तैं होवै ।
जिन अंगों प्राणपति सेवैं, ते सब अंग गुरु दिल देवैं ।
गुरु प्रसाद परम पद पावै, जन रज्जब जुग जुग बलि जावैं ।

❋❋❋०

गुरु गोविन्द की आरती कीजै, आरति कर कर जुग जुग जीजै ॥ टेक ॥
काया-कांसी थाल संजोऊं, पांच-पचीसों दीपक जोऊं ॥ १ ॥
अनहद-वाणी घण्ट बजाऊं, मन-मनसा चित-चँवर दुलाऊँ ॥ २ ॥
दिल-देवल में मूरति प्यारी, सन्तदास धन ता पर वारी ॥ ३ ॥

❋❋❋

आरती परब्रह्म की कीजै, और ठौर मेरो मन न पतीजै ॥ टेक ॥
गगन-मँडल में आरती साजी, शब्द-अनाहद झालर बाजी ॥ १ ॥
दीपक-ज्ञान भया परकासा, सेवग ठाढे स्वामी पासा ॥ २ ॥
अति उछाह अति मंगलचारा, अति सुख बिलसै बारम्बारा ॥ ३ ॥
सुन्दर आरती, सुन्दर देवा, 'सुन्दरदास' करै तहां सेवा ॥ ४ ॥

*****

आरती कैसे करौं गुसांई, तुमही व्याप रहे सब ठांई ॥ टेक ॥
तुमही कुम्भ नीर तुम देवा तुमही कहियत-अलख-अभेवा ॥ १ ॥
तुमही दीपक, धूप अनूपा, तुमही घंटा-नाद सरूपा ॥ २ ॥
तुमही पाती, पुहुप, प्रकाशा, तुमही ठाकुर, तुमही दासा ॥ ३ ॥
तुमही जल-थल-पावक-पौना, 'सुन्दर' पकर रहै मुख मौना ॥ ४ ॥

*****

ररंकार गुरु शब्द सुनाया, ताकी आरती कर मन भाया ॥ टेक ॥
आपा मेट गरीबी कीजै, गुरु की आरति करै जो मरै न छीजै ॥ १ ॥
ब्रह्मा विष्णु महादेव पीव की आरती गाई, और दुनी सब धन्धे लाई ॥ २ ॥
धर्मराय डरता आरती गावै, हरि का हुकम न मेटा जावै ॥ ३ ॥
गुरु दादू चेला 'बनवारी', आरती करताँ मिले मुरारी ॥ ४ ॥

*****

गुरु गोविन्द की आरती गाऊँ, सब सन्तन को माथा नाऊँ ॥ टेक ॥
देख देख दादू आरती गाई, ऐसी साँई सो लव लाई ।
परचै कबीर हरि गुण गाया, ताथैं साहिब निकट बुलाया ॥ १ ॥
नामा रैदास नाम सौं राता, षट-दर्शन के निकट न जाता ।
धन्ना सैन भक्ति निधि कीन्ही, अन्तरयामी लीना चीन्ही ॥ २ ॥
पीपा सोझा हरिदास गायौ, औलग राम दरस दत पायौ ।
गोरख भरथरि निज तत गहिया, हरि हरि करतां अविचल रहिया ॥ ३ ॥
सकल साध माँगैं दीदार, जुग जुग आरती करैं कै बार ।
गुरु-दादू यह आज्ञा दीनी, 'बनवारी' हरि की आरती कीनी ॥ ४ ॥

*****

आरती रमता राम की कीजै, निराकार भजि लाहा लीजै ।
आदि अन्त का सेवक बंदा, ध्रुव प्रहलाद रु गोपीचन्दा ॥ १ ॥
जन्म जन्म का सेवक आदू, नाम कबीर जपै जन दादू ।
तूँ ही तूँ ही शिव ल्यौ लावै, शिव सनकादिक मुनिजन ध्यावैं ॥ २ ॥
राम भज रहे चरण निवासा, पीपा धन्ना सैन रैदासा ।
नूर तेज जहाँ ज्योति प्रकाशा, अनंत साधु तहँ बखनों दासा ॥ ३ ॥

*****

आरती करो हरि की मना, सफल होय ज्यों थारा दिनां ॥ १ ॥
सुरति सदा ले सनमुख कीजै, ता सेती अमृत रस पीजै ॥ २ ॥
प्राण मगन हरि आगै नाचै, काल विकराल सबै ही बांचै ॥ ३ ॥
नख शिख सौंज सबै ही वारै, तबही देखत राम उधारै ॥ ४ ॥
गुरु दादू यह मत सिखलावै, टीला के कहूँ और न आवै ॥ ५ ॥

श्री दादू वाणी अष्टक

शिखरिणीछन्द

अयी दादू वाणी, कलिकलुषहीना कर मुझे।
दिखवादे दादू के, चरण भयहारी कर दया॥
अदोषी तोषी हो, स्थिर शुचि अमानी अगद हो।
सदा पूज्या मेरा, तन मन रहे दादु पद में॥ १॥

विचारे प्रज्ञा मो, अचल बन ध्याता तव सदा।
सुधा-सा श्री दादू, पद नित रटूं, आश तज के॥
तथा सेवा मेरे, कर सुजन सन्तों कर करे।
सदा पूज्या मेरा, तन मन रहे दादु पद में॥ २॥

निहारे सन्तों को, नयन दिन दोषा शिर नमे।
सदा दादू धामों, पद गति करे प्रीति करके॥
तुम्हारा प्यारा हो, अरथ रस मेरी रसन को।
सदा पूज्या मेरा, तन मन रहे दादु पद में॥ ३॥

उचारूँ तेरे तो, श्रुति नित सुने वाक्य तब ही।
सभी मेरा काया, बल तव सु सेवा हित लगे॥
यही आशा मेरी, तुरत कर पूरी कर कृपा।
सदा पूज्या मेरा, तन मन रहे दादु पद में॥ ४॥

विचारे जो तोहे, तव नित नया आमय पय चखे।
प्रशंसा वा निन्दा, सम सुहृद वैरी जग लखे॥
उदासी माया से, हरि रत रहे आश हत के।
सदा पूज्या मेरा, तन मन रहे दादु पद में॥ ५॥

लहे है जो तेरा, सुख अटल पारायण करे।
सुग्रीवा सन्तों की, तव कर सुशोभा युत बने॥
विनाशे पापों को, तव पद महा मोह हरणी।
सदा पूज्या मेरा, तन मन रहे दादु पद में॥ ६॥

विवादों की हंत्री, श्रुति तत स्वरूपा तव नमस्।
सुधा की धारा से, अधिक सुखकारी सुधरणी॥
दिखवा दे दादू को, विनय नित 'नारायण' करे।
सदा पूज्या मेरा, तन मन रहे दादु पद में॥ ७॥

न देखी ऐसी तो, सम सुगमता द्वैत हरणी।
अयी दादू वाणी, स्तुति तव सदा सन्त करते॥
रहे हैं तो भी ते, गुण गणन का पार न लहा।
सदा पूज्या मेरा, तन मन रहे दादु पद में॥ ८॥

दोहा - प्रेम सहित प्रति दिन पढ़े, 'नारायण' यह जोय।
दादु कृपा से लहत है, सब थल मंगल सोय॥ ९॥

अथ श्री श्री १००८ श्री दादूदयाल जी महाराज की कतिपय साखियाँ अन्य ग्रन्थों में तथाकथित

अंग	साखी
विरह	विरह वियोग न सह सकूं, उर अंतर अति साल । कोई कहो मेरे पीव को, मिल दु:ख मेटो लाल ॥९०॥
परचा	कै लख चन्दा झिलमिलै, कै लख सूरज तेज । कै लख दीपक देखिये, पारब्रह्म की सेज ॥ दादू हम वासी परब्रह्म के, पारब्रह्म का खेल । ज्योति जगावे अगम की, बिन बाती बिन तेल ॥ आगे आपै आप है, तहां क्या जी का । दादू दूजा कहिन का, नांहीं लघु टीका ॥१५०॥ दादू सूतां पीछे सुरति निरत सूं, बालक ज्यों पय पीवै । ऐसे अंतर लगन राम सूं, आतम जुग जुग जीवै ॥१६७॥ दादू अविगत यों कहै रे, सब अंग सबही ठांहिं । जो चाहे सीही तहां, कीमत लेखा नांहिं ॥२२०॥
मन	सतगुरु सन्त चरण चल जाहीं, नित प्रति रहिये ताकी छांही । मन निश्चल कर लीजै नाम, दादू कहै तहां ही राम ॥ दादू दूसर कुछ नहीं, दूसर मन की दौड़ । मन मेरा संशय मिटा, वस्तु ठौर की ठौर ॥ सिर पर राख कबीर ज्यों रामनाम ल्यौलाइ । दादू मारग युगों का, एक पलक में जाइ ॥ मन का कहा न कीजिये, मनका मन को देय । गगन गुडी की डोर ज्यों, दादू उलटा लेय ॥१९॥
माया	दरसन पहरे मूंड मुंडावै, दुनिया दीन झूठ दिखलावै । मन सूं मीठी मुख सूं खारी, माया त्यागी कहैं बाजारी ॥१७॥ माया चेरी साधु हि सेवै, साधुन, कबहूं आदर देवै । ज्यूं आवै त्यों जाय बिचारी, बिलसी वितड़ी न माथै मारी ॥ सुरनर मुनियर विस्नु वस, ब्रह्मा लौं है ठेठ । सकल लोक के सिर खड़ी, साधु के पग हेठ ॥९९॥

	संयम सदा, न व्यापै व्याधी, होय अरोगी लगै समाधी ।
	राम रसायन भर भर पीवै, दादू जोगी जुग-जुग जीवै ॥ ५९ ॥
	कहि दादू जो जनकृत धारै, भलो बुरो फल नांहीं लारै ।
	झूठा परगट साचा छानैं, तिनकी दादू राम न मानैं ॥ १६ ॥
	को घट पापी को घट पुण्य, को घट चेतन को घट शुन्य ।
	को काहू का सीरी नांहीं, साहिब देखै सब घट मांहीं ॥ २० ॥
साच	दादू वेद कहो चाहे साधुमुख, साच न ठेल्या जाय ।
	साचे सूं मन मानिया, सो तत्त देहु दिखाय ॥ १४८ ॥
	साध दीवाने राम के, इन तैं सब कुछ होइ ।
	ये जु मिलावैं राम कौं, इन ही मिलै जु कोइ ॥ ११५ ॥
भेष	दादू दुरमति मांहिं ली, छापा तिलक न जाइ ।
	हंसा गति जो हरि भजै, कागा कुमति कुमाइ ॥ २५ ॥
	छापा सो छन्दा हरि, तिलक राम उर धार ।
	दादू यहु मति हंस की, कागा केलि संसार ॥ २६ ॥
साधु	दादू अरंड अरु आक वन, बांस न गिनती माहिं ।
	चन्दन संग चन्दन भये, आक कहै को नाहिं ॥ १ ॥
	ब्रह्माण्ड हंड चढाइया, मानो ऊरे अन्न ।
	कोई गुरुकृपा तैं ऊबरे, दादू साधू जन्न ॥ ५ ॥
विश्वास	कौन पकावै कौन पीसै, जहां तहां सीधा ही दीसै ।
	दादू साधू मांगन धावै, अच्युत रूप आत्म चढावै ॥
	दादू ईश्वर जीव की, नित्य करै प्रतिपाल ।
	अम्मा ज्यों पोषै सदा, जनि दुख पावै लाल ॥
जीवत-मृतक	सेवग सिरजनहार का, सो क्यों परसै आन ।
	दादू साध चूकै नहीं, छाड़ै पिण्ड पिरांण ॥ २५ ॥
	सेवग सिरजनहार का, तन मन निर्मल होइ ।
	दादू साध चूकै नहीं, कोटि करै जै कोइ ॥ २६ ॥
	जीवत मृतक यही निसानी, दुर्बल देही निर्मल वाणी ।
	भाव भगति दीनता अंग, प्रेम प्रीति सदा तिहि संग ॥ ८ ॥
	दादू तो तूं पावै पीव कूं, वे नाहीं दिल मांहिं ।
	जहां आपा तहां हरि नहीं, हरि तहां आपा नाहिं ॥ १८ ॥

चरचा करते यूं कहै, मैं तैं मन में नांहिं ।
दादू दोष न लागि जन, अहं ममत्व बिसराहिं ॥३१॥
रसन रीस सो जानि छिन, गोष्ठ करत ज्यूं होइ ।
जनि आपो निर्मूल कर, दादू दिल तैं धोइ ॥३२॥
आपो सूं मुख-वार्ता, अन्तर आपो नांहिं ।
दादू साधू जान के, साहिब सबही मांहिं ॥३३॥

शब्द

शब्द बंधाणां शाह के, ताथैं दादू आया ।
दुनिया जीवी बापुरी, सुख दर्शन पाया ॥३७॥

सूरातन

दादू राखण हारा राखै, तिसे कौन मारै ।
उसे कौन डुबोवै, जिसे सांईं तारै ॥
वाही कौन बिगारै, जाकी आप सुधारै ।
कहे दादू सो कबहुं न हारै, जे जन सांई संभारै ॥७॥

सजीवन

काटै फन्द तो छूटै द्वन्द, छूटै बन्द तो लागै बन्द ।
लागै बन्द तो अमरकंद, अमरकंद दादू आनंद ॥
छ:सौ सहस्र इक्कीस का, अजपा जाप विचार ।
यों दादू निज नाम ले, काल पुरुष को मार ॥१३॥
षट् चक्कर पवना फिरै, छ: सौ सहस्र इकीस ।
जोग अमर, जम को दहै, दादू बिस्वा बीस ॥

निर्वैरता

दादू पूर्ण ब्रह्म विचारिये, कुंजर कीट समान ।
दादू दुविधा दूर करि, तजि आपा अभिमान ॥२६॥
पूरण ब्रह्म विचारिये, दुतिय भाव कर दूर ।
सब घट साहिब देखिये, राम रह्या भरपूर ॥२७॥
पूरण ब्रह्म विचारिये, तो सकल आत्मा एक ।
काया के गुण देखिये, तो नाना वर्ण अनेक ॥२८॥
सब जीवों की करै प्रतिपाल ।
ताको भेटै दीनदयाल ॥

अन्य

दादू समां विचार के, कलि का कीजे भाय ।
जो तोहे मारे ढीम ईंट, लीजो सीस झुकाय ॥
अन्य देव की सेव से, कबहूं भला न होय ।
दादू ऊसर बाहि कर, कोठा भरै न कोय ॥

❊ गुरु-मन्त्र की पद्यमय टीका ❊

१.	**अविचल मंत्र –**	अविचल दादू राम जी, अविचल जाके बैन । अविचल सन्त उर धार के, अविचल पावै चैन ॥
२.	**अमर मंत्र –**	अमर अनूपम आप हैं, अमर हरि का नाम । अमर हरि के सन्त हैं, अमर लहैं सुख धाम ॥
३.	**अक्षय मंत्र –**	अक्षय अखंडित एक रस, सब में रह्या समाय । आपै आप उदार हरि, सुमिर सुमिर सुख पाय ॥
४.	**अभय मंत्र –**	अभय एक रस अजित अति, सत् चित् आनंद गोय । अज अविनाशी ब्रह्मजन, ध्याय अभय भय खोय ॥
५.	**राम मंत्र –**	राम रमै रमतीत नित, ररं कार रट सोय । गुरु कृपा गम सुरति सूं, राम रूप तब होय ॥
६.	**निजसार मंत्र –**	निज चेतन तत्त सार है, तो बिन सकल असार । कारज कारण रूप है, समझ रु ज्ञान विचार ॥
७.	**सजीवन मंत्र –**	सजीवन सत सार सुख, ता बिन असत असार । दिढ नौका निज नांव गह, जन भव उतरे पार ॥
८.	**सवीरज मंत्र –**	सवीरज अमृत हरि, सचराचर में पूर । गुरु ज्ञान तैं गम भई, अज्ञजन भाषत दूर ॥
९.	**सुन्दर मंत्र –**	सुन्दर सिरजनहार है, निरामय निज नूर । गुरु ज्ञान तैं गम भई, अज्ञजन भाषत दूर ॥
१०.	**शिरोमणि मंत्र –**	सत्य शिरोमणि सबन में, व्याप रह्या सम भाइ । साच शील संतोष गहे, सतगुरु ज्ञान लखाइ ॥
११.	**निर्मल मंत्र –**	निर्मल अपनी आतमा, निर्मल गुरु का ज्ञान । निर्मल हरि के सन्त हैं, निर्मल नांव बखान ॥
१२.	**निराकार मंत्र –**	निराकार निर्गुणमयी, निरालंब निरधार । निजानंद निज बोध मम, सतगुरु ज्ञान विचार ॥

१३. अलख मंत्र – अलख निरंजन एक रस, सतगुरु दीन दयाल ।
समरथ सिरजनहार जप, शरणागत प्रतिपाल ॥

१४. अकल मंत्र – अकल अरूपी अमित गति, अविनाशी अज एक ।
जन तप तत् सत् ऊधरे, सतगुरु ज्ञान विवेक ॥

१५. अगाध मंत्र – अगाध अगोचर एकरस, अतोल अमोल अमाप ।
सिध साधक मुनि थक रहे, वेद थकै जप जाप ॥

१६. अपार मंत्र – अपार पार नहिं जास को, सनकादिक रहे हार ।
पार न पावै शेष शिव, ब्रह्मा वेद विचार ॥

१७. अनंत मंत्र – अनन्त रूप परमात्मा, अनन्त रूप गुरुदेव ।
अनन्त सन्त हरि को भजैं, लहै जु विरला भेव ॥

१८. राया मंत्र – राया सतगुरु रामजी, सकल भवन के ईश ।
अखिल चराचर मैं बसै, ब्रह्मादिक के शीश ॥

१९. नूर मंत्र – नूर रूप परब्रह्म है, नूर रूप गुरुदेव ।
नूर रूप सब सन्त हैं, करैं नूर की सेव ॥

२०. तेज मंत्र – तेज तत्त तिहुं लोक मैं, व्याप रह्या इकसार ।
समझे तैं भवसिन्धु से, हरिजन उतरे पार ॥

२१. ज्योति मंत्र – परम ज्योति जगदीश की, सब में रही समाय ।
सकल ज्योति उस ज्योति तैं, प्रकाशित समभाय ॥

२२. प्रकाश मंत्र – सब घट ब्रह्म प्रकाश है, ब्रह्म दृष्टि कर देख ।
वेद कहै पुनि साधु सब, सतगुरु ज्ञान विवेक ॥

२३. परम मंत्र – परम गुरु परब्रह्म है, परम हरिजन सोइ ।
परम प्रभु का जाप है, भेद भाव नहिं कोइ ॥

२४. पाया मंत्र – पाया परम दयाल गुरु, पाया सतगुरु बैन ।
पाया यहि जिहिं उर धर्‍या, यह आतम की सैन ॥

// गुरु मंत्र टीका सम्पूर्ण //

श्री दादूदयाल जी के ५२ शिष्यों के गण्य

श्री जैमल जी चौहान का रामरक्षा मन्त्र

ॐ राम बिना इस जीव को, कोइ न राखण हार ।
जैमल सतगुरु आपणा, राखै बारंबार ॥ १ ॥

ॐ अकाशे रक्षा करै, पाताले प्रतिपाल ।
घट मांहीं रक्षा करै, जैमल दीनदयाल ॥ २ ॥

शीश रक्षा सांई करै, श्रवणों सिरजन हार ।
नैन रक्षा नरहरि करै, नासा अपरंपार ॥ ३ ॥

मुख रक्षा माधो करै, कंठ रक्षा करतार ।
हिरदै रक्षा हरि करै, भुज रक्षा भरतार ॥ ४ ॥

पेट रक्षा पुरुषोत्तमा, नाभि त्रिभुवनसार ।
जंघ रक्षा जगदीश जी, पिंडी परम उदार ॥ ५ ॥

गिर रक्षा गोविन्द करै, पगथली प्राण-आधार ।
जहां तहां रक्षा करै, साचा सिरजनहार ॥ ६ ॥

आगै राखै रामजी, पीछे राखण हार ।
बांयें दांयें राखि ले, कर गहि तूं करतार ॥ ७ ॥

जम डंका लागै नहीं, विघ्न-काल भय दूर ।
राम रक्षा जिनकी करै, बाजै अनहद तूर ॥ ८ ॥

भेजी राखै भूधरा, जिह्वा को जगदीश ।
कलेजा राखै केशवा, अस्थि राखै सर्व-ईश ॥ ९ ॥

मींजी राखै माधवा, मन को मोहन राय ।
मनसा की रक्षा करै, कबहूं दूर न जाय ॥ १० ॥

आत्मा को अकला राखै, जीव को ज्योति स्वरूप ।
सुरति को राखै सांइयां, चित को अमर अनूप ॥ ११ ॥

दिन को राखै रामजी, सूतां राम सहाय ।
सुपनां में भी संग रहै, जैमल एकै भाय ॥ १२ ॥

सर्प सिंह व्यापै नहीं, डाइन नजर मशाण ।
अन्त काल रक्षा करै, काल न झंपै प्राण ॥ १३ ॥

राख राख शरणागता, हमको अबकी बार ।
जैमल की रक्षा करो, साचा सिरजनहार ॥ १४ ॥

हरि जी तुम बिन को नहीं, हमको राखणहार ।
यह जैमल की वीनती, सुनियो बारंबार ॥ १५ ॥

जीव हमारा एक है, वैरी लाख अनन्त ।
इनसे हमको राखियो जैमल गुरु भगवन्त ॥ १६ ॥

सेवक की रक्षा करै, सेवक की प्रतिपाल ।
सेवक की बाहरै चढ़ै, श्री दादू दीनदयाल ॥ १७ ॥

बस्ती में रक्षा करै, अरु वन में प्रतिपाल ।
घट मांहीं रक्षा करै, श्री स्वामी दीनदयाल ॥ १८ ॥

दिन को राखै चन्द्रमा (सुर), निशि को राखै सूर ।
पूर्णब्रह्म रक्षा करै, बाजै अनहद तूर ॥ १९ ॥

✻✻✻

सप्ताह भर में शनि, रवि, सोम, भोम, बुधवार ।
गुरु, शुक्र रक्षा करै, सम्रथ सिरजनहार ॥ २० ॥

जल तूं, जलाल तूं, कुदरत तूं, कमाल तूं ।
केशव तूं, करीम तूं, आई बलाय, टाल तूं ॥

✻✻✻

समर्थ मेरा सांइयां सकल अघ जारै ।
सुखदाता मेरे प्राण का संकोच निवारै ॥

त्रिविध ताप तन की हरै चौथे जन राखै ।
आप समागम सेवका, साधू यूं भाखै ॥

आप करै प्रति पालना, दारुण दुःख टारै ।
इच्छा जन की पूरि है, सब कारज सारै ॥

कर्म कोटि मय मंजना, सुख मंडल सोई ।
मन मनोरथ पूरणा, ऐसा और न कोई ॥

ऐसा और न देखि हूं, सब पूरण कामा ।
दादू साधु संगी किये, उन आतम रामा ॥

भोग - विधि

सन्त प्रीति पनवारा लाये, छप्पन भोग छतीसों व्यंजन ।
मनसा मन्दिर चतुष्टय चौकी, ज्ञान गंग जलझारी मंजन ॥

सुषुमनि कंवला बिजना ढोलै, तुम्हरो तुम अर्पन सब अंजन ।
हरि गुरु संत सकल रुचि जीमो, नूर तेज हरि ज्योति पुंजन ॥ १ ॥

प्रेम पुष्प से पूजा करहीं, पाती प्रीति सूं लेय चढाय ।
मनसा थाल भाव भोजन कर, भगवत भोग लगन से लाय ॥ २ ॥

सेवा पूजा सुरति सूं, कीजै किहिं संजोग ।
कहै जगजीवन रामजी, हरि के लागै भोग ॥ ३ ॥

तुम दाता तुम भोक्ता, तुम हरि अर्पण भाय ।
कहै जगजीवन रामजी, अलख अरोगो आय ॥ ४ ॥

सकल समर्पण कीजिये, अविगत भोग लगाय ।
कहै जगजीवन भाव सूं, राम अरोगो आय ॥ ५ ॥

तेजहि खाना पीवना, तेजहि भोग विलास ।
तेजहि बरतन साध के, कहै जगजीवनदास ॥ ६ ॥

थाल परोस्यो प्रीति सूं, मोहन लायो भोग ।
परमेश्वर परमात्मा, स्वामी दादू जोग ॥ ७ ॥

जो यह भोजन स्वामी पावै, जीवन जन्म सफल हो जावै ।
जन का भाव विचारो स्वामी, तुम सब जानों अन्तर्यामी ॥ ८ ॥

गुरु दादू के थाल को, लहै सींथ कण जोय ।
ज्ञान भक्ति वैराग्य पद, निश्चय पावै सोय ॥ ९ ॥

परचै सेवा आरती, परचै भोग लगाय ।
दादू उस प्रसाद की, महिमा कही न जाय ॥ १० ॥

परमेश्वर के भाव का, एक कणूंका खाय ।
दादू जेता पाप था, भरम करम सब जाय ॥ ११ ॥

***

स्तुति (जय दयाल दादू)

जय दयालु जय दयालु जय दयालु–दादू ।
चरण शरण परन नरन टरन करम कादू ॥

हरन रोग जरण ओघ धरणि–धरण–पादू ।
शोक शरण तिरण करण भरन नाम नादू ॥

काम वाम जाम दाम करि हैं उर विषादू ।
ध्यान–धनुष–धारण–मारण, प्रकटे गुरु–दादू ॥

हरि हुक्म पाय–धाय–आय भक्ति भाय साधू ।
रवन–छवन बैन–चवन, गावन प्रहलादू ॥

गौर अंग स्वामी सोहै गुरु दादू ।
तेजके तख्त पर तपैं है अनादू ॥

विघ्न–विडारन, मंगल कारन, भक्ति बधावन प्रकटे–आदू ।
रूप की राशी ज्ञान–गुण आगर, रटत नाम उर मिटत विषादू ॥

गंगा–यमुना वांछित उनकौं, परसत चरण कटत भ्रम कादू ।
भलेई अवतार लिये या जग में, भानु प्रकटे प्रभुकुल आदू ॥
'लाल–गुलाम' यही वर मांगे, सेउं सदा तव पंकज पादू ॥

श्री दादूवाणी के साखियों की प्रतीक सूची
(सूचना–दादू के बाद प्रथम अक्षर से देखें)

आ

ग

घ

थ

अथ श्रीदादू वाणी के भजनों की प्रतीक सूची

✻✻✻

संतकवि कविरत्न स्वामी नारायणदासजी कृत ग्रन्थ

१.प्लवंगम पुष्पमाला। २.श्रीबाह्यांतर वृत्ति वार्ता। ३.श्रीकृष्ण कृपाफल। ४.शिक्षा सप्तशती। ५.भक्ति चरित्र। ६.साधक सुधा सम्पूर्ण। ७.दृष्टांत दोहावली। ८.नारायण भजनावली। ९.संतप्रसाद। १०.उत्तम उपदेश। ११.उभय तन शोधकसुधा। १२.वेदान्त प्रश्नोत्तरी। १३.शिक्षा सूत्र। १४.अबोध बोध। १५.अवस्था व्यवस्था। १६.सद् वचन-सुधावली। १७.शिक्षा शतक। १८.विनयभूत चेतावनी शतक। १९.सुधारक सप्तसूत्री। २०.संतवाणी पर मेरे विचार। २१.चेतावनी चौतीसा। २२.प्रार्थना पंचदशी। २३.नारायण प्रश्नोत्तरी। २४.बृहत् प्रश्नोत्तरी। २५.सुन्दरदास जी उनकी वाणी पर मेरे विचार। २६.दृष्टान्त-सुधा-सिन्धु इसमें ३००० से अधिक दृष्टान्त हैं, यह छ: भागों में छपा है। २७.सिद्ध संत रामस्वरूप जी का जीवन चरित्र। २८.भक्तमाल माहात्म्य। २९.भक्तमाल की आरती। ३०.सुन्दरवाणी स्तव सप्तक। ३१.भक्ताष्टक। ३२.समय सप्तशती (अप्रकाशित)। ३३.नारायण कवितावली-इसमें विविध विषयों के कवित्त हैं। ३४.अध्यात्म रामायण का पद्यानुवाद। ३५.श्रीदादूवाणी-दादूगिरार्थ-प्रकाशिका टीका सहित। ३६.रज्जबवाणी रज्जब गिरार्थ प्रकाशिका टीका सहित। प्रकाशकों को द्वितीय संस्करण निकालने का अधिकार नहीं है, वह लेखक से पूछकर कोई भी निकाल सकता है। ३७.राधवदास जी कृत भक्तमाल व चतुर-दास जी कृत उसकी पद्य टीका। ३८.श्री दादूचरितामृत (स्वामी लक्ष्मीराम चिकित्सालय जयपुर से मिलता है।) ३९.श्रीदादूपंथ परिचय (दादूपंथ का इतिहास) लगभग तीन हजार पृष्ठों में तीन भागों में छपा है। ४०.राजस्थानी संतसाहित्य परिचय। ४१.स्तोत्रसुधाह्रद। ४२.गणपति सहस्रनाम। ४३.गणपति आरती।४४.गणेशाष्टक। ४५.अष्टोत्तरशत श्रीविष्णु नाम माला। ४६.विष्णु आरती। ४७.विष्णु अष्टक। ४८.सत्यनारायण की आरती। ४९.शंकरसहस्रनाम। ५०.शंकरजी की आरती। ५१.शंकराष्टक। ५२.शक्ति सहस्रनाम। ५३.शक्ति जी की आरती। ५४.शक्ति अष्टक। ५५.गंगाजी की आरती। ५६.लक्ष्मी जी की आरती। ५७.सरस्वती की आरती।५८.मातामहिम्न। ५९.सूर्य सहस्रनाम। ६०.सू आरती। ६१.सूर्याष्टक। ६२.नृसिंह सहस्रनाम। ६३.नृसिंह आरती। ६४.नृसिंहाष्टक। ६५.राम सहस्रनाम। ६६.रामजी की आरती। ६७.रामाष्टक। ६८.रामप्रणति पंचम। ६९.राममहिम्न। ७०.कृष्ण सहस्रनाम। ७१.कृष्णजी की आरती। ७२.कृष्णाष्टक। ७३.कृष्ण प्रार्थना पंचक।७४.कृष्ण कवच। ७५.कृष्णमहिम्न २९ शिखरिणी। ७६.मक्खन चोरी, शंका समाधान। ७७.हनुमत सहस्रनाम।७८.हनुमान जी की आरती। ७९.हनुमत अष्टक। ८०.हनुमत महिम्न २८,शिखरिणी और एक दोहा। ८१.नानक सहस्रनाम। ८२.नाननकजी की आरती। ८३.नानकाष्टक। ८४.दादू सहस्रनाम। ८५.दादू जी की आरती। ८६.दादू प्रणति अष्टक। ८७.दादूवाणी की आरती। ८८.दादूवाणी प्रार्थनाष्टक। ८९.दादूमहिम्न। ९०.दादू प्रार्थनाष्टक। ९१.दादूगिरागरिमा आद्याक्षरी। ९२.दादूप्रार्थना पंचक। ९३.निज अभिलाषा शिखरिणी सप्तक।९४.दादू अष्टमी। ९५.परमेश्वर पंचसहस्र नाम माला। ९६.परमेश्वर की आरती। ९७ परमेश्वराष्टक। ९८.सद्‌गुरु सहस्रनाम। ९९.सद्‌गुरुआरती। १००.ब्रह्माष्टक अष्टक। १०१.सद्‌गुरुमहिम्न,२९ शिखरिणी। १०२.ब्रह्मसहस्रनाम।१०३.ब्रह्म की आरती। १०४.ब्रह्माष्टक। १०५.संत साहित्य महात्म्य सत्ताईसा। १०६.गीता गरिमा। १०७.धर्मवीर पंचक। १०८.शिक्षा षष्ठक। १०९.निज अभिलाषा अष्टपदी। ११०.संतमाल। १११.संतमाल माहात्म्य।। ११२.संतमाल की आरती। ११३.संतों की आरती। ११६.विश्व वटविटप रहस्य सप्तक। ११७.परंपरागत श्रीदादूवाणी प्रवचन पद्धति। ११८.दादूवाणी महात्म्य। ११९.गुणगंजनामा।

उक्त नारायण ग्रन्थावली के ग्रन्थों को खरीदकर पढ़िये और नास्तिक भावना तथा भ्रष्टाचार को रोकते हुए सदाचार और ईश्वर भक्ति के प्रचार में सहायक बनिये। मिलने का पता (१)श्री दादू दयालु महासभा, श्री दादू महाविद्यालय, मोती डूंगरी रोड, जयपुर। (२)श्री दादू मंदिर, दादूद्वारा, नरायणा, जिला जयपुर।

***